दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय माँ तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति सदाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

[संस्करण १,६५,०००]

सिय-राम-सरूप अगाध अनूप बिलोचन-मीनन को जलु है।
श्रुति रामकथा, मुख राम को नामु, हिएँ पुनि रामहि को थलु है॥
मति रामहि सों, गति रामहि सों, रति राम सों, रामहि को बलु है।
सब की न कहै, 'तुलसी' के मतें इतनो जग जीवन को फलु है॥

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु. १०.००
विदेशमें रु. १६.००
(१८ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

इस अङ्कका मू
भारतमें रु. १०
विदेशमें रु. १६
(१८ शिलिं

आदि सम्पादक—नित्यलीलालीन श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

कल्याण

श्रीरामाङ्क











वर्ष ४६

'कल्याण'के प्रेमी पाठकों और ग्राहकोंसे नम्र-निवेदन

(१) 'श्रीरामाङ्क' नामक यह विशेषाङ्क प्रस्तुत है। श्रीरामाङ्कके लिये प्राप्त उपादेय सामग्रीका समावेश इस एक ही अङ्कमें हो सकना कठिन था, अतः फरवरी और मार्च मासके दोनों अङ्क भी क्रमशः प्रथम और द्वितीय परिशिष्टाङ्कके रूपमें प्रकाशित होंगे। दोनों परिशिष्टाङ्कोंसहित विशेषाङ्कको 'श्रीरामाङ्क' समझना चाहिये। श्रीरामाङ्कमें भगवान् श्रीराम और भगवती श्रीसीताके स्वरूपतत्त्व, नामतत्त्व, लीलातत्त्व और धामतत्त्वपर समाजके शीर्षस्थानीय आचार्यों, विद्वानों एवं भक्तोंके बड़े ही महत्त्वपूर्ण विचार संगृहीत हैं। इस अङ्कमें भगवान् श्रीरामके विभिन्न आदर्श गुणों, उनके प्रभाव, महत्त्व आदिपर भी विशेष प्रकाश डाला गया है। भगवान् श्रीरामकी लीला-कथाका अपनी वाणी अथवा लेखनीद्वारा जगत्में प्रचार-प्रसार करनेवाले प्रमुख ऋषियों, आचार्यों, कवियों, आदिका भी संक्षिप्त परिचय इसमें दिया गया है। भगवान् श्रीरामके लीला-परिकरोंका संक्षिप्त परिचय एवं प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कतिपय श्रीरामभक्तोंके सुन्दर और रोचक आख्यान भी इसमें विद्यमान हैं। भगवान् श्रीरामकी लीलासे सम्बद्ध प्रमुख स्थानों, पर्वतों, नदियों एवं सरोवरोंका माहात्म्य तथा श्रीरामके वन-गमन एवं वहाँसे लौटनेके मार्गका परिचय भी दिया गया है। भगवान् श्रीरामकी प्रसन्नता और कृपा-प्राप्तिके लिये तथा उनके साक्षात्कारके लिये अनुष्ठान, मन्त्र-स्तोत्र आदि भी दिये गये हैं और श्रीराम-सम्बन्धी व्रतों एवं उत्सवोंकी भी चर्चा है। महात्मा गांधीके लिये आदर्श तथा भारतीय शासन-व्यवस्थाके लिये स्पृहणीय 'रामराज्य'का भी मूल्याङ्कन एवं वर्णन इस विशेषाङ्कमें है। भारत देश तथा हिंदू समाज जिस विकट और संघर्षपूर्ण परिस्थितियोंमेंसे गुजर रहा है, उस परिस्थितिमें भगवान् श्रीरामके गुणोंको जीवनमें उतारनेकी तथा उनके चरित्रोंपर मनन करनेकी नितान्त आवश्यकताका प्रतिपादन करनेवाले लेख भी हैं। भगवान् श्रीरामका तथा रामकथाका भारतकी सीमासे बाहर जो प्रचार और विस्तार हुआ है, उसकी झलक लेखों और चित्रोंके माध्यमसे दी गयी है। साधकों, उपासकों तथा अनुष्ठान-कर्ताओंके लिये मार्च मासमें प्रकाशित होनेवाला द्वितीय परिशिष्टाङ्क अधिक उपयोगी होगा, जिसमें यन्त्र-पूजनविधि एवं स्तोत्र-स्तुतियोंकी प्रधानता है। इस प्रकार भगवान् श्रीराम-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक विषयोंपर प्रामाणिक सामग्रीका संग्रह इस अङ्कमें है।

(२) इस विशेषाङ्कमें ७०० पृष्ठोंकी पाठ्य-सामग्री है। सूची आदि अलग हैं। बहुत-से बहुरंगे चित्र भी हैं। अवश्य ही हम जितने और जैसे चित्र देना चाहते थे, उतने और वैसे परिस्थितिवश नहीं दिये जा सके। हमारी विवशता समझकर पाठक महोदय क्षमा करें। पर जो दिये गये हैं, वे सुन्दर तथा उपयोगी हैं।

(३) कागज, डाक-महसूल, वेतन आदिका व्यय बढ़ जानेके कारण गतवर्ष 'कल्याण'में बहुत घाटा रहा। इस वर्ष कागजोंका मूल्य बढ़ गया है। वी० पी०, रजिस्ट्री, लिफाफे आदिमें भी डाक-महसूल बढ़ रहा है। कर्मचारियोंका वेतन-व्यय भी बहुत बढ़ा है। कम वजनके छपाईके कागज बहुत कम बनने लगे हैं और अधिक वजनके लेनेपर खर्च और भी बढ़ गया है। इन सब खर्चोंकी बढ़ी रकमोंको जोड़नेपर तो 'कल्याण'का वर्तमान १०.०० लगभग पौनी कीमतके बराबर होगा। इस अवस्थामें 'कल्याण'के प्रेमी ग्राहकोंको तथा पाठकोंको चाहिये कि वे प्रयत्न करके अधिक-से-अधिक ग्राहक बनाकर रुपये भिजवानेकी कृपा करें।

(४) इस बार भी विशेषाङ्क कुछ देरसे जा रहा है, अनिवार्य परिस्थितिके कारण ही ऐसा हुआ है। ग्राहक महानुभावोंको व्यर्थ ही थोड़ा-बहुत परेशान होना पड़ा, हमें इस बातका बड़ा खेद है। ग्राहकोंकी सहज प्रीति तथा आत्मीयताके भरोसे ही हमारी उनसे क्षमा-प्रार्थना है।

(५) 'कल्याण'का विशेषाङ्क तो निकल गया, पर इस समय देशमें चारों ओर जैसी अशान्ति, अव्यवस्था, उच्छृङ्खलता, अनियमितता, अनुशासनहीनता आदिका विस्तार हो रहा है, उसे देखते कहा नहीं जा सकता कि 'कल्याण'का प्रकाशन कबतक हो सकेगा या किस रूपमें होगा। अतएव ग्राहकोंको यह मानकर संतोष करना चाहिये कि उनके भेजे हुए दस रुपयेके पूरे मूल्यका उन्हें यह विशेषाङ्क मिल गया है। अगले अङ्क भेजे जा सके तो अवश्य भेजे जायँगे, नहीं तो उनके लिये मनमें क्षोभ न करें। परिस्थितिवश ही ऐसी प्रार्थना की जाती है।

(६) जिन सज्जनोंके रुपये मनीआर्डरद्वारा आ चुके हैं, उनको अङ्क भेजे जानेके बाद शेष ग्राहकोंके नाम वी० पी० जा सकेगी। अतः जिनको ग्राहक न रहना हो, वे कृपा करके मनाहीका कार्ड तुरंत लिख दें, ताकि वी० पी० भेजकर 'कल्याण'को व्यर्थ नुकसान न उठाना पड़े।

(७) मनीआर्डर-कूपनमें और वी० पी० भेजनेके लिये लिखे जानेवाले पत्रमें स्पष्टरूपसे अपना पूरा पता और ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें। ग्राहक-संख्या याद न हो तो 'पुराना ग्राहक' लिख दें। नया ग्राहक बनना हो तो 'नया ग्राहक' लिखनेकी कृपा करें। मनीआर्डर 'मैनेजर, कल्याण' के नाम भेजें। उसमें किसी व्यक्तिका नाम न लिखें।

(८) ग्राहक-संख्या या 'पुराना' ग्राहक न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें दर्ज हो जायगा। इससे आपकी सेवामें 'श्रीरामाङ्क' नयी ग्राहक-संख्यासे पहुँचेगा और पुरानी ग्राहक-संख्यासे वी० पी० चली जायगी। ऐसा भी हो सकता है कि उधरसे आप मनीआर्डरद्वारा रुपये भेजें और उनके यहाँ पहुँचनेके पहले ही इधरसे वी० पी० चली जाय। दोनों ही स्थितियोंमें आपसे प्रार्थना है कि आप कृपापूर्वक वी० पी० लौटायें नहीं, प्रयत्न करके किन्हीं सज्जनको 'नया ग्राहक' बनाकर उनका नाम-पता साफ-साफ लिख भेजनेकी कृपा करें। आपके इस कृपापूर्ण प्रयत्नसे आपका 'कल्याण' नुकसानसे बचेगा और आप 'कल्याण'के प्रचारमें सहायक बनेंगे। आपके विशेषाङ्कके लिफाफेपर आपका जो ग्राहक-नम्बर और पता लिखा गया है, उसे आप खूब सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री या वी० पी० नंबर भी नोट कर लेना चाहिये।

(९) 'श्रीरामाङ्क' सब ग्राहकोंके पास रजिस्टर्ड पोस्टसे जायगा। हमलोग जल्दी-से-जल्दी भेजनेकी चेष्टा करेंगे तो भी सब अङ्कोंके जानेमें लगभग तीन सप्ताह तो लग ही सकते हैं। ग्राहक महोदयोंकी सेवामें विशेषाङ्क ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार जायगा। इसलिये यदि कुछ देर हो जाय तो परिस्थिति समझकर कृपालु ग्राहकोंको हमें क्षमा करना चाहिये और धैर्य रखना चाहिये।

(१०) 'कल्याण-व्यवस्था-विभाग', 'कल्याण-कल्पतरु' (अंग्रेजी) और 'साधक-संघ'के नाम गीताप्रेसके पतेपर अलग-अलग पत्र, पारसल, पैकेट, रजिस्ट्री, मनीआर्डर, बीमा आदि भेजने चाहिये तथा उनपर केवल 'गोरखपुर' न लिखकर पत्रालय—गीताप्रेस, जनपद—गोरखपुर (उ० प्र०)—इस प्रकार पता लिखना चाहिये।

(११) 'कल्याण-सम्पादन-विभाग'के नाम भेजे जानेवाले पत्रादिपर पत्रालय—गीतावाटिका, जनपद—गोरखपुर (उ० प्र०)—इस प्रकार पता लिखना चाहिये।

व्यवस्थापक—**'कल्याण' पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

|| श्रीहरिः ||

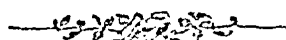
श्रीरामाङ्ककी विषय-सूची

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्सङ्गकी सूचना

प्रतिवर्षकी भाँति इस वर्ष भी गीताभवन, स्वर्गाश्रममें सत्सङ्गका आयोजन होनेकी बात है। सबसे प्रार्थना है कि सदाकी तरह सत्सङ्गी महानुभाव तथा माताएँ-बहिनें अधिकाधिक संख्यामें केवल सत्सङ्ग तथा भजनके पवित्र उद्देश्यसे ऋषिकेश पधारें। श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजकी शुद्ध वैशाख कृष्ण अमावास्या (१३ अप्रैल, १९७२) तक वहाँ पहुँचनेकी बात है। परमश्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजसे भी प्रार्थना की गयी है तथा अन्यान्य महात्मागण भी पधारनेवाले हैं।

नौकर-रसोइया आदि यथासम्भव साथ लाने चाहियें। स्वर्गाश्रममें नौकर-रसोइया मिलने कठिन हैं। स्त्रियाँ पीहर या ससुरालवालोंके अथवा अन्य किन्हीं सम्बन्धीके साथ वहाँ जायँ; अकेली न जायँ एवं अकेली जानेकी हालतमें कदाचित् स्थान न मिल सके तो कृपया दुःख न करें। गहने आदि जोखिमकी चीजें साथ नहीं रखनी चाहिये। बच्चोंको जहाँतक बने, साथ न ले जायँ। गतवर्ष बच्चोंके कारण बड़ी बाधाएँ आ गयी थीं; नितान्त निरुपाय हों तो बच्चोंको वे ही लोग साथ ले जायँ, जो उन्हें अलग डेरेपर रखनेकी व्यवस्था कर सकते हों; क्योंकि बच्चोंके कारण स्वाभाविक ही सत्सङ्गमें विघ्न होता है। खान-पानकी चीजोंका प्रबन्ध यथासाध्य किया जा रहा है, यद्यपि इस बार भी बड़ी कठिनता है; परंतु दूधका प्रबन्ध होना बहुत कठिन है।

सदाकी भाँति ही यह नम्र निवेदन है कि सत्सङ्गमें पधारनेवालोंको ऐश-आराम या केवल जलवायु-परिवर्तन-की दृष्टिसे न जाकर सत्सङ्गके उद्देश्यसे ही जाना चाहिये तथा वहाँ यथासाध्य नियमित तथा संयमित साधकजीवन बिताते हुए सत्सङ्गमें अधिक-से-अधिक भाग लेना चाहिये।





गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा । पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥

(रामरक्षास्तोत्र, ३१)

वर्ष ४६ } गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९७, जनवरी १९७२ { संख्या १ / पूर्ण संख्या ५४२

श्यामाम्बुदाभमरविन्दविशालनेत्रं
बन्धूकपुष्पसदृशाधरपाणिपादम् ।
सीतासहायमुदितं धृतचापबाणं
रामं नमामि शिरसा रमणीयवेषम् ॥

(श्रीयामुनाचार्य)

जो नील मेघके समान श्यामवर्ण हैं, जिनके कमलके समान विशाल नेत्र हैं, जो बन्धूक-पुष्पके समान अरुण ओष्ठ, हस्त और चरणोंसे शोभित हैं, जो सीताजीके साथ विराजमान एवं अभ्युदयशील हैं, जिन्होंने धनुष-बाणको धारण किया है, जिनका वेष बड़ा ही सुन्दर है, उन श्रीरामको मैं सिरसे नमस्कार करता हूँ ।

श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि

(श्रीशिवकृत राम-स्तुति)

श्रीशिव उवाच

सुग्रीवमित्रं परमं पवित्रं सीताकलत्रं नवमेघगात्रम् ।
कारुण्यपात्रं शतपत्रनेत्रं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥
संसारसारं निगमप्रचारं धर्मावतारं हृतभूमिभारम् ।
सदाविकारं सुखसिन्धुसारं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥
लक्ष्मीविलासं जगतां निवासं लङ्काविनाशं भुवनप्रकाशम् ।
भूदेववासं शरदिन्दुहासं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥
मन्दारमालं वचने रसालं गुणैर्विशालं हतसप्ततालम् ।
क्रव्यादकालं सुरलोकपालं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥
वेदान्तगानं सकलैः समानं हतारिमानं त्रिदशप्रधानम् ।
गजेन्द्रयानं विगतावसानं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥
श्यामाभिरामं नयनाभिरामं गुणाभिरामं वचनाभिरामम् ।
विश्वप्रणामं कृतभक्तकामं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥
लीलाशरीरं रणरङ्गधीरं विश्वैकसारं रघुवंशहारम् ।
गम्भीरनादं जितसर्ववादं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥
खले कृतान्तं स्वजने विनीतं सामोपगीतं मनसा प्रतीतम् ।
रागेण गीतं वचनादतीतं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥

(आनन्दरामायण, सारकाण्ड १२ । ११६—१२३)

श्रीशिवजी बोले—सुग्रीवके मित्र, परमपावन, सीताके पति, नवीन मेघके समान शरीरवाले, करुणाके सिन्धु और कमलके सदृश नेत्रवाले श्रीरामचन्द्रकी मैं निरन्तर वन्दना करता हूँ । असार संसारमें एकमात्र सारवस्तु, वेदोंका प्रचार करनेवाले, धर्मके साक्षात् अवतार, भूभारका हरण करनेवाले, सदा अविकृत रहनेवाले और आनन्दसिन्धुके सारभूत श्रीरामचन्द्रको मैं सदा नमस्कार करता हूँ । लक्ष्मीके साथ विलास करनेवाले, जगत्के निवासस्थान, लङ्काका विनाश करनेवाले, भुवनोंको प्रकाशित करनेवाले, ब्राह्मणोंको शरण देनेवाले और शारदीय चन्द्रमाके समान शुभ्र हास्यसे विभूषित श्रीरामचन्द्रको मैं सतत नमन करता हूँ । मन्दारपुष्पोंकी माला धारण करनेवाले, रसीले वचन बोलनेवाले, गुणोंमें महान्, सात ताल वृक्षोंका (एक साथ) भेदन करनेवाले, राक्षसोंके काल तथा देवलोकके पालक श्रीरामचन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ । वेदान्त (उपनिषदों) द्वारा गेय, सबके साथ समान बर्ताव करनेवाले, शत्रुके मानका मर्दन करनेवाले, गजेन्द्रकी सवारी करनेवाले तथा अन्तरहित देव-शिरोमणि, श्रीरामचन्द्रको मैं सतत नमस्कार करता हूँ । श्यामसुन्दर, नयनोंको आनन्द देनेवाले, गुणोंसे मनोहर, हृदयग्राही वचन बोलनेवाले, विश्ववन्दनीय और भक्तजनोंकी कामनाओंको पूरी करनेवाले श्रीरामचन्द्रको मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ । लीलामात्रके लिये शरीर धारण करनेवाले, रणस्थलीमें धीर, विश्वभरमें एकमात्र सारभूत, रघुवंशमें श्रेष्ठ, गम्भीर वाणी बोलनेवाले और समस्त वादोंको जीतनेवाले श्रीरामचन्द्रको मैं प्रतिक्षण प्रणाम करता हूँ । दुष्टजनोंके लिये मृत्युरूप, अपने भक्तोंके प्रति नम्रभाववाले, सामवेदके द्वारा स्तुत, मनके भी अगोचर, प्रेमसे गान करनेयोग्य तथा वचनोंसे अग्राह्य श्रीरामचन्द्रको मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ ।

मारुतिकृत श्रीराम-स्तवन

ॐ नमो भगवत उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति ॥

ॐकारस्वरूप पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीरामको नमस्कार है । आपमें सत्पुरुषोंके लक्षण, शील और आचरण विद्यमान हैं; आप बड़े ही संयतचित्त, लोकाराधनतत्पर, साधुताकी परीक्षाके लिये कसौटीके समान और अत्यन्त ब्राह्मण-भक्त हैं । ऐसे महापुरुष महाराज रामको हमारा पुनः-पुनः प्रणाम है ।

यत् तद् विशुद्धानुभवमात्रमेकं
स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् ।
प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं
ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥

भगवन् ! आप विशुद्ध बोधमात्र, अद्वितीय, अपने स्वरूपके प्रकाशसे गुणोंके कार्यरूप जाग्रदादि सम्पूर्ण अवस्थाओंका निरास करनेवाले, सर्वान्तरात्मा, परम शान्त, शुद्ध बुद्धिसे ग्रहण किये जानेयोग्य, नाम-रूपसे रहित और अहंकारशून्य हैं; मैं आपकी शरणमें हूँ ।

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः ।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥

प्रभो ! आपका इस धराधामपर मनुष्यरूपमें अवतार केवल राक्षसोंके वधके लिये ही नहीं है, इसका मुख्य उद्देश्य तो मनुष्योंको शिक्षा देना है । अन्यथा अपने स्वरूपमें ही रमण करनेवाले साक्षात् जगदात्मा जगदीश्वरको सीताजीके वियोगमें इतना दुःख कैसे हो सकता था ।

न वै स आत्माऽऽत्मवतां सुहृत्तमः
सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान् वासुदेवः ।
न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत
न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥

आप धीर पुरुषोंके आत्मा और प्रियतम भगवान् वासुदेव हैं; त्रिलोकीकी किसी भी वस्तुमें आपकी आसक्ति नहीं है । आप न तो सीताजीके लिये मोहको ही प्राप्त हो सकते हैं और न लक्ष्मणजीका त्याग ही कर सकते हैं । आपके ये व्यापार केवल लोकशिक्षाके लिये ही हैं ।

न जन्म नूनं महतो न सौभगं
न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकस-
श्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥

हे राम ! उत्तम कुलमें जन्म, सुन्दरता, वाक्चातुरी, बुद्धि और श्रेष्ठ योनि —इनमेंसे कोई भी गुण आपकी प्रसन्नताका कारण नहीं हो सकता, यह बात दिखानेके ही लिये आपने इन सब गुणोंसे रहित हम वनवासी वानरोंसे मित्रता की है ।

सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः
सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं
य उत्तराननयत्कोसलान्दिवमिति ॥

देवता, असुर, वानर अथवा मनुष्य —कोई भी हो, उसे सब प्रकारसे श्रीरामरूप पुरुषोत्तम आपका ही भजन करना चाहिये; क्योंकि आप नररूपमें साक्षात् श्रीहरि ही हैं और थोड़े कियेको भी बहुत अधिक मानते हैं । आप ऐसे आश्रित-वत्सल हैं कि जब स्वयं दिव्य धामको पधारे थे, तब समस्त उत्तरकोसलवासियोंको भी अपने साथ ही ले गये थे ।

(श्रीमद्भागवत ५ । १९ । ३–८)



भगवान् श्रीरामसे विनय

विनती केहि विधि प्रभुहि सुनाऊँ?
महाराज रघुवीर धीर को समय न कबहूँ पाऊँ॥
जाम रहत जामिनि के बीतें, तिहि औसर उठि धाऊँ।
सकुच होत सुकुमार नींद ते कैसें प्रभुहि जगाऊँ॥
दिनकर किरन उदित ब्रह्मादिक रुद्रादिक इक ठाऊँ।
अगनित भीर अमर-मुनि-गन की, तिहि ते ठौर न पाऊँ॥
उठत सभा दिन मध्य सियापति, देखि भीर फिरि आऊँ।
न्हात, खात, सुख करत साहिबी, कैसें करि अनखाऊँ॥
रजनी-मुख आवत गुन गावत नारद तुंबुरु नाऊँ।
तुमही कहौ कृपन तौ रघुपति किहि विधि दुख समझाऊँ॥
एक उपाय करौं कमलापति, कहौ तौ कहि समझाऊँ।
पतित-उधारन 'सूर' नाम प्रभु लिखि कागद पहुँचाऊँ॥

देव !

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंज हारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसो॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चेरो।
तात-मातु, गुरु-सखा, तू सब विधि हितु मेरो॥
तोहि मोहि नाते अनेक, मानियै जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु ! चरन-सरन पावै॥

दीनदयाल कहावत 'केसव', हौं अति दीन दसा गह्यो गाढ़ौ।
रावन के अघ-ओघ में, राघव ! बूड़त हौं, बरहीं गहि काढ़ौ॥
ज्यों गज की प्रहलाद की कीरति, त्योंहीं बिभीषन को जस बाढ़ौ।
आरत-बंधु ! पुकार सुनौ किन, आरत हौं तौ पुकारत ठाढ़ौ॥

'केसव' आपु सदा सह्यो दुक्ख, पै दासनि देखि सके न दुखारे।
जाको भयो जेहि भाँति जहाँ दुख, त्योंहीं तहाँ तेहि भाँति सँभारे॥
मेरियै बार अबार कहा, कबहूँ नहिं काहू के दोप बिचारे।
बूड़त हौं महामोह-समुद्र में राखत काहे न राखनहारे॥



साधन सिद्धि राम पग नेहू

श्रीरामप्रेम ही सच्चा स्वार्थ एवं परमार्थ है

सखा परम परमारथु एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू॥
स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा॥

आपु आपने तें अधिक जेहि प्रिय सीताराम।
तेहि के पग की पानहीं तुलसी तनु को चाम॥

तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोकधाम तजि काम॥

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य॥

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहि नर उपज बिनीत॥

देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥

× × ×

सोइ गुनग्य सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी॥

× × ×

सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥

× × ×

जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा॥
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥
आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥
तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर॥

× × ×

नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहि जाना॥
सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा॥

× × ×

सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद॥
सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा॥

श्रीराम-प्रेमके बिना सब व्यर्थ है

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी॥

× × ×

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जहँ नहिं राम पेम परधानू॥

× × ×

सरुज सरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरि भगति जायँ जप जोगा॥

× × ×

बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी॥
राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥

जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद करै न सहस सहाइ॥

रसना साँपिनि बदन बिल जे न जपहिं हरिनाम।
तुलसी प्रेम न राम सों ताहि बिधाता बाम॥

हिय फाटहुँ फूटहुँ नयन जरउ सो तन केहि काम।
द्रवहिं स्रवहिं पुलकइ नहीं तुलसी सुमिरत राम॥

रामहि सुमिरत रन भिरत देत परत गुरु पायँ।
तुलसी जिन्हहि न पुलक तनु ते जग जीवत जायँ॥

हृदय सो कुलिस समान जो न द्रवइ हरिगुन सुनत।
कर न राम गुन गान जीह सो दादुर जीह सम॥

स्रवै न सलिल सनेहु तुलसी सुनि रघुबीर-जस।
ते नयना जनि देहु राम ! करहु वरु आँधरो॥

रहैं न जल भरि पूरि राम सुजस सुनि रावरो।
तिन आँखिन में धूरि भरि भरि मूठी मेलिये॥

कामु-से रूप, प्रताप दिनेसु-से, सोमु-से सील, गनेसु-से माने।
हरिचंदु-से साँचे, बड़े बिधि-से मघवा-से महीप, बिषै-सुख-साने॥
सुक-से मुनि, सारद-से बकता, चिरजीवन लोमस ते अधिकाने।
ऐसे भए तौ कहा 'तुलसी', जो पै राजिवलोचन रामु न जाने॥

झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर जरे, मद अंबु चुचाते।
तीखे तुरंग मनोगति-चंचल, पौन के गौनहु ते बढ़ि जाते॥
भीतर चंद्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप खरे न समाते।
ऐसे भए तौ कहा 'तुलसी', जो पै जानकीनाथ के रंग न राते॥

राज सुरेस पचासक को बिधि के कर को जो पटो लिखि पाए।
पूत सुपूत, पुनीत प्रिया, निज सुंदरताँ रति को मदु नाएँ॥
संपति-सिद्धि सबै 'तुलसी' मन की मनसा चितवैं चितु लाएँ।
जानकी-जीवनु जाने बिना जग ऐसेउ जीव न जीव कहाए॥

झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जगु, संत कहंत जे अंतु लहा है।
ताको सहै सठ ! संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है॥

जानपनी को गुमान बड़ो, तुलसी के विचार गँवार महा है।
जानकी-जीवनु जान न जान्यो, तौ जान कहावत जान्यो कहा है॥

तिन्ह तें खर-सूकर-स्वान भले, जड़ता बस ते न कहैं कछुवै।
'तुलसी' जेहि राम सों नेहु नहीं, सो सही पसु, पूँछ, विषान न द्वै॥
जननी कत भार मुई दस मास, भई किन बाँझ, गई किन च्वै।
जरि जाउ सो जीवनु जानकिनाथ ! जियै जग में तुम्हरो बिनु ह्वै॥

गज-बाजि-घटा, भले भूरि भटा, बनिता, सुत भौंह तकैं सब वै।
धरनी, धनु, धाम, सरीरु भलो, सुरलोकहु चाहि इहै सुखु स्वै॥
सब फोकट-साटक है तुलसी अपनो न कछू, सपनो दिन द्वै।
जरि जाउ सो जीवनु जानकिनाथ ! जियै जग में तुम्हरो बिनु ह्वै॥

सुरराज-सो राज-समाजु, समृद्धि बिरंचि, धनाधिप-सो धनु भो।
पवमानु-सो, पावकु-सो, जमु, सोमु-सो, पूषनु-सो, भवभूषन भो॥
करि जोग, समीरन साधि, समाधि कै, धीर बड़ो, बसहू मनु भो।
सब जाय, सुभायँ कहै तुलसी, जो न जानकि-जीवन को जनु भो॥

जाकें बिलोकत लोकप होत, बिसोक लहैं सुर लोग सुठौरहि।
सो कमला, तजि चंचलता, करि कोटि कला, रिझवै सुर-मौरहि॥
ताको कहाइ, कहै तुलसी, तूँ लजाहि न मागत कूकुर-कौरहि।
जानकि-जीवन को जनु ह्वै, जरि जाउ सो जीह, जो जाचत औरहि॥

सो सुकृती सुचिमंत सुसंत, सुजान सुसील सिरोमनि स्वै।
सुर-तीरथ तासु मनावत आवत, पावन होत हैं ता तनु छ्वै॥
गुन गेहु, सनेह को भाजनु सो, सब ही सों उठाइ कहौं भुज द्वै।
सतिभायँ सदा छल छाड़ि सबै, 'तुलसी' जो रहै रघुबीर को ह्वै॥

जग जाचिअ कोउ न, जाचिअ जौं जियँ जाचिअ जानकी जानहि रे।
जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ, जो जारति जोर जहानहि रे॥
गति देखु विचारि बिभीषन की, अरु आनु हिएँ हनुमानहिं रे।
तुलसी भजु दारिद-दोष-दवानल, संकट-कोटि-कृपानहि रे॥

लालायित राम-भक्तकी भावना

मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं॥
नहिं सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा॥
एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की॥
होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन॥

× × ×

जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥
मोरें जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥

× × ×

राम चरन बारिज जब देखौं। तब निज जन्म सफल करि लेखौं॥

राम-भक्तकी याचना

बार बार मागउँ कर जोरें। मन परिहरै चरन जनि भोरें॥

× × ×

प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि मे॥

× × ×

यह बर मागउँ कृपा निकेता। बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता॥
अविरल भगति बिरति सतसंगा। चरन सरोरुह प्रीति अभंगा॥

× × ×

अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निर्बान।
जनम जनम रति राम पद, यह बरदानु न आन॥

× × ×

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ।
जेहि जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ॥

× × ×

बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउँ बर आना॥
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना॥

राम-भक्तकी अनन्यता

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास॥

जागैं जोगी-जंगम, जती-जमाती ध्यान धरैं,
डरैं उर भारी लोभ, मोह, कोह, काम के।
जागैं राजा राजकाज, सेवक-समाज, साज,
सोचैं सुनि समाचार बड़े बैरी बाम के॥
जागैं बुध बिद्या हित, पंडित चकित चित,
जागैं लोभी लालच धरनि, धन, धाम के।
जागैं भोगी भोग हीं, बियोगी, रोगी सोगबस,
सोवै सुख 'तुलसी' भरोसे एक राम के॥

श्रीराम—मूर्तिमान् धर्म

(श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीशृङ्गेरीक्षेत्रस्थशारदापीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीअभिनवविद्यातीर्थजी महाराज)

मानवका जीवन तभी उन्नत बन सकता है, जब उसके सामने कोई अच्छा आदर्श हो। बिना आदर्शके अपने-आप विरले ही ऊँचा जीवन प्राप्त कर सकते हैं। स्थिर निश्चय, कर्मण्यता और आदर्श—तीनों मिलकर ही मनुष्यको देवता बना सकते हैं। आदर्शके बिना स्थिर निश्चय और कर्मण्यता उसे गुमराह कर देती है।

हमारे सामने ऐसा कौन-सा आदर्श उपस्थित है, जिसके आधारपर हम अपना जीवन उन्नत बना सकें ? पुण्य भारतभूमिपर हजारों महापुरुष उत्पन्न हुए। उन्होंने उत्तम जीवन व्यतीतकर लोगोंका मार्गदर्शन किया। लेकिन 'विग्रहवान् धर्म' तो अकेले श्रीरामचन्द्रजी ही हैं।

राक्षस मारीच तो स्वभावसे ही आसुरी सम्पदासे भरा था। उसमें न दया थी न धर्म; थी तो निष्ठुरता और दम्भ। वह भी अपने प्रभु राक्षसराज रावणसे रामचन्द्रजीके सम्बन्धमें कहता है—'रामो विग्रहवान् धर्मः—श्रीराम मूर्तिमान् धर्म हैं।' (वा० रा० ३। ३७। १३)

यह निर्विवाद सिद्धान्त है कि श्रेय-प्राप्तिके लिये धर्मकी ही शरण लेनी है। अगर मूर्तिमान् धर्म ही मिल जाय तो हमको और क्या चाहिये। सारे श्रेय उसके पैरोंतले पड़े मिलेंगे। मूर्तिमान् धर्म तो श्रीरामचन्द्र ही हैं। उन्होंने कहा है—'लोकस्याराधनार्थाय त्यजेयं जानकीमपि'—संसारकी भलाईके लिये मङ्गल-मूर्ति श्रीजानकीजीको भी त्यागना पड़े तो भगवान् श्रीराम तैयार हैं।'

महर्षि वाल्मीकि श्रीरामजीके विषयमें एक रोचक कथा सुनाते हैं। यह यौवराज्याभिषेकारम्भकी कथा है। राजा दशरथजी बूढ़े हो गये। शरीर जर्जर हो गया। उन्होंने राज-काज चलानेमें अपनेको अशक्त पाया, अतः श्रीरामचन्द्रजीका यौवराज्यपट्टाभिषेक करना चाहा। वे परिषद् बुलाकर अपना मत उनके सामने रखते हैं। पारिषदलोग बड़े संतोषसे उनके प्रस्तावका अनुमोदन करते हैं—'स रामं युवराजमभिषिञ्चस्व पार्थिवम्।' (वही, २। २। २१)—राजकुमार श्रीरामचन्द्रजीको आप यौवराज्य पदपर अभिषिक्त करें।'

राजा दशरथको विश्वास न था कि प्रजाजन रामजीपर इतना प्रेम रखते हैं। उनको कुतूहल हुआ। वे परिषद्से पूछते हैं—

कथं नु मयि धर्मेण पृथिवीमनुशासति।
भवन्तो द्रष्टुमिच्छन्ति युवराजं महाबलम्॥
(वही, २। २। २५)

'हम धर्मसे पृथिवीका परिपालन करते हैं, यह जानते हुए भी आपलोग रामजीको युवराजके रूपमें क्यों देखना चाहते हैं ?'

तब परिषद्के लोग रामजीके ऊपर मुग्ध होनेका कारण बताते हुए उनके गुणोंका इतना अच्छा वर्णन करते हैं कि हम पढ़नेवाले भी मुग्ध हो जाते हैं। अयोध्याकाण्डके पहले सर्गमें वाल्मीकि अपने ही शब्दोंमें रामजीके गुणोंका वर्णन करते हैं। इन्हीं गुणोंसे रामजीका सारा जीवन ओतप्रोत है। इसी कारणसे उनका सारा चरित्र लोकप्रिय हुआ और वे हमारे आदर्श हुए हैं।

श्रीरामचन्द्रजी भगवान् विष्णुके अवतार ही थे, इसमें संदेह नहीं—'अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः।' (वही, २। १। ७)

भगवान्ने सनातन धर्मका उपदेश तो सृष्टिके आदिकालमें मरीचि आदि महर्षियोंको दिया। रामावतारमें स्वयं आपने ही उसका अनुष्ठान करके दिखाया कि उत्तम जीवन क्या है। बच्चेसे बूढ़ेतक तथा मामूली आदमीसे महाप्राज्ञतक, सब लोग रामायण-महाकाव्यके हर एक पात्रसे शिक्षा प्राप्तकर अपना जीवन उत्तम-से-उत्तम बना सकते हैं। राम-चरित्ररूप रामायणके पढ़नेसे पाप-ताप नष्ट होते हैं, मङ्गल बढ़ते हैं।

श्रीरामकी भगवत्ता और राम-नामकी महिमा

(श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीद्वारकाक्षेत्रस्थशारदापीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीअभिनवसच्चिदानन्दतीर्थजी महाराज)

श्रीरामचन्द्रजी धृतश्रीविग्रह धर्म ही हैं—

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना ॥

'वेदवेद्य परमपुरुष श्रीहरिभगवान्के दशरथ-भवनमें जन्म लेते ही वेद ही मुनि वाल्मीकिके मुखसे निर्गत होकर रामायणरूपमें परिणत हो गये ।' इस तरहकी आर्य उक्तियों-के अनुसार श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् भगवान् ही ठहरे । तब—

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥
(शिवमहिम्नःस्तोत्र ३२)

'शिव ! यदि महासागररूपी मसिदानीमें कज्जलगिरिके समान स्याही घोलकर भर दी जाय और कल्पवृक्षकी शाखाकी कलम एवं समूची पृथ्वीको कागज बना दिया जाय तथा शारदा उसे लेकर निरन्तर लिखती रहें तो भी वे आपके गुणोंका पार नहीं पा सकतीं ।'

—इस न्यायसे आपके गुण-गणोंका कौन, किस मुँहसे वर्णन कर सकता है ? मर्यादापुरुषोत्तमत्व तो किसी अन्य अवतार या देवमें है नहीं, वह तो यथार्थतः श्रीरामचन्द्रजीमें ही रूढ़ है ।

श्रीरामचन्द्रजीके नामकी महिमाका किसीने निम्नाङ्कित रूपसे गान किया है—

राशब्दोच्चरणादेव मुखान्निर्यान्ति पातकाः ।
पुनः प्रवेशभीतिश्चेन्मकारश्च कपाटवत् ॥

'रा' शब्दका उच्चारण करते ही जन्म-जन्मान्तरोंके सभी संचित पाप निकल भागते हैं; क्योंकि 'रा' शब्दके अन्तर्गत रकारका स्थान 'ऋटुरषाणां मूर्धा'—के अनुसार मूर्धा (मुखका ऊपरी भाग) होनेसे दीर्घ रेफका उच्चारण करनेके लिये मुख खोलना ही पड़ता है । इसी तरह बाहर गये हुए पाप पुनः वापस न आ जायँ—यदि यह भय हो तो मकारका उच्चारण करके मुखके ओष्ठरूप कपाटको बंद कर देना चाहिये—'मकारस्तु कपाटवत्'; क्योंकि 'उपूपध्मानीया-नामोष्ठौ'—के अनुसार मकारका स्थान ओष्ठ होनेसे उसका उच्चारण करनेके लिये ओठ बंद करने ही पड़ते हैं । मुँह बंद हो जानेपर बाहर निकलते हुए पाप पुनः अंदर नहीं जा सकते । यह है राम-नामकी महिमा । राम-नाममें और भी वैशिष्ट्य यह है कि मन्त्रोंमें अष्टाक्षर मन्त्र ('ॐ नमो नारायणाय') और पञ्चाक्षर मन्त्र ('ॐ नमः शिवाय') क्रमशः भगवान् नारायण एवं भगवान् शिवके प्रतीक हैं । अष्टाक्षर मन्त्रमेंसे 'रा' और पञ्चाक्षर मन्त्रमेंसे 'म' लेकर 'राम' शब्द बना है । ये दो अक्षर उन दो मन्त्रोंमें मुख्यत्व रखते हैं । अर्थात् उपर्युक्त दो मन्त्रोंके मुख्यार्थप्रतिपादक दो अक्षरोंसे 'राम' नाम घटित होनेसे इसका महत्त्व स्वयमेव स्पष्ट हो जाता है ।

श्रीरामचन्द्रजीकी मातृ-पितृ-भक्ति, भ्रातृ-वात्सल्य, गुरु-देवता-भक्ति, प्रजावात्सल्य, धर्मभीरुता एवं सर्वोपरि सत्य-वादिता- 'रामो द्विर्नाभिभाषते'(वा० रा० २।१८।३०)—इत्यादि गुणोंका वर्णन विस्तारसे कल्याणके अनेक विशेषाङ्कोंमें आ जानेसे यहाँ पुनरुक्तिकी आवश्यकता नहीं है । न केवल रामजीका, अपितु उनके पारिवारिक जनोंके भी गुणगण दिव्य और आदर्श हैं ।

रामायण भारतीय चिरंतन संस्कृतिका वाहक है । वेद, उपनिषद्, दर्शन आदिमें जो सत्य तथा तत्त्व प्रतिपादित है, वह जनसामान्यके लिये दुरूह हो जाता है । उसीका इति-वृत्तके रूपमें आदिकवि श्रीमहर्षि वाल्मीकिने अपनी रामायणमें प्रतिपादन करके स्वयं अमर बने तथा भारतीय संस्कृतिको अमर बना गये ।

रामायणकी कथा सर्वप्रथम ऋग्वेदमें देखनेमें आती है— 'भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्' आदि (१० । ३ । ३) ।

'शुद्ध ब्रह्म परात्पर राम'

(श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीपुरीक्षेत्रस्थगोवर्धनपीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीनिरञ्जनदेवतीर्थजी महाराज)

अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक, परात्पर, पूर्णतम, सच्चिदानन्दकंद, निर्गुण, निर्विकार, अच्छेद्य, अभेद्य, अलक्ष्य, अखण्ड, अचिन्त्य, अव्यय, सद्घन, चिद्घन, आनन्दघन, उपनिषद्वेद्य, शुद्ध ब्रह्म ही सकलकल्याणमय, गुणगणनिलय, सगुण, साकार, सर्वजनमनोहर, सर्वेन्द्रियाभिराम शरीर धारणकर रघुनन्दन, दशरथनन्दन, कौसल्यानन्दन श्रीरामरूपमें प्रकट होते हैं। भक्तशिरोमणि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने इसी बातको अपने श्रीरामचरितमानसमें स्पष्ट लिखा है—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥
(मानस १।१९८)

'मन क्रम बचन अगोचर जोई। दसरथ अजिर बिचर प्रभु सोई॥'
(मानस १।२०२।३½)

'राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥'
(मानस १।११५।२½)

ब्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप॥
(मानस १।२०५)

—यह श्रीतुलसीदासजी महाराजकी कोई अपनी मनमानी कल्पना नहीं है; किंतु प्राचीन सभी ग्रन्थकारोंने इसका समर्थन किया है।

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना॥

'वेदवेद्य परब्रह्म साक्षात् भगवान्के दशरथपुत्र-रूपमें प्रकट होनेपर भगवान्का प्रतिपादन करनेवाले वेदको भी रामायणके रूपमें परमतत्त्व परब्रह्मका प्रतिपादन करनेके लिये प्रचेताके पुत्र वाल्मीकिके द्वारा प्रकट होना पड़ा।' महर्षि श्रीवाल्मीकिने भी युद्धकाण्डके अन्तमें अपने-आपको रामायणका कर्ता और प्रचेताका पुत्र लिखकर यह भी लिखा है कि 'मेरी लिखी हुई इस रामायणका आदिदेव ब्रह्माजीने भी अनुमोदन किया है।'

एतदाख्यानमायुष्यं सभविष्यं सहोत्तरम्।
कृतवान् प्रचेतसः पुत्रस्तद्ब्रह्माप्यन्वमन्यत॥
(वा० रा० ७।१११।११)

महर्षि वाल्मीकिने पदे-पदे श्रीमद्राघवेन्द्र सरकारको 'साक्षाद्विष्णुः सनातनः' लिखा है। पर कुछ लोगोंका कहना है कि निर्गुण-निराकार सगुण-साकार हो ही नहीं सकता। किंतु उनका यह कहना असंगत है। निर्गुण-निराकारको सर्वज्ञ-सर्वत्र, सर्वशक्तिमान् तो वे भी मानते ही हैं। यदि निर्गुण-निराकार सगुण-साकार नहीं हो सकता तो वह सर्वत्र नहीं हो सकता और उसे सगुण-साकार होनेका ज्ञान नहीं होनेसे 'सर्वज्ञ' भी नहीं कह सकते हैं। अतः निर्गुण-निराकारकी सर्वव्यापकता और सर्वज्ञता सिद्ध करनेके लिये उसे सगुण-साकार होना ही पड़ेगा। इसी प्रकार सगुण-साकार हुए बिना निर्गुण-निराकार सर्वशक्तिमान् भी नहीं हो सकता। निर्गुण-निराकारको सर्वशक्तिमान् होनेके लिये भी सगुण-साकार बनना ही पड़ेगा, नहीं तो उसमें एक शक्तिकी कमी रह जायगी।

यह भी कहा जा सकता है कि 'निर्गुण-निराकार शुद्ध परात्पर ब्रह्म सर्वत्र, सर्वशक्तिमान् तो हैं, पर ऐसी कोई आवश्यकता नहीं कि जिसके लिये उनको अपना निर्गुण-निराकार रूप त्यागकर सगुण-साकार रूप धारण करना पड़े। सगुण-साकार रूप धारण किये बिना ही शुद्ध परात्पर ब्रह्म जगत्की उत्पत्ति-प्रलय आदि सम्पूर्ण क्रिया-कलाप अपनी प्रकृतिरूपा शक्तिसे कर लेंगे।' पर ऐसा कहनेवालोंको यह भी समझ लेना चाहिये कि यदि शुद्ध परात्पर ब्रह्म अपनी प्रकृतिरूपा शक्तिसे इतने बड़े अनन्तकोटि ब्रह्माण्डात्मक प्रपञ्चको और तदन्तर्वर्ती भोग्य-प्रपञ्चोंको पैदा कर सकते हैं—यदि उनकी प्रकृतिमें इतनी सामर्थ्य है, तब फिर इस कार्यके लिये एक दिव्यातिदिव्य शरीर धारण करना उनके लिये अति साधारण कार्य है और शरीर-धारणका प्रयोजन है, अपने अनन्यभक्तोंके मनोऽभिवाञ्छित अर्थोंका सम्पादन करना।

वस्तुतः ऐसी ही शङ्काओंके उत्तरमें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है—'अर्जुन! यद्यपि मैं निर्गुण-निर्विकार परात्पर शुद्ध ब्रह्म हूँ, अज एवं अनादि-अनन्त हूँ और समस्त संसारके प्राणियोंका स्वामी हूँ, तथापि अपनी प्रकृतिको अधिष्ठित करके अपनी मायाशक्तिके द्वारा सगुण-साकार कल्याणमय गुण-गणनिलय स्वरूपसे प्रकट होता हूँ और मेरे एवंविध स्वरूपमें प्रकट होनेका प्रयोजन है—साधु-परित्राण, दुष्ट-दमन तथा धर्म-संस्थापन।'

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

(गीता ४ । ६–८)

भगवान् स्पष्ट कहते हैं कि सज्जनोंका परित्राण करनेके लिये, दुर्जनोंको उनकी दुर्जनताका दण्ड देनेके लिये और धर्मकी संस्थापनाके लिये मुझे युग-युगमें शुद्ध ब्रह्म परात्पर रूपका परित्याग कर सगुण-साकार दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र एवं नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र आदि अनेक रूप धारणकर इस संसारमें आना पड़ता है।

कुछ लोगोंका यह कहना ठीक नहीं है कि 'संसारमें आनेसे तो भगवान् बन्धनमें फँस जायँगे। संसार बन्धन-स्वरूप है। जब एक साधारण बुद्धिमान् जीव भी जेलखानेमें जाना पसंद नहीं करता, तब नित्यशुद्ध, नित्यमुक्त, परात्पर ब्रह्म संसाररूपी बन्धनमें क्यों आयेगा ?' यह सभी जानते हैं कि जेलखानेमें कैदी अपने कर्मोंके फलको भोगनेके लिये जाता है, इसीलिये बंदीके लिये कारागार बन्धन है; किंतु जेलखानेके मालिक अथवा जेलरके लिये, जो कैदियोंको उनके कर्मोंका फल देनेके लिये जेलखानेमें जाता है, जेलखाना बन्धनस्वरूप नहीं है। भगवान् भी इसी प्रकार संसारके प्राणियोंको अपने कर्मोंका फल देनेके लिये और जेलके स्वामी (राजा) की तरह संसारकी व्यवस्था सुसम्पादित करनेके लिये इस संसारमें आते हैं। इसलिये उनके लिये संसार बन्धनका कारण या बन्धनस्वरूप नहीं हो सकता।

पूछा जा सकता है कि 'जो भगवान् अपने निश्वास-मात्रसे वेदोंका प्राकट्य कर देते हैं, महाभूतोंको उत्पन्न कर देते हैं और इस सृष्टिकी उत्पत्ति-स्थिति तथा प्रलय कर देते हैं, वे निराकार स्वरूपमें स्थित रहते हुए संकल्पमात्रसे सज्जनोंका रक्षण, दुर्जनोंका विनाश और धर्मकी संस्थापना क्या नहीं कर सकते ? रावण-कुम्भकर्ण आदि राक्षसोंको मारनेके लिये निर्गुण-निराकारका अवतार लेना क्या, मच्छरको मारनेके लिये तोप दागनेके समान न होगा ?' अवश्य ही रावण-कुम्भकर्ण-मेघनाद आदि राक्षसोंको मारनेके लिये भगवान्के अवतारकी आवश्यकता नहीं है; संकल्पमात्रसे अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका संहार करनेकी सामर्थ्य रखनेवाले भगवान् रावण-कुम्भकर्ण आदिको भी संकल्पमात्रसे ही मार सकते हैं, किंतु कुछ भगवद्भक्त ऐसे होते हैं, जिनके लिये नित्य-मुक्त परात्पर ब्रह्मको सगुण-साकार रूप धारण करना पड़ता है। इन भक्तोंकी मालामें महामति व्रजाङ्गनाएँ, व्रजवासी, अवध या व्रजके समस्त जड-चेतन प्राणी, राजरानी मीराँ, रैदास चमार, धन्ना जाट आदि असंख्य अनन्य भगवत्प्रेमियोंके अतिरिक्त शबरी-जैसी सामान्य स्त्री और गीध-जैसे पशु-पक्षी आदि भी आते हैं, जो जप, तप, योग, यज्ञ, श्रवण, मनन, यम, नियम, ध्यान एवं समाधिके द्वारा भगवान्को जन्म-जन्मान्तर तो क्या, कल्प-कल्पान्तरमें भी शुद्ध परात्पर रूपमें प्राप्त नहीं कर सकते। उनके लिये ही भगवान् सगुण-साकार नयनाभिराम श्रीरामरूप धारणकर दण्डकारण्यमें अपने निरावरण-चरण-विन्यासके द्वारा ही कल्याण प्रदान करते हैं। इसीलिये शुद्ध परात्पर ब्रह्म श्रीरामरूपमें अवतरित होते हैं। इतिहास-पुराणादिमें तो इनकी महिमा भरी ही है, 'श्रीरामतापिनी' आदि उपनिषदोंमें भी भगवान् श्रीरामके अवतार-स्वरूपका सविस्तर वर्णन मिलता है। इतना ही नहीं, आजकलके ऐतिहासिकोंकी दृष्टिसे सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेदकी मन्त्रसंहितामें भी शुद्ध परात्पर ब्रह्मका राजा रामके रूपमें स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

ऋषि-मुनियोंके देश भारतमें जन्म लेकर भी आज-कल बहुत-से लोग भगवान् श्रीरामके परात्पर ब्रह्म होनेमें संदेह प्रकट करते हैं, इन्हें ऐतिहासिक न मानकर काल्पनिक घोषित करते हैं, यह हिंदू देशका और हिंदूजातिका दुर्भाग्य है। यह उनका स्वयंका भी महान् दुर्भाग्य है कि उनके मनमें ऐसे गंदे विचार उठते हैं और वे अपने हाथों अपना लोक-परलोक बिगाड़ रहे हैं। भगवान् कौसल्यानन्दन दशरथनन्दन श्रीराम साक्षात् परात्पर शुद्ध ब्रह्म हैं और ये ही हम सनातनधर्मी हिंदुओंके पूज्य परमाराध्य हैं। भगवान् श्रीरामके होनेमें संदेह करना अथवा उन्हें काल्पनिक बताना अथवा उन्हें साधारण मनुष्य बताना महान् पाप है। भगवान् श्रीरामके ब्रह्म होनेमें तनिक-सा भी संदेह करनेपर जब भगवती सतीदेवीको भी इसका दण्ड भोगना पड़ा, तब हम कलियुगी नारकीयों-की क्या गति होगी ? इसलिये सब संदेहोंको दूरकर भगवान् श्रीरामभद्रका ही खूब भजन-स्मरण-चिन्तन-कीर्तन करो। भगवान् श्रीराम ही हमारे प्राणाधार हैं और उनका स्मरण-चिन्तन करना ही हमारे जीवनका एकमात्र लक्ष्य है।

(प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)



धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप श्रीराम

(श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीबदरीक्षेत्रस्थज्योतिष्पीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीशान्तानन्दसरस्वतीजी महाराज)

अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक, अकारणकरुण, करुणा-वरुणालय, मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम धर्मके साक्षात् स्वरूप हैं। धर्म ही उनका श्रीविग्रह है। भगवान् श्रीरामकी बाल्यकालसे लेकर सम्पूर्ण लीलाएँ धर्म-मर्यादासे ओतप्रोत हैं।

जिस वंशको आपने अपने प्राकट्यसे सुशोभित किया, उस वंश-परम्परामें धर्म-पालन एवं भारतीय संस्कृतिकी रक्षा तथा सनातन आर्य-मर्यादाका पोषण और मानवोचित सद्गुणोंको धारण करनेवाले एक-से-एक दिव्य महापुरुष हो चुके थे। हरिश्चन्द्र, दिलीप, रघु आदि अनेक सत्पुरुषोंके पावन चरित्र जन्मसे लेकर अन्ततक विशुद्ध और पवित्र रहे हैं। वे मर्यादामें रहकर धर्मकी रक्षा करते हुए प्रजाके पालन-पोषण-में ही अपने जीवनका सौभाग्य समझते थे तथा अन्तमें परमात्माका स्मरण करते हुए अपने शरीरका विसर्जन करते रहे। ऐसे पवित्र वंशमें भगवान् श्रीरामभद्रका आविर्भाव हुआ था।

पारिवारिक जीवनकी दृष्टिसे देखें तो श्रीरामभद्र एक आदर्श पुत्र, आदर्श भाई और आदर्श पतिके रूपमें दृष्टिगोचर होते हैं। माता-पिता एवं गुरुजनोंके प्रति उनमें असीम श्रद्धा और सम्मानके भाव हैं। भाइयोंके प्रति उनका हृदय प्रेमसे इतना द्रवित रहता है कि स्वयं श्रीभरतलालजी अपने मुखसे कहते हैं—'हारेहुँ खेल जितावहिं मोहीं' (रामचरितमानस २। २५९। ४) श्रीराम भाइयोंके साथ क्रीड़ा करते हुए स्वयं अपनेको हारा मानकर, अपने प्रिय भाइयोंको जिता देते थे। इतना ही नहीं, अपितु यौवराज्याभिषेककी चर्चा उन्हें अद्भुत-सी लगती है। वे सोचते हैं—

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा॥
बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥
(वही, २। ९। ३-४)

सब भाई एक साथ जन्मे, साथ-साथ सबका पालन-पोषण हुआ, साथ-साथ खाये-पिये, खेले-पढ़े। फिर यह क्या कारण है कि एक भाईको ही राजगद्दी मिले?

वे पहले भाइयोंकी सुख-सुविधाकी बात सोचते हैं, तब अपनी। प्राणप्रिया भगवती जनकनन्दिनी सीता उनकी परम अनुगता हैं और वे भी उनके प्रति सहज प्रेमसे परिपूर्ण हैं। किंतु ये भ्रातृप्रेम, पितृप्रेम और दाम्पत्य-प्रेमके इतने उदात्त एवं उच्च स्तर हैं कि वे उनके जीवन-आदर्शोंमें सहज ही सहायक सिद्ध होते हैं और आस्तिकोंके लिये महान् उपयोगी तो हैं ही। मोहाविष्ट प्राणियोंकी तरह वे उनके लिये बन्धनकारी नहीं।

श्रीरामभद्रके आदर्श चरित्रमें हमें स्नेहकी कोमलताके साथ-ही-साथ कर्त्तव्यकी महान् निष्ठाके भी दर्शन होते हैं। पिताके सत्य एवं धर्मकी रक्षाके लिये युवराज-पदपर अभिषेकके दिन वे समस्त राजसिक सुविधाओंको त्यागकर जीवनके कठिन कण्टकाकीर्ण वनकी ओर अग्रसर होते हैं।

पिताकी मूर्च्छा और मृत्यु, भाइयोंकी हृदय-व्यथा, पत्नीका महान् कष्ट, स्वजनोंका आर्त्तनाद और प्रजावर्गका गम्भीर शोक भी उन्हें कर्त्तव्य-मार्गसे विचलित नहीं कर पाते। सबसे बड़ी बात तो यह है कि उनके इस त्याग-वैराग्यमें कहीं भी आवेश नहीं है। यह सब उनका सहज स्वभाव है। वे शान्त, आवेशहीन, धर्म-मर्यादाओंसे पूर्ण हैं। जब उनके श्वशुर जनक तथा भाई भरत आदि माताओंसहित उन्हें मनाने जाते हैं, तब स्नेहके भार एवं शील-संकोचसे सिर झुकाये हुए वे केवल अपनी स्थिति स्पष्ट कर देते हैं और कर्त्तव्यके निर्णय और आदेशका भार उन्हें ही सौंप देते हैं।

अपने धर्ममें दृढ़ रहते हुए भी वे कहीं गुरुजनोंसे तर्क-वितर्क नहीं करते; सदा अपनी धर्ममर्यादाका ध्यान रखते हुए ही उत्तर देते हैं। क्यों न हो, भगवान् श्रीरामभद्रके विग्रहमें समस्त सद्गुण स्वाभाविक रूपसे निवास करते थे।

एक बार तमसा नदीके पावन तटपर महर्षि श्रीवाल्मीकिजीने नारदजीसे पूछा—

"मुने! इस समय इस संसारमें गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, उपकार माननेवाला, सत्यवक्ता और दृढ़प्रतिज्ञ कौन है? सदाचारसे युक्त, समस्त प्राणियोंका हितकारक, विद्वान्, सामर्थ्यशाली और एकमात्र प्रियदर्शन सुन्दर पुरुष कौन है? मनपर अधिकार रखनेवाला, क्रोधको जीतनेवाला, कान्तिमान् और किसीकी निन्दा न करनेवाला कौन है?

तथा संग्राममें कुपित होनेपर किससे देवतालोग भी डरते हैं ?'' श्रीनारदजीने कहा—

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान्वशी॥
बुद्धिमान्नीतिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः॥
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिंदमः।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः॥
समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः॥
धर्मज्ञः सत्यसंधश्च प्रजानां च हिते रतः।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्॥
प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता॥
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान्।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः॥
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः॥
स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव॥
(वा० रा०, बा० का० १।८—१७)

''इक्ष्वाकुवंशमें प्रकट हुए एक ऐसे महापुरुष हैं, जो लोकमें 'राम'नामसे विख्यात हैं, वे ही मनको वशमें रखनेवाले, महाबलवान्, कान्तिमान्, धैर्यवान् और जितेन्द्रिय हैं। वे बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, वक्ता, शोभाशाली तथा शत्रुशाली-संहारक हैं। उनके कंधे मोटे और आजानुलम्बिनी भुजाएँ हैं। ग्रीवा शङ्खके समान और ठोड़ी मांसल (पुष्ट) है। उनका वक्षःस्थल चौड़ा है और शार्ङ्ग-धनुष उनके हाथमें है। ग्रीवाके नीचेका भाग पुष्ट एवं भरा हुआ है। शत्रुओंका दमन करनेवाली उनकी भुजाएँ घुटनोंतक लंबी हैं। मस्तक सुन्दर, ललाट भव्य और चाल बड़ी मनोहर है। उनका सम्पूर्ण शरीर पुष्ट, सम और सुडौल है। वे स्निग्धवर्णके एवं बड़े प्रतापी हैं। वक्षःस्थल भरा हुआ और नेत्र विशाल तथा गम्भीर हैं। वे बड़े ही शोभायमान और शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। वे धर्मके ज्ञाता, सत्यप्रतिज्ञ तथा प्रजाके हितकारक हैं। यशस्वी, ज्ञानी, पवित्र, जितेन्द्रिय और मनको एकाग्र रखनेवाले हैं। प्रजापतिके समान पालक, श्रीसम्पन्न, वैरिविध्वंसक और जीवों तथा धर्मके रक्षक हैं। स्वधर्म एवं स्वजनोंके पालक, वेद-वेदाङ्गके तत्त्ववेत्ता तथा धनुर्वेदमें प्रवीण हैं। वे अखिल शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ, स्मरण-शक्तिसे युक्त और प्रतिभा-सम्पन्न, पुनीत विचार और उदार हृदयवाले, चतुर-चूडामणि तथा समस्त लोकोंके प्रिय हैं। जैसे नदियाँ समुद्रमें मिलती हैं, उसी प्रकार सदा साधुलोग रामसे मिलते रहते हैं। वे आर्य एवं सबमें समान भाव रखनेवाले हैं। उनका दर्शन सदा ही प्रिय जान पड़ता है। सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न वे श्रीरामचन्द्र अपनी माता कौसल्याके आनन्दको बढ़ानेवाले हैं। गम्भीरतामें समुद्र और धैर्यमें हिमालयके समान हैं। इस प्रकार उत्तमोत्तम गुणोंसे वे युक्त हैं। उनका चरित्र लोकपावन और धर्ममर्यादाका मूर्तिमान् विग्रह है।''

सामाजिक एवं राष्ट्रीय दृष्टिसे विचार करें तो हम उन्हें सदैव अन्याय एवं अधर्मकी शक्तियोंसे युद्ध करते हुए देखते हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन अनैतिकता एवं अधर्मके विरुद्ध निरन्तर संघर्षमय जीवन है।

सामाजिक दृष्टिसे आपने निषादराज, शबरी, गीध आदिको बड़े प्रेमसे अपनाया। अहल्या पाषाण बनकर शापवश पड़ी थी, उसका उद्धार कर मानो आपने यह व्यक्त किया कि सत्पुरुष पतित-से-पतित व्यक्तियोंसे भी कभी घृणा नहीं करते; उनमें अपनी शक्तिका, पावनताका आधान कर उन्हें ऊपर उठा देते हैं। छोटे वानर-भालू आदि वनचरों तकको उन्होंने अपने संसर्ग एवं शिक्षा-शक्तिसे महत्त्वकी सीमापर पहुँचा दिया।

विद्या एवं प्राकृतिक शक्तिसे मदान्ध रावणके आतङ्कसे समस्त विश्व काँप रहा था। भोगोन्मुखी आसुरी प्रवृत्तिने धर्म एवं श्रेष्ठ संस्कारयुक्त आर्य-जीवनको अस्त-व्यस्त कर दिया था। ऋषियों एवं तपस्वियोंके कार्यमें बड़ी बाधाएँ उपस्थित की जा रही थीं। रावणने अपनी विद्या-बुद्धिसे अनेक प्राकृतिक शक्तियोंको वशीभूत कर लिया था। वह वायु एवं अग्निपर नियन्त्रण स्थापितकर उनसे मनमाना काम लेता था।

मानव-जीवनको आध्यात्मिक विकासके मार्गपर प्रेरित करनेवाली और तपःपूत संस्कृतिको महत्त्व देनेवाली आर्य-सभ्यताके लिये महान् संकटका क्षण उपस्थित था। श्रीरामभद्रने अपने अलौकिक कौशल, पराक्रम, संघटनादि-शक्ति

और अपने अक्षय आत्मबलसे रावण एवं उसकी अज्ञान-मूला प्रकृति-पद्धतिका विनाश कर आसुरी शक्तियोंसे विश्वको मुक्त किया तथा जनताको स्वस्थ वातावरणमें साँस लेने और जीनेका शुभ अवसर प्रदान किया। यद्यपि रावणसे युद्ध करनेके लिये श्रीरामचन्द्रजीके पास रावणकी अपेक्षा भौतिक आधार अत्यन्त नगण्य थे, फिर भी आध्यात्मिक शक्तियों एवं अपने उदात्त गुणोंके समुचित संघटनद्वारा उन्होंने भयंकर शत्रुपर विजय पायी।

असत्य, अज्ञान, अधर्म एवं अन्धकारसे सत्य, ज्ञान और प्रकाशका युद्ध ही मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके जीवनमें प्रबलताके साथ व्यक्त हुआ है, जो मानवमात्रके जीवनमें न्यूनाधिक रूपसे चलता ही रहता है, चल ही रहा है।

असत्य, अधर्मके प्रति युद्ध करते हुए उसके निराकरणमें हम जिस सीमातक पहुँच पाते हैं, उसी सीमातक हम मानो श्रीरामभद्रको अपने जीवनमें उतार पाते हैं और उसी सीमातक हम धर्मरूप हो पाते हैं; क्योंकि श्रीरामभद्र ही आर्य-संस्कृति एवं आर्य-मर्यादाके मूल स्तम्भ हैं। वे ही सम्पूर्ण विश्वके प्राणियोंके प्राण, आत्मा, परमात्मा और जीवनधन हैं। अतः उन्हीं मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामभद्रके पावन चरित्रका श्रवण, मनन, अनुकरण कर हम पावन एवं धन्य हो सकते हैं; क्योंकि मर्यादारक्षक श्रीरामभद्र ही मूर्तिमान्—विग्रहवान् धर्म हैं।



भगवान्‌का रामरूपमें दर्शन

(श्रीश्रीमाँ आनन्दमयी)

एक युवकने माँ आनन्दमयीके सम्मुख जिज्ञासा की—

'माँ! तुलसीदासजी तो महाज्ञानी और भक्त थे।'

माँने उत्तर दिया—'निस्संदेह वे थे ही।'

युवकने पूछा—"उन्हें जब भगवान्‌ने श्रीकृष्णके विग्रह-रूपमें दर्शन दिया, तब उन्होंने यह क्यों कहा कि 'मैं आपका इस रूपमें दर्शन नहीं चाहता; मुझे रामरूपमें दर्शन दीजिये।' क्या यह ज्ञानकी बात थी? वे (भगवान्) ही तो सबमें हैं, फिर इस तरह तुलसीदासजीने उनको भिन्न क्यों समझा?"

माँने उत्तर दिया—"तुम्हीं तो कहते हो कि वे ज्ञानी भी थे, भक्त भी थे। उन्होंने ज्ञानकी ही बात तो कही कि 'आप हमें रामरूपमें दर्शन दीजिये; मैं आपके इस (कृष्ण) रूपका दर्शन नहीं करना चाहता; मैं रामरूपका ही दर्शन चाहता हूँ।' यही प्रमाण है कि वे जानते थे, श्रीराम और श्रीकृष्ण एक ही हैं, अभिन्न हैं। 'आप मुझे दर्शन दीजिये'—यह उन्होंने कहा था। रूपमात्र भिन्न था, पर मूलतः तत्त्व तो एक ही था। इन्हीं शब्दोंमें तो उन्होंने अपनी बात कही। भक्तिकी बात तो उन्होंने यह कही कि 'मैं अपने रामरूपमें ही आपका दर्शन करना चाहता हूँ; क्योंकि यही रूप मुझे प्रिय है।' इस कथनमें ज्ञान और भक्ति—दोनों भाव प्रकाशित हैं।"



वेदावतार श्रीरामायण और भगवान् श्रीसीताराम

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

इस विश्वका मायामय व्यामोह दुरन्त है। प्राणी मृगमरीचिकामय पद, प्रतिष्ठा, अधिकार-ऐश्वर्यादिके पीछे केवल अशान्ति एवं तन्मूलक दुश्चिन्ताओंका ही संग्रह करता जाता है। यत्र-तत्र भटकते शकुनिके लिये जैसे एक-मात्र भूमि ही विश्रामस्थान है, वैसे ही नाना योनियोंमें भटकते अज्ञानी जीवके लिये भी एकमात्र करुणासिन्धु भगवान् ही विश्रामस्थल हैं। पर दुरभ्यस्त जीवको निम्बकीटकी भाँति सितारस-तुल्य मधुर यह ब्रह्मसुखानुभूतिका पथ उद्वेजक ही प्रतीत होता है। अतः उसकी प्रज्ञा सतत विचलित ही होती रहती है—

'तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि।'
(गीता २। ६७)

ऐसी दशामें माता-पितामें भी विशेष हितकारिणी निष्पक्ष निष्कण्टक मार्ग दिखलानेवाली श्रुति ही शरण्य है। पर इस श्रुति तथा तत्प्रतिपाद्य परब्रह्मका ज्ञान दुरधिगम होनेके कारण श्रुतिका रामायण एवं ब्रह्मका श्रीरामरूपमें अवतरण हुआ—

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना॥
'वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः।'
(वा० रा० १। ४। ६)

वेदावतार श्रीमद्रामायण पाठकको बड़ी ही मधुर कोमल-पदावलीमें रामचरित्रकी दिव्यामृतमयी सुरसरितामें ... परब्रह्म रामके समक्ष उपस्थित करती हैं। ... परोक्षप्रिय होते हैं, अतः वेद या वेदावतार रामायण भी परोक्षरीतिसे यत्र-तत्र रामके परब्रह्मत्वका प्रतिपादन करती है। एक-दो उदाहरण देखें—

विष्णुके अवतार परशुराम कहते हैं—'त्रैलोक्यनाथ प्रभो! आपद्वारा पराभूत होकर मैं व्रीड़ाका अनुभव नहीं करता। आप निश्चय ही मधुहन्ता, मधुसूदन ही हैं। स्वर्गादि लोकोंका दान या प्रतिषेध परमेश्वरका ही कार्य हो सकता है।' (वाल्मी० १। ७६। १७—१९)

इधर श्रुति भी इसी प्रकार 'उतामृतत्वस्येशानः' (शु० यजु० ३१। २) के द्वारा यही बात कहती है।

इसी प्रकार रावणके प्रति हनुमान्‌जीके—

सत्यं राक्षसराजेन्द्र शृणुष्व वचनं मम।
× × ×
सर्वाँल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् सचराचरान्॥
पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः।
(वाल्मी० ५। ५१। ३८-३९)*

'राम सम्पूर्ण स्थावर-जंगमात्मक विश्वका संहरण कर पुनः दूसरे ही क्षण उसी रूपमें सर्जन कर सकते हैं।'

इस कथनमें—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व, तद्ब्रह्मेति।

—इस तैत्तिरीय श्रुतिका ही संकेत—उपबृंहण दीखता है।

जैसे दहनातप्त लौहपिण्डमें दाहकत्वप्रदायक अग्नि लौहपिण्डका भी दग्धा (दाहक) कहा जाता है, वैसे ही सूर्यादिमें प्रकाशकत्वका तथा ईश्वरमें भी ईश्वरत्वादिका प्रदाता, सर्वाधिष्ठान, स्वप्रकाश, निर्गुण सनातन तत्त्व राम सूर्यादिके भी सूर्य, सर्वान्तर्यामी पूर्ण परात्पर ब्रह्म हैं। अतः वे प्राणोंके भी प्राण, जीवके भी जीव, श्रीकी भी श्री और आनन्दके भी सारभूत परम आनन्द हैं। देवी सुमित्राने अम्बा कौसल्यासे कहा था—

सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः।
श्रियाः श्रीश्च भवेदग्र्या कीर्त्याः कीर्तिः क्षमाक्षमा॥
दैवतं देवतानां च भूतानां भूतसत्तमः।
(वाल्मी० रामा० २। ४४। १५-१६)

'देवि! श्रीराम सूर्यके भी सूर्य (प्रकाशक) और अग्निके भी अग्नि (दाहक) हैं। वे प्रभुके भी प्रभु, लक्ष्मीकी भी उत्तम लक्ष्मी, कीर्तिकी भी कीर्ति और क्षमाकी भी क्षमा हैं। इतना ही नहीं, वे देवताओंके भी देवता तथा भूतोंके भी उत्तम भूत हैं।'

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी महाराज भी कहते हैं—

'प्रान प्रान के जीव के जिव सुख के सुख राम।'
(राम० च० मा० २। २९०)

* वाल्मी०, ३। ३१। २६; ३। ६४। ५६—६२ आदिमें भी यही भाव पुनरुक्त हुआ है।

या—

'राम प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥'
(मानस २ । ७३ । ३)

वास्तवमें इन भावोंमें भी—

'स उ प्राणस्य प्राणः' (केनोपनिषद् १ । २)

एवं—

'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्'
(कठोप० ४ । १३, श्वेताश्व० ६ । १३)

—आदि श्रुतियोंका ही उपबृंहण हुआ है।

सुग्रीवसे भगवान्ने स्वयं भी कहा था—'सखे हरीश्वर! मैं इच्छा होनेपर इस समस्त विश्वके ही यक्ष, राक्षस, पिशाच एवं दानवोंका एक अँगुलीके अग्रभागमात्रसे संहार कर सकता हूँ—

पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान्।
अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर॥
(वा० रा० ६ । १८ । २३)

पूर्ण संकल्पसिद्धि परमेश्वरका ही लक्षण है। अपरिमेय ईश्वर यदि अपनी निरतिशय शक्ति-माहात्म्यको प्रकट करे तो आश्चर्य क्या? वास्तवमें भगवान्के इस कथनमें भी—

'सत्यकामः सत्यसंकल्पः' (छान्दो० ८ । १ । ५) एवं 'सत्यसंकल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः।' (छान्दो० ३ । १४ । २)

—आदि श्रुतियोंका उपबृंहण हुआ है।

रामका तेज अपूर्व था। अतः बिना किसीकी इङ्गनाके ही तारा उन्हें पहचान गयी—

ददर्श रामं शरचापपाणिं स्वतेजसा सूर्यमिव ज्वलन्तम्॥
....
अदृष्टपूर्वं पुरुषप्रधानमयं स काकुत्स्थ इति प्रजज्ञे॥
(वा० रा० ४ । २४ । २७-२८)

'इतनेमें ही उसने अपने सामने धनुष-बाण धारण किये श्रीरामको खड़ा देखा, जो अपने तेजसे सूर्यदेवके समान प्रकाशित हो रहे थे। उन पुरुषप्रवर श्रीरामको, जो पहले कभी देखनेमें नहीं आये थे, देखकर मृगशावक-नयनी तारा समझ गयी कि ये ही ककुत्स्थकुल भूषण श्रीराम हैं।'

वह उन्हें 'अद्वितीय, अलौकिक, मनुष्यभिन्न लोकोत्तर दिव्यशरीरी' कहती है—

'मनुष्यदेहाभ्युदयं विहाय दिव्येन देहाभ्युदयेन युक्तः॥'
(वही, ४ । २४ । ३२)

इसी प्रकार युद्धकाण्डमें मन्दोदरी, रावणके अनुचर आदि तथा देवगण भी उन्हें 'ईश्वर' ही कहते हैं।*

इसी प्रकार भगवती सीता भी ब्रह्मजाया या साक्षात् श्री हैं। वे परब्रह्मकी महिषी या श्रीरामकी ऐश्वर्याधिष्ठान-शक्ति हैं—'महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषी।' किंवा कृपानिधान, आत्माराम, आनन्दकंद रघुनन्दन रामभद्र श्रीरामकी स्वरूपभूता माधुर्यसारसर्वस्वा आत्मा ही हैं—स्वात्मैव ललिता; (भावनोपनिषद्) आत्मा तु राधिका तस्य··· आत्माराम इति स्मृतः। (स्कन्द०) सीता ही राधिका और राम ही कृष्ण भी हैं—

'कृष्णश्चैव बृहद्बलः॥' (वही, ६ । ११७ । १५)

ये ही कामेश्वराङ्कनिलया राजराजेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी भी हैं। वे ही आद्याप्रकृति, चिति, मूल संवित्ति, चिद्रूपा, विशुद्ध परतत्त्व भी हैं—

'सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः।'
(वही, ६ । ११७ । २७)

अतः इन दोनोंकी उपासना-आराधना आदिसे ही जीव कृतार्थ हो सकता है।

'कलातीता भगवती स्वयं सीतेति संज्ञिता॥' इत्यादि
([illegible])



* द्रष्टव्य—६ । ५० । ४९, ६ । ५९ । १२०, ६ । ११४ । १४-२२, ६ । ११७ । पूरा सर्ग, ६ । ११८, १२०, १२१ तथा १३१ सर्ग पूरे।

भगवान् श्रीरामके दर्शनार्थ विविध साधन

(ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

बहुत-से सज्जन मनमें शङ्का उत्पन्नकर इस प्रकारके प्रश्न किया करते हैं कि 'दो प्यारे मित्र जैसे आपसमें मिलते हैं, क्या उसी प्रकार इस कलिकालमें भी भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन मिल सकते हैं ? यदि यह सम्भव है तो ऐसा कौन-सा उपाय है कि जिससे हम उस मनोमोहिनी मूर्तिका शीघ्र ही दर्शन कर सकें ?'

यद्यपि मैं एक साधारण व्यक्ति हूँ, तथापि परमात्माकी और महान् पुरुषोंकी दयासे केवल अपने मनोविनोदार्थ दोनों प्रश्नोंके सम्बन्धमें क्रमशः कुछ लिखनेका साहस कर रहा हूँ ।

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥
(श्रीमद्भा० १२ । ३ ४२)

'सत्ययुगमें निरन्तर विष्णुका ध्यान करनेसे, त्रेतामें यज्ञद्वारा यजन करनेसे और द्वापरमें पूजा (उपासना) करनेसे जिस परमगतिकी प्राप्ति होती है, वही कलियुगमें केवल नाम-कीर्तनसे मिल जाती है ।'

जैसे अरणिकी लकड़ियोंके मन्थनसे अग्नि प्रज्वलित हो जाती है, उसी प्रकार सच्चे हृदयकी प्रेमपूरित पुकारकी रगड़से, अर्थात् उस भगवान्‌के प्रेममय नामोच्चारणकी गम्भीर [ध्व]निके प्रभावसे भगवान् भी प्रकट हो जाते हैं । महर्षि [पतञ्ज]लिने भी अपने 'योगदर्शन'में कहा है—

'स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः ।'

'नामोच्चारणसे इष्टदेव परमेश्वरके साक्षात् दर्शन होते हैं ।'

वास्तवमें नामकी महिमा वही पुरुष जान सकता है, जिसका मन निरन्तर श्रीभगवन्नाममें संलग्न रहता है । नामकी प्रिय और मधुर स्मृतिसे जिसके क्षण-क्षणमें रोमाञ्च और अश्रुपात होते हैं, जो जलके वियोगमें मछलीकी भाँति क्षणभरके नाम-वियोगसे भी विकल हो उठता है, जो महापुरुष निमेषमात्रके लिये भी भगवान्‌के नामको नहीं छोड़ सकता और जो निष्कामभावसे निरन्तर प्रेमपूर्वक जप करते-करते उसमें तल्लीन हो चुका है, ऐसा ही महात्मा पुरुष इस विषयके पूर्णतया वर्णन करनेका अधिकारी है और उसीके लेखसे संसारमें विशेष लाभ पहुँच सकता है ।

मेरा अनुभव—कुछ मित्रोंने मुझे भगवन्नामके विषयमें अपना अनुभव लिखनेके लिये अनुरोध किया है, परंतु जब कि मैंने भगवन्नामका विशेष संख्यामें जप ही नहीं किया, तब मैं अपना अनुभव क्या लिखूँ ? भगवत्-कृपासे जो कुछ यत्किंचित् नामस्मरण मुझसे हो सका है, उसका माहात्म्य भी पूर्णतया लिखा जाना कठिन है ।

नामका अभ्यास मैं लड़कपनसे ही करने लगा था, जिससे शनैः-शनैः मेरे मनकी विषय-वासना कम होती गयी और पापोंसे हटनेमें मुझे बड़ी सहायता मिली । काम-क्रोधादि अवगुण कम होते गये, अन्तःकरणमें शान्तिका विकास हुआ । कभी-कभी नेत्र बंद करनेसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका अच्छा ध्यान भी होने लगा । सांसारिक स्फुरणा बहुत कम हो गयी । भोगोंमें वैराग्य हो गया । उस समय मुझे वनवास या एकान्त स्थानका रहन-सहन अनुकूल प्रतीत होता था ।

इस प्रकार अभ्यास होते-होते एक दिन स्वप्नमें श्रीसीताजी और लक्ष्मणजीसहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन हुए और उनसे बातचीत भी हुई । श्रीरामचन्द्रजीने वर माँगनेके लिये मुझसे बहुत कुछ कहा, पर मेरी इच्छा कुछ भी माँगनेकी नहीं हुई । अन्तमें बहुत आग्रह करनेपर भी मैंने इसके सिवा और कुछ नहीं माँगा कि 'आपसे मेरा वियोग कभी न हो ।' यह सब नामका ही फल था ।

इसके बाद नामजपसे मुझे और भी अधिक लाभ हुआ, जिसकी महिमाका वर्णन करनेमें मैं असमर्थ हूँ । हाँ, इतना अवश्य कह सकता हूँ कि नामजपसे मुझे जितना लाभ हुआ है, उतना श्रीमद्भगवद्गीताके अभ्यासको छोड़कर अन्य किसी भी साधनसे नहीं हुआ ।

जब-जब मुझे साधनसे च्युत करनेवाले भारी विघ्न प्राप्त हुआ करते थे, तब-तब मैं प्रेमपूर्वक, भावनासहित नामजप करता था और उसीके प्रभावसे मैं उन विघ्नोंसे छुटकारा पाता था । अतएव मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि साधन-पथके विघ्नोंको दूर करने और मनमें होनेवाली सांसारिक स्फुरणाओंका नाश करनेके लिये स्वरूपचिन्तन-सहित प्रेमपूर्वक भगवन्नाम-जप करनेके समान दूसरा कोई

साधन नहीं है। जब कि साधारण संख्यामें भगवन्नामका जप करनेसे ही मुझे इतनी परम शान्ति, इतना अपार आनन्द और इतना अनुपम लाभ हुआ है, जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता, तब जो पुरुष भगवन्नामका निष्काम भावसे ध्यानसहित नित्य-निरन्तर जप करते हैं, उनके आनन्दकी महिमा तो कौन कह सकता है।

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥
(मानस ७। १०३ क)

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥
(मानस १। २१)

प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय—आनन्दमय भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शनके लिये सर्वोत्तम उपाय 'सच्चा प्रेम' है। वह प्रेम किस प्रकार होना चाहिये, इस विषयमें आपकी सेवामें कुछ निवेदन किया जाता है।

श्रीलक्ष्मणकी तरह कामिनी-काञ्चनको त्यागकर भगवान्‌के लिये वन-गमन करनेसे भगवान् प्रत्यक्ष मिल सकते हैं।

ऋषिकुमार सुतीक्ष्णकी तरह प्रेमोन्मत्त होकर विचरनेसे भगवान् मिल सकते हैं।

श्रीरामके शुभागमनके समाचारसे सुतीक्ष्णकी कैसी विलक्षण स्थिति होती है, इसका वर्णन श्रीतुलसीदासजीने बड़े ही प्रभावशाली शब्दोंमें किया है। भगवान् शिवजी उमासे कहते हैं—

होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन॥
निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी॥
दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई॥
अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई॥
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा॥
मुनि मग माझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा॥
तब रघुनाथ निकट चलि आए। देखि दसा निज जन मन भाए॥
(मानस ३। ९। ५-८)

श्रीहनुमान्‌जीकी तरह प्रेममें विह्वल होकर अति श्रद्धासे भगवान्‌की शरण ग्रहण करनेसे भगवान् प्रत्यक्ष मिल सकते हैं।

कुमार भरतकी तरह राम-दर्शनके लिये प्रेम-विह्वल होनेसे भगवान् प्रत्यक्ष मिल सकते हैं। चौदह सालकी अवधि पूरी होनेके समय प्रेममूर्ति भरतजीकी कैसी विलक्षण दशा थी, इसका वर्णन श्रीतुलसीदासजीने बहुत ही मार्मिक शब्दोंमें किया है—

रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा॥
कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ॥
अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंदु अनुरागी॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा॥
जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥
बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात॥
(मानस ७। ०। १-४; ७। १ क, ख)

हनुमान्‌के साथ वार्तालाप होनेके अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीसे भरत-मिलाप होनेके समयका वर्णन इस प्रकार है। शिवजी महाराज देवी पार्वतीसे कहते हैं—

राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदयँ लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुअन धनी॥
प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहिं जाति नहिं उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही॥
बूझत कृपानिधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई॥
अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो॥
(मानस ७। ४। १-२ छं०)

भगवान् श्रीरामका ध्यान—श्रीभगवान्‌ने गीतामें ध्यानकी बड़ी महिमा गायी है। ध्यानके प्रकार बहुत-से हैं। साधकको अपनी रुचि, भावना और अधिकारके अनुसार तथा अभ्यासकी सुगमता देखकर किसी भी एक प्रकारसे ध्यान करना चाहिये। एकान्तमें आसनपर बैठकर साधकको दृढ़ निश्चयके साथ नीचे लिखी भावना करनी चाहिये—

(१) मिथिलापुरीमें महाराज जनकके दरबारमें भगवान् श्रीरामजी अपने छोटे भाई श्रीलक्ष्मणजीके साथ पधारते हैं । भगवान् श्रीराम दूर्वाके अग्रभागके समान हरित आभायुक्त सुन्दर श्यामवर्ण और श्रीलक्ष्मणजी स्वर्णाभ गौरवर्ण हैं । दोनों इतने सुन्दर हैं कि जगत्की सारी शोभा और सारा सौन्दर्य इनके सौन्दर्यसमुद्रके सामने एक जलकण भी नहीं है । किशोर-अवस्था है । धनुष-बाण और तरकस धारण किये हुए हैं । कमरमें सुन्दर दिव्य पीताम्बर है । गलेमें मोतियोंकी, मणियोंकी और सुन्दर सुगन्धित तुलसीमिश्रित पुष्पोंकी मालाएँ हैं । विशाल और बलकी भण्डार सुन्दर भुजाएँ हैं, जो रत्नजटित कड़े और बाजूबंदसे सुशोभित हैं । ऊँचे और पुष्ट कंधे हैं, अति सुन्दर चिबुक है, नुकीली नासिका है । कानोंमें झूमते हुए मकराकृति सुवर्णकुण्डल हैं । सुन्दर अरुणिमायुक्त कपोल हैं । लाल-लाल अधर हैं । उनके सुन्दर मुख शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाको भी नीचा दिखानेवाले हैं । कमलके समान बहुत ही प्यारे उनके विशाल नेत्र हैं । उनकी सुन्दर चितवन कामदेवके भी मनको हरनेवाली है । उनकी मधुर मुस्कान चन्द्रमाकी किरणोंका तिरस्कार करती है । तिरछी भौंहें हैं । चौड़े और उन्नत ललाटपर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक सुशोभित हैं । काले, घुँघराले मनोहर बालोंको देखकर भौंरोंकी पङ्क्तियाँ भी लजा जाती हैं । मस्तकपर सुन्दर सुवर्णमुकुट सुशोभित हैं । कंधेपर यज्ञोपवीत शोभा पा रहे हैं । मत्त गजराजकी चालसे दोनों चल रहे हैं । इतनी सुन्दरता है कि करोड़ों कामदेवोंकी उपमा भी उनके लिये तुच्छ है ।

(२) महामनोहर चित्रकूट पर्वतपर वटवृक्षके नीचे भगवान् श्रीराम, भगवती श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजी बड़ी सुन्दर रीतिसे विराजमान हैं । नीले और पीले कमलके समान कोमल और अत्यन्त तेजोमय उनके श्याम और गौर शरीर ऐसे लगते हैं, मानो चित्रकूटरूपी कामसरोवरमें प्रेम, रूप और शोभामय कमल खिले हों । ये नखसे शिखालक परम सुन्दर, सर्वथा अनुपम और नित्य दर्शनीय हैं । भगवान् राम और लक्ष्मणके कमरमें मनोहर मुनिवस्त्र और सुन्दर तरकस बँधे हैं । श्रीसीताजी लाल वसनसे और नानाविध आभूषणोंसे सुशोभित हैं । दोनों भाइयोंके वक्षःस्थल आर कंधे विशाल हैं । वे कंधोंपर यज्ञोपवीत और वल्कलवस्त्र धारण किये हुए हैं । गलेमें सुन्दर पुष्पोंकी मालाएँ हैं । अति सुन्दर भुजाएँ हैं । कर-कमलोंमें सुन्दर धनुष सुशोभित हैं । परम शान्त, परम प्रसन्न मनोहर मुखमण्डलकी शोभाने करोड़ों कामदेवोंको जीत लिया है । मनोहर मधुर मुस्कान है । कानोंमें पुष्पकुण्डल शोभित हो रहे हैं । सुन्दर अरुण कपोल हैं । विशाल, कमल-जैसे कमनीय और मधुर आनन्दकी ज्योतिधारा बहानेवाले अरुण नेत्र हैं । उन्नत ललाटपर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक हैं और सिरपर जटाओंके मुकुट बड़े मनोहर लगते हैं । तीनोंकी यह वैराग्यपूर्ण मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है ।

(संकलित)

वन्दे महापुरुष ! ते चरणारविन्दम्

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् ।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥
त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद् वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥

(श्रीमद्भागवत ११ । ५ । ३३-३४)

'प्रभो ! आप शरणागतरक्षक हैं । आपके चरणारविन्द सदा-सर्वदा ध्यान करनेयोग्य, माया-मोहके कारण होनेवाले सांसारिक पराजयोंका अन्त कर देनेवाले तथा भक्तोंको समस्त अभीष्ट वस्तुओंका दान करनेवाले कामधेनुस्वरूप हैं । वे तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाले स्वयं परम तीर्थस्वरूप हैं; शिव, ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता उनकी स्तुति करते हैं और चाहे जो कोई उनकी शरणमें आ जाय, उसे वे स्वीकार कर लेते हैं । सेवकोंकी समस्त पीड़ा और कष्टके नाशक तथा संसार-सागरसे पार जानेके लिये जहाज हैं । महापुरुष ! मैं आपके उन्हीं चरणारविन्दोंकी वन्दना करता हूँ । भगवन् ! आपके चरण-कमलोंकी महिमा कौन कहे । अपने पिता दशरथजीके वचनसे देवताओंके लिये भी वाञ्छनीय और दुस्त्यज राज्यलक्ष्मीको छोड़कर आपके चरण-कमल वन-वन घूमते फिरे ! सचमुच आप धर्मनिष्ठताकी सीमा हैं । और महापुरुष ! अपनी प्रेयसी सीताजीके चाहनेपर जान-बूझकर आपके चरण-कमल मायामृगके पीछे दौड़ते रहे । सचमुच आप प्रेमकी सीमा हैं । प्रभो ! मैं आपके उन्हीं चरणारविन्दोंकी वन्दना करता हूँ ।'

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय और भगवान् श्रीराम

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज)

अखिलब्रह्माण्डनायक, क्षराक्षरातीत, जगज्जन्मादिहेतु, ब्रह्मरुद्रेन्द्रादिकिरीटकोट्यीडितपादपीठ, परब्रह्म, अनुग्रहविग्रह, कौसल्यानन्दवर्द्धन, दशरथतनय, मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामभद्रका पावनतम चरित कितना समुज्ज्वल, दिव्य और शास्त्रमर्यादाओंसे निबद्ध है—इसे प्राकृत भाषामें अङ्कित करना अति कठिन है। लोकाभिराम भगवान् श्रीरामका ऐसे अत्यन्त भीषण संकट-कालमें आविर्भाव हुआ, जब कि दुर्दान्त रावण-कुम्भकर्ण एवं मेघनाद-खरदूषण-जैसे अगणित प्रबल अत्याचारी क्रूरकर्मा निशाचरका अतिशय प्राबल्य था। गो-ब्राह्मण-साधुजन, देवगण, ऋषि-मुनि-महात्मा नाना प्रकारसे महाघोर-कर्मपरायण इन असुरोंके अकल्पनीय भयंकर कुकृत्योंसे अत्यन्त उत्पीड़ित थे। त्रिभुवनविमोहन करुणा-वरुणालय श्रीराघवेन्द्र सरकारने कृपा कर इन नृशंस दुष्ट दैत्योंका दलन और प्रपन्न भक्त-जनोंका परित्राण कर वैदिक-धर्म एवं शास्त्रमर्यादाकी सम्यक् प्रकारसे स्थापना की। आपके लोकपावन चरितका श्रवण, मनन और निदिध्यासन कर आज भी विभ्रान्त मानव सत्पथानुगामी बनकर आपकी महामहिमामयी परमानुकम्पाका सद्भाजन बन जाता है, तथाच आपके अति दुर्लभ मधुर दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त कर लेता है। भगवान् श्रीरामके सभी चरित्र इतने आदर्श और महान् हैं कि उनके स्मरण-मात्रसे ही त्रिविध ताप एवं पातकोपपातक पलभरमें ही प्रणष्ट हो जाते हैं।

रघुकुलतिलक श्रीरामके अखण्ड साम्राज्यमें सर्वत्र सुख-शान्तिकी अजस्र धारा प्रवहमाण थी। सम्पूर्ण प्रजा धन-जन-समृद्धिसे सम्पन्न थी और नित्यनव हर्षोल्लासका अनुभव करती थी। जनकतनया श्रीसीताजीसहित श्रीरामभद्रकी अतुलित-अनुपम-सौन्दर्य-माधुर्यजन्य विलक्षण शोभाके दर्शन-हेतु अगणित देव-ऋषि-मुनि-वृन्द आ-आकर अपनी अनन्त-कालकी उपार्जित तपःसाधनाकी उपलब्धिका साक्षात्कार करते थे। असीम बलनिधान पवनतनय श्रीहनुमान् जिन भगवान् श्रीरामके युगल पदकंजमें सदा अनुरक्त रहते थे; उन प्रभुकी इच्छित सेवा-सामग्रीको सतत प्रस्तुत करना कैसी आदर्श और उत्कृष्ट भक्तिका निदर्शन है। श्रीप्रभुके सुविस्तृत राज्यमें धर्म और नीतिके अद्वितीय मर्मज्ञ महामुनि श्रीवसिष्ठ-जैसे प्रमुख परामर्शदाताका होना रामराज्यकी गरिमाका महत्तम द्योतक था। अवधेश महाराज दशरथ और माता कौसल्याका अनिर्वचनीय अगाध अनुराग बरबस किसे अनुप्राणित नहीं कर देता। लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न-जैसे परम अजेय महामहिम भ्राता रामाज्ञाके अनुपालनमें सर्वदा विनम्रभावसे संनद्ध रहते एवं तदनुवर्तनमें अपना अतिशय सौभाग्य मानते हैं।

इस प्रकार मानव-जीवनका यथार्थ प्रेरक एवं उदात्त उद्बोधनप्रदायक मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका त्रैलोक्यपावन मङ्गलमय चरित सामने है। वह जिस दृष्टिसे भी देखा जाय, सर्वोत्कृष्ट और दिव्यातिदिव्य है। नीलाम्बुज-श्यामलकोमलाङ्ग हृदयरमण नयनाभिराम श्रीराघवेन्द्र प्रभुके निखिललोकवन्दित परमाद्भुत चरितका श्रुति-स्मृति-पुराण-तन्त्रादि धर्मशास्त्र एवं वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्म-रामायण प्रभृति अनेक रामायणों तथा अनेक ऋषीश्वर, सम्प्रदायाचार्यों, संत-महात्माओंने भी भव्य, सरस और अति विस्तृतरूपसे वर्णन किया है। श्रीराम-चरितमानस तो प्रसिद्ध ही है। श्रीगोस्वामीजीने जिस अनूठे प्रकारसे मानसका प्रणयन किया है, वह अद्वितीय है। श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायके सर्वमूर्द्धन्य पूर्वाचार्य एवं परवर्ती आचार्यचरणोंने भी श्रीराममहिमाका गुणगान जिस अनुपमेय, अतिललित भाषामें किया है, वह भी विशेषतः द्रष्टव्य है।

श्रीमन्निम्बार्काचार्यपीठाधिरूढ़ जगद्विजयी जगद्गुरु श्रीकेशवकाश्मीरी भट्टाचार्यजी महाराजने 'श्रीकृष्णशरणापत्ति-स्तोत्र'में भगवान् श्रीकृष्णकी प्रपन्नताकी आकाङ्क्षा करते हुए भगवान् श्रीरामकी भी प्रपत्ति बड़ी ही सरसतासे की है—

> श्रीरामचन्द्र रघुनाथ जगच्छरण्य
> राजीवलोचन धनुर्धर रावणारे !
> सीतापते रघुपते रघुवीर राम
> त्रायस्व केशव हरे शरणागतं माम् ॥
> (श्रीकृष्णशरणापत्तिस्तोत्र, ४)

ऐसे ही श्रीनिम्बार्कपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीरघुनन्दनदेवा-चार्यजी महाराजने भी अपने 'श्रीरघुनन्दनसागर' नामक बृहद् ग्रन्थमें अनेक दोहों और पदोंसे राजीवलोचन भगवान् रामका गुणगान किया है। उदाहरणार्थ कतिपय दोहे और पद यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं—

रंक विभीषन कौं दयो, लै रावन को राज।
'परसा' परम उदार अति, राम गरीब निवाज॥
'परसा' हित करि सेइयै, हरि तारन भवपार।
और न को रघुनाथ सम, नेह निवाहन हार॥
घर बाहर सनमुख सदा, हरि जहँ-तहँ इक तार।
रामचंद्र भजि 'परसराम', दाता परम उदार॥
रामचंद्र दसरथ सुअन 'परसा' परम-उदार।
लंक दई जिन हेत करि, भयो अवधि दातार॥
जिन तारी सिल सिंधु परि, 'परसराम' सो राम।
ता सुमिर्यां सब सुद्धरै, करिये जो कछु काम॥
(श्रीपरशुरामसागर खं० २, दो० ९, ११, १३, १४, १७, पृ० ३४)

पद-रज पावन राम! तुम्हारी।
सदगति भई सिला अब-हीं-अब, देखि प्रगट साखी रिषि-नारी॥
पलट गयो पाषान पलक मैं, यह अचिरज लागत अति भारी।
कटे कलंक सकल, पद-पंकज परसत दिव्य देह जिनि धारी॥
बरनि सकै कवि कौन सुमहिमा जानि अजानि सेस बिसतारी।
सोइ दीजै, रघुनाथ! कृपा करि 'परसा' जन-रज काज भिखारी॥
(श्रीपरशुरामसागर, खं० ४ पद ३६, २, पृ० ११९, २०५)

इसी प्रकार श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधिपति जगद्गुरु श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजी महाराजने अपने निजप्रणीत 'गीतामृतगङ्गा' नामक वाणी-ग्रन्थमें अवधेशकुमार श्रीरामलल्लाकी महिमाका अनेक स्थलोंपर बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है।

यथा—

जय-जय रघुवर! करुणासागर! कार्मुक-हस्त! अयोध्यानागर!
भव-भय-खण्डन! निज जन मण्डन! हय-खुर क्षत दानव पुर-कण्डन!
जनकसुता-सहचर गुणराशे, वितर दयां 'वृन्दावनदासे'॥

जागु रे, मनुवाँ! लै रे राम कौ नाम।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह में कत भटकत बेकाम॥
विनसि गएँ तन छिनक एक में कोउ न छुवै है चाम।
'(श्री) वृंदावन' यह समझि, बावरे! बेगि पकरि निज धाम॥
(श्रीगीतामृतगङ्गा, घाट १०, १३, पद २०, ६)

श्रीनिम्बार्काचार्यपीठसमारूढ़ आचार्यवर्य जगद्गुरु श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्यजी महाराजने भी अपनी अति मनोहर मञ्जुल पदावलीमें रघुकुलतिलक जनकसुतापति विश्वविमोहन श्रीराघवेन्द्रके विवाहोत्सव एवं हिंडोरा-उत्सवका कितना हृदयग्राही और मनोरम वर्णन किया है, जिसका कुछ अंश नीचे उद्धृत है—

मिथिला आय जनकपुर हंसा। गुन रूप सील अवतंसा॥
ठाढ़ी जनक-लली जु अटा हैं। मानों रूप की घटा हैं॥
सजनी सों बोलीं बैना। ये काके कुँवर छबि-ऐना॥
तन साँवल सरस सलोनें। सुंदर अस भये न होनें॥
यासों मन-लगन लगी है। मेरी नींद रु भूख भगी है॥
पितु कठिन धनुष पन लीनौं। कोउ कहै जाय कहा कीनौं॥
ये मृदुल मनोहर गाता। यह धनुष कठिन अति ताता॥
सब बातें भईं अकामी। (मैं) इनकी पतनी ये स्वामी॥
जनकसुता की करुना-बानी। रघुपति अपने मन मानी॥
सिव कठिन धनुष लै तोर्यो। भट बीरन कौ मद मोर्यो॥
भयौ ब्याह, बधाई भलियाँ। सब गली गली रँगरलियाँ॥
दुलही लै निज पुर आये। भये 'गोविंदसरन' मन भाये॥
(श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्यजीकी वाणी, पद ६७)

झूलत जनकलली रघुनंदन।
अति अभिराम धाम छबि, गुन निधि धनुष बान कर कंजन॥
सरजू तीर कलपतरु छइयाँ हरित भूमि मनरंजन।
पावस रितु बन उपवन सोभा निरखि होत मन मंजन॥
उर बिसाल मुक्ताफल सोहैं भक्तन के भय भंजन।
'गोविंदसरन' राजाधिराज नृप तिलक असुर दल गंजन॥
(श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्यजीकी वाणी, पद २०२)

यद्यपि श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायके आराध्य नित्यनिकुञ्जविहारी युगलकिशोर श्यामाश्याम भगवान् श्रीराधाकृष्ण हैं, तथापि सम्प्रदायके सिद्धान्तानुसार भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्णमें अन्तर नहीं माना गया है। तत्त्वतः वे एक ही परात्परतत्त्व रसस्वरूप परब्रह्म हैं; लीला-विलासहेतु भक्तोंको आनन्द देने, धर्मके संस्थापन एवं निशाचरोंके दमनार्थ ही समय-समयपर विभिन्न रूपसे अवतार लेते हैं, जैसा कि श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराजने स्पष्ट किया है—

राम कृष्ण हरि नाम मैं, भेद-अभेद न कोय।
पार करन कौं 'परसराम', परम पोत प्रभु सोय॥
(श्रीपरशुरामसागर, प्र० खंड ३७०। २)

भगवान् श्रीरामका दिव्य चरित मर्यादा-स्थापनादिके उद्देश्यसे की गयी अनेक लीलाओंसे परिपूरित है और इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके लोकोत्तर, अप्राकृत ललित चरितका भी मुख्य उद्देश्य निज-प्रपन्नजनोंको सुख देनेके अतिरिक्त दिव्यकेलि-रस-प्रदान ही है, असुर-संहारादि कार्य तो प्रासङ्गिक है।

श्रीश्रीरामनाम-माहात्म्य

(लेखक—महात्मा श्रीसीतारामदास ओंकारनाथजी महाराज)

मनोऽभिरामं नयनाभिरामं
वचोऽभिरामं श्रवणाभिरामम्।
सदाभिरामं सतताभिरामं
वन्दे सदा दाशरथिं च रामम्॥
(आनन्दरामायण)

'मनके लिये मनोरम, नयनोंके लिये रमणीय, वचनकी दृष्टिसे सुन्दर, श्रवणके लिये मनोरम, सर्वदा अभिराम, निरन्तर सुन्दर दाशरथि रामकी मैं सदा वन्दना करता हूँ।'

'श्रीरामरहस्योपनिषद्'में श्रीरामचन्द्रजीके श्रीमुखकी वाणी है—

श्रीराम उवाच—

अथ पञ्च दण्डकानि पितृघ्नो मातृघ्नो ब्रह्मघ्नो गुरुहनन-कोटियतिघ्नोऽनेककृतपापो यो मम षण्णवतिकोटिनामानि जपति स तेभ्यः पापेभ्यः प्रमुच्यते स्वयमेव सच्चिदानन्द-स्वरूपो भवेन्न किम्? (१। ९)

'जो मनुष्य पितृघाती, मातृहन्ता, ब्रह्मघाती, गुरुहन्ता, कोटियतिविनाशक तथा और भी अनेक पापोंका कर्त्ता है, वह मेरे ९६ करोड़ नामका जप करके उन सब पापोंसे विमुक्त हो जाता है। अधिक क्या कहा जाय, वह सच्चिदानन्दस्वरूप हो जाता है।'

अग्नीषोमात्मकं रूपं रामबीजे प्रतिष्ठितम्।
यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महाद्रुमः॥
तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्।
(वही, ५। ८-४)

'रामबीज (रां)में अग्नीषोमात्मक विश्व प्रतिष्ठित है। जिस प्रकार वटबीजके भीतर प्राकृत महान् वटवृक्ष रहता है, उसी प्रकार दृश्यमान चराचर जगत् रामबीजमें अवस्थित है।'

आद्यो रा तत्पदार्थः स्यान्मकारस्त्वंपदार्थवान्॥
तयोः संयोजनमसीत्यात्मतत्त्वविदो विदुः।
(वही, ५। १२-१३)

''राम' शब्दके आदिका 'रा' तत्पदार्थ है, मकार 'त्वं'-पदार्थ है, दोनोंका संयोजन 'असि' है, अर्थात् 'राम' शब्द 'तत्त्वमसि' (तू आत्मा ही वह परमात्मा है)—इस महावाक्य-का द्योतक है—आत्मतत्त्वके ज्ञाता इससे अवगत हैं।''

'श्रीरामोत्तरतापिनी उपनिषद्'में लिखा है—

मन्वन्तरसहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः।
ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः प्राह शंकरम्॥
वृणीष्व यदभीष्टं तद् दास्यामि परमेश्वर।
अथ सच्चिदानन्दात्मानं श्रीराममीश्वरः पप्रच्छ—
मणिकर्ण्यां मम क्षेत्रे गङ्गायां वा तटे पुनः।
म्रियेत देही तज्जन्तोर्मुक्तिर्नातो वरान्तरम्॥
(३। १-३)

''भगवान् शंकरने सहस्रों मन्वन्तरतक जप-होम-अर्चना आदिके द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रकी आराधना की। तदनन्तर श्रीभगवान् प्रसन्न होकर शंकरजीसे बोले—'हे परमेश्वर! आपको जो अभीष्ट हो, वह वर माँगिये; उसे मैं अवश्य दूँगा।' तत्पश्चात् शंकरजीने सच्चिदानन्द श्रीराम-चन्द्रजीसे कहा—'मेरे अविमुक्त क्षेत्र (वाराणसी)में मणिकर्णिकामें, गङ्गामें अथवा उसके तटपर जो कोई जीव देहत्याग करे, उसकी मुक्ति हो—इसके सिवा अन्य वर मुझे नहीं चाहिये।'

अथ स होवाच—

क्षेत्रेऽस्मिंस्तव देवेश यत्र कुत्रापि वा मृताः।
कृमिकीटादयोऽप्याशु मुक्ताः सन्तु न चान्यथा॥
अविमुक्ते तव क्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिसिद्धये।
अहं संनिहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु॥
क्षेत्रेऽस्मिन् योऽर्चयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन मां शिव।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
(३। ४—६)

श्रीरामचन्द्रजी बोले—'देवेश! आपके इस क्षेत्र (वाराणसी)के अन्तर्गत किसी भी स्थानमें मरे हुए कृमि-कीटपर्यन्त जीव शीघ्र मुक्त हो जायँ; मेरा यह वरदान अन्यथा नहीं हो सकता। आपके अविमुक्तक्षेत्रमें सबको मुक्ति प्रदान करनेके लिये मैं पाषाण-प्रतिमा आदिमें संनिहित ही रहूँगा। शिव! इस क्षेत्रमें जो मनुष्य भक्तिपूर्वक राम-मन्त्रके द्वारा मेरी पूजा करेगा, मैं उसको ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त कर दूँगा; चिन्ता न करो।'

त्वत्तो वा ब्रह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम्।
जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते॥
मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव॥
(३। ७-८)

'आपसे या ब्रह्मासे जो षडक्षर मन्त्र (श्रीरामाय नमः) प्राप्त करेंगे, वे जीवितावस्थामें ही मन्त्रसिद्ध हो जायँगे और देहान्त होनेपर मुझको प्राप्त करेंगे। अथवा शिव! आप स्वयं जिस-किसी मुमूर्षुके दाहिने कानमें मेरे मन्त्रका उपदेश कर देंगे, वह मुक्त हो जायगा।'

'मुक्तिकोपनिषद्'में लिखा है—

दुराचाररतो वापि मन्नामभजनात् कपे।
सालोक्यमुक्तिमाप्नोति न तु लोकान्तरादिकम्॥
जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे—
येनासावमृतीभूत्वा मोक्षीभवति मानवः॥
पुनरावृत्तिरहितां मुक्तिमाप्नोति मानवः।
यत्र कुत्रापि वा काश्यां मरणे स महेश्वरः॥
जन्तोर्दक्षिणकर्णे तु मत्तारं समुपादिशेत्।
निर्धूताशेषपापौघो मत्सारूप्यं भजत्ययम्॥
(१८-१९, २०-२१)

'हनूमान्! दुराचार-रत व्यक्ति भी यदि मेरे नामका भजन करता है तो वह सालोक्य-मुक्ति प्राप्त करता है; उसे अन्य लोककी प्राप्ति नहीं होती। जीवके प्राणोत्क्रमणके समय काशीमें भगवान् रुद्र उसे तारक ब्रह्म (राम-नाम)का उपदेश करते हैं, जिसके द्वारा जीव अमृतत्वको प्राप्त होकर मुक्त हो जाता है। काशीमें जिस-किसी स्थानमें मृत्युके समय महेश्वर जीवके दाहिने कानमें मेरे तारक ब्रह्मका उपदेश करते हैं, उसके द्वारा सारे पापोंसे मुक्त होकर वह मेरे सारूप्यको प्राप्त होता है।'

हारीतस्मृति—

एतन्मन्त्रमगस्त्यस्तु जप्त्वा रुद्रत्वमाप्तवान्।
ब्रह्मत्वं काश्यपो जप्त्वा कौशिकस्त्वमरेशताम्॥
कार्त्तिकेयो मनुत्वं च इन्द्रार्कौ गिरिनारदौ।
वालखिल्यादिमुनयो देवतात्वं प्रपेदिरे॥
तस्मात् सर्वात्मना रामनामरूपं परं प्रियम्।
मन्त्रं जपेत् सदा श्रीमान् संविहायान्यसाधनम्॥
श्रीरामाय नमो ह्येष तारकब्रह्म उच्यते।
नाम्नां विष्णोः सहस्राणां तुल्य एव महामनुः॥
रामित्येकाक्षरं रामं योगिनः समुपासते।
(३। ३४, ३५, ३९)

''इस मन्त्रका जप करके अगस्त्यमुनि रुद्रके पदको प्राप्त हुए थे, कश्यप ब्रह्माके पदको, कौशिक अमराधिपतित्वको तथा कार्तिकेय, मनु, इन्द्र, सूर्य, पर्वतमुनि, नारद और वालखिल्यादि मुनिगण देवत्वको प्राप्त हुए थे। अतएव बुद्धिमान् मनुष्य अन्य साधनोंको सम्यग्रूपसे त्यागकर सतत रामनामरूपी परमप्रिय मन्त्रको सर्वतोभावेन सदा काय-मन-वचनसे जप करे। 'श्रीरामाय नमः'—यह तारक ब्रह्म कहलाता है, यह महामन्त्र विष्णुसहस्रनामके तुल्य है। 'रां' इस एकाक्षर राम-मन्त्रकी योगीजन सम्यक् उपासना करते हैं।''

रामराम, सीताराम

काहे को बर्बर ओढ़ करो आडंबर अरु, काहे को दिगंबर हो दूब खाय रहिये।
कहै पदमाकर त्यों काया के कलेस हेत, सीकर सभीत सीत वात ताप सहिये॥
काहे को जपो ये जप, काहे को तपो ये तप, काहे को प्रपंच पंच पावक में दहिये।
रैन-दिन आठों जाम राम राम राम राम, सीताराम सीताराम सीताराम कहिये॥

आनँद के कंद, जग जियावन, जगत वंद, दसरथ के नंद के निवाहे ही निबहिये।
कहै पदमाकर त्यों पवित्र पन पालिबे कों, च्यों रे चक्रपानि के चरित्रन को चहिये॥
आनँद बिहारी के विनोदन में वीध, बीध, गीध औ निषाद के गुनानुवाद गहिये।
रैन-दिन आठों जाम राम राम राम राम, सीताराम सीताराम सीताराम कहिये॥

—पद्माकर

रामनामकी महत्ता

(पूज्यपाद योगिराज अनन्तश्री देवरहवा बाबाका उपदेश)

भगवान् श्रीरामकी कथा सभी जानते हैं; लेकिन रामनाम-जपकी क्या महत्ता है, इसे विरले लोग ही जानते हैं। रामनामकी महत्ताके विषयमें जो भी कुछ कहा जाय, वह सब अपूर्ण ही है और होगा। रामनामकी महत्ता इतनी विशाल है कि कोई इसको पूर्णतः वर्णन करनेका दावा नहीं कर सकता। जितना बड़ा यह विस्तृत आकाश है, उससे भी बड़ी इस रामनामकी महिमा है। रामनामकी महत्ताको समझानेके लिये संतोंने एक ही शब्दमें इसकी विशालता बतला दी है। संतलोग कहते हैं कि 'संसारके सातों बड़े-बड़े समुद्रोंको यदि दावात बना दिया जाय और किसी एक ऊँचे पर्वतको कलम बनाकर यदि गणेशजी-ऐसे तेज लिखनेवाले व्यक्तिद्वारा भी रामनामकी महिमा लिखवायी जाय, तो भी इसमें संदेह है कि वे रामनामकी महिमाका सम्पूर्ण वर्णन लिख सकेंगे।'

रामनामकी महिमा इतनी विशाल है कि बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि भी इसका पूर्णतया वर्णन नहीं कर सके। सबने अन्तमें यही कह दिया कि इसके यथार्थ वर्णनमें हमलोग भी असमर्थ ही हैं। चूँकि 'कल्याण'के सम्पादक महोदयने अपने 'रामाङ्क'के लिये कुछ उपदेश माँगा है, इसलिये रामनामकी महिमापर हम अपना नहीं, संत तुलसीदासका ही विचार रखते हैं, जो रामायणमें वर्णित है और सर्वमान्य है। इस रामनाममें केवल दो अक्षर हैं— रकार और मकार। इन दो अक्षरोंकी महिमा अनन्त है। संत तुलसीदास कहते हैं—

आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन जन जिय जोऊ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥
(मानस १ । १९ । १)

'ये दोनों अक्षर उच्चारणमें मधुर तथा देखनेमें भी सुन्दर हैं, स्मरण करनेमें सबको सुलभ और सुखदायक हैं; लोक और परलोक, दोनोंका निर्वाह करनेवाले हैं।' इसकी महिमा शिवजी, गणेशजी तथा वाल्मीकिमुनि ही जानते हैं, जिन्हें इसका साक्षात् अनुभव है और यह नाम भगवान्के हजारों नामके बराबर है—

महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥
जान आदिकबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥
सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेईं पिय संग भवानी॥
(मानस १ । १८ । २-३)

रामनामके जापका ही यह प्रभाव था कि शिवजी निर्भय होकर हलाहल जहर पी गये—

'नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥'
(मानस १ । १८ । ४)

रामनामके जपमें योगी मुनि जागते हैं। उनका सांसारिक जंजालोंसे वैराग्य हो जाता है और नामस्मरणका अनुपम आनन्द मिलता है—

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी॥
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥
(मानस १ । २१ । १)

जो साधक भक्त ईश्वरकी गूढ़ गति जानना चाहते हैं, वे भी केवल रामनामके जपसे ईश्वरके तत्त्वको समझ लेते हैं और इसके प्रभावसे अनेकानेक सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते हैं। संसारके दुःखी प्राणी जो अनेकानेक चिन्ताओंसे व्यग्र हैं; वे भी रामनामके सतत स्मरण और जपसे अपने दुःखोंसे छुटकारा पा जाते हैं—

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ॥
साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥
जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
(मानस १ । २१ । २-२½)

ये तो कही गयीं कुछ दुःखी और कामी भक्तोंके विषयमें। और जो निष्काम भक्ति करनेवाले हैं, तथा अपना कर्तव्य समझकर भगवान्की उपासना करते हैं; वे तो साक्षात् योगी ही हैं—उनके विषयमें भगवद्गीताका श्लोक सुनिये—

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥
(६ । १)

'जो निष्काम भक्ति करता है और बिना इच्छा या फल चाहे करनेयोग्य कर्म करता है; वह ही यथार्थमें संन्यासी और योगी ही है।'

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥
(३ । १९)

'जो निरन्तर कर्तव्य समझकर भगवान्‌की निष्काम भक्ति करता है, ऐसा व्यक्ति तो परमात्माको प्राप्त कर लेता है।' अतएव निष्काम भक्तिकी विशेष महत्ता है। लेकिन रामनाम-स्मरणकी, चाहे वह किसी कामनासे ही क्यों न हो, पूरी महत्ता है और नाम-जप हमारा दैनिक कर्तव्य होना चाहिये। संतोंने यह भी कहा है कि अपने जीवनमें उस दिनको दिन मत गिनिये, जिस दिन आपने भगवान्‌का हृदयसे स्मरण नहीं किया हो।

नामके विषयमें गोस्वामीजी पुनः लिखते हैं—

नाम प्रसाद संभु अबिनासी। साजु अमंगल मंगल रासी॥
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥
नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥
ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥

× × ×

अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥
(मानस १ । २५ । १–४)

अर्थ स्पष्ट है। रामनामका ही यह प्रभाव है कि शिवजी अमङ्गल साज, जैसे श्मशान-भस्म, सर्प एवं व्याघ्र-चर्म धारण किये हुए भी मङ्गलकी राशि माने जाते हैं। शुकदेवजी, सनक आदि अनेकों ऋषि भजनके प्रभावसे ही ब्रह्मसुख भोगते हैं। नारदजी भजनके प्रभावसे ही जगत्पूज्य होनेके अतिरिक्त विष्णु तथा शिवजीके भी प्रिय हैं। प्रह्लादजी नामजपसे भक्तशिरोमणि हो गये। ध्रुवजीने नामजपसे ही ध्रुवलोक प्राप्त किया। अजामिल, गजेन्द्र और गणिका नामकी वेश्या भी भगवान्‌के नामजपके प्रभावसे ही मुक्त हो गयी।

रामनामकी महत्ताका कहाँतक वर्णन किया जाय, जिसके जपमें इतना प्रभाव है कि भगवान् प्रहरी बनकर अपना नाम जपनेवाले भक्तोंकी रक्षा करते हैं। 'सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥' श्रीहनुमान्‌जीने रामका नाम स्मरण करके कठिनसे-कठिन काम किया और भगवान्‌को अपने वशमें कर रखा। उनके अद्भुत कार्योंसे रामायण भरी पड़ी है। संक्षेपमें इतना ही कहना यथार्थ है—

नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥
(मानस १ । २६ । ३-३½)

'इस कराल कलिकालमें इतना ही जानना और मानना पर्याप्त है कि भगवन्नाम-जप एक कल्पवृक्ष है, जिसके द्वारा सभी संकट कट जाते हैं और मनोवाञ्छित फल भी प्राप्त हो जाता है। इस कलियुगमें न कर्म है, न भक्ति या ज्ञान ही है; रामनाम-जप ही एकमात्र आधार है। अतएव अपने दैनिक कर्तव्योंके साथ भगवन्नाम-जपका नियम बना लेना चाहिये। तभी इसका विशेष अनुभव प्राप्त होगा।

(प्रेषक—श्रीरामकृष्णप्रसादजी)

आदर्श सीता और आदर्श वाल्मीकि

(स्वामी श्रीविवेकानन्द)

भगवती सीताका आदर्श—'भारतीय स्त्रियोंको जैसा होना चाहिये, सीता उनके लिये आदर्श हैं। स्त्री-चरित्रके जितने भारतीय आदर्श हैं, वे सब सीताके ही चरित्रसे उत्पन्न हुए हैं और समग्र आर्यावर्त-भूमिमें सहस्रों वर्षोंसे वे आबाल-वृद्ध-वनिताकी पूजा पा रही हैं। महामहिमामयी सीता, स्वयं शुद्धतासे भी शुद्ध, सहिष्णुताका परमोच्च आदर्श सीता सदा इसी भावसे पूजी जायँगी। जिन्होंने बिल्कुल विचलित न होकर ऐसे महादुःखका जीवन व्यतीत किया, वे ही नित्य साध्वी, सदा शुद्ध-स्वभाव सीता, आदर्श पत्नी सीता मनुष्य-लोक, यहाँतक कि देवलोककी भी आदर्श मूर्ति पुण्यचरित्र सीता सदा हमारी जातीय देवी बनी रहेंगी।'

महर्षि वाल्मीकिकी देन—'पिछले समयकी बातोंकी आलोचना करनेपर हम देखते हैं कि इसी समय सारे संसारको आलोड़ित करनेवाले महापुरुषों तथा श्रेष्ठ अवतारोंने जन्म ग्रहण किया।......महर्षि वाल्मीकि इस प्राचीन वीरयुगके आदर्श हैं, जिन्होंने सत्यपरायणता और समग्र नीति-तत्त्वके साकार मूर्तिस्वरूप, आदर्श तनय, आदर्श पति, आदर्श पिता, सर्वोपरि आदर्श राजा रामचन्द्रका चित्रण करके हमारे सम्मुख स्थापित किया है। महाकविने जिस भाषामें रामचरित्रका वर्णन किया है, उसकी अपेक्षा अधिक शुद्ध, मधुर अथवा सरल भाषा हो ही नहीं सकती।'

('भारतमें विवेकानन्द'से संकलित)

श्रीराम-तत्त्व

(एक महात्माका प्रसाद)

उदारता, स्वाधीनता अथवा प्रेम ही जीवन-तत्त्व है। यही वास्तविक मानवता है। उसका मूलस्रोत अनादि, अनन्त श्रीराम-तत्त्व है। इस तथ्यमें अविचल आस्था अनिवार्य है। अनुत्पन्न होनेसे श्रीराम-तत्त्व सदैव सर्वत्र विद्यमान है, अर्थात् अभी है, अपनेमें है और अपना है। अपना होनेसे प्रिय है। प्रियता एक ऐसा अनुपम, अलौकिक, अद्भुत तत्त्व है कि उसका प्राकट्य होनेपर श्रीराम-तत्त्वसे दूरी, भेद और भिन्नता शेष नहीं रहती, अर्थात् मानवको स्वतः योग-बोधक प्रेमकी प्राप्ति होती है। भोग-मोह-आसक्तिकी निवृत्ति तथा योग-बोध-प्रेमकी प्राप्ति मानवमात्रकी अपनी माँग है। माँग उसे नहीं कहते, जो अपनी पूर्तिमें आप समर्थ न हो; कारण, माँग उसीकी होती है, जो अपना जीवन है। जाने हुए असत्के सङ्गसे काम अर्थात् दृश्यका आकर्षण उत्पन्न होता है, जिसके होते ही माँग दब जाती है और अनेक कामनाओंका जन्म हो जाता है। कामनाओंकी उत्पत्ति-पूर्ति-अपूर्तिके कारण मानव पराधीनता, जडता एवं अभावमें आबद्ध हो जाता है; किंतु फिर भी स्वाभाविक माँगका नाश नहीं होता। सत्सङ्गके द्वारा माँग सबल तथा स्थायी हो जाती है। इतना ही नहीं, ज्यों-ज्यों माँग होती है, त्यों-त्यों कामका नाश स्वतः होता जाता है। यह अनन्तका मङ्गलमय विधान है। सर्वांशमें कामका नाश होते ही माँग स्वतः पूरी हो जाती है और फिर प्रियता और प्रेमास्पदका अविनाशी, चिन्मय, रसरूप विहार ही शेष रहता है। यह शरणागत साधकोंका अनुभव-सिद्ध सत्य है।

मानव जन्म-जात साधक है। साधन-तत्त्व उसका जीवन है। असत्के सङ्गसे असाधन उत्पन्न होता है। यह साधकका अपना प्रमाद है, जिसकी निवृत्ति एकमात्र सत्सङ्गसे ही साध्य है। प्रमाद कोई प्राकृतिक पदार्थ नहीं है, अपितु वह मानवकी भूलसे ही उत्पन्न होता है। जो भूलजनित है, उसकी निवृत्ति भूलरहित होनेसे ही होती है। भूलका ज्ञान जिस ज्ञानसे होता है, वह ज्ञान अनन्तका प्रकाश है, जो श्रीराम-कृपासे मानवको नित्य प्राप्त है। प्राप्त ज्ञानका आदर तथा प्राप्त बलका सदुपयोग एवं श्रीराम-तत्त्वमें विकल्परहित आस्था सत्सङ्ग है, जो मानवका अपना स्वधर्म है। स्वधर्मनिष्ठ होते ही असाधनका नाश, साधनकी अभिव्यक्ति तथा साधन और जीवनमें एकता हो जाती है, जिसके होते ही साधकका अस्तित्व साधन-तत्त्वसे भिन्न कुछ नहीं रहता। समस्त साधन साधन-तत्त्वमें विलीन हो जाते हैं। जबतक साधन और असाधनका द्वन्द्व रहता है, तबतक साधक और साधन-तत्त्वमें भिन्नता रहती है। सर्वांशमें असाधनका नाश होते ही साधकका अस्तित्व साधनसे भिन्न कुछ नहीं रहता, अर्थात् अखण्ड स्मृति, अगाध प्रियता एवं नित्य जागृति ही शेष रहती है, जो वास्तविक जीवन है।

यह सर्वमान्य सत्य है कि दृश्यका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है, अपितु उसके उत्पत्ति-विनाशका क्रम है। जिसकी स्थिति नहीं है, उसके अस्तित्वमें आस्था रखना भूल है। इस दृष्टिसे अनुत्पन्न हुए तत्त्वमें ही आस्था-श्रद्धा-विश्वास करना चाहिये। उत्पत्तिका आधार, प्रतीतिका प्रकाशक, अनादि, अनन्त श्रीराम-तत्त्व ही है। आस्था-श्रद्धा-विश्वास-पूर्वक श्रीराम-तत्त्वसे आत्मीय सम्बन्ध स्वीकार करना तथा ज्ञानपूर्वक दृश्यसे असङ्ग होना एवं निर्मम, निष्काम होकर प्राप्त बलका सदुपयोग करना जीवनका सत्य है। सत्यको स्वीकार करनेसे ही मानवका सर्वतोमुखी विकास होता है। आत्मीयतासे ही अखण्ड स्मृति तथा अगाध प्रियता उदित होती है, जिसके साथ ही साधक साधन-तत्त्वसे अभिन्न हो जाता है अर्थात् मानवका अस्तित्व अगाध प्रियतासे भिन्न कुछ नहीं रहता। स्वप्रियताका ही विवेकात्मक रूप स्वाधीनता एवं क्रियात्मक रूप उदारता है। उदारतासे जीवन जगत्के लिये और स्वाधीनतासे अपने लिये एवं प्रियतासे प्रभुके लिये उपयोगी होता है। उदारता, स्वाधीनता और प्रेम श्रीराम-तत्त्वकी ही महिमा एवं मानवके विकासकी चरम सीमा है। महामहिम श्रीराम-तत्त्वके अस्तित्व और महत्त्वको स्वीकार करना प्रत्येक सजग मानवके लिये अनिवार्य है। स्वीकृति कोई अभ्यास नहीं है, अपितु अविचल विश्वास है। विश्वाससे सम्बन्ध सजीव होता है और सम्बन्धसे स्मृति तथा प्रियता उदय होती है। श्रीराम-तत्त्व साध्य-तत्त्व है। मानव साधक है। साध्यकी अगाध प्रियता ही साधकका स्वरूप है। इस दृष्टिसे साधक और साध्य अर्थात् प्रेमी और प्रेमास्पदका नित्य विहार ही श्रीसीतारामतत्त्व है।

मिथिलामें श्रीरामका श्रीसीताजीसे प्रथम मिलन

[विभिन्न कल्पोंके कवियोंकी कमनीय भावनाएँ]

(लेखक—पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

जुग जुगमें अवतार लेहिं रघुबंस बिभूषन ।
ते अपराधी अधम लखें लीलनि महँ दूषन ॥
कल्प भेद ते कबहुँ करें कछु लीला स्वामी ।
सब लीला तिन रूप करें जो अंतरजामी ॥
जब जस चाहैं भक्तगन, तब तैसेई प्रभु बनैं ।
जाकूँ देवें बुद्धि जस, तब तैसेई कबि भनैं ॥

श्रीसीतारामका चरित जन-जनके अन्तःकरणमें व्याप्त हो गया है। श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रपर जितना साहित्य निर्माण हुआ है, उतना स्यात् ही किसी नायकपर हुआ हो। भगवान् वाल्मीकि महामुनिद्वारा निर्मित ग्रन्थ ही **'शतकोटिप्रविस्तरम्'** माना जाता है, फिर अन्य कवियोंकी तो कथा ही क्या है।

राम सबके हैं। वे किसी एकके नहीं। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'** (४।११) (जो मुझे जिस भावसे भजता है, मैं भी उसे उसी भावसे भजता हूँ।) इसलिये अपनी-अपनी भावनाके अनुसार श्रीसीतारामजीके चरित्र भी भिन्न-भिन्न हैं। मैंने सुना है, धोबियोंके लोकगीतोंमें आता है, सीताजी गोदावरीके किनारे कपड़े धो रही थीं। वहीं रावण आया और सीताजीको ले गया। वनमें रहनेवाले कोल-भील आदि वनवासी जातियोंके लोकगीतोंमें भी रामचरित गाया जाता है। उनमें सीताजीके परित्यागका बहुत ही मर्मस्पर्शी वर्णन है। इसी प्रकार श्रीरामचन्द्रके चरित्रका भिन्न-भिन्न कवियोंने भिन्न-भिन्न प्रकारसे वर्णन किया है और कल्पभेदसे वे सभी सत्य हैं। यहाँपर हम एक ही प्रसङ्गके कुछ अंशको भिन्न-भिन्न कवियोंकी भावनाके आधारपर वर्णन करेंगे। इसीसे पाठक समझ जायँगे कि सबके वर्णन करनेकी शैली कितनी पृथक्-पृथक् है। वह प्रसङ्ग है, मिथिलामें श्रीसीताजी और श्रीरामजीका सर्व-प्रथम-मिलन कहाँ और कैसे हुआ ?

(१) प्रथम वाल्मीकि-रामायणको लीजिये। वाल्मीकिजीकी सीताजी छः वर्षकी हैं। वे लौकिक बातें नहीं जानतीं। सुन्दरताकी तो मूर्ति ही हैं। सीताजीका स्वयंवर नहीं था, महाराज जनक कोई धर्मयज्ञ कर रहे थे। उसमें राम-लक्ष्मणजीको लिये हुए विश्वामित्रजी पहुँच गये। ऋषियोंने रामजीको न तो विवाहका ही लालच दिया, न सीताजीके ही सम्बन्धमें कुछ कहा। हाँ, शिवजीके धनुषकी बड़ी प्रशंसा की। क्षत्रिय-कुमार होनेके कारण श्रीरामचन्द्रजीके अंदर उसे देखनेकी उत्कण्ठाका होना स्वाभाविक था। मिथिला पहुँचनेपर महाराज जनकने महर्षि विश्वामित्रका स्वागत-सत्कार किया। दूसरे दिन सत्कारपूर्वक उन्हें अपने महलोंमें बुलाया और कहा—'भगवन् ! मेरे योग्य कोई आज्ञा हो तो बताइये।'

इसपर विश्वामित्रजीने इतना ही कहा—'राजन् ! ये दोनों बालक दशरथजीके पुत्र हैं, दोनों लोकविख्यात क्षत्रियवीर हैं। तुम्हारे यहाँ जो श्रेष्ठ धनुष है, उसे देखनेकी इन दोनोंकी बड़ी इच्छा है। उस धनुषको इन्हें दिखलवा दीजिये। उसे देखकर ये संतुष्ट हो जायँगे।' जनकजीने वहीं धनुषको मँगाकर दिखा दिया और कह दिया—'राम यदि इस धनुषकी डोरीको चढ़ा देंगे तो मैं अपनी कन्या इन्हें दे दूँगा।' श्रीरामने धनुषको चढ़ाया ही नहीं, तोड़ भी दिया। दशरथजीको समाचार दिया गया। वे बरात सजाकर आये। व्याहके सब साज सजाये गये। जब विवाह-वेदीपर श्रीरामजी आये, तब सर्वप्रथम श्रीसीता और श्रीरामका साक्षात्कार हुआ। (श्रीवा० बा० का०)

(२) अध्यात्मरामायणमें भी उनका स्वयंवर नहीं रचाया गया। राजाके यहाँ एक विशाल धर्मयज्ञ था। उसमें विश्वामित्रजी आये और जनकजीसे कहा—'हमने सुना है, तुम्हारे यहाँ कोई बड़ा विशाल शिवजीका धनुष है। ये राम उसे देखना चाहते हैं, देखकर लौट जायँगे।'

राजाने मन्त्रियोंसे कहकर धनुष मँगवा दिया। मन्त्रीजन धनुष लेने चले गये। तब राजाने धीरेसे विश्वामित्रजीसे कह दिया—'यदि राम धनुषपर डोरी चढ़ा देंगे तो मैं अपनी पुत्री सीताका विवाह उनके ही साथ कर दूँगा।' रामजीने खेल-ही-खेलमें धनुषको उठाकर चढ़ा दिया और उसके दो टुकड़े कर दिये। अब जब यह समाचार रनिवासमें पहुँचा, तब सीताके हर्षका तो ठिकाना ही नहीं रहा। वे सभी

अलंकारोंसे अलंकृत होकर, अपने दाहिने हाथमें सुवर्णमयी बहुमूल्य माला लेकर मन्द-मन्द मुस्कराती हुई श्रीरामचन्द्रजीके समीप आयीं। उनका वर्ण सुवर्णके सदृश था; वे मुक्ताहार, कर्णफूल और पायजेब आदि बहुमूल्य आभूषणोंसे विभूषिता थीं तथा शरीरपर बहुमूल्य अत्युत्तम साड़ी पहने हुए थीं। सीताजीने बड़ी ही सरलतासे विनम्रतापूर्वक मन्द-मन्द मुस्कराते हुए वह जयमाला श्रीरामजीके गलेमें डाल दी।

यहाँ सर्वप्रथम भेंट धनुष-भङ्गके पश्चात् विवाह होनेके पूर्व ही हो गयी। दोनों ही सयाने थे। अतः उस प्रथम-मिलनमें दोनोंको कितनी प्रसन्नता हुई होगी; यह अवर्णनीय है।

(३) आनन्दरामायणकारने श्रीराम और श्रीसीताका अपूर्व मिलन कराया है। आनन्दरामायणमें नियमानुसार सीताजीका स्वयंवर रचा गया है। देश-विदेशसे सहस्रों राजा-राजकुमार आये हैं। विश्वामित्रजी भी राम-लक्ष्मणको लेकर एक आमके बगीचेमें ठहरे हैं। वहाँ विश्वामित्रजी अपने एक शिष्यसे चुपके-चुपके महाराज जनकको संदेश भेजते हैं—'मैं सीता-उर्मिलाके विवाहके लिये राम-लक्ष्मणको लाया हूँ; उनका तुम वरकी भाँति स्वागत करो।' राजाने वही किया। हाथियोंपर बैठाकर उनकी शोभायात्रा निकाली। इससे अन्य राजाओंको संदेह हुआ कि 'हमारा तो ऐसा स्वागत नहीं किया गया। कहीं जनकने चुपकेसे सीताको रामके लिये दे तो नहीं दिया?'

स्वयंवर-सभा लगती है। राजा अपना प्रण सुनाते हैं। राजा-राजकुमार धनुषको उठानेका प्रयत्न करते हैं, परंतु वह नहीं उठता। रावणसे भी नहीं उठता। रावण धनुषके उलट जानेसे उसके नीचे दब जाता है, मरणासन्न हो जाता है। वह मर जायगा, यह सोचकर जनकजी कहते हैं—'इस सभामें एक भी ऐसा वीर नहीं, जो रावणके प्राण बचा सके?' तब गुरुकी आज्ञासे श्रीरामजी जाकर रावणको बचाते हैं। तभी सीताजी रामजीके दर्शन करती हैं। धनुष-भङ्गके पूर्व ही दिव्य महलकी छतपर सीताजी वस्त्रालंकारोंसे सुसज्जित होकर आती हैं। श्रीरामचन्द्रजीकी लोकाभिराम छविको देखकर सीताजीके सम्पूर्ण शरीरमें स्वेद चूने लगता है। वे हड़बड़ाकर अपने आसनसे उठकर अपनी सखी तुलसीके गलेमें हाथ डालकर कहती हैं—'कहाँ ये कोमलाङ्ग सुकुमार राजकुमार और कहाँ पर्वतके सदृश कठोर यह धनुष! ये इसे कैसे चढ़ा सकेंगे? ये चढ़ा सकें या न चढ़ा सकें, मैं तो श्रीरामको छोड़कर किसी अन्यसे विवाह करूँगी ही नहीं। हे शम्भो! हे विधे! मैं आप सबसे अञ्चल पसारकर भीख माँगती हूँ, विनय करती हूँ कि आप सब इस धनुषको फूलके समान हल्का कर दें। श्रीरामजीके भुजदण्डोंमें प्रवेश करके उन्हें अमित बल प्रदान करें, जिससे श्रीराम धनुषको चढ़ा सकें और मैं उनकी अनुगामिनी बनकर मुनिव्रत धारण करके दस वर्षोंतक उनके साथ वनोंमें भ्रमण कर सकूँ।'

यहाँ सीताजीने तो सर्वप्रथम धनुषभङ्गके पूर्व ही श्रीरामको देख लिया; किंतु श्रीरामजीने श्रीसीताजीको धनुष-भङ्गके अनन्तर ही देखा। वह दर्शन भी अनिर्वचनीय ही हुआ।

श्रीरामने सहज भावसे धनुष तोड़ दिया। अब सीताजीके आनन्दका क्या कहना। उनका समस्त शरीर रोमाञ्चित हो गया। उन्हें बड़ी उत्कण्ठा हो रही थी, कब जाकर मैं अपने हृदयसर्वस्व प्राणनाथजीसे मिलूँ। वे अपलक भावसे—निर्निमेष दृष्टिसे एकटक श्रीरामको ही निहार रही थीं। तभी महाराज जनकका संदेश आया—'श्रीरामको जयमाल पहनाने सीता मण्डपमें आयें।' भावोद्रेकमें भरी सीताने सर्वप्रथम अपनी माताके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर सखियोंसे घिरी हुई हथिनीपर बैठकर सभा-मण्डपकी ओर चलीं। श्रीसीताजीकी इस प्रथम-मिलनकी शुभ-यात्राका कविने जैसा सजीव वर्णन किया है, वह अपूर्व है। मण्डपमें पहुँचनेपर वे हथिनीसे उतारी गयीं। फिर लजाती हुई मन्द-मन्द गतिसे श्रीरामके समीप गयीं तथा उनके कण्ठमें उन्होंने जयमाल पहना दी। उन्होंने श्रीरामके अरुण-वर्ण युगल चरणोंमें अपना सिर रखकर प्रणाम किया और फिर लजाती हुई नीचेकी ओर निहारती हुई वहीं खड़ी रहीं।

अब श्रीरामजीकी पारी थी। उन्होंने भी बहुमूल्य वस्त्रालंकारोंसे अलंकृत सुवर्णवर्णा निर्दोषा सीताको लजाते हुए निहारा। फिर तुरंत लज्जावश गुरुके समीप चले गये। कृतज्ञतासे भरे हृदयसे उन्होंने गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया।

सीताजी वहीं ठिठकी हुई खड़ी थीं। वे किंकर्तव्यविमूढ़ा बनी हुई थीं। हृदय रामको छोड़कर जाना नहीं चाहता था। वे निर्णय न कर सकीं; अब मुझे क्या करना चाहिये। उसी समय महाराज जनक अपनी प्यारी पुत्रीके पास पहुँचे

और उसे अपने साथ ले जाकर सुवर्ण-सिंहासनपर श्रीरामको गोदमें बिठाये हुए बैठे विश्वामित्रजीकी गोदमें बिठा दिया । अहा ! कैसा अपूर्व मिलन था । दोनोंने गुरुकी गोदमें बैठे-ही-बैठे एक-दूसरेको तृप्तिपूर्वक जी-भरके देख लिया । इतनी मर्यादाके साथ मिलन हुआ कि कुछ कहा नहीं जा सका । (आ० रा०, सारकाण्ड, सर्ग ४३-५)

(४) हमने भी अपनी 'भागवती-कथा'में श्रीराम-चरितका वर्णन किया है । हमारे श्रीरामजीकी श्रीसीताजीसे सर्व-प्रथम भेंट न तो विवाह-मण्डपमें ही हुई, न सभामण्डपमें, न महलकी छतपर और न पुष्पवाटिकामें ही । हमारे राम तो जिस दिन जनकपुर पहुँचे, उसके दूसरे ही दिन महाराजके राजमहलमें जनकजीकी राजमहिषीके सम्मुख श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीकी प्रथम भेंट हुई ।

राम-लक्ष्मणको लिये हुए विश्वामित्र मिथिला पहुँच गये । जनकजीने उनका यथोचित स्वागत-सत्कार किया । श्रीराम-लक्ष्मणके सौन्दर्यकी मिथिला नगरमें धूम मच गयी । सीताजीकी माताने भी उसके विषयमें सुना । वे महाराज जनकसे बोलीं—'प्राणनाथ ! भगवान् विश्वामित्रकी कथा मैं चिरकालसे सुनती आ रही हूँ । सुनते हैं, वे क्षत्रियसे ब्राह्मण हो गये । एक ही जन्ममें घोर तपस्याके द्वारा वर्णका विपर्यय होना, यह तो असम्भव कार्य है । मेरी भी उन मुनिके दर्शनोंकी बड़ी इच्छा है और साथ ही इसी मिससे मैं उनके साथ श्रीरामके भी भलीभाँति दर्शन कर लूँगी । यदि आप उन्हें किसी प्रकार अन्तःपुरमें बुला सकें, तब तो मेरी मनःकामना पूर्ण हो सके ।'

राजा बोले—'प्रिये ! वे बहुत बड़े महर्षि हैं; मेरा साहस तो नहीं होता । तुम शतानन्दजीको उनके समीप भेजो । यदि वे इस प्रार्थनाको स्वीकार कर लें, तब तो मेरा महल पवित्र हो जायगा । मैं कृतार्थ हो जाऊँगा ।'

रानीने तुरंत अपने कुल-पुरोहित गौतमजीके पुत्र शतानन्दजीको बुलाकर और उनको विश्वामित्रसे श्रीराम-लक्ष्मणके सहित महलोंमें पधारनेकी प्रार्थना करनेके लिये कहा । रानीके कहनेसे शतानन्दजी तुरंत वहाँ गये ।

जनकनन्दिनी सीताने भी पिताके मुखसे श्रीरामके अपार सौन्दर्य और लोकाभिराम रूपकी बात सुनी तो मनमें श्रीरामके प्रति स्वाभाविक अनुराग हो गया । उन्हें ऐसा लगा, मानो उन्हें खोयी हुई वस्तु मिलनेवाली है, उसके हृदयका धन प्राप्त होनेवाला है ।

शतानन्दजीने वहाँ पहुँचकर कहा—'मुनिवर ! मेरी एक प्रार्थना है । महाराज जनककी रानी आपका दर्शन करना चाहती हैं । यदि आप उनके रनिवासमें पधारनेकी कृपा करें तो सबके नेत्र सफल हो जायँ ।' फिर शतानन्दजी बोले—'भगवान् कल प्रसाद वहीं पायें और उचित समझें तो राम-लक्ष्मणको भी लेते आयें ।'

हँसकर मुनि बोले—'अजी ! मैं इन्हें कैसे छोड़ सकता हूँ । ये तो मेरे हृदयके हार हैं ।'

यह सुनकर शतानन्दजी परम प्रसन्न हुए और रानीके समीप जाकर सब समाचार कह सुनाया । रानीके हर्षका ठिकाना नहीं रहा । उसने तुरंत सेवकोंको आज्ञा दी कि 'महलोंको इस प्रकार सजाया जाय, जैसे पहले कभी न सजाया गया हो ।' सेवकोंने रानीकी आज्ञाका पालन किया । योगमाया-शक्तिने समस्त सिद्धियों तथा ऋद्धियोंको आज्ञा दी । उन्होंने इन्द्रकी अमरावतीसे बढ़कर राजाके महलको बना दिया ।

प्रातःकाल हुआ । महारानीने आज अपनी प्यारी-दुलारी सीताको उबटन लगाकर विधिवत् महौषधि—दिव्यौषधियोंके जलोंसे स्नान कराया । विविध प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे उन्हें सजाया ।

मुनिको लानेके लिये महाराजने दिव्य रथ भेजा । मुनि राम-लक्ष्मणको साथ लेकर रथसे पहुँचे । द्वारपर महाराजने मुनिका स्वागत किया । वे राम-लक्ष्मणके सहित मुनिको भीतर ले गये । राजा आगे-आगे मार्ग दिखला रहे थे । मुनिके दायें-बायें राम-लक्ष्मण चल रहे थे । राम आज गम्भीर हो गये थे । उनका संकोची स्वभाव न जानें क्यों आज पराकाष्ठापर पहुँच गया था । आज वे बोलते ही न थे ।

राजाने मुनिको ले जाकर रानीके महलमें बिठा दिया और वे बाहर चले गये ।

रानीने सीताजीके साथ आकर लजाते हुए मुनिके पैर पकड़े और सीताजीसे भी प्रणाम करनेका आग्रह किया । लज्जाके कारण अपने शरीरमें सिमिटी-सी सीताने वस्त्रोंको सँभालकर मुनिके पैर छूए । उसी समय उनकी चोटीसे एक फूल गिरकर मुनिके पैरोंपर गिर पड़ा । मुनिने उसे उठाया और हँसते हुए रामसे कहा—'राम ! देखो, कैसा सुन्दर टटका सुगन्धित सुमन है । इसे सूँघो तो सही ।' गुरुके पैरोंपर चढ़े फूलको राम सादर सिरपर कैसे न चढ़ाते । उन्होंने सुमनको

मुनिके हाथसे ले लिया और सूँघने लगे। प्रणाम करके जाती हुई सीताने अपने नयनोंको तरेरकर एक रहस्यभरी दृष्टिसे रामको देखा। रामने भी गुरुकी दृष्टि बचाकर चित्र निहारनेके मिससे सीताके अनवद्य सौन्दर्यको एक बार देखा। दोनोंका ही मन खो गया।

मुनि एक ऊँचे आसनपर बैठे थे। उनके अगल-बगलमें श्रीराम-लक्ष्मण तो आज साक्षी थे। सामने जनकपत्नी बैठी थीं। उन्होंने मुनिसे पूछा—'भगवन्! ये दोनों कुमार कौन हैं?

मुनिने लक्ष्मणसे कहा—'क्यों भाई! तुमलोगोंने महारानीको प्रणाम नहीं किया?'

गुरुकी बात सुनकर लजाते हुए धनुष-वाण रखकर राम-लक्ष्मण उठे और उन्होंने महारानीको प्रणाम किया। महारानीने दोनोंको गोदमें बैठा लिया, उनका सिर सूँघा और आशीर्वाद दिया।

सीताजीने साहस करके एक बार फिर श्रीरामको देखा। वे अपलक उनके मुखचन्द्रकी सुधाका पान कर रही थीं कि रामने भी दृष्टि बचाकर उनकी ओर देखा।

रानीने कहा—'भगवन्! आप इन इतने सुकुमार बच्चोंको इनके माता-पिताके समीपसे क्यों ले आये हैं?' मुनिने कहा—'मैं इन्हें शक्तिमान् बनानेके लिये लाया हूँ। बिना कष्ट सहे शक्तिकी प्राप्ति नहीं होती। सहिष्णु ही शक्तिको प्राप्त करता है।' यह सुनकर रानी प्रसन्न हुईं। रानीने स्वयं लाकर सोने-चाँदीके थालों और कटोरियोंमें भाँति-भाँतिके व्यञ्जन परोसे। सीताजी दासियोंकी सहायतासे वस्तुओंको लाकर अपनी माताको देती जाती थीं। माता उन्हें यथाक्रम सम्मुख रखती जाती थीं। भोजन करना आरम्भ हुआ। परंतु रामका मन खो गया था। वे चकित-से हुए इधर-उधर देख रहे थे।

रानी विश्वामित्रसे धनुषके सम्बन्धमें बातें कर रही थीं। उसी समय उन्होंने सीताजीसे कहा—'बेटी! जा, पूरी परोस दे।'

सीताजी सकपकायीं। उन्होंने जानेमें आना-कानी की, किंतु माताने प्रेमपूर्वक आग्रह किया। अब क्या करतीं सीताजी। पूरियोंका छोटा-सा पात्र लेकर उन्होंने दो पूरियाँ मुनिके सम्मुख रखीं। मना करते रहनेपर भी दो लक्ष्मणजीके थालमें रखीं। अब वे श्रीरामके सम्मुख जा पहुँचीं। रामने जहाँ दृष्टि उठाकर देखा और दृष्टिसे दृष्टि मिली कि जनकनन्दिनी स्तब्ध रह गयीं; तदाकार अचल प्रतिमाके समान बन गयीं। हाथसे पूरियोंका पात्र गिरना ही चाहता था कि दौड़कर रानीने उसे पकड़ लिया।

भोजन समाप्त हुआ। मुख-शुद्धिके अनन्तर माताने मुनिके पैर छूनेके लिये सीताजीको बुलाया। वे नहीं आयीं, तब माँ उन्हें पकड़कर लायीं। सीताजीने मुनिके पैर छूए और सकुचाकर भीतर चली गयीं।

मुनि श्रीराम-लक्ष्मणको लेकर रथपर चढ़कर चले गये। श्रीराम शरीरसे तो मुनिके साथ गये, किंतु उनका मन हठपूर्वक महलोंमें ही मँडराता रहा।

इसी प्रकार बँगला, उड़िया, तेलुगु आदिकी अनेक रामायणोंमें इस प्रसङ्गका भिन्न-भिन्न भाँतिसे वर्णन किया गया है। स्थल-संकोचसे हम यहाँ उन सबका उल्लेख नहीं कर सकते।

भगवान् श्रीरामचन्द्र—सर्वमान्यआदर्श

(परमपूज्य गुरुजी श्रीमाधवराव सदाशिवराव गोलवलकर)

सम्पूर्ण भारतीय समाजके लिये समान आदर्शके रूपमें भगवान् रामचन्द्रको उत्तरसे लेकर दक्षिणतक सब लोगोंने स्वीकार किया है। उत्तरमें गुरुगोविन्दसिंहजीने रामकथा लिखी है, पूर्वकी ओर 'कृत्तिवास-रामायण' चलती है, महाराष्ट्रमें 'भावार्थरामायण' चलती है, हिंदीमें गोस्वामीजीकी रामायण 'श्रीरामचरितमानस' सर्वत्र प्रसिद्ध है ही। सुदूर दक्षिणमें महाकवि कम्बनद्वारा लिखित 'कम्बरामायणम्' अत्यन्त भक्तिपूर्ण सरस ग्रन्थ है। मनुष्यके जीवनमें आनेवाले सभी सम्बन्धोंको पूर्ण एवं उत्तमरूपसे निभानेकी शिक्षा देनेवाला प्रभु रामचन्द्रके चरित्रके समान दूसरा कोई चरित्र नहीं है। उनका पराक्रम समग्र भारतकी एकताका प्रत्यक्ष चित्र है। आदिकविने उनके सम्बन्धमें कहा है कि वे गाम्भीर्यमें समुद्रके समान और धैर्यमें हिमाचलके समान हैं—'समुद्र इव गाम्भीर्ये, धैर्येण हिमवानिव।' इस प्रकारके शब्दोंका प्रयोग करके मानो उन्होंने हम सबके सामने वह बात रखी कि आसेतु-हिमाचल भारतके लिये प्रभु श्रीराम ही आदर्श हैं। उत्तरसे लेकर दक्षिणतक भिन्न-भिन्न भाषाओंके सभी महाकवियोंने इस आदर्शको स्वीकार करके तथा उस महापुरुषके चरित्रका गान करके हमलोगोंको धर्मके मार्गपर चलनेके लिये प्रेरित किया है।

श्रीरामकी भक्तवत्सलता

(लेखक—अनन्तश्री स्वामी भजनानन्दजी सरस्वती महाराज)

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी शरणागतभक्तवत्सलताके विषयमें जितना भी कहा जाय, थोड़ा है; क्योंकि भगवान् शंकर स्वयं माता पार्वतीसे कहते हैं—

'राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी । मत हमार अस सुनहु भवानी ॥'
(मानस १ । १२० । १½)

जिन भगवान् शंकरके डमरूसे चौदह सूत्र निकले, जिनके आधारपर संस्कृतका व्याकरण बना, वे ही भगवान् शंकर रामचन्द्रजी महाराजको 'अतर्क्य' बतला रहे हैं। पृथ्वीके कण कोई गिन सकता है, लेकिन भगवान् रामचन्द्रजीके गुण नहीं गिने जा सकते। सभी सज्जन अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार भगवान्का गुणानुवाद गाते हैं—

'आदि अंत कोउ जासु न पावा । मति अनुमानि निगम अस गावा ॥'
(मानस १ । ११७ । २)

उन श्रीभगवान्के अनन्त गुणोंमें 'शरणागतवत्सलता' भी एक महान् गुण है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका आश्रय जिस-किसीने भी लिया, उसको दूसरेका आश्रय नहीं लेना पड़ा है। 'हनुमन्नाटक'में भी कहा है—'द्विःस्थापयति नाश्रितान्' (श्लोक ४८) अर्थात् 'रामचन्द्र आश्रितोंको दो बार स्थापित नहीं करते, एक ही बारमें अभय कर देते हैं।' उदाहरणार्थ, बहुत बड़ी गहरी और चौड़ी नदीमें कोई प्राणी बहता हुआ जा रहा हो और उस नदीमें एक ऐसी लहर आये कि जिससे वह प्राणी नदीके किनारे आ जाय और उस किनारेपर उगी हुई एक घासको पकड़ ले तो वह घास दो काम करेगी—या तो उस बहते हुए प्राणीको निकाल लेगी या टूट गयी तो स्वयं बहते प्राणीके साथ ही बहकर चल देगी। संतशिरोमणि भक्तप्रवर गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने कहा है—

तुलसी तृन जल कूल को, निर्बल निपट निकाज ।
कै राखै कै सँग चलै, बाँह गहे की लाज ॥

इस संसाररूपी नदीमें यह प्राणी बह रहा है। जो भी प्राणी भगवान्का सहारा ले लेगा, वह संसार-सागरसे पार हो जायगा। जब रावणने विभीषणको लात मारकर लंकासे निकाल दिया, तब विभीषण भगवान् रामकी शरणमें गया। भगवान्ने तुरंत ही 'कहु लंकेस' कहकर उसे लङ्काका राजा बना दिया तथा सभी प्रकारसे विभीषणकी रक्षा की। भगवान्ने कहा भी है—

'जौं सभीत आवा सरनाईं । रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं ॥'
(मानस ५ । ४३ । ४)

भगवान्ने 'प्रान की नाईं' कहा ही नहीं, अपितु किया भी वही। रावणने विभीषणको मारनेके लिये जब शक्ति चलायी, तब भगवान्ने विभीषणको पीछे कर दिया और स्वयं उस शक्तिकी चोटको अपने ऊपर ले लिया। गोस्वामी तुलसीदासने लिखा है—

आवत देखि सक्ति अति घोरा । प्रनतारति भंजन पन मोरा ॥
तुरत बिभीषन पाछें मेला । सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला ॥
(मानस ६ । ९३ । १)

जिस शक्तिसे रामको भी थोड़ी देरके लिये मूर्च्छा आ गयी, वही यदि विभीषणके लग जाती तो उनकी क्या दशा होती ? यह है भगवान्की शरणागतवत्सलता।

जिस समय मेघनादकी शक्तिसे मूर्च्छित लक्ष्मण भगवान् रामकी गोदमें लेटे हुए हैं, भगवान्के नेत्रोंसे अश्रुधारा लक्ष्मणके वक्षःस्थलपर गिर रही है, उस समय भगवान् क्या कह रहे हैं, इस स्थानपर द्रष्टव्य है—

मोपै तौ न कछू ह्वै आई ।
और निबाहि भली बिधि भायप चल्यौ लखन-सो भाई ॥ १ ॥
पुर, पितु-मातु, सकल सुख परिहरि जेहि बन-बिपति बँटाई ।
ता सँग हौं सुरलोक सोक तजि सक्यो न प्रान पठाई ॥ २ ॥
जानत हौं या उर कठोर तें कुलिस कठिनता पाई ।
सुमिरि सनेह सुमित्रा-सुत को दरकि दरार न जाई ॥ ३ ॥
तात-मरन, तिय-हरन, गीध-बध, भुज दाहिनी गँवाई ।
तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहि कालिमा लाई ॥ ४ ॥
(गीतावली, लङ्का० ६)

जिस समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी गोदमें लक्ष्मणजी मूर्च्छित होकर लेटे हुए हैं, उस समय भगवान् कह रहे हैं—

मेरो सब पुरुषारथ थाको ।
बिपति बँटावन बंधु-बाहु बिनु करौं भरोसो काको ॥

सुनु, सुग्रीव ! साँचेहूँ मो पर फेर्‌यौ बदन बिधाता ।
ऐसे समय समर-संकट हौं तज्यौ लखन-सो भ्राता ॥
गिरि, कानन जैहैं साखामृग, हौं पुनि अनुज-सँघाती ।
ह्वै है कहा बिभीषन की गति, रही सोच भरि छाती ॥
(वही, लंका० ६ । १-३)

शरणागतवत्सल भगवान् श्रीरामको बार-बार विभीषणका ही स्मरण हो रहा है—

तात को सोच न मातु को सोच न सोच अवध के राज गये को।
पंचवटी बन माँझ कुटी नहिं सोच जटायू के पंख जरे को ॥
लछिमन कें उर सक्ति लगी, नहिं सोच है रावन सीय हरे को ।
बारहिं बार कहैं रघुनाथ, मोहि सोच बिभीषन बाँह गहे को ॥

भगवान् जिसको एक बार आश्रय दे देते हैं, उसको फिर त्यागते नहीं—

तुलसी अजहूँ राम भजु, छाँड़ि कपट-छल छाँह ।
सरनागत की राम ने, कब नहिं पकरी बाँह ॥
जौ कहुँ बाँह सपूत की, धोखेहूँ छुइ जाय ।
आपु निबाहै जनम भरि, लरिकन सौं कहि जाय ॥
ससि कलंक, भृगु-लात हरि, बडवानलहि समुद्र ।
ग्रहन किएँ त्यागत नहीं, महाघोर बिष रुद्र ॥

अभिप्राय यह है कि भगवान्‌की शरणागतिमें जीव अविनाशी शान्तिको प्राप्त करता है । श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने एक बात बड़ी अच्छी लिखी है—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥
(१८ । ६२)

'हे भारत ! सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो; उस परमात्माकी कृपासे ही परम शान्तिको और सनातन परमधामको प्राप्त होगा ।'

एक घटना और है, जो अनेक महात्माओंसे सुनी है । विभीषण लङ्कासे भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके साथ अयोध्या आये । कुछ समय अयोध्यामें रहकर पुनः लङ्काके लिये वापस हुए । रास्तेमें एक ब्राह्मणसे विभीषणका पैर छू गया और उस ब्राह्मणकी मृत्यु हो गयी । वहाँकी अदालतने विभीषणको सूलीकी आज्ञा दे दी । विभीषणसे सूलीपर चढ़ानेसे पहले पूछा गया कि 'तुम क्या चाहते हो ।' विभीषणने कहा कि 'मैं राजा रामचन्द्रजीके दर्शन करना चाहता हूँ ।' उस समय भगवान् रामचन्द्रका सारे संसारपर राज्य हो चुका था—'पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका ।'

जिस राज्यमें विभीषणकी लात लगनेसे विभीषणको मृत्यु-दण्डकी आज्ञा हुई, वह राज्य भी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके राज्यके अन्तर्गत ही था । उस राज्यके राजाने सोचा कि इसी भाँति भगवान् रामचन्द्रके दर्शन हो जायँगे । उसने भगवान् श्रीरामचन्द्रको आदरपूर्वक निमन्त्रित किया । भगवान्‌ने पधारकर कहा—'आपने मुझे कैसे स्मरण किया ?' उस राजाने कहा—'विभीषणकी लातसे एक ब्राह्मणकी मृत्यु हो गयी है । यहाँके नियमानुसार विभीषणको सूलीपर चढ़नेकी आज्ञा दी गयी है । उसीने आपको स्मरण किया है, जिसके कारण आपको कष्ट दिया गया है ।'

शरणागतवत्सल भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि 'आपके राजाने विभीषणको सूलीपर चढ़नेका आदेश दिया है और हमने विभीषणको यह कहकर लङ्काको भेजा है—

करेहु कल्प भरि राज तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माहिं ।
पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं ॥
(मानस ६ । ११६ घ)

अब तो ऐसा उपाय होना चाहिये कि जिससे आपकी आज्ञा भी भङ्ग न हो और मैंने जो कहा है, उसका भी निर्वाह हो जाय । भक्तके अपराधको मैं अपना अपराध समझता हूँ; इसलिये विभीषणको सूलीपर न चढ़ाया जाय, अपितु मुझे चढ़ाया जाय ।

भक्तापराधे सर्वत्र स्वामिनो दण्ड इष्यते ।
वरं ममैव मरणं मद्भक्तो हन्यते कथम् ॥

'भक्तके अपराधको स्वामी सदा स्वयं ही स्वीकार कर लेता है । अतएव मृत्युदण्ड मुझे ही भोगना चाहिये । मेरे रहते हुए मेरा भक्त कैसे मारा जा सकता है ।' 'करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी ।' (मानस ३ । ४२ । २½) अपना यह वाक्य प्रभुने सत्य करके दिखा दिया । भगवान्‌की ऐसी शरणागतवत्सलताको समझकर भी जो उनका सहारा नहीं लेता, उसके लिये गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—
'सुनहु उमा ते लोग अभागी । हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी ॥'
(मानस ३ । ३३ । १½)

लोभ रावण और शान्ति सीता

(लेखक—आचार्य श्रीतुलसीजी)

त्यागका मार्ग कठिनाईका मार्ग है। इससे घबरानेकी आवश्यकता नहीं। कठिनाईको पार करो। साहससे काम लो। नीतिकारोंने कहा है कि भयसे भय बढ़ता है। भयकी छातीको चीरकर चले जाओ, फिर कोई भय नहीं। ठीक इसी प्रकार कठिनाइयोंसे घबराओगे तो वे बढ़ेंगी। उनका सामना करो, वे मिट जायँगी। यदि राम समुद्रसे घबरा जाते, अपनी थोड़ी-सी सेना देखकर निराश हो जाते तो उन्हें सीता कैसे मिलती? वे घबराये नहीं। उन्होंने साहससे काम लिया। अपने छोटे साधनोंके उपरान्त भी रावणको समस्त दुराशाओंके साथ जमींका पूत बना दिया। एक कविने कहा है—

विजेतव्या लङ्का चरणतरणीयो जलनिधि-
र्विपक्षः पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपयः।
तथाप्येको रामः सकलमवधीद्राक्षसकुलं
क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे॥

महान् पुरुषोंकी क्रिया-सिद्धि उनके सत्त्व (बल), साहस एवं व्यक्तित्वमें रहती है, वह बाहरी उपकरणोंमें नहीं मिलती। आज आपकी प्रियतमा सुदूरवर्ती टापू लङ्कामें अपहृत हो चुकी है। बीचमें भौतिकताका विशालकाय समुद्र पड़ा है। दुनियाके सबसे बड़े शत्रु लोभ—रावणको मारकर आपको अपनी शान्ति—सीताको लाना है। डरो मत। घबराओ नहीं। हिम्मत रक्खो। साहस बटोरो। युवक जहाँ गोलियोंकी बौछारमें सीना तानकर खड़े हो जाते हैं, वहाँ इसमें घबराहटकी क्या बात है?

रामनामकी अपार महिमा

(महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराजका संदेश)

श्रीरामनामकी अपार महिमा है। कलियुगमें तो नाम-कीर्तन ही उद्धारका एकमात्र साधन है। प्रसिद्ध है कि भगवान् श्रीविश्वनाथ काशीमें जीवको तारकमन्त्रका उपदेश देकर मोक्ष प्रदान करते हैं। यह तारक मन्त्र श्रीरामनाम ही है; परंतु यहाँ यह ज्ञातव्य है कि यह तारकमन्त्र साधारण रामनाम नहीं है, अपितु विशेष शक्तिसम्पन्न मन्त्र है। अधिकारी साधकोंको यह रहस्य प्रतिभात है।

दशावतारमें भी श्रीरामावतार प्रसिद्ध है। राम-कृष्ण आदि अभिन्न होनेपर भी तारकमन्त्र श्रीरामनाम ही है। शरीर अस्वस्थ होनेके कारण इन विषयोंपर अधिक स्पष्टीकरण अब मेरे लिये असम्भव है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि श्रीभगवान् रामचन्द्रजीकी कृपासे प्रस्तुत विशेषाङ्क भी अन्य विशेषाङ्कोंकी तरह साहित्य एवं साधना-जगत्‌में उपकारक सिद्ध होगा। साथ ही भाईजीकी कीर्ति-रक्षा करने तथा पाठकोंके चित्तका संतोष करानेमें सक्षम होगा।

गुणार्णव श्रीराम

(लेखक—जगद्गुरु रामानुजाचार्य श्रीपुरुषोत्तमाचार्य रङ्गाचार्यजी महाराज)

प्रस्तुत लेखमें श्रीवाल्मीकि-रामायणके आधारपर गुण-समुद्र श्रीरामके कतिपय गुणोंका अनुसंधान किया जाता है। श्रीरामायणमें वर्णित गुणोंको हम-जैसे अल्पबुद्धिके जीवोंको सरलतासे ज्ञान करानेके लिये पूर्वाचार्यों और श्रीरामायणके टीकाकारोंने उन्हें अनेक वर्गोंमें विभक्त किया है। जिन वर्गोंमें उपर्युक्त गुणोंका वर्गीकरण किया गया है, उन वर्गोंके नाम ये हैं—(१) स्वरूपनिरूपक गुण, (२) परत्वसूचक गुण, (३) सौलभ्यसूचक गुण, (४) आश्रितरक्षणोपयोगी गुण, (५) अवतारैकान्तगुण, (६) अभिगमनहेतुभूत गुण, (७) हेय-प्रत्यनीक गुण, (८) सत्पुरुष-साधारण गुण, (९) श्रीरामके असाधारण गुण तथा (१०) अतिमानुष गुण।

श्रीरामावतारका मुख्य उद्देश्य

उपरिनिर्दिष्ट वर्गोंमें वर्गीकृत गुणों और उनके अर्थोंके निर्देशके पूर्व श्रीरामावतारका उद्देश्य जान लेना परम आवश्यक है। श्रीरामायणके प्रसिद्ध व्याख्याता विद्वान् श्रीगोविन्दराज श्रीरामावतारके उद्देश्यका वर्णन करते हुए लिखते हैं—

'स्वाचारमुखेन मनुष्यान् शिक्षयितुं रामादिरूपेण चतुर्धावततार।'

अर्थात् अपने आचरणोंके द्वारा मनुष्योंको धर्माचरणकी शिक्षा देनेके लिये भगवान् विष्णु श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—इन चार रूपोंमें प्रकट हुए।

धर्मके चार रूप

मानवधर्मके—सामान्यधर्म, विशेषधर्म, विशेषतर धर्म और विशेषतम धर्म—ये चार विभाग हैं। इनमेंसे भगवान्ने श्रीराम-रूपसे 'पितृवचनपालन' आदि सामान्य धर्मोंका अपने आचरणद्वारा उपदेश दिया है, श्रीलक्ष्मणरूपसे 'जीवात्मा भगवान्का शेष (अंश) है। अर्थात् भगवान्का अंश होनेसे भगवान्की सेवा इसका कर्तव्य है', इस विशेष धर्मका उपदेश दिया है; श्रीभरतरूपसे—'जीवात्मा परमात्माके परतन्त्र हैं', इस विशेषतर धर्मका अपने आचरणद्वारा उपदेश दिया है तथा श्रीशत्रुघ्नरूपसे (जीवात्मा भागवतों (वैष्णवों) का दास है), इस विशेषतम धर्मका अपने आचरणद्वारा उपदेश दिया है, अर्थात् भगवान्की सेवाकी अपेक्षा भी श्रीवैष्णवोंकी सेवा अधिक है, इसका उपदेश दिया है।

(१) स्वरूपनिरूपक गुण

श्रीगोविन्दराजजीके* मतानुसार निम्नलिखित गुण स्वरूप-निरूपक हैं, अर्थात् श्रीरामके स्वरूपका निरूपण करते हैं।

१—नियतात्मा—'नियतात्मा'का अर्थ नियतस्वभाव है। अर्थात् श्रीराम निर्विकार हैं। श्रीमहेश्वरतीर्थके मतसे नियतात्माका अर्थ 'शिक्षितमना' है। अर्थात् श्रीरामका मन शिक्षित (उनके अधीन) है। श्रीरामका मन रामके वशमें है, न कि वे मनके वशमें हैं।

२—महावीर्य—यहाँ 'वीर्य' शब्दका अर्थ 'शक्ति' है। अतः 'महावीर्य'का अर्थ है—अचिन्त्य-विविध-विचित्र-शक्तिशाली। अर्थात् श्रीराम अचिन्त्य विविध प्रकारकी विचित्र महाशक्तियोंसे सम्पन्न हैं।

३—द्युतिमान्—'द्युति' शब्दका अर्थ 'प्रकाश' है। अतः 'द्युतिमान्'का अर्थ प्रकाशमान होता है। परंतु प्रकाश सब पदार्थोंमें है, इसलिये 'द्युतिमान्'का अर्थ स्वाभाविक प्रकाशयुक्त किया गया है। अर्थात् श्रीराम स्वाभाविक प्रकाश-से युक्त हैं। इस विषयमें वेदका वचन है—'स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।'—अर्थात् परमात्माके ज्ञान, बल और प्रकाश आदि सब गुण स्वाभाविक हैं।

४—धृतिमान्—'धृति' शब्दका अर्थ आनन्द है, अतः 'धृतिमान्'का अर्थ निरतिशय आनन्दवान् होता है। श्रीराम निरतिशय आनन्द-गुणसे सम्पन्न हैं।

५—वशी—'वशी'का अर्थ है, सब जगत् जिसके वशमें हो। महेश्वरतीर्थने 'वशी'का अर्थ जितेन्द्रिय किया है। अर्थात् श्रीराम अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं, अतः 'वशी' हैं। श्रीरामके प्रस्तुत पाँच गुण उनकी भगवत्ताके सूचक हैं। 'भगवत्ता' ही 'परत्व' है, अतः ये गुण परत्वके भी सूचक हैं।

६ (१)—बुद्धिमान्—'बुद्धिमान्'का अर्थ सर्वज्ञ है, अर्थात् सब वस्तुओंके ज्ञाता श्रीराम हैं। महेश्वरतीर्थके मतमें 'बुद्धिमान्'का अर्थ प्रशस्तबुद्धि-सम्पन्न है, अर्थात् श्रीरामकी बुद्धि प्रशस्त (अच्छी) है।

---

* जहाँ दूसरे टीकाकारका नाम न हो, वहाँ गोविन्दराजका ही मत समझना चाहिये।

७ (२)—**नीतिमान्**—'नीति' शब्दका अर्थ—मर्यादा है, अतः 'नीतिमान्'का अर्थ मर्यादावान् है। अर्थात् श्रीराम वैदिक और लौकिक मर्यादाओंके रक्षक हैं। श्रीरामायणकी 'तिलक' टीकाके कर्त्ता श्रीनागेशके मतमें 'नीतिमान्'का अर्थ है—नीतिशास्त्रोंमें निपुण।

८ (३)—**वाग्मी**—'वाग्मीका अर्थ है—'**प्रशस्ता वाक् अस्य अस्तीति वाग्मी**'। प्रशस्तका अर्थ पवित्र है। अर्थात् श्रीराम पवित्र-वाणी (वेद) के प्रवर्तक हैं। इस विषयमें स्वयं वेदका यह वचन है—'**यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।**' (श्वेताश्वतरोप० ६ । १८)

९ (४)—**श्रीमान्**—'श्री'शब्दका अर्थ विभूति है। विभूति दो प्रकारकी है—लीलाविभूति और भोगविभूति। इनमें लीलाविभूति पार्थिव आदि लोक हैं। भोगविभूति श्रीवैकुण्ठ है। श्रीराम इन दोनों विभूतियोंसे सम्पन्न हैं, अतः 'श्रीमान्' हैं।

महेश्वरतीर्थके मतमें यहाँ 'श्री' शब्दका अर्थ भौतिक लक्ष्मी न होकर नित्यलक्ष्मी (ज्ञानलक्ष्मी) है। कारण कि कोशकारोंने 'श्री' शब्दके '**श्रीः कान्तिसम्पदोर्लक्ष्म्याम्**'—ये अर्थ माने हैं। ज्ञानलक्ष्मीको 'अमृतालक्ष्मी' भी कहते हैं। इस विषयमें '**ऋचः सामानि यजूंषि सा हि श्रीरमृता सताम्**'—यह वचन है। श्रीराम इस ज्ञानरूपी अमृतलक्ष्मीसे सदा सम्पन्न हैं, अतः 'श्रीमान्' हैं।

१० (५)—**शत्रुनिबर्हणः**—'शत्रुनिबर्हणः'का अर्थ है—'**शत्रून् तद्विरोधिनो निबर्हयति इति शत्रुनिबर्हणः।**' अर्थात् श्रीराम अपने भक्तोंके विरोधियोंका नाश करते हैं, अतः 'शत्रुनिबर्हण' हैं। इस विषयमें '**एष भूतपतिः, एष भूतपालः**' यह श्रुति है। श्रीरामके ये पाँच गुण सृष्टिके उपयोगी हैं।

(२) योगिचिन्त्यगुण

आश्रितानुभाव्यदिव्यमङ्गलगुण

'**विपुलांसो महाबाहुः**' आदि बीस गुण शुभाश्रय दिव्यमङ्गलविग्रह (शरीर) के हैं। भगवान्का शरीर ध्यानकर्त्ताओंका शुभ आश्रय (आलम्बन) है। वह दिव्य और मङ्गलोंका दाता है। अतः दिव्य, मङ्गल और शुभाश्रय है। ये गुण आश्रितों (भक्तों) की रक्षामें उपयुक्त होते हैं, अतः इन गुणोंको 'आश्रितरक्षणोपयोगी गुण' भी कहते हैं।

१—**विपुलांसः**—'विपुलांसः'का अर्थ उन्नतस्कन्ध है। अर्थात् श्रीरामके स्कन्ध (कंधे) ऊँचे हैं। यह श्रेष्ठ लक्षण है, जैसा कि सामुद्रिकशास्त्रका कथन है—

> **कक्षः कुक्षिश्च वक्षश्च घ्राणः स्कन्धौ ललाटिका।**
> **सर्वभूतेषु निर्दिष्टा उन्नतास्तु सुखप्रदाः॥**

२—**महाबाहुः**—'महाबाहुः'का अर्थ गोल और मोटे बाहुवाला है, अर्थात् श्रीरामके हाथ वृत्त और पीन हैं। महेश्वरतीर्थके मतमें 'महाबाहु'का अर्थ सुलक्षणबाहु है। महाबाहुत्वका होना मानवके लिये सुलक्षण है। इस विषयमें सामुद्रिक शास्त्रका विज्ञान है कि—

> **शिरो ललाटश्रवणे ग्रीवा वक्षश्च हृत्तथा।**
> **उदरं पाणिपादं च पृष्ठं दश महत् सुखम्॥**

अर्थात् सिर, ललाट, कान, ग्रीवा, वक्षःस्थल, हृदय, उदर, हाथ और पाँव—ये दस महत् (बड़े) हों तो सुख देते हैं।

३—**कम्बुग्रीवः**—'कम्बु'का अर्थ शङ्ख है। अतः कम्बुग्रीवका अर्थ शङ्खतुल्य कण्ठवाला होता है। अर्थात् जिसका कण्ठ शङ्खसदृश हो, वह 'कम्बुग्रीव' है। इस विषयमें सामुद्रिक-शास्त्रका वचन है—

> **'कम्बुग्रीवश्च नृपतिर्लम्बकर्णोऽतिभूषणः।'**

अर्थात् 'शङ्ख-सदृश ग्रीवा (कण्ठवाला) मनुष्य राजा होता है। लंबे कानवाले मानवको बहुत आभूषण मिलते हैं।' श्रीरामकी ग्रीवा (कण्ठ) भी शङ्ख सदृश है। अतः वे 'कम्बुग्रीव' हैं।

४—**महाहनुः**—'महाहनुः' का अर्थ—**महान्तौ हनू यस्य स महाहनुः**। 'हनु' शब्दका अर्थ ठुड्डी या निचला जबड़ा है। 'महत्' शब्दका अर्थ यहाँ मांसल है। अतः जिसका कपोलके नीचेका भाग मांसल-उन्नत हो, वह 'महाहनु' है। इस विषयमें सामुद्रिक शास्त्रका निर्देश है—

> **मांसलौ तु हनू यस्य भवतस्त्वीषदुन्नतौ।**
> **स नरो मृष्टमश्नाति यावदायुः सुखान्वितः॥**

अर्थात् जिसका हनु मांसल और थोड़ा उन्नत हो, वह मनुष्य यावज्जीवन मिष्ट-भोजन करता एवं सुखसे रहता है। 'बृहत्संहिता'में महाहनुका फल 'भूपतित्व' लिखा है—'**पूर्णमांसलहनुस्तु भूपतिः।**'

५—**महोरस्कः**—'महोरस्कः' का अर्थ—'**महद् विशालं उरः यस्य असौ महोरस्कः**' किया गया है। 'उर' नाम वक्षःस्थलका है, अतः महान् जिसका वक्षःस्थल हो, वह

'महोरस्कः' है। श्रीराम 'महोरस्क' हैं। अर्थात् श्रीरामका वक्षःस्थल विशाल है। यह महीपालताका लक्षण है।

६–गूढजत्रुः—'गूढजत्रुः' का अर्थ 'गूढे जत्रुणी यस्य सः गूढजत्रुः' है। 'जत्रु' नाम अंसलीका है। अतः जिसकी अंसली (हँसली) प्रकटरूपसे नहीं दीखती हो, वह 'गूढजत्रु' है।

७–अरिंदमः—'अरिंदमः'का अर्थ—'अरीन् दमयति इति अरिंदमः' अर्थात् शत्रुओंका जो दमन करे वह 'अरिंदम' है। श्रीगोविन्दराजके मतमें यहाँ 'अरि' शब्दसे 'पाप्मा' (पाप) भी विवक्षित है। अतः 'अरिंदम' शब्दका अर्थ 'अपहतपाप्मा' (निष्पाप) होता है। अर्थात् श्रीराम निष्पाप हैं।

महेश्वरतीर्थके मतमें यहाँ 'अरि' शब्दका अर्थ काम, क्रोध, लोभ और अहंकार आदि दुर्गुण हैं। अतः 'अरिंदम' का अर्थ 'श्रीराम काम आदि शत्रुओंके नाशक हैं' यह होता है।

तिलकके मतमें यहाँ 'अरि' शब्दसे निज भक्तोंके काम, क्रोध आदि शत्रु विवक्षित हैं। अतः उनके मतमें—निज भक्तोंके काम, क्रोध और लोभ आदिके नाशक होनेसे श्रीराम 'अरिंदम' हैं।

८–आजानुबाहुः—'आजानुबाहुः' शब्दका अर्थ करते हुए श्रीगोविन्दराज लिखते हैं कि श्रीरामके बाहु (हाथ) घुटनेतक लंबे हैं, अतः वे 'आजानुबाहु' हैं।

९–सुशिराः—'सुशिराः'का अर्थ करते हुए श्रीगोविन्दराजका कहना है—

'सुष्ठु समं वृत्तं छत्राकारं शिरो यस्य असौ सुशिराः।'

अर्थात् श्रीरामका सिर सम और छत्राकार गोल है, अतः वे 'सुशिराः' हैं। 'सुशिराः' के विषयमें सामुद्रिक शास्त्रका निर्देश है—

समवृत्तशिराश्चैव छत्राकारशिरास्तथा।
एकच्छत्रां महीं भुङ्क्ते दीर्घमायुश्च विन्दति॥

अर्थात् जिसका सिर सम (गोल) अथवा छत्राकार हो, वह पृथ्वीका एकच्छत्र राजा होता है और दीर्घ आयुको प्राप्त करता है।

१०–सुललाटः—जिसका ललाट सुन्दर हो, वह 'सुललाट' है। इस विषयमें सामुद्रिकोंका कथन है—

'अर्धचन्द्रनिभं तुङ्गं ललाटं यस्य स प्रभुः।'

अर्थात् जिसका ललाट अर्धचन्द्राकार और ऊँचा हो, वह प्रभु (राजा) अथवा शासक होता है।

११–सुविक्रमः—'सुविक्रमः'का अर्थ 'शोभनः विक्रमः पादविक्षेपो यस्यासौ सुविक्रमः।' अर्थात् जिसकी चाल सुन्दर हो, वह 'सुविक्रम' है। चालका सौन्दर्य उसका हंस, वृषभ, व्याघ्र, सिंह, गजकी-सी होना है। सुपदन्यासके विषयमें सामुद्रिक शास्त्रका वचन है—

सिंहर्षभगजव्याघ्रगतयो मनुजा मुने।
सर्वत्र सुखमेधन्ते सर्वत्र जयिनः सदा॥

अर्थात् जिनकी गति (चाल) सिंह, बैल, हाथी या बाघकी-सी हो, वे मानव सर्वत्र सुख और विजयको प्राप्त करते हैं।

१२–समः—जो न अधिक ऊँचा हो और न अधिक वामन (ह्रस्व) हो, उसको शास्त्रमें 'सम' कहते हैं। सामुद्रिक शास्त्रका इस विषयमें वचन है कि—

'षण्णवत्यङ्गुलोच्छ्रायः सार्वभौमो भवेन्नृपः।'

अर्थात् छियानवे अंगुल ऊँचा मानव चक्रवर्ती होता है। अंगुल एक मापविशेष है।

१३–समविभक्ताङ्गः—'समविभक्ताङ्गः'का अर्थ है—समानि विभक्तानि अङ्गानि यस्य सः समविभक्ताङ्गः।

अर्थात् जिनके दोनों पार्श्वोंके हाथ, पाँव, आँख और कान आदि अङ्ग सम—बराबर हों, वह 'समविभक्ताङ्ग' होता है। इस विषयमें सामुद्रिक शास्त्रका वचन है—

भ्रुवौ नासापुटे नेत्रे कर्णावोष्ठौ च चूचुकौ।
कूर्परौ मणिबन्धौ च जानुनी वृषणौ कटी॥
करौ पादौ स्फिजौ यस्य समौ ज्ञेयः स भूपतिः।

अर्थात् जिसके दोनों भौंहें, दोनों नासापुट (नथुने), दोनों नेत्र, दोनों कर्ण, दोनों ओठ, दोनों चुचुक (स्तन), दोनों कूर्पर (कोहनियाँ), दोनों मणिबन्ध (पोंहचे), दोनों जानु (घुटने), दोनों वृषण (अण्डकोष), दोनों कटिभाग, दोनों हाथ और दोनों पाँव सम (तुल्य) हों, वह भूपति होता है।

१४–स्निग्धवर्णः—'स्निग्धवर्णः'का अर्थ करते हुए श्रीगोविन्दराज कहते हैं—

'स्नेहयुक्तो वर्णो यस्य सः स्निग्धवर्णः ।'

अर्थात् स्नेह (चिकनेपन)से युक्त जिसके शरीर अथवा नेत्रोंकी कान्ति हो, वह 'स्निग्धवर्ण' है । इस विषयमें विद्वान् वररुचिका कथन है—

नेत्रस्नेहेन सौभाग्यं दन्तस्नेहेन भोजनम् ।
त्वचः स्नेहेन शय्या च पादस्नेहेन वाहनम् ॥

अर्थात् नेत्रोंकी स्निग्धतासे सौभाग्य प्राप्त होता है, दाँतोंकी चिकनाईसे उत्तम भोजन प्राप्त होता है, त्वचाकी चिकणतासे शय्या प्राप्त होती है और पाँवोंकी चिकनाईसे वाहनोंकी प्राप्ति होती है ।

'तिलककार' :श्रीनागोजिभट्टके मतानुसार स्निग्धवर्ण-का अर्थ—स्नेहयुक्त घनश्याम वर्ण है । अर्थात् श्रीराम घनश्याम कान्तिसे युक्त हैं। अर्थात् चिकना गहरा नीलवर्ण श्रीरामका है । इस विषयमें सामुद्रिक-शास्त्रका कथन है—

'स्निग्धेन्द्रनीलवर्णस्तु भोगं विन्दति पुष्कलम् ।'

अर्थात् स्निग्ध इन्द्रनीलमणिके सदृश जिसका वर्ण (शरीरकी कान्ति) हो, वह पुष्कल (प्रचुर) भोगोंको प्राप्त करता है ।

१५–प्रतापवान्—'प्रतापवान्'का अर्थ 'तेजस्वी है । अर्थात् श्रीराम समुदय-शोभासे सम्पन्न हैं । महेश्वरतीर्थके मतमें 'प्रतापवान्' का अर्थ प्रशस्त पौरुषसे सम्पन्न है । अर्थात् श्रवणमात्रसे शत्रुओंके हृदयको विदारण करनेवाला पौरुष श्रीराममें है, अतः वे 'प्रतापवान्' हैं ।

१६–विशालाक्षः—'विशालाक्षः'का अर्थ है—'विशाले पद्मपत्रायते अक्षिणी यस्य सः विशालाक्षः ।'

अर्थात् पद्मपत्रवत् लंबे जिसके नेत्र हों, वह 'विशालाक्ष' है । इस विषयमें सामुद्रिकशास्त्रका वचन है—

'रक्तान्तैः पद्मपत्राभैर्लोचनैः सुखभागिनः ।'

अर्थात् जिनके नेत्रोंके अन्तभाग लाल हों, वे पद्मपत्रके सदृश लोचनवाले मानव सुख भोगते हैं । वे दुःखी कभी नहीं होते ।

१७–लक्ष्मीवान्—'लक्ष्मीवान्'का अर्थ अवयव-शोभासे सम्पन्न है ।

'तिलक' टीकामें 'लक्ष्मीवान्'का अर्थ सीतारूप लक्ष्मीसे श्रीराम सम्पन्न हैं—यह किया है । प्रस्तुत लक्षणों और अन्य सब शुभलक्षणोंसे श्रीराम सम्पन्न हैं, अतः वे 'शुभ-लक्षण' हैं ।

'विपुलांसो महाबाहुः' आदि शुभ लक्षण श्रीरामके शरीर-सम्बन्धी हैं । भगवान्के शरीरको शास्त्रोंमें शुभाश्रय (शुभ लक्षणयुक्त) दिव्य मङ्गल विग्रह कहते हैं । इन गुणोंका चिन्तन योगीजन करते रहते हैं । अतः ये 'योगि-चिन्त्य' कहलाते हैं । आगे आश्रितोंकी रक्षामें उपयुक्त गुणोंका वर्णन करते हैं । (क्रमशः)

श्रीराम-कर-सरोजका सुखद आश्रय

कबहुँ सो कर-सरोज रघुनायक ! धरिहौ नाथ सीस मेरें ।
जेहिं कर अभय किये जन आरत, बारक बिबस नाम टेरें ॥
जेहिं कर-कमल कठोर संभुधनु भंजि जनक-संसय मेट्यो ।
जेहिं कर-कमल उठाइ बंधु ज्यों परम प्रीति केवट भेंट्यो ॥
जेहिं कर-कमल कृपालु गीध कहँ पिंड देइ निजधाम दियो ।
जेहिं कर बालि बिदारि दास हित, कपिकुल-पति सुग्रीव कियो ॥
आयो सरन सभीत बिभीषन, जेहिं कर-कमल तिलक कीन्हौ ।
जेहिं कर गहि सर चाप असुर हति, अभयदान देवन्ह दीन्हौ ॥
सीतल सुखद छाँह जेहि कर की मेटति पाप, ताप, माया ।
निसि-बासर तेहि कर-सरोज की चाहत तुलसिदास छाया ॥

रामकथा मानवता-कथा है

(लेखक—स्वामी श्रीअनिरुद्धाचार्यजी वेंकटाचार्यजी महाराज)

यह कल्पना अज्ञान अथवा भ्रममात्र है कि 'श्रीरामायण'का विश्वमें अवतरण केवल आर्यराष्ट्र और आर्यजातिके मानवों और मानवियों (स्त्रियों) के लिये ही हुआ है। कारण यह है कि इसमें 'श्रीरामकथा'के रूपमें 'मानवता'की कथा कही गयी है। रूसके विद्वान् 'वारान्निकोव'का भी श्रीरामायणके विषयमें यही मत है कि वाल्मीकिने 'श्रीरामायण'के द्वारा श्रीरामचरित्रके माध्यमसे विश्व-राष्ट्रों और विश्व-मानवोंको 'मानवता'का उपदेश दिया है। मानव कौन है ? और वह मानवताकी प्राप्ति कैसे कर सकता है ? इन दो जिज्ञासाओंका समाधान श्रीराम और रामचरितमें है, अर्थात् राम-जैसा नर 'मानव' है और रामके-जैसे चरित्रसे मानवताकी प्राप्ति हो सकती है। श्रीराम मानवोंके तथा रामचरित्र मानव-चरित्रका आदर्श है। अतः विश्वके मानवोंका कर्तव्य है कि वे अपना जीवन रामका-जैसा बनाकर स्वयं सुख-शान्ति और उन्नति प्राप्त करें। विश्वमें रामचरित्र (मानवता) का तिरस्कार करके सदाचार, सुख, शान्ति, विनय, सौहार्द और सौमनस्य आदिकी रक्षा दुर्घट कार्य है। यह 'रामकथा' (मानवता-कथा) 'चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्' है। प्राचीन कालमें इसका प्रभाव और प्रसार पृथ्वीके दोनों गोलार्धों एवं चारों खण्डोंमें एक रूपसे सर्वत्र व्याप्त था। आज भी इसका प्रभाव और विस्तार भारतके पूर्वीय द्वीपों और देशोंमें अविच्छिन्न रूपसे सुरक्षित है। उत्तरमें मंगोलिया-साइबेरिया आदि देशोंमें यत्र-तत्र इसका प्रसार है। दक्षिण अमेरिकाके पेरु आदि प्रदेशोंमें वहाँके मूलनिवासियोंमें 'राम सीता' आदि उत्सवोंके रूपमें 'रामकथा'का प्रसार आज भी अक्षुण्ण है। पश्चिममें भी इसका प्रभाव सुदूर पश्चिममें स्थित आईसलैण्डतक था। किंतु यावन (मूसा-ईसा-मुहम्मदद्वारा प्रवर्तित) मतोंसे इसके प्रसारमें बाधा आयी है।

मानवतासे दानवताका अभिभव

'श्रीरामायण'में इस बातका चित्रण किया गया है कि 'मानवता'से ही दानवताका पराभव हो सकता है। श्रीरामायणमें श्रीरामचरित्रके माध्यमसे 'मानवता' एवं रावणके चरित्रके माध्यमसे 'दानवता'के स्वरूपोंका प्रतिपादन हुआ है। 'मानवता' नाम मर्यादाका है और मर्यादाका जनक 'विनय' है। 'दानवता' नाम उच्छृङ्खलताका है और उसका जनक 'अहंकार' है। मानवता सुख, शान्ति, उन्नति एवं सेवाभाव आदिकी जननी है। 'दानवता' दुःख, अशान्ति एवं पीड़ा, अभाव आदिकी जननी है। राममें विद्यमान 'रामत्व' विनय है, रावणमें विद्यमान 'रावणत्व' उच्छृङ्खलता है।

त्रिविध राम—रामायण एवं पुराण आदि आर्षग्रन्थोंके अवलोकनसे श्रीराम तीन प्रकारके हैं, यह सिद्ध होता है—(१) इनमें एक राम तो ऐतिहासिक राम हैं, जो दाशरथि हैं एवं जिनका इतिहास 'रामायण' है, जिन्होंने अपना परिचय '**आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्**'के रूपमें देवताओंको दिया था। (२) दूसरा राम अध्यात्ममें मन अथवा आत्मा है। शास्त्रोंमें उस मन अथवा आत्माको 'राम' माना है, जो विवेक, सुमति, दया, मैत्री और मुदिता आदि आत्मगुणोंसे परिपूर्ण है। इसके लिये ही '**शान्तिसीतासमायुक्त आत्मा रामो विराजते**' कहा गया है और (३) श्रीराम आदिके आचरणोंके समान आचरणवाला 'मानव' तीसरा राम है।

त्रिविध रावण—इसी प्रकार 'रावण' भी तीन प्रकारके हैं—(१) इनमें एक 'रावण' विश्रवामुनिका पुत्र था, जो लङ्कानिवासी था, (२) अध्यात्म (शरीर)में मन अथवा आत्माके रूपमें दूसरा रावण है, जो अहंकार, मोह, कुमति, क्रूरता, लोलुपता एवं उच्छृङ्खलता आदि दुर्गुणोंसे सम्पन्न है और (३) 'रावण' वह मानव है, जो रावण आदि राक्षसोंके चरित्रके समान चरित्र (आचरण)-वाला हो।

इस प्रकार इन तीन रामों और रावणोंमें केवल अध्यात्मके रावण और रामको स्वीकार करके ऐतिहासिक राम और रावणका अपलाप करना एक महान् ऐतिहासिक अपराध है।

मर्यादारूपमें मानवताके प्रकार

वेदोंमें 'इदं कुरु', 'इदं मा कुरु'रूप मर्यादा (मानवता) के बीस प्रकार माने गये हैं । इनमें दस निषेधरूप मानवताएँ हैं, दस ही विधिरूप मानवताएँ हैं । इसमें निषेधरूप मानवताओंका भगवान् मनुने इस रूपमें निर्देश किया है—

१—अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ।
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम् ॥
(१२ । ७)

अर्थात् अदत्त वस्तुको ग्रहण न करना, हिंसा न करना और परस्त्रियोंका कुदृष्टिसे स्पर्श न करना—ये तीन शारीरिक मानवताएँ हैं । अर्थात् इन तीनोंका सम्बन्ध शरीरसे है ।

२—पारुष्यमनृतं चैव पैशून्यं चापि सर्वशः ।
असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥
(१२ । ६)

अर्थात् परुष (क्रूर) वचन न बोलना, मिथ्या न बोलना, चुगली न करना और असम्बद्ध प्रलाप न करना—ये चार वाचिक मानवताएँ हैं, अर्थात् इनका सम्बन्ध वाणीसे है ।

३—परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् ।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ॥
(१२ । ५)

अर्थात् दूसरेके द्रव्यका चिन्तन न करना, किसीका अनिष्टचिन्तन न करना और वितथाभिनिवेश (नास्तिकता) न रखना—ये तीन मानवताएँ मानस हैं । अर्थात् इनका सम्बन्ध मनसे है ।

जैसे शारीरिक, वाचिक और मानस-भेदसे मानवता दस प्रकारकी है, वैसे ही उनके विपरीत दानवताके भी दस भेद हैं ।

१—अदत्त वस्तुको लेना, हिंसा करना एवं परस्त्रीका सेवन करना—ये तीन शारीरिक दानवताएँ हैं ।

२—क्रूरवचन बोलना, मिथ्या बोलना, चुगली करना और असम्बद्धप्रलाप (बेसिर-पैरकी बातें) करना—ये चार दानवताएँ वाचिक हैं ।

३—पराये द्रव्यके अपहरणकी इच्छा, किसीका अनिष्टचिन्तन और वितथाभिनिवेश (नास्तिकता)—ये तीन मानस दानवताएँ हैं । इन दानवताओंसे युक्त मानव ही दानव है । इनका अभिभव (नाश) उपरिकथित मानवताओंसे सम्पन्न मानव ही कर सकता है ।

विहित मानवताएँ

न्यायदर्शनमें वात्स्यायनने विधिरूप मानवताके भी दस ही रूप माने हैं । इनका भी शरीर, वाक् और मनसे सम्बन्ध है । इनमें दान, परित्राण और सेवा—ये तीन शारीरिक मानवताएँ हैं । अर्थात् मानवको शरीरसे दान, रक्षा और सेवा—इन तीन कार्योंको करना आवश्यक है ।

२—प्रियभाषण, सत्यभाषण, हित-भाषण और स्वाध्याय—ये चार वाचिक मानवताएँ हैं । वाणीसे इन चारों मानवताओंका पालन करना मानवका कर्तव्य है ।

३—संतोष, जितेन्द्रियता और श्रद्धा—ये तीन मानस मानवताएँ हैं । अर्थात् इन तीनोंका मनसे पालन करना आवश्यक है ।

विहित दस प्रकारकी मानवताओंके विपरीत दस प्रकारकी दानवताएँ होती हैं । इनमें दान न देना, रक्षा न करना और सेवा न करना—ये तीन दानवताएँ शारीरिक हैं । क्रूर वचन, असत्य वचन, अहितवचन और स्वाध्यायमें आलस्य—ये चार वाचिक दानवताएँ हैं । असंतोष, असंयम और अश्रद्धा—ये तीन मानस दानवताएँ हैं ।

इस प्रकार इन मानवताओं और दानवताओंका उपदेश श्रीराम आदिके चरित्रों एवं रावण आदिके चरित्रोंके माध्यमसे भगवान् वाल्मीकिने रामकथारूप 'रामायण'से विश्वके मानवोंको दिया है । श्रीरामायणका परम तात्पर्य 'श्रीरामादिवद् वर्तितव्यम्' और न क्वचिद् रावणादिवत्' ये दो ही हैं । अर्थात् मानवोंको श्रीराम आदिके आचरणके अनुसार चलना आवश्यक है, न कि रावण आदिके आचरणके अनुसार । रावण आदिका आचरण 'दानवता' है, श्रीराम आदिका आचरण 'मानवता' है । मानवता-कथाका ही दूसरा नाम 'रामकथा' है ।



परमात्मा राम और हमारी साधना

(लेखक—साधुवेषमें एक पथिक)

प्रायः संसारमें प्रत्येक मनुष्य जहाँ-कहीं सौन्दर्य अथवा माधुर्य एवं ऐश्वर्य देखता है, उसकी ओर आकृष्ट हुए बिना नहीं रहता और जब कभी किसीमें एक साथ ही अनुपम सौन्दर्य, अगाध माधुर्य तथा सर्वोपरि ऐश्वर्यका परिचय मिलता है, तब विज्ञ जन-मानस उसकी ही—निराकार ब्रह्मके नररूपमें अवतरित आकारकी ही—उपासनाको अपने जीवनका परम लक्ष्य निश्चित कर लेता है। त्रेतायुगमें निराकार ब्रह्मके नराकार अवतारके अनुपम सौन्दर्य-माधुर्य-ऐश्वर्यकी कथाएँ सुनकर सहज ही उनके दर्शनकी अभिलाषा जाग्रत् होती है। लाखों दर्शनाभिलाषी जनोंमें अनेक लोग जप करते हैं, अनेक लोग नाम-संकीर्तन करते हैं तथा अनेक लोग भगवान् श्रीरामकी मूर्तिमें मन्त्रोंद्वारा प्राणप्रतिष्ठा कर वर्षों अपनी मान्यताके अनुसार अर्चन-वन्दनरूपमें भावोपासना करते हुए जीवन बिता देते हैं; पर दर्शन उनके लिये दुर्लभ ही रह जाते हैं।........'रामकी कृपासे संतोंका सुसङ्ग सुलभ होता है, उस सुसंगतिसे विवेक प्राप्त होता है, विवेकके सदुपयोगसे मूढ़ताका अन्त होता है, तभी साधक दर्शनका अधिकारी होता है। कुछ भक्तोंका निर्णय है कि जो साधक प्रेमसे निरन्तर रामके रूपका चिन्तन करेगा तथा कभी किसी भी प्रलोभनसे विचलित न होगा और रामके रूपका स्मरण-मनन एवं चरित्रका गान करते हुए उन्हींके रूपके दर्शनकी ध्यानमें प्रतीक्षा करेगा, उसीके समक्ष ब्रह्मतत्त्व रामरूपमें प्रकट होगा। जब कोई साधक भगवान्‌के अतिरिक्त संसारमें अन्य कुछ भी नहीं चाहता, उस निष्काम साधकको प्रभुकी कृपाका अनुभव होता है। प्रभुकी कृपासे ही स्वयं प्रभु सुलभ होते हैं। जब हम सुनते हैं कि भगवान् राम अखण्ड ज्ञानस्वरूप हैं, सच्चिदानन्द हैं, तब साधकोंके लिये विशेष साधनाद्वारा यह जान लेना सम्भव है कि असत्‌के साथ सत्, जडके साथ चेतन और दुःखके साथ आनन्दाभासके रूपमें परमात्मा ही हमारे साथ हैं।...... भगवान् राम हमलोगोंके साथ अपने सच्चिदानन्दस्वरूपमें अभिन्न ही हैं—

'राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ॥'

(रामचरितमानस १। ११५। २½)

त्रेताके रामरूपसे विमोहित होकर मुनियोंके मन भी भ्रमित हो सकते हैं, पर वे भगवान् राम आज हमारे साथ जिस तरह नित्य-निरन्तर हैं, उस तरह उनके दर्शनसे मोह-भ्रमका लेश भी नहीं रह सकता। यदि किसीका प्रश्न हो कि 'इस सहज साधनामें पाठ-पूजा, जप-कीर्तन, कथा-श्रवण आदिकी आवश्यकता है या नहीं ?' तो इसका यही उत्तर है कि जहाँ विनाशी नाम-रूपका कीर्तन-स्मरण, चिन्तन और ध्यान अनायास ही चलता रहता है, वहीं उस अभ्यासको हटानेके लिये अविनाशी रामके नाम-रूप, लीला-कथाके कीर्तन, जप, स्मरण-चिन्तन-ध्यानका अभ्यास आवश्यक है। जब साधक किसी साधनामें ही अटककर संतुष्ट होता रहता है और साध्य तत्त्वकी अभिन्नताका अनुभव नहीं कर पाता, तब वह जो भी साधना करता है, उसीको करनेमें अपने-आपको असमर्थ पाता है; क्योंकि जो भी साधन मिले हैं, वे सभी छूट जायँगे। जिस साधना, आराधना, उपासना, पूजा, जप-कीर्तनमें किसी भी वस्तु, व्यक्ति, शक्तिकी अर्थात् किसी अन्यकी अपेक्षा रहती है, उससे स्वतन्त्रता नहीं आती। निरपेक्ष ही स्वतन्त्र होता है; जो परका आश्रय छोड़ देता है, वही 'स्व'में शान्त होकर सत्यचेतन परमात्मा रामतत्त्वसे नित्ययुक्त अथवा भक्त होता है।

भगवान् रामके सगुण-साकार रूपका दर्शन बाह्य दृष्टिसे सुलभ होता है और उनके स्वरूपका अनुभव ज्ञानदृष्टिसे ही सुलभ होता है। रूप और स्वरूपके दर्शनकी दृष्टि भिन्न-भिन्न है। हमें समझाया गया है कि जिसकी सत्तासे अथवा जिसकी चेतनासे जड साधनोंद्वारा अर्थात् इन्द्रियोंद्वारा विषयोंका ग्रहण होता है तथा मनरूपी साधन-द्वारा सुखका भोग होता है और बुद्धिरूपी साधनद्वारा भोगके परिणामकी जानकारी होती है और अन्तमें सभी साधनोंको साथ लेनेपर प्रज्ञारूपी साधनद्वारा ज्ञानमें सच्चिदानन्दका अनुभव होता है, वही परमात्मा रामतत्त्व हम सभीको नित्य सुलभ है। नित्य-निरन्तर रामसे विमुख रहनेके कारण ही कामकी परिधिमें आबद्ध रहना होता है

और रामकी कृपासे प्राप्त साधनके सदुपयोगसे कामसे विमुख होकर परमात्मा रामके सम्मुख होना सुगम हो जाता है । अज्ञानमें ही हम सब प्राणी रामसे विमुख रहते हैं, ज्ञानमें दृष्टि खुलनेपर हम नित्य-प्राप्त रामके सम्मुख होते हैं । ज्ञानमें ही परमात्मा रामका दर्शन सम्भव है, प्रेममें ही नित्य मिलन या नित्य योग सम्भव है ।

रामभक्त कौन ?

(लेखक—स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते ।
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ॥
(श्रीमद्भागवत ११ । १४ । २७)

'जो पुरुष निरन्तर विषय-चिन्तन किया करता है, उसका चित्त विषयोंमें फँस जाता है और जो मेरा स्मरण करता है, उसका चित्त मुझमें ही तल्लीन हो जाता है ।'

रामभक्त

जिसका एकमात्र ध्येय रामजी ही हैं, रामजीके अतिरिक्त कोई भी लक्ष्य, ध्येय, आदरणीय, ग्राह्य, आवश्यक, लोभनीय, प्रापणीय और प्रिय कुछ भी नहीं है, वह दैवी-सम्पत्तिसम्पन्न व्यक्ति रामभक्त है ।

कामभक्त

जिसका ध्येय रुपये-पैसे तथा पाँचों इन्द्रियोंके विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध), मान, बड़ाई आदि और लौकिक पदार्थ हैं तथा जो परलोकमें भी स्वर्गादि भोगभूमि ही चाहता है, वह आसुरी-सम्पत्तियुक्त जीव कामभक्त है ।

साधारण

जिसमें दैवी-सम्पत्ति और आसुरी-सम्पत्ति दोनों रहती हैं, वह अपनेको अनन्य रामभक्त न माने; कारण कि संसारमें पापी-से-पापी कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है, जिसमें केवल आसुरी-सम्पदा ही हो, अर्थात् दैवी-सम्पदाके गुण न हों । अतः वह साधारण श्रेणीका ही पुरुष है ।

साधक

रामभक्त होनेका अधिकारी वही है, जिसे अपने अंदर रहनेवाली आसुरी-सम्पत्ति सुहाती नहीं—खटकती रहती है, जो उसके कारण चिन्तित रहता है और जिसे भगवान्‌के प्रेमकी कमी भी नहीं सुहाती, अर्थात् जो निरन्तर भगवान्‌का भजन-ध्यान-चिन्तन ही करना चाहता है और जिसमें भगवान्‌के भजन-चिन्तनके लिये व्याकुलता बढ़ती रहती है तथा जो भगवान्‌से प्रार्थना भी यही करता है—'हे नाथ ! मेरेद्वारा केवल आपका भजन ही बनता रहे ।' वही साधक है ।

उत्थानक्रम

मनुष्य ज्यों-ज्यों भगवान्‌का भजन और चिन्तन करनेकी अधिक-से-अधिक चेष्टा करेगा, त्यों-ही-त्यों उसका मन भगवान्‌में अधिक-से-अधिक लगता जायगा और ज्यों-ज्यों उसका मन भगवान्‌में अधिक लगेगा, त्यों-ही-त्यों उसकी भोग-लिप्सा हटती जायगी; ज्यों-ज्यों भोग-लिप्सा हटेगी, त्यों-ही-त्यों उसका दुःख दूर होता चला जायगा तथा उसका मन भगवान्‌में अधिक-से-अधिक तल्लीन होता चला जायगा; साथ-ही-साथ उसका भगवान्‌में प्रेम भी बढ़ता चला जायगा और उस प्रेमके फलस्वरूप उसे परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी, वह कृतकृत्य हो जायगा, प्राप्त-प्राप्तव्य हो जायगा, ज्ञातज्ञातव्य हो जायगा, अर्थात् उसके लिये न कुछ करना बाकी रहेगा, न कुछ पाना और न कुछ जानना ही बाकी रहेगा । प्रभुकृपासे उसका मनुष्यजन्म सफल हो जायगा ।

पतनक्रम

जिसका ध्येय रुपये-पैसे आदि सांसारिक सम्पत्तिका संग्रह और उसके द्वारा सुखभोग ही होता है, वह कामनाके वशीभूत होकर अन्यायाचरणमें प्रवृत्त हो जायगा । ज्यों-ज्यों संग्रह और सुखभोगकी इच्छा प्रबल होती जायगी, त्यों-ही-त्यों उसकी असत्यभाषण, कपट, छल, जबरदस्ती, चोरी, डकैती तथा हत्या करनेमें हिचक मिटती चली जायगी, जिससे उसका महान् अधःपतन हो जायगा । उसके फलरूप उसे आसुरी योनियों तथा भयंकर घोर नरकोंमें जाना पड़ेगा । इसलिये मनुष्यको सांसारिक कामना-पूर्तिका उद्देश्य न रखकर केवल रामभक्तिका ही उद्देश्य रखना चाहिये ।

रामजीका स्वरूप

'सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा । गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ॥'
(मानस १ । ११५ । ½)

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥
(रामपूर्वतापिनी उप० ६)

'अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा । अकथ अगाध अनादि अनूपा॥'
(मानस १ । २२ । ½)

वह परमात्मा सगुण भी है, निर्गुण भी है; साकार भी है, निराकार भी है और उससे विलक्षण भी है । आजतक परमात्माके विषयमें जितना ही संत-महात्माओंने विवेचन किया है, परमात्मा उससे कहीं विलक्षण है; क्योंकि वर्णन, विवेचन और चिन्तन करनेवाली शक्ति सीमित है और परमात्मा अनन्त, अपार और असीम है । सीमित शक्तियोंके द्वारा असीम तत्त्व कैसे नापा जा सकता है। उस अलौकिक तत्त्वका केवल लक्ष्य ही कराया जा सकता है ।

वास्तवमें जो सब गुणोंसे सर्वथा अतीत है, उसीमें ही सब गुण रह सकते हैं। जो किसी एक गुणमें आबद्ध हो, उसमें सभी गुण नहीं रह सकते और जिसमें अनन्त गुण अनादि-कालसे नित्य-निरन्तर रहते हैं, वह वास्तवमें सभी गुणोंसे सर्वथा निर्लिप्त है । सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार आदि शब्द उसके द्योतन करनेवाले विशेषण हैं, न कि उसका वर्णन करनेवाले । हृदय (भाव)-प्रधान साधकोंको गुणोंकी दृष्टिसे वे सगुण दीखते हैं और गुणरहित दृष्टिवाले बुद्धि (ज्ञान)-प्रधान साधकोंको गहरे विचारसे वे निर्गुण ही दीखते हैं। इसी प्रकार आकृतिको लेकर विचार करनेवाले पुरुषोंको वे साकार और आकृतिका निराकरणपूर्वक विचार करनेवाले पुरुषोंको निराकार भासते हैं । इससे यह सिद्ध हुआ कि सगुण-निर्गुण एवं साकार-निराकार दृष्टिसे देखनेपर वे तत्तदनुरूप ही दीखते हैं। वास्तवमें सब दृष्टियोंसे अतीत तत्त्व एक ही है; वह अलौकिक है, उसके समान कोई दूसरा होना सम्भव नहीं ।

सगुण रूप भी दो तरहका है—एक तो सत्त्व-रज आदि प्राकृत गुणोंसे युक्त और दूसरा सौशील्य, औदार्य, सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्य आदि अप्राकृत दिव्य गुणोंसे युक्त ।

विचार करनेसे दोनों ही स्वरूप परिपूर्णतम ही हैं, जैसे वेदमन्त्रोंमें आता है, 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि'''।'(शु०यजु०)

परमात्माके किसी अंशमें प्रकृति और प्रकृतिका कार्य संसार है। इसपर सज्जन विचार करें कि जैसे निर्गुण परमात्माके किसी अंशमें प्रकृति और उसमें अनन्त संसार है, ऐसे ही कौसल्या अम्बाकी गोदमें रामलला और उस रामललाके मुखमें अनन्त सृष्टि है ।

जैसे 'अनन्त संसारमें एक ब्रह्माण्ड, एक ब्रह्माण्डके किसी अंशमें एक पृथ्वी, पृथ्वीके किसी एक अंशमें भारतवर्ष, भारतवर्षके किसी एक अंशमें युक्तप्रान्त, युक्तप्रान्तके मध्यमें एक अवधमण्डल, अवधमण्डलमें श्रीअयोध्यापुरी, अयोध्यापुरीमें राजगृह, राजगृहमें एक महल, महलके एकदेश-में स्थित सिंहासन, उसपर विराजमान महारानी श्रीकौसल्या अम्बा, उसकी गोदमें नन्हे-से रामलला, उस रामललाके एक अङ्ग—मुखमें अनन्त सृष्टि, उसी प्रकार बालकरूप रामजीके उदरमें काकभुशुण्डिजीने अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्डोंको देखा,[1]' ऐसे ही श्रीकृष्णभगवान्‌के मुखमें यशोदामैयाने अनन्त सृष्टिको देखा ।[2] ऐसे ही अर्जुनने भगवान्‌के एक अङ्गमें[3] सम्पूर्ण संसारको एकत्र स्थित देखा ।

महाभारत, उद्योगपर्वके अनुसार भीष्मादिने कौरवसभाके अन्तर्गत श्रीकृष्णके शरीरमें विश्वब्रह्माण्डको देखा और उसी प्रकार अश्वमेधपर्व (५५ । ४—६) के अनुसार उत्तङ्क ऋषिने भी भगवान्‌के विश्वरूपका दर्शन किया ।

अतः निर्गुण और सगुण दो नहीं हुए ।

जैसे सगुण भगवान् पापी-से-पापीको भी, जो ईश्वरीय सिद्धान्तसे बिलकुल विपरीत चलनेवाले हैं, शरणमें आ जानेपर आश्रय देते हैं, इसी प्रकार निर्गुण-निर्विकार ब्रह्मने भी, जो सत्-चित्-आनन्दघन हैं, अपने सर्वथा विरुद्ध असत्-जड-दुःखरूप अविद्याको, अर्थात् सत्त्व-रज-तमयुक्त मायाको, विकाररूप

---

१. उदर माझ सुनु अंडज राया । देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया ॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका । रचना अधिक एक ते एका ॥
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा । अगनित उडगन रबि रजनीसा ॥
अगनित लोकपाल जम काला । अगनित भूधर भूमि बिसाला ॥
सागर सरि सर बिपिन अपारा । नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा ॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किंनर । चारि प्रकार जीव सचराचर ॥
(मानस ७ । ७९ । २—४)

२. श्रीमद्भागवत १० । ७ । ३५-३६ ।

३. (१) गीता ११ । ७ श्रीभगवान्‌के वचनोंमें 'इहैकस्थं' ।
(२) गीता ११ । १३ संजयके वचनोंमें 'एकस्थं' ।
(३) गीता ११ । १५ अर्जुनके वचनोंमें 'तव देव देहे' ।

एवं अनित्य संसारको दे रक्खा है। इस दृष्टिसे भी सगुण-निर्गुण दो नहीं हुए।

यहाँ एक विशेष बात समझनेकी यह है कि परमात्मा एक ही साथ सगुण भी हैं और निर्गुण भी हैं, साकार भी हैं और निराकार भी, व्यक्त भी हैं और अव्यक्त भी। उनमें ये विरोधी गुण किस प्रकार हैं, इसे लौकिक दृष्टान्तों-द्वारा समझाया जाता है।

काष्ठमें अग्नि निराकाररूपसे व्याप्त होनेपर भी दीखता नहीं, उसी काष्ठको मन्थन करनेसे प्रकट हुआ अग्नि साकार होकर दीखने लगता है।

वाष्पके रूपमें परिवर्तित हुआ जल निराकार होनेसे दीखता नहीं; वही जब बादल बनकर बरसने लगता है, तब बूँदोंके रूपमें व्यक्त हो जाता है। जब एक जड वस्तु भी व्यक्त और अव्यक्त हो सकती है, तब क्या चेतनस्वरूप परमात्मा जडकी अपेक्षा भी अशक्त है?

अतः जैसे प्रकटरूप जल और अप्रकटरूप जल दो नहीं है, प्रकटरूप अग्नि और अप्रकटरूप अग्नि भी दो नहीं है, तब परमात्मा दो कैसे हो सकते हैं। एक ही परमात्मा अलग-अलग रूपसे क्यों दिखायी देते हैं, इसका कारण है—साधकोंका भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण। इसीको 'दर्शन' कहते हैं। 'दर्शन' शब्दका अर्थ क्या है? जैसे हमलोग मन्दिरमें भगवान्‌के श्रीविग्रहके दर्शन करते हैं, इस 'दर्शन' शब्दका अर्थ हुआ—देखना रूप क्रिया।

दूसरे हम जिस करणके द्वारा भगवान्‌के श्रीविग्रहके 'दर्शन' करते हैं, वह करण आँख हुई। उस आँखका नाम भी 'दर्शन' है।

तीसरा दर्शन है—दृष्टिकोण। हम आँखके द्वारा देखते तो हैं, पर एक ही आँखसे देखनेपर भी हमारा दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न हो सकता है। यह दृष्टिकोण रुचिके अनुसार भिन्न-भिन्न होनेसे परमात्मा भी सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार, भिन्न-भिन्न रूपोंमें दीखते हैं। यही है—दार्शनिक दृष्टि।

यही कारण है कि निर्गुण-उपासना करनेवालोंको भी भगवान् कहीं-कहीं साकाररूपसे प्राप्त होते हैं। (गीता १२।३-४) इसके विपरीत सगुण-साकारकी उपासना करनेवालोंको देदीप्यमान ज्ञानकी प्राप्ति (गीता १०।९—११) और निर्गुण-निराकारकी उपासना करनेवालोंको पराभक्तिकी प्राप्तिके द्वारा सगुणका साक्षात्कार (गीता १८।५४-५५) बतलाया गया है।

इस प्रकार जो अलख-निरञ्जन राम हैं, वे ही दशरथ-तनय कौसल्यानन्दन राम हैं। किसी भी रूपमें हम उन्हें भजें, हमारा कल्याण निश्चित है।

इस दृष्टिसे भी सगुण-निर्गुण दो नहीं हैं।

रामचरित्रकी श्रेष्ठता

(सम्मान्य श्रीआर० आर० दिवाकर)

भारतमें भगवदुपासनाके लिये व्यक्तिकी रुचिके अनुसार नाम-रूप-रहित निराकारकी उपासनासे लेकर साकार-उपासनातक अनेक सही साधन-पथोंका प्राचीनतम कालसे विधान हुआ है। भगवान्‌के रूपोंकी संख्या प्रायः उतनी है, जितनी कल्पनामें आ सकती है। भगवान्‌के अवतार दस हैं और किन्हीं-किन्हीं पुराणोंमें चौबीस अवतारोंका उल्लेख मिलता है।

प्रत्येक साधक अथवा भक्त अपनी व्यक्तिगत इच्छाके अनुसार अपने इष्टदेवका चुनाव करनेमें स्वतन्त्र है; पर ऐसा माना गया है कि वह इष्टदेवता उस एकमात्र सर्वशक्तिमान् प्रभुका प्रतीक है, जो समस्त सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन एवं प्रलयका नियमनकर्ता है।

सभी अवतारोंमें राम और कृष्ण सर्वाधिक लोकप्रिय तथा विश्वमान्य रहे हैं। किसी परिवारविशेषमें जन्म लेने तथा किसी धर्मविशेषसे सम्बद्ध होनेके कारण एक व्यक्तिका परम्परागत इष्टदेव या देवता तथा देवीका स्वरूप जो भी रहा हो, हिंदूमात्र राम और कृष्णके सामने नतमस्तक हैं। पुनः इन दोनोंमेंसे कृष्णकी अपेक्षा रामका बहुत अधिक लोगोंपर प्रभाव पड़ा है; क्योंकि उनका चरित एक उच्चकोटिके मानवका है, जिसमें कृष्ण-चरित्र-जैसी कोई जटिलता नहीं है

एक वीतराग श्रीरामभक्त संतके सदुपदेश

(प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

एक दिन हमने एक बड़े ही वीतराग, त्यागी, तपस्वी श्रीरामभक्त संतके श्रीचरणोंमें बैठकर उनसे श्रीरामभक्ति-सम्बन्धी जो सदुपदेश प्राप्त किये, वे पाठकोंके सामने रखे जा रहे हैं। आशा है, पाठक इन्हें बड़े ही ध्यानसे पढ़नेकी कृपा करेंगे?

प्रश्न—पूज्य महाराज! भगवान् श्रीराघवेन्द्र प्रभुकी प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है? वह साधन आप बतानेकी कृपा करें।

उत्तर—बेटे! यदि तुम परात्पर ब्रह्म भगवान् श्रीराघवेन्द्र प्रभुकी प्राप्ति करना चाहते हो तो निम्नलिखित बातोंपर अवश्य ही ध्यान दो—

(१) यदि तुम मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी प्राप्ति करना चाहते हो तो यह स्मरण रहे कि श्रीराम स्वयं मर्यादापुरुषोत्तम हैं, अतः उनको प्रसन्न करनेके लिये तुम भी मर्यादानुसार चलो। तभी तुमसे मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराघवेन्द्र प्रभु प्रसन्न हो सकेंगे।

× × ×

(२) याद रक्खो, मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम बड़े ही ब्रह्मण्य हैं और पूज्य भूदेव ब्राह्मणोंके अनन्य भक्त हैं। प्रभु श्रीराम ब्राह्मणोंके सम्बन्धमें श्रीमुखसे स्पष्ट कहते हैं—

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥
सानुकूल तेहि पर सब देवा। जो तजि कपटु करइ द्विज सेवा॥
(मानस ७। ४४। ४)

इसलिये यदि तुम श्रीरामभक्त बनना चाहते हो तो सदा-सर्वदा पूज्य ब्राह्मणोंका सेवा-सत्कार, मान-सम्मान करते रहना। इससे प्रभु श्रीराम बहुत जल्दी प्रसन्न हो जायँगे।

× × ×

(३) कलिका समय महाभयंकर है। इसमें भगवान् श्रीरामकी प्राप्ति एकमात्र श्रीराम-राम जपनेसे ही हो जायगी, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। पर मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम राम-नाम जपनेवालोंमेंसे उसीसे प्रसन्न होंगे, जो श्रीरामनाम मर्यादानुसार जपेगा।

× × ×

(४) मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके भक्त होकर मर्यादाका उल्लङ्घन करके जो अभक्ष्य (अंडे, मांस, मछली, प्याज, लहसुन, सलजम, बिस्कुट, डबलरोटी आदि) खाता है, उसकी भक्ति पल्लवित नहीं होती।

× × ×

(५) मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम एकपत्नीव्रतका पालन करनेवाले महान् जितेन्द्रिय थे और परस्त्रीकी ओर आँख उठाकर देखना भी घोर पाप मानते थे। जो मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामको प्राप्त करना चाहता है, उसे भूलकर भी कभी परस्त्रीसे कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये—

जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहुँ कि रहि सकैं रवि रजनी इक ठाम॥

× × ×

(६) मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम वर्णाश्रम-धर्मकी रक्षाके लिये अवतरित हुए थे। यदि मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामको प्राप्त करना चाहते हो तो वर्णाश्रम-धर्मको मानो।

× × ×

(७) मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका नाम स्त्री-पुरुष, बच्चा-बूढ़ा, गरीब-अमीर, विद्वान्-मूर्ख—सभी ले सकते हैं और सभीको श्रीरामनामामृत-पान करनेका अधिकार है। स्त्री खूब श्रीरामनाम ले, पर यह स्मरण रखे कि वह नाम-कीर्तनके द्वारा जिनको प्रसन्न करना चाहती है, वे भगवान् श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम हैं। स्त्री श्रीरामका नाम लेकर यदि अपने पातिव्रत-धर्मका पालन नहीं करती, पतिकी अवहेलना करती है और पाखण्डी साधु-संतोंके पैरोंको दबाती है, ऐसी कुलटा स्त्रीसे भगवान् श्रीराम प्रसन्न नहीं होंगे। जो अपने पवित्र पातिव्रत-धर्मका पालन करती हुई श्रीरामनाम लेती है, भगवान् श्रीराम उसी स्त्रीसे प्रसन्न होते हैं।

रामायणके आदर्श—राम, लक्ष्मण और हनुमान्

(महामना श्रीमदनमोहन मालवीय)

श्रीरामकी अनुपम उदारता—मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र जब वनमें भक्तिन शबरीके आश्रममें पहुँचे, तब उन्होंने उससे घृणा नहीं की; क्योंकि भिल्नी बाह्य और आभ्यन्तर शुद्धि तथा भक्तिभावसे समन्वित थी। भगवान्ने उस बुढ़ियाकी कुटियामें जानेमें जरा भी संकोच नहीं किया।

श्रीलक्ष्मणका आदर्श—जब मेघनादके विषयमें श्रीरामचन्द्रजीको चिन्ता हुई कि उसे कौन मारेगा; तब इस कार्यको लक्ष्मणने किया, जिनकी सीताजीके चरणपर दृष्टि पड़ी थी, पर मुखकी तरफ जिन्होंने नहीं देखा था।

श्रीहनुमान्जीकी मूर्ति-स्थापना—महावीरजी मनके समान वेगवाले और शक्तिशाली हैं।''मेरी हार्दिक इच्छा है कि उनका दर्शन लोगोंको गली-गलीमें हो। मुहल्ले-मुहल्लेमें हनुमान्जीकी मूर्ति स्थापित करके लोगोंको दिखलायी जाय। जगह-जगह अखाड़े हों; जहाँ ये मूर्तियाँ हों।

राम-नामका अद्भुत प्रभाव

(महात्मा गांधी)

रामनामके प्रतापसे पत्थर तैरने लगे, रामनामके बलसे वानर-सेनाने रावणके छक्के छुड़ा दिये, रामनामके सहारे हनुमान्ने पर्वत उठा लिया और राक्षस (रावण)के घर अनेक मास रहनेपर भी सीता अपने सतीत्वको बचा सकी। भरतने चौदह सालतक प्राण धारण कर रखा; क्योंकि उनके कण्ठसे रामनामके सिवा कोई दूसरा शब्द नहीं निकलता था। इसीलिये तुलसीदासजीने कहा है कि 'कलिकाल-का मल धो डालनेके लिये रामनाम जपो।'

मेरा विश्वास है कि रामनामके उच्चारणका विशेष महत्त्व है। अगर कोई जानता है कि ईश्वर सचमुच उसके हृदयमें बसता है तो मैं मानता हूँ कि उसके लिये मुँहसे रामनाम जपना जरूरी नहीं है। लेकिन मैं किसी ऐसे आदमीको नहीं जानता। उलटे, मेरा अपना अनुभव कहता है कि मुँहसे रामनाम जपनेमें कुछ अनोखापन है। क्यों या कैसे—यह जानना आवश्यक नहीं है।

अनुकरणीय एवं आदर्श श्रीसीताराम

(महामहिम श्रीवराह व्यंकट गिरि महोदय)

राम एक ऐसे आदर्श पुरुष हैं, जो किसी भी परिस्थितिमें धर्म-पथसे विचलित नहीं होते। ईश्वरकी आराधना सदासे ही मैं रामके रूपमें करता हूँ। सीताका चरित्र एक उच्च आदर्श है, जो हमारी महिलाओंके लिये अनुकरण करने योग्य है। मेरा विश्वास है कि सीताका मनोबल, उनके चरित्रकी पवित्रता और उनकी धर्मपरायणता सबके लिये प्रेरणास्रोत बनेंगे।

परतत्त्व श्रीराम

(लेखक—श्रीस्वामीजी महाराज, श्रीपीताम्बरापीठ)

नाम-रूपात्मक इस दृश्यमान जगत्के अन्तःस्थित अपनी आनन्दशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिद्वारा जो रमण कर रहा है, उसे ही संत-महात्माओंने 'राम' शब्दसे अभिहित किया है। व्याकरण-शास्त्रमें 'रमु क्रीडायाम्' इस धातुसे 'राम' शब्दकी निष्पत्ति करके उक्त अर्थकी सिद्धि की गयी है। वैदिक साहित्यमें जिसे 'परब्रह्म परमात्मा' कहा गया है, उसका ही बोध 'राम' शब्दसे होता है। हिंदूधर्मके भिन्न मतोंमें परब्रह्म-तत्त्वकी प्राप्तिके साधन एक ही प्रकारके माने जाते हैं (जैसे इस्लाम-ईसाई आदि मतोंमें हैं), परंतु हिंदूधर्ममें ऐसी बात नहीं है।

हिंदूधर्ममें साधकोंकी प्रवृत्ति एवं स्वभावके अनुसार अनेक प्रकारसे परमात्माकी प्राप्ति मानी गयी है और प्राप्तव्य तत्त्व एक होनेसे भेदजन्य विवादको समाप्त किया गया है। इसे 'शिव महिम्नस्तोत्र'में इस प्रकार कहा गया है—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥
(शिव म० ७)

'भगवन्! वेद, सांख्य, योग, पाशुपत (शैव), वैष्णव आदि मतवादी सिद्धान्त अपने ही सिद्धान्तोंको श्रेष्ठ एवं दूसरे मतोंको हीन बताते हैं। वास्तवमें ये सब एक आपकी ही ओर जा रहे हैं। सबकी प्राप्तिके स्थान आप ही हैं, जैसे अनेक प्रकारसे प्रवाहित नदियाँ अन्तमें समुद्रको ही प्राप्त होती हैं।' उपनिषद्में भी ऐसा ही कहा गया है—

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे
अस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥
(मु० ३। २। ८)

'जैसे नदियाँ बहती हुई समुद्रमें जाकर एक हो जाती हैं, इसी प्रकार विद्वान् भेदरहित परात्पर परमात्माको प्राप्त हो जाता है।' इन प्रमाणोंसे यही सिद्ध होता है कि उसी एक तत्त्वको सभी साधक प्राप्त होते हैं।

रामोपासनाके प्रकार

कबीर, दादू, नानक आदि संतोंने श्रीरामतत्त्वका स्वरूप निर्गुण-निराकार बताया है, नादबिन्दुकलातीत परमतत्त्व श्रीरामकी प्राप्तिका साधन भी उन्होंने योगको ही प्रधानरूपसे बताया है। दादू एवं नानकने राम-नामके विषयमें भी बहुत कुछ कहा है। नाद-सिद्धान्तमें 'सोऽहं' शब्दसे ॐकार एवं ॐकारसे 'राम' शब्दका आविर्भाव माना गया है। कुण्डलिनी-शक्तिके उत्थानद्वारा षट्चक्र-भेदनके अनन्तर गुरुतत्त्वकी सहायतासे राम-तत्त्वकी प्राप्ति करके जीव कृतकृत्य होता है। ये विषय संत-साहित्यमें विशेषरूपसे कहे गये हैं। यहाँ उसका सारमात्र दिया गया है।

सगुण-साकारस्वरूप

परमतत्त्व श्रीराम-तत्त्व सगुण है या निर्गुण, यह विवाद-का विषय है। निर्गुणवादी उसे 'निर्गुण' एवं सगुणवादी उसे 'सगुण' मानते हैं। सगुणवादियोंका कहना है कि 'कोई वस्तु निर्गुण नहीं हो सकती; गुण ही वस्तुका परिचायक है। बिना गुणके कोई वस्तु नहीं हो सकती, इसलिये किसी वस्तुको निर्गुण नहीं कहा जा सकता। गुणोंकी सूक्ष्म अवस्था ही 'निर्गुण' नामसे कही जा सकती है। गुणोंका सर्वथा अभाव, निर्गुणका अर्थ नहीं हो सकता; कारण, अभावसे भाव नहीं होता। श्रुतिमें निर्गुण एवं सगुण तत्त्वोंको 'असम्भूति' एवं 'सम्भूति'के नामसे कहा गया है—

ईशावास्योपनिषद् (१२, १४) में कहा गया है—

'जो केवल सम्भूति (सगुण) की उपासना करते हैं, वे अँधेरेमें चले जाते हैं। इसके विपरीत जो केवल असम्भूति (निर्गुण) की उपासना करते हैं, वे सगुणोपासककी अपेक्षा भी अधिक अँधेरेमें चले जाते हैं। जो समन्वयरूपसे दोनोंकी उपासना करते हैं, वे सगुणोपासनासे मृत्युको पार करके निर्गुण-उपासनासे अमृत या मोक्ष प्राप्त करते हैं।' इसलिये दोनों स्वरूपोंका समन्वय-रूप ही यथार्थ है। वैष्णव-भावको लक्ष्य करके परम प्रेमास्पद सगुणस्वरूप

श्रीभगवान् नारायण चतुर्व्यूहरूपमें व्यक्त हुए हैं, जो वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध नामसे कहे जाते हैं। रामावतारके समय प्रकट हुए स्वरूपोंमें राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्नके रूपोंमें उक्त चतुर्व्यूहका निर्देश किया गया है। ये चारों व्यूह मूलमें एक ही परमतत्त्वके रूपान्तर हैं। परमतत्त्वके साथ पराशक्ति भी अपने वैशिष्ट्य-रूपसे आविर्भूत होती है। उसे ही लक्ष्मी, सीता आदि नाम दिये गये हैं। जब-जब धर्मकी हानि, दुष्टोंकी वृद्धि एवं साधु पुरुषोंको कष्ट होता है, तब-तब श्रीनारायण अवतार लेते हैं। उसे ही 'साकार' संज्ञा दी गयी है। सगुण रूपके अनन्तर ही साकार रूपकी श्रेणी है। सगुण और साकार रूपमें अभिन्नता है, इसीलिये गीता (९। ११)में कहा गया है—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥

'मूढलोग मनुष्यरूपमें मुझे देखकर मेरे भूतोंके महेश्वर-रूप परमभावको न समझते हुए मेरा तिरस्कार करते हैं।'

ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्तिकी प्रधानताको लेकर श्रीराम-तत्त्वका अवतार है, जिसे महर्षि वाल्मीकिने अपनी रामायणमें निरूपित किया है। व्यवहारमें मनुष्यको कैसा वर्ताव करना समुचित है, इसे बतानेमें महर्षि वाल्मीकिने कोई कमी नहीं रक्खी है। माता, पिता, गुरु, आचार्य, प्रजा आदिके प्रति रामके आचरणका निरूपण अद्वितीय है। यह सब निरूपण साकार ब्रह्मके ही निरूपणके अन्तर्गत आता है। बादमें श्रीगोस्वामी तुलसीदासने सगुण एवं निर्गुण-ब्रह्मका निरूपण करके इसे पूर्ण कर दिया है।

श्रीभगवती पार्वतीने श्रीशंकरजीसे एक दिन पूछा कि 'भगवन्! आप रामनामके महत्त्वमें कुछ कहिये', तब भगवान्ने इसे एक श्लोकमें ही इस प्रकार बताया है—

रामरामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥
(पद्मपुराण)

अनन्यता

रामही को दास मैं हौं, रामही की आस मोहि,
राम दुख नास मम वास खास धाम हौं॥
रामही की पूजा मेरें, राम बिन दूजा नाहिं,
सीताराम सरन रहौं मैं आठौ जाम हौं॥
रामही को ध्यान मेरें, रामही को ग्यान, 'रस-
रंग' सख्य अभिमान राम को गुलाम हौं॥
राजपद ठाम मेरे, रामही को काम मेरे,
मागों सीताराम ही सों रट सो राम राम हौं॥
जाग मेरे राम, भूरि भाग मेरे राम, गीत
राम मेरे, राम अनुराग, रस राम हैं।
धीर मेरे राम, वर वीर मेरे राम,
हर पीर मेरे राम, धनु तीर धर स्याम हैं॥
दानी मेरे राम, सत्यबानी मेरे राम, सिया-
रानी रत राम, सुख खानी, शील धाम हैं,
तात मेरे राम मञ्जु, मात मेरे राम, भल
भ्रात मेरे राम, सरवस रामनाम हैं॥

भगवान् श्रीराममें भगवत्ता एवं मानवताका परमाश्चर्यमय समन्वय*

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि ।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि ॥
(मानस १ । ७)

यह हमारी संस्कृतिकी एक महान् देन और हमारे ऋषि-मुनियोंके दिव्य ज्ञाननेत्रोंद्वारा अनुभूत सत्य है, जो वे मानवमात्रमें ही बन्धुत्वके दर्शन नहीं करते, चेतन-अचेतन प्राणी-पदार्थमात्रमें केवल बन्धुत्वके ही नहीं, अपने आत्माके, यहाँतक कि भगवान्के दर्शन करते हैं तथा सबको अनन्यभावसे प्रणाम करनेकी बात कहते हैं। श्रीमद्भागवतमें आया है—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन् ।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किं च भूतं प्रणमेदनन्यः ॥

—'यह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, प्राणी, दसों दिशाएँ, वृक्ष-लता, नदी-समुद्र—सभी श्रीहरिके शरीर हैं। सभी रूपोंमें स्वयं भगवान् ही प्रकाशित हैं, यह जानकर सभीको अनन्य भगवद्भावसे प्रणाम करें।' गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कहते हैं—

'सीय राममय सब जग जानी । करउ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥'
(मानस १ । ७ । १)

इस सर्वात्ममयी सर्वतोमुखी भारतीय आर्य-संस्कृतिके प्राण जिस केन्द्रमें नित्य-प्रतिष्ठित हैं, वह केन्द्र है—रामायण और महाभारत। इन दो महाग्रन्थोंमें जो एक ही साथ सत्य इतिहास और सर्वलक्षणसमन्वित महाकाव्य भी है, साध्यस्वरूप, ज्ञान-विज्ञान-शास्त्र और परम साधन-शास्त्र, मोक्षशास्त्र और प्रेमभक्तिशास्त्र, धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र और समाज-नीति-शास्त्र—सभीका सर्वाङ्गसुन्दर निरूपण है। इन महान् ग्रन्थरत्नोंने अन्यान्य पुराण-शास्त्रोंके सहयोगसे भारतके अमर ज्ञान-भंडार वेद और उपनिषद्, आगम और दर्शनशास्त्रोंके अमूल्य सुधासारका संकलन करके उसे सर्वग्राही, सरल तथा सर्वाकर्षक भाषासौन्दर्यसे सजाकर बड़े ही विशद रूपमें प्रवाहित किया है। इसीसे समाजके उच्चतम स्तरकी आध्यात्मिक संस्कृति साधारण स्तरतकमें अबाधरूपसे अक्षुण्ण बनी हुई है। सहस्रों वर्षोंसे इस विशाल भारत महादेशके सभी प्रान्तोंके महान् आचार्य, महाकवि, धर्मनेता, महा-राष्ट्रनायक, महान् राजनीतिविशारद एवं समाज-व्यवस्थापक—सभी इन महाग्रन्थोंके आदर्शसे उद्दीप्त तथा अनुप्राणित होकर अपनी-अपनी असाधारण प्रतिभाके द्वारा समाजको विभिन्न प्रकारसे लाभ पहुँचाते रहे हैं और सभी श्रेणियोंके नर-नारियोंके हृदय, मन तथा व्यावहारिक जीवनमें इनकी अनुपमेय अमिट छाप पड़ी हुई है।

रामायण तथा महाभारतके भगवान् श्रीराम एवं श्रीकृष्णके महान् दिव्य रूपमें सनातन भारतके नित्य सत्य, स्वप्रकाश आत्मपुरुषकी ही सर्वचित्तचमत्कारी अनन्ताचिन्त्य महिमासे मण्डित लीलामयी अभिव्यक्ति है। इन दोनोंके चरित्रोंमें पूर्ण भगवत्ता एवं पूर्ण मानवताका परमाश्चर्यमय समन्वय है।

श्रीराम और श्रीकृष्ण परिपूर्णतम भगवान् हैं और साथ ही पूर्ण मानव भी हैं। उनके लीलाचरित्रमें जैसे एक ओर भगवत्ताका अशेष वैचित्र्यमय लीला-विलास है, वैसे ही दूसरी ओर मानवताका परमोत्कर्ष प्रकाश है, अनन्त ऐश्वर्यके साथ अपरिसीम माधुर्य, अनन्त वीर्यके साथ मुनि-मन-मोहन अनुपम नित्य नवसौन्दर्य, वज्रवत् न्याय-कठोरताके साथ कुसुमवत् प्रेम-कोमलता, विश्वव्यापिनी विशाल यश-कीर्तिके साथ निस्सीम सम्यक् निरभिमानिता, विचित्र अनन्त कर्ममय जीवनके साथ सम्पूर्ण वैराग्य और उपरति, समस्त विषमताओंके साथ नित्य सहज समता—इस प्रकार अगणित परस्पर-विरोधी भावों और गुणोंका युगपत् विलास है।

इन श्रीराम और श्रीकृष्णके लीला-चरित्रोंका श्रद्धा-भक्तिके साथ अध्ययन चिन्तन तथा विचार करनेपर साधारण नर-नारीको भी सर्वमय, सर्वातीत, सर्वगुणगणसमन्वित सर्व-गुणरहित, अखिलानन्तविश्वस्रष्टा, अखिलविश्वव्यापी,

---

* 'श्रीरामायण विद्यापीठ', दिल्लीके तत्त्वावधानमें आयोजित 'श्रीरामायण-सम्मेलन' के अवसरपर चैत्र शुक्ल १३, सं० २०१७ को प्रदत्त उद्घाटन-भाषणका एक अंश।

नित्य-विश्वातीत, सर्वलोकमहेश्वर श्रीभगवान्‌को अपने अत्यन्त निकट अनुभव कर सकते हैं और उन्हें अपने अत्यन्त परम आत्मीय निजजनके रूपमें प्राप्त कर सकते हैं। इन मानवलीला-विलासी भगवान्‌का चिन्तन करते-करते मनुष्य सहज ही भगवद्भावसे भावित होकर परम दुर्लभ भागवत-जीवनकी उपलब्धि कर सकता है।

श्रीराम और श्रीकृष्णके रूपमें रामायण और महाभारतने मनुष्यको उसके अत्यन्त संनिकट अवतरित सच्चिदानन्द परात्पर भगवान्‌के मधुर मनोहर दर्शन कराये हैं और उसको भगवान्‌के अतिशय सांनिध्यमें पहुँचाकर धन्य कर दिया है। श्रीराममें भगवान् और मनुष्यकी, नारायण और नरकी दूरी दूर होकर नारायणके अंदर नरके नित्य परिपूर्ण स्वरूपका परिचय प्राप्त होता है। भगवान् और मनुष्यके भेदकी आड़में भगवान्‌के नरोत्तमत्व या पुरुषोत्तमत्व और मनुष्यके पारमार्थिक भगवत्स्वरूपका परिचय-प्रदान समग्र मानवजातिके लिये भारतीय संस्कृतिका एक अत्याश्चर्यमय अपूर्व महान् आविष्कार है। भगवान् पुरुषोत्तमने श्रीराम और श्रीकृष्णके रूपमें प्रकट होकर, मनुष्योंमें उतरकर समस्त भारतके हृदयपर नित्य प्रभुत्वकी प्रतिष्ठा कर दी है और समग्र भारतीय संस्कृतिको अध्यात्म-भावोंसे अनुप्राणित कर दिया है। केवल भारतकी राष्ट्रीय सीमाके अंदर ही नहीं, किसी भी देशमें, जहाँ भी भारतीय संस्कृतिने अपना प्रभाव-विस्तार किया, सर्वत्र ही श्रीराम और श्रीकृष्णकी लीला-कथाने जनताके हृदयपर अधिकार स्थापन किया है और भगवान्‌को मनुष्यके अत्यन्त समीप लाकर उपस्थित कर दिया है।

भारतकी प्रायः सभी भाषाओंमें श्रीरामचरित और श्रीकृष्णचरितके आधारपर विविध-विचित्र रस-साहित्यका सृजन हुआ है। भगवान् श्रीरामपर सृष्ट साहित्यमें—मेरी दृष्टिमें श्रीरामचरितमानस सबसे विलक्षण है। यह बेजोड़ ग्रन्थ अपने युगके महान् भक्त, महान् ज्ञानी, महान् उदारचेता महाकवि प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजीकी अमर कीर्ति है। यह एक ऐसा सर्वोपयोगी, सबके लिये महान् आदर्श प्रदर्शित करनेवाला, निर्दोष तथा परम पवित्र ग्रन्थ है, जिसने चिन्मय नराकृति परब्रह्म परात्पर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रको सभी श्रेणियोंके नर-नारियोंके हृदयमें समस्त अवतारोंके मूल परम देवताके रूपमें और साथ ही अत्यन्त निकटस्थ परम आत्मीयके रूपमें नित्य प्रतिष्ठित एवं शिक्षित-अशिक्षित, आबालवृद्धवनिता—सभीके जीवनको विशुद्ध राम-भक्ति तथा रामप्रेमके दिव्य मधुर सुधारससे अभिषिक्तकर अपना अद्भुत प्रभाव-विस्तार किया है। किसी भी युगका, किसी भी देशका कोई भी एक ग्रन्थ इस प्रकार अपना सार्वभौम आध्यात्मिक प्रभाव-विस्तार करके सबके द्वारा समादर प्राप्त नहीं कर सका है।

इस विचित्र चमत्कारमय 'श्रीरामचरितमानस'के राम मर्यादारक्षक, सर्वसद्गुणसम्पन्न, परम आदर्श मानव-शिरोमणि होनेके साथ ही सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, स्वमहिमामें स्थित महा-मानव हैं और साथ ही वे सच्चित्प्रेमानन्दघन, अवतारी, अचिन्त्यमहिम, चिदानन्दविग्रह श्रीभगवान् हैं। श्रीतुलसीदासजीने अपने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके जागतिक प्राकृतिक लीलाविलासमें ही गुणातीत, लोकातीत, निर्विकार, निराकार, नित्यनिरञ्जन, प्रकृतिपर, अज, अविनाशी, 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं-समर्थ' भगवान्‌की अचिन्त्य, अनादि, अनन्त ऐश्वर्य-माधुर्यमयी दिव्यलीलाके दर्शन किये हैं और उसे अपने सुन्दर मनोहर शब्दोंमें सबके लिये हृदयग्राही बनाकर सबमें वितरण किया है। वे अपने रामका परिचय देते हुए कहते हैं—

सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज बिग्यानरूप बलधामा॥
ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघ सक्ति भगवंता॥
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता॥
निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा॥
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी॥

(मानस ७। ७१। २-३½)

श्रीरामचरितमानसके श्रीराम केवल उपर्युक्त ब्रह्म ही नहीं हैं, वरं अनन्त महाविष्णु और शिवके मूल अंशी हैं और उन्हींके अंशसे नाना त्रिदेवोंका उदय होता है और उनकी अर्द्धाङ्गिनी सीताके अंशसे ही अगणित रमा, उमा और ब्रह्माणीका प्राकट्य होता है—

'संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना॥'

× × ×

'जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥'

(मानस १। १४३। ३; १४७। १½)

इन प्रभु श्रीरामका दिव्य मङ्गलमय शरीर पाञ्चभौतिक

नहीं, वरं सच्चिदानन्दमय, सर्वथा निर्विकार, मायागुणरहित और स्वेच्छासम्भूत सत्य नित्य चिद्घन-विग्रह है—

'चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥'

(मानस २। १२६। २½)

'निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार।'

(मानस १। १९२)

'सोइ सच्चिदानंदघन कर नर चरित उदार॥'

(मानस ७। २५)

'जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।'

(मानस ७। १२। १)

अनन्य रामभक्त श्रीगोस्वामीजीने श्रीरामचरितमानसमें परमाराध्य भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे अपने भक्तिपूत हृदयके समस्त प्रेमभक्तिरसको छन्दोमयी सुललित सहज 'ग्रामीण' भाषामें अभिव्यक्त करके अपने परमसेव्य भगवान् श्रीरामचन्द्रके लौकिक और अलौकिक गुणोंका, उनकी मधुर-मनोहर प्राणोन्मादकारी परम आदर्श लीलाओंका और उनके परिपोषकरूपमें उनके ऐकान्तिक सेवक तथा भक्तोंके एवं मित्रभावान्वित तथा शत्रुभावान्वित लीला-सहचरोंके अशेष विचित्र चरित्रोंका यथास्थान बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। 'श्रीरामचरितमानस'के श्रवण, मनन और चिन्तनसे नितान्त संसारमलिन, असदाचारी, विषयासक्त, कठोर-हृदय मनुष्य भी पवित्र-विचारपरायण, सदाचारी होकर निर्मल प्रेम-भक्ति-रस-धारासे प्लावित हो सकता है। इसमें साधारण नर-नारियोंके लिये आचरण करनेयोग्य पारिवारिक धर्म, सामाजिक धर्म और पूर्ण मानवताके विकासके अनुकूल अन्यान्य सर्वविध धर्मके आदर्शोंका अत्यन्त सुनिपुणरूपसे सरल भाषामें सरस वर्णन है। इस ग्रन्थमें हमें आदर्श गुरु; आदर्श शिष्य; आदर्श पिता; आदर्श माता; आदर्श पुत्र; आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श पत्नी, आदर्श स्वामी, आदर्श सेवक, आदर्श धर्मनीति, आदर्श समाजनीति; आदर्श सत्यपरायणता, आदर्श त्याग, आदर्श प्रेम, आदर्श सेवा, आदर्श वीरता, आदर्श क्षमा और आदर्श दान आदि सम्पूर्ण आदर्शोंके प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। इसीसे यह ग्रन्थ सर्वप्रिय है। इसीसे सम्पूर्ण लोकोत्तर गुणोंके अटूट भंडार इस 'श्रीरामचरितमानस'का सर्वत्र समादर है और वह क्रमशः बढ़ रहा है।

'श्रीरामचरितमानस' वाञ्छा पूर्ण करनेमें कल्पवृक्षसे भी बढ़कर समर्थ है। कल्पवृक्ष मनुष्यकी मलिन इच्छाके अनुसार उसे अनिष्टकर वस्तु भी दे सकता है, परंतु 'मानस' तो सदा मङ्गलमय वस्तु ही प्रदान करता है। 'मानस'की चौपाइयोंको मन्त्रवत् मानकर उनका जप-पारायण किया जाता है और लोग उसके आश्चर्यमय परिणामको प्राप्त करके चकित रह जाते हैं।

हम ऐसे ग्रन्थरत्नके परायण हों और भगवान् श्रीरामकी परमाश्चर्यमयी भगवत्ता एवं मानवताके दर्शन करें।

प्रार्थना

पाइ रस जौन सिद्ध पारद महेस नितै
मुक्त भव-रोग तैं करैं हैं अविमुक्त धाम।
तुलसी-ससी की कला माहिं लसी जाकी सुधा
सींचि वसुधा कौ अविराम करै पूर्नकाम॥
रामरस नोनो सबै जा बिन अलोनो,
मधु अच्छर प्रतच्छ रसने! तूँ लेइ आठो जाम।
राम राम, राम राम, राम राम, राम राम,
राम राम, राम राम, राम राम, राम राम॥
दो०—साँच सबै दिन, सबै बिधि, उलटो-सीधो साँच।
राम नाम सुफलहिं फलै चाहे जैसे बाँच॥

—[illegible]

धर्मके शाश्वत स्तम्भ—श्रीराम

(लेखक—स्व० श्रीकन्हैयालाल माणेकलाल मुंशी)

विश्व-इतिहासपर दृष्टि डालें तो मालूम होगा कि प्रत्येक राष्ट्र किसी निश्चित आदर्शपर टिका होता है और उसका प्रयत्न अपने लोकजीवनमें इस आदर्शको स्थापित करनेकी ओर रहता है। ग्रीक लोगोंने सौन्दर्यभावनाकी प्रतिष्ठा की, रोमन जनताने न्यायके आदर्शको स्वीकार किया, स्पार्टाने शक्तिकी आराधना की, कानूनके शासनको अंग्रेजोंने प्रधानता दी। इसी प्रकार रोमन युगके पहले हमारे भारतवर्षमें जीवन धर्मसे प्रेरित था। इस धर्ममें मानव-समाजके सभी उत्तम अंशोंका समावेश हो जाता था।

वेद और उपनिषदोंमें शाश्वत सत्योंका वर्णन तो था; परंतु सामान्य मनुष्यके धरातलपर उन्हें ले आनेकी आवश्यकता थी। इसीलिये पृथ्वीपर सत्यका अवतार श्रीराम-रूपमें हुआ। राम लोकरञ्जक बने।

'धर्म' भारतीय संस्कृतिका एक संकेत-शब्द है। मानव-जीवन और कार्यमें भौतिकता और आध्यात्मिकताके बीच सेतुका काम वह करता है। धर्म मनुष्यको पूर्ण बनाता है, जीवनके समस्त अङ्गोंका समन्वय कराना सिखाता है, व्यक्तिको उन्नत बनाता है और सभीके कल्याणका मार्ग प्रशस्त करता है।

रामायणके श्रीराम मनुष्य-जीवनमें धर्मके शासनका समर्थन करनेवाले एक आदर्श उदाहरण बन गये हैं। उनके मनमें धर्मके प्रति किसी प्रकारकी ढिलाई या उसकी क्षति असह्य है। रामने स्वयं अपने लिये भी उग्र आचरणसंहिता रची थी और अपने स्वजनोंसे भी वे इसी आचारदृढ़ताकी अपेक्षा रखते थे। एक बार दिये जा चुके वचनके पालनमें वे किसी व्यक्तिगत भावनाको विघ्नस्वरूप नहीं बनने देते थे। उन्होंने अपनी मातासे भी मृदुताके साथ कहा था—'इस समय आपका धर्म आपके पतिको सान्त्वना देना है।' आमरण उपवासकी धमकी देनेवाले भाईको वे कहते हैं कि 'यह क्षत्रियका स्वधर्म नहीं।'

वाल्मीकि किसी एकाकी सत्यका दर्शन हमें नहीं कराते, बल्कि उनकी कृतिमें प्रतिबिम्बित सत्य असाम्प्रदायिक और उदार स्तरका है। वह सामान्य जनको उसके दैनन्दिन जीवनमें स्पर्श करता है; उसके समाजको, उसकी अर्थ-व्यवस्था और राजनीतिके साथ-साथ उसकी नीतिसंहिताको भी स्पर्श करता है; युद्ध और शान्ति, साध्य और साधन तथा वानर-भालू—यहाँतक कि गिलहरी-जैसे मानवेतर प्राणीको भी स्पर्श करता है।

श्रीरामके संदर्भमें वाल्मीकि दो अभिव्यक्तियोंका उपयोग करते हैं। वे रामको 'सत्यवाक्य' तथा 'दृढ़व्रत' कहते हैं। जिस प्रकार ऋत ब्रह्माण्डकी व्यवस्थाका सूचक है, उसी प्रकार सत्य धर्मका आधार है। मानवके जीवन और आचारमें 'ऋत' सत्यके संकेतद्वारा अवतरित होता है। यदि मनुष्य सत्यसे चले तो ब्रह्माण्ड डोल उठे। इसलिये एक बार गांधीजीने एक धरणीकम्पको मानवके पापका परिणाम बताया था। मुझे याद है कि तमिळ कवि कंबन्‌की कृतिमें हनुमान् रामसे कहते हैं—'रावण सीताका स्पर्श नहीं कर सका। यदि उसने उनका स्पर्श कर लिया होता तो आकाशसे तारे टूट पड़ते और महासागरोंका जल उलट जाता।' इस प्रकार विश्वव्यवस्था नीतिव्यवस्था-पर आधारित होती है और जब भी मनुष्य धर्मकी मर्यादाको तोड़ देता है, तब वह आपत्तियोंको ही आमन्त्रण देता है।

श्रीरामने कभी दुहरी नीति नहीं अपनायी। कैकेयी भी इस बातको स्वीकार करती है। रामके जीवनका आधार ही सत्य है। जो वचन एक बार मुखसे निकल गया, वह उनके मन पवित्र हो जाता है। जब सीताने उनसे पूछा कि 'दण्डकारण्यके राक्षसोंके विरुद्ध लड़ने आप क्यों जाते हैं?' तो उन्होंने उत्तर दिया—'मैंने ऋषियोंको वचन दिया है; और प्राणान्त हो जाय तो भी मुझे अपने वचनका पालन करना ही होगा। अपने प्राण, सीता या लक्ष्मणको भी छोड़ना पड़े तो मैं छोड़ दूँगा, पर अपने दिये गये वचनोंको कभी नहीं छोड़ सकता।' जब लक्ष्मणने इन्द्रजित्‌के सामने शस्त्रसंधान किया, तब अपनी पूरी शक्ति उसमें लगाकर और श्रीरामके सत्यसे, उसे अनुप्राणित कर शस्त्र छोड़ा।

मानव-जीवनमें सत्यकी प्रतिष्ठा करनेके लिये कोई भी बलिदान देनेको वे तैयार थे। पितासे उन्होंने माता कैकेयीको दिये गये वचनोंका पालन करनेका ही साग्रह अनुरोध किया। सत्य और वचनपालनके सामने उन्होंने राजगद्दीको तुच्छ माना। धर्मके सिक्केकी एक ओर सत्य है तो दूसरी ओर

त्याग। धर्मपर अडिग रहनेके रामके अटल निश्चयको भरतकी हजार युक्तियाँ और महर्षि जाबालिकी अनेक उक्तियाँ भी नहीं डिगा सकीं। लोकापवादको शान्त करनेके लिये सीताका जो त्याग उन्होंने किया, उसमें भी रामकी विरक्त भावना ही प्रकट होती है। सीताकी पवित्रताकी ओर कोई उँगली न उठा सके, इसके लिये उन्होंने सीताको अग्निपरीक्षामें उतरने दिया। मनुष्य अपने जीवनमें शुद्ध और सच्चा रहे—यही पर्याप्त नहीं, जगत्को भी इसका पता चलना चाहिये कि वह शुद्ध और सच्चा है। जगत्को नीति और धर्मके राजमार्गपर ले जानेका यही एक उपाय है।

आज भी नीतिभ्रष्टताकी शक्तियाँ हमारे समकालीन जीवनमें बवंडर बनकर उतर रही हैं, हमारे दृष्टिकोणको विकृत कर रही हैं, हमारे आधारस्तम्भोंको ही हिला दे रही हैं। इस समय हमारे सनातनधर्मके चिरंतन आदर्शोंके प्रतीक श्रीरामके चरित्रसे हमें अपने जीवनके लिये प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये।

आज जिस भारतके प्रति हम गौरवका अनुभव करते हैं, वह रामायणके बिना कभी नहीं बन सकता था। रामायणकी दीप्तिके कारण ही पश्चिमी संसारका अणुत्रस्त मानव भारतकी ओर मानवताकी रक्षाके लिये एकमात्र आशाके रूपमें तथा आध्यात्मिक प्रकाश पानेके लिये देखता है। ('शक्तिदल' के सौजन्यसे)

श्रीसीता-राम और रामराज्य

(लेखक—वीतराग दिगम्बर जैन-मुनि १०८ श्रीविद्यानन्दजी महाराज)

बहुत समयसे रामके बारेमें कथाएँ सुनी और पढ़ी जाती हैं, पर हमलोगोंने उनकी ऊपरी बातोंको ही देखा है, श्रीरामका दर्शनशास्त्र नहीं देखा। रामका दर्शनशास्त्र क्या था? योगवासिष्ठमें श्रीराम कहते हैं कि 'मिथ्या ज्ञान एक विकार है और जबतक इसको यह जीव नहीं हटाता, तबतक वह स्वप्न-अवस्थामें रहता है। सम्यग्ज्ञानसे मनुष्यका मन और आत्मा ऊँचे उठते हैं तथा सम्यग्ज्ञानी संकटके समय भी विवेकसे काम लेता है और धैर्यको नहीं खोता। सम्यक्-ज्ञानसे ही सम्यक्-श्रद्धान होगा। जिस तत्त्वज्ञानपर तुमने श्रद्धान किया, उसे अपनी आत्मामें उतार लो। जिसे सम्यग्ज्ञानरूप बुद्धि प्राप्त हो गयी, उसके लिये विषयाभिनिवेश, आधि-व्याधि, मानसिक कष्ट एवं रोग दूरकी चीज हैं।

श्रीराम-कथा एशियाके सभी देशोंमें देखने-सुननेको मिलती है। श्रीरामकी महानता इसलिये नहीं है कि उन्होंने कोई युद्ध जीता; अपितु वे जितेन्द्रिय होनेके कारण अपने गुणोंसे महान् थे। जिस प्रकार उनका बाहरी आचरण सादगीका था, वे अन्तरङ्गसे भी उतने ही निर्मल थे।

जिस समय श्रीरामको उनके पिताजीने वनवासकी आज्ञा दी, तब उन्होंने 'पिताजीने मुझे दण्डकारण्यका राज्य दिया है।' यह कहकर अपने पिताकी आज्ञाको शिरोधार्य किया। आज तो भाई भाईकी और बेटा बापकी भी बात सुननेको तैयार नहीं।

श्रीराम तो वीतरागी तथा सम्यग् दृष्टि थे। कविवर दौलतरामके शब्दोंमें "जो क्रोध, मान, माया और लोभ-रूपी हाथीसे नीचे उतरकर आते हैं, उन्हींका नाम 'वीतराग' है।" भगवान् राम जन्मसे ही वीतराग थे। इसीलिये समस्त विश्व उनका अनुयायी है। वे किसी सम्प्रदायके नहीं। आदर्श व्यक्तिको सभी अपना कहनेको तैयार हैं; पर उनके गुण ग्रहण करनेको कोई तैयार नहीं।

आज हमने धर्मको संकीर्णताकी परिधिमें बाँध दिया है। हम अभीतक पुरानी गाथाओंमें ही फँसे हुए हैं। वह धर्म हमें नहीं चाहिये जिसको स्पर्श करनेसे वह नष्ट हो जाय। धर्म तो वह है, जिसके स्पर्शसे आत्मा ऊँचा उठता है; उसी प्रकार, जैसे पारसको छूकर लोहा भी सोना बन जाता है। यदि धर्मके नामपर हम लड़ें तो हमारा जीवन पशु-पक्षियोंसे भी बदतर है।

रामके तत्त्वज्ञानको जाननेसे हम भी 'राम' बन सकते हैं। रामचन्द्रजीने हमारी आत्माकी जड़ोंमें जो तत्त्वज्ञानरूपी जल दिया, उसे यदि हमने नहीं जाना तो यह जीवन बेकार है। ज्ञान तो अन्नके समान है। जैसे यदि खाया हुआ अन्न हजम नहीं होता तो बेकार है; उसी प्रकार यदि आत्मामें ज्ञानको हमने नहीं उतारा तो श्रीरामको क्या जाना? जिसे सम्यग्ज्ञानका सम्यक्-आलोक मिल जाता है, वह आत्मनिष्ठ और ब्रह्मनिष्ठ बन जाता है तथा वह एक दिन मोक्षको प्राप्त करके रहता है। सम्यग्ज्ञान साधनसे प्राप्त होता है। उसके

लिये आराधना करनी होगी। सम्यग्ज्ञान स्वयं ही प्रकाशमान है, उसे किसी प्रकाशकी आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार पूर्ण चन्द्रमाको देखकर बच्चे भी प्रसन्न होते हैं और सारे प्राणियोंको शीतलता मिलती है, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चारित्र्यसे सारे संसारमें सुखकी प्राप्ति होती है। यह सम्पूर्ण जगत् चेतनरूप है और इस चेतनरूप आत्माको स्वीकार करना ही हमारा मूल सिद्धान्त होना चाहिये।

योगवासिष्ठमें वाल्मीकि कहते हैं—'जिसे सम्यग् ज्ञानका आलोक प्राप्त हो जाता है, वह ज्ञेयमय हो जाता है—जैसे मदिरा पीनेवाला मदिरामय हो जाता है। उसकी आत्मामें त्रिलोकीके पदार्थ भले ही झलकें, वह उनसे निर्लेपभावसे रहनेके कारण निर्विकार रहता है।'

धीर व्यक्ति भयभीत नहीं होते। जो सप्तभयसे रहित हैं वही सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञानी है। निर्भय होना ही मोक्षमार्ग है। यही सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दृष्टि दीनताको पसंद नहीं करता। दीनताको मनमें बनाये रखना स्वस्थताका चिह्न नहीं। मनुष्य आत्मस्थ तभी हो सकता है, जब उसके अंदर दीनता न हो। स्वरूपाचरण यही है कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य प्राप्त हो जानेके बाद आत्मस्थ हो जाय। आत्मस्थ होनेके बाद ही मुक्ति मिलती है। वही व्यक्ति आत्मस्थ है, जो वज्रोंके घोषसे और हाथीकी चिग्घाड़से भी कम्पायमान न हो।

शान्ति प्राप्त करनेके लिये रागरहित होना आवश्यक है। जब न किसी वस्तुके ग्रहण करनेकी और न त्याग करनेकी इच्छा रहे, तभी पूर्णमुक्त होनेकी अवस्था समझनी चाहिये।

इस संसारमें जो अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर ले, वही वीतराग है। सम्यग्ज्ञानसे युक्त शुद्धचित्त मुनि मनके विकारोंसे विचलित नहीं होता। जैसे दर्पणके सामनेसे चाहे जो चीज निकल जाय, उसका दर्पणपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, उसी प्रकार जो वीतराग हैं, उनपर किसी तरहके विकारोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

श्रीराम ऐसे ही वीतराग और तीनों लोकोंके नाथ थे। श्रीरामका दर्शन शास्त्रज्ञाता द्रष्टा रूप है, कर्ता-हर्तारूप नहीं।

श्रीरामके जीवनसे हमें कई शिक्षाएँ मिलती हैं। उनका जीवन बड़ा पुरुषार्थमय था। वे बड़ोंका और अपने माता-पिताका पूरा आदर करते थे और उनकी आज्ञाका पालन करना अपना कर्तव्य समझते थे। वे किसीसे वैर नहीं रखते थे। वे प्राणीमात्रपर दया और प्रेमभाव रखनेवाले थे। उनके राज्यमें कोई स्त्री विधवा नहीं थी। वे अपनी प्रजाको दुःखी नहीं देखना चाहते थे। भगवान् रामका मन तो तीनों लोकोंसे भी ऊँचा था। श्रीराम मन्दोदरीको विधवा देखकर बहुत दुःखी हुए तो मन्दोदरीने कहा—'राम! तेरे माता-पिता धन्य हैं! इक्ष्वाकुवंश धन्य है!!' रावणने भी मरते समय कहा था—'हे राम! इस संसारमें तुम्हारे समान कोई धनुर्धारी नहीं हो सकता। जबतक यह दुनिया रहेगी, तबतक मेरी अपकीर्ति और तुम्हारी कीर्ति रहेगी।'

श्रीराम सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चारित्र्यके द्वारा सिद्ध बन गये। उनका चरित्र पापरूपी अन्धकारको नष्ट करनेवाला है। श्रीरामके जीवनमें सीताजीका बहुत महत्त्व है। यदि सीताजीका नाम हटा दें तो रामके चरित्रमें रह ही क्या जायगा। पत्नी तो पतिको परमेश्वर बना सकती है।

जीवन तो सभी जीवोंका होता है, परंतु उनमेंसे जिनमें लोकहितकी विशेष भावना होती है, उन्हींका चरित्र महापुरुष अवलोकन करते हैं तथा उन्हें विश्वके समक्ष प्रस्तुत करते हैं। जैनाचार्य महासेन सूरिने 'सिया-चरिउ' नामक ग्रन्थ महासती सीताके जीवनचरित्रपर लिखा था।

देशमें असंख्यात सतियाँ हुईं, पर महासती सीताकी बात अलग ही है। उनका अपना स्वतन्त्र स्थान है। आज भी यदि देशमें सतियाँ हैं तो वे ऐसी ही महासतियोंकी कृपासे हैं। श्रीरामके कहनेपर सीताजीने अग्निपरीक्षा वरणकर भारतके ही नहीं, अपितु विश्वके स्त्रीसमाजका सिर ऊँचा किया।

आचार्योंने शास्त्रोंमें एक ओर जहाँ स्त्रीको उसके अवगुणोंके कारण हेय बताया, वहाँ दूसरी ओर बड़े-बड़े ऋषियों, तीर्थंकरोंको जन्म देनेके कारण उसे महान् भी बताया है। महासेन सूरिके शब्दोंमें सीताजी कहती हैं कि 'सम्यक्त्वसे ही स्त्री-योनिका अतिक्रमण किया जा सकता है और मुक्तिको प्राप्त किया जा सकता है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्यको पालकर ही हम अपने आत्माको परमात्मा बना सकते हैं। पञ्च पापोंके त्याग और सांसारिक सुखोंके निग्रहके बिना यथार्थ सुख नहीं प्राप्त हो सकता।'

सीताजीने रावणके वैभवको तुच्छ समझा। सीताजीका वैभव तो उनका शील था। सीताजीका जीवन रामचन्द्रजीकी पत्नीके रूपमें ही नहीं, बल्कि एक तपस्विनीके रूपमें महत्त्वपूर्ण है।

एक बार सीताजी कहीं जा रही थीं। रास्तेमें उन्होंने देखा कि एक विधवा स्त्री अपनी गोदमें एक बच्चा लिये जा रही है और उसके कपड़े फटे

हुए हैं। सीताजीने उसको रोककर उसकी इस हालतका कारण पूछा । उस स्त्रीने बताया कि उसके पतिकी मृत्यु यात्रामें हो गयी थी तथा उसके जीवननिर्वाह-का कोई साधन नहीं है। सीताजीने तुरंत अपने बदनसे सारे गहने उतारकर उस स्त्रीको दे दिये । यह था सीताजी-का त्याग । यदि गहनोंके होते हुए तुम्हारा पड़ोसी दुःखी रहे तो तुम्हारे पास ऐसे गहनोंका होना बेकार है। पड़ोसी भी सुखी रहे, तभी तुम्हारा गहना रखना भी ठीक है। आधुनिक युगमें त्यागभावनासे ही महिलाओंका जीवन आदर्श बन सकता है।

आज देशमें रामराज्य लानेकी बात तो बहुत कही जाती है, पर हम देखते हैं कि सरकार और जनता, दोनोंमें एक-दूसरेके प्रति विश्वासका अभाव है। सरकार नित्य नये करोंका बोझ जनता-पर लादती जा रही है और जनता नित्य नये तरीके अपने बचावके निकाल रही है। ऐसी स्थितिमें रामराज्य कैसे आ सकता है। रामराज्य तभी आयेगा, जब हमारे नेता राम बनेंगे और प्रजा भी लक्ष्मण और सीताके-जैसा आचरण करेगी। इसलिये आवश्यक है कि हमारे स्कूल-कालिजोंमें दी जानेवाली वर्तमान शिक्षामें मूलभूत परिवर्तन किये जायँ और नौजवानोंको राम, सीता और लक्ष्मणका चरित्र पढ़ाया जाय। आजके युवक यदि उनके जीवनकी घटनाओंको पढ़ेंगे तो निश्चय ही उनके जीवनमें परिवर्तन आ जायगा।

मैं आपसे यही कहूँगा—सम्पूर्ण जगत्के प्राणियोंमें ज्ञानचेतना मौजूद है। अपनेमें स्थिर होनेके बाद आत्मस्थ होकर जो अपने स्वभावमें लीन हो जाते हैं, वे ही मुमुक्षु हैं, वीतराग हैं। जो ऐसा पुरुषार्थ करते हैं: उन्हें कुछ-न-कुछ अवश्य प्राप्त होता है।

श्रीराम गृहस्थ-अवस्थामें भी मुनिके समान थे। उनकी कथा जीवोंमें प्रमोद उत्पन्न करनेका साधन है एवं पापका नाश करनेवाली है। उनके गुणोंको अपनाकर ही देशमें रामराज्यकी स्थापना की जा सकती है। ('मङ्गल-प्रवचन'से संकलित)

पश्चात्ताप

अब लौं न गाई रामनाम बिन दाम हाय,
माथ में लगाई न चरन-रज-कनिका।
कनकभवन में सलाम न बजाई, रही
लाम, न गिराई तैसे मन की जवनिका॥
लही न अवधपति-भगति, गँवाई पति,
बिपति कमाई, बड़ी पाप की चयनिका।
नमकहराम पाई तनिक न बिसराम,
भरमति अविराम मेरी मति गनिका॥
अधम न पायौ रामनाम धन कवि 'लाल',
रतन रमायन को मनन कर्‌यौ नहीं।
समन भयौ न पाप-ताप कौ, गम न गयौ,
अवध नरायन कौं नमन कर्‌यौ नहीं॥
भव जलनिधि में मगन है, गमन है न,
तरन उपायन कौ परन कर्‌यौ नहीं।
कहा करौं, कासौं कहौं, पतित हमारौ मन
सीतापति-पायन कौ भजन कर्‌यौ नहीं॥

—रामलाल

देशकी वर्तमान विघटनात्मक परिस्थितिको सुधारनेके लिये श्रीरामचरित्रकी उपयोगिता

(लेखक—शास्त्रार्थमहारथी पं० श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री)

आसुरी शक्तिके प्राबल्यसे उत्पीड़ित धरा जब पापका भार सहन न कर सकी, तब समस्त देवगणकी प्रार्थनापर जगन्नियन्ता सर्वाधार श्रीमन्नारायण भगवान्‌को स्वपरिकर-सहित भारत-वसुधरापर नररूपसे अवतरित होना पड़ा। 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं प्रभुः' भगवान् रामने अपने सर्व-शक्तिमान् स्वरूपको स्वमायाकी यवनिकाके आवरणमें तिरोहित करके नरलीलाका ऐसा उदात्त अभिनय किया कि अनन्त कालतक नर-समाज उनके चारु चरित्रसे अपनी वैयक्तिक, सामाजिक किंवा राष्ट्रीय समस्त समस्याओंका समाधान करनेके लिये उचित प्रेरणा ले सकता है।

सम्प्रति साधारणतया समस्त विश्व, और विशेषकर भारत-वर्ष भयावह परिस्थितियोंके वक्र चक्रमें पड़कर उत्तरोत्तर पतनके गहरे गर्तमें गिरता जा रहा है। मानवता नामकी वस्तु केवल मिथ्या उद्घोषोंकी कर्णकटु ध्वनिमात्रमें ही अवशिष्ट रह गयी है। यों तो चन्द्रलोकतकमें बसनेके सुनहरे स्वप्न देखे जा रहे हैं, परंतु वस्तुतः भूमण्डलकी परिधिमें भी बसते हुए राहतकी साँस ले सकना दूभर हो रहा है। ऐसी परिस्थितिमें रामभगवान्‌का चरित्र ही एकमात्र ऐसी आशा-की किरण है, जो कि हमें सही मार्गका प्रदर्शन करा सकती है।

राजा दशरथ चक्रवर्ती सम्राट् थे। अपने यौवनकालमें वे असुर-त्रस्त देवताओंके संग्राममें भी सहायक रूपमें सम्मिलित हुए थे। परंतु आयु ढलनेपर ओजका शैथिल्य स्वाभाविक होता है। राजा दशरथ इस प्राकृतिक नियमके अपवाद कैसे हो सकते थे। उनकी जीवन-संध्यामें अवसर पाकर राष्ट्र-विरोधी तत्त्व सक्रिय हो उठे। किष्किन्धाके वानर राजा वाली और सुदूर लङ्काके राजा रावण बड़े महत्त्वाकाङ्क्षी थे। दोनों ही चक्रवर्तित्वका स्वप्न देखते थे; परंतु परस्पर भिड़ंत होनेपर रावणने जब वालीको प्रबल देखा, तब उसके साथ अग्निसाक्ष्यपूर्वक सर्वतोमुख संधि कर ली। अब तो दोनों मिलकर समस्त भारतपर छानेका प्रयत्न करने लगे। रावणने दण्डकारण्यपर कब्जा कर लिया। अपने १४ सहस्र वीर-सैनिक यहाँ बसा दिये। रावणके दूत भारतीय प्रजासे कर-संग्रह करते हुए बिहार प्रान्तके वर्तमान बक्सरग्रामस्थ विश्वामित्रके आश्रमतक पहुँच गये। इस प्रकार राम-कालीन भारत जहाँ राक्षसों और वानरोंकी प्रतिगामी दो सत्ताओंद्वारा आक्रान्त हो गया था, वहाँ केन्द्रीय राजसत्ताकी निर्बलतासे निडर होकर स्थानीय सामन्त भी अपने छोटे-छोटे राज्योंको प्रभुसत्तासम्पन्न मानने लग गये थे। इस प्रकार भारतवर्ष उस समय रावण-वाली और घरेलू सामन्त—इन तीन विघटनकारी शत्रुओंसे घिर गया था।

आजका भारत भी चीन, पाकिस्तान और घरेलू विघटनकारी तत्त्वोंसे आक्रान्त है। जैसे रावणने वालीके सहयोगसे राजा दशरथके शासित प्रदेश दण्डकारण्यपर बलात् कब्जा कर लिया था, आज ठीक वैसे ही पाकिस्तानकी शहपर चीनने भारतके लद्दाख, हिंद-चीन आदि प्रदेशोंपर अपने पंजे जमा लिये हैं। उस समय कार्तवीर्य आदि अनेक सामन्त जैसे अपनेको सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र मानने लगे थे, ठीक उसी प्रकार सम्प्रति नागालैंड, मीजोलैंड, मेघालय और तमिळ-नाडु आदि प्रान्त अपने स्वातन्त्र्यका दम भरने लगे हैं।

उस समय ऐसे आड़े वक्तमें भारतीय राजतन्त्रके परम्परागत संचालक निःस्वार्थ राष्ट्रसेवी ऋषि-मुनियोंने ऐसी योजना बनायी कि अयोध्या राज्यका एक भी सैनिक न मरे, राज्यकोषकी एक कानी कौड़ी भी व्यर्थ न हो, विघटनकारी सामन्त बिना खून-खराबीके पूर्ववत् केन्द्रीय सत्ताके सहकारी बन जायँ एवं वानर तथा राक्षस दोनोंकी भिड़ंत होकर प्रतिगामी राक्षसी शक्ति समाप्त हो जाय।

एतदर्थ घरेलू सामन्तोंके दिमाग दुरुस्त करनेके लिये एक मनोवैज्ञानिक उपाय रचा गया, जिसका नाम रखा गया—'धनुष-यज्ञ'। उसमें सभी छोटे-बड़े राजा-महाराजा सम्मिलित हुए। घोषणा की गयी कि "जो धनुषको उठायेगा उसे—'त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही॥' (मानस १। २४९। २) अर्थात् वह त्रिभुवनविजयी माना जायगा और उपहारमें उसे जनकनन्दिनी प्राप्त होगी।

ऋषि जानते थे कि भार उठानेवाले तो रावण-जैसे कैलासको भी उठानेकी क्षमता रखते हैं; परंतु यह दिव्य धनुष है। अतः इसे तो अतिबला-शक्तिसम्पन्न व्यक्ति ही उठा सकेगा। वह शक्ति केवल रामभगवान्को महर्षि विश्वामित्रने प्रदान की है—

'जाते लाग न छुधा पिपासा। अतुलित बल तनु तेज प्रकासा॥'

(मानस १।२०२।४)

बस, समस्त सामन्त उसे न उठा सके। रामजीने उसे उठा लिया। त्रिभुवन-विजय-माला उनके कण्ठमें पड़ गयी। मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे समस्त सामन्त-मण्डलको रामकी शक्तिका लोहा मानना पड़ा। परंतु अब वे सब संगठित होकर उपद्रव करनेकी तैयारी करने लगे। ऋषि-मुनियोंने पहले ही इस सम्भावित समस्याका समाधान तैयार कर रखा था। दुष्ट राजाओंको इक्कीस बार निश्शेष करनेवाले परशुराम तत्काल आ पहुँचे। राजालोगोंके दम खुश्क हो गये। निश्चित योजनानुसार क्रोध करते हुए परशुरामजीसे निडर होकर लक्ष्मणजी उत्तर-प्रत्युत्तर करने लगे। इस वादानुवादका मनोवैज्ञानिक प्रभाव सामन्त-गणपर यह पड़ा कि जिस परशुरामसे हमारे दम खुश्क हो रहे हैं, रघुकुलका छोटा राजकुमार निर्भय होकर उन्हींको करारे उत्तर दे रहा है। अन्तमें परशुरामजीके रामको स्व-धनुष देकर स्वयं तपोभूमिकी ओर पधारनेसे तो समस्त सामन्त-गणपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे अयोध्या-सिंहासनके पूर्ववत् अनुगामी भक्त बन गये। सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र होनेका जो भूत उनके दिमागमें घुसा था, वह सदा-सर्वदाके लिये भाग गया। इस प्रकार घरेलू विघटनकारी तत्त्वोंकी समस्याका तो समाधान हो गया।

महाराजा दशरथ ऋषियोंकी गुप्त योजनासे परिचित नहीं थे। अतः वे श्रीरामका राज्याभिषेक करने चले। किसी गुप्त मन्त्रणासे मन्थराने कैकेयीद्वारा रामको वन भिजवा दिया। ऋषि जानते थे कि श्रीरामके राजा हो जानेपर यदि रावणसे संग्राम होगा तो उसमें अयोध्याके अनेक सैनिक मरेंगे, अपव्यय भी होगा। फिर भी युद्धका क्या परिणाम हो, यह अतर्कित रहेगा। अतः रावणसे रामका निजी युद्ध हो, जिसमें अयोध्याके सिंहासनको कुछ भी हानि न हो, विजयश्रीका लाभ-ही-लाभ हो।

इसी योजनाके अनुसार राम अन्य दिशामें न जाकर वाली और रावणकी ओर ही उन्मुख हुए। एकमात्र वालीके मार देनेपर समस्त वानर-सेना रामकी सहायक हो गयी। राम-रावण-महायुद्धमें निश्चित योजनाके अनुसार एक भी अयोध्यावासी सम्मिलित नहीं हुआ—यहाँतक कि मूर्च्छित लक्ष्मणके स्वास्थ्यका समाचार जाननेके लिये दूततक नहीं भेजा गया। अर्थात् अयोध्याके सिंहासनको युद्धसे सर्वथा अलिप्त रखा गया। १४ वर्षतक राजधानी भी नन्दिग्रामकी फूसकी झोपड़ी रही। राज्यसिंहासनपर कोई मानव व्यक्ति न होकर प्रतिनिधिभूता पादुकाएँ प्रतिष्ठापित रहीं।

यदि यह सब कुछ योजनाबद्ध न किया जाता तो लङ्काकी भाँति अयोध्या भी रावणके दूतोंद्वारा दग्ध की जा सकती थी। भगवान् रामने भी १३ वर्षपर्यन्त रावणसे झगड़ा नहीं किया। चौदहवें वर्षमें ही सब काण्ड हुआ, जिससे अन्ताराष्ट्रीय कानूनके अनुसार बारह वर्षपर्यन्त अयोध्यासे रामका कुछ भी सम्बन्ध न रहनेके कारण यह अभियान रामका निजी अभियान माना गया।

काश आज भी भारतके कर्णधार पाश्चात्त्य देशोंकी कुटिल नीतियोंका अन्धानुकरण छोड़कर रामचरित्रकी नीतिसे प्रेरणा लें और ऐसी कोई दृढ़ योजना बनायें कि जिससे सर्वप्रथम अपने ही विघटनवादी तत्त्वोंपर केन्द्रके प्राबल्यका स्थायी प्रभाव पड़े और वे अपनी आये दिनकी चीं-चपटसे विरत होकर भारतकी अखण्डताके पक्षपाती बन जायँ।

भारत आज जिस प्रकार विघटनकारी तत्त्वोंमें जकड़ा हुआ है, उससे मुक्ति पानेका एकमात्र उपाय है—श्रीरामकी कार्यपद्धतिका अनुकरण—उस कार्यपद्धतिका अनुकरण, जिसने भारतको अखण्ड प्रभुसत्ताके अधीन कर दिया, जिसके कारण मानवके आचारसे वियुक्त होनेके विचार समाप्त हो गये, एक लक्ष्य, एक विचारमें सभी संलग्न हो गये, स्थानकी खण्डतापर मानवकी अखण्डताने विजय पायी, सभी दूसरेके दुःख-सुखको अपना दुःख-सुख समझने लगे, दूसरेकी हानिको अपनी हानि मानने लगे और सभी प्रभुतत्त्वमें लीन हो गये।*

* इस दृष्टिकोणका सप्रमाण विस्तृत विवरण 'लोकालोक'के 'रामचरिताङ्क' में देखना चाहिये, जो १०३ ८, कमलानगर, दिल्लीसे प्राप्य है।

रामायण-त्रिवेणीमें श्रीराम

(लेखक—श्रीमण्डन मिश्र)

भगवान् रामके पावन चरित्रका ज्ञान हमें रामायणसे होता है। वैसे तो कितनी ही रामायणें हैं, पर उनमें मुख्य हैं तीन। सर्वप्रथम वाल्मीकि-रामायण है, जो अन्य रामायणोंका मूल स्रोत है। इससे सबने प्रेरणा तथा सामग्री प्राप्त की है। वाल्मीकि आदिकवि माने जाते हैं। उन्होंने रामायणको इतिहासके रूपमें लिखा है। संस्कृतके प्राचीन साहित्यमें दो ही इतिहास मुख्य माने जाते हैं। उनमें एक है वाल्मीकिरामायण और दूसरा व्यासकृत महाभारत। रामायणके सम्बन्धमें स्वयं ब्रह्माजीका वाल्मीकिके प्रति कहना है कि "आपको सब कुछ ज्ञात है। जो कुछ आपने कहा है, वह अवश्य होगा। आपके काव्यमें कुछ भी झूठ न होगा—'न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति।'" अपनी रामायणमें उन्होंने सचमुच जैसा कुछ हुआ, वैसा ही लिखनेका प्रयास किया है। कहीं भी लीपा-पोतीसे काम नहीं लिया। वाल्मीकिकी दृष्टिमें भगवान् राम कामार्थगुणसंयुक्त, धर्मार्थगुणयुक्त, समुद्रकी तरह रत्नोंसे भरपूर, सबसे मनोरम हैं। ब्रह्माजीका कहना है कि 'जबतक पर्वत, सरिता आदि भूतलपर हैं, आपकी रामायणकथाका सर्वत्र प्रचार होता रहेगा।' वाल्मीकिके बाद गोस्वामी तुलसीदासजीका स्थान है। उनका श्रीरामचरितमानस कितना लोकप्रिय है—इसे बतानेकी आवश्यकता नहीं है। ग्रियर्सन साहबके मतसे वह उत्तर भारतकी बाइबल है। उसका अनुवाद कुछ विदेशी भाषाओंमें भी हुआ है। सर्वप्रथम ब्रिटिश शासन-कालमें मथुराके कलक्टर ग्राऊस साहबने उसका अंग्रेजीमें अनुवाद किया। बादमें मिस्टर हिल नामक एक दूसरे अंग्रेज विद्वान्ने भी उसका अंग्रेजीमें अनुवाद किया, जो कुछ ही वर्ष पहले प्रकाशित हुआ है। एक रूसी विद्वान्ने भी उसका रूसी भाषामें अनुवाद किया, जिसकी विशेषता यह है कि उसमें मूल रामायणके छन्दोंका ही अनुकरण किया गया है। उन्हें उसी प्रकार गाया जा सकता है, जैसे मूल रामायणके पदोंको। कुछ वर्ष पहले ये रूसी विद्वान् वाराणसी पधारे थे और उन्होंने स्वरचित पदोंका गान कर श्रोताओंको चकित कर दिया था। तुलसीदासजी नारायणको श्रीरामचन्द्रके नररूपमें इस धरातलपर उतार लाये हैं। उनके राम आदर्श पुत्र, आदर्श शिष्य, आदर्श वीर और आदर्श शासक हैं। संक्षेपमें वे मर्यादापुरुषोत्तम हैं।

दक्षिणमें महाकवि कम्बन्‌की तमिळ रामायण प्रसिद्ध है। उन्हें प्रायः 'दक्षिणका तुलसीदास' कहा जाता है। वे तमिळ भाषाके आदि कवि माने जाते हैं। कवि कम्बन् महाकवि तुलसीकी भाँति ही राम और रामकथाके प्रति बड़े आस्थावान् हैं।

लेकिन कथानककी दृष्टिसे दोनोंकी कृतियोंमें थोड़ा-सा अन्तर है। तमिळ देशवासियोंका कहना है कि जैसे विष्णुने मन्दराचलके सहारे सिन्धु मथकर देवोंके रक्षार्थ अमृत उपलब्ध किया, वैसे ही महाकवि कम्बन्ने अपनी जिह्वारूप मन्थन-यष्टिकाका सहारा लेकर तमिळ वाङ्मयरूपी महासिन्धुका मन्थन किया और रामावतार-कथा रूप अमृतका घट हम तमिळवासियोंके लिये उपलब्ध कराया। यद्यपि उसका आधार वाल्मीकिरामायण ही है, कम्बन्ने अपने प्राचीन आचार-विचारों, विश्वासों, भावनाओं तथा प्रचलित परम्परागत सभी मान्यताओंकी सुरक्षाको ध्यानमें रखकर स्थान-स्थानपर कुछ परिवर्तन करना अपना कर्तव्य समझा।

कहा जाता है कि यदि तुलसी श्रीरामको नररूपमें धरातलपर ले आये तो कम्बन्ने नरको नारायणके रूपमें पहुँचा दिया।

इस रामायण-त्रिवेणीने केवल भारतभूमिको ही कथा-सुधासे सिञ्चित नहीं किया, अपितु इसकी तरंगें अन्य देशोंमें भी पहुँचीं। मिस्रके इतिहासमें रेमेसिसकी पौराणिक कथा आती है, जो बहुत कुछ रामकथासे मिलती-जुलती है। बौद्ध रामकथा 'अनामकम् जातकम्' तथा 'दशरथकथानकम्' का अनुवाद चीनी भाषामें क्रमशः तीसरी तथा पाँचवीं शतीमें हुआ था। 'अनामकम् जातकम्' में यद्यपि रामायणके पात्रोंके नाम नहीं हैं, तथापि उसमें सीता-हरण, वाली-सुग्रीव-युद्ध, सीताकी अग्नि-परीक्षा आदि कुछ घटनाओंका समावेश अवश्य पाया जाता है। 'दशरथ-कथानकम्' में दशरथ-पुत्रोंके वनवासकी कथा तो मिलती है, पर सीताजीका वृत्तान्त नहीं है। इसीलिये उसमें राम-रावण-युद्धका भी उल्लेख नहीं है। लगभग सातवीं शतीमें 'ज्ञान-प्रस्थान' का अनुवाद भी चीनी भाषामें हुआ। इस ग्रन्थमें रामायणके कुछ अंशोंका समावेश हुआ है। एस्० डब्लू० थामसने अपनी पुस्तक 'रामायण-स्टोरी इन टिबेटन' में तिब्बतमें प्राप्त 'रामकाव्य' की पाण्डुलिपियोंका वर्णन किया है। उसमें रामचरितकी सीतात्यागसे लेकर सीता-सम्मिलनतककी घटनाएँ मिलती हैं। 'अनामकम् जातकम्' का मूल भारतीय पाठ अब अप्राप्य है। अंग्रेजी अनुवाद चीनी रामायणके

नामसे 'सरस्वती-विहार ग्रन्थमाला'में सन् १९३८में प्रकाशित हुआ था। फ्रांसीसी भाषामें इसका अनुवाद सन् १९०४ में हुआ।

'चीनी त्रिपिटक' के अन्तर्गत १२१ अवदानोंका एक संग्रह है। यह संग्रह ४७२ ई०में चीनी भाषामें प्रकाशित हुआ था। इसकी कथाका अर्थ चीनी, फ्रांसीसी तथा अंग्रेजी पुस्तकोंसे लगाना पड़ता है। इसमें 'दशरथ-कथानकम्'का जो अंश आता है, उसमें सीता या किसी राजकुमारीका उल्लेख नहीं है।

हिंद-एशिया तो रामकथाओंका भंडार है। आजकल वह मुस्लिम देश है। पर तब भी वहाँ कठपुतलियोंके नाचमें रामलीलाके दृश्य दिखलाये जाते हैं। एक पुस्तक 'हिकायत (कथा) सेरी (श्री) राम'में श्रीरामकी कथा आती है। वहाँकी एक नदीका नाम 'सरयू' और उसपर बसे हुए नगरका नाम 'दुधिया' है। वहाँके लोगोंका विश्वास है कि भगवान् रामका जन्म यहीं हुआ था और रामायणकी अधिकांश घटनाएँ भी यहीं हुई हैं। भारतीयोंने यहाँसे लेकर रामकथाका प्रचार अपने यहाँ किया। कुछ ही दिन पहले यहाँ एक राममेला हुआ था, जिसमें भारतीयोंका भी एक प्रतिनिधिमण्डल आया था। उसमें रामायणके कई दृश्य दिखलाये गये थे। इस तरह रामकथाकी परम्परा समस्त एशियामें फैलती हुई अफ्रिका तथा योरपतक पहुँच गयी।

यह भगवान् रामचन्द्रजीकी ही लीला है कि उनके वास्तविक स्वरूपमें विश्वास न करनेवाले लोगोंने भी इनका गुणानुवाद किया है। भारतमें जैन और बौद्ध अवैदिक सम्प्रदायोंमें सबसे प्राचीन तथा विशिष्ट हैं। इनमें रामचरितका विकास बड़ी स्पष्टतासे पाया जाता है। बौद्धोंके 'दशरथ-जातकम्', 'अनामकम् जातकम्', 'दशरथ-कथानकम्'-में रामकथाकी परम्परा दिखलायी जा चुकी है। 'दशरथ-जातकम्' पाँचवीं शतीके एक सिंघली पुस्तकका अनुवाद है। इसमें सीताको दशरथकी पुत्री बतलाया गया है। इसे ही लेकर कई लेखकोंने तरह-तरहकी कल्पनाएँ की हैं। किंतु इसके आधारपर विश्वास नहीं किया जा सकता, जबतक कि उसकी पुष्टिके लिये समुचित प्रमाण न हो। इसके अनुसार पूर्वजन्ममें शुद्धोदन महाराज दशरथ, महामाया रामकी माता, यशोधरा सीता तथा आनन्द भरत थे। पश्चिमी विद्वानोंने यह सिद्ध करनेका पर्याप्त प्रयत्न किया है कि वाल्मीकिने 'दशरथजातकम्'के आधारपर रामायणकी रचना की थी। परंतु यह प्रयास व्यर्थ ही सिद्ध हुआ। बौद्ध महात्मा बुद्धको रामका पुनरवतार मानते हैं।

जैनियोंमें रामचरितकी परम्परा विमलसूरि तथा गुणभद्रसे चलती है। विमलसूरिने 'पद्म-चरिय' की रचना लगभग १७७२ ईसवीमें की। इसका संस्कृत रूपान्तर 'पद्मचरित्र' के नामसे १८०७ ईसवीमें हुआ। इसका अनुवाद हिंदी खड़ी बोलीमें सन् १८१८ में दौलतरामजीने किया। विमलसूरिकी परम्परामें जैनियोंद्वारा कई रामचरित लिखे गये। 'कथा-कोष' 'शत्रुंजय-माहात्म्य', 'निरत्नकोष' आदिमें बिखरी रामकथाएँ मिलती हैं। जैनी विद्वान् गुणभद्रने नवीं शतीमें अपने 'उत्तरपुराण'में रामचरितका वर्णन किया है।

इन अवैदिक सम्प्रदायोंके अतिरिक्त देशकी सभी क्षेत्रिय भाषाओंमें भी रामकाव्यकी रचना हुई है। तमिळ भाषामें 'कम्बन्‌रामायण'की चर्चा की जा चुकी है। तेलुगु साहित्यमें 'द्विपद रामायण', जो 'रङ्गनाथ रामायण' के नामसे अति प्रसिद्ध है, श्रीबुद्धराजद्वारा ग्यारहवीं शतीमें लिखी गयी। मळयाळम्‌की सबसे प्राचीन रचना रामकृत 'रामचरित' चौदहवीं शतीमें हुई। कन्नड़ भाषामें नरहरिने 'तोरवे रामायण' सोलहवीं शतीमें लिखी।

सिंघल द्वीपमें एक कथाका प्रचार है, जिसका रचनाकाल ईसापूर्व पाँचवीं शती माना जाता है। इसमें सिंघलके प्रथम राजा तथा राजकुमारीका 'सूवेणी' और 'सीतात्याग'—ये दो प्रधान आख्यान हैं। काश्मीरी रामायणकी रचना दिवाकरप्रकाश भट्टने अठारहवीं शतीमें की। १५वीं शतीमें कृत्तिवासने बँगलामें रामायणकी रचना की। उत्कल भाषामें श्रीबलरामदासने १५वीं शतीमें 'रामायण' लिखी। मराठीमें एकनाथने 'भावार्थरामायण' १८वीं शतीमें लिखी। श्रीधर तथा मोरोपंतने भी श्रीरामपर काव्य लिखे। गुजरातमें भी गुजराती भाषामें रामकथाके कुछ प्रसङ्ग कई ग्रन्थोंमें देखनेमें आते हैं—जैसे प्रेमानन्दकृत 'रणयज्ञ', सत्रहवीं शतीका हरिदासकृत 'सीताविरह' आदि। असमिया भाषामें भी रामकथापर कई ग्रन्थ मिलते हैं। श्रीबरुआने 'असमी-साहित्यके इतिहास'में इनका उल्लेख किया है।

श्रीरामका नाम जितना लिया जाता है, अन्य किसी अवतारी पुरुषका उतना नहीं। राम-नामकी बड़ी महिमा है। 'रामु न सकहिं नाम गुन गाई।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामचरित विदेशी तथा देशी भाषाओंमें ताने-बानेकी तरह व्याप्त है। बाइबलको छोड़कर कदाचित् ही किसी दूसरी कथाका इतना अधिक प्रचार हुआ हो। भगवान् रामका चरित्र केवल भारतको ही नहीं, अन्य कई देशोंको भी एकताके सूत्रमें बाँध सकता है।

भगवान् श्रीरामका लीला-परिकर*

[लेखक—स्व. श्रीआदित्यनाथजी झा (भूतपूर्व उपराज्यपाल, दिल्ली प्रदेश)]

विश्वका विकास ब्रह्मका लीला-विलास है, इस तथ्यको दार्शनिकोंने अलग-अलग ढंगसे निखारा और सँवारा है। कोई जगत्को आत्माका विवर्त और कोई ईशकी इच्छाका परिणाम मानते हैं। ऋग्वेदके 'पुरुषसूक्त'में चरम सत्ताके एकत्व और अद्वितीयत्वका प्रतिपादन बड़ी मोहक शैलीमें किया गया है। वहाँ वर्णित है कि 'जो कुछ भूत और भविष्य है, वह सब पुरुष ही है। वह अमरत्वका अधीश्वर है और अन्तर्यामी होकर भी विश्वातीत है।'[1] 'नासदीयसूक्त'में कहा गया है 'कि वह सबका आत्मा होते हुए भी स्वतः अनिर्वाच्य है। वह जगत्की मूल सत्ता है और प्रत्येक द्रव्यमें अनुस्यूत है। उसे न 'सत्' कहा जा सकता है और न 'असत्'[2]।'' अथर्ववेदके 'स्कम्भसूक्त'का वचन है कि ''जिसमें भूमि, अन्तरिक्ष और आकाश समाहित हैं, अग्नि, चन्द्रमा तथा वायु जिसमें अर्पित होकर स्थित हैं, वही 'स्कम्भ' (आधार) है। द्यावा-पृथ्वी और अन्तरिक्षको धारण करनेवाला वही स्कम्भ है। वह भूत, भविष्य तथा वर्तमानका अधीश्वर है।'[3] इसी तथ्यको भारतीय दर्शनकी अद्वैत, द्वैत और विशिष्टाद्वैत आदि परम्पराओंने अपनी अनुभूति और मान्यताओंके आधारपर पल्लवित एवं विकसित किया है। भारतीय तत्त्व-चिन्तकोंने महाभारत, वाल्मीकि-रामायण आदि महाकाव्योंके माध्यमसे दार्शनिक सिद्धान्तोंको जीवनमें उतारनेका प्रयास किया है और पारमार्थिक ज्ञान एवं व्यावहारिक जीवनका सामञ्जस्य स्थापित किया है।

जगत् अपने स्रष्टाकी कल्पना-अभिलाषासे दूर न होने पाये और मानवके जीवन और प्रतिभामें वह प्रकाश धूमिल न होने पाये, जिससे जगत्का कण-कण उद्भासित है, इसी पावन प्रयासमें मनीषियोंने मानव-मर्यादाका उद्बोधन किया था और दाशरथि रामको मर्यादा-पुरुषोत्तमके रूपमें मान्यताका आधार एवं जीवनका प्रकाशस्तम्भ बनानेका सफल प्रयास किया था।

संस्कृत-साहित्यमें राम-काव्यकी परम्परा लंबी एवं विस्तृत है[4]। पर आदिकवि महर्षि वाल्मीकिकी 'रामायण' और भक्तिमान् दार्शनिक कवि गोस्वामी तुलसीदासजीका 'रामचरितमानस' भगवान् रामके मर्यादा-पुरुषोत्तम रूपकी अभिव्यक्तिमें प्राञ्जल तथा मङ्गलमयी संजीवनी शक्तिसे अनुप्राणित है। दोनों महाकवियोंका अपना दृष्टिकोण है और दोनों ही उसमें बेजोड़ हैं।

वाल्मीकि-रामायण और रामचरितमानस, दोनोंमें राम देवताओंसे भी श्रेष्ठ दिखलाये गये हैं। जो कार्य इन्द्र आदि देवता भी नहीं कर सके, वह कार्य रामने किया है। वाल्मीकि-रामायणमें उनकी तुलना विष्णु, इन्द्र और वरुणसे की गयी है। उन्हें केवल 'त्रिदश-पुंगव' (१ । १५ । २६), 'विष्णुः सनातनः' (२ । १ । ७) और 'सुरेश्वरः' (१ । ७६ । १७) ही नहीं कहा गया है, वरं 'सर्वलोकनमस्कृतः' (१ । १५ । २७), 'महायोगी परमात्मा सनातनः' (६ । १११ । १४) भी कहा गया है। रामायण और मानसके रामके परब्रह्मस्वरूपमें अन्तर यह है कि रामायणमें उनका मानवरूप प्रधान है और उसकी पूर्ण गरिमामें ही परब्रह्मत्वका आभास होता है, जब कि मानसमें इसका उल्टा है। मानसके राम वस्तुतः परब्रह्म हैं, जो कि भक्तोंके रञ्जनके लिये मनुष्य-जैसी लीला करते हैं[5]।

वाल्मीकि-रामायणमें यद्यपि किसी विशिष्ट दार्शनिक सम्प्रदायमें निरूपित परब्रह्म और उसके अवतारका निरूपण नहीं किया गया है, तथापि उसके पुरुषोत्तम राममें ही ईश्वरत्वकी वह आभा दृष्टिगोचर होती है, जिसकी तुलना परब्रह्मसे ही

* इस लेखकी प्राप्तिके थोड़े ही दिन बाद सम्मान्य लेखक महोदयके आकस्मिक निधनका दुःखपूर्ण संवाद मिला, जिससे बड़ी व्यथा हुई। करुणानिधि श्रीराम दिवंगत आत्माको शान्ति प्रदान करें। —सम्पादक

१. ऋग्वेद १ । ९० । १—३
२. ऋग्वेद १० । १२९ । १
३. अथर्ववेद १० । ७ । १२; १० । ७ । ३५; १० । ८ । १
४. देखिये 'रामचरितमानसका तुलनात्मक अध्ययन', डा० शिवकुमार शुक्ल।
५. 'वाल्मीकि और तुलसी—साहित्यिक मूल्याङ्कन', डा० रामप्रकाश अग्रवाल।

की जा सकती है। सृष्टिके समस्त गुण जब पूर्ण पराकाष्ठापर एक ही व्यक्तिमें एकत्र दिखने लगते हैं, वहीं हमारी परब्रह्मकी भावना पूर्ण होती प्रतीत होती है, और यह भावना वाल्मीकिके राममें पूर्ण हुई है। वेद और उपनिषदोंके अव्यक्त ईश्वरको महामानवके माध्यमसे वाल्मीकि-रामायणमें और परब्रह्मके अवतारके रूपमें मानसमें साकारता प्रदान की गयी है।

मानसकी दार्शनिक पृष्ठभूमिके सम्बन्धमें कई मतभेद हैं। कोई कहते हैं कि 'तुलसीदासका दर्शन औपनिषदिक दर्शनका समशील नहीं है।······उपनिषदोंके अनुसार ब्रह्मभाव ही मुक्ति है। तुलसीकी दृष्टिमें दासभावसे भगवान्के समीप उनके वैकुण्ठधाममें निवास ही आदर्श मुक्ति है[6]।' दूसरेका कहना है कि 'मानसका दर्शन मूलतः अद्वैतपरक है और उसमें अद्वैतके व्यावहारिक पक्षका ऐसा मङ्गलमय विनियोग हुआ है, जो संस्कृत-वाङ्मयमें भी 'भागवत'के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है[7]।'

तुलसीको किसी एक दर्शनकी मान्यतामें बाँधना उनकी बहुमुखी प्रतिभा और साधना-संवलित आध्यात्मिक अनुभूतिका अपमान करना होगा। मानसके आरम्भमें ही उन्होंने कहा है—

'नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।'
(मानस १।०।७)

इससे स्पष्ट है कि तुलसीने अपनी 'रघुनाथ-गाथा'में उन सभी जीवनतत्त्वोंका सामञ्जस्यपूर्ण समावेश किया है, जो समाजकी मर्यादाके आदर्श हो सकते हैं और जिनमें ज्ञान और भक्ति, कर्म और वैराग्य तथा योग और साधनाके मूलतत्त्वोंको हृदयंगम करानेकी शक्ति है।

तुलसीकी भक्ति-निष्ठा समन्वयवादिनी है। समन्वयवाद भारतीय संस्कृतिकी एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। समय-समयपर इस देशमें कितनी ही संस्कृतियोंका आगमन और आविर्भाव हुआ, पर वे घुल-मिलकर एक हो गयीं। कितनी ही दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, साहित्यिक और सौन्दर्यमूलक विचारधाराओंका विकास हुआ; किंतु उनकी परिणति संगमके रूपमें हुई। उदारचेता विचारकोंकी सारग्राहिणी प्रतिभाने दूसरोंकी ग्राह्य मान्यताओंको निस्संकोचभावसे ग्रहण किया। यह समन्वय-भावनाका ही परिणाम है कि नास्तिक बौद्धोंने रामको 'बोधिसत्त्व' मान लिया और आस्तिक वैष्णवोंने बुद्धकी अवताररूपमें प्रतिष्ठा की। सांख्य-योग एवं न्याय-वैशेषिकमें वेदान्तके ईश्वरकी सत्ता स्वीकार की गयी और वेदान्तमें सांख्यकी सृष्टि-प्रक्रिया, योगकी ज्ञान-साधना तथा न्यायकी तर्क-प्रणालीको गौरव दिया गया। अर्थ-काम और धर्म-मोक्षमें, वेद-शास्त्र और लोक-परम्परामें, प्रवृत्ति और निवृत्तिमें, साहित्य और जीवनमें समन्वय स्थापित करनेके विराट् प्रयत्न किये गये; अनेकतामें एकताकी स्थापना की गयी, वैषम्यमें साम्यका दर्शन किया गया। समन्वयमें आस्थावान् इस देशके जन-जीवनकी लालसा, अभिलाषा, धर्म और विश्वास तथा दर्शन एवं साधनाको रामके केन्द्रबिन्दुसे समन्वयितकर लोकदर्शी तुलसीने एक अद्भुत मानवीय मर्यादाका सृजन किया है। मानसका समन्वय अपने कवित्वमय भक्ति-दर्शन, भक्ति-दर्शनमय कवित्व और आमूढ-पण्डितव्यापिनी लोकप्रियताके कारण अद्वितीय है। यह तुलसीके प्रत्यक्ष अनुभव, सूक्ष्म अवेक्षण और गहन अनुशीलनका सम्मिलित परिणाम है।

तुलसीके राम मूलतत्त्व या परमतत्त्व हैं[8]। वे सच्चिदानन्दस्वरूप हैं[9]। उपनिषद्कारों और वेदान्तियोंने जिसे 'ब्रह्म' कहा है, शैवोंने जिसे 'परमशिव' माना है, वैष्णवोंकी दृष्टिमें जो 'परम-विष्णु' हैं, उसी परमार्थतत्त्वको तुलसी 'राम' कहते हैं। उन्हींसे आविर्भूत और उनसे भिन्नाभिन्न तत्त्व हैं— जीव और जगत्[10]। वही राम—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा[11]॥

और—

अज अद्वैत अनाम, अलख-रूप-गुन-रहित जो।
मायापति सोइ राम दास हेतु नर-तनु धरेउ[12]॥
निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ[13]॥

---

६. 'तुलसी-दर्शन-मीमांसा'—डा० उदयभान सिंह, पृ० ३४०।

७. 'रामचरितमानसका तत्त्व-दर्शन', डा० ....कुमार, पृ० ९।

८. रामचरितमानस १।२४१।२।

९. वही, २।८७; दोहावली ११६।

१०. विनयपत्रिका ५४।२-४; दोहावली २००।

११. रामचरितमानस १।१२०।३-४।

१२. वैराग्यसंदीपनी ४।

१३. रामचरितमानस ७।७३; और 'सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥' (१।११५।१/२), 'अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥' (१।२२।१); 'जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।' (७।१२ छं० १)

तुलसीके ये राम भक्तोंके भगवान् तो हैं ही, वे उनके स्वामी, सखा और सहचर भी हैं और हर प्रकारसे अपने भक्तोंके वशमें हैं—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥
(पद्म० उत्तर० ९४। २३)

भगवान् कहते हैं—'नारदजी! मैं न तो वैकुण्ठमें रहता हूँ न योगियोंके हृदयमें। मैं तो वहीं स्थिर रहता हूँ, जहाँ भक्त मेरा गुणगान करते हैं।'

भक्तोंके दुःखसे दुःखित होकर ये विश्वके कल्याणके लिये अवतार धारण करते हैं और तरह-तरहकी लीलाएँ करते हैं। लीलाके विना मानव उनका ध्यान भले ही कर ले, उन्हें अपने जीवन और हृदयमें घुला-मिला आराध्यके रूपमें नहीं अनुभव कर सकता। इसीलिये 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय'की धारणासे परम पुरुषके अवतारकी बात कही गयी है।

रामचरितमानसके आरम्भमें ही गोस्वामी तुलसीदासजीने भगवान् शंकरके मुखसे कहलवाया है—

'गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज बिमोहन सीला[१४]॥'

सारा मानस रामकी गरिमा-मण्डित लीलाओंके वर्णनसे अनुप्राणित है। तुलसीने परब्रह्मके गुणों और भक्तिभावनामें अनेक नवीन तत्त्वोंका समावेश किया है, जिनमें मुख्य हैं—परब्रह्मका लीला-तत्त्व। मानसके राम अपने परब्रह्मत्वसे परिचित हैं, परंतु वाल्मीकिके रामको अपने परब्रह्मरूपका भान तब होता है, जब देवगण उनसे इसकी चर्चा करते हैं (वा० रा० ६। ११७)। यही कारण है कि वाल्मीकि-रामायणमें परब्रह्मका लीला-तत्त्व अप्राप्य है। इसका उद्घाटन परवर्ती कालमें हुआ और मानसके रामका चरित इसके विना नहीं समझा जा सकता।

मानसके रामके लीलातत्त्वोंको साधारणतया निम्नलिखित-रूपमें अवगत किया जा सकता है—

(१) रामका समस्त जीवन एक विशाल क्रीड़ा और विराट् अभिनय है। उनकी न किसीसे शत्रुता है और न मित्रता। रावणका वध वे शत्रुतावश नहीं करते, लोकोद्धारके लिये करते हैं और लोकके साथ स्वयं रावणका उद्धार भी उसे मुक्ति देकर कर देते हैं। कौसल्याको वे जन्मके समय ही सचेत कर देते हैं कि वे उसके पुत्र नहीं, वरं 'माया-गुन-ग्यानातीत'(मा० १।१९१।१ छं०) हैं। दशरथ भी उनके ब्रह्मरूपसे अवगत हैं (मा० २।७६।३-४)। इस प्रकार समस्त प्राणी लौकिक नातोंके बीच भी उनके परब्रह्मरूपको पहचानते हैं और जहाँ-कहीं उनमें विस्मरण दिखलायी पड़ता है, वहाँ कवि उन्हें इसकी याद दिलाना नहीं भूलते। परंतु रामायणके रामका जीवन और आचरण इस प्रकारका नहीं है। उनके हास-रुदन, शोक-क्षोभ वास्तविक हैं और इनके साथ ही उनके आत्मसंयमका प्रकाश भी रामके उस महामानवत्वको प्रकट करता है, जो मानवीय श्रद्धाका आलम्बन बनकर उनमें ईश्वरत्वका आभास करा देता है।

(२) रामकी लीलाका दूसरा तत्त्व है—उनकी भक्तवत्सलता। यह मनोराग उनमें इतना प्रबल है कि वे भक्तोंके प्रेममें नीति-अनीति, सब कुछ भूल जाते हैं। वालीको वे पर-नारीरमणके अपराधपर दण्ड देते हैं, पर भक्त सुग्रीवकी इस कुचाल्यर उनका ध्यान नहीं जाता। स्वयं तुलसीदास भी इस पक्षपातपर कटाक्ष करनेसे बाज नहीं आये हैं।[१५] भक्तोंके प्रति इतनी उदारता और इतनी क्षमता न तो यथार्थ मनुष्यमें देखी जाती है और न आदर्श मानवमें। यथार्थ मनुष्यके संकीर्ण हृदयमें भक्तोंके विशाल परिवारसे प्रेम करनेकी उदारता नहीं हो सकती और आदर्श मानव नैतिकताके विचारसे न्याय और नीतिका उल्लङ्घन नहीं करेगा।

(३) लीलाका तीसरा तत्त्व है—श्रीरामकी सर्वतन्त्र-स्वतन्त्रता और अपनी शक्ति एवं सम्पन्नताका बोध। वे संसारकी सत्ताको शरणागतके रूपमें ही मानते हैं। जो शरणागत नहीं है, उसे प्रत्यक्ष या परोक्षरूपसे दमनकर शरणागत बना लिया करते हैं।[१६] वाल्मीकि-रामायणके अङ्गद संधिका प्रस्ताव लेकर लङ्का जाते हैं,परंतु मानसमें शरणागतिका।

(४) निश्चेष्टता लीलाका चौथा तत्त्व है। उनका प्रत्येक कार्य केवल इच्छामात्रसे हो जाता है। उन्हें किसी कार्यके सम्पादनके लिये परिश्रम या प्रयत्नकी आवश्यकता नहीं पड़ती। धनुषयज्ञमें वे धनुषको अनायास उठा लेते हैं और उसे कमलनालकी तरह खण्ड-खण्ड कर देते हैं। विराध, कबन्ध, वाली आदिका केवल एक बाणसे वध कर देते हैं। रावणके साथ युद्ध नहीं करते, उसे खेल खिलाते हैं। इसी प्रकार उनके समस्त मनोविकार भी प्रदर्शनमात्र हैं; क्योंकि उनकी इच्छाशक्ति ऐसी है, जिससे समस्त सृष्टि एवं अखिल ब्रह्माण्ड संचालित है।

(५) लीलाका पाँचवाँ तत्त्व उनकी सर्वव्यापकताका प्रकाश है। इसे गोस्वामी तुलसीदासने अपने रामचरितमानसमें बड़ी दक्षता एवं भावुकतासे प्रदर्शित किया है।

(६) रामकी माया उनकी लीलाकी आधार-शक्ति है। इस मायाकी अभिव्यक्ति परब्रह्मस्वरूप राममें दो रूपोंमें की गयी

१४. १। ११२। ४।

१५. मा० १। २८। ३।

१६. देखिये—'मानस-दर्शन', पृ० ११।

है। एक तो उनकी रहस्यमयी शक्तिके रूपमें और दूसरी सीताके रूपमें साकार बनकर दिखलायी पड़ती है। सीता महाविष्णु जगदीश अथवा परब्रह्मकी महाशक्ति हैं—

'श्रुति-सेतु, पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी' (मा० २। १२५। १ छं०)।

रामकी लीला और उसके परिकरोंकी भावभूमि समझनेके लिये मानसकी दार्शनिक एवं भावनात्मक पृष्ठभूमिका ज्ञान आवश्यक है। इसी बातको दृष्टिकोणमें रखकर उपर्युक्त विवेचन संक्षेपमें किया गया है।

मानसमें भगवान् रामकी जिन लीलाओंका प्रकाश है, उन्हें स्थूलरूपसे चार भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—

१—ईश्वरत्वको प्रकाशित करनेवाली लीलाएँ।

२—सनातन सत्यको उद्भासित करनेवाली लीलाएँ।

३—मानवीय संवेगों एवं मानवीय आदर्श-परम्पराओंको उद्घोषित करनेवाली लीलाएँ।

४—सामाजिक सम्बन्धोंसे सम्बन्धित लीलाएँ।

भगवान् रामके जन्मके समय ही माता कौसल्याने जब भगवान्का रूप देखा—

लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥
(मा० १। १९१। १ छं०)

—तो उन्होंने अपनी प्रार्थनामें भगवान्से विनती की—

'कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥'
(मा० १। १९१। छं० ४)

यहाँसे मानसके रामकी लीलाका प्रारम्भ होता है और मानसके अन्ततक अलग-अलग परिस्थितियोंमें और अलग-अलग रूपोंमें भगवान्के लीला-वैभवका दर्शन होता है।

लीलाके परिकरोंमें केवल मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी, देवता और राक्षसोंके भी दर्शन होते हैं। एक तरफ परब्रह्मकी मूर्तिमती शक्ति 'सीता' हैं, जिनको केन्द्र बनाकर मानसकी कथा अपने सौष्ठव एवं अनुपम कथा-संगठनके साथ बढ़ती है; दूसरी तरफ परब्रह्मके अंशरूप रामके तीनों भाइयोंकी मर्यादा-स्थापिनी मूर्तिके दर्शन होते हैं। इन्हीं पाँचकी परिधि बनाकर मर्यादापुरुषोत्तमके रूपको उद्भासित करनेके लिये पिता-माता, सखा-सेवक, बन्धु-मित्र तथा शत्रु और सहायकोंके चरित्रको निखारा और सँवारा गया है। लीला-परिकरके पात्रोंका समुचित चित्रण एक लेखमें करना सम्भव नहीं है, इसलिये यहाँ उनका उल्लेख मात्र किया जा सकता है।[१७]

भगवान् रामके लीला-परिकरके मुख्य पुरुष-पात्र हैं—लक्ष्मण, भरत, दशरथ, रावण, हनुमान्, सुग्रीव, विभीषण, मेघनाद और अङ्गद।

प्रधान स्त्री-पात्र हैं—सीता, कौसल्या, कैकेयी, सुमित्रा, मन्थरा, शूर्पणखा, शबरी, मन्दोदरी और तारा।

गौण पुरुष-पात्र हैं—(क) रामके स्वजन-सम्बन्धी—शत्रुघ्न, सुमन्त्र, जनक, वसिष्ठ; और वाली।

(ख) रामके सखा, सेवक, सहायक आदि—निषाद, जाम्बवंत, जटायु और सम्पाति।

(ग) ऋषिगण—विश्वामित्र, परशुराम, भरद्वाज, वाल्मीकि और अगस्त्य।

(घ) रावणके स्वजन और सहायक—मारीच, कुम्भकर्ण, खर, माल्यवान् और प्रहस्त।

गौण स्त्री-पात्र—त्रिजटा, अनसूया और सुनयना।

कथानिष्ठ पात्र—

रामसे सम्बन्धित पुरुष-पात्र—शतानन्द, जयन्त, अत्रि, शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, कबन्ध, नल, नील, सुषेण और गरुड़।

स्त्री-पात्र—अहल्या, सुरसा।

रावणसे सम्बन्धित पुरुष-पात्र—अक्षयकुमार, महोदर, कुम्भ, विकुम्भ, विरूपाक्ष, नरान्तक, दूषण, त्रिशिरा, मय दानव, कालनेमि, शुक, सारण, शार्दूल आदि।

स्त्री-पात्र—छायाग्राहिणी और लङ्किनी।

पौराणिक पात्र, जिनका समावेश कथाकी प्रस्तावना या विकासके लिये किया गया है। वे हैं—नारद, ब्रह्मा, शिव, पार्वती, इन्द्र, काकभुशुण्डि और सरस्वती।

वाल्मीकि-रामायण और रामचरितमानस—दोनोंकी कथाका विकास यद्यपि श्रीरामके चरित्र-चित्रणके लिये ही किया गया है, तथापि दोनों महाकवियोंकी मान्यतामें भेदके कारण कथाका गठन और चरित्र-चित्रणका विकास अपने-अपने दृष्टिकोणके अनुसार ही उक्त महाकवियोंने किया है।

---

१७. रामचरितमानसमें चित्रित चरित्रोंका वाल्मीकि-रामायणमें वर्णित उन्हीं चरित्रोंके साथ तुलनात्मक अध्ययनके लिये देखिये—'वाल्मीकि और तुलसी-साहित्यिक मूल्याङ्कन'—डा० रामप्रकाश अग्रवाल, पृष्ठ १५३–६४।

पतितपावन राम नमोऽस्तु ते

(रचयिता—साहित्याचार्य पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')

भुवनभावन राम नमोऽस्तु ते
निजजनावन राम नमोऽस्तु ते।
अधमधावनतारणतृष्णया
पतितपावन राम नमोऽस्तु ते॥

जगदाश्रय श्रीरामजी ! आपको नमस्कार है। स्वजनरक्षक राम ! आपको नमस्कार है। अधम जनोंका उद्धार करनेकी प्रबल इच्छासे दौड़नेवाले पतित-पावन श्रीराम ! आपको नमस्कार है।

सुरधराविधिशम्भुभिरर्थितः
प्रकटितस्त्वमभूर्भुवि भारहृत्।
सुखयितुं निजभक्तजनान् विभो
पतितपावन राम नमोऽस्तु ते॥

विभो ! देवता, पृथ्वी, ब्रह्मा और शिवके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर (भू-) भारका हरण करनेके लिये और अपने भक्तजनोंको सुख देनेके लिये आप इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं। अतः हे पतित-पावन श्रीराम ! आपको नमस्कार है।

त्वमसि भास्वरभास्करसंततिः
कुमुदिनीकुलमोदनचन्द्रमाः।
स्वजनचन्दन तापनिकन्दन
पतितपावन राम नमोऽस्तु ते॥

स्वजनोंके लिये चन्दनस्वरूप एवं त्रिविध तापोंको नष्ट करनेवाले श्रीराम ! आप ही सूर्यवंशको दीप्तिमान् बनानेवाले हैं तथा आप ही (भक्तोंके) कुमुदसमूहको आनन्द देनेवाले चन्द्र हैं। हे पतित-पावन श्रीराम ! आपको नमस्कार है।

निजपितुर्निजमातुरनारतं
नयननन्दन चन्दन चेतसः।
जनकजानिजजीवन वित्त हे
पतितपावन राम नमोऽस्तु ते॥

अपने माता एवं पिताके नेत्रोंको सतत आनन्द प्रदान करनेवाले, हृदयके चन्दन और श्रीजानकीजीके जीवन-धन हे पतित-पावन श्रीराम ! आपको नमस्कार है।

अवधवासिजनप्रियजीवन
जनकराजपुरीप्रणयास्पद।
सकृदपि स्मरतां निजधामद
पतितपावन राम नमोऽस्तु ते॥

हे अवधवासियोंके प्रिय जीवनस्वरूप ! हे जनकपुरीके प्रेमास्पद ! एक बार स्मरणमात्रसे ही अपने धामको प्रदान करनेवाले पतित-पावन श्रीराम ! आपको नमस्कार है।

त्रिभुवने भुवनेश सतीषु सा
किमु कृता शबरी न वरीयसी।
स्वयमुपेत्य तदीयगृहे त्वया
पतितपावन राम नमोऽस्तु ते॥

हे भुवनेश ! क्या शबरीके घर स्वयं उपस्थित होकर आपने उसे त्रिलोकीकी सतियोंमें श्रेष्ठ नहीं बना दिया ? (इससे यही सिद्ध होता है कि आप पतित-पावन हैं। अतः) हे पतित-पावन श्रीराम ! आपको नमस्कार है।

परमसेव्यतमः किल मारुतेः
कपिपतेः सुहृदो विपदन्तकः।
अशरणस्य सदा शरणं भवान्
पतितपावन राम नमोऽस्तु ते॥

हे पतित-पावन श्रीराम ! निश्चय ही आप हनुमान्‌जीके परमाराध्य हैं, वानरोंके अधिपति मित्र सुग्रीवजीकी विपत्तिको नष्ट करनेवाले हैं और सदा ही अशरणको शरण देनेवाले हैं। आपको नमस्कार है।

अपि मुनीन्द्रमनोविषयो भवान्
भवति दीनजनस्य सदाऽऽश्रयः।
स्वपितराविव मुग्धशिशोः कृते
पतितपावन राम नमोऽस्तु ते॥

हे पतित-पावन श्रीराम ! आप मुनिश्रेष्ठोंके मनके लिये अगम्य होते हुए भी सदा दीनजनोंके आश्रय हैं और अबोध शिशु (के समान भोले भक्तों) के लिये आप माता-पिताके समान हैं। आपको नमस्कार है।

श्रीराम-दर्शन

(लेखक—प्रभुपाद आचार्य श्रीप्राणकिशोरजी गोस्वामी)

भक्तकवि तुलसीदास राममय संसारका दर्शन करते हुए कहते हैं—

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि ।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि ॥

[श्रीरामच० मा० १ । ७ (ग)]

तुलसीदास जिनका विश्वरूपमें दर्शन करते हैं, उनकी ही खोज तपस्वी वाल्मीकिने देवर्षि नारदके समीप की थी । वे कहते हैं—

को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः ।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः ॥
आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः ।

(वा० रा० १ । १ । २-४)

'किसके गुणोंकी सीमा नहीं है ? सर्वशक्तिमान्, धर्म-रहस्यवेत्ता, कृतज्ञ, सत्यप्रिय, दृढ़व्रती, चारित्र-गुणमें गरीयान्, सर्वभूत-हितमें रत, ज्ञानमय, समर्थ और सर्वजनके लिये प्रियदर्शन कौन है ? इन्द्रियजयी, क्रोधजयी, तेजस्वी और अदोषदर्शी, कौन है ?' नारदजी कहते हैं कि 'वह अन्य कोई नहीं है, इक्ष्वाकुवंश-प्रभव श्रीराम हैं ।' श्रीराम ही वह पुरुषोत्तम हैं । उनके आविर्भावसे विश्वके चर-अचर—सभी जीव पाप-मुक्त हो गये थे । महादेवी सतीके मनमें भी उनकी नरलीलाके विषयमें संदेह उत्पन्न हुआ था । शंकरजी निशिदिन राम-नाम स्मरण करते हैं । देवी जिज्ञासु बनकर रामका परिचय प्राप्त करना चाहती हैं । जो श्रीराम पत्नीके विरहमें कातर होकर वन-वन रुदन करते घूम रहे हैं, वे कातर राम, शिवके स्मरणीय कैसे हो सकते हैं ? देवी परीक्षा लेनेके लिये रामका अनुसरण करती हैं । सीताका वेष बना लेती हैं—राम-को मोहित करनेके लिये ! परंतु राम, देवीके सामने आते ही, पूछ बैठते हैं—'भगवति ! आप अकेली क्यों हैं ? शंकर कहाँ हैं ?' देवीकी माया रामको मोहित नहीं कर पाती; जान पड़ता है, वह दूर हट जाना चाहती है । हाय ! राम तो सामने हैं, इधर हैं, उधर हैं, सब ओर हैं—

फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा । सहित बंधु सिय सुंदर बेषा ॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना । सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना ॥

(श्रीरामच० मा० १ । ५३ । ३)

श्रीरामने जब जन्म लिया, तब माताने उनका चतुर्भुज रूपमें ही दर्शन किया था । वह रूप अद्भुत था—

लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी ।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी ॥

(श्रीरामच० मा० १ । १९१ । १

ये शोभासिन्धु कौसल्यानन्दन हैं । माँ कहती हैं—'तुम तो अज-भव-वन्दनीय हो । मेरे गर्भसे तुम्हारा जन्म होन उपहासकी बात है । अपने इस ऐश्वर्य-मण्डित रूपका संगोप करके साधारण शिशुलीला करो ।' माताके कहनेसे चतुर्भु द्विभुजरूप हो गये ।

विष्णुका आविर्भाव युग-युगमें विचित्र घटना-क्रम माध्यमसे वेद-पुराणमें वर्णित है । राजा दशरथने ऋष्यशृङ्ग द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञके फलस्वरूप मूर्त्तिमान् धर्म-अर्थ-काम मोक्षरूप चारों पुरुषार्थोंको ही मानो राम-लक्ष्मण-भरत शत्रुघ्नके रूपमें प्राप्त किया । वाल्मीकिके वर्णनके अनुसार—

कौसल्याजनयद् रामं दिव्यलक्षणसंयुतम् ॥
विष्णोरर्धं महाभागं पुत्रमैक्ष्वाकुनन्दनम् ।

(१ । १८ । १०-११

ब्रह्मसंहितामें लिखा है—

रामादिमूर्त्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्
नानावतारमकरोद् भुवनेषु किंतु ।
कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

स्वयं भगवान् गोविन्द श्रीकृष्ण युग-युगमें नाना अवता रूपमें प्रकट होकर जीवोंका कल्याण-साधन करते हैं । मत्स्य कूर्म, वराह आदि उनके ही अवतार हैं । कवि जयदे कहते हैं—

जनकसुताकृतभूषण, जित-दूषण हे,
समर-शमित-दशकण्ठ,
जय-जय देव हरे ।

(गीतगोविन्द १ । २ । ६

तारक-ब्रह्म-नाम हरि-कृष्ण-राममेंसे किसी एक नामका बो करानेके लिये ही कहा जाता है । गौड़ीय वैष्णवाचार्य श्रीस गोस्वामी स्वयं भगवान्के तीन परावस्थ रूप स्वीकार करते हैं

श्रीकृष्ण, श्रीराम, श्रीनृसिंह—भगवान्‌के ये ही तीन परावस्थ रूप हैं। इसके उत्कर्षसे स्वरूपका उत्कर्ष अवश्य स्वीकार्य होता है। श्रीमद्भागवतमें अद्वयज्ञान-तत्त्वको ही 'परतत्त्व' कहा गया है। तुलसीदासजी श्रीरामको ही 'सच्चिदानन्दघन परमब्रह्म' कहते हैं। नरलीलामें श्रीरामने बाल्यकालमें ही प्रभूत शक्तिका परिचय दिया है। विश्वामित्र मुनिने महाराज दशरथसे उनके ज्येष्ठ पुत्र रामको ही राक्षसोंका विनाश करनेके लिये माँगा—

स्वपुत्रं राजशार्दूल रामं सत्यपराक्रमम्॥
काकपक्षधरं वीरं ज्येष्ठं मे दातुमर्हसि।
(वा० रा० १।१९।८-९)

रामने विश्वामित्रके कहनेपर वनके मार्गमें ताड़काको मारा था। अकारण-करुण श्रीरामचन्द्रने गौतम ऋषिके आश्रममें शापभ्रष्टा अहल्याको अपने चरणोंके स्पर्शसे चेतना प्रदान की थी। अहल्याने उनका परम पावन, सुखदायक, प्रेममय पुरुषोत्तमरूपमें दर्शन किया। तुलसीदासकी भाषामें—

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही॥
(श्रीरामच० मा० ११।२१० छन्द १)

जनकपुरके मार्गमें दो बालक चले राम-लक्ष्मणके सङ्गी बनकर। पास जाकर उन्होंने किसी बहाने रामके अङ्गोंका स्पर्श करके अनुभव किया कि वे कितने कोमल हैं। वे मुग्ध हो गये, स्पर्शसे पुलकित हो उठे। नगरमें प्रवेशके साथ-साथ यह संवाद फैल गया कि दो राजकुमार नगर-दर्शन करनेके लिये आये हैं। उनके रूपकी कोई तुलना नहीं है। नर-नारी दौड़ पड़े दर्शनके लिये। घरके काम-काजको छोड़कर सुन्दरियाँ गवाक्षमें आँखें लगाकर श्रीरामको देखने लगीं। सचमुच इतना सुन्दर पुरुष उन्होंने कभी देखा न था। 'सुनते हैं, विष्णु परम सुन्दर पुरुष हैं; किंतु उनके तो चार हाथ हैं, मनुष्यके समाजमें मिलकर रहनेकी योग्यता उनमें कहाँ है? ब्रह्माकी सुनहली कान्ति होनेसे क्या? वे चतुर्मुख जो हैं! क्या उनसे कोई मानवी प्रेम करेगी? शंकरका तो प्रश्न ही नहीं उठता। कमनीय-मूर्ति तो हैं, किंतु पञ्चमुख! गलेमें सर्पकी माला, बाघंबर पहने! किसका साहस जो उनके पास जाय? ये जो अपरूप सौन्दर्यके परमाश्रय किशोर श्याम श्रीराम हैं, इनके अङ्गकी शोभाके सामने शतकोटि कामदेवकी शोभा भी तुच्छ है।'

नव किसोर सुषमा सदन स्याम गौर सुखधाम।
अंग अंग पर वारिअहिं कोटि कोटि सत काम॥
(श्रीरामच० मा० १।२२०)

राजर्षि जनककी सभामें विश्वामित्रके शिष्यके रूपमें श्रीराम राजर्षिकी दृष्टिको आकर्षित करते हैं। दूर्वादलश्याम श्रीराम और स्वर्णोज्ज्वल लक्ष्मण—दोनों भाई अनादि निःख रसकी मूर्ति हैं। उनको देखकर सभाके राजालोग, वीर-पुरुषोंके समूह, साधारण पुर-नर-नारी अपने-अपने हृदयके भावोंकी शोभा ही श्रीरामके रूपमें देख रहे हैं। योद्धालोग उनको मूर्तिमान् वीररसके रूपमें देखते हैं, कुटिल लोगोंको वे भयानक दीखते हैं, असुरभावापन्न लोगोंको यमराजके रूपमें तथा पुरके नर-नारियोंको श्रेष्ठ पुरुषरत्नके रूपमें दीखते हैं। तुलसीदास कहते हैं—

बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसें। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें॥
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥
हरि भगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुख दाता॥
रामहि चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया॥
(श्रीरामच० मा० १।२४१।१–३)

उपनिषद्-वेद्य, परमरस, सर्वसुखके आकर सच्चिदानन्द श्रीराम हैं। शिव-धनु-भङ्गके पश्चात् राजा जनक स्वीकार करते हैं कि दशरथ-नन्दन श्रीरामकी अति अद्भुत अतर्क्य अचिन्त्य शक्तिका परिचय उन्होंने पाया—

भगवन् दृष्टवीर्यो मे रामो दशरथात्मजः।
अत्यद्भुतमचिन्त्यं च अतर्कितमिदं मया॥
(वा० रा० १।६७।२१)

इससे पूर्व ही पुष्पोद्यानमें जानकीजी श्रीरामका दर्शन करके मुग्ध हो चुकी हैं। सम्भवतः यह बात राजा जनक नहीं जानते थे। जानकीका दर्शन अपलक अर्थात् निमेषरहित था, सारा शरीर स्नेह-स्नात हो गया। उनकी लालसा शरद्‌के पूर्णचन्द्रके प्रति चकोरकी-सी थी। तुलसीदास कहते हैं कि 'जानकीने श्रीरामको हृदयमें धारण करके पलकके कपाटको बंद कर दिया। राम जानकीके हृदयमें बस गये।'

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी॥
(श्रीरामच० मा० १।२३१।४)

कैकेयीके समीप श्रीराम सरल-स्वभाव, सत्यवादीके रूपमें

कथा वहाँ है। रामचरितमानसमें भी नारदजीने शीलनिधि राजाकी कन्या विश्वमोहनीसे विवाहका आग्रह कर विष्णुसे रूप-सम्पत्-प्राप्तिकी प्रार्थना करके, वानरमुख होकर स्वयंवर-सभामें लज्जित होकर विष्णुको शाप दे डाला कि 'जाओ, तुम मनुष्यलोकमें जन्म लेकर पत्नी-वियोगका दुःख उठाओ।'

नारदजी कहते हैं—

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी॥
(श्रीरामच०मा० १। १३६। ४)

योगवासिष्ठ रामायणके अन्तर्गत अग्निवेश्य-कारुण्य-संवादमें इस श्रीरामरूपमें आविर्भावके कारणस्वरूप कई शाप-कथाएँ हैं। श्रीवाल्मीकि कहते हैं कि 'अभिशापको निमित्त बनाकर श्रीहरि सर्वज्ञानमय होकर भी अज्ञानी या अल्पज्ञके समान राजवेष धारण करके रामशरीरमें लीला करते हैं।' राजा अरिष्टनेमि पूछते हैं कि 'चैतन्यविग्रह चिदानन्दस्वरूप भगवान् क्योंकर अभिशापग्रस्त हुए?' वाल्मीकि मुनिने कहा कि ''वैकुण्ठनाथ विष्णुका एक बार सत्यलोकमें शुभागमन हुआ। ब्रह्माने उनकी यथायोग्य पूजा की। किंतु सनत्कुमार निष्काम होकर अवस्थित रहे, विष्णुकी यथायोग्य पूजा नहीं की; सत्यलोकनिवासी सबके द्वारा पूजा हुई, किंतु सनत्कुमारने उसमें योग नहीं दिया। विष्णु बोले—'सनत्कुमार! तुम्हारे मनमें निष्काम साधु होनेका गर्व है। मुझको साक्षात् देखकर भी तुमने पूजा नहीं की। मैं अभिशाप देता हूँ कि तुम स्कन्द नामसे जन्म ग्रहण करोगे और तुम्हें विवाहकी इच्छा होगी।' सनत्कुमार प्रतिशाप देते हुए बोले—आपका भी सर्वज्ञान कुछ समयके लिये तिरोहित हो जायगा।'

तेनापि शापितो विष्णुः सर्वज्ञत्वं तवास्ति यत्।
किंचित्कालं हि तत्यक्त्वा त्वमज्ञानी भविष्यसि॥
(योगवा० १। १। ६०)

भृगुमुनिने अपनी पत्नीको विष्णुद्वारा मारी गयी देख, क्रोधमूर्च्छित होकर, अभिशाप दिया कि 'मैं जिस प्रकार पत्नीविरहमें कातर हो रहा हूँ, हे विष्णु! तुमको भी भार्या-वियोगका दुःख इसी प्रकार सहना पड़ेगा।'

भृगुर्भार्यां हतां दृष्ट्वा ह्युवाच क्रोधमूर्च्छितः।
विष्णो तवापि भार्याया वियोगो हि भविष्यति॥
(वही, १। १। ६१)

वृन्दा सतीने विष्णु-मायासे मुग्ध होकर विष्णुको अभिशाप देते हुए कहा—'मेरे साथ छल करके तुमने मेरे पतिकी मृत्यु करा दी। इस कारण मैं तुमको अभिशाप देती हूँ कि तुम भी स्त्री-विरहका दुःख-भोग करोगे।'

वृन्दया शापितो विष्णुश्छलनं यत्त्वया कृतम्।
अतस्त्वं स्त्रीवियोगं तु वचनान्मम यास्यसि॥
(वही, १। १। ६२)

पयोष्णी नदीके तीरपर देवदत्त नामके एक ब्राह्मण रहते थे। हिरण्यकशिपुके वधके बाद विष्णुको भयंकर श्रीनृसिंह-वेषमें देखकर उनकी पत्नीका प्राण छूट गया। वह ब्राह्मण पत्नीके वियोगसे कातर हो उठा और विष्णुको अभिशाप दे दिया कि 'मेरे समान तुमको भी पत्नी-वियोगका दुःख सहन करना पड़ेगा।'

इन सब शापोंको स्वीकार करके भगवान्ने श्रीराम-शरीरमें श्रीजानकीके विरहको अङ्गीकार किया था। विषण्ण रामके मनमें वैराग्यका उदय योगवासिष्ठ रामायणकी भूमिका है।

श्रीचैतन्यचरितामृतमें वर्णित है कि श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु दक्षिण देशमें भ्रमण करते समय एक रामभक्तके अतिथि हुए थे। उस ऐकान्तिक रामभक्तने, श्रीजानकीको दुष्ट दशानन हर ले गया है—इस भावसे कातर होकर आहार-निद्रा त्याग दी थी। महाप्रभु उसके ऐकान्तिक भावसे मुग्ध हो गये। महाप्रभुने ब्राह्मणको आश्वासन देते हुए कहा—

पतिव्रताशिरोमणि जनकनन्दिनी।
जगतेर माता सीता श्रीरामगृहिणी॥
रावण देखि सीता लैल अग्निर शरण।
रावण हैते अग्नि कैला सीता आवरण॥
सीता लैया राखिलेन पार्वतीर स्थाने।
माया-सीता दिया अग्नि वञ्चिला रावणे॥
(चै० च० २। ९। १८७-८९)

रामदास ब्राह्मणको विश्वास दिलानेके लिये उन्होंने रामेश्वरसे कूर्मपुराण मँगाकर उसका प्रमाण दिया—

सीतयाऽऽराधितो वह्निश्छायासीतामजीजनत्।
तां जहार दशग्रीवः सीता वह्निपुरं गता॥
परीक्षासमये वह्निं छायासीता विवेश सा।
वह्निः सीतां समानीय त्वत्पुरादुदनीनयत्॥

अग्रे धनुर्धरवरः कनकोज्ज्वलाङ्गो
ज्येष्ठानुसेवनरतो वरभूषणाढ्यः ।
शेषाख्यधाम वरलक्ष्मणनाम यस्य
रामं जगत्त्रयगुरुं सततं भजामि ॥
हत्वा खरत्रिशिरसौ सगणौ कबन्धं
श्रीदण्डकाननमदूषणमेव कृत्वा ।
सुग्रीवमैत्रमकरोद् विनिहत्य शत्रून्
रामं जगत्त्रयगुरुं सततं नमामि ॥

श्रीरामका कोई-कोई पञ्चरात्रके मतसे चतुर्व्यूहार्चनमें तुरीय चैतन्यके रूपमें दर्शन करते हैं, कोई राम-लक्ष्मण-सीता—इस त्र्यायतनमें और कोई भरत, शत्रुघ्न, विभीषणके साथ पञ्चायतनके रूपमें उनकी सेवा करते हैं और कोई सप्तायतनके रूपमें उनका दर्शन करते हैं। वज्राङ्गी हनूमान् नित्य श्रीरामदास हैं, उनके बिना कुछ भी होनेका नहीं । श्रीरामदर्शनमें वज्राङ्गीके अनुग्रहकी मैं प्रार्थना करता हूँ । श्रीरामदर्शन भक्तजनको सदा आनन्द प्रदान करे ।

भगवान् श्रीराम

(लेखक—पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा शास्त्री, सारस्वत, विद्यावागीश, विद्यानिधि, विद्यावाचस्पति)

प्रसन्नतां या न गताभिषेकत-
स्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे
सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा ॥
(श्रीरामचरितमानस)

(१) अवतार भगवान्का हुआ करता है । भगवान् सनातन हैं । वेद भी सनातन—भगवान्की सनातन वाणी हैं । अतः वेदमें भी भगवान्के अवतारोंका संकेत हो—यह स्वाभाविक ही है। देखिये—

'प्र तद् विष्णु स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।' (यजु०, माध्यं० ५ । २०)

इस मन्त्रमें 'विष्णुभगवान्' को 'कुचर' कहा गया है ।

कौ=पृथिव्यां चरतीति 'कुचरः' ।

द्युलोकमें जिनका नित्य धाम है, उन भगवान्को 'कुचर' (पृथ्वीपर संचरण करनेवाला) कहना भगवान्का अवतरण बता रहा है ।

इसी विशेषणको इन्द्रके लिये, जो—

'देवानामस्मि वासवः ।' (गीता १० । २२)

—के अनुसार भगवान्के ही रूप हैं—मानकर भाष्यकार श्रीउवटाचार्यने लिखा है—

सर्वैरेतैः मृगादिभिः पदैः इन्द्रो विशिष्यते । स हि विष्णोरुपमानं भवितुमर्हति । मृगो न—मृजूष् शुद्धौ । शुद्धोऽपहतपाप्मा इन्द्रः कुचरः—कौ पृथिव्यां चरति इति कुचरः, मत्स्यकूर्मादिरूपेण इन्द्रः पृथिव्यां चरति ।

इसी प्रकार भाष्यकार श्रीमहीधराचार्यने भी—

'कुचरः मत्स्यकूर्मादिरूपेण इन्द्रः पृथिव्यां चरति ।'

—यह लिखकर वेदमें अवतारवाद सिद्ध कर दिया है । 'मत्स्यकूर्मादिरूपेण' के 'आदि' शब्दसे 'राम-कृष्ण' आदि स्वतः गृहीत हो जाते हैं ।

(२) एक अन्य मन्त्र भी प्रसिद्ध है—

'प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते ।' (यजु०, माध्यं० ३१ । १९)

इस मन्त्रमें प्रजापति—परमात्माका गर्भके अंदर उत्पन्न न होकर विशेषरूपसे प्रकट होना कहा गया है ।

इस बातको ब्रह्मवैवर्तादि पुराणोंमें स्पष्ट किया गया है कि गर्भमें वायु भर जानेके कारण बाहरसे गर्भमें भगवान्की स्थिति प्रतीत होती है, पर दसवें मासमें गर्भकी वायु निकल जाती है और उस समय भगवान् विशेषरूपसे प्रकट हो जाते हैं ।

देखिये—

(३) 'पूर्णे च दशमे मासि गर्भः पूर्णो बभूव ह ।'
बभूव सा (देवकी) चलस्पन्दा जडरूपा च नारद ॥
(ब्रह्मवै०, श्रीकृष्णजन्मखण्ड ७ । ४३)
गर्भे च वायुना पूर्णे निर्लिप्तो भगवान् स्वयम् ।
हृत्पद्मदेशे देवक्या ह्यधिष्ठानं चकार ह ॥
(४४)

ही क्यों न हो, अन्तर्मनसे दी गयी धर्म-सम्मत आज्ञाओंको पूर्ण करनेवाला बने, उससे विमनस्क होकर न रहे।

पत्नी पतिका आदर करनेवाली और उसके एक-एक संकेतके अनुसार चलनेवाली, पतिके सुखमें सुखिनी और उसके दुःखमें दुःखिनी, पतिसे मधुर बोलनेवाली, उसके अप्रिय व्यवहार करनेपर भी मनसे भी पतिका अनिष्ट न सोचनेवाली, शान्तिप्रिय बने। रामरूपमें अवतार लेकर भगवान्‌ने इन्हीं वैदिक सिद्धान्तोंका शिक्षणार्थ अभिनय करके दिखलाया।

वेदमें यह भी बताया गया है—

'मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।'
(अथर्व० ३। ३०। ३)

भाई भाईसे द्वेष न करनेवाला बने। छोटा भाई बड़े भाईको पितृस्थानीय मानकर उसके संकेतानुसार चलनेवाला और बड़ा भाई छोटे भाईके दोषोंको न देखनेवाला, उसके अप्रिय कार्य करनेपर भी उसके साथ बुरा व्यवहार न करनेवाला बने। बहिन बहिनसे प्रेम करनेवाली बने। अपनी बहिनकी सौभाग्यवृद्धि देखकर उससे जलती न रहे। ईर्ष्यालु न बने।

कृष्णयजुर्वेदमें भी कहा है—**'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव'** (तैत्तिरीय उपनिषद् १। ११। २)। पुत्र माता-पिताका, शिष्य आचार्यका देवताकी भाँति सत्कार करनेवाला बने। उनकी इहलोक एवं परलोकमें यश देनेवाली अन्तर्मनसे दी गयी धर्म्य आज्ञाओंको पूर्ण करनेवाला बने। वेदके इसी श्रव्य निराकार उपदेशको मूर्तरूप देनेके लिये निराकार भगवान्‌ने स्वयं दृश्यरूप भी ग्रहण किया। भगवान्‌ने रामावतारका अभिनय दिखलाकर उसका यह सफल परिणाम दिखलाया—**'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव।'**

(६) परमात्मा देवोंका भी देव है, यह सभी सम्प्रदाय कहते हैं तथा मानते हैं। पर उसी देवदेवने ऋग्वेदके आरम्भमें **'अग्निमीळे पुरोहितम्'** (१। १। १) द्वारा अग्निदेवकी स्तुति एवं उपासना की। क्या अपने लाभके लिये ? नहीं-नहीं, हमें शिक्षा देनेके लिये। उसीने समुद्रके पार जानेके लिये **'तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये'** (अथर्व० ७। ९२। १) अग्निस्वरूप महादेवकी पूजा की। क्या अपने लाभके लिये ? नहीं-नहीं, हमारे लाभ, कल्याणके लिये तथा हमें सिखलानेके लिये। उनका नाम रक्खा 'रामेश्वर'। श्रीरामको उसका अर्थ इष्ट था—'रामस्य ईश्वरः' (रामका स्वामी), श्रीमहादेवको उसका अर्थ इष्ट था—**'राम ईश्वरो यस्य'** (राम हैं स्वामी जिसके)। इस प्रकार साम्प्रदायिक विवाद मिट गया।

श्रीमद्भागवत (५। १९। ५) तथा श्रीमद्देवीभागवत (८। १०। १५) पुराणोंमें भी आता है—

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।
कुतोऽन्यथा स्याद् रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य॥

'परमात्माका मनुष्यावतार केवल राक्षसोंको मारनेके लिये ही नहीं होता, किंतु मनुष्योंके सिखलानेके लिये भी होता है। नहीं तो अपने-आपमें रमण करनेवाले भगवान्‌को, भला, सीताके वियोगमें दुःख क्यों हो ?' यह सब मनुष्योंको यह सिखलानेके लिये होता है कि 'अपनी स्त्रीके दुःखमें दुखी बनो। उसका प्रतीकार करो। भारतीय स्त्रीके चुरानेवाले राज्यकी ईंट-से-ईंट बजा दो।'

(७) यद्यपि परमात्मा निराकाररूपमें सर्वव्यापक होता है तथा उसका एकदेशमें अवतरण तथा अयोध्या एवं लङ्का आदिमें गमनागमन साधारण जनोंमें संशय उत्पन्न कर देता है, तथापि दूरदर्शियोंको यहाँ कोई भ्रम नहीं होता। वे जानते हैं कि अग्निकी भाँति संघर्षादि कारणवश वह एकदेशमें प्रकट हो जाता है। एकदेशमें प्रकट हो जानेपर भी उसकी सर्वव्यापकतामें कुछ भी बाधा नहीं पड़ती और न उसके स्वरूपमें कोई न्यूनता आती है—**'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।'** (बृहदारण्यक ५। १। १) 'पूर्णसे पूर्ण अंशके निकलनेपर भी वह पूर्ण ही रहता है।'

यदि अग्नि कहीं प्रज्वलित हो उठती है, तो उसका अन्य स्थलोंमें अभाव नहीं हो जाता। उसकी सर्वव्यापकतामें भी कोई न्यूनता नहीं आती और वह प्रज्वलित अग्नि उस मूल, निराकार अग्निसे कोई भिन्न भी नहीं हो जाती वा नहीं रहती।

आकाश भी सर्वव्यापक होता है। वह घड़ेमें भी घटाकाशरूपमें रहता है। कोई पुरुष घड़ेको लेकर भाग खड़ा हो, तो घटके साथ घटाकाश भी भागता हुआ मालूम होता है। घटके अनुसार उसका परिमाण भी उस समय हो जाता है। पर ये सब स्थूल दृष्टियाँ हैं। सूक्ष्म दृष्टिवाले जानते हैं कि आकाशमें घड़ा जा रहा है, आकाश नहीं भाग रहा है।

सिनेमामें लोग भागते हुए मालूम होते हैं; वस्तुतः वे भागते नहीं होते, चित्र-पर-चित्र एक साथ प्रकट हो रहे होते हैं, वही पुरुषका भागना मालूम पड़ता है। रातको बोर्डकी सीनरीपर बिजली दौड़ रही मालूम होती है; पर वहाँ बिजली उसी रूपमें रहती है, केवल यन्त्र चल रहा होता है। इस प्रकार विचार-दृष्टि रखनेपर कूटस्थ सर्वव्यापी परमात्माके गमनागमनकी वास्तविकता ज्ञात हो जाती है कि वह लीलामात्र है।

लोगोंको शङ्काएँ या भ्रम कुछ स्थूलदृष्टिवश, कुछ अल्पश्रुतता वा अज्ञानवश, कुछ अपनी एकदेशीय साम्प्रदायिक दृष्टिके दुराग्रहवश हुआ करते हैं। सनातनधर्मकी सूक्ष्मतम दृष्टि स्वीकृत करनेपर सभी प्रकारकी शङ्काएँ एवं कुतर्क हट जाते हैं। अस्तु !

(८) निराकाररूपमें यद्यपि अग्नि सर्वत्र है, तथापि वह सर्वसाधारणके उपयोगमें नहीं आ सकता। प्रज्वलित-अप्रज्वलित अग्नियोंमें वास्तवमें कोई भेद नहीं होता; परंतु प्रज्वलित अग्नि ही सर्वसाधारणके काममें आता है और सबके द्वारा सेवनीय होता है। यह ठीक है कि सूक्ष्ममें स्थूलकी अपेक्षा अधिक शक्ति होती है; पर संसारी प्राणी स्थूल होनेसे वे सूक्ष्मसे काम नहीं ले सकते। उन्हें रोटी पकानी होती है, उसे वे सूक्ष्म अग्निसे नहीं पका सकते; इसके लिये उन्हें स्थूल अग्नि अपेक्षित होती है।

यही बात भगवान्के लिये भी जाननी चाहिये। अग्निकी भाँति भगवान् भी प्रकट होकर यद्यपि फिर पृथिवीसे तिरोभूत हो जाते हैं, तथापि दिव्यतावश उनकी वह प्रकट हुई शक्ति इस पृथिवीपर अक्षुण्ण रहती है और वह शक्ति वेदमन्त्र-प्रतिष्ठापित पार्थिव मूर्तिद्वारा विशेष आयतनमें दुही जा सकती है। वही दुही हुई प्रज्वलित शक्ति भक्तोंके मनोरथोंको पूर्ण करती है और अधिकारियोंद्वारा उसकी उपासना की जा सकती है।

(९) परमात्माके निराकार होनेका तात्पर्य यह नहीं है कि उसका कुछ भी आकार नहीं है। वैसी मान्यतासे परमात्मामें शून्यता आ जायगी। वस्तुतः निराकारका अर्थ है—अनिर्वचनीय आकारवाला। अत्यन्त सूक्ष्मतावश हम उसे न देख सकते हैं, न उसका किसी भी भाँति वर्णन कर सकते हैं, न उसे जान पाते हैं; अतः वह निर्विकल्पक ज्ञानद्वारा ही ग्राह्य होता है। इसी अनिर्वचनीय आकारके कारण उसे 'निराकार' कहा जाता है, आकारशून्य होनेके कारण नहीं।

आर्यसमाजके संस्थापक श्रीस्वामी दयानन्दजीने परमात्माको 'निराकार' माना है। उन्होंने यह लिखा है कि आकाश और जीवात्मा भी निराकार हैं, किंतु उनका आकार परमात्माकी अपेक्षा कुछ स्थूल है; परंतु परमात्मा तो इनसे भी सूक्ष्म—सूक्ष्मतर है। इससे स्पष्ट हो गया कि परमात्माका आकार तो है, पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म है।

इसी कारण ही सनातनधर्म परमात्माको साकार भी कहता है। लेकिन स्पष्ट है कि यह लौकिक आकार नहीं, भौतिक आकार नहीं, किंतु दिव्य एवं अनिर्वचनीय आकार है। 'निराकार'में 'निर्' **'अनुदरा कन्या, अनमित्रो राजा, अजातशत्रुर्युधिष्ठिर'** आदिके 'नञ्' की भाँति अल्प अर्थवाला अथवा—अस्फुट अर्थका वाचक ही होता है। ऐसी स्थितिमें परमात्माकी निराकारता अपेक्षाकृत हुई, आकारके सर्वथा अभावकी द्योतक नहीं।

(१०) अवतारवादके विरुद्ध यह कहा जाता है कि 'परमेश्वर सबसे बड़ा एवं निराकार है, वह मनुष्य आदिके लघु शरीरों और अत्यन्त लघु गर्भाशयोंमें कैसे प्रवेश कर सकता है ? अतः परमात्माका अवतार सम्भव नहीं।'

इसपर जानना चाहिये कि आकाश भी सभी संसारी वस्तुओंसे महान् है और निराकार है तथा ईश्वरकी अपेक्षा महास्थूल है; क्योंकि—परमात्माके लिये **'सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति'** कहा गया है। इस प्रकार परमात्माकी अपेक्षा स्थूल आकाश भी जब घट आदि छोटे-छोटे पदार्थोंमें पूर्णतया प्रविष्ट-होकर घटमें 'घटाकाश' नामसे तथा मठ आदिमें 'मठाकाश' आदि नामोंसे प्रसिद्ध होता है, घट आदि उपाधिके हटनेसे उस आकाशका नाश नहीं होता, तब आकाशसे भी महासूक्ष्म परमेश्वर यदि माताके गर्भाशयमें प्रविष्ट हो जाता है—**'प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते'** (यजु० माध्यं० ३१। १९)—इस वेदमन्त्रानुकूल—जिसकी व्याख्या हम पहले ब्रह्मवैवर्तपुराणके वचनसे कर चुके हैं—दिव्य-रूपमें अवतीर्ण हो जाता है तो इसमें आश्चर्य क्या !

धर्मको क्षीयमाण देखकर भगवान् उसकी जिस प्रकारसे रक्षा देखते हैं, उसी प्रकारसे देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदिके शरीरोंमें प्रकट होकर धर्मकी रक्षा करते

हैं और अपने स्वरूपमें भी यथास्थित रहते हैं । जैसे आकाश घटके भीतर विद्यमान होकर घटाकार दीखता है, घटाकृतिके तिरोहित हो जानेपर वही घटाकाश अपने स्वरूपमें आ जाता है, घटरूप उपाधिके योगसे आकाशमें कोई विकार नहीं होता, वैसे ही परमात्माके अवतारके विषयमें भी जान लेना चाहिये ।

उन्हीं भगवान्‌के अवतार श्रीरामका चरित्र श्रीवाल्मीकि-रामायणमें आदिकविने बड़ी मधुरिमा एवं मार्दव तथा उदारतासे अङ्कित किया है । वाल्मीकि-रामायणमें भगवान् श्रीरामका अवतारत्व स्पष्ट है । इतना स्थान नहीं कि हम सभी पद्योंको उद्धृत करें । हम केवल कुछ थोड़े पद्योंकी सूचीमात्र दिग्दर्शन-रूपमें देते । देखिये, बालकाण्ड १५ । १९, २१-२२ ७६ । १७; अयोध्या० १ । ७ । ४४; १५-१६; अरण्य० ५ । ३३; ७४ । १२-१३; सुन्दर० ५१ । ४४; युद्ध० १२८ । ६९–७१ । उत्तरकाण्डमें तो यह विषय ओत-प्रोत है ही ।

'आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम् ।'
(वा० रा० ६ । ११७ । ११)

—यह भगवान् रामका कथन तो उनकी मर्यादा-पुरुषोत्तमता-प्रदर्शनार्थ है; नहीं तो एक मनुष्यका 'मैं मनुष्य हूँ' यह अपने-आपको कहना क्या अर्थ रखता है ।

(११) पहले कहा जा चुका है कि वेद अपौरुषेय भगवद्वाणी हैं, अतः वेदमें अवतार-विशेषके बीज मिल सकते हैं । पाठकगण देखें—

'भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् । सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैः अभि राममस्थात् ॥' (ऋसं० १० । ३ । ३; साम० १५४८)

श्रीरामका नाम रामभद्र उत्तररामचरित आदिमें बहुत प्रसिद्ध है । 'विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्वा लोपः ।' (अप्रत्यये तथैवेष्टः)' (५ । ३ । ८३)—इस वार्तिकके अनुसार 'सत्यभामा' पदसे भामा' सत्या आदिकी तरह 'राम-भद्रः' पदसे भद्रः, रामः—ये प्रयोग पूर्वपद वा उत्तरपदके लोपमें बन सकते हैं । इसी प्रकार उपर्युक्त मन्त्रमें पूर्वपद 'राम'का लोप होकर 'भद्र' बच गया है । अतः उक्त मन्त्रका अर्थ हुआ—

भद्रः—भजनीयो रामभद्रः श्रीरामः, भद्रया—भजनीयया सीतया, सचमानः—सेव्यमानः, संगच्छमानः, आगात्—वनं प्राप्तः । स्वसारं (यह यौगिक शब्द है)—सीतां ग्रहीतुं, जारः—रावणः, पश्चात्–रामपरोक्षे, अभ्येति–आगतः । ततो रावणे हते, अग्निः–अग्निदेवः, सुप्रकेतैः—श्रेष्ठज्ञानयुक्तैः, द्युभिः—रामदारैः सीतया सह, राममभि—श्यामवर्णस्य श्रीरामभद्रस्य अभिमुखं, रुशद्भिः—श्वेतैर्वर्णैः तेजोभिः, अस्थात्–उपस्थितः ।

'श्रीराम सीताके साथ वनमें गये । श्रीरामके पीछे रावण आया, वह सीताको हर ले गया । रावणके मरनेपर अग्नि देवताने रामकी तेजोरूपा पत्नी सीताको लेकर श्रीरामके सामने उपस्थित किया ।'

वेद सीधा इतिहासग्रन्थ तो है नहीं कि उसमें सभी इतिहास क्रमिक रूपसे आयें । उसमें तो बीज देखने पड़ते हैं ।

(१२) एक प्रश्न यह भी उपस्थित होता है कि "वेदमें सायण वा उवट-महीधरने राम एवं कृष्णका 'श्यामवर्ण' अर्थ किया है; अवतारवादका तो उन्होंने कहीं भी समर्थन नहीं किया । फिर इस मन्त्रमें रामावतारका वर्णन कैसे सम्भव है ?" इसपर निवेदन यह है कि वेदका मुख्य विषय यज्ञ* होनेसे इन भाष्यकारोंने भी मुख्यतया अपने भाष्योंमें याज्ञिक-दृष्टि ही रखी है । पर अवतारवादका उक्त तीनों ही भाष्यकारोंको वैदिक समर्थन इष्ट है ।

हम पहले लिख चुके हैं कि उवट-महीधरने 'कुचर' का अर्थ करते हुए 'कुचरः मत्स्यकूर्मादिरूपेण इन्द्रः पृथिव्यां चरति' कहकर अवतारवादको वैदिक सिद्ध कर दिया है । 'आदि' शब्दसे राम-कृष्ण आदि भी उनमें स्वतः अन्तर्गत हो जाते हैं, यह सर्वसाधारणमें प्रसिद्ध है ही । और फिर इस मन्त्रका देवता 'अग्नि' है । 'अग्निर्वै सर्वा देवताः' (७ । १७ । ४)—इस निरुक्तके वचनानुसार अग्निके अन्तर्गत श्रीरामावतार भी स्वयं गृहीत हो जाता है ।

अब रहे श्रीसायणाचार्य, उन्होंने भी 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' (ऋ० सं० १ । २२ । १७) इत्यादि मन्त्रके भाष्यमें 'विष्णो-स्त्रिविक्रमावतारे पादत्रयक्रमणस्य' के द्वारा वामनावतारका स्पष्ट निरूपण करके अवतारवादको वैदिक सिद्ध कर ही दिया है । ऋ० १ । १५४ । २ मन्त्रके भाष्यमें भी उन्होंने 'कुचरः—कुषु—सर्वासु भूमिषु लोकत्रये संचारी वा' कहकर भी इस मन्त्रके द्वारा अवतारवादको वैदिक सिद्ध कर दिया है । द्युलोकसे विष्णुका पृथिवीलोकमें अवतरण (प्राकट्य) का नाम ही 'अवतार' है ।

अतः जैसे 'श्वेतो धावति' का 'श्वेत गुणवाला अश्व'

* इस विषयमें 'आलोक' ग्रन्थमालाका छठा पुष्प देखिये ।

अर्थ प्रकरणानुसार होता है, वैसे ही 'रामः' का अर्थ भी 'कृष्णवर्णः श्रीरामः' हो जाता है। पूर्व समयमें 'यथानाम तथा गुणः' के अनुसार श्यामवर्ण होनेसे उनके राम-कृष्ण आदि नाम भी गुणानुसार रखे जाते थे।

(१३) 'प्र तद् दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे' (ऋ० सं० १०। ९३। १४)—इस मन्त्रमें राजाओंके नामोंमें 'राम' का नाम भी आया है। तब इससे वे ही तो 'रघुपति राघव राजा राम' सिद्ध हुए। 'असुरे' यह रामका विशेषण शब्द है। विशेषण सदा यौगिक हुआ करते हैं। 'असुर'का यौगिक अर्थ 'बलवान्' होता है, अतः यहाँ 'बलवान् राजा राम' वेदको इष्ट हुए।

'वरुण ! असुर !' (ऋ० १। २४। १४)—यहाँ वरुणदेवताको भी 'बलवान्' अर्थका विचार करके ही 'असुर' कहा गया है। रावण-कुम्भकर्ण-जैसे दुर्दान्त राक्षसोंको मारनेमें श्रीरामकी बलवत्ता स्पष्ट है। अर्वाचीन विचारोंको रखनेवाले रावबहादुर श्रीविनायक चिन्तामणि वैद्यने भी पूर्वोक्त मन्त्रमें श्रीरामावतारका बीज माना है। जैकोबी आदि पाश्चात्त्य विद्वान् भी रामायणीय कथाके बीज वेदमें मानते हैं।

रामायणीय कथाके पात्र भी वेदोंमें संकेतरूपसे मिलते हैं। 'अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूः अयोध्या। तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः' (अथर्व १०। २। ३१) इस मन्त्रमें 'हिरण्यय कोश' शब्दसे 'श्रीराम' इष्ट हैं। 'स्वर्गः' का अर्थ है—'स्वः—स्वर्गं गच्छतीति।' यह कथा श्रीरामके ऐहिकलीला-संवरणके प्रसङ्गमें उत्तरकाण्डमें आयी है। इस मन्त्रमें 'अयोध्या' नगरीका वर्णन है।

'सरयूः' (ऋ० १०। ६४। ९) इसमें अयोध्या-नगरीकी नदी सरयूका संकेत है। सरयू नदीका अयोध्याके साथ सम्बन्ध है, उसीके तटपर उक्त नगरी बसी हुई थी। तब अयोध्यानगरी भी सत्ययुगसे सिद्ध है। उसे मनुने बनाया था। मनुका भी वेद (ऋ० १। ५। ५-६) में स्पष्ट उल्लेख है। जब वेदमें 'सरयू' नदीका वर्णन है, तब वेदकी 'अयोध्या' नगरी भी वही सरयूके तटवाली सिद्ध हो गयी। इससे वेद पीछेके सिद्ध नहीं हो जाते। 'उत्तररामचरित'में यह ठीक ही कहा है—

'ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।' (१। १०)

आद्य ऋषियों (वेदों) की वाणी पहले चलती है—जैसे 'अयोध्या', 'दशरथ', आदि शब्द। और इन नामोंके द्वारा बोधित स्थान, व्यक्ति आदि पीछे अपने समयपर होते रहते हैं। इस प्रकार 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता' (ऋ० सं० १०। १९०। ३)—यहाँ वेदमें सूर्य-चन्द्रमा आदिका नाम पहले आया है। पर ये वेदसे पीछे अपने समयपर हुए। भगवान्‌के नित्य होनेसे उनके अवतार भी 'यथा पूर्वमकल्पयत्' नित्य ही हुआ करते हैं। इसलिये 'न्यायमुक्तावली'में 'नृसिंह' को 'जाति' इसी लक्ष्यसे माना गया है। वेदोंमें आये हुए विशेष शब्द इसी कारण प्रवाह-रूपमें नित्य माने जाते हैं। अतः इन शब्दोंकी यौगिकतासे तोड़-मोड़ करना व्यर्थ-सा है।

'चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः' (ऋ० सं० १। १२६। ४)

यहाँ राजा दशरथका संकेत है। जो वेदभाविनी सरयू एवं अयोध्याको जानता है, वही दशरथ और रामको भी जानता है। आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक अर्थोंका भी वेदमें सद्भाव सर्वप्रमाणित है।

'अर्वाची सुभगे ! भव सीते ! वन्दामहे त्वा'
(ऋ० सं० ४। ५७। ६)

यहाँ सीताकी वन्दना (नमस्कार) की गयी है। यदि यहाँ 'सीता'का केवल 'लाङ्गलपद्धति' (हलकी रेखा) ही अर्थ रखा जाय तो उसे नमस्कार करनेसे 'जडपूजा'का प्रसङ्ग उपस्थित होगा। हमारे अनुसार तो लाङ्गल (हल) की अधिष्ठात्री देवता श्रीसीता ही इष्ट हैं, जैसा कि वाल्मीकिरामायणमें भी श्रीसीताका आविर्भाव लाङ्गल (हल) से स्वीकृत किया गया है। तभी तो उसका नाम भी 'सीता' रखा गया था—'यथा नाम तथा गुणः।' जनकजीकी भी उक्ति है—

अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता ततः॥
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता।
(१। ६६। १३-१४)

सूर्यमण्डलाधिष्ठाता देवको भी 'सूर्य' कहा जाता है। वैसे ही सीताधिष्ठात्री देवताको भी 'सीता' कहा जाता है। इसी कारण उत्तरकाण्डके अन्तमें भी सीता उसी पृथिवीमें प्रविष्ट हुई दिखलायी गयी हैं।

'इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु' (ऋ० सं० ४। ५७। ७) यहाँ श्रीरामद्वारा सीताकी निग्रह-कथा तथा पूषा (अग्नि) द्वारा उस सीताको वापिस लौटाना सूचित

किया गया है। यहाँपर 'इन्द्र'से रामावतार इष्ट है—जैसा कि उवट-महीधराचार्यद्वारा अपने भाष्यमें इन्द्रका 'कुन्चरत्व' अवतार लेना हम पहले ही बता चुके हैं।

'ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः।' (अथर्व० ४।६।१)—यहाँ दशमुख रावणका संकेत है। अतः पूर्वोक्त कथनानुसार श्रीरामने जहाँ राक्षसोंका वध किया है, वहाँपर 'मर्त्यशिक्षण' भी किया है। इसलिये हम सभीको श्रीरामावतारसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। इसीमें भारतमें सुख-शान्ति रहेगी। हमने इससे बढ़कर अपनी 'श्रीसनातन-धर्मालोक'* ग्रन्थमालामें भी विचार किया है।

भगवान् श्रीरामचन्द्र

(लेखक—राष्ट्रपति-पुरस्कृत डॉ० कृष्णदत्तजी भारद्वाज, आचार्य, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

भूमिका

भारतीय संस्कृतिके आदिम स्रोत हमारे वेद हैं। वैदिक वाङ्मयसे अधिक प्राचीन अन्य कोई साहित्य विश्वमें नहीं है। वेदमें मानवमात्रके प्रेय एवं श्रेयके सम्पादनार्थ अनेकानेक उपादेय उपदेश हैं। वे उपदेश गद्य, पद्य और गीतकी शैलीमें उपलब्ध हैं। साधारणतया वैदिक वाक्योंको 'मन्त्र' कहा जाता है और उनके द्रष्टाओंको 'ऋषि'। वैदिक ऋषि अनेक हैं। उनमेंसे तीन विष्णूपासनाकी दृष्टिसे मुख्यतया उल्लेख-योग्य हैं—वसिष्ठ, मेधातिथि और दीर्घतमा।

विश्वमें अन्तर्यामीरूपसे सर्वत्र व्यापक परमोत्तम तत्त्व श्रीमान् विष्णुका साक्षात्कार करनेवाले कण्वनन्दन ब्रह्मर्षि मेधातिथिकी उक्ति है कि 'वे विष्णु पृथिवीके रक्षक, अदम्य और धर्म-धुरंधर हैं[1]। वे इन्द्रके सखा हैं[2] एवं उनके परम पदका नित्यमेव साक्षात्कार वे महानुभाव किया करते हैं, जो पूर्ण ज्ञानवान् (सूरि) हैं, कर्म-परायण (विप्र) हैं और स्तवनशील (विपन्यु[3]) हैं।' तत्पश्चात् धन-प्राप्तिके लिये प्रार्थना करते हुए मेधातिथि कहते हैं,—'हे विष्णो! पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाशसे विविध मणि-मुक्तादि धन-सम्पत्ति अपने दोनों—दक्षिण और वाम—करकमलोंमें भरकर हमें दीजिये[4]।'

उचथ्यपुत्र ब्रह्मर्षि दीर्घतमाकी वाणी है कि 'श्रीविष्णुने इन पार्थिव लोकोंका निर्माण किया है और उपरितन गगन-मण्डलको भी स्वकक्षामें स्थापित किया है[5]। सभी उनके गुणोंका गान करते हैं[6]। उन्होंने अकेले ही समस्त भुवनोंको धारण कर रखा है[7]। मेरी अभिलाषा है कि उनके उस प्रिय धामको प्राप्त करूँ, जहाँ उनकी आराधनामें निरत महानुभाव सदा आनन्द-निमग्न रहते हैं। उनके परम-

* इसके कुल बीस पुष्प हैं; उनमेंसे अभीतक दस पुष्प छप पाये हैं, ग्यारहवाँ पुष्प छप रहा है। इनमेंसे ३, ४, ५ पुष्प समाप्त हो चुके हैं। तृतीय पुष्पकी द्वितीयावृत्ति छपनेको है। उक्त ग्रन्थमाला मँगानेके लिये लेखकके नामसे आलोक-ग्रन्थमाला कार्यालय, फर्स्ट बी० १०, लाजपत नगर। (नई दिल्ली २४)इस पतेसे पत्रव्यवहार करना चाहिये। प्रत्येक पुष्प प्रायः एक-एक सहस्र पृष्ठका है।

१. ……विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्॥ (ऋग्वेद १।२२।१८)
गां पृथ्वीं पाति रक्षनानि गोपाः॥

२. इन्द्रस्य युज्यः सखा। (तदेव १।२२।१९)

३. सदा पश्यन्ति सूरयः। (तदेव १।२२।२०)
तद् विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत् परमं पदम्॥ (तदेव १।२२।२१)

४. दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात्। उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात्॥ (यजुर्वेद ५।१९)

५. ……यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थम्। (ऋग्वेद १।१५४।१)

६. प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्येण। (तदेव १।१५४।२)

७. य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा॥ (तदेव १।१५४।४)



बालरूप श्रीराम

पदमें माधुरीका निर्झर झरता रहता है[८]। उनका वह परम पद अत्यन्त प्रकाशमान है[९]। श्रीविष्णु पूजनीय हैं, परम वीर हैं। आप सब उनकी अर्चना कीजिये[१०]। वे भक्तोंके रक्षक हैं, सौम्य हैं और कामनाओंके परिपूरक हैं[११]। वे नव-युवक हैं। आवाहन करनेपर स्वजन-संनिधिमें आनेकी कृपा करते हैं[१२]। वे आदिदेव हैं, जगत्‌की रचना करनेवाले हैं, नित्य-किशोर हैं, रमा-कान्त हैं। जो उनकी सेवामें (पत्र-पुष्पादि) समर्पण करता है एवं जो उन महनीयके जन्म और कर्मका प्रवचन करता है, वह उनके कीर्तिकलापमें, गुणानुवादमें निमग्न हो जाता है[१३]।' यों कहकर ऋषि अपने समीप उपस्थित भक्तोंसे कहते हैं कि 'हे स्तुति करनेवाले महानुभावो! इन श्रीविष्णुके नामका कीर्त्तन करते रहो[१४]।' तत्पश्चात् वे स्वयं प्रभुसे निवेदन करते हैं—'हे विष्णो! आप महान् हैं, महनीय हैं। हम सब आपकी दयादृष्टिका आश्रय लेते हैं[१५]।'

मित्रावरुण-तनय ब्रह्मर्षि वसिष्ठने तो यहाँतक कह दिया—'हे विष्णो! हे देवाधिदेव! आपकी महिमाका पार न तो अबतक उत्पन्न किसी भी व्यक्तिने पाया है और न कोई पा सकेगा, जो अब जन्म ले रहा है[१६]।'

विष्णुभगवान्‌की इस वेदोक्त उदात्त चर्चाको कतिपय जन सूर्य-चर्चा कह दिया करते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि इन्हीं ब्रह्मर्षियोंके सूक्तोंमें एक स्थानपर विष्णुको सूर्य नहीं, अपितु सूर्यका स्रष्टा बताया गया है[१७]। वे 'सुमज्जानि' शब्द-पर भी ध्यान नहीं देते, जिसका अर्थ ऊपर 'रमाकान्त' किया गया है और जो एतावता स्पष्ट ही विष्णुका सूचक है। न जाने वे 'विष्णुके परम-पद'का किस प्रकार 'सूर्यमण्डल' अर्थ कर लेते हैं। परम-पदमें मधुके उत्स (निर्झर) और देवयु (भक्त)-जनोंके सानन्द निवासका प्रतिपादन हुआ है, जो दहनानल-पिण्ड सूर्य-मण्डलमें सम्भव नहीं है। इसी प्रकार वे उस आर्ष सूक्तिको भी भूल जाते हैं, जिसमें भगवान् विष्णुसे प्रार्थना की गयी है कि 'आप अपने दक्षिण और वाम करकमलोंद्वारा हमें सम्पत्ति प्रदान कीजिये।'

वेदमें श्रीविष्णुका परम-पद इस त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसे परे बताया गया है[१८]। वहाँ पुण्यात्मा ही जा सकते हैं और वहाँ शङ्ख-चक्र-गदाधर भगवान्‌का स्मरण होता रहता है। वह मोक्षधाम है[१९]।

श्रीविष्णुका एक और नाम है 'पुरुष'—

'इमे वै लोकाः पूः सोऽस्यां पुरि शेते तस्मात् पुरुषः।'

पुरुषके एक चरणमें, एक अंशमें, यह प्रपञ्च-सृष्टि विद्यमान है। तीन चरण प्रपञ्चसे परे हैं।

श्रीविष्णुभगवान्‌का अवतार

परम पुरुष विष्णुभगवान्‌के एक चरणमें जो त्रिगुणात्मक विश्व ब्रह्माण्ड हैं, उन्हें उनकी एकपाद्-विभूति कहा जाता है; और जो सच्चिदानन्दमय तीन चरण हैं, उन्हें 'त्रिपाद्

८. तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः॥
(तदेव १।१५४।५)

९. अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि॥
(तदेव १।१५४।६)

१०. महे शूराय विष्णवे चार्चत। (१।१५५।१)

११. इनस्य त्रातुरवृकस्य मीळ्हुषः। (तदेव १।१५५।४)

१२. युवा कुमारः प्रत्येत्याहवम्॥ (तदेव १।१५५।६)

१३. यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत् सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत्॥
(तदेव १।१५६।२)

पूर्व्याय=आदिदेवाय। वेधसे=विधात्रे। सुतरां सुष्ठु वा माद्यन्ती स्वयं माद्यन्ती हर्षयन्ती वान्यान् भक्तजनान् इति। सुमत् भगवती रमा। सा जाया पत्नी यस्येति सुमज्जानिः। बहुव्रीहौ जायाया निङ्। ददाशति=निवेदयति। जातम्=जन्म। महि=महिमानम्। ब्रवत्=ब्रूयात्। इति टीका

१४. तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्त्तन।
आस्य जानन्तो नाम चिद् विवक्तन…॥ (तदेव १।१५६।३)

१५. महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे॥ (तदेव १।१५६।३)

१६. न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप।
(तदेव ७।९९।२)

१७. जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम्। (तदेव ७।९९।४)

१८. क्षयन्तमस्य रजसः पराके। (तदेव ७।१००।५)

१९. (अ) यत्र तत् परमं पदं विष्णोर्लोके महीयते।
देवैः सुकृतकर्मभिस्तत्र मामसृतं कृधि।
(आ) यत्र तद् विष्णुर्महीयते नराणामधिपतिनम्।
यत्र शङ्खचक्रगदाधरस्मरणं मुक्तिश्च तत्र माममृतं कृधि॥
(ऋक्परिशिष्ट २०।१,३)

विभूति' कहा जाता है[20]। त्रिगुणका विलास है—त्रिवर्ग, अर्थात् धर्म, अर्थ और काम। इन तीनोंमें जब यथायोग्य सामञ्जस्य रहता है, तब सृष्टि-व्यापार सुचारुरूपसे चलता रहता है। किंतु जब रजोमय अर्थ और तमोमय काम अत्यन्त प्रबल होकर सत्त्वमय धर्मको नष्ट करने लगते हैं, तब दुर्दान्त दैत्यों और दुर्जनोंके उपद्रवोंसे शान्ति-प्रिय देवताओं और सज्जनोंको बड़ा कष्ट और क्लेश होने लगता है। उस समय त्रिभुवन-नाथ भगवान् विष्णु प्रपञ्चमें, उचित वेलामें और उचित स्थानपर अवतीर्ण होकर युगानुकूल सज्जनोंका परित्राण, दुर्जनोंका विनाश और धर्मकी स्थापना किया करते हैं।

अवतारके प्रभेद

साधु-परित्राणादि कार्योंके सम्पादनके लिये श्रीविष्णु-भगवान् इच्छानुसार कभी तो वेला-विशेष और स्थल-विशेषमें कार्य-सम्पादनानुरूप आकारमें प्रकट हो जाते हैं, जैसे प्रह्लादकी रक्षाके लिये वे नृसिंहरूपमें स्तम्भसे प्रकट हो गये थे[21]; कभी अपनी त्रिपाद्-विभूतिसे ही यहाँ आते हैं, जैसे ध्रुवको दर्शन देकर कृतार्थ करनेके लिये अपने चतुर्भुजरूपसे मधुवन आये थे[22] और कभी अपने धामसे विशिष्ट माता-पिताओंके यहाँ आकर नर-लीला करते हैं, जैसे अयोध्यामें कौसल्या-दशरथजीके प्रासादमें श्रीरामरूपसे आकर की थी[23]। भगवान्‌के आनेके ये तीनों प्रकार 'अवतार' कहे जाते हैं।

पुरुषावतार, गुणावतार, कल्पावतार, युगावतार, लीलावतार, स्वरूपावतार, आवेशावतार, पूर्णावतार, अंशावतार, कलावतार आदि अवतारके अवान्तर प्रभेद हैं, जिनकी चर्चा स्थानाभावसे यहाँ नहीं की जा रही है।

अवतारके सम्बन्धमें भ्रान्त दृष्टिकोण

कतिपय अर्वाचीन प्राज्ञजन यह कह देते हैं कि अवतारका अर्थ है—मानवीय स्वरूपको ईश्वरीय स्तरतक उठा देना। 'जब कोई सीमित व्यक्ति आध्यात्मिक गुणोंको विकसित कर लेता है, तब हम यह कह देते हैं कि ईश्वरका जन्म हुआ है[24]।' ऐसे विचारोंसे प्रभावित हुए अध्येता (और अध्यापक भी) कहते सुने जाते हैं कि वीर राम, जो पुरातन काव्योंके सद्गुण-सम्पन्न रण-विजेता नायक थे, कालान्तरमें भगवान् रामके रूपमें चित्रित होने लगे और इस प्रकार मानव रामका ही क्रमशः सर्वशक्तिमान् भगवान् रामके रूपमें वर्णन और पूजन होने लगा। उनकी दृष्टिमें राम-कथा कवि-कल्पनाके आधारपर क्रमशः विकसित होती हुई मानवी लीलासे भगवल्लीलाके पदपर प्रतिष्ठित हो गयी।

अवतार-वादकी इस प्रकारकी व्याख्या प्राचीन आर्ष प्रणालीसे अत्यन्त विरुद्ध है, अतएव उपेक्षणीय है। अवतार-तत्त्वको हृदयंगम न कर सकनेवाले लोगोंके ही ऐसे उद्गार होते हैं, जो कि भारतीय ऋषियोंसे परम्पराद्वारा प्राप्त सनातन सद्भाव-निधिके विघातक हैं।

अवतारोंमें विकासवादकी कल्पना निराधार

मत्स्यः कूर्मोऽथ वाराहो नारसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की तथैव च॥

जो जन पुराण-साहित्यका मनन किये बिना ही इस श्लोकमें वर्णित नामावलीके आधारपर अवतारोंका क्रम इसी प्रकार मान लेते हैं, जिस प्रकार यहाँ दिया गया है—अर्थात् प्रथम मत्स्यावतार हुआ, द्वितीय कूर्मावतार, तृतीय वराहावतार इत्यादि और इसीलिये अवतार-वादमें डार्विन-प्रतिपादित विकासवादको ढूँढ़ने लगते हैं, वे अत्यन्त भ्रान्त हैं। उनको यह जानना चाहिये कि जिस पुराणने यह बताया है कि भगवान्‌ने प्राचीनकालमें

---

२०. पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।
(ऋग्वेद १०। ९०। ३)

२१. सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं
व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन्
स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम्॥
(भागवत ७। ८। १८)

२२. सहस्रशीर्षापि ततो गरुत्मता
मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः॥
(भागवत ४। ९। १)

२३. अभून्नृपो विबुधसखः परंतपः
श्रुतान्वितो दशरथ इत्युदाहृतः।
गुणैर्वरं भुवनहितच्छलेन यं
सनातनः पितरमुपागमत् स्वयम्॥
(भट्टिकाव्यम् १। १)

२४. When any finite individual develops spiritual qualities......... we say that God is born.
(The Bhagavadgita by Radhakrishnan, page 32)

मत्स्य-रूप धारण किया था, उसने यह तो नहीं बताया था कि उस समय मनुष्य आदि नहीं थे। यदि पशु-पक्षी-मनुष्य आदिकी उत्पत्तिसे पूर्व ही भगवान् मत्स्यरूपमें प्रकट होते, तब तो विकासवादियोंका तर्क कुछ अर्थ रखता, किंतु पुराणमें तो हम मत्स्यावतारकी कथाको इस प्रकार पढ़ते हैं कि 'एक दिन कृतमाला नदीके तटपर सत्यव्रत-नामक एक राजर्षि तर्पण कर रहे थे। इतनेमें ही एक छोटी-सी मछली उनकी अञ्जलिमें आ गयी। राजाने उसे जलमें छोड़ दिया। परंतु मछलीकी प्रार्थनासे वे उसे अपने कमण्डलुमें रखकर आश्रमको चले आये। रात-ही-रातमें वह मछली इतनी बड़ी हो गयी कि वह पात्र उसके लिये पर्याप्त न रहा' इत्यादि। इस पौराणिक आख्यानसे तो स्पष्ट ही मत्स्यरूपमें भगवान्के प्रकट होनेसे पूर्व सत्यव्रत नामक राजाके अस्तित्वका उल्लेख है। ऐसी दशामें मत्स्यावतारसे विकासवादकी कल्पना करना नितान्त असंगत है।

मत्स्यावतार सृष्टिके प्रारम्भमें नहीं हुआ था, अपितु सृष्टिके प्रारम्भके बहुत पीछे—चाक्षुष और वैवस्वत मन्वन्तरोंके मध्यमें—

रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसम्प्लवे।
नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम्॥
(श्रीमद्भा० १।३।१५)

'चाक्षुष मन्वन्तरके अन्तमें जब सारी त्रिलोकी समुद्रमें डूब रही थी, तब उन्होंने मत्स्यके रूपमें दसवाँ अवतार ग्रहण किया और पृथ्वीरूपी नौकापर बैठकर अगले मन्वन्तरके अधिपति वैवस्वत मनुकी रक्षा की।'

प्राचीन परम्पराके अनुसार भगवान्ने कूर्मरूप 'चाक्षुष' नामक मन्वन्तरमें धारण किया था। कूर्मावतारके सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतके निम्न-निर्दिष्ट पद्य मननीय हैं—

षष्ठश्च चक्षुषः पुत्रश्चाक्षुषो नाम वै मनुः।
पूरुपूरुषसुद्युम्नप्रमुखाश्चाक्षुषात्मजाः॥

× × ×

तत्रापि देवः सम्भूत्यां वैराजस्याभवत्सुतः।
अजितो नाम भगवानंशेन जगतः पतिः॥
पयोधिं येन निर्मथ्य सुराणां साधिता सुधा।
भ्रममाणोऽम्भसि धृतः कूर्मरूपेण मन्दरः॥
(८।५।७, ९-१०)

"छठे मनु चक्षुके पुत्र चाक्षुष थे। उनके पूरु, पूरुष, सुद्युम्न आदि कई पुत्र थे।××××जगत्पति भगवान्ने उस समय भी वैराजकी पत्नी सम्भूतिके गर्भसे 'अजित' नामका अंशावतार ग्रहण किया था। उन्होंने ही समुद्र-मन्थन करके देवताओंको अमृत पिलाया था तथा वे ही कच्छपरूप धारण करके मन्दराचलकी मथानीके आधार बने थे।"

इस प्रकार मत्स्यावतारकी अपेक्षा कूर्मावतार प्राचीन सिद्ध होता है और इस सिद्धिसे अवतारोंमें विकासवादकी कल्पना खण्डित हो जाती है।

वराहावतार तो कूर्मावतारसे भी प्राचीन है; क्योंकि भगवान्ने वराहरूप प्रथम (स्वायम्भुव) मन्वन्तरमें धारण किया था। इस सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धके त्रयोदशाध्यायके पद्य अनुशीलनीय हैं। इस विवेचनसे हम इस निर्णयपर पहुँचते हैं कि भगवान् विष्णुका वराहावतार प्रथम स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें हुआ था, कूर्मावतार छठे चाक्षुष-मन्वन्तरमें और मत्स्यावतार छठे तथा सातवें मन्वन्तरके बीचमें। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टिसे भगवान्के प्रकट होनेका क्रम हुआ—वराह, कूर्म और मत्स्य। अतः अवतारोंमें विकासवादकी कल्पना सर्वथा अयथार्थ ही है।

वेदमें रामावतार

रामावतारकी कथा संस्कृत-साहित्यमें अनेक स्थानोंपर मिलती है। सर्वप्रथम वेदने इसका निरूपण किया है—

भद्रो भद्रया सचमान आगात्
स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्
रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्॥
(ऋ० सं० १०।३।३; सामवेद १५४८)

इस मन्त्रके चार चरणोंमें राम-कथाके मुख्य चार अंशोंका उल्लेख किया गया है। पहले चरणमें बताया है कि भगवान् रामभद्र पतिव्रता सीताजीके साथ (वनमें) आये। राम पिताजीके आदेशका पालन करनेके कारण 'भद्र' हैं अर्थात् सत्पुत्र किंवा महापुरुष हैं। सीताजीने अयोध्याके राजसुखोंका परित्याग करके पतिदेवके साथ कष्ट सहन किया, अतएव वे भी 'भद्रा' अर्थात् पतिव्रताओंकी मुकुट-मणि हैं।

दूसरे चरणमें कहा गया है कि पीछेसे छिपकर दुराचारी रावण बहिनके सम्मुख आया। रावण विद्वान् था। उसने यह नीति अवश्य पढ़ी होगी कि—

मातृवत् स्वसृवच्चैव तथा दुहितृवच्च ये।
परदारेषु वर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥

'जो व्यक्ति अपनेसे बड़ी पर-स्त्रियोंके प्रति माताके समान, समानवयस्काओंके प्रति बहिनके समान और अल्पवयस्काओंके प्रति पुत्रीके समान व्यवहार करते हैं, वे स्वर्गके अधिकारी होते हैं।' अवश्य रावणको सीताजीके प्रति बहिनका भाव रखना था, किंतु रखा उसने दुर्भाव।

तीसरे चरणमें लिखा है कि लङ्काके गगनचुम्बी, सुन्दर एवं उत्कृष्ट प्रासादोंमें सर्वत्र अग्निकाण्ड हो गया। हनुमान्‌जीने अपनी पूँछसे स्वर्णमयी लङ्काको भस्मसात् कर दिया था, उसीका दिग्दर्शन यहाँ करा दिया गया है।

चौथे चरणमें कहा गया है कि (रावण) अपनी हिंसक सेनाओंको साथ लेकर श्रीरामके सम्मुख आ पहुँचा। लङ्काके जल जानेपर रावणको समझ लेना चाहिये था कि जिनके एक दूतने मेरे काञ्चन नगरका विध्वंस कर दिया, उनसे वैर-विरोध और युद्धका परिणाम होगा सर्वनाश। उसे श्रीरामके चरणोंमें शरण ग्रहण करनी चाहिये थी, किंतु किया उसने युद्ध।

उपर्युक्त साम-मन्त्रमें भगवान्‌के लिये 'राम' और 'भद्र' शब्दोंका प्रयोग हुआ है। संस्कृतके लौकिक साहित्यमें जिस प्रकार रामके लिये 'रामचन्द्र'का प्रयोग हुआ है, उसी प्रकार 'रामभद्र'का भी हुआ है। उदाहरणके लिये श्रीरामरक्षा-स्तोत्रका एक पद्य प्रस्तुत है—

रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन्।
नरो न लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति॥

'राम', 'रामभद्र' अथवा 'रामचन्द्र' (नामका उच्चारण करते हुए भगवान्) का स्मरण करनेवाला मनुष्य पापोंसे लिप्त नहीं होता, अपितु सांसारिक समस्त भोगोंको प्राप्त करके अन्तमें मोक्ष-पदको भी प्राप्त कर लेता है।

उपनिषदोंमें

'रामपूर्वतापिनी-उपनिषद्'के पाँच भाग हैं। उसके प्रथम भागमें चौदह मन्त्रोंमें राम-कथाका वर्णन मिलता है। अवशिष्ट अंशोंमें ज्ञान-भक्ति-परक चर्चा है। राम-शब्दका निर्वचन करते हुए वहाँ कहा गया है—

चिन्मयेऽस्मिन्महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ।
रघोः कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः॥
स राम इति लोकेषु विद्वद्भिः प्रकटीकृतः॥
(१।१-२)

चिन्मय, महाविष्णु हरि भगवान् रघुकुलमें महाराज दशरथके यहाँ प्रकट हुए। वे समस्त कामनाओंके प्रदान करनेवाले हैं। इस भूमण्डलपर उनकी बड़ी शोभा है। वे ही 'राम' हैं, इस बातका विद्वानोंने प्रतिपादन किया है। एवम्—

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥
(वही १।६

'रघुकुलमें अवतीर्ण परम-पुरुषको 'राम' कहते हैं राम-पदसे पर-ब्रह्मका ही कथन होता है; क्योंकि योगीज जिस अनन्त, नित्यानन्दमय चिन्मय तत्त्वमें आनन्द अनुभव करते हैं, वही तो 'राम' हैं।

'रामोत्तरतापिनी उपनिषद्'में भी श्रीरामचन्द्रजीव भगवत्ताकी विशद चर्चा है। उसमें कहा गया है कि "शिवजी काशीमें श्रीरामके मन्त्रका चिरकालतक जप किया था भगवान् रामने प्रसन्न होकर कहा—'वरं ब्रूहि।' तब शिवजी यह वर माँगा"—

मणिकर्ण्यां मम क्षेत्रे गङ्गायां वा तटे पुनः।
म्रियेत देही तज्जन्तोर्मुक्तिर्नातो वरान्तरम्॥
(३

'मेरे क्षेत्रमें मणिकर्णिकापर अथवा गङ्गाजीके किसी भी किनारेपर जो प्राणी अपना देह त्यागे, उसकी मुक्ति हो जाय। मुझे इसके अतिरिक्त और किसी वरकी अभिलाषा नहीं है।' यह सुनकर श्रीराम बोले—

क्षेत्रेऽस्मिंस्तव देवेश यत्र कुत्रापि वा मृताः।
कृमिकीटादयोऽप्याशु मुक्ताः सन्तु न चान्यथा॥
अविमुक्ते तव क्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिसिद्धये।
अहं संनिहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु॥
क्षेत्रेऽस्मिन्योऽर्चयेद् भक्त्या मन्त्रेणानेन मां शिव।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
त्वत्तो वा ब्रह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम्।
जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते॥
मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव॥
(वही* ४-८)

* ये मन्त्र नारदादि पुराणोंमें भी इसी रूपमें आये हैं।

"हे महादेव ! आपके इस क्षेत्रके अन्तर्गत किसी भी स्थानमें कृमि-कीट-जैसे प्राणी भी शीघ्र ही मुक्त हो जायँगे, इसमें अन्यथाभाव नहीं है। आपके इस 'अविमुक्त' क्षेत्रमें सभी प्राणियोंको मुक्तिकी प्राप्ति करानेके लिये प्रस्तरकी प्रतिमा आदिमें मेरा सांनिध्य रहेगा। हे शिवजी ! जो व्यक्ति इस क्षेत्रमें भक्तिपूर्वक मन्त्रोच्चारण करते हुए मेरा अर्चन करेगा, मैं उसको ब्रह्महत्यादि पापोंसे मुक्त कर दूँगा। जो मानव आपसे अथवा ब्रह्माजीसे षडक्षर-मन्त्र प्राप्त करते हैं, वे जीवनमें मन्त्रसिद्ध होकर अन्तमें मुक्त होकर मुझे प्राप्त कर लेते हैं। आप स्वयं जिस-किसी मरणासन्न व्यक्तिके दाहिने कानमें मेरे मन्त्रका उपदेश कर देंगे, हे शंकर ! वह मुक्त हो जायगा।' इसी उपनिषद्‌में आगे चलकर श्रीरामकी भगवत्ता-का प्रतिपादन इन शब्दोंमें किया गया है—

ॐ यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्द आत्मा।
यः सच्चिदानन्दाद्वैतैकचिदात्मा भूर्भुवःसुवस्तस्मै नमो नमः।
(५ गद्यांश)

'ॐ जो जगत्प्रसिद्ध श्रीरामचन्द्रजी हैं, वे निश्चय ही भगवान् (षड्‌विध ऐश्वर्यसे सम्पन्न) हैं, अद्वितीय परमानन्दस्वरूप हैं। जो सच्चिदानन्द अद्वितीय एकचित्-स्वरूप हैं, भूः, भुवः, स्वः—ये तीन लोक हैं, उन श्रीराम-चन्द्रजीको निश्चय ही मेरा बारंबार नमस्कार है।'

रामरहस्योपनिषद्‌में भगवान् रामका ध्यान और उनके मन्त्रोंके जपका विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। उसके चतुर्थ अध्यायके अनुसार सनकादि मुनियोंने हनुमान्‌जीसे श्रीरामके मन्त्रोंके पुरश्चरणकी विधि पूछी थी। हनुमान्‌जीने साधक-के लिये स्नान, भोजन, ब्रह्मचर्य, भूमिशयन, जप, गुरुभक्ति, हवन, तर्पण, ध्यान और मन्त्र-जपकी साङ्गोपाङ्ग विधि बताकर कहा कि 'मन्त्र सिद्ध हो जानेसे मानव जीवन्मुक्त हो जाता है और उसे अणिमादि सिद्धियोंकी भी प्राप्ति हो जाती है।' उन्होंने यह भी कहा कि 'साधकको लौकिक कार्योंकी सिद्धिके लिये, महाविपत्ति पड़नेपर भी, राममन्त्रका प्रयोग नहीं करना चाहिये; क्योंकि राममन्त्रसे तो दुर्लभ मोक्ष प्राप्त किया जाता है। यदि लौकिक कार्यकी सिद्धिका प्रसङ्ग आ ही जाय तो साधकको चाहिये कि मेरा (हनुमान्‌जी का) स्मरण करे। जो मनुष्य राममन्त्रका प्रतिदिन जप करते हुए भगवान् रामका भक्तिपूर्वक स्मरण करता है, उसके मनोरथोंकी पूर्त्तिका उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है। मैं राघवेन्द्रके भक्तोंकी लौकिक कामनाएँ पूर्ण कर दूँगा। मैं श्रीरामचन्द्र भगवान्‌के कार्य करनेके लिये सदा सावधान हूँ।'

वाल्मीकि-रामायणमें

जब परम पुरुष भगवान् विष्णु महाराज दशरथके प्रासादमें उनके पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए, तब वेद भी महर्षि वाल्मीकिके माध्यमसे रामायणके रूपमें अवतीर्ण हुआ—

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना॥

आदिकवि वाल्मीकिने ब्रह्माजीके आदेशसे नारदजीसे परामर्श करके दशरथ-नन्दन श्रीरामके लोकपावन चरित्रको २४ हजार श्लोकोंमें निबद्ध किया था। गायत्री मन्त्रके प्रथम अक्षरसे उन्होंने अपने काव्यकी रचनाका प्रारम्भ किया था। जब एक हजार पद्य पूरे हो गये, तब उस मन्त्रके द्वितीय अक्षरसे आगेकी रचना चलायी। अगले एक हजार पद्य लिखे जानेपर गायत्रीके तीसरे अक्षरसे अग्रिम रचनाका प्रसार हुआ। इस प्रकार गायत्रीके २४ अक्षरोंको आदिमें रखकर वाल्मीकिजीने रामायणके २४ हजार श्लोकोंकी रचना की। महर्षि वाल्मीकि भगवान् रामके समकालीन थे। उन्हें समस्त राम-चरित्र विदित था। क्रान्तदर्शी तो वे थे ही। जितने राम-चरित्र अबतक लिखे गये हैं, उनमें वाल्मीकि-कृत रामायणकी सर्वाधिक महिमा है।

इस रामायणमें ऐसे अनेक प्रसङ्ग हैं, जिनमें रामचन्द्रजी-की भगवत्ता विशदरूपसे प्रतिपादित हुई है। नीचे कुछेक प्रसङ्ग दिये जा रहे हैं—

देवताओंने जब ब्रह्माजीसे रावणके कुकृत्योंका वर्णन किया और उसके वधका उपाय पूछा, तब ब्रह्माजीने उनसे कहा था कि रावणकी मृत्यु किसी मनुष्यके द्वारा ही होगी। इस उत्तरसे देवताओंको बड़ा संतोष हुआ। तभी शङ्ख-चक्र-गदाधारी, महाद्युतिमान्, पीताम्बर-परिवीत, जगत्पति भगवान् विष्णु विनतानन्दन गरुडपर बैठकर वहाँ पधारे। सब देवताओंने उनकी स्तुति की और वे प्रणाम करके बोले—'हे प्रभो ! आप परम तेजस्वी, दानि-शिरोमणि, धर्मात्मा, अयोध्या-नरेश दशरथके पुत्ररूपमें भूमण्डलमें अवतीर्ण होकर युद्धमें रावणका संहार कर दीजिये।'

देवताओंकी इस प्रार्थनाको सुनकर भगवान् बोले, 'अच्छी बात है। भयका परित्याग करो। मैं उस दुराधर्ष

रावणका उसके परिवार, मन्त्रिमण्डल एवं बन्धु-बान्धवोंसहित संहार करके ग्यारह हजार वर्षतक पृथ्वीका पालन करता हुआ वहाँ रहूँगा ।' तत्पश्चात् पुण्डरीकाक्ष भगवान्ने महाराज दशरथके भवनमें पुत्ररूपसे जानेका विचार किया । (बालकाण्ड, सर्ग १५)

परशुरामजीने श्रीरामकी परीक्षा लेनेके लिये उन्हें अपना वैष्णव धनुष देते हुए कहा—'काकुत्स्थ ! यदि तुम इसपर शरका संधान कर सकोगे, तो मेरा तुम्हारे साथ द्वन्द्व-युद्ध ठनेगा ।' श्रीरामने उस धनुषको लेकर उसपर अनायास बाणका संधान कर दिया । वह बाण अमोघ था, निष्फल नहीं जा सकता था । अतः उस शरसंधानके द्वारा परशुरामजीका बल जाता रहा । तब तो—

तेजोभिर्गतवीर्यत्वाज्जामदग्न्यो जडीकृतः ।
रामं कमलपत्राक्षं मन्दं मन्दमुवाच ह ॥
(वा० रा० १ । ७६ । १२)

परशुराम बोले—'राम ! मैं आपको पहचान गया । आप साक्षात् मधुसूदन (विष्णु) हैं, सुरेश्वर हैं । ये सब देवता यहाँ आकर आपका दर्शन कर रहे हैं । युद्धमें आपका साम्मुख्य कोई नहीं कर सकता । आप त्रिलोकीनाथ हैं ।' (बालकाण्ड ७६ । १७—१९)

कौसल्याजीको सान्त्वना देती हुई सुमित्राजीकी उक्ति है कि 'राम वन-वास पूरा करके यथासमय लौट आयेंगे और अपना राज्य प्राप्त करेंगे । वे तो सूर्यके भी सूर्य, अग्निकी भी अग्नि, श्रीकी भी अनुत्तम श्री, कीर्तिकी भी कीर्ति, क्षमाकी भी क्षमा, देवताओंके भी देवता और प्राणियोंमें सर्वोत्तम प्राणवान् हैं ।' (अयोध्याकाण्ड ४४ । १४–१६)

हनुमान्जीकी रावणके प्रति निम्नलिखित उक्ति श्रीरामकी महिमाका एक प्रकृष्ट निदर्शन है—'परम यशस्वी राम चराचर प्राणियोंसहित इन सारे लोकोंका संहार करके फिर उनकी सृष्टि कर सकते हैं ।' इस उक्तिको पढ़कर उपनिषद्के 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति ।' —इस वचनका स्मरण हो आता है । हनुमान्जीने फिर रावणको बताया कि 'सारे देवता, दैत्य, यक्ष, राक्षस, नाग, गन्धर्व, विद्याधर तो क्या, स्वयम्भू ब्रह्मा, त्रिनेत्र रुद्र और सुरनायक शक्र भी युद्धमें राघवेन्द्रके सम्मुख नहीं ठहर सकते ।' (सुन्दरकाण्ड, सर्ग ५१ । ३९–४४)

मन्दोदरीका ज्ञानमय उद्गार बहुत ही स्तुत्य है—'ये रामचन्द्र अवश्य ही महायोगी और सनातन परमात्मा हैं । न इनका आदि है, न मध्य, न अन्त । ये महत्तत्त्वसे भी परे महनीय तत्त्व हैं, प्रकृतिसे भी परे हैं, जगत्के पालक-पोषक हैं । इनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित है । भगवती श्री इनसे कभी पृथक् नहीं होतीं, अतएव ये 'नित्यश्री' हैं । इनको कोई जीत नहीं सकता । ये शाश्वत और निश्चल हैं । सत्य-पराक्रम, शङ्ख-चक्र-गदाधारी स्वयं विष्णुभगवान् ही सम्प्रति मनुष्यरूप धारण किये हुए हैं ।'' (युद्धकाण्ड १११ । ११–१४)

सीतामाताकी अग्नि-परीक्षाके समय देवताओंने श्रीरामकी स्तुति करते हुए कहा था—'आप समस्त लोकोंके निर्माण-कर्त्ता हैं, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं, विभु हैं ।' ब्रह्माजीने कहा कि 'आप चतुर्भुज श्रीमन्नारायण हैं । आप अक्षर ब्रह्म हैं, त्रिकाल-सत्य हैं । आप उपेन्द्र, मधुसूदन और पद्मनाभ हैं । आप स्वयम्प्रभु परमात्मा एवं ॐकाररूप हैं । यह समस्त जगत् आपका शरीरस्थानीय है । आप विष्णु हैं और सीताजी साक्षात् लक्ष्मीजी हैं ।' (युद्धकाण्ड, सर्ग ११७)

महाराज दशरथ भी अग्नि-परीक्षाके समय इन्द्रलोकसे विमानमें बैठकर आये थे । लक्ष्मणजीसे श्रीरामकी महिमाका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा था—

एते सेन्द्रास्त्रयो लोकाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
अभिवाद्य महात्मानमर्चन्ति पुरुषोत्तमम् ॥
(६ । ११९ । ३१)

'लक्ष्मण ! महात्मा राम पुरुषोत्तम हैं । इन्द्रसहित ये तीनों लोक, परमर्षिगण और सिद्धजन भी इनका अभिवादन करके इनकी पूजा किया करते हैं ।'

श्रीराम अपनी लोक-कल्याणकारिणी नरलीला परिपूर्ण करके अपने भाई भरत और शत्रुघ्नके साथ सशरीर ही वैष्णव तेजमें प्रविष्ट हो गये थे—

विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः ।
(७ । ११० । १२)

इससे भी श्रीरामकी सनातन भगवत्ता ही सिद्ध होती है । श्रीरामके विष्णुरूप धारण करनेसे पूर्व देवराज इन्द्र

लक्ष्मणजीको अपने साथ सशरीर ही दिव्य धाम लिवा ले गये थे—

अदृश्यं सर्वमनुजैः सशरीरं महाबलम्।
प्रगृह्य लक्ष्मणं शक्रस्त्रिदिवं संविवेश ह॥
(७ । १०६ । १७)

यहाँपर यह बता देना अप्रासङ्गिक न होगा कि श्रीराम जिस प्रकार चिन्मय हैं, उसी प्रकार उनके समस्त परिकर भी दिव्य और चिन्मय हैं। श्रीरामके आयुध दुष्ट-दमनाद्यतिरिक्त अवसरोंपर पुरुष-विग्रहमें उनकी सेवा-सपर्यामें निरत रहते हैं। वाल्मीकिजीने लिखा है कि रामके अनेक प्रकारके बाण और उनका विशाल धनुष पुरुष-रूप-धारी होकर उनके पीछे-पीछे गये थे—

शरा नानाविधाश्चापि धनुरायतमुत्तमम्।
तथाऽऽयुधाश्च ते सर्वे ययुः पुरुषविग्रहाः॥
(७ । १०९ । ७)

भरतजी पाञ्चजन्यके अवतार थे, लक्ष्मणजी शेषके और शत्रुघ्नजी सुदर्शनके—

कैकेय्यां भरतो जज्ञे पान्चजन्यांशसम्भवः।
....

अनन्तांशेन सम्भूतो लक्ष्मणः परवीरहा॥
सुदर्शनांशाच्छत्रुघ्नः संजज्ञेऽमितविक्रमः।
(पद्मपुराण ६ । २४२ । ९४, ९५, ९६)

श्रीरामके सहायक ऋक्ष और वानर भी साधारण रीछ और बंदर नहीं थे। वे सब विभिन्न देवताओंके अवतार थे। वे कामरूपी थे, अर्थात् सिद्ध-योगीके समान इच्छानुसार रूप धारण कर सकते थे। अयोध्यामें आकर वे मनुष्यरूप धारण करके, सब प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत होकर, हाथियोंपर चढ़कर चले थे—

नव नागसहस्राणि ययुरास्थाय वानराः।
मानुषं विग्रहं कृत्वा सर्वाभरणभूषिताः॥
(वा० रा० ६ । १२८ । ३२)

हनुमान्जीने लङ्का-प्रवेशके समय स्वल्प आकार बना लिया था और लङ्का-दहनके समय अत्यन्त विशाल।

श्रीरामचन्द्रजीके निज धाम पधारनेके अनन्तर सभी ऋक्ष-वानर अपने-अपने मूल-देव-रूपोंमें लीन हो गये थे। केवल विभीषण और हनुमान्जी भगवान् रामकी आज्ञासे अभीतक यहीं हैं। कालिदासके अनुसार विभीषणजी दक्षिण-गिरि (त्रिकूट) पर और हनुमान्जो उत्तर-गिरि हिमालय प्रदेश (किम्पुरुष वर्ष)में हैं—

निर्वर्त्यैवं दशमुखशिरश्छेदकार्यं सुराणां
विष्वक्सेनः स्वतनुमविशत् सर्वलोकप्रतिष्ठाम्।
लङ्कानाथं पवनतनयं चोभयं स्थापयित्वा
कीर्तिस्तम्भद्वयमिव गिरौ दक्षिणे चोत्तरे च॥
(रघुवंश १५ । १०३)

अध्यात्मरामायणमें

अध्यात्मरामायणमें भी अनेक स्थलोंपर श्रीरामचन्द्रजीकी सनातन भगवत्ताका निरूपण हुआ है। समय और स्थानके अभावसे केवल उनके जन्मप्रसङ्गकी एक झाँकी दी जा रही है। चैत्रमासके शुक्लपक्षकी नवमीको कर्कलग्नमें, पुनर्वसु नक्षत्रमें तथा मध्याह्न-वेलामें सनातन परमात्मा जगन्नाथ जिस सुन्दर मनोनयनहारी दिव्य रूपमें प्रकट हुए थे, वह इस प्रकार है—

आविरासीज्जगन्नाथः परमात्मा सनातनः॥
नीलोत्पलदलश्यामः पीतवासाश्चतुर्भुजः।
जलजारुणनेत्रान्तः स्फुरत्कुण्डलमण्डितः॥
सहस्रार्कप्रतीकाशः किरीटी कुञ्चितालकः।
शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविराजितः॥
अनुग्रहाख्यहृत्स्थेन्दुसूचकस्मितचन्द्रिकः।
करुणारससम्पूर्णविशालोत्पललोचनः।
श्रीवत्सहारकेयूरनूपुरादिविभूषणः॥
(१ । ३ । १५—१८)

अर्थात् उनका वर्ण नील कमलके समान अभिराम था और वे पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनके चार भुजाएँ थीं और वे चार हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म लिये हुए थे। गलेमें आजानुलम्बिनी सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वला वनमाला शोभा दे रही थी। उनके अपाङ्ग गुलाबी थे और वे चमचमाते हुए कुण्डलोंको अपने कानोंमें पहने हुए थे। सहस्रों सूर्योंकी-सी उनकी कान्ति थी; सिरपर किरीट-मुकुट सुशोभित था और अलकावली कुञ्चित थी। नेत्र-युगल विकसित कमल-युगल एवं सुन्दर थे, विशाल भी थे और अपने भक्तोंके प्रति करुणाका रस उनमें उमड़-सा रहा था। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न अङ्कित था और हार, बाजूबंद एवं नूपुर आदि अलंकारोंसे वे विभूषित थे। ओठोंपर मन्द-मन्द मुसकान छिटक रही थी। वह ऐसी प्रतीत हो

रही थी, मानो हृदयमें विराजमान अनुग्रहरूपी चन्द्रमाकी चाँदनी ही छिटक रही हो ।

गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने रामचरितमानसकी सामग्रीका चयन नाना पुराण, निगम, आगम, रामायण आदि स्रोतोंसे किया था । अध्यात्मरामायणको उन्होंने उसका प्रमुख आधार बनाया था, ऐसा प्रतीत होता है ।

श्रीरामका रूप

श्रीरामका आकार दिव्य और अप्राकृत था, तथापि दर्शकोंको उनका विग्रह प्राकृत मानवका-सा प्रतीत होता था । कारण? उनकी अपनी योगमायाके प्रभावसे, जैसी कि गीतामें उनकी वाणी है—

'सम्भवाम्यात्ममायया ।' (४ । ६)
'जन्म कर्म च मे दिव्यम्', (४ : ९)
'नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।'
(७ । २५)

इतिहासकी दृष्टिसे कहा जाता है कि राम कौसल्या और दशरथके पुत्र थे; किंतु दार्शनिक दृष्टिसे श्रीरामका विग्रह अलौकिक, अप्राकृत, दिव्य, चिन्मय था । अवतार-विग्रह रजो-वीर्य-विनिर्मित नहीं होता । ब्रह्माण्डपुराणका वचन है—

स्त्रीपुंमलाभियोगात्मा देहो विष्णोर्न जायते ।
किंतु निर्दोषचैतन्यसुखां नित्यां स्वकां तनुम् ॥
प्रकाशयति सैवेयं जनिर्विष्णोर्न चापरा ।

'जब विष्णुभगवान्‌के अवतार-रूपमें जन्मकी चर्चा हम करते हैं, तब हमें यह तथ्य ध्यानमें रखना चाहिये कि उनका देह माता-पिताके रजोवीर्यके संयोगसे बननेवाला नहीं हुआ करता । भगवान् तो उस समय अपने प्राकृत-गुण-रहित चिदानन्दमय दिव्य विग्रहका ही आकार-विशेषमें प्रकाश कर दिया करते हैं ।'

राम-रूपमें निष्ठा

चतुर्भुज भगवान् विष्णु ही द्विभुज भगवान् राम हैं । उन दोनोंमें कोई भेद नहीं है । किंतु 'भिन्नरुचिर्हि लोकः'— इस न्यायसे किसीको भगवान्‌का चतुर्भुज-रूप प्रिय है तो किसीको उनका द्विभुज-रूप ही अच्छा लगता है । इस विषयमें हनुमानजीकी यह उक्ति अत्यन्त समीचीन है कि—

श्रीनाथे जानकीनाथे नास्ति भेदो मनागपि ।
तथापि मम सर्वस्वं रामः कमललोचनः ॥

अर्थात् मैं अच्छी तरहसे जानता हूँ कि लक्ष्मीकान्त चतुर्भुज भगवान् 'विष्णु' और सीताकान्त द्विभुज भगवान् 'राम' एक ही हैं, दोनोंमें लेशमात्र भी भेद नहीं है; तथापि पद्म-पलाश-लोचन भगवान् राम ही मेरे हृदय-सम्राट् हैं, सर्वस्व हैं ।

रामावतारका समय

भारतीय पञ्चाङ्ग-गणनाके अनुसार कलियुग चार लाख बत्तीस हजार वर्षोंका होता है । अभीतक उसके केवल ५०७२ वर्ष बीत चुके हैं । उससे पूर्व द्वापरयुग था, जिसका वर्ष-प्रमाण आठ लाख चौसठ हजार है । अर्थात् ८,६९,०७२ वर्ष पूर्व त्रेतायुगमें रामावतार हुआ था ।* भगवान् रामने अपने माया-मानवरूपमें वेदका अध्ययन किया था—

वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ॥
(वा० रा० १ । १ । १४)

इससे विदित होता है कि वेद त्रेतायुगसे भी पूर्वकालमें विद्यमान था । यहाँ प्रसङ्गवश यह कहना उचित ही होगा कि जो आधुनिक पाश्चात्त्यविद्वदनुसारी सज्जन वेदका काल-निर्णय करते समय उसे कुछ ही हजार वर्ष पहलेका बना हुआ बताते हैं, वे भारतीय परम्पराकी अवहेलना ही करते हैं । पाँच हजारसे कुछ अधिक वर्ष तो महाभारतके युद्धको ही हो चुके हैं, जैसा कि बीजापुरके ऐहोल नामक स्थानमें प्राप्त पुलकेशिन द्वितीयके शिलालेखसे ज्ञात होता है, जो ५५६ शकसंवत्‌में लिखा गया था । आजकल शकसंवत् है १८९३ । अतः वह शिलालेख अबसे १३३७ वर्ष पूर्वका है । उसमें लिखा है—

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः ।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु गतेष्वब्देषु पञ्चसु ॥

जिसका तात्पर्य यह है कि शिलालेख खुदवानेके समय भारत-युद्धको ३७३५ वर्ष हो चुके थे । इन दोनों, अर्थात्

---

* "5 million-year-old human jaw found.—
—इस शीर्षकसे सम्भवतः इसी वर्षकी फरवरीके 'हिंदुस्तान टाइम्स'में ये पंक्तियाँ छपी थीं—

Cambridge, Feb. 19 (A. P.) The leader of an expedition from Harvard's Museum of Compaative Zoology has announced the discovery of a jaw fragment from an early member of the human family dating five million years.

५ मिलियन्‌का अर्थ है—पचास लाख । इतने वर्ष पूर्व भी मानवका अस्तित्व था ।

३७३५ और १३३७ संख्याओंके योगसे ५०७२ वर्ष होते हैं। अबसे इतने वर्ष पूर्व भारत-युद्ध हुआ था। भारतीय संस्कृतिकी प्राचीनताके अनुसंधित्सु छात्रोंको उक्त शिलालेख-पर ध्यान देते हुए ही सत्यकी खोजमें अग्रसर होना चाहिये।

रामकथाके त्रिगुणात्मक लेखक

श्रीरामके चरित्रका वर्णन करनेवाले कवि और लेखक मुख्यतः तीन प्रकारके हैं—सात्त्विक, राजस और तामस। तामस व्यक्तियोंने अपनी विषय-वासनाकी परितृप्तिके लिये तथा क्षुद्र भावनाओंकी अभिव्यक्तिके लिये श्रीसीता और रामका आश्रय लिया तथा उनको भगवती और भगवान् न मानकर साधारण नायक-नायिकाके रूपमें उनका चित्रण किया। राजस कवि-लेखकोंने साहित्यके रस, छन्द, अलंकार आदिके उदाहरण देनेके लिये भगवल्लीलाओंका अधिकांशमें कल्पना-प्रसूत वर्णन किया। सात्त्विक वर्ग उन कवि-लेखकोंका है, जिन्होंने वेद, उपनिषद् और वाल्मीकि-रामायण आदि आर्ष ग्रन्थोंके आधारपर सीता-रामकी लीलाओंका, उन्हें लक्ष्मीनारायण भगवान्का अवतार मानकर वर्णन किया है। भगवान् श्रीरामकी कथाका वर्णन करनेवाली विभिन्न सात्त्विक रचनाओंमें घटनाओं तथा उक्तियोंकी जो विभिन्नता दिखलायी देती है, उसका एकमात्र कारण है—कल्प-भेद। जिन प्राचीन और अर्वाचीन रचनाओंमें—चाहे वे किसी कालकी, किसी देशकी, किसी भाषाकी हों—रामका चित्रण भगवान्के रूपमें नहीं हुआ है, वहाँ न्यूनता वर्ण्यविषयके पक्षमें नहीं है, अपितु वर्णनकर्त्ताके पक्षमें है। तामस लेखकोंके मानसका स्तर और उनका आध्यात्मिक धरातल समुन्नत नहीं होता, भक्तिभावसे ओतप्रोत नहीं होता; इस कारण वे भगवान् रामकी भगवत्तासे वञ्चित रहते हैं। यही हेतु है कि उनकी रचनाओंमें केवल भगवान् रामकी भगवत्ताका निदर्शन ही नहीं कराया जा सका है, अपितु लोकपावन रामकथा विकृतरूपमें भी चित्रित हुई है। अन्यथा भगवान् रामकी भगवत्ता जो आज है, वह कल भी थी और कल भी रहेगी।

राम-राज्य

श्रीराम जिस कार्य-कलापके लिये भूतलपर अवतीर्ण हुए थे, उसका उन्होंने सम्यक् सम्पादन किया। वे आदर्श सम्राट् थे। उनके राज्यकालके सम्बन्धमें महर्षि वाल्मीकिने जो वर्णन किया है, वह सभी शासकोंके लिये उपादेय, मननीय और अनुकरणीय है।

रामराज्यमें सब प्रकारका सुख था। न किसीको सर्प-भय था, न रोग-भय। स्त्रियोंको वैधव्यका कष्ट नहीं था। दस्युओंका त्रास प्रजामें नहीं था। किसी प्रकारके उपद्रव भी नहीं थे। माता-पिताके जीवनमें संतानकी मृत्यु नहीं होती थी। सभी लोग धर्मात्मा और सुखी थे। श्रीरामको आदर्श मानकर सब लोग परस्पर सौमनस्यपूर्वक रहते थे—हिंसा-भाव और वैमनस्यसे नहीं। संतति-सुख विपुल था। समस्त जनता स्वस्थ, प्रसन्न और दीर्घायु थी। वृक्ष फल-फूलोंसे लदे रहते थे। कृषकोंके इच्छानुसार वर्षा होती थी। पवनका स्पर्श सदा सुखद था। अपने-अपने सत्कर्मोंके अनुष्ठानमें प्रजा स्वधर्मके पालनमें दत्तचित्त थी। मिथ्या व्यवहारका प्रचार नहीं था और सभी व्यक्ति सुलक्षण थे और थे कर्तव्य-परायण।

रामचरित्रका श्रवण

पुराणरत्न श्रीमद्भागवतका वचन है—

स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा।
कोसलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः॥
पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन्।
आनृशंस्यपरो राजन् कर्मबन्धैर्विमुच्यते॥
(९।११।२२-२३)

"कोसल देशके जिन निवासियोंने रामका स्पर्श किया था, उनके साथ विश्राम किया था, उनका अनुगमन किया था; अथवा उनका दर्शनमात्र भी किया था, उन सबने वह स्थान पाया, जहाँ योगी लोग जाते हैं। (शुकदेवजी कहते हैं—) हे महाराज परीक्षित्! शान्तिपूर्वक अपने कानोंसे श्रीरामचरित्रका श्रवण करनेवाला व्यक्ति कर्मके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है।"

इससे अधिक श्रीरामकी भगवत्ताका और क्या प्रमाण हो सकता है?

राम-नाम

रामके नामकी महिमाका गान अनेकानेक संत महात्मा और कवियोंने किया है। कलियुगमें केवल राम-नामका ही आधार है। रामके नाममें अद्भुत चमत्कार है। कविवर श्रीहर्षने ठीक ही कहा है—

राम नाम तव धाम गुणानाम्।
(नैषधीयचरित २१

अर्थात् 'हे राम ! आपके नाममें धर्मार्थकाममोक्षदातृत्वादि अनन्त गुण विराजमान हैं ।'

प्रार्थना

अयि परात्पर सीता-कान्त भगवान् श्रीराम ! ऐसी कृपा कीजिये, जिससे जनताके मन शुद्ध हों, उनमें सात्त्विक भावोंका संचार हो, परस्पर सद्भाव हो और यह विश्वास बद्धमूल हो जाय कि—

रामो हि विष्णुः पुरुषः पुराणः ।
(अध्यात्मरामायण ७ । ९ । ५८)

'रामस्तु भगवान् स्वयम्'

(लेखक—श्रीबाबूरामजी द्विवेदी, एम्० ए०, बी० एड्०, 'साहित्यरत्न')

भारतीय वैदिक, ऐतिहासिक एवं पौराणिक वाङ्मयके अन्तर्गत निर्गुण, निराकार ब्रह्मके सगुण रूप-विधानकी, अथच परमात्माके प्रमुख दशावतारोंमें भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णकी महिमा सर्वोपरि है । जिस प्रकार श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णको 'स्वयं भगवान्' (अंशी—पूर्ण) और अन्य अवतारोंको अंश—अपूर्ण कहा गया है[1], उसी प्रकार महारामायणमें श्रीरामचन्द्रजीको भी—१–विश्वके भर्ता, २–पोषणकर्ता, ३–सर्वाधार (सबका आश्रय), ४–शरणागतवत्सल, ५–सर्वव्यापक और ६–करुणावरुणालय (दयाशील) अर्थात् षड्गुणसम्पन्न होनेके कारण —'रामस्तु भगवान् स्वयम्' कहा गया है[2] ।

'राम' शब्दका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है—रमते इति (रम् + ण) वा रम्येत अनेन (रम् + घञ्) अर्थात् व्यापक, सुन्दर, अन्तर्यामी । सम्भवतः 'राम'के इसी महत्त्वपूर्ण अर्थको ध्यानमें रखकर भगवान् शंकरने पार्वतीसे कहा था—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने ॥
(पद्म०, उत्तर० २५४ । २२)

आदिकवि वाल्मीकिके मतानुसार भगवान् श्रीराम सर्वजगन्मय (सर्वव्यापक) हैं । श्रीरामके राज्यशासनकालमें प्रजावर्गके भीतर केवल रामकी ही चर्चा होती थी । सारा जगत् श्रीराममय हो रहा था[3] । वे विष्णुस्वरूप सनातन ब्रह्म हैं[4] । भगवान् राम और लक्ष्मणका पारमार्थिक स्वरूप बतलाते हुए श्रीवाल्मीकिजीने कहा है कि साक्षात् आदिदेव महाबाहु पापहारी प्रभु नारायण ही रघुकुलतिलक 'श्रीराम' हैं तथा भगवान् शेष ही 'लक्ष्मण' हैं[5] ।

श्रीराम स्वयं भगवान् हैं । भगवत्-शब्दका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है—भग + मतुप् (वत्व)—ऐश्वर्यशाली । विष्णुपुराणके अनुसार सृष्टिकी उत्पत्ति एवं प्रलय, आगमन (जीवके पुनर्जन्म), गमन (जीवके प्रयाण), विद्या तथा अविद्याका पूर्ण परिज्ञाता ही भगवत्पदवाच्य है[6] ।

विशिष्टाद्वैतदर्शनके अनुसार निरवधि आनन्दसे विभूषित भगवत्स्वरूपको 'षाड्गुण्य-विग्रह' कहा गया है[7] । ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेजसे परिपूर्ण होनेके कारण भगवान्के दिव्य शरीरको 'षाड्गुण्य-विग्रह' कहते हैं[8] ।

शुद्धाद्वैतदर्शनमें भग (ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, धर्म यश तथा श्री) से युक्त पुरुषविशेषको 'भगवान्' कहा

१. एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
(श्रीमद्भागवत १ । ३ । २८)

२. भरणः पोषणाधारः शरण्यः सर्वव्यापकः ।
करुणः षड्गुणैः पूर्णो रामस्तु भगवान् स्वयम् ॥
(महारामायण)

३. रामो रामो राम इति प्रजानामभवन् कथाः ।
रामभूतं जगदभूद् रामे राज्यं प्रशासति ॥
(वा० रा० ६ । १२८ । १०२)

४. प्रीयते सततं रामः स हि विष्णुः सनातनः ॥
(वा० रा० ६ । १२८ । ११९)

५. आदिदेवो महाबाहुर्हरिर्नारायणः प्रभुः ।
साक्षाद् रामो रघुश्रेष्ठः शेषो लक्ष्मण उच्यते ॥
(वा० रा० ६ । १२८ । १२०)

६. उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥
(विष्णुपुराण ६ । ५ । ७८)

७. विशिष्टाद्वैतदर्शनतत्त्वत्रयभाष्य, पृष्ठ १२४ ।

८. ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः ।
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ॥
(विष्णुपुराण ६ । ५ । ७९)

या है।[९] पातञ्जलयोगदर्शनमें क्लेश (अविद्या, अस्मिता, ाग, द्वेष और अभिनिवेश), कर्म (पुण्य-पाप, पुण्य-पाप-मिश्रित और पुण्य-पापरहित), विपाक (कर्मफल) वं आशय (कर्म-संस्कारयुक्त हृदय) से परे पुरुषोत्तमको ईश्वर' नामसे अभिहित किया गया है।[१०]

श्रीराम ही पूर्णब्रह्म, नारायण, परमात्मा, पुरुषोत्तम, रि और ईश्वर हैं। त्रिकालदर्शी महाकवि वाल्मीकिजी- शब्दोंमें भगवद्विभूतियोंका वर्णन करते हुए ब्रह्मा हते हैं—'श्रीराम! आप चक्र धारण करनेवाले, सर्व-मर्थ एवं श्रीमान् भगवान् नारायणदेव हैं।[११] ाप अविनाशी परब्रह्म हैं। सृष्टिके आदि, मध्य और न्तमें सत्यरूपसे आप ही विद्यमान हैं। तथा लोकोंके परम र्म भी आप हैं। आप ही विष्वक्सेन तथा चतुर्भुजरूपधारी ीहरि हैं। आप ही शार्ङ्गधन्वा, हृषीकेश, अन्तर्यामी, पुरुष था पुरुषोत्तम हैं। आपको पराजित करनेवाला संसार- कोई नहीं, आप खड्गधारी विष्णु एवं महाबली ीकृष्ण हैं।'[१२]

१) विभूतिमान्के रूपमें श्रीराम स्वयं भगवान् हैं

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण (विभूतिमान्) ास्त्रधारी श्रीरामको अपनी दिव्य विभूति बतलाते हुए रामः शस्त्रभृतामहम्' (१० । ३१) कहते हैं।[१३]

---

९. ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥
(विष्णुपुराण ६ । ५ । ७४)

१०. क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ।
(योगदर्शन १ । २४)

११. भवान् नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः ।
(वा० रा० ६ । ११७ । १३)

१२. (क) अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव ।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः॥
(ख) शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः ।
अजितः खड्गधृग् विष्णुः कृष्णश्चैव बृहद्बलः॥
(वा० रा० ६ । ११७ । १४-१५)

१३. पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
(गीता १० । ३१)

यहाँ शस्त्रधारी राम शास्त्र-मर्यादाके पालक हैं—
'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते ।' (कौटल्य) ।

वाल्मीकि-रामायणमें श्रीराम (विभूतिमान्) की दिव्य विभूति महापराक्रमी श्रीकृष्ण हैं—

'......कृष्णश्चैव बृहद्बलः ।' (६ । ११७ । १५)

जिस प्रकार गीतोक्त भगवद्विभूतियाँ भगवान् श्रीकृष्ण-के शाश्वत विभुत्व, अखण्ड अन्तर्यामित्व और व्यापक ब्रह्मत्वकी परिचायिका अथच 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'—इस मान्यताकी विधायिका हैं, उसी प्रकार रामरहस्योपनिषद्, अध्यात्मरामायण, अद्भुतरामायण, स्कन्दपुराण, वाल्मीकि-रामायण और रामचरितमानसमें वर्णित श्रीराम-गीतोक्त भगवद्-विभूतियाँ भी अपने विभूतिमान् (श्रीराम) के अखिलब्रह्माण्डनायकत्व, जगन्नियन्तृत्व और सच्चिदानन्दत्वकी उद्घोषिका एवं **'रामस्तु भगवान् स्वयम्'**—इस सिद्धान्तकी सम्पोषिका हैं।

रामरहस्योपनिषद्में राम (र्+आ+म)-शब्दका मान्त्रिक भाव स्पष्ट करते हुए हनुमान्जी कहते हैं कि 'रकार' सच्चिदानन्दस्वरूप है, अर्थतः वह परमात्मारूप है। 'र्' व्यञ्जन निष्कल (मायातीत) ब्रह्मका बोधक है। 'आकार' स्वर प्राण—मायाविशिष्ट तत्त्व है[१४]। 'मकार' अभ्युदयका वाचक है। यही राममन्त्रका बीज है। अतः 'राम' शब्दसे मायायुक्त (लीलामय) ब्रह्मकी निष्पत्ति होती है।[१५] यही राममन्त्र महामन्त्र है, जिसे महेश्वर श्रीशिवजी जपते हैं और उनके द्वारा जिसका उपदेश काशीमें मुक्तिका कारण है तथा जिसकी महिमाको गणेशजी जानते हैं, जो इस 'राम' नामके प्रभावसे ही सबसे पहले पूजे जाते हैं।[१६] ऐसे ब्रह्मस्वरूप रामकी वन्दना करते हुए गोस्वामी तुलसीदास-जी कहते हैं कि जो कृशानु (अग्नि), भानु (सूर्य) और हिमकर (चन्द्रमा) का हेतु, अर्थात् 'र', 'आ', 'म' (रूपसे बीज है, वह 'राम' नाम ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप है।

---

१४. सच्चिदानन्दरूपोऽस्य परमात्मार्थ उच्यते ।
व्यञ्जनं निष्कलं ब्रह्म प्राणो मायेति च स्वरः॥
(रामरहस्योपनिषद् ५ । ४)

१५. मकारोऽभ्युदयार्थत्वात् स मायेति च कीर्त्यते ।
सोऽयं बीजं स्वकं यस्मात् समायं ब्रह्म चोच्यते॥
(वही, ५ । ६)

१६. महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥
(रामचरित०, बाल० १८ । २)

वह वेदोंका प्राण है, निर्गुण, उपमारहित और गुणोंका भंडार है।'[१७]

स्कन्दपुराणमें विष्णुभगवान् अपनेको तथा ब्रह्मा और शंकरको अंश (विभूति) एवं श्रीरामको अंशी (विभूतिमान्) बतलाते हुए कहते हैं—'राम! मैं आपका हृदय हूँ, पितामह ब्रह्मा आपकी नाभि हैं, महादेव शंकर आपके कण्ठ-स्थानीय हैं और सूर्य आपकी भौंहोंका मध्य भाग हैं।'[१८]

ब्रह्मा भी श्रीरामके सर्वव्यापक रूपकी ओर संकेत करते हुए उनकी महिमाका गान करते हैं—'ओंकार-स्वरूप जो श्रीरामचन्द्रजी हैं, वे स्वयं भगवान् हैं, सच्चिदानन्द-रूप हैं। भूः, भुवः, स्वः—तीन लोकोंके अधिष्ठाता हैं। उन्हें बारंबार नमस्कार है।'[१९]

अध्यात्मरामायणमें भगवान् श्रीराम स्वयं अपने श्रीमुखसे अपने स्वरूपका वर्णन करते हुए कहते हैं—'मैं कल्पवृक्षकी भाँति सर्वत्र समदर्शी हूँ। मेरा कोई प्रिय या अप्रिय नहीं है। मेरा किसीसे राग-द्वेष नहीं है। जो पुरुष जिस प्रकार मेरा भजन करता है, मैं भी वैसे ही उसका ध्यान रखता हूँ।'[२०]

श्रीराम साक्षात् भगवान् हैं। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा रामके विराट् स्वरूपका वर्णन करते हैं—'आप तीनों लोकोंके आदिकर्ता स्वयंप्रभु हैं। रुद्रोंमें अष्टम रुद्र, साध्योंमें पञ्चम साध्य भी आप ही हैं। दोनों अश्विनीकुमार आपके कर्णेन्द्रिय हैं और सूर्य-चन्द्रमा आपके नेत्र हैं।'[२१]

अद्भुतरामायणमें भगवान् श्रीराम अपने परम भक्त हनुमान्‌से कहते हैं कि 'सब भूत-प्राणियोंमें आत्मा मैं ही हूँ। मैं ही अव्यक्त मायाधिपति परमेश्वर हूँ। मुझे ही सम्पूर्ण वेदोंमें सर्वात्मा एवं सर्वतोमुख कहा गया है।'[२२]

रामचरितमानसमें अरण्यकाण्डके अन्तर्गत श्रीराम गीताका सुन्दर प्रसङ्ग है। पञ्चवटीमें लक्ष्मणजीके प्रश्नका जो उत्तर उपदेशके रूपमें श्रीरामचन्द्रजीने दिया था, वही प्रसङ्ग 'श्रीराम-गीता' के नामसे प्रसिद्ध है। जीव और ईश्वरका भेद निरूपण करते हुए भगवान् श्रीरामने कहा है, ''हे लक्ष्मण! जो मायाको, ईश्वरको और अपने स्वरूपको नहीं जानता, उसे जीव कहना चाहिये। जो (कर्मानुसार) बन्धन और मोक्ष देनेवाला, सबसे परे तथा मायाका प्रेरक है, वह ईश्वर है।'[२३] भगवान् श्रीराम ही कर्मानुसार सांसारिक सुख (भुक्ति) और पारलौकिक आनन्द (मुक्ति) के दाता हैं।[२४] वे ही मायाके प्रेरक हैं। प्रभु-प्रेरित माया काकभुशुण्डिपर छायी थी[२५], जब उन्हें एक बार यह शङ्का हुई थी कि 'क्या ये सच्चिदानन्द प्रभु (ईश्वर) हैं, जो साधारण शिशुके समान लीला कर रहे हैं।'[२६]

श्रीमद्भागवतमें ईश्वरके जगन्मय रूपका वर्णन मिलता है—'सब भूत-प्राणियोंमें सर्वेश्वर भगवान्‌ने ही अपने अंश-भूत जीवके रूपमें प्रवेश किया है—यों मानकर सब प्राणियोंको आदर देते हुए सबको मन-ही-मन प्रणाम करना चाहिये।'[२७], इसी भावको स्वीकार करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजी भगवान् श्रीरामके विश्वरूपको करबद्ध नमस्कार करते हैं—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥[२८]

---

१७. बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥
बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुननिधान सो॥
(रामचरित०, बाल० १८।१)

१८. अहं ते हृदयं राम तव नाभिः पितामहः।
कण्ठस्ते नीलकण्ठोऽसौ भ्रूमध्यं च दिनेश्वरः॥
(स्कन्द०, श्रीरामगीता २।४)

१९. श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषद्

२०. अहं सर्वत्र समदृग् द्वेष्यो वा प्रिय एव वा।
नास्ति मे कल्पकस्येव भजतोऽनुभजाम्यहम्॥
(अध्यात्म०, अयोध्या० ९।६५-६६)

२१. त्रयाणामपि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः॥
रुद्राणामष्टमो रुद्रः साध्यानामपि पञ्चमः।
अश्विनौ चापि कर्णौ ते सूर्याचन्द्रमसौ दृशौ॥
(वा० रा० ६।११७।८-९)

२२. एष आत्माहमव्यक्तो मायावी परमेश्वरः।
कीर्तितः सर्ववेदेषु सर्वात्मा सर्वतोमुखः॥
(अद्भुतरामा०, उत्तर० ११।४७)

२३. माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छ प्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव॥
(रामचरित०, अरण्य० १५)

२४. …रामो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः।
(रामरहस्योपनिषद् ५।१२)

२५. एतना मन आनत खगराया। रघुपति प्रेरित ब्यापी माया॥
(रामचरित०, उत्तर० ७७।१)

२६. प्राकृत सिसु इव लीला देखि भयउ मोहि मोह।
कवन चरित्र करत प्रभु चिदानंद संदोह॥
(रामचरित०, उत्तर० ७७(ख))

२७. मनसैतानि भूतानि प्रणमेद्बहु मानयन्।
ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति॥
(श्रीमद्भा० ३।२९।३४)

२८. रामचरितमानस, बा० का०, दोहा ७ की प्रथम चौपाई।

(२) षडैश्वर्ययुक्त दिव्य विग्रहवान् श्रीराम स्वयं भगवान् हैं ।

श्रीरामका षडैश्वर्ययुक्त दिव्य विग्रह भगवान्के नामसे विख्यात है, यह निम्नस्थ शब्द-चित्रद्वारा स्पष्ट होता है—

ॐ

स्वरूप
श्रीरामचन्द्रजी
स्वयं
भगवान् हैं

| भग |

षडैश्वर्य

ऐश्वर्य — विभूतिदं विश्वसृजं विरामं ···राममहं भजामि । (ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, विश्वस्रष्टा, सबके विश्राम-स्थान श्रीरामका मैं भजन करता हूँ ।)[२९] श्रीरामके दिव्य विग्रहकी पूजा ऐश्वर्यदायिनी है ।[३०]

धर्म — रामो विग्रहवान् धर्मः । (श्रीराम ही धर्मकी पराकाष्ठा हैं ।) यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः (वैशेषिक दर्शन १।२४) रामो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः । (भुक्ति—अभ्युदय, मुक्ति—निःश्रेयस)[३१]

यश — यशकी पराकाष्ठा श्रीराम (ब्रह्म) की प्रेरणासे हम सब जीवोंमें यशस्वी हों ।[३२] कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं ।[३३] बरनउ रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि ।[३४]

श्री — श्रीधरं श्रीकरं श्रीदं श्रीनिवासं परात्परम् । श्रीको धारण करनेवाले, श्रीकी प्राप्ति करानेवाले, श्रीके श्रीनिवास(लक्ष्मी)के स्वामी परात्पर श्रीराम(को नमस्कार है ।)[३५] भगवन् ! हम श्रीसम्पन्न और यशस्वी हों ।[३६]

ज्ञान — नमो रामाय भद्राय तत्त्वज्ञानस्वरूपिणे । (तत्त्व-ज्ञानस्वरूप पुरुषोत्तम श्रीरामको नमस्कार है ।)[३७] ज्ञानधाम श्रीपति असुरारी ।[३८] सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । (तैत्तिरीय० २।१।१) विज्ञानमानन्दं ब्रह्म । (बृ० ३ । ९ । २८)

वैराग्य — वनवास-प्रसङ्गमें श्रीरामकी वैराग्य-भावना—अज्ञानी भोगोंके पीछे दौड़ता है, कालकी गतिको नहीं देखता । कच्चे घड़ेके जलके समान आयु नित्य क्षीण होती है ।[३९] श्रीरामका ध्यान वैराग्यका मूल है ।[४०]

२९. रामस्तवराज (श्रीरामवचनामृताङ्क), श्लोक-संख्या ६५ ।
३०. रामपूर्वतापनीयोपनिषद् १ । ५ ।
३१. रामरहस्योपनिषद् ५ । १२ ।
३२. वयं सर्वेषु यशसः स्याम ॥ (अथर्व० ६ । ५८ । २)
३३. रामच० मा०, बा० का०, दोहा ५०, छन्द पंक्ति २ ।
३४. रामच० मा०, बा० का०, दोहा १०९ ।
३५. रामस्तवराज, श्लोक-सं० ३७ ।
३६. यशः श्रीः श्रयतां मयि । (श्रीसूक्त)
३७. 'श्रीरामार्चा विधि और माहात्म्य' (श्रीरामवचनामृताङ्क, पृष्ठ ३७२)
३८. रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा ५० । १
३९. भोगानुपतत्येव कालवेगं न पश्यति ।
प्रतिक्षणं क्षरत्येतदायुरामघटाम्बुवत् ॥
(श्रीरामवैराग्यनिदर्शन १०६)
४०. उपनिषद्-अङ्क, पृष्ठ ५३१ ।

महारामायणके अनुसार श्रीराममें निम्नाङ्कित षड्गुणोंकी पराकाष्ठा दर्शनीय है। श्रीरामचन्द्रजी संसारके भर्ता, पोषणकर्ता, सर्वाश्रय, शरणागतवत्सल, सर्वव्यापक और करुणा-वरुणालय हैं। आदिकवि वाल्मीकिके मतानुसार जब ब्रह्मादि देवताओंने रावणके आतङ्कसे मुक्ति पानेके लिये विष्णुभगवान्से प्रार्थना की कि 'विष्णुदेव! आप अपने चार स्वरूप बनाकर अयोध्याके राजा दशरथजीकी ह्री, श्री और कीर्तिके तुल्य तीन रानियोंके गर्भसे पुत्ररूपमें अवतार ग्रहण कीजिये'[४१]। तब देवताओंकी प्रार्थनापर विष्णुभगवान् 'अपने शरीरसे प्रकट हुई चारों भुजाओंके समान चार दिव्य विग्रहों (राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न) के रूपमें प्रकट हुए। इनमें महातेजस्वी श्रीराम सबकी अपेक्षा अधिक गुणवान् होनेके कारण राजा दशरथको विशेष प्रिय थे।'[४२]

सर्वव्यापकत्वका गुण लेकर श्रीराम स्वयं अवतरित हुए—

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥[४३]

श्रीराम ही अपने अभिन्न अङ्ग भरतके रूपमें विश्वका भरण-पोषण करते हैं। नामकरणके समय ज्ञानी मुनि वसिष्ठजीने कहा कि 'जो संसारका भरण-पोषण करते हैं, उनका नाम भरत होगा।'[४४] श्रीलक्ष्मणजीके रूपमें भगवान् श्रीराम ही जगत्के आधार हैं। 'जो शुभ लक्षणोंके धाम, श्रीरामके परमप्रिय, समस्त जगत्के आधार हैं, गुरु वसिष्ठजीने उनका नाम लक्ष्मण रखा।'[४५]

वाल्मीकिजी भगवान् श्रीरामकी दिव्य विभूतियोंके वर्णन-प्रसङ्गमें उन्हें 'शरण्य' (शरणदाता) और 'शरणागत-वत्सल' कहते हैं—'इन्द्रको भी उत्पन्न करनेवाले महेन्द्र, युद्धका अन्त करनेवाले पद्मनाभ आप ही हैं। दिव्य महर्षिगण आपको शरणदाता तथा शरणागतवत्सल बतलाते हैं।'[४६]

रावणका भाई विभीषण श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें आया हुआ है। सुग्रीव-जाम्बवान् आदि उसे शङ्काकी दृष्टिसे देखते हैं। शरणागतवत्सल श्रीराम स्पष्ट शब्दोंमें घोषित कर देते हैं कि "जो एक बार भी शरणमें आकर कहता है—'मैं तुम्हारा हूँ' और मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ, यह मेरा सदाके लिये व्रत है।"[४७]

श्रीरामके भगवान्-विषयक उक्त षड्गुणोंमें कारुण्य या दयाशीलताकी सर्वाधिक सामान्योन्मुखता है। गोस्वामी तुलसीदासने 'विनयपत्रिका'में भगवान् श्रीरामकी करुणाको भक्तोंके लिये सर्वसुलभ बनानेकी (अपने इष्टदेवसे) प्रार्थना की है। वे कहते हैं—'हे परम करुणाके धाम! हे पृथ्वीपति राम! यह तुलसीदास संसारके दुःखोंसे दुखी, विपद्ग्रस्त एवं अत्यन्त भयभीत हो रहा है। आप इस दुर्विनीतकी रक्षा कीजिये।'[४८]

ऐसे करुणावरुणालय, लोकोंमें सबसे सुन्दर, रणधीर,

---

४१. अस्य भार्यासु तिसृषु ह्रीश्रीकीर्त्युपमासु च।
विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम्॥
(वा० रा० १। १५। २०-२०½)

४२. सर्वे एव तु तस्येष्टाश्चत्वारः पुरुषर्षभाः।
स्वशरीराद् विनिर्वृत्ताश्चत्वार इव बाहवः॥
तेषामपि महातेजा रामो रतिकरः पितुः।
स्वयम्भूरिव भूतानां बभूव गुणवत्तरः॥
(वा० रा० २। १। ५-६)

४३. रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा १९८।

४४. बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥
(रामच० मा०, बाल० १९६। ४)

४५. लच्छन धाम राम प्रिय, सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥
(रामच० मा०, बाल०, दोहा १९७)

४६. इन्द्रकर्मा महेन्द्रस्त्वं पद्मनाभो रणान्तकृत्।
शरण्यं शरणं च त्वामाहुर्दिव्या महर्षयः॥
(वा० रा०, ६। ११७। १७)

४७. सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
(वा० रा०, ६। १८। ३३)

४८. दास तुलसी खेद खिन्न, आपन्न इह, शोक संपन्न, अतिशय सभीतं।
प्रणतपालक राम, परम करुणाधाम, पाहि मामुर्विपति दुर्विनीतं॥
(विनयपत्रिका, पद-संख्या ५६)

कमलनयन, रघुवंशनायक, करुणामूर्ति श्रीरामचन्द्रजीकी मैं शरण लेता हूँ ।'[४९]

(३) मर्यादा-पुरुषोत्तमरूपमें श्रीराम स्वयं भगवान् हैं ।

महर्षि वाल्मीकिने अपने इष्टदेव श्रीरामको मर्यादा-पुरुषोत्तम माना है । वस्तुतः श्रीराम आदर्श मानवताकी मर्यादा हैं । 'सत्यं शिवं सुन्दरम्'—विशिष्ट मानवताका आदर्शोन्मुख विकास ही सत्-चित्-आनन्द है । भगवान् श्रीराम सच्चिदानन्दस्वरूप हैं । ब्रह्माजी स्तुति करते हुए कहते हैं—'ॐ-रूप जो श्रीरामचन्द्रजी हैं, वे अवश्य ही भगवान् हैं, सच्चिदानन्दस्वरूप हैं । भूः, भुवः, स्वः—तीनों लोक उन्हींके स्वरूप हैं । उन्हें बारंबार नमस्कार है ।'[५०]

श्रीवाल्मीकिजीने श्रीरामचन्द्रका चित्रण आदर्श मानवके रूपमें करते हुए उनके मर्यादा-पुरुषोत्तमत्वकी महिमाका गान भी किया है—'श्रीराम ! आप पुराण-पुरुषोत्तम हैं, दिव्यरूपधारी परमात्मा हैं । जो लोग आपमें भक्ति रखेंगे, वे इस लोक और परलोकमें अपने सभी मनोरथ प्राप्त कर लेंगे ।'[५१]

'मर्यादा-पुरुषोत्तम' यह साभिप्राय विशेषण श्रीरामचन्द्रजीकी आदर्श-कार्यप्रणाली और उसकी गरिमाके सर्वथा अनुकूल है । भगवान्के अन्य अवतारोंमें यह विशेषण घटित नहीं होता । स्वामी विवेकानन्दजीने श्रीरामके 'मर्यादापुरुषोत्तम' विशेषणपर अपना दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए कहा है—'मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका प्रादुर्भाव अन्य सकल अवतारोंकी अपेक्षा अनेक विशेष महत्त्व रखता है ।...... श्रीरामको सदादर्शोंका खजाना कहा जाय तो भी अत्युक्ति नहीं होगी । मनुष्योंकी सत्-शिक्षाके लिये जितना गुरुपदका कार्य श्रीरामचरित कर सकता है, उतना अन्य किसीका चरित्र नहीं । श्रीरामका 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' नाम इसी कारणसे पड़ा है ।'[५२]

मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी अनादि-अनन्त हैं । मानव-जगत्के एकमात्र आदर्श (मर्यादा-सीमा) हैं । रामत्व (सच्चिदानन्दत्व) की प्राप्ति ही मानव-जीवनका परम पुरुषार्थ है । मानवताका ईश्वरोन्मुख चरम विकास ही भगवत्ता है । श्रीरामका मानवीय रूप (अवतार) पुरुषोत्तमके लीला-विधानमें पर्यवसित है । भगवान् राम एक साथ ही आदर्श सम्राट्, आदर्श शासक, आदर्श राजा, आदर्श गृहस्थ, आदर्श स्वामी, आदर्श पति, आदर्श पुत्र, आदर्श गुरु, आदर्श शिष्य, आदर्श बन्धु, आदर्श मित्र और आदर्श भक्त हैं ।[५३] अर्थात् मानवीय मर्यादा (सीमा) में आनेवाले सम्राट्, राजा, गृहस्थ, पिता, पुत्र, मित्र आदि श्रीरामको अपना आदर्श बनाकर परमपदको प्राप्त कर सकते हैं । उसी परमपदको अध्यात्मरामायणमें 'प्रकृतिसे परे, परमात्मा, अनादि, आनन्दघन, अद्वितीय, पुरुषोत्तम, श्रीराम' कहा गया है ।[५४]

'रामस्तवराज'में नारदजी भगवान् रामकी स्तुति करते हुए कहते हैं—'हे पुरुषोत्तम ! आप ही सबके परब्रह्म परमात्मा हैं । सम्पूर्ण जगत् आपका ही स्वरूप है, अर्थात् आप ही विश्वके निमित्त और उपादान कारण हैं । आप ही अविनाशी परम ज्योति हैं, आप ही तारक ब्रह्म (राम-नाम) हैं ।'[५५]

भगवान् श्रीरामचन्द्र मर्यादाकी महिमासे सुशोभित, अतएव भारतीयोंके वन्दनीय हैं । उनके नामामृतका पान करके भक्तोंकी रसना धन्य हो जाती है । श्रीराम नैतिक मूल्योंके एकमात्र संस्थापक और आदर्शोंके पथप्रदर्शक हैं । वे परम पुरुष पुरुषोत्तम हैं, दिव्य गुणोंके धाम हैं ।'[५६]

---

४९. लोकाभिरामं रणरङ्गधीरं
राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम् ।
कारुण्यरूपं करुणाकरं तं
श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये ॥
(रामरक्षास्तोत्र, श्लोक-सं० ३२)

५०. श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषद्, ब्रह्माकृतस्तुति ।

५१. ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम् ।
प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च ॥
(वा० रा० ६ । ११७ । ३१)

५२. श्रीरामवचनामृताङ्क, पृष्ठ ९ ।

५३. मानवता-अङ्क ('श्रीरामचरित मानस—मानवताके उद्गमका दिव्य केन्द्र'), पृष्ठ ३३२

५४. रामः परात्मा प्रकृतेरनादिरानन्द एकः पुरुषोत्तमो हि ।
(अध्यात्म० १ । १ । १७)

५५. सर्वेषां त्वं परं ब्रह्म त्वन्मयं सर्वमेव हि ।
त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वमेव पुरुषोत्तम ॥
त्वमेव तारकं ब्रह्म त्वत्तोऽन्यन्नैव किंचन ॥
(रामस्तवराज ७८-७९)

५६. मर्यादा-महिमासे मण्डित भारत-वन्दित राम ।
पाती रसना सुधा-सार-रस, जपकर उनका नाम ॥

(४) पूर्णावताररूपमें श्रीराम स्वयं भगवान् हैं।

भगवान्—पूर्ण ब्रह्म नारायणके निर्गुण-निराकार (अव्यक्त) रूपका सगुण-साकार (व्यक्त) रूपमें परिणत हो जाना ही 'अवतार' कहलाता है । श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने अवतारका रहस्य बतलाते हुए कहा है कि 'मैं अविनाशी, अजन्मा होनेपर भी, सब भूत-प्राणियोंका ईश्वर होनेपर भी, अपनी प्रकृतिको अधीन करके योगमायासे प्रकट होता हूँ ।'[५७]

भगवान्का अवतार साभिप्राय होता है । श्रीकृष्ण कहते हैं—'जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब मैं अपने रूपको रचता हूँ, अर्थात् प्रकट होता हूँ । साधु पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये, दूषित कर्म करनेवालोंका नाश करने तथा धर्म-स्थापन करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट होता हूँ ।'[५८]

अद्भुतरामायणमें भगवान्के अवतारका बड़ा सुन्दर प्रसङ्ग है । श्रीराम स्वयं अपने पूर्णावतारका रहस्य बतलाते हुए कहते हैं—'मुझ अव्यक्त परमात्मासे काल, प्रधान नामक तत्त्व और परम पुरुष (आत्मा) का प्रादुर्भाव हुआ । इन तीनोंसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, इसलिये सम्पूर्ण जगत् मैं ही हूँ । मुझ अव्यक्तस्वरूप परमेश्वरने इस समस्त विश्वको व्याप्त कर रक्खा है । सर्व भूत-प्राणी मुझमें ही स्थित हैं । इस प्रकार जो मुझ परमात्माको जानता है, वही वेदवेत्ता है ।'[५९]

अध्यात्मरामायणमें भगवान् श्रीरामके अवतारका सुन्दर रहस्य जगज्जननी श्रीजानकीजीने हनूमान्से बताया है—'जो सच्चिदानन्द, अद्वितीय, समस्त उपाधियोंसे रहित, सत्तामात्र, अवाङ्मनसगोचर परम ब्रह्म हैं, वे ही श्रीराम हैं ।'[६०]

श्रीवाल्मीकिजीके कथनानुसार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् सनातन विष्णु हैं और परमप्रचण्ड रावणके वधकी अभिलाषा रखनेवाले देवताओंकी प्रार्थनापर मनुष्यलोकमें अवतीर्ण हुए हैं ।[६१]

'मानस'के अनुसार, जो सर्वव्यापक, निरञ्जन (मायारहित), निर्गुण, विनोदरहित और अजन्मा ब्रह्म हैं, वे ही प्रेम और भक्तिके वश कौसल्याकी गोदमें (खेल रहे) हैं ।[६२] जो परमेश्वर एक हैं, सच्चिदानन्द और परमधाम हैं, जिनका कोई नाम-रूप नहीं, जो इच्छारहित हैं, उन्हीं भगवान्ने दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकारकी लीला की है ।[६३]

तुलसीकृत रामचरितमानसमें श्रीरामके अवतारका स्थान-स्थानपर प्रसङ्ग आया है । बालकाण्डमें शंकरजी पार्वतीसे कहते हैं—

जब जब होइ धरम कै हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी । सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥[६४]

अवतार-रूपमें श्रीराम स्वयं भगवान् हैं, इस बातका अकाट्य प्रमाण 'रामचरितमानस'में मिलता है । जब स्वायम्भुव मनु और शतरूपा अखिल लोक (ब्रह्माण्ड)-नायक भगवान् विष्णुको पुत्ररूपमें देखनेकी इच्छासे प्रेरित

नैतिक मूल्योंके संरक्षक, पथ-प्रदर्शक राम ।
परम पुरुष पुरुषोत्तम वे ही दिव्य गुणोंके धाम ॥
(श्रीरामवचनामृताङ्क, 'मर्यादा-पुरुषोत्तम राम') पृ० ६८०

५७. अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥
(गीता ४ । ६)

५८. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥
(गीता ४ । ७-८)

५९. अव्यक्तादभवत् कालः प्रधानं पुरुषः परः ।
तेभ्यः सर्वमिदं जातं तस्मात् सर्वमहं जगत् ॥
मया ततमिदं विश्वं जगदव्यक्तरूपिणा ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥
(अद्भुतरा०, उ० का०, उपनिषत्-सिद्धान्तनिरूपण १२ । १ । ८)

६०. रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम् ।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम् ॥
(अध्यात्म० १ । १ । ३२)

६१. स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः ।
अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः ॥
(वा० रा० २ । १ । ७)

६२. ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद ।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद ॥
(रामच० मा०, बाल० दोहा १९८)

६३. एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानंद पर धामा ।
ब्यापक बिस्वरूप भगवाना । तेहिं धरि देह चरित कृत नाना ।
(रामच० मा०, बाल० १३ । ३)

६४. रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा १२० । ३-४

होकर प्रार्थना करते हैं कि "जिन्हें वेद 'नेति नेति' (यह भी नहीं, यह भी नहीं) कहकर निरूपण करते हैं, जो आनन्द-स्वरूप, उपाधिरहित और अनुपम हैं, एवं जिनके अंशसे अनेकों शिव, ब्रह्मा और विष्णुभगवान् प्रकट होते हैं,[६५] हे दानियोंमें शिरोमणि, कृपानिधान, हे नाथ !—हम अपने मनका सच्चा भाव कहते हैं—उन्हीं आपके समान पुत्र हम चाहते हैं। प्रभुसे, भला, क्या छिपाना है।"[६६]

राजाकी प्रीति देखकर, उनके अमूल्य वचन सुनकर करुणानिधान भगवान् बोले—"ऐसा ही हो। हे राजन् ! मैं अपने समान (दूसरा) कहाँ जाकर खोजूँ, अतः 'स्वयं ही' आकर तुम्हारा पुत्र बनूँगा।"[६७]

जब—

'होइहहु अवध भुआल तव मैं होब तुम्हार सुत।'[६८]

"इच्छानिर्मित मनुष्यरूप सजकर मैं तुम्हारे घरमें प्रकट होऊँगा। तात ! मैं अपने अंशोंसहित देह धारण करके भक्तोंको सुख देनेवाले चरित्र करूँगा।"[६९]

ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी हिंदू-संस्कृतिपरक 'अवतार-वाद-मीमांसा'—

(क) 'रामस्तु भगवान् स्वयम्।'

और—

(ख) 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'—

का समन्वय-मूलक तथ्य ध्यातव्य है—

'भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्ण साक्षात् पूर्ण ब्रह्म परमात्मा हैं, यह विश्वास हिंदू जातिमें प्रायः सदासे ही चला आ रहा है। यह युक्तियुक्त और उचित ही है। निर्गुण-निराकाररूप सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही सगुण-साकाररूपमें प्रकट हैं, जैसे आकाशमें परमाणुरूपसे स्थित जल ही बादलरूपमें बरसता है।'[७०]

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम

(लेखक—डॉ० सेठ श्रीगोविन्ददासजी)

अन्य जीवोंकी अपेक्षा मनुष्यमें कुछ विशेषताएँ हैं, विलक्षणताएँ हैं, उसकी कुछ समस्याएँ हैं, जिम्मेदारियाँ हैं और लक्ष्य हैं, जो उसकी श्रेष्ठताके मापदण्ड हैं तथा जिनके कारण उसकी शोभा भी है और सार्थकता भी।

अन्य जीवों और मनुष्यके जीवनमें अन्तरकी दृष्टिसे यदि हम विचार करें तो मूलरूपमें एक बात हमारे सामने आती है। वह है, मनुष्य प्रकृतिके निर्देश-नियमोंका पालन करते हुए भी उसकी दासता स्वीकार नहीं करता। पशु अथवा अन्य जीवोंके जीवनमें यह बात नहीं है। वे पूर्णतया प्रकृतिके अधीन, उसके नियन्त्रणमें जीवन-यापन करते हैं। उनका अपना कोई विधि-विधान, नियम-निर्देश और आचार-संहिता नहीं रहती। इसके विपरीत मनुष्य प्रकृतिके गुण-धर्मोंका निर्वाह करते हुए भी उससे परे, उससे ऊपर एक ऐसी सत्ताको स्वीकार करता है, जिसका कोई दायरा नहीं, जिसकी कोई सीमा नहीं, जो परिधि और बन्धनोंसे परे, आकृति और आकारसे रहित होते हुए अनुभूतिके माध्यमसे प्रकृति और प्रकृतिजन्य सत्ताका भी नियन्त्रण करती है।

मनुष्यके इसी स्वीकारने, उसके इसी आत्मबोधने उसे

६५. नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा॥ संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥
(रामच० मा०, बाल० १४३ । ३)

६६. दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ। चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ॥
(रामच० मा०, बाल० १४९)

६७. देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले॥ आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई॥
(रामच० मा०, बाल० १४९ । १)

६८. रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा १५१।

६९. इच्छामय नरबेष सँवारें। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें॥ अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता॥
(रामच० मा०, बाल० १५१ । १)

७०. हिंदू-संस्कृति अङ्क (अवतार-वाद) पृष्ठ ८१।

सजातीय मनुष्य-समाजके प्रति कर्तव्यानुभूति करायी और उसकी इसी कर्तव्यानुभूतिने उसके जीवनको अगणित दायित्वोंसे भर दिया।

कर्तव्यका निर्वाह दायित्व-बोध बिना सम्भव नहीं और दायित्व-बोधके लिये जीवनका विधि-विधान-अनुवर्ती तथा व्यवस्थित और मर्यादित होना जरूरी है। व्यवस्थाहीन, अमर्यादित जीवनका कोई दायित्व नहीं होता और जहाँ दायित्व नहीं, वहाँ कर्तव्य-निर्वाहका प्रश्न ही नहीं उठता।

काल-प्रवाहमें ऐसे अनेक अवसर आते हैं, जब मनुष्य-जीवन भी पशु-जीवनके सदृश आहार, निद्रा और मैथुनके परायण बनकर अव्यवस्थित और अमर्यादित होने लगता है। तब उसे व्यवस्थित और मर्यादित करनेकी आवश्यकता होती है। ऐसे समय मनुष्य-जातिमें ही कोई ऐसा महापुरुष पैदा होता है जो न केवल उसे तात्कालिक कालके अधःपतनसे उबारता है, अपितु पुनः मनुष्योचित जीवनमें प्रतिष्ठित और मर्यादितकर उसे नष्ट होनेसे बचाता है। मनुष्य-जातिके इतिहासमें—मनुष्य-जातिके अधःपतन और उत्थानकी इस कहानीमें अनेक ऐसे अवसर आये हैं, जब मनुष्य-जातिको उसके ऐसे महापुरुषोंने उबारा है।

त्रेतायुगमें सूर्यवंशी चक्रवर्ती महाराजा दशरथके पुत्र श्रीरामका आविर्भाव मनुष्य-जातिकी अगणित समस्याओं एवं दिशा-निर्देशके साथ इसी अभावकी पूर्तिका प्रयोजन बना।

भारतका आस्तिक और धार्मिक जगत् श्रीरामचन्द्रजीको अवतार मानता है और उन्हें भगवान्‌के रूपमें अपना इष्ट आराध्य मानकर भजता है।

श्रीरामचन्द्रजीके अगणित नामोंमें उनका एक नाम 'मर्यादापुरुषोत्तम' भी है। उन्हें 'मर्यादापुरुषोत्तम' क्यों कहा गया है, इसपर यहाँ हम कुछ विचार करें। पुरुष+उत्तम =पुरुषोत्तम, अर्थात् पुरुषोंमें उत्तम, श्रेष्ठ। मनुष्य-जीवनको सामान्यतः तीन श्रेणियोंमें बाँटा गया है—उत्तम, मध्यम और निम्न। इन तीनोंमें जो उत्तम है, वही 'पुरुषोत्तम' है। अन्य दो मध्यम और निकृष्ट श्रेणियोंकी व्याख्याकी आवश्यकता नहीं। इन्हीं दोके परिमार्जन और परित्राणके लिये ही पुरुषोत्तमकी आवश्यकता पड़ती है।

अब रही भगवान् श्रीरामके 'मर्यादापुरुषोत्तम' कहलानेकी बात। वस्तुतः यदि हम ध्यानसे देखें तो ज्ञात होगा, शब्द वस्तु अथवा व्यक्तिके परिचयके साधन होते हैं और अनुभव तो यहाँतक किया जाता है कि अनेक बार वे वस्तुओं और व्यक्तियोंके पर्याय बन जाते हैं। भगवान् श्रीरामके सम्बन्धमें 'मर्यादापुरुषोत्तम' शब्द उनके व्यक्तित्वका, उनके चरित्रका और उनके समूचे जीवनका पर्याय माना जा सकता है। उनके जीवनचरित्रसे, उसकी अगणित घटनाओंसे यह प्रमाणित है।

सर्वप्रथम हम यहाँ भगवान् श्रीरामके अवतारविषयक मूल प्रयोजनको जाननेका यत्न करें। बालकाण्डमें गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा॥
ब्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥
सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी॥
(१।१३।२-३)

इस विषयको वे आगे शिव-पार्वती-प्रसङ्गमें और स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए। बिपुल बिसद निगमागम गाए॥
हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥
राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी॥
तदपि संत मुनि बेद पुराना। जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना॥
तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही। समुझि परइ जस कारन मोही॥
जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥
(१।१२०।१-४; १२१)

और आगे कहते हैं—

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं॥
राम जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक तें एका॥
(१।१२१।१)

इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदासजीके इन शब्दोंमें भगवान् श्रीरामके अवतारविषयक प्रयोजनकी पुष्टि हो जाती है।

अब जनहितके लिये अवतीर्ण श्रीरामके जीवनके कुछ प्रसङ्ग देखिये, जिनमें उन्होंने न केवल मनुष्य-जीवनके दुःख झेले, कष्ट और यातनाएँ सहीं, अपितु अपने धर्म, कुल, परिवार, समाज और देशकी रक्षाके लिये जीवनको नित्य और निरन्तर कष्टभोगी बनाकर नये आदर्श और नयी व्यवस्थाओंको जन्म

दिया, जिनपर चलकर मनुष्य अपने जन्म और जीवनको कृतार्थ कर सकता है।

अब हम यहाँ उनके मर्यादा-पक्षको लें। जब महामुनि विश्वामित्रजीके साथ राम और लक्ष्मण—दोनों भाई जनकपुरी पहुँचे और लक्ष्मणजीकी इच्छा जनकपुरी-भ्रमणकी हुई, जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजीके इन शब्दोंसे ध्वनित है—

लखन हृदयँ लालसा बिसेषी। जाइ जनकपुर आइअ देखी॥
प्रभु भय बहुरि मुनिहि सकुचाहीं। प्रगट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं॥
(१।२१७।१)

—लक्ष्मणकी इस मनःस्थितिको श्रीराम भाँप गये, जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजीके इन शब्दोंसे स्पष्ट है—

राम अनुज मन की गति जानी। भगत बछलता हियँ हुलसानी॥
परम बिनीत सकुचि मुसुकाई। बोले गुर अनुसासन पाई॥
नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं॥
जौं राउर आयसु मैं पावौं। नगर देखाइ तुरत लै आवौं॥
(१।२१७।२-३)

श्रीलक्ष्मणके जनकपुरी-भ्रमणकी इच्छा और श्रीरामके विश्वामित्रजीसे आज्ञा माँगनेके इस प्रकरणमें अनुज और अग्रजके सम्बन्धके साथ-साथ गुरु और शिष्य-सम्बन्धके औचित्य, उसकी पवित्रता, मर्यादा और शील आदि सत्-संस्कारोंका जो निर्वाह हुआ है, वह कितना मोहक है! तभी तो विश्वामित्रजीने श्रीरामके उक्त वचन सुनते ही तत्काल कहा—

सुनि मुनीसु कह बचन सप्रीती। कस न राम तुम्ह राखहु नीती॥
धरम सेतु पालक तुम्ह ताता। प्रेम बिबस सेवक सुखदाता॥
(१।२१७।४)

जनकपुरी-भ्रमणके बाद जब श्रीराम-लक्ष्मण लौटते हैं, उस समयके गुरु-शिष्य-सम्बन्धकी एक और झलक देखिये, जिसमें मर्यादा अपनी चरम सीमाको भी पार कर गयी है। श्रीराम धनुष-मखशाला लक्ष्मणको दिखा रहे हैं और उसके बाद जिस मनःस्थितिमें गुरुके पास दोनों भाई लौटते हैं, उसका वर्णन देखिये—

राम देखावहिं अनुजहि रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर बचना॥
लव निमेष महुँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया॥
भगति हेतु सोइ दीनदयाला। चितवत चकित धनुष मखसाला॥
कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मन माहीं॥
जासु त्रास डर कहुँ डर होई। भजन प्रभाउ देखावत सोई॥
कहि बातें मृदु मधुर सुहाईं। किए बिदा बालक बरिआईं॥

समय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाइ।
गुरु पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ॥

निसि प्रबेस मुनि आयसु दीन्हा। सबहीं संध्याबंदनु कीन्हा॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी॥
मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥
जिन्ह के चरन सरोरुह लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी॥
तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुर पद कमल पलोटत प्रीते॥
बार बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥
चापत चरन लखनु उर लाएँ। सभय सप्रेम परम सचु पाएँ॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जलजाता॥

उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान।
गुर तें पहिलेहिं जगतपति जागे राम सुजान॥
(१।२२४।२-४; २२५ से २२६)

उपर्युक्त वर्णनमें गुरुसेवा, भ्रातृ-प्रेम और गुरु-शिष्य तथा अनुज-अग्रजकी मर्यादाका जो पोषण हुआ है, वह वर्णनकी नहीं, मनन-चिन्तनकी वस्तु है। विश्वामित्रजीके दोनों भाई पैर दबाते हैं और विश्वामित्रजीके बार-बार आज्ञा देनेपर ही राम शयन करने जाते हैं। यहाँ ध्यान देनेयोग्य बात यह है कि जब अन्य प्रसङ्गों और बातोंमें श्रीराम अपने गुरुकी आज्ञा तो क्या, संकेतमात्रसे कर्तव्य-कर्ममें अग्रसर हो जाते हैं, तब यहाँ बार-बार कहनेपर भी पैर दबाना क्यों बंद नहीं करते। क्या यह गुरुकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं? भाव-की बात है। सेवा-धर्मका मर्म सच्चा और निःस्पृह सेवक ही जानता है, जैसा कि एक अन्य प्रसङ्गमें कहा गया है—

सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा॥
(२।२०२।४)

तात्पर्य यह कि सेवाकी सार्थकता सेवककी रुचिमें नहीं, स्वामीकी तुष्टिमें है। और तुष्टिका पता तो तुष्टि अथवा तृप्ति-की बार-बार पुष्टि करनेपर ही लग पाता है। इसीलिये विश्वामित्रजीके बार-बार कहनेपर ही श्रीराम उनके चरण चापना बंदकर शयनको जाते हैं; और उसके बाद जब लक्ष्मण अपने अनुज-धर्मका निर्वाह करते हुए श्रीरामके पैर दबाते हैं, तब वही स्थिति उनके सामने उपस्थित होती है। श्रीराम बार-बार लक्ष्मणजीको शयन करनेकी आज्ञा देते हैं, तब लक्ष्मणजी सोने जाते हैं। इसके बाद प्रातः मुर्गेकी बाँग सुनकर सबसे पहिले श्रीलक्ष्मणजी ही सोकर उठते हैं; उनके बाद श्रीराम; तदुपरान्त मुनि विश्वामित्रजी। यहाँ वि-

बादमें उठनेका तात्पर्य यह नहीं कि वे देरसे उठते थे; तात्पर्य यह है कि श्रीलक्ष्मण और श्रीरामकी दिनचर्या इतनी मर्यादित थी कि ब्राह्ममुहूर्तमें जगनेवाले मुनि विश्वामित्रसे भी पहिले अपनी-अपनी मर्यादाओंके अनुसरणमें दोनों जाग उठते थे।

अब आप एक अन्य प्रसङ्ग देखिये। जब श्रीराम-लक्ष्मण मुनि विश्वामित्रके लिये पुष्प लेने पुष्पवाटिकामें जाते हैं और उसी समय सीताजी सखियोंसहित गौरी-पूजनको आती हैं, श्रीराम और सीताका नेत्र-मिलन होता है। इस समयकी अपनी मानसिक स्थितिका चित्रण करते हुए वे अपने अनुजसे कहते हैं—

सिय सोभा हियँ बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन बचन समय अनुहारि॥

तात जनकतनया यह सोई। धनुषजग्य जेहि कारन होई॥
पूजन गौरि सखीं लै आईं। करत प्रकासु फिरइ फुलवाईं॥
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा॥
सो सबु कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता॥
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी॥
(श्रीराम० १।२३०; २३०।१–३)

अब यहाँ मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी मर्यादा-अमर्यादाका रहस्य देखिये। सीताजीको देखकर वे अपने अनुज लक्ष्मणसे अपनी भावनाओंको व्यक्त कर देते हैं। प्रश्न उठता है कि 'क्या अग्रजका अपने अनुजसे ऐसे प्रसङ्गोंमें सब बातें साफ-साफ कह देना उचित और मर्यादानुकूल है?' साधारणतया सांसारिक दृष्टिसे देखनेपर बात कुछ अटपटी लगती है और लगता है, ऐसा करनेपर शर्म-संकोचका निर्वाह नहीं हुआ तथा छोटे और बड़े भाईके बीच जो शर्म-संकोचकी एक मर्यादा रहती है, उसका उल्लङ्घन हुआ। सामान्यतः ऐसी बातोंको छिपाया जाता है, और लगता है पारिवारिक मर्यादाओंको बनाये रखनेके लिये छिपाया जाना चाहिये भी। पर यहाँ बात ऐसी नहीं है।

ऊपरके दोहेमें स्पष्ट कहा गया है—'बोले सुचि मन अनुज सन', जिससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उनके मनमें पवित्रता थी और जहाँ पवित्रता है, वहीं मर्यादा है; बल्कि कहना तो यह चाहिये कि पवित्रताकी रक्षाके लिये ही मर्यादारूपी सीमा-रेखाकी आवश्यकता होती है, जो श्रीरामके ही इसके बाद कहे वचनोंसे प्रमाणित है। श्रीराम अपने अन्तःकरण, अपने कुल-परिवार और उसके मर्यादाजन्य व्रत-नेमको स्पष्ट करते हुए आगे कहते हैं कि 'मेरा मन जो अपने सहजरूपमें पवित्र है, वह आज विचलित है। साथ ही रघुवंशियोंका सहज स्वभाव है कि उनका मन कभी कुपथगामी नहीं होता। फिर जिसने (मैंने) स्वप्नमें भी परायी स्त्रीकी ओर नहीं देखा, उसकी सीताके प्रति यह प्रीतिविशेष क्यों?' स्वयं ही यह शङ्का करना और इसका रहस्य 'सो सबु कारन जान बिधाता' कह देना शुद्ध और निश्छल अन्तःकरण तथा मनकी पवित्रताकी पराकाष्ठाका द्योतक है। उक्त कसौटियोंके संदर्भमें जब मन प्रीतिमय हो उठा है, तब अपने अनुजसे बिना किसी छिपाव-दुराव और भेदभावके सारी स्थिति व्यक्त कर देना मर्यादाकी परम उच्चता और शालीनताका प्रतीक है; क्योंकि राम-जैसे पुरुष—पुरुषोत्तमका मन, जो अपनी कुल-परम्परासे ही सुपथगामी और मर्यादित है और अकारण, असाधारण स्थितिमें भी विचलित न होनेका अभ्यासी है, यदि सीताका साक्षात्कार कर विचलित होता है तो इसमें कोई दैवी संयोग है और उसे रामकी मर्यादाके अनुरूप उसी सुपात्रपर, जो उसके लिये ही ब्रह्माने विरचा और उसकी भी गति अन्य नहीं हो सकती, स्थिर होना ही चाहिये।

यही वजह थी; और जैसा कि आगे हुआ भी, विधिके इस संयोगके कारण ही रामने अपने सहज अन्तःकरण और मनकी पवित्रताका यह सारा रहस्य न केवल अनुजसे कहा, बल्कि जब वे पुष्प लेकर विश्वामित्रजीके पास पहुँचे, तब गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें—

राम कहा सबु कौसिक पाहीं। सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं॥
(१। २३६। १)

पुष्पवाटिकाका सब वृत्तान्त गुरुके समीप पहुँचते ही मुनि विश्वामित्रसे कह देना श्रीरामके उज्ज्वल और उदात्त चरित्रके साथ एक ऐसी उच्च और कुलीन परम्पराका द्योतक है, जिसमें वासनाकी गन्ध न होकर एक जितेन्द्रिय पुरुषकी पवित्र मर्यादाकी शालीनता प्रतिबिम्बित होती है।

अब सीता-स्वयंवरके समयका प्रसङ्ग लीजिये। जनकनन्दिनीको प्राप्त करनेके लिये लालायित और प्रयत्नशील बड़े-बड़े भूपतियोंके बीच श्रीरामका, जिन्हें जानकीजी प्रिय और अभीष्ट थीं, निःस्पृह और वीतराग बने रहना कम आश्चर्यकी बात नहीं है—विशेषकर ऐसी विषम स्थितिमें, जब बड़े-बड़े बलशाली देव, दनुज और नृपगण अपने-अपने पराक्रमका प्रदर्शन कर रहे थे और उनकी असफलतापर जनक हताश होकर कह उठे थे—

दीप दीप के भूपति नाना । आए सुनि हम जो पनु ठाना ॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा । बिपुल बीर आए रनधीरा ॥

कुअँरि मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय ।
पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय ॥

(१ । २५० । १—४; २५१)

इतना ही नहीं, इससे भी आगे संतापभरे शब्दोंमें जनक यहाँतक कह जाते हैं—

कहहु काहि यहु लाभु न भावा । काहुँ न संकर चाप चढ़ावा ॥
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई । तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई ॥
अब जनि कोउ माखै भट मानी । बीर बिहीन मही मैं जानी ॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू । लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू ॥
सुकृतु जाइ जौं पनु परिहरऊँ । कुअँरि कुआरि रहउ का करऊँ ॥
जौं जनतेउँ बिनु भट भुबि भाई । तौ पनु करि होतेउँ न हँसाई ॥

(१ । २५१ । १—३)

राजा जनकके इस तरहके अपमानजनक वचन सुनकर भी रघुकुलमणि श्रीराम विचलित नहीं हुए । भले ही श्रीलक्ष्मणजीने राजा जनकके इन वचनोंका परिहार कर दिया हो, किंतु श्रीरामका तटस्थ और मौन बने रहना इस बातका प्रमाण है कि वे अपने गुरु विश्वामित्रकी, जिनके संरक्षणमें वे हैं, आज्ञा बिना बल-प्रदर्शनकी वह उद्दण्डता, जिसका परिणाम उनका विवाह हो, यदि करते हैं तो उनका शील भङ्ग तो होता ही है—गुरु-शिष्यकी मर्यादा भी भङ्ग हो जाती है । जब राजा जनकके इन वचनोंपर श्रीलक्ष्मण कुपित होते हैं और अपने कुल-पराक्रमका प्रदर्शन करनेको उद्यत भी, तब श्रीराम उन्हें संकेतसे मनाकरके प्रेमसहित अपने पास बैठा लेते हैं ।

तुलसीदासजीके शब्दोंमें सुनिये—

सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे । प्रेम समेत निकट बैठारे ॥

(१ । २५३ । २)

यह भी श्रीरामके उक्त मर्यादित चरित्रका ही एक ज्वलन्त प्रमाण है । इसके बाद ही जब गुरु विश्वामित्र अनुकूल अवसर पाते हैं, तब श्रीरामको धनुष तोड़नेकी आज्ञा देते हैं । उनके इस आज्ञा-पालनमें भी जो शील, सौन्दर्य, शालीनता, मर्यादा तथा निःस्पृहताका अपार रहस्य भरा हुआ है, वह भी हमारे मनन-चिन्तनकी वस्तु है । तुलसीदासजीके शब्दोंमें सुनिये—

बिस्वामित्र समय सुभ जानी । बोले अति सनेहमय बानी ॥
उठहु राम भंजहु भवचापा । मेटहु तात जनक परितापा ॥
सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा । हरषु बिषादु न कछु उर आवा ॥
ठाढ़े भए उठि सहज सुभाएँ । ठवनि जुबा मृगराजु लजाएँ ॥

उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बालपतंग ।
बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग ॥

(१ । २५३ । ३—४; २५४)

धनुष-भङ्गके बाद परशुरामजीके आक्रोशपर जो लक्ष्मण और परशुराम-संवाद हुआ, वह तो सर्वविदित ही है । श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मण और परशुरामजीके इस विवादमें भी अपने स्वाभाविक शील और मर्यादानुरूप ही वचन कहे । इस प्रकरणमें भी श्रीरामके शील और मर्यादाकी झाँकी देखिये । लक्ष्मणजीके व्यङ्ग्यभरे विनीत वचन, जो उनके हृदयमें दाह उत्पन्न करनेवाले थे, सुनकर परशुरामजी कहते हैं—

परसुरामु तब राम प्रति बोले उर अति क्रोधु ।
संभु सरासनु तोरि सठ करसि हमार प्रबोधु ॥

बंधु कहइ कटु संमत तोरें । तू छल बिनय करसि कर जोरें ॥
करु परितोषु मोर संग्रामा । नाहिं त छाड़ कहाउब रामा ॥
छलु तजि करहि समरु सिवद्रोही । बंधु सहित न त मारउँ तोही ॥
भृगुपति बकहिं कुठार उठाएँ । मन मुसुकाहिं रामु सिर नाएँ ॥
गुनह लखन कर हम पर रोषू । कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू ॥
टेढ़ जानि सब बंदइ काहू । बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू ॥
राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा । कर कुठारु आगें यह सीसा ॥
जेहिं रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी । मोहि जानिअ आपन अनुगामी ॥

प्रभुहि सेवकहि समरु कस तजहु बिप्रबर रोसु ।
बेषु बिलोकें कहेसि कछु बालकहू नहिं दोसु ॥

देखि कुठार बान धनु धारी । भै लरिकहि रिस बीरु बिचारी ॥
नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा । बंस सुभायँ उतरु तेहिं दीन्हा ॥
जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं । पद रज सिर सिसु धरत गोसाईं ॥
छमहु चूक अनजानत केरी । चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी ॥
हमहि तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा । कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा ॥
राम मात्र लघु नाम हमारा । परसु सहित बड़ नाम तोहारा ॥
देव एकु गुनु धनुष हमारें । नव गुन परम पुनीत तुम्हारें ॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे । छमहु बिप्र अपराध हमारे ॥

(१ । २८० से २८१ । १—४ तक)

श्रीराम और परशुरामके उपर्युक्त संवादमें श्रीरामचन्द्र-

जीने अपने स्वभावजन्य शील और विप्र-पद-पूजाके अपने कुल-संस्कारोंका निर्वाह तो किया ही है, इसीके साथ लक्ष्मणके प्रसङ्गसे अति मृदु और गूढ़ वचनोंमें—

नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा। बंस सुभायँ उतरु तेहिं दीन्हा॥

—कहकर अपनी वंश-परम्परा और मर्यादाका भी दिग्दर्शन परशुरामजीको करा दिया।

श्रीरामचन्द्रजीके इन वचनोंसे भी जब परशुरामजीका परितोष न होकर उल्टा क्रोध बढ़ता है और वे सरोष कहते हैं—

निपटहिं द्विज करि जानहि मोही। मैं जस बिप्र सुनावउँ तोही॥
चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोपु मोर अति घोर कृसानू॥
समिधि सेन चतुरंग सुहाई। महा महीप भए पसु आई॥
मैं एहिं परसु काटि बलि दीन्हे। समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे॥
मोर प्रभाउ बिदित नहिं तोरें। बोलसि निदरि बिप्र के भोरें॥
भंजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहुँ जीति जगु ठाढ़ा॥
(१।२८२।१—६)

—परशुरामजीके इन कोपभरे वचनोंको सुनकर श्रीराम अपने सहज स्वभावसे अपने जातीय गौरवकी अनुभूति कराते हुए कहते हैं—

जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभटु जेहि भय बस नावहिं माथ॥

देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना॥
जौं रन हमहि पचारै कोऊ। लरहिं सुखेन कालु किन होऊ॥
छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंकु तेहिं पावँर आना॥
कहउँ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुबंसी॥
बिप्र बंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहि डेराई॥
(१।२८३; २८३।१—२½)

श्रीरामके उपर्युक्त कथनसे—जो विनम्रता और विप्र-पूजा-भावकी परिपूर्णता तथा रघुवंश, उसकी कुलीन मर्यादाओं एवं क्षत्रिय जातिके कर्तव्याकर्तव्यकी अनुभूति करानेवाला था—श्रीपरशुरामजीके हृदयके कपाट खुल गये और वे कह उठे—

राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू॥
देत चापु आपुहिं चलि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ॥
(१।२८३।४)

इसके बाद परशुरामजी विविध प्रकारसे श्रीराम-लक्ष्मणकी स्तुति कर तप करने वनको चले गये।

अब इसके बाद आप भी रामचन्द्रजीके वनवासका प्रकरण देखिये। महारानी कैकेयीने महाराजा दशरथसे श्रीरामके लिये चौदह वर्षका वनवास और श्रीभरतके लिये राजतिलकके दो वर माँगे। इस प्रसङ्गपर महाराजा दशरथ शोकविकल होकर मूर्च्छित हो गये। रात्रिमें उन्हें निद्रा नहीं आती और राम-रामकी रट लगाते रात काटते हैं। सवेरा होनेपर जब भाट और गायक महाराज दशरथके गुणोंकी प्रशंसा करते हैं, नित्यकी भाँति द्वारपर सेवकों और सचिवोंकी भीड़ होती है, पर जब नित्य रात्रिके पिछले पहरमें जागनेवाले महाराज दशरथके दर्शन नहीं होते, तब सब लोगोंको आश्चर्य होता है और सब मिलकर श्रीसुमन्त्रको महाराज दशरथके पास भेजते हैं। सुमन्त्र कैकेयीके भवनमें महाराज दशरथके पास जाते हैं। वहाँ बड़ी विचित्र, अशोभन और भयानक स्थितिमें भूमिपर पड़े महाराज दशरथको देखकर जब सुमन्त्र हतप्रभ और सभीत रह जाते हैं तथा उनके मुखसे वचन नहीं निकलते, तब पास खड़ी कैकेयी सुमन्त्रसे कहती है—

परी न राजहि नीद निसि हेतु जान जगदीसु।
रामु रामु रटि भोरु किय कहइ न मरमु महीसु॥
(२।३८)

और—

आनहु रामहि बेगि बोलाई। समाचार तब पूँछेहु आई॥
(२।३८।१)

श्रीसुमन्त्र श्रीरामचन्द्रजीको वहाँ ले जाते हैं। जिन्होंने अबतक कोई दुःख देखा नहीं था, वे श्रीराम वहाँका यह दृश्य देखकर कैकेयीसे पूछते हैं—

मोहि कहु मातु तात दुख कारन। करिअ जतन जेहिं होइ निवारन॥
(२।३९।१)

श्रीरामके ये वचन सुनकर कैकेयी कहती है—

सुनहु राम सबु कारनु एहू। राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू॥
देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना। मागेउँ जो कछु मोहि सोहाना॥
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। छाड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू॥

सुत सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु।
सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु॥
(२। ३९। ३-४; ४०)

श्रीराम कैकेयीसे संक्षेपमें सब वृत्तान्त सुनकर बोले—

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥

मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर॥
(२। ४०। ४; ४१)

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके इस मर्मभरे थोड़े-से कथनमें कुल-परिवारका और माता-पिता-वचन-अनुसरणका जो रहस्य भरा है, वह अकथनीय है। जिसका राजतिलक होनेवाला था, उसीको देश-निष्कासनकी आज्ञा देनेवाली विमाताको जिस स्नेह, ममत्व और श्रद्धा एवं भक्तिभावसे श्रीरामने सम्बोधित किया और उसकी इस आज्ञाके लिये सराहा, यह अकथनीय और अलौकिक घटना है, जो श्रीरामके ही अनुरूप है। फिर यह जानते हुए कि इस सारे कुचक्रकी जड़ कैकेयी है, उसके इस दूषणको—'सबहि भाँति हित मोर तथा 'तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर॥' पिताकी आज्ञा उनके वचन और माता (कैकेयी) की सम्मति कहकर भूषण बना दिया। इतना ही नहीं, वे आगे—

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा॥
(२। ४१। १)

—कहकर भ्रातृ-प्रेमकी पवित्रताको पराकाष्ठातक पहुँचा देते हैं। यहाँ ध्यान देनेयोग्य बात यह है कि अनेक बार देखा यह जाता है कि अपने कुल-परिवारकी मर्यादाओंके अनुसरणमें लोग भोगका तो वरण करते ही हैं, मर्यादाओंका उल्लेख कर उन्हें अपने हित, सुख और भोगके लिये ढाल बनाकर सामने लाते हैं; पर श्रीरामका चरित्र इस सम्बन्धमें एक आदर्श प्रस्तुत करता है। उन्होंने मर्यादाओंको सदा सुखके नहीं दुःखके, भोगके नहीं त्यागके अर्थमें लिया है। श्रीरामचरितमानस ऐसे अगणित प्रसङ्गोंसे भरा पड़ा है, जिसमें श्रीरामने भोगकी जगह त्यागका वरण कर मर्यादाकी गरिमा बढ़ायी—उसे अनुकरणीय बनाया, नया आयाम दिया। यह तो सर्वविदित और संसारप्रसिद्ध ही है कि सत्ता और साम्राज्योंके लिये सदासे संघर्ष और युद्ध होते आये हैं, आज भी होते हैं और स्वार्थके लिये इस संघर्षमें उचित-अनुचित या औचित्य-अनौचित्यका कोई विवेक नहीं किया जाता। इतना ही नहीं, भाई-भाई सत्ताजनित स्वार्थके लिये लड़कर शहीद हो जाते हैं; किंतु श्रीरामका चरित्र, जैसा कि ऊपर कहा गया है, सत्ता और साम्राज्यके सहज और स्वाभाविक अधिकारकी प्राप्तिके अवसरको भी ठोकर मारकर एक नया आदर्श प्रस्तुत करनेवाला सिद्ध होता है। ज्येष्ठ पुत्रको राजतिलक करनेकी परम्परा होते हुए और रघुकुलकी मर्यादाके अनुरूप राज्य-तिलकके न्यायोचित अधिकारी होते हुए जब उन्हें गुरु श्रीवसिष्ठ कहते हैं—

भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुम्हहि जुबराजू॥
(२। ९। १)

तो इसपर मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामका उत्तर सुनिये—

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा॥
बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥
(२। ९। ३-४)

श्रीरामके उक्त कथनसे ही स्पष्ट है कि सुख-साम्राज्यकी मर्यादाओंका अनुसरण ही रामकी मर्यादा नहीं है। यदि वही स्वीकार करें तो वह तो रघुकुलकी मर्यादा होगी, रामकी नहीं। रामकी मर्यादा तो सुखके नहीं, दुःखके और भोगके नहीं, त्यागके वरणकी है—ऐसे त्यागकी, जिसमें मनुष्य सामान्य सतहसे उठकर महान् बन जाता है। यही रामकी मर्यादा है और इसीलिये उन्हें 'मर्यादापुरुषोत्तम' कहा गया है।



श्रीराम—भारतीय लोक-मर्यादाके आदर्श

(लेखक—श्रीरामनाथजी 'सुमन')

भगवान् राम भारतीय लोक-मर्यादाके आदर्श हैं। वे भारतीय संस्कृतिकी सामाजिक विशिष्टताओंके प्रतीक हैं। उनमें वर्ण और आश्रमकी 'श्री' मूर्त दिखायी पड़ती है। उनके जीवनमें हमारी सामाजिक मर्यादाएँ एवं आदर्श व्यक्त हुए हैं। श्रीकृष्ण अपने चरित्रसे नवीन शास्त्र गढ़ते हैं; उनका चरित्र ही शास्त्र है, उनका आचरण ही धर्म है, श्रीराम ऋषि-प्रणीत शास्त्र-मर्यादाके रक्षक और पालक हैं। वे लोक जीवनमें समाहित होकर भी उसके ऊपर हैं। वे एक साथ आदर्श और मर्यादा-पालक हैं। वे व्यष्टि होकर भी समष्टि हैं।

समस्त भारतीय संस्कृति तपोमयी, त्यागमयी है। उसमें प्रत्येक वर्गके लिये, अपने स्तर एवं स्थितिके अनुसार, भोगवृत्तियोंको क्रमशः छोड़ते हुए त्यागकी वृत्ति ग्रहण करनेपर जोर दिया गया है। प्रत्येक पग यात्रा भी है और गन्तव्य भी है। प्रत्येक भोग भोग भी है और त्याग भी है। भोग है, किंतु वही भोग अपनेमें त्यागकी एक सीढ़ी भी है। इसीलिये समस्त भारतीय जीवन आत्मार्पणकी भावनापर गठित हुआ है। इस भावनाके कारण सामाजिक पक्षमें अधिकारके स्थान-पर कर्तव्यकी प्रधानता स्थापित हुई। यह भी कहा जा सकता है कि यहाँ अधिकारसे कर्तव्य और कर्तव्यसे अधिकार-का जन्म होता है।

श्रीरामका समस्त जीवन त्यागप्रधान है एवं उदात्त कर्तव्य-भावनासे पूर्ण है। उनका जीवन कहीं भी अपने लिये नहीं है; वह एक आदर्शसे प्रेरित, एक आदर्शके लिये समर्पित और उस आदर्शको आचरणमें व्यक्त करनेके लिये निरन्तर प्रयत्नशील जीवन है। वह व्यक्तिगत सुख एवं भोगपर कर्तव्योन्मुख लोकहितकी प्रधानताका जीवन है। वह लोकानुरञ्जक, लोकानुप्रेरक, लोकोद्धारक जीवन है। वह प्रकाशदाता है, वह जीवनदाता है। वह प्रत्येक बिन्दुपर शरीरके ऊपर आत्मचैतन्यके स्वरोदयका जीवन है—ऐसा जीवन, जिसमें कोटि-कोटि जीवनोंको वाणी और सामर्थ्य देनेकी वृत्ति भी है, शक्ति भी है। एक विराट् तेजःशक्ति-पुञ्ज, यह हैं श्रीराम।

वंश-मर्यादा

जिस वंशमें उन्होंने जन्म लिया था, उसमें भारतीय संस्कृतिके आदर्शको प्रकाशित करनेवाले एक-से-एक बढ़कर महापुरुष हुए हैं। हरिश्चन्द्र, दिलीप, भरत, रघु, सगर—एक-से-एक महान् राजा इस वंशमें हुए। इस वंशका वर्णन करते हुए महर्षि वाल्मीकि कहते हैं—

सर्वा पूर्वमियं येषामासीत् कृत्स्ना वसुंधरा।
प्रजापतिमुपादाय नृपाणां जयशालिनाम्॥
येषां स सगरो नाम सागरो येन खानितः।
षष्टिपुत्रसहस्राणि यं यान्तं पर्यवारयन्॥
इक्ष्वाकूणामिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम्।
महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम्॥

(वा० रा० १। ५। १-३)

"यह सम्पूर्ण वसुंधरा पूर्वकालमें प्रजापति मनुसे लेकर अबतक जिस इक्ष्वाकुवंशके विजयशाली नरेशोंके अधिकारमें रही है तथा जिन्होंने सागर खुदवाया और जिन्हें युद्धयात्राके समय साठ हजार पुत्र घेरकर चलते थे, वे महाप्रतापी राजा सगर जिनके कुलमें उत्पन्न हुए……"आदि।

और महाकवि कालिदास इस वंशके विषयमें लिखते हैं—

सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम्।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम्॥
यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम्।
यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम्॥
त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्॥
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥
रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन्।
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः॥

(रघुवंश, सर्ग १। ५-९)

"मैं उन प्रतापी रघुवंशियोंका वर्णन करने बैठा हूँ, जिनके चरित्र जन्मसे लेकर अन्ततक शुद्ध और पवित्र रहे; जो किसी कामको उठाते तो उसे पूरा करके ही छोड़ते थे, जिनका राज्य समुद्रके ओर-छोरतक फैला हुआ था, जिनके रथ पृथ्वीसे सीधे स्वर्गतक जाया-आया करते थे, जो शास्त्रोंके नियमानुसार ही यज्ञ करते थे, जो

माँगनेवालोंको मनचाहा दान देते थे, जो अपराधियोंको उनके अपराधके अनुसार ही दण्ड देते थे, जो (सोनेके बाद) समयपर जाग पड़ते थे, जो दान करनेके लिये ही धनका संचय करते थे, जो सत्यकी रक्षाके लिये बहुत कम बोलते थे, जिससे कि वे जो कहें, उसे करके भी दिखा दें; जो दूसरोंका राज्य हड़पने या लूटमारके लिये नहीं, वरं यशोवर्द्धन-निमित्त ही दूसरे देशोंको जीतते थे; जो भोग-विलासके लिये नहीं, वरं संतति-के लिये ही विवाह करते थे; जो बालपनमें विद्याध्ययन करते थे, तरुणावस्थामें विषय-भोगकी अभिलाषा करते थे, बुढ़ापेमें मुनियोंके समान जंगलोंमें रहकर तप करते थे और अन्तमें परमात्माका ध्यान करते हुए शरीर छोड़ते थे।"

ऐसे वंशमें रामका जन्म हुआ था; सहज ही उन्हें श्रेष्ठ संस्कार मिले थे। रघुवंशियोंके लिये तुलसीदासजीने भी कहा है—

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई॥
(श्रीरामच० मा० २। २७। २)

शुभ संस्कारोंका जीवन

श्रीराम सत्यसंध महाराज दशरथ और चारुशीला महारानी कौसल्याकी प्रिय संतान थे। श्रेष्ठ वंश और उत्तम-चरित माता-पिताकी संतान होनेके कारण उनमें शुभ संस्कार बचपनसे ही पुष्ट दिखायी पड़ते हैं। यों तो वे साक्षात् परमेश्वर, ब्रह्मावतार ही थे; किंतु मानवीय दृष्टिसे देखा जाय तो भी वे 'मर्यादापुरुषोत्तम' थे। शरीर-सम्पत्ति, वीरभाव एवं प्रतिभाके आलोकसे उनका शैशव आलोकित है। बचपनसे ही वे शीलके समुद्र हैं। उनके विद्योपार्जनमें केवल सैद्धान्तिक या पुस्तकीय ज्ञान ही नहीं, वरं जीवन तथा उसके श्रेष्ठ कर्त्तव्यों एवं आदर्शोंकी विकासमान अनुभूतियोंका संग्रथन भी दिखायी पड़ता है। छोटोंपर ममता एवं स्नेह तथा गुरुजनोंके प्रति सम्मान एवं भक्तिसे उनका हृदय पूर्ण है। माता-पिता—दोनोंकी अक्षय स्नेहधारासे स्निग्ध एवं मृदुल हृदय उनको मिला है, परंतु कहीं भी उनमें अनावश्यक चञ्चलता नहीं है; सर्वत्र वे अपने शील एवं चरित्रकी गम्भीरताके साथ हैं।

श्रेष्ठ वंश-विभूति, माता-पिताका गम्भीर वात्सल्य, एक महान् राज्यका भावी अधिकार, अनुगत बन्धु, गुरुजनोंका आशीर्वाद, असीम पौरुष एवं बल—सब मिलाकर भी कहीं उनमें अहंकारकी सृष्टि नहीं कर पाते, न वे विभूतियाँ कभी उन्हें अपने कर्त्तव्यसे विमुख या शिथिल ही कर पाती हैं। माताके आँसू और पिताका प्राण-त्याग उनके कर्त्तव्य-मार्ग—धर्ममार्गके कुछ पद-चिह्न मात्र हैं। प्राणप्रिया पत्नीका त्याग उनकी कठोर कर्त्तव्य-भूमिकाका स्मारक है।

महर्षि वाल्मीकि उनका वर्णन करते हुए लिखते हैं—

स हि रूपोपपन्नश्च वीर्यवाननसूयकः।
भूमावनुपमः सूनुर्गुणैर्दशरथोपमः॥
स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते।
उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते॥
कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥
शीलवृद्धैर्ज्ञानवृद्धैर्वयोवृद्धैश्च सज्जनैः।
कथयन्नास्त वै नित्यमस्त्रयोग्यान्तरेष्वपि॥
बुद्धिमान् मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः।
वीर्यवान् न च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः॥
न चानृतकथो विद्वान् वृद्धानां प्रतिपूजकः।
अनुरक्तः प्रजाभिश्च प्रजाश्चाप्यनुरज्यते॥
सानुक्रोशो जितक्रोधो ब्राह्मणप्रतिपूजकः।
दीनानुकम्पी धर्मज्ञो नित्यं प्रग्रहवाञ्छुचिः॥
कुलोचितमतिः क्षात्रं स्वधर्मं बहु मन्यते।
मन्यते परया प्रीत्या महद् स्वर्गफलं ततः॥
नाश्रेयसि रतो यश्च न विरुद्धकथारुचिः।
उत्तरोत्तरयुक्तीनां वक्ता वाचस्पतिर्यथा॥
अरोगस्तरुणो वाग्मी वपुष्मान् देशकालवित्।
लोके पुरुषसारज्ञः साधुरेको विनिर्मितः॥
(वा० रा० २। १। ९—१८)

'वे बड़े रूपवान् और पराक्रमशील थे, किसीका दोष नहीं देखते थे। संसारमें वे अनुपम थे, गुणोंमें दशरथके समान एवं उनके योग्य पुत्र थे। प्रशान्तात्मा और मृदुभाषी थे। यदि कोई उन्हें कठोर बात भी कह देता तो उसका उत्तर नहीं देते थे। कोई कभी एक भी उपकार कर देता तो सदैव उसे याद रखते और उससे संतुष्ट रहते थे और कोई सैकड़ों अपराध कर देता तो भी उन्हें भूल जाते थे। अस्त्राभ्यास-कालमें भी समय निकालकर शील, ज्ञान एवं आयुमें श्रेष्ठजनोंका

सङ्ग कर उनसे शिक्षा लेते थे। वे बुद्धिमान् तथा मिष्टभाषी थे; मिलनेवालोंसे पहले स्वयं प्रिय वचन बोलते थे। बल एवं पराक्रममें बढ़े-चढ़े होनेपर भी उन्हें कभी गर्व नहीं होता था। कभी कोई झूठी बात तो उनके मुँहसे निकलती ही न थी। विद्वान् होते हुए भी बड़े-बूढ़ोंकी भक्ति करते थे। उनका प्रजाके प्रति और प्रजाका उनके प्रति बड़ा अनुराग था। वे दयालु, क्रोधको जीतनेवाले, ब्राह्मणोंके पूजक, दीनदयालु, धर्मके ज्ञाता, इन्द्रियोंको सदा वशमें रखनेवाले और भीतर-बाहरसे पवित्र थे। कुलोचित आचारका आदर करते एवं स्वधर्मको बहुत महत्त्व देते थे और उसके द्वारा ही महत् स्वर्गफल पानेके प्रति विश्वासी थे। किसी अश्रेय कार्यमें उनकी कभी प्रवृत्ति नहीं होती थी, न शास्त्र-विरोधी बातें सुननेमें कभी रुचि होती थी। वे अपनी बातोंके समर्थनमें साक्षात् बृहस्पतिके समान एक-से-एक युक्ति देते थे। वे नीरोग एवं तरुण थे। वे अच्छे वक्ता, सुगठित शरीरसे युक्त तथा देशकालवित् थे। ऐसा लगता था, जैसे विधाताने संसारके समस्त पुरुषोंके सारतत्त्वको समझनेवाले साधुपुरुषके रूपमें श्रीरामको प्रकट किया हो।'

आगे वाल्मीकिने पुनः कहा है—

दृढभक्तिः स्थिरप्रज्ञो नासद्ग्राही न दुर्वचाः।

(वही, २४)

'वे गुरुजनोंके प्रति दृढ़ भक्ति रखनेवाले और स्थिरप्रज्ञ थे, असत् वस्तुओंको कभी ग्रहण नहीं करते थे, कभी दुर्वचन नहीं बोलते थे।'

तुलसीदास तो उनके शीलका वर्णन करते हुए अघाते ही नहीं। सारी रामायण उनके प्रति श्रद्धा-वाक्योंसे भरी पड़ी है। अन्य रचनाओंमें भी वे बार-बार रामकी दयाशीलता एवं अनुकम्पाका द्रवित हृदयसे वर्णन करते हैं और सबका सारांश इस पदमें कह देते हैं—

ऐसो को उदार जग माँही।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं॥

स्वयं तो वे दुःख-सुखसे परे और स्थितप्रज्ञ थे—'प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।—राज्य-प्राप्तिसे प्रसन्न नहीं, वनवाससे दुखी नहीं।' राज्य भी कर्तव्यपालनके लिये, धर्म-पालनके लिये था और वनवास भी धर्म और कर्तव्यकी पूर्तिका साधन था। इस प्रकार हम देखते हैं कि समस्त जीवन ही उनके लिये कर्तव्य-धर्म-पूर्ण है।

पारिवारिक जीवन

पारिवारिक जीवनकी दृष्टिसे देखिये तो राम एक आदर्श पुत्र, आदर्श भाई और आदर्श पति हैं। माता-पिता एवं गुरुजनके प्रति उनमें असीम सम्मानका भाव है। भाइयोंके प्रति तो उनका हृदय प्रेमसे इतना द्रवित है कि राज्याभिषेक-की बात उन्हें अद्भुत लगती है। सोचते हैं—'एक साथ जन्मे, एक साथ पालन-पोषण हुआ, खाये, खेले, पढ़े। यह क्या रीति है कि एक भाईको गद्दी मिले!' वे सदा पहिले भाइयोंकी सुख-सुविधाकी बात सोचते हैं, तब अपनी। पत्नी उनकी परम अनुगता है और वे भी उसके प्रति सहज प्रेमसे पूर्ण हैं। किंतु यह मातृ-पितृभक्ति, यह भ्रातृप्रेम, यह दाम्पत्य-प्रणय इतने उच्च स्तरपर हैं, इतने श्रेष्ठ संस्कारोंसे पूर्ण हैं कि वे सब उनके जीवनादर्शोंमें सहायक और साधक हैं; मोहाविष्ट प्राणियोंकी तरह उनके लिये बन्धनकारी नहीं हैं, श्रेयः-साधक हैं। धर्म सब सम्बन्धोंसे ऊपर है। प्रेम यहाँ मुक्तिदाता है, मोहक और मूर्च्छाकारक नहीं।

जगत्के सम्पूर्ण स्नेह-सम्बन्ध आत्मरूपको लेकर ही हैं। श्रुति भी यही कहती है। इसलिये धर्मका प्रकाशन और पालन करनेमें ही उनकी महत्ता है। जब ऐसा नहीं होता, तब वही प्रेम मोहरूप हो जाता है और दुःखके साथ ही सामाजिक पराभवका भी कारण होता है। रामके जीवनमें यही सत्य प्रकट हुआ है। उनके पारिवारिक जीवनमें हमें स्नेहकी कोमलताके साथ इसी कर्तव्यनिष्ठ दृढताके दर्शन होते हैं।

श्रेय-पथमें

पिताके सत्य एवं धर्मकी रक्षाके लिये युवराज-पदपर अभिषेकके दिन वे समस्त राजसिक सुविधाओंका त्याग कर जीवनके कण्टक-वनकी ओर अग्रसर होते हैं। पिताकी मूर्च्छा और मृत्यु, भाइयोंकी हृदय-व्यथा, पत्नीका कष्ट, माँकी निदारुण वेदना, स्वजनोंका आर्तनाद और प्रजावर्गका गम्भीर शोक भी उन्हें कर्तव्य और धर्मके मार्गसे विरत नहीं कर पाते। सबसे बड़ी बात तो यह है कि उनके इस त्यागमें

कहीं आवेश नहीं है, अनुचित आवेग नहीं है। वह सब उनके लिये सहज है; वह शान्त, उद्वेगहीन और मर्यादासे पूर्ण है। जब उनके श्वसुर जनक तथा भाई भरत आदि माताओंसहित उन्हें मनाने जाते हैं, तब स्नेहके भार एवं शील-संकोचसे सिर झुकाये हुए वे केवल अपनी स्थिति स्पष्ट कर देते हैं और कर्तव्यके निर्णय एवं तत्सम्बन्धी आदेशका भार उन्हींपर छोड़कर चुप हो जाते हैं। अपने धर्ममें दृढ़ रहते हुए भी कहीं गुरुजनसे तर्क-वितर्क नहीं करते; सदा अपनी सहज मर्यादाका ध्यान रखते हुए, विनयपूर्वक ही उत्तर देते हैं।

सामाजिक एवं राष्ट्रिय आदर्शोंकी दृष्टिसे विचार कीजिये तो हम उन्हें सदैव अन्याय एवं अधर्मकी शक्तियोंसे युद्ध करते देखते हैं। उनका समस्त जीवन अनैतिकता एवं अधर्मके विरुद्ध निरन्तर संघर्षका जीवन है। सामाजिक दृष्टिसे अपने जीवनमें उन्होंने निषादराज, शबरी इत्यादि निम्न-स्तरोंको अपनाया; अहल्याका उद्धार करके मानो बताया कि महात्मागण पतितसे घृणा नहीं करते, उनमें अपनी शक्तिका, पावनताका अधिष्ठान कर उन्हें ऊपर उठा देते हैं। छोटे वानर—वनचरोंको अपने संसर्ग और संस्कारसे उन्होंने शक्ति और महत्ताकी सीमापर पहुँचा दिया।

आर्यावर्तका जातीय जीवन उस समय विजड़ित एवं विशृङ्खल हो रहा था। विद्या एवं शक्तिसे मदान्ध रावणके आतङ्कसे समस्त दक्षिणा-पथ एवं मध्यभारत काँपता था। भोगोन्मुखी आसुरी सभ्यताने धर्म एवं श्रेष्ठ संस्कारोंका आर्य-जीवन असम्भव कर दिया था। ऋषियों एवं तपस्वियोंके कार्यमें बड़ी बाधाएँ उपस्थित होती थीं। रावणने अपनी विद्या-बुद्धि और वैज्ञानिक सिद्धियोंके बलपर अनेक प्राकृतिक शक्तियोंको वशीभूत कर लिया था, वायु एवं अग्निपर नियन्त्रण स्थापितकर उनसे वह मनमाना काम लेता था। महायान्त्रिक और आसुरी सभ्यता बढ़ रही थी। मानव-जीवनको आत्मिक विकासके मार्गपर प्रेरित करनेवाली और तपःपूत संस्कृतिको महत्त्व देनेवाली आर्य-सभ्यताके लिये घोर संकट उपस्थित था।

श्रीरामने अपने कौशल, पराक्रम, संघटना-शक्ति और अक्षय आत्म-विश्वाससे रावण एवं उसकी अज्ञानमूला पद्धति-का विनाश किया और बन्धन-ग्रस्त देशको पुनः मुक्त, स्वस्थ वातावरणमें साँस लेने और जीनेका अवसर प्रदान किया। शत्रुके साथ युद्ध करते समय भी हम देखते हैं कि रामके पास भौतिक साधन शत्रुकी अपेक्षा नगण्य थे; परंतु आत्मिक शक्तियों एवं उदात्त गुणोंके समुचित संघटनद्वारा उन्होंने भयंकर शत्रुपर विजय पायी।

असत्य एवं अन्धकारसे सत्य एवं प्रकाशका युद्ध ही रामके जीवनमें प्रबलताके साथ व्यक्त हुआ है। मानव-मात्र-के जीवनमें यह युद्ध न्यूनाधिक मात्रामें चलता रहता है। और आज तो मानव-समाजमें भोगमूलक भौतिक प्रवृत्तियोंकी बाढ़ आ रही है, धर्म मजाककी चीज बन गया है। आसुरी मूल्योंका बोलबाला है; विज्ञान मानवताका उद्धारक और पालक नहीं, शासक एवं विघटनकर्त्ता हो रहा है। भौतिक सिद्धियोंने आत्मज्ञानकी दृष्टिको आवृत और विजड़ित कर लिया है। प्रायः वही संकट है, जो रामके सामने था। इसलिये आज उनके जीवनके स्मरण, अध्ययन एवं तदनुकूल आचरणका समय है और उनके असत्य एवं अधर्मके प्रति युद्ध करते हुए, उसके निवारण-निराकरणमें हम जिस सीमातक लगते हैं, उसी सीमातक मानो रामको अपने जीवनमें उतारते हैं। जिस सीमातक हम राममय बनते हैं, उसी सीमातक हम धर्मरूप होते हैं; क्योंकि राम ही आर्यसंस्कृतिकी सामाजिक मर्यादाके आदर्श हैं। वे ही धर्म हैं, वे ही जीवन हैं, वे ही आत्मा हैं, वे ही परमात्मा हैं। उनके चरित्रका श्रवण-मनन-अनुकरण कर, उनसे अपने हृदयकी गाँठ बाँधकर हम पावन एवं धन्य हो सकते हैं। केवल व्यक्तिगत मुक्तिके लिये नहीं, वरं सामाजिक एवं सर्वमानवीय मुक्तिके लिये, जिस महाविनाश-के गर्तकी ओर हम तेजीके साथ चले जा रहे हैं, उससे रक्षाके लिये आज हमें राम और उनके आदर्शोंकी ही आवश्यकता है।



'शुद्ध ब्रह्म परात्पर राम'

(लेखक—श्रीभगवत्प्रसादजी द्विवेदी)

मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी॥
(श्रीरामच० मा० १।१११।२)

श्रीरामजी परम विशुद्ध परात्पर सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा हैं। इन्हींको वेद-पुराण-षट्दर्शनादि तथा ज्ञानी, भक्त, योगी आदि एक स्वरसे अखण्ड-अनादि-अनन्त-सदैकरस-अव्यय-सर्वव्यापी-निरञ्जन, परमसत्य, आदिमध्यान्तरहित, निर्गुण-निराकार-स्वयंप्रकाश-ज्ञानानन्दैकविग्रह-सर्वस्वरूप-सर्वगत-सर्वनाम-सर्वमय-सर्वातीत-सर्वसंकल्पातीत-अद्वितीय-नित्य-शुद्ध-बुद्ध—एकमात्र परतः पर, परम सत्तात्मकस्वरूप, सर्वज्ञ-सर्वाधार-सर्वनियन्ता-सर्वोपाधिवर्जित, सनातन, समस्त सदसद्-वस्तुसे विलक्षण, परम ज्योतिःस्वरूप, सर्वप्रकाशक, सबमें रमण करनेवाले ब्रह्म'परमात्मा'कहते हैं। श्रीरामजी परम शुद्ध, चिद्घनानन्दस्वरूप, सर्वगत, परमपूर्ण ब्रह्म हैं। उनसे कहीं एक परमाणु भी खाली नहीं है। वे सबमें एक समान रम रहे हैं। जो कुछ दृश्य-अदृश्य, सत्-असत् विश्व तथा असंख्य ब्रह्माण्ड हैं, वे सब राममय हैं।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन।

—यह श्रुति श्रीराममें चरितार्थ होती है। यह सब कुछ ब्रह्म (श्रीराम) मय है। निश्चयपूर्वक उनके सिवा अन्य कुछ भी नहीं है। एक राम ही सब कुछ हैं। वे परम शुद्ध परात्पर ब्रह्म श्रीरामजी भक्तोंपर अहैतुकी कृपावश चिदानन्दमय दिव्य शरीरसे आविर्भूत होकर भवसागरमें डूबते हुए निःशेष जीवोंके कल्याण-मङ्गल-उद्धारहेतु परमपावनी पवित्र मर्यादायुक्त परमानन्द-मोक्षदायिनी परम मधुर आदर्श लीला करते हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजी रामचरितमानसमें कहते हैं—

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहस सीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नर राज तनु चले दलन खल निसिचर अनी॥

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह॥
(वही, २। १२५ का छंद; १२६ दोहा)

"श्रीरामजी! आप श्रुतिकी मर्यादाका पालन करनेवाले परब्रह्म परमात्मा हैं। आपकी योगमाया परमाह्लादिनी शक्ति श्रीजानकीजी हैं, जो आपकी रुख—प्रेरणा पाकर आपके इशारेमात्रसे जगत्‌की उत्पत्ति करती हैं, उसका पालन करती हैं और उसका संहार भी करती हैं। श्रीलक्ष्मणजी सहस्र-सिरधारी शेषजी हैं। आपने देवकार्य तथा भुवनमङ्गलके लिये नर-शरीर धारण किया है और खल निशाचरोंका दलन करनेके लिये आप सक्रिय हैं।

"श्रीराम! आपका स्वरूप वाणीद्वारा अवर्णनीय है, बुद्धिसे परे है, अविगत है, अकथनीय है, अपार है। वेदतक उसे 'न इति', 'न इति'—इतना ही नहीं, यही नहीं—कहते हैं।"

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥
नर तनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥
(२। १२६। १)

"राम! आपका यह देह चिदानन्दमय है—यह प्रकृतिजन्य पाञ्चभौतिक कर्मबन्धनग्रस्त—मायिक नहीं है। साथ ही उत्पत्ति, वृद्धि, क्षय, नाश आदि सब विकारोंसे रहित है। संत और सुरोंका हित करनेके लिये आप मानव-देह धारण करते हैं और जैसे संसारी लोग—प्राकृत जन—कहते-करते हैं, वैसा ही आपका आचरण होता है।"

गीतामें कहा गया है—

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्॥
(७। २४)

'बुद्धिहीन मूढ मेरे परात्पर स्वरूपको न जानकर मुझे साधारण मनुष्य जानते हैं, मैं तो अविनाशी अजन्मा होते हुए भी अपनी योगमायासे स्वेच्छानिर्मित सच्चिदानन्दविग्रहसे प्रकट होता हूँ।'

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥
तुम्ह जो कहहु करहु सब साँचा।

जगन्माता पार्वतीजीकी जिज्ञासापर जगत्पिता शंकरजी कहते हैं—

राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥
सहज प्रकास रूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना॥

हरष बिषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना॥

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुल मनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ॥

(श्रीरामच० मा० १। ११५। ३-४; ११६)

श्रीरामचन्द्रजी विशुद्ध सच्चिदानन्दघन हैं। सत्‌का अर्थ है—सदा एक समान रहनेवाला, अविनाशी। अस्तीति सत्—जिसकी सत्ता सदा एक-सी बनी रहती है, जो सदा वर्तमान रहता है, वही 'सत्' है। चेततीति चित्—जो सदा प्रकाशमय ज्ञानस्वरूप है, जिसे कोई प्रकाशित नहीं करता है बल्कि जो स्वयं प्रकाशित होता है, उसे 'चित्' कहते हैं।

आनन्दयतीति आनन्दः। सर्वाप्तकामः सर्वाभावरहितः परमपूर्णः॥

'आनन्द'का अर्थ है—'जहाँ सर्वसुख हो, इच्छामात्रसे ही सब कुछ प्राप्त हो जाय, किसी प्रकारका अभाव न हो। समस्त कामनाएँ पूरी हो जायँ।' अतः जो सर्व-अभावशून्य हो, सब तरहसे परिपूर्ण हो, वही 'आनन्द' है। सत्-चित्-आनन्द मिलकर 'सच्चिदानन्द' होता है। भगवान् श्रीरामजी सदा रहनेवाले, अखण्ड ज्ञानस्वरूप परमानन्दसिन्धु हैं। सदा उदित रहनेवाले सूर्य हैं। उनमें मोह या अज्ञान-अन्धकारमयी रात्रिका लेशमात्र भी नहीं है। वे सहज प्रकाशरूप भगवान् हैं। वहाँ तो विज्ञानरूप प्रातःकाल नहीं है। जब अज्ञानरूपी रात्रि होगी, तभी तो विज्ञानरूपी प्रभात होगा। जब रात ही न होगी, तब प्रभात कहाँसे आयेगा। भगवान् श्रीरामजी तो सच्चिदानन्द दिनेश हैं। हर्ष-विषाद, ज्ञान-अज्ञान, अहंता-ममता—ये द्वन्द्व तो जीवोंके धर्म हैं, अर्थात् ये सब जीवोंमें रहते हैं। श्रीरामजी तो सर्वज्ञ व्यापक ब्रह्म, परमानन्दस्वरूप परमात्मा हैं। परात्पर परम पुरुषोत्तम पुराणपुरुष सर्वेश्वर हैं, जिनके एक निमेषमें करोड़ों ब्रह्मा, विष्णु, शिवका प्रादुर्भाव और तिरोधान हो जाता है।

श्रीराममें तथा उनकी त्रिपाद्विभूतिमें कालचक्रका साम्राज्य नहीं है। काल तो उनका धनुष है—

लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु कोदंड॥

(श्रीरामच० मा० लङ्काकाण्ड)

श्रीराम तो कालके भी काल हैं—

भुवनेस्वर कालहु कर काला।

(श्रीरामच० मा० ५। ३८। १)

वे ही परम ब्रह्म परमात्मा परम विशुद्ध ब्रह्म श्रीरघुकुल-शिरोमणि शिवजीके स्वामी हैं—

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान॥

कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी॥

× × ×

राम सो परमातमा भवानी।

× × ×

राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी। सर्ब रहित सब उर पुर बासी॥

(वही, १। ११६। ४; १। ११७। २-४; ११८। १, ३; १। ११९। ३)

शिवजी महाराज कहते हैं—'यह संसार प्रकाश्य है और श्रीरामजी इसके परम प्रकाशक हैं। वे मायाके अधीश्वर, दिव्य अलौकिक अखण्ड ज्ञान और परम विशुद्ध सत्त्वगुण तथा कल्याणमय मङ्गलके धाम हैं। उनकी कृपा-लवलेशसे सब संशय मिट जाते हैं। उनका आदि, मध्य, अन्त कोई नहीं जान सकता। वेद भी अनुमानसे कहते हैं कि वे सत्तामात्र, अगोचर—इन्द्रियातीत हैं। वे प्राकृत पाँव, कान, हाथ, मुँह, नाक, आँखसे रहित होते हुए भी गमनशील, श्रोता, कर्ता, भोक्ता, घ्राता, द्रष्टा हैं। अर्थात् प्राकृत इन्द्रियाँ न होनेपर भी उनके समस्त विषयोंका उपभोग करते हैं।'

श्रुतिमें भी कहा है—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥

(श्वेताश्वतर० ३। १९)

'जो बिना हाथ-पैरके वेगवान् और ग्रहणकर्ता है, बिना नेत्रके देखता है, बिना कानके सुनता है, वह सभी कुछ

जानता, अर्थात् सबका साक्षी और द्रष्टा है; किंतु उसे कोई नहीं जानता । उसीको पुराण-पुरुषोत्तम परमात्मा कहा जाता है ।'

इस प्रकार श्रीरामकी सब करनी या कर्तव्य अलौकिक है । उनकी महिमाको न कोई जान पाता और न वर्णन कर सकता है ।

स्कन्दपुराणमें श्रीरामभक्तशिरोमणि हनुमान्‌जीने कहा है—

सर्वावस्थासु सर्वत्र पाहि मां रघुनन्दन ।
महिमानं तव स्तोतुं कः समर्थो जगत्त्रये ॥
त्वमेव त्वन्महत्त्वं वै जानासि रघुनन्दन ।

'रघुनन्दन श्रीरामजी ! जागते, स्वप्न देखते और सोते—प्रत्येक अवस्थामें सब जगह आप ही मेरे रक्षक हैं; अतः मेरी रक्षा करो । आपकी महिमाका वर्णन करनेकी शक्ति त्रिलोकीमें किसीमें नहीं है । आप स्वयं ही अपनी महिमाको जान सकते हैं ।'

इस प्रकार जिनका श्रुति, पुराण, महर्षि, ज्ञानी, योगी, भक्त आदि वर्णन करते हैं, वे ही भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले परम विशुद्ध सच्चिदानन्दघन परात्पर ब्रह्म श्रीरामजी मनु-शतरूपाकी तपस्या तथा अनन्य परमदृढ़ भक्तिके वशीभूत होकर भक्तवत्सल कोसलपति भगवान् श्रीराम हुए हैं । श्रीरामजीका यह नराकार रूप दशरथके यहाँ पुत्ररूपमें प्रकट होनेपर ही नहीं हुआ है; यह तो सनातन, अनादि, परात्पर है । मनु-शतरूपाकी तपस्याके पूर्व भी सदासे था । जब मनु-शतरूपा नैमिषतीर्थमें तप करने लगे, तब इनकी कठिन तपस्यासे परम शङ्कित होकर—कि ये कौन-सा पद चाहते हैं, वर देनेके लिये ब्रह्मा-विष्णु-शिव इनके पास कई बार आये; किंतु ये टस-से-मस नहीं हुए । त्रिदेवोंकी तरफ इन्होंने ताका भी नहीं और बड़ी धीरतासे तपमें लगे रहे । इनके हृदयमें निरन्तर यही अभिलाषा होती रहती कि सर्वोपरि परम पुरुष प्रभुका दर्शन करें ।

उर अभिलाष निरंतर होई । देखिअ नयन परम प्रभु सोई ॥
अगुन अखंड अनंत अनादी । जेहि चिंतहिं परमारथबादी ॥
नेति नेति जेहि बेद निरूपा । निजानंद निरुपाधि अनूपा ॥
संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना । उपजहिं जासु अंस तें नाना ॥
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई । भगत हेतु लीला तनु गहई ॥
(श्रीरामच० मा० १ । १४३ । २–४)

इस तरह घोर तपस्यासे शरीर एकदम क्षीण हो गया, शरीर अस्थिमात्र रह गया; किंतु अति प्रखर परमोत्कृष्ट श्रद्धा तथा परम चरम सीमातक पहुँची हुई अनन्य भक्तिसे परिपूर्ण ये दम्पति छः सहस्र वर्षतक जल पीकर तप करते रहे, फिर भी परात्पर भगवान्‌का साक्षात्कार इन्हें नहीं हुआ । तब इन्होंने जल भी त्याग दिया और केवल वायुपर ही सात हजार वर्षतक आराधनामें लगे रहे । जब इसपर भी परमेश्वर श्रीराम नहीं मिले, तब इसे भी कम ही समझकर इन्होंने वायुभक्षण भी छोड़ दिया और एक पाँवसे खड़े रहकर दस सहस्र वर्ष बिता दिये । शरीरकी हड्डियाँ सूखकर नामको बच रहीं । उसपर भी इनके मनमें कोई पीड़ा नहीं हुई, बल्कि श्रद्धा तथा भक्ति बढ़ती ही जा रही थी । तब सर्वज्ञ सर्वेश्वर परमात्मा श्रीरामजीने तपस्वी राजा-रानीको अपना परम अनन्य भक्त जान लिया तथा आकाशवाणीसे 'वरं ब्रूहि' कहा । यह वाणी परम कृपामृतसे सिक्त होनेके कारण मृतकको भी जीवनदान देनेवाली थी । हृदयमें पहुँचते ही उसने शरीरको हृष्ट-पुष्ट बना दिया, मानो ये राजसिंहासनसे अभी उतरकर आये हों । दम्पति परमानन्दसे परिपूर्ण हो गये । अपार प्रेममयी भक्तिसे पुलक-प्रफुल्लित-शरीर हो दण्डवत् कर हाथ जोड़ बोले—

सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू । बिधि हरि हर बंदित पद रेनू ॥
सेवत सुलभ सकल सुख दायक । प्रनत पाल सचराचर नायक ॥
जौं अनाथ हित हम पर नेहू । तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू ॥
जो सरूप बस सिव मन माहीं । जेहि कारन मुनि जतन कराहीं ॥
जो भुसुंडि मन मानस हंसा । सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा ॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन । कृपा करहु प्रनतारति मोचन ॥
(श्रीरामच० मा० १ । १४५ । १–३)

'हे भक्तवाञ्छाकल्पद्रुम ! सर्वकामपूरक ! आपकी चरणरजकी ब्रह्मा, हरि, शिव भी वन्दना करते हैं । उनकी भी अभिलाषा आपसे ही पूरी होती है । यदि ऐसे 'महतो महीयान्' प्रभु हमारे ऊपर प्रसन्न हैं, तो कृपाकर यही वर दीजिये कि 'जो स्वरूप शिवजीके मनमें निवास करता है, जिसकी प्राप्तिके लिये महा-महामुनि भी यत्न करते हैं, परमभक्त काकभुशुण्डि, लोमश आदि भी जिस स्वरूपके ध्यानमें लीन रहते हैं, जिससे श्रेष्ठ और कोई नहीं है, जो नित्य सत्य ज्ञानानन्दपूर्ण, सबका कारण है, वह सर्वोपरि विराजमान आपका स्वरूप हम अपने नेत्रभर पूर्णरूपसे

देहँ ॥' राजा-रानीकी प्रेमभरी यह वाणी श्रीभगवान्‌को बहुत प्रिय लगी। वे भक्तवत्सल, कृपानिधान, सम्पूर्ण विश्वके निवासस्थान, सर्वव्यापी, 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्' सर्वसमर्थ, सर्व-कारण-कारण भगवान् श्रीराम इनके सामने प्रकट हुए। कोटि-कोटि अरब-खरब कामदेव जिनके एक नखकी शोभासे लज्जित हो जाते हैं, ऐसे असंख्य-काम-कमनीय दिव्यातिदिव्य सर्वदा परम सत्य सच्चिदानन्दमय सर्वानन्द-प्रदायक श्रीरामने अपने निज नराकार स्वरूपका दर्शन दिया। परब्रह्म परमात्मा श्रीरामका सब कुछ नित्य तथा परमानन्दप्रदायक है—

रामस्य नामरूपं च लीलाधाम परात्परम्।
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दमव्ययम्॥
(वशिष्ठसंहिता)

'श्रीरामजीका नाम, रूप, लीला और धाम—ये चारों ही परम सत्य, दिव्य, ब्राह्म—ब्रह्मस्वरूप, अप्राकृत, नित्य, सच्चिदानन्द, अव्यय—सदा एक समान रहनेवाले हैं। अर्थात् ये चारों परब्रह्म परमात्मा श्रीरामके समान ही हैं। इनमें और राममें कोई अन्तर नहीं है।' अनन्त छविधाम श्रीरामका अद्भुत स्वरूप अवर्णनीय है। ये ही परात्पर परमप्रभु श्रीराम हैं।

यस्य महिमानं परं ब्रह्मेति शब्दितम्।

"इन श्रीरामकी महिमाको 'परब्रह्म' कहा जाता है।" ये ही विश्वावास श्रीराम मनु-शतरूपाके लिये प्रकट हुए। इनके वामाङ्गमें इनकी अर्द्धाङ्गिनी, जो सदा इनसे अभिन्न हैं, परमाह्लादिनी परमाशक्ति श्रीसीताजी शोभित हैं, जिन सीताजीके अंशमात्रसे अगणित उमा-रमा-ब्रह्माणी उत्पन्न होती हैं, जिनके भृकुटि-विलासमात्रसे संसारका उत्पत्ति-पालन-संहार होता रहता है। अपनी उन अभिन्न शक्ति सीतासहित श्रीरामने मनु-शतरूपाको दर्शन देकर पूर्णरूपसे कृतार्थ किया।

इन्हीं श्रीरामजीके सम्बन्धमें सामवेद कहता है—

भद्रो भद्रया सचमान आगात्,
स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्, रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्॥
(ऋग्वेद १५४८)

'संसारमात्रका परममङ्गल—कल्याण करनेवाले भद्र श्रीरामजी जगत्कल्याणकारिणी भद्रा श्रीसीताजीके सहित प्रकट हुए और देवताओंकी प्रार्थनासे संतुष्ट होकर परम प्रकाशमय अग्निके समान तेजस्वी स्वरूपसे लीलाधाम अयोध्यामें विराजमान हुए। फिर कुछ समय पश्चात् दुष्ट प्रकृतिवाले अपने ही पार्षद जय-विजयका, जो रावण-कुम्भकर्णके रूपमें राक्षसी-योनिमें प्रकट हुए थे, उद्धार करनेके लिये परम तेजस्वी प्रखर बाणोंसे संहार किया और फिर परमधाममें स्थित हुए।'

श्रीरामचन्द्रजी सच्चिदानन्द दिनेश—सविता हैं। सबको प्रकाशित करनेवाले परब्रह्म परमात्मारूप सूर्य हैं और सब ईशोंके भी परम ईश हैं। जिनसे सब ईश्वरगण प्रकाश तथा बल पाकर 'ईश्वर' कहे जाते हैं, जिनकी स्तुति-वन्दना बड़े-बड़े ईश्वर करते हैं, जिनकी स्तुति नरहरि, वराह, महाविष्णु, विष्णु, महाशम्भु आदि करते रहते हैं, जिनकी प्राप्तिके लिये द्वैतमतावलम्बी भक्तगण कठिन तपस्या करते हैं तथा बड़े-बड़े मण्डलाचार्य भक्त-ज्ञानी-तपस्वी विविध मार्गसे प्रयत्न करते हैं, वे दक्षिणस्थ परम पुरुष अर्थात् सदा सबके दाहिने रहनेवाले अथवा सदा सबकी रक्षा करनेवाले, सबका माता-पिताकी तरह पालन-पोषण करनेवाले, सर्वेश्वरेश्वर परब्रह्म परमात्मा श्रीराम ही हैं।

श्रीराम परात्पर हैं, इस सम्बन्धमें वशिष्ठसंहितामें कहा गया है—

परान्नारायणाच्चैव कृष्णात् परतरादपि।
यो वै परतरः श्रीमान् स वै दाशरथिः स्वराट्॥
जय मत्स्याद्यसंख्येयावतारोद्भवकारण।
ब्रह्मविष्णुमहेशादिसंसेव्यचरणाम्बुज॥

'श्रीनारायणसे परे, श्रीकृष्णसे भी परे, जो सबके परतत्त्वरूप परमात्मा हैं, वे ही दशरथनन्दन श्रीराम हैं। ब्रह्मा-विष्णु-महेशादिसे भी सेव्यचरण-कमल तथा मत्स्य-कूर्म-वराहादि असंख्य अवतारोंकी उत्पत्तिके कारण श्रीरामजी! आपकी जय हो। आपसे श्रेष्ठ कोई नहीं है।'

वाल्मीकिजीका भी ऐसा ही कहना है—

परं ब्रह्म परं तत्त्वं परं ज्ञानं परं तपः।
परं बीजं परं क्षेत्रं परं कारणकारणम्॥

'श्रीराम! आप परब्रह्म, परमतत्त्व, परमज्ञान, परमतप, जगत्की उत्पत्तिके बीजस्वरूप, परमक्षेत्र, परम कारणके भी कारण हैं।'

पुराणमें कहा गया है—

यस्यानुग्रहतो नित्यं परमानन्दसागरम् ।
रूपं श्रीरामचन्द्रस्य सुकरं भवति ध्रुवम् ॥

'श्रीरामचन्द्रजीकी कृपादृष्टिसे ही उनकी सारूप्यादि मुक्तियाँ सुलभ होती हैं; क्योंकि श्रीरामजीका स्वरूप नित्य अविनाशी परमानन्दका महासागर है।'

इस संसारमें जो आनन्द—सुख सबको प्राप्त हो रहा है, वह तो आनन्दसिन्धु श्रीरामजीका एक बिन्दुमात्र है। श्रीवसिष्ठजीने श्रीरामजीके नामकरणके अवसरपर कहा है—

जो आनंद सिंधु सुख रासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥
सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा॥
(श्रीरामच० मा० १। १९६। ३)

'जो आनन्दके समुद्र और सुखके खजाने हैं, जिस समुद्रके एक बिन्दुमात्रसे त्रैलोक्य आनन्दसे भर उठता है, वे ही सुखधाम श्रीराम हैं। उनके द्वारा ही समस्त लोकोंमें सुख और शान्ति मिलती है।'

श्रीराम शिवजीके जीवन-धन—प्राण-सर्वस्व हैं—

माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः
स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः।
सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालु-
र्नान्यं जाने नैव जाने न जाने॥
(शिवरहस्य)

अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थो
वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं
दिशामि मन्त्रं तव रामनाम॥
(अध्यात्म० ६। १५। ६२)

श्रीरामनामसे ही कृतार्थ होकर पार्वतीके साथ शिवजी काशीमें निवास करते हैं और मरणासन्न व्यक्तिको श्रीरामनामरूप तारक-मन्त्र देकर मुक्ति दिलाते हैं।

ब्रह्माण्डानामसंख्यानां ब्रह्मविष्णुहरात्मनाम्।
उद्भवे प्रलये हेतू राम एव इति श्रुतिः॥
(शिवसंहिता)

'श्रुति कहती है कि ब्रह्मा, विष्णु एवं हरके शरीरभूत असंख्य ब्रह्माण्डोंके उत्पादक तथा विनाशके एकमात्र कारण श्रीराम ही हैं।'

इति रामो विग्रहवान् स्वयं ब्रह्म सनातनः।
आत्मारामश्चिदानन्दो भक्तानुग्रहकारकः॥
(माहेश्वरतन्त्र)

'श्रीराम स्वयं मूर्तिमान् सनातन ब्रह्म हैं। वे चिदानन्द-स्वरूप, आत्मामें ही रमण करनेवाले तथा भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले—भक्तवत्सल हैं।'

श्रुति कहती है—

रमन्ते योगिनो यस्मिन् सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥
(रामपूर्वतापनीयोपनिषद् १। ६)

'जिस आनन्दमय सत्यानन्द परमज्योतिःस्वरूप परमात्मामें योगीगण ध्यान-समाधिद्वारा रमण करते हैं, वे परम ब्रह्म परमात्मा श्रीरामजी ही हैं।'

ॐ यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्द आत्मा यः परमात्मा भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः।

ॐ यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्द आत्मा यो विज्ञानात्मा भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः।
(रामोत्तरतापनीयोपनिषद् ४६, ४७)

श्रीरामचन्द्रजी भगवान् हैं—षडैश्वर्यसम्पन्न हैं, सत्-चित्-आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्दैकरसात्मा, अखण्डज्ञाना-नन्दैकरसात्मा परब्रह्म परमात्मा हैं।

ॐ नमो भगवते श्रीरामाय परमात्मने।
सर्वभूतान्तरस्थाय ससीताय नमो नमः॥
ॐ नमो भगवते श्रीरामचन्द्राय वेधसे।
सर्ववेदान्तवेद्याय ससीताय नमो नमः॥
ॐ नमो भगवते श्रीविष्णवे परमात्मने।
परात्पराय रामाय ससीताय नमो नमः॥
ॐ नमो भगवते श्रीरघुनाथाय शार्ङ्गिणे।
चिन्मयानन्दरूपाय ससीताय नमो नमः॥
(आनन्दरामायण, मनोहरकाण्ड ३। ९५—९८)

श्रीसीताजीके साथ परात्पर परमात्मा विष्णुरूपधारी श्रीरामको नमस्कार है। श्रीराम, जो सब भूतोंके अन्तरमें स्थित हैं, सर्ववेदान्तवेद्य हैं और चिन्मयानन्दरूप हैं तथा शार्ङ्गधनुष धारण करते हैं, उनको नमस्कार है।

अशेषवेदात्मकब्रह्मादिसंज्ञं
× × ×
स्वपारसंवित्सुखमेकरूपं
परात्परं राममहं भजामि॥

सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम्।
परात्परतरं तत्त्वं सत्यानन्दं चिदात्मकम्॥
मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूत्तमम्।

(श्रीरामस्तवराज ६१, ६२, ६८)

'अशेषवेदस्वरूप—अपार ज्ञानानन्द-वारिधि, अद्वितीय-स्वरूप, परात्पर, सूर्यमण्डलस्थ ही नहीं, सूर्यको भी प्रकाश देने-वाले—चक्षोः सूर्यो अजायत—जिनके नेत्रकी ज्योतिसे सूर्यकी उत्पत्ति है—ऐसे सीतायुक्त परात्पर-तत्त्व सत्यानन्दचिदात्म-स्वरूप रघूत्तम श्रीरामको मनसे-सिरसे मैं नमस्कार करता हूँ।'

सुखस्वरूप रघुबंसमनि मंगल मोद निधान।

(श्रीरामच० मा० २। २००)

'श्रीराम सुखस्वरूप तथा मङ्गल और मोदके खजाने हैं।'

चिद्वाचको रकारः स्यात् सद्वाच्योऽकार उच्यते।
मकारोनन्दवाची स्यात् सच्चिदानन्दमव्ययम्॥

(महारामायण)

'श्रीरामके नामका रकार चिद्‌वाचक है, अकार सद्-वाचक है तथा मकार आनन्दवाचक है। वे सच्चिदानन्द अव्यय पुरुष हैं।'

उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा॥

(श्रीरामच० मा० ६। ३४। ४)

ऊपर हम यह कह आये हैं कि श्रीरामके नाम, रूप, लीला और धाम सभी परात्पर हैं। नामकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। मनु-शतरूपाके प्रकरणमें यह बताया जा चुका है कि श्रीराम मनु-शतरूपाके सामने प्रकट हुए। मनुने श्रीभगवान्‌की स्तुति की और वर माँगा—

'चाहउँ तुम्हहि समान सुत—तुम्हारे समान पुत्र चाहता हूँ।' श्रीभगवान्‌ने उत्तरस्वरूप बतलाया—

आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई॥

(वही, १। १४९। १)

'राजन्! मैं अपने समान [दूसरा] कहाँ जाकर खोजूँ! मैं ही तुम्हारा पुत्र बनूँगा।'

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।

(यजुर्वेद ३२। ३)

'उस परमात्माकी समता करनेवाला कोई नहीं है, उसका नाम ही महान् यश है।' सचमुच उसे अपने समान कौन मिलेगा? अतः वे ही परात्पर ब्रह्म सच्चिदानन्द परमात्मा श्रीरामरूपमें धराधामपर अवतीर्ण हुए। उन्होंने नररूप धारण किया। देवताओंपर विपत्ति पड़नेपर उन्होंने स्वयं कहा—'तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा।' यहाँ 'नर' रहस्यवाची शब्द है। 'नरति सद्गतिं नयतीति नरः मनुष्यः।'—जो सद्गति प्राप्त करने-करानेमें समर्थ है, उसे 'नर' कहते हैं।''

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो।

(श्रीरामच० मा० ७। ४३। ४)

नर तनु सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही॥

(वही, ७। १२०। ५)

नर-देह मोक्षका द्वार कहा जाता है—'साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।' (वही, ७। ४२। ४) श्रीभगवान् अपनी नर-देहसे शिक्षा देना चाहते हैं कि किस तरह सांसारिक लोगोंके इस भवसागरको पारकर मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है। इसलिये नर-शरीरमें आनेके उनके अनेक कारण सामने आते हैं। पहला कारण भक्तोंका रञ्जन, दूसरा कारण जीवोंका उद्धार, तीसरा कारण राक्षसोंका—आसुर-वृत्तियोंका विनाश, चौथा कारण लीला—ऐसे अनेक कारण हैं।

मनु और शतरूपाको वरदान देकर प्रभु अन्तर्धान हो गये। मनु और शतरूपा त्रेतामें दशरथ और कौसल्याके रूपमें प्रकट हुए। इसी अवसरपर पुराणपुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम अंशोंसहित मनुष्यरूपमें प्रकट हुए। श्रीभगवान्‌का यह रूप परात्पर रूप है और इस रूपमें उन्होंने जितनी लीलाएँ की हैं, वे सभी परात्परत्वकी झाँकियाँ हैं, साकार प्रतिमाएँ हैं, ऐसी झाँकियाँ जिन्हें देखकर साधारण जन तो अलग रहे, परमज्ञानी भरद्वाज मुनितक ऋषि याज्ञवल्क्यसे प्रश्न कर बैठे—

प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।

(वही, १। ४६)

इस तरहकी शङ्का भरद्वाजको ही हुई हो, ऐसी बात नहीं है, जगज्जननी सतीतक इस मोहमें पड़ गयी थीं। उनके मनमें भी शङ्का उठ खड़ी हुई थी—

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥

(वही, १। ५०)

"ब्रह्म तो व्यापक है, विरज है, अज है, अकल है। उसमें इच्छा और भेद कहाँ। वह भी क्या शरीर धारण कर 'नर' हो सकता है, जिसे वेदतक नहीं जानते ?" अन्तमें इस रहस्यको समझनेके लिये उन्हें बड़े कष्टोंका सामना करना पड़ा—यहाँतक कि जब वे दुबारा पार्वतीरूपमें प्रकट हुईं, तब भगवान् शंकरके द्वारा उन्हें समाधान प्राप्त हुआ। भगवान्की नरलीलाका वर्णन वाल्मीकिने रामायण लिखकर किया है। इसीमें उनके रूप और लीलाकी विशद गाथा गायी गयी है।

भगवान्का धाम भी नाम, रूप और लीलाकी तरह परात्पर है। यजुर्वेदका मन्त्र है—

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥
(३२। १०)

"वह परमात्मा हमारा रक्षक है, जनक है, सब सुविधा प्रदान करनेवाला है, सर्वज्ञ है। सब धामोंसे परिचित है। तृतीय धाम त्रिपाद्-विभूति परमधाममें विराजमान—निवास करनेवाले पार्षदरूप मुक्त आत्माएँ अमर हो विहरती हैं।"

त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।

तथा—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।

सब कुछ भगवान् ही हैं; किंतु ऊपर जो त्रिपाद्-विभूति है, अमृत धाम है, वही उनका परमधाम है। उनका एक भाग यहाँ अनन्त ब्रह्माण्ड—प्राकृत सृष्टि है।

यायोध्या पूः सा सर्ववैकुण्ठानामेव मूलाधारा मूल-प्रकृतेः परा तत्सद् ब्रह्ममयी विरजोत्तरा दिव्यरत्न-कोशाढ्या तस्यां नित्यमेव श्रीसीतारामयोर्विहारस्थलमस्तीति।
(सा० सु०, रमावैकुण्ठ, पृ० २)

"अयोध्या सब वैकुण्ठधामोंका मूलाधार है। इसीके अन्तर्गत गोलोक-वैकुण्ठादि सब धाम हैं। अयोध्या प्राकृतिक लोकोंसे परे, विरजा नदीके उस पार, त्रिपाद्-विभूति ब्रह्ममयी श्रीरामकी पुरी है। दिव्य रत्नकोशोंसे परिपूर्ण है। यही श्रीसीतारामका विहारस्थल नित्य परमधाम 'साकेत' है।"

इस भूतलपर जो अयोध्या—साकेतपुरी है, वह लीलाधाम है। इसकी भी बड़ी महिमा है। यह उस परमधामको देनेवाली है। श्रीरामजी स्वयं अपने श्रीमुखसे कहते हैं—

राम धामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त बिदित अति पावनि॥
(श्रीरामच० मा० १। ३४। २)

× × ×

पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि। त्रिबिध ताप भव रोग नसावनि॥
(वही, ६। ११९। ५)

× × ×

भोगस्थानं परायोध्या लीलास्थानं त्वियं भुवि।
भोगलीलापती रामो निरङ्कुशविभूतिकः॥
(शिवसंहिता २। १८)

"श्रीरामजीका परमधाम श्रीअयोध्यापुरी है। ये दो हैं। एक लीलाधाम अयोध्या भूतलपर है। दूसरी परमधाम त्रिपाद्-विभूतिमें परा अयोध्या है। साकेतधाम भोगस्थान परम नित्यधाम है। इन दोनों धामोंके स्वामी श्रीरामजी निरङ्कुश विभूतिवाले हैं, अर्थात् इनके ऊपर तथा उनकी विभूतिके ऊपर किसीका अङ्कुश—शासन—अधिकार नहीं है।"

अयोध्या नन्दिनी सत्या नाम्ना साकेत इत्यपि।
कोशला राजधानी च ब्रह्मपुरापराजिता॥
अष्टचक्रा नवद्वारा नगरी धर्मसम्पदाम्।
इत्थैवं ज्ञाननेत्रेण ध्यातव्या सरयूस्तथा॥
(शिवसंहिता २०। १५-१६)

"नन्दिनी, सत्या, साकेत, कोशला, राजधानी, ब्रह्मपुरी, अपराजिता—ये सब अयोध्यापुरीके नाम हैं। वह पुरी धर्म तथा सम्पदासे—चारों पदार्थोंसे परिपूर्ण है। वहाँके निवासी मुक्तात्माएँ भक्त, ज्ञानी आदि आप्तकाम हैं। वहाँ आनन्द-ही-आनन्द है। वहाँ सब कालातीत, नित्य है। इस नगरीमें आठ आवरण हैं, नौ द्वार हैं। ये सब ज्ञाननेत्रोंद्वारा देखे जा सकते हैं। यहाँकी सरयू ध्यान करने योग्य है।"

वेदमें श्रीरामधाम अयोध्याका विस्तृत वर्णन है—
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते।

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥
न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥
अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽऽवृतः ॥
तस्मिन्हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते ।
तस्मिन्यधक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥
प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सम्परीवृताम् ।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥
(अथर्ववेद १० । २ । २८–३३)

"त्रिपाद्-विभूतिमें परब्रह्म परमात्मा श्रीरामका धाम साकेत या अयोध्या है, जिसके स्वामी श्रीरामजी हैं । जो प्रेमी अनन्यभक्त या ज्ञानी उस ब्रह्मपुर—श्रीरामपुरको तथा श्रीरामब्रह्मको जान लेता है, वह श्रीरामभक्तिद्वारा श्रीराम-कृपासे संयुक्त होकर, स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीर तथा जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति—तीनों अवस्थाओंसे पार होकर, तुरीयावस्था—मुक्तिमें पहुँचकर, सच्चित्-आनन्दस्वरूप सालोक्य-सामीप्य-सारूप्य-सायुज्य मुक्तिका अधिकारी बन जाता है । वह दिव्य—अप्राकृत—ब्रह्मशरीरमें प्रविष्ट हो जाता है । तब वह श्रीराम-कृपासे ही अमृतसे आवृत, मृत्युरहित, कालातीत ब्रह्मपुर—श्रीरामकी पुरी अयोध्याको प्राप्त होता है । तब ब्रह्म श्रीरामजी उसको अपने सदृश परम दिव्य ज्ञान, दिव्य चक्षु, प्राण, ओज, कान्ति, बल—सब कुछ दे देते हैं । उस मुक्तात्मा भक्त-को श्रीरामका दिया हुआ प्राण-चक्षु आदि कभी नहीं त्यागता अर्थात् वह अमर हो जाता है; वहीं निवास करने लगता है । वह रामधाम साकेत आठ आवरणवाला है और उसमें नौ द्वार हैं । इन द्वारोंपर श्रीरामजीकी विमलादि शक्तियोंसे संयुक्त पार्षद—द्वारपाल हैं । ऐसी दिव्य पुरी अयोध्या श्रीराम-भक्तोंका निवास-स्थान है । इसमें सब दिव्य रत्नकोश, प्रकाश-मय स्वर्ग, परमानन्दमय धाम है । इस अयोध्याके मध्यभागमें राजभवन है । यहाँ तीन आवरणसे परिवेष्टित हिरण्मय कोशमें कमलके आकारवाले दिव्य सिंहासनपर परमात्मा श्रीराम विराजमान हैं । इन्हींको ब्रह्मज्ञानी लोग 'परब्रह्म' कहते हैं । ये ही सबको प्रकाशित करनेवाले परमशुद्ध परात्पर ब्रह्म श्रीराम हैं । ये स्वयं प्रकाशमान, सबके क्लेशहर, सर्वेश्वर हैं । परम यशसे परिपूर्ण हिरण्यमयी इनकी दिव्यपुरी अपराजिता—अजेया, योद्धुमशक्या" अयोध्या है । इसीमें परात्पर श्रीराम विराजमान हैं । इनकी अपार महिमाका कौन वर्णन कर सकता है ।

श्रीरामका नाम, रूप, लीला और धाम—सभी परात्पर हैं । श्रीरामको पानेका एकमात्र साधन-भक्ति है । भगवान् स्वयं अपने श्रीमुखसे कहते हैं—

सोऽहं सर्वत्रगः शान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वरः ।
मया ततमिदं विश्वं जगदव्यक्तरूपिणा ॥
अहमेव हि सर्वेषां योगिनां गुरुरव्ययः ।
धार्मिकाणां च गोप्ताहं निहन्ता वेदविद्विषाम् ॥
अहं वै सर्वसंसारान्मोचको योगिनामिह ।
संसारहेतुरेवाहं सर्वसंसारवर्जितः ॥
अहं हि भगवानीशः स्वयंज्योतिः सनातनः ।
परमात्मा परं ब्रह्म मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते ॥
नाहं तपोभिर्विविधैर्न दानेन न चेज्यया ।
शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम् ॥
(अद्भुतरामायण १२ । ७; १३ । १६-१७; १४ । ४७-४८; १३।२)

"हे वायुनन्दन ! मैं सर्वगत, शान्त, ज्ञानात्मा—अखण्ड ज्ञानस्वरूप परमेश्वर परमात्मा हूँ । मुझसे ही यह संसार व्याप्त है । मैं सभी योगियोंका अविनाशी गुरु, धर्मात्माओंका रक्षक और वेद-निन्दकोंका संहारक हूँ । योगी-यति, भक्त-ज्ञानी—सभीको मुक्ति देनेवाला मैं ही हूँ—

रघुपति बिमुख जतन कर कोरी । कवन सकइ भव बंधन छोरी ॥
(श्रीरामच० मा० १ । ११९ । ३)

"मैं ही संसारका कारण हूँ और संसारसे रहित भी हूँ । मैं ही भगवान् ईश्वर स्वयंज्योति सनातन परमात्मा हूँ, परब्रह्म हूँ । मुझसे अन्य कुछ भी नहीं है । हे हनुमान् ! मैं नाना प्रकारके तपोंसे, दान एवं यज्ञादिसे नहीं जाना जा सकता—नहीं प्राप्त होता । मेरी प्राप्ति करानेमें मेरी अनन्य भक्ति ही साधन है ।"



श्रीरामका स्वरूप

[लेखक—डॉ० सत्यनारायणजी शर्मा, एम्० ए०, (हिंदी एवं संस्कृत,) पी-एच्० डी०, साहित्याचार्य, साहित्यरत्न]

श्रीरामके स्वरूपको समझनेके लिये प्राचीन ग्रन्थोंके अनुसार ईश्वरके अस्तित्व एवं स्वरूपका थोड़ा विवेचन कर लेना आवश्यक है। यों तो विश्वके प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेदमें अनेक देवताओंका वर्णन है; परंतु उनमें तीन प्रधान हैं—अग्नि, इन्द्र और सूर्य। यथार्थतः ये भी एक ही परब्रह्मके भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। इस बातका प्रमाण ऋग्वेदका 'पुरुषसूक्त' है। इस सूक्तके पहले मन्त्रमें पुरुष अर्थात् ईश्वरको सहस्र सिरों, सहस्र चक्षुओं एवं सहस्र चरणोंवाला कहा गया है और उसको इस समग्र ब्रह्माण्डको चारों ओरसे व्याप्त करके दस अंगुल ऊपर उठा हुआ भी बतलाया गया है।[1] दूसरे मन्त्रमें स्पष्ट उद्घोष है कि जो कुछ होनेवाला है, हुआ है और है, वह सब पुरुष या ईश्वर ही है। तीसरे मन्त्रमें इस सारे ब्रह्माण्डसे भी उसकी महिमा बड़ी कही गयी है। चौथे मन्त्रमें उसे ही सारे ब्रह्माण्डमें चेतन और अचेतन प्राणियों और वस्तुओंमें व्याप्त होनेवाला कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि सर्वव्यापी, सबका कारण एवं सबसे परे ब्रह्म एक ही है और सारे देवता उसके अङ्ग एवं उपाङ्ग हैं।[2]

ऋग्वेदके एक अन्य महत्त्वपूर्ण देवता भगवान् विष्णु भी हैं। इनका वर्णन बहुत थोड़े मन्त्रोंमें हुआ है, पर उन्हीं मन्त्रोंसे उनकी सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित होती है। विष्णुके द्वारा अपने चरणोंसे सारे ब्रह्माण्डको छिपा लेने एवं परिक्रमा करनेकी बात कही गयी है।[3] उन्हें समस्त संसारका रक्षक बतलाया गया है और यह भी कहा गया है कि उनपर आघात करनेवाला कोई नहीं है।[4] आगे सूक्त १५४में विष्णुके द्वारा तीनों लोकोंको तीन डगोंमें मापनेकी चर्चा की गयी है और उन्हें लाभ-हीन तथा अकेले ही धातुत्रय अर्थात् पृथ्वी, द्युलोक एवं समस्त भुवनोंको धारण करनेवाला कहा गया है।[5] वे स्वर्गदर्शी, नित्य तरुण, सबके पालक एवं शत्रुरहित हैं।[6] साथ ही वे प्राचीन, मेधावी, नित्य नवीन, स्वयम्भू, इन्द्रसखा एवं तीनों लोकोंमें सर्वाधिक पराक्रमशील भी हैं।[7]

वस्तुतः 'विष्णु' शब्द 'विष्लृ' धातुसे बना है, जिसका अर्थ होता है—सर्वत्र व्याप्त होना। अतः विष्णु यथार्थमें वे ही हैं, जिन्हें ऋग्वेदमें 'पुरुष' कहा गया है। इन्द्र, अग्नि, सूर्य, वरुण आदि जितने वैदिक देवता हैं, सब उसी पुरुष या विष्णुके अङ्गोपाङ्ग हैं।[8]

निर्गुण एवं निरञ्जन परब्रह्मके जो तीन सगुण स्वरूप माने गये, वे हैं—ब्रह्मा अर्थात् सृष्टिकर्ता, विष्णु अर्थात् पालनकर्ता और रुद्र या शिव अर्थात् संहारकर्ता। पौराणिक युगमें प्रधानतया इन्हींका पूजन होता रहा। इनमें भी विष्णु तथा शिवका विशेषरूपसे पूजन हुआ, जिनके अनुयायी क्रमशः वैष्णव तथा शैव कहलाये।

पुरुष, ब्रह्म या ईश्वरके दो रूप स्वीकार किये गये हैं—'निर्गुण' और 'सगुण'। निर्गुण और सगुणका विवेचन बड़ा ही कठिन है। वस्तुतः ब्रह्म, विष्णु या पुरुषका तात्त्विक स्वरूप हमारी इन्द्रियोंसे अग्राह्य है। इसलिये वह अव्यक्त, अगोचर एवं निर्गुण है। उसका दूसरा स्वरूप, जो अखिल ब्रह्माण्डमें व्याप्त तथा उससे परे है, वह हमारी इन्द्रियोंद्वारा ग्राह्य है। अतएव सगुण है। इस प्रकार ब्रह्म निर्गुण भी है और सगुण भी है।

इस निर्गुण-सगुण ब्रह्मका किसी-न-किसी प्राणीके रूपमें अवतीर्ण होनेका वर्णन हिंदू धर्मशास्त्रोंमें अत्यन्त प्राचीन कालसे चला आ रहा है। वेदोंमें भगवान् विष्णुके द्वारा तीन ही डगोंमें समग्र ब्रह्माण्डके नापे जानेकी कथा प्रसिद्ध है,[9] जो वामनावतारका आधार है। यों तो अवतारोंकी संख्या चौबीस है,[10] पर प्रमुख अवतार दस ही माने गये हैं।[11] विष्णुके दशावतारों—

१. ऋग्वेद, म० १०, सूक्त ९०, मन्त्र १।

२. वही, म० १, सू० १६४, मन्त्र ४६।

३. वही, म० १, सू० २२, मं० १७।

४. ऋग्वेद, म० १, सू० २२, मं० १८।

५. वही, म० १, सू० १५४, मं० १, ४।

६. वही, म० १, सू० १५५, मं० ४-६।

७. वही, म० १, सू० १५६, मं० २, ५।

८. यजुर्वेद, अ० ३२, मं० १-२।

९. ऋग्वेद, म० ६, सू० १५५, मन्त्र ४।

१०. श्रीमद्भागवत, स्कन्ध २, अध्याय ७, श्लो० १—३८।

११. वही, स्कन्ध ११, अ० ४, श्लो० १८—२३।

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्किश्च ते दश ॥

—की कथा पुराणोंमें चिरकालसे वर्णित होती रही है, जिसे पीछेके कवियोंने भी स्वीकार कर लिया है। इस प्रकारके अवतारवादका स्पष्ट रूपसे उल्लेख भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें किया है।[12] गीताका तो इस सम्बन्धमें यहाँतक कथन है कि 'जो पुरुष भगवान्‌के दिव्य जन्म एवं दिव्य कर्मको जान लेता है, वह शरीर त्यागकर उनसे मिल जाता है और फिर जन्म नहीं लेता।'[13]

अब प्रश्न यह है कि तुलसीके श्रीराम किसके अवतार हैं? वे ब्रह्म, पुरुष या विष्णुके अवतार हैं अथवा स्वयं परात्पर ब्रह्म हैं? वस्तुतः ब्रह्म, पुरुष या विष्णुकी जो महिमा बतलायी गयी है, उसपर विचार करते हुए उन तीनोंको एक ही तत्त्वके भिन्न-भिन्न नाम स्वीकार करना पड़ता है। यथार्थमें तुलसीने भी अपने रामको उपर्युक्त ब्रह्म, पुरुष या विष्णुका स्वरूप ही माना है। जिस तरह प्राचीन शास्त्रोंके अनुसार ब्रह्म, पुरुष या विष्णुसे बड़ा कोई देव नहीं है, उसी तरह तुलसीके अनुसार श्रीरामसे बड़ा कोई देव नहीं है। अतः तुलसीके श्रीराम भी ब्रह्म, पुरुष या विष्णुसे भिन्न नहीं हैं। अध्यात्मरामायणकारने भी दाशरथि रामको विष्णुका ही अवतार माना है।[14] आदिकाव्यमें आदिकविने उन्हें विष्णुका अंशावतार बतलाया है।[15] श्रीमद्भागवतमें भी उन्हें साक्षात् ब्रह्ममय हरिका अंशावतार कहा गया है।[16] यहाँ 'हरि' शब्दका अर्थ विष्णु लेनेसे भागवतके अनुसार भी श्रीराम विष्णुके ही अवतार सिद्ध होते हैं।[17]

श्रीरामचरितमानसमें तुलसीने श्रीरामको कहीं-कहीं तो अनादि ब्रह्म माना है और कहींपर उन्हें हरि या विष्णुका अवतार घोषित किया है। यदि इतना ही होता तो इस सम्बन्धमें विवादकी कोई आवश्यकता नहीं होती। उन्होंने कहीं-कहीं ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन सबको श्रीरामसे पृथक् तथा उनका सेवक भी बतलाया है। निम्नाङ्कित स्थलोंमें तुलसीने श्रीरामको परब्रह्मरूपमें स्वीकार किया है—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद ॥
(मा० १। १९८)

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा ॥
सकल बिकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा ॥
(मा० २। ९२। ४)

निर्गुण सगुण विषम सम रूपं। ज्ञान गिरा गोतीतमनूपं ॥
अमलमखिलमनवद्यमपारं। नौमि राम भंजन महि भारं ॥
(मा० ३। १०। ६)

तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु ॥
(मा० ४। २५। ६)

बिस्वरूप रघुबंसमनि करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु ॥
(मा० ६। १४)

सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज बिग्यान रूप बल धामा ॥
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ॥
(मा० ७। ७१। २, ४)

इसी प्रकार कहीं-कहीं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें श्रीरामको उन्होंने विष्णुका अवतार भी माना है। सर्वप्रथम पार्वतीके पूछनेपर शिवने भिन्न-भिन्न कल्पोंमें अवतारके जो कारण बतलाये हैं, उनमेंसे तीन कल्पोंमें श्रीरामको विष्णुका अवतार कहा गया है।[18]

स्वयं तुलसीने श्रीरामको विष्णुके अवतारोंके बीच परिगणित किया है—

जबहिं त्रिबिक्रम भए खरारी।
(मा० ४। २८। ४)

अतिबल मधु कैटभ जेहिं मारे। महाबीर दितिसुत संघारे ॥
जेहिं बलि बाँधि सहस भुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महि भारा ॥
(मा० ६। ६। ४)

मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम बपु धरी ॥
जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो। नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो ॥
(मा० ६। १०९। ४)

---

१२. गीता, अ० ४, श्लो० ६—८; अ० १०, श्लो० ४१।
१३. गीता, अ० ४, श्लो० ८।
१४. अध्यात्मरामायण, बालकाण्ड, सर्ग २ श्लोक २८-२९।
१५. वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड; सर्ग १५, श्लोक २८—३०।
१६. श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ९, अ० १०, श्लोक २।
१७. यों तो 'हरि' का पर्यायवाची शब्द विष्णु है ही, किंतु 'ब्रह्म' तथा 'हरि' शब्द रामके लिये भी श्रीमद्भागवत स्कन्ध ९, अ० १०, श्लोक, २ में एक साथ ही व्यवहृत भी हुए हैं।
१८. मा० १। १२१। १। १२३। ३

कहीं-कहींपर श्रीरामके लिये विष्णुसे सम्बन्धित विशेषणों या सम्बोधनों—जैसे रमानिवास[19], रमेश[20], श्रीरमण[21], रमारमण[22], रमानाथ[23], इन्दिरापति[24], श्रीपति[25] आदिका अथवा स्पष्टतया 'हरि' या 'विष्णु' शब्दका प्रयोग किया गया है—

तेहि अवसर भंजन महि भारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा॥
(मा० १। ४७। ४)

बिष्नु जो सुर हित नर तनु धारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी॥
(मा० १। ५०। १)

भुजबल बिस्व जितब तुम्ह जहिआ। धरिहहिं बिष्नु मनुज तनु तहिआ॥
(मा० १। १३८। ३)

कहीं-कहींपर विष्णुके द्वारा किये गये कार्योंका कर्त्ता श्रीरामको ही माना गया है—

जेहिं पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी।
सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी॥
(मा० १। २१०। छन्द ४)

हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान।
जेहिं मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान॥
(मा० ६। ४८ (क))

कहीं-कहींपर श्रीरामके रूप-वर्णनके क्रममें विष्णुके शरीर तथा उसपर रहनेवाले आभूषणों एवं चिह्नोंका स्पष्ट उल्लेख मिलता है—

कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप समाजा॥
उर श्रीबत्स रुचिर बनमाला। पदिक हार भूषन मनिजाला॥
(मा० १। १४६। ३)

रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे॥
उर मनिहार पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा॥
(मा० १। १९८। २,३)

भगवान् श्रीरामके अवतारके लिये ब्रह्मा, शिव एवं अन्य देव सम्मिलितरूपमें प्रयत्नशील हैं, पर उनके बीच विष्णु उपस्थित नहीं हैं। जब सब देवता बैठकर विचार करने लगते हैं कि प्रभुको कहाँ प्राप्त किया जाय, तब कोई वैकुण्ठलोकमें जानेका प्रस्ताव रखता है और कोई कहता है कि वे ही प्रभु क्षीरसमुद्रमें निवास करते हैं। यहाँ वैकुण्ठ और क्षीरसमुद्रसे विष्णुकी ओर ही इङ्गित किया जा रहा है। वहींपर ब्रह्मा जिन 'सुर नायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता' की 'जय-जय' कर रहे हैं, वे 'सिंधु सुता प्रिय कंता' के अतिरिक्त और कोई नहीं हैं।[26] वे श्रीरामरूपमें भी कौसल्याके समक्ष 'निज आयुध भुज चारी' के साथ ही प्रकट होते हैं और उस समय माता कौसल्या भी उस 'जन अनुरागी' को 'श्रीकंता' शब्दसे ही अभिहित करती हैं। श्रीरामके प्रकट होनेके बाद उनके रूपका जो वर्णन है, वह निर्विवादरूपसे विष्णुभगवान्‌का ही परम्परागत रूप है।[27] इसी तरह रावण-वधके पश्चात् ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि देवगण तो श्रीरामके समक्ष उपस्थित होकर उनकी स्तुति करते हैं; पर फिर वहाँ विष्णु अनुपस्थित हैं। तुलसीने उपर्युक्त दोनों प्रकरणोंमें कदाचित् इसीलिये विष्णुको उपस्थित नहीं किया; प्रथम प्रकरणमें तो उन्हें ही श्रीरामरूपमें अवतरित होना है और दूसरे प्रकरणमें उन्होंने श्रीरामरूपमें अवतरित होकर रावणका वध किया ही है। अतः दोनों प्रकरणोंमें विष्णुकी अनुपस्थिति राम और विष्णुका तादात्म्यसूचक है।

तुलसीदासजीने जो नारद-कथा लिखी है, उससे स्पष्ट होता है कि श्रीराम विष्णुके ही अवतार हैं। शंकरके मना करनेपर भी नारदजी अपनी काम-विजय-गाथा क्षीरसमुद्रमें भगवान् विष्णुसे निवेदन करने गये थे। वे उन्हींकी मायासे रचित विश्वमोहिनी नामक राजकुमारीपर आसक्त हुए थे। उन्हींकी लीलासे वे अपने उद्देश्यमें असफल हुए थे और अन्ततः क्रुद्ध होकर उन्हें मनुष्य होनेका अभिशाप भी दिया था।[28] पुनः उन्हीं विष्णुके अवतार श्रीरामसे उन्होंने अरण्यमें अपने विवाहकी असफलताका कारण पूछा था।[29] इससे सुस्पष्ट है कि उस कल्पके श्रीराम विष्णुके ही अवतार थे। इसी तरह सुतीक्ष्णकी ध्यानमग्नताके प्रसङ्गसे भी यह प्रकट होता है कि उनके इष्टदेव द्विभुज राम और चतुर्भुज विष्णु

१९. मा० ६। ११२। ८ के बादका छं० १; ७। २७। १; ७। ८३ (क)।
२०. मा० ७। १२। छं० ४; ७। १३। छं० १।
२१. मा० ७। १३। छं० १०।
२२. मा० २। २७२। ३; ७। १३। छं० १।
२३. मा० ७। २९।
२४. मा० ३। ३। ६।
२५. मा० १। ५०। १; १। १२८। ४।
२६. मा० १। १८५। छं० १।
२७. मा० १। १९१। छं० १-२।
२८. मा० १। १३६। ३।
२९. मा० ३। ४२। १-२।

यथार्थतः एक ही तत्त्व हैं।[30] तुलसीने यत्र-तत्र राम-भक्तोंको प्रायः विष्णु-भक्त भी कह दिया है।[31] इससे भी सिद्ध है कि वे राम और विष्णुमें कोई अन्तर नहीं मानते।

उपर्युक्त तथ्योंसे ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसीके श्रीराम परब्रह्म एवं विष्णु दोनोंके ही अवतार हैं। यथार्थतः प्राचीन वैदिक दृष्टिमें यह बात असंगत भी नहीं है। कारण यह है कि परब्रह्म, पुरुष या विष्णुमें वेदोंने कोई अन्तर नहीं माना है। परंतु तुलसीने कहीं-कहीं श्रीरामको विष्णुसे पृथक् उनके वन्दनीय तथा उनको नचानेवाला भी कहा है—

संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥
(मा० १। १४३। ३)

सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। बिधि हरि हर बंदित पद रेनू॥
(मा० १। १४५। १)

हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥
(मा० १। ३१६। २)

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥
(मा० २। १२६। १)

जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
(मा० ५। २०। ३)

बिष्नु कोटि सम पालन कर्ता।
(मा० ७। ९१। ३)

हरिहि हरिता, बिधिहि बिधिता, सिवहि सिवता जो दई।
सोइ जानकी पति मधुर मूरति, मोदमय मंगल मई॥
(विनय-पत्रिका, पद १३५, छंद ३ की अन्तिम पंक्तियाँ)

ऐसी स्थितिमें यह संदेह होना स्वाभाविक है कि आखिर उनके राम किसके अवतार हैं? गोस्वामीजीने कतिपय स्थलोंपर राम और विष्णुमें जो इस प्रकार भिन्नता प्रदर्शित की है, इसका प्रमुख कारण यह है कि उनके युगमें या उनसे कुछ पूर्व कबीर आदि निर्गुणवादी संतोंने दाशरथि रामको सामान्य मनुष्य सिद्ध करनेका प्रयत्न किया था। वे सगुणवादको निरर्थक, असत्य एवं उपहसनीय प्रमाणित करना चाहते थे। उनके इस प्रयत्नसे हिंदुओंके वेद-शास्त्र-पुराणानुमोदित भागवत-धर्मपर आघात पहुँचता था। इसीलिये सूर और तुलसी-जैसे सगुण-ब्रह्मवादी संत निर्गुण-ब्रह्मवादी संतोंकी विचारधाराओंका खण्डन करनेके लिये तत्पर हुए। यही कारण है कि तुलसीके समक्ष जब यह शङ्का प्रकट की जाती थी कि दाशरथि राम मनुष्य हैं अथवा परब्रह्म, तो वे आवेशमें आ जाते थे।[32] सूरदास इस प्रकारके आवेशमें तो नहीं आते थे, पर निर्गुण-ब्रह्मवादियोंसे इस सम्बन्धमें वे बड़ी मीठी चुटकी लेते थे।[33] कबीर-जैसे निर्गुण-ब्रह्मवादीका कथन था—

दशरथ सुत तिहु लोकहिं जाना। राम नामका मरम है आना॥[34]

साथ ही वे अपने रामको सभी देवी-देवताओंसे बड़ा और निर्गुण मानते थे। तुलसीदासने इसीलिये दाशरथि रामको निर्गुण एवं परात्पर ब्रह्मका भी अवतार स्वीकार किया और पौराणिक परम्पराओंका निर्वाह करनेके लिये उन्हें विष्णुका भी अवतार माना। विष्णुसे श्रीरामको बड़ा माननेका एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि श्रीराम तुलसीके इष्टदेव थे। आराधकके लिये आराध्यसे बढ़कर महान् कोई अन्य नहीं होता। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्[35]॥

अर्थात् 'जो भक्त जिस रूपकी अर्थात् देवताकी श्रद्धासे उपासना करना चाहता है, उसकी श्रद्धाको मैं उसीमें स्थिर कर देता हूँ।'[36] गीताके इस सिद्धान्तका प्रमाण तुलसीकी श्रीरामोपासनामें अत्यन्त स्पष्ट है।

---

३०. मा० ३। ९। ९।
३१. मा० १। १२३। ३; १। १७५। ३।
३२. मा० १। ११३। ४; १। ११४।
३३. सूरसागर, दशम स्कन्ध, पद ३६३१, पद ३९२८-३९२९।
३४. बीजक, पृष्ठ २७९, पद १०९, पंक्ति २।
३५. गीता ७। २१।
३६. तिलककृत 'गीतारहस्य', पृ० ७६६।

पुरुषोत्तम श्रीराम

(लेखक—स्वामी श्रीपुरुषोत्तमानन्दजी अवधूत)

भगवान् श्रीरामचन्द्र मर्यादापुरुषोत्तम हैं। आदिकवि महामुनि वाल्मीकिने उनकी जीवनकथाको अपनी अनुपम तूलिकासे चित्रित किया है। महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीने भी श्रीरामचरित्रको लिपिबद्ध किया है। परंतु दोनोंके दृष्टिकोण (Angle of vision) पृथक् हैं। वेदव्यासजीके श्रीरामचन्द्रजी पुरुषोत्तम हैं। जहाँ तत्त्व, जीवन और तत्त्वप्रचार अपूर्व रससे समन्वित हैं, वे ही 'पुरुषोत्तम' हैं। पुरुषोत्तम अपने जीवनके आस्वादक और प्रचारक दोनों ही हैं। पुरुषोत्तम एक ऐसी दिव्य वस्तु है, जिसके जीवनमें समन्वित हैं जीवनकी परिपूर्ण समस्त दिशाएँ, जीवनका सत्य व्याख्यानमय दार्शनिक विश्लेषण तथा आस्वादन और विश्वजीवनमें उसकी योग्यता एवं प्रयोगकौशलको वितरण कर देनेयोग्य सामर्थ्य। श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥

(१५ । १८)

'इसीलिये मैं लोक और वेदमें पुरुषोत्तमके नामसे प्रसिद्ध हूँ।' वैदिक ब्रह्म-वस्तु जिस कौशलसे लौकिक वास्तव जगत्के कर्म-क्षेत्रोंके लिये उपयोगी लीलाका विस्तार करती है और उस लीलाको अपनाकर जीवनको विकसित कर देनेवाला योग या कौशल जीवको सिखा देती है, इस प्रकारकी कुशलता जिसके अधीन है, वे ही लोकप्रथित और वेदप्रथित 'पुरुषोत्तम' हैं। श्रीरामचन्द्रजी ऐसे ही पुरुषोत्तम हैं। रामायणके 'राम' जिस योगसे जीवनके समस्त स्तरोंमें प्राण-प्रियतमरूपसे अपने हो सकते हैं, उसी योगके द्वारा भागवतके 'राम' विश्वप्राण और प्राणाराम श्रीराम हैं। भक्तिवादके द्वारा ही रामायणके 'राम' भागवतके 'राम' हो गये हैं। 'रामभजन' भागवतका ही दान है। अवश्य ही रामलीलाका प्रचार वाल्मीकिका दान है, परंतु जगत्के हृदयपर रामलीला-की स्थापना करनेमें 'रामभजन' ही समर्थ है। भागवतके इस आदर्शको हृदयमें रखकर ही परमभागवत गोस्वामी तुलसीदास-जी महाराजने 'रामचरितमानस' रूप अपूर्व ग्रन्थकी रचना की। रामचरितमानस एक ही साथ दर्शनशास्त्र, लीला-रसशास्त्र और काव्य है। इसकी कहीं तुलना नहीं है। रामायणके 'राम' भावके भगवान् हैं, रामचरितमानसके 'राम' लीलारसनायक और भक्तके जीवन-धन हैं।

भक्तके 'राम' (ब्रह्म और परमात्मा होते हुए भी) 'मानुष' हैं। मानुष 'राम' ब्रह्म 'राम'से अधिक हैं, परमात्मा रामसे भी अधिक हैं। दार्शनिक क्रमोन्नतिके प्रत्येक स्तरमें हमने सारे तत्त्वोंको लाँघकर 'मानुष'के स्तरमें पहुँचनेपर टेढ़े-मेढ़े समग्र जीवनकी एक परिपूर्ण व्याख्या प्राप्त की है। भक्तिवाद एक ऐसी वस्तु है, जिसके अंदर अतीतके समस्त वाद हजम हो गये हैं। 'मानुष' विश्वके सबसे आखिरी प्रश्नका मूर्तिमान् समाधान है। बंगालके वैष्णवकवि चण्डीदासने गाया है—

सबार ऊपर 'मानुष', सत्य इहार 'अधिक' नाई।

ब्रह्मतत्त्वमें विश्वकी समस्त घटनाओं (Phenomena) की एक निषेधात्मक (Negative) व्याख्या है, वहाँ कोई स्थापनात्मक (Positive) व्याख्या नहीं मिलती। परमात्मतत्त्वमें कुछ स्थापनात्मक व्याख्या मिलती है; परंतु भक्तितत्त्वमें, पुरुषोत्तम वस्तुमें, मनुष्यमें प्राप्त हुई है विश्वकी परिपूर्ण (सोलह आना) व्याख्या।

कृष्णेर यतेक लीला, सर्वोत्तम नरलीला।
नरवपु ताहारइ स्वरूप।

पुरुषोत्तमकी मानुषी तनु सबकी अपेक्षा 'अधिक' है।

'मानुष' ही विश्वका श्रेष्ठ स्रष्टा है। मानुषको श्रेष्ठ स्रष्टाके आसनपर बैठाकर जो विश्वव्याख्यान करनेका सामर्थ्य रखते हैं, वे ही हैं—'भागवत'। गोस्वामी तुलसीदासजी ऐसे ही एक भागवत हैं। और जिन एकके आश्रयमें समस्त विश्वकी व्याख्या हो सकती हो, वे ही हैं पुरुष—पुरुषोत्तम, 'मानुष'; ऐसे ही 'मानुष' हैं 'श्रीराम'।

इन पुरुषोत्तम 'मानुष'के जीवनमें कोष्ठक-विभाग (Water-tight compartment) नहीं है। ये एक ही साथ कर्मी, ज्ञानी और भक्त हैं। सगुण-निर्गुण, संसारी-संन्यासी, भक्त-समाजसुधारक-राजनीतिज्ञ, पिता-पुत्र-सखा और प्रजा-राजा हैं। वे भक्तिके विषय भी हैं और आश्रय

भी। ये देव-असुर—सब कुछ हैं, ये कलाविद् (Artist) हैं, दार्शनिक (Philosopher) हैं। ये इस संसारके हैं और इस संसारके उस पारके भी हैं। ये ही समस्त क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ हैं। ऐसे ही एक पुरुषोत्तम 'मानुष'का आश्रय लेकर तुलसीदास-जीने समस्त भारतवर्षको एक अखण्ड भागवत राज्यमें परिणत कर देनेके उद्देश्यसे 'श्रीरामचरितमानस'रूपी शक्तिकी अवतारणा की। 'राम'के जीवनके केवल तत्त्वज्ञान ही सत्य नहीं हैं, 'राम'के जीवनमें 'नाम' भी सत्य है। वह निर्गुण-सगुण दोनोंकी अपेक्षा सत्य है—यही तुलसीदासजीका दान है। 'नाम' वस्तु सगुण-निर्गुण दोनोंसे 'अधिक' (Transcendental) है, इस प्रकार कहनेका साहस भक्तके सिवा और किसका हो सकता है।

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरें मत बड़ नामु दुहू तें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥
(श्रीरामच० मा० १। २२। १)

मायावादने 'नाम-रूप'की व्याख्या न कर सकनेपर कह दिया—'नाम-रूप मिथ्या है।' भक्तिवादने इसका तीव्र प्रतिवाद करके कहा—'नाम ब्रह्मका ही स्वरूप है, बल्कि नाम नामीसे भी बड़ा है। 'कहउँ नामु बड़ राम ते (वही, १। २३)—नाम रामसे भी बड़ा है, मैं यह कहता हूँ।'

नाम-रूपात्मक इस जगत्को जो ब्रह्मकी तरह ही (ब्रह्मरूपसे ही) सत्य सिद्ध करनेके लिये जगत्में अवतीर्ण होते हैं, वे ही हैं पुरुषोत्तम। पुरुषोत्तममें ब्रह्म सत्य है, जगत् भी सत्य है। मायावादमें 'ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है।' परंतु मानुष 'राम' सर्वगुणसमन्वित निर्गुण हैं, सर्वविशेषयुक्त निर्विशेष हैं। ऐसे ही श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें भारतवर्षका निर्माण होगा। जो लोग नाम-रूपात्मिका प्रकृतिके भयसे भागकर प्रकृतिके उस पार कैवल्यके अंदर शान्तिलाभ करनेके लिये व्याकुल हैं, श्रीरामजीकी लीला मानो उनका मार्ग रोककर खड़ी है। प्रकृतिकी युद्ध-घोषणा (Challenge) को स्वीकार करके जो एक पैंड भी विचलित न होकर अच्युतरूपसे खड़े रहनेका साहस और सामर्थ्य रखते हैं, वे ही वीर हैं, वे ही पुरुष हैं। जो प्रकृति-के भयसे भीत हैं, प्रकृतिके नाम-रूपको लेकर रमण करते जिनका कलेजा काँपता है, वे 'राम-तत्त्व'को नहीं समझ सकते। 'राम-तत्त्व' उनके लिये नहीं है। जो रमण करते हैं, वे ही 'राम' हैं। प्रकृतिके समस्त स्तरोंमें, सम्पूर्ण अङ्गोंमें रमण करनेपर भी अनङ्ग जिनका स्पर्श नहीं कर सकता, वे ही राम, सीताराम या श्रीराम हैं और सीता परा प्रकृति हैं। प्रकृतिकी यह घोषणा थी—

यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति॥
(श्रीदुर्गा० ५। १२०)

'जो मुझको संग्राममें जीत सकेगा, जो मेरा दर्प चूर्ण करेगा, जो मेरा प्रतिबली होगा, वही मेरा भर्ता होगा।' विश्वके वक्षःस्थलपर ऐसे दो ही 'पुरुष' हुए हैं, जो प्रकृतिके सम्पूर्ण स्तरोंमें स्वच्छन्द विचरण करनेका अनन्त साहस रखते हैं और जिनके चरणतलोंपर स्वयं मदन मोहित है; वे हैं 'श्रीराम' और 'श्रीकृष्ण'। प्रकृतिके वक्षःस्थलपर रमण करनेका दुर्जय और अनन्त साहस 'श्रीराम' और 'श्रीकृष्ण'-के अतिरिक्त और किसमें है? श्रीराम ही वास्तवमें सत्य जगन्नाथ हैं और श्रीकृष्ण ही पुरुषोत्तम भर्ता हैं। प्रकृतिके सारे तूफानोंमें, सम्पूर्ण युद्धोंमें वेदान्तमय जीवन बनाये रखनेका दृष्टान्त दिखाया है पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीने। जगत्के और उस पारके निर्मल वैकुण्ठधामके अद्वैतवादको जटिलतामय युद्धके वक्षःस्थलपर स्थापित करनेकी सामर्थ्य रखनेवाले होनेसे ही 'श्रीराम' वीर हैं। जो ब्रह्मचारी प्रकृतिके भयसे अपनेको बचानेमें ही व्यस्त हैं, श्रीराम वैसे ब्रह्मचारी नहीं हैं। हमें आवश्यकता है आज सच्चे ब्रह्मचारी श्रीरामके जीवनकी। जो ब्रह्मचर्य सामनेसे हटकर मायाका पाश कटाना चाहता है, जो ब्रह्मचर्य प्रकृतिके प्रति विद्वेषका पोषण करनेमें ही प्रवृत्त है, वह ब्रह्मचर्य भारतवर्षकी वर्तमान समस्याका समाधान करनेमें असमर्थ है। उसने तो केवल जीवनको दबाया ही है। उसकी सारी चेष्टा जीवनयन्त्रकी गतिको धीमी करके स्थितिके बन्धनमें बाँध देनेकी ओर ही रही है। जीवनकी सम्पूर्ण दिशाएँ शक्तिसे भरपूर होकर भी उच्छृङ्खल न हो सकें, श्रीरामके जीवनमें विश्वने इसी बातको प्रत्यक्ष देखा है। हजारों वर्षोंसे भारतवर्ष उस उपदेशको नहीं जानता, जिसमें स्नायुयन्त्रको नहीं सूखने देकर संयमकी बात कही गयी है। बहुत दिनोंसे भारतवर्षको ब्रह्मचर्यका वह मार्ग नहीं मिला है, जिसमें शक्तिके स्पन्दनको रोकनेकी आवश्यकता न हो। आज श्रीरामके जीवनमें विश्व उसीको देखेगा। धनुर्धरत्व और योगेश्वरत्वके समन्वयमें ही वीर्य स्थिर होनेकी सम्भावना है। धनुर्हीन योग और योगहीन धनुःसे तो क्लैब्यकी ही सृष्टि होती है। आज प्राच्य धनुको खोकर 'योग', 'योग' करके क्लीव हो रहा है और

पाश्चात्त्य योगको न पाकर 'धनुः' 'धनुः' करके क्लीव हो गया है। इन दोनों क्लीव जातियोंके संधिस्थलमें खड़े होकर श्रीरामचन्द्र दोनोंको दोनोंके भीतर अनुप्राणित करके एक नूतन पुरुषोत्तम संस्कृतिकी सृष्टि करनेके लिये उपस्थित हैं। बोलो, 'जय जगदीश हरे!' धन्य रामलीला और धन्य रामभक्त तुलसीदास!

श्रीरामचन्द्र

(लेखक—श्रीप्रमोदकुमार चट्टोपाध्याय)

श्रीराम-तत्त्वका विचार करते समय पहले 'राम' शब्दका व्युत्पत्तिगत अर्थ देखना चाहिये। 'राम' शब्दको हम विराट् या विशालता-ज्ञापक रूपमें ही जानते और मानते हैं। नररूपमें त्रेतायुगमें जिन्होंने अवतार लिया था तथा अयोध्याधिपति महाराज दशरथके चार पुत्रोंमें जो ज्येष्ठ थे, उनमें विशेषता थी रूप और गुणको लेकर। वे पूर्ण वीर्यवान् और महाशक्तिशाली थे और रूपमें एक ज्योतिर्मय पुरुष थे।

उनका रूप अनुपम था और वे नव-दूर्वादलके समान श्याम-वर्ण थे। उस वर्णका कुछ परिचय है। बहुतोंकी धारणा है कि वह हरित या सब्ज रंगके थे, किंतु ऐसी बात नहीं थी। नव-दूर्वादलको ध्यानसे देखनेपर जान पड़ता है कि 'नव'का अर्थ है—सद्योजात; ऐसा दूर्वादल सब्ज तो बिल्कुल ही नहीं होता। असलमें वह वर्ण पीताभ-गौर है, अतएव उसे ईषत् श्याम या सब्जकी आभा कह सकते हैं। उनका वह वर्ण अपूर्व था, आधुनिक मानवकी कल्पनाके परे था। वे पूर्ण दैवशक्तिसम्पन्न थे, आत्मचैतन्यसे दीप्तिमान् थे। उनके दोनों नेत्र जिन्हें 'पद्मपलाश-लोचन' कहते हैं, ठीक वैसे ही थे।

श्रीरामकृष्ण परमहंसकी, जो कुछ दिन पहले इस संसारमें हमारे बीच थे, वाणीमें जो एक अति गम्भीर आत्म-चैतन्यकी अभिव्यक्ति थी, वह इस रामनामको लेकर ही थी। वे प्रतिदिन भोरमें उठकर भगवान्का नाम लेते थे। उसके बाद एक बार श्रीरामचन्द्रकी शरणागतिकी बात करते थे—जैसे 'हे राम! शरणागत, शरणागत!' श्रीरामचन्द्रकी शरणागतिसे मनुष्यके जीवनमें अशान्ति और दुर्दैवका नाश होता है और जीवन शान्तिपूर्ण बन जाता है—यह विश्वास उनके मनमें सदा बना रहा। श्रीरामचन्द्रजीके इस माहात्म्यको कम ही लोग जानते या उसपर विश्वास करते हैं।

श्रीरामचन्द्रकी विशिष्टता थी उनकी शान्त प्रकृति, असाधारण आत्मसंयमकी गम्भीरता और धैर्य। उनका गाम्भीर्य अनुपम था; कोई घटना कितनी ही गुरुतर क्यों न हो, किसी प्रकारसे उत्तेजित होना उनकी प्रकृतिके विरुद्ध था। कभी किसीने कहीं उनको उत्तेजित होते नहीं देखा। उनकी प्रकृति जैसी शान्त, स्थिर, धीर थी, वैसी ही नम्र भी थी। दया, सौजन्य और संयम उनके स्वभावकी विशिष्टता थे। वैसा स्वभाव किसी राजा या राजपुत्रमें कभी देखा नहीं गया।

राज्याभिषेकके बदले उनको चौदह वर्षके वनवास-के विधान तथा उससे समुद्भूत घटनाक्रमके विषयमें जब उन्होंने सुना, तब उसको तत्काल अङ्गीकार करनेमें तनिक भी बाधा उनके संयममें न पड़ी और उस विधानको मानो राज्याभिषेकके समान ही स्वाभाविक गुरुतर प्रयोजनयुक्त समझकर उन्होंने तनिक भी विलम्ब न किया। ऐसा दृढ़ उनका मानसिक गठन था। इससे बढ़कर आश्चर्यकी बात और क्या हो सकती है नर-शरीरधारी एक राजपुत्र, महाराज दशरथके पुत्र रामचन्द्रके पक्षमें। यहाँतक कि सीताको साथ ले जानेके प्रश्नको लेकर उनके माहात्म्यमें तनिक भी अन्तर नहीं आया।

आज यह बात हम सहज ही समझ सकते हैं कि नाना प्रकारके गुणोंसे विभूषित अनेकों राजा या राजपुत्र हो चुके थे, किंतु श्रीरामचन्द्रके समान राजा या राजपुत्र इस जगत्में दूसरा नहीं हुआ।

उनके हृदयमें आनन्द न था, ऐसी बात नहीं है; अथवा उनका आनन्द कुछ कम गम्भीर था, यह बात भी नहीं है। यहाँतक कि बहुधा उनको सभी सदानन्द-रूपमें जानते थे। परंतु उनका वह आनन्द आत्मसंयमके साथ अटूट भावमें जुड़ा हुआ था। जहाँ प्रिय-संगमका आनन्द था, वहाँ जो संयम दीख पड़ा, वही संयम जब वे शत्रुका संहार करनेके लिये, अमोघ अस्त्रका प्रयोग करनेके लिये, उद्यत होते

थे, उनके व्यवहारमें दीखता था। वे कैसे अद्भुत नर थे ! क्या अबतक कहीं भी उनके इन गुणोंकी तुलना पायी गयी है ? इसी एकमात्र नर-शरीरधारी महात्मा, भागवतसत्ताके सिवा अन्य किसी मानवका पता नहीं मिलता। ऐसा नाम दूसरा नहीं है और ऐसा मानव भी दूसरा नहीं हुआ। उनके-जैसा होना विरल ही नहीं, असम्भव है। असाधारण पुरुषार्थपरायण होनेके साथ ही वैसा दैवानुसारी जीवन और ऐश्वर्य किसी राज-परिवारमें नहीं देखा गया। वे विख्यात प्रजा-पालक थे, यह सत्य है; परंतु ऐसा चरित्रवान् राजा भी दूसरा नहीं हुआ। इस चरित्रके गुणसे ही वे विश्वके लिये प्रणम्य हो गये।

श्रीसीता-तत्त्व

(ब्रह्मीभूत पूज्यपाद श्रीश्रीभार्गव शिवरामकिंकर योगत्रयानन्द स्वामीजी महाराज)

इच्छाज्ञानक्रियाशक्तित्रयं यद्भावसाधनम्।
तद्ब्रह्मसत्तासामान्यं सीतातत्त्वमुपास्महे ॥*

वक्ता—रमा ! आज सीतानवमी है।

जिज्ञासु (रमा)—पञ्चाङ्गमें मैंने एक चित्र देखा है, जिसके नीचे लिखा है—'श्रीश्रीसीतानवमीव्रतम्।' दादा ! इस महीनेकी इस तिथिको सीतादेवीने जन्म ग्रहण किया था, क्या ! इसीसे इसका नाम 'सीतानवमी' पड़ा है ?

वक्ता—हाँ, आज ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी, सर्ववेदमयी, सर्वदेवमयी, सर्वलोकमयी, सर्वकीर्तिमयी, सर्वधर्ममयी, सर्वाधारकार्यकारणमयी, इच्छा-ज्ञानक्रियाशक्तिमयी,-विश्वमाता, महालक्ष्मी सीतादेवीके जगद्धितार्थ स्थूल-रूपमें पृथ्वीपर अवतरित होनेका दिन है। आजका दिन जगत्के लिये क्या ही आनन्दका है ! क्या ही सौभाग्यका है !! आज जगत्को विशुद्ध ज्ञान तथा भक्ति सिखानेके लिये, निखिल कोमल भावोंका विमल रूप दिखानेके लिये जगन्माताके इस दुःखमय मर्त्य-धाममें स्थूल रूपमें प्रकट होनेका दिन है। अहा ! किसी अवस्थामें भी जिनका चित्त सर्वाभिराम राम-रूपको छोड़कर अन्य किसी रूपमें गमन नहीं करता, जिनके चरित्रका स्मरण करनेपर पातिव्रत्यकी विमल छवि नेत्रोंके सामने नाचने लगती है; पृथिवीके अन्य किसी देशमें, किसी कालमें, कोई कवि जिनके आदर्श चरित्रकी पूर्ण छवि अपनी कल्पनारूपी तूलिकाद्वारा अङ्कित करनेमें समर्थ न हो सका; जिनके मातृभावकी उपमा नहीं, जिनके पातिव्रत्यकी तुलना नहीं, जिनके धैर्यकी सीमा नहीं, जिनकी कोमलताका दृष्टान्त नहीं; जिनकी विमल तेजस्विता अनुपमेय है; शरणागत भक्तोंपर जिनका प्रेम, दुःखितोंपर जिनकी करुणा अतुलनीय है; जिनका सुस्निग्ध, सोममय हृदय देखकर अग्निको भी शीतल होना पड़ा था;

* सीता-तत्त्व क्या है, यह उपर्युक्त श्लोकमें स्पष्टरूपसे बतलाया गया है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया—इस शक्ति-त्रयके स्वरूपज्ञानसे जो भाव विमल बुद्धि-दर्पणमें प्रतिफलित होता है, वह ब्रह्मसत्तासामान्य—वह अखण्ड सच्चिदानन्दमय ब्रह्मभाव ही 'सीतातत्त्व' है। सीतोपनिषद्में कहा गया है—'सीता सर्ववेदमयी हैं, सर्वदेवमयी हैं, सर्वलोकमयी हैं।' कहना न होगा कि 'सीता सर्ववेदमयी हैं' इस बातका यदि अभिप्राय जानना हो तो पहले वेदका स्वरूप जानना होगा। ऋगादि वेद-त्रय इच्छा-क्रिया-ज्ञान-शक्तिस्वरूप हैं। 'सीता' शब्दका उच्चारण करनेपर साधारणतः लोगोंके चित्तमें जो भाव उदय होता है, उस भावसे सीताको 'सर्ववेदमयी' समझना असम्भव है। 'सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता।' (सीतोपनिषद्), 'सीताको मूलप्रकृतिसंज्ञिता भगवती जानना'—सीतोपनिषद्की यह बात भी दुर्बोध्य वा अबोध्य है, इसमें भी संदेह नहीं।

'सा देवी त्रिविधा भवति शक्त्यात्मना—इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिः साक्षाच्छक्तिरिति।' (सीतोपनिषद्)। 'सीतादेवी शक्त्यात्मामें इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति तथा साक्षात्-शक्तिके भेदसे त्रिविधा हैं।' सीतोपनिषद्में सीतादेवी मूल,प्रकृति तथा प्रणवस्वरूपिणी कही गयी हैं—

मूलप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिः स्मृता।
प्रणवप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिरुच्यते॥ (सीतोपनिषद्)

सीतादेवीको मूल-प्रकृति वा प्रणवस्वरूपिणी कहनेसे ही यह सूचित होता है कि सीतादेवी सर्ववेदमयी हैं, इच्छा, क्रिया तथा ज्ञान—इस शक्तित्रयका तत्त्वज्ञान ही सीता-तत्त्वका प्रकाशक है। 'ज्ञान, क्रिया और इच्छा'—ये सत्त्व, रज और तम—इस गुणत्रयात्मिका प्रकृतिके ही कार्य हैं। 'अनवच्छिन्नानन्दः संसार इत्युच्यते। सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणा भवन्ति। तदुपरागेणेच्छा-क्रियाज्ञाननियमनेन गुणा वेदितव्या भवन्ति।' (महर्षि गार्ग्यप्रणीत प्रणववाद)।

जिनके समान तपस्विनी कोई त्रिलोकीमें भी नहीं है; जो कृपाकर जीवको यह सिखा गयी हैं कि परमात्माको पानेके लिये जीवको किस तरह साधना करनी पड़ती है, अज्ञानका नाश करनेके लिये किस प्रकारके कठोर तपश्चरणकी आवश्यकता है; जिन्होंने 'वेदवती'का रूप धारण किया था यह बतलानेके लिये कि जगत्स्वामीको स्वामिरूपमें प्राप्त करनेके लिये किस प्रकारकी साधना करनी पड़ती है; जिन्होंने विविध लीलाएँ की हैं यह समझानेके लिये कि वेदके आश्रयसे च्युत हो जानेपर शास्त्रकी कैसी दुर्गति होती है, वेदसे छूटा हुआ शास्त्र और रामसे छूटी हुई सीता एक ही चीज है; जिन्होंने जगत्को यह स्पष्टरूपसे सिखा दिया है कि ऐश्वर्यमदोन्मत्त, कामोपहत, अविवेकीकी कैसी दुर्दशा होती है; जिनकी कृपासे मृत जीवित हुए, उन सर्वविद्याशरीरिणी सीतादेवीके पृथ्वीपर स्थूलरूपमें अवतरण-का आज शुभ दिन है।

जिज्ञासु (रमा)—आपने कहा है—सीतादेवी सर्ववेदमयी हैं, सीतादेवी सर्वदेवमयी हैं। आपकी इन बातोंका अर्थ क्या है? 'वेद' क्या है सो तो मैं नहीं जानती। सुना है, स्त्रीजातिको वेदका अधिकार नहीं है। दादा! जिनको वेदका अधिकार नहीं, वे कैसे सीतादेवीको जान सकेंगे? दादा! स्त्रियोंको वेदका अधिकार क्यों नहीं है? जगन्माताने तो स्त्रीरूपमें ही अपना विग्रह प्रकट किया है, वेदवती-रूप तो स्त्री-रूप ही है, तो फिर वेदका अधिकार स्त्रियोंको क्यों नहीं रहेगा? जो सर्वशक्तिमयी हैं, क्या वह अनधिकारीको अधिकारी नहीं बना सकतीं?

वक्ता—रमा! तुम्हारा प्रश्न बड़ा सुन्दर है। मैं आगे चलकर तुम्हारे इस प्रश्नका विशदरूपसे समाधान कर दूँगा। यहाँ संक्षेपमें कुछ कहता हूँ, सावधान होकर सुनो। यहाँपर मैं पहले ही यह कह रखता हूँ कि सीतादेवी केवल वेदमयी ही नहीं हैं, बल्कि सर्वशास्त्रमयी भी हैं, पुराण, इतिहास (जिनमें स्त्रियोंका भी अधिकार है, जो वेदकी ही सरल तथा मधुर व्याख्या हैं) तथा दर्शन इत्यादि सब विद्याएँ अनुग्रहशक्तिस्वरूपिणी सीतादेवीके ही रूप हैं।

× × × ×

सीतादेवी वेद-शास्त्रमयी हैं। यदि तुम उनके शरणागत हो सको, यदि सर्वान्तःकरणसे, सरल भावसे इस प्रकार उनके प्रति आत्मनिवेदन कर सको कि 'माँ! मैं अपराधोंका घर हूँ, मैं अकिंचन हूँ, मैं अगति हूँ, तुम मेरी उपायस्वरूप बनो; तुम सबकी आश्रय हो, मेरी भी आश्रय बनो, मुझको अपने सर्वाधार चरणोंमें ग्रहण करो' तो तुम कृतार्थ हो जाओगी। जो इस तरहसे सीतादेवीके चरणोंमें प्रपन्न हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं कि उनके सारे अभाव विनष्ट हो जाते हैं, सब प्रकारके तप केवल इसी एक बातसे उनके लिये पूर्ण हो जाते हैं। उन्हें उसी क्षण सब तीर्थोंमें भ्रमण करने, सब प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करने और सब तरहके दान देने आदि धर्माचरणोंकी फल-प्राप्ति हो जाती है, मोक्ष उनके करतलगत हो जाता है।*

जिज्ञासु—(रमा)—'सीतादेवी वेदशास्त्रमयी हैं'—इस वाक्यका क्या अर्थ है? 'वेद' क्या है, 'शास्त्र' क्या है, यह तो मैं ठीक-ठीक नहीं जानती। इस सम्बन्धमें मेरी तो यही धारणा है कि 'वेद' और 'शास्त्र' ग्रन्थविशेषके नाम हैं। और मैं यह भी जानती हूँ कि सीतादेवी जनक राजाकी कन्या तथा श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी हैं। आपके मुखसे बहुत बार मैंने सुना है कि श्रीरामचन्द्र भगवान् विष्णु हैं, वे भयंकर दुष्ट दुर्धर्ष रावणादि राक्षसोंका वध करके धर्मस्थापन करनेके लिये, अशान्तिसागरमें मग्न, सर्वदा उत्पीड़ित लोगोंको शान्ति देनेके लिये, उन्हें निरुपद्रव करनेके लिये, इच्छानुसार मनुष्यरूपमें अवतीर्ण हुए थे। सीतादेवी साक्षात् जगन्माता कमला हैं, इन्होंने लीलासे मनुष्य-रूप धारण किया था।

× × × ×

वक्ता—सभी मनुष्य 'पूर्णमनुष्य'के स्वरूपको नहीं ग्रहण कर सकते। जिस परिमाणमें मनुष्यत्वका—मनुष्योचित धर्मका विकास होता है, मनुष्य उसी परिमाणमें 'मनुष्य' शब्दका यथार्थ अर्थ समझनेमें समर्थ होता है। अतः जब कोई पूर्णमनुष्य होता है, तभी वह 'पूर्णमनुष्य'का वास्तविक अर्थ ग्रहण कर पाता है। इसी तरह 'देवता' हुए बिना, मनुष्यभावमें देवभाव लाये बिना कोई 'देवता' शब्दका वास्तविक अर्थ नहीं जान सकता। यदि देवताको यथार्थरूपमें जानना हो तो देवता होना

* कृतान्यनेन सर्वाणि तपांसि वदतां वर।
सर्वे तीर्थाः सर्वमखाः सर्वदानानि च क्षणात्॥
कृतान्यनेन मोक्षश्च तस्य हस्ते न संशयः॥
(अहिर्बुध्न्यसंहिता, अ० १७)

पड़ेगा। वेद और शास्त्रमें इसीलिये कहा गया है कि 'देवता होकर देवताकी अर्चना करो, शिव होकर शिवकी अर्चना करो, राम होकर रामकी अर्चना करो।' किसी देवताकी पूजा करते समय क्या करना होता है, शास्त्रोक्त पूजा-विधिका तत्त्व क्या है, यह जान सकनेपर तुम्हें मालूम होगा कि पूजा-विधिका उपदेश देते समय शास्त्रने यही बताया है कि किस तरह पूजक या उपासकको पूज्य या उपास्यदेव होना पड़ता है। अतः अनन्त हुए बिना 'अनन्त'-शब्दके वास्तविक अर्थका बोध नहीं हो सकता। देवता हुए बिना कोई 'देवता'-शब्दका यथार्थ अर्थ जान नहीं सकता। स्कन्दपुराणमें कहा है—'सीता कमला हैं, ये जगन्माता हैं; इन्होंने लीलासे मनुष्यमूर्ति धारण की है; ये देवत्वमें देवदेहा (देवशरीरिणी) हैं और मनुष्यत्वमें मानुषी हैं। ये विष्णुदेहके अनुरूप अपनी देह धारण करती हैं'—

कमलेयं जगन्माता लीलामानुषविग्रहा।
देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी।
विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषाऽऽत्मनस्तनुम्॥

(स्क०, ब्रह्म०, सेतुमाहात्म्य २२। १६-१७)

× × × ×

लीला-मनुष्य होकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने तथा जगन्माता कमला, सर्ववेदमयी, सर्वलोकमयी सीतादेवीने देवता और मनुष्य दोनोंका ही कितना उपकार किया है—यह सोचनेपर हृदय अत्यन्त गद्गद हो जाता है, कृतज्ञता-से परिपूर्ण हो जाता है। मनुष्य किस तरह पूर्ण देवत्वको प्राप्त कर सकता है, यह भगवान् श्रीरामचन्द्र तथा भगवती सीतादेवी जगत्‌को सिखा गयी हैं। मेरा यह कथन सोलहों आने सत्य है, 'सीता-तत्त्व'में तुम्हें यह बात समझानेकी चेष्टा करूँगा। सीतोपनिषद्‌में यह पूर्णरूपसे वर्णित है कि सीता कौन हैं। सीतोपनिषद्‌में सीतादेवीका स्वरूप प्रदर्शित करनेके लिये जो कुछ कहा गया है, उसकी सम्यक्‌रूपसे व्याख्या करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। अगर सम्यक्‌रूपसे उसकी व्याख्या करनी हो तो वेदका स्वरूप दिखाना पड़ेगा, निखिल शास्त्र या विष्णुका स्वरूप दिखाना पड़ेगा, सब प्रकारकी शक्तियोंका तत्त्व समझाना पड़ेगा। अखण्ड सच्चिदानन्दमय ब्रह्मतत्त्व ही 'सीता-तत्त्व' है—सीतोपनिषद्‌ने यही समझाया है। सीता 'सर्ववेदमयी' हैं, 'सर्वदेवमयी' हैं, 'सर्वलोकमयी' हैं; सीता भगवती मूल-प्रकृति हैं; सीता प्रणवस्वरूपिणी हैं; सीता इच्छा-शक्ति हैं, क्रिया-शक्ति हैं, साक्षात् शक्ति हैं; सीता त्रिगुणात्मक संसार हैं, सीता त्रिगुणातीता—अखण्डसच्चिदानन्दमयी हैं। सीतादेवी श्री अथवा महालक्ष्मी हैं; जिनपर उनकी एक बार दृष्टि पड़ जाती है, फिर वे उन्हें छोड़ अन्यत्र जाना नहीं चाहते, जा नहीं सकते। जो रमणीय हैं, जो सौन्दर्यकी आकर हैं, जो माधुर्यकी खानि हैं, जिन्हें देखनेके लिये ही दृक्‌शक्ति दृक्‌शक्तिरूपमें परिणत हुई है, एकमात्र जो सबका लक्ष्य हैं, जिनके आश्रयमें सब कोई वर्तमान हैं, जिनका आश्रय ग्रहण करने-की सब-किसीकी अभिलाषा है, वे लक्ष्मी हैं, वे श्री हैं। सीतादेवी वही लक्ष्यमाणा लक्ष्मी या सर्वाश्रयमयी श्री हैं—

श्रीरिति लक्ष्मीरिति लक्ष्यमाणा भवतीति विज्ञायते।

(सीतोपनिषद्)

सीतादेवी सब प्राणियोंका रोग शमन करनेवाली हैं। सीतादेवी सब प्राणियोंकी पोषिका-शक्तिरूपा हैं—

सर्वौषधीनां सर्वप्राणिनां पोषणार्थं सर्वरूपा भवति।

(सीतोपनिषद्)

सीतोपनिषद्‌में सीताका स्वरूप वर्णन करनेके लिये इस प्रकारकी बातें कही गयी हैं। इसीलिये मैंने कहा है कि सीतोपनिषद्‌में सीतादेवीके स्वरूप-प्रदर्शनार्थ जो कुछ कहा गया है, सम्यक्‌रूपसे उसकी व्याख्या करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है।

जिज्ञासु—तो क्या सीतादेवीका स्वरूप जाननेका कोई उपाय नहीं है?

वक्ता—यह क्यों! सीतादेवीका स्वरूप जाननेका उपाय है। मैंने तो तुम्हें वह उपाय बता दिया है।

जिज्ञासु—वह उपाय क्या है? वह तो मेरी समझमें आया ही नहीं।

वक्ता—वह उपाय है सीतादेवीके चरणोंमें प्रपन्न होना, उनके शरणागत होना। 'माँ, मैं अपराधोंका घर हूँ, मैं अकिंचन हूँ; माँ! मैं अगति हूँ, तुम्हें छोड़ मेरा अपना और कोई नहीं है; माँ! तुम्हीं अगतिकी गति हो, तुम्हीं निराश्रयकी आश्रय हो, तुम अकिंचनकी सर्वस्व हो; मैं तुम्हारे चरणोंमें अपना अहंभाव सर्वान्तःकरणसे समर्पण करता हूँ, तुम मुझे अपने सर्वाश्रय चरणोंमें ग्रहण करो। माँ! मैं तुम्हारा हूँ।'—इस तरह माँके चरणोंमें आत्मनिवेदन करना ही माँके

पानेका, उन्हें यथार्थरूपमें जाननेका एकमात्र उपाय है; इसीका नाम अविराम 'नमो नमः करना' है। सर्ववेदमयी, सर्वशास्त्रमयी सीतादेवीने स्वयं ही अपनी प्राप्तिका, पूर्णरूपसे अपनेको जाननेका, अपने समीपवर्ती होनेका यह उपाय बता दिया है।×××

जिज्ञासु—करुणामयी सीतादेवीकी कृपाके बिना उन्हें जानना असम्भव है, यह बात आपकी कृपासे क्रमशः मेरी समझमें आ रही है। क्या मनुष्य मनुष्यमात्रको ही ठीक तौरसे जान सकता है? मनुष्यमें जो देवत्व है, क्या मनुष्य-मात्र ही उसे लक्ष्य करते हैं? अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि देवता हुए बिना देवताका स्वरूप देखना सम्भव नहीं! 'सीतादेवी देवत्वमें देव-देहा हैं, मनुष्यत्वमें मनुष्य-विग्रहा हैं'—स्कन्दपुराणकी यह बात कितनी सुन्दर है! किंतु मैं इसे अनुभव करनेमें असमर्थ हूँ।

वक्ता—यह बात क्रमशः तुम्हारी समझमें आयेगी कि स्थावर-जंगम पदार्थोंकी जो पृथक्-पृथक् आकृतियाँ होती हैं, इसका कोई सूक्ष्म अथवा आन्तरिक कारण है। प्रकृति सब प्रकारका रूप धारण कर सकती है, प्रकृति देवता प्रसव करती है, प्रकृति मनुष्यकी सृष्टि करती है, प्रकृतिसे धार्मिक, सौम्य, विविधगुणविशिष्ट प्रजाकी उत्पत्ति होती है, प्रकृति फिर घोर अधार्मिक, असौम्य, सर्वदोषागार, सब मनुष्योंमें क्षोभ पैदा करनेवाली कुसंतान भी पैदा करती है। सीतोपनिषद्में सीतादेवी 'मूल-प्रकृति' बतायी गयी हैं। अतएव सीतादेवी सर्ववेदमयी हैं, सर्वदेवमयी हैं, सर्वलोकमयी हैं। मूल-प्रकृति सर्वशक्तिमयी हैं, अतः मूल-प्रकृतिस्वरूपिणी सीतादेवी देव-देहा हैं। लीलासे मनुष्य-देह धारण करती हैं—इस बातपर विश्वास करनेमें कोई बाधा नहीं हो सकती। 'ये (सीतादेवी) विष्णुदेहके अनुरूप अपनी देह स्वीकार करती हैं; हे विष्णो! (हे रामचन्द्र!) आप जब-जब जो-जो अवतार स्वीकार करते हैं, तब-तब ये आपकी संगिनी होती हैं'—स्कन्दपुराणोक्त पावक-देवकी यह बात युक्तिविरुद्ध मानकर कदापि अविश्वास करनेयोग्य नहीं है।

× × × ×

जिज्ञासु (नन्दकिशोर विद्यानन्द)—आज सीतोपनिषद्की कुछ संक्षिप्त व्याख्या सुनना चाहता हूँ। यद्यपि सीता-तत्त्वको हृदयंगम करनेकी यथार्थ योग्यता मुझमें नहीं है, तथापि श्रीमुखसे उपदेश सुनते-सुनते कुछ तो योग्यता आ ही जायगी—ऐसी आशा है।

वक्ता—देवताओंने प्रजापतिके पास जाकर उनसे पूछा—'सीता कौन हैं? उनका स्वरूप क्या है?' प्रजापतिने कहा—'वह सीता हैं; अर्थात् तुमलोग जिनका स्वरूप जानना चाहते हो, उनका स्वरूप तो 'सीता' शब्द ही व्यक्त कर रहा है। स, ई, त—ये तीन अक्षर ही उनके स्वरूपके वाचक हैं। सब वस्तुओंकी वे मूल-प्रकृति हैं, इसलिये 'प्रकृति' नामसे ज्ञात हैं।'

मूल-प्रकृति कौन-सा पदार्थ है? जो दूसरे किसी पदार्थका कार्य नहीं है, जिसका और कोई मूल नहीं है, जो स्वयं अमूल है, जो अविकृति है, वह 'प्रकृति' है। (प्रकृति जगत्की सृष्टि-स्थिति-संहार-कारिणी है, वह जगत्-कारण है।) प्रणव ही प्रकृतिका रूप है, प्रणव ईश्वरका वाचक है, प्रणव भगवान् श्रीरामचन्द्रका रूप है। जिसके द्वारा कुछ प्रकृत होता है, उसे 'प्रकृति' कहते हैं। विश्वजगत् किसके द्वारा प्रकृत है? सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंके द्वारा। चूँकि अकार-उकार-मकारात्मक प्रणवसे ही जगत् उत्पन्न हुआ है, इसलिये प्रणव ही प्रकृति है। मूल-प्रकृतिका स्वरूप है प्रणव अर्थात् चैतन्याधिष्ठित गुणत्रय, यह बात दो बार कही गयी है। सम्भवतः इसे पुनरुक्तिदोष कहा जा सकता है। किंतु नहीं, मूल-प्रकृतिका स्वरूप समझानेके लिये ही द्वितीय बार इसका उल्लेख किया गया है। स-ई-त—इन वर्णत्रयात्मिका सीताको चैतन्याधिष्ठिता माया जानना चाहिये।

'विष्णुः प्रपञ्चबीजं च' इत्यादि। विश्व-जगत् नाना आकार धारण करता है, इसलिये इसे 'प्रपञ्च' कहते हैं; जो प्रकृष्टरूपसे पञ्चीकृत या विस्तृत होता है, उसे 'प्रपञ्च' कहते हैं। विष्णु ही 'प्रपञ्चबीज' हैं। व्याप्त्यर्थक 'विष्लृ' धातुसे 'विष्णु' पद सिद्ध हुआ है। विष्णु ही विश्वमें व्याप्त होते हैं—

यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महान् द्रुमः।
तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्॥

—इत्यादि रामपूर्वतापनीय उपनिषद् (२। २-३) के वाक्योंको यहाँ स्मरण करना चाहिये।

'सत्', 'चित्' और 'आनन्द'—ये सभी सीताके रूप हैं (चाहे परिच्छिन्नभावसे देखा जाय अथवा अपरिच्छिन्न-भावसे)।

माँके दो रूप हैं—अव्यक्त और व्यक्त । अव्यक्तरूपिणी महामाया किस तरह व्यक्त रूप धारण करती हैं, अब यही कह रहे हैं ।

'प्रथमा शब्दब्रह्ममयी स्वाध्यायकाले प्रसन्ना'—माँका प्रथम व्यक्त रूप है उनका 'शब्दब्रह्ममय' रूप, अर्थात् वेद-पुराण आदि पढ़नेके समय जिनकी कृपासे हम उन्हें (उन शास्त्रोंको) समझा करते हैं, उनको जाना करते हैं, माँका वह रूप । स्वाध्याय या वेदपाठ करते-करते (अर्थबोध तथा यथार्थ मननादिके साथ) जब पहले आनन्दानुभव होता है, तब फिर सीताका दर्शन होता है । स्वाध्याय करते-करते ऐसा ख्याल होता है कि मैं अशेष पापपङ्कमें निमग्न था, अब वेदाध्ययन करके निष्पाप हुआ, मैंने सीताके रूपका दर्शन किया । यह नहीं कि केवल मैं ही एक वेदाध्ययन कर रहा हूँ और माँकी कृपासे उसकी अर्थोपलब्धि करके आनन्द-लाभ कर रहा हूँ, प्रत्युत इसके पहले भी जिस-किसीने वेदाध्ययन करके आनन्दलाभ किया है, उसे भी माँकी ही कृपासे उसकी अर्थोपलब्धि हुई है और आनन्द मिला है । सबसे पहले ब्रह्मा आदिने ही माँका स्मरण किया था और वेदाध्ययन किया था ।

'द्वितीया भूतले हलाग्रे समुत्पन्ना'—यही माँके अवतारका रूप है, माँका द्वितीय व्यक्त रूप वही है, जिसमें वह भूतलपर हलाग्रमें जानकीरूपसे अभिव्यक्त हुई थीं ।

भूतले—आधार-शक्ति जो वस्तु है, वह विष्णुकी ही शक्ति है । पृथिवीशक्ति=आधारशक्ति । सीता ही पृथिवी-शक्ति है—जिस शक्तिने जगत्को धारण कर रखा है । इसीलिये सीता पृथिवीस्थ होकर अवतीर्ण हुई थीं । मननशील साधकको इसमें कुछ और भी विशेष तत्त्व दिखायी देगा । सूक्ष्म किस तरह स्थूल अवस्थाको प्राप्त होता है, यहाँपर यह विचार करना चाहिये । माँका पहला व्यक्त रूप शब्दब्रह्ममय या मातृकामय है । 'शब्दसे विश्व-जगत् सृष्ट हुआ है, अकारादि मातृका-वर्ण ही व्यक्त जगत्का पूर्व-रूप हैं' इत्यादि शास्त्रो-क्तियोंको यहाँपर स्मरण करना चाहिये । तदनन्तर पाश्चात्त्य विज्ञानद्वारा वर्णित जगत्के सृष्टितत्त्वको भी स्मरण करना चाहिये । नैहारिक सिद्धान्त (The Nebular Theory of Creation) पूर्णरूपसे भ्रमशून्य न होनेपर भी उसमें किंचित् सत्यकी छाया है । एक अविभागापन्न विश्वव्यापी वाष्पमय अवस्था किस तरह घनीभूत या सम्मूर्छित होकर वर्तमान दृश्यजगत्में परिणत हो गयी है—इसका वर्णन पाश्चात्त्य विज्ञानने किया है । सीताशक्ति पहले अपेक्षाकृत सूक्ष्म शब्दब्रह्ममय रूपमें अभिव्यक्त हुई थीं, तदनन्तर यह शक्ति क्रमशः घनीभूत या सम्मूर्छित (Condensed) होकर अन्तमें आधारशक्तिरूपमें—स्थूलरूपमें—पृथिवीरूपमें अभिव्यक्त हुई । वे पृथिवीपर पड़ी हुई हैं—इस अवस्थामें जनकजीने उनको देखा ।

ऊपर माँकी दो अवस्थाओंकी बात कही गयी है । ये दो ही उनके व्यक्त रूप हैं । माँका तृतीय रूप ईकार-रूपिणी अव्यक्ता मूल-प्रकृतिका रूप है । यही संक्षेपमें सीताका स्वरूप है, यह शौनक ऋषिका उपदेश है ।

जिज्ञासु—माँके व्यक्तावस्थाके पूर्वके रूपकी धारणा किस तरह की जा सकती है ?

वक्ता—सामान्य ही विशेषका पूर्वरूप है । सामान्य दो प्रकारका है—परसामान्य और अपरसामान्य । जिसका (अथवा जिससे) और कोई सामान्य भाव नहीं है, वह 'परसामान्य' है । 'सत्तासामान्य' शब्दके अर्थकी उपलब्धि करनेकी चेष्टा करो । सत्तासामान्यपर एक और विशेषण 'ब्रह्म' देनेसे 'ब्रह्मसत्तासामान्य' पद बनता है । इसका अर्थ है—अखण्डसत्तासामान्य या अपरिच्छिन्नसत्तासामान्य । विश्व-जगत्की व्यक्तावस्थाके पूर्वकी अवस्थाका वर्णन करते हुए ऋग्वेदने कहा है—

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः ।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किंचनास ॥

(ऋग्वेदसंहिता १० । १२९ । २)

'प्रलयकालमें मृत्यु न थी, सूर्य और चन्द्रमाके अभावके कारण तब दिवा-रात्रिका ज्ञान न था; तब सर्ववेदान्त-प्रसिद्ध ब्रह्मतत्त्व प्राणितवत् विद्यमान था । 'प्राणितवत्' शब्दसे लोग निरुपाधि ब्रह्मको जीवभावापन्न, जीववत् क्रियाविशिष्ट समझ सकते हैं, इसी आशङ्कासे श्रुतिने 'अवातम्' पदका प्रयोग किया है । उस समय (सत्त्व, रज और तम) त्रिगुणात्मिका प्रकृति या माया अपने आश्रय ब्रह्मके साथ अविभागापन्न होकर एकरूपमें विद्यमान थी । तब क्रियाशील रजोगुणकी अनभिव्यक्तिके कारण किसी प्रकारकी क्रिया नहीं थी ।'

इससे तुम माँकी व्यक्तावस्थाके पहलेकी अवस्थाका कुछ अनुमान लगा सकते हो।

श्रीरामसांनिध्यवशाज्जगदानन्दकारिणी ।
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम् ॥

(सीतोपनिषद् ४)

परमात्माकी शक्ति हैं, इसलिये सर्वदा ये उनके सांनिध्य-में रहती हैं। आनन्दमयके समीप, उनके साथ नित्ययुक्त होकर विद्यमान हैं; अतः ये भी आनन्दमयी होंगी—इसमें संदेह ही क्या है। आनन्दमयके साथ रहकर फिर ये ही जगत्‌को आनन्द देती हैं। माँके लिये ही जगत् आनन्द पाता है।

जिज्ञासु—यहाँ 'राम' शब्दके प्रयोग करनेकी आवश्यकता क्या है?

वक्ता—यहाँ 'राम' शब्दके प्रयोगकी विशिष्ट सार्थकता है। अखण्ड सच्चिदानन्दमय परमात्माका बोध करानेके लिये ही यहाँपर 'राम' शब्दका प्रयोग हुआ है। 'आनन्द' जो वस्तु है, वह परमात्माका निजी रूप है। माँका निजी रूप है—सृष्टिस्थितिलयात्मक रूप। माँ जब भगवान्‌से पृथक् रूप धारण करती हैं, तब वह 'असीता' (असिता) वा काली-रूप धारण करती हैं। माँ जब पिताके पास रहती हैं, तब वे माया होती हैं (जिसे 'उत्तमा अविद्या' कहते हैं); नहीं तो वे 'अविद्या' (अर्थात् 'अधमा अविद्या') रूपमें अवस्थान करती हैं।

पूर्ण कोई एक है—यह मानना ही पड़ता है। अब प्रश्न यह उठता है कि पूर्ण तो सिवा एकके दो हो नहीं सकते, फिर 'राम' और 'सीता' दो तत्त्व क्यों माने जाते हैं? वे वस्तुतः एक ही हैं। शक्ति शक्तिमान्‌से वास्तवमें भिन्न पदार्थ नहीं है। शक्तिमान् सदा ही शक्तियुक्त रहते हैं। बिना किसी विशेष प्रयोजनके शक्ति शक्तिमान्‌से पृथक् नहीं होती।

'माँका स्वरूप बतलानेके लिये फिर कह रहे हैं—वे सब देहियोंकी सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी हैं। इसलिये सीता ही काली हैं। पुराणमें तो जो कुछ है, वह वेदकी ही व्याख्या है। पुराणमें लिखा है—माँने सीतारूपसे कालीरूप धारण किया था।[1] इसका अर्थ यही है कि 'काली' जो पदार्थ है 'सीता' भी वही पदार्थ है। (कल्प करके सबको अपनी गोदमें ले लेती हैं, इसलिये इनकी 'काली' आख्या हुई है।) 'काली'के बीजका अर्थ भी यही है। क=सृष्टि, र=संहार, ई=पालन।

सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता—जब इन तीन शक्तियोंकी समष्टिका चिन्तन किया जाता है, तब उस समय सत्त्व-रज-तमकी साम्यावस्थामें जो रूप होता है, उसी रूपका अर्थात् मूल-प्रकृतिके रूपका चिन्तन होता है। प्रणव उसीका वाचक है। प्रणवका जो अर्थ है, सीताका भी वही अर्थ है—अ-उ-म् वा सृष्टि-स्थिति-संहार।

'प्रणवत्वाद् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिन इति। अथातो ब्रह्मजिज्ञासेति च। सा सर्ववेदमयी' इत्यादि—'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' यह नित्य-सूत्र है। ब्रह्मसूत्र नित्य-पदार्थ है। महर्षि वेदव्यास ब्रह्मसूत्रके स्मारक हैं, रचयिता नहीं। (जिज्ञासा होनेसे ही ज्ञानकी अभिव्यक्ति होती है। जिज्ञासा ज्ञानका ही पूर्वरूप है। जिज्ञासा ज्ञानके अन्तर्भूत है।) प्रणव जो (वस्तु) है, ब्रह्म जो (वस्तु) है, वही सीता है। यदि किसीको ब्रह्मजिज्ञासा हो तो क्या उन्हें सीताकी तत्त्व (ब्रह्म=तत्त्व)-जिज्ञासा हुए बिना रह सकती है? जो ब्रह्मवादी होते हैं, वे इस तत्त्वको समझ सकते हैं और वे ही इस तत्त्वको व्यक्त किया करते हैं।

जिज्ञासु—यहाँपर अकस्मात् 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इस सूत्रकी बात क्यों छेड़ी गयी?

वक्ता—बात यह है कि ब्रह्म जो वस्तु है, यदि उसे जानना हो तो प्रणवका स्वरूप जानना होगा और यदि प्रणवका स्वरूप जानना हो तो सीताका स्वरूप जानना पड़ेगा। इसीलिये यहाँ 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' सूत्रका उल्लेख किया गया है।

सर्वदेवमयी—सब देवता प्रणवनिष्पन्न हैं (सर्वे देवाः प्रणवनिष्पन्नाः)। ऋग्वेदके 'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।' (१। १६४। ३९) इत्यादि मन्त्रका स्मरण करो। यहाँ मयट् प्रत्यय स्वरूपार्थमें है।

सर्वलोकमयी—अर्थात् सर्वलोकस्वरूपिणी।

सर्वकीर्तिमयी, सर्वधर्ममयी—पहले ही कहा गया है कि सत्, चित् और आनन्दका जो कोई रूप या अवस्था हो, वह सीताका ही रूप है।

सर्वाधारकार्यकारणमयी—आधार-शक्ति जो वस्तु है, वह विष्णुकी ही शक्ति है। आधारशक्ति=पृथिवीशक्ति। इसलिये सीता 'भूतले' अर्थात् पृथिवीस्थ होकर अवतीर्ण हुई थीं।

[1] १. सीताने ही कालीका रूप धारण करके सहस्रस्कन्ध रावणका वध किया था।

देवेशस्य—परमात्मा विष्णुकी।

महालक्ष्मीदेवेशस्य—वेदके 'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च' इस मन्त्रको स्मरण करो।

भिन्नाभिन्नरूपा—वे परमात्मासे भिन्न तथा अभिन्न दोनों रूपोंमें ही प्रतिभात होती हैं। किसीकी दृष्टिमें शक्ति और शक्तिमान्‌का भेद है और किसीकी दृष्टिमें नहीं।

चेतनाचेतनात्मिका—वे चेतन तथा अचेतन—दोनों रूपोंमें ही प्रतिभात होती हैं। पहलेकी तरह दृष्टि-भेद ही इसका भी कारण है।

ब्रह्मस्थावरात्मा—वे जड और अजड दोनों ही हैं।

ब्रह्मस्थावरात्मा तद्गुणकर्मविभागभेदाच्छरीररूपा—ब्रह्मासे स्थावरतक सभी उनके रूप हैं। ये जो सीतादेवी हैं, उनके जो गुण और कर्म हैं और उनके जो विभिन्न विभाग हैं, उन्हींसे जगत्‌में नाना रूप हुए हैं। जो कुछ जगत्‌में तुम देख रहे हो, ये सभी सीताके गुण-भेद और कर्म-भेदसे उन्हींके रूप हैं। यहाँपर गीताके उपदेशको स्मरण करो। (गुण यहाँपर हैं—सत्त्व, रज और तम; कर्म हैं—ब्राह्मणादिवर्णोचित शम-दमादि कर्म। यहाँपर 'कर्म'-शब्दका प्रयोग करके अनादि कर्मकी ही ओर लक्ष्य किया गया है।)

देवर्षिमनुष्य''विग्रहास्ते—इसके द्वारा प्रकृतिके सारे परिणाम दिखाते हुए यह दिखाया गया है कि वे ही सर्व-परिणामरूपा हैं और वे ही इन सारे परिणामोंका मूल हैं।

भूतादि—अर्थात् अहंकार। यह त्रिविध है—सात्त्विक, राजस और तामस।

देवर्षि—यह सात्त्विक परिणाम है।

जो कुछ होता है, शक्तिद्वारा ही होता है। सर्वशक्तिकी मूल वे ही हैं, अब यह बात स्पष्ट की जा रही है।

ये (सीता) देवी तीन प्रकारसे विवर्तित होती हैं। वे तीन प्रकार शक्त्यात्मामें हैं—इच्छा-शक्ति, क्रिया-शक्ति और साक्षात्-शक्ति। इच्छा-शक्तिके तीन भेद हैं। ये जो वृक्षादि उत्पन्न होते हैं, ये सोम-शक्तिके रूप हैं। सोम-शक्ति ही उत्थित्-प्रसविणी-शक्ति है। सोम-शक्ति आप्यायनशक्ति—पोषण-शक्ति है। सूर्य-शक्तिद्वारा क्रिया होती है, क्षय होता है (Work must have waste)। उसका सोम शक्ति पोषण किया करती है। माँकी सोम-शक्ति ही विश्व-जगत्‌का अन्नस्वरूप है। सोम अन्न हैं और सूर्य अन्नाद। औषध भी सोम-शक्तिसे ही उत्पन्न है। रोग क्षय कर देता है, औषध उस क्षयका पोषण कर देती है। आप्यायन-शक्तिका अभाव होनेसे ही तो रोग होता है। 'आप्यायस्व सोम' इत्यादि मन्त्रद्वारा भेषजको अभिमन्त्रित करना पड़ता है। यह सोम-शक्ति ही अमृत-रूपमें वर्तमान है, जिसे सेवन करके देवता तृप्ति-लाभ किया करते हैं।

(अब सूर्य-शक्तिकी बात कह रहे हैं—) माँ ही सकल-भुवनप्रकाशिनी दिवा या प्रकाश-शक्ति हैं।

माँ ही रात्रि हैं। दिनमें सौर-शक्तिद्वारा नाना प्रकारके कर्म करके जब लोग श्रान्त हो जाते हैं, तब आरामके लिये इनके चरणोंमें शरण प्राप्त करनेकी प्रार्थना करते हैं (प्ररमयति भूतानि इति 'रात्रिः')। ये ही श्रान्त पुत्रको गोदमें लेकर सुलाती हैं।

(इसके द्वारा सृष्टि-तत्त्व दिखाया गया है। इन 'दिवा' और 'रात्रि'-शक्तिद्वारा 'सृष्टि' और 'लय'-शक्तिका रूप दिखाया गया है। 'रात्रि' तमोगुणात्मिका है। इसके बाद फिर 'दिन' होता है, सृष्टि होती है।)

इसके बाद माँके कालरूपका वर्णन किया गया है। हम कालके जितने प्रकारके रूप प्रत्यक्ष किया करते हैं, यथा—कला, निमेष, घटिका, याम, दिवस, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, मनुष्यकी आयु अथवा शतसंवत्सर—ये सभी माँके रूप हैं। हमलोग कहा करते हैं—यह कार्य शीघ्र सम्पन्न हुआ, यह विलम्बसे हुआ। ये जो कालके भेद हैं, ये सीताके ही रूप-भेद हैं। निमेषसे लेकर परार्धतक कालचक्र, जगच्चक्र-प्रभृति चक्रवत् परिवर्तमान जिन पदार्थोंकी उपलब्धि होती है, ये 'काल'के ही विभाग-विशेष हैं। काल-शक्ति प्रकाशरूपा हैं। [सीतारूपिणी (अखण्ड)-काल-शक्ति पूर्वोक्त सारे (खण्ड) कालचक्रोंको प्रकाशित किया करती हैं।]

(इसके बाद माँके अग्निरूपकी बात कह रहे हैं—) 'अग्निरूपा [illegible]' इत्यादि। माँकी यह अग्नि-शक्ति [illegible]-रूपमें, [illegible] [illegible]-रूपमें, देवताओंमें मुखरूपमें, वनौषधियोंमें [illegible]-रूपमें, [illegible] [illegible] प्रकाशित होती है। इसका [illegible] प्रकार है, एक 'बाह्य' और दूसरी 'आन्तर' (बाहरसे नहीं मालूम होता कि इसमें ताप है, परंतु भीतर वर्तमान रहता है—इस

तरहका ताप)। यह अग्नि-शक्ति नित्यानित्यरूपा है। अग्नि भोक्तृ-शक्ति है, वही अन्नाद है। वही प्रकृति है, वही पुरुष है। प्राण ही अग्नि है (वेदकी भाषामें)। मैत्र्युपनिषद्में अन्न और अन्नाद या भोग्य-भोक्तृत्वका जो वर्णन है, उसे स्मरण करो। जिस तरफसे देखो, उन्हींका रूप देखोगे। प्राण-रूपसे यदि देखो तो भी सीताका ही रूप देखोगे।

(इसके पश्चात् श्रीशक्तिके त्रिविध रूपकी बात कही गयी है।) श्रीदेवी भगवान्‌के संकल्पानुसार लोकरक्षाके लिये रूप धारण करती हैं। ये 'श्री' या 'लक्ष्मी' रूपमें सबकी लक्ष्यमाणा होती हैं। सौन्दर्यके लिये (जिसे देखनेसे लोगोंकी दृष्टि आबद्ध होती है, लोग आकृष्ट होते हैं) लोग जिनको लक्ष्य करते हैं, जिनको पाना चाहते हैं, जिनका आश्रय ग्रहण करना चाहते हैं, वे 'लक्ष्मी' हैं, वे 'श्री' हैं।

तदनन्तर भूशक्तिकी बात कही गयी है। आधार-शक्तिका नाम ही 'भूदेवी' है। भूदेवी ससागराम्भःसप्तद्वीपा वसुंधरा-रूपा हैं। (इसीलिये माँ पृथिवीसे उठी थीं।) ये ही चतुर्दश भुवनके आधार तथा आधेयरूपमें लक्षिता प्रणवात्मिका शक्ति हैं। (प्रणवमें अ-उ-मकार हैं, 'भूः' में भी केवल 'भूः' ही नहीं रहता, बल्कि 'भुवः' और 'स्वः' भी रहते हैं।) 'नीलात्मिका' शक्ति सब प्राणियोंकी पोषणरूपा है।

(इसके बाद क्रियाशक्तिकी बात कह रहे हैं।) भगवान् हरिके मुखसे पहले जो नादकी उत्पत्ति होती है, वही क्रिया-शक्तिका स्वरूप है। (इसके द्वारा वेदका स्वरूप दिखाया जा रहा है।) उससे बिन्दु, उससे ओंकार और उससे रामवैखानस-पर्वतकी उत्पत्ति होती है। उससे कर्म-ज्ञानमयी बहुशाखाओंका आविर्भाव होता है। बहुशाखाएँ होनेपर भी प्रधान तीन ही शाखाएँ हैं, जिनका नाम 'त्रयी' है। यही आद्यशास्त्र है। इससे सभी अर्थोंका दर्शन होता है। अतः वेद ही सब विज्ञानोंके विज्ञान हैं, सब अर्थोंके अर्थ हैं। विशिष्ट कार्य-सिद्धिके लिये माँ चतुर्वेदका रूप धारण करती हैं (अर्थात् अतिरिक्त अथर्ववेदका आविर्भाव होता है)। नहीं तो 'त्रयी'के अंदर ही 'अथर्व' है। जिस दृष्टिसे ऋक्, यजुः, साम—ऐसा भाग किया गया है, उस दृष्टिसे अथर्वको पृथक् करनेकी कोई आवश्यकता नहीं होती। अथर्ववेदका कुछ अंश अभिचारादिव्यापारविषयक है, अथर्व भी साम-ऋक्-यजुरात्मक है। ऋग्वेदकी २१, यजुर्वेदकी १०९ और सामवेदकी सहस्र शाखाएँ हैं। अथर्ववेदकी पाँच शाखाएँ हैं।

जिज्ञासु—रामवैखानस-पर्वत और त्रयी—इन दोनों शब्दोंका अर्थ अच्छी तरह मेरी समझमें नहीं आया है।

वक्ता—सब शक्तियाँ 'रामवैखानस-पर्वत'का आश्रय लेकर रहती हैं। 'रामवैखानस'-शब्दद्वारा सगुण ब्रह्म लक्षित होते हैं। जिसमें पर्व हैं, वह 'पर्वत' है। यह शब्द रामरूप वेद-पर्वतका बोध कराता है। वेदमें काण्ड हैं, इसलिये इसकी तुलना पर्वतके साथ की गयी है। कर्म-काण्डके लिये 'अथर्व' नामक वेदके चतुर्थ भागकी कल्पना की गयी है। सामान्य लक्षणोंके अनुसार विभाग करनेपर ऋक्, यजुः और साम—तीन ही विभाग होते हैं। जिस तरह ओंकारसे वेद उत्पन्न हुए हैं, उसी तरह ओंकारसे भगवान्‌के सगुण रूपका आविर्भाव हुआ है।

प्रकृतिके तीन रूप हैं। चतुर्थ अवस्था साम्यावस्था है। वेदकी भी चार अवस्थाएँ हैं। जब तीन लोकोंको लेकर (अर्थात् तीन लोकोंके ख्यालसे) चिन्तन किया जाता है, तब वह 'त्रयी' है। 'सोऽयमात्मा चतुष्पात्'—इस उक्तिके अर्थका चिन्तन करो। प्रणव=वेद=ब्रह्म। वेदके कर्मदृष्टिसे तीन प्रकार हैं—ऋक्, यजुः और साम। जहाँ सब कुछ जाकर सम्मिलित हो जाता है, जहाँ फिर परस्पर भेद नहीं रह जाता, वही गीत है; वहाँ इतरत्व नहीं रहेगा, वैषम्य नहीं रहेगा। सम=साम=संवित्त्व। वैषम्य नहीं रहनेसे क्रिया नहीं होती।

पहले कर्म। ऋग्वेद कर्म है (ऋग्वेद प्रधानतः कर्मात्मक है)। भूलोक ऋग्वेदका रूप है। ऋग्वेदके न रहनेपर किसी वेदकी स्थिति नहीं रहती। पहले कर्मद्वारा चित्तशुद्धि करनी होगी। छन्दके अनुसार जो कर्म है, वही 'ऋक्' है। चक्षुरादि इन्द्रियोंके द्वारा जो कर्म हो रहे हैं, वे ऋक्‌के रूप हैं। उसके बाद यजुर्वेद या भुवर्लोक है अर्थात् (बाह्य जगत्‌से) संस्कार लेकर मनकी अवस्थामें प्रवेश करना। यह उपासना-काण्ड है। इसके बाद ज्ञानकाण्ड है। ज्ञानकाण्डके उपासनाके साथ मिल जानेपर 'संगीत' होता है। यही 'साम' है। तभी 'संवित्' होती है।

'विखनस्'-शब्दसे 'वैखानस'-पद उत्पन्न हुआ है। विगत हुआ है खनन जिससे, अर्थात् एक केन्द्र-अवस्था, जो जागतिक विषयोंद्वारा परिच्छिन्न नहीं है।

इसके बाद उस वेदका अङ्ग-विभाग किया गया। सीता या वेदके कौन-कौनसे अङ्ग हैं, यह कहा गया है। तत्पश्चात् उपाङ्ग बताये गये हैं। षड्दर्शन (मीमांसा, न्याय-प्रभृति) वेदके उपाङ्ग हैं। वेदद्रष्टा (जिन्होंने पूर्णरूपसे वेदका ही अवलम्बन किया था) महर्षियोंसे ही स्मृति-शास्त्र निर्गत हुआ है। इतिहास-प्रभृति भी वेदके उपाङ्ग हैं।

तदनन्तर 'साक्षात्-शक्ति' की बात विशेषरूपसे कही जाती है। (भावभेदसे 'साक्षात्-शक्ति'के कई प्रकारके अर्थ होते हैं।) परमात्मा भगवान् श्रीरामचन्द्रके स्मरण-मात्रसे ही—उनका ध्यान करते-करते जो उनका आविर्भाव होता है, वह इस साक्षात्-शक्तिकी क्रियासे होता है। निग्रहानुग्रहरूपा, शान्ति-तेजोरूपा प्रभृति इनके अनेक रूप हैं। ये भगवत्-सहचारिणी, अनपायिनी हैं। 'सृष्टि', 'स्थिति', 'संहार', 'तिरोधान' और 'अनुग्रह' आदि सब इन्हीं शक्तिके रूप हैं, इसलिये इनको 'साक्षात्-शक्ति' कहा जाता है।

जिज्ञासु—साक्षात्-शक्तिका स्वरूप कुछ और विशदरूपसे समझा दीजिये।

वक्ता—पहले 'साक्षात्' शब्दको लक्ष्य करो। ये 'साक्षात्' शक्ति हैं, और कोई शक्ति नहीं; ये इच्छा, ज्ञान, क्रिया आदि सब शक्तियाँ नहीं हैं। ये 'साक्षात्' शक्ति हैं। साक्षात्-शक्ति चैतन्यशक्ति या चित्-शक्ति है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर जिनसे उत्पन्न हुए हैं, वे साक्षात्-शक्ति हैं। 'साक्षात्-शक्ति' वह शक्ति है, जो और किसी शक्तिसे उत्पन्न नहीं हुई है। इस अपरिच्छिन्न ब्रह्मशक्तिसे ही इच्छा, ज्ञान और क्रियाशक्ति निर्गत हुई हैं, अथवा ऋक्, यजुः और साम 'आविर्भूत' हुए हैं। 'महालक्ष्मी', 'महाविष्णु', 'सदाशिव'-प्रभृति शब्दोंके द्वारा जो लक्षित होती हैं, वही 'साक्षात्-शक्ति' हैं। जो सबके ऊपर हैं, उन्हींको 'साक्षात्-शक्ति' कहते हैं।

फिर 'इच्छाशक्ति'की बात कह रहे हैं। इच्छाशक्ति त्रिविध हैं। ये इच्छाशक्ति प्रलयावस्थामें विश्रामार्थ भगवान्‌के दक्षिण वक्षःस्थलमें श्रीवत्साकृतिरूपमें अवस्थान करती हैं। ये परमात्मा वा भगवान्‌को आश्रय करके उनके हृदयमें रहती हैं, इसलिये इनका 'श्री' नाम पड़ा है। सीताकी जो इच्छाशक्ति हैं, वे ही प्रलयकालमें संक्रमण करके भगवान्‌के हृदयमें जाकर आश्रय ग्रहण करती हैं। वे ही 'योगशक्ति' हैं। बहिर्मुखवृत्ति जो (सृष्टि) शक्ति है, उससे जो (लय) शक्ति उनकी ओर ले जाती है, वही 'योगशक्ति' है। सीतादेवी सर्वदा जो कार्य कर रही हैं, वही इन वार्तोद्वारा व्यक्त किया जा रहा है। वे सृष्टिकालमें बाहर निकल जाती हैं, फिर (लयकालमें) भीतर प्रवेश कर जाती हैं, वहाँ जाकर विश्राम करती हैं। तुम जो योग-साधन करोगे, वह भी यही वस्तु है। तुम भगवान्‌से बहिर्मुख होकर (निकल) आये हो, तुमको वृत्ति-निरोध करके फिर जाकर उनके साथ मिलना पड़ेगा। यही 'योग' है।

भोगशक्ति जो वस्तु है, वह भी वे ही हैं। वे ही भोगरूपा हैं। कल्पवृक्षादि जो कुछ हैं, वे भोगके ही उपलक्षण हैं। धनादि जो कुछ हैं, वे भगवान्‌के उपासकोंके पास आप ही जाकर उपस्थित हुआ करते हैं। जो भगवान्‌की यथार्थ उपासना किया करते हैं, उनकी इच्छामात्रसे ही शङ्खादि निधियाँ उत्पन्न होती हैं। 'चिन्तामणि' उनके करतलगत हुआ करता है।

जिज्ञासु—'चिन्तामणि'का स्वरूप क्या है ?

वक्ता—कहा जाता है—'चिन्तामणौ स्वरूपेण न किञ्चिदुपलभ्यते।' परंतु उसमें सब किसीको अपना-अपना वाञ्छित रूप दिखायी पड़ता है। भगवान् सर्वाकार हैं; तुम उनको जिस-जिस रूपमें देखनेकी इच्छा करोगे, वे तुमको उसी-उसी रूपमें दर्शन देंगे। जो भक्तियुक्त होकर साधन करेंगे, वे चाहे इच्छा करें या न करें, विभूतियाँ आप ही उनके समीप जा पहुँचेंगी।

इसके बाद 'वीरशक्ति'की बात कही जाती है। वीर-लक्ष्मी जो हैं, वे भी सीताका ही रूप हैं।

वक्ता—चिदात्मासे वियुक्त होनेपर प्रकृतिकी कैसी अवस्था होती है, ज्ञानमय परमात्मासे विच्छिन्न होनेपर जीवको कैसी व्याकुलता होनी चाहिये, अज्ञान या अविद्याद्वारा ज्ञानके अपहृत होनेपर पुनः ज्ञान-प्राप्तिके लिये कैसी चेष्टा होनी चाहिये, किस प्रकार निरन्तर स्मरण होना चाहिये—जगत्‌को इस बातकी शिक्षा देना ही सीताके द्वितीय व्यक्त (अर्थात् रामायणमें जानकी-रूपमें) अवतारका मुख्य प्रयोजन है।

(सीता) की कामना की, तब वह धर्म (अर्थात् रावण)-निर्जित हुआ (अर्थात् धर्मद्वारा अभिभूत हुआ, अर्थात् स्वयं धर्ममय हुआ), तभी श्रीरामके हाथसे उसकी मुक्ति हुई। जब उसने ब्रह्मविद्या (सीता) को देखा, तभी उसके अंदर ज्ञानका कुछ उदय हुआ। [तब वह इस ब्रह्मविद्याको प्राप्त करनेके लिये, मुक्ति-प्राप्तिके लिये उद्योगशील हुआ।] उसीने कहा—'(सीताको) छोड़ दो, नहीं तो सर्वनाश होगा।' परंतु उसने छोड़ना न चाहा; कहा—'सर्वनाश होनेपर भी मैं नहीं छोड़ूँगा।' रावणकी इस अवस्थाके साथ भक्तकी अवस्थाकी तुलना करो। जब भक्तके हृदयमें यथार्थ भक्तिका आविर्भाव होता है, जब भजनीयका रूप कुछ उसकी समझमें आता है, तब फिर सर्वनाश होनेपर भी वह उनको छोड़ना नहीं चाहता। यहाँ 'सर्वनाश' का अर्थ है—सांसारिक जो कुछ है, उसका नाश।

जगज्जननी जनक-नन्दिनी श्रीसीतादेवी

(लेखक—राष्ट्रपति-पुरस्कृत डॉ० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, शास्त्री, वेदान्ताचार्य, एम्०ए०, पी-एच्० डी०)

मङ्गलाचरण

इच्छाज्ञानक्रियाशक्तित्रितयं यद्भावसाधनम्।
तद् ब्रह्मसत्तासामान्यं सीतातत्त्वमुपास्महे॥

(सीतोपनिषद् १)

सीताजीकी परब्रह्मता

उपनिषदोंका वैदिक वाङ्मयमें मूर्धन्य स्थान है। उपनिषद् अनेक हैं, जिनमेंसे 'सीतोपनिषद्' सीतामाताकी महिमाका प्रख्यापक है। उसमें यह प्रतिपादन किया गया है कि 'भगवती सीता समस्त प्राणियोंकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी सम्पादिका हैं। वे मूल-प्रकृति हैं'—

उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम्।
सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता॥

(सीतोपनिषद्)

इस लक्षणसे लक्षित सीताजी वही 'ब्रह्म' हैं, जिसके विषयमें तैत्तिरीयोपनिषद्में कहा गया है—'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद् विजिज्ञासस्व, तद् ब्रह्म'। (३। १। १)

वेदान्त-दर्शनने जिस दृष्टिसे ब्रह्मको 'प्रकृति' बताया है, ('प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्।'—ब्रह्मसूत्र १। ४। २३), उसी दृष्टिसे उपनिषद्के उपर्युक्त वचनमें सीता-माताको भी 'मूलप्रकृति' कहा गया है।

सीताजीका अवतार

वेदावतार वाल्मीकि-रामायणमें लोक-पितामह ब्रह्माजीका वचन है—'सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुः' (६। ११७। २७), जिसका अभिप्राय यह है कि जब विष्णुभगवान् रामरूपमें महाराज दशरथकी राजधानीके प्रासादमें अवतीर्ण हुए थे, तब भगवती लक्ष्मी महाराज जनककी राजधानी मिथिलाकी पावन भूमिपर अवतीर्ण हुई थीं। जो महामहिमामयी परमा शक्ति निखिल ब्रह्माण्डोंकी जननी हैं, वे ही जगत्पर अपना अनुग्रह प्रदर्शित करनेके लिये महाराज जनककी सुकुमार नन्दिनी बनीं। परब्रह्म परमात्माका, जिसके एकांशमें अनेक कोटि लोक-लोकान्तर विद्यमान हैं, किसी एक भाग्यवान् व्यक्तिके पुण्यसदनमें पुत्र वा पुत्रीके रूपमें प्रकट होना सदासे आश्चर्यमयी घटना रही है। अध्यात्मरामायणमें श्रीरामावतारके प्रसङ्गमें माता कौसल्याका वचन है—

जठरे तव दृश्यन्ते ब्रह्माण्डाः परमाणवः॥
त्वं ममोदरसम्भूत इति लोकान् विडम्बसे।

(१। ३। २५-२६)

इसी प्रकार श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णावतारके प्रसङ्गमें माता देवकीकी उक्ति है—

विश्वं यदेतत् स्वतनौ निशान्ते
यथावकाशं पुरुषः परो भवान्।
बिभर्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभू-
दहो नृलोकस्य विडम्बनं हि तत्॥

(१०। ३। ३१)

यही लोक-विडम्बना भगवती सीताके अवतारके प्रसङ्गमें है कि अखिल-भुवन-माता किसी एक व्यक्तिके वेश्ममें पुत्री बनकर आयीं।

सीता और राममें अनन्यता

शक्ति और शक्तिमान् अपृथक्-सम्बन्धसे सम्बद्ध हैं। वे अनन्य हैं। अतएव भगवान् विष्णु और भगवती लक्ष्मी किंवा सीता और राम एक ही हैं। विष्णुसे श्री (लक्ष्मी) भिन्न नहीं हैं—

अनपायिनी भगवती श्रीः साक्षादात्मनो हरेः ।

(श्रीमद्भा० १२ । ११ । २०)

विष्णु भगवान् सर्वव्यापक हैं और उनकी शक्ति जगन्माता श्री भी सर्वव्यापिका हैं—

(अ) नित्यैवैषा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी ।
यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम ॥

(विष्णुपुराण १ । ८ । १७)

(आ) त्वयैतद् विष्णुना चाम्ब जगद् व्याप्तं चराचरम् ।

(अग्निपुराण २३७ । १०)

अवताररूपमें भी श्रीलक्ष्मीदेवी विष्णुभगवान्‌की सहायिका होती हैं । रामरूपमें वे सीता हैं और कृष्ण-रूपमें वे रुक्मिणी हैं । जब भगवान् देवताओंमें अवतीर्ण होते हैं, तब श्री भी देवी-रूप धारण कर लेती हैं; और जब भगवान् मनुष्यलोकमें मानवाकृति धारण करते हैं, तब श्री भी मानवाकृतिमती बन जाती हैं—

एवं यदा जगत्स्वामी देवदेवो जनार्दनः ।
अवतारं करोत्येषा तदा श्रीस्तत्सहायिनी ॥
राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि ।

(विष्णुपुराण १ । ९ । १४२, १४४)

श्री और श्रीमान् अनन्य और एक तत्त्व होनेपर भी भक्तानुग्रह-विग्रहरूपमें भिन्न प्रतीत होते हैं । लक्ष्मी-नारायण, सीता-राम, राधा-कृष्ण आदि रूप परब्रह्मके ही लीलानिमित्तक दो-दो रूप हैं; किंतु युगलरूपमें अनन्यता है । श्रीरामने अग्निदेवके प्रति सीताजीके साथ अपनी अनन्यताका प्रतिपादन करते हुए कहा था—

अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा ॥

(वा० रा० ६ । ११८ । १९)

'प्रभा एवं प्रभा-घन सूर्य जिस प्रकार अनन्य और अभिन्न हैं, उसी प्रकार सीतादेवी मुझ रामचन्द्रसे अनन्य और अभिन्न हैं ।' स्वयं श्रीसीतादेवीने रावणके प्रति श्रीरामसे अपनी अनन्यताकी स्थापना इन्हीं शब्दोंमें की थी—

शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा ।
अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा ॥

(वा० रा० ५ । २१ । १६)

'अरे राक्षस ! अपने धन और वैभवका बखान करके तेरा मुझे ललचाना वृथा है । मैं तो राघव—रामसे उसी प्रकार अनन्य हूँ, जिस प्रकार सूर्यसे उसकी प्रभा अनन्य होती है ।'

विलक्षण प्रादुर्भाव

एक दिन राजर्षि जनक खेत जोत रहे थे । इसी बीच एक स्थानपर उनके हलकी फाल रुकी, तो उन्होंने देखा कि फालके निकट पृथ्वीके अधस्तलमें एक कन्या पड़ी हुई है । महाराजने उस दिव्य-जन्मा कन्याको गोदमें ले लिया और अपनी पुत्री मानकर उसका लालन-पालन करने लगे । संस्कृतमें हलकी फालको 'सीता' कहते हैं । दिव्य-मूर्ति कन्याका प्रादुर्भाव फालके समीप होनेके कारण उसका नाम महाराजने 'सीता' ही रख लिया । इसी नामसे उनकी प्रसिद्धि हुई—

(अ) अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता ततः ॥
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता ।

(वा० रा० १ । ६६ । १३-१४)

(आ) तस्य लाङ्गलहस्तस्य कृषतः क्षेत्रमण्डलम् ।
अहं किलोत्थिता भित्त्वा जगतीं नृपतेः सुता ॥

(वा० रा० २ । ११८ । २८)

सीतामाताका इस प्रकारसे प्रादुर्भाव दिव्य एवं परम अलौकिक था । किसी माताके गर्भसे उत्पन्न न होनेके कारण वे 'अयोनिजा' कहलाती थीं । जनकजीने विश्वामित्रजी-से जब सीताजीके बारेमें चर्चा की थी, तब उन्हें 'अयोनिजा' बताया था—

वीर्यशुल्केति मे कन्या स्थापितेयमयोनिजा ।

(वा० रा० १ । ६६ । १५)

अर्थात् 'मेरी इस कन्याका जन्म किसी माताके गर्भसे नहीं हुआ है । यह दिव्यजन्मा है । मैंने यह निश्चय किया है कि इसका विवाह किसी शूर-वीरसे ही करूँगा ।'

स्वयं सीताजीने भी महर्षि अत्रिकी धर्मपत्नी अनसूया जीको अपना परिचय देते हुए अपनेको 'अयोनिजा' ही कहा था—

अयोनिजां हि मां ज्ञात्वा नाध्यगच्छन् स चिन्तयन् ।
सदृशं चाभिरूपं च महीपालः पतिं मम ॥

'मुझे अयोनिजा कन्या समझकर वे भूपाल मेरे लिये योग्य

और परम सुन्दर पतिका विचार करने लगे; किंतु किसी निश्चयपर नहीं पहुँच सके।'

(वा० रा० २ । ११८ । १७)

माता-पितासे उत्पन्न न होना

सीताजीका किसी माता-पितासे उत्पन्न न होना वेदान्तशास्त्र-सम्मत है। 'स्मर्यतेऽपि च लोके'—इस ब्रह्मसूत्र (३ । १ । १९) के भाष्यमें आचार्य शंकरका वचन है—

'अपि च स्मर्यते लोके। द्रोणधृष्टद्युम्नप्रभृतीनां सीताद्रौपदीप्रभृतीनां चायोनिजत्वम्। तत्र द्रोणादीनां योषिद्विषयैकाहुतिर्नास्ति। धृष्टद्युम्नादीनां तु योषित्पुरुषविषये द्वे अप्याहुती न स्तः।'

इसका भाव यह है कि द्रोणाचार्य बिना माताके ही उत्पन्न हुए थे तथा सीताजी, द्रौपदी और धृष्टद्युम्न बिना माता-पिताके ही प्रकट हुए थे। सीताजीका भूतलसे प्रादुर्भाव रामायणके अनुसार ऊपर बताया जा चुका है। द्रौपदी और धृष्टद्युम्न, महाभारतके अनुसार, महाराज द्रुपदके यज्ञानलसे प्रकट हुए थे। यहाँपर यह प्रतिपादन अप्रासङ्गिक न होगा कि ईश्वरका मानवादिरूपमें जन्म भी अलौकिक ही होता है। उस समय वे अपनी मायासे (जीवोंकी दृष्टिमें) भौतिक-देहधारी-से प्रतीत होते हैं, किंतु वस्तुतः वे प्रादुर्भाव-वेलामें कोई प्राकृत देह धारण नहीं करते। गीताके 'अजोऽपि सन्नव्ययात्मा (४ । ६)' इत्यादि श्लोककी व्याख्यामें आचार्य शंकरने श्रीभगवान्का इस रूपमें अभिप्राय समझाया है—

'तां प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय वशीकृत्य सम्भवामि देहवानिव भवामि, जात इव, आत्ममायया आत्मनो मायया, न परमार्थतो लोकवत्।'

अर्थात् "मैं (श्रीकृष्ण) अपनी त्रिगुणात्मिका प्रकृतिको वशमें करके अपनी मायासे देहधारी-सा और उत्पन्न हुआ-सा हो जाता हूँ; वस्तुतः अन्य लौकिक व्यक्तियोंके समान न तो देह धारण करता हूँ और न जन्म लेता हूँ।"

इस शास्त्रीय दृष्टिसे भगवती सीताका आविर्भाव अलौकिक था और उनका रूप पाञ्चभौतिक न होकर शुद्धसत्त्वमय ('पञ्चरात्र'के शब्दोंमें 'षाड्गुण्यमय') ही था।

अलौकिक तिरोभाव

सीताजीका तिरोभाव भी अलौकिक था। अयोध्याकी संदेहवती जनताके संशयका निवारण करनेके लिये जब उन्होंने शपथ लेनेका विचार किया, तब सहसा दिव्य-गन्ध-सुरभित मनोरम पवन प्रवाहित हो उठा। सीता माताने कहा—

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥
यथैतत् सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्परं न च।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥

(वा० रा० ७ । ९७ । १४–१६)

'मैंने श्रीरामके अतिरिक्त किसी अन्य मनुष्यका मनसे भी चिन्तन नहीं किया है; मैंने मनसा-वाचा-कर्मणा श्रीरामका ही आराधन किया है; मेरा यह वचन सत्य है कि श्रीरामके अतिरिक्त मेरा किसी परपुरुषसे परिचय भी नहीं है; इन तीनों सत्योंके प्रतापसे माधवी पृथ्वी देवी मुझे अपनेमें लीन कर लें।'

भगवती सीताके इस आदर्श वचनका उच्चारण करते ही एक चमत्कार हुआ। भूतलसे एक परमोत्तम दिव्य सिंहासन प्रकट हो गया, जिसे अमित-विक्रम-सम्पन्न दिव्य-रत्न-विभूषित नागराजोंने अपने मस्तकोंपर धारण कर रक्खा था। उस सिंहासनपर श्रीधरणी देवी विराजमान थीं। उन्होंने भगवती सीता देवीका स्वागतद्वारा अभिनन्दन करते हुए उन्हें अपनी गोदमें लेकर सिंहासनपर बिठा लिया, तत्पश्चात् वे भूतलमें विलीन हो गयीं। सीताजीके इस दिव्य और अद्भुत तिरोभावको देखकर समस्त प्रेक्षक जगत् अत्यन्त मुग्ध हो गया—

तन्मुहूर्तमिवात्यर्थं समं सम्मोहितं जगत्॥

(वा० रा० ७ । ९७ । २६)

नारी-जगत्‌के लिये आदर्शकी स्थापना

दिव्य अवतारका प्रयोजन धर्मका संरक्षण होता है। एवं वेद-शास्त्रोक्त कर्तव्यका पालन ही 'धर्म' है। उसीके अन्तर्गत पत्नी-धर्मका स्वयं भगवती लक्ष्मीने सीताजीके रूपमें पालन करके जगत्‌के सम्मुख पति-व्रतका आदर्श स्थापित किया था।

वन-वासके अनेकानेक कष्टों और संकटोंकी कोई चिन्ता न करते हुए सीताजीने श्रीरामके साथ वन-गमन ही स्वीकार

किया। वे मिथिलेशनन्दिनी थीं, जनकजीके प्रासादके आमोद-प्रमोदमय वातावरणमें पली थीं और विवाहके अनन्तर अयोध्याके वैभवमय प्रासादमें रही थीं। वे चाहतीं तो श्रीरामके वन-वासके दिनोंमें, समय-समयपर अयोध्या और मिथिलाके राज-भवनोंमें रह सकती थीं; किंतु उन्होंने पतिसेवाके लिये उस सुखका परित्याग करके अरण्य-जीवनको सहर्ष अङ्गीकार किया—

सर्वलक्षणसम्पन्ना नारीणामुत्तमा वधूः ॥
सीताप्यनुगता रामं शशिनं रोहिणी यथा।
(वा० रा० १। १। २७-२८)

'समस्त शुभ लक्षणोंसे विभूषित तथा स्त्रियोंमें उत्तम सीता भी रामचन्द्रजीके पीछे चलीं; जैसे चन्द्रमाके पीछे रोहिणी चलती है।'

सम्पत्तिमें साथ रहनेके लिये परिवारके सभी सदस्य लालायित रहते हैं, किंतु विपत्तिके समयमें ही सच्चे सौहार्दकी परीक्षा होती है।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥
(मानस० ३। ४। ४)

सीताजीसे मिलकर पति-सेवा-परायणा अनसूयाजीको भी बड़ी प्रसन्नता हुई थी। उन्होंने कहा था—

त्यक्त्वा ज्ञातिजनं सीते मानवृद्धिं च मानिनि।
अवरुद्धं वने रामं दिष्ट्या त्वमनुगच्छसि॥
(वा० रा० २। ११७। २२)

'हे सीते! बन्धु-बान्धवोंका परित्याग करके एवं सब प्रकारके आदर-सम्मान और धन-वैभवको भी अकिंचित्कर मानकर पिता दशरथके आदेशका पालन करनेके लिये प्रतिज्ञा-बद्ध वनवासी रामका तुम अनुगमन कर रही हो—यह देखकर मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है।'

अनसूयाजीने अपने वार्तालापमें नारी-धर्मकी विशेष चर्चा की थी, जिसका संक्षेप है—

स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः॥
(वा० रा० २। ११७। २४)

'उदात्त स्वभाववाली महिलाओंके लिये पति ही परमोत्तम देवता है।' इसपर सीताजीने भी कहा कि 'हाँ, माताजी! यह बात तो मुझे बचपनसे ही विदित है'—

विदितं तु ममाप्येतद् यथा नार्याः पतिर्गुरुः॥
(वा० रा० २। ११८। २)

फिर वे बोलीं कि वनको प्रस्थान करते समय माता कौशल्याके उपदेश मुझे याद हैं; और जब पिता जनकजीने यज्ञकी योजक-नामक अग्निकी संनिधिमें मेरा पाणि पतिदेवको ग्रहण कराया था, तब मेरी माताजीने जो उपादेय उपदेश मुझे दिया था, उसका भी मुझे स्मरण है। मेरी माताने बताया था—

पतिशुश्रूषणान्नार्यास्तपो नान्यद् विधीयते॥
(वा० रा० २। ११८। ९)

'पतिदेवकी सेवा-शुश्रूषाके अतिरिक्त नारीके लिये अन्य किसी तपश्चर्याका विधान शास्त्रमें नहीं है।'

श्रीसीता-रामके परस्पर स्नेहमय अनेक प्रसङ्ग हैं, जिनमेंसे एक इस प्रकार है—ऋषियोंकी रक्षाके लिये युद्धमें राक्षसोंका वध करनेकी प्रतिज्ञा श्रीरामभद्रने की थी और इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये रक्षोबहुल दण्डकारण्यकी ओर उन्होंने प्रस्थान किया था। जनकनन्दिनीको दण्डक-वनमें जाना रुचिकर नहीं था। उनकी अरुचिका कारण वन्य पशुओं अथवा राक्षसोंसे भय नहीं था, अपितु यह था कि श्रीराम अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिये कहीं उन राक्षसोंका भी वध करना प्रारम्भ न कर दें, जो हमसे वैर नहीं करेंगे। अपने मनके इसी संशयका निवारण करनेके लिये और श्रीरामको अकारण राक्षस-वधसे निवृत्त करनेके लिये एक दिन,समय पाकर, उन्होंने 'हृद्यया स्निग्धया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत्।' (वा० रा० ३। ९। १) राघवेन्द्रसे कहा—'नाथ! संसारमें तीन व्यसन प्रमुख हैं—मिथ्याभाषण, परदाराभिगमन और बिना वैरके क्रोध'—

मिथ्यावाक्यं तु परमं तस्माद् गुरुतरावुभौ॥
परदाराभिगमनं विना वैरं च रौद्रता।

दण्डक-वनमें प्रवेश करें। यदि बिना अपराधके ही आप राक्षसोंका संहार करने लगेंगे तो जनता क्या कहेगी!'

सीताजीके ये वचन सुनकर श्रीरामने कहा—'हे धर्मज्ञे जानकि! हमलोग क्षत्रिय हैं और धनुषको इसीलिये धारण करते हैं कि दुष्टात्माओंसे निरीह और निर्दोष जनताको त्रास न हो। दण्डक-वनके राक्षस यहाँ तपश्चर्यामें निरत निरपराध ऋषि-मुनियोंके यजन-भजनमें निरन्तर विघ्न ही नहीं करते रहते, अपितु उन महात्माओंको ये नरमांसभोजी मारकर खा जाते हैं। राक्षसोंसे संत्रस्त होकर वे महात्मा लोग मेरी शरणमें आये थे और मैंने उनकी रक्षाकी प्रतिज्ञा की है; अतएव दुर्दान्त दैत्योंका संहार करके ऋषि-रक्षा करना उस व्यसनके अन्तर्गत नहीं है, जिसकी मुझमें सम्भावना करके तुम चिन्तित हो रही हो। तुमने अच्छा किया, जो अपने मनकी बात मुझसे कह दी। तुम्हारा मुझमें स्नेह है, सौहार्द है; तभी तो तुमने अपने दृष्टिकोणको मेरे सम्मुख रखा। प्रिय व्यक्तिको ही समझानेका प्रयत्न किया जाता है, जैसा कि तुमने अभी किया है। तुम्हारे इस प्रीति-भावसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। हे शोभने! तुमने अपने कुलके अनुकूल ही मुझे समझानेका उपक्रम किया है। तुम मेरी सहधर्मचारिणी हो, अतएव तुम मेरे लिये अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हो'—

मम स्नेहाच्च सौहार्दादिदमुक्तं त्वया वचः॥
परितुष्टोऽस्म्यहं सीते न ह्यनिष्टोऽनुशास्यते।
सदृशं चानुरूपं च कुलस्य तव शोभने।
सधर्मचारिणी मे त्वं प्राणेभ्योऽपि गरीयसी॥
(वा० रा० ३।१०।२०-२१)

इस प्रसङ्गसे सीताजीकी यह भावना प्रकट होती है कि श्रीराम किसी भी अंशमें धर्मके मार्गसे विच्युत न हो जायँ। यही सभी सती-साध्वी पत्नियोंका कर्तव्य होना चाहिये कि वे पतिको धर्म-कर्मकी ओर ही प्रवृत्त करती रहें।

वन-वास-वेलामें पति-परायणा सीताजीके हृदयमें सदा यही कामना रहती थी कि श्रीरामचन्द्रजी अपने पिताजीकी आज्ञाका पालन कर सकें। समय-समयपर उनके उद्गार इस भावनाके द्योतक हैं। नौकामें गङ्गा-पार करते समय उन्होंने गङ्गाजीसे प्रार्थना की—

पुत्रो दशरथस्यायं महाराजस्य धीमतः।
निदेशं पालयत्वेनं गङ्गे त्वदभिरक्षितः॥
चतुर्दश हि वर्षाणि समग्राण्युष्य कानने।
(वा० रा० २।५२।८३-८४)

'हे गङ्गा माता! दशरथ-नन्दन ये मेरे प्राणनाथ वनमें पूरे चौदह वर्ष रहकर अपने पिताजीके आदेशका पालन कर सकें। आप इनकी रक्षा करती रहें।'

इसी प्रकार यमुना-पार करते समय वे बोलीं—

स्वस्ति देवि तरामि त्वां पारयेन्मे पतिर्व्रतम्॥
(वा० रा० २।५५।१९)

'हे यमुना माता! मैं तुम्हारे पार जा रही हूँ। मेरी कामना है कि मेरे पतिदेव अपने पित्रादेश-पालनरूप व्रतका अन्ततक निर्वाह कर सकें।'

वट-वृक्षकी छायामें विश्राम करते समय भी उन्होंने कहा—

नमस्तेऽस्तु महावृक्ष पारयेन्मे पतिर्व्रतम्॥
(वा० रा० २।५५।२४)

'हे वनस्पते! मैं आपका अभिवादन करती हूँ। मेरी इच्छा है कि मेरे पतिदेव सफलतापूर्वक अपने व्रतका पालन कर सकें।'

द्वितीय वन-निवासके समय भी श्रीरामसे अपने वियोगके कष्टको सहन करते हुए सीताजीने लक्ष्मणजीके द्वारा श्रीरामके लिये जो संदेश भेजा था, वह स्वर्णाक्षरोंमें लिखे जाने-योग्य है—

यथा भ्रातृषु वर्तेथास्तथा पौरेषु नित्यदा।
परमो ह्येष धर्मस्ते तस्मात् कीर्तिरनुत्तमा॥
(वा० रा० ७।४८।१५)

'राजन्! अपनी प्रजाके प्रति वही स्नेह-भाव रखियेगा, जो आप अपने छोटे भाइयों—भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके प्रति रखते आये हैं। यही आपका परम धर्म है। इसका पालन करते रहनेसे आपकी उत्तम कीर्तिका विस्तार होगा।' अपने कष्टको भुलाते हुए वे बोलीं—

अहं तु नानुशोचामि स्वशरीरं नरर्षभ॥
पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः॥
प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः।
(वा० रा० ७।४८।१६-१८)

'हे राजन् ! मुझे अपने शरीरकी चिन्ता नहीं है; क्योंकि नारीके लिये पति ही देवता है, पति ही बन्धु है, पति ही गुरु है । अतएव उसे अपने प्राण निछावर करके भी विशेष ध्यान रखकर वही कार्य करना चाहिये, जो पतिको प्रिय हो ।'

इस प्रकार उदात्त एवं परमोत्तम पति-भक्तिकी चर्चा करते हुए सीताजीने स्वयं भी उसीका आचरण करते हुए जगत्के सम्मुख भारतीय पत्नीका अनुकरणीय आदर्श स्थापित किया था । वही वेदोक्त प्राच्य सनातन आदर्श अद्यतन नारीके लिये भी पथ-प्रदर्शक हो, मङ्गलमय हो ।

श्रीसीता—परात्परा शक्ति

(लेखक—श्रीसीतारामीय श्रीमथुरादासजी महाराज)

सकलकुशलदात्रीं भक्तिमुक्तिप्रदात्रीं
त्रिभुवनजनयित्रीं दुष्टधीनाशयित्रीम् ।
जनकधरणिपुत्रीं दर्पिदर्पप्रहन्त्रीं
हरिहरविधिकर्त्रीं नौमि सद्भक्तभर्त्रीम् ॥

'मैं उन भगवती सीताजीकी स्तुति करता हूँ, जो सर्व-मङ्गलदायिनी हैं—यहाँतक कि भक्ति और मुक्तिका भी दान करती हैं, जो त्रिभुवनकी जननी हैं तथा दुर्बुद्धिका नाश करनेवाली हैं, जो राजा जनककी यज्ञभूमिसे प्रकट हुई थीं तथा जो अभिमानियोंके गर्वको चूर्ण-विचूर्ण कर देनेवाली हैं, ब्रह्मा-विष्णु-महेशकी भी जननी हैं एवं श्रेष्ठ भक्तोंका पोषण करनेवाली हैं ।'

श्रीमज्जगज्जननी भगवती श्रीसीताजीकी महिमा अपार है । वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास तथा धर्म-ग्रन्थोंमें इनकी अनन्त लीलाओंका शुभ वर्णन पाया जाता है । ये भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी प्राणप्रिया आद्याशक्ति हैं । इन्हींके भ्रुकुटि-विलासमात्रसे उत्पत्ति-स्थिति-संहारादि कार्य हुआ करते हैं । श्रुतिका वाक्य है—

उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम् ।
सा सीता भवति ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता ॥
(श्रीरामोत्तरतापनी०)

'समस्त देहधारियोंकी उत्पत्ति, पालन तथा संहार करनेवाली आद्या-शक्ति मूल-प्रकृतिसंज्ञक श्रीसीताजी ही हैं ।' पुनः—

निमेषोन्मेषसृष्टिस्थितिसंहारतिरोधानानुग्रहादिसर्वशक्तिसामर्थ्यात्साक्षाच्छक्तिरिति गीयते ।
(सीतोपनिषद्)

'जिसके नेत्रके निमेष-उन्मेषमात्रसे ही संसारकी सृष्टि-स्थिति-संहारादि क्रियाएँ होती हैं, वह श्रीसीताजी हैं । तिरोधान-अनुग्रहादि सर्वसामर्थ्यसे सम्पन्न होनेके कारण श्रीजानकीजी साक्षात् आद्या परात्परा शक्ति कहलाती हैं ।' पुनः—

भूर्भुवः स्वः सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोका अन्तरिक्षं सर्वे त्वयि निवसन्ति । आमोदः प्रमोदो विमोदः सम्मोदः सर्वांस्त्वं संधत्से । आञ्जनेयाय ब्रह्मविद्याप्रदात्रि धात्रि त्वां सर्वे वयं प्रणमामहे प्रणमामहे ।
(श्रीमैथिलीमहोपनिषद्)

'श्रीजनकराजतनये ! पृथिवी, पाताल तथा स्वर्ग—ये तीनों लोक, सप्तद्वीपवती वसुंधरा तथा आकाश—ये सब आपमें प्रतिष्ठित हैं । आमोद, प्रमोद, विमोद, सम्मोद—इन सबको आप धारण करती हैं । अञ्जनीनन्दन पवनपुत्रको आपने ही ब्रह्मविद्याका सदुपदेश दिया था । हे जननि ! हम सब महर्षिगण आपके चरणोंमें बारंबार नमस्कार करते हैं ।' पुनः—

अर्वाची सुभगे भव सीते ! वन्दामहे त्वा ।
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि ॥
([illegible])

उनका गान करते हैं। वे कार्य-कारणसे परे और कार्य-कारण-निमित्त शक्तिसम्पन्ना हैं। ब्रह्माणी, लक्ष्मी और गौरी आदि अनन्त शक्तियोंकी उत्पादिका हैं। श्रीरामके आनन्दकी मूर्ति हैं। वे ही श्रीजनकजीके योगफलके समान परम शोभा देती हैं।'

—इत्यादि अनन्तानन्त श्रुतियाँ भगवती श्रीसीताजीके परत्वका मुक्तकण्ठसे प्रतिपादन करती हैं। वाल्मीकिसंहितामें तो श्रीजानकीजीको श्रुतियोंकी भी माता बतलाया गया है। एक बार सब श्रुतियोंको यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि 'हमारे माता-पिता कौन हैं?' इसके जाननेके लिये बहुत कुछ प्रयास किया गया। पर जब पता न लगा, तब श्रुतियाँ श्रीब्रह्माजीके पास गयीं और बोलीं—

कास्माकं जननी देव कः पितेति निबोधय।

इसके उत्तरमें श्रीब्रह्माजी कहते हैं—

तामेव जानकीं वित्त जननीमात्मनः पराम्।
श्रीरामं पितरं वित्त सत्यमेतद्वचो मम॥

'उन्हीं श्रीजानकीजीको तुम अपनी जननी समझो और श्रीरामजीको ही अपना पिता समझो, यह मैं तुमसे सत्य-सत्य वचन कहता हूँ।' इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीसीताजी सकलश्रुतिवन्दिता परात्परा शक्ति हैं।

नित्यां निरञ्जनां शुद्धां रामाभिन्नां महेश्वरीम्।
मातरं मैथिलीं वन्दे गुणग्रामां रमारमाम्॥
आद्यां शक्तिं महादेवीं श्रीसीतां जनकात्मजाम्।

'नित्या, परमनिर्मला, परमविशुद्धा, गुण-आगरी, श्रीकी भी परम श्री, आद्याशक्ति, महेश्वरी, श्रीरामजीसे अभिन्ना, श्री-जनकात्मजा, मैथिली, माता श्रीसीताजीकी मैं वन्दना करता हूँ।'

श्रीशंकरजीका भी वाक्य है—

सीतायाश्च परादेव्या लीलामात्रमिदं जगत्।

'यह परमाश्चर्योंसे परिपूर्ण जगत् परात्परा देवी श्री-सीताजीका लीलामात्र ही है।'

सदाशिवसंहितामें श्रीसाकेतधामके वर्णनमें आया है—

तन्मध्ये जानकी देवी सर्वशक्तिनमस्कृता।

'उस दिव्यधामके परमरमणीय मण्डपके सिंहासनके मध्य-भागमें समस्त शक्तियोंद्वारा नमस्कृता श्रीसीताजी विराजमान हैं।'

श्रीवृहद्विष्णुपुराणान्तर्गत श्रीमिथिला-माहात्म्यमें भी कहा गया है—

जगद्धात्रीं महामायां ब्रह्मरूपां सनातनीम्।
दृष्ट्वा प्रमुदिताः सर्वे देवताप्सरकिंनराः॥

'जगन्माता, महामाया, ब्रह्मरूपा, सनातनी शक्ति श्रीसीताजीको देखकर ब्रह्मादि देवगण, नारदादि मुनिगण, गन्धर्व, किंनर और अप्सरागण परम हर्षित हुए।'

श्रीमद्रामायणमें भी शिव-वाक्य है—

जानक्यंशादिसम्भूतानेकब्रह्माण्डकारिणी।
सा मूलप्रकृतिर्ज्ञेया महामायास्वरूपिणी॥

'श्रीजानकीजीके अंशोंद्वारा ही अनेकानेक जगत्को उत्पन्न करनेवाली शक्तियाँ प्रादुर्भूत होती हैं। वह तो मूल-प्रकृतिस्वरूपिणी महामाया आद्याशक्ति हैं।'

महाशम्भुसंहितामें श्रीअगस्त्यजीने अपने प्रिय शिष्य श्रीसुतीक्ष्णजीसे कहा है—

सीताकलांशाद् बह्व्यश्च शक्तयः सम्भवन्ति हि।

'श्रीसीताजीके कलांशसे बहुत-सी शक्तियाँ उत्पन्न होती ही रहती हैं।'

श्रीसम्प्रदायाचार्य श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजने भी भगवतीकी अपरिमित शक्तिका वर्णन करते हुए लिखा है—

ऐश्वर्यं यदपाङ्गसंश्रयमिदं भोग्यं दिगीशैर्जग-
च्चित्रं चाखिलमद्भुतं शुभगुणा वात्सल्यसीमा च या।
विद्युत्पुञ्जसमानकान्तिरमितक्षान्तिः सुपद्मेक्षणा
दद्यान्नोऽखिलसम्पदो जनकजा रामप्रिया सानिशम्॥

'दिक्पालादि और लोकपालादिके ऐश्वर्य-भोग तथा आश्चर्यमय अद्भुत ब्रह्माण्ड जिनके कृपा-कटाक्षपर ही सर्वथा अवलम्बित हैं, जो असीम वात्सल्यरससे पूर्ण हैं, वे शुभ-गुणोंसे युक्त, विद्युत्पुञ्जके समान गौर तेजसम्पन्ना, परम क्षमासम्पन्ना, कमलनयना, भगवत्प्रिया, आद्याशक्ति भगवती श्रीसीताजी निरन्तर हमें मोक्षादि सम्पत्ति प्रदान करें।'

श्रीगोस्वामीजीने भी श्रीसीताजीका बड़ा ही महिमामय गुण-गान किया है। यथा—

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥
(मानस १। ५ श्लोक)

'उत्पत्ति, पालन तथा संहार करनेवाली, सर्वशक्ति-सम्पन्ना, क्लेशहारिणी, समस्त कल्याणकारिणी, श्रीराम-वल्लभा भगवती श्रीसीताजीको मैं नमस्कार करता हूँ।'

पुनः—

तासु अंस उपजहिं गुन खानी । अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई । राम बाम दिसि सीता सोई ॥
(मानस० १ । १४७ । ४)

लखा न मरमु राम बिनु काहूँ । माया सब सिय माया माहूँ ॥
(वही, २ । २५१ । २)

जयति श्रीस्वामिनी सीय सुभ नामिनी
दामिनी कोटि निज देह दरसै ।
इंदिरा आदि कै मत्त-गज-गामिनी
देव-भामिनि सबै पाँय परसै ॥
(विनय-पत्रिका)

एक भक्तने जगन्माताकी स्तुति करते हुए क्या ही अच्छा कहा है—

सुराः सर्वे खर्वास्तव चरणमूले सुरतरो-
स्त्वमासीना मूलेऽनुचितमिति मत्वा सुरतरुः ।
भवन्मन्चाधस्ताद्भुवि विविधरत्नेषु बहुधा
विशन् प्रायश्चित्तं चरति बहुरूपैः परतमे ॥
(श्रीजानकीचरणचामरस्तोत्र १०९)

'हे परमेश्वरी ! आपके सामने बड़े-बड़े देवगण परम तुच्छ हैं। अतः वे जब आपके दरबारमें आते हैं, तब आपके श्रीचरण-मूलमें आकर नम्र-भावसे बैठते हैं। यह देखकर कल्पवृक्षने सोचा कि जिसके चरणोंकी महान् देवतागण वन्दना करते हैं, वे भगवती श्रीसीताजी मेरी छायामें बैठती हैं, मैं उनके ऊपर हो जाता हूँ—यह मेरी बड़ी भारी धृष्टता है। हे अम्ब ! इस अक्षम्य अपराधको क्षमा करानेके लिये ही इस रत्न-मण्डपकी स्वच्छभूमिमें छायारूपेण प्रविष्ट होकर आपके चरणोंका बारंबार स्पर्श करके कल्पतरु अपने अपराधकी क्षमा-याचना करता है।'

श्रीजानकीजी तो अतुलनीय शक्ति हैं, उनकी तुलनामें अनन्त ब्रह्माण्डमें कोई भी प्राप्त नहीं हो सकता। ठीक ही कहा है—

एषा विश्वविलोपमा न तुलनां धत्ते ह्यमुष्या रमा
वाणी चापि रमा च मन्यत इयं निस्संशयं निश्चया ।
इन्द्राणी विधिनन्दिनी च सकला देवाङ्गना उत्तमा
मन्यन्तेऽप्सरसोऽपि रूपरमिका अस्या हि दासीसमाः॥

'श्रीजानकीजीकी अप्रतिम महिमाने संसारकी सभी उपमाओंको तिरस्कृत कर रखा है। इनकी तुलनामें न उमा आ सकती हैं न वाणी, न लक्ष्मी और न ब्रह्माणी। फिर अन्य श्रेष्ठ देवाङ्गनाओंकी तो बात ही क्या ! ये देवियाँ तथा अप्सरादि तो इनके रूपपर तुच्छ दासीके समान जान पड़ती हैं।'

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी इसी आशयपर कहा है—

जौं पटतरिअ तीय सम सीया । जग असि जुबति कहाँ कमनीया ॥
गिरा मुखर तन अरध भवानी । रति अति दुखित अतनु पति जानी ॥
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही । कहिअ रमासम किमि बैदेही ॥
(मानस० १ । २४६ । २-३)

वेदान्तके प्रकाण्डवेत्ता महात्मा श्रीकाष्ठजिह्वदेव स्वामी-ने भी श्रीकिशोरीजीकी अद्भुत महिमा वर्णन की है—

जनक-लली-नख-द्युति-सरिस निज द्युति कहँ ना जोय ।
ब्रह्म-ज्योति प्रगटत नहीं, अजहूँ लज्जित होय ॥
ललित पाद-अँगुरीन की, सोभा अति सरसाय ।
पंचदेव मानों समुदित बैठे पद [illegible] ॥
सिय-कर सुखदायक सकुचि [illegible] ।
तीनों देवी प्रेम-मिलि पहुँचीं [illegible] ॥
सची-विधात्री-इंदिरा मानत नाहिं निज [illegible] ।
सिय की चितवनि अमिय लहि, [illegible] ॥

भगवती श्रीसीता

(लेखक—स्वर्गीय श्रीरामदयाल मजूमदार, एम० ए०)

श्रीराम-तत्त्व अथवा श्रीसीता-तत्त्वका पूर्णतया वर्णन कौन कर सकता है ! भगवान् सनत्कुमारने दशाननसे कहा था—

'वास्तवमें रूपरहित उस मायावीका रूप कहता हूँ । वह समस्त वृक्षों तथा पर्वतोंमें एवं नद-नदियोंमें विद्यमान है । वही ओंकार है, वही सत्य है, वही सावित्री (गायत्री देवी) और वही पृथ्वी है । सारे जगत्के आधारभूत शेषनागका रूप भी वही धारण किये हुए है । सारे देवता, समुद्र, काल, सूर्य, चन्द्रमा, सूर्यके अतिरिक्त अन्य ग्रह, अहोरात्र, यमराज, वायु, अग्नि, रुद्र तथा मृत्यु, मेघ तथा अष्टावसु-ब्रह्मा-रुद्र आदि प्रधान देव एवं अन्य गौण देव तथा दानव भी उसीके रूप हैं । बिजलीके रूपमें वही कौंधता है, अग्निके रूपमें वही प्रज्वलित होता है, वही विश्वको उत्पन्न करता है, वही उसका पालन करता है और वही भक्षण करता है । इस प्रकार वह सनातन अविनाशी विष्णु अनेक प्रकारसे क्रीडा करता है । उसीने इस समस्त चराचर विश्वको व्याप्त कर रक्खा है । वे भगवान् विष्णु नील कमलके समान श्यामवर्ण हैं और बिजलीके समान पीतवस्त्रको धारण किये हुए हैं । उनके वामाङ्कमें तपाये हुए सोनेके समान आभावाली अविनाशिनी देवी लक्ष्मीजी विराजमान हैं, जिनकी ओर वे सदा देखते रहते हैं और जिन्हें आलिङ्गन किये रहते हैं ।'

सीताराम ऐसे हैं । इनका वर्णन कौन करेगा ? क्या कोई इनका वर्णन कर सकता है ? श्रीमद्भागवतके प्रारम्भमें ही देवर्षि नारद महर्षि व्यासदेवसे कहते हैं—

इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो
यतो जगत्स्थाननिरोधसम्भवाः ।
तद्धि स्वयं वेद भवांस्तथापि वै
प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम् ॥
(श्रीमद्भा० १ । ५ । २०)

'यह विश्व भगवान्का ही रूप है और भगवान् इससे विलक्षण भी हैं; उन्हींके द्वारा इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार होता है । आप इसे निश्चयरूपसे जानते हैं, तथापि आपको दिङ्मात्र-निर्देश—संकेत कर दिया ।'

'आप मुझसे भगवान्की लीलाका वर्णन करनेके लिये कहते हैं; किंतु वे भगवान् कौन हैं ? उनकी लीला क्या है ? श्रीकृष्ण तो चले गये हैं, अब इस जगत्में उनकी लीला क्या है ?' इसके उत्तरमें देवर्षि कहते हैं—'यह जो विश्व है, यह भगवान् ही हैं । परंतु भगवान् इस विश्वसे इतर—अन्य हैं, इस विश्वसे विलक्षण हैं ।' विश्वसे भगवान् अन्य क्यों हैं ? इसीलिये कि भगवान्से ही इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति और संहार होते हैं । यह सृष्टि, स्थिति और संहार ही उनकी लीला है ।

इसे समझनेके लिये स्थूल विश्व, सूक्ष्म संस्कार या वासना एवं बीजस्वरूप स्पन्दन—इनसे ऊपर उठकर चित्स्वरूपका अनुसंधान करना पड़ता है ।

यह विश्व जबतक रहेगा, तबतक भगवान्की सृष्टिशक्तिकी मूर्ति ब्रह्मा भी रहेंगे, अर्थात् ब्रह्माके रूपमें श्रीरामचन्द्रजी सदा ही सृष्टि-कार्यमें रत रहेंगे । वे ही बीजसे वृक्ष उत्पन्न करते हैं, वृक्ष-वृक्षमें फूल खिलाते हैं, फल भी वे ही लगाते हैं । संसारमें असंख्य नर-नारी, पशु-पक्षी, कीट-पतंगोंको वे ही लाते हैं और विष्णुरूपमें वे ही सब जीवोंका पालन करते हैं । पुनः विश्वमें प्रतिदिन जो लयकी लीला चल रही है, उसे भी वे ही परमात्मा श्रीरामचन्द्र अपनी रुद्रमूर्तिद्वारा करते हैं । इन श्रीभगवान्का और इनसे अभिन्न ज्योतिःस्वरूपिणी उनकी शक्तिका एकान्तमें आत्माकी मूर्ति इष्टदेव या इष्टदेवीके रूपमें ध्यान करना होगा और साथ-ही-साथ हृदयमें या भ्रूमध्यमें उनके चरणारविन्दोंमें मन एकाग्र करके बाहर उसी शक्तिसमन्वित शक्तिमान्को विश्वरूपमें चिन्तन करना होगा; तभी उपासना होगी और तभी उनके दर्शन मिलेंगे । परंतु उनके दर्शन कैसे होंगे ! शास्त्र कहते हैं—

द्रष्टुं न शक्यते कैश्चिद्देवदानवपन्नगैः ।
यस्य प्रसादं कुरुते स चैनं द्रष्टुमर्हति ॥

'देव, दानव, नाग—कोई उन्हें नहीं देख सकता । फिर उपाय क्या है ? वह जिसके ऊपर कृपा करते हैं, वही उन्हें देख सकता है ।' श्रीचण्डीमें जगन्माता कहती हैं कि 'मैं ही विद्वान्को भी मोहयुक्त कर देती हूँ'—

सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ।
(दुर्गासप्तशती १ । ५७)

पूजा, स्तवन, प्रार्थना, प्रणति करनेसे वे प्रसन्न होकर मनुष्यको संसार-सागरसे मुक्त कर देती हैं। सर्वदा नाम-जप करना, मानस-पूजा करना, बाह्य-पूजा करना, स्तवन-प्रार्थना-नमस्कार करना आदि सब भी वे ही हैं, सब कुछ उनका ही है, मेरा कुछ भी नहीं—इस प्रकार चिन्तन करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे माको प्रसन्न किया जा सकता है। श्रीसीतातत्त्वका प्रथम सोपान यह है कि जो सीता हैं, वही श्रीराम हैं। शास्त्र यही कहते हैं—

'राम साक्षात् परमज्योति, परमधाम और परात्पर पुरुष हैं। सीता और रामकी आकृतिमें ही भेद है, वास्तवमें नहीं। राम ही सीता हैं और सीता ही राम हैं। इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है। संत लोग इसी तत्त्वको बुद्धिके द्वारा भलीभाँति जानकर जन्म-मरणरूपी संसारके पार पहुँच सके हैं।' (अद्भुतरामायण)

श्रीसीता श्रीरामकी ज्योति हैं—उसी प्रकार, जिस प्रकार सविताका भर्ग है। राहुके सिरके समान सविता और 'वरेण्यं भर्गः' एक ही वस्तु हैं। इसी प्रकार शिवकी ज्योति अन्नपूर्णा हैं और श्रीकृष्णकी ज्योति राधा हैं।

श्रीचण्डीमें जो महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वतीरूपमें असुरनाशिनी हैं, वही रामायणमें सीतारूप असुरनाशिनी कालरात्रि हैं। रावणकी सभामें श्रीहनुमान्‌ने कहा था—

यां सीतेत्यभिजानासि येयं तिष्ठति ते गृहे।
कालरात्रीति तां विद्धि सर्वलङ्काविनाशिनीम्॥
(वा० रा० ५। ५१। ३४)

'हे रावण! जिन्हें तुम सीता समझते हो, जो आज तुम्हारे घरमें अवस्थित हैं, उन्हें तुम कालरात्रि ही समझो। वह सर्वलङ्काविनाशिनी हैं।' श्रीचण्डी भी वही कालरात्रि हैं। श्रीचण्डीके समान ये सीता ही योगमाया, महामाया, जगद्धात्री हैं।

जिस प्रकार भगवान् वाल्मीकिके समान दूसरा कवि इस जगत्‌में नहीं हुआ, उसी प्रकार समस्त जगत्‌में सीता भी अद्वितीय थीं, हैं और सदा रहेंगी। रामायणमें श्रीसीतारामका यशोवर्णन करके भगवान् वाल्मीकि पूर्ण हो गये। भगवान् ब्रह्माने जब सब उपादान देकर आदिकविको महाभारत-रचनाके लिये कहा, तब आदिकवि बोले—'मैं तो पूर्ण हो गया हूँ, अब किसलिये परिश्रम करूँ? परंतु आपके आज्ञानुसार मेरे पश्चात् जब व्यासदेव आयेंगे, तब मैं उन्हें काव्यका बीज बतला दूँगा।' यह बात 'बृहद्धर्मपुराण'में मिलती है। 'मैं भगवान्‌का यशोवर्णन कर पूर्ण हो गया हूँ', यह बात आधुनिक जगत्‌में किसी भी कवि अथवा ग्रन्थलेखकके मुखसे नहीं सुनी गयी। इसीलिये मैंने कहा है कि वाल्मीकिके समान ही श्रीसीता भी एक ही हैं। समस्त जगत्‌के साहित्य या धर्ममें ऐसी दूसरी कोई नहीं है। रूप, गुण और लीलामें ऐसी दूसरी नहीं है। स्वरूपकी तो बात ही निराली है। मैं कहता हूँ कि श्रीसीता रूपमें अतुलनीया हैं। इससे अधिक कहना अनावश्यक है। अकम्पन रावणसे कहता है—

'उसकी सीता नामकी सुन्दरी भार्या है, जो संसारभरकी स्त्रियोंमें श्रेष्ठ है। उसका कटिप्रदेश अत्यन्त सुन्दर है; उसके सब अवयव सुडौल हैं। वह स्त्रियोंमें रत्नके समान है और रत्नोंसे सुसज्जित है। मनुष्यलोककी स्त्रियोंकी तो कौन कहे, देवाङ्गनाओं, गन्धर्वियों, नागपत्नियों और अप्सराओंमें भी कोई ऐसी स्त्री नहीं है, जो उसकी समता कर सके।' (वा० रा० ३। ३१। २९-३०)

शूर्पणखा भी रावणसे कहती है—

'यह साक्षात् गृहलक्ष्मी है, मेरे नेत्रोंको जुड़ानेके लिये यह अमृतकी वर्ति (शलाका) है, इसका स्पर्श शरीरके लिये प्रचुर चन्दनरसके समान शीतल है, इसकी भुजलता मेरे कण्ठमें शीतल और चिकने मोतियोंके हारकी शोभाको धारण करती है। इसका सब कुछ मुझे अतिशय प्रिय है, केवल इसका वियोग मेरे लिये असह्य है।'

भगवान् पुनः कहते हैं—

मध्यं केशरिभिः स्मितं च कुसुमैर्नेत्रं कुरङ्गीगणैः
कान्तिश्चम्पककुड्मलैः कलरुतं हा हा हृतं कोकिलैः।
वल्लीभिर्ललितं गतं करिवरैरित्थं विभक्त्याञ्जसा
कान्तारे सकलैर्विलासपटुभिर्नीतासि किं मैथिलि॥

(महानाटक ४ । १५)

'प्रिये मिथिलेशकुमारी, जान पड़ता है जंगलमें रहनेवाले क्रीडाकुशल जानवर सब मिलकर तुम्हें हर ले गये हैं और उन्होंने अपने बीच तुम्हारे विविध अङ्गोंको बाँट लिया है। लगता है, सिंहोंने तो तुम्हारी क्षीण कटि चुरा ली है, पुष्पोंने मुस्कान, हरिनियोंने नेत्र, चम्पाकी कलियोंने कान्ति, पिकोंने मीठी बोली, लताओंने विलास और गजराजोंने तुम्हारी चालको चुरा लिया है।'

गुणोंका मैं अधिक उल्लेख नहीं करूँगा। स्त्रियोंका जो रमणीय गुण है, उसे ही कहकर विश्राम लूँगा। जगन्माता जगदेकनाथके परमवाक्यसे व्यथित होकर श्रीलक्ष्मणसे कहती हैं—'हे सुमित्रानन्दन! मेरे लिये चिता तैयार करो। मेरे रोगकी अब यही दवा है। इस झूठे कलङ्कका टीका सिरपर लगाये मैं जीवित नहीं रह सकती।' माता उस समय भी अधोमुखस्थित पति-देवताकी प्रदक्षिणा और प्रणाम करना नहीं भूलतीं। केवल स्वामीको ही नहीं, देवता और ब्राह्मणोंको भी नहीं भूलतीं।

उन्होंने देवताओं तथा ब्राह्मणोंको प्रणाम करके, हाथ जोड़कर अग्निके समीप इस प्रकार कहा—'यदि मेरा हृदय रघुकुलनन्दन श्रीरामके चरणोंसे क्षणभरके लिये भी दूर नहीं होता तो अखिल विश्वके साक्षी अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करें। यदि रघुनन्दन मुझ निर्दोष चरित्रवालीको भी दूषित समझते हैं तो ये लोकसाक्षी अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करें।' (वा० रा० ६ । ११६ । २५-२६)

'मेरा हृदय मेरे स्वामीसे यदि क्षणभरके लिये भी न हटा हो'—इससे अधिक स्त्रीके लिये शरीर धारण करनेका गुण शायद और कोई नहीं है। यदि और भी कहें तो कह सकते हैं कि मिथ्या लोकापवादके कारण जब श्रीभगवान्ने लक्ष्मणके द्वारा सीताका त्याग किया, तब भी इस त्रिलोक-जननीने भर्ताके प्रति किसी कठोर शब्दका प्रयोग नहीं किया। वनमें रोते-रोते वह बोलीं—

पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः॥
प्राणैरपि प्रियं तस्माद्भर्तुः कार्यं विशेषतः।

(वा० रा० ७ । ४८ । १७-१८)

'स्त्रीके लिये उसका पति ही देवता है, पति ही बन्धु है और पति ही गुरु है। इसलिये स्वामीका कार्य स्त्रीके लिये प्राणोंसे भी प्यारा है।'

रूप और गुणके विषयमें कुछ बातें कही गयीं। अब लीलाके विषयमें कुछ कहकर मैं स्वरूपका कुछ निर्देश करूँगा। सुन्दरकाण्डके आधारपर यह आलोचना की जा रही है।

भगवान् वाल्मीकिने इस काण्डका नाम 'सुन्दरकाण्ड' क्यों रक्खा? बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, युद्धकाण्ड, उत्तरकाण्ड—इन नामकरणोंका कारण समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होती; परंतु सुन्दरकाण्ड-के नामकरणमें मानो कुछ विशेषता है।

'रामायणं जनमनोहरमादिकाव्यम्।'

'रामायण लोगोंको बहुत प्रिय है और वह आदिकाव्य है।' अध्यात्मरामायणके अन्तिम श्लोकके प्रथम चरणमें रामायणको 'जनमनोहर आदिकाव्य' कहा गया है। समस्त रामायण ही मनोहर है, उसके अंदर सुन्दरकाण्ड अत्यन्त मनोहर है। इसके श्रेष्ठ होनेका कारण बतलाते हुए कहा गया है—

सुन्दरे सुन्दरो रामः सुन्दरे सुन्दरी कथा।
सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे किं न सुन्दरम्॥

''सुन्दरकाण्ड'में राम सुन्दर हैं, 'सुन्दर'की कथाएँ सुन्दर हैं, 'सुन्दर'में सीता सुन्दरी हैं, 'सुन्दर'में क्या सुन्दर नहीं है?'' सुन्दरमें रामके सौन्दर्यका विस्तारसे वर्णन तो है ही। (द्रष्टव्य—सर्ग ३५ । १—५०)

साथ ही श्रीराम-सीता अभिन्न भी हैं—

'गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।'

(मानस० १ । १८)

रामतापनीयोपनिषद्में कहा गया है—

'यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्, या जानकी भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः।' (२५)

'श्रीरामचन्द्र साक्षात् भगवान् हैं और देवी जानकी भूर्भुवः स्वःरूप व्याहृति हैं। इसलिये उन्हें नमस्कार है, नमस्कार है।'

राम ही जानकी हैं, इसीसे रामके सौन्दर्यमें ही राम-मानस-सरोमरालिकाका सौन्दर्य है। सुन्दरकाण्डमें जिस कुन्तलकुल-कपोल-सुन्दर सीताके रूप और गुणका विकास है, वह क्या जाग्रत् और क्या स्वप्न, सर्वदा श्रीरामके चरण-कमलोंमें सब कुछ समर्पण किये हुए है—इसलिये भी कहा गया है—'सुन्दरे सुन्दरो रामः।'

हनूमान्ने रावणको अति तुच्छ मानकर कहा था—

न मे समा रावणकोटयोऽधम
रामस्य दासोऽहमपारविक्रमः।
(अध्यात्मरामा० ५। ४। २९)

'अरे अधम! करोड़ों रावण मेरी समता नहीं कर सकते। मैं श्रीरामका दास हूँ, अतः मेरे पराक्रमका कोई थाह नहीं पा सकता। रामका दास होनेके कारण मुझमें अपार विक्रम है।' दास होनेसे जहाँ इतना शौर्य-वीर्य प्रस्फुटित हो उठता है, वहाँ भक्तका सौन्दर्य भगवान्का ही है—यह कहनेमें अतिशयोक्ति क्या है? इसीसे 'सुन्दरे सुन्दरो रामः' कहा गया है। 'सुन्दरे सुन्दरो रामः' का अर्थ तो समझमें आया; परंतु सुन्दरमें सब कुछ सुन्दर है, इसका क्या अभिप्राय है?

क्या सुन्दरमें सब सुन्दर नहीं है? शतयोजनविस्तीर्ण, भीमदर्शन, महोन्नततरङ्गसमाकुल, भीषनक्रभयंकर, अगाध गगनाकार सागरका उल्लङ्घन, मारुतिकी बल-परीक्षाके लिये सुरसाका विघ्न पैदा करना, मैनाककी अभ्यर्थना-याचनापर श्रीहनूमान्का यह कथन कि 'मैं रामकार्य करने जा रहा हूँ, इस समय मुझे भोजन करने या विश्रामके लिये कहाँ अवसर है! मुझे तो अत्यन्त शीघ्र जाना है', सिंहिका राक्षसीके हनूमान्की छायापर आक्रमण कर समुद्रमें मारुतिका मार्ग रोकनेपर उसका विनाश, समुद्रके दक्षिण-किनारे त्रिकूटशिखरपर लङ्कापुरीका दर्शन, संध्याकालमें सूक्ष्म देह धारणकर लङ्कामें प्रवेश करते समय राक्षसी-वेशधारिणी लङ्किनीपर हनूमान्का चरण-प्रहार, हनूमान्के वाममुष्टि-प्रहारसे लङ्किनीका रक्त-वमन, लङ्किनीके द्वारा सीताका संवाद, सीताका अन्वेषण, वने शिंशपा पेड़के नीचे, 'देवतामिव भूतले'—

एकवेणीं कृशां दीनां मलिनाम्बरधारिणीम्।
भूमौ शयानां शोचन्तीं रामरामेति भाषिणीम्॥
(अध्यात्मरामा० ५। २। ९-१०)

'श्रीहनूमान्जीने जगदम्बा जानकीजीको इस प्रकार देखा, मानो पृथिवीतलपर कोई देवाङ्गना उतर आयी हो। वे एक वेणी धारण किये हुए थीं। उनका शरीर दुर्बल था, आकृति दीन थी, मलिन वस्त्र पहने हुए थीं, पृथ्वीपर लेटी हुई थीं, सोचमें पड़ी हुई थीं और राम-रामकी रटन लगाये हुए थीं।'

'यह साक्षात् गृहलक्ष्मी है, मेरे नेत्रोंको जुड़ानेके लिये यह अमृतकी वर्ति (शलाका) है, इसका स्पर्श शरीरके लिये प्रचुर चन्दनरसके समान शीतल है, इसकी भुजलता मेरे कण्ठमें शीतल और चिकने मोतियोंके हारकी शोभाको धारण करती है। इसका सब कुछ मुझे अतिशय प्रिय है, केवल इसका वियोग मेरे लिये असह्य है।'

भगवान् पुनः कहते हैं—

मध्यं केशरिभिः सितं च कुसुमैर्नेत्रं कुरङ्गीगणैः
कान्तिश्चम्पककुड्मलैः कलरुतं हा हा हृतं कोकिलैः।
वल्लीभिर्ललितं गतं करिवरैरित्थं विभज्याञ्जसा
कान्तारे सकलैर्विलासपटुभिर्नीतासि किं मैथिलि॥

(महानाटक ४ । १६)

'प्रिये मिथिलेशकुमारी, जान पड़ता है जंगलमें रहनेवाले क्रीडाकुशल जानवर सब मिलकर तुम्हें हर ले गये हैं और उन्होंने अपने बीच तुम्हारे विविध अङ्गोंको बाँट लिया है। लगता है, सिंहोंने तो तुम्हारी क्षीण कटि चुरा ली है, पुष्पोंने मुस्कान, हरिनियोंने नेत्र, चम्पाकी कलियोंने कान्ति, पिकोंने मीठी बोली, लताओंने विलास और गजराजोंने तुम्हारी चालको चुरा लिया है।'

गुणोंका मैं अधिक उल्लेख नहीं करूँगा। स्त्रियोंका जो रमणीय गुण है, उसे ही कहकर विश्राम लूँगा। जगन्माता जगदेकनाथके परमवाक्यसे व्यथित होकर श्रीलक्ष्मणसे कहती हैं—'हे सुमित्रानन्दन! मेरे लिये चिता तैयार करो। मेरे रोगकी अब यही दवा है। इस झूठे कलङ्कका टीका सिरपर लगाये मैं जीवित नहीं रह सकती।' माता उस समय भी अधोमुखस्थित पति-देवताकी प्रदक्षिणा और प्रणाम करना नहीं भूलतीं। केवल स्वामीको ही नहीं, देवता और ब्राह्मणोंको भी नहीं भूलतीं।

उन्होंने देवताओं तथा ब्राह्मणोंको प्रणाम करके, हाथ जोड़कर अग्निके समीप इस प्रकार कहा—'यदि मेरा हृदय रघुकुलनन्दन श्रीरामके चरणोंसे क्षणभरके लिये भी दूर नहीं होता तो अखिल विश्वके साक्षी अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करें। यदि रघुनन्दन मुझ निर्दोष चरित्रवालीको भी दूषित समझते हैं तो ये लोकसाक्षी अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करें।' (वा० रा० ६ । ११६ । २५-२६)

'मेरा हृदय मेरे स्वामीसे यदि क्षणभरके लिये भी न हो'—इससे अधिक स्त्रीके लिये शरीर धारण करनेका गुण शायद और कोई नहीं है। यदि और भी कहें तो कह सकते हैं कि मिथ्या लोकापवादके कारण जब श्रीभगवान्‌ने लक्ष्मणके द्वारा सीताका त्याग किया, तब भी इस त्रिलोक-जननीने भर्ताके प्रति किसी कठोर शब्दका प्रयोग नहीं किया। वनमें रोते-रोते वह बोली—

पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः।
प्राणैरपि प्रियं तस्माद्भर्तुः कार्यं विशेषतः।

(वा० रा० ७ । ४८ । १७-१८)

'स्त्रीके लिये उसका पति ही देवता है, पति ही बन्धु है और पति ही गुरु है। इसलिये स्वामीका कार्य स्त्रीके लिये प्राणोंसे भी प्यारा है।'

रूप और गुणके विषयमें कुछ बातें कही गयीं। अब लीलाके विषयमें कुछ कहकर मैं स्वरूपका कुछ निर्देश करूँगा। सुन्दरकाण्डके आधारपर यह आलोचना की जा रही है।

भगवान् वाल्मीकिने इस काण्डका नाम 'सुन्दरकाण्ड' क्यों रक्खा? बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, युद्धकाण्ड, उत्तरकाण्ड—इन नामकरणोंका कारण समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होती; परंतु सुन्दरकाण्डके नामकरणमें मानो कुछ विशेषता है।

'रामायणं जनमनोहरमादिकाव्यम्।'

'रामायण लोगोंको बहुत प्रिय है और यह आदिकाव्य है।' अध्यात्मरामायणके अन्तिम श्लोकके प्रथम चरणमें रामायणको 'जनमनोहर आदिकाव्य' कहा गया है। समस्त रामायण ही मनोहर है, उसके अंदर सुन्दरकाण्ड अत्यन्त मनोहर है। इसके श्रेष्ठ होनेका कारण बतलाते हुए कहा गया है—

सुन्दरे सुन्दरो रामः सुन्दरे सुन्दरी कथा।
सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे किं न सुन्दरम्॥

''सुन्दरकाण्ड'में राम सुन्दर हैं, 'सुन्दर'की कथाएँ सुन्दर हैं, 'सुन्दर'में सीता सुन्दरी हैं, 'सुन्दर'में क्या सुन्दर नहीं है?'' सुन्दरमें रामके सौन्दर्यका विस्तारसे वर्णन तो है ही। (द्रष्टव्य—सर्ग ३५ । १–५०)

साथ ही श्रीराम-सीता अभिन्न भी हैं—

'गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।'

(मानस० १ । १८)

रामतापनीयोपनिषद्‌में कहा गया है—

'यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्, या जानकी भूर्भुवः सुवस्तस्यै वै नमो नमः।' (२५)

'श्रीरामचन्द्र साक्षात् भगवान् हैं और देवी जानकी भूर्भुवः स्वःरूप व्याहृति हैं। इसलिये उन्हें नमस्कार है, नमस्कार है।'

राम ही जानकी हैं, इसीसे रामके सौन्दर्यमें ही राम-मानस-सरोमरालिकाका सौन्दर्य है। सुन्दरकाण्डमें जिस कुन्तलकुल-कपोल-सुन्दर सीताके रूप और गुणका विकास है, वह क्या जाग्रत् और क्या स्वप्न, सर्वदा श्रीरामके चरण-कमलोंमें सब कुछ समर्पण किये हुए है—इसलिये भी कहा गया है—'सुन्दरे सुन्दरो रामः।'

हनूमान्ने रावणको अति तुच्छ मानकर कहा था—

न मे समा रावणकोटयोऽधम
रामस्य दासोऽहमपारविक्रमः।
(अध्यात्मरामा० ५ । ४ । २९)

'अरे अधम! करोड़ों रावण मेरी समता नहीं कर सकते। मैं श्रीरामका दास हूँ, अतः मेरे पराक्रमका कोई थाह नहीं पा सकता। रामका दास होनेके कारण मुझमें अपार विक्रम है।' दास होनेसे जहाँ इतना शौर्य-वीर्य प्रस्फुटित हो उठता है, वहाँ भक्तका सौन्दर्य भगवान्का ही है—यह कहनेमें अतिशयोक्ति क्या है? इसीसे 'सुन्दरे सुन्दरो रामः' कहा गया है। 'सुन्दरे सुन्दरो रामः' का अर्थ तो समझमें आया; परंतु सुन्दरमें सब कुछ सुन्दर है, इसका क्या अभिप्राय है?

क्या सुन्दरमें सब सुन्दर नहीं है? शतयोजनविस्तीर्ण, भीमदर्शन, महोन्नततरङ्गसमाकुल, भीमनक्रभयंकर, अगाध गगनाकार सागरका उल्लङ्घन, मारुतिकी बल-परीक्षाके लिये सुरसाका विघ्न पैदा करना, मैनाककी अभ्यर्थना-याचनापर श्रीहनूमान्का यह कथन कि 'मैं रामकार्य करने जा रहा हूँ, इस समय मुझे भोजन करने या विश्रामके लिये कहाँ अवसर है? मुझे तो अत्यन्त शीघ्र जाना है', सिंहिका राक्षसीके हनूमान्की छायापर आक्रमण कर समुद्रमें मारुतिका मार्ग रोकनेपर उसका विनाश, समुद्रके दक्षिण-किनारे त्रिकूटशिखरपर लङ्कापुरीका दर्शन, संध्याकालमें सूक्ष्म देह धारणकर लङ्कामें प्रवेश करते समय राक्षसी-वेशधारिणी लङ्किनीपर हनूमान्का चरण-प्रहार, हनूमान्के वाममुष्टि-प्रहारसे लङ्किनीका रक्त-वमन, लङ्किनीके द्वारा सीताका संवाद, सीताका अन्वेषण, घने शिंशपा पेड़के नीचे, 'देवतामिव भूतले'—

एकवेणीं कृशां दीनां मलिनाम्बरधारिणीम्।
भूमौ शयानां शोचन्तीं रामरामेति भाषिणीम्॥
(अध्यात्मरामा० ५ । २ । ९-१०)

'श्रीहनूमान्जीने जगदम्बा जानकीजीको इस प्रकार देखा, मानो पृथिवीतलपर कोई देवाङ्गना उतर आयी हो। वे एक वेणी धारण किये हुए थीं। उनका शरीर दुर्बल था, आकृति दीन थी, मलिन वस्त्र पहने हुए थीं, पृथ्वीपर लेटी हुई थीं, सोचमें पड़ी हुई थीं और राम-रामकी रटन लगाये हुए थीं।'

—जनकनन्दिनीका दर्शन, रात्रिकालमें स्त्रीजनपरिवारित; दस मुख, बीस भुजावाले, नीलाञ्जन-राशिके समान रावणका सीता-दर्शन, रावण और सीताका उत्तर-प्रत्युत्तर, जानकीके परुष वाक्य श्रवणकर उनका वध करनेके लिये रावणका खड्ग उठाना, मन्दोदरीका निवारण करना, रावणके प्रस्थान करनेपर उसकी दासियोंका तर्जन-गर्जन और उत्पीड़न, त्रिजटाका स्वप्नवृत्तान्त, राक्षसीवृन्दका भयभीत तथा निद्रित होना, सीताका रुदन और प्राणत्याग करनेकी चेष्टा, वृक्षके ऊपरसे श्रीहनूमान्का राम-वृत्तान्त-वर्णन, सीता और हनूमान्का कथोपकथन, अँगूठी प्रदान करना, अशोक-वाटिकाका विध्वंस, रावणकी सेना और अक्षयकुमारका वध, इन्द्रजित्द्वारा बन्धनमें हनूमान्का रावणके समीप लाया जाना, रावणको उपदेश, रावणका क्रोध, पूँछमें अग्निप्रदान, लङ्कादहन, पुनः सीतासे बातचीत करके सागरका लाँघना, वानरोंके साथ मिलना, मधुवनके फल खाना और उसे उजाड़ना, राम और सुग्रीवको सीताका संवाद सुनाना, रामके द्वारा हनूमान्का आलिङ्गन—सुन्दरकाण्डकी ये सभी कथाएँ बड़ी सुन्दर हैं।

इसके पश्चात् 'सुन्दरे सुन्दरी सीता'के विषयमें तो कहना ही क्या है? सीताके सतीत्वका तेज, सीता और हनुमान्के कथोपकथनमें सीताके चरित्रकी रमणीयता—इसीसे 'सुन्दरे सुन्दरी सीता' कहा गया है और इसलिये कहा गया है—'सुन्दरे किं न सुन्दरम्—सुन्दरकाण्डमें क्या सुन्दर नहीं है?'

(२)

आदिमें गम्भीरता नहीं आती । हम जिनके तत्त्वकी आलोचना करते हैं, वे ही सर्वव्यापिनी चैतन्यरूपसे भूर्भुवः-स्वर्लोकमें व्याप्त हो रही हैं तथा इन सर्वव्यापी सर्वानुस्यूत चैतन्यकी घनीभूत मूर्ति ही उपासनाकी वस्तु है—इसे जाने बिना उपासना ठीक-ठीक नहीं होती । हम जिनकी उपासना करते हैं, वे ही सर्वप्रधान हैं—यह धारणा न होनेसे अथवा हमारी उपासनाकी वस्तुसे बढ़कर भी कुछ और है, ऐसी धारणा होनेसे उपासनाका उद्देश्य सिद्ध नहीं होता ।

(३)

श्रीसीताजीका तत्त्व क्या है, इसका मैं श्रीसीतोपनिषद् तथा श्रीअध्यात्मरामायणसे उल्लेख कर इस लेखका उपसंहार करता हूँ । 'का सीता किं रूपमिति—सीता कौन हैं, उनका रूप कैसा है ?'—देवतालोग प्रजापतिसे पूछते हैं । ब्रह्मा कहते हैं कि 'मूलप्रकृतिरूपा होनेसे सीताको प्रकृति कहते हैं ।'

प्रणवप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिरुच्यते ।

(सीतोपनिषद्)

प्रणव (अ, उ, म्), नाद, बिन्दु, कला और कलातीत—इस सप्ताङ्गसे जटित होनेके कारण सीता ही प्रणवरूपिणी हैं । वे ही सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका प्रकृति हैं । वे ही त्रिवर्णात्मा साक्षात् माया हैं । 'ह्रीं' में जो ईकार है, वह प्रपञ्च-बीज है, वही माया है । विष्णु संसारके बीज हैं और ईकार माया है । त्रिगुणात्मिका सीता साक्षात् मायामयी हैं, वे अविद्यास्वरूपिणी हैं । साथ ही वे ही विद्यास्वरूपिणी भी हैं । सकार सत्यका नाम है, यही अमृत-प्राप्ति और सोम हैं । और तकार है रजतमण्डित विराजमान यशस्वी मणिविशेष ।

सीता ईकाररूपिणी अव्यक्तरूपिणी महामाया हैं—सोमके अमृत अवयवरूप दिव्य अलंकारद्वारा तथा माला-मुक्तादि अलंकारसे भूपिता होकर प्रकाशित होती हैं ।

माताका प्रथम रूप शब्दब्रह्म प्रणव है, वही वेदपाठके समय प्रसन्न होकर उत्पन्न हुआ था । माताका द्वितीय रूप है नारीरूप—जो पृथ्वीसे हलके अग्रभागसे उद्घाटित हुआ था । तृतीय रूप है ईकाररूपिणी अव्यक्तस्वरूपा । शुनकऋषि-प्रणीत ग्रन्थमें सीता इसी रूपमें वर्णित हुई हैं ।

फिर श्रीसीताजीका और कैसा रूप है ? श्रीरामके निकट रहनेके कारण वे जगदानन्दकारिणी हैं और जो देहविशिष्ट है, सबकी उत्पत्ति-स्थिति-संहारकारिणी भी वे ही सीतादेवी हैं । सीता ही भगवती मूलप्रकृति हैं । ब्रह्मवादी कहते हैं कि सीता ही प्रणव होनेके कारण प्रकृति हैं । तब सीता क्या नहीं हैं ? श्रुति कहती है—

'वे सर्ववेदमयी हैं, सर्वदेवमयी हैं, सर्वकीर्तिमयी हैं, सर्वधर्ममयी हैं, सबका आधार और कार्य-कारण दोनों हैं । वे ही महालक्ष्मी हैं, देवाधिपति भगवान्से भिन्न और अभिन्न दोनों हैं; चेतन भी वे ही हैं और अचेतन भी वे ही हैं । ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सबकी आत्मा वे ही हैं । वे ही प्रकृतिके गुण-कर्मविभागके पार्थक्य-हेतु शरीर बनी हुई हैं । देव, ऋषि, मनुष्य और गन्धर्व—सब उन्हींके रूप हैं । दैत्य, राक्षस, भूत, प्रेत आदि भूतोंका आदिशरीर वे ही हैं । पञ्चमहाभूत, इन्द्रिय, मन और प्राण भी उन्हींके स्वरूप हैं ।'

श्रुति फिर कहती है—'सीता शक्ति हैं, वे इच्छा-शक्ति, क्रिया-शक्ति और साक्षात्-शक्ति हैं । वे ही इच्छा-शक्तिके तीन भेद भी हैं, अर्थात् श्रीभूमि-लीलास्वरूपमें वे भद्ररूपिणी हैं, प्रभावरूपिणी हैं और सोम-सूर्य-अग्नि-स्वरूपिणी हैं । सोमात्मिका होनेके कारण सीता ओषधियोंके ऊपर प्रभाव विस्तार करनेवाली हैं । वे कल्पवृक्ष-पुष्प-फल-लता-गुल्मस्वरूपा हैं । फिर ओषधिसे उत्पन्न औषधरूपमें वे अमृतस्वरूपा होकर देवताओंको यज्ञफल प्रदान करनेवाली हैं ।

'वे ही सीता अमृतद्वारा देवताओंको, अन्नद्वारा पशुओं-को, तृणद्वारा तृणभोजी जीवोंको तृप्त करती हैं । वे सूर्यादि सब लोकोंको प्रकाश देती हैं । वे ही दिन-रात्रिस्वरूपिणी हैं; समयका जो प्रकाश-भेद है, सब वे ही हैं । निमेषसे आरम्भ करके परार्द्धपर्यन्त जो कालचक्र है, वही जगच्चक्र है और इस प्रकारसे सीता ही चक्रवत् परिवर्तमाना हैं ।' श्रुतिने कहनेमें कुछ भी शेष नहीं रक्खा ।

'वे अग्निरूप होकर समस्त जीवधारियोंकी क्षुधा और पिपासाके रूपमें स्थित हैं, देवताओंका मुखस्वरूप हैं, वनकी ओषधियोंमें शीत और उष्णरूपसे व्याप्त हैं तथा काष्ठोंके भीतर और बाहर नित्यानित्यरूपसे स्थित हैं ।

'श्रीदेवी लोकरक्षाके लिये रूप भी धारण करती हैं । पृथ्वीरूपसे वे त्रिभुवनको आश्रय देती हैं, प्रणवरूप भी वे ही हैं । समस्त ओषधियों और प्राणिगणके पोषणके लिये सर्वरूपा हैं । वे ही क्रिया-शक्तिस्वरूप श्रीहरिके मुखसे उत्पन्न नाद हैं । नादसे उद्भूत ओंकार इत्यादि हैं । वे

ऋग्यजुःसामरूप वेदत्रयी हैं। इक्कीस शाखाओंवाला ऋग्वेद, एक सौ नौ शाखाओंवाला यजुर्वेद तथा सहस्र शाखाओंवाला सामवेद वे ही हैं। इसके अतिरिक्त पाँच शाखाओंवाला अथर्ववेद भी वे ही हैं।'

सीतोपनिषद्में और भी बहुत-सी बातें हैं। मूलग्रन्थमें उन्हें देखना चाहिये। अब यहाँ अध्यात्मरामायणसे कुछ सीता-तत्त्वका उल्लेख किया जा रहा है—

एको विभासि राम त्वं मायया बहुरूपया।

तथा—

'योगमायापि सीतेति।'

'एकमात्र सत्यवस्तु श्रीराम ही बहुरूपिणी मायाको स्वीकारकर विश्वरूपमें भासित हो रहे हैं और सीता ही वह योगमाया है।' लोकविमोहिनी हरिनेत्रकृतालया श्रीसीताने श्रीरामचन्द्रजीके अभिप्रायानुसार श्रीसीतारामके एक सर्वश्रेष्ठ भक्तको ज्ञानका पात्र जानकर एक बार तत्त्वज्ञान प्रदान किया था। श्रीसीताजी कहती हैं कि रामको परब्रह्म सच्चिदानन्द ही जानना चाहिये—

मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम्।
तस्य संनिधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता॥
(अध्यात्मरा० १। १। ३४)

'मुझ सीताको सर्ग, स्थिति और अन्त करनेवाली मूल-प्रकृति जानो। उनके सांनिध्यसे ही मैं प्रमादशून्य होकर सब कुछ सृजन करती हूँ।'

एवमादीनि कर्माणि मयैवाचरितान्यपि।
आरोपयन्ति रामेऽस्मिन्निर्विकारेऽखिलात्मनि॥
(अध्यात्मरामा० १। १। ३४)

'इस प्रकारके सारे कर्म मैं ही करती हूँ। उन्हें लोग श्रीराममें, जो वास्तवमें निर्विकार एवं अखिल विश्वकी आत्मा हैं, आरोपित करते हैं।' राम कुछ भी नहीं करते; जो कुछ होता है, सब मायिक गुणोंके अनुग्रहसे होता है। कलिमें अधिकांश मनुष्य हाथीके अङ्गोंके समान श्रीभगवान्के एक-एक भावको ही देखते हैं। समग्र ब्रह्मको जाननेकी इच्छा न होनेके कारण इतना दंगा-फसाद मचा रहता है। श्रीगीता कहती है—

नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्॥
(५। १३)

'इस नौ दरवाजोंवाले शरीररूपी घरमें रहता हुआ आत्मा न तो कुछ करता है और न करवाता है।'

इस निर्गुण ब्रह्मकी बात ऐसी ही है। फिर—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥
(गीता १८। ६१)

'अर्जुन! ईश्वर समस्त भूत-प्राणियोंके हृदयमें स्थित होकर देहरूपी यन्त्रपर आरूढ़ हुए उन सारे भूतोंको अपनी योगमायासे घुमाते हैं।'

तथा—

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
(गीता १२। ७)

'मैं उन्हें मृत्युरूप संसारसागरसे पार कर देता हूँ।'

एवं—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्
······न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥
(गीता २। २०)

'यह आत्मा न उत्पन्न होता है न मरता है।······शरीरका वध करनेसे आत्माका वध नहीं होता।' एक ही कालमें यह सब कुछ वे ही हैं, अर्थात् समकालमें वे आप ही निर्गुण ब्रह्म, सगुण ब्रह्म, विश्वरूप, सर्वहृदिस्थ आत्मा तथा सिरसे लेकर पदोंके नखपर्यन्त सर्वसौन्दर्यसार हैं। जो साधक पूर्ण ईश्वरभावनाके द्वारा सांसारिक भावनाको चित्तसे हटानेमें समर्थ होते हैं, वे सहज ही इस मृत्युसंसारसागरको पारकर निरन्तर श्रीभगवान्के परमपदमें स्थित रहते हैं।

श्रीसीताराम-तत्त्व

(लेखक—स्वामी श्रीसीतारामशरणजी महाराज)

समस्त पुंदोषशङ्काकलङ्कपङ्कसे असंस्पृष्ट, स्वतःप्रमाणभूत मन्त्र-ब्रह्मात्मक वेद एवं तदुपबृंहणभूत (उनके व्याख्यान-स्वरूप) इतिहास-पुराण आदिमें श्रीसीता-तत्त्वकी सम्यक् मीमांसा की गयी है। मन्त्रभागमें ऋग्वेद अत्यन्त अभ्यर्हित है। ऋक्‌का अर्थ है ऋचा तथा सामका अर्थ है गीति। ऋग्वेदमें श्रीसीतारामजीके नाम एवं गुण-लीलाओंका स्थल-स्थलपर संकेत है। चतुर्थ मण्डलके ५७ वें सूक्तके ६ ठे मन्त्रमें श्रीसीताजीकी वन्दना की गयी है—

'अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।'

'हे सीते! हम आपकी वन्दना करते हैं। आप हमपर सदा अनुकूल रहें।' दशम मण्डलके निम्नाङ्कित एक ही मन्त्रमें श्रीसीताजीके साथ श्रीरामके वन-गमन, श्रीसीता-हरण, अग्नि-परीक्षाके साथ ही श्रीसीता-रामजीके मधुर-मिलन आदि लीलाओंका भी वर्णन मिलता है—

भद्रो भद्रया सचमान आगात्
स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्
रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्॥
(ऋ० १० । ३ । ३)

उपनिषद्-भागमें रामरहस्योपनिषद्, रामतापनीयोपनिषद्, सीतोपनिषद् आदिमें श्रीसीतारामजीके मन्त्र-मन्त्रार्थ एवं परत्व-पूजा-पद्धति आदिका विशद वर्णन है। श्रीरामपूर्वतापनीयमें मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराघवेन्द्रको साक्षात् सच्चिदानन्द परब्रह्म कहा गया है—

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥
(१ । ६)

'जिस अनन्त सत्-चित्-आनन्द परब्रह्ममें योगिजन रमण करते हैं, उसके वाच्य अभिधावृत्तिसे श्रीराम हैं।' गौणी-मुख्याके भेदसे दो प्रकारकी वृत्तियाँ होती हैं। लक्षणा-व्यञ्जना आदि गौणी वृत्ति हैं। मुख्य वृत्ति तो 'अभिधा' ही है। जब मुख्यसे कार्य नहीं सिद्ध होता, तब गौणीका आश्रय लिया जाता है। शब्दप्रधान प्रबन्ध वेदोंमें सर्वत्र अभिधा वृत्तिका ही समादर है। कान्तासम्मित प्रबन्ध काव्य आदिमें लक्षणा-व्यञ्जनाका समादर है। यहाँ परब्रह्मके सत्, चित् एवं आनन्द—इन तीनों वैभवोंके साथ अनन्त जुड़ा हुआ है।

ब्रह्मका स्वरूपवाचक नाम 'श्रीराम' ही है। अपनी-अपनी शक्तियोंसहित त्रिदेव श्रीराम-मन्त्रके एक अंशभूत केवल रेफके आश्रित हैं—

रेफारूढा मूर्तयस्स्युः शक्तयस्तिस्र एव च।'
(वही, २ । ३)

पद्मपुराणमें सुस्पष्ट है कि श्रीहरिका एक-एक नाम समस्त वेदोंके समान परम पावन है। ऐसे सहस्र श्रीहरि-नामोंके समान एक 'श्रीराम' नाम है। भगवान् शंकर श्रीपार्वतीजीसे कहते हैं—'हे वरानने! मैं मनोरम श्रीराम-नाममें सदा रमण करता हूँ। एक ही श्रीराम-नाम एक सहस्र श्रीविष्णु-'नामों'के समान हैं—

विष्णोरेकैकनामैव सर्ववेदाधिकं मतम्।
तादृङ्नामसहस्रैस्तु रामनामसमं मतम्॥
राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥

जिस प्रकार सत्-चित्-आनन्द इन तीन वैभवोंसे परिपूर्ण श्रीराम हैं, उसी प्रकार संधिनी, संवित् एवं ह्लादिनी—इन तीनों महाशक्तियोंकी एकमात्र आश्रय जनकनन्दिनी श्रीजानकीजी हैं। विष्णुपुराणमें सुस्पष्ट है—

ह्लादिनी संधिनी संवित् त्वय्येका सर्वसंस्थितौ।
ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते॥
(१ । १२ । ६८)

यहाँपर 'संधिनी' सद्वाचक, 'संवित्' चिद्वाचक तथा 'ह्लादिनी' आनन्दवाचक है। इस प्रकार सच्चिदानन्दांशमें दोनोंकी एकता सर्वशास्त्रसिद्ध है।

श्रीरामोत्तरतापिनीमें भरतादि भ्राताओंसहित सीतापति भगवान् श्रीरामका चतुष्पाद-पूर्ण ब्रह्मके रूपमें वर्णन किया गया है।

वहाँपर 'रां' बीजके साथ प्रणवकी एकताका वर्णन है। प्रणवके समस्त अक्षरों एवं मात्राओंके वाच्य लक्ष्मणादि नित्य पार्षदोंद्वारा सेवित श्रीसीतारामजी हैं। प्रणवके अकाराक्षरसे

सुमित्रानन्दवर्धन विश्वभावन श्रीलक्ष्मणजी, उकाराक्षरसे तैजसात्मक श्रीशत्रुघ्नजी, मकाराक्षरसे प्रज्ञात्मक श्रीभरतजी एवं प्रणवकी अर्धमात्रासे ब्रह्मानन्दमात्रैकविग्रह श्रीरामका प्रतिपादन है—

अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः ।
उकाराक्षरसम्भूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः ॥
प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसम्भवः ।
अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः ॥

(श्रीरामोत्तरतापनी १ । १-२)

प्रणवकी अर्धमात्रामें विद्यमान बिन्दुद्वारा श्रीसीताजीका प्रतिपादन है।

प्रस्थानत्रय-भाष्यकार स्वामी श्रीहरिदासजीने अपने तापनी-भाष्यमें लिखा है—

'अथ श्रीरामालिङ्गितायाः सीतायाः श्रीरामप्रतिपादकार्धमात्रासंनिहितबिन्दुप्रतिपाद्यत्वमाह—

श्रीरामसांनिध्यवशाज्जगदानन्दकारिणी ।
सा सीता भगवती ज्ञेया………………'

'यहाँ श्रीरामजीके प्रतिपादक अर्धमात्रासंनिहित बिन्दुद्वारा श्रीजानकीजीका प्रतिपादन किया गया है। श्रीरामजीकी संनिधिमें सदा विराजमान रहकर श्रीसीताजी जगत्के जीवोंको आनन्द प्रदान किया करती हैं, ऐसा कहा गया है।'

श्रीराम पूर्वतापनीमें श्रीसीताजीको 'चित्स्वरूपा' कहा गया है—

हेमाभया द्विभुजया सर्वालंकृतया चिता ।
श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्टः कोसलजात्मजः ॥

(४ । ९)

महर्षि वाल्मीकिने स्थल-स्थलपर श्रीसीतारामजीको 'परतत्त्व' कहा है। साथ ही दोनोंका अभेद भी स्वीकार किया है—

अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा ।
× × × ×
अनन्या हि मया सीता भास्करेण प्रभा यथा ।

प्रभाके साथ जिस प्रकार सूर्यका अभेद सम्बन्ध है, उसी प्रकार श्रीसीताजीका श्रीरामजीके साथ अभेद सम्बन्ध है।

जिस प्रकार पुरुष-सूक्तमें भगवान्की महिमाका वर्णन है, उसी प्रकार 'हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्' आदि मन्त्रोंसे श्रीसूक्तमें श्रीजीकी महिमाका विशद वर्णन है।

श्रीपराशरभट्ट स्वामी 'श्रीगुणरत्नकोश'में लिखते हैं—

उद्बाहुस्त्वामुपनिषदसावाह नैकां नियन्त्रीं
श्रीमद्रामायणमपि परं प्राणिति त्वच्चरित्रे ।
स्मर्तारोऽस्मज्जननि यतमे सेतिहासैः पुराणै-
र्निन्युर्वेदानपि च ततमे त्वन्महिम्नि प्रमाणम् ॥

(१४)

'हे हमारी जननी! केवल श्रीसूक्त अथवा—रामतापिनी-उपनिषद् ही भुजा उठाकर हमारी शपथपूर्वक आपको जगत्की एकमात्र नियन्त्री—स्वामिनी नहीं कहती, श्रीमद्रामायण भी आपके चरित्रका प्रतिपादन करती हुई उत्कर्षपूर्वक जीवित है। जितने भी स्मृतियोंके प्रणेता पराशरादि हैं, वे सभी इतिहास-पुराणोंसहित वेदोंको आपकी महिमामें प्रमाण मानते हैं।' इस श्लोकसे सुस्पष्ट है कि श्रीमद्रामायणका परमोत्कर्ष श्रीसीता-चरित्रके कारण ही है—

काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत् ।

अर्थात् 'समग्र श्रीरामायण महाकाव्य श्रीसीताजीका महान् चरित्र है।' इस श्लोकमें श्रीसीता-चरित्रका जो 'महत्' विशेषण है, वह उनके चरित्रकी श्रेष्ठताका बोधक है। श्रीगोविन्दराज अपने भाष्यमें लिखते हैं—'श्रीराम धीरोदात्त नायक हैं।' "जो अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं सुने तथा सभीपर समानरूपसे कृपा करे, वही 'धीरोदात्त' नायक है"—

'कृपावानविकत्थनः।'

श्रीलव-कुशके मुखसे श्रीराघवेन्द्रने श्रीरामायणका श्रवण किया। यदि श्रीरामायण केवल श्रीरामपरक होती, तब अपनी ही राज-सभामें श्रीराघवेन्द्र उसका श्रवण किस प्रकार करते? श्रीसीताचरितकी प्रधानता होनेसे श्रीरामद्वारा श्रीरामायणका श्रवण उनके स्वरूपानुरूप सिद्ध हुआ। 'तनिश्लोकी' टीकाकार (श्रीरामानुज) कहते हैं—'भगवान् श्रीराम शरणागत भक्तोंपर कृपा करते हैं, किंतु श्रीसीताजी तो अपराधियोंपर भी कृपा करती हैं, इसलिये उनका चरित्र भगवान्की अपेक्षा भी महान् है—

मातर्मैथिलि राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया
रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता ।
काकं तं च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षतः
सा नः सान्द्रमहागसस्सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी ॥

"हे माता श्रीमैथिलि! राक्षसराजपुरी लङ्कामें अपने प्रति नित्य नवीन अपराध करनेवाली उन राक्षसियोंकी,

उनपर रुष्ट श्रीहनुमान्‌जीसे अनेक हेतुदर्शक वाक्योंद्वारा, बिना ही उनके शरणमें आये रक्षा करके आपने रघुकुलभूषण श्रीराघवेन्द्रकी सभाको अत्यन्त लघु कर दिया; क्योंकि जयन्त तथा विभीषणकी तो 'मैं आपका हूँ' इस प्रकार शरणागत होनेपर श्रीराघवेन्द्रने रक्षा की थी। पर आप तो अपने क्षमागुणकी प्रबलतासे शरणागतिकी अपेक्षा न करके केवल अहैतुकी कृपासे ही रक्षा करती हैं। अतः आपकी अहैतुकी क्षमा हमारे सदृश महान् अपराधियोंको सुखी करे।''

श्रीजनकनन्दिनी श्रीजानकीजीकी यह अहैतुकी करुणा समग्र रामायणमें स्थल-स्थलपर वर्णित है। श्रीवैष्णव-सिद्धान्तानुसार श्रीजीके पुरुषकारत्व (अगुआई) के बिना भगवत्प्राप्ति असम्भव है। श्रीयामुनाचार्य स्वामीने चतुःश्लोकीमें लिखा है—'सांसारिक वैभव, आत्मज्ञान (कैवल्यमुक्ति) एवं वैष्णवसम्मत भगवत्पादारविन्द-कैंकर्यस्वरूप मोक्ष—इन तीनोंकी प्राप्ति राजीवलोचन-प्राणेश्वरी, नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीकिशोरीजीकी कृपाके बिना सम्भव नहीं है'—

श्रेयो नह्यरविन्दलोचनमनःकान्ताप्रसादादृते
संसृत्यक्षरवैष्णवाध्वसु नृणां सम्भाव्यते कर्हिचित्॥

तात्त्विक दृष्टिसे श्रीरमण, सीतारमण एवं श्रीराधारमण एक ही पूर्णब्रह्मके भिन्न-भिन्न रूप हैं। मिष्टान्नकी मधुरिमा एवं पुष्पके सौरभके समान श्रीसीता-राम कथनमात्रके लिये दो हैं। वस्तुतः ये एक दूसरेके पूरक एवं रसवर्द्धक हैं। गोस्वामीजीने गिरा-अर्थ एवं जल-वीचिके समान दोनोंको अभिन्न कहा है—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥

तत्त्वतः दोनों अभिन्न हैं; किंतु रसवैचित्री, लीला-वैचित्रीकी दृष्टिसे भक्तजन दोनोंके भेद-रसका रसास्वादन करते हैं। दोनोंके भेद सर्वथा अलौकिक एवं अचिन्त्य हैं। श्रीपराशरभट्ट स्वामी लिखते हैं—

युवत्वादौ तुल्येऽप्यपरवशता शत्रुशमन-
स्थिरत्वादीन् कृत्वा भगवति गुणान् पुंस्त्वसुलभान्।
त्वयि स्त्रीत्वैकान्तान् मृदिमपतिपारार्थ्यकरुणा-
क्षमादीन् वा भोक्तुं भवति युवयोरात्मनि भिदा॥
(३४)

'हे श्रीकिशोरीजी! यौवन आदि गुण आप दोनोंमें समान रहनेपर भी पुरुषत्वके अनुरूप स्वतन्त्रता, शत्रु-निवारण, स्थिरत्व आदि गुण प्रभुमें हैं और स्त्रीत्वके अनुरूप मृदु हृदय, पतिपारतन्त्र्य, कारुण्य, क्षमादिक गुण प्रधानतः आपमें हैं। इस प्रकार आपमें तथा प्रभुमें गुणभेदोंका अनुसंधान करके तत्त्ववेत्ता लोग भेद-रसका रसास्वादन करते हैं।' मृदु हृदय, कारुण्य, क्षमा आदि गुण भगवान्‌में भी समान हैं, किंतु स्वातन्त्र्य आदिके साथ हैं। श्रीकिशोरीजीमें तो स्वातन्त्र्य आदिका अभाव होनेसे विशुद्ध करुणा, क्षमा आदि गु[ण] पूर्णतया विकसित हैं।

मातृप्रयुक्त वात्सल्यसे जगज्जननी श्रीजानकीजीका हृद[य] परिपूर्ण रहता है तथा पितृप्रयुक्त हितकारक बुद्धिसे भगवान्‌का हृदय परिपूर्ण रहता है। श्रीपराशरभट्ट स्वामी लिख[ते] हैं—

पितेव त्वत्प्रेयाञ्जननि परिपूर्णागसि जने
हितस्रोतोवृत्त्या भवति च कदाचित्कलुषधीः।
किमेतन्निर्दोषः क इह जगतीति त्वमुचितै-
रुपायैर्विस्मार्य स्वजनयसि माता तदसि नः॥
(५२)

'हे जननि! आपके प्रियतम श्रीरघुनन्दन जीवोंके हितकी दृष्टिसे कभी-कभी महान् अपराधोंको देखकर उनपर रुष्ट हो जाते हैं।' गीतामें भगवान् कहते हैं—

'अहंकार, बल, दर्प आदि दोषोंसे युक्त क्रूर जीवोंको मैं सदा संसार-गर्तमें (अशुभ योनियोंमें) ढकेलता रहूँगा, जिससे वे अनन्तकालतक मेरे पास नहीं पहुँच सकेंगे।' श्रीलोकाचार्य स्वामीने श्रीवचनभूषणमें लिखा है कि—''विमुख जीवोंके प्रति भगवान् 'क्षिपामि किंतु न क्षमामि' (अशुभ योनियोंमें डाल देता हूँ। किंतु क्षमा नहीं करता)''—यह कह रहे हैं।

तात्पर्य यह है कि सदा जीवोंके उद्धारके लिये अवतार लेने, वेद-शास्त्रादिका प्रकाशन करने तथा संत-महापुरुषोंके रूपमें अवतीर्ण होकर जीवोंको अपने सम्मुख करनेमें भगवान् सतत प्रयत्नशील रहते हैं; किंतु 'याचितोऽपि सदा भक्तैर्नाहितं कारयेद्धरिः।—याचना करनेपर भी भगवान् भक्तोंका अहित नहीं करते'—इस सिद्धान्तके अनुसार परिणाममें अनन्त सुख प्रदान करनेके लिये, तत्काल कुछ दण्ड देकर जीवोंको विशुद्ध बनानेके लिये ही कृपालु पिताके सदृश प्रभु जब कभी रुष्ट होते हैं, तब श्रीमैथिली भगवान्‌को रुष्ट देखकर प्रभुसे विनय करती हैं—'स्वामिन्! यह आपका कोप किस लिये है? अर्थात् व्यर्थ है; क्योंकि समस्त दोषोंके एकमात्र आश्रय इस जगत्‌में

निर्दोष कौन है ? अर्थात् कोई भी नहीं। अतः जीवपर कोप न करके सर्वरक्षक, सर्वशरण्य, सर्वाराध्य आदि अपनी वेद-प्रसिद्ध विरुदावलीपर ध्यान रखते हुए इस जगत्के जीवोंपर कृपा ही करें।' अतएव पराशरभट्ट माता सीतासे कहते हैं—'इस प्रकार अनेक अपराध-क्षमापनयोग्य उपायोंसे प्रभुके समक्ष जीवको निर्दोष सिद्ध करके आप जीवोंको अपना लेती हैं, इसलिये आप माता हैं।' पितारूप प्रभुकी हितपरता एवं मातारूप आपकी प्रियपरता सुप्रसिद्ध ही है। **'उचितैरुपायैर्विस्मार्य स्वजनयसि'** उचित उपायोंसे जीवके दोषोंकी स्मृतिको प्रभुके मनसे निकालकर, प्रभुको उनके प्रति अनुकूल बनाकर जीवोंको अपनाती हैं।

इस प्रकार जगज्जननी श्रीजानकीजीके साथ भगवान् श्रीराघवेन्द्रका स्वरूप-गुण-लीला-विभूति आदिका अभेद सर्व-प्रमाणप्रतिपन्न है। महर्षि वाल्मीकि कहते हैं—

भगवान् श्रीराम सूर्यके सूर्य (प्रकाशक), अग्निके अग्नि एवं प्रभुके भी प्रभु हैं—

सूर्यस्यापि भवेत्सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः।

(वा० रा० २। ४४। १५)

जनकनन्दिनी श्रीजानकीजी श्रीलक्ष्मीजीकी भी कारण हैं—

'श्रियः श्रीं भर्तृवत्सलाम्' (वाल्मीकि०)

शरणागतवत्सल भगवान् श्रीराघवेन्द्रने श्रीविभीषणजीसे जिस प्रकार अभयप्रद वचन कहा, उसी प्रकार श्रीजनक-नन्दिनीने भी श्रीहनुमान्‌जीके समक्ष जीवमात्रको अभय देने-वाली वाणी कही है। श्रीराघवेन्द्र कहते हैं—''जो मनुष्य एक बार भी मेरी शरणमें आकर 'मैं आपका हूँ, मेरी रक्षा करें'—ऐसी प्रार्थना करता है, उसको मैं सभी प्रकारसे अभय कर देता हूँ—ऐसा मेरा व्रत है''—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा० रा० ६। १८। ३३)

श्रीकिशोरीजी श्रीहनुमान्‌जीसे कहती हैं—'कोई पापी हो या पुण्यात्मा, वधके योग्य ही क्यों न हो, श्रीहनुमान्‌जी! बड़ोंको (सर्वसमर्थको) तो ऐसे जीवोंपर कृपा ही करनी चाहिये; क्योंकि ऐसा एक भी जीव नहीं मिलेगा, जिसने कभी-न-कभी कुछ-न-कुछ अपराध न किया हो'—

पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति॥

(वा० रा० ६। ११३। ४५)

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने मानसमें श्रीसीता-राम-तत्त्वका स्थल-स्थलपर विशद विवेचन किया है। भगवान् श्रीराघवेन्द्रके अंशसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रकट होते हैं तथा श्रीजनकनन्दिनी श्रीजानकीजीके अंशसे अनन्त उमा, रमा, ब्रह्माणी प्रकट होती हैं—

संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥

(श्रीरामच० मा० १। १४३। ३)

जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥

(वही, १। १४७। १½)

मानसमें एवं अन्य ग्रन्थोंमें कहीं-कहीं श्रीसीताजीके लिये जो 'माया'-शब्दका प्रयोग मिलता है, उसका अर्थ त्रिगुणात्मिका चित्र-विचित्र-सर्गकरी, स्वरूप-तिरोधानकरी जडप्रकृति (माया) नहीं है, किंतु कोष-प्रमाणानुसार कृपाशक्ति एवं ज्ञानशक्ति हैं। माया जब जीव-ब्रह्मके बीचमें आ जाती है, तब जीवको ब्रह्मसे विमुख कर देती है; किंतु श्रीजनकनन्दिनी जब दोनोंके बीचमें प्रकट होती हैं, तब जीवको प्रभुसे मिला देती हैं।

गौडीय मध्वसम्प्रदायके उद्भट विद्वान् श्रीमद्भागवतपर भक्तिरसमयी व्याख्यादि अनेक ग्रन्थोंके रचयिता आचार्य श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीजी महाराज पञ्चम स्कन्ध, १९वें अध्यायके पाँचवें श्लोक—**'मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्'** की व्याख्या करते हुए लिखते हैं—

'एकमेव परमतत्त्वं चिच्छक्तिवृत्तिभेदेन महासारेण प्रेमाख्येनानादित एव द्विधा विभक्तं तिष्ठति, ह्लादपडैश्वर्यमयं केवलं ह्लादमयं च प्रथमं परमेश्वराख्यं द्वितीयं भक्त्याख्यम्।'

अर्थात् एक ही परमतत्त्व चित्-शक्ति-वृत्तिके भेदसे महासार प्रेमके नामसे अनादिकालसे दो भागोंमें विभक्त होकर युगलस्वरूपसे विराजमान है। एक षडैश्वर्यसे युक्त ह्लादमय है, दूसरा केवल ह्लादमय है। प्रथम तत्त्वको परमेश्वर कहते हैं तथा द्वितीय तत्त्वको भक्ति कहते हैं।

तात्पर्य यह है कि श्रीराम परमेश्वर हैं एवं श्रीसीताजी भक्ति हैं। पुनः वही श्रीसीतास्वरूप प्रेमतत्त्व दास्य-सख्य-वात्सल्य-मधुर आदि भावोंद्वारा भक्तोंके हृदयमें प्रकट होकर ब्रह्म-रसका रसास्वादन करता है। विभाव, अनुभाव आदिद्वारा स्वयं रसस्वरूप बनकर, श्रीसीताराम-तत्त्व-युगल परस्परमें विषय-आश्रय बनकर संयोग-वियोगद्वारा अपने असाधारण माधुर्यका रसास्वादन अपने भक्तोंको प्रदान करते हैं।

बाह्यदृष्टिसे तो श्रीसीताजीके वियोगमें श्रीराघवेन्द्रका रुदन प्रतीत होता है, किंतु तत्त्वदृष्टिसे दोनों कभी-कभी पृथक् होकर विप्रलम्भ शृङ्गारका अनुभव करते हैं। श्लोकमें आत्मारामका अर्थ है श्रीसीतारमण; क्योंकि श्रीसीताजी श्रीरामकी स्वरूप-शक्ति—आत्मा हैं—

'सीतायाः स्वरूपशक्तित्वेनात्मभूतत्वात् ।'

इस प्रकार भागवतके सभी व्याख्याकारोंने अपनी-अपनी व्याख्याओंमें श्रीसीतारामतत्त्वका विशद विवेचन किया है। मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदसे लेकर इतिहास, पुराण, श्रीरामायण आदिमें श्रीसीतारामतत्त्वकी सम्यक् मीमांसा की गयी है। परत्व एवं माधुर्य दोनों दृष्टियोंसे श्रीसीतारामजी जीवमात्रके लिये एकमात्र उपास्य—ध्येय हैं। तभी तो श्रीहनुमान्‌जी भागवतमें कह रहे हैं—

भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत् कोसलान्दिवम्।
(५।१९।८)

सुर हो या असुर, वानर हो या नर—कथंचित्—जैसे-तैसे भी उनका कोई स्वल्प ही उपकार (भजन-स्मरण) करता है, तो वे प्रसन्न हो जाते हैं। श्रीराम मानवरूपमें अवतीर्ण साक्षात् श्रीहरि हैं, उन्होंने अयोध्यावासी जड-चेतन सभी जीवोंको साकेतधाम प्रदान किया, यह कथा श्रीरामायणमें प्रसिद्ध है। आचार्य श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीजी लिखते हैं—

तस्माद् भजनीयेषु सर्वेष्ववतारेषु मध्ये श्रीराम एव कृपासिन्धुरतिशयेन भजनीयो यद्भजने सर्व एवाधिकारी।

'इसलिये समस्त भजनीय अवतारोंमें श्रीराम ही कृपासिन्धु हैं, जिनके भजनमें सभीका अधिकार है।' दाक्षिणात्य आचार्योंने प्रभुसे पूछा है—

'हे नाथ! कर्म, ज्ञान एवं उपासना—इन तीन ही साधनोंसे वेद-शास्त्र आपकी प्राप्ति बतलाते हैं। इन तीनोंमें अयोध्याके कीट-पतंग, दूर्वा-गुल्म आदिने कौन-सा साधन किया, जिससे आपने उन सभीको साकेत प्रदान किया?'

पूर्वं सदूर्वमभजन्त हि जन्तवस्त्वाम्।

इस प्रकार साधनहीन जीवोंको केवल श्रीअवधधामके सम्पर्कमात्रसे दिव्यधाम देनेवाले श्रीसीतारामजीका ही जीवमात्रको भजन करना चाहिये, श्रीमद्भागवतमें यह श्रीहनुमान्‌जीका आदेश है। मानसमें अयोध्यावासी भी यही कहते हैं—

जनकसुता समेत रघुबीरहि। कस न भजहु भंजन भव भीरहि॥
(७।२९।४)

'गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न'

(लेखक—श्रीश्रीकान्तशरणजी महाराज)

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीने लिखा है—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥
(रामचरितमानस बाल० १८)

'मैं उन श्रीसीतारामजीके चरणोंकी वन्दना करता हूँ, जिन्हें दीन अत्यन्त प्यारे हैं तथा जो शब्द और अर्थ एवं जल और जलकी लहरके समान कहने मात्रको तो भिन्न हैं, पर (तत्त्वतः) भिन्न नहीं हैं।'

विशेष—इस प्रसङ्गमें प्रथम तो ऊपर श्रीसीताजी और श्रीरामजीकी पृथक्-पृथक् वन्दना की है। अब एकमें ही क्यों?

उत्तर—(क) ये बाह्यतः भिन्न देखे-सुने जाते हैं, अतः भिन्न-भिन्न वन्दना हुई। तत्त्वतः अभिन्न हैं, अतः अभिन्न-वन्दना हुई।

(ख) श्रीगोस्वामीजी आगे नाम-वन्दना करेंगे, तब 'बंदउँ नाम राम...' कहेंगे। वहाँपर यह शङ्का होगी कि "मानसकार केवल श्रीरामके ही उपासक हैं; अन्यथा वे 'सीताराम नाम बंदउँ'—इस प्रकार किसी युगल-नामसूचक शब्दका प्रयोग करते। अतः 'सीता' नाम ब्रह्मका नहीं है।" इसलिये यहाँ प्रथम ही दोनों रूपोंको अभिन्न सिद्ध करते हैं। तब नामकी तत्त्वतः अभिन्नता स्वतः हो जायगी; क्योंकि नाम और नामी अभिन्न होते हैं—'न भिन्नौ नामनामिनौ' (पद्मपुराणमें पार्वतीजीके प्रति शिवजीका वाक्य)। जो गुण एवं ऐश्वर्य रूपमें होता है, वही उसके नाममें भी रहता है। उदाहरणार्थ, कोई ज्योतिषी चोरीको प्रकट करनेकी विद्यामें निपुण हो और इसमें उसकी ख्याति हो जाय तो उसके निवास-स्थलसे दूरस्थलपर भी चोरी होनेपर यदि घरवाला ज्योतिषीका नाम लेते हुए उससे जाँच करानेको कहता है, तो चोर डरकर चुराया माल भी किसी युक्तिसे छोड़ या दे जाता है। इस रीतिसे ज्योतिषीकी समग्र विद्याशक्तिने उसके नामद्वारा रूपका-सा कार्य किया। पुनः नामकी प्रशंसासे

रूप प्रसन्न होता है। नामद्वारा मुहूर्त्त शोधकर कार्य करनेसे रूपका कल्याण होता है, इत्यादि।

यही एकता अन्यत्रके प्रमाणोंसे भी पायी जाती है—

द्वौ च नित्यं द्विधा रूपं तत्त्वतो नित्यमेकता।
राममन्त्रे स्थिता सीता सीतामन्त्रे रघूत्तमः॥*

(बृहद्विष्णुपुराण)

इसमें भी तत्त्वतः रूपकी एकता दिखाते हुए मन्त्र एवं नामकी भी एकता कही गयी है।

(२) 'गिरा अरथ…' इसमें गिरा-वीचि और अर्थ-जल उपमान हैं, क्रमशः सीता और राम उपमेय, 'कहिअत भिन्न न भिन्न' धर्म और 'सम' वाचक है। अतः पूर्णोपमा है। इसमें ग्रन्थकारका प्रयोजन धर्मके द्वारा दोनों रूपोंको तत्त्वतः अभिन्न दिखानेका है। वाणी और अर्थ तत्त्वतः एक हैं, जैसे 'पय' वाणी और दूध उसका अर्थ है। इसमें 'पय' और दूध एक ही वस्तु हैं; इसी प्रकार सीता और राम एक ही वस्तु हैं। दोनों मिलकर एक अखण्ड ब्रह्म-तत्त्व हैं।

कालिदासकृत 'रघुवंश'के मङ्गलाचरणमें भी यही कहा गया है— **'वागर्थाविव सम्पृक्तौ'**। यही बात मनु-शतरूपा-प्रकरण (दो० १४१–१५२) में खोलकर दिखायी गयी है। वहाँपर स्वायम्भुव मनु और शतरूपा प्रथम सच्चिदानन्द ब्रह्मका स्मरण करते थे। फिर उसीकी 'हरि' (क्लेशहर्त्ता) रूपसे प्राप्तिके लिये तप करने लगे और यह अभिलाषा करने लगे कि "हम उसी परम प्रभुको अपने नेत्रोंसे देखें, जो निर्गुण, अखण्ड, अनन्त और अनादि है; जिसका चिन्तन परमार्थवादी करते हैं, वेद 'नेति-नेति' कहकर जिसका निरूपण करते हैं; जो स्वयं आनन्दस्वरूप और उपाधिरहित एवं अनूप है; जिसके अंशसे अनेक शिव, ब्रह्मा और विष्णुभगवान् उपजते हैं। ऐसा प्रभु भी सेवकके वशमें है और वह भक्तोंके लिये लीला-को अपने शरीरमें ग्रहण करता है। (लीलाका अर्थ यह कि अपने दिव्य शरीरमें ही प्राकृत मनुष्योंकी तरह बाल-पौगण्ड आदि अवस्थाओंको धारण करता है, वैसी बात करता एवं वैसा ही देख पड़ता है।) यदि ब्रह्मके सम्बन्धमें 'लीला तनु गहई'—यह वचन वेदने सत्य कहा है तो हमारी अभिलाषा पूरी होगी।" ऐसा दृढ़ संकल्प करके वे तप कर रहे थे। इसी बीच विधि-हरि-हर बहुत बार आये तथा उन्होंने बहुत प्रकारके वरोंका प्रलोभन दिया। पर इनकी अखण्ड वृत्ति परब्रह्ममें लगी थी। अतः उनके वचन ही उन्होंने नहीं सुने। तब परब्रह्म परमात्माने मनुको अपना अनन्य दास जानकर ब्रह्मवाणीद्वारा वर माँगनेको कहा। उस वाणीके श्रवणसे ही इनका क्षीण शरीर पहलेकी भाँति (हृष्टपुष्ट) हो गया। तब इन्होंने कहा कि "जो शिवजीके मनमें रहता है, जिसके लिये मुनि यत्न करते हैं और जो भुशुण्डिजीके मन-मानसका हंस है, वेद जिसकी प्रशंसा सगुण-निर्गुण कहकर करते हैं, हम वही रूप नेत्र भरकर देखें। अर्थात् हम देखकर ही जानेंगे कि उस अखण्ड ब्रह्मका कैसा रूप है।" तब भक्तवत्सल भगवान् युगल (सीताराम)-रूपसे ही प्रकट हुए। यही अखण्ड ब्रह्मका रूप है। ब्रह्म नित्य सर्वशक्तिमान् है। अतः शक्तिसहित ही वह अखण्ड है। यही प्रायः सभी दार्शनिकोंका सिद्धान्त है। सभी शक्ति और शक्तिमान्को अभिन्न मानते हैं।

इस सम्बन्धमें श्रीरामतापनीयोपनिषद्के हरिदास-भाष्य (पृ० १५७-१६६) के अन्तर्गत **'उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना'** (१।७) की व्याख्या देखें। भगवान्के सभी शरीरोंके भाव नित्य हैं। जैसे कोई स्फटिक मणि नील-पीतादि पुष्पोंके बीचमें रक्खी हो तो उस-उस ओर नील-पीतादि रूपसे देख पड़ती है, वैसे ही भगवान् उपासकोंके ध्यानके अनुसार अपने आदि विग्रहमें लीलाके द्वारा अनेक रूपों और भावोंके साथ दीखते हैं; यथा—

एहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहिं तस देखेउ कोसलराऊ॥

(श्रीरामच० मा० १। २४१। ४)

शङ्का—एक ही दृष्टान्तसे एकता सिद्ध हो जाती तो दो क्यों दिये गये? और स्त्रीलिङ्ग-पुँल्लिङ्गकी उपमाओंका हेर-फेर क्यों किया गया?

समाधान—'गिरा-अर्थ' मात्र कहे गये होते तो 'गिरा' शब्दके स्त्रीलिङ्ग होनेसे सीताजीका कारण होना और अर्थरूप श्रीरामजीका कार्य होना सिद्ध होता; क्योंकि गिरा से अर्थ होता है। ऐसे ही 'जल-वीचि' में भी 'जल' संस्कृतमें नपुंसकलिङ्ग होते हुए भी भाषामें पुँल्लिङ्ग है। अतः 'जल' श्रीरामजीके लिये है और स्त्रीलिङ्गवाचक 'वीचि' श्रीसीताजीके

---

* पृथक्-पृथक् दोनों ही नित्य हैं, किंतु दोनोंकी एकता भी नित्य है। जिस प्रकार राममन्त्रमें सीताकी स्थिति है, उसी प्रकार सीतामन्त्रमें राम स्थित हैं।

लिये है। जलका कार्य वीचि है। अतः श्रीरामजी कारण और श्रीसीताजी कार्य समझे जाते। इन दो दृष्टान्तोंसे दोनोंमें कार्य-कारणत्वका निराकरण किया गया है।

और भी, राजा दशरथको वरदान था कि वे श्रीरामजीके दर्शनोंके बिना 'जल बिनु मीना' की तरह जी नहीं सकते थे। उन्होंने श्रीसुमन्त्रजीसे कहा है कि 'यदि जानकी फिरे तो मेरे प्राणोंका अवलम्ब हो।' (अयो०, दो० ८१) यदि श्रीजानकीजी श्रीरामजीसे भिन्न तत्त्व होतीं तो राजा कैसे जी सकते थे?

यहाँ संकेतसे श्रीराम तथा श्रीसीताजीकी अभिन्नता बतलाते हुए उनके ब्रह्म होनेका भी संकेत किया गया है। जैसे कार्यब्रह्म और कारणब्रह्म एक ही हैं, उसी प्रकार श्रीराम और श्रीसीताजी भी एक ही हैं, जिसका कि निदर्शन श्रीतुलसीदासजी महाराजने स्थान-स्थानपर श्रीरामचरितमानसमें किया है। इस एकत्वके अनेक प्रमाण भारतीय साहित्यमें विभिन्न रूपोंमें दृष्टिगोचर होते हैं। यथा—

श्रीसीतारामजीकी नित्य अभिन्नता यहाँके 'गिरा अरथ' की भाँति अन्यत्र भी कही गयी है।

यथा—

नित्यैवैषा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी।
यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम॥
अर्थो विष्णुरियं वाणी नीतिरेषा नयो हरिः।
बोधो विष्णुरियं बुद्धिर्धर्मोऽसौ सत्क्रिया त्वियम्॥

× × ×

किं चातिबहुनोक्तेन संक्षेपेणेदमुच्यते॥
देवतिर्यङ्मनुष्यादौ पुन्नामा भगवान् हरिः।
स्त्रीनाम्नी श्रीश्च विज्ञेया नानयोर्विद्यते परम्॥
(विष्णुपुराण १। ८। १७-१८ से ३४-३५ तक)

श्रीपराशरजीने मैत्रेयजीसे कहा है—'हे द्विजोत्तम! जिनका कभी तिरोभाव नहीं होता, वे जगन्माता श्रीलक्ष्मीजी (एवं श्रीजानकीजी) तो नित्य ही हैं। जिस प्रकार विष्णुभगवान् (श्रीरामजी) सर्वव्यापक हैं, उसी प्रकार ये (श्रीजी) भी सर्वव्यापिका हैं। विष्णु अर्थ हैं और ये (श्रीजी) वाणी हैं। हरि न्याय हैं और ये नीति हैं। विष्णुभगवान् (श्रीरामजी) बोध हैं और ये बुद्धि हैं, एवं ये धर्म हैं और श्रीसीताजी सत्क्रिया।...... अधिक कहनेसे क्या (प्रयोजन), संक्षेपमें यही कहा जाता है कि देवता, तिर्यक् और मनुष्य आदिमें 'पुरुष' नामवाले भगवान् हरि हैं और 'स्त्री' नामवाली श्रीजी हैं; इनसे परे और कोई नहीं है।'

यहाँ पुराणरत्न विष्णुपुराणमें महर्षि पराशरजीने दोनोंको एक तत्त्व स्पष्ट कहा है। दोनोंको 'सर्वव्यापक' और 'सर्वव्यापिका' भी कहा है। व्यापक तत्त्व तो एक ही होता है।

यथा—

त्वं माता सर्वलोकानां देवदेवो हरिः पिता।
त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्व्याप्तं चराचरम्॥
(विष्णुपुराण १। ९। १२६)

इन्द्रने श्रीजीकी स्तुति करते हुए कहा है कि 'आप सर्वलोकोंकी माता हैं और देवाधिदेव श्रीहरि पिता हैं। आपके और श्रीविष्णुके द्वारा चराचर जगत् व्याप्त है।'

श्रुतियोंमें जहाँ केवल ब्रह्मका परत्व कहा गया है, वहाँ श्रीतत्त्वको ब्रह्ममें ही अन्तर्भूत समझना चाहिये। यथा—

तदन्तर्भावात्त्वां न पृथगभिधत्ते श्रुतिरपि। (२८)
(श्रीगुणरत्नकोश—पराशरभट्टार्य)

अर्थात् श्रुतियोंने श्रीजीको भगवत्तत्त्वके अन्तर्भूत मानकर ही पृथक् नहीं कहा।

(४) ब्रह्मसूत्रमें ब्रह्मजिज्ञासासे प्रारम्भ कर प्रथम ही उसका असाधारण लक्षण 'जन्माद्यस्य यतः।' (१। १। २) बताया गया है। इस सूत्रमें इस प्रकार कहा है—'जिससे जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहार होता है, वही ब्रह्म है।'

तथा—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व। तद्ब्रह्मेति॥
(तैत्ति० ३। १)

ये तीनों जैसे श्रीरामजीके द्वारा होते कहे गये हैं, वैसे ही श्रीजीसे भी। उदाहरणार्थ, जैसे—'उतपति पालन प्रलय समीहा॥' (मानस ६। १४। ३)—यह श्रीरामजीके प्रति कहा गया है, उसी प्रकार—'उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं...सीतां...' (मानस, बाल०, मङ्गल-श्लोक ५)। जैसे श्रीरामजी जगत्के ईश्वर हैं, यथा—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति॥
(गीता १८। ६१)

—वैसे ही श्रीजीका भी महत्त्व है। यथा—

ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्।

(श्रीसूक्त ९)

श्रीजी हरिवल्लभा हैं; यथा—'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ …' (तै० आ० ३। १३। ४१; शु०य० सं० ३१। २२) —अर्थात् श्रीजी और लक्ष्मीजी हरिकी पत्नियाँ हैं। पत्नी पतिकी अर्द्धाङ्गिनी कही जाती है।

यथा—

विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्त्ता सा स्मृताङ्गना॥

(मनु० ९। ४५)

अर्थात् वेदज्ञ ब्राह्मण कहते हैं कि जो भर्त्ता है, वही भार्या है; भर्त्ता और भार्यामें अन्तर नहीं है।

इन दृष्टियोंसे दोनों एक हैं, ब्रह्मतत्त्व हैं। इनका कभी वियोग नहीं होता, यथा—

एवं यदा जगत्स्वामी देवदेवो जनार्दनः।
अवतारं करोत्येषा तदा श्रीस्तत्सहायिनी॥
× × ×
राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि।
अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषानपायिनी॥
देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी।
विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषाऽऽत्मनस्तनुम्॥

(विष्णुपुराण १। ९। १४२, १४४-१४५)

'भगवान् जब-जब अवतार लेते हैं, तब-तब श्रीजी उनके साथ रहती हैं।…श्रीहरिके रामरूप होनेपर ये श्रीसीताके और कृष्ण-जन्ममें श्रीरुक्मिणीके रूपमें रहती हैं। ऐसे ही अन्य अवतारोंमें ये कभी भगवान्‌से पृथक् नहीं रहतीं। भगवान्‌के देव होनेपर देवी-रूप और मनुष्य होनेपर मानुषी-रूप धारण करती हैं। भगवान्‌के अनुरूप ही ये भी शरीर बना लेती हैं।'

परधाममें भी दोनोंका नित्य संयोग रहता है; यथा—

स्वर्गे ते संगमो भूयो भविष्यति न संशयः॥

(वा० रा० ७। ९८। १५)

श्रीसीताजीके पातालप्रवेशपर श्रीब्रह्माजीने श्रीरामजीसे कहा है कि 'स्वर्ग (त्रिपाद्विभूति श्रीसाकेत धाम)-में पुनः आपका (श्रीसीताजीसे) साथ होगा, इसमें संशय नहीं है।' आचार्योंने कहा भी है—'नारायणं सलक्ष्मीकं प्राप्तुम्' अर्थात् श्रीलक्ष्मीजीके साथ ही श्रीनारायण प्राप्य हैं।

मानस, बाल०, दो० ५३-५४ के बादकी चौपाइयोंमें दोनोंका नित्य संयुक्त रहना ही सतीजीने देखा है।

(५) श्रीसीताजी और श्रीरामजी दोनों मिलकर पूर्ण (अखण्ड) ब्रह्म हैं, यह इस प्रकार भी समझना चाहिये—

ककारसे लेकर २४ 'स्पर्श' वर्ण प्रकृतिसहित चौबीस तत्त्वोंके वाचक कहे जाते हैं तथा पचीसवाँ वर्ण 'म' पचीसवें तत्त्व जीवका वाचक कहा जाता है। ईश्वर छब्बीसवीं संख्यासे कहा जाता है;

यथा—

षड्‌विंशं विमलं बुद्धमप्रमेयं सनातनम्।
स तु तं पञ्चविंशं च चतुर्विंशं च बुद्ध्यते॥

(महा०, शान्ति० ३०८। ७)

—इस प्रसङ्गमें ब्रह्म २६, जीव २५ और प्रकृति २४की संख्यासे कही गयी है। 'ब्रह्म'—इस शब्दमें चार अक्षर हैं—ब, र, ह, म। इन्हें प्रथम 'स्पर्श' वर्ण ककारसे* गिनना चाहिये। 'ब' 'क' से २३ वाँ, 'र' २७ वाँ, 'ह' ३३ वाँ और 'म' २५ वाँ है। इनको जोड़नेपर २३ + २७ + ३३ + २५ =१०८ संख्या आती है। जपमें १०८ मणियोंकी माला रखनेका यह भी हेतु है तथा जिनको परमश्रेष्ठ, ब्रह्मरूप मानते हैं, उन्हें भी लोग 'श्री १०८' लिखते हैं।

यही १०८ की संख्या 'सीता-राम' इस पूरे पदमें भी उसी रीतिसे जोड़नेपर आती है—

सीता= स, ई, त्, आ। इनमें 'स' 'क' से ३२ वाँ, 'ई' 'अ' से ४ था, 'त' 'क' से १६ वाँ और 'आ' 'अ' से २ रा है। ३२ + ४ + १६ + २= ५४, इस प्रकार 'सीता' में (१०८ की) आधी संख्या है।

'राम'=र, आ, म। इसमें 'र' 'क' से २७ वाँ, 'आ' 'अ' से २ रा और 'म' 'क' से २५ वाँ है। २७+२+२५= ५४। इस प्रकार 'राम' में भी १०८ की आधी संख्या है। अतः दोनोंकी संख्या मिलकर (५४+५४=१०८) ही पूर्ण अखण्ड ब्रह्मकी संख्या है, यह सिद्ध है।

उपर्युक्त रीतिसे स्पष्ट हो गया कि जो गणना 'ब्रह्म' इस शब्दमें है, वही 'सीताराम' इस नाममें आती है।

इसी प्रकार 'राधा-कृष्ण'में भी (५४+५४) संख्या आती है।

इस प्रकार यहाँ 'गिरा अरथ…' की व्याख्यामें श्री-गोस्वामीजीके वाक्याधारसे 'सीताराम'-तत्त्वका भी विवेचन हो गया और अखण्ड ब्रह्मका परिचय भी यथामति कुछ हुआ है।

---

* व्यञ्जनोंको ककारसे और स्वरोंको अकारसे गिनना चाहिये।

भारतीय संस्कृतिके शाश्वत धर्मस्कन्ध भगवान् श्रीराम

(लेखक—विद्यामार्तण्ड डा० श्रीमङ्गलदेवजी शास्त्री)

छान्दोग्य-उपनिषद् (२ । २३ । १) का वचन है—

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमः ।

अर्थात् 'धर्मके तीन स्कन्ध या आधार-स्तम्भ हैं। उनमें यज्ञ, अध्ययन और दान—यह पहला स्तम्भ है।' इसका यही अभिप्राय है कि धर्मके साथ यज्ञ आदि तीनोंका वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा किसी प्रासाद या महलके साथ उसके प्रधान स्तम्भका होता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्यके जीवनमें धर्मके प्रासादको खड़ा करनेके लिये यज्ञ, अध्ययन और दानकी अनिवार्यरूपसे आवश्यकता है।

उक्त श्रुतिमें यज्ञ, अध्ययन और दानसे क्रमशः देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण—इन तीन ऋणोंका भी संकेत हो सकता है। इसीलिये धर्मशास्त्रका कथन है—

'ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ।'

(मनु० ६ । ३५)

धर्मशास्त्रोंमें जहाँ द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के धर्मोंको बतलाया गया है, वहाँ यज्ञ, अध्ययन और दानका पहले तीनों वर्णोंके लिये आवश्यक कर्तव्यरूपसे विधान किया गया है।

ऐसी ही बात बहुत करके अन्य श्रुतियोंके विषयमें भी कही जा सकती है।

ऊपरकी व्याख्यासे स्पष्ट हो जाता है कि पूर्वोक्त श्रुति-वचन आर्यजातिके ऊपरके तीन वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) को ही दृष्टिमें रखकर, उनके लिये ही कहा गया है। सारी जनता उसका लक्ष्य नहीं है। जनता-मात्रके लिये कर्तव्यका निर्देश उसमें नहीं है। साथ ही शुद्ध वैदिक संस्कृतिसे ही उसका सम्बन्ध है।

परंतु 'भारतीय संस्कृति' और 'वैदिक संस्कृति' समानार्थक शब्द नहीं हैं। 'वैदिक संस्कृति'से 'भारतीय संस्कृति' अधिक व्यापक है। भारतीय संस्कृति भारतीय तत्तत् सम्प्रदायोंको, तत्तत् सांस्कृतिक धाराओंको एकमें मिलानेवाली समन्वित संस्कृति है। भारतीय संस्कृति उस महान् गम्भीर गङ्गाकी धाराके समान है, जिसमें अपेक्षाकृत छोटी संस्कृति-रूप नदियोंकी धाराएँ मिलकर एक हो जाती हैं।

रामचरितका प्रधान वैशिष्ट्य

भगवान् रामके चरित्रका सबसे बड़ा वैशिष्ट्य यह था और है कि वह भारतवर्षकी यावत् सांस्कृतिक धाराओंको मिलानेवाला, समस्त जनता, समस्त वर्णों और वर्गोंके सम्पूर्ण जीवन-यात्राके लिये प्रेरणा देनेवाला (आदर्श उपस्थित करनेवाला) रहा है। वह अमीर-गरीब, बड़ा-छोटा, स्त्री-पुरुष अर्थात् जनताके सभी अङ्गोंके लिये सदासे मार्गदर्शक और प्रेरणाप्रद रहा है। वह प्रत्येक मनुष्यको मानवताकी दृष्टिसे न कि अवान्तर कृत्रिम वर्गीकरणोंकी दृष्टिसे देखता है। उसमें किसी प्रकारकी एकदेशीयता या एकाङ्गिता नहीं है। इसीलिये वाल्मीकि-रामायणके प्रारम्भमें ही नारद ऋषि महर्षि वाल्मीकिको संक्षिप्त राम-कथा सुनानेके अनन्तर रामचरितकी महिमाका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम् ।
यः पठेत् रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
एतदाख्यानमायुष्यं पठन् रामायणं नरः ।
सपुत्रपौत्रः सगणः प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥
पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात्
स्यात्क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात् ।
वणिग्जनः पण्यफलत्वमीया-
ज्जनश्च शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात् ॥

(वा० रा० १ । १ । ९८—१००)

अर्थात् जो मनुष्य इस पवित्र, पापको नाश कर देनेवाले, पुण्यके साधन और वेदोंके समान आदरणीय रामचरितको पढ़ेगा, वह सब पापोंसे मुक्त हो जायगा। आयुको बढ़ानेवाले रामायणके इस आख्यानको पढ़नेवाला मनुष्य पुत्र, पौत्र तथा दास-दासीके सहित, मृत्युके पश्चात् स्वर्ग-सुखकी महिमाको प्राप्त होता है। (रामचरितको) पढ़नेवाला ब्राह्मण विद्वानोंमें श्रेष्ठताको प्राप्त करेगा, क्षत्रिय पृथ्वीपति हो जायगा, वैश्य अपने व्यापारमें समृद्धिको प्राप्त करेगा और शूद्र भी महत्त्व प्राप्त करेगा।

इस महिमाके वर्णनमें रामचरितको वेदोंके समान कहा गया है और बतलाया गया है कि उससे शूद्रके सहित समाजका प्रत्येक अङ्ग स्वाभीष्ट महत्त्वको प्राप्त कर सकता है। ये दोनों कथन अपना विशेष महत्त्व रखते हैं।

इसी प्रकार वाल्मीकि-रामायण, उत्तरकाण्डके १११वें सर्गके ३२ श्लोकमें भी रामायण (रामचरित) महिमाका वर्णन करते हुए कहा गया है कि 'उसके पढ़नेमें साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या है, इसके सुननेमें देवलोकस्थित देव, गन्धर्व, सिद्ध और परमर्षि भी अत्यन्त रुचि लेते हैं'—

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
नित्यं शृण्वन्ति संहृष्टाः काव्यं रामायणं दिवि ॥

यह ठीक है कि शुष्क उपदेशकी अपेक्षा किसी चरितमें अनुप्रविष्ट उपदेश अत्यधिक रोचक हो जाता है; पर रामचरितकी विशेषता केवल इसी कारणसे नहीं है । उसकी परम विशेषताका कारण, जैसा ऊपर संकेत किया जा चुका है, यह है कि रामचरितमें मानवमात्रकी दृष्टिसे मानवके पूरे जीवनको, जीवनमें घटित होनेवाली विभिन्न परिस्थितियोंको सामने रखकर, चरितकी आदर्शवादिता और उत्कृष्टताको दिखलाया गया है ।

पुराणों तथा महाभारतमें हरिश्चन्द्र, परशुराम, भीष्मपितामह-जैसे अनेकानेक महान् पुरुषोंके चरितोंका बड़ा रोचक वर्णन आया है; पर उनमेंसे किसीमें भी न तो रामचरितकी-सी व्यापकता है, न विभिन्न परिस्थितियोंमें आदर्शका पालन ।

इन्हीं कारणोंसे तत्तत् सम्प्रदायोंमें, तत्तत् प्रदेशों और विदेशोंमें साहित्यके अत्यन्त व्यापक विस्तारमें रामकी गुण-गाथाकी जैसी लोकप्रियता, जैसा माहात्म्य देखनेमें आता है, वैसा किसी अन्य महापुरुषके गुण-वर्णनका नहीं ।

अपने इन्हीं लोकोत्तर मानवीय गुणोंके कारण रामको 'मर्यादापुरुषोत्तम' की विशिष्ट उपाधि चिरंतनकालसे भारतीय जनताकी ओरसे दी गयी है । इसका मुख्य कारण यही है कि जीवनकी अत्यन्त विषम परिस्थितियोंमें भी राम कभी चारित्र्यके आदर्शकी या मर्यादाकी दृष्टिको नहीं भूलते ।

अपने वनवासमें अयोध्या लौटनेके लिये भरतके आग्रह करनेपर, ब्राह्मणोत्तम जावालिद्वारा अनेकानेक युक्तियोंके साथ 'राज्यको स्वीकार करो'—यह अनुरोध करनेपर रामने जो वचन कहे थे, वे उनके चरित्रके वैशिष्ट्यको स्पष्ट करनेके लिये पर्याप्त हैं । रामने कहा था—

भवान् मे प्रियकामार्थं वचनं यदिहोक्तवान् ।
अकार्यं कार्यसंकाशमपथ्यं पथ्यसंनिभम् ॥
निर्मर्यादस्तु पुरुषः पापाचारसमन्वितः ।
मानं न लभते सत्सु भिन्नचारित्रदर्शनः ॥
(वा० रा० २ । १०९ । २-३)

आपने मेरा प्रिय करनेकी इच्छासे जो कुछ मुझसे कहा है, वह यद्यपि कर्तव्यरूपमें और पथ्यरूपमें दिखायी देता है, वास्तवमें न तो वह कर्तव्य है और न पथ्य; क्योंकि पापयुक्त आचारवाला और सदाचारका उल्लङ्घन करनेवाला पुरुष निर्मर्याद (आदर्शहीन) होता है और सत्पुरुषोंमें उसको सम्मान नहीं मिलता ।

इससे स्पष्ट है कि भगवान् रामके जीवनमें मर्यादाका क्या स्थान था ।

इसी प्रसङ्गमें बड़ी दृढ़ताके साथ राम कहते हैं—

नैव लोभान्न मोहाद्वा न चाज्ञानात्तमोऽन्वितः ।
सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्यप्रतिश्रवः ॥
(वा० रा० २ । १०९ । १७)

मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि मैं न तो लोभसे, न मोहसे और न तमोगुणसे युक्त हो अज्ञानसे पूज्य पिताके सत्यकी मर्यादाका भङ्ग करूँगा; क्योंकि इस विषयमें मैं अपनी प्रतिज्ञाका पालन करना चाहता हूँ ।

रामका यही आदर्श चरित्र है, जिसके कारण वे सबके, अयोध्याकी समस्त जनताके, आश्रमोंमें तपमें निरत ऋषि-मुनियोंके, वनवासी वानरोंके, देवों, गन्धर्वों और सिद्ध-साध्योंके प्रिय दिखलाये गये हैं ।

रामचरितमें मानवताका आदर्श

वाल्मीकि-रामायणमें जिस रामचरितका गुण-गान किया गया है, उसमें मानवताके आदर्शको ही प्रधानता दी गयी है । प्रारम्भमें ही महर्षि वाल्मीकि नारदजीसे यह पूछते हैं—

को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः ।
× × ×
महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवंविधं नरम् ॥
(वा० रा० १ । १ । २, ३, ५)

वर्तमान कालमें इहलोकमें ऐसा कौन-सा मनुष्य है, जो गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी और दृढ़व्रत होनेके साथ-साथ चारित्रसे युक्त हो और जो सब प्राणियोंका हितैषी हो ? महर्षे ! आप ही इस प्रकारके मानवको जाननेमें समर्थ हैं ।

उत्तरमें नारदजी कहते हैं—

मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः।
(वा० रा० १ । १ । ७)

मुनिवर ! आप सुनिये। मैं उपर्युक्त गुणोंसे युक्त मनुष्यके विषयमें आपसे कहता हूँ।

इस प्रारम्भिक भूमिकाके अनुसार वाल्मीकि-रामायणमें जिस रामचरितका वर्णन किया गया है, वह ऐसा ही है, जिसमें मानवताकी दृष्टिको ही सामने रखा गया है। मानवताके स्तरसे ऊपर उठकर लोकोत्तर दैवी या अतिमानव दृष्टि कदाचित् ही कहीं दिखायी देगी।

इसी दृष्टिको लेकर श्रीरामका 'मर्यादापुरुषोत्तम' रूपमें वर्णन चरितार्थ हो सकता है।

अपने मानवताके महान् आदर्शोंके कारण ही रामचरितकी देश-विदेशोंमें चिरकालीन लोक-प्रियता समझमें आ सकती है।

चारित्र्यकी दृष्टिसे सर्वोत्कृष्ट मानवका चित्रण ही वास्तवमें वाल्मीकि-रामायणका ध्येय था, जैसा कि ऊपर दिखलाया जा चुका है।

मानवताके महान् आदर्शोंके कारण ही रामचरित विभिन्न विदेशोंमें भी सर्वप्रिय हो सका था और आज भी बाली, जावा आदि द्वीपोंमें उसकी वह सर्वप्रियता सुरक्षित है।

धर्मके मूर्तस्वरूप श्रीराम

(लेखक—श्रीगङ्गाधरजी गुरु, बी० ए०, एल्-एल्० बी०)

रामो रक्षति सज्जनान्न हि कदा रामं विना सद्गती
रामेणैव निवार्यते भवभयं रामाय भक्त्या नमः।
रामात् सम्भवति प्रशान्तिसरणी रामस्य नैवोपमा
रामे मे रमतां मनः प्रतिदिनं हे राम पाह्याश्रितम्॥

'श्रीराम सज्जनोंकी रक्षा करते हैं। श्रीरामके बिना कभी सद्गति नहीं प्राप्त हो सकती। श्रीरामके द्वारा ही जन्म-मरणके भयका निवारण होता है। ऐसे श्रीरामके लिये भक्तिपूर्वक नमस्कार है। परम शान्तिका मार्ग श्रीरामसे समुद्भूत होता है। श्रीरामकी कोई उपमा ही नहीं है। उन श्रीराममें मेरा मन प्रतिदिन रमण करता रहे। हे राम! मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये।'

कर्मयोगेश्वरं धीरं रामं सत्यवतां वरम्।
रक्षितारं च धर्मस्य वन्देऽहं पुरुषोत्तमम्॥
हन्तारं भयविघ्नानां दातारं सुखसम्पदाम्।
त्रातारं साधुलोकानां नेतारं राममाश्रये॥

'जो कर्मयोगेश्वर, धैर्यसम्पन्न, सत्यवादियोंमें सर्वश्रेष्ठ और धर्मके रक्षक हैं, उन पुरुषोत्तम श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ। जो भय और विघ्नोंके नाश करनेवाले, सुख-सम्पत्तिके दाता और साधु-समाजके रक्षक हैं, उन लोकनायक श्रीरामका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।'

असंख्य सद्गुणरूपी रत्नोंकी महान् निधि मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र धर्मपरायण भारतीयोंके परमाराध्य परमेश्वर हैं। वे ही अयोध्याधिपति महाराज दशरथके प्राणाराम हैं, जैसा कि अथर्ववेदमें वर्णन किया गया है—

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽऽवृतः॥
तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥
प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सम्परीवृताम्।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम्॥
(१० । २ । ३१–३३)

'मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धि, ललना, आज्ञा और सहस्रार नामके आठ चक्रोंसे युक्त तथा दो नेत्रच्छिद्र, दो कर्णरन्ध्र, दो नासाछिद्र, मुख, लिङ्ग और गुदा—इन नौ द्वारोंवाला यह मानव-शरीर ही देवताओं तथा ब्रह्माकी नगरी है। इस नगरीमें जो ज्योतिर्मय हृदयकोश विद्यमान है, वही स्वर्ग है। उस सात्त्विक, राजसिक और तामसिक-गुणोंसे युक्त ज्योतिर्मय कोशमें आत्माकी भाँति यक्षस्वरूप परब्रह्म परमात्मा विद्यमान है। (इसके लिये केनोपनिषद् द्रष्टव्य है।) आत्मस्वरूप यक्ष ही परमात्मा है। उस यक्षको पहचाननेमें अग्नि, वायु और इन्द्र आदि भी असमर्थ हैं। उसकी शक्तिसे सभी शक्तिमान् और उसके प्रकाशसे सभी प्रकाशित हैं। उमा अथवा योग-परायणा ब्रह्मविद्या उसका ज्ञान करानेवाली है। समस्त प्राणियोंके अन्तरात्मा विश्वनियन्ता परमात्मा ही आत्माराम हैं। उस आत्मारामको केवल ब्रह्मवेत्ता स्थितप्रज्ञ पुरुष ही जानते हैं। वह ब्रह्म उस देवनगरीमें निवास करता है, जो तेजस्विनी, दुःखोंका विनाश करनेवाली, यशस्विनी,

अपराजिता तथा ब्रह्मचर्यके तेजसे उद्दीप्त है। दशरथ ही प्राणस्वरूप हैं। उन प्राणोंको सुख देनेवाले एवं आनन्दकी वृद्धि करनेवाले श्रीराम आत्माराम हैं। वे ही चराचर विश्वकी सृष्टि करनेवाले परब्रह्मके पूर्णावतार हैं।

वे ही विश्वका पालन करनेवाले तथा धर्मके रक्षक हैं। रामायणमें यथार्थ ही कहा गया है—'रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता।' श्रीराम धर्मके क्षीण हो जानेपर साधुओंकी रक्षा, दुष्टोंका विनाश और भूतलपर शान्ति एवं धर्मकी स्थापना करनेके लिये अवतार धारण करते हैं। पृथ्वीका भार अपहरण करनेके लिये उन्होंने श्रीरामरूपमें अवतार लिया था, जैसा कि अध्यात्मरामायणमें वर्णन आता है—

यः पृथ्वीभरवारणाय दिविजैः सम्प्रार्थितश्चिन्मयः
संजातः पृथिवीतले रविकुले मायामनुष्योऽव्ययः।
निश्चक्रं हतराक्षसः पुनरगाद् ब्रह्मत्वमाद्यं स्थिरां
कीर्तिं पापहरां विधाय जगतां तं जानकीशं भजे॥
(१।१।१)

'जिन चिन्मय अविनाशी प्रभुने पृथ्वीका भार निवारण करनेके लिये देवताओंद्वारा प्रार्थना किये जानेपर भूतलपर सूर्यवंशमें माया-मानवरूपसे अवतार धारण किया तथा जो राक्षसोंके समूहका संहार करके और त्रिलोकीमें अपनी पापहारिणी अविचल कीर्ति स्थापित करके पुनः अपने आद्य ब्रह्मस्वरूपमें लीन हो गये, उन जानकीवल्लभका मैं भजन करता हूँ।'

काम-क्रोध आदि शत्रुरूपी मकर-समूहोंसे व्याप्त एवं दुःखोंसे भरे हुए इस भवसागरको पार करनेके लिये राम-भक्ति ही एक भयरहित नौका है। इसीलिये अध्यात्मरामायण-में शान्तिके अभिलाषी जनोंको श्रीरामका भजन करनेके लिये उपदेश दिया गया है। यथा—

भक्तिर्मुक्तिविधायिनी भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य हे
लोकाः कामदुघाङ्घ्रिपद्मयुगलं सेवध्वमत्युत्सुकाः।
नानाज्ञानविशेषमन्त्रविततिं त्यक्त्वा सुदूरे भृशं
रामं श्यामतनुं स्मरारिहृदये भान्तं भजध्वं बुधाः॥
(३।१०।४४)

'अरे लोगो! जो भगवान् रामचन्द्रकी भक्ति करते हैं, उन्हें मुक्ति प्राप्त होती है। भगवान् श्रीरामचन्द्रका चरण-युगल सभी अभिलषित फलोंको प्रदान करनेवाला है। उन चरणोंकी सेवा उत्सुकतापूर्वक करनी चाहिये। सज्जनो! तुमलोग अनेक प्रकारकी ज्ञानचर्चा तथा विशिष्ट मन्त्र-समूहोंका परित्याग करके नवीन जलधरके समान श्याम छटावाले एवं शंकरजीके हृदय-कमलमें सुशोभित श्रीरामका भजन करो।'

श्रीरामचन्द्र अभयदाता, शरणागतवत्सल, सत्यप्रतिज्ञ, धर्मज्ञ और शत्रुदमन हैं। वे स्वयं मेघ-गम्भीर वाणीमें रामायणमें प्रतिज्ञा करते हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
(वा० रा० ६।१८।३३)

"जो एक बार भी मेरे शरण होकर 'मैं तुम्हारा हूँ' —यों कहता हुआ मुझसे अभयदानकी याचना करता है, उसे मैं सम्पूर्ण प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ। यह मेरा व्रत है।"

जो उनके गुणसमूहोंका चिन्तन करता है, मनन करता है और निदिध्यासन करता है, वह सौभाग्ययुक्त होकर शान्ति-लाभ करता है। उसका मानव-जन्म सार्थक हो जाता है।

धर्म पृथ्वीको धारण करनेवाला, समाजका रक्षक, सम्पूर्ण सद्गुणोंका प्रकाशक एवं दुर्गुणोंका नाश करनेवाला तथा मोक्ष-द्वारके किवाड़को खोलनेवाला है। महाभारतमें कहा गया है—

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यत्स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥
(कर्ण० ६९।५८)

"धारण करनेके कारण ही 'धर्म' कहा जाता है। धर्मके आधारपर सारी प्रजा टिकी हुई है। जो धारण-कर्मसे संयुक्त है, वही 'धर्म' है—ऐसा सिद्धान्त है।"

अतः पृथ्वीका धारण-पोषण, समाजका संरक्षण और सद्गुणविभूषित तपस्वियोंका परित्राण करनेके कारण श्रीराम स्वयं धर्म ही हैं। राजर्षि मनुके मतानुसार—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥
(६।९२)

'धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी (बुद्धि), विद्या, सत्य और क्रोधहीनता—ये दस धर्मके लक्षण हैं।' ये समस्त सद्गुण श्रीराममें सर्वदा विद्यमान रहते

थे, इसलिये वे साक्षात् धर्म ही थे। वाल्मीकि-रामायणमें उनकी धर्म-प्रियताका यथार्थ वर्णन मिलता है।

महर्षि वाल्मीकिद्वारा विरचित रामायण-काव्य भगवान् श्रीरामचन्द्रके सर्वाङ्ग-सुन्दर सर्वश्रेष्ठ उत्तम चरित्रोंका गान करनेवाला है। यह काव्य संस्कृत-वाङ्मयमें भारतका नीति-शास्त्र तथा अद्वितीय जातिगौरवका विधायक प्रसिद्ध है। धर्मपरायण हिंदू बालक-वृद्ध एवं स्त्रियोंतकका विश्वास है कि रामायणका पाठ महान् पुण्यप्रद है—किं बहुना, वे रामायणको वेदस्वरूप मानते हैं।

राजर्षि मनुने ठीक ही कहा है—'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' (२।६) अर्थात् सम्पूर्ण वेद धर्मका मूल है। मानवोंके आत्माके प्रकाशके लिये जो नीति-नियम और व्यवहार आवश्यक हैं, वे सभी वेदोंसे प्राप्त हुए हैं। वेद उपदेश देते हैं—

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यं च स्वाध्याय-प्रवचने च। तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च। दमश्च स्वाध्याय-प्रवचने च। शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च।

× × ×

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकꣳ सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि।

(तैत्तिरीयारण्यक १।९; १।११।१-२)

"ऋतम्=ईश्वरीय नियमोंका अनुवर्तन अथवा यथार्थ स्वरूपका ज्ञान; सत्यम्=सत्यभाषण, सत्यका चिन्तन, मनन और निदिध्यासन; दमः=इन्द्रियोंका दमन; शमः=मनकी शान्ति; तपः=मानवीय विकासके साधनमें तत्परता—ये पुण्यकर्म वेदोंके अध्ययन-अध्यापनके समय करने चाहिये।'''सदा सत्य बोलना चाहिये। धर्मका आचरण करना चाहिये।''' वेदाध्ययनको नहीं छोड़ना चाहिये। आचार्यका सम्मान करना चाहिये। धर्ममार्गद्वारा सृष्टिकी रक्षा करनी चाहिये। कभी सत्यसे विचलित नहीं होना चाहिये। धर्मसे च्युत नहीं होना चाहिये। श्रेयस्कर कर्मोंका त्याग नहीं करना चाहिये। उन्नतिके साधनोंसे हटना नहीं चाहिये। वेदोंके अध्ययन-अध्यापन त्याज्य नहीं हैं। देवताओं, विद्वानों तथा गुरुजनोंकी सेवा करनी चाहिये। माता तुम्हारी परम देवता हैं, उनकी आराधना करो। पिता तुम्हारे परम देव हैं, उनकी भलीभाँति पूजा करो। आचार्यकी देवताके समान सेवा करो। अतिथिको देव-तुल्य मानो और सेवा करो। जितने अनिन्द्य एवं श्रेयस्कर कर्म हैं, उन्हींका सेवन करना चाहिये। जो उत्तम आचरण हैं, उन्हींको तुम्हें ग्रहण करना चाहिये।"

अथर्ववेद मानव-धर्मके संरक्षण तथा सम्यक् पालनके लिये संज्ञानसूक्तमें कल्याणप्रद एवं अक्षुण्ण मनोहर भावोंसे युक्त वचनोंद्वारा उपदेश दे रहा है—

सहृदयं साम्मनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥

× × ×

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट
संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एव
सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि॥
समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः
समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा
नाभिमिवाभितः॥

(काण्ड ३, सूक्त ३०, १–३, ५-६)

'सहृदयम्=संवेदनशीलता, साम्मनस्यम्=निर्मल पवित्र भावोंसे युक्त संस्कारसम्पन्न मन, अविद्वेषम्=विद्वेषहीन मित्रता, वः=तुमलोगोंको, कृणोमि=अर्पण करता हूँ। अघ्न्या=अवध्या—गौ जैसे स्नेहपूर्वक अपने बछड़ेका अनुगमन करती है, उसी प्रकार तुमलोग परस्पर अनुरक्त होओ। पुत्र पिताकी आज्ञाका पालन करे और माताके प्रति भक्तिभाव रखे। पत्नी अपने पतिसे मीठी एवं शान्तियुक्त वाणी बोले। भाई भाईसे द्वेष न करे, बल्कि उसमें अनुरक्त रहे। बहिन भी बहिनसे द्वेष न करे। सभी लोग आदर्श कर्ममें तत्पर तथा पवित्र व्रतको धारण करके परस्पर श्रेष्ठ व्यवहार करें।'''वयोवृद्ध गुरुजनोंकी सेवा करो। मनमें उत्तम विचार धारण करो। उन्नतिकी

सिद्धिके लिये प्रयत्न करो। विलग मत होओ, बल्कि एकताकी रक्षा करो। परस्पर मधुर वार्तालाप करो। पुरुषार्थ दिखलाओ। प्रसन्नचित्त होओ। तुमलोगोंका जलपान, अन्नभोजन आदि भेदभावरहित हो। संगठित रहो। जैसे नाभिके चारों ओर लगे हुए अरे चक्रकी सेवा करते हैं, उसी प्रकार तुमलोग ज्योतिर्मय अग्निस्वरूप परमात्माकी एकनिष्ठ भक्तिसे भलीभाँति पूजा करो। शान्ति एवं सौभाग्यलक्ष्मी तुमलोगोंका वरण करे।'

ये वेदोंके उपदेश-समूह मूर्तरूपमें शरीर धारण करके अयोध्याके राजपरिवारको सुशोभित कर रहे थे। कौसल्या, सुमित्रा और सीता आदर्श नारीशिरोमणि, उत्तम चरित्रसे विभूषित, महिमाशालिनी तथा धर्मपरायणताकी प्रतिमूर्तियाँ थीं। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न वैदिक धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप थे। उनमें श्रीराम श्रेष्ठ थे। महर्षि वाल्मीकिने यथार्थ ही कहा है कि 'श्रीरामचन्द्र साक्षात् शरीरधारी धर्म हैं।' (३। ३७। १३) वे ही सत्यके आधार और सत्यको सर्वस्व माननेवाले थे। सत्यका निदिध्यासन ही उनका सर्वश्रेष्ठ व्रत था। शरीर-मन-वचनसे किस प्रकार सत्यका पालन करना चाहिये, इसके वे सर्वोत्कृष्ट उदाहरण थे। **'रामो द्विर्नाभिभाषते'**—(२। १८। ३०) श्रीराम अपनी बातको बदलते नहीं—उनकी यह ख्याति विश्वमें व्याप्त थी। दण्डकारण्यमें निवास करते समय उन्होंने ऋषियोंको राक्षसोंसे अभय-दान देकर यों प्रतिज्ञा की थी—

तपस्विनां रणे शत्रून् हन्तुमिच्छामि राक्षसान्।
पश्यन्तु वीर्यमृषयः सभ्रातुर्मे तपोधनाः॥

(वा० रा० ३। ६। २५)

'तपोधनो! मैं तपस्वियोंके शत्रु राक्षसोंका युद्धमें संहार करना चाहता हूँ। आप सभी महर्षि भाईसहित मेरे पराक्रमको देखें।'

उस प्रतिज्ञाको सुनकर सीताको भावी विपत्तिकी आशङ्का दीख पड़ी। तब वे ऋषियोंके चले जानेके बाद अनुनय-पूर्वक श्रीरामसे बोलीं—

प्रतिज्ञातस्त्वया वीर दण्डकारण्यवासिनाम्।
ऋषीणां रक्षणार्थाय वधः संयति रक्षसाम्॥
...　...　...
न कथंचन सा कार्या गृहीतधनुषा त्वया॥
बुद्धिर्वैरं विना हन्तुं राक्षसान् दण्डकाश्रितान्।
अपराधं विना हन्तुं लोकान् वीर न कामये॥

(वा० रा० ३। ९। १०, २४-२५)

'वीर! आपने दण्डकारण्यनिवासी ऋषियोंकी रक्षाके लिये युद्धमें राक्षसोंका वध करनेकी प्रतिज्ञा की है।...परंतु आपको धनुष धारण करके किसी तरह बिना वैरके ही दण्डकारण्यवासी राक्षसोंके वधका विचार नहीं करना चाहिये। वीरवर! बिना अपराधके ही लोगोंको मारना मुझे पसंद नहीं है।'

तब सत्यप्रतिज्ञ श्रीराम अपनी सहधर्मिणी सीताके उस स्नेहगर्भित हित-वचनको सुनकर यों बोले—

संश्रुत्य च न शक्ष्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम्॥
ऋषीणामन्यथाकर्तुं सत्यमिष्टं हि मे सदा।
अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्॥
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः।

(वा० रा० ३। १०। १७—१९)

'ऋषियोंके समक्ष प्रतिज्ञा करके अब मैं जीते-जी इस प्रतिज्ञाको मिथ्या नहीं कर सकूँगा; क्योंकि सत्यका पालन मुझे सदा ही इष्ट है। सीते! मैं अपने प्राण छोड़ सकता हूँ, तुम्हारा और लक्ष्मणका भी परित्याग कर सकता हूँ; किंतु अपनी प्रतिज्ञाको, विशेषतः ब्राह्मणोंके लिये की गयी प्रतिज्ञाको नहीं तोड़ सकता।'

जीवनका परित्याग करके भी सत्यकी रक्षा करनी चाहिये—यह उनका दृढ़ व्रत था। सत्यके आधारपर चलनेवाले तथा सत्यको ही सर्वस्व माननेवाले श्रीरामने सर्वदा सत्यका पालन किया। उनके मुखकमलसे निकली हुई निम्नलिखित वाणी उनके जीवनका परिचय देती है तथा धर्मनिष्ठाकी महत्ताको भलीभाँति प्रकट करती है—

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्॥
दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च।
वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात् सत्यपरो भवेत्॥

(वा० रा० २। १०९। १३-१४)

'जगत्में सत्य ही ईश्वर है। धर्म सदा सत्यके ही आधारपर रहता है। सत्य ही सबका मूल है। सत्यसे बढ़कर दूसरा कोई परमपद नहीं है। दान, यज्ञ, हवन, तपस्या और

वेद—इन सबका आधार सत्य ही है, अतः सबको सत्यपरायण होना चाहिये ।'

उन्होंने केवल सत्यकी महिमा ही नहीं उद्घोषित की, प्रत्युत सभी समय और सभी क्षेत्रमें सत्यका ही आचरण किया । वे साक्षात् सत्यधर्मा थे ।

कर्तव्य-ज्ञानकी शिक्षा देना ही रामावतारकी विशेषता थी । जहाँ-कहीं एवं जिस-किसी दशा अथवा परिस्थितिमें पड़नेपर भी मनुष्यको अपने धर्मका आचरण करना चाहिये, अपने धर्मका कभी त्याग नहीं करना चाहिये । अपने कर्तव्यका पालन ही कल्याणकारक होता है; क्योंकि उसीमें मानवता निहित है । इसका दृष्टान्त उन्होंने अपने कर्मद्वारा कर दिखाया । वे आदर्श पुत्र, आदर्श भ्राता, आदर्श पति, आदर्श मित्र, आदर्श स्वामी, आदर्श वीर, आदर्श देशसेवक और सर्वश्रेष्ठ आदर्श महामानव थे । उनकी पितृ-मातृ-भक्ति प्रत्यक्ष थी । पिताके सत्यकी रक्षाके लिये वे प्रसन्नमनसे आनन्दपूर्वक राज्यका त्याग करके वनको चले गये । उनकी पितृ-भक्ति कैसी सर्वोत्कृष्ट तथा अनुपमेय थी—इसे उन्हींका निम्नलिखित वचन-समूह प्रकट कर रहा है—

अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके ॥
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे ।
नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च ॥
(वा० रा० २ । १८ । २८-२९)

'मैं महाराजके कहनेसे आगमें भी कूद सकता हूँ, तीव्र विषका भी भक्षण कर सकता हूँ और समुद्रमें भी गिर सकता हूँ । महाराज मेरे गुरु, पिता और हितैषी हैं; मैं उनकी आज्ञा पाकर क्या नहीं कर सकता ?'

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम ।
(वा० रा० २ । २१ । ३०)

'मुझमें पिताजीकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेकी शक्ति नहीं है ।'

पितुर्हि वचनं कुर्वन् न कश्चिन्नाम हीयते ॥
(वा० रा० २ । २१ । ३७)

'पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाला कोई भी पुरुष धर्मसे भ्रष्ट नहीं होता ।'

संश्रुत्य च पितुर्वाक्यं मातुर्वा ब्राह्मणस्य वा ।
न कर्तव्यं वृथा वीर धर्ममाश्रित्य तिष्ठता ॥
(वा० रा० २ । २१ । ४२)

'वीर ! धर्मका आश्रय लेकर रहनेवाले पुरुषको पिता, माता अथवा ब्राह्मणके वचनोंका पालन करनेकी प्रतिज्ञा करके उसे मिथ्या नहीं करना चाहिये ।'

गुरुश्च राजा च पिता च वृद्धः
क्रोधात् प्रहर्षाद्यदिवापि कामात् ।
यद् व्यादिशेत् कार्यमवेक्ष्य धर्मं
कस्तं न कुर्यादनृशंसवृत्तिः ॥
न तेन शक्नोमि पितुः प्रतिज्ञा-
मिमां न कर्तुं सकलां यथावत् ।
स ह्यावयोस्तात गुरुर्नियोगे
देव्याश्च भर्ता स गतिश्च धर्मः ॥
(वा० रा० २ । २१ । ५९-६०)

'महाराज हमलोगोंके गुरु, राजा और पिता होनेके साथ ही बड़े-बूढ़े हैं । ये क्रोधसे, हर्षसे अथवा कामसे प्रेरित होकर भी जिस कार्यके लिये आज्ञा दें, उसे धर्म समझकर हमें करना चाहिये । जिसके आचरणमें क्रूरता नहीं है, ऐसा कौन पुरुष पिताके आज्ञा-पालनरूप धर्मका आचरण नहीं करेगा । इसलिये मैं पिताकी इस सम्पूर्ण प्रतिज्ञाका यथावत् पालन करनेसे मुँह नहीं मोड़ सकता । तात ! वे हम दोनोंको आज्ञा देनेमें समर्थ गुरु हैं और माताजीके तो वे ही पति, गति तथा धर्म हैं ।'

सोऽयं वनमिदं प्राप्तो निर्जनं लक्ष्मणान्वितः ।
सीतया चाप्रतिद्वन्द्वः सत्यवादे स्थितः पितुः ॥
भवानपि तथेत्येव पितरं सत्यवादिनम् ।
कर्तुमर्हसि राजेन्द्र क्षिप्रमेवाभिषेचनात् ॥
ऋणान्मोचय राजानं मत्कृते भरत प्रभुम् ।
पितरं त्राहि धर्मज्ञ मातरं चाभिनन्दय ॥
× × ×
पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः ।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः पितॄन् यः पाति सर्वतः ॥
(वा० रा० २ । १०७ । ८–१०, १२)

''यही कारण है कि मैं सीता और लक्ष्मणके साथ इस निर्जन वनमें चला आया हूँ । यहाँ मेरा कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है । यहाँ मैं पिताजीके सत्यकी रक्षामें तत्पर रहूँगा । राजेन्द्र ! तुम भी उनकी आज्ञा मानकर शीघ्र ही राज्यपदपर

अपना अभिषेक करा लो और पिताजीको सत्यवादी बनाओ—यही तुम्हारे लिये उचित है। भरत! तुम मेरे लिये पूज्य पिता राजा दशरथको कैकेयीके ऋणसे मुक्त करो, उन धर्मज्ञको नरकमें गिरनेसे बचाओ और माताको भी आनन्दित करो।'''बेटा 'पुत्' नामक नरकसे पिताका उद्धार करता है, इसलिये वह 'पुत्र' कहा गया है। वही पुत्र है, जो सब ओरसे पितरोंकी रक्षा करता है।"

विक्रीतमाहितं क्रीतं यत् पित्रा जीवता मम।
न तल्लोपयितुं शक्यं मया वा भरतेन वा॥
(वा० रा० २। १११। २८)

'पिताजीने अपने जीवनकालमें जो वस्तु बेच दी है या धरोहर रख दी है अथवा खरीदी है, उसे मैं अथवा भरत—कोई भी पलट नहीं सकता।'

लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद् वा हिमवान् वा हिमं त्यजेत्।
अतीयात् सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः॥
(वा० रा० २। ११२। १८)

'चन्द्रमासे उसकी शोभा अलग हो जाय, हिमालय हिमका परित्याग कर दे, अथवा समुद्र अपनी सीमाको लाँघकर आगे बढ़ जाय; किंतु मैं पिताकी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता।'

श्रीरामकी मातृ-भक्ति भी अनिर्वचनीय थी। जो कैकेयी उनके वनवासका कारण थी, वही उनकी मातृ-भक्तिकी प्रशंसा करती हुई कहती है—

रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये।
(वा० रा० २। ७। ३५)

'मैं राम और भरतमें कोई भेद नहीं समझती।'

यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः।
कौसल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूषते बहु॥
(वा० रा० २। ८। १८)

'मेरे लिये जैसे भरत आदरके पात्र हैं, वैसे ही—बल्कि उससे भी बढ़कर श्रीराम हैं; क्योंकि वे कौसल्यासे भी बढ़कर मेरी बहुत सेवा किया करते हैं।'

श्रीरामके द्वारा सीताके प्रति कही हुई निम्नाङ्कित वाणी उनकी मातृ-भक्तिकी महिमा प्रदर्शित करती है—

माता च मम कौसल्या वृद्धा संतापकर्शिता।
धर्ममेवाग्रतः कृत्वा त्वत्तः सम्मानमर्हति॥
वन्दितव्याश्च ते नित्यं याः शेषा मम मातरः।
स्नेहप्रणयसम्भोगैः समा हि मम मातरः॥
(२। २६। ३१-३२)

'मेरी माता कौसल्या एक तो बूढ़ी हो गयी हैं; दूसरे संतापने उन्हें दुर्बल कर दिया है; अतः धर्मको ही सामने रखकर तुमसे वे विशेष सम्मान पानेके योग्य हैं। जो मेरी शेष माताएँ हैं, उनके चरणोंमें भी तुम्हें प्रतिदिन प्रणाम करना चाहिये; क्योंकि स्नेह, उत्कृष्ट प्रेम और पालन-पोषणकी दृष्टिसे सभी माताएँ मेरे लिये समान हैं।'

धर्मपरायण पुरुषोत्तम श्रीरामके वन चले जानेपर राजाके अन्तःपुरमें निवास करनेवाली सभी रानियाँ बछड़ेसे वियुक्त हुई गौकी भाँति हो गयीं। वे दुःखार्त होकर रोती हुई श्रीरामके उन गुणोंका, जो एक सुपुत्रके आचरणमें सुलभ होते हैं, स्मरण करने लगीं। उस समय उनके मुखसे जो वचन निकले थे, वे पाठकोंके हृदय-नेत्र-पटपर परम आदर्श मातृ-भक्तिका चित्र यथार्थरूपसे अङ्कित करते हैं—

न क्रुध्यत्यभिशस्तोऽपि क्रोधनीयानि वर्जयन्।
क्रुद्धान् प्रसादयन् सर्वान् समदुःखः क्व गच्छति॥
कौसल्यायां महातेजा यथा मातरि वर्तते।
तथा यो वर्ततेऽस्मासु महात्मा क्व नु गच्छति॥
कैकेय्या क्लिश्यमानेन राज्ञा संचोदितो वनम्।
परित्राता जनस्यास्य जगतः क्व नु गच्छति॥
(वा० रा० २। ४१। ३—५)

'जो किसीके द्वारा झूठा कलङ्क लगाये जानेपर भी क्रोध नहीं करते थे, क्रोध दिलानेवाली बातें नहीं कहते थे और रूठे हुए सभी लोगोंको मनाकर प्रसन्न कर लेते थे, वे दूसरोंके दुःखोंमें समवेदना प्रकट करनेवाले राम कहाँ जा रहे हैं? जो महातेजस्वी महात्मा श्रीराम अपनी माता कौसल्याके साथ जैसा बर्ताव करते थे, वैसा ही बर्ताव हमारे साथ भी करते थे, वे कहाँ चले जा रहे हैं? कैकेयीके द्वारा क्लेशमें डाले गये महाराजके वन जानेके लिये कहनेपर हमलोगोंकी अथवा समस्त जगत्की रक्षा करनेवाले श्रीराम कहाँ चले जा रहे हैं?'

श्रीरामके भ्रातृप्रेमका श्रेष्ठ उदाहरण वनगमनसे पूर्व सीताके प्रति कहे हुए धर्मयुक्त वचनोंमें स्पष्टरूपसे परिलक्षित होता है। 'देवरोंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये'—इसकी शिक्षा देते हुए श्रीराम सीताको समझाते हैं—

भ्रातृपुत्रसमौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः ।
त्वया भरतशत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम ॥
(वा० रा० २ । २६ । ३३)

'भरत और शत्रुघ्न मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं; अतः तुम्हें उन दोनोंको विशेषतः अपने भाई और पुत्रके समान देखना और मानना चाहिये ।'

श्रीराम सभी भाइयोंकी मङ्गल-कामना करते हुए सदा कर्तव्यपरायण रहते थे । उनके समान भ्रातृ-प्रेमी दूसरा कोई नहीं दिखायी पड़ता । भ्रातृ-समूहके प्रति उनका कैसा अनुराग था, इसका प्रमाण नीचे लिखी हुई पद-पंक्तियाँ दे रही हैं—

धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण ।
इच्छामि भवतामर्थे एतत् प्रतिशृणोमि ते ॥
भ्रातॄणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण ।
राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालभे ॥···
यद् विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं चापि मानद ।
भवेन्मम सुखं किंचिद् भस्म तत् कुरुतां शिखी ॥
(वा० रा० २ । ९७ । ५-६, ८)

'लक्ष्मण ! मैं तुमसे प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि धर्म, अर्थ, काम और पृथ्वीका राज्य भी मैं तुम्हीं लोगोंके लिये चाहता हूँ । लक्ष्मण ! मैं भाइयोंकी रक्षा और सुखके लिये ही राज्यकी भी इच्छा करता हूँ । इसके प्रमाणस्वरूप मैं अपना धनुष छूकर शपथ खाता हूँ ।··· मानद ! भरतको, तुमको और शत्रुघ्नको छोड़कर यदि मुझे कोई सुख मिलता हो तो उसे अग्निदेव जलाकर भस्म कर डालें ।'

श्रीराम एकपत्नी-व्रती थे । उनकी प्रेमपरायणताकी कहीं तुलना नहीं है । उन्होंने राजधर्ममें सुलभ होनेवाले परम आदर्शोंकी रक्षा, प्रजा-रञ्जन तथा अपवादका निराकरण करनेके लिये अपनी प्राण-प्रिया सीताको, जो गङ्गाके समान पावन और अनिन्द्यचरित्रवाली थीं, राज्यसे बाहर भेजकर बहुत दूर तपोवनमें छुड़वा दिया । परंतु सीता श्रीरामके हृदय-कमलरूपी सिंहासनपर समासीन होकर सदा उनके प्रेमरूपी अमृतसे संजीवित रहीं । सीताके प्रति श्रीरामकी निम्नलिखित वाणी अक्षरशः सार्थक थी—

त्वं देवि चित्तनिहिता गृहदेवता मे
स्वप्नागता शयनमध्यसखी त्वमेव ।
दारान्तराहरणनिःस्पृहमानसस्य
यागे तव प्रतिकृतिर्मम धर्मपत्नी ॥
('कुन्दमाला' नाटक १–१४)

'देवि ! तुम मेरे चित्तमें अधिष्ठित गृहलक्ष्मी हो और तुम्हीं शयन-कालमें मेरी एकमात्र शय्याकी सहचरी रही हो । मेरे मनमें दूसरी पत्नी ग्रहण करनेकी किंचिन्मात्र भी स्पृहा नहीं है, अतः इस यज्ञमें तुम्हारी प्रतिमूर्ति ही मेरी धर्मपत्नीके स्थानापन्न है ।'

श्रीरामकी धर्मसम्मत राज्यशासन-प्रणाली अद्वितीय थी । आजतक कोई भी वैसा धर्मपरायण उत्तम शासक भूतलपर नहीं पैदा हुआ । 'ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति (अथर्व० ११ । ५ । १७)—ब्रह्मचर्य और तपस्याके द्वारा राजा राष्ट्रकी रक्षा करता है ।'—इस वेद-वाणीको सार्थक करके श्रीराम जितेन्द्रिय, परार्थ-परायण तथा स्वार्थत्याग-कुशल होकर प्रतिदिन प्रजाको प्रसन्न करनेमें तत्पर रहते थे ।

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥
(उत्तररामचरित १ । १२)

'यदि प्रजा-रञ्जनके लिये मुझे स्नेह, दया, सुख-साधन अथवा जानकीको भी छोड़ देना पड़े तो मुझे कोई पीड़ा नहीं होगी ।'—यह प्रतिज्ञा श्रीरामके आचरणमें सार्थक थी ।

'अपि स्वदेहात्किमुतेन्द्रियार्थाद्
यशोधनानां हि यशो गरीयः ।'
(रघुवंश १४ । ३५)

'यशस्वी पुरुषोंका यश अपने शरीरकी अपेक्षा भी अधिक महत्त्वपूर्ण होता है, फिर इन्द्रिय-विषयोंकी तो बात ही क्या है ।' यह कवि-वचन उन यशोधन एवं सत्यपरायण श्रीराममें चरितार्थ था ।

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह ।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेयं यत्र देवाः सहाग्निना ॥

'जहाँ ब्राह्मण और क्षत्रिय—दोनों मिलकर सम्यक्रूपसे आचरण करते हैं , उस पुण्यलोकमें अग्निसहित सभी देवता निवास करनेकी इच्छा करते हैं ।'

उपर्युक्त वेद-मन्त्रने साक्षात् मूर्तिमान् होकर श्रीरामके राज्यमें निरन्तर सुशोभित होते हुए प्रजाके कल्याण-साधनमें तत्पर रहकर रामराज्यकी महिमाको त्रिलोकीमें घोषित कर दिया । मानवताके प्रकाशक सम्पूर्ण सद्गुण रामचन्द्रका आश्रय लेकर कृतार्थ हो गये । महर्षि वाल्मीकिने ठीक ही लिखा है—

आनृशंस्यमनुक्रोशः श्रुतं शीलं दमः शमः ।
राघवं शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरुषर्षभम् ॥
(२ । ३३ । १२)

'आनृशंस्यम्=अनृशंसता अथवा कोमलता, अनुक्रोशः=दया, श्रुतम्=ज्ञान, शीलम्=श्रेष्ठ स्वभाव, दमः=इन्द्रिय-विजय, शमः=मनकी पूर्ण शान्ति—ये छः सद्गुण पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रकी शोभा बढ़ाते थे।'

श्रीरामके चरित्र एवं आचरणकी साङ्गोपाङ्ग समालोचना असम्भव है। वे किस प्रकार सभी लोगोंके प्रिय, प्रजाके हितकारक और सर्वश्रेष्ठ शासक थे, इसका प्रमाण निम्नलिखित श्लोक दे रहा है—

न हि तद् भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपतिः।
तद् वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति॥
(वाल्मीकि-रामायण)

"जहाँ राजा रामचन्द्र नहीं हैं, वह देश 'राष्ट्र' नहीं हो सकता; बल्कि वह वन ही 'राष्ट्र' होगा, जहाँ श्रीराम निवास करेंगे।"

श्रीरामकी सुग्रीवके साथ अविचल मित्रता, विभीषणको परमाश्रयका दान, दुर्धर्ष रावणके साथ उनका धर्मसम्मत युद्ध-कौशल, अपने आश्रित वानरोंके साथ सद्व्यवहार आदि गुण उनके धर्मावतारकी महिमाके निदर्शक थे।

जैसे नीले रंगकी ऊँची-ऊँची तरंगमालाओंसे व्याप्त रत्नाकर समुद्रके गाम्भीर्ययुक्त सौन्दर्यको देखकर भावुक जन विस्मित, स्तब्ध और आनन्दपूर्ण हो जाते हैं, किंतु समुद्रके भीतर स्थित असंख्य बहुमूल्य रत्न-समूहोंको प्राप्त करना सबके लिये दुष्कर है, उसी प्रकार सद्गुणके सागर, धर्मावतार और तपःपूत आचरणकी महिमावाले श्रीरामचन्द्रके विश्वरूप-दर्शनसे भावुक भक्त, जिसका हृदय अनिर्वचनीय तथा परम सुन्दर एवं समुज्ज्वल भावधारासे आविष्ट है, अपनेको कृतार्थ मानता है। किंतु श्रीरामके महनीय चरित्रके सम्यक् वर्णनमें सरस्वतीकी लेखनी भी असमर्थताका अनुभव करती है। श्रीरामने सुचारुरूपसे निपुणतापूर्वक विविध कर्मोंके क्षेत्रमें अपने कर्तव्यके पालनद्वारा जनताके समक्ष कर्मयोगकी महिमा प्रदर्शित की है। निम्नलिखित गीतके माध्यमसे उनके संक्षिप्त जीवन-परिचयका वर्णन किया जाता है—

धर्मरक्षणं सदा
कार्यमात्मना मुदा
वार्यतामनार्यवृत्तिरार्यतेजसा बुधाः! (ध्रुवम्)

निर्जरं पुनातु वा जीवनं प्रयातु वा
सम्पदः श्रयन्तु वात्र दुर्दशास्तुदन्तु वा
सत्यमेव पाल्यताम्
मानवत्वमर्ज्यताम्
स्थीयतां च शौर्यदीप्तचेतसा हि संविदा॥ १॥
संस्कृतिर्हि सेव्यतां दुष्कृतिर्विनाश्यताम्
देववागधीयतां च मातृभूः समर्च्यताम्
राष्ट्रकीर्तिगौरवम्
धर्मसारवैभवम्
रक्षितुं च वीरता विधीयतां हि मोक्षदा॥ २॥

'विवेकीजनो! सदा हर्षपूर्वक अपने शरीरके द्वारा धर्मकी रक्षा करो और सदाचारके तेजसे असदाचरणका निवारण करो। अमृत तुम्हारे शरीरको नीरोग कर दे अथवा प्राण ही चले जायँ, सम्पदाएँ आयें अथवा विपत्तियाँ कष्ट पहुँचायें; ज्ञानवान्का चित्त शौर्यसे उद्दीप्त रहना चाहिये। उसे सत्यका ही पालन करना चाहिये तथा मानवताका अर्जन करना चाहिये। संस्कृतिका सेवन, दुष्कृतियोंका विनाश, देव-वाणी संस्कृतका अध्ययन और मातृभूमिकी सेवा करनी चाहिये। राष्ट्रकी कीर्ति एवं गौरवकी तथा धर्मके सार-सर्वस्वकी रक्षाके लिये मोक्षदायिनी वीरता धारण करनी चाहिये।'

कर्म, ज्ञान और भक्तिरूपी त्रिवेणीकी धारा प्रवाहित करनेवाले पुरुषोत्तम श्रीरामका अतुलनीय पुरुष-धर्म विश्व-वन्दनीय है। धर्मके सर्वविध लक्षणोंसे सम्पन्न होनेके कारण वे स्वयं मूर्तिमान् धर्म ही थे, इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि संस्कृतिके प्रेमी, स्वाधीनताके अभिमानी, समुन्नतिके अभिलाषी, धर्मानुरागी, राष्ट्र-भक्तिशाली भारतीय नागरिक श्रीरामके माहात्म्यके स्मरण-कीतनमें तत्पर रहनेवाले कर्मयोगी बनकर अपनी पुण्यभूमिके गौरवकी रक्षा करें। अन्तमें धर्मस्वरूप श्रीरामचन्द्रका मनमें ध्यान करके विनयपूर्वक उनकी स्तुति करते हुए इस लेखका उपसंहार किया जाता है—

धर्मो वै भगवान् सतामधिपतिर्धर्मं भजेत् सर्वदा
धर्मेणैव निवार्यतेऽघनिवहो धर्माय तस्मै नमः।
धर्मान्नास्ति परं पदं त्रिभुवने धर्मस्य शान्तिः प्रिया
धर्मे तिष्ठति सत्यमेव शुभदं मा धर्म मां वर्जय॥

'भगवान् धर्म ही सत्पुरुषोंके अधिपति (शासक) हैं, धर्मके द्वारा ही पापसमूहका निवारण होता है, इसलिये सदा धर्मका ही पालन करना चाहिये । उन धर्मदेवको नमस्कार है । त्रिभुवनमें धर्मसे बढ़कर दूसरा कोई परमपद नहीं है, शान्ति धर्मकी प्रिया है और कल्याणप्रद सत्य धर्ममें ही स्थित रहता है, अतः धर्मदेव ! मेरा त्याग मत कीजिये ।'

रामं रामं रमारामं जितकाममरिंदमम् ।
स्मारं स्मारं जयन् मारं व्रजामि परमं शमम् ॥

'जो लक्ष्मीको आनन्द देनेवाले हैं, जिनमें योगी लोग रमण करते हैं, जिन्होंने कामको जीत लिया है, उन शत्रुसूदन श्रीरामका बारंबार स्मरण करके मैं कामदेवपर विजयी होकर परम शान्तिको प्राप्त करूँगा ।'

(गानम्)

जय रघुनायक राम रमेश । (ध्रुव)
अखिल-भुवन-जन-शरणद-केतन
सकल-सुगुण-रसरत्न-निकेतन
भवभयविदलन हे परमेश ! ॥ १ ॥
कलिकलुष-गरल-ताप-निवारण
मुनिजनतारण वर-सुख-धारण
दुर्जय-दुर्नय-तिमिर-दिनेश ॥ २ ॥
भीषण-दूषण-नाशन-कारण
खल-बल-वारण रावण-दारण
विनिहत-दानव-दर्प-विशेष ॥ ३ ॥
कुरु करुणामय दुष्कृतनाशम्
जनयतु धर्मः शान्तिविलासम्
हसतु सुनीतिर्जनकसुतेश ॥ ४ ॥

''रघुकुलके नायक एवं लक्ष्मीरूपिणी सीताके पति श्रीरामकी जय हो । हे परमेश ! आप सम्पूर्ण भुवनवासियोंके आश्रय-स्थान, समस्त सद्गुणरूपी रसमय रत्नोंकी निधि तथा जन्म-मरणके भयका विनाश करनेवाले हैं । आपकी जय हो । आप कलियुगके पापरूपी विषके तापका निवारण करनेवाले, मुनिजनोंके उद्धारक, उत्तम सुखोंसे सम्पन्न तथा दुर्जय दुर्नीतिरूपी अन्धकारके लिये सूर्य हैं । आपकी जय हो । आप भयंकर 'दूषण' नामक राक्षस अथवा भयंकर दोषोंके नाशक, दुष्टोंकी सेनाओंका निवारण करनेवाले, रावणको विदीर्ण करनेवाले तथा दानवोंके बहुत बड़े दर्पको चूर करनेवाले हैं । आपकी जय हो । करुणामय ! मेरे पापोंका नाश कर दीजिये, जिससे हे जानकीवल्लभ ! धर्म मेरे हृदयमें शान्ति-सुख उत्पन्न कर दे और सुनीति हँसने-खेलने लगे ।''

धरायां राजतां शान्तिर्भवन्तु गुणिनो जनाः ।
संस्कृता भारता धीराः सत्यधर्मपरायणाः ॥

'भूतलपर शान्तिका प्रकाश हो और भारतीयजन उत्तम गुणोंसे युक्त, संस्कार-सम्पन्न, धैर्यशाली तथा सत्य-धर्मके पालनमें तत्पर हों ।'

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

श्रीराम ही पार लगायेंगे

तैं राम राम भजु राम रे, राम गरीब निवाज हो ॥
राम कहे सुख पाइहो, सुफल होइ सब काज ।
परम सनेही रामजी, रामहिं जनकी लाज हो ॥
जनम दीन्ह है रामजी, राम करत प्रतिपाल ।
राम राम रट लाव रे, रामहिं दीनदयाल हो ॥
मात पिता गुरु रामजी, रामहिं जिन बिसराव ।
रहो भरोसे रामके, तैं रामहिंसे चित चाव हो ॥
घर बन निसु दिन रामजी, भक्तनके रखवार ।
दुखिया दूलनदासको रे, राम लगइहें पार हो ॥

—संत दूलनदासजी

भगवान् श्रीरामका सौन्दर्य

(लेखक—पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय)

जिन आँखिन में तुव रूप बस्यो, उन आँखिन सों अब देखिए का।

जहाँतक मानव-सौन्दर्यका सम्बन्ध है, अन्तःसौन्दर्य ही सौन्दर्य है; परंतु भगवान् रामके सम्बन्धमें ऐसी बात नहीं है। जीवके समान उनमें अन्तर-बाहर दो नहीं हैं। वे जैसे स्वरूपतः सच्चिदानन्दघन हैं, वैसे ही शरीरतः। उनका शरीर नित्य निर्विकार एवं सच्चिदानन्दमय है—

'चिदानंदमय देह तुम्हारी।'

(रा० च० मा० २। १२६। ३)

इसीसे उसके बाह्य कहे जानेवाले भागमें भी वही सौन्दर्य है और वह इतना है कि कवि स्वयं उसके वर्णनमें, नहीं-नहीं कल्पनामें भी सकुचाता है।

विदेह-नगरके राजपथपर भगवान् श्रीराम अपने छोटे भाई श्रीलक्ष्मणके साथ राशि-राशि सौन्दर्य बिखेरते हुए मन्थर गतिसे आगे बढ़ रहे हैं। 'लोक-लोचन-सुखदाता', 'सुखनिधान' दोनों भाइयोंकी अत्यन्त सुहावनी मूर्ति देखकर 'बालक-वृन्द' सङ्ग लग गये हैं और वे उनके सौन्दर्य-रसका पान कर रहे हैं। बात-की-बातमें यह समाचार सारे नगरमें फैल गया। सब लोग अपने-अपने काम-धाम त्यागकर दौड़ पड़े—अपने लोचनोंका लाभ लेनेके लिये। श्याम-गौर युगल राजकुमारोंकी सहज-सौन्दर्य-सुधाका पान करके सब अनिर्वचनीय आनन्दमें डूब गये। सब-के-सब विस्मित, चकित और मौन हो गये। युवतियाँ अपने-अपने भवनोंके झरोखोंपर आ लगीं। हृदय अनुरागके रंगमें रँग गया। आँखें निर्निमेष होकर रूप-रसका पान करनेमें प्रमत्त हो गयीं। वाणी स्वयं ही हृदयके गुप्त भाव सहेलियोंपर प्रकट करने लगी—'मेरी प्यारी सखी! इन्होंने तो कोटि-कोटि कामकी शोभाको भी मात कर दिया। क्या किसी लोकमें, किसी पुरुषमें ऐसा सौन्दर्य देखा-सुना गया है?' —

'सोभा असि कहुँ सुनिअति नाहीं।'

(वही, १। २१९। ३)

किसी सखीने कहा—'सुना है, सब देवताओंमें ब्रह्मा-विष्णु-महेश सर्वश्रेष्ठ हैं और परम सुन्दर भी हैं।' दूसरीने कहा—'धत् पगली! कहीं चार हाथ, चार मुख या पाँच मुखवाले भी सुन्दर हो सकते हैं! किसीके हाथमें पाँच उँगलियोंके स्थानमें छः हो जायँ तो क्या वह सुन्दर लगता है! इनके सौन्दर्यके सामने वे क्या होते हैं!'

बिष्नु चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट बेष मुख पंच पुरारी॥
अपर देउ अस कोउ न आही। यह छबि सखी पटतरिअ जाही॥

(वही, १। २१९। ४)

सखियोंने 'कोटि-कोटि सत काम' को एक-एक अङ्गपर निछावर कर दिया और चुनौती दे दी—

कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी॥

(वही, १। २२०। १)

जान पड़ता है, विदेहनगरके नागरिकोंकी यह आलोचना अविलम्ब देवताओंतक पहुँच गयी। उन लोगोंमें खलबली मच गयी। 'क्या कहीं मानव-सौन्दर्य भी ऐसा हो सकता है? अवश्य ही मनुष्यका आन्तर सौन्दर्य देवताओंसे श्रेष्ठ हो सकता है, परंतु बाह्य सौन्दर्य तो हम देवताओंका ही श्रेष्ठ होता है। क्या राम मानव हैं? कदापि नहीं, वे साक्षात् परिपूर्णतम ब्रह्म हैं। आओ, चलें, आज इस बातका निर्णय ही हो जाय कि उनका सौन्दर्य किस कोटिका है।' देवसभाने सर्वसम्मतिसे पाँच प्रतिनिधि, यों कहिये कि पाँच पंच चुन दिये। भगवान् विष्णु, भगवान् शंकर, प्रजापति ब्रह्मा, देवराज इन्द्र और देवसेनापति कार्तिकेय—सब अपनेको साज-सँवारकर, वाहनोंपर बैठ विदेहनगरमें पहुँचे। उस समय बारात निकल रही थी। भगवान् श्रीराम भुवनमोहन, कामाभिराम, परम सुन्दर अश्वको नचाते हुए आगे बढ़ रहे थे। भगवान् शंकरकी दृष्टि पड़ी। रोम-रोम आनन्दसे थिरक उठा। पाँचों मुखोंके दसों नेत्र छककर स्तब्ध हो गये। अन्य पाँच नेत्र संहारक होनेके कारण पहले तो बंद ही रक्खे। इन्होंने ही तो परम सुन्दर कामको भी भस्म कर दिया था। परंतु रामरूपकी मोहनी उनपर भी चल गयी। वे खुले और तत्काल अपनी सारी गर्मीको गलाकर ठंडे हो गये। इस सौन्दर्यका क्या अद्भुत जादू है!

भगवान् शंकरने अनुरागमें भरकर सोचा, "मुझे भले ही कोई 'विकट'-वेष कहे, हमें तो यह पंद्रह नेत्र ही अत्यन्त प्यारे हैं।"

संकर राम रूप अनुरागे। नयन पंचदस अति प्रिय लागे॥
(वही, १। ३१६। १)

चतुर्मुख ब्रह्माने भी श्रीराम-रूप-सुधा-माधुरीका पान किया; परंतु वे एक साथ ही 'हरषाने' और 'पछताने' भी लगे। यद्यपि रामरूपके दर्शनसे हृदयमें आनन्दका समुद्र उमड़ रहा है, फिर भी भगवान् शंकरकी अपेक्षा घाटेमें रहनेके कारण पश्चात्ताप भी हो रहा है। यदि मेरे प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र होते तो कम-से-कम बारह नेत्रोंसे तो इस सौन्दर्यका सेवन करता। यों लोक-पितामह ब्रह्मा छक भी रहे थे और पछता भी रहे थे—

निरखि राम छबि बिधि हरषाने। आठइ नयन जानि पछिताने॥
(वही, १। ३१६। २)

चराचर जगत्‌में विष्णु-भगवान् सबसे सुन्दर हैं। समुद्र-मन्थनके समय सबकी जाँच-पड़ताल करके लक्ष्मीजीने इनका वरण किया था। दोनों ही सुन्दर हैं और सौन्दर्यके पारखी भी। एक ही साथ दोनोंने भर आँख अश्व नचाते हुए, दूल्हाके वेषमें बने कौशलकिशोर श्रीरामचन्द्रको देखा। शरीरकी सुध-बुध जाती रही। रूपकी मोहनी चल गयी। सबको लुभानेवाला स्वयं लुभा गया, मोहित हो गया—

हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥
(वही, १। ३१६। २)

स्वामिकार्तिक तो फूले नहीं समाते थे। ब्रह्माका पौत्र उनसे डेवढ़ा पड़ गया। छः सिर और बारह आँखें। रोम-रोमसे हृदयका उत्साह फूटा पड़ता था। वे भगवान् रामकी ओर निहारते-निहारते व्यङ्गभरी मुसुकानसे कभी-कभी ब्रह्माजीकी ओर भी देख लेते—

सुर सेनप उर बहुत उछाहू। बिधि ते डेवढ़ लोचन लाहू॥
(वही, १। ३१६। ३)

देवराज इन्द्रको सब लोग असुन्दर मानते हैं। सारे शरीरमें आँख-ही-आँख। यह मानो उनके दुराचारकी घोषणा थी। देवता-दानव सबकी अँगुली उठ जाती। इन्द्रका सिर लज्जासे झुक जाता। परंतु आज अपने सहस्र-सहस्र नेत्रोंसे छविधाम श्रीरामको देखकर वे अपना जीवन सफल कर रहे हैं और महर्षि गौतमके शापको उनकी परम कृपा मान रहे हैं। महर्षि शाप न देते तो यह अनिन्द्य सौन्दर्य सहस्र नेत्रोंसे देखनेको कहाँ मिलता। ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, स्वामिकार्तिक—सभी आज इन्द्रके सौभाग्यपर आश्चर्यचकित हो रहे हैं, उसको सिहा रहे हैं और कह रहे हैं—

'आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं।'
(वही, १। ३१६। ४)

यह तो देवलोककी बात रही, मानव-लोकमें इस सौन्दर्यने साधारण मोहिनी नहीं डाली; क्या थलचर, क्या नभचर, क्या जलचर—सभी इस अनुपम सुघराईपर रीझ गये हैं।

भगवान् राम वनके बीहड़ मार्गमें चले जा रहे हैं। सहज क्रूर साँप, बिच्छू एक बार उनके कोमल चरणोंकी ओर देखते ही स्तब्ध रह गये। साहस नहीं हुआ कि इन सुकुमार चरणोंको कष्ट दें—

जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी॥
(वही, २। २६१। ४)

'साँपिनि' भी यहाँ साभिप्राय है। सर्पिणी अपने पुत्रोंको भक्षण कर जाती है। इससे अधिक क्रूरता क्या होगी? पर उसकी क्रूरताको भी इस भुवनमोहन सौन्दर्यने शान्त कर दिया।

आकाशमें उड़ते हुए पक्षी भी उड़ना छोड़, वृक्षोंपर बैठ एकटक रामके सौन्दर्यको निहारने लगे। बटोही राम देखते-देखते उनके चित्तको चुराकर चलते बने और वे ठगे-से बैठे रहे।

जलचरोंकी अवस्था तो और भी विलक्षण हो रही है। समुद्रपर पुल बँध चुका, पर सेनाकी बहुलताके सामने पुलकी विशालता नगण्य थी। चतुर-चूड़ामणिने इसका बड़ा विलक्षण उपाय निकाला। वे जाकर पुलके एक किनारे खड़े हो गये समुद्रकी शोभा देखनेके लिये। क्षणभरमें सारा समुद्र कूर्मोंसे आवृत हो गया। इस रूप-सुधाके पानमें वे इतने तल्लीन हो गये कि उनके शरीरकी सुध-बुध जाती रही। उनका आपसी सहज वैर भूल गया। वे हटानेपर भी नहीं हटते।

देखन कहुँ प्रभु करुना कंदा। प्रगट भए सब जलचर बृंदा॥
... ...
प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरषित सब भए सुखारे॥

तिन्ह कीं ओर न देखिअ बारी। मगन भए हरि रूप निहारी ॥
(वही, ६ । ३ । २, ४)

भगवान्‌ने वानरोंको आज्ञा दी, 'आपलोग इन जलचरोंके ऊपरसे पार हों।' बड़े-बड़े विशालकाय वानर उनके शरीरपरसे होते हुए पार हो गये। पर उन्हें इस रूपदर्शनमें इतना आनन्द आ रहा था कि उन्हें पता भी न चला कि कोई हमपरसे पार हुआ—

सेतुबंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं ॥
(वही, ६ । ४)

यह है सौन्दर्यका जादू।

अब आइये कुछ मानवोंकी दशा देखिये—

जो लोग सौन्दर्यको सत्य मानते हैं, उन साधारण मानवोंकी बात हम नहीं करते; हम तो उनकी चर्चा करते हैं, जो इस नाम-रूपात्मक सम्पूर्ण विश्वको मिथ्या मानते हैं। बड़ा-से-बड़ा लोभ या भय भी उन्हें अपनी निष्ठासे विचलित करनेमें समर्थ नहीं होता। पर रामके सौन्दर्यने इस असम्भव कार्यको भी सम्भव कर दिखाया।

जनकजी अपने समयके सर्वश्रेष्ठ ज्ञानियोंमें एक थे। सारा दृश्य-जगत् उनकी दृष्टिमें मिथ्या था। अत्यधिक आत्मलीन रहनेके कारण उन्हें अपने देहकी भी स्मृति नहीं रहती थी और इसलिये उन्हें सदेह होते हुए भी 'विदेह' कहा जाता था। किसी भी इन्द्रियका विषय उन्हें अपनी ओर आकर्षित करनेमें असमर्थ था। बड़े-बड़े अरण्यवासी तपस्वी भी प्रणतभावसे उनके यहाँ ज्ञानोपदेश लेने आते थे। उनकी महत्ताको मानसमें इस प्रकार अङ्कित किया गया है—

जे बिरंचि निरलेप उपाए। पदुम पत्र जिमि जग जल जाए ॥
(वही, २ । ३१६ । ४)

जासु ग्यानु रबि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा॥
(वही, २ । २७६ । १)

किंतु साँवरे राजकुमारकी एक झाँकीने ही उन्हें अपनी निष्ठासे च्युत कर दिया। विश्वामित्रजीके साथ आये हुए इन राजकुमारोंको एक बार आँख उठाकर देखा; फिर क्या था—टकटकी बँध गयी, हृदयसे ब्रह्मानन्दने निकलकर न जाने कब इस परमानन्द-समुद्रमें डेरा डाल दिया। राजाने अपने विचारसे अपनेको बचानेकी बड़ी चेष्टा की, पर नेत्र उनके आदेशको सुनते ही न थे। उनका सहज विरागी मन रागी बनकर बेकाबू हो गया। उन्हें लग रहा था—यह सौन्दर्य मिथ्या नहीं, सत्य है; और इधर सभी लोग जनककी इस पराजयपर मुस्करा रहे थे। विश्वामित्रने एक व्यङ्गभरी मुस्कानसे पूछा—'ज्ञानिराज! तुम्हारी यह क्या अवस्था?' और तब उन्होंने स्वयं अपनी अवस्थाका वर्णन कर दिया—

सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा ॥

× × ×

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा ॥
(वही, १ । २१५ । २-३)

इस रूपानन्दके सामने, भला, वह ब्रह्मसुख है भी किस गणनामें?

सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहुँ लहेउ।
ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहि सज्जन सुमति ॥
(वही, ७ । ८८ ख)

पर यह प्रवृत्तिमार्गके ज्ञानाचार्यकी बात है। आइये, इम परमनिवृत्तिपरायण सनत्कुमारादिकी ओर चलें। वे तो साक्षात् भगवान् ही हैं। चारों महर्षि बहुकालीन होते हुए भी बालककी-सी अवस्थामें यत्र तत्र घूमा करते थे। उनकी महत्ता मानसमें इस प्रकार बतायी गयी है—

ब्रह्मानंद सदा लयलीना। देखत बालक बहुकालीना ॥
रूप धरें जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा ॥
(वही, ७ । ३१ । २-३)

एक बार जब वे दण्डकारण्यमें अगस्त्यजीसे रामकथा श्रवण कर रहे थे, एक प्रसङ्गने उन्हें कुछ आश्चर्यान्वित कर दिया—'रामके सौन्दर्यको देखते ही जनकजी ज्ञाननिष्ठासे च्युत हो गये।' असम्भव! ज्ञानीकी रूपपर आसक्ति—विश्वास ही नहीं होता था उन्हें। अगस्त्यजी उनके विचारोंको भाँ

गये। आपने मुस्कराकर कहा—'अच्छा हो कि आपलोग भी एक बार परीक्षा करके देखें।' चल पड़े अयोध्याकी ओर। आज उन्हें रामके सौन्दर्यकी परीक्षा लेनी थी। पता चला, भगवान् अँवरईमें विश्राम कर रहे हैं—वहीं महर्षि पहुँचे। चारोंकी दृष्टि एक साथ भगवान्के कोटिकामकमनीय मन्दस्मितेयुत मुखपर पड़ी। फिर क्या था। पलकें स्थिर हो गयीं, नेत्रोंसे झर-झर आनन्दके आँसू बह रहे थे; वे लोग अपने मनको रोकनेके लिये ज्ञानको खोज रहे थे, पर न जाने वह कबका हृदयसे निकलकर भाग चुका था। भगवान् इस दृश्यको देखकर मुस्करा पड़े। तीनों भाई आपसमें संकेत करते हुए हँस रहे थे—

मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी। भए मगन मन सके न रोकी॥
स्यामल गात सरोरुह लोचन। सुंदरता मंदिर भव मोचन॥
एकटक रहे निमेष न लावहिं। प्रभु कर जोरें सीस नवावहिं॥
(वही, ७। ३२। १-२)

यशकी श्रेष्ठताकी सबसे बड़ी कसौटी शत्रु है—

सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान॥
(वही, १। १४ क)

और जब हम इस दृष्टिकोणसे भगवान् रामके सौन्दर्यको देखते हैं, तब स्तम्भित हो जाना पड़ता है।

शत्रु भी साधारण नहीं, घोर क्रूरकर्मा नरभक्षी राक्षस। उनके कठोर स्वभावका चित्रण कविने एक ही अर्धालीमें कर दिया—

सपनेहुँ जिन्ह कें धरम न दाया।

सहस्रों देव, गन्धर्व, यक्ष, मानव निरपराध होते हुए भी उनकी तीक्ष्णधार तलवारके द्वारा टुकड़े-टुकड़े किये जा चुके थे। फिर रामने तो त्रैलोक्यविजयी राक्षसाधिपति रावणकी बहनके नाक-कान कटवा लिये थे। शूर्पणखाके द्वारा यह समाचार सुनते ही खर-दूषण-त्रिशिरा क्रोधमें जल उठे। 'एक छोकरेका इतना साहस! अभी इसका फल चखाते हैं।' चौदह हजार दानवी सेना क्षणभरमें अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित हो गयी और गर्जना करती हुई रामकी कुटियाकी ओर चल पड़ी। आकाश धूलसे पट गया। भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणजीको आज्ञा दी कि 'सीताजीको छिपाकर रक्षा करो' और स्वयं जटाजूट बाँध, धनुष हाथमें लेकर युद्धके लिये संनद्ध हो गये। सेना निकट आ गयी। सब देखने लगे, किसे मारना है। देखा, सामने एक साँवला राजकुमार तपस्वी वेषमें खड़ा है। हाथसे अस्त्र-शस्त्र गिर पड़े। इन्हें मारना होगा? इतना सुन्दर, इतना सुकुमार! आजतक न जाने कितने परम सुन्दर देवता उनके हाथों मारे जा चुके थे, पर उनके फौलादके हृदयोंको इस सौन्दर्यने पिघला दिया और आजतक सर्वश्रेष्ठ विजयीने अब संधि कर लेनी चाही। क्यों? क्या भयके मारे? नहीं-नहीं, भय नामकी वस्तु ये सब नहीं जानते। वे स्वयं ही मन्त्रीको बुलाकर इसका कारण बतलाते हैं—

सचिव बोलि बोले खर दूषन। यह कोउ नृपबालक नर भूषन॥
नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई॥
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥
(वही, ३। १८। १-३)

यद्यपि राघवेन्द्रने इसका बड़ा कड़ा उत्तर दे दिया, जिसे सुनकर खर-दूषण-जैसे महान् अभिमानी भी जल उठे, फिर भी उसने सेनाको यही आज्ञा दी कि 'इन्हें जीवित पकड़ लाओ। जहाँतक हो सके न मारे जायँ तो अच्छा'—

उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए बिकट भट रजनीचरा।
(वही, ३। १८। छं० १)

यह है उनके दिव्य सौन्दर्यका प्रभाव और उसकी कुछ झाँकियाँ। एक बार इस दिव्य सौन्दर्यको देख लेनेपर यह चमड़ेसे ढँका हुआ सांसारिक नर-कङ्काल किसे लुभा सकता है। इसलिये यदि सचमुच सौन्दर्य ही देखना चाहते हैं तो हमारे रामकी ओर देखें।



दूल्हा-वेषमें श्रीराम

श्रीरामभद्रजूकी श्यामता

(लेखक —मानसतत्त्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी 'रामायणी')

कमलवन्मणिवच्चैव मेघवत्केकिकण्ठवत्।
तमालयमुनाश्यामं रामभद्रमहं भजे॥
'सर्वेषामवताराणामवतारी रघूत्तमः।'

श्रीरामभद्रजूकी लीलाएँ माधुर्यमय, ऐश्वर्यमय और माधुर्यैश्वर्यमिश्रित होती रही हैं। उनमें माधुर्यमय लीला नितान्त ऐकान्तिक भक्तोंके परमानन्दवर्द्धनार्थ ही होती है और ऐश्वर्यमय लीलाएँ, जो—

'दनुज बिमोहनि जन सुखकारी।'
(श्रीरा० च० मा० ७। ७२। १)

—होती हैं, कभी-कभी होती हैं, जब कि माधुर्यैश्वर्य मिश्रित लीलाएँ जन-मनमें नित्य होती ही रहती हैं। उन लीलाओंमें श्रीरामभद्रजूके श्रीविग्रहकी दिव्य श्यामताका चिन्तन भावुक भक्तगण विभिन्नरूपसे किया करते हैं। श्रीरामचरितमानसमें श्रीगोस्वामीजीने मधुरलीलाके आकर दिव्य श्रीविग्रहकी विभिन्न श्यामताके वर्णनमें भिन्न-भिन्न स्थलोंपर छः प्रकारकी उपमाएँ दी हैं—१. मेघ, २. मरकतमणि, ३. मयूरकण्ठ, ४. कमल, ५. यमुना और ६. तमाल। अन्य लोगोंने उसे दूर्वादल, अतसीपुष्प एवं आकाशादिकी तरह श्याम कहा है। श्रीरामभद्रजूके माधुर्यमय लीलाविग्रहको जो कई तरहके श्याम रंगोंकी उपमा दी गयी है, इसका क्या कारण हो सकता है—इसपर विचार किया जाता है।

गोस्वामीजीने जो छः प्रकारकी श्यामताएँ कही हैं, उनमेंसे कोई भी दो श्यामता एकतुल्य नहीं है। क्या श्रीरामजी हरदम रंग बदला करते थे अथवा गोस्वामीजीने अपनी काव्य-प्रतिभा दिखलानेके लिये भिन्न-भिन्न श्यामताओंका उल्लेख किया है? ऐसा तर्क तबतक स्थान पा सकता है, जबतक कि उन उपमाओंके यथार्थ कारण समझमें न आ जायँ। उनके अनेक कारण हो सकते हैं, जिनमेंसे कुछ ये हैं—

(क) १—मेघकी उपमा सार्वकालिक है। कृपाके लिये यह अधिकतर दी जाती है। यथा—

कृपा बारिधर राम खरारी।
(वही, ६। ६९। २)

'अरुन नयन बारिद तनु स्यामा॥'
(वही, ६। ८५। ५)

२—राज्य-प्रकरणमें किंवा राजसमाजमें मणिकी उपमा दी जाती है। यथा—

राजकुअँर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लही दुति मरकत सोने॥
(वही, २। ११५। ४)

मरकत कनक बरन बर जोरी।
(वही, १। ३१४। ४)

मरकत मृदुल कलेवर स्यामा।
(वही, ७। ७५। ३)

इसमें एकरसता दिखायी गयी है।

३—मानसमें प्रायः विजयश्री-प्राप्तिके पश्चात् ही केकिकण्ठ की उपमा दी गयी है, जैसे कि मिथिलामें शिव-धनुर्भङ्गके बाद—

बिस्व बिजय जसु जानकि पाई।
(वही, १। ३५६। ३)

—यही उपमा दी गयी—

केकि कंठ दुति स्यामल अंगा।
(वही, १। ३१६। १)

इसी तरह लङ्कामें भी जब रावणको मारकर

बिस्व बिजय जसु जानकि पाई।

तब कहा गया—

'केकीकण्ठाभनीलम्' (वही, ७। १ श्लोक)

मोर सर्पनाशक होता है, अतः शत्रुनाशक प्रयोगोंमें मयूरकण्ठवत् श्याम रामका ध्यान अधिक उपयुक्त होता है। कई जगह श्रीरामजी सर्पनाशक रूपमें कहे भी गये हैं। यथा—

'संशय सर्प ग्रसन उरगादः।'
(वही, ३। १०। ५)

'काल ब्याल कर भच्छक जोई।'
(वही, ६। ५५। ४)

'काल कराल ब्याल खगराजहि।'

(वही, ७ । २२ । ३)

'संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता॥
तव सरूप गारुड़ि रघुनायक। मोहि जिआयउ जन सुखदायक॥'

(वही, ७ । ९२ । ३-४)

४–कमलकी उपमा कोमलता-सरसता आदिके लिये दी गयी है। मानवरचित पुष्पवाटिकामें दोनों—

नील पीत जलजाभ सरीरा।

(वही, १ । २३२ । १)

और पम्पासरके समीपवर्ती प्राकृतिक वाटिका-वनमें—

'कुन्देन्दीवरसुन्दरौ' (वही, ४ श्लोक १)

—कहा गया है। ऐश्वर्यप्राप्त्यर्थ कमलवत् श्याम रूपका ध्यान ठीक है।

५–भक्तों-मुनियोंके बीच श्रीरामको तमालकी उपमा दी गयी है। यथा—

मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला। कनक तरुहि जनु भेंट तमाला॥

(वही, ३ । ९ । ६)

वानर भक्तोंमें—

जनु राजमुनी तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपनें।

(वही, ६ । १०२ । २ छं०)

अतः ज्ञात होता है कि सर्वसुलभताके लिये तमालकी उपमा दी अधिक उपयुक्त है।

६–निर्जन नदीतटपर उन्हें यमुनाकी उपमा दी गयी है। यथा—

उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम।

(वही, २ । १०९)

इससे जाना जाता है कि यमुना-जलवत् श्याम रामरूपके ध्यानमें सबका समानरूपसे अधिकार है।

(ख) १–मेघकी उपमासे गम्भीरत्व जनाया गया है।

२–मणिकी उपमासे काठिन्य (वीरत्व) जनाया गया है।

३–मयूरकण्ठकी उपमासे कान्तिमयत्व जनाया गया है।

४–कमलकी उपमासे सौगन्ध्य (यशःस्थिरता) जनाया गया है।

५–तमालकी उपमासे शरीरकी स्निग्धता जनायी गयी है और—

६–यमुनाकी उपमासे अगाधत्वका प्रदर्शन होता है। अतः—

(ग) १–गाम्भीर्यप्राप्त्यर्थ मेघवत् श्याम रामका ध्यान करे।

२–वीरत्वप्राप्त्यर्थ मणिवत् श्याम रामका ध्यान करे।

३–कान्तिप्राप्त्यर्थ मयूरकण्ठवत् श्याम रामका ध्यान करे।

४–यशःप्राप्त्यर्थ इन्दीवरकमलवत् श्याम रामका ध्यान करे।

५–शरीरकी सुडौलताके लिये तमालवत् श्याम रामका ध्यान करे।

६–अगाधबुद्धिप्राप्त्यर्थ यमुनावत् श्याम रामका ध्यान करे।

सिद्धिके लिये भी श्रीरामरूपमें विभिन्न श्यामताका ध्यान करना उपयुक्त होगा। जैसे—

(घ) १–कृपाके लिये मेघवत् गम्भीर श्यामशरीरवाले श्रीरामजीका ध्यान करे।

२–ऐश्वर्यप्राप्तिके लिये मरकतमणिवत् श्यामशरीरवाले श्रीरामजीका ध्यान करे।

३–शत्रुविनाशके लिये केकिकण्ठवत् श्यामशरीरवाले श्रीरामजीका ध्यान करे।

४. ऐश्वर्य और यशकी प्राप्तिके लिये कमलवत् श्याम शरीरवाले श्रीरामजीका ध्यान करे।

५. भक्ति-प्राप्तिके लिये तमालवत् श्याम श्रीरामरूपका ध्यान करे।

६. अन्तःकरणकी शुद्धिपूर्वक पापप्रशमनार्थ यमुनावत् श्यामशरीरवाले श्रीरामजीका ध्यान करे—

'जमुना कलि मल हरनि सुहाई।'

(वही, ६ । ११९ । ३)

(ङ) श्रीरामरूपकी विभिन्न श्यामताका ध्यान करनेसे षड्विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य) का नाश हो जाता है—

१–लोभ दरिद्र निकट नहिं आवा।

(वही, ७ । ११९ । २)

दरिद्र दावानल है, दावानलका नाशक मेघ है। यथा—

कामद घन दारिद दवारि के।

(वही, १ । ३१ । ४)

अतः मेघवत् श्याम श्रीरामके ध्यानसे लोभ नष्ट हो जाता है और तब जीव कह उठता है

अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें ।

(वही, २ । १०१ । ४)

२-मद (अविद्यान्धकार)—इसके नाशके लिये मणिवत् श्यामशरीरवाले श्रीरामजीका ध्यान करना चाहिये । यथा —

प्रबल अविद्या तम मिटि जाई ।

(वही, ७ । ११९ । ३)

३-काम सर्प है । यथा—

काम भुअंग डसत जब जाही ।

(विनयपत्रिका १२७ । ३)

और सर्पभक्षक तो केकी लोकप्रसिद्ध ही है । अतः—

केकि कंठ दुति स्यामल अंगा ।

(वही, १ । ३१५ । १)

—श्रीरामरूपका ध्यान करनेसे कामका नाश हो जाता है ।

४-मोह सब रोगोंकी जड़ है । यथा—

'मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला ।'

(वही, ७ । १२० । १५)

और मोहका पर्याय मूर्च्छा है—

'मूर्च्छा तु कश्मलं मोहः ।'

(अमरकोश)

वैद्यकका कहना है—

कमलं मधुरं वर्ण्यं शीतलं कफपित्तजित् ।
तृष्णादाहविस्फोटविषसर्पविनाशनम् ।

'कंजो मूर्च्छाविनाशकः ।'

—तो साहित्य-प्रसिद्ध ही है । अतः मोहनाशार्थ कमलवत् श्याम रामजीका ध्यान करना चाहिये ।

५-क्रोध पित्त है, जो नित्य उरमें दाह किया करता है । यथा—

'क्रोध पित्त नित छाती जारा ।'

(वही, ७ । १२० । १५)

और तमाल पित्तनाशक जड़ी है । यथा —

तमालः शालवद्वेद्यो दाहविस्फोटहृत्पुनः ।
·····················व्रणकुष्ठास्रपित्तजित् ॥

(भावप्रकाशनिघण्टु)

अतः क्रोधनाशार्थ —

'तरुन तमाल बरन तनु सोहा ।'

(वही, ३ । ११४ । ३)

—रामजीका ध्यान करना चाहिये । यथा —

तुलसिदास मंद ललन ललित निरखि रिसि क्यों रहति उर ऐन ॥

(कृष्णगीतावली)

६-मत्सर भी एक प्रकारकी जलन है । यथा—

परसुख देखि जरनि सोइ छई ।

(वही, ७ । १२० । १७)

इस जरनि (ताप) की नाशक शीतलकर्त्री यमुना है—

जमुना कलिमल हरनि सुहाई ।

(वही, ६ । ११९ । ३)

इससे यमुनावत् श्याम रामरूपका ध्यान मात्सर्य-नाशार्थ करना चाहिये ।

(च) श्रीरामरूपकी विभिन्न श्यामताका ध्यान करते हुए षडूर्मियोंका नाश किया जाता है । छः ऊर्मियाँ ये हैं—

बुभुक्षापिपासाशोकमोहजरामृत्यवः षडूर्मयः ।

१. बुभुक्षा—भूख एक ऊर्मि है; भूखनाशक अन्न है और अन्न वर्षासे उत्पन्न होता है, वर्षा मेघसे होती है—

पर्जन्यादन्नसम्भवः । (गीता ३ । १४)
जीवन दायक दानि । (दोहावली)

अतः बुभुक्षानाशके लिये मेघवत् श्याम रामका ध्यान करे ।

२. मृत्युरूप ऊर्मिका सरलतासे नाश करनेवाली मणि है—

'हरइ गरल दुख दारिद दहई ॥'

(वही, २ । १८३ । ४)

गरल सुधासम अरि हित होई । तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई ॥

(वही, ७ । ११९ । ४)

अतः —

मरकत मृदुल कलेवर स्यामा ।

(वही, ७ । ७५ । ३)

—का ध्यान करना चाहिये ।

३. शोकका पर्याय चिन्ता है । चिन्ताको 'साँपिनि' कहा गया है । यथा —

चिंता साँपिनि को नहिं खाया ।

(वही, ७ । ७० । ३)

साँपिनीका भक्षक है केकी । अतः शोकनाशके लिये केकिकण्ठवत् श्याम रामका ध्यान करे —

रामकथा कलिपंनग भरनी ।

(वही, १ । ३० । ३)

४. मोह-(मूर्च्छा)-नाशक कमल है । [इसके लिये पूर्वमें (ङ) के चौथे चरणको देखिये ।]

५. जरा-(वृद्धत्व) नाशक तमाल है । यह वैद्यक-प्रसिद्ध वाजीकरण—बल-वीर्यवर्धक है । अतः जरानाशके लिये—

तरुन तमाल बरन तनु सोहा ।

(वही, २ । ११४ । १)

—श्रीरामजीका ध्यान करना चाहिये ।

६. पिपासा (प्यास)-नाशक-यमुना हैं । यथा -

आस पिआस मनोमल हारी ।

(वही, १ । ४२ । १)

—अतः पिपासा-शान्तिके लिये यमुना-सम श्याम रामरूपका ध्यान करना चाहिये ।

(छ) श्रीरामजीकी विभिन्न श्यामताका ध्यान करनेसे पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंके पाँचों विषयोंकी पूर्ति (तृप्ति) हो जाती है । जैसे—

१. जिह्वा-इन्द्रियका विषय रस है और रसका अधिष्ठान जल है—

जल बिनु रस कि होइ संसारा ।

(वही, ७ । ८९ । ३)

अतः सब रसोंकी पूर्तिके लिये सजल मेघ अथवा अगाध यमुनाजलवत् श्याम रामाङ्गका ध्यान आ जानेसे—

रूप बिंदु जल होहिं सुखारी ।

(वही, २ । १२७ । ४)

२. रूप-पिपासाकी तृप्तिके लिये मणिवत् श्याम रामजीका ध्यान करे—

इन्ह तें लहीं दुति मरकत सोनें ।

(वही, २ । ११५ । ४)

मरकत कनक बरन बर जोरी । देखि सुरन्ह भै प्रीति न थोरी ॥

(वही, १ । ३१४ । ४)

३. कर्णेन्द्रियके विषय शब्दका सुख प्राप्त करनेके लिये—

केकीकण्ठाभनीलम्० ।

(वही, ७ । ० । १ श्लो०)

रामजीका ध्यान करना चाहिये । स्त्रियोंके स्वर और पुरुषोंकी बोलीके लिये केकारवकी उपमा अधिक उपयुक्त मानी जाती है—

बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा ।

(वही, ७ । ३८ । ४)

माई सों करत बात मंद मंद मुसुकात
मोर घनघोर से बोलत थोर थोर हैं ।

(गीतावली)

४. इन्दीवरवत्-श्याम रामका ध्यान करनेसे घ्राणेन्द्रियके विषय गन्धकी इच्छा पूर्ण हो जाती है; क्योंकि पद्म-परागके लिये कहा गया है—

सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ।

(वही, १ । ० । १)

५. कोमल एवं कठोर स्पर्श-सुखकी प्राप्तिके लिये तमाल-(पत्रादि कोमल, शाखादि कठोर) वत् श्यामाङ्ग रामका ध्यान करे—

मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला । कनक तरुहि जनु भेंट तमाला ॥

(वही, ३ । ९ । १२)

(ज) प्रायः सर्वत्र श्रीरामकी श्यामताको एक समय एक ही तरहकी उपमा दी गयी है । भावाधिक्यके कारण ही कहीं-कहीं एकसे अधिक उपमाएँ मिलती हैं । जैसे राजर्षि मनुके प्रसङ्गमें एक साथ तीन उपमाएँ दी गयी हैं—

नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम ।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम ॥

(वही, १ । १४६)

२—माता श्रीकौशल्याजीकी गोदमें स्थित प्रभुको दो उपमाएँ—

नील कंज बारिद गंभीरा । (वही, १ । १९८ । १)

—दी गयी हैं; क्योंकि ज्ञानप्रधाना होनेसे माताजीका भाव माधुर्यैश्वर्यमिश्रित था । कमल तो कोमलता (वात्सल्य-

भाव)का द्योतक है और वारिद—मेघ ऐश्वर्यसूचक है, अर्थात् वे कृपा चाहती हैं—

अब जनि कबहूँ ब्यापै प्रभु मोहिं माया तोरि ॥
(वही, १ । २०२)

और कृपा हुई भी—

तातु बिबेक अलौकिक तोरें । कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें ॥
(वही, १ । १५० । २)

३—महर्षि श्रीविश्वामित्रजीके प्रसङ्गमें दो उपमाएँ—दी गयीं—

नील जलद तनु स्याम तमाला । (वही, १ । २०८ । १)

—क्योंकि आप कृपा चाहते थे। इसलिये जलदकी उपमा दी गयी और वनवासी मुनि थे, इससे तमालकी उपमा दी गयी।

निष्कर्ष—

१—भगवत्कृपाप्राप्त्यर्थ, गाम्भीर्यप्राप्त्यर्थ, रस-पिपासा-तृप्तिके लिये, लोभ एवं दारिद्र्यके नाशार्थ, बुभुक्षानाशार्थ और ऐश्वर्यप्राप्त्यर्थ सजल मेघवत् श्यामविग्रहवाले श्रीरामभद्रजूका ध्यान करना चाहिये।

२—रूपदर्शनाकाङ्क्षापूर्त्यर्थ, अविद्यान्धकारनाशार्थ, शौर्य-वीरत्व-काठिन्य-प्राप्त्यर्थ, दिव्यज्ञानप्राप्त्यर्थ, संसार-विषनाशार्थ अर्थात् जीवनमुक्त्यर्थ और मृत्युनाशार्थ किये जानेवाले अनुष्ठानोंमें परम प्रकाशयुक्त मरकत (इन्द्रनील)-मणिके सदृश श्यामविग्रहवाले श्रीरामभद्रजूका ध्यान करना चाहिये।

३—शत्रुनाशार्थ, यशःप्राप्त्यर्थ, संशयनाशार्थ, कान्ति-मयत्व-सौन्दर्यप्राप्त्यर्थ, शब्दविषयक इच्छाके पूर्त्यर्थ, कामना-शार्थ, शोकनाशार्थ हरिताभ-नील—चमकते हुए मयूरकण्ठके समान श्यामविग्रहवाले श्रीरामजीका ध्यान करना चाहिये।

४—कोमलता, सरसता एवं सर्वचित्ताकर्षक सौन्दर्यके प्राप्त्यर्थ, यशःकीर्तिप्राप्त्यर्थ, गन्धविषयपूर्त्यर्थ, मोहनाशार्थ, मूर्च्छा एवं विषयव्याकुलताके नाशार्थ तथा अनन्यभक्तिप्राप्त्यर्थ सुगन्धमय नीलकमलके समान श्याम रंगवाले श्रीरामजीके श्रीविग्रहका ध्यान करना चाहिये।

५—सुलभतापूर्वक सर्वावश्यकप्राप्तव्यके प्राप्त्यर्थ, स्पर्श-विषयक इच्छाके पूर्त्यर्थ, शरीरकी चुचिक्कणता एवं सायुज्यमुक्तिके प्राप्त्यर्थ, क्रोध, जरा एवं पित्तके नाशार्थ और दिव्यशरीरप्राप्त्यर्थ तमालवत् श्याम रामजीका ध्यान करना चाहिये।

६—सर्वाधिकारप्राप्त्यर्थ, अन्तःकरणशुद्ध्यर्थ, रसविषयक इच्छाके पूर्त्यर्थ, मात्सर्यनाशार्थ, पिपासानाशार्थ और कृतकर्मसिद्ध्यर्थ अगाध-सलिला यमुनाके समान हरितिमा-मिश्रित-श्यामतासम्पन्न विग्रहवाले श्रीरामभद्रजूका ध्यान करना चाहिये।

उपर्युक्त प्रकारके विभिन्न अनुष्ठानोंमें श्रीरामजीका ध्यान करनेसे तत्तदनुष्ठानोंमें सद्यः सफलता मिलती है। अन्य अनेक सद्ग्रन्थोंमें दूर्वादल, अतसीपुष्प, गगन, सिन्धु, कदली-पत्र और कृष्णसर्प आदि अनेक वस्तुओंके रंगके साथ भगवद्वर्णकी तुलना की गयी है; परंतु यहाँ श्रीरामचरितमानसमें दी गयी उपमाओंपर ही विचार किया गया है।

स्मरण रखना चाहिये कि किसी भी कार्यके लिये श्रीरामजी-की किसी भी प्रकारकी श्यामताका ध्यान किया जाय, वह ध्यान अकेलेका न होकर श्रीसीताजी महारानीके सहित हो—

बाम भाग सोभति अनुकूला ।
आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला ॥
(वही, १ । १४७ । १)

गौरतेजं विना यस्तु श्यामतेजं समर्चयेत् ।
न स सिद्धिमवाप्नोति स भवेत्पातकी दिवे ॥
(गौतमीतन्त्र)

बिना श्रीजीके श्रीरामरूपकी यथार्थ सिद्धि नहीं होती, इसलिये श्रीरामरूपके इच्छुकोंको श्रीजूसहित श्रीरामजीके स्वाभिमत श्यामविग्रहका ध्यान करना चाहिये।

भगवान् श्रीरामका अद्भुत सौन्दर्य

(लेखक—स्वामी श्रीपूर्णेन्दुजी)

'संसारकी सभी वस्तुएँ हमें अपनी ओर आकर्षित करती रहती हैं; किंतु जो शुचि हैं, मेध्य हैं, उज्ज्वल हैं, वे हमें अत्यधिक आकर्षित करती हैं। जो वस्तु जितनी अधिक सुन्दर होगी, उसमें उतना ही अधिक आकर्षण होगा। सौन्दर्यमें आकर्षण स्वाभाविक है—सनातन है।'

श्रीरामसे अधिक कोई सुन्दर नहीं। इन्होंने सुन्दरताको भी सुन्दर किया है। ये शुद्धको भी शुद्ध करते हैं। इनसे कोई भी श्रेष्ठ नहीं है, ये श्रेष्ठातिश्रेष्ठ हैं। आप सुखकी, सौन्दर्यकी, सबकी सीमा हैं। त्रिलोकीमें जो भी शोभा-आभा है, जिससे एक दूसरेका मन आकर्षित होता रहता है, माधुर्यसे मुग्ध हो जाता है, वह इन भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके माधुर्य-सौन्दर्यसिन्धुके एक बिन्दुभरकी करामात है, उसीका आकर्षण है।

'विश्वमोहिनी जिस रूपपर आकृष्ट होकर मुझे वरण कर ले ऐसा नवल सौन्दर्य प्रभुके अतिरिक्त विश्वमें कहीं नहीं है—यह मेरा कल्पोंका अनुभव है। अच्छा, चलूँ; उनसे ही सुन्दरता माँगकर लाऊँ। सागरमेंसे गागरभर मिल जाय, वही पर्याप्त है'—ऐसा निश्चय करके नारदजी भगवान् श्रीहरिके पास गये थे। हरि तो सर्वज्ञ हैं, अन्तर्यामी हैं। वे जान-बूझकर नासमझीका काम कैसे करते। सिंहिनीका दूध स्वर्णपात्रमें ही ठहर सकता है; और किसीमें रक्खोगे तो तोड़-फोड़कर पात्रका भी विनाश कर देगा। कपड़ेमें, काँचमें अथवा मोमके वर्तनमें आँच भर दो। तो वह उन्हींको जला-फूँककर भस्म कर देगी। फिर ऐसा क्यों किया जाय।

सौन्दर्य कोई रंगकी पुड़िया तो है नहीं, जो उठाकर दे दें। यह तो परमेशका परमाकर्षण है, दिव्य सौन्दर्य है, सृष्टिसे परेकी वस्तु है। हाँ, यदि इसके अतिरिक्त कोई अन्य खास वस्तु भी होती तो दी जा सकती थी; किंतु यह तो गुणातीतका स्वाभाविक गुण है। देनेकी वस्तु नहीं है, देखनेकी है। जो इसे जैसी दृष्टिसे देखते हैं, उन्हें वह वैसी ही दिखायी देती है—ऐसी इसमें विशेष विलक्षणता है।

अन्य अवतारोंमें हरि चाहे थोड़ा-बहुत सौन्दर्य किसी कोनेमें छिपा भी आते होंगे, किंतु अबकी बार तो श्रीराम सम्पूर्ण सौन्दर्याकर्षण समेट लाये हैं। इस बार तो इन्होंने सौन्दर्य-माधुर्यकी पराकाष्ठा ही कर दी है। अजन्माने जन्मते ही अजीब-सा जादू छोड़ दिया है। जिसने भी एक बार आपको देख लिया, वह मानो उनका बिना मूल्यके क्रीतदास हो गया।

सूर्य एक मासतक टकटकी लगाये खड़े रहे। आकर्षणके चक्करमें सारी चाल-ढाल भूल गये। चन्द्रदेव आये। वे भी चरण-नख-छविको चकित-थकित-से होकर विस्मयके साथ विलोकते रहे। इन्दुजी परिपूर्ण प्रभुके पाद-पद्मोंका दर्शन करते-करते पूर्णेन्दु हो गये।

मूर्तिमान् माधुर्य-सौन्दर्य श्रीरामके लोकोत्तर लावण्यके सम्बन्धमें पता लगते ही भूतभावन भगवान् भोले शिव मुट्ठी बाँधकर ऐसे भागे, मानो कोई कृपण कञ्चन-मणियोंकी राशि लूटने दौड़ रहा हो।

काकभुशुण्डिजी भी आकर्षित हुए खिंचे चले आ रहे थे। दोनों मार्गमें मिल गये। कुछ गट्ट-सट्ट की और गुरु-शिष्य झट अयोध्या जा पहुँचे। श्रीसिद्धजी साधकसहित श्यामसुन्दरके बालरूपकी छविमें फँस गये। अविनाशीके अनुपम आननकी अनूठी सुन्दरताका अपूर्व आकर्षण था। इसपर मोहिनीमन्त्र भी मोहित हो जाता है। दोनों परमानन्द-प्रेमके सुखमें फूले, तन-मनकी सुधि भूले हुए, अलमस्त बने, श्रीरामधामकी वीथियोंमें बाबाजी बने घूमते रहे—

बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले।

(रामचरितमानस १ । १९५ । ३)

नगरवासियोंकी भी विचित्र स्थिति थी। इनकी भी दिन-रात मनमोहन श्रीरामके अनूप रूप-रंग-ढंगके संग उमंगमें पता नहीं, कब चली जाती हैं। श्रीरामके सौन्दर्य-माधुर्यकी छटा अवधभरमें ऐसी व्याप्त थी कि जिसके अवलोकनसे क्या, श्रवणसे भी अचर-सचर और सजीव निर्जीव-से बन जाते थे, तन-मनकी सुधि भूले हुए रहते थे।

नर-नारियोंकी इस अनुपम माधुरी-रसमें कितनी अनुरक्ति है, कितनी आसक्ति है, कितना स्नेह, कितना प्रेमभाव है—इसे उस समय प्रत्यक्ष देखकर दसों दिशाएँ चकित रह जाती थीं।

पुत्रोंकी माधुर्यमय छवि अथवा रूपाकर्षण तथा दर्शकोंकी भीड़को देखकर स्नेहमें सराबोर माताएँ दिठौना लगा देतीं, तृण तोड़तीं, राई-नौन उतारती थीं कि कहीं हमारे नन्हे-मुन्नोंको नजर न लग जाय, किसीकी बुरी दृष्टि न पड़ जाय।

किंतु जो समदर्शी है (सबको देखता है), अन्तर्यामी है, उसे थोड़े-से देखनेवाले, वे भी जिन्हें आप ही अपने स्वरूपको बताकर दिखानेकी कृपा करें, क्या दृष्टि लगा सकते हैं ? दिव्यको देखनेके लिये दृष्टि भी तो दिव्य ही होनी चाहिये। प्राकृत नेत्र प्राकृत पदार्थोंको ही देख सकते हैं। जो कण-कणमें व्याप्त है, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, स्थावर-जंगम, जड-चेतन, सभीमें जिनकी सत्ता है, ऐसे जनार्दनको देखनेकी जिन नेत्रोंमें दृष्टि नहीं, 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' के साक्षात्कारकी शक्ति उनमें कहाँसे आयी; उनकी आँखें तो मोरपंख-जैसी—नाममात्रकी हैं। वे नारायणको क्या नजर लगा सकते हैं। त्रिकालदर्शीपर सहज किसकी दृष्टि लग सकती है। उल्टे आप ही सबको नजर लगा दें। परंतु यह मौका ममत्व है, पुत्र-स्नेह है। माधुर्यानुराग और वात्सल्यभावका राज्य है। यह भावराज्य होता ही विचित्र है। प्रेममें निश्चिन्तता और धैर्य रहते ही नहीं।

मानवोचित मर्यादा-स्थापनार्थ श्रीरामने शरीर ही मनुष्य-जैसा बना लिया है, किंतु आप मनुष्य थोड़े हैं। मनुष्य-देहमें ऐसी सुन्दरता सम्भव ही नहीं, जो शिव-विरंचि आदि देवताओंसे लेकर दानव, यक्ष, गन्धर्व, मुनि, मनुष्य—सबको मोहित कर दे। शत्रु भी सुन्दरताकी सरितामें डुबकी खाने लगें। अजी ! औरोंको छोड़ो, आप स्वयं भी काले-काले घुँघराले केशोंको सँभालनेके लिये खंभोंमें लगे मणि-माणिक्य अथवा दर्पणोंमें, शारदीय कमल तथा पूर्णचन्द्र आदिको तुच्छ और तिरस्कृत करनेवाले अपने श्रीमुखारविन्दको विलोकने लगते तो विस्मित हो जाते और देखते-देखते आश्चर्यसे कहने लगते—'यह इतना सुन्दर कौन है ? देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व है अथवा किंपुरुष है—कौन है ? ऐसी सुन्दरता तो मैंने कभी देखी ही नहीं।' जब विस्मयके साथ हाथ हिल जाता, तब सोचते—'अरे ! यह, यह तो मेरा ही प्रतिबिम्ब है। क्या मेरा मुख इतना सुन्दर है ?' आश्चर्यके साथ फिर देखते और फिर मुग्ध हो जाते।

जो रूप रूपके सागरको, सुन्दरताके सदनको, सच्चिदानन्द, गोविन्द श्रीरामचन्द्रको ही विस्मित बना दे, उसकी महिमाका क्या कहना। असीमका कितना ही वर्णन किया जाय, पार ही नहीं। इस रूपको जितना देखा जाय, उतनी ही लालसा बढ़ेगी। यह सौन्दर्य, अनुपम लावण्य ब्रह्माकी रचना, शेष-शारदादिके वर्णन एवं योगीन्द्र-मुनीन्द्र-ज्ञानियोंके अनुमानसे भी परेकी वस्तु है।

थोड़े दिनोंमें श्रीराम बड़े हो गये। किंतु जो अनादि हैं, विराट् हैं, जिनका आदि-मध्य-अन्त नहीं है, जो सर्वदा सबसे बड़े हैं, उनके लिये छोटा-बड़ा क्या। केवल लीलाके लिये लालाको वय बढ़ानी थी, बढ़ा ली। अल्पकालमें ही शास्त्र-शस्त्र आदि सर्वविद्याओंमें पारंगत हो गये। समस्त द्वीपोंके छात्रोंमें सर्वश्रेष्ठ उत्तीर्ण हुए। इधर-उधर ख्याति हुई ! सर्वत्र यश छा गया।

प्रशंसा सुनते ही सूखी-सूखी-सी दाढ़ी-जटावाले, अत्यन्त घोर कठोर तपस्याके कारण जिनके मनमें कठोरता, स्वभावमें रूखापन आ गया था, वे महामुनि विश्वामित्र लैयाँ-पैयाँ अयोध्यामें पहुँचे। विश्वविमोहन श्रीरामको देखते ही देहकी सुधि भूल गये। श्रीमुखारविन्दकी शोभा निहार ऐसे मग्न हुए, मानो चकोर पूर्णचन्द्रको देखकर लुभा गया हो। अब तपस्या कौन करे। वनको कैसे जाया जाय। अब तो बड़ेके बन्धनमें बँध गये। यह बन्धन भी ऐसा है, जो कभी न टूटे, न छूटे। कई दिनोंतक खींच-तान रही।

मुनिने अपने स्वार्थको लोककल्याणमें जोड़कर देखा तो उसकी पूर्ति करनेवाली श्रीराम और लक्ष्मणके अतिरिक्त संसारभरमें अन्य कोई वस्तु नहीं थी। संसारी वस्तुओंके इच्छुक भिक्षुकोंको तो जिधर भी दृष्टि उठाकर देखोगे, उधर ही वे दीख जायँगे; किंतु परमार्थके उपासक और श्रीरामके याचक तो अन्वेषण करनेपर ही मिलेंगे। मुनिराजने अयोध्यानरेशसे श्रीरामानुज और श्रीरामकी याचना की थी। श्रीरामके दरबारसे किसीकी झोली कभी खाली नहीं गयी, पापीकी भी हृदयसे की हुई पुकार टाली नहीं गयी; फिर मुनिवर विश्वामित्रकी तो ऐसी उत्तम याचना थी, जो प्रभु और प्रभुके प्रेमियोंके लिये परम महत्त्व रखती है, कल्याणकारी है। स्वीकार हो गयी।

रघुवंशी तथा दानके महत्त्वको समझनेवाले महाभाग पुरुष याचकोंको लौटाना पाप समझते हैं। जिनके यहाँसे भद्र भिक्षुक खाली हाथ—निराश नहीं लौटते, ऐसे श्रेष्ठ व्यक्ति संसारमें थोड़े ही होते हैं।

रूपके भूप जनकपुर पहुँचे। वहाँ क्या था, केवल इनके नाम—सौन्दर्यकी धूम थी। यहाँ तो इन्होंने रूपकी ऐसी मोहनी डाली कि घर, नगर, बाहरके सभी नर-नारी नेत्रोंसे श्रीरामके रूपासवका पान कर-करके मगन—मत्त हो गये, इन्हींके बन गये।

कहहु सखी अस को तनुधारी।
जो न मोह यह रूप निहारी॥
(रा० च० मा० १। २२०। १)

मधुर, मनोहर मूर्तिको निहारकर विदेह विशेषरूपसे विदेह हो गये। उनकी दशा ही विलक्षण हो गयी। श्रीरामकी अलौकिक सुन्दरता देखते ही मन अत्यन्त प्रेमके वश होकर इतना आनन्दित हुआ कि कभी ब्रह्मानन्दमें भी यह आनन्द न मिला होगा। फिर तो मनने बरबस उस ब्रह्म-सुखको त्याग ही दिया। जब ब्रह्म साक्षात् सम्मुख ही खड़े हैं, तब और क्या चाहिये—

मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥
(वही, १। २१४। ४)

सहज बिरागरूप मन मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
(वही, १। २१५। २)

जनककी यह दशा! सीताजी तो तबतक श्रीरामको देखी भी नहीं थीं, केवल पक्षियोंद्वारा श्रीराघवका नाम और उनकी मधुरातिमधुर कथा ही तनिक सुनी थीं कि बस, आकर्षित हो गयीं। जब श्रीश्यामसुन्दर उनके नवल नयनोंके सम्मुख आये, तब तो मामला ही कुछ और हो गया। वे श्रीराघवेन्द्रके मुखारविन्दकी अद्भुत शोभाको अवलोकन करके ऐसी मोहित हुईं, मानो उनके मनको कोई बलात् खींच रहा है।

श्रीरामके इन लक्षणोंसे लोग उन्हें 'चितचोर' कहने लगे तो क्या आश्चर्य! वैसे आप चितचोर नहीं हैं। चोरोंके तो श्रीराम शत्रु हैं; किंतु जिन महाभागोंका अन्तःकरण विमल है, उनका वह चित्त स्वयं ही आनन्दकन्द सच्चिदानन्दके नाम, रूप, लीला, धामकी ओर आकृष्ट हो जाता है। सत्-चित्-आनन्द-घन परम-पिता परमात्माकी प्राप्ति ही जीवका धर्म है। मनुष्यका मन सच्चिदानन्दको प्राप्त कर ले तो फिर कुछ भी पाना शेष नहीं रह जाता। संसारके सभी पदार्थ श्रीरामरूप हैं, केवल इस भावनासे वह जगत्को देखता है। उसे क्षण-क्षण और कण-कणमें भगवान् श्रीरामके दर्शन होते रहते हैं।

भगवान्‌के नाम, रूप, लीला, धाममें क्या अद्भुत आकर्षण, उनकी क्या महिमा है और क्यों है—इसे कभी कोई पूर्णतया न जान सका है न कह सका। यह वाणीसे परेकी गाथा है। जो इन्हें भावकी दृष्टिसे देखते हैं, इनपर श्रद्धा-विश्वास करते हैं अथवा जिनपर श्रीभगवान् तनिक-सी कृपादृष्टि डाल देते हैं, वे पुण्यात्मा उन्हें स्वयं जान जाते हैं। उनका जीवन सफल हो जाता है। वे सदा प्रेमानन्दमय रूपमें मग्न रहते हैं।

शोभासिन्धु भगवान् श्रीराम

(लेखक—श्रीपृथ्वीसिंहजी चौहान 'प्रेमी')

हमारी आँखें उसे देखना चाहती हैं, जिसे देख लेनेके बाद और कुछ देखना न रह जाय। जागतिक सौन्दर्यके जहाँ-कहीं प्रसङ्ग आते हैं, उन्हें देखनेके लिये हमारी आँखें सहसा दौड़ पड़ती हैं, किंतु तुरंत ही उस नश्वर सौन्दर्यसे निराश होकर लौट आती हैं और देखनेकी भूख इनकी ज्यों-की-त्यों बनी ही रह जाती है। अन्तमें विरक्तभावसे यहाँतक कह दिया जाता है—

यह तमाशा देखिये, वह तमाशा देखिये।
दी हैं दो आँखें खुदा ने, इन से क्या-क्या देखिये॥
—दाग

बात यह है कि आँखें अपने अभीष्ट सौन्दर्यको भली-भाँति पहचानती हैं, इसलिये संसारकी किसी भी सुन्दरताको देखकर धोखा नहीं खातीं। इन्हें तो एकमात्र प्रभुके चिर-सुन्दर-चिर-नवीन रूपके दीदारकी भीख चाहिये। ऐसे दिव्य सौन्दर्य-दर्शनकी भिक्षाके लिये आँखें मानो दो ठीकरे (भिक्षा-पात्र) हैं—

आँखें नहीं हैं चेहरे पर तेरे फकीर के।
दो ठीकरे हैं भीख के दीदार के लिये॥
—आतिश

सौन्दर्य-सुधा-निधि भगवान् श्रीरामका सरल, तरल, रस-मय रूप ही इन आँखोंकी दर्शन-पिपासाको तृप्त करनेमें समर्थ है। जब-जब किसी भक्तकी बड़भागिनी आँखोंने उन्हें देखा है—

देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥
(रा० च० मा० १। २३१। २)

ये अपनी निधिको आप पहचानती हैं। मनुष्यकी ही क्या, समस्त प्राणियोंकी आँखें अभिराम रामके सकल-भुवन-विमोहन अद्भुत सौन्दर्यसे विमोहित हैं—

कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी॥
(वही, १।२२०।१)

भगवान् रामके ऐसे अद्भुत सौन्दर्यका वर्णन भक्त कवीश्वर गोस्वामी तुलसीदासजीने एवं अन्यान्य राम-भक्तोंने अपने ग्रन्थोंमें यथासम्भव किया है और साथ ही युक्तिपूर्वक अपनी विवशता और सामर्थ्याभाव भी प्रकट कर दिया है—

स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥
(वही, १।२२८।१)

विश्वविलोचन-चकोर रामचन्द्रका सौन्दर्य सुन्दरताकी चरमावधि है—

राम सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज।
(वही, १।३०९)

उनका सौन्दर्य मानवके प्राण-घाती दानवोंतकको हठात् विमोहित कर लेता है। उनकी घोर घातक वृत्ति और शस्त्र-धारें अनुपम रूप-राशिके समक्ष कुण्ठित हो जाती हैं।

विधाताकी समस्त सृष्टिमें ऐसी सुन्दरता कहीं नहीं है; क्योंकि ये तो—

आपु प्रगट भए बिधि न बनाए।
(वही, २।११९।२)

विधाताको तो इनसे ईर्ष्या हो गयी है—

इन्हहि देखि बिधि मन अनुरागा। पटतर जोग बनावै लागा॥
कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए। तेहिं इरिषा बन आनि दुराए॥
(वही, २।११९।३)

रामका सहज सौन्दर्य प्रत्येक स्थितिमें सौन्दर्य ही है। परिस्थिति-परिवर्तनसे उसमें कोई परिवर्तन नहीं आता। पथिक-वेशमें विचरते हुए, जबकि उनके मस्तकपर अवधका राजमुकुट नहीं है, जटा-मुकुटकी छटा कैसी निराली है! दिव्य कान्ति विकीर्ण करनेवाले मणि-मुक्ताओंके अभावमें स्वेद-कण-जाल कैसी शोभा पा रहा है—

जटा मुकुट सीसनि सुभग उर भुज नयन बिसाल।
सरद परब बिधु बदन बर लसत स्वेद कन जाल॥
(वही, २।११५)

यही नहीं, राक्षसराज दशाननसे युद्ध करते हुए रामके श्याम-शरीरपर रिपु-रक्तकी बूँदें—जो अन्यत्र जुगुप्सा ही उत्पन्न करती हैं—कैसी सुन्दर लग रही हैं! बाबा तुलसी-दासजीकी 'कवितावली' में उत्प्रेक्षा देखिये—

मानो मरकत सैल बिसाल में, फैलि चलीं बर बीरबहूटीं॥
(६।५१)

प्रकृतिका नैसर्गिक सौन्दर्य इस अनुपम सौन्दर्यके समक्ष गर्व नहीं कर सकता—

गोरे को बरनु देखें सोनो न सलोनो लागे,
साँवरे बिलोकें गर्ब घटत घटनि के॥
(कवितावली, अयोध्या० १६)

अब एक झाँकी दूल्हे रामकी भी देखिये। दूल्हा-वेशमें राम कोटिकाम-छविका निरादर करते हुए कैसे असमोर्ध्व सुन्दर हैं, मानो सौन्दर्य-माधुर्यार्णव ही उमड़ पड़ा हो—

रूप-सुधा आनन्द-सिंधु में झलमलात तरुनाई।

उनके चरण महावर-मण्डित हैं। पीत पुनीत मनोहर धोती है। पीले जनेऊकी अपनी शोभा है। पाणि-पल्लवमें रामनामाङ्कित मुद्रिका है और—

पिअर उपरना काखा सोती। दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती॥
(रा० च० मा० १।३२६।४)

—धारण किये हुए हैं। कानोंमें कल कुण्डल झलमल-झलमल कर रहे हैं और मुखमण्डलका क्या कहना—

बदनु सकल सौंदर्ज निधाना॥
(वही, १।३२६।४)

सुन्दर भ्रुकुटि है। मनोहर नासिका है। सिरपर शोभाकी मरोर मौर है। तिलक-रेखपर तो भक्तोंका मन ललककर चला जाता है। गोसाईंजीकी तिलकपर कितनी सुन्दर उत्प्रेक्षा है—

तिलक रेख सोभा जनु चाँकी।
(वही, १।२१८।४)

तिलककी रेखाएँ ऐसी सुन्दर हैं, मानो [मूर्तिमती] शोभापर मुहर लगा दी गयी हो।

ऐसे रूप-सुधा-सिन्धु रामको वधू सीताने वररूपमें वरण किया। राम-रूप-मोहिता सीताकी विमुग्ध दशाका 'कवितावली'में कितना सजीव वर्णन है—

राम को रूपु निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रही पल टारत नाहीं॥
(बाल० १७)

भगवान् रामका अद्भुत सौन्दर्य केवल दर्शनमात्रको ही मनोहारी नहीं है, बल्कि उसका अखिल विश्वके हितार्थ कल्याणकारी मङ्गलमय स्वरूप भी है। इसके लिये भक्त-मूर्धन्य तुलसीदासजी अपने विश्व-विश्रुत ग्रन्थ रामचरित-मानसमें कहते हैं—

नील सरोरुह नीलमनि नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥
(१।१४६)

भगवान् रामके सौन्दर्य-वर्णनमें यहाँ तीन उपमान—नील कमल, नील मणि और नील घन एक साथ लाये गये हैं, जो काव्य-कलाकी दृष्टिसे मालोपमाका बोध कराते हैं; किंतु लोक-मङ्गल और लोक-कल्याणकी दृष्टिसे कुछ और गहराईमें जाकर देखें। भगवान् रामका सौन्दर्य नीले कमलके समान कोमल और सरस है। भक्तोंके लोचन-भ्रमर उसका मकरन्द-पान किया करते हैं। वह भक्तोंके अनाविल मानस-सरोवरमें उद्भासित होता है। वह नीलमणिके सदृश है अर्थात् कोमल ही नहीं, दुष्टोंके लिये कठोर भी है। मोहान्धकारको मिटानेके लिये मणिमें दिव्य प्रकाश भी विद्यमान है। फिर उसमें विशेष अर्थ (घन) भी संनिहित है, जो दीन-दुखीके लिये दरिद्रता-विनाशनका मुख्य हेतु है और वह नील नीरधरके समान विश्वके समस्त अभावोंको मिटाकर सम्पूर्ण रसाको रसमय कर देनेमें समर्थ है।

सच तो यह है कि भगवान् रामके अद्भुत सौन्दर्य-सुधा-रसार्णवके समक्ष जगत्का कोई नश्वर उपमान ससम्मान नहीं लाया जा सकता—

भे उपमान सबै रस-रीते।

और उपमानके अभावमें कहा ही क्या जा सकता है। अतः फिर गोस्वामीजीके शब्दोंमें उसका वर्णन करनेके लिये यही कहना उचित है—

गिरा अनयन नयन बिनु बानी।
(वही, १।२२८।१)

तुलसीके रामकी बाल-छवि

(लेखक—पं० श्रीछेदीजी साहित्यालंकार)

बालक स्वभावतः चित्ताकर्षक होता है। मानव ही नहीं, वरं पशु-पक्षियोंके बच्चे भी हमारे मनको बरबस हर लेते हैं। जब हम बछड़ेको छलाँग भरते देखते हैं, उस समय हृदय-में एक विशिष्ट प्रकारके आनन्दका अनुभव होता है। चिड़ियाँ जब अपने बच्चोंकी चोंचमें दाना डालती हैं और उनके साथ फुदकती हैं, उस समय उन्हें अवलोकन करते ही भावुक व्यक्तिका हृदय अपार आनन्दसे भर जाता है। इतना ही नहीं, हिंसक जानवरों—व्याघ्र, सिंह आदिके शावकको भी देखकर हम क्षणभरके लिये भूल जाते हैं कि यह प्राण-घातक जीव है। यहाँतक कि सर्पके बच्चेको भी मारनेमें हिचक-सी होती है, इसलिये कि वह भी परम मनोहर प्रतीत होता है।

जब हम अपने या पराये बच्चेको खाटपर लेटे अथवा प्राङ्गणमें जानु-पाणि चलते पाते हैं, उस समय सब काम छोड़कर उसे प्यार करने एवं छेड़नेमें अवश्य ही कुछ समय व्यतीत कर देते हैं।

बच्चोंका केवल हँसना-खेलना ही चित्ताकर्षक नहीं होता, वरं चलना बोलना-रोना आदि सारे क्रिया-कलाप ही परम मनोहर होते हैं। यहाँतक कि उसके खेल-कूदके सामान भी हृदयवान्के लिये आनन्दप्रदायक हुआ करते हैं।

काव्य-जगत्के स्रष्टा भी बाल-छवि, बाल-लीला, बाल-सौन्दर्यके चित्रणमें रस लेते हैं और उसमें अपनेको तन्मय कर देते हैं। कविवर सूरदासजी प्रभृतिका बाल-लीला-वर्णन अनूठा है। संत-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजीने भी अपने उपास्य-देव श्रीराघवेन्द्रके बाल-छवि-चित्रणमें कमाल किया है। आपके रामके अङ्ग-अङ्गमें कोटि-कोटि कामदेवोंकी आभा है—

काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा॥
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती॥
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे॥
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गभीर जान जेहिं देखा॥
भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हियँ हरि नख अति सोभा रूरी॥
उर मनिहार पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा॥
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई॥
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे॥
सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला॥

चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे॥
पीत झगुलिआ तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई॥
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा। सो जानइ सपनेहुँ जेहिं देखा॥
(रा० च० मा०, बा० का० १९८। १—६)

बाल-सौन्दर्यका इतना स्वाभाविक और सुन्दर चित्रण सामान्यतया अन्यत्र दुर्लभ है। रामके उपयोगमें आनेवाली वस्तुओंका चित्रण भी अद्वितीय प्रतीत होता है। रामके पालने भी प्राकृतिक काष्ठकार नहीं बनाते, उसकी रचना भी कामदेवद्वारा ही होती है—

कनक रतन मनि पालने, रच्यो मनहुँ मार सुतहार।
बिबिध खिलौना किंकिनी, लागे मंजुल मुकुता हार॥
(गीतावली, बाल० २२। १)

मार सुतहारद्वारा निर्मित पालनेपर जब राम लेटकर झूलने लगते हैं, तब वे कैसे लगते हैं—यह गोस्वामीजीसे सुनिये—

मदन मोर के चंद की, झलकनि निदरति तनु जोति।
नील कमल मनि जलद की उपमा कहें लघुमति होति॥
मातु सुकृत फल राम लला॥
लघु लघु लोहित ललित हैं पद पानि अधर एक रंग।
को कबि जो छबि कहि सकै, नख सिख सुंदर सब अंग॥
परिजन रंजन राम लला॥
(गीतावली, बाल० २२। ३-४)

गोस्वामीजीके राम केवल नहा-धो लेनेपर ही सुन्दर नहीं लगते, बल्कि धूलि-धूसरित अङ्ग भी कामदेवकी शोभाको परास्त करते हैं—

अति सुंदर सोहत धूरि भरे, छबि भूरि अनंग की दूरि धरै॥
(कवितावली, बाल० ३)

आपके राम इतने सुन्दर हैं कि उनके साथ जिनकी उपमा दी जाती है, वे भी सकुचा-से जाते हैं—

खंजन मीन कमल सकुचत तब,
जब उपमा चाहत कबि दैन॥
(गीतावली, बाल० ३५। १)

माताके साथ बालकका चिर सम्बन्ध रहता है। माताकी गोदमें बालक जितना सुशोभित होता है, उतना अन्यके अङ्कमें नहीं। सामान्यतया बाल-सौन्दर्य-चित्रणमें कवि बालकको माताकी गोदमें ही देखना चाहते हैं। पर बालक राम अपने पिताकी गोदमें भी अतुलनीय शोभा पाते हैं। सवेरे अलसाये हुए राम महाराज दशरथकी गोदमें कैसे लगते हैं, यह देखिये—

अवधेस के द्वारें सकारें गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच-बिमोचन को, ठगि-सी रही, जे न ठगे, धिक-से॥
तुलसी मन-रंजन रंजित अंजन, नैन सुखंजन जातक-से॥
सजनी ससि में समसील उभै, नवनील सरोरुह-से बिकसे।
(कवितावली, बाल० १। १)

अब भगवान् रामको अजिर-विहारीके रूपमें अवलोकन कीजिये। अन्य बालकोंकी भाँति ही बालक राम भी आँगनमें धूल-धूसरित होकर खेलते हैं। पर अन्य बालकोंसे उनकी शोभा न्यारी ही है—

बालबिनोद करत रघुराई। बिचरत अजिर जननि सुखदाई॥
मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग अंग प्रति छबि बहु कामा॥
नव राजीव अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख ससि दुति हरना॥
ललित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रवकारी॥
चारु पुरट मनि रचित बनाई। कटि किंकिनि कल मुखर सुहाई॥
(रा० च० मा० ७। ७५। २—४)

कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकि ठुमुकि प्रभु चलहिं पराई॥
धूसर धूरि भरें तनु आए। भूपति बिहँसि गोद बैठाए॥
भोजन करत चपल चित इत उत अवसर पाइ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ॥
(रा० च० मा०, बा० का० १। २०२। ४-५, २०३)

गोस्वामीजीने राघवेन्द्रकी सभी अवस्थाओंका वर्णन करते हुए बाल-लीलापर विशेष ध्यान दिया है। रामचरित-मानस, कवितावली, बरवै-रामायण, गीतावली आदिमें आपने रामकी बाल-लीलाका अलौकिक ढंगसे वर्णन किया है। रामके अङ्ग-प्रत्यङ्गकी शोभा-वर्णनमें आपने अपार प्रतिभाका परिचय दिया है। बालक रामके दाँत, लटें, अधर, मोतीकी माला, कुण्डल, कपोल आदिका चित्रण कवितावलीमें इस प्रकार पाया जाता है—

बर दंत की पंगति कुंदकली, अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकैं घन बीच जगै छबि मोतिन माल अमोलन की॥
घुँघुरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलन की।
नेवछावरि प्रान करै तुलसी, बलि जाउँ लला इन बोलन की॥
(बाल० ५)

चौपाई, दोहे, कवित्त, सवैये आदिके अतिरिक्त गेय पदमें भी आपने रामकी बाल-लीलाके मार्मिक चित्र प्रस्तुत

किये हैं, जो सूरके गेय (बाल-लीला-सम्बन्धी) पदोंसे कम स्थान नहीं रखता। ऐसे पद्योंका बाहुल्य गीतावलीमें है। यथा—

आँगन फिरत घुटरुवनि धाए ॥

नील-जलद तनु स्याम राम सिसु जननि निरखि मुख निकट बोलाए।
बंधुक सुमन अरुन पद पंकज अंकुस प्रमुख चिन्ह बनि आए॥
नूपुर जनु मुनिबर कलहंसनि रचे नीड़ दै बाँह बसाए।
कटि मेखल बर हार ग्रीव दर रुचिर बाँह भूषन पहिराए॥
उर श्रीवत्स मनोहर हरिनख हेम मध्य मनिगन बहु लाए।
सुभग चिबुक, द्विज, अधर, नासिका, स्रवन, कपोल मोहि अति भाए॥
भ्रू सुंदर करुनारस पूरन, लोचन मनहुँ जुगल जलजाए।
भाल बिसाल ललित लटकन बर, बालदसा के चिकुर सुहाए॥
मनु दोउ गुर सनि कुज आगें करि ससिहि मिलन तम के गन आए।
उपमा एक अभूत भई तब, जब जननी पट पीत ओढ़ाए॥
(गीतावली १ । २६ । १—६)

अब कुछ बड़े होकर राम अपने अनुजों एवं सखाओं-के साथ साकेतकी गलियोंमें विचरने लगे। नगरवासी उनका रूप निरखकर निहाल तो होते ही हैं, पर गोस्वामी-जी अपने किशोर रामको इस रूपमें अवलोकन करते हैं—

करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा॥
जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई॥
(रा० च० मा०, बा० का० २०३ । ४)

पदत्राण पहने सरयूतट, विहारी रामचन्द्रके दर्शन कीजिये—

पद कंजनि मंजु बनीं पनहीं, धनुहीं सर पंकज-पानि लिएँ।
लरिका सँग खेलत डोलत हैं सरजू तट चौहट हाट हिएँ॥
(कवितावली १ । ६)

सखाओंके साथ नौका-विहार करते हुए तुलसीके रामका अवलोकन कवितावलीमें कीजिये—

सरजू बर तीरहिं तीर फिरैं रघुबीर सखा अरु बीर सबै।
धनुहीं कर तीर, निषंग कसें कटि पीत दुकूल नवीन फबै॥
(वही, १ । ७)

इस प्रकार हम पाते हैं कि गोस्वामीजीने रघुकुल-कमल-दिवाकर रामकी शिशु-अवस्थासे किशोरावस्थातकका क्रम-बद्ध ढंगसे और परम मनोहर रूपमें वर्णन किया है, जो अन्यत्र दुर्लभ है।

धनुषधारीके प्रति

(लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')

कहो, मेरे धनुषधारी! मेरे बारेमें क्या सोचा? मेरा भी कुछ ख्याल है तुम्हें?

कोटि-कोटि जन्म बीत गये हैं मेरे चित्तको तुम्हारे चिन्तनकी चौखटपर सिर पटकते! हाँ, कोटि-कोटि जन्म! पर तुम टस-से-मस नहीं हुए। तुम्हारे कानोंपर जूँतक नहीं रेंगी। आखिर इतनी खफगी क्यों? ऐसा कौन भारी अपराध बन गया है मुझसे? कौन-से मैंने तुम्हारे हाथी-घोड़े खोल लिये हैं? कुछ तो बोलो। तनिक तो जिह्वाको कष्ट दो! बात तो यह है कि सीधेपर सब रोब जमाते हैं, टेढ़ेके आगे हाथ जोड़ते हैं। तुम कौन दुनियासे निराले हो। जिसने तुम्हारी हृदय-निधिका अपहरण किया, उसे तो मुक्ति प्रदान की और मैं जो तुमपर अपना सर्वस्व निछावर कर रही हूँ, उसके साथ यह व्यवहार! बाततक नहीं करते।

विकल हो-होकर बार-बार मैं पुकार रही हूँ, पर तुम नहीं सुनते। सारी शर्म-हया उतारकर रख दी क्या? मेरा चित्त तो खैर, परले सिरेका निर्लज्ज है ही। तनिक भी इसमें पानी होता तो अबतक कभीका तुमसे विमुख हो गया होता। पर तुम अपनी कहो, तुम्हीं कितने पानीमें हो? तुम्हारी आँखमें भी तो पानीका नाम-निशान नहीं। तनिक भी पानी होता तो तुम इस तरह पत्थरकी मूरत नहीं बने रहते। सच, तुम तो जड हो गये हो—एक सिरेसे जड। जो जडसे पत्थरको चेतन नारी-रूप प्रदान कर दे, वही मेरे लिये स्वयं जड-पत्थर होकर रह जाय—भाग्यकी विडम्बना इससे बढ़कर क्या होगी।

सुनती आयी हूँ—गजकी पुकारपर तुम नंगे पैर दौड़कर आधे बोल आये थे। अजामिलके मुखसे नारायणका 'ना' निकलते-निकलते ही प्रकट हो गये थे। बुरा न मानना, मुझे तो यह सब गप मालूम होती है। यों ही झूठके पुल बाँध दिये गये हैं। अपने दिलकी सच कहती हूँ, मुझे तो विश्वास नहीं होता। विश्वास हो भी कैसे? ऐसे होते, तो मेरी बेला यों चुप्पी साधते कैसे बनता। इस तरह कानोंमें उँगली दिये कैसे रहते। युग बीत गये हैं, युग—अरज गुजारते। यों ही उलाहना नहीं दे रही।

और फिर माँग-माँग भी तो देखी जाती है। मेरी माँग, मेरी चाह तो एकदम साधारण है। मैं मुक्ति नहीं चाहती।

तुम्हारी नित्य-चरण-किंकरी भी नहीं बनना चाहती। मेरी कामना तो केवल इतनी-सी है कि तुम्हारा धनुषधारी रूप एक बार मेरे लिये, मुझपर सक्रिय हो—बस, एक बार।

वह प्राणी प्राणी नहीं, जिसे किसीपर मरना नहीं आता। वह जीवन जीवन नहीं, जिसमें किसीपर मरा न जाय। प्राण-धारणाकी सार्थकता—जीवनकी कृतार्थता इसीमें है। मरना मैंने सीख लिया है, मेरे जीवनेश्वर! मरण-ऋचाओंकी रचयित्री 'राधा' पाठ पढ़ा गयी है। प्रीतिकी सरिता बनी, अमित वेगसे प्रियतम-सागरकी ओर दौड़ी चली जाती, मतवाली मीराने पाठ पक्का करा दिया है—एकदम पक्का, न जाने कितनी-कितनी बार दुहरवाकर। अब तो कसर केवल मर जानेकी है। मर जाऊँ तो जीवन कृतार्थ हो जाय! यह काम तुम्हें करना होगा, मेरे मरणेश्वर! मुझे मार डालो और मेरा जीवन जीवन बना दो।

सच, मुझे मार डालो, मेरे धनुर्धर! मरे बिना मुझे कल नहीं पड़नेकी। यह काम तुम्हें छोड़ और कौन करेगा। तुम-सा श्रेष्ठ धनुर्धर मैं कहाँ पाऊँगी। कह रहे हो मुस्कराकर, 'किसीसे भी करा ले, मुझमें ही कौन लाल लगे हैं।' लाख कहा करो—मैं बहकावेमें थोड़े आ सकती हूँ। तुम्हारे सुर्खाबके परोंका मुझे भलीभाँति पता है। कण-कणके मर्मकी शास्त्री गीता गुरुआनी पहिले ही मेरे कानमें मन्त्र फूँक गयी है—'रामः शस्त्रभृतामहम्।' (१०।३१) गीताकी शिष्याको भुलावेमें डालना सरल नहीं, भले ही तुम मायापति हुआ करो—समझे?

कैसी विचित्र बात है!—विस्मयसे भरी जाती हूँ। मैं ही क्या, जगत् भरेगा। जिस रावण और रावणके कुलने—एकाध विभीषण-जैसेकी बात जाने दो—सदा आपकी छाँह छीली, कदम-कदमपर आप और आपके कुलसे वैर किया; उसे तो आपने अपने कृपा-बाणोंकी अनन्त बौछार कर अपने लोकमें पठा दिया और इधर जो तुम्हारे गुन गाते, हालसे बेहाल हुई जा रही है, उस अल्हड़-नादान, भोली-भालीकी न-कुछ-सी बातपर कान भी नहीं देते। उसे चुटकियोंमें उड़ा रहे हो।

सचमुच, मेरे राजा, मेरी तो माँग भी अत्यल्प है; फिर भी······मेरे भंडारी होकर भी जाने क्यों तुम दम चुरा रहे हो। मैं करुणाके बाण नहीं चाहती। तुम्हारी कृपाके तीरोंसे मुझे कोई सरोकार नहीं। तुम्हारे मोटे-मोटे अस्त्र-शस्त्र तुम्हें सलामत रहें। मुझे तो, बस, न-कुछ-सा कुछ चाहिये।

'बोल, फिर क्या चाहती है आखिर?' ओह! गनीमत है, पूछा तो आपने। पिघले तो सही! रामके रामत्वमें लहर तो आयी। तुम मुझसे पूछ रहे हो। मेरी पूछ कर रहे हो। मुझ न-कुछको कुछ मान रहे हो। मैं तो इतनेसे ही मरी जा रही हूँ। बताऊँ क्या खाक, कुछ माँग भी तो हो! फिर भी तुम पूछ रहे हो; बताना तो पड़ेगा ही।

तो लो, सुनो, मेरे सर्वस्व! मेरी माँग। आँख मीच लो, कान मेरे होठोंसे सटा लो, तब कहूँगी, यों नहीं! हाँ!—बस, इस तरह। ठीक!—अब सुनो। दिलके तरकससे निकाल, —एकचित्त होकर सुनो, अनमने होकर नहीं—नयनोंकी कमानपर चढ़ाकर चितवनका एक तीर मुझपर छोड़ दो—बस, एक ही। एकाधिक मैं नहीं चाहती। अनन्त अनन्तेच्छुक चाहें। मेरा काम तो एकसे ही बन जायगा। मैं निहाल हो जाऊँगी। तुम्हारा बाण अमोघ है—क्या मैं नहीं जानती? वह एक ही मुझे बींध जायगा। सार्थक हो जायगा मेरा जीवन। मैं मर जाऊँगी अपने रामपर, जी जाऊँगी नित्य जीवनमें।

कह रहे हो—'यह क्या माँग रही है? बड़ा भयानक है यह तीर। इस एकसे ही अनन्त रस-बाणोंकी वर्षा हो जायगी। मर जायेगी तू बेमौत, बुरी तरह—सदा-सदाके लिये। अरी बावली! मर-मरके जियेगी; जी-जीके मरेगी!—कर क्या रही है तू?' चिन्ता न करो, मेरे देव! मरना तो मैं चाह ही रही हूँ। और फिर ऐसा मरना तो कोई निपट मूढ़ गँवारिन भी न छोड़ेगी, जैसा तुम कह रहे हो। मुझे क्या समझ रखा है तुमने? मतिके नाते एकदम गयी-बीती नहीं हूँ। इससे तो उल्टे चार चाँद लग जायँगे मेरे सौभाग्यको। ऐसे अद्भुत जीने-मरनेके घुट-मिलकर एक-जी हुए रसका आस्वादन, सच, भाग्यका छींका टूटनेपर ही सुलभ होता है। सहज कहाँ धरा है यह?

हाँ, तो कहो, करोगे मेरे मनकी? साधोगे मेरी साध? बोलते क्यों नहीं, मेरे धनुर्धर, मेरे धनुषधारी?

भगवान् श्रीरामके जीवनका आदर्श स्वरूप

(लेखक—ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

जिन मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके नाम, रूप, गुण, लीला, प्रेम और प्रभावकी अमृतमयी कथाओंका श्रवण, पठन और मनन ही परम कल्याण करनेवाला है, उन प्रभुके स्वरूपको लक्ष्यमें रखकर, उनके गुण और चरित्रोंको सर्वथा आदर्श मानकर और उनके वचनोंको परमधर्म समझकर जो मनुष्य तदनुसार आचरण करता है, उसकी तो बात ही क्या है; ऐसे पुरुषके दर्शन-स्पर्श-भाषण आदिका सौभाग्य जिस मनुष्यको प्राप्त है, वह भी अत्यन्त धन्य है।

कुछ भाई कहा करते हैं कि 'हम भगवान्‌के नामका जप बहुत दिनोंसे करते हैं; परंतु जितना लाभ बताया जाता है, उतना हमें नहीं हुआ।' इसका उत्तर यह है कि भगवान्‌के नामकी महिमा तो इतनी अपार है कि उसका जितना गान किया जाय, उतना ही थोड़ा है। नाम-जप करनेवालोंको लाभ नहीं दीखता, इसमें प्रधान कारण है दस नामापराधोंको छोड़कर जप न करना। दस* अपराधोंका त्याग करके जप करनेपर नाम-जपका शास्त्रवर्णित फल अवश्य प्राप्त हो सकता है। दस अपराधोंको सर्वथा त्यागकर नाम-जप करनेवालेको प्रत्यक्ष महान् फल प्राप्त होनेमें तो संदेह ही क्या है, केवल श्रद्धा और प्रेम—इन दो बातोंपर ख्याल रखकर जो अर्थपर ध्यान रखते हुए नामका जप करता है, उसे भी प्रत्यक्ष परमानन्दकी प्राप्ति बहुत शीघ्र हो सकती है। नाम-जपके साथ-साथ परमात्माके अमृतमय स्वरूपका ध्यान होते रहनेसे क्षण-क्षणमें उनके दिव्य गुण और प्रभावोंकी स्मृति होती है और वह स्मृति अपूर्व प्रेम और आनन्दको उत्पन्न करती है। यदि यह कहा जाय कि 'रामचरितमानसमें नाम-महिमाके अन्तर्गत यह कहा गया है—

भाय कुभाय अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥
(१।२७।१)

—फिर श्रद्धासहित नाम जपनेसे ही फल हो, ऐसे ही जपनेसे फल न हो, यह बात कैसे हो सकती है ?' तो इसका उत्तर यह है कि 'भावसे, कुभावसे,—किसी प्रकार भी नाम जपनेसे दसों दिशाओंमें कल्याण होता है, इस बातपर तो श्रद्धा होनी ही चाहिये। इसपर भी श्रद्धा न हो, तब वैसा फल क्योंकर हो सकता है ?' इसपर यदि कोई कहे कि 'विचारद्वारा तो हम श्रद्धा करना चाहते हैं, परंतु मन इसे स्वीकार नहीं करता; इसके लिये क्या करें ?' तो इसका उत्तर यह है कि 'बुद्धिके विचारसे विश्वास करके ही नाम-जप करते रहना चाहिये। भगवान्‌पर विश्वास होनेके कारण तथा नाम-जपके प्रभावसे आगे चलकर पूर्ण श्रद्धा और प्रेम अपने-आप ही प्राप्त हो सकते हैं। परंतु यदि अर्थपर ध्यान रखते हुए जप किया जाय तो और भी शीघ्र परमानन्दकी प्राप्ति हो सकती है।

बहुत-से भाई कहते हैं कि 'हमलोग वर्षोंसे मन्दिरोंमें भगवान्‌के दर्शन करने जाते हैं, परंतु हमें विशेष कोई लाभ नहीं हुआ—इसका क्या कारण है ?' इसका उत्तर यह है कि 'विशेष लाभ न होनेमें एक कारण तो है, श्रद्धा और प्रेमकी कमी तथा दूसरा कारण है भगवान्‌के विग्रह-दर्शनका रहस्य न जानना।' मन्दिरमें भगवान्‌के दर्शनका रहस्य है—उनके रूप, लावण्य, गुण, प्रभाव और चरित्रका स्मरण-मनन करके उनके चरणोंमें अपनेको अर्पित कर देना। परंतु ऐसा नहीं होता, इसका कारण रहस्य और प्रभाव जाननेकी त्रुटि ही है। मन्दिरमें जाकर भगवान्‌के स्वरूप और गुणोंका स्मरण करना चाहिये और भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये, जिससे उनके मधुर स्वरूपका चिन्तन सदा बना रहे और उनकी आदर्श लीला तथा आज्ञाके अनुसार आचरण होता रहे। जो ऐसा करते हैं, उन्हें भगवत्कृपासे बहुत ही शीघ्र प्रत्यक्ष शान्ति प्राप्त होती है; देह-त्यागके बाद परमगति मिलनेमें तो संदेह ही क्या है।

श्रीभगवान्‌के अनन्त गुण हैं, उनका वर्णन कोई नहीं कर सकता। वे भगवान् जीवोंपर दया करके अवतार ग्रहण करते हैं और ऐसी लीला करते हैं; जिसके श्रवण, गायन और अनुकरणसे जीवोंका परम कल्याण होता है। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ऐसे ही परम दयालु अवतार हैं।

* १. सत्पुरुषोंकी निन्दा, २. अश्रद्धालुओंके बीच नाम-महिमाका कथन, ३. विष्णु और शंकरमें भेदबुद्धि, ४. वेदोंमें अश्रद्धा, ५. शास्त्रोंमें अश्रद्धा, ६. गुरुमें अश्रद्धा, ७. नाममहिमामें अर्थवादकी कल्पना, ८. शास्त्रनिषिद्ध कर्मका आचरण, ९. नामके बलपर शास्त्रविहित कर्मका त्याग तथा १०. अन्य धर्मोंसे नामकी तुलना—ये दस नामापराध हैं।

इनके गुण, प्रभाव, आचरण, लीला आदिकी महिमा शेष, महेश, गणेश और सरस्वती भी नहीं गा सकते, तब मुझ-सरीखा एक साधारण मनुष्य तो क्या लिख सकता है । तथापि जिन सज्जन महापुरुषोंने अपनी वाणीको पवित्र करनेके लिये महाराजके कुछ गुण शास्त्रोंमें गाये हैं, उन्हींके आधार-बलपर बालककी भाँति मैं भी कुछ लिखनेकी चेष्टा करता हूँ ।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके गुण और चरित्र परम आदर्श थे और उनका इतना प्रभाव था कि जिसकी तुलना नहीं हो सकती । उनकी अपनी तो बात ही क्या है, उनके गुणों और चरित्रोंका प्रभाव उनके शासनकालमें सारी प्रजापर ऐसा विलक्षण पड़ा कि रामराज्यमें त्रेतायुग सत्ययुगसे भी बढ़कर हो गया । रामराज्यके वर्णनमें आता है—

'सब लोग अपने-अपने वर्णाश्रमके अनुकूल वेदमार्गपर चलते हैं और सुख पाते हैं । भय, शोक, रोग तथा दैहिक, दैविक और भौतिक ताप कहीं नहीं हैं । राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोह, झूठ-कपट, प्रमाद-आलस्य आदि दुर्गुण देखनेको भी नहीं मिलते । सब लोग परस्पर प्रेम करते हैं और स्वधर्ममें दृढ़ हैं । धर्मके चारों चरणों—सत्य, शौच, दया और दानसे जगत् परिपूर्ण है । स्वप्नमें भी कहीं पाप नहीं है । स्त्री-पुरुष सभी रामभक्त हैं और सभी परमगतिके अधिकारी हैं । प्रजामें न छोटी उम्रमें किसीकी मृत्यु होती है न कोई पीड़ा है; सभी सुन्दर और नीरोग हैं । दरिद्र, दुखी, दीन और मूर्ख कोई भी नहीं है । सभी नर-नारी दम्भरहित, धर्मपरायण, अहिंसापरायण, पुण्यात्मा, चतुर, गुणवान्, गुणोंका आदर करनेवाले, पण्डित, ज्ञानी और कृतज्ञ हैं'—

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग ॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा । राम राज नहिं काहुहि ब्यापा ॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती । चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती ॥
चारिउ चरन धर्म जग माहीं । पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ॥
राम भगति रत नर अरु नारी । सकल परम गति के अधिकारी ॥
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा । सब सुंदर सब बिरुज सरीरा ॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना ॥
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी । नर अरु नारि चतुर सब गुनी ॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी । सब कृतग्य नहिं कपट सयानी ॥

'सभी उदार, परोपकारी, ब्राह्मणोंके सेवक और तन, मन, वचनसे एकपत्नीव्रती हैं । स्त्रियाँ सभी पतिव्रता हैं । ईश्वरकी भक्ति और धर्ममें सभी नर-नारी ऐसे संलग्न हैं मानो भक्ति और धर्म साक्षात् मूर्तिमान् होकर उनमें निवास कर रहे हों । पशु-पक्षी सभी सुखी और सुन्दर हैं । भूमि सदा हरी-भरी और वृक्षादि सदा फूले-फले रहते हैं । सूर्य-चन्द्रमादि देवता बिना ही माँगे समस्त सुखदायी वस्तुएँ प्रदान करते हैं । सारे देशमें सुख-सम्पत्तिका साम्राज्य छाया हुआ है । श्रीसीताजी और तीनों भाई तथा सारी प्रजा श्रीरामकी सेवामें ही अपना सौभाग्य मानते हैं और श्रीरामजी सदा उनके हितमें लगे रहते हैं ।

रामराज्यकी यह व्यवस्था महान् आदर्श है । आज भी संसारमें जब कोई किसी राज्यकी प्रशंसा करता है या महान् आदर्श राज्यकी बात कहता है तो सबसे ऊँची प्रशंसामें वह यही कहता है कि बस, वहाँ तो 'रामराज्य' है ।

जिनके गुणोंसे प्रभावित राज्यमें प्रजा ऐसी हो, उनके अपने गुण और चरित्र कैसे होंगे, इसका अनुमान करते ही हृदय भक्तिसे गद्गद हो उठता है । भगवान्‌के अनन्त गुणों और चरित्रोंका जरा-सा भी स्मरण-मनन महान् कल्याणकारी और परम पावन है ।

रघुकुलभूषण भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके समान मर्यादा-रक्षक आजतक दूसरा कोई नहीं हुआ—यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं है । श्रीराम साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा थे । वे धर्मकी रक्षा और लोगोंके उद्धारके लिये ही अवतीर्ण हुए थे । किंतु उन्होंने सदा सबके सामने अपनेको एक सदाचारी आदर्श मनुष्य ही सिद्ध करनेकी चेष्टा की । उनके आदर्श लीला-चरित्रोंके पढ़ने, सुनने और स्मरण करनेसे हृदयमें अत्यन्त पवित्र भावोंकी लहरें उठने लगती हैं और मन मुग्ध हो जाता है । उनका प्रत्येक कर्म अनुकरण करनेयोग्य है । श्रीराम सद्गुणोंके समुद्र थे । सत्य, सौहार्द, दया, क्षमा, मृदुता, धीरता, वीरता, गम्भीरता, अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान, पराक्रम, निर्भयता, विनय, शान्ति, तितिक्षा, उपरति, संयम, निःस्पृहता, नीतिज्ञता, तेज, प्रेम, त्याग, मर्यादा-संरक्षण, एकपत्नीव्रत, प्रजारञ्जकता, ब्राह्मण-भक्ति, मातृ-पितृ-भक्ति, गुरु-भक्ति, भ्रातृ-प्रेम, मैत्री, शरणागत-वत्सलता, सरलता,

निर्वैरता, लोकप्रियता, अपिशुनता, बहुश्रुतता, धर्मज्ञता, धर्मपरायणता, पवित्रता आदि-आदि सभी गुणोंका मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराममें पूर्ण विकास था। संसारमें इतने महान् गुण एक व्यक्तिमें कहीं नहीं पाये जाते। वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्ड और अयोध्याकाण्डके आदिमें भगवान् रामके गुणोंका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। उसे अवश्य पढ़ना चाहिये।

माता-पिता, बन्धु-मित्र, स्त्री-पुत्र, सेवक-प्रजा आदिके साथ उनका जैसा असाधारण आदर्श बर्ताव था, उसे स्मरण करते ही मन आनन्दमग्न हो जाता है। श्रीराम-जैसी लोकप्रियता कहीं देखनेमें ही नहीं आती। उनकी लीलाके समय ऐसा कोई भी प्राणी नहीं था, जो श्रीरामके प्रेमपूर्ण मधुर बर्तावसे मुग्ध न हो गया हो।

कैकेयीका रामके साथ अप्रिय एवं कठोर बर्ताव भगवान्‌की इच्छा और देवताओंकी प्रेरणासे लोक-हितार्थ हुआ था। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि कैकेयीको श्रीराम प्रिय नहीं थे; क्योंकि जिस समय मन्थराने रानी कैकेयीको रामके विरुद्ध उकसानेकी चेष्टा की है, उस समय स्वयं कैकेयीने ही उसे यह उत्तर दिया है—

धर्मज्ञो गुणवान् दान्तः कृतज्ञः सत्यवाञ्छुचिः।
रामो राजसुतो ज्येष्ठो यौवराज्यमतोऽर्हति॥
भ्रातॄन् भृत्यांश्च दीर्घायुः पितृवत् पालयिष्यति।
संतप्यसे कथं कुब्जे श्रुत्वा रामाभिषेचनम्॥

× × ×

यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः।
कौसल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूषते बहु॥
राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा।
मन्यते हि यथाऽऽत्मानं तथा भ्रातॄंस्तु राघवः॥

(वा० रा० २। ८। १४-१५, १८-१९)

'कुब्जे! राम धर्मके ज्ञाता, गुणवान्, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, सत्यवादी और पवित्र होनेके साथ ही महाराजके बड़े पुत्र हैं; अतः युवराज होनेका अधिकार उन्हींको है। वे दीर्घजीवी होकर अपने भाइयों और नौकरोंका पिताकी भाँति पालन करेंगे। भला, उनके अभिषेककी बात सुनकर तू इतना जल क्यों रही है?'...... 'मेरे लिये जैसे भरत आदरके पात्र हैं, वैसे ही, बल्कि उससे भी बढ़कर राम हैं। वे कौसल्यासे भी बढ़कर मेरी बहुत सेवा किया करते हैं। यदि रामको राज्य मिल रहा है तो उसे भरतको ही मिला समझ; क्योंकि रामचन्द्र अपने भाइयोंको अपने ही समान समझते हैं।'

कैसा सुन्दर वात्सल्य-प्रेम है! श्रीरामपर कैकेयीका कितना प्रेम, विश्वास और भरोसा था। इससे यह स्पष्ट समझमें आ जाता है कि कैकेयीका कठोर बर्ताव उसके स्वभावसे नहीं हुआ, भगवदिच्छासे ही हुआ था।

श्रीरामकी मातृभक्ति

आपकी मातृभक्ति बड़ी ही ऊँची है। जन्म देनेवाली माता कौसल्याके प्रति तो आपका महान् आदरभाव है ही। विशेष बात तो यह है कि उनसे भी बढ़कर आदर आप उन माता कैकेयीजीका करते हैं, जिन्होंने आपको कठोर वचन कहे तथा वनमें भेजा। माता कौसल्याने आपसे जब कहा कि 'पितासे माताकी आज्ञा बढ़कर होती है, इससे तुम वनमें न जाओ', तब आपने उन्हें माता कैकेयीकी आज्ञा बतलायी। माता कौसल्याने उसे स्वीकार किया और कहा—

जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥

(श्रीरा० च० मा० २। ५५। १)

श्रीभरतजीके साथ जब कैकेयीजी वनमें पहुँचती हैं, तब श्रीरामचन्द्रजी सबसे पहले उन्हींसे मिलते हैं और उन्हें समझा-बुझाकर उनका संकोच दूर करते हैं—

प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभायँ भगति मति भेई॥
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी॥

(वही, २। २४३। ४)

'सबसे पहले रामजी कैकेयी मातासे मिले और अपने सरल स्वभाव तथा भक्तिसे उनकी [तपती हुई] बुद्धिको तर (शीतल) कर दिया। फिर चरणोंमें गिरकर काल, कर्म और विधाताके सिर दोष मढ़कर उनको सान्त्वना दी।'

पञ्चवटीमें एक दिन बात-ही-बातमें लक्ष्मणजीने भरतजीकी बड़ाई करते हुए माता कैकेयीकी निन्दा कर दी। उन्होंने कहा—

भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः।
कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी॥

(वा० रा०, अर० १६। ३५)

'जिसके पति महाराज दशरथजी और पुत्र साधुस्वभाव भरतजी हैं, वह माता कैकेयी ऐसी निर्दय स्वभाववाली कैसे हुई?'

यह सुनते ही भगवान् श्रीरामने कहा—

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन ।
तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु ॥
(वा० रा०, अर० १६ । ३७)

'हे तात ! तुमको मझली माता कैकेयीकी निन्दा कभी नहीं करनी चाहिये । इक्ष्वाकुकुलनाथ भरतकी ही बात करो ।'

और तो क्या, लङ्का-विजयके पश्चात् जब दिव्यधामसे महाराज दशरथजी आये, तब उनसे भी हाथ जोड़कर यह प्रार्थना करते हैं—"हे धर्मज्ञ ! आप मेरी माता कैकेयी और भाई भरतपर प्रसन्न हों । आपने जो कैकेयीको यह शाप दिया था कि 'मैं तुम्हारा पुत्रसहित त्याग करता हूँ', यह भयंकर शाप, हे प्रभो ! पुत्रसहित माता कैकेयीको स्पर्श भी न करे"—

इति ब्रुवाणं राजानं रामः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
कुरु प्रसादं धर्मज्ञ कैकेय्या भरतस्य च ॥
सपुत्रां त्वां त्यजामीति यदुक्ता कैकयी त्वया ।
स शापः कैकयीं घोरः सपुत्रां न स्पृशेत् प्रभो ॥
(वा० रा०, युद्ध० ११९ । २५-२६)

जब आप अयोध्या लौटते हैं, तब भी पहले माता कैकेयीसे मिलते हैं और समझा-बुझाकर उन्हें सुखी करते हैं । इससे बढ़कर मातृभक्तिका और क्या उदाहरण होगा !

पितृभक्ति

मर्यादापुरुषोत्तमकी पितृभक्ति भी अनूठी है । पिताकी स्पष्ट आज्ञाके पालन करनेकी तो बात ही क्या, पिताका संकेतमात्र पाकर आपने प्रसन्नतापूर्वक १४वर्षके लिये अयोध्याका त्याग कर दिया । श्रीदशरथजीने वन-गमनके लिये इन्हें स्पष्ट शब्दोंमें आज्ञा नहीं दी थी । कैकेयी माताके द्वारा ही आपको पिता दशरथकी मौन सम्मतिका पता लगा था, उसीको आपने स्वीकार किया । भारी-से-भारी विपत्तिको सम्पत्ति मानकर उसे सिर चढ़ा लिया । जब माता कैकेयीने बड़ी कठोरताके साथ सब बातें आपको सुनायीं, तब आपने बड़े हर्षके साथ विनयपूर्ण शब्दोंमें उत्साह दिखलाते हुए कहा—

अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके ॥
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे ।
(वा० रा० अयो० १८ । २८,२९)

'हे माता ! मैं महाराज पिताजीकी आज्ञासे आगमें भी कूद सकता हूँ, तीक्ष्ण विष भी खा सकता हूँ और समुद्रमें भी कूद सकता हूँ !'

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥

मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर ।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर ॥

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू । बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू ॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा । प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा ॥
(श्रीरा० च० मा० २ । ४० । ४; २ । ४१, ४१ । १)

माता कौसल्याजीके पास जब आप विदा माँगने गये, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ । उन्होंने अपना दुःख सुनाकर इन्हें रोकना चाहा, तब आपने कहा—

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम ।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम् ॥
(वा० रा०, अयो० २१ । ३०)

'हे माता ! पिताजीकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है । मैं सिरसे प्रणाम करता हूँ, तुम प्रसन्न होओ; मैं वनको जाना चाहता हूँ ।'

इसी प्रकार आपने लक्ष्मणजीको धर्मकी महिमा और बड़ोंकी आज्ञाके पालनका महत्त्व समझाते हुए कहा—

धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम् ।
धर्मसंश्रितमप्येतत् पितुर्वचनमुत्तमम् ॥
सोऽहं न शक्ष्यामि पुनर्नियोगमतिवर्तितुम् ।
पितुर्हि वचनाद् वीर कैकेय्याहं प्रचोदितः ॥
(वा० रा०, अयो० २१ । ४१, ४३)

'लोकमें धर्म ही श्रेष्ठ है, धर्ममें ही सत्य (सत्यस्वरूप परमात्मा) प्रतिष्ठित है । पिताजीका यह वचन भी धर्मसे युक्त है, इसलिये श्रेष्ठ है ।······अतः मैं पिताजीकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकूँगा । हे भाई ! पिताजीके कथनानुसार माता कैकेयीने मुझे वन जानेकी आज्ञा दी है ।'

सत्यः सत्याभिसंधश्च नित्यं सत्यपराक्रमः ।
परलोकभयाद् भीतो निर्भयोऽस्तु पिता मम ॥
(वा० रा०, अयो० २२ । ९)

'हे भाई ! मेरे पिताजी नित्य सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ और सत्यपराक्रमी हैं । वे सत्यच्युत होनेके भयसे, परलोकके डरसे

डर रहे हैं। मेरेद्वारा उनका यह भय दूर हो, वे निर्भय हो जायँ। अर्थात् मैं वनको चला जाऊँ, जिससे उनके वचन मिथ्या न हों।'

आप अपने शोकमग्न पिताजीसे कहते हैं—'महाराज! इस बहुत ही छोटी-सी बातके लिये आपने इतना दुःख पाया! मुझे पहले किसीने यह बात नहीं जनायी। महाराजको इस दशामें देखकर मैंने माता कैकेयीसे पूछा और उनसे सब प्रसङ्ग सुनकर हर्षके मारे मेरे सब अङ्ग शीतल हो गये। अर्थात् मुझे बड़ी शान्ति मिली। पिताजी! इस मङ्गलके समय स्नेहवश सोच करना त्याग दीजिये और हृदयमें हर्षित होकर मुझे आज्ञा दीजिये'—

अति लघु बात लागि दुखु पावा। काहुँ न मोहि कहि प्रथम जनावा॥
देखि गोसाइँहि पूँछिउँ माता। सुनि प्रसंगु भए सीतल गाता॥
मंगल समय सनेह बस सोच परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हियँ कहि पुलके प्रभु गात॥
(श्रीरा० च० मा० ३। ४४। ४; २। ४५)

इतना कहते-कहते प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके सभी अङ्ग पुलकित हो गये। धन्य है आपकी पितृभक्तिको, जिसके कारण स्नेहवश होकर सत्यसंध दशरथजीने आपका स्मरण करते हुए ही शरीरका त्याग कर दिया!

गुरुभक्ति

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी गुरुभक्ति भी आदर्श है। गुरुके प्रति कितनी आदरबुद्धि, कितना विश्वास, उनकी सेवामें कैसी प्रसन्नता और उनके साथ बोलचालमें कैसी विनय होनी चाहिये, इन बातोंका आदर्श श्रीरामकी गुरुभक्तिमें मिलता है। मुनि विश्वामित्रजी आपके शिक्षागुरु हैं। 'विद्यानिधि भगवान्‌ने उनसे विद्या ग्रहण की है। मुनिके साथ श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाई जनकपुरमें पधारते हैं और गुरुकी आज्ञासे नगरकी शोभा देखनेके बहाने नगरनिवासी नर-नारियोंको नेत्रोंका परम लाभ प्रदान करनेके लिये जनकपुरमें जाते हैं। वहाँ कुछ देर हो जाती है, तब मनमें संकोच करते हैं कि गुरुजी कहीं नाराज तो न होंगे। इस प्रसङ्गमें श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मन माहीं॥
जासु त्रास डर कहुँ डर होई। भजन प्रभाउ देखावत सोई॥
... ...

समय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाइ।
गुर पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ॥
(वही, १। २२४। ३-४; २२५)

रातको दोनों भाई नियमपूर्वक मानो प्रेमसे जीते हुए प्रेमपूर्वक श्रीगुरुजीके चरणकमल दबाते हैं—

तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुर पद कमल पलोटत प्रीते॥
(वही, १। २२५। ३)

मुनि श्रीवसिष्ठजी आपके कुलगुरु हैं। आप सब प्रकारसे गुरुकी सेवा करनेमें मानो अपना सौभाग्य समझते हैं। वनमें जब वसिष्ठजी भरतजीका पक्ष लेकर भगवान्‌से कहते हैं—

सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहिअ उपाउ॥
(वही, २। २५७)

—तब भगवान् श्रीभरतजीपर गुरुका स्नेह देखकर भरतजीके भाग्यकी सराहना करते हुए कहते हैं—

जे गुर पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी॥
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू॥
(वही, २। २५८। ३)

'जो मनुष्य गुरुके चरणकमलोंके प्रेमी हैं, वे लोक और वेद दोनोंमें बड़भागी हैं। फिर जिसपर आपका ऐसा स्नेह है, उस भरतके भाग्यका तो कौन बखान कर सकता है।' और इसी प्रसङ्गमें वसिष्ठजीसे फिर कहते हैं—

......................। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ॥
सब कर हित रुख राउरि राखें। आयसु किएँ मुदित फुर भाषें॥
प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई। माथें मानि करौं सिख सोई॥
(वही, २। २५७। १-२)

'हे नाथ! उपाय तो आपके ही हाथ है। आपका रुख रखनेमें और आपकी आज्ञाको सत्य कहकर प्रसन्नतापूर्वक पालन करनेमें ही सबका हित है। पहले तो मुझे जो आज्ञा हो, मैं उसी शिक्षाको सिर चढ़ाकर करूँ!'

एक बार वसिष्ठजी भगवान्‌से उनके चरणकमलोंमें जन्म-जन्मान्तरतक प्रेम बना रहे, यह वर माँगने आते हैं और भगवान्‌से एकान्तमें मिलते हैं, उस समय भी मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् गुरुभक्तिका आदर्श स्थापित करनेके लिये—

अति आदर रघुनायक कीन्हा । पद पखारि पादोदक लीन्हा ॥
(वही, ७ । ४७ । १)

—उनका अत्यन्त आदर करते हैं और चरण धोकर चरणामृत लेते हैं । धन्य !

भ्रातृ-प्रेम

श्रीरामका भ्रातृ-प्रेम भी अतुलनीय था । लड़कपनमें ही श्रीराम अपने भाइयोंके साथ बड़ा प्रेम करते थे । सदा उनकी रक्षा करते और उन्हें प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करते थे । चारों भाई एक साथ ही घोड़ोंपर चढ़कर विचरण किया करते थे । रामचन्द्रजीको जो भी कोई उत्तम भोजन या वस्तु मिलती थी, उसे वे पहले अपने भाइयोंको देकर पीछे स्वयं खाते या उपयोगमें लाते थे । यद्यपि श्रीरामका सभी भाइयोंके साथ समानभावसे ही पूर्ण प्रेम था, उनके मनमें कोई भेद नहीं था, तथापि लक्ष्मणका श्रीरामके प्रति विशेष स्नेह था । वे थोड़ी देरके लिये भी श्रीरामसे अलग रहना नहीं चाहते थे । श्रीरामका वियोग उनके लिये असह्य था, इसी कारण विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षाके लिये भी वे श्रीरामके साथ ही वनमें गये । वहाँ राक्षसोंका विनाश करके दोनों भाई जनकपुरमें पहुँचे । धनुषभङ्ग हुआ । तदनन्तर विवाहकी तैयारी हुई और चारों भाइयोंका विवाह साथ-साथ ही हुआ । विवाहके बाद अयोध्यामें आकर चारों भाई प्रेमपूर्वक रहे ।

कुछ दिनोंके बाद अपने मामाके साथ भरत-शत्रुघ्न ननिहाल चले गये । श्रीराम और लक्ष्मण पिताके आज्ञानुसार प्रजाका कार्य करते रहे । श्रीरामके प्रेमभरे बर्तावसे, उनके गुण और स्वभावसे सभी नगरनिवासी और बाहर रहनेवाले ब्राह्मणादि वर्णोंके मनुष्य मुग्ध हो गये । फिर राजा दशरथने मुनि वसिष्ठकी आज्ञा और प्रजाकी सम्मतिसे श्रीरामके राज्याभिषेकका निश्चय किया । राजा दशरथजीके मुखसे अपने राज्याभिषेकको बात सुनकर श्रीराम माता कौसल्याके महलमें आये । माता सुमित्रा और भाई लक्ष्मण भी वहीं थे । उस समय श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मणसे कहते हैं—

लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधि त्वं वसुंधराम् ।
द्वितीयं मेऽन्तरात्मानं त्वामियं श्रीरुपस्थिता ॥
सौमित्रे भुङ्क्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च ।
जीवितं चापि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये ॥
(वा० रा० २ । ४ । ४३-४४)

'लक्ष्मण ! तुम मेरे साथ इस पृथ्वीका शासन करो । तुम मेरे दूसरे अन्तरात्मा हो । यह राज्यलक्ष्मी तुम्हें ही प्राप्त हुई है । सुमित्रानन्दन ! तुम मनोवाञ्छित भोग और राज्य-फलका उपभोग करो । मैं जीवन और राज्य भी तेरे लिये ही चाहता हूँ ।'

इसके बाद इस लीला-नाटकका पट बदल गया । माता कैकेयीके इच्छानुसार राज्याभिषेक वन-गमनके रूपमें परिणत हो गया । सुमन्त्रके द्वारा बुलाये जानेपर जब श्रीराम महलमें गये और माता कैकेयीसे बातचीत करनेपर उन्हें वरदानकी बात ज्ञात हुई, तब उन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की । तदनन्तर वे माता कौसल्यासे विदा माँगने गये, वहाँ भी बहुत बातें हुईं; परंतु श्रीरामने एक भी शब्द भरत या कैकेयीके विरुद्ध नहीं कहा, बल्कि भरतकी बड़ाई करते हुए माताको धैर्य दिया और कहा कि 'भरत मेरे ही समान आपकी सेवा करेंगे ।' उसी समय सीताको घरपर रहनेके लिये समझाते हुए वे कहते हैं—

भ्रातृपुत्रसमौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः ।
त्वया भरतशत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम ॥
(वा० रा० २ । २६ । ३३)

'सीते ! मेरे भाई भरत-शत्रुघ्न मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं । अतः तुम्हें उनको अपने भाई और पुत्रके समान या उससे भी बढ़कर प्रिय समझना चाहिये ।'

वन-गमनका समाचार सुनकर लक्ष्मणके मनमें भारी दुःख और क्रोध हुआ । उसे भी श्रीरामने नीति और धर्मसे परिपूर्ण बहुत ही मधुर और कोमल वचनोंसे शान्त किया । फिर जब लक्ष्मणने साथ चलनेके लिये प्रार्थना की, उस समय उनको वहीं रहनेके लिये समझाते हुए श्रीरामने कहा है—

स्निग्धो धर्मरतो धीरः सततं सत्पथे स्थितः ।
प्रियः प्राणसमो वश्यो विधेयश्च सखा च मे ॥
(वा० रा० २ । ३१ । १०)

'लक्ष्मण ! तुम मेरे स्नेही, धर्म-परायण, धीर और सदा सन्मार्गमें स्थित रहनेवाले हो । मुझे प्राणोंके समान प्रिय, मेरे वशमें रहनेवाले, आज्ञापालक और सखा हो ।'

बहुत समझानेपर भी जब लक्ष्मणने अपना प्रेमाग्रह नहीं छोड़ा, तब भगवान्ने उनको संतुष्ट करनेके लिये अपने साथ ले जाना स्वीकार किया । वनमें रहते समय भी श्रीरामचन्द्रजी सब प्रकारसे लक्ष्मण और सीताको सुख पहुँचाने तथा प्रसन्न रखनेकी चेष्टा किया करते थे

भरतके सेनासहित चित्रकूट आनेका समाचार पाकर जब श्रीराम-प्रेमके कारण लक्ष्मण क्षुब्ध होकर भरतके प्रति न कहने योग्य शब्द कह बैठे, तब श्रीरामने भरतकी प्रशंसा करते हुए कहा—

'लक्ष्मण! मैं सच्चाईसे अपने आयुधकी शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं धर्म, अर्थ, काम और सारी पृथ्वी—सब कुछ तुम्हीं लोगोंके लिये चाहता हूँ। लक्ष्मण! मैं राज्यको भी भाइयोंके संग्रह और सुखके लिये ही चाहता हूँ तथा मेरे विनयी भाई! भरत, तुम और शत्रुघ्नको छोड़कर यदि मुझे कोई भी सुख होता हो तो उसमें आग लग जाय। मैं समझता हूँ कि मेरे वनमें आनेकी बात कानमें पड़ते ही भरतका हृदय स्नेहसे भर गया है, शोकसे उसकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयी हैं; अतः वह मुझे देखनेके लिये आ रहा है। उसके आनेका कोई दूसरा कारण नहीं है।'

इसके सिवा वहाँ यह भी कहा है कि 'भरत मनसे भी मेरे विपरीत आचरण नहीं कर सकता। यदि तुम्हें राज्यकी इच्छा है तो मैं भरतसे कहकर दिला दूँ।'

लक्ष्मणका भरतके प्रति जो संदेह था, वह उपर्युक्त बातें सुनते ही नष्ट हो गया।

उसके बाद जब भरत आश्रममें पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें लोट गये, तब श्रीरामने उनको देखा। अपने हाथोंसे उठाकर भरतका हृदयसे आलिङ्गन किया। उनको गोदमें बैठाकर और उनका सिर सूँघकर आदरपूर्वक सब समाचार पूछे और कहा—'भाई! तुम चीर और जटा धारण करके यहाँ क्यों आये?' इसपर भरतने श्रीरामको अयोध्या लौटानेकी बहुत चेष्टा की। भरत तथा रामके प्रेम और बर्तावको देखकर सारा समाज चकित हो गया। अन्तमें जब भरतने यह बात समझ ली कि श्रीराम अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ेंगे, तब उन्होंने श्रीरामसे उनकी पादुकाएँ माँगीं। उनकी प्रार्थना स्वीकार करके श्रीरामने अपनी पादुका देकर उनको विदा कर दिया। वे उन पादुकाओंको आदरपूर्वक सिरपर धारण करके अयोध्या लौट आये। उन पादुकाओंका राज्याभिषेक करके उनके आज्ञानुसार राज्यका शासन करने लगे और स्वयं श्रीरामकी ही भाँति मुनिवेष धारण करके नन्दिग्राममें रहे।

उसके बाद सीता-हरण हुआ। लङ्कापर चढ़ाई की गयी। रावणके साथ भयानक युद्ध आरम्भ हो गया। वहाँ एक दिन रावणके शक्ति-बाणसे लक्ष्मणके मूर्च्छित हो जानेपर श्रीरामने जैसी विलापलीला की, उससे छोटे भाई लक्ष्मणपर उनका कितना प्रेम था, इसका पता चलता है। वहाँ श्रीरामने कहा है—

यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युतिः।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्॥
इष्टबन्धुजनो नित्यं मां स नित्यमनुव्रतः।
इमामवस्थां गमितो राक्षसैः कूटयोधिभिः॥
(वा० रा० ६। १०१। १३-१४)

'महातेजस्वी लक्ष्मणने वन आते समय जिस प्रकार मेरा अनुसरण किया था, उसी प्रकार अब मैं भी इसके साथ यमलोकको जाऊँगा। यह सदा-सर्वदा ही मेरा प्रिय बन्धु और अनुयायी रहा है। हाय! कपटयुद्ध करनेवाले राक्षसोंने आज इसे इस अवस्थामें पहुँचा दिया।'

जो भाई अपने लिये सब कुछ छोड़कर मरनेको और सब तरहका कष्ट सहनेको तैयार हो, उसके लिये चिन्ता और विलाप करना तो उचित ही है; परंतु श्रीरामने तो इस प्रसङ्गमें विलापकी पराकाष्ठा दिखाकर भ्रातृ-प्रेमकी बड़ी ही सुन्दर शिक्षा दी है।

श्रीहनुमान्‌जीद्वारा संजीवनी-बूटी मँगवाकर सुषेणने लक्ष्मणको स्वस्थ कर दिया। युद्धमें रावण मारा गया। लङ्कापर विजय हो गयी। भगवान् राम अयोध्या लौटनेके लिये तैयार हुए। उस समय विभीषणने श्रीरामको बड़े आदर और प्रेमसे विनयपूर्वक कुछ दिन रुकनेके लिये कहा। तब श्रीरामचन्द्रजीने उत्तर दिया—

न खल्वेतन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर।
तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः॥
मां निवर्तयितुं योऽसौ चित्रकूटमुपागतः।
शिरसा याचितो यस्य वचनं न कृतं मया॥
(वा० रा० ६। १२१। १८-१९)

'राक्षसेश्वर! मैं तुम्हारी बात न मानूँ—ऐसा कदापि सम्भव नहीं; परंतु मेरा मन उस भाई भरतसे मिलनेके लिये छटपटा रहा है, जिसने चित्रकूटतक आकर मुझे लौटा ले जानेके लिये सिर झुकाकर प्रार्थना की थी और मैंने जिसके वचनोंको स्वीकार नहीं किया था। [उस प्राणप्यारे भाई भरतसे मिलनेमें मैं अब कैसे विलम्ब कर सकता हूँ!]'—इत्यादि।

इसके बाद विमानमें बैठकर श्रीराम सीता, लक्ष्मण और सब मित्रोंके साथ अयोध्या पहुँचे। वहाँ भी भरतसे मिलते समय उन्होंने अद्भुत भ्रातृ-प्रेम दिखलाया है।

राज्य करते समय भी श्रीराम हर एक कार्यमें अपने भाइयोंका परामर्श लिया करते थे। जिस किसी प्रकारसे उनको सुख पहुँचाने और प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करते थे।

एक समय लवणासुरके अत्याचारोंसे घबराये हुए ऋषियोंने उसे मारनेके लिये भगवान्‌से प्रार्थना की। भगवान्‌ने सभामें प्रश्न किया कि 'लवणासुरको कौन मारेगा? किसके जिम्मे यह काम रक्खा जाय?' तुरंत ही भरतने उसे मारनेके लिये उत्साह प्रकट किया। इसपर शत्रुघ्नने कहा कि 'भरतजीने तो और भी बहुत-से काम किये हैं, आपके लिये भारी-से-भारी कष्ट सहन किये हैं। फिर भरतजी बड़े भी हैं, मुझ सेवकके रहते हुए यह परिश्रम इनको नहीं देना चाहिये। इस कार्यके लिये तो मुझे ही आज्ञा मिलनी चाहिये।' तब श्रीरामजीने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके कहा कि 'वहाँका राज्य भी तुम्हींको भोगना पड़ेगा, मेरी आज्ञाका प्रतिवाद न करना।' शत्रुघ्नको राज्याभिषेककी बात बहुत बुरी लगी। उन्होंने बहुत पश्चात्ताप किया। परंतु रामाज्ञा समझकर उसे स्वीकार करना पड़ा। इस प्रकार वचनोंमें बाँधकर उनकी इच्छा न रहनेपर भी छोटे भाईको राज्य-सुख देना राम-सरीखे बड़े भाईका ही काम था।

इसके बाद प्रतिज्ञामें बँध जानेके कारण जब आपको भाई लक्ष्मणका त्याग करना पड़ा, उस समय श्रीरामके लिये लक्ष्मणका वियोग असह्य हो गया। वहाँपर कविने कहा है—

विसृज्य लक्ष्मणं रामो दुःखशोकसमन्वितः।
पुरोधसं मन्त्रिणश्च नैगमांश्चेदमब्रवीत्॥
अद्य राज्येऽभिषेक्ष्यामि भरतं धर्मवत्सलम्।
अयोध्यायाः पतिं वीरं ततो यास्याम्यहं वनम्॥
प्रवेशयत सम्भारान् मा भूत् कालात्ययो यथा।
अद्यैवाहं गमिष्यामि लक्ष्मणेन गतां गतिम्॥
(वा० रा० ७। १०७। १—३)

"लक्ष्मणका त्याग करके श्रीराम दुःख और शोकमें निमग्न हो गये तथा पुरोहित, मन्त्री और शास्त्रज्ञोंको बुलाकर उनसे कहने लगे—'मैं आज ही धर्मपर प्रेम रखनेवाले वीर भरतका अयोध्याके राज्यपर अभिषेक करूँगा और उसके बाद वनमें जाऊँगा। शीघ्र ही समस्त सामग्रियाँ इकट्ठी की जायँ, देरी न हो; क्योंकि मैं आज ही जिस जगह लक्ष्मण गया है, वहाँ जाना चाहता हूँ।'

इसपर भरतने राज्यकी निन्दा करते हुए कहा—'मैं आपके बिना पृथ्वीका राज्य तो क्या, कुछ भी नहीं चाहता; अतः मुझे भी साथ ही चलनेकी आज्ञा दीजिये।' इसके बाद भरतके कथनानुसार शत्रुघ्नको भी मथुरासे बुलाया गया और मनुष्य-लीलाका नाटक समाप्त करके अपने भाइयों-सहित श्रीराम परमधाम पधार गये।

श्रीरामके भ्रातृ-प्रेमका यह केवल दिग्दर्शनमात्र है। भाइयोंके लिये ही राज्य ग्रहण करना, भाई भरतके राज्याभिषेकके प्रस्तावसे परमानन्दित होकर अपना हक छोड़ देना, जिसके कारण राज्याभिषेक रुका, उस भाईकी माता कैकेयीकी पहलेकी भाँति ही भक्ति करना; मुक्तकण्ठसे भरतका गुण-गान करना, भरतपर शङ्का और क्रोध करनेपर लक्ष्मणको समझाना, लक्ष्मणके शक्ति लगनेपर प्राणत्याग करनेके लिये तैयार हो जाना, समय-समयपर भाइयोंको पवित्र शिक्षा देना, स्वार्थ छोड़कर सबपर प्रेम करना, शत्रुघ्नसे जबर्दस्ती राज्य करवाना, लक्ष्मणके वियोगको न सहकर परमधाममें पधार जाना—इत्यादि श्रीरामके आदर्श भ्रातृ-प्रेमपूर्ण कार्योंसे हम सबको यथायोग्य शिक्षा लेनी चाहिये।

पत्नीप्रेम और एकपत्नीव्रत

भगवान् श्रीरामका सीताजीके प्रति जो आदर्श प्रेम था, वह उनके महान् एकपत्नीव्रतका साक्षात् उदाहरण है। सीताजीकी प्रसन्नताके लिये ही आप उनको वनमें साथ ले जाते हैं और वहाँ नाना प्रकारके इतिहास, धर्मशास्त्र आदि सुनाकर उनको सुख पहुँचाते हैं। जब रावणद्वारा सीताजीका हरण हो जाता है, तब साधारण मानवकी तरह 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' (गीता ४। ११) (जो मुझे जैसे भजता है, उसको मैं वैसे ही भजता हूँ)—इस नीतिके अनुसार भाँति-भाँतिसे विलाप करते हुए अपनी विरह-वेदना प्रकट करते हैं—यहाँतक कि उनकी उस विरहदशाको देखकर जगज्जननी सतीतकको मोह हो जाता है। श्रीरामजी उन्मत्तकी भाँति—

हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता॥
(रा० च० मा० ३। २९। ४)

—आदि पुकारते हुए लताओं, वृक्षों, पक्षियों, पशुओं और भ्रमरोंकी पंक्तियोंसे सीताजीका पता पूछते हैं। आकाशपथसे

गिराये हुए सीताजीके वस्त्राभूषण जब सुग्रीवजी आपको देते हैं, तब आप उन्हें हृदयसे लगाकर चिन्ता करने लगते हैं—

'पट उर लाइ सोच अति कीन्हा ॥'

(वही, ४ । ४ । ३)

जब हनुमान्‌जी लङ्का जाते हैं, तब उनके द्वारा आप जो संदेश भेजते हैं, वह तो इतना सुन्दर और इतना ऊँचा है कि उसमें प्रेमका समस्त स्वरूप ही आ जाता है । वे कहते हैं—'हे प्रिये ! मेरे और तुम्हारे प्रेमका तत्त्व जानता है एक मेरा मन और वह मन सदा रहता है तुम्हारे पास ! बस, इतनेमें ही मेरे प्रेमका सार समझ लो !'

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एकु मनु मोरा ॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं । जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं ॥

(वही, ५ । १४ । ३—४)

महारानी जानकीजीके पातिव्रत-धर्मके गौरवको और भी उज्ज्वल करनेके लिये प्रजारञ्जनके व्याजसे जब राम उन्हें वनमें भेज देते हैं, तब पीछेसे अश्वमेधयज्ञमें सीताजीकी स्वर्ण-प्रतिमा बनवाकर आप अपने एकपत्नीव्रतका बड़ा ही पवित्र आदर्श उपस्थित करते हैं । धन्य !

सखाओंसे प्रेम

यों तो भगवान् सभीके परम सुहृद् तथा स्वाभाविक ही मित्र हैं; परंतु लीलामें वे मित्रोंके साथ कैसा व्यवहार करते हैं—यहाँ आज यही देखना है । मनुष्योंको तो सभी अपना मित्र बनाते हैं, भगवान्‌ने राक्षस और वानर-भालुओंतकको अपना सखा बनाकर उन्हें धन्य किया । हनुमान्‌जीकी प्रेरणासे दुःखमें डूबे हुए सुग्रीवको अग्निकी साक्षी देकर आप अपना मित्र बनाते हैं और उनका दुःख सुनते ही आपकी भुजाएँ फड़क उठती हैं और आप कहते हैं—

सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान ।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान ॥

(वही, ४ । ६)

तदनन्तर मित्रका धर्म बतलाते हुए आप कहते हैं—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना । मित्रक दुख रज मेरु समाना ॥
जिन्ह कें असि मति सहज न आई । ते सठ कत हठि करत मिताई ॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा । गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा ॥
देत लेत मन संक न धरई । बल अनुमान सदा हित करई ॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा । श्रुति कह संत मित्र गुन एहा ॥

(वही, ४ । ६ । १—३)

मित्रके ये लक्षण सदा ध्यानमें रखनेयोग्य हैं । इसके बाद भगवान् सुग्रीवको आश्वासन देते हुए कहते हैं—

सखा सोच त्यागहु बल मोरें । सब बिधि घटब काज मैं तोरें ॥

(वही, ४ । ६ । ५)

मित्र सुग्रीवके सुखके लिये बड़ा भारी उलाहना सहकर भी भगवान् उसके शत्रु भाई वालीका वध कर डालते हैं और सुग्रीवकी मैत्रीको निबाहते हैं ।

निषादको सखा बनाकर इतना ऊँचा बना दिया कि स्वयं वसिष्ठजी महाराज उसे हृदयसे लगाकर मिलने लगे—

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू । कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू ॥
रामसखा रिषि बरबस भेंटा । जनु महि लुठत सनेह समेटा ॥

(वही, २ । २४२ । ३)

जब भगवान् स्वयं किसी प्रकारका विचार न करके सखा-भावसे निषादको हृदयसे लगाकर मिलते हैं, तब वसिष्ठजी इस प्रकार मिले, इसमें क्या आश्चर्य है—

हिंसारत निषाद तामस बपु पसु समान बनचारी ।
भेंट्यो हृदयँ लगाइ प्रेमबस नहिं कुल जाति बिचारी ॥

(विनयपत्रिका १६६ । ३)

लङ्काविजय करके अयोध्या लौटनेपर अपने इन वानर-भालु और विभीषणादि सखाओंको बुलाकर उनसे गुरुजीके चरणोंमें प्रणाम कराते हैं और परिचय देते हुए आप कहते हैं—

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे । भए समर सागर कहँ बेरे ॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे । भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे ॥

(श्रीरा० च० मा० ७ । ७ । ४)

राज्याभिषेकके पश्चात् अपने इन सब मित्रोंको बुलाकर आपने कहा—

अनुज राज संपति बैदेही । देह गेह परिवार सनेही ॥
सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना । मृषा न कहउँ मोर यह बाना ॥

(वही, ७ । १५ । ३-४)

फिर वस्त्राभूषण मँगवाकर तीनों भाइयोंसहित स्वयं भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने हाथोंसे उनको वस्त्राभूषण पहनाकर विदा किया ।

भगवान्‌के उन बालसखाओंकी महिमा तो कह ही कौन सकता है, जिन्होंने श्रीअवधपुरीमें चारों भाइयोंके साथ खेलने-खानेका सौभाग्य प्राप्त किया था।

प्रजावत्सलता

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने सुन्दर बर्ताव और वत्सलतापूर्ण क्रियाओंसे प्रजाके कितने अधिक प्रेमभाजन हो गये थे, इसका पता तब लगता है, जब उनके वनगमनकी तैयारी होती है। राज्याभिषेकके उत्सवसे तमाम प्रजामें आनन्द छा रहा है। प्रजामें हर्षका सागर उमड़ उठता है। अचानक दृश्य बदल जाता है। श्रीराम लक्ष्मण और सीताजीको साथ लेकर मुनिवेषमें वनको पधार रहे हैं। प्रजा इस दृश्यको देख न सकी। प्रजा उनके विरहदुःखको सहनेमें अपनेको असमर्थ पाकर उनके साथ हो ली। श्रीरघुनाथजीने उन्हें बहुत प्रकारसे समझाया, परंतु प्रेमवश कोई भी अयोध्यामें रहना नहीं चाहता।

सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं। राम लखन सिय बिनु सुखु नाहीं॥
जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू॥
(वही, २। ८३। ३)

यह निश्चय करके बालक और वृद्धोंको घरोंमें छोड़कर सब लोग उनके साथ हो लिये—

बालक बृद्ध बिहाइ गृहँ लगे लोग सब साथ।
(वही, २। ८४)

आखिर श्रीरामजीको उन्हें सोये छोड़कर ही आगे बढ़ना पड़ा। जब श्रीभरतजी चित्रकूट जाने लगे, तब प्रजामें श्रीरामदर्शनकी इतनी उत्सुकता बढ़ी कि घरोंकी रखवालीके लिये किसीने घर रहना स्वीकार नहीं किया। जिसको घर रहनेके लिये कहा जाता, वही समझता मानो मेरी गर्दन कट रही है—

जेहि राखहिं रहु घर रखवारी। सो जानइ जनु गरदनि मारी॥
(वही, २। १८४। ३)

प्रायः लोग भरतजीके साथ चित्रकूट गये।

जब श्रीरघुनाथजी लङ्का-विजय करके लौटे, तब तो प्रजाके हर्षका पार न रहा। समाचार पाते ही वे सब-के-सब नर-नारी, जो जैसे बैठे थे, वैसे ही उठकर दौड़ पड़े। श्रीभगवान्‌को लक्ष्मणजी और जानकीजीसहित देखकर सब अयोध्यावासी हर्षित हो गये। उनकी वियोगजनित विपत्ति नष्ट हो गयी। सब लोगोंको प्रेमविह्वल तथा मिलनेके लिये अत्यन्त आतुर देखकर भगवान् श्रीरामजीने एक चमत्कार किया। उसी समय कृपालु श्रीरामजी असंख्य रूपोंमें प्रकट हो गये और सबसे एक ही साथ यथायोग्य मिले। श्रीरघुवीरजीने कृपा-दृष्टिसे देखकर सब नर-नारियोंको शोकरहित कर दिया। इस प्रकार भगवान् क्षणमात्रमें सबसे मिल लिये। शिवजी कहते हैं—हे उमा! यह रहस्य किसीने नहीं जाना—

प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी। जनित बियोग बिपति सब नासी॥
प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥
अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहि कृपाला॥
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी। किए सकल नर नारि बिसोकी॥
छन महिं सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहुँ न जाना॥
(वही, ७। ५। २-४)

सच पूछिये तो प्रजाके सुख और संतोषके लिये ही श्रीरामजीने राज्यपद स्वीकार किया। वास्तवमें यही आदर्श है। जो प्रजाके सुखके लिये ही राजा बनता है, वही राजा यथार्थ राजा है। अवधवासियोंके भाग्यका तो कहना ही क्या है, जिनके प्रेम-परवश स्वयं भगवान् राजा बने हैं। शिवजी कहते हैं—

उमा अवधवासी नर नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानंद घन रघुनायक जहँ भूप॥
(वही, ७। ४७)

आपकी प्रजावत्सलताका एक ऐसा उदाहरण है, जिसकी तुलना जगत्‌में कहीं नहीं है। जिन सीताजीके लिये आप वन-वनमें विलाप करते भटके, जिनके लिये रावणसे घोर युद्ध किया, उन्हीं सीताजीको निर्दोष समझते हुए भी केवल प्रजारञ्जनके लिये हृदयको अत्यन्त कठोर बनाकर आपने वनमें भेज दिया।

भक्तवत्सलता

भक्तवत्सलता तो भगवान्‌का विख्यात बाना ही है। ऐसा कोई काम नहीं, जो भगवान् अपने भक्त या सेवकके लिये नहीं कर सकते। वस्तुतः भगवान्‌के अवतारका प्रधान हेतु भक्तोंपर अनुग्रह करना ही होता है—'परित्राणाय साधूनाम्' (गीता ४। ८) जब भक्त भगवान्‌से मिलनेके लिये व्याकुल होकर उन्हें पुकारता है, तब भगवान्‌को स्वयं पधारना पड़ता है! दण्डकारण्यमें सुतीक्ष्ण नामक अगस्त्यजीके शिष्य एक मुनि रहते थे। वे श्रीरामजीके बड़े ही अनन्य भक्त थे। उन्हें

समाचार मिला कि भगवान् श्रीराम दण्डकवनमें आये हैं। वे दर्शनके लिये व्याकुल हो गये और पागलकी भाँति उठ दौड़े। वे प्रेममें ऐसे मग्न हो गये कि शरीरकी सुधितक भूल गये। श्रीशिवजी कहते हैं—

निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी॥
दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई॥
(वही, ३। ९। ५-६)

भक्तवत्सल भगवान् अपने प्रिय भक्तकी यह दशा वृक्षकी ओटसे देख-देखकर मुग्ध हो रहे थे। मुनिका अत्यन्त प्रेम देखकर भगवान् उनके हृदयमें प्रकट हो गये। मुनि हृदयमें भगवान् अवधनाथके दर्शन पाकर पुलकित हो गये और रास्तेमें ही बैठ गये। भगवान् समीप आकर मुनिको ध्यानसे जगाते हैं, परंतु ध्यानानन्दमें मतवाले मुनि जागते ही नहीं। अब तो श्रीरामजीने उनके हृदयसे अपना श्रीरामरूप हटा लिया। तब मुनिने व्याकुल होकर आँखें खोलीं। देखते हैं—नेत्रोंके सामने सुखधाम राम उपस्थित हैं। मुनि कृतार्थ हो गये और प्रेममग्न होकर चरणोंपर गिर पड़े—

आगें देखि राम तन स्यामा। सीता अनुज सहित सुख धामा॥
परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी। प्रेम मगन मुनिवर बड़भागी॥
(वही, ३। ९। १०-११)

इसी प्रकार भगवान्ने शबरीजीके यहाँ स्वयं पधारकर उनकी अभिलाषा पूर्ण की और—

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥
(वही, ३। ३४। ३)

—कहकर उन्हें बड़ाई दी। उनके प्रेमभरे बेरोंको खा-खाकर आप अघाये ही नहीं। काकभुशुण्डिजीको तो प्रत्येक अवतारमें ही वे अपनी परम मधुर बाललीलाका आनन्द प्रदान करते हैं। धन्य हैं।

श्रीहनुमान्‌जीका तो आप अपनेको ऋणी मानते हैं। कहते हैं—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥
(वही, ५। ३१। ३-४)

वाल्मीकि-रामायणमें भगवान्ने हनुमान्से कहा है—

चरिष्यति कथा यावदेषा लोके च मामिका।
तावत्ते भविता कीर्तिः शरीरेऽप्यसवस्तथा।
लोका हि यावत्स्थास्यन्ति तावत्स्थास्यन्ति मे कथाः॥
एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥
मदङ्गे जीर्णतां यातु यत्त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्॥
(७। ४०। २१-२४)

'हनुमान्! इस लोकमें जबतक मेरी यह कथा चालू रहेगी, तबतक तेरी कीर्ति और तेरे शरीरमें प्राण रहेंगे। और जबतक जगत् रहेगा, तबतक मेरी कथा रहेगी। तेरे एक-एक उपकारके बदलेमें मैं अपने प्राण दे दूँ तो भी तेरे शेष उपकारोंके लिये तो मैं तेरा ऋणी ही बना रहूँगा। हनुमान्! तूने मेरा जो कुछ उपकार किया है, वह मेरे शरीरमें ही जीर्ण हो जाय; ऐसा अवसर ही न आये, जब तुझे अपने उपकारोंका बदला पानेयोग्य पात्र बनना पड़े; क्योंकि आपत्ति पड़नेपर ही मनुष्य प्रत्युपकारका पात्र होता है।'

शरणागतवत्सलता

यों तो श्रीरामकी शरणागतवत्सलताका वर्णन वाल्मीकीय रामायणमें स्थान-स्थानपर आया है; किंतु जिस समय रावणसे अपमानित होकर विभीषण भगवान् रामकी शरणमें आया है, वह प्रसङ्ग तो भक्तोंके हृदयमें उत्साह और आनन्दकी लहरें उत्पन्न कर देता है।

धर्मयुक्त और न्यायसंगत बात कहनेपर भी जब रावणने विभीषणकी बात नहीं मानी, बल्कि भरी सभामें उसका अपमान कर दिया, तब विभीषण वहाँसे निराश और दुखी होकर श्रीरामकी शरणमें आया। उसे आकाश-मार्गसे आते देखकर सुग्रीवने सब वानरोंको सावधान होनेके लिये कहा। इतनेमें ही विभीषणने वहाँ आकर आकाशमें ही खड़े-खड़े पुकार लगायी कि 'मैं दुरात्मा पापी रावणका छोटा भाई हूँ। मेरा नाम विभीषण है। मैं रावणसे अपमानित होकर भगवान् श्रीरामकी शरणमें आया हूँ। आपलोग समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाले श्रीरामको मेरे आनेकी सूचना दें।'

यह सुनकर सुग्रीव तुरंत ही भगवान् रामके पास गये और राक्षस-स्वभावका वर्णन कर श्रीरामको सावधान

करते हुए रावणके भाई विभीषणके आनेकी सूचना दी। साथ ही यह भी कहा कि 'अच्छी तरह परीक्षा करके, आगे-पीछेकी बात सोचकर जैसा उचित समझें, वैसा करें।' इसी प्रकार वहाँ बैठे हुए दूसरे वंदरोंने भी अपनी-अपनी सम्मति दी। सभीने विभीषणपर संदेह प्रकट किया, पर श्रीहनुमान्जी-ने बड़ी नम्रताके साथ बहुत-सी युक्तियोंसे विभीषणको निर्दोष और सचमुच शरणागत समझनेकी सलाह दी। इस प्रकार सबकी बातें सुननेके अनन्तर भगवान् श्रीरामने कहा—

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथंचन।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम्॥
(वा० रा० ६। १८। ३)

'मित्रभावसे आये हुए विभीषणका मैं कभी त्याग नहीं कर सकता। यदि उसमें कोई दोष हो तो भी उसे आश्रय देना सज्जनोंके लिये निन्दित नहीं है।'

इसपर भी सुग्रीवको संतोष नहीं हुआ। उसने शङ्का और भय उत्पन्न करनेवाली बहुत-सी बातें कहीं। तब श्रीरामने सुग्रीवको फिर समझाया—

पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान्।
अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर॥
× × ×
बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम्।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परंतप॥
× × ×
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम्॥
(वा० रा० ६। १८। २३, २७, ३३-३४)

'वानरगणाधीश! यदि मैं चाहूँ तो पृथ्वीभरके उन पिशाच, दानव, यक्ष और राक्षसोंको अँगुलीके अग्रभागसे ही मार सकता हूँ [अतः डरनेकी कोई बात नहीं है]...परंतप! यदि कोई शत्रु भी हाथ जोड़कर दीनभावसे शरणमें...आकर अभय-याचना करे तो दया-धर्मका पालन करनेके लिये उसे नहीं मारना चाहिये।...मेरा तो यह विरद है कि जो एक बार भी 'मैं आपका हूँ'—यों कहता हुआ शरणमें आकर मुझसे रक्षा चाहता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे निर्भय कर देता हूँ। वानरश्रेष्ठ सुग्रीव! [उपर्युक्त नीतिके अनुसार] मैंने इसे अभय दे दिया, अतः तुम इसे ले आओ—चाहे यह विभीषण हो या स्वयं रावण ही क्यों न हो।'

बस, फिर क्या था। भगवान्की बात सुनकर सब मुग्ध हो गये और भगवान्के आज्ञानुसार तुरंत ही विभीषणको ले आये। विभीषण अपने मन्त्रियोंसहित आकर श्रीरामके चरणोंमें गिर पड़ा और कहने लगा—'भगवन्! मैं सब कुछ छोड़कर आपकी शरणमें आया हूँ। अब मेरा राज्य, सुख और जीवन—सब कुछ आपके ही अधीन हैं।' इसके बाद श्रीरामने प्रेमभरी दृष्टि और वाणीसे उसे धैर्य दिया और लक्ष्मणसे समुद्रका जल मँगाकर उसका वहीं लङ्काके राज्यपर अभिषेक कर दिया।

कृतज्ञता

वास्तवमें देखा जाय तो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर थे। उनकी अपार शक्ति थी, वे स्वयं सब कुछ कर सकते थे और करते थे; उनका कोई क्या उपकार कर सकता था। तथापि अपने आश्रितजनोंके प्रेमकी वृद्धिके लिये उनकी साधारण सेवाको भी बड़े-से-बड़ा रूप देकर आपने अपनी कृतज्ञता प्रकट की है।

सीताको खोजते-खोजते जब श्रीराम रावणद्वारा युद्धमें मारकर गिराये हुए जटायुकी दशा देखते हैं, उस समयका वर्णन है—

निकृत्तपक्षं रुधिरावसिक्तं तं गृध्रराजं परिगृह्य राघवः।
क्व मैथिली प्राणसमा गतेति विमुच्य वाचं निपपात भूमौ॥
(वा० रा० ३। ६७। २९)

"जिसके पंख कटे हुए थे; समस्त शरीर लहू-लुहान हो रहा था, ऐसे गीधराज जटायुको हृदयसे लगाकर श्रीरघुनाथजी 'प्राणप्रिया जानकी कहाँ गयी?' इतना कहकर पृथ्वीपर गिर पड़े।"

फिर रावणका परिचय देते और उसके द्वारा सीताके हरणकी बात कहते-कहते ही जब पक्षिराजके प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं, तब भगवान् श्रीराम स्वयं अपने हाथोंसे उसकी दाह-क्रिया करते हैं। कैसी अद्भुत कृतज्ञता है!

इसी तरह और भी बहुत-से प्रसङ्ग हैं। वानरों, राजाओं, ऋषियों और देवताओंसे बात करते समय आपने जगह-जगहपर कहा है कि 'आपलोगोंकी सहायता और अनुग्रहसे ही मैंने रावणपर विजय प्राप्त की है।'

जब श्रीहनुमान्‌जी सीताजीका पता लगाकर भगवान् रामसे मिले हैं, उस समय उनके कार्यकी बार-बार प्रशंसा करके अन्तमें रघुनाथजीने यहाँतक कहा है कि 'हनुमान् ! जानकीका पता लगाकर तुमने मुझे, समस्त रघुवंशको और लक्ष्मणको भी बचा लिया। इस प्रिय कार्यके बदलेमें कुछ दे सकूँ, ऐसी कोई वस्तु मुझे नहीं दिखायी देती। अतः अपना सर्वस्व यह आलिङ्गन ही मैं तुझे देता हूँ।' इतना कहकर हर्षसे पुलकित श्रीरामने हनुमान्‌को हृदयसे लगा लिया।

दयालुता

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको दयाका सागर कहें, तब भी उनकी अपरिमित दयाका तिरस्कार ही होता है। जीवोंपर उनकी जो दया है, वह कल्पनातीत है। मनुष्य अपनी ऊँची-से-ऊँची कल्पनासे उनकी दयाका जहाँतक अनुमान लगाता है, भगवान्‌की दया उससे अनन्तगुना अधिक ही नहीं, असीम और अत्यन्त विलक्षण है। भगवान् वस्तुतः दयामय ही हैं। 'है तुलसिहि परतीति एक प्रभु मूरति कृपामयी है।' गीतामें भगवान् कहते हैं—'**सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।** (५। २९)—मुझको सब भूतोंका सुहृद् जानकर मनुष्य शान्तिको प्राप्त होता है।'

अवश्य ही भगवान्‌की दया दोनों रूपोंसे सामने आती है। कहीं वह प्रेमके रूपमें दर्शन देती है, कहीं दण्डके रूपमें। राक्षसोंको भगवान्‌ने मारा, परंतु मारा नहीं, वास्तवमें तार दिया। भगवान्‌का क्रोध भी मुक्ति देनेवाला है—'निर्बानदायक क्रोध जाकर'। भगवान्‌के हाथोंसे जितने राक्षस मरे, सबको दुर्लभ गति प्राप्त हुई। कुछके नमूने देखिये—

ताड़काको—

एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥
(श्रीराम च० मा० १। २०८। ३)

विराधको—

तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा॥
(वही, ३। ६। ४)

खर-दूषणादिको—

राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।
(वही, ३। २० क)

मारीचको—

अंतर प्रेम तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना॥
(वही, ३। २६। ९)

कुम्भकर्णको—

तासु तेज प्रभु बदन समाना।
(वही, ६। ७०। ४)

रावणको—

तासु तेज समान प्रभु आनन।
(वही, ६। १०२। ५)

सभी राक्षसोंको—

रामाकार भए तिन्ह के मन। मुक्त भए छूटे भव बंधन॥
(वही, ६। ११३। ४)

इस प्रकार अपनेको दीन न समझनेवाले अति दीन राक्षसोंपर दया करके भगवान्‌ने उनको मारकर भी तार दिया।

प्रेमसे तो आपने अनेकोंको अपनाया है। सारे वानर-भालुओंको वह गौरव दिया, जो बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंको भी दुर्लभ है—

प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सीलनिधान॥
(वही, १। २९)

गौतम मुनिकी पत्नी अहल्या पतिके शापवश पाषाणकी शिला हो गयी थी। उस बेचारीमें यह भी शक्ति नहीं थी कि आर्त्त होकर भगवान्‌को पुकार सके। उसकी दीन दशा देखकर दयामय भगवान्‌ने स्वयं वहाँ पधारकर अपने चरण-स्पर्शसे उसका उद्धार किया।

केवटसे पैर धुलवाकर उसे अपना सुर-मुनि-दुर्लभ चरणोदक देकर परिवारसहित पार कर दिया।

पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार॥
(वही, २। १०१)

दण्डकवनको स्वयं पधारकर शापमुक्त किया और वहाँ एक स्थानपर ऋषियोंकी हड्डियोंका ढेर देखकर प्रभु दयापरवश हो गये—

अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया॥
(वही, ३। ८। ३)

मुनियोंने दुखी मनसे कहा—'भगवन् !

निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए॥
(वही, ३। ८। ४)

—'राक्षसोंने सारे मुनियोंके समूहोंको खा डाला, यह हड्डियोंका ढेर उन्हीं मुनियोंके शरीरोंका है—यह सुनकर

और उनके दुःखको देखकर श्रीरघुनाथजीके नेत्रोंमें जल छा गया और उन्होंने प्रतिज्ञा की—

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह ।

(वही, ३ । ९)

दीन सुग्रीवको वालीके महान् अत्याचारसे बचाया। अङ्गदको दीन जानकर अपनाया और उसे युवराज-पद दिलाया।

गीधराज जटायुपर जो दया हुई, वह तो सर्वथा अनूठी है। रावणके द्वारा घायल होकर जटायु दीन दशामें पड़ा है। श्रीरघुनाथजी उसके समीप पहुँचते हैं और उसकी दीन दशा देखकर दुखी हो जाते हैं। उठाकर उसे अपनी गोदमें ले लेते हैं और नेत्रोंमें जल भरकर उसे आश्वासन देते हुए अपने कोमल कर-कमलोंको उसके मस्तकपर फिराते हुए उसे सुखी करते हैं! किसी कविने क्या ही सुन्दर कहा है—

दीन मलीन दयालु बिहंग पर्‌यो महि सोचत खिन्न दुखारी।
राघव दीनदयालु कृपालु को देख दुखी करुना भइ भारी॥
गीध को गोद में राखि कृपानिधि नैन सरोजन में भरि बारी।
बारहिं बार सुधारहिं पंख जटायु की धूरि जटान सों झारी॥

श्रीरघुनाथजीने कहा—'तात! आप कुछ दिन और जीवन धारण कीजिये और मुझे पिताका सुख दीजिये।' गीध बड़ा चतुर था, उसने कहा—

जा कर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा॥
सो मम लोचन गोचर आगें। राखौं देह नाथ केहि खाँगें॥

(वही, ३। ३०। ३-४)

इतना कहकर भगवान्‌की गोदमें ही उनकी ओर निर्निमेष दृष्टिसे देखते हुए और मुखसे श्रीरामका पवित्र नाम उच्चारण करते हुए जटायुने मुनिदुर्लभ शान्ति प्राप्त की। तदनन्तर दयामय प्रभुने अपने हाथोंसे उसकी वैसे ही अन्त्येष्टि क्रिया की, जैसे अपने पिताकी करते हैं—

पितु ज्यों गीध क्रिया करि रघुपति अपनें धाम पठायो।
ऐसे प्रभुहि बिसारि तुलसि सठ तू चाहत सुख पायो॥

पराक्रम

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके बल, पराक्रम, वीरता और शस्त्र-कौशलके विषयमें तो कहना ही क्या है। सम्पूर्ण रामायणमें इसका वर्णन भरा पड़ा है। कहींसे भी युद्धका प्रसङ्ग निकालकर देख सकते हैं। विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करते समय उन्होंने बात-की-बातमें ताड़का और सुबाहुको मारकर मारीचको मानवास्त्रके द्वारा सौ योजन दूर समुद्रके बीचमें गिरा दिया।

जनकपुरमें जिस धनुषको बड़े-बड़े वीर और महाबली राजा अत्यन्त परिश्रम करके भी नहीं हिला सके, उसीको श्रीरामने अनायास ही उठाकर तोड़ दिया। विष्णुके धनुषपर बाण चढ़ाकर परशुरामजीका तेज हर लिया। पञ्चवटीमें चौदह हजार राक्षसोंको जरा-सी देरमें बिना किसीकी सहायताके मार गिराया। वाली-जैसे महायोद्धाको एक ही बाणसे मार डाला। धनुषपर बाण चढ़ानेमात्रसे ही समुद्रमें खलबली मच गयी और वह सशरीर भयभीत होकर शरणमें आ गया। लङ्कामें जाकर भयंकर युद्धमें राक्षसोंसहित कुम्भकर्ण और रावणका वध करके समस्त संसारमें विजयका डंका बजा दिया।

क्षमा

ऐसे महान् पराक्रमी होनेपर भी श्रीरघुनाथजी इतने क्षमा-शील थे कि वे अपने प्रति किये हुए किसीके अपराधको अपराध ही नहीं मानते थे। उन्होंने जहाँ कहीं भी क्रोध और युद्धकी लीला की है, वह अपने आश्रितों और साधु पुरुषोंके प्रति किये हुए अपराधोंके लिये दण्ड देने और इसी बहाने दुष्टोंको निर्दोष बनानेके लिये ही की है। मन्थरा-जैसी दासीके अपराधका उन्होंने कहीं जिक्र भी नहीं किया।

श्रीरामका परब्रह्मत्व

श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा भगवान् विष्णुके अवतार थे, यह बात वाल्मीकीय रामायणमें जगह-जगह कही गयी है। जब संसारमें रावणका उपद्रव बहुत बढ़ गया, देवता और ऋषिगण बहुत दुखी हो गये, तब उन्होंने जाकर ब्रह्मासे प्रार्थना की। पितामह ब्रह्मा देवताओंको धीरज बँधा रहे थे, उसी समय भगवान् विष्णुके प्रकट होनेका वर्णन इस प्रकार आता है—

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः।
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः॥
वैनतेयं समारुह्य भास्करस्तोयदं यथा।
तप्तहाटककेयूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमैः॥

(वा० रा० १। १५। १६-१७)

'इतनेमें ही महान् तेजस्वी उत्तम देवताओंद्वारा वन्दनीय जगत्पति भगवान् विष्णु मेघपर चढ़े हुए सूर्यके समान गरुडपर सवार हो वहाँ आ पहुँचे। उनके शरीरपर पीताम्बर तथा हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा आदि आयुध एवं चमकीले स्वर्णके बाजूबंद शोभा पा रहे थे।' इसके बाद

देवताओंकी प्रार्थना सुनकर भगवान्‌ने राजा दशरथके घर मनुष्यरूपमें अवतार लेना स्वीकार किया । फिर वहीं अन्तर्धान हो गये ।

श्रीरामचन्द्रजीका विवाह होनेके बाद जब वे अयोध्याको लौट रहे थे, उस समय रास्तेमें परशुरामजी मिले । श्रीराम विष्णुके अवतार हैं या नहीं, इसकी परीक्षा करनेके लिये उन्होंने श्रीरामसे भगवान् विष्णुके धनुषपर बाण चढ़ानेके लिये कहा; तब श्रीरामचन्द्रजीने तुरंत ही उनके हाथसे दिव्य धनुष लेकर उसपर बाण चढ़ा दिया और कहा—'यह दिव्य वैष्णव बाण है । इसे कहाँ छोड़ा जाय ?' यह देख-सुनकर परशुरामजी चकित हो गये । उनका तेज श्रीराममें जा मिला । उस समय श्रीरामकी स्तुति करते हुए परशुरामजी कहते हैं—

अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम् ।
धनुषोऽस्य परामर्शात् स्वस्ति तेऽस्तु परंतप ॥
(वा० रा० १ । ७६ । १७)

'शत्रुतापन राम ! आपका कल्याण हो । इस धनुषके चढ़ानेसे मैं जान गया कि आप मधु-दैत्यको मारनेवाले, देवताओंके स्वामी, साक्षात् अविनाशी विष्णु हैं ।' इस प्रकार श्रीरामके प्रभावका वर्णन करके और उनकी प्रदक्षिणा करके परशुरामजी चले गये ।

रावणका वध हो जानेके बाद जब ब्रह्मासहित देवतालोग श्रीरामचन्द्रजीके पास आये और उनसे बातचीत करते हुए श्रीरामने यह कहा कि 'मैं तो अपनेको दशरथजीका पुत्र राम नामका मनुष्य ही समझता हूँ ! मैं जो हूँ, जहाँसे आया हूँ—यह आपलोग ही बतायें ।' इसपर ब्रह्माजीने सबके सामने सम्पूर्ण रहस्य खोल दिया । वहाँ रामके महत्त्वका वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं—

भवान्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः ।
एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित् ॥
अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव ।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः ॥
शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः ।
अजितः खड्गधृग् विष्णुः कृष्णश्चैव बृहद्बलः ॥
(वा० रा० ६ । ११७ । १३–१५)

'आप साक्षात् चक्रपाणि लक्ष्मीपति प्रभु श्रीनारायणदेव हैं । आप ही भूत-भविष्यके शत्रुओंको जीतनेवाले और एक शृङ्गधारी वराहभगवान् हैं । राघव ! आप आदि, मध्य और सत्यस्वरूप अविनाशी ब्रह्म हैं । आप सम्पूर्ण लोकोंके परमधर्म चतुर्भुज विष्णु हैं । आप ही अजित, पुरुष, पुरुषोत्तम, हृषीकेश तथा शार्ङ्ग-धनुष एवं खड्ग धारण करनेवाले विष्णु हैं और आप ही महाबलवान् कृष्ण हैं ।'

इसी तरह और भी बहुत कुछ कहा है । वहीं राजा दशरथ भी लक्ष्मणके साथ बातचीत करते समय श्रीरामकी सेवाका महत्त्व बतलाकर कहते हैं—

एतत् तदुक्तमव्यक्तमक्षरं ब्रह्मसम्मितम् ।
देवानां हृदयं सौम्य गुह्यं रामः परंतपः ॥
अवाप्तं धर्मचरणं यशश्च विपुलं त्वया ।
एनं शुश्रूषताव्यग्रं वैदेह्या सह सीतया ॥
(वा० रा० ६ । ११९ । ३२-३३)

'सौम्य ! ये परंतप राम साक्षात् वेदवर्णित अविनाशी अव्यक्त ब्रह्म हैं । ये देवोंके हृदय और परम रहस्यमय हैं । जनकनन्दिनी सीताके सहित इनकी सावधानीसे सेवा करके तुमने पवित्र धर्मका आचरण और बड़े भारी यशका लाभ किया है ।'

इसके सिवा और अनेक बार ब्रह्माजी, देवता और महर्षियोंने श्रीरामके अमित प्रभावका यथासाध्य वर्णन किया है । मनुष्य-लीला समाप्त करके परमधाममें पधारनेके प्रसङ्गमें भी यह बात स्पष्ट कर दी गयी है कि श्रीराम साक्षात् पूर्णब्रह्म परमेश्वर थे । अतः वाल्मीकीय रामायणको प्रामाणिक ग्रन्थ माननेवाला कोई भी मनुष्य श्रीरामके ईश्वर होनेमें शङ्का कर सके, ऐसी गुंजाइश नहीं है ।

उपसंहार

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंकी गाथा गाकर कौन पार पा सकता है । वे परम दयालु, परम प्रेमी, परम सुहृद्, परम संयमी, परम कल्याणाश्रय, महान् वीर्यवान्, महान् बुद्धिमान्, शस्त्रविद्याविशारद, सौन्दर्य-माधुर्यके निधि, कान्तिमान्, धृतिमान्, जितेन्द्रिय, अत्यन्त गम्भीर, परम विनयी, महान् धीर, अनुपम प्रियदर्शन, मधुरभाषी, महान् क्षमाशील, परम उदार, परम ब्रह्मण्य, संगीतकलानिपुण, आदर्श सत्यवादी और सत्यव्रती, कुसुमसे भी कोमल, किंतु कर्तव्यपालनमें वज्रसे भी कठोर, परम यशस्वी, महान् वाग्मी, सर्वशास्त्रतत्त्वज्ञ, महान् प्रतिभाशाली, आदर्श पुत्र, आदर्श शिष्य, आदर्श पति, आदर्श भाई, आदर्श स्वामी, आदर्श राजा, आदर्श मित्र, आदर्श शूरवीर, आदर्श आश्रयदाता, आदर्श गुणवान्, आदर्श सदाचारी, आदर्श धर्मव्रती, आदर्श त्यागी, नीतिपरायण, साधुजनप्रिय, परम प्रतापवान, धर्मरक्षक, सर्वप्रिय, सर्वान्तर्यामी और सर्वशक्तिमान् हैं ।

सत्यवादिताके सम्बन्धमें तो उन्होंने स्वयं घोषणा की है—'रामो द्विर्नाभिभाषते' (वा० रा०, अयोध्या० १८ । ३०)—राम दो बार नहीं बोलते ! अर्थात् एक बार जो कह दिया, वही प्रमाण हो गया ।'

धर्मपरायणताका क्रियात्मक उदाहरण तो उनका समस्त जीवन ही है । साक्षात् भगवान् होनेपर भी आप धर्मकी मर्यादारक्षाके लिये नियमितरूपसे संध्या-अग्निहोत्रादि कर्म करते हैं, वर्णाश्रमके अनुसार ब्राह्मणों, ऋषियों तथा गुरुजनोंका पूजन करते हैं, जप-यागादि करते हैं, मन्दिरोंकी स्थापना और मूर्तिपूजन करते हैं तथा श्राद्ध-तर्पणादि क्रियाएँ सावधानीसे करते हैं ।

चित्रकूटमें भरतजीके साथ गये हुए ऋषियोंमें जाबालि नामक एक ऋषि थे । वे महाराज दशरथजीकी सभाके एक प्रधान सदस्य थे । श्रीरामजीको अयोध्या लौटनेकी बात समझाते हुए उन्होंने कुछ ऐसी बातें कहीं, जो नास्तिकवादका समर्थन करनेवाली थीं । उनकी बातोंको सुनकर मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् लीलासे उनपर रुष्ट हो गये और उन्होंने मुनिको फटकारकर बहुत कुछ कहा—

निन्दाम्यहं कर्म कृतं पितुस्तद्
यस्त्वामगृह्णाद् विषमस्थबुद्धिम् ।
बुद्ध्यानयैवंविधया चरन्तं
सुनास्तिकं धर्मपथादपेतम् ॥
(वा० रा०, अयो० १०९ । ३३)

'इस प्रकारकी बुद्धिसे प्रेरित होकर आचरण करनेवाले तथा परमनास्तिक एवं धर्ममार्गसे हटे हुए आपको जो मेरे पिताजीने अपना याजक बनाया, मैं उनके इस कार्यकी निन्दा करता हूँ; क्योंकि आपकी बुद्धि गलत रास्तेपर है ।'

इन वचनोंसे पता लगता है कि महाराज श्रीरामचन्द्रजी नास्तिकवादको कितना बुरा समझते थे । नास्तिकवादकी निन्दामें आपने अपने उन पिताके कार्यकी भी निन्दा की, जिनके वचनोंकी रक्षाके लिये आप वनवासी हुए थे ।

अन्तमें जाबालि मुनिके यह कहनेपर कि 'मैं नास्तिक नहीं हूँ । मैंने तो केवल आपको लौटानेके लिये तर्कके तौरपर ये बातें कही थीं, यह मेरा मत नहीं है ।' और गुरु वसिष्ठके द्वारा जाबालिजीके इस कथनका समर्थन होनेपर भगवान् श्रीरघुनाथजी शान्त हुए ।

भगवान् श्रीरामजीके सभी भाव विलक्षण हैं । आपका जन्म, बालभाव, कुमारभाव, मिथिलाका मधुरभाव, वनका तापसभाव, लङ्काका वीरभाव, राजभाव, प्रेमभाव—सभी आदर्श और महान् अनुकरणीय हैं । आपके आदर्श जीवनसे जो लाभ नहीं उठाता, वह बड़ा ही मन्दभागी है ।

श्रीरामचन्द्रजीके सभी गुण और आचरण आदर्श हैं । उनमें एक भी ऐसी बात नहीं है जो परम आदर्श और अनुकरण करनेयोग्य न हो । कहीं कोई बात असंगत या अपने मनके प्रतिकूल प्रतीत होती है तो उसमें प्रधान कारण है श्रद्धाकी कमी । श्रद्धा कम होनेसे भगवान्के तत्त्व, रहस्य, गुण और प्रभावका ज्ञान नहीं होता; इसी कारण उनकी लीलामें भ्रमवश मनमें शङ्का हो जाती है । कोई लीला न समझमें आये तो उसके अतिरिक्त अन्यान्य आचरणोंका अनुकरण और उनके उपदेशोंका पालन अवश्य ही करना चाहिये । भगवान्ने अपने भाइयोंको तथा प्रजाको जो परम सुन्दर उपदेश दिये हैं, उनका अक्षरशः पालन करनेकी चेष्टा करनी चाहिये और प्रभुकी आज्ञा या उनके आचरणके अनुसार यत्किंचित् भी चेष्टा होने लगे तो इसमें प्रभुकी ही कृपा समझनी चाहिये । तथा भगवान्की इस कृपाका बारंबार दर्शन और अनुभव करते हुए क्षण-क्षणमें मुग्ध होना चाहिये । महाराजकी प्रत्येक लीलामें प्रेम, दया, क्षमा, सत्य आदि गुण भरे हैं; उनका अपरिमित प्रभाव सब लीलाओंमें व्याप्त है—यह निश्चय करके प्रत्येक क्रियामें उनके आदर्श व्यवहार, उनके महान् गुण, उनके प्रभाव, तत्त्व और रहस्यका चिन्तन करते हुए तथा उनकी अमृतमय रूपलावण्यसे युक्त मनोमोहिनी मूर्तिका प्रत्यक्षवत् ध्यान करते हुए सदा प्रसन्न होना चाहिये । वे पुरुष धन्य हैं, जो साक्षात् पूर्णब्रह्म परमेश्वर मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी महाराजके नाम, रूप, गुण, चरित्र, प्रभाव, तत्त्व और रहस्यको समझ-समझकर प्रेम और आनन्दमें तन्मय हुए संसारमें उनका अनुकरण करते हुए विचरते हैं । वह भूखण्ड धन्य है, जहाँ ऐसे पुरुष निवास करते हैं । ऐसे साक्षात् कल्याणमय पुरुषोंका जो दर्शन, भाषण, स्पर्श, स्मरण और सङ्ग करते हैं, वे भी पवित्र हो जाते हैं । ऐसे पुरुषोंके जहाँ चरण टिकते हैं, वह देश तीर्थ बन जाता है और वहाँ प्रेम, आनन्द और शान्तिका स्रोत बहने लगता है । वह कुल धन्य, जगत्पूज्य और परमपवित्र है, जहाँ ऐसे भगवत्परायण पुरुषरत्न उत्पन्न होते हैं । भगवान् शिवजी महाराज कहते हैं—

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत ।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत ॥
(श्रीरामच० मा० ७ । १२७)

भुवनमङ्गल भगवान् श्रीराम

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

मंगल भवन अमंगल हारी । द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी ॥
(मानस १ । १११ । २)

१—'मङ्गल' शब्दका अर्थ तथा परिभाषा

कल्याण, मङ्गल, शिव, भद्र, शुभ, श्रेयस्, निःश्रेयस्, स्वस्ति आदि शब्द पर्यायवाची हैं—'**श्वः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम् ।**' यद्यपि इन शब्दोंसे 'मङ्गल' शब्दका भाव एवं अर्थ सर्वथा सुस्पष्ट हो जाता है, तथापि शब्दोंकी स्वतन्त्र गतियाँ भी होती हैं। '**मगि—सर्पणे अलंकारे च ।**' (भ्वा० से० १४५) धातुसे उणादि 'अलच्' (५ । ७०, दशपादी ८ । १२३) प्रत्यय लगानेसे 'मङ्गल' शब्द निष्पन्न होता है*, तब इसके भाग्यकर, शोभाकर, सुख-प्राण-बल-बुद्धिकारी एवं अभीष्टसिद्धिकरी आदि अर्थ भी होते हैं।† पर एक साथ ये सब लक्षण वास्तवमें—परमात्मा, ईश्वर एवं भगवान् राममें ही पूर्णतया घटित होते हैं, अन्यत्र तो इन लक्षणोंकी माङ्गलिकता गौणतः ही है—

सुखस्वरूप रघुबंसमनि मंगल मोद निधान ।
(श्रीरामच० मा० २ । २००)

यों लोकमें ५ तथा ८ मङ्गलकी वस्तुएँ परम प्रसिद्ध हैं। यथा—

लोकेऽस्मिन् मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः ॥
हिरण्यं सर्पिरादित्य आपो राजा तथाष्टमः ।
(गरुडपुराण २०५ । ७४-७५)

अथवा—

मृगराजो वृषो नागः कलशो व्यजनं तथा ।
वैजयन्ती तथा भेरी दीप इत्यष्टमङ्गलम् ॥
(आह्निकसूत्र, छान्दोगपरिशिष्ट)

* 'मङ्गेरलच् ।' ध्यान रहे, इसी सूत्रसे 'उणादिकोशकार'ने अपने ग्रन्थको पूर्णकर समाप्तिका मङ्गल-पाठ भी किया है। (कुछ लोग उणादिका कर्ता शाकटायनको (महाभाष्य तथा उसपर कैयटकृत 'प्रदीप' ३ । ३ । १) और कुछ लोग पाणिनिको ही ('प्रक्रियासर्वस्व', 'उणादिगण' तथा 'शिशुपालवध' १९ । ७५ आदि) इसका रचयिता मानते हैं।

† अंग्रेजी कोशकारोंने भी इस शब्दके—auspicious, lucky, propitious, prosperous, bliss, happiness आदि अर्थ किये हैं। इनके अतिरिक्त मङ्गल ग्रह, भौमवार, इसी नामका एक पर्वत, श्वेत दूर्वा आदि इसके अन्य भिन्न अर्थ भी होते हैं।

—इत्यादि (श्लोकों) के अनुसार गौ, ब्राह्मण, अग्नि, राजा, दधि, दूर्वा, घृत, सुवर्ण, सूर्य, जल, सिंह, पक्षी, हाथी, बैल, जलपूर्ण कलश, पंखा, पुष्प-माला, दीपक, शङ्ख, भेरी आदि वाद्य इस लोकके मङ्गल पदार्थ हैं। किंतु सर्वमङ्गल, लोक-परलोक—सर्वत्र मङ्गलकारी तो परमात्मा ही हैं। इसीलिये गौरीसहस्रनाम, ललितासहस्रनाम, देवी-सहस्रनाम, कालिकासहस्रनाम, दुर्गा-सप्तशती आदिमें भगवती पार्वतीका नाम 'सर्वमङ्गला'‡ आया है। इसी प्रकार सीतासहस्रनाम, रामसहस्रनाम, वासुदेवसहस्रनाम आदिमें सीता एवं रामका नाम क्रमशः 'सर्वमङ्गल' एवं 'सर्वमङ्गला' आता है। इसी प्रकार भगवान् गणपतिदेव भी आदि-पूज्य तथा परम मङ्गलदेव हैं। इनकी पूजा-वन्दना-स्मृति सभी मङ्गलकार्यों, ग्रन्थारम्भ आदिमें की जाती है। प्रायः 'श्रीगणेशाय नमः' कह-लिखकर भी पत्र-पुस्तकादिका मङ्गल होता है।

२—मङ्गल-सार-सर्वस्व

किंतु वेद-पुराणोंमें यह प्रसिद्ध है कि ये भगवान् गणपति भी श्रीरामाराधनसे ही—श्रीरामनामके स्मरणमात्रसे प्रथम पूज्य, परममङ्गलस्वरूप, आदिवन्द्य हो गये—

महिमा जासु जान गनराऊ । प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ ॥
(श्रीराम० १ । १८ । २)

इस तरह भी सब मङ्गलोंके मूलहेतु परममङ्गल भगवान् राम ही दीखते हैं। भगवान्‌के गर्भमें आते ही विश्व मङ्गल लक्षणोंसे युक्त हो गया था—

जा दिन तें हरि गर्भहिं आए । सकल लोक सुख संपति छाए ॥
(वही, १ । १८८ । ३)

उनके जन्मते-प्रकट होते समय सम्पूर्ण विश्व मङ्गलरूप हुआ। भवभूतिके शब्दोंमें भगवान् राम दोनों कुलों (जनक एवं रघु) के मङ्गलमूल थे—

जनकानां रघूणां च यत्कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम् ॥
(उत्तररामचरित ६ । ४२)

‡ (क) सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ॥
(सप्तशती, अ० ११)

(ख) मंगला मंगलमई । (पार्वती मङ्गल १८)

—यहाँतक कि भगवान् जब वनमें पहुँचते हैं, तब सारे दोषों—अमङ्गलोंका घर वह वन भी मङ्गल-मूल वन जाता है—

मंगलरूप भयउ वन तब ते। कीन्ह निवास रमापति जब ते॥
(राम० मानस १४। १२। ३)

सिद्ध महात्मा लोग भी मङ्गलमय पशु, पक्षी, भ्रमर आदिका रूप धारणकर मङ्गलमय प्रभुकी सेवा करने लग जाते हैं—

मधुकर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा॥
(वही, ४। १२। २)

फिर तो उस वनकी मङ्गलमयताका किसी प्रकार वर्णन ही सम्भव नहीं—

सो बनु सैलु सुभायँ सुहावन। मंगलमय अति पावन पावन॥
महिमा कहिअ कवन विधि तासू। सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू॥
(वही, २। १३८। २)

—इत्यादि।

इसी प्रकार भगवान्‌की पूजा, स्तुति, कथा, ध्यान, प्रणाम, दर्शन—सभी एक-से-एक बढ़कर मङ्गलमूल हैं—

'मंगल मूल प्रनाम जासु जग, मूल अमंगल के खनें।'
(गीतावली ५। ४०। २)

'तुलसी सुमिरत राम सबनि को मंगलमय नभ जल थलौ।'
(वही, ५। ४२ ४)

'देखेउँ पाय सुमंगल मूला।'
(श्रीरा० च० मा० २। २९९। २)

इसीलिये पार्वतीसहित भगवान् शंकर इनका सदा जप-ध्यान करते हैं—

मंगल* भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥
(वही, १। ९। १)

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं॥
करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कामारी॥
(वही, १। ३१४। १)

३—निष्कर्ष

सच बात तो यह है कि यह सारा जगज्जाल ही अमङ्गल है। इसमें केवल संत एवं भगवान्, भगवन्नामादि ही मङ्गल-रूप हैं—

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥
स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं॥
(वही, ७। ४६। ३)

—आदि

यदि यह बात किसीके मनमें ठीक तरहसे बैठ जाय तो सचमुच उसका सच्चा मङ्गल सम्पन्न हो गया और उसका वास्तविक कार्य सिद्ध हो गया। अतः बुद्धिमान् मनुष्यको निरन्तर तदर्थ ही प्रयत्न करना चाहिये।

अस्तु! कौसल्या, सीता, वाल्मीकि एवं तत्तत्सम्प्रदायाचार्यों एवं टीकाकारों आदिके मङ्गलाशासन तो प्रसिद्ध हैं ही, हम भी अब निम्न श्लोकसे मङ्गल करते हुए इस वाक्य-पुष्पोपहारको मङ्गलमय भगवान् श्रीरामके ही चरणोंमें समर्पितकर इसका उपसंहार करते हैं—

मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणात्मने।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम्॥

---

* यह 'मङ्गल' शब्द 'मानस'में २५० बारके लगभग आया है। देखिये डा० श्रीसूर्यकान्तकी 'रामायण-शब्दसूची' तथा श्रीबद्रीदास अग्रवालद्वारा संकलित 'मानस-शब्द-सागर', पृष्ठ ५७६-७७ और ७१४-१५ आदि। पर इनमें भी इस शब्दका अधिकांश प्रयोग तो मङ्गलमय प्रभु श्रीराम, उनके नाम, चरित्र आदिके लिये ही हुआ है।

यथा—

'मंगल मूल राम सुत जासू।' (श्रीराम० २। १। ३) रामकथा जग मंगल करनी॥ (वही, १। ९। १०)

—आदि

ऐसे ही गीतावली, विनयपत्रिका आदिमें भी प्रयोग भरे पड़े हैं और 'पार्वती-मंगल' 'जानकी-मंगल' आदि ग्रन्थोंके तो नाम ही 'मंगल' शब्दसे युक्त ही हैं। उनमें 'राम सुमंगल हेतु सकल मंगल किये।' (जानकीमंगल, १३८) आदि अनेक प्रयोग तो स्वाभाविक ही हैं।

भगवान् श्रीरामका दिव्य आदर्श

(लेखक—पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय, एम्० ए०, साहित्याचार्य)

'नहि रामात् परो लोके विद्यते सत्पथे स्थितः ॥'
(अयोध्याकाण्ड ४४ । २६)

वाल्मीकि-रामायणमें सुमित्राजीकी यह उक्ति रामचन्द्रके शीलका उज्ज्वल दृष्टान्त प्रस्तुत करती है । रामसे बढ़कर सन्मार्गमें स्थित कोई दूसरा व्यक्ति संसारमें नहीं है । सच्ची बात तो यह है कि रामचन्द्रके द्वारा आचरित, समादृत तथा प्रतिष्ठापित पन्थ ही 'सत्पथ' है और उससे पृथक् तथा विभिन्न इतर मार्ग 'कुपथ' है—'कुपथं तं विजानीयाद् गोविन्दरहितागमम् ।' लोकदृष्ट्या विरुद्ध प्रतीत होनेवाला भी, सामान्य दृष्टिसे अनाचरणीय भी मार्ग यदि रामचन्द्रके द्वारा अनुसृत तथा अनुगत हो, तो वह कथमपि अनाचरणीय और विरुद्ध नहीं माना जा सकता । रामचरितके गम्भीर अनुशीलन करनेवाले आलोचकोंसे यह तथ्य कथमपि निगूढ़ नहीं रह सकता । इस लेखमें वाल्मीकि-रामायणमें अङ्कित रामचन्द्रके शील तथा सौन्दर्यके कतिपय तथ्य संक्षेपमें प्रस्तुत किये जाते हैं ।

वाल्मीकिने अपने रामायणमें रामचन्द्रके सौन्दर्य तथा शारीरिक सम्पत्तिका समग्र वर्णन बड़ी पूर्णता, स्निग्धता तथा वैशद्यके साथ किया है; परंतु आश्चर्यसे कहना पड़ता है कि उन्होंने भगवती जनकनन्दिनीके दैहिक सौन्दर्यका वर्णन कहीं भी नहीं किया है । सीताके उस परमाराध्य सौन्दर्यकी एक फीकी भी झाँकी देनेसे विरत होनेवाला यह महाकवि उसकी अगाधता, गम्भीरता तथा अनाख्येयताकी ओर स्पष्ट संकेत करता है । उस अनाख्येय सौन्दर्यकी वह अपनी शाब्दिक अभिव्यक्तिके द्वारा आख्या देना उचित नहीं समझता । तो क्या वाल्मीकि-रामायणमें भगवती जानकीकी रूपभङ्गिमाकी छवि शब्दोंके माध्यमद्वारा चर्चित नहीं होती ? होती है; परंतु कविद्वारा नहीं, जानकी-द्वारा ही । युद्धकाण्डके ४८वें सर्गमें मायाद्वारा निहत रामचन्द्रका पुष्पकद्वारा अपने नेत्रोंसे साक्षात् कर दुःखिनी सीता अपने रूपका स्वयं वर्णन करती है—'जिन दुर्लक्षणोंके द्वारा नारी वैधव्य भोगती है, उनका तो मेरे शरीरमें नितरां अभाव है । मेरे शरीरके शुभ लक्षण मेरे सौभाग्य, जीवित-भर्तृत्व तथा सिंहासनाधिरोहणके पर्याप्त परिचायक हैं—ऐसी बात कन्यालक्षणोंके वेत्ता सामुद्रिकोंने बतायी है'—

केशाः सूक्ष्माः समा नीला भ्रुवौ चासंहते मम ।
वृत्ते चारोमके जङ्घे दन्ताश्चाविरला मम ॥
स्तनौ चाविरलौ पीनौ मामकौ मग्नचूचुकौ ।
मग्ना चोत्सेधिनी नाभिः पार्श्वोरस्कं च मे चितम् ॥
मम वर्णो मणिनिभो मृदून्यङ्गरुहाणि च ।
प्रतिष्ठितां द्वादशभिर्मामूचुः शुभलक्षणाम् ॥
समग्रयवमच्छिद्रं पाणिपादं च वर्णवत् ।
मन्दस्मितेत्येव च मां कन्यालाक्षणिका विदुः ॥
(वाल्मीकि०, युद्ध० ४८ । ९, ११—१३)

'मेरे सिरके बाल महीन, बराबर और काले हैं । भौंहें परस्पर जुड़ी हुई नहीं हैं । मेरी पिंडलियाँ (घुटनोंसे नीचेके भाग) गोल-गोल तथा रोमरहित हैं और मेरे दाँत भी परस्पर सटे हुए हैं । ××मेरे दोनों स्तन परस्पर सटे हुए और स्थूल हैं । इनके अग्रभाग भीतरकी ओर दबे हुए हैं । मेरी नाभि गहरी और उसके आसपासके भाग ऊँचे हैं । मेरे पार्श्वभाग तथा छाती मांसल हैं··· । मेरी अङ्गकान्ति खरादी हुई मणिके समान उज्ज्वल है । शरीरके रोएँ कोमल हैं तथा पैरोंकी दसों अँगुलियाँ और दोनों तलवे—ये बारहों पृथ्वीसे अच्छी तरह सट जाते हैं । इन सबके कारण लक्षणज्ञोंने मुझे शुभलक्षणा बताया था । मेरे हाथ-पैर लाल एवं उत्तम कान्तिसे युक्त हैं । उनमें जौकी समूची रेखाएँ हैं तथा मेरे हाथोंकी अँगुलियाँ जब परस्पर सटी होती हैं, उस समय उनमें तनिक भी छिद्र नहीं रह जाता है । कन्याके शुभलक्षणोंको जाननेवाले विद्वानोंने मुझे मन्द-मुस्कानवाली बताया था ।'

सीताद्वारा दैन्य-प्रसङ्गमें यह वर्णन क्या किसीके चित्तमें किसी प्रकारकी विकृति उत्पन्न करनेमें समर्थ हो सकता है ? महाकविकी इस मनोवैज्ञानिक सूझकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है । वे स्वयं मौन रहकर सीताके सौन्दर्यकी सूक्ष्मता तथा विशदताकी रुचिर अभिव्यक्ति यहाँ कर रहे हैं ।

परंतु रामचन्द्रके शारीरिक सौन्दर्यके वर्णनमें वाल्मीकि मौन नहीं, मुखर हैं; अपने हार्दिक भावकी अभिव्यक्तिके लिये उन्होंने बहुत कुछ लिखा है । रामकी रूपछटाके

वर्णनका कोई भी अवसर वे हाथसे जाने नहीं देते। बालकाण्डका प्रथम सर्ग ही, जो 'मूलरामायण'के नामसे प्रख्यात है, विपुलांस, कम्बुग्रीव, महाहनु, महोरस्क, गूढजत्रु, आजानुबाहु, पीनवक्षा आदि विशेषणोंद्वारा रामचन्द्रकी दैहिक सम्पदाका संकेत करता है। इसका विस्तृत रूप हमें सुन्दरकाण्डके ३५वें सर्गमें उपलब्ध होता है, जब अशोक-वाटिकामें एकाकिनी जानकीको अपने रामदौत्यकी प्रतीतिके लिये मारुतनन्दन हनुमान्‌ने रामचन्द्रके शरीरका सामुद्रिक-शास्त्रकी दृष्टिसे विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है (श्लोक ८ से लेकर श्लोक २२ तक)। एक-दो श्लोक उद्धृतकर उस दैहिक लक्षणका उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है—

त्रिस्थिरस्त्रिप्रलम्बश्च त्रिसमस्त्रिषु चोन्नतः।
त्रिताम्रस्त्रिषु च स्निग्धो गम्भीरस्त्रिषु नित्यशः॥
त्रिवलीमांस्त्र्यवनतः..............

(सुन्दरकाण्ड ३५। १७-१८)

"भगवान् रामके तीन अङ्ग (ऊरु, मणिबन्ध तथा मुष्टि) स्थिर थे। तीन अङ्ग प्रलम्ब थे (भ्रू=भौंह, मुष्क=अण्डकोश तथा बाहु)। तीन अङ्ग—बराबर थे, न कोई ऊँचा था, न नीचा (केशाग्र=केशका सिरा, वृषण=अण्डकोश और जानु)। तीन अङ्ग उन्नत—उठे हुए थे (नाभिका भीतरी भाग, कुक्षि तथा वक्षःस्थल)। तीन अङ्ग रक्तवर्णके थे (नेत्रान्त=आँखका कोया, हाथका तलवा तथा पैरका तलवा); तीन अङ्ग स्निग्ध—चिकने थे (पादरेखा, केश तथा लिङ्गमणि)। तीन वलियाँ (रेखा) रामके शरीरमें थीं—उदरमें तथा गलेमें। तीन अङ्गोंमें निम्नता थी अर्थात् इन अङ्गोंमें झुकाव था। पादतलका मध्यभाग निम्न था (जिसके पादतलमें निम्नता नहीं होती, वह व्यक्ति 'गजपाद' कहलाता है तथा आजकल दौड़नेके लिये—पुलिस तथा सेनामें—सर्वथा अयुक्त समझा जाता है); पादरेखाकी निम्नता थी तथा स्तनचूचुक निम्न थे।" इस प्रकार शरीरके 'त्रिगात्र' का यह लाक्षणिक वर्णन दृष्टान्तके लिये पर्याप्त है। सामुद्रिक लक्षणकारोंद्वारा व्याख्यात शरीरके समस्त लक्षणोंका पुञ्ज रामचन्द्रके देहको उद्दीप्त बना रहा था। फलतः रामचन्द्रका शरीर सुन्दरतामें, सुडौलपनमें, बनावटमें सर्वथा आदर्श था—वाल्मीकिके कथनका यही सारांश है।

रामचन्द्रकी अलौकिक सुषमाका अनुमान इसी बातसे लगाया जा सकता है कि रामके दूर चले जानेपर, आँखोंसे ओझल हो जानेपर भी, कोई भी व्यक्ति न तो अपने मनको उनसे खींच सकता था और न अपने नेत्रोंको। जिसने रामको न देखा और रामने जिसे नहीं देखा—ये दोनों सब लोकोंमें निन्दाके पात्र होते हैं। इतना ही नहीं, दूसरों-द्वारा की गयी निन्दाको हम सह सकते हैं, परंतु न देखने-पर अपनी ही आत्मा चिकोटने लगती है—हाय! हम ऐसे अभागे निकले कि उन राघवेन्द्रको देखकर हमने न अपने नेत्रोंको धन्य बनाया, न जीवनको सफल बनाया। सफलताकी कुंजी 'रामदर्शन' में संनिहित है—'रामदर्शन' दोनों अर्थोंमें जीवनके साफल्यका हेतु है—रामकर्तृक दर्शन तथा रामकर्मक दर्शन। इन भव्यभावोंकी झाँकी प्रस्तुत करनेवाले इन पद्योंको पढ़िये—

न हि तस्मान्मनः कश्चिच्चक्षुषी वा नरोत्तमात्।
नरः शक्नोत्यपाक्रष्टुमतिक्रान्तेऽपि राघवे॥
यश्च रामं न पश्येत्तु यं च रामो न पश्यति।
निन्दितः सर्वलोकेषु स्वात्माप्येनं विगर्हते॥

(वा० रा० २। १७। १३-१४)

वाल्मीकिके द्वारा चित्रित रामचरितका विश्लेषण करके ही साहित्य-जगत्‌में नायक तथा उसके सात्त्विक गुणोंकी कल्पनाका प्रथम प्रबोध हुआ। भरतके अनुसार श्रेष्ठ नायकमें आठ सात्त्विक गुणोंका सामञ्जस्य उपलब्ध होता है—शोभा, विलास, माधुर्य, गाम्भीर्य, स्थैर्य, तेज, ललित तथा औदार्य (दशरूपक २। १०—१४)। ये आठों गुण आदर्श नायक श्रीरामचन्द्रके गुणोंके मार्मिक विश्लेषणके परिणाम हैं। राज्याभिषेकके लिये आहूत होने तथा तुरंत ही घोर जंगलमें निवासके लिये निर्वासित रामचन्द्रमें किसी प्रकारकी विक्रिया लक्षित नहीं हुई। न तो प्रथम दशामें उनके चित्तमें उल्लास था और न द्वितीय दशामें उनमें विषाद था। कारण होनेपर विकारकी इस अनुपलब्धिका निर्देश साहित्यकारोंने 'गाम्भीर्य' शब्दके द्वारा किया है। 'गाम्भीर्यं यत्प्रभावेण विकारो नोपलक्ष्यते' (दशरूपक २। १२)। इसी प्रकार अन्य गुणोंके नामनिर्देशकी कथा है। तात्पर्य यह है कि रामायण आदिकाव्य है और उस काव्यके नायक हैं—रामचन्द्र। वे साहित्य-जगत्‌के आदर्श नायकके प्रतिनिधि हैं। फलतः जिस प्रकार वाल्मीकि-रामायणके विश्लेषणसे 'महाकाव्य'की कल्पना संस्कृतमें उदित हुई, उसी प्रकार रामके चरितका विश्लेषण 'नायक'-के गुणोंका स्वरूप जाननेकी कुंजी है।

रामके दिव्य गुणोंकी झाँकी कितनी मधुर और सुन्दर है—

स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते ।
उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते ॥
कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति ।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ॥
बुद्धिमान् मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः ।
वीर्यवान्न च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः ॥

(वा० रा० २ । १ । १०-११, १३)

तात्पर्य है—रामचन्द्र सर्वदा शान्तचित्त रहते थे। वे बड़ी कोमलता—मृदुताके साथ बोलते थे। वे भेंट होनेपर पहले ही बोलते थे—दूसरेके बोलनेकी प्रतीक्षा नहीं करते थे। उनसे कोई कितना भी रूखा और कड़ा क्यों न बोले, वे उसका उत्तर ही नहीं देते थे।

वे किसी प्रकार किये गये—भूलचूकमें किये गये—एक भी उपकारसे तुष्ट हो जाते थे, परंतु सैकड़ों अपकारोंकी भी उन्हें स्मृति नहीं रहती थी; क्योंकि उन्होंने अपने आपको वशमें कर रखा था।

वे बुद्धिमान् थे तथा बोलनेकी कलामें दक्ष थे—मधुर तथा प्रिय बोलते थे। वीर्यसे सम्पन्न थे, किंतु अपने महान् वीर्यके कारण वे कभी गर्वका अनुभव नहीं करते थे। वे कभी झूठ नहीं बोलते थे। रामकी अपनी प्रतिज्ञा थी—'रामो द्विर्नाभिभाषते।' (अयोध्या०, १८ । ३०)—राम कोई बात दो बार नहीं कहते थे।' एक बार जो कह दिया, कह दिया। वह अमिट हो गया—पाषाणके ऊपर खिंची रेखाकी तरह। इसीलिये प्रजाओंके साथ उनका सम्बन्ध बड़ा ही मधुर था। आसक्ति उभयमार्गी थी। रामका अनुराग प्रजाजनके ऊपर जैसा था, वैसा ही प्रेम प्रजाजनका रामके ऊपर था—

अनुरक्तः प्रजाभिश्च प्रजाश्चाप्युपरज्यते ॥

(वही, २ । १ । १४)

रामचन्द्रमें दूसरोंके मनोभावको समझनेकी विलक्षण शक्तिका परिचय हमें मिलता है। सुमन्त्र रामचन्द्रसे उनके साथ वन-गमनके लिये जब आग्रह करने लगे, तब रामचन्द्रने अपनी मनोवैज्ञानिकताका सूक्ष्म परिचय देते हुए यह वचन कहा था—

नगरीं त्वां गतं दृष्ट्वा जननी मे यवीयसी ।
कैकेयी प्रत्ययं गच्छेदिति रामो वनं गतः ॥
विपरीते तुष्टिहीना वनवासं गते मयि ।
राजानं नातिशङ्केत मिथ्यावादीति धार्मिकम् ॥

(वा० रा० २ । ५२ । ६१-६२)

'सुमन्त्र! आपकी सद्भावनाको मैं जानता हूँ, तथापि आपको साथ ले चलना मैं उचित नहीं समझता। मेरी कनिष्ठ माता कैकेयी जब अयोध्यामें तुम्हें लौटकर आया देखेंगी, तब उन्हें विश्वास होगा कि राम यथार्थतः वन गये हैं। अन्यथा मेरे वन जानेपर भी उन्हें संतोष नहीं होगा और राजा दशरथको मिथ्यावादी ही मानती रहेंगी। यह नहीं होना चाहिये।' कैकेयीके मनोभावका यह यथार्थ परिचय है।

इतना होनेपर भी वे कैकेयीकी निन्दा कथमपि सह नहीं सकते थे। अरण्यकाण्डका एक प्रसङ्ग है। १६वें सर्गमें हेमन्तकी रमणीय ऋतुके समय लक्ष्मण रामचन्द्रके साथ अयोध्याकी चर्चा बड़ी आत्मीयताके साथ कर रहे थे। उसी समय उन्होंने भरतके सच्चरित्र तथा कैकेयीके दुष्ट स्वभावका स्पष्ट उल्लेख करते समय एक मार्मिक बात कह दी—

न पित्र्यमनुवर्तन्ते मातृकं द्विपदा इति ।
ख्यातो लोकप्रवादोऽयं भरते नान्यथा कृतः ॥
भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः ।
कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी ॥

(वा० रा० ३ । १६ । ३४-३५)

'लोकमें प्रवाद प्रचलित है कि मनुष्य पिताके स्वभावका अनुवर्तन न कर माताके स्वभावका अनुवर्तन करता है। इस लोक-प्रवादको भरतने अपने व्यवहारसे एकदम उलट दिया। दशरथ-जैसे सौम्य पति तथा भरत-जैसे साधु-स्वभाव पुत्रके होनेपर भी अम्बा कैकेयी इस प्रकार क्रूरदर्शिनी कैसे हुई? यह बड़ा अचंभा है।'

इस संकेतसे रामचन्द्र मर्माहत हुए और उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा—

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन ।
तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु ॥

(वा० रा० ३ । १६ । ३७)

'हे तात लक्ष्मण! मध्यमा अम्बाकी निन्दा तुम्हें कभी नहीं करनी चाहिये। इक्ष्वाकुनाथ भरतकी ही कथा कहो।' अयोध्याके साम्राज्यपर कालरात्रिके समान अशुभ परिणामोंका पुञ्ज ढाहनेवाली कैकेयीके प्रति रामके हृदयमें कितनी सहानुभूति है, कितना असामान्य आदर है—यह स्पष्ट शब्दोंमें वाल्मीकिने संकेतित किया है।

रामके चरित्रमें विवेकका प्राधान्य दृष्टिगोचर होता है। सच्चे विवेकीकी दृष्टिसे वे अपने पिताके चरित्रकी आलोचनासे न विरत होते हैं और न आत्मचरित्रके विश्लेषणसे पराङ्मुख।

अन्तर्दृष्टिके प्रयोगसे दोषके स्थानोंको देखनेसे विवेकी पुरुष कभी पीछे नहीं हटता। दशरथके चरित्रका विश्लेषण उन्हें कामके प्राधान्यका संकेत देता है—

इदं व्यसनमालोक्य राज्ञश्च मतिविभ्रमम्।
काम एवार्थधर्माभ्यां गरीयानिति मे मतिः॥
को ह्यविद्वानपि पुमान् प्रमदायाः कृते त्यजेत्।
छन्दानुवर्तिनं पुत्रं तातो मामिव लक्ष्मण॥
(अयोध्या० ५३। ९-१०)

'इस विपत्तिको और राजाके मतिविभ्रमको देखकर मुझे अर्थ और धर्मकी अपेक्षा कामकी प्रबलता दृष्टिगोचर हो रही है। कौन ऐसा मूर्ख होगा; जो उसके मनोऽनुकूल आचरण करनेवाले पुत्रको प्रमदाके लिये छोड़ देगा। परंतु विद्वान् होकर भी मेरे पिताने वैसा ही किया।'

कौशल्या-जैसी जननीकी आज्ञा न माननेका अन्तःक्लेश रामचन्द्रके हृदयको हमेशा व्यथित करता था। तभी तो वे कह रहे हैं कि कोई भी नारी मेरे-जैसा पुत्र उत्पन्न न करे—मैं जो अपनी माताको अनन्त दुःख दे रहा हूँ। कौशल्याके प्रति मुझसे बढ़कर प्रीति रखनेवाली तो वह मैना है; जो अपने पिंजरमें बैठी हुई कहती रहती है—'ए सुग्गे! (मुझे पालनेवाली कौशल्याके) शत्रुके पैरको काट लो। मैं अपनी माताका किसी प्रकारका उपकार न कर सका—

मा स्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत् पुत्रमीदृशम्।
सौमित्रे योऽहमम्बाया दद्मि शोकमनन्तकम्॥
मन्ये प्रीतिविशिष्टा सा मत्तो लक्ष्मण सारिका।
यत्तस्याः श्रूयते वाक्यं शुक पादमरेर्दश॥
(अयोध्या० ५३। २१-२२)

रामकी आत्मग्लानि स्वचरित्रके विश्लेषणका परिणाम है।

मैत्रीके निर्वाहकी पराकाष्ठा रामके चरित्रमें दृष्टिगोचर होती है। आपद्ग्रस्त सुग्रीवके साथ मैत्री कर रामचन्द्रने उसकी कामनाकी समग्रतया पूर्ति की। मित्रका आदर्श है—

आढ्यो वापि दरिद्रो वा दुःखितः सुखितोऽपि वा।
निर्दोषश्च सदोषश्च वयस्यः परमा गतिः॥
(किष्किन्धा० ८। ८)

'मित्र धनी हो या दरिद्र; सुखी हो या दुखी अथवा निर्दोष हो या सदोष; वह मित्रके लिये सबसे बड़ा सहायक होता है।'

मित्रके निश्छल स्नेहको देखकर जनका त्याग; सुखका त्याग और देशका त्याग भी करना न्याय्य है। इस आदर्शको रामने अपने जीवनमें पूरा कर दिखाया। इसी मित्रता-के निर्वाहके लिये रामके चरित्रमें एक दोषाभास भी दीखता है, जिसे आलोचकोंने बड़ा ही तूल दिया है। इसका सम्बन्ध वालिवधसे है। रामने प्रतिज्ञा की थी कि वालीको आज ही मारूँगा और एक ही बाणसे मारूँगा—

बाणेनैकेन तं हत्वा राज्ये त्वामभिषेचये।
(अध्यात्म०, किष्किन्ध० २। ५)

वाल्मीकि-रामायणमें भी ऐसी ही प्रतिज्ञा रामने की है—वालीको एक ही बाणके द्वारा मारनेकी। फलतः एक ही बाणके द्वारा वालीका संहार करना रामको अभीष्ट था, उसके साथ पैंतरेबाजी नहीं करनी थी। वाली रावणकी अपेक्षा कहीं अधिक पराक्रमी तथा शूर था। जिस रावणके मारनेके लिये रामको अनेक दिनोंतक घोर व्यवसाय करना पड़ा, उससे भी अधिक बलशाली वालीका निधन क्या एक दिनकी लड़ाईके द्वारा किया जा सकता था? नहीं; कभी नहीं। तब मित्रके समक्ष कृत प्रतिज्ञाका निर्वाह कैसे हो? इसीलिये रामको वह युक्ति करनी पड़ी; जिसके लिये उनका नाम बदनाम किया जाता है।

रामके हृदयकी उदारताका परिचय तब मिलता है, जब वे मारुतनन्दन हनुमान्से उनके उपकारका बदला चुकानेमें अपनेको नितान्त असमर्थ पाते हैं। वे कहते हैं—'हनुमान्! तुमने जो मेरे साथ उपकार किया है, वह मेरे अंदर ही जीर्ण हो जाय, गल-पच जाय; मेरे लिये उसका प्रत्युपकार करनेका कोई कभी अवसर ही न आये।' ऐसी कामना क्यों? बात यह है कि प्रत्युपकार चाहनेवाला व्यक्ति अपने उपकारीके लिये विपत्तिकी कामना करता है, जिस उपकारका बदला चुकानेकी इच्छा रखनेसे उसे अपने प्रत्युपकार करनेका उचित अवसर मिले। धन्य हैं राम! वे कभी सोचते भी नहीं थे कि हनुमान्के ऊपर विपत्ति आये, जिससे उनके प्रति प्रत्युपकार करनेका कभी अवसर मिले। वाल्मीकिकी कमनीय सूक्तिपर ध्यान दें—संक्षिप्त चुटीली उक्तिपर—

मदङ्गे जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्॥
(वा० रा० ७। ४०। २४)

रामचन्द्रमें वीर्य तथा तेज, शक्ति तथा सामर्थ्यका अनुपमेय पुञ्ज विद्यमान था। शक्तिके साथ क्षमाका योग मणिकाञ्चनयोगके समान स्पृहणीय तथा आदरणीय होता है। शक्तिका दुरुपयोग करनेवाले वीर ही अधिक देखे गये हैं; परंतु राममें शौर्य एवं बलके साथ संयमका; विनयका तथा क्षमाका इतना सुभग सामञ्जस्य था कि उनकी शक्ति पाशविक शक्ति न होकर दैवशक्तिके सदृश मङ्गल तथा कल्याणकी सम्पादिका थी।

उनकी शक्तिका चमत्कार तो पूरे रामायणमें उपलब्ध

होता है, परंतु रावणके साथ उनके भीषण संघर्षके समय वह शक्ति अलौकिक रूप धारणकर आकाशचारी देव तथा गन्धर्वोंकी श्लाघाका विषय बन गयी । रावणके साथ आरम्भिक युद्धमें (वा० रा० युद्धकाण्डका ५९ सर्ग) रामचन्द्रने जब अपने बाणोंसे उसके धनुष तथा किरीट-मण्डलको ध्वस्त कर दिया, तब रावणकी दशा बड़ी दीन और दयनीय बन गयी थी । धनुषके अभावमें योद्धा ही कैसा । इस समय रामचन्द्रने शत्रुके प्रति जो महनीय अनुकम्पा दिखलायी, उससे उनकी शक्तिकी महत्ता स्पष्टरूपसे प्रमाणित होती है । वे चाहते तो उसी समय रावणको अपने तीव्र शरोंसे धराशायी कर देते, परंतु निस्सहाय तथा निरायुध शत्रुके ऊपर शस्त्रका प्रहार नितान्त अनुचित होता है । रामचन्द्र रावणको लङ्कामें जाकर आराम करने तथा पुनः रथ तथा आयुधोंसे सुसज्ज होकर लौटनेकी सलाह देते हैं । उनके मार्मिक वचनोंपर ध्यान दीजिये—

कृतं त्वया कर्म महत् सुभीमं
हतप्रवीरश्च कृतस्त्वयाहम् ।
तस्मात् परिश्रान्त इति व्यवस्य
न त्वां शरैर्मृत्युवशं नयामि ॥
प्रयाहि जानामि रणार्दितस्त्वं
प्रविश्य रात्रिंचरराज लङ्काम् ।
आश्वस्य निर्याहि रथी च धन्वी
तदा बलं प्रेक्ष्यसि मे रथस्थः ॥
(वही, ६ । ५९ । १४२-४३)

आशय है कि 'रावण ! तुमने आज भयंकर कार्य किया है; क्योंकि मेरी सेनाके प्रधान वीरोंको तुमने मार डाला है । इतनेपर भी थका हुआ समझकर मैं बाणोंसे तुम्हें मृत्युके अधीन नहीं कर रहा हूँ । तुम युद्धसे पीड़ित हो, श्रान्त हो । लङ्कामें जाकर कुछ देरतक विश्राम कर लो । रथ और धनुषसे सुसज्जित होकर पुनः आना, तब मेरा बल देखना ।'

इस घटनाकी सत्यताकी पुष्टि अध्यात्मरामायण (युद्धकाण्ड ६ । २९-३०) के द्वारा भी होती है । यह था रामचन्द्रका शत्रुके प्रति क्षमाभाव—शक्तिके साथ क्षमाका मणिकाञ्चनयोग ।

× × ×

राम-रावणका अप्रतिम संग्राम तो प्रख्यात ही है । रामचन्द्रने पर्याप्त परिश्रम तथा संघर्षके बाद दशाननको मृत्युके अधीन कर दिया । अब युद्धमें पराजित और ध्वस्त शत्रुके प्रति विजेताके व्यवहारकी दैवी सम्पदा देखनी हो तो रामचन्द्रके इस व्यवहारकी ओर दृष्टिपात करें ।

रावणकी मृत्युके अनन्तर उसके देह-संस्कारकी समस्या सामने आकर खड़ी हुई । विभीषण रामके आदेशपर रावणका संस्कार करनेको उद्यत नहीं था । उसका कथन है—'मैंने अपनी बुद्धिसे भलीभाँति विचार कर लिया है । धर्मका त्याग करनेवाले, क्रूर, नृशंस, असत्य बोलनेवाले, दूसरेकी स्त्रीका धर्षण करनेवाले रावणका संस्कार कथमपि उचित नहीं है । मेरा भाई होनेपर भी यह शत्रु था; क्योंकि सब प्राणियोंके अहितमें निरत था । फलतः पूज्य होनेपर भी वह मुझसे पूजा पानेके योग्य नहीं है ।' (युद्धकाण्ड १११ सर्ग, ९२—९५ श्लोक) इसपर रामने विभीषणकी बड़ी भर्त्सना की और उसे समझाया—'यह ठीक है कि वह अधर्म और अनृतसे युक्त था; परंतु साथ-ही-साथ वह तेजस्वी, शूर, संग्रामोंमें सदैव बलवान् था । इन्द्रादि देव भी उसे परास्त नहीं कर सके थे । फलतः समस्त जगत्को रुलानेवाला रावण बल-पराक्रमसे सम्पन्न तथा महामनस्वी था । उसका संस्कार अवश्य करना होगा तुम्हें । यह मेरा आदेश है । जानते नहीं—वैर मरनेतक ही रहता है । मरनेके बाद वैरका अन्त हो जाता है । अब मेरा प्रयोजन भी सिद्ध हो चुका । अतः जैसे वह तुम्हारा भाई है, वैसे ही वह मेरा भी है । अतएव उसका दाह-संस्कार करो'—

तेजस्वी बलवान् शूरः संग्रामेषु च नित्यशः ।
शतक्रतुमुखैर्देवैः श्रूयते न पराजितः ॥
महात्मा बलसम्पन्नो रावणो लोकरावणः ।
मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम् ॥
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ।
(युद्ध० १११ । ९९—१०१)

यह है रामका शत्रुके प्रति क्षमाभाव । हजार दोष होनेपर भी रावण मृत्युके अनन्तर श्लाघनीय है, उपेक्षणीय नहीं । फलतः उसके दाह-संस्कारमें कोई कमी न होनी चाहिये । यह है शौर्यका अप्रतिम आदर्श, वीरताका चूडान्त निदर्शन तथा क्षमाभावका महनीय उत्कर्ष !!!

भगवान् रामचन्द्रमें सौन्दर्यका, शीलका और शक्तिका विलक्षण सामरस्य था । उन महामहिमामण्डितके चरित्रमें इन तीनोंका अद्भुत सामञ्जस्य विराजमान था । इसीलिये समग्र संसार श्रीरामचन्द्रको मर्यादापुरुषोत्तम मानकर उनके द्वारा स्थापित धर्मराज्यके लिये आज भी लालायित है । सचमुच रामचन्द्र साक्षात् भगवान् थे । अतएव उनके द्वारा प्रतिष्ठित सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था मानवमात्रके लिये मङ्गलमयी है—यही सर्वथा सत्य है ।



भगवान् श्रीरामका आदर्श चरित्र

(लेखक—याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड़, वेदाचार्य)

भारतीय पुराणों एवं काव्योंमें भगवदवतारकी अनेकविध कथाएँ वर्णित हैं। निराकार ईश्वरकी साकारताको ही 'अवतार' कहा जाता है। 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' (तैत्तिरीयोप० २। ६)—इस मर्मोक्तिके अनुसार सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि ही ईश्वररूप है। सामान्यतः सम्पूर्ण संसारके अवतार होनेपर भी कुछ विशिष्ट विभूतियाँ अवताररूपमें परिगणित हुई हैं, जिनके द्वारा—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

—इस भगवद्वचन (गीता ४। ८) की चरितार्थता सुस्पष्टतः मानव-जीवनको सदासे प्रभावित करती आ रही है। उन विशिष्ट अवतारोंमें भी मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका अवतार सर्वप्रमुख एवं नितान्त जगत्-कल्याणकारक है।

आज भारतमें अन्य अवतार सम्भवतः कुछ विस्मृत अथवा लोगोंकी दृष्टिसे दूर हो गये हैं, परंतु राम एवं कृष्णका अवतार तो प्रत्येक भारतीयके मानसमें ओतप्रोत हो चुका है। यह अवतार भारतकी उस भयंकर वेलामें हुआ था, जिसका वर्णन आदिकवि वाल्मीकि, व्यास तथा अन्यान्य मनीषियोंने पुष्कल मात्रामें किया है; किंतु फिर भी वे नास्तिकोंको संतोष प्रदान नहीं कर सके। अपने कालमें धर्म, अर्थ एवं कामके क्षेत्रमें सामाजिक अस्त-व्यस्तताको सुव्यवस्थित रूप प्रदान करनेका समस्त श्रेय 'रामावतार'को ही है! ये तीनों पुरुषार्थ उस कालमें निर्मर्याद हो चुके थे। शक्ति ही नियामक थी। भारतके सम्राट् चक्रवर्ती-पद-विभूषित दशरथ वृद्धावस्थामें भी राज्य-संचालन करते रहे। भारतके अधिकांश दक्षिण-प्रदेश तथा विहारके कुछ भूभाग लङ्काधिपति रावणके अधीन हो गये थे। दण्डकारण्य, नासिक आदिपर रावण अपने सैन्य-शिविर स्थापितकर भारतीय शासनको चुनौती दे रहा था। इस विकराल राष्ट्रीय संकटमें, जब कि ब्राह्मण-वध, स्त्री-अपहरण तथा लूट-खसोट आदिकी घटनाएँ उग्ररूपमें नग्न ताण्डव कर रही थीं, उस समय श्रीरामने सर्वप्रथम अतिनिकट होनेके कारण महर्षि विश्वामित्रके नेतृत्वमें उत्तर भागके भूखण्ड (बक्सर डिविजन आदि) को ताड़काका वध करके उन्मुक्त किया। ताड़का रावणकी स्थानीय प्रतिनिधि थी। महर्षि विश्वामित्रसे युद्धकी शिक्षा प्राप्तकर अपने पिता दशरथकी वृद्धावस्थाके कारण राम युवराजोचित अधिकारोंद्वारा प्राशासनिक स्थितिको प्रायः बारह वर्षतक सुव्यवस्थित करते रहे। इस कालमें उनके नैतिक एवं चारित्रिक बलका ही वह महान् प्रभाव था कि महाराज दशरथके जीवनमें ही जनता उनको राज्यासनपर अधिष्ठित देखना चाहती थी; परंतु यह सम्भव न हो सका। दशरथद्वारा दिये हुए आश्वासनमय वचनोंका महारानी कैकेयीने लाभ उठाना चाहा। गृह-युद्धकी आशङ्कासे आशङ्कित होकर श्रीरामने धार्मिक दृष्टिसे कामिक एवं आर्थिक समस्याओंका समाधान करते हुए 'पितृ-आज्ञा ही सर्वोपरि है'—इस सर्वमान्य सिद्धान्तसे राज्य-तन्त्रका अस्तित्व सुरक्षित कर दिया। रामायणका यह स्थल तत्कालीन राज्य-तन्त्रपर धर्मका स्पष्ट प्रभाव प्रदर्शित करता है। यह धर्म, नैतिकता, सहिष्णुता एवं वीरतापर आधारित था। भगवान् श्रीरामने राज्यविहीन होकर भी वीरोचित स्वभावके कारण अपनी धर्मपत्नी (सीता) और अपने भाई (लक्ष्मण) के साथ दण्डकारण्यमें निवास करके अवशिष्ट राष्ट्रीय कार्य (दक्षिणी भूभागकी निर्मुक्ति) सम्पन्न किया।

श्रीरामने जनस्थानके निवासियोंसे जब यह प्रतिज्ञा की—'मैं यहाँसे राक्षसवंशका उन्मूलन कर दूँगा', तब सीताने कहा—'राज्यसे तो आप निर्वासित हो ही गये हैं, फिर भी—यहाँ वनमें आकर भी शान्तिसे रहना नहीं चाहते। राक्षसोंने आपका क्या बिगाड़ा है?' यह सुनकर भगवान् श्रीरामने उत्तर दिया—'सीते! मैं लक्ष्मणके सहित तुम्हें त्याग सकता हूँ, मृत्युका भी आलिङ्गन करनेको उद्यत हूँ, परंतु अपनी की हुई प्रतिज्ञा नहीं छोड़ सकता और वह प्रतिज्ञा, जो ब्राह्मणोंसे कर चुका हूँ; उसे कदापि नहीं छोड़ सकता।'

इस स्थलपर श्रीरामचन्द्रजीकी वह दिव्य मर्यादा परिलक्षित होती है, जो वर्तमान कालके महापुरुषोंमें बहुत कम पायी जाती है। आज विश्वमें—जहाँ भौतिक, वैज्ञानिक एवं आर्थिक सम्पन्नता सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही है और सब वस्तुएँ सुलभ हो रही हैं—केवल एक ही वस्तु दुर्लभ है; वह है—'दृढ़प्रतिज्ञता।'

श्रीरामका जीवन मानव-जीवनका मूल प्रेरणात्मक स्रोत है। वे मानवता, सभ्यता एवं आदर्श मर्यादापूर्ण जीवनके प्रतीक हैं। रामताका लोप ही लौकिक मर्यादाका विनाश है।

मानवताका सबसे सुन्दर उदाहरण श्रीरामका वह व्यक्तित्व है, जिसे रावणकी मृत्युके पश्चात् महर्षि वाल्मीकिने उपस्थित किया है। रावण मारा जा चुका था। उस समय भगवान् राम ध्यानमग्न होकर सीताके सम्बन्धमें कुछ चिन्तन करने लगे। उन्होंने विभीषणको आज्ञा दी—'शीघ्र ही सीताको मेरे समक्ष उपस्थित करो।' विभीषणने सीताको लानेकी व्यवस्था की। श्रीरामके समक्ष उपस्थित करनेके लिये जब सीता शिविका (पालकी) पर लायी जा रही थीं, उस समय विभीषण सीताके दर्शनार्थ एकत्रित हुई भीड़को तितर-बितर करने लगे। तब रामने विभीषणसे कहा—"सीताके आनेके उद्देश्यसे लोगोंको हटाना मेरा अनादर करना है। सभी लोग मेरे आत्मीय हैं, इनके समक्ष आनेमें सीताको कोई दोष नहीं। स्त्रियोंके लिये गृह, वस्त्र तथा अन्यान्य आवरण 'आवरण' नहीं, अपितु स्त्रियोंका चरित्र ही उनका खास 'आवरण' है। युद्धस्थल, स्वयंवर, यज्ञ, विवाह तथा विपत्काल आदिमें स्त्रीका बाहर निकलना निन्द्य नहीं है, विशेषकर मेरे सांनिध्यमें तो कदापि अनुचित नहीं है। अतः सीताको पालकीपर न लाकर पैदल ही मेरे सामने लाओ, जिसमें सभी लोग उन्हें देखें।" (वा० रा० ६ । ११४) विभीषणने वैसा ही किया और सीताको पैदल चलकर ही रामके सम्मुख आना पड़ा। यह सामाजिक जीवन एवं राजनीतिक संघटनशक्तिकी परिचायक कैसी सुन्दर अभिव्यक्ति है।

अपने पार्श्वमें स्थित, राक्षस-गृहसे आयी हुई, लज्जासे अवनतमुखी सीताको देखकर भगवान् रामके मनमें रोष, हर्ष और दैन्यके भाव उत्पन्न होने लगे। अन्तमें उन्होंने सीताके समक्ष अपना हार्दिक भाव जिन शब्दोंमें प्रकट किया, उनसे प्रजापालक मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके आदर्श चरित्रका परिचय प्राप्त होता है। यह रामकी उच्च लोकमर्यादा है। राजाका अनुसरण ही प्रजा करती है। यदि रामने अपने जीवनमें किसी प्रकार भी अमर्यादाको प्रश्रय दिया होता तो वे 'मर्यादापुरुषोत्तम' न कहे जाते।

अन्ततः अग्निप्रवेशद्वारा शुद्ध सीताको देवगणसे प्रबोधित होकर श्रीरामने ग्रहण किया, परंतु अयोध्या पहुँचनेपर मूर्ख नागरिकोंकी भ्रान्तिको दूर करनेके लिये भगवान् रामने व्यक्तिगत स्वामीके रूपमें अत्यन्त मर्माहत होते हुए भी राजाके कर्तव्य-पालनके उद्देश्यसे गर्भिणी सीताको पुनः निर्वासित कर दिया।

महाकवि भवभूतिने 'उत्तररामचरित'में भगवान् रामका चरित्र चित्रित करते हुए बड़ा ही स्पष्ट सुन्दर निर्देश किया है—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति॥
(२ । ७)

अर्थात् 'लोकोत्तर महापुरुषोंका मन एक साथ वज्रसे भी कठोर और पुष्पसे भी कोमल हुआ करता है, वह साधारण-जनोंके लिये दुरवबोध है।'

इस प्रकार राजतन्त्रका प्रजानुरञ्जनके लिये प्रयोग श्रीरामके ही दृढ़ मनके वशकी वस्तु हो सकती थी। जनतामें वैरभावकी वृद्धि रोकने तथा असहिष्णुताको शान्त करनेके लिये उन्हीं मर्यादापुरुषोत्तम रामने राजतन्त्रका मौलिक विवेचन करते हुए राजनीतिक समन्वय स्थापित करनेमें भी अपूर्व सफलता प्राप्त की थी।

श्रीरामने वन-निर्गमनके समय लक्ष्मणसे कहा था—

एतदर्थं हि राज्यानि प्रशासति नराधिपाः।
यदेषां सर्वकृत्येषु मनो न प्रतिहन्यते॥
(वा० रा० २ । ५२ । २५)

अर्थात् 'राजालोग इसीलिये राज्यका शासन सँभालते हैं कि किसी भी काममें उनका मनोविघात न हो।'

महाराज अत्यन्त दुःखी हैं; अतः वे जो कुछ चाहते हैं, उन्हें कर लेने दो।

इस समय यदि राम कौसल्याद्वारा अनुमोदित लक्ष्मणके* परामर्शको मानते तो अधिक सम्भव था कि राज्यक्रान्ति हो जाती; क्योंकि जनता भी उनके साथ थी; परंतु श्रीरामने अपनी हार्दिक क्रान्ति-भावनाको एक दूसरा ही मोड़ दिया और उन्होंने राज्यतन्त्रको प्रजातन्त्रके रूपमें परिणत किया। यह कार्य क्रमशः होकर उनके

---

* गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम्॥
इत्यादि—
(वा० रा०, अयोध्याकाण्ड २१ । १३ इत्यादि)

जीवनके पश्चिमांशमें ही सुस्पष्ट हुआ, जब कि उन्होंने अपने पुत्रों तथा भ्रातृपुत्रोंमें राज्यका समविभाजन कर दिया था। इस प्रकार 'त्रेतायुग'में भी सर्वप्रथम प्रजातन्त्रका आदि संस्थापक मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामको ही कहना चाहिये।

जिस समय जंगलमें भरत श्रीरामको मनानेके लिये आ रहे थे, उस समय लक्ष्मणने दूरसे ही भरत और भरतकी सेनाको आते देखकर संदेह किया कि 'कहीं हमलोगोंको सर्वथा निर्मूल करनेके लिये ही तो भरत सेना लेकर नहीं आ रहे हैं।' लक्ष्मण युद्धके लिये तत्पर होने लगे, परंतु श्रीरामने उनसे कहा—'भरतसे मैं कह दूँगा कि तुम अपना राज्य लक्ष्मणको ही दे दो।' भगवान् श्रीरामके वाक्यको सुनकर लक्ष्मण लज्जित होकर चुप हो गये। यह भ्रातृप्रेमका अनूठा उदाहरण तो है ही, साथ ही आत्मनिर्भरताकी भी पराकाष्ठा है।

भगवान् श्रीरामके अलौकिक गुणोंसे सारा भारतीय वाङ्मय सुशोभित है। भगवान् रामका वास्तविक ज्ञान कराना ही वाल्मीकीय रामायणका प्रधान उद्देश्य है।

'रामादिवद्वर्तितव्यं न क्वचिद्रावणादिवत्' की विशिष्ट शिक्षा रामावतारसे ही जगत्को प्राप्त होती है।

श्रीरामका शील-स्वभाव

सुनि सीतापति-सील-सुभाउ।
मोद न मन, तन पुलक, नयन जल, सो नर खेहर खाउ॥ १॥
सिसुपन तें पितु, मातु, बंधु, गुरु, सेवक, सचिव, सखाउ।
कहत राम-बिधु-बदन रिसोहैं सपनेहुँ लख्यो न काउ॥ २॥
खेलत संग अनुज बालक नित, जोगवत अनट अपाउ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत, देत दिवावत दाउ॥ ३॥
सिला साप-संताप-बिगत भइ परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हिय, चरन छुए को पछिताउ॥ ४॥
भव-धनु भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गये ताउ।
छमि अपराध, छमाइ पाँय परि, इतौ न अनत समाउ॥ ५॥
कह्यो राज, बन दियो नारिबस, गरि गलानि गयो राउ।
ता कुमातु को मन जोगवत ज्यौं निज तन मरम कुघाउ॥ ६॥
कपि-सेवा-बस भये कनौड़े कह्यो पवनसुत आउ।
देबे को न, कछू रिनियाँ हौं, धनिक तूँ पत्र लिखाउ॥ ७॥
अपनाये सुग्रीव बिभीषन, तिन न तज्यो छल-छाउ।
भरत सभा सनमानि सराहत, होत न हृदय अघाउ॥ ८॥
निज करुना करतूति भगत पर चपत चलत चरचाउ।
सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत, सुनत कहत फिरि गाउ॥ ९॥
समुझि समुझि गुनग्राम राम के, उर अनुराग बढ़ाउ।
तुलसिदास अनयास रामपद पइहै प्रेम-पसाउ॥ १०॥

(विनय-पत्रिका, १००)

श्रीरामके आदर्श गुण

(लेखक—आचार्य श्रीमुंशीरामजी शर्मा)

आर्यावर्तका प्रतिनिधि-पुरुष यदि भारतीय इतिहासमें किसीको कहा जा सकता है तो वह राम हैं। राम न केवल आदर्श राजा हैं, अपितु वे आदर्श पुत्र हैं, आदर्श पति हैं, आदर्श बन्धु हैं और आदर्श स्वामी हैं। उनके जीवनमें आर्य आदर्शोंका जो विकास हुआ, वह इस देशके द्वारा ऐसा स्वीकृत हुआ कि हमारी जीवन-धाराका एक विशिष्ट अङ्ग बन गया। आज समग्र भारत राममय जान पड़ता है। हिमालयकी कन्दराओंमें रामनाम गूँज रहा है। विन्ध्य-पर्वतश्रेणी रामनामके जय-घोषसे निनादित है। गोदावरी और कावेरीकी उत्तुङ्ग तरंगोंमें अवगाहन करनेवाले स्नातक राम-रामका जाप करते हुए रामके पुनीत नाममें रमे रहते हैं। कन्याकुमारी और रामेश्वरम्‌के मन्दिर इसी पावन नामका स्मरण कराते हैं। पंजाब, सिंध, राजस्थान, अङ्ग-बङ्ग और कलिङ्गमेंसे कौन-सा ऐसा प्रान्त है, जो इस पवित्र रामनामकी दीक्षासे वञ्चित कहा जा सके ? तक्षशिला रामके ही वंशजका बसाया हुआ है। लाहौरको 'लवपुर' और कसूरको 'कुशपुर' कहा जाता है। समग्र देश राम-जीवनसे सम्बद्ध तीर्थस्थानोंसे व्याप्त है। हमारे पर्व—नवरात्र, दीपावली, दशहरा आदि भी देशभरमें मनाये जाते हैं। कवियोंने राम-गाथा-गायनमें अपने पुरुषार्थकी इतिश्री समझी है। संतोंने रामके निर्गुण रूपकी उपासना की है तो वैष्णव कवियोंने उनके सगुण रूपको अपनाया है। राम सम्प्रदाय-भावनासे भी ऊँचे उठ गये। बौद्ध-सम्प्रदायमें 'दशरथजातक' लिखा गया तो जैन-साहित्यमें 'पउम चारिउ'-जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे गये। आजका भारतीय कवि भी रामको अपनी वाणीका विषय बनाता है और उसपर कविता लिखता है। शिक्षित वर्ग ही नहीं, अपढ़-अशिक्षित, कोल-भील-गोंड आदि सभीके हृदयोंमें राम-नाम बसा हुआ है और अब जो अनुसंधान हुए हैं, वे भारतके बाहर भी दूर-दूर देशोंमें पहुँचे हुए इस राम-नामकी तेजस्विताकी उद्घोषणा कर रहे हैं। मेक्सिकोमें राम-सीतोत्सव मनाया जाता है! पेरूका सूर्यमन्दिर सूर्यवंशके रामकी स्मृतिको जाग्रत् कर देता है। इटलीका रोम नगर अपने मूलरूपमें रामका ही अभिव्यञ्जक है। मिश्रके राजाओंके नाम भी 'राम' शब्दसे संयुक्त हैं। एशियाके पश्चिममें भी कुछ स्थानोंके नाम 'राम' शब्दसे प्रारम्भ होते हैं, जैसे रामसर, रामल्लाह। यूनानकी कला और वीरतापर रामकी मुद्रा अङ्कित है। रूसका साइबेरिया और चीनके उत्तरका मंगोलिया राम-कथाओंसे निस्सृत लोक-गाथाओंको अबतक अपने क्रोडमें सँजोये हैं। जापानके राजाका सूर्यवंश और उत्तरमें लक्ष्मीका मन्दिर तथा ईरानके राजाका अपनेको 'आर्यमिहिर' (सूर्य) कहना आर्योंके पौराणिक इतिवृत्तोंका स्मरण करा रहे हैं। कम्बोडिया (कम्बुज) की राजधानी अयोध्या और वहाँके मन्दिरोंपर अङ्कित रामगाथा रामके यश-विस्तारका शङ्खनाद कर रही है। सुमात्रा और जावाके प्राचीन मन्दिर रामचरित-गाथाओंका गायन कर रहे हैं। स्याम और ब्रह्म—दोनों ही देश रामके इतिहाससे सुपरिचित हैं। स्याम और चीनकी भाषामें रामायणकी रचना हुई है। रामकी यह महिमा, उनके नामकी यह गरिमा और उनके चरित्रकी यह द्राघिमा कहाँ-कहाँतक पहुँची है और कैसे विश्वव्यापी बनी है—इसे अनुभव करते ही हृदय गद्गद हो उठता है। मेरा राम हमारा राम बना हुआ है। अयोध्याकी गलियोंमें खेलनेवाला राम विश्वम्भरा भगवतीकी क्रोडका बालक बना हुआ है। वह विश्वके प्राङ्गण-प्राङ्गणमें खेल रहा है, हृदय-हृदयमें जगमगा रहा है और सबकी जिह्वापर विराजमान है।

किस मङ्गलमयी घटिकामें राम कौसल्याकी कोखसे उत्पन्न हुए ? वाल्मीकिने जब नारदसे पूछा—'इस पुण्यभूमिपर कौन वह नर-रत्न है, जिसका मैं यशोगान करूँ ?' तब नारदने कौसल्याके इसी लालकी ओर इङ्गित किया था। इङ्गित ही नहीं, उस निखिल गुण-राशिका आख्यान कर डाला था, जो एक सुविकसित मानवकी अर्जित सम्पदा बन जाती है—ऐसी सम्पदा, जिसका धनी लोकोत्तर दिव्य सिद्धियोंके आधानसे अपने कुलको तो उज्ज्वल कर ही जाता है, आगे आनेवाली पीढ़ियोंके लिये भी अतुल आदर्श-निधि छोड़ जाता है। इस निधिका आकलन, ग्रहण और प्रस्फुटन जन-जनके कल्याण-साधनका मार्ग प्रशस्त कर देता है।

रामके जिन गुणोंका उल्लेख वाल्मीकि-रामायणमें हुआ है, वे व्यक्ति, समाज, धर्म, राजनीति आदि जीवनके सभी पार्श्वोंका स्पर्श कर रहे हैं। उनका जन्म प्रसिद्ध सूर्यवंशी

इक्ष्वाकुके कुलमें हुआ था। अपनी अभिरामताके कारण ही वे जनतामें 'राम'नामसे प्रख्यात हुए थे। वे आत्मवशी, महापराक्रमी, द्युतिमान् और धृतिमान् थे। उनका व्यक्तित्व सहज ही सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। वे बुद्धिमान्, नीतिमान्, वाग्मी, श्रीमान् और शत्रुतासे दूर थे। वाल्मीकिने उनके शरीरका वर्णन करते हुए लिखा है—

विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः॥
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिंदमः।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः॥
समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ् शुभलक्षणः॥
(वा० रा० १।१।९-११)

'उनके विशाल कंधे थे, विशाल भुजाएँ थीं, शङ्खके समान ग्रीवा थी, ठोड़ी चौड़ी थी, विशाल वक्षःस्थल था, ग्रीवाकी हँसली मांसलतामें दबी हुई थी, घुटनोंतक लटकती हुई बाँहें, सुन्दर सिर, शोभन ललाट, विक्रमसे ओत-प्रोत, समानरूपसे विभाजित अवयव, सचिक्कण शरीर, पीन वक्ष, विशाल आँखें और शोभासम्पन्न समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त उन प्रतापशालीका शरीर था।'

मानसिक गुण

वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान्।
(वही, १।१।१४-१५)

'वे वेद और वेदाङ्गोंके तत्त्वको जाननेवाले हैं, धनुर्विद्यामें निष्णात हैं, समस्त शास्त्रोंके मर्मज्ञ हैं, उनकी स्मृति और प्रतिभाशक्ति महान् हैं।'

धार्मिकता

धर्मज्ञः सत्यसंधश्च प्रजानां च हिते रतः।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्॥
प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता॥
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता।
(१।१।१२—१४)

'वे धर्मज्ञ हैं, सत्यप्रतिज्ञावाले हैं, प्रजाओंके हितमें संलग्न हैं, यशस्वी हैं, ज्ञानी हैं, पवित्र हैं, आत्मवशी हैं और एकाग्रचित्तवाले हैं। प्रजापतिके समान वे श्रीसे सम्पन्न, सबका पोषण करनेवाले, शत्रुदमनकर्ता, प्राणिमात्रके रक्षक, मर्यादाके पालक एवं रक्षक और स्वजनोंकी पीड़ाको दूर करनेवाले हैं।'

सर्वप्रिय

सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः॥
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः॥
स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः।
(वही, १।१।१५—१७)

'वे सभी जनोंको प्रिय थे, उनके स्वभावमें सरलता थी, दीनता उनसे कोसों दूर भागती थी, वे सर्वथा जागरूक रहते थे; जैसे नदियाँ सदैव समुद्रकी ओर जाती हैं, वैसे ही सज्जन सर्वदा उनके समीप जाते रहते थे। वे सच्चे अर्थोंमें आर्य थे; सबके प्रति समानभाव रखते थे, सदैव प्रियदर्शन थे और समस्त सद्गुणोंके निधान थे। कौसल्याके आनन्दको बढ़ानेवाले राम सभीके लिये आनन्दवर्धनकारी थे।'

समत्व

समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव॥
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत् प्रियदर्शनः।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः॥
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः।
....
न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुंधराम्॥
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया।
(वही, १।१।१७-१९; २।१९।३२)

'वे एक ओर समुद्रके समान गम्भीर थे तो दूसरी ओर हिमालयके समान दृढ़ धैर्यवाले थे। वे एक ओर पराक्रममें त्रिविक्रम विष्णुके समान थे तो दूसरी ओर चन्द्रमाके समान सौम्य और प्रियदर्शन थे। क्रोधके समय वे यदि कालाग्निके समान दिखलायी देते थे तो क्षमामें पृथ्वीके समान भी थे। त्यागमें वे कुबेरके समान थे तो सत्य-पालनमें मानो धर्मके ही अवतार थे।......चाहे वनगमन हो और चाहे राज्यका परित्याग हो, उनके चित्तमें कभी विकार नहीं देखा गया। उनकी यह सद्गुण-राशि उन्हें समस्त मानवोंके ऊपर स्थित कर रही थी।'

प्रतिज्ञापालन

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम् ॥
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ।
(वही, ३ । १० । १८-१९)

अरण्यकाण्डमें राम कहते हैं—'सीते ! मैं तुम्हें छोड़ सकता हूँ, लक्ष्मणको छोड़ सकता हूँ, अपने प्राणोंका भी परित्याग कर सकता हूँ; परंतु जो मैंने प्रतिज्ञा की है, विशेषतः ब्राह्मणोंके प्रति, उसे मैं कभी नहीं छोड़ सकता ।'

इसी प्रकार वाल्मीकिने अन्यत्र लिखा है कि 'राम सत्य पराक्रमवाले हैं । उनके प्राण भले चले जायँ, वे कभी झूठ नहीं बोलते, सदा सत्यभाषण करते थे । वे देना ही जानते थे । लेना नहीं'—

दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात् सत्यं ब्रूयान्न चानृतम् ।
अपि जीवितहेतोर्वा रामः सत्यपराक्रमः ॥
(वही, ५ । ३३ । २५)

रामके धर्मशील बलका वर्णन करते हुए वाल्मीकि लिखते हैं—

नास्य क्रोधः प्रसादश्च निरर्थोऽस्ति कदाचन ॥
हन्त्येष नियमाद् वध्यानवध्येषु न कुप्यति ।
(वही, २ । २ । ४५-४६)

'रामका क्रोध या प्रसन्नता निरर्थक नहीं होती थी । जो हन्तव्य है, उसका वे निश्चितरूपसे वध करते थे, परंतु जो अवध्य है, उसपर कभी कोप भी नहीं करते थे ।'

रामके ऐसे ही देवोपम चरित्रोंको देखकर महर्षि वाल्मीकिने लिखा है—

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ॥
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ।
(वही, १ । २ । ३६-३७)

'जबतक धराधामपर पर्वत और सरिताएँ स्थित हैं, तबतक श्रीराम-कथा लोकमें प्रचलित रहेगी ।'

दीनहितकारी राम

ऐसे राम दीन-हितकारी ।
अतिकोमल करुनानिधान बिनु कारन पर-उपकारी ॥ १ ॥
साधन-हीन दीन निज अघ-बस, सिला भई मुनि-नारी ।
गृह तें गवनि परसि पद पावन घोर साप तें तारी ॥ २ ॥
हिंसारत निषाद तामस बपु, पसु-समान बनचारी ।
भेंट्यो हृदय लगाइ प्रेमबस, नहिं कुल-जाति बिचारी ॥ ३ ॥
जद्यपि द्रोह कियो सुरपति-सुत, कहि न जाय अति भारी ।
सकल लोक अवलोकि सोकहत, सरन गये भय टारी ॥ ४ ॥
बिहँग जोनि आमिष अहारपर, गीध कौन ब्रतधारी ।
जनक-समान क्रिया ताकी निज कर सब भाँति सँवारी ॥ ५ ॥
अधम जाति सबरी जोषित जड़, लोक-बेद तें न्यारी ।
जानि प्रीति, दै दरस कृपानिधि, सोउ रघुनाथ उधारी ॥ ६ ॥
कपि सुग्रीव बंधु-भय ब्याकुल, आयो सरन पुकारी ।
सहि न सके दारुन दुख जन के हत्यो बालि, सहि गारी ॥ ७ ॥
रिपु को अनुज बिभीषन निसिचर, कौन भजन अधिकारी ।
सरन गये आगे ह्वै लीन्हों भेंट्यो भुजा पसारी ॥ ८ ॥
असुभ होइ जिन्ह के सुमिरे ते बानर रीछ बिकारी ।
बेद-बिदित पावन किये ते सब, महिमा नाथ ! तुम्हारी ॥ ९ ॥
कहँ लगि कहौं दीन अगनित जिन्ह की तुम बिपति निवारी ।
कलिमल-ग्रसित दास तुलसीपर, काहे कृपा बिसारी ॥ १० ॥
(विनय-पत्रिका, १६६)

अगणित-गुणगण-निलय भगवान् श्रीराम

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

१—गुणकी परिभाषा और संख्या

जेहि पर कृपा करहिं जन जानी । कबि उर अजिर नचावहिं बानी ॥

(श्रीरा० च० मा० १ । १०४ । ३)

'गुण' शब्द किसीके मतसे 'गुण—आमन्त्रणे' (१० । ३५२ सेट् उभयपदी) से 'भावे घञ्' (३ । ३ । १९) लगाकर, अथवा पा० सू० ३ । १ । १३४ के अनुसार अथवा 'एरच्' (३ । ३ । ५६) के अनुसार अच् प्रत्यय तथा किसीके मतसे 'ग्रह—उपादाने' (९ । ६०) के आगे उणादि प्रत्यय करनेपर निष्पन्न होता है । (Monier-Williams) । अमरकोशमें यह शब्द कम-से-कम ६ बार आया है और यद्यपि मुख्य अर्थमें इसका कोई पर्याय भी नहीं, तथापि इस शब्दके ३० अर्थ होते हैं (Monier-Williams), और धर्म, विद्या, कला, ज्ञान-विज्ञानादि सैकड़ों वस्तुएँ इसके अन्तर्गत आती हैं । अतः भारतीय दर्शन, राजनीति, साहित्य, अलंकार, काव्य-नाटक-ग्रन्थों तथा धर्मग्रन्थोंमें गुणोंके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें कही गयी हैं । प्राचीन विद्वानोंका कहा हुआ न्याय-वैशेषिक ('सिद्धान्त-मुक्तावली'की 'प्रकाश' या 'दिनकरी' टीका)-का यह श्लोक इस सम्बन्धमें बहुत ही प्रसिद्ध है—

वायोर्नवैकादश तेजसो गुणा
जलक्षितिप्राणभृतां चतुर्दश ।
दिक्कालयोः पञ्च षडेव चाम्बरे
महेश्वरेऽष्टौ मनसस्तथैव च ॥

(इति प्राञ्चः, कारिकावली ३० की टीकामें)

अर्थात् 'वायुके नौ, अग्निके ग्यारह तथा जल, पृथ्वी एवं चेतन जीवोंके चौदह गुण कहे गये हैं । दिशा एवं कालके ५, आकाशमें ६, महेश्वरमें ८ तथा मनके भी आठ ही गुण निर्दिष्ट हैं ।' इसी प्रकार कहीं-कहीं सांख्य-न्यायादिके अनुसार प्रकृतिके भी २४-२५ गुण कहे गये हैं । (द्रष्टव्य—Monier-William's Sanskrit Dictionary)

वायुपुराण एवं शिवपुराणमें भगवान् शंकरके सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता आदि ६ दिव्यगुण,* भागवत १ । १६ में भगवान् श्रीकृष्णके ३० गुण, भक्तिरसामृतसिन्धु, पृष्ठ १५०में उनके प्रायः ५० गुण, सिद्धान्तकौमुदी, पृष्ठ ३५७ (बम्बई सं०)-में वैयाकरणोंकी दृष्टिमें ८ गुण, भागवत ७ । ९ । ९ में ब्राह्मणके १२ गुण, सनत्सुजातीय ४ में भी विद्वान् ब्राह्मणके इनसे भिन्न १२ गुण तथा उभयत्र व्याख्याताओंद्वारा अन्य बहुत-से गुण निर्दिष्ट हैं । चाणक्य-नीति १२ । १५ में सज्जनोंके १२ गुण, जैमिनीय अश्वमेध ५६ । २५ (गीताप्रेस का संस्करण, पृष्ठ ३६४)-में बत्तीस गुण एवं महाभारत शान्तिपर्व, अध्याय ६६ में भीष्मपितामहने राजाके ३६ गुण बतलाये हैं । भर्तृहरिने भक्ति, जितेन्द्रियता आदि द्वादश गुणोंसे सम्पन्न सज्जनको प्रणाम किया है । शुकसप्तति २१ । १२१ में मनुष्यके प्रधान आठ गुण कहे गये हैं । ये सभी श्लोक प्रायः एक ही समान हैं । जैसे—

(१) धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहता
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयिता चित्तेऽतिगम्भीरता ।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेऽतिविज्ञानता
रूपे सुन्दरता हरौ भजनिता चैते गुणा राघवे ॥

(चाणक्य० १२ । १५)

(२) वाञ्छा सज्जनसंगतौ परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद् भयम् ।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले
एते येषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः† ॥

* सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः ।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ॥
(वायुपुराण १२ । ३३; शिवपुराण १ । १८ । १२)

† ये श्लोक यद्यपि अत्यन्त सरल हैं, तथापि संक्षेपमें इनका यह भाव है कि श्रेयस्कामी पुरुषको सदा धर्ममें तत्पर, सम्भाषणमें मृदु, दानमें उत्साहसम्पन्न तथा मित्रोंसे निश्छल रहना चाहिये । साथ ही गुरुजनों (माता-पिता) के प्रति सदा विनयका भाव, चित्तमें कुछ गाम्भीर्य, आचारमें शुचिता, गुणोंके प्रति रुचि, शास्त्रोंमें निपुणता तथा भगवद्भजनमें प्रेम एवं रूपको भी सुन्दर बनाये रखनेकी चेष्टा होनी चाहिये । इसके अतिरिक्त सत्संगतिकी लालसा, पराये गुणोंको देखकर प्रसन्नता, केवल अपनी ही स्त्रीके प्रति प्रेम, भगवान् शंकरमें भक्ति, आत्मसंयमकी शक्ति तथा असंतों—दुष्टोंके संसर्गका त्याग—ये सभी गुण मनुष्यको वन्दनीय बनाते हैं और ये सब गुण श्रीराममें थे ।

इनके अतिरिक्त राधासुधानिधि (श्लोक २५), प्रश्नोत्तरमालिका (२०) तथा योगवासिष्ठ (६ । २ । ३४ । ७; ६ । २ । ४५ । ४६; ४ । २२ । ४१-४२) इत्यादिमें भी बहुत-से गुणोंकी चर्चा और गुणियोंको नमस्कार किया गया है ।

२–अशेषगुणराशि भगवान् श्रीराम

यद्यपि श्रीभरतजी स्वयं भी सर्वसद्गुणसिन्धु थे, फिर भी भगवान् रामकी गुणावलीका स्मरण करके वे गद्गद होकर कहते हैं—

राम जनमि जगु कीन्ह उजागर। रूप सील सुख सब गुनसागर॥

... ...

सारद कोटि कोटि सत सेषा। करि न सकहिं प्रभु गुनगन लेखा॥
(मानस २ । १९९ । ३-४)

इसी प्रकार महाराज जनक भी गुणसिन्धु थे, पर वे भी अपनी सब सुध-बुध खोकर कहने लगते हैं—

होहिं सहस दस सारद सेषा। करहिं कलप कोटिक भरि लेखा॥
मोर भाग्य राउर गुन गाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा॥
(मानस १ । ३४१ । १-२)

इसके अतिरिक्त भी गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज बार-बार कहते हैं—

राम अनंत अनंत गुनानी। जन्म कर्म अनंत नामानी॥
(मानस ७ । ५१ । ५)

× × × ×

रामु अमित गुन सागर थाह कि पावइ कोइ।
संतन्ह सन जस किछु सुनेउँ तुम्हहि सुनायउँ सोइ॥
(मानस ७ । ९२ क)
—इत्यादि

३–महर्षि वाल्मीकिद्वारा वर्णित रामके गुण

वाल्मीकि-रामायण ७ । ९८ । १८ में लिखा है कि 'रामको छोड़कर और किसी भी नायकका गुण-गान करनेवाला काव्यकर्ता या काव्य यशका भागी नहीं बन सकता अथवा काव्योंके लिये राम-भिन्न कोई व्यक्ति गेय ही नहीं हैं'—

न ह्यन्योऽर्हति काव्यानां यशोभाग् राघवादृते।

× × ×

इसीलिये सब कविगण रामका ही गुण गाते हैं।

कविवर तुलसीदासजी भी कहते हैं—

कबि कोबिद अस हृदयँ बिचारी। गावहिं हरि जस कलि मल हारी॥
(मानस १ । १० । ३)

अस्तु,

यों वाल्मीकि-रामायणमें तो 'गुण'-शब्द प्रायः एक हजार बारके लगभग प्रयुक्त हुआ है और इसकी रचना भी सर्वोत्कृष्ट, असंख्येय गुणवाले व्यक्तिको ही लक्ष्यमें रखकर की गयी है। वाल्मीकिजीका नारदजीसे प्रश्न ही होता है—

को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
(१ । १ । २)

—इत्यादिसे उन्होंने १६ गुणवाले व्यक्ति पूछे और उत्तरमें नारदजीने कहा—

बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः।
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः॥
(१ । १ । ७)

'मुने ! आपने बहुत-से दुर्लभ गुणोंका वर्णन किया है, तथापि उन सबोंसे युक्त एक ही व्यक्तिको बतला दे रहा हूँ।'

और पुनः १ । १ । ८ से १९ श्लोकतक रामके प्रायः ६० गुण बतलाये। इसी तरह वाल्मीकि-रामायणमें २ । १ । ६–३१ तक रामके ५० गुण, २ । २ । २६–४८ तक ८० गुण, ५ । ३५ । ६–२३ तक १०० गुण तथा यहाँसे उत्तरकाण्डतक बार-बार भिन्न-भिन्न प्रसङ्गोंमें रामके इसी प्रकारके अन्य गुणोंके उल्लेखकी ही परम्परा चलती है। साथ ही यत्र-तत्र घटना-क्रमसे सबके उदाहरण भी मिल जाते हैं।

४–श्रीरामके गुणोंकी परम्परा

६ गुण—

सारी अयोध्याकी प्रजा कहती है—

आनृशंस्यमनुक्रोशः श्रुतं शीलं दमः शमः।
राघवं शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरुषर्षभम्॥
(वा० रा० २ । ३३ । १२)

'क्रूरताका अभाव, दया, विद्या, शील, दम (इन्द्रिय-संयम) और शम (मनोनिग्रह)—ये छः गुण नरश्रेष्ठ श्रीरामको सदा ही सुशोभित करते हैं।'

७ गुण—

स्वयं सर्वसद्गुणमयी पराम्बा भगवती सीता भी कहती हैं कि अनन्तगुणसम्पन्न भगवान् श्रीराममें परमश्रेष्ठ सात गुण तो निश्चय ही हैं—

............तस्मिंश्च बहवो गुणाः॥
उत्साहः पौरुषं सत्त्वमानृशंस्यं कृतज्ञता।
विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानर राघवे॥
(वा० रा० ५ । ३७ । १४-१५)

अर्थात् 'श्रीराममें उत्साह, पुरुषार्थ, धैर्य, अक्रौर्य, कृतज्ञता, पराक्रम और प्रभाव—ये सात प्रधान गुण हैं।'

९ गुण—

महाराज दशरथके शब्दोंमें उनमें ये ९ गुण निश्चय रूपसे हैं—

सत्यं दानं तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम्।
विद्या च गुरुशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे॥
(वा० रा० २। १२। ३०)

'सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, पवित्रता, सरलता, विद्या और गुरुशुश्रूषा—ये सभी सद्गुण श्रीराममें स्थिररूपसे रहते हैं।'

सैकड़ों गुण—

वा० रा० ५। ३५ में श्रीहनुमान्‌जी भगवती सीतासे श्रीरामके सैकड़ों गुण बतलाते हैं।

५–असंख्य गुण

संक्षेपमें कम-से-कम वाल्मीकि-रामायणके १। १; २। १; २। २ अध्यायों आदिको मिलाकर देखनेसे भगवान् रामके गुणोंकी निम्नलिखित तालिका बनती है। इस गुणावलीसे गुणोंके विषयमें महर्षि वाल्मीकिके भी एक समीक्षात्मक दृष्टिकोणका परिचय मिलता है और उनकी मनोविज्ञान-निपुणताको देखकर आश्चर्यान्वित होना पड़ता है।

१–धृतिमान्, २–नियतात्मा, ३–महाबली, ४–वेदवेत्ता, ५–आत्मवश, ६–बुद्धिमान्, ७–नीतिज्ञ, ८–वाग्मी (कुशल वक्ता), ९–श्रीमान्, १०–शत्रुहन्ता, ११–सर्वाङ्गसुन्दर, १२–आजानुबाहु, १३–समस्तशुभलक्षणान्वित, १४–धर्मज्ञ, १५–सत्यसंध, १६–प्रजाहितरत, १७–यशस्वी, १८–शुचि, १९–समाहित, २०–भक्तकी भक्तिके वशमें हो जानेवाले, २१–साधु, २२–लोकप्रिय, २३–आर्य, २४–सत्सङ्गी, २५–शान्त, २६–प्रियदर्शन, २७–(कटु कहे जानेपर भी) मधुरभाषी (मीठी वाणी बोलनेवाले), २८–पूर्वभाषी, २९–प्रियवक्ता (प्रिय बात कहनेवाले), ३०–अहंकारशून्य, ३१–वृद्धपूजक, ३२–अत्यन्त दयालु, ३३–परम तार्किक, ३४–(सदा) नीरोग, ३५–तरुण, ३६–वावदूक (सभामें परम श्रेष्ठ ढंगसे भाषणद्वारा सारी जनताको मन्त्रमुग्ध कर वशीभूत करनेवाले), ३७–देश-कालका पूर्ण ज्ञान रखनेवाले, ३८–सरल, ३९–सत्यवक्ता, ४०–अदीनात्मा, ४१–ब्राह्मणभक्त, ४२–प्रतिभाशाली, ४३–लोकव्यवहारदक्ष, ४४–कृतकल्प, ४५–कालक्रियादक्ष, ४६–आश्वस्त, ४७–गुप्तमन्त्र (जिसकी मन्त्रणा या संकल्प सबको ज्ञात न हो सके), ४८–सहायसम्पन्न, ४९–कालज्ञ, ५०–अमोघक्रोध, ५१–अमोघहर्ष, ५२–दृढभक्त, ५३–स्थिरप्रज्ञ, ५४–संवृताकार (जिसके चेहरेके देखनेसे अन्तर्हृदयका भाव स्पष्ट समझमें न आ सके), ५५–स्थिरविचार, ५६–स्थिरचित्त, ५७–अनाग्रही, ५८–कभी भी दुर्वचन न बोलनेवाले, ५९–निरालस्य, ६०–अप्रमत्त, ६१–स्वदोषज्ञ, ६२–परदोषज्ञ, ६३–शास्त्रज्ञ, ६४–कृतज्ञ, ६५–मनोविज्ञ, ६६–अश्वारोहणकुशल, ६७–गजारोहणकुशल, ६८–रथारोहण-कुशल, ६९–अश्वनियमनकुशल, ७०–गजनियमनकुशल, ७१–अतिरथी, ७२–सैन्यविज्ञानकुशल, ७३–अप्रधृष्य, ७४–अनसूयक, ७५–अमत्सरी, ७६–जितक्रोध, ७७–जितदोष, ७८–शीलवान् ७९–विनयी, ८०–सर्वापराधक्षमाकारी, ८१–दुखीको सान्त्वना देनेवाले, ८२–श्लक्ष्ण, ८३–मृदु, ८४–भव्य, ८५–उत्साही, ८६–नित्यविजयी, ८७–प्रजावत्सल, ८८–मित्रवत्सल, ८९–नीराग, ९०–निर्व्यसन, ९१–दशपद्म (कमलनेत्र, कमलकर-चरण आदि), ९२–पूर्णचन्द्रनिभानन, ९३–दाक्षिण्यपूर्ण, ९४–आदित्यवत्प्रतापी, ९५–पृथ्वीतुल्य क्षमाशील, ९६–इन्द्रके समान यशस्वी, ९७–बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् एवं वक्तृत्वशक्तिसम्पन्न, ९८–वृत्तरक्षक, ९९–स्वजनरक्षक, १००–धर्मरक्षक, १०१–वर्णाश्रमरक्षक, १०२–मर्यादाकारक पुरुषोत्तम, १०३–नित्य ब्रह्मचारी, १०४–ब्रह्मण्यदेव, १०५–राजनीतिमें दक्ष, १०६–स्निग्धवर्ण, १०७–दुन्दुभिनिर्घोषस्वर, १०८–गूढ़जत्रु, १०९–चतुस्सम, ११०–चतुर्दशसमद्वन्द्व, १११–चतुर्दंष्ट्र, ११२–चतुर्गति, ११३–पञ्चस्निग्ध, ११४–अष्टवंशवान्, ११५–दशबृहत्, ११६–त्रिव्यात, ११७–द्विशुक्ल इत्यादि, इत्यादि।

इसके अतिरिक्त गुणमें त्रिंशल्लक्षणान्वित धर्म, ६४ कलाएँ, अनन्त विद्याएँ आदि भी सम्मिलित हैं और भगवान् राम इस तरह दानी, तीर्थसेवी इत्यादि गुणोंसहित अनन्त कलाविद् तथा अनन्त विद्याविद् भी हैं।

६–एक-एक गुणमें अगणित अवान्तर गुण

और यदि पूर्ण विश्लेषण हो तो इन गुणोंका बड़ा विस्तार हो जाता है। जैसे केवल एक रूपके ही इतने भेद हैं कि उनका वर्णन नहीं हो सकता। जैसे—शोभा, कान्ति, छवि, वर्ण, लक्षण आदि रूपके ही अनेक भेद हैं और इनके भी कितने अवान्तर भेद हैं। महर्षि वाल्मीकिने स्थान-स्थानपर सबका दिग्दर्शन कराया ही है। साहित्यग्रन्थोंमें भी इनकी बड़ी

चर्चा है। उद्भटविवेक, साहित्यमीमांसा, अलंकारसर्वस्व आदिके रचयिता श्रीराजानक रुय्यक (या रुचक) ने रूप, लालित्य या सौन्दर्यके दस अवान्तर गुण बतलाये हैं। यथा—

रूपं वर्णः प्रभा राग आभिजात्यं विलासिता।
लावण्यं लक्षणं छाया सौभाग्यं चेत्यमी गुणाः ॥*

(सहृदय लीला०, काव्यमा०, गुच्छ ५, पृ० १८३)

इस श्लोककी स्वोपज्ञवृत्तिमें उनके उपर्युक्त भेदोंकी की गयी परिभाषा इस प्रकार है—

१—अवयवानां रेखास्पाष्टयं रूपम्। २—गौरतादिधर्मविशेषो वर्णः। ३—चाकचिक्यरूपा रविवत्कान्तिः प्रभा। ४—नैसर्गिकः स्मेरत्वमुखप्रसादादिः सर्वेषामेव चक्षुर्बन्धको धर्मो रागः। ५—कुसुमधर्मा मार्दवादिः स्पर्शविशेषः आभिजात्यम् इत्यादि। इनके अनुसार १—अङ्गोंकी स्पष्टता रूप है। २—गौरता-श्यामता आदि वर्ण हैं। ३—शरीरकी चमक प्रभा है। ४—स्वाभाविक मुसुकान आदिका नाम राग है। ५—कुसुमसुकुमारितादि आभिजात्य नामक गुण है। ६—कटाक्षादि विलास है। ७—तरलता लावण्य है। इत्यादि।

इन्हींको प्रकारान्तरसे महर्षि वाल्मीकिने मुनियोंद्वारा दण्डकवनमें इस प्रकार कहलाया है—

रूपसंहननं लक्ष्मीं सौकुमार्यं सुवेषताम्।
ददृशुर्विस्मिताकारा रामस्य वनवासिनः ॥

(श्रीवाल्मीकि० अरण्य० १ । १३ आदि)

और नागेश भट्ट, गोविन्दराज, तीर्थ, सहाय, कतक आदिने व्याख्या भी ठीक उपर्युक्त ढंगसे ही की है। इसलिये गोस्वामीजीने भी उदाहरणोंमें लिखा है—

१—रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा।

(मानस १ । १९८ । ६)

२—(क) इन्ह तें लहीं दुति मरकत सोने।

(वही, २ । ११५ । ८)

(ख) बय बपु बरन रूपु सोइ आली।

(वही, २ । २२१ । १)

(ग) दामिनि बरन लखन सुठि नीके।

(वही, २ । ११४ । ४)

—आदिमें भी सभी भाइयोंके साथ श्रीरामके वर्णकी प्रशंसा की है।

हास-बिलास लेत मनु मोला।

(१ । २३२ । ३)

—आदिमें छठे 'विलास' गुणका भी उल्लेख हुआ है।

यदि केवल भगवान्‌के रूपके ही सब वर्णनोंको एकत्रकर उनका ठीकसे वर्गीकरण किया जाय तो पूरा एक ग्रन्थ तैयार हो जाय। एक-एक गुणका अनेकानेक ग्रन्थोंमें वर्णन हुआ है।

यह तो एक उदाहरण हुआ। सबपर लिखा जाय तो कई विशेषाङ्क हो जायँ।

भगवान् श्रीरामके सैन्य-विज्ञानकौशलपर शुक्रने बड़े ही सुन्दर ढंगसे लिखा है कि 'ऐसा कुशल कौन होगा जो वानरोंसे भी सेनाका पूरा काम ले सके'—

न रामसदृशो राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत्।
सुभृत्यता तु यन्नीत्या वानरैरपि स्वीकृता ॥

(शुक्रनीतिसार ४ । ६ । १० । ७२—इत्यादि)

इसके आगे पराम्बा भगवती श्रीसीताजीके गुणोंका थोड़ा वर्णन किया जाना आवश्यक जान पड़ता है। अतः बहुत संक्षेपमें उसपर भी कुछ लिखा जा रहा है।

भगवती सीताके गुण

सामान्य स्त्रीके बारह गुण

पद्मपुराण, भूमिखण्ड, अध्याय ३४ में व्यासजीका कथन है कि भली स्त्रीमें शरीरको पूर्णतया भूषित करनेवाले १२ गुण होने चाहिये, जो निम्नलिखित हैं—

रूपमेव गुणः स्त्रीणां प्रथमं भूषणं शुभे।
शीलमेव द्वितीयं च तृतीयं सत्यमेव च ॥
आर्यत्वं च चतुर्थं च पञ्चमं धर्ममेव हि।
मधुरत्वं ततः प्रोक्तं षष्ठमेव वरानने ॥
शुद्धत्वं सप्तमं बाले ह्यन्तर्बाह्येषु योषिताम्।
अष्टमं हि पतेर्भक्तिः शुश्रूषा नवमं किल ॥
सहिष्णुर्दशमं प्रोक्तं रतिश्चैकादशं तथा।
पातिव्रत्यं ततः प्रोक्तं द्वादशं वरवर्णिनि ॥

(पद्म०, भूमि० ३४ । ३०-३३)

---

* इसी प्रकार रसग्रन्थोंमें एक यह श्लोक भी प्रसिद्ध है—

शोभा विलासो माधुर्यं गाम्भीर्यं स्थैर्यं तेजसी।
ललितं च तथौदार्यमित्यष्टौ पौरुषा गुणाः ॥

इसमें शोभा, माधुर्य, स्थैर्य, लालित्य, औदार्य आदि रूपके आठ भेद निर्दिष्ट हैं।

'अपने रूपको सवारकर साफ-सुथरा तथा प्रसन्न रखना (फूहड़ न रहना) स्त्रीका प्रथम गुण है, शील (लज्जा-संकोच) दूसरा गुण है, सत्य तीसरा, सदाचार चौथा तथा धर्म स्त्रीका पाँचवाँ गुण है। मृदुता—नम्रता (धीरे बोलना, मधुर भाषण करना) स्त्रीका छठा तथा शरीर एवं अन्तर्मनसे शुद्ध—पवित्र भावका होना सातवाँ गुण है। पतिभक्तिमें दृढ़ता आठवाँ गुण, (सास-ससुर-पति आदिकी) सेवा नवाँ गुण, कष्टमें धैर्य दसवाँ गुण, प्रेमपूर्ण वर्ताव ग्यारहवाँ तथा बारहवाँ गुण स्त्रीका दृढ़ पातिव्रत्य कहा गया है।' इन बारहों गुणोंको कल्याणेच्छु स्त्रीको प्रयत्नपूर्वक अपनेमें अवश्य धारण करना चाहिये।

वास्तवमें इन्हीं दिव्य गुणोंसे शरीर तथा आत्माकी वास्तविक शोभा है। आभूषण तथा वस्त्रोंसे होनेवाली शोभा तो कृत्रिम, क्षणिक एवं क्षयिष्णुमात्र है।

सीताजीमें ये सभी गुण उपस्थित थे। उनके रूप, गुण आदि भी दिव्य एवं सर्वथा लोकोत्तर हैं। मानसमें तुलसीदासजी कहते हैं—

जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥
एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल॥ इत्यादि।
(मानस १। २४६। ४; २४७)

श्रीपराशर भट्टारकने सीताजीके गुणोंपर 'श्रीगुणरत्नकोश' नामकी एक पुस्तक लिखी है। उसके ५० वें श्लोकमें काकरक्षण, राक्षसी त्राणादिके उदाहरणोंसे सारी श्रीरामगोष्ठीको ही तिरस्कृत, किंचित् लघुतर, हीनतर करनेकी उत्प्रेक्षा की गयी है—

मातर्मैथिलि राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया
रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता।
काकं तं च विभीषणं शरण मित्युक्तिक्षमौ रक्षतः
सा नः सान्द्रमहागसः सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी.॥

हनुमान्‌के क्रोधसे अपना अपराध करनेवाली राक्षसियोंको बचानेकी कथा वाल्मीकि-रामायण, युद्धकाण्ड ११३ वें सर्गकी है। भगवान् रामकी विभीषण-शरणागतिमें बड़ी महिमा कही गयी है; पर ताटकावध, वालिवध आदिको लेकर उनके चरित्रकी आलोचना भी की जाती है। सीताजी तो अपनेको सदा त्रस्त करनेवाली राक्षसियोंको भी हनुमान्‌जीसे बचाकर सारे विश्वकी ही कीर्ति-मान—मर्यादाकी सीमाको भी अतिक्रमण कर गयीं—पार कर गयीं। अतः वैष्णवमताब्जभास्कर ३ में उन्हें 'शुभगुणवात्सल्यसीमा च या' कहा गया है¹।

श्रीरामका गुणगान

राम कहो, राम कहो, राम कहो, बावरे।
अवसर न चूकि, भौंदू, पायो भलो दाँव रे॥
जिन तोको तन दीन्हो, ताको न भजन कीन्हो।
जनम सिरानो जात, लोहे-कैसो ताव रे॥
रामजी को गाय-गाय, राम को रिझाव रे।
रामजी के चरन-कमल चित्त माँहि लाव रे॥
कहत मलूकदास, छोड दे तैं झूठी आस।
आनँद-मगन होइ कै हरि गुन गाव रे॥

—संत मलूकदास

१. इसपर विशेष जानकारीके लिये 'कल्याण' ३९। ११ में मेरा 'पराम्बाकी अनुपम अनुकम्पा' शीर्षकसे प्रकाशित लेख देखना चाहिये। इस अङ्कमें भी इसके पूर्व इस विषयपर अनेक मननीय लेख आ चुके हैं, अतः यहाँ संक्षेपमें ही लिखा गया है।

सर्वश्रेष्ठ अवतार भगवान् राम

(लेखक—श्रीमौनशशि नारायणजी, सभापति, सनातन-धर्म महासभा, गायना, दक्षिण अमेरिका)

राम राजकुमारके रूपमें उत्पन्न हुए और अवतारोंमें सर्वश्रेष्ठ थे। वे अयोध्याके राजा दशरथके पुत्र थे। उनकी जीवन-कथाको लिखकर वाल्मीकिने रामायण महाकाव्यकी रचना की। सहस्रों शताब्दियोंसे मानव-जातिने ठीक-ठीक सोचने और काम करनेकी प्रेरणा राम-कथासे प्राप्त की है।

रामका एक निराला अवतार था। दूसरे अनेक धर्मोपदेष्टा भागवत पुरुषोंके समान उन्होंने प्रचारार्थ एक शब्द भी मुँहसे नहीं निकाला। भगवान् श्रीकृष्णके समान किसी लिखित सिद्धान्तके प्रणेता बननेका गौरव उनको प्राप्त न था। राम जीवन-चर्याके नियमोंमें ही अत्यन्त व्यस्त रहे। वे धर्मोपदेश देनेके बदले धर्मानुकूल आचरण बनानेमें परिनिष्ठित थे। भगवान् आपके कर्मोंको देखते हैं, यहाँ भगवान् राम स्वयं कर्मरत हैं। वे कर्म करते हैं। 'मैं तुमको जो करनेके लिये कहता हूँ, उसे करो; मैं क्या करता हूँ, इसकी चिन्ता मत करो'—इस नीतिके वे प्रवर्त्तक नहीं थे। उनका सारा जीवन कर्मका आदर्श था।

बाल्यावस्थामें वे एक आदर्श पुत्र थे। उनकी मातृ-पितृ-भक्ति तथा भ्रातृप्रेम आज भी आदर्शरूप बने हुए हैं। उन्होंने माता-पिताकी आज्ञाका पालन करने तथा उनमें श्रद्धा-प्रेम रखनेका एक कीर्तिमान स्थापित किया था। छात्रावस्थामें वे एक आदर्श ब्रह्मचारी थे। शस्त्र-विद्या और शास्त्रविद्यामें उनकी प्रगति आज भी छात्रवर्गके लिये स्पृहणीय वस्तु है। वे एक अद्वितीय धनुर्धर थे और आज जो हिंदीमें 'राम-बाण'का मुहावरा प्रचलित है, उसका अर्थ है—अमोघ, कभी व्यर्थ न जानेवाला।

व्यक्तिके रूपमें वे 'सत्यवचन' अर्थात् सदा सत्य बोलनेवाले कहलाते हैं। उन्होंने कभी असत्य वचन न कहा और न सुना, यह सचमुच ही बहुत बड़ी बात थी। अपने जीवनभर सत्यवादी बने रहना ही दुष्कर है, परंतु सत्यके प्रति आदर प्रदर्शित करनेके लिये किसीकी मिथ्या बात न सुनना एक निराली बात है और इसको उनकी अति उत्कृष्ट उपलब्धि समझनी चाहिये!

गृहस्थाश्रमके वे आदर्श थे। उनका एकपत्नीव्रत तथा आजीवन सीताके प्रति प्रेम और अनुराग अवितर्क्य और अनिन्द्य था। उनके दाम्पत्यजीवनमें वैवाहिक आदर्श इतना उच्चकोटिका था कि उनका संयुक्त नाम 'सीता-राम' हिंदी भाषामें सर्वोच्च अभिवादनके रूपमें व्यवहृत होने लगा। आज हम परस्पर एक दूसरेको आदर तथा सम्मान प्रदर्शित करनेके लिये हाथ जोड़कर *'जय सीताराम'* (*सीता और रामकी जय हो*) कहते हैं।

पारिवारिक व्यक्तिके रूपमें रामने आदर्श पारिवारिक सम्बन्धका पालन किया। उनका भ्रातृप्रेम वस्तुतः प्रगाढ़ था। जब उनकी विमाता कैकेयीने अपने पुत्र भरतके लिये उनको राज्यत्याग करनेके लिये कहा, तब राम प्रसन्नतापूर्वक सहमत हो गये। उन्होंने कहा—'प्रत्येक वस्तु जो हमारे पास है, हम सबकी है। अपने भाईको उसका और अपना हिस्सा प्रदान कर देनेमें शोक और ईर्ष्या क्योंकर हो सकते हैं?' रामने राज्यशासनका जो कीर्तिमान स्थापित किया, वह आज भी शासकों और राजाओंके लिये अनुसरण करनेयोग्य है। वे अपने राज्यकी प्रजाको अपना परिजन समझते थे। अयोध्यामें मानव-मानवमें भेदभाव न था। परम दरिद्र प्रजाकी भी उनके पास पहुँच थी और उनको न्यायोचित सुनवाई होनेका विश्वास था। क्या उन्होंने एक धोबीको राजमहलमें आने और रावणके कारागृहमें बहुत दिन रहनेके कारण सीताकी पवित्रता और पातिव्रतके विषयमें अपनी शङ्काएँ व्यक्त करनेकी छूट नहीं दी थी? उसपर रामकी प्रतिक्रिया क्या हुई थी? क्या रामने उस आदमीकी धृष्टतापर अप्रसन्नता व्यक्त की? नहीं, वे जानते थे कि उनकी प्रजा उनकी रानी (सीता) को आदरकी दृष्टिसे देखती है। रामको सीताके सम्बन्धमें कोई संदेह न था—इसीलिये कि सीताकी अग्नि-परीक्षा हो चुकी थी और वह शुद्ध सोनेके समान दीप्त होकर बेलाग आगके भीतरसे निकल आयी थी। फिर भी राजा रामने प्रजा-वत्सलताके निर्वाहके लिये अपनी सीताको पुनः वनवास दे दिया। क्या आजके राजा और शासक, हम लोग जनमतका इतना आदर करते हैं? राम एक सच्चे जनतान्त्रिक थे। वे जानते थे कि जनमत केवल संदेहके ऊपर भी बन जा सकता है और वह संदेह सचाई और ईमानदारीके ऊपर आधारित जन-मत-शिक्षणके द्वारा दूर हो

सकता है तथा इस जन-मत-शिक्षणके लिये जो भी कीमत चुकानी पड़े, चाहे वह कीमत राजरानीकी निष्ठा, ईमानदारी और पवित्रताको कसौटीपर रखकर ही क्यों न चुकानी पड़े, बहुत बड़ी कीमत नहीं समझी जा सकती। यही कारण था कि महात्मा गांधीने 'राम-राज्य'के आदर्शको राजनीतिज्ञोंके सम्मुख रक्खा। मुझे आशा है कि हम भगवान् रामके जीवनसे प्रेरणा प्राप्त करके उनके आदर्शके अनुसार जीवन बितायेंगे और तभी इस भूतलपर हमारे लिये 'राम-राज्य' लाना सम्भव होगा।

अतएव हमको रामके जीवनसे नम्रताकी शिक्षा लेनी चाहिये, उनके द्वारा दिखाये रास्तेपर चलना चाहिये, उनके जीवनके दृष्टान्तको प्रकाश-स्तम्भ बना लेना चाहिये और उनकी जीवन-कथासे अपने दिन-प्रतिदिनके जीवनमें प्रेरणा लेनी चाहिये।

रघुबीर गरीब-निवाज

एक सनेही साँचिलो केवल कोसलपालु।
प्रेम-कनोड़ो राम-सो नहिं दूसरो दयालु ॥ १ ॥
तन-साथी सब स्वारथी, सुर ब्यवहार-सुजान।
आरत अधम अनाथ हित को रघुबीर समान ॥ २ ॥
नाद निठुर, समचर सिखी, सलिल सनेह न सूर।
ससि सरोग, दिनकरु बड़े, पयद प्रेम-पथ कूर ॥ ३ ॥
जाको मन जासों बँध्यो, ताको सुखदायक सोइ।
सरल सील साहिब सदा सीतापति सरिस न कोइ ॥ ४ ॥
सुनि सेवा सही को करै, परिहरै को दूषन देखि।
केहि दिवान दिन दीन को आदर अनुराग बिसेषि ॥ ५ ॥
खग-सबरी पितु-मातु ज्यों माने, कपि को किये मीत।
केवट भेंट्यो भरत-ज्यों, ऐसो को कहु पतित-पुनीत ॥ ६ ॥
देइ अभागेहिं भागु को, को राखै सरन सभीत।
बेद-बिदित बिरुदावली, कबि-कोबिद गावत गीत ॥ ७ ॥
कैसेउ पाँवर पातकी, जेहि लई नाम की ओट।
गाँठी बाँध्यो दाम तो, परख्यो न फेरि खर-खोट ॥ ८ ॥
मन मलीन, कलि किलबिषी होत सुनत जासु कृत-काज।
सो तुलसी कियो आपुनो रघुबीर गरीब-निवाज ॥ ९ ॥

(विनयपत्रिका १९१)

मर्यादा-पुरुषोत्तमकी मर्यादा

(लेखक—स्वर्गीय राजा श्रीदुर्जनसिंहजी)

श्रीअवधेशकुमार, कौसल्या-प्राणाधार, जानकी-जीवन, दैत्य-निपीड़न, भक्तजन-रञ्जन, दुष्टनिकन्दन, जगहितकारी, शरणागत-भय-हारी भगवान् श्रीरामचन्द्र महाराजके परम मङ्गलमय, श्रीजनकदुलारी-हृदय-कंज-भृङ्ग, श्रीसौमित्रि-कर-सरोज-लालित, श्रीसुरधुनी-प्रसूति-धाम पद-पद्मोंसे जो इस देव-दुर्लभ वसुंधराको पावन होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, उसका मुख्य प्रयोजन मर्यादा-स्थापनद्वारा कर्तव्याकर्तव्य-विमूढ संसारको पथ-प्रदर्शन कराना था और इसी कारण श्रीभगवान् 'मर्यादा-पुरुषोत्तम'के शुभनामसे अलंकृत किये जाते हैं।

इस महत्त्वपूर्ण और आदर्श अवतारका यह निमित्त प्रसिद्ध है और इसके मुख्य-मुख्य कल्याणप्रद चरित्रोंमें भी, जो मर्यादा-प्रतिष्ठार्थ उदाहरणीय समझे जाते हैं, साधुओंके परित्राण और दुष्टोंके विनाशद्वारा धर्मकी संस्थापना, गुरु-भक्ति, मातृ-पितृ-भक्ति, भ्रातृ-प्रेम, एक-पत्नीव्रत, वर्णाश्रमधर्मपालन, राजनीति और प्रजारक्षा इत्यादिकी शिक्षारूप प्रयोजन स्पष्ट प्रकट है। परंतु प्रत्येक चरित्रका क्या रहस्य है और उसके भावोंकी सीमा कहाँतक है, जो आदर्शरूपसे मर्यादा-प्रतिष्ठार्थ ग्रहण किये जा सकें—इसका परिचय बहुत थोड़े लोगोंको है; अतः यहाँ मुख्य-मुख्य चरित्रोंपर अनुक्रमसे किंचित् प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया जायगा।

(१) ऐसे उदाहरणीय पावन चरित्रोंका श्रीगणेश उस लोकहितशीला लीलासे होता है, जिसमें उस प्रतिज्ञाकी पूर्तिका आरम्भ हुआ है, जो आपके प्रत्येक अवतारके लिये अनादि कालसे चली आ रही है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥
(गीता ४ । ८)

इसीके साथ इससे प्रजारक्षाका आदर्श भी प्रकट होगा।

जब श्रीविश्वामित्रजी अपने यज्ञकी रक्षाके लिये दोनों मधुर-मूर्ति भ्राताओंको साथ लिये आश्रमकी ओर यात्रा कर रहे थे, तब मार्गमें ताड़का नामकी विकराल राक्षसी अपने घोर रौद्र-नादसे समस्त वनको संनादित करती हुई इनकी ओर झपटी। उस समय श्रीभगवान्के सम्मुख धर्म-संकट उत्पन्न हो गया। एक ओर अपने उपास्य साधु-महात्माओंका भक्षण और प्रजाका चर्वण करनेवाली आततायिनी पिशाचिनीके—जिसके द्वारा देशके चौपट होनेकी कथा श्रीविश्वामित्रजीसे अभी सुन चुके हैं—वधका प्रसङ्ग और दूसरी ओर स्त्री-जातिपर हाथ उठानेके लिये दोष-प्राप्तिका प्रतिबन्ध, जिसका आज भी पूर्ण प्रचार देखनेमें आ रहा है। किंतु साधु-महात्माओंके परित्राण और प्रजाकी रक्षाके भावका उस समय भगवान्के हृदयमें इतना आवेश हुआ कि उन्होंने उसी क्षण उस दुष्टाके संहारका कर्तव्य अभ्रान्तरूपसे निश्चित कर लिया। श्रीविश्वामित्रजी महाराजके निम्नलिखित उपदेशसे भगवान्के निश्चयकी पुष्टि भी हो गयी—

नहि ते स्त्रीवधकृते घृणा कार्या नरोत्तम।
चातुर्वर्ण्यहितार्थं हि कर्तव्यं राजसूनुना॥
(वा० रा० १ । २५ । १७)

'नरोत्तम! तुमको स्त्रीवध करनेमें ग्लानि करना उचित नहीं। राजपुत्रको चारों वर्णोंके कल्याणके लिये समयपर (आततायिनी) स्त्रीका वध भी करना चाहिये।'

नृशंसमनृशंसं वा प्रजारक्षणकारणात्।
पातकं वा सदोषं वा कर्तव्यं रक्षता सदा॥
(वा० रा० १ । २५ । १८)

'प्रजा-रक्षणके लिये क्रूर-सौम्य, पातकयुक्त और दोषयुक्त कर्म भी प्रजा-रक्षकको सदा करने चाहिये।'

जब साधु-महात्मा सताये जायँ और प्रजा पीड़ित की जाय, तब उस सतानेवाली और पीड़ा देनेवाली स्त्रीका वध भी आवश्यक हो जाता है। पुरुष आततायी हो तो उसके लिये तो किसी विचारकी भी आवश्यकता नहीं।

इस चरित्रमें एक और गहरा रहस्य भरा हुआ है—श्रीभगवान्ने जो प्रथम ही स्त्रीका वध किया, इससे उन्होंने संसारको यही शिक्षा दी कि जो कोई भी प्राणी मनुष्य-जन्म धारण करके जगत्में धार्मिक जीवन व्यतीत करनेका संकल्प करे, उसके लिये प्रथम और प्रधान कर्तव्य यही है कि वह स्वबुद्धिके सत्प्रयोगद्वारा यथाशक्य मायाका दमन करे; क्योंकि मायाके जंजालमें फँसनेके बाद धर्मकी वेदीपर अपने जीवनकी आहुति दे सकना मनुष्यके लिये असम्भव-सा है।

(२) क्षात्र-धर्मका क्या रहस्य है, इसका आदर्श इस विचित्र चरित्रसे प्रकट होगा। परम माङ्गलिक विवाहोत्सवके पश्चात् जब श्रीविदेहराजसे विदा लेकर श्रीकोशल-नरेश दल-बलसहित अपनी राजधानी जगत्-पावनी अयोध्यापुरीको पधार रहे हैं, तब रास्तेमें क्या देखते हैं कि प्रज्वलित नेत्र और फड़कते हुए होठोंवाले भयंकर वीरवेषधारी ब्रह्मकुल-विख्यात श्रीपरशुरामजी उग्ररूप धारण किये श्रीरामके शिव-धनुषभङ्ग करनेपर अपना तीव्र क्रोध प्रकट करते हुए श्रीरामसे कह रहे हैं कि 'यदि तुम इस वैष्णव-धनुषपर शर चढ़ानेमें समर्थ हो तो तुमसे मैं द्वन्द्वयुद्ध करूँगा।'

यहाँ भी विकट परिस्थिति उपस्थित है। एक ओर तो ऐसे पुरुषकी ओरसे—जिसने इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियहीन कर दिया था और इस समय भी वैसे ही उग्रकर्मके लिये जिसकी प्रवृत्ति हुई थी—इस प्रकारका युद्धाह्वान कि जिसको तनिक भी क्षात्र-तेजवाला पुरुष एक क्षण भी सहन नहीं कर सकता और दूसरी ओर ब्राह्मण-वंशके प्रति हृदयमें पूज्यभाव। अब यहाँ यदि एक भाव दूसरेको दबाता है, अर्थात् यदि युद्धाह्वानको स्वीकारकर उनसे द्वन्द्वयुद्धकर अथवा उनपर प्रहारकर उनके प्राण लिये जाते हैं तो पूज्यभाव नष्ट होता है और यदि पूज्यभावके विचारसे युद्धाह्वानके उत्तरमें उनके चरणोंपर मस्तक रक्खा जाता है तो क्षात्र-तेजकी हानि होती है। अतः यहाँ ऐसी विचित्र क्रिया होनी चाहिये, जिससे दोनों भावोंकी रक्षा होकर दोनों पक्षोंका महत्त्व स्थिर रहे और एक भावका इतना आवेश न हो जाय कि जो दूसरेको दबा दे। अतः सर्वशक्तिमान् श्रीभगवान्‌ने इस जटिल समस्याके समाधानरूपमें कहा—

वीर्यहीनमिवाशक्तं क्षत्रधर्मेण भार्गव।
अवजानासि मे तेजः पश्य मेऽद्य पराक्रमम्॥
(वा० रा० १। ७६। ३)

'हे भृगुवंशशिरोमणि! यद्यपि मैं क्षत्रियधर्मसे युक्त हूँ, फिर भी आपने मुझे वीर्यहीन और असमर्थ-सा समझकर जो मेरे तेजकी अवज्ञा की है, इसके लिये आज मेरा पराक्रम देखिये।' इतना कहकर श्रीरामने उनसे धनुष ले उसी क्षण चढ़ा दिया। तदनन्तर क्रोधयुक्त होकर कहा—

ब्राह्मणोऽसीति पूज्यो मे विश्वामित्रकृतेन च।
तस्माच्छक्तो न ते राम मोक्तुं प्राणहरं शरम्॥
इमां वा त्वद्गतिं राम तपोबलसमर्जितान्।
लोकानप्रतिमान्वापि हनिष्यामीति मे मतिः॥
(वा० रा० १। ७६। ६-७)

'आप ब्राह्मण होनेके कारण मेरे पूज्य हैं तथा विश्वामित्र-जीकी बहिन सत्यवतीके पौत्र हैं, इसलिये मैं आपके प्राण हरण करनेवाला बाण नहीं छोड़ सकता। किंतु मैं आपकी गतिका अथवा तपोबलसे प्राप्त होनेवाले अनुपम लोकोंका विनाश करूँगा।'

इस अमितप्रभावान्वित चरित्रका मुख्य उद्देश्य यही है कि जब हृदयमें दो भावोंका एक ही साथ संघर्ष हो, तब दोनोंको इस प्रकारसे सँभालनेमें ही बुद्धिमानी है, जिसमें एकका दूसरेके द्वारा पराभव न हो जाय, दोनोंकी रक्षा हो, साथ ही धर्मका भी नाश न होने पाये। यहाँ सामान्यतया सभी वर्णोंके लिये और विशेषतया क्षत्रियोंके लिये इस मर्यादाकी रक्षाका उपदेश है। वह यह है कि चित्तमें कितने भी उग्रभाव उत्पन्न हों, कितनी ही क्रोधाग्नि धधके, विरोधी-के प्रति जो पूज्य या आदरबुद्धि है, वह नष्ट नहीं होनी चाहिये; साथ ही अपना क्षात्रतेज भी बच रहना चाहिये। इस मर्यादाका अनुकरण किसी अंशमें महाभारत-युद्धमें भी हुआ था। यहाँ शङ्का उत्पन्न होती है कि 'रावण भी तो ब्राह्मण ही था, फिर श्रीभगवान्‌ने उसको कुलसहित क्यों मार डाला? उसने तो केवल धर्मपत्नीका ही हरण किया था, श्रीपरशुरामजीने तो इक्कीस बार सजातियोंका विनाश किया था और इस समय भी वे स्वयं भगवान्‌का संहार करनेकी बुद्धिसे ही वहाँ आये थे। द्वन्द्वयुद्धका यही तो प्रयोजन था।'

इस शङ्काका समाधान करनेके लिये श्रीपरशुरामजीके चरित्रका कुछ परिचय आवश्यक है। एक बार श्रीपरशुरामजी-के पिता अरण्यसेवी ब्रह्मनिष्ठ तपस्वी श्रीजमदग्निजीकी सर्वस्वरूपा हविर्धानी गौको सहस्रबाहु अर्जुन जबरदस्ती छीनकर ले गया। परशुरामजीने युद्धमें उसका वध करके अपनी गौ छुड़ा ली। तदनन्तर सहस्रार्जुनके पुत्रोंने एकान्त पाकर जमदग्निका वध कर डाला। पूज्य पिताकी इस प्रकार हत्या होनेपर परशुरामजीकी क्रोधाग्नि भड़क उठी और इन्होंने इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय करनेका संकल्प कर लिया।

परशुरामजी भी श्रीभगवान्‌के ही अवतार थे; इस कार्यको करके उन्होंने दुष्कृतियोंको ही दण्ड दिया था, अतः दुष्कृति रावणके साथ इनकी तुलना नहीं हो सकती।

इन दोनोंके आचरण परस्पर सर्वथा विपरीत थे । हाँ, यह अवश्य है कि श्रीपरशुरामजीका संकल्प क्रोधावेशमें सीमासे बाहर चला गया था, परंतु इस प्रकारके आवेशके निरोधकी शक्ति केवल श्रीमर्यादापुरुषोत्तममें ही थी, जिन्होंने किसी भी भाव या आवेशको मर्यादासे बाहर नहीं जाने दिया ।

(३) धर्मयुक्त शुद्ध राजनीति क्या है, इसका चित्र भी श्रीभगवान्‌की अधोवर्णित धर्मशीला लीलाके द्वारा पूर्णरूपसे प्रकट होता है—

जब महारानी श्रीकैकेयीने कोपभवनमें प्रवेश करके श्रीदशरथ महाराजको दो वरदानरूपी वज्रोंसे छेदकर मूर्छित कर दिया, तब भगवान्‌ने वहाँ उपस्थित होकर इसका कारण पूछा । उस समय कैकेयीने यह संदेह करके कि श्रीराम इतना स्वार्थत्याग सहजमें ही कैसे करेंगे, उन्हें कोई स्पष्ट उत्तर न देकर पहले उनसे प्रतिज्ञा करवानेका प्रयत्न किया । उत्तरमें श्रीभगवान्‌ने ये सतत स्मरणीय आदर्श वचन कहे—

तद् ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकाङ्क्षितम् ।
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते ॥
(वा० रा० २ । १८ । ३०)

"माता ! महाराजसे तुमने जो कुछ माँगा है, वह मुझे बतला दो । मैं उसे सम्पादन करनेकी प्रतिज्ञा करता हूँ । रामका यह सिद्धान्त स्मरण रक्खो—'राम दो बात नहीं कहता ।' अर्थात् उसने जो कुछ कह दिया, कह दिया । फिर वह उसके विरुद्ध नहीं करता ।"

कैसी महत्त्वपूर्ण वचन-पालनकी प्रतिज्ञा है । विचारिये, एक ओर अनेक भोग-विलासोंसे पूर्ण विस्तृत विशाल राज्यके सिंहासनकी अभिरुचि और दूसरी ओर शीत, आतप, अवघट, मार्ग, राक्षस, हिंसक पशु आदि अनेक विघ्न-बाधाओंसे युक्त कल्पनातीत क्लेश सहन करते हुए एकाकी वनवासी-जीवन ! इस जटिल समस्यामें जिस राजनीतिके बलपर अनेक रचनाएँ रची गयीं और आजकल भी जिसे कहीं पालिसी (Policy) और कहीं डिप्लोमैसी (Diplomacy) कहते हैं, जो केवल छलप्रधान होती है और जिसमें प्रकट कुछ और ही किया जाता है तथा भीतर कुछ और ही रहता है, यहाँ उसके द्वारा साम, दान, दण्ड और भेदरूप चतुर्विध नीतिका प्रयोग कर युक्ति और चतुराईसे काम लेनेका कोई ऐसा उपाय सोच निकाला ही जा सकता था, जिससे सिंहासनका स्वार्थ हाथसे नहीं जाता । किंतु श्रीरामके परम पवित्र हृदयमें राजनीति और धर्म दो रूपमें नहीं थे । वहाँ तो राजनीतिका अर्थ ही 'धर्मसे अविरुद्ध' निश्चित था और धर्मकी तुलनामें एक अयोध्याका तो क्या, चौदह भुवनोंका साम्राज्य भी नगण्य था । इससे सिद्ध होता है कि स्वधर्मका लोप करके स्वार्थसाधन करना मनुष्यमात्रके लिये निषिद्ध है; फिर राजापर तो नराधिपति होनेके नाते उसकी सर्वप्रकारसे रक्षा करनेका दायित्व है । धर्मात्मा राजा कभी स्वार्थमें लिप्त नहीं हो सकता । यथार्थ राजनीति वही है, जिससे धार्मिक सिद्धान्तोंका खण्डन न होकर व्यवहारकी सुकरता हो जाय । अर्थात् साम, दान, दण्ड और भेदरूप नीतिके द्वारा ऐसी युक्ति और निपुणतासे काम लिया जाय, जिससे व्यवहार भी न बिगड़ने पाये और धर्मका विरोध भी न हो । छल-प्रतारणादि-प्रधान दुष्ट-बुद्धिसे किसी व्यवहारको सिद्ध भी कर लिया तो वह वस्तुतः कूट-नीतिका कार्य पापमें परिणत होकर मनुष्यको नरकमें ले जाता है । इसके लिये श्रीयुधिष्ठिर महाराजका उदाहरण प्रसिद्ध है, जिनकी आजन्म दृढ़ सत्यनिष्ठा रही, किंतु जिन्हें युद्धके अवसरपर दूसरोंके अनुरोधसे केवल एक बार और वह भी दबे हुए शब्दोंमें अन्यथा बोलनेके कारण दुःखप्रद नरकका द्वार देखना पड़ा ।

(४) भ्रातृ-प्रेमकी पराकाष्ठा देखना चाहें तो नीचे दी हुई कथारूप अमृतका पान कीजिये—

जब चित्रकूटमें यह सूचना पहुँची कि श्रीभरतजी चतुरङ्गिणी सेना लिये धूमधामसे चले आ रहे हैं, तब लक्ष्मणजीने क्रोधावेशमें भरतजीको युद्धमें पराजित करनेकी प्रतिज्ञा कर डाली । भगवान् श्रीराम तो उसको सुनते ही सन्न हो गये । बड़ी विकट परिस्थिति है । एक ओर वह प्यारा सरल भाई है, जो सर्वस्व त्यागकर अनन्यभावसे सेवामें तत्पर है और इस क्षण भी सांनिध्यमें ही उपस्थित है एवं दूसरी ओर वह प्रिय भ्राता है, जो समीप नहीं है और जिसकी माताकी क्रूरताके कारण ही आज वनवासका दारुण दुःख सहना पड़ रहा है; परंतु जिसके साथ परस्पर परम गूढ़ और अनिर्वचनीय प्रेम है । सामान्यरूपसे जगद्व्यवहारानुकूल अपरोक्षपर ही विशेष ध्यान दिया जाता है, किंतु श्रीभगवान्‌का हृदय ऐसी मुँहदेखी बातोंको कब स्पर्श कर सकता था । वहाँ तो परोक्ष और अपरोक्ष दोनों ही समान हैं । ऐसी दशामें अपने प्रेमीके विरुद्ध श्रीरामको एक शब्द भी कैसे सहन हो सकता था ? विरुद्ध शब्दोंके कानमें पड़ते ही प्रेमावेशसे

तत्काल उत्तेजित होकर श्रीरामने प्यारे भाई श्रीलक्ष्मणके खिन्न होनेकी कुछ भी परवा न कर ये वचन कह ही डाले—

"भाई लक्ष्मण! धर्म, अर्थ, काम और पृथिवी—जो कुछ भी मैं चाहता हूँ, वह सब तुम्हीं लोगोंके लिये, यह तुमसे मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ। भरतने तुम्हारा कब क्या अहित किया है, जो तुम आज ऐसे भयाकुल होकर भरतपर संदेह कर रहे हो? तुमको भरतके प्रति कोई अप्रिय या क्रूर वचन नहीं कहना चाहिये। यदि तुम भरतका अपकार करोगे तो वह मेरा ही अपकार होगा। यदि तुम राज्यके लिये ऐसा कह रहे हो तो भरतको आने दो; मैं उनसे कह दूँगा—'तुम लक्ष्मणको राज्य दे दो।' भरत मेरी बातको अवश्य ही मान लेंगे।"

यहाँ यह शङ्का नहीं करनी चाहिये कि श्रीभगवान्का श्रीलक्ष्मणजीमें उतना प्रेम नहीं था; उनका तो प्राणिमात्रमें प्रेम है, फिर अपने अनन्यसेवक प्यारे कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मणके लिये तो कहना ही क्या है। यहाँ जो क्षोभ हुआ है, वह वास्तवमें लक्ष्मणजीपर नहीं है; उनके हृदयमें विकृति उत्पन्न हो गयी थी, उसीको निकालनेके लिये श्रीभगवान्का यह कठोर यत्न है। भगवान्के वचन सुनते ही श्रीलक्ष्मणजीका मनोविकार नष्ट हो गया। इसी प्रकार अन्य प्राणियोंके साथ भी किया जाता है। श्रीभगवान्को किसीसे तनिक भी द्वेष नहीं है। सबके आत्मा होनेके कारण वे तो सबके आत्मरूप हैं, केवल अंकुरित विकृतियोंको ही यथोचित दण्डादि विधियोंके द्वारा नष्ट किया करते हैं।

(५) अब नास्तिकवादको किसी प्रकार भी न सह सकनेका एक अभ्रान्त दृष्टान्त सुनिये—श्रीभरतजीने जब चित्रकूट पहुँचकर श्रीभगवान्को अवधपुरी लौटाकर राज्याभिषेक करनेके अनेक यत्न किये, अनेक प्रार्थनाएँ कीं और श्रीवसिष्ठजी आदि ऋषियोंने भी अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार परामर्श दिया, तब उन ऋषियोंमें जाबालि ऋषिका मत सनातनधर्मसे नितान्त विरुद्ध प्रकट हुआ। नमूनेके लिये एक श्लोक लीजिये—

तस्मान्माता पिता चेति राम सज्जेत यो नरः।
उन्मत्त इव स ज्ञेयो नास्ति कश्चिद्धि कस्यचित्॥
(वा० रा० २। १०८। ४)

'हे राम! अतएव यह माता है, यह पिता है—यों समझकर जो इन सम्बन्धोंमें लिप्त होता है, उसे उन्मत्त-जैसा जानना चाहिये; क्योंकि कोई भी किसीका नहीं है।' ऐसी ही और भी धर्मविरुद्ध बातें कहीं। श्रीभगवान्के लिये यह अतिशय जटिल प्रसङ्ग था। एक पक्षमें था घोर नास्तिकवाद और दूसरेमें उसको प्रकट करनेवाले अपने कुलपूज्य ऋषि। श्रीभगवान् बड़े ही ब्रह्मण्य थे, फिर जाबालि ऋषि तो कुलके आदरणीय एवं उपास्य हैं। ऐसे महानुभावके प्रति श्रीरामके अगाध हृदयमें विकृतभाव कब उत्पन्न हो सकते थे। परंतु धर्मके नितान्त विरुद्ध शब्दोंने, जिनका आशय श्रीभगवान्को सत्यसे विचलित करना था, हृदयमें परिवर्तन कर दिया; श्रीभगवान्ने उस समय मर्यादारक्षार्थ नास्तिकवादका तीव्र विरोध करना ही उचित समझा और तिरस्कारपूर्वक ऋषिके प्रति जो कुछ कहा, उस अंशका एक वचन यह है—

निन्दाम्यहं कर्म कृतं पितुस्तद्
यस्त्वामगृह्णाद्विपमस्थबुद्धिम्।
बुद्ध्यानयैवंविधया चरन्तं
सुनास्तिकं धर्मपथादपेतम्॥
(वा० रा० २। १०९। ३३)

'इस प्रकारकी बुद्धिसे आचरण करनेवाले तथा परम नास्तिक और धर्म-मार्गसे हटे हुए आपको जो मेरे पिताजीने याजक बनाया, मैं उनके इस कार्यकी निन्दा करता हूँ; क्योंकि आप अवैदिक, दुर्मार्गस्थित बुद्धिवाले हैं।'

आखिर जाबालिके यह कहनेपर कि 'मैं नास्तिक नहीं हूँ, केवल आपको वनसे लौटानेके लिये यों कह रहा था' और वसिष्ठजीके द्वारा इसका समर्थन किये जानेपर भगवान् शान्त हुए। धर्म और सत्यके उत्कट भावोंके आवेशमें नास्तिकवादकी अवज्ञाकी पराकाष्ठा यहाँतक पहुँची कि पितृभक्तिमें बँधे हुए श्रीरामने, जो पूज्य पिताके सत्यकी रक्षाके लिये आज अनेक संकट सहन कर रहे हैं, पिताके कार्यमें भी अश्रद्धा प्रकट कर दी। इससे जो मर्यादा स्थिर की गयी, उसका प्रत्यक्ष उद्देश्य है कि मनुष्यको अन्य सब विचार त्यागकर नास्तिक भावोंका उग्र विरोध करना चाहिये।

(६) अब गुरुभक्तिके गङ्गा-तरङ्गवत् पावन प्रसङ्गपर विचार कीजिये।

यों तो कुल-उपास्य श्रीवसिष्ठ महाराजका महत्त्व स्थान-स्थानपर प्रकट ही है, प्रत्येक धार्मिक और व्यावहारिक

कार्यमें उनकी प्रधानता रही है, जो गुरुभक्तिका पूर्ण प्रमाण है; परंतु देखना यह है कि विकट समस्या उपस्थित होनेपर अन्य उदाहरणीय चरित्रोंकी तरह गुरुभक्तिके प्रबल भावोंका ही हृदयमें साम्राज्य होकर उसकी अनन्यता किस विशेष चरित्रके द्वारा सिद्ध हो सकती है।

खेदसे कहना पड़ता है कि श्रीवाल्मीकि-रामायण मर्यादा-रक्षाके इस एक मुख्य अङ्गकी पूर्तिमें असमर्थ रही। उसमें कहीं भी ऐसा प्रसङ्ग नहीं है, जिसके द्वारा इसको सिद्ध किया जा सके; प्रत्युत चित्रकूटमें तो उपर्युक्त प्रसङ्गमें जब श्रीगुरुमहाराजने बड़े प्रबल हेतुवादके द्वारा श्रीभरतजीके पक्ष-समर्थनकी चेष्टा की, तब दूसरोंकी भाँति उनका कथन भी भगवान्‌ने स्वीकार नहीं किया।

श्रीरामचरित-मानसने अपनी सर्वाङ्गपूर्णता सिद्ध करते हुए चित्रकूटकी लीलामें ही इस मर्यादाकी भी यथेष्ट रक्षा की है।

श्रीवसिष्ठजी महाराज भरतजीका पक्ष लेकर भगवान्‌से कहते हैं—

सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहिअ उपाउ॥
(श्रीराम० २। २५७)

इसपर भगवान्‌ने जो उत्तर दिया, वह गुरुभक्तिकी पराकाष्ठा है—

सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ॥
सब कर हित रुख राउरि राखें। आयसु किएँ मुदित फुर भाषें॥
प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई। माथें मानि करौं सिख सोई॥
(वही, २५७। १-२)

विचारिये—कहाँ तो पितृभक्तिके निर्वाहार्थ वनवासके लिये आप इतने दृढ़ हो रहे थे कि यदि कोई उसके विरुद्ध कहता था तो उसे तुरंत उचित उत्तर दे दिया जाता था; परंतु आज गुरुदेवकी आज्ञाके सम्मुख श्रीभगवान्‌ने अपना वह संकल्प सर्वथा ढीला कर दिया। गुरुभक्तिकी इससे अधिक क्या मर्यादा हो सकती है?

(७) मातृभक्तिकी परम सीमाका यह उच्च उदाहरण सुननेयोग्य ही है—

पञ्चवटीमें श्रीजानकीजीसहित दोनों भ्राता सुखपूर्वक बैठे परस्पर वार्तालाप कर रहे हैं। जब श्रीलक्ष्मणजीने भरतजीकी श्लाघा करते हुए कहा—

भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः।
कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी॥
(वा० रा० ३। १६। ३५)

'जिसके पति महाराज श्रीदशरथजी और पुत्र साधुस्वभाव भरतजी हैं, वह माता कैकेयी ऐसी क्रूर स्वभाववाली कैसे हुई?'

यहाँ भी एक ओर वे ही प्राणपणसे सेवामें तत्पर, अलीक-वचन बोलनेवाले कनिष्ठ भ्राता हैं और दूसरी ओर वही विमाता, जिसके कारण सारा उत्पात और विघ्न हुआ; परंतु, कुछ भी हो, मातृभक्तिके भावोंने हृदयमें इतना उत्कट रूप धारण किया कि माताके विरुद्ध एक भी वचन उन्हें सहन नहीं हुआ। श्रीभगवान्‌ने कहा—

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन।
तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु॥
(वा० रा० ३। १६। ३७)

'हे भाई! तुमको मझली माताकी निन्दा कदापि नहीं करनी चाहिये। इक्ष्वाकुकुलश्रेष्ठ भरतजीकी ही चर्चा करनी चाहिये।' इससे अधिक मातृभक्तिकी मर्यादा और क्या हो सकती है?

(८) मित्र-धर्म और स्वामिधर्म, दोनोंकी पराकाष्ठाके विचित्र चित्रका दर्शन निम्नाङ्कित एक ही मर्मस्पर्शी लीलामें हो जाता है।

भगवान्‌के निर्मल, विशिष्ट और मर्यादापूर्ण चरित्रोंमें तीन ऐसे हैं, जिनके विषयमें उनके यथार्थ स्वरूपकी अनभिज्ञताके कारण अबोध मनुष्य प्रायः आक्षेप किया करते हैं। इन तीनोंमें एक वालि-वधकी लीला है।

अन्य पुरुषोंकी तो बात ही क्या, स्वयं वालीने भी श्रीभगवान्‌को उलाहना दिया है। उसके आक्षेपोंके उत्तरमें अनेक प्रकारसे समाधान किया गया है। किंतु इसमें सबसे मुख्य समाधान निम्नाङ्कित है—

जिस समय सुग्रीवसे मित्रता करके श्रीभगवान्‌ने प्रतिज्ञा की थी, उसी समयके वचन हैं—

प्रतिज्ञा च मया दत्ता तदा वानरसंनिधौ।
प्रतिज्ञा च कथं शक्या मद्विधेनानवेक्षितुम्॥
(वा० रा० ४। १८। २७)

'मैंने सुग्रीवको जो वचन दिया था, उस प्रतिज्ञाको कैसे टाल सकता हूँ ?'

विचारिये, वालीने साक्षात् श्रीभगवान्‌का कोई अपराध नहीं किया था, किंतु वह उनके मित्र सुग्रीवका शत्रु था। अतः उसको अपना भी शत्रु समझकर उसके वधकी तत्काल प्रतिज्ञा की गयी। यही तो मित्र-धर्मकी पराकाष्ठा है। मित्रका कार्य उपस्थित होनेपर अपने निजके हानि-लाभका सारा विचार छोड़ उसका कार्य जिस प्रकार भी सम्भव हो, साधना चाहिये। इसीलिये मित्रके सुख-सम्पादनार्थ उसके शत्रुरूप भ्राताका वध किया गया। इस बातके समझनेमें तो अधिक कठिनता नहीं है; किंतु जिस बातपर मुख्य आक्षेप होता है, वह यह है कि 'वालीको युद्धाह्वानद्वारा सम्मुख होकर धर्मपूर्वक क्यों नहीं मारा गया ?' इस शङ्काका समाधान श्रीवाल्मीकीय या मानस, दोनों रामायणोंके मूलसे नहीं होता। टीकाओंके निर्णयानुसार यथार्थ बात यह थी कि वालीको एक मुनिका वरदान था कि सम्मुख युद्ध करनेवालेका बल उसमें आ जायगा, जिससे उसके बलकी वृद्धि हो जायगी। इस दशामें भगवान्‌के लिये एक जटिल समस्या आ खड़ी हुई। वालीको प्रतिज्ञा-पालनार्थ अवश्य मारना है। यदि अपनी ऐश्वर्य-शक्तिसे काम लेते हैं तो उस वरदानकी महिमा घटती है, जो आपकी ही भक्तिके बलपर मुनिने दिया था और यदि वरदानकी रक्षा की जाती है तो धर्मपूर्वक युद्ध न होनेसे पापकी प्राप्ति और जगत्‌में निन्दा होती है। इस समस्याके उपस्थित होते ही स्वामिधर्मके भाव हृदयमें इतने हो गये कि भगवान्‌ने अपने धर्माधर्म और निन्दा-स्तुतिके विचारको हृदयसे तत्काल निकाल, अपने जनका मुख ऊँचा करना ही मुख्य समझ, उस सुग्रीवसे लड़ते हुए वालीको बाणसे मारकर गिरा ही तो दिया।

इससे यही मर्यादा निश्चित हुई कि स्वामीको कोई ऐसी चेष्टा नहीं करनी चाहिये, जिससे अपनी स्वार्थ-सिद्धिके द्वारा अपने दास या सेवकका महत्त्व घटे। इस विषयपर सत्यहृदय और निष्पक्षबुद्धिसे विचार करना चाहिये कि श्रीभगवान्‌का धर्मयुक्त कार्य वरदानकी महिमाको क्षीण करते हुए सम्मुख धर्मयुद्ध करना होता या अब हुआ है, जिसमें अपने निजका विचार हृदयसे निकालकर केवल अपने जनके वरकी प्रतिष्ठा रक्खी गयी ?

(९) अब शरणागत-वत्सलताके महत्त्व-निरूपणका प्रसङ्ग देखिये—

जिस समय विभीषणजी अपने भ्राता रावणसे तिरस्कृत होकर श्रीरामदलमें आये, उस समय श्रीभगवान्‌ने अपने सभी समीपस्थोंसे सम्मति ली। उनमें हनुमान्‌को छोड़कर अन्य किसीका मत विभीषणके अनुकूल नहीं हुआ। बात भी ऐसी ही थी। अकस्मात् आये हुए साक्षात् शत्रुके भाईका सहसा कैसे विश्वास हो। किंतु इन सब विचारोंको हृदयमें किंचित् भी स्थान न दे, शरणागत-वत्सलताके भावसे श्रीरामने सहसा अपना निश्चय इस वचनके द्वारा प्रकट कर दिया, जो महावाक्य समझा जाता है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
(वा० रा० ६। १८। ३३)

(१०) लोकमतका क्या मूल्य है और राजाको लोक-हितका कितना आदर करना चाहिये, इस प्रमुख विषयपर यह दृढ़हृदयशीला लीला पूर्ण प्रकाश डालेगी; इसी चरित्रसे पातिव्रत-धर्म और एकपत्नीव्रतका आदर्श भी सिद्ध होगा। वालि-वध-लीलामें कहा गया था कि भगवान्‌की तीन लीलाओंपर आक्षेप होता है। उनमें दूसरी यह है। किंतु ये आक्षेप ऐसे मनुष्योंके द्वारा होते हैं, जिनमें इस कराल कालके कारण पूर्ण विकृतियाँ आ गयी हैं। इस परम संकीर्णताके युगमें ऐसे राजाओंके दर्शन तो हों ही कहाँसे, जो प्रजाके आन्तरिक भाव जाननेका यत्न करके उनके कष्ट-क्लेश या अपवादोंको यथाशक्य दूर करनेकी चेष्टा करें; ऐसे भी तो नहीं हैं, जो खुले रूपसे धर्मपूर्वक आन्दोलनके द्वारा प्रकट होनेवाले लोकमतका भी आदर करें। आजकल तो ऐसे प्रयासोंका उलटा दमन होता है। आजकलकी नीतिके अनुसार तो न्यायका पात्र वही समझा जाता है, जो अपने प्रबल संगठनद्वारा राज्यको बाध्य करे। बस, ऐसी ही क्षुद्र नीतियोंका अनुभव करके लोग इन उदार चरित्रोंपर तुरंत कुतर्क करनेको संनद्ध हो जाते हैं और यह नहीं सोचते कि उस रामराज्यमें लोकमतके आदरकी सीमा इतनी ऊँची थी कि वह आजकलके संकीर्ण विचारवालोंकी कल्पनातकमें भी नहीं आ सकती; प्रत्युत वे तो उसमें उलटे दूषण लगाते हैं। उस समय प्रजाके सच्चे हितके लिये कैसा भी कठिन साधन बचाकर नहीं रक्खा जाता था। इसीका एक सर्वोत्कृष्ट उदाहरण यह है। एक दिन कुछ लोग विनय आदिद्वारा श्रीभगवान्‌को प्रसन्न करनेकी चेष्टा कर रहे थे। उसी प्रसङ्गमें श्रीभगवान्‌ने उनसे पूछा कि 'नगरमें हमारे सम्बन्धकी क्या बातें हुआ

करती हैं ?' उत्तरमें निवेदन किया गया कि 'सेतुबन्धन, रावण-वधादि अद्भुत कार्योंकी पूर्ण प्रशंसा है; किंतु इस प्रकारकी चर्चा भी नगरमें हो रही है कि रावणने जिन श्रीसीताजीको अङ्कमें लेकर उनका हरण किया और जिन्होंने उसके घरमें निवास किया, उनको जब महाराजने स्वीकार कर लिया, तब अब हम भी अपनी स्त्रियोंके ऐसे कार्योंको सहन करेंगे।'

श्रीभगवान्‌को यह सुनकर परम खेद हुआ। उन्हें अपनी आदर्श पतिव्रता सहधर्मिणीकी पूर्ण पवित्रताका अटल निश्चय था, बल्कि रावणके विजय करनेके अनन्तर उसको अपने समीप बुलाकर कठिन अग्निपरीक्षा भी करा ली गयी थी और उसमें वह सबके समक्ष डंकेकी चोट उत्तीर्ण हुई थी। इस प्रकार अपनी पत्नीके सूर्यवत् निष्कलङ्क सिद्ध होते हुए भी केवल लोकमतका महत्त्व बढ़ानेके लिये मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामने अपनी उस प्राण-प्रियाके—जिसका वनवासमें किंचित्कालीन वियोग ही सर्वथा असह्य हो गया था—परित्यागका ही निश्चय करके अपने तीनों भ्राताओंके सम्मुख ये वचन कहे—

'पुरजन और देशवासियोंके द्वारा (मेरे विषयमें) यह बहुत बड़ा अपवाद है। संसारमें उत्पन्न होनेवाले जिस किसीकी निन्दा की जाती है, वह पुरुष, जबतक वे अकीर्तिके शब्द कहे जाते हैं, तबतक निश्चय ही नीचे लोकोंमें गिरता है। निन्दाकी बुराई देवता भी करते हैं और कीर्तिका संसारमें आदर होता है। सभी बड़े-बड़े महात्माओंकी संसार-व्यवहारमें कीर्तिके लिये ही प्रवृत्ति होती है। पुरुषश्रेष्ठो! मैं अपने प्राण और तुम सबको भी (कीर्ति-रक्षाके लिये) त्याग सकता हूँ।'

कहिये, लोकमतका इससे अधिक आदर क्या हो सकता है? और इसी कारण ऐसा त्याग किया गया, जिससे अधिक त्याग सम्भव ही नहीं। परंतु इसमें मुख्य तथा विचारणीय बात यह है कि यहाँ निरे लोकमतका ही आदर नहीं किया गया है, इसमें परम लोकहित भी अभिमत था; क्योंकि संसारकी दृष्टि अन्तर्वर्ती हेतुओंके तलतक न पहुँचकर केवल परिणामपर ही रहती है। अतः जैसा श्रीजानकीजीका शुद्ध चरित्र था, उसकी सर्वथा उपेक्षा करके स्थूलदृष्टिवाले लोगोंके द्वारा यही प्रसिद्ध कर दिया गया कि जब राजाने राक्षसोंके वशमें प्राप्त हुई पत्नीको ग्रहण कर लिया, तब प्रजा भी राजाका ही अनुकरण करेगी। विचारिये, यदि श्रीभगवान् अपने हृदयको पाषाण बनाकर श्रीजानकीजीका त्यागरूप क्रूर कार्य न करते तो सदाचारको कितना भयानक धक्का पहुँचता! सभी स्त्रियाँ श्रीजानकीजीके-से कठिन पातिव्रतधर्ममें दृढ़ नहीं रह सकतीं, विशेषकर कलियुग-सरीखे समयमें। सच पूछा जाय तो यह आदर्श आजके-से समयके लिये नहीं था; क्योंकि आज तो सदाचारका सर्वथा लोप होकर संसारमें धर्मविरुद्ध विचारोंकी यहाँतक प्रबलता हो गयी है कि लोग विवाह-संस्काररूप मुख्य संस्कारके बन्धनोंको भी छिन्न-भिन्न करनेवाले कानून बना रहे हैं। इस कराल कालमें योनि-पवित्रता तो कोई वस्तु ही नहीं रही। इसके कारण देश थोड़े ही समयमें वर्णसंकर-सृष्टिसे व्याप्त हो जायगा। श्रीभगवान्‌के इस दूरदर्शितापूर्ण चरित्रसे पातिव्रतधर्म और एकपत्नीव्रतकी भी पूर्ण पराकाष्ठा प्रमाणित हुई। श्रीजानकीजीकी, जबतक वे श्रीभगवान्‌के साथ रहीं, पूर्ण अनुरक्तता प्रकट ही है और अन्तमें भी उन्होंने स्वामीकी आज्ञा पालन करते हुए ही घोर यातना सहकर शरीर-त्याग किया। साथ ही श्रीभगवान्‌ने भी कभी अन्य स्त्रीका संकल्प भी हृदयमें नहीं किया और वियोगके पश्चात् ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक ही अपनी लीला समाप्त की।

(११) अन्तमें एक ऐसे पवित्र चरित्रका निरूपण होगा, जिससे वर्णाश्रम-धर्म-रक्षा और न्यायपरायणताकी पराकाष्ठा सिद्ध होती है।

वस्तुतः यह विषय गहन है और इसकी गहनताको न समझकर ही लोगोंकी दृष्टिमें यह अधिक आक्षेपयोग्य समझा गया है। यह आक्षेपजनक तीसरी लीला है।

एक समय एक ब्राह्मणका इकलौता बालक मर गया। उसने मृत पुत्रको लाकर राजद्वारपर डाल दिया और विलाप करते हुए आक्रोश किया कि 'इस बालककी अकालमृत्युका कारण राजाका महान् दुष्कृत है।' ऋषि-मुनि आदिकी परिषद्‌के द्वारा विचार किया गया तो योगबलसे या दिव्य दृष्टिसे यह निर्णीत हुआ कि 'कोई शूद्र अनधिकार तप कर रहा है, उसीके कारण इस बालककी मृत्यु हुई है। जहाँ ऐसा अनाचार होता है, वहाँ लक्ष्मीका अभाव हो जाता है और वहाँका राजा नरकगामी होता है।'

यह सुनते ही श्रीभगवान् किसी अधिकारी या कर्मचारीको अनुसंधानकी आज्ञा देकर अथवा कोई गुप्तचर (सी० आई० डी०) लगाकर दायित्वसे मुक्त नहीं हुए, अपितु तत्काल

पुष्पकविमानमें विराजित हो स्वयं उसकी खोजमें निकले। जब दक्षिण दिशामें पहुँचे, तब उन्होंने देखा कि एक पुरुष कठोर तपमें प्रवृत्त है। उससे प्रश्न करनेपर उसने स्पष्ट और सत्य उत्तर देते हुए कहा कि 'मैं मिथ्या कभी नहीं बोलूँगा। मैं शम्बूक नामक शूद्र देवलोककी प्राप्तिके लिये तप कर रहा हूँ।' इतना सुनते ही श्रीभगवान्‌ने खड्गसे उसका मस्तक छेदन कर दिया। इधर इसका वध हुआ और उधर वह बालक सजीव हो उठा।

संक्षेपमें कथा इतनी ही है; किंतु इसमें रहस्य भरा हुआ है। जो केवल दृष्टि-सृष्टिवादपर ही तुले हुए हैं, अर्थात् जिनकी संकुचित बुद्धि प्रत्यक्षके बाहर जाती ही नहीं, उनको कैसी भी युक्ति और प्रमाणोंसे समझाया जाय, वे उस तत्त्वपर पहुँच ही नहीं सकते। आज स्थान-स्थानपर हृदय विदीर्ण करनेवाले दृश्य देखनेमें आ रहे हैं कि पिता-पितामह अपने बेटे-पोते—सबको श्मशानभूमिके अर्पण कर पूर्वजन्मके घोर अनिष्ट संस्कारोंको भोगते हुए अपना शेष दुःखद जीवन बिता रहे हैं। इसके विपरीत जब यह बात सुनी जाती है कि उस कालमें अकाल-मृत्यु ही नहीं होती थी, अर्थात् प्राणी अपनी पूर्ण आयु समाप्त करके ही कालको प्राप्त होते थे; और ऐसा अवसर ही नहीं आता था कि पिताके सामने पुत्र मरे, तब यह बात परम आश्चर्यजनक प्रतीत होती है। परंतु वास्तवमें बात ऐसी ही है। वर्त्तमान नयी सभ्यताकी चकाचौंधसे विकृत हुई दृष्टिवाले भले ही इसकी दिल्लगी उड़ायें, किंतु जिनको चारों युगोंके भिन्न-भिन्न धर्मोंका ज्ञान है, उनको इसपर आपत्ति नहीं हो सकती। इस सम्बन्धमें सामान्य आस्तिक बुद्धिवाले मनुष्योंके हृदयमें भी जो प्रबल शङ्काएँ उत्पन्न हो सकती हैं, वे ये हैं—

(क) ब्राह्मणने बालकके मृतक शरीरको राजद्वारपर लाकर डाला और वहाँ उसका निर्णय होकर वह राजाके न्यायसे जीवित हो गया। आज ऐसा क्यों नहीं होता? यदि ऐसी बात भी राजाके अधिकारमें हो तो आज तो राज-द्वारोंपर मृतक शरीरोंके ढेर लग जायँ और राजद्वारका नाम परिवर्तन होकर वह मृतकभवन ही हो जाय।

(ख) तप करना तो पवित्र काम है, उसको सदोष क्यों समझा गया? और यदि वह सदोष था भी तो उस शूद्रके तप करनेसे ब्राह्मण-बालककी मृत्युका क्या सम्बन्ध? कोई मनुष्य तप करे कहीं और कोई मरे कहीं, यह बात कुछ समझमें नहीं आती।

(ग) यदि दूसरी शङ्काका कुछ समाधान हो भी जाय तो ऐसा उग्र दण्ड क्यों दिया गया, जो अति घृणित या निर्दयतापूर्ण कार्य समझा जा सकता है?

आधुनिक युगमें, जब कि धर्मपर श्रद्धाकी पूर्ण शिथिलता हो रही है, ये शङ्काएँ अनुचित नहीं समझी जा सकतीं। अब अपनी बुद्धिके अनुसार क्रमसे इनका समाधान किया जाता है।

(क) धर्मशास्त्रों (स्मृतियों) से यह बात सिद्ध है कि धर्म वस्तुतः दृष्टादृष्टार्थ-साधक है, अर्थात् उसके दो विभाग हैं—एक अदृष्ट-अर्थसाधक और दूसरा दृष्ट-अर्थ-साधक। यद्यपि दोनों ही धर्मानुशासनके अन्तर्गत हैं और दोनोंका ही मुख्य उद्देश्य आत्मोन्नति है एवं दोनोंकी रक्षाका दायित्व भी राजापर ही है, फिर भी जो भाग अदृष्टार्थ-साधक है, उसमें प्रधानता योगबलविशिष्ट और दिव्यदृष्टिसम्पन्न महर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि आदि परमोच्च आत्माओंकी है। इसके विपरीत दूसरे दृष्ट-अर्थ-साधक भागका—जिसका पृथक् नाम 'व्यवहार' हो गया है—सम्पादन मनुष्य-जातिके अधिकारी कर्मचारी-गणोंके द्वारा भी हो सकता है और वही 'राजतन्त्र' कहलाता है। अदृष्टार्थ भागसे ऐसे विषयोंका सम्बन्ध है, जिनका परिणाम प्रत्यक्षमें कुछ नहीं दीखता। इसी भागके साधनार्थ प्रकृति-नियमानुसार वर्ण और आश्रमोंके नियमोंकी व्यवस्था की गयी थी। उस समय वैसी उच्च आत्माओंके विद्यमान रहनेसे दोनों भागोंका परिपूर्णतासे साधन होता था और राजद्वारपर केवल जनताके परस्परके विवाद ही नहीं जाते थे, किंतु दैवी अनिष्ट घटनाओंद्वारा होनेवाले कष्टोंकी भी पुकार सुनी जाती थी और उनका यथोचित न्याय किया जाता था। यही रामराज्यका महत्त्व था। आज वह पवित्र और दिव्य सामग्री नहीं है। न वैसी उच्च आत्माएँ ही हैं और न वैसे राजा ही हैं, जो अदृष्ट-विभागका पूर्ण नियन्त्रण कर सकें। इसी कारण वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्मका वेगसे लोप होता चला जा रहा है। अब तो केवल दृष्ट-भाग (व्यवहार) शेष रह गया है। किंतु उसकी दशा भी स्वार्थियोंके हाथमें आ जानेसे परम शोचनीय है। जब व्यवहारसम्बन्धी न्यायोंकी ही दुर्दशा है, तब अदृष्ट-विभागके द्वारा न्याय कहाँ सम्भव है!

इसी कारण अब राजद्वारपर मृतक ले जानेसे कोई अर्थ सिद्ध नहीं होता।

(ख) तप करना पवित्र ही नहीं, वह तो परमोच्च कक्षाका साधन है, जिसका सृष्टिके आदिमें श्रीभगवान्‌ने ब्रह्माजीको उपदेश किया था। किंतु इसके साधनके लिये चाहिये अधिकारी। यह शूद्र अधिकारी नहीं था; क्योंकि श्रीभगवान्‌के **'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः'** वचनानुसार प्रत्येक वर्णकी उत्पत्ति कर्म और गुणके आधार-पर हुई है। तदनुकूल इस वर्णमें उच्चगुणविशिष्टता नहीं होती, जिससे उसमें उच्च कर्मकी योग्यता हो सके और यदि अहंकारपूर्वक कोई उच्च कर्मका संकल्प कर ले तो वह अनधिकार चेष्टा है। उदाहरणके लिये समझ लीजिये कि राजतन्त्रमें यदि कोई कनिष्ठ अधिकारी उच्च अधिकारीका आसन झपटकर स्वयं आरूढ़ हो जाय तो कितनी अस्तव्यस्तता होकर दृष्टार्थसाधक धर्म-विभागमें अर्थात् राजतन्त्रमें हलचल मच जाय। बस, इसी प्रकार यदि कनिष्ठ अधिकारी ऊँचे अधिकारका कर्म करने लगे तो अदृष्टार्थसाधक धर्म-विभागमें भी पूर्ण हलचल मचकर उसके परिणामभूत उत्पात और विघ्न आ उपस्थित हों। राजापर दोनोंका दायित्व है। इसलिये राजाका कर्तव्य है कि दोनों ही अनधिकार चेष्टाओंके अपराधियोंके लिये यथोचित दण्डविधान करे। आज यद्यपि दृष्टार्थसाधक धर्म-विभागका तो ढचरा जैसे-तैसे चल रहा है, परंतु अदृष्टार्थ-धर्म-विभागके नियन्त्रणका सर्वथा अभाव है और देश वर्ण-संकर-सृष्टिके कारण अनधिकार क्रियाओंसे व्याप्त हो रहा है। मुख्यतया इसी कारण अतिवृष्टि, अनावृष्टि, हिम, आतप, शलभ, महामारी आदि उपद्रवोंका वेग पूर्णरूपसे बढ़ रहा है।

यहाँ यह आक्षेप अवश्य प्राप्त होता है कि ऐसी दशामें शूद्रके लिये आत्मोन्नति या आत्मोद्धार करनेका अवसर ही नहीं है। यद्यपि देखनेमें यह आक्षेप प्रबल दीखता है, किंतु वास्तवमें बात यह है कि ऊपर जो वर्णव्यवस्था प्रदर्शित की गयी है, वह केवल प्रकृतिके नियमानुकूल है और इसके यथार्थ पालन करनेपर अवश्य क्रमशः उन्नति होती है। इसीके द्वारा उसका उद्धार पूर्णतया हो जाता है। परंतु इन सबके ऊपर सद्यःफलप्रदाता भक्ति और प्रेमका दूसरा मार्ग है, जहाँ सारे नियम और बन्धन अस्त हो जाते हैं। वहाँ शूद्र ही क्या, उससे भी नीचे अन्त्यज भी उच्च गतिको प्राप्त होते हैं, जिसके लिये ऋषि-मुनिगण तरसा करते हैं। यह देखिये, जिन श्रीरामके हाथसे इस शूद्रका वध हुआ, उन्होंने ही शबरी और निषाद-जैसे अन्त्यजोंसे असीम प्रेम किया। उसीके प्रभावसे उनका यशोगान आज अनेक पतितोंके उद्धारका परम साधन बना हुआ है। भगवान्‌ने केवल इन्हींसे प्रेम किया हो, ऐसी बात नहीं, पशु-वानरोंके दलोंके दल आत्मसात् कर लिये, जिनमें कई तो प्रातःस्मरणीय हैं और एककी महिमा तो यहाँतक बढ़ी हुई है कि श्रीभगवान्‌के पवित्र नामके साथ उनका भी नाम संयुक्त हो गया है। यदि 'पवनसुत हनुमान्‌जीकी जय' न बोला जाय तो 'सियावर रामचन्द्रकी जय' फीका-सा लगने लगती है। आज छूताछूतका प्रसङ्ग उठाकर जो लोग वर्ण-व्यवस्थाको नष्ट-भ्रष्ट करनेपर तुले हुए हैं, वे यदि अपनी सुबुद्धिको काममें लाकर श्रीभगवान्‌के इस सिद्धान्तको यथार्थरूपसे समझ लें तो किसी उत्पातको अवसर ही नहीं मिले।

अब यह शङ्का रही कि शूद्रके तप करनेसे ब्राह्मण-बालककी मृत्युका क्या सम्बन्ध है? इसके समाधानमें उपर्युक्त कथनानुसार अनधिकाररूपसे तप करनेपर कोई-न-कोई उत्पात होता ही था। अतः वह इस ब्राह्मण-बालककी मृत्युके रूपमें परिणत हुआ। अब एक तो यह रहा कि तप करनेवाला कहाँ और बालक कहाँ और दूसरे यह कि अस्त्रादिके प्रहारसे ही किसीका वध हुआ करता है, परंतु बालककी मृत्युका हेतु तप क्योंकर समझा जा सकता है? वस्तुतः तप करना और उसका इष्टानिष्ट परिणाम होना, इन सबका अदृष्टार्थधर्म-विभागसे सम्बन्ध होनेके कारण यह लोकोत्तर सूक्ष्म जगत्‌का व्यवहार है, जो अवयवरहित, अरूप या अदृष्ट है। यह जो विस्तार या विशालता देखनेमें आ रही है, वह तो केवल स्थूल जगत्‌का दृश्य है। इसके सूक्ष्मरूपका दृष्टान्त बरगदके बीजसे समझना चाहिये। अर्थात् इतना विस्तृत वृक्ष एक राई-से बीजमें समाया हुआ रहता है। अतः सूक्ष्म जगत्‌में वैसा अन्तर नहीं रहता, जैसा स्थूलमें दीखता है और वध होनेमें भी, जैसे स्थूल जगत्‌में अस्त्रादिका प्रहार नेत्रका विषय होता है, वहाँ वैसा नहीं होता। वहाँ इस प्रकारकी घटनाएँ अवयवरहित गुणोंके व्यतिक्रमसे होती हैं, जो चर्मचक्षुका विषय नहीं है।

आजकल विज्ञानकी इस परमोन्नतिके कालमें तो ऐसी शङ्काओंका अवसर ही नहीं आना चाहिये; क्योंकि जब हम भौतिक जगत्में भी बिना तारके सहस्रों कोसकी दूरीपर क्षणमात्रमें समाचार पहुँचानेका सूक्ष्मभूतोंका चमत्कार देखते हैं—जो चक्षु-इन्द्रियका विषय नहीं है तो अध्यात्म-जगत्के चमत्कारोंपर हमें क्यों संदेह होना चाहिये ? अब यह कि 'उस बालककी ही मृत्यु क्यों हुई, अन्य उपद्रव क्यों नहीं हुए ?' इसके लिये अधिक दूर न जाइये । यह बात प्रसिद्ध है कि अनेक रोगोंके कीटाणु सदैव आकाश-मण्डलमें फिरा करते हैं; किंतु न सब रोगोंकी ही उत्पत्ति एक साथ होती है और न सब मनुष्य ही किसी रोगसे एक साथ ग्रस्त होते हैं । विशेष देश, काल और पात्र ही उनके आह्वानके हेतु होते हैं । बस, यही दशा सूक्ष्म जगत्की है । अतः ऐसी ही विशेषताओंसे उस क्षणमें वह बालक ही अनिष्ट परिणामका पात्र हुआ ।

इस उपर्युक्त परिस्थितिपर दृष्टि डालनेसे यह प्रकट होगा कि उस समय भी श्रीभगवान्के सम्मुख कैसी जटिल समस्या उपस्थित थी । एक ओर जिस ब्राह्मण-बालकका मृत-शरीर उसके माँ-बापने द्वारपर डाल रक्खा है, उसके लिये न्याय करनेकी उत्कट चिन्ता और दूसरी ओर एक पवित्र कार्यमें प्रवृत्त मनुष्यका वध, जिसका हृदयमें संकल्प आते ही इस प्रकारकी शङ्काएँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिनका निरूपण ऊपर किया गया है। किंतु वर्णाश्रम-धर्मकी रक्षा और न्यायपरायणताके भावोंके सम्मुख श्रीरामने अन्य किसी भी विचारको स्थान नहीं दिया* ।

(ग) अब रही ऐसे उग्र दण्डवाली तीसरी शङ्का, सो यह एक बात तो प्रत्यक्ष ही है, (आजकी न्याय-पद्धतिमें भी देखा जाता है) कि किसीका वध करनेपर अपराधीको वधका ही दण्ड दिया जाता है । इसके अतिरिक्त जिस राजाके प्रत्येक प्रान्तमें परम शान्तिका डंका बज रहा हो और समस्त प्रजा पूर्ण सुख और आनन्दका भोग कर रही हो, वहाँ यदि किसीका उस शान्तिमें बाधक होना सिद्ध हो जाय तो न्याय यही चाहता है कि उसे ऐसा उदाहरणीय दण्ड दिया जाय कि जिससे पुनः किसीको ऐसा अपराध करनेका साहस ही न हो और उस शान्तिके साम्राज्यमें अन्तर न पड़े ।

(१२) उपर्युक्त ग्यारह पवित्र चरित्रोंसे जो मर्यादा स्थिर की गयी है, उसका यथामति दिग्दर्शन कराया गया ।

अन्तमें इतनी बात और प्रदर्शित करनी आवश्यक है कि सामूहिकरूपसे इस लेखमें प्रतिपादित समस्त चरित्रोंसे या अन्योंसे भी, जिनका उल्लेख यहाँ नहीं हुआ है, यह परम अनुकरणीय मर्यादा और निश्चित होती है कि प्रारब्ध-वशात् कितनी भी आपत्तियोंके आनेपर भी मनुष्यको पुरुषार्थ-हीन होकर लक्ष्यच्युत नहीं होना चाहिये । विचारिये, श्रीरामकी परम दारुण आपत्तियाँ राज्यसिंहासनके त्याग या वनवासमें ही समाप्त नहीं हुईं, किंतु यहाँतक पीछे पड़ीं कि प्राणसे प्यारी धर्मपत्नीका भी वियोग हो गया और वह भी सामान्यरूपसे नहीं, एक विकट और प्रबल राक्षसके हरणद्वारा। परंतु जितनी-जितनी अधिक भीषण आपत्तियाँ आयीं, उतने-ही-उतने अधिकाधिक पुरुषार्थके लिये उत्साह होता गया । अतः प्राणिमात्रके जीवनकी सफलताके लिये श्रीभगवान्के द्वारा यह सर्वोच्च शिक्षारूप मर्यादा स्थिर की गयी है कि जितनी अधिक आपत्तियाँ आयें, उतना ही अधिक पुरुषार्थ किया जाना चाहिये ।

---

* भगवान् श्रीरामने मर्यादा-रक्षाके लिये शम्बूकका वध किया, परंतु उसकी सत्कामनाका फल भी उसे दे दिया । वह स्वर्गके लिये तप कर रहा था, अतएव भगवान्ने उसका वध करके उसे परमोत्तम स्वर्गमें भेज दिया । अध्यात्मरामायणमें कहा गया है कि 'शूद्राय दत्तं स्वर्गमनुत्तमम् ।' (७ । ४ । २६) । शूद्रको परम उत्तम स्वर्ग प्रदान किया । इससे विश्व-मर्यादा-रक्षाके साथ ही भगवान्की दयालुता और उसके तपकी सफलता भी प्रकट होती है । —सम्पादक

भगवान् श्रीमर्यादा-पुरुषोत्तमकी आदर्श गुण-सम्पदा

(लेखक—श्रीश्रीराम माधव चिंगले, एम्० ए०)

१—मङ्गलाचरण—

'ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति ॥'

—श्रीहनुमान्जीकृत श्रीरामस्तुति (श्रीमद्भागवत ५ । १९ । ३)

'हम ॐकारस्वरूप पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीरामको नमस्कार करते हैं। आपमें सत्पुरुषोंके लक्षण, शील और आचरण विद्यमान हैं। आप बड़े ही संयतचित्त, लोकाराधन-तत्पर, साधुताकी परीक्षाके लिये कसौटीके समान और अत्यन्त ब्राह्मणभक्त हैं। ऐसे महापुरुष महाराज श्रीरामचन्द्रजीको हमारा पुनः-पुनः प्रणाम है।'

२—उज्ज्वल सर्वाङ्गीण जीवनादर्शकी आवश्यकता

(१) 'रामवद् व्यवहर्तव्यं न रावणविलासवत् ।'

(योगवासिष्ठ, नि० पू० २२ । २३)

(२) 'न रामसदृशो राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत् ॥'

(शुक्रनीतिसार)

(१) 'श्रीरामचन्द्रजीकी तरह आचरण करना चाहिये। रावणकी तरह दुराचारी नहीं बनना चाहिये।'

(२) 'इस अवनीतलपर श्रीरामचन्द्रजीके समान नीतिमान् राजा दूसरा नहीं हुआ।'

आज केवल भारतीय जीवन ही नहीं, सम्पूर्ण विश्वका जीवन मानसिक तथा आध्यात्मिक धरातलपर विविध दोषोंसे ग्रस्त हो रहा है। पारिवारिक जीवन कौटुम्बिक मर्यादाओंके भङ्ग होनेके कारण स्नेहशून्य और यन्त्रवत् हो रहा है। तलाककी प्रवृत्ति अनेक अनर्थोंको जन्म दे रही है। इसके अनिष्ट परिणाम निष्पाप बच्चोंको भुगतने पड़ते हैं। कुटुम्बके वृद्धोंकी स्थिति दयनीय हो रही है। नवयुवकोंमें मादक पदार्थोंके सेवनकी अनिष्ट, किंतु बढ़ती हुई प्रवृत्ति, अनैतिकता तथा स्वैराचार, माता-पिता तथा गुरुजनोंके प्रति अनादर-भाव इत्यादि बातें नयी पीढ़ीको विपाक्त बना रही हैं। साथ ही शोषणके विविध स्वरूप, सामाजिक तथा आर्थिक विषमता और अन्याय, भौतिकवाद और नास्तिकवादका बढ़ता हुआ प्रचार और इसके फलस्वरूप धर्मका लोप और अधर्मकी वृद्धि, सिनेमा, नाटक तथा मनोरञ्जनके अन्य दूषित तथा अनिष्ट-प्रभावकारी साधन, धर्मविरहित अर्थ-कामको ही एकमात्र जीवनमूल्य मान बैठना, दिनदहाड़े चोरी, डकैती तथा खून—इन सबका संकलित प्रभाव मानव-जीवनको दिन-प्रतिदिन समस्यामय बनाकर अधिकाधिक रूपसे दुस्सह बनाता जा रहा है। प्रायः यह कहा जा रहा है कि आजका युग वैज्ञानिक प्रगतिका उच्चबिन्दु है। हम ग्रहान्तरोंके साथ सम्पर्क स्थापित करनेमें सफल हुए हैं। पर खेदके साथ कहना पड़ता है कि इस विज्ञानयुगमें मानवने भौतिक दृष्टिसे अभूतपूर्व उन्नति तो अवश्य की है; किंतु नैतिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे उसकी अधोगति ही दिखायी देती है। विज्ञानने मानवको जल, स्थल तथा आकाशमें मुक्तगतिसे संचार करनेमें समर्थ बनाया है, किंतु उसे इस अवनीतलपर मानवकी तरह रहना नहीं सिखाया। केवल इतना ही नहीं, आज तो मानव और दानवकी सीमा-रेखाएँ भी अस्पष्ट हो रही हैं। ऐसी स्थितिमें मानव-जीवनके उदात्त मूल्य तथा उच्चतर प्रवृत्तियोंको साकार करनेवाले उज्ज्वल, सर्वाङ्गीण जीवनादर्शकी नितान्त आवश्यकता है। इसको छोड़कर अन्य उपाय मूलगामी नहीं हो सकते; वे इस दुर्धर रोगको निर्मूल नहीं कर सकते। इस दोषदूषित क्षितिपर मानव-जीवनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें उज्ज्वल आदर्शको साकार करनेवाले मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके दिव्य जीवनादर्शको छोड़कर और अधिक उत्तम उपाय क्या हो सकता है? आपका दिव्य जीवन अलौकिक गुणसम्पदासे मण्डित होनेके कारण सब तरहसे आदर्श है। अतएव वह आबालवृद्ध सबको सब परिस्थितियोंमें नितान्त बोधप्रद तथा उपादेय है। वह आजके इस अज्ञानान्धकारमें दीपस्तम्भकी तरह प्रकाश देनेमें समर्थ है। विश्वको मार्गदर्शन करानेकी क्षमता रखनेवाली भारतीय संस्कृतिके श्रीरामप्रभु मूर्तिमन्त प्रतीक हैं। भारतीय संस्कृति अपने अगणित अङ्गोंके सहित आपमें सगुण साकार हो उठी है। धन्य है भारत माता और धन्य है उसकी दिव्य संस्कृति, जिसने श्रीरामप्रभु-जैसे नररत्नको जन्म दिया है।*

---

* आर्याणां पुण्यभूमिर्वै भारतं वर्षमुच्यते ।
यत्र साक्षादजन्मापि जन्म जग्राह वै हरिः ॥

३—भगवदवतारका प्रयोजन

भगवदवतारकी श्रीमद्भगवद्गीतोक्त पार्श्वभूमि धर्मका ह्रास तथा अधर्मकी वृद्धि है। ऐसे समय श्रीभगवान् दुष्टोंका विनाश, साधु सत्पुरुषोंकी रक्षा तथा धर्मकी संस्थापना करनेके लिये अवतार लेते हैं। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपासिंधु मानुष तनुधारी॥
(श्रीरा० च० मा० ५। ३८। २)

यह धर्म-संस्थापना आप अपने प्रत्यक्ष आचरणद्वारा मानव-समाजके सम्मुख उज्ज्वल जीवनादर्श रखकर करते हैं। श्रीहनुमान्‌जी-जैसे अनन्य रामभक्त आपके अवतारकार्यका रहस्य निम्नश्लोकमें प्रकट करते हैं—

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य॥
(श्रीमद्भागवत ५। १९। ५)

'प्रभो! आपका मनुष्यावतार राक्षसोंके वधके लिये ही नहीं है, इसका मुख्य उद्देश्य तो मनुष्योंको शिक्षा देना है। अन्यथा, अपने स्वरूपमें ही रमण करनेवाले साक्षात् जगदात्मा जगदीश्वरको सीताजीके वियोगमें इतना दुःख कैसे हो सकता था?'

जीवनकी अच्छी-बुरी सब तरहकी परिस्थितियोंमें किस प्रकारका व्यवहार करना चाहिये, इसका आपने अपने आदर्श आचरणके द्वारा सामान्य मानवोंको वस्तुपाठ या सक्रिय उपदेश ही दिया है। आपके उपदेशोंसे हम जितना सीख सकते हैं, उससे कहीं अधिक हम आपके प्रत्यक्ष जीवनकी ओर देखकर सीख सकते हैं। आप यदि जीवनके उदात्त मूल्योंको प्रत्यक्ष आचरणद्वारा साकार करके न दिखाते तो सामान्य अज्ञ तथा अल्पशक्ति मानवको इनके आचरणकी सम्भावनातक ज्ञात न होती। आनन्दरामायणमें श्रीरामप्रभुकी सम्पूर्ण दिनचर्याका वर्णन किया गया है। उसमें स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि आपकी यह दिनचर्या लोकशिक्षणके लिये ही थी—

शृणु शिष्य वदाम्यद्य रामराज्ञः शुभावहा।
दिनचर्या राज्यकाले कृता लोकान् हि शिक्षितुम्॥
(७। १९। १)

श्रीअरविन्दने अपने गीताप्रबन्धमें यथार्थताके साथ कहा है कि 'नारायण नररूपमें इसी हेतुसे अवतरण करते हैं कि नर-नारायणरूपमें आरोहण कर सकें।' यह किस प्रकार किया जाय, इसका सक्रिय पाठ हमें श्रीभगवान् अपने प्रत्यक्ष आचरणद्वारा देते हैं। आपके गुणोंका परिचय प्राप्त करनेके लिये अब हम आपका स्वरूप देख लें।

४—श्रीभगवान्‌का तात्त्विक स्वरूप—'रामस्तु भगवान् स्वयम्'

योगमायासे समावृत होनेके कारण श्रीभगवान्‌का यथार्थ स्वरूप सबके प्रति प्रकट नहीं होता। अतएव उसके विषयमें अज्ञजन अनेक प्रकारकी कुकल्पनाएँ करके तर्क-वितर्क करते रहते हैं। इस विषयमें आपके कृपापात्र ज्ञानी तथा भक्तगण और आपकी निःश्वासरूप श्रुतियाँ तथा तन्मूलक स्मृति-पुराणेतिहासादि ही प्रमाण हो सकते हैं। इनके अनुसार श्रीरामचन्द्रजी अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक, नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त, निर्विशेष, परात्पर, परब्रह्म, सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। आदिमायास्वरूपा जगज्जननी श्रीजानकीजीने परम रामभक्त श्रीहनुमान्‌जीको भगवदादेशका पालन करते हुए श्रीरामप्रभुका तथा अपने स्वयंका स्वरूप इस प्रकार बतलाया है—

रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम्॥
आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम्।
सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकल्मषम्॥
मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम्।
तस्य संनिधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता॥
(अध्यात्मरामायण १। १। ३२-३४)

'वत्स हनुमन्! तुम रामको साक्षात् अद्वितीय सच्चिदानन्दघन परब्रह्म समझो। ये निस्संदेह समस्त उपाधियोंसे रहित, सत्तामात्र, मन तथा इन्द्रियोंके अविषय, आनन्दघन, निर्मल, शान्त, निर्विकार, निरञ्जन, सर्वव्यापक, स्वयम्प्रकाश और पापहीन परमात्मा ही हैं। और मुझे संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाली मूलप्रकृति जानो। मैं ही निरालस्य होकर इनकी संनिधिमात्रसे इस विश्वकी रचना किया करती हूँ।'

श्रीअहल्याजी आपके स्वरूपके विषयमें कहती हैं—

सोऽयं परात्मा पुरुषः पुराण
एकः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः।
मायातनुं लोकविमोहनीयां
धत्ते परानुग्रह एष रामः॥
(अध्यात्मरामायण १। ५। ४१)

'उन्हीं पुराणपुरुष परमात्मा श्रीरामने संसारपर परम अनुग्रह करनेके लिये एक, स्वयम्प्रकाश, अनन्त और सबके आदिकारण होते हुए भी यह जगन्मोहन मायामयरूप धारण किया है।'

कोई आश्चर्य नहीं कि आपके अंशमात्रसे अगणित ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश प्रकट होते हैं। श्रीस्वायम्भुव मनु यथार्थताके साथ कहते हैं—

संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥
(रामचरितमानस १। १४३। ३)

ये प्रमुख देवत्रय आपके द्वारा ही शक्तिसम्पन्न होकर अपने-अपने कार्य करते हैं—

जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
(वही, ५। २०। ३)

निर्गुण भी आप ही हैं और सगुण भी आप ही हैं। श्रीसनकादि मुनि कहते हैं—

जय निर्गुन जय जय गुन सागर। सुख मंदिर सुंदर अति नागर॥
(वही, ७। ३३। २)

कोई आश्चर्य नहीं कि आप निरुपम हैं—

निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै।
(वही, ७। ९१। १ छं०)

आप स्वरूपतः अवाङ्मनसगोचर भी हैं। स्वयं श्रुतियाँ भी आपका स्वरूप 'नेति-नेति' कहकर बतलाती हैं। महर्षि वाल्मीकि कहते हैं—

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह॥
(वही, २। १२६)

"राम! आपका स्वरूप वाणीसे अगोचर, बुद्धिसे परे, अव्यक्त, अकथनीय और अपार है। श्रुति निरन्तर उसका 'नेति-नेति' कहकर कथन करती है।"

अब प्रश्न यह है कि 'ऐसी स्थितिमें आपको जाना किस प्रकार जाय?' इसका उत्तर श्रीवाल्मीकिजी देते हैं—

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन॥
(वही, २। १२६। २)

ऐसे परात्पर प्रभु भक्तोंके हित स्वेच्छासे मानवतनु धारण करके मानवसमाजका उद्धार करते हैं। श्रीकाकभुशुण्डि-जी कहते हैं—

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥
(वही, ७। ७२क)

अवतारकालमें भी श्रीभगवान्‌का मङ्गलमय दिव्य श्रीविग्रह चिदानन्दमय, अतएव जन्मादि षड्विध भावविकारोंसे रहित ही होता है। वह कर्मजन्य, प्रकृतिजन्य, पाञ्चभौतिक नहीं होता। श्रीवाल्मीकिजी आपकी इस विशेषताके बारेमें कहते हैं—

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥
नर तनु धरेउ संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥
(वही, २। १२६। ३)

चौपाईकी दूसरी अर्द्धालीमें 'जस' शब्द महत्त्वका है। उसका अर्थ यह है कि यद्यपि आपाततः आप सामान्यजनोंकी तरह दीखते हैं और उन्हींकी तरह सब व्यवहार करते हैं, तथापि इसके कारण आपके वास्तविक—तात्त्विक स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं पड़ने पाता। श्रीव्यासदेवकृत ब्रह्मसूत्र (२। १। ३३) में यही बात बतलायी गयी है—'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'। आपके इस लीला-कालमें आपके स्वरूपभूत अनेक दिव्य गुण प्रकट होते रहते हैं। इनकी भी झलक हम देख लें।

५—श्रीभगवान्‌के गुणोंका स्वरूप तथा उनके परिशीलन एवं चिन्तनका महत्त्व

मानवरूपमें अवतार लेकर लीला करते समय प्रसङ्गवश यथावसर श्रीभगवान्‌के अनेक दिव्य गुण अनायास प्रकट हो जाते हैं। आपके स्वरूपकी तरह आपके गुण भी अनन्त ही हैं। योगीश्वर श्रीद्रुमिल आपके गुणोंकी इस विशेषताको निम्न श्लोकमें प्रकट करते हैं—

यो वा अनन्तस्य गुणाननन्ता-
ननुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धिः।
रजांसि भूमेर्गणयेत्कथंचित्
कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः॥
(श्रीमद्भागवत ११। ४। २)

'हे राजन्! अनन्त भगवान्‌के अनन्त गुणोंका जो पुरुष पार पाना चाहता है, वह मन्दबुद्धि है। सम्भव

है, पृथ्वीके रजःकणोंको किसी प्रकार किसी समय कोई गिन भी ले; किंतु सर्वशक्तिमान् श्रीभगवान्‌के गुणोंका कोई पार नहीं पा सकता।'

आपके अनन्त गुणोंका वर्णन करना स्वयं शारदा तथा शेषसे भी सम्भव नहीं। तथापि हमारी मर्यादित दृष्टिसे जो गुण विशेषरूपसे आपके अवतारकालमें प्रकट हुए दीखते हैं और जो हमारे अज्ञानग्रस्त अवगुणबहुल जीवनके लिये दीपस्तम्भकी तरह मार्गदर्शक हैं, उन्हींका निरन्तर स्मरण, चिन्तन तथा अनुसरण करके हम अपना उद्धार कर सकते हैं। आपके गुण आपसे भिन्न नहीं हैं। अतएव आपके दिव्य गुणोंका चिन्तन आपका ही चिन्तन है। इस प्रकारके चिन्तनका लाभ अवर्णनीय है। इसका व्यावहारिक दृष्टफल तत्काल हमारे पल्ले पड़ता है। अज्ञ मनुष्य अनेक दुर्गुणोंका पुतला होता है। ऐसा दुर्गुणी, किंतु अपने इन दुर्गुणोंसे सम्यक् परिचित आत्मजाग्रत मानव इन्हें दूर करनेका प्रयत्न करता है। किंतु अनेक जन्मोंके कुसंस्कार-मूलक ये दुर्गुण उसे पुनः-पुनः घेर ही लेते हैं। वह अपने बलसे इन्हें दूर करनेमें अपने-आपको असमर्थ पाता है—यहाँतक कि इनको दूर करनेके प्रयत्नमें इनका जो चिन्तन होता है, उससे ये और भी अधिक पुष्ट हो जाते हैं। अतएव मानसशास्त्रकी दृष्टिसे भी इन्हें दूर करनेका सुगम उपाय इन दुर्गुणोंके विरोधी पूर्णातिपूर्ण, गुणसागर श्रीभगवान्‌के दिव्य गुणोंका स्मरण, चिन्तन तथा निदिध्यासन करना है। इसका महान् लाभ यह होता है कि दुर्गुणोंको हटानेके हेतु हमारा सारा परिश्रम और संघर्ष बच जाता है और अभिवाञ्छित गुण हममें सहज ही प्रकट होने लगते हैं। निरन्तर अभ्याससे कालान्तरमें ये हमारे जीवनमें स्थायी रूप धारण कर लेते हैं, हमारे स्वभाव और स्वरूपके अङ्गभूत बन जाते हैं। यह चिन्तन जितना ही उत्कट होगा, उतना ही शीघ्र फलदायी होगा। इस विषयमें श्रीमद्भागवतके श्रीअवधूतोक्त निम्न श्लोक नितान्त बोधप्रद हैं—

यत्र यत्र मनो देही धारयेत् सकलं धिया।
स्नेहाद् द्वेषाद्भयाद्वापि याति तत्तत्सरूपताम्॥
कीटः पेशस्कृतं ध्यायन् कुड्यां तेन प्रवेशितः।
याति तत्सात्म्यतां राजन् पूर्वरूपमसंत्यजन्॥
(११।९।२२-२३)

'राजन्! मैंने भृङ्गी एवं कीड़ेसे यह सीखा है कि देहधारी जीव स्नेहसे, द्वेषसे अथवा भयसे भी जिस किसीमें सम्पूर्ण रूपसे अपने चित्तको लगा देता है तो उसे उसी वस्तुका स्वरूप प्राप्त हो जाता है। यथा भृङ्गीद्वारा दीवारमें बंद किया हुआ कीड़ा भयसे उसीका ध्यान करते-करते अन्तमें अपने पूर्वरूपको न छोड़ता हुआ भी उसीके समान रूप-वाला हो जाता है।'

अतएव हम आराध्य प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके कतिपय दिव्य गुणोंके सहित आपका स्मरण और चिन्तन कर लें।

६—धर्मपरायणता

'रामो विग्रहवान् धर्मः'

आजके इस भौतिकवादप्रधान तथा नास्तिकवादप्रधान युगमें, जब कि हर समय धर्मनिरपेक्ष राज्यकी दुहाई दी जाती है, धर्म सर्वत्र उपेक्षित हो रहा है। इसीके दुष्परिणाम सर्वत्र दिखायी दे रहे हैं। ऐसे समय हमें धर्मका तथा उसे अपने जीवनमें साकार करनेवाले श्रीरामप्रभुका और उनके धर्ममय जीवनका निरन्तर स्मरण रखना चाहिये। भगवान् श्रीराम मूर्तिमंत धर्म ही हैं। यह धर्माचरण कोई साधारण बात नहीं है। अतीन्द्रिय तथा अलौकिक ज्ञानका विषय होनेके कारण धर्मके विषयमें अच्छे-अच्छे शास्त्रवेत्ताओंकी बुद्धि भी चक्करमें पड़ जाती है—'किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।' (गीता ४। १६) इसीलिये श्रीभगवान् मानवतनु धारण करके अपने उपदेशों तथा प्रत्यक्ष आचरणद्वारा धर्माचरणकी सीख देते हैं। जब जाबालि ऋषि श्रीरामप्रभुको धर्मकी ओट लेकर नास्तिकतामय उपदेश करने लगे, तब आपने इसके महाभयंकर परिणामोंको दिखाकर कठोर शब्दोंमें भर्त्सना करते हुए उनकी आँखें खोलीं और धर्मका महत्त्व बतलाया। यह धर्म सत्यसे अभिन्न है और सत्य साक्षात् परब्रह्मस्वरूप ही है—'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।' स्वयं श्रीरामप्रभु उक्त संदर्भमें कहते हैं—

धर्मः सत्यपरो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते॥
सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाऽऽश्रितः।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्॥
दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च।
वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात् सत्यपरो भवेत्॥
(वा० रा० २। १०९। १३—१४)

'संसारमें सत्य ही धर्मकी पराकाष्ठा है और वही सबका मूल कहा जाता है। जगत्में सत्य ही ईश्वर है। सदा सत्यके ही आधारपर धर्मकी स्थिति रहती है। सत्य ही सबकी जड़ है। सत्यसे बढ़कर दूसरा कोई परमपद नहीं है। दान, यज्ञ, होम, तपस्या और वेद—इन सबका आधार सत्य ही है; इसलिये सबको सत्यपरायण होना चाहिये।'

राजापर तो सत्याचरणका और भी अधिक दायित्व है; क्योंकि 'यथा राजा तथा प्रजा'। श्रीप्रभु स्वयं ही कहते हैं—

'यद्वृत्ताः सन्ति राजानस्तद्वृत्ताः सन्ति हि प्रजाः॥'

(वही, २। १०९। ९)

श्रीप्रभु सत्यसंध थे—'सत्यसंध दृढ़व्रत रघुराई।' (मानस २। ९१। १) श्रीवाल्मीकिजी आपको 'सत्ये धर्म इवापरः' कहते हैं। स्वयं प्रभु प्रतिज्ञापूर्वक कहते हैं—'रामो द्विर्नाभिभाषते।' (वा० रा० २। १८। ३०)। इसी सत्यधर्मका पालन करनेके लिये आपने महान्-से-महान् त्याग करके कुलमर्यादाका निर्वाह किया—

'रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई॥'

(श्रीरामच० मा० २। २७। २)

ठीक ही कहा गया है कि 'सत्यसे बढ़कर दूसरा धर्म नहीं और असत्यसे बढ़कर दूसरा पाप नहीं'—

'नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्।'

(मनु० ८। ८२, ७)

धर्मका यह स्वरूप है। इसलिये धर्म सप्ताहमें एकाध बार या दिनमें एकाध बार याद करनेकी वस्तु नहीं है; वह तो हर समय, हर साँसके साथ आचरणीय है। चराचर जगत् धर्मपर ही टिका हुआ है—'धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा।' (महानारा० उप० १७। ७९) सृष्टिकर्ताने सृष्टिकी उत्पत्तिके साथ ही उसके सुचारु संचालनके लिये धर्मको प्रकट किया। इसलिये धर्मका उल्लङ्घन बिना कठोर दण्ड प्राप्त किये कोई नहीं कर सकता। 'समूल विनाश' ही अधर्माचरणकी और अधार्मिकोंकी अन्तिम दुर्गति है। इसीलिये श्रीभगवान् धर्मपालनके लिये इतने तत्पर तथा कटिबद्ध हैं।

धर्मपालनका हमारे दैनंदिन जीवनके संदर्भमें क्या अर्थ है? इसका अर्थ है—श्रुति-स्मृतिके आदेशानुसार अपने वर्ण-धर्म तथा आश्रम-धर्मका पालन करना। श्रुति-स्मृति श्रीभगवान्की ही आज्ञाएँ हैं—'श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे।' सवेरेसे लेकर निद्राके समयतक इनके अनुसार आचरण करना ही धर्माचरण है। इस धर्माचरणका जीवनव्यापी, सक्रिय, प्रत्यक्ष आचरण हमें श्रीरामप्रभुके जीवनमें दिखायी देता है। प्रातःकालसे लगाकर निद्राके समयतक और बाल्यकालसे लगाकर अपने लीला-संवरणतक हम आपके जीवनमें धर्मतत्त्वको साकार हुआ पाते हैं। आपकी सम्पूर्ण दिनचर्या धर्ममय, अतएव आदर्श थी। ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर आप माता-पिता और श्रीगुरुकी वन्दना करते और उनकी आज्ञा पाकर ही पुरवासियोंके हितके लिये सब काम करते थे। इस प्रकार आप मातृदेव, पितृदेव और आचार्यदेव थे। बड़े-बूढ़ोंकी वन्दना तथा सेवाका कितना महान् फल होता है, यह मनुभगवान्ने अपनी स्मृतिमें बतलाया है—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

(२। १२१)

श्रीविश्वामित्रजीके साथ रहते समय आप श्रीगुरुसे पहले ही जग जाते थे—

'गुर तें पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान॥'

(श्रीरामच० मा० १। २२६)

फिर नित्यकर्मसे निवृत्त हो श्रीगुरुकी वन्दना करते और उनके लिये फूल इत्यादि लाते। छोटे-मोटे काम भी श्रीगुरुकी आज्ञा लेकर ही करते। दिन बीतनेपर संध्या-वन्दनादि करके रात्रिमें श्रीगुरुके मुखारविन्दसे श्रुति-स्मृति-पुराणेतिहासादि धर्मग्रन्थोंका श्रवण करते थे। फिर श्रीगुरुदेवके शयन करनेपर आप उनका चरणसंवाहन करते और फिर उनकी आज्ञा पाकर ही स्वयं शयन करते थे। आपके इस सर्वथा आदर्श आचरणसे प्रभावित होकर ही श्रीविश्वामित्रजीने आपको यथार्थताके साथ निम्न प्रशस्तिपत्र दिया था—

सुनि मुनीस कह बचन सप्रीती। कस न राम तुम्ह राखहु नीती॥
धरम सेतु पालक तुम्ह ताता। प्रेम बिबस सेवक सुखदाता॥

(वही, १। २१७। ४)

इन चौपाइयोंमें 'धरम सेतु पालक' यह आपका गुण-गौरव बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। यह मानो आपके जीवन तथा अवतार-कार्यका सम्पूर्ण रहस्य यथार्थताके साथ प्रकट करता है। आपके प्रत्येक व्यवहारमें यह प्रकट होता है। आप आदर्श पुत्र थे। आप स्वयं कहते हैं—'मैं महाराज दशरथके

कहनेसे आगमें भी कूद सकता हूँ, तीव्र विष भी खा सकता हूँ और समुद्रमें भी गिर सकता हूँ। महाराज मेरे गुरु, पिता और हितैषी हैं; मैं उनकी आज्ञा पाकर क्या नहीं कर सकता। मैंने भी ऋषियोंकी भाँति निर्मल धर्मका आश्रय ले रक्खा है। पूज्य पिताजीका जो भी कार्य मैं कर सकता हूँ, उसे प्राण देकर भी करूँगा। पिताजीकी सेवा अथवा उनकी आज्ञाका पालन करना जैसा महत्त्वपूर्ण धर्म है, उससे बढ़कर संसारमें दूसरा कोई धर्माचरण नहीं है[1]।' विमाता कैकेयीने आपके प्रति इतने कटु और कठोर शब्द कहे, जिन्हें सुनकर स्वयं कठोरता भी व्याकुल हो उठी—

निधरक बैठि कहइ कटुबानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी॥
(वही, २। ४०। १)

इन्हें सुनकर श्रीभगवान्‌की प्रतिक्रिया देखनेयोग्य है—

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। राम सहज आनंद निधानू॥
बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन॥
सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥
(वही, २। ४०। ३-४)

श्रीरामप्रभु स्वयं ही एक अत्यन्त दुर्लभ तनय थे।

आपका भ्रातृप्रेम भी देखनेयोग्य है। सब भाई खान-पान, खेल-कूद, सब बातें साथ ही करते थे, किंतु वंश-परम्पराके अनुसार राज्यका अधिकारी बड़ा भाई ही हो सकता था। यह बात आपको अच्छी नहीं लगी—

बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥
(वही, २। ९। ४)

युद्धके प्रसङ्गमें मूर्च्छित लक्ष्मणजीके लिये आपका विलाप ध्यान देनेयोग्य है—

सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जियँ जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥
(वही, ६। ६०। ४)

आप आदर्श पत्नी प्रेमी थे।

आपका यह गुण निम्न चौपाईमें भलीभाँति व्यक्त होता है—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥
(वही, ५। १४। ३-४)

आप लोकाराधनतत्पर एक आदर्श राजा थे। लोकाराधन-रूप राजधर्मका पालन करनेके लिये आप सर्वस्वका त्याग कर सकते थे—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥
(उ० रामच० १। १२)

इस प्रकार व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राजकीय जिन-जिन विभिन्न रूपोंमें हम आपको देखते हैं, उन-उन रूपोंमें हमें आपकी धर्ममूलक आदर्श गुण-सम्पदा अत्यन्त वैभवशाली रूपमें दिखायी देती है।

७—भविष्यमें धर्मसेतुके पालनकी चिन्ता

लोककल्याणके लिये ही अवतीर्ण भगवान् श्रीरामप्रभुने अपने जीवनकालमें अपने प्रत्यक्ष आचरण और उपदेशोंके द्वारा बड़े प्रयत्नके साथ धर्मसेतु बाँधा। अपने पश्चात् भी इसकी रक्षा होती रहे, इसकी आपको चिन्ता थी; इसलिये आपने भावी भूमिपालोंसे जो सविनय प्रार्थना की, वह आपके चरित्रका एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। आप कहते हैं—

भूयो भूयो भाविनो भूमिपाला
नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्रः।
सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नराणां
काले काले पालनीयो भवद्भिः॥

---

१. अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके।
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे॥
नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च।
करिष्ये प्रतिजाने च····················॥
(वा० रा० २। १८। २८—३०)

८—मर्यादापालन

श्रीभगवान् सच्चे अर्थमें मर्यादा-पुरुषोत्तम थे। आपमें केवल एक ही बात ऐसी थी, जिसमें किसी प्रकारकी मर्यादा नहीं थी और जो अमर्याद थी। वह है आपमें ओतप्रोतरूपसे पायी जानेवाली मर्यादापालनकी वृत्ति। आपके जीवनका यह स्थायीभाव था, आपके श्वास-प्रश्वाससे यह प्रकट होती रहती थी। आपके जीवनमें स्वप्नमें भी कभी मर्यादाका भङ्ग नहीं होने पाया। इसके कतिपय उदाहरण स्थाली-पुलाक-न्यायसे देखनेयोग्य हैं। जनकपुरीमें आप प्रवेश करते हैं। वहाँ बगीचेमें फूल लेनेके लिये जाते हैं। वहाँ जनकतनया भी गिरिजापूजनके लिये आती हैं। त्रिभुवनसुन्दरी जानकीजीको देखकर दैवनियोजित, अतएव स्वाभाविकरूपसे आपका मन आकर्षित हो जाता है। इस समयका आपका आत्म-निरीक्षण देखनेयोग्य है। आप श्रीलक्ष्मणजीसे कहते हैं—

तात जनकतनया यह सोई। धनुषजग्य जेहि कारन होई॥
पूजन गौरि सखीं लै आईं। करत प्रकासु फिरइ फुलवाईं॥
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा॥
सो सबु कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता॥
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी॥
जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी॥
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नरबर थोरे जग माहीं॥
(श्रीरामच० मा० १। २३०। १–४)

स्वयं रामप्रभु उन थोड़े नरवरोंमें अग्रगण्य हैं, जिनकी पीठ युद्धके समय शत्रु नहीं देख पाते, जो स्वप्नमें भी परस्त्रीकी ओर नहीं देखते और जिनके यहाँसे याचक कभी विमुख नहीं जाते। कितना महान् आदर्श है यह! आजकी नारीजातिके प्रति दूषित दृष्टिकोणके युगमें तो यह विशेषतः दर्शनीय और आचरणीय है। अस्तु, फूल लेकर आप श्रीगुरु विश्वामित्रजीके पास जाते हैं और अपनी आन्तरिक स्थिति उनके सामने दिल खोलकर प्रकट कर देते हैं—

राम कहा सबु कौसिक पाहीं। सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं॥
(वही, १। २३६। १)

कोई आश्चर्य नहीं कि त्रिकालज्ञ मुनि उन्हें हृदयसे आशीर्वाद देते हैं—

सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे। रामु लखनु सुनि भए सुखारे॥
(वही, १। २३६। २)

आगे धनुषभङ्गका प्रसङ्ग है। यज्ञमें उपस्थित राजालोग तो शिवधनुषको टस-से-मस नहीं कर सके। राजा जनकने ताना मारकर कहा कि 'पृथ्वी वीर-विहीन हो गयी है और मालूम होता है कि जानकी कुवाँरी ही रह जायगी।' यह असह्य व्यङ्ग सुनकर श्रीलक्ष्मणजी अपने कैशोर सुलभ सहज क्षात्रभावको रोक न सके। वे तमतमा उठे—

माखे लखनु कुटिल भइँ भौंहें। रदपट फरकत नयन रिसौंहें॥
(वही, १। २५१। ४)

किंतु स्वभावतः धीर-गम्भीर प्रभु वैसे ही शान्त और संयत बने रहे। शक्तिका मद रोकना सिवा मायापतिके और किसके लिये सम्भव है—

नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥
(वही, १। ५९। ४)

यह सिद्धान्त प्राकृत मनुष्योंपर लागू होता है; किंतु शक्तिपतिके जन्म-कर्म सभी दिव्य होते हैं। अतएव वे इसके अपवाद हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या। आपमें अपनी अनुपम शक्तिका पूर्ण विश्वास था। आप केवल मर्यादानिर्वाहके नाते श्रीगुरुकी आज्ञाकी राह देख रहे थे। श्रीगुरु भी हेतुपुरस्सर चुप थे। इस बीच सब राजाओंकी उछल-कूद बंद हो चुकी थी। अब एकमात्र श्रीरामप्रभुकी ही अपना अनुपम प्रताप दिखानेकी बारी थी। योग्य समयपर श्रीगुरुने आज्ञा दी—

बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी॥
उठहु राम भंजहु भवचापा। मेटहु तात जनक परितापा॥
(वही, १। २५३। ३)

यह आज्ञा पाकर भी आपके अन्तःकरणकी स्थिरता भङ्ग न हुई। आज्ञा पाते ही आपने श्रीगुरुचरणोंमें वन्दना की—

सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा। हरषु बिषादु न कछु उर आवा॥
ठाढ़े भए उठि सहज सुभाएँ। ठवनि जुबा मृगराजु लजाएँ॥
(वही, १। २५३। ४)

फिर उठकर धनुषके पास गये; किंतु उसे स्पर्श करनेसे पहले मनमें ही श्रीगुरुको प्रणाम करना न भूले—

गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा। अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा॥
(वही, १। २६०। ३)

कितनी तत्परताके साथ मर्यादापालन है!

आगे श्रीपरशुरामजीसे मुठभेड़ हुई। इस अवसरपर भी श्रीलक्ष्मणजी अत्यधिक रूपसे उबल पड़े। किंतु श्रीभगवान्

अन्ततक शान्त बने रहे। महाकवि कालिदासने ठीक ही कहा है—

'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः ॥'

(कुमारसं० १ । ५९)

'सच्चा धीर पुरुष वही है, जिसके कि चित्तमें विकारोंके निमित्त उपस्थित होनेपर भी विकार उत्पन्न न हों।' श्रीभगवान्‌ने परशुरामजीसे अत्यन्त शान्तभावसे कहा—

नाथ संभुधनु भंजनिहारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा ॥

(मानस १ । २७० । १)

मर्यादाकी रक्षाके लिये ही आपने पिताकी अनुक्त आज्ञाका पालन करते हुए राज्य छोड़कर वनवास स्वीकार किया। वनवासके समय धर्ममर्यादाका पालन करनेके लिये ही आपने महापराक्रमी वालीकी सहायता न लेकर उसे बाणसे मारा (क्योंकि उसने धर्ममर्यादाका उल्लङ्घन किया था) और उसके अन्यायपीड़ित अल्पशक्तियुक्त भाई सुग्रीवके साथ अग्निसाक्षिक मित्रता की।

एक अन्य प्रसङ्ग लीजिये। रावणका वध होनेपर विभीषण अपने पापात्मा भाईका अन्त्य संस्कार करनेमें हिचकिचाने लगे; किंतु उस समय श्रीभगवान्‌ने उनसे जो कुछ कहा, वह श्रीभगवान्‌के मर्यादापालनका, इतना ही नहीं, स्वयं भारतीय संस्कृतिका भी परमोच्च मानबिन्दु है—

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम् ॥
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।

(वा० रा० ६ । १११ । १००-१०१)

'मरणतक ही वैरभावकी परिसीमा है। वैरभाव भी सप्रयोजन होना चाहिये, निष्प्रयोजन नहीं। प्रयोजनकी पूर्तिके साथ ही वैरभावकी समाप्ति हो जानी चाहिये। इसलिये हे विभीषण! तुम निस्संकोच होकर इसका अन्त्य-संस्कार करो। अब तो यह जैसा तुम्हारा आत्मीय है, वैसा ही मेरा भी है।'

प्रदीर्घ वनवासके अनन्तर राज्याधिकार ग्रहण करनेपर आपने धर्ममर्यादा-निर्वाह-हेतु ही अधर्मप्रवृत्त शम्बूकको देहान्त-शासन दिया। मर्यादानिर्वाहके हेतु ही आपने प्राण-प्रिया जानकीजीका और अपने प्रियतम अनुजका भी परित्याग किया।

इस प्रकार श्रीभगवान्‌ने अपने जीवनमें पग-पगपर मर्यादाका पालन करके मानव-समाजके सम्मुख एक बहुत ही उज्ज्वल और दिव्य आदर्श उपस्थित किया है।

९—भक्तवत्सलता और शरणागतपरित्राणपरायणता

अज्ञानी तथा पापके भारसे दबे हुए और पापके अनिवार्यफल तापत्रयसे पीड़ित मानवोंके लिये तो भगवत्-शरण और भगवच्चरणारविन्दोंमें प्रीतिरूपा भगवद्भक्ति ही एकमात्र सुगम-से-सुगम तरणोपाय है। पशु, पक्षी, शूद्र, नारी, राक्षस इत्यादि कोई भी भगवत्कृपाके अयोग्य नहीं। शरणागतवत्सल, करुणानिधान श्रीभगवान्‌ने इन-जैसोंको हमेशाके लिये सनद दे रखी है। श्रीभगवान् कहते हैं—

(१) सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥

(वा० रा० ६ । १८ । ३३)

एक बार शरणागत होकर जो कहता प्रभु! मैं तेरा।
कर देता मैं अभय उसे सब भूतोंसे यह व्रत मेरा ॥

(२) मम पन सरनागत भय हारी ॥

(श्रीरामच० मा० ५ । ४२ । ४)

(३) कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥

(वही, ५ । ४३ । १)

जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं ॥

(वही, ५ । ४३ । ४)

(४) सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ ॥
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही ॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना ॥

(वही, ५ । ४७ । १-२)

पक्षिराज जटायु, सुग्रीव-हनुमदादि वानर, विभीषणादि राक्षस, निषादराज गुह, शबरी इत्यादि सब आपके उक्त वचनोंका हृदयसे समर्थन करते हैं। आज भी हम इन्हींके पदचिह्नोंका अनुसरण करके स्वयंको कृतार्थ कर सकते हैं।

१०—स्थितप्रज्ञता

प्राकृत अज्ञ मानव जरासे सुखसे फूल उठता है और जरासे दुःखसे उद्विग्न हो उठता है। इतना ही नहीं; कभी-कभी सुख-दुःख दोनोंके उत्कट आघात उसके लिये प्राण-घातक भी बन जाते हैं। किंतु तत्त्वदर्शी पुरुष सुख-दुःखमें हर्ष-शोकको नहीं प्राप्त होता। ऐसे प्रसङ्गोंमें भी उसके चित्तकी साम्यावस्था भङ्ग नहीं होने पाती। इसे ही 'समत्व-

योग' कहा गया है। श्रीरामप्रभुके जीवनमें हमें यह परिपूर्ण रूपमें देखनेको मिलता है। आपके मुखारविन्दकी शोभा राज्याभिषेकके सुखद समाचारसे न तो हर्षसे खिल उठी और न प्रदीर्घ एवं कष्टप्रद वनवासके दुःखद समाचारसे म्लानभावको प्राप्त हुई—

प्रसन्नतां या न गताभिषेकत-
स्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य
मे सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा॥
(श्रीरामच० मा० २। २ श्लोक)

इस वनवासको श्रीप्रभु 'अति लघु बात' और 'मंगल समय' कहते हैं। इसी प्रकार धनुषयज्ञमें श्रीविश्वामित्रजीने आपको 'भवचापभञ्जन' की आज्ञा दी। यह आज्ञा मिलनेतक आप शान्तभावसे बैठे रहे और आज्ञा मिलनेपर, जब त्रिभुवनसुन्दरी जानकीकी प्राप्तिका समय समीप आया, तब भी आपके चित्तकी साम्यावस्था भङ्ग न हुई—

सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा। हरषु बिषादु न कछु उर आवा॥
(वही, १। २५३। ४)

इसका रहस्य आपकी तत्त्वदर्शितामें है। एकमात्र तत्त्वदर्शी पुरुषमें ही इस प्रकारकी वृत्ति सम्भव है। तत्त्वसाक्षात्कारके प्रभावसे ज्ञानी पुरुष बड़े भारी-से-भारी दुःखमें भी चलायमान नहीं होता और लौकिक दृष्टिसे बड़े-से-बड़े लाभको भी वह तुच्छ ही समझता है; क्योंकि परमात्मप्राप्तिरूप सच्चे और शाश्वत लाभके आगे मिथ्या और मायिक जागतिक पदार्थोंके लाभ नगण्य ही हैं—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥
(गीता ६। २२)

यही ब्राह्मी स्थिति है, जिसको प्राप्त होकर ज्ञानी पुरुष कभी मोहको प्राप्त नहीं होता—

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
(वही, २। ७२)

श्रीभगवान् मनु भी अपनी स्मृतिमें तत्त्वदर्शनका प्रभाव निम्नश्लोकमें बतलाते हैं—

सम्यग्दर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्न निबद्ध्यते।
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते॥
(६। ७४)

अर्थात् 'तत्त्वसाक्षात्कारसे सम्पन्न पुरुष कर्मबन्धनमें नहीं फँसता, जब कि तत्त्वदर्शनसे रहित मनुष्य आवागमनमें फँसा रहता है।'

'कामन्दकीय नीतिसार' में इसी आशयका निम्न श्लोक है—

आन्वीक्षिक्यात्मविद्या स्यादीक्षणात् सुखदुःखयोः।
ईक्षमाणस्तया तत्त्वं हर्षशोकौ व्युदस्यति॥
(२। ३। ११)

अर्थात् दर्शनशास्त्रके अनुशीलनसे सुख-दुःखका रहस्य समझमें आ जाता है। इस तत्त्वविवेकके प्रभावसे मनुष्य हर्ष और शोक, दोनोंसे ऊपर उठ जाता है।

इस प्रकारका तत्त्वविवेक श्रीभगवान्ने ('शास्त्रयोनित्वात्') स्वयं समस्त शास्त्रोंके उद्गमस्थान होते हुए भी मर्यादापालनके हेतु श्रीगुरु वसिष्ठजीसे प्राप्त किया था। इस दिव्य उपदेशके सारभूत दो श्लोक नीचे लिखे अनुसार हैं—

अन्तःसंत्यक्तसर्वाशो वीतरागो विवासनः।
बहिःसर्वसमाचारो लोके विहर राघव॥
मा गच्छ दुःखितां राम सुखितामपि मा व्रज।
समतामेहि सर्वत्र परमात्मा हि सर्वगः॥

'हे रघुनन्दन! तुम तो भीतरसे सब आशाओंका त्याग करके, वीतराग और वासनाशून्य होकर, बाहरसे समस्त सत्कर्मोंका एवं सदाचारोंका ठीक-ठीक पालन करते हुए संसारमें विचरो। परमात्मा सर्वत्र भरा हुआ है—इस बोधका अवलम्ब करके समदृष्टिसे सम्पन्न होकर सुख-दुःख दोनोंसे अलग रहो।'

इस दुर्लभ तत्त्वबोधका आचरण हमें श्रीभगवान्के जीवनमें सब तरहके प्रसङ्गोंमें दिखायी देता है। आपके दिव्य उपदेशोंमें भी यह ग्रथित है। आजके इस तनातनी और घोर अशान्तिके युगमें तो इसका महत्त्व और भी स्पष्ट है।

११—गुणोपसंहार

हम पहले ही निर्दिष्ट कर चुके हैं कि श्रीभगवान्के परममङ्गलमय तथा कल्याणकारी गुणोंका कोई पार नहीं है। तथापि सार-संकलनके रूपमें आपके प्रमुख गुणोंका वर्णन करनेवाले दो श्लोक नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहिता
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयिता चित्तेऽतिगम्भीरता।

आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेऽतिविज्ञानिता
वैराग्ये परता शिवे भजनिता त्वय्यस्ति भो राघव॥

'धर्ममें तत्परता, मुखमें माधुर्य, दानमें अत्यन्त उत्साह, मित्रोंके साथ निष्कपटता, गुरुजनोंके प्रति नम्रता, चित्तमें अत्यन्त गम्भीरता, आचारमें पवित्रता, गुणीजनोंके प्रति रसिकता, शास्त्रमें अत्यन्त निपुणता, वैराग्यमें तत्परता, शिवस्मरणमें लगन, हे राघव! ये सब गुण आपमें पाये जाते हैं।'

नाटककार शूद्रकने अपने 'मृच्छकटिक' नाटकमें नायक चारुदत्तके निमित्त आदर्श मानवके निम्न गुण दिखाये हैं। अल्पशक्ति मानवोंमें प्रत्यक्ष रूपमें इन गुणोंको परिपूर्णरूपसे पाना असम्भवप्राय ही है। किंतु श्रीभगवान्‌ने अपने जीवनमें इन्हें परिपूर्ण रूपमें साकार कर दिखाया है। ये दिव्य गुण निम्न श्लोकमें ग्रथित हैं—

दीनानां कल्पवृक्षः स्वगुणफलनतः सज्जनानां कुटुम्बी
ह्यादर्शः शिक्षितानां सुचरितनिकषः शीलवेलासमुद्रः।
सत्कर्ता नावमन्ता पुरुषगुणनिधिर्दक्षिणोदारसत्त्वो
ह्येकः श्लाघ्यः स जीवत्यधिकगुणतया चोच्छ्वसन्तीव चान्ये॥
(१।४८)

'दीनजनोंके लिये अपने गुणरूपी फलोंसे नम्र हुआ कल्पवृक्ष, सज्जनोंका कुटुम्बी, शिक्षाप्राप्त लोगोंके लिये आदर्श, चारु चारित्र्यकी कसौटी, शीलरूपी सीमासे युक्त समुद्र, सत्कर्मोंका या सत्कारका करनेवाला, किसीका भी तिरस्कार न करनेवाला, पौरुष गुणोंका आकर, सुसभ्य एवं औदार्यसे युक्तात्मा—इस प्रकारकी गुण-सम्पदामें सम्पन्न व्यक्ति ही एकमात्र आदरणीय और प्रशंसनीय है। उससे अन्य तो केवल साँस लेते और छोड़ते हैं।'

श्रीवाल्मीकि-रामायणमें, अयोध्याकाण्डके प्रथम सर्गमें आठवें श्लोकसे लेकर चौंतीसवें श्लोकतक श्रीभगवान्‌के दिव्य गुणोंका सविस्तर वर्णन किया गया है; किंतु स्थल-संकोचवश हम यहाँ उनका केवल निर्देश ही कर देते हैं।

अन्तमें हम स्वनामधन्य ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाजीके शब्दोंमें इस विवेचनका उपसंहार करते हैं— 'श्रीराम सर्वगुणाधार थे, सत्य, सुहृदता, गम्भीरता, क्षमा, दया, मृदुता, शूरता, धीरता, निर्भयता, विनय, शान्ति, तितिक्षा, उपरामता, नीतिज्ञता, तेज, प्रेम, मर्यादा, संरक्षकता, एकपत्नीव्रत, प्रजारञ्जकता, ब्रह्मण्यता, मातृ-पितृ-भक्ति, गुरुभक्ति, भ्रातृप्रेम, सरलता, व्यवहारकुशलता, प्रतिज्ञातत्परता, शरणागतवत्सलता, त्याग, साधुसंरक्षण, दुष्टविनाश, निर्वैरता, सख्य एवं लोकप्रियता आदि सभी सद्गुणोंका श्रीराममें विलक्षण विकास था। इतने गुणोंका एकत्र विकास जगत्‌में कहीं नहीं मिलता। माता-पिता, बन्धु-मित्र, स्त्री-पुत्र, सेवक-प्रजा आदिके साथ उनका जैसा आदर्श बर्ताव है, उसकी ओर ख्याल करते ही मन मुग्ध हो जाता है। श्रीराम-जैसी लोकप्रियता तो आजतक कहीं नहीं देखनेमें आयी।'

मनोहर मुख-कंज

रामचन्द्र-मुख-कंज मनोहर भक्त-भ्रमर-मन-हारक।
मंगल-मूल मधुर मंजुल मृदु दिव्य सहज सुख-कारक॥
नित्य निरामय निर्मल अविरल ललित कलित सुभ सोभित।
पाप-ताप-मद-मोह-हरन, मुनि-मन-सुचि-करन सुलोभित॥
नील-स्याम तनु, धनु कर सोहत, वरद हस्त भय नासत।
सुमन-माल सुरभित, मुक्ता-मनि-हार लसत, द्युति भासत॥
पीत-वसन सौंदर्य-सौर्य-निधि भाल तिलक अति भ्राजत।
अखिल-भुवनपति, सुषमा-श्री लखि, काम कोटि-सत लाजत॥

—श्रीभाईजी हनुमानप्रसादजी पोद्दार

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम

(लेखक—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी, 'व्रजेश' साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

राम अयोध्याके राजा दशरथके ज्येष्ठ पुत्र हैं, जिन्हें सारा सनातनी हिंदू भगवान्का अवतार मानता है। अनेक विद्वानोंने उन्हें 'मर्यादापुरुषोत्तम'की संज्ञा दी है। वाल्मीकि-रामायण तथा पुराणादि ग्रन्थोंके अनुसार वे आजसे कई लाख वर्ष पहले त्रेतायुगमें हुए थे। अपने शील और पराक्रमके कारण भारतीय समाजमें जैसी लोकपूजा उन्हें मिली, वैसी संसारके अन्य किसी धार्मिक या सामाजिक जननेताको शायद ही मिली हो। भारतीय समाजमें उन्होंने जीवनका जो आदर्श रखा, स्नेह और सेवाके जिस पथका अनुगमन किया, उसका महत्त्व आज भी समूचे भारतमें अक्षुण्ण बना हुआ है। वे भारतीय जीवनदर्शन और भारतीय संस्कृतिके सच्चे प्रतीक थे। भारतके कोटि-कोटि नर-नारी आज भी उनके उच्चादर्शोंसे अनुप्राणित होकर संकट और असमंजसकी स्थितियोंमें धैर्य एवं विश्वासके साथ आगे बढ़ते हुए कर्त्तव्यपालनका प्रयत्न करते हैं। उनके त्यागमय, सत्यनिष्ठ जीवनसे भारतके ही नहीं, विदेशोंके भी मैक्समूलर, जोन्स, कीथ, ग्रिफिथ, बारान्निकोव आदि विद्वान् आकर्षित हुए हैं। उनके चरित्रसे मानवतामात्र गौरवान्वित हुई है।

राम अद्वितीय महापुरुष थे। वे अतुल्य बलशाली, सौन्दर्यनिधान तथा उच्चशीलके व्यक्ति थे। किशोरावस्थामें ही उन्होंने धार्मिक अनुष्ठानोंमें रत विश्वामित्र मुनिके यज्ञ-रक्षार्थ ताड़का और सुबाहु राक्षसका वध किया। राजा जनककी स्वयंवर-सभामें उन्होंने शिवका वह विशाल धनुष अनायास ही तोड़ डाला, जिसके सामने बड़े-बड़े वीरपुंगवोंको भी नतमस्तक होना पड़ा था। दण्डकवनमें शूर्पणखाके भड़कानेसे जब खर-दूषण-त्रिशिरादिने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया, तब अकेले ही युद्ध करते हुए उन्होंने थोड़े समयमें ही उनका विनाश कर डाला। किष्किन्धामें एक ही बाणसे रामने सात तालवृक्षोंका छेदन कर दिया और बादमें बड़े भाईके त्राससे उत्पीड़ित सुग्रीवकी रक्षाके लिये बाली-जैसे महापराक्रमी योद्धाको भी धराशायी कर दिया। लङ्कामें रावण-कुम्भकर्णादिसे हुआ उनका युद्ध तो पराक्रमकी पराकाष्ठाका ऐसा उदाहरण है, जिसकी मिसाल अन्यत्र कठिनाईसे ही मिलेगी।

अपनी छवि और कान्तिसे अगणित कामदेवोंको लज्जित करनेवाले रामके सौन्दर्यका वर्णन भी रामायणादि ग्रन्थोंमें यथेष्ट मात्रामें पाया जाता है। तुलसीके रामचरितमानसमें तो स्थल-स्थलपर इस तरहके विवरण भरे पड़े हैं। राजा जनक जब विश्वामित्र मुनिसे मिलने गये, तब वहाँ रामकी सुन्दर छवि देखकर उन्हें अपनी सुध-बुध ही भूल गयी; वे सचमुच ही 'विदेह' हो गये। उनके अलौकिक सौन्दर्यका यहाँतक प्रभाव पड़ा कि 'बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा'। (१।२१५।३) जनककी पुष्पवाटिकामें सीताकी एक सखीने रामको जब देखा तो वह भौंचक रह गयी। सीताके निकट आकर वह केवल इतना ही कह सकी—

स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

(श्रीरामच० मा० १।२२८।१)

उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गका जो वर्णन किया गया है, वह अद्वितीय है। मखभूमिमें तथा विवाह-मण्डपमें भी रामके नख-शिखका ऐसा ही सुन्दर वर्णन मानसमें दिया गया है। सामान्य लोगोंकी तो बात ही क्या, परशुराम-जैसे दुर्धर्ष वीरको भी रामके अलौकिक सौन्दर्यने हक्का-बक्का बना दिया। वे निर्निमेष नेत्रोंसे उन्हें देखते रह गये। ऐसा ही एक प्रसङ्ग उस समय आया, जब खर-दूषणकी सेनाके वीर रामका रूप देखकर हथियार चलाना ही भूल गये। उनके नेताको स्वीकार करना पड़ा कि अपने जीवनमें आजतक हमने ऐसा सौन्दर्य कहीं नहीं देखा। इसलिये—

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥

(वही, ३।१८।३)

रामके पराक्रम और सौन्दर्यसे भी अधिक व्यापक प्रभाव उनके शील और आचार-व्यवहारका पड़ा, जिसके कारण उन्हें अपने जीवनकालमें ही नहीं, वरं अनुवर्ती युगमें भी ऐसी लोकप्रियता प्राप्त हुई, जैसी विरले ही किसी व्यक्तिको प्राप्त हुई हो। वे आदर्श पुत्र, आदर्श पति, स्नेहशील भ्राता और लोकसेवानुरक्त, कर्तव्यपरायण राजा थे। माता-पिताका वे पूर्ण समादर करते थे। प्रातःकाल उठकर पहले उन्हें प्रणाम करते, फिर नित्यकर्म—स्नानादिसे निवृत्त होकर उनकी आज्ञा ग्रहणकर अपने काम-काजमें जुट

जाते थे। विवाह हो जानेके बाद राजाने उन्हें युवराज बनाना चाहा, किंतु मंथरा दासीके बहकानेसे विमाता कैकेयीने जब उन्हें १४ वर्षका वनवास देनेका वर राजासे माँगा तो विरोधमें एक शब्द भी न कहकर वे तुरंत वन जानेको तैयार हो गये। उन्होंने कैकेयीसे कहा—

'सुनु जननी सोइ सुतु बड़ भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥

(वही, २। ४०। ४)

निदान समस्त राजवैभव, उत्तुङ्ग प्रासाद और बहुमूल्य वस्त्राभूषणोंका परित्याग कर लक्ष्मण तथा सीताके साथ वे सहर्ष वनके लिये चल पड़े। जानेके पहले उन्होंने गुरुसे कहलाकर ब्राह्मणों तथा विद्वानोंके वर्षाशनकी व्यवस्था करा दी और भरतके लिये संदेश दिया कि—'नीति न तजिअ राजपदु पाएँ।' (रामच० मा० २। १५१। २) पिता और माताओंकी सुख-सुविधाका ध्यान रखनेकी प्रार्थना पुरजनों और हितेच्छुओंसे करते हुए उन्होंने कहा—

सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जातें रह नरनाहु सुखारी॥

(वही, २। १५१। २)

तथा—

मातु सकल मोरे बिरहँ जेहिं न होहिं दुख दीन।
सोइ उपाउ तुम्ह करेहु सब पुरजन परम प्रबीन॥

(मा० २। ८०)

राम जानते थे कि सीता अत्यन्त सुकुमार हैं, अतः उन्होंने उन्हें अयोध्यामें ही रहनेको बहुत समझाया। पर जब वे नहीं मानीं, तब उन्होंने उन्हें अपने साथ ले लिया और गर्मी, वर्षा, थकान आदिका बराबर ध्यान रखते हुए सहृदय, स्नेही पतिके रूपमें उन्हें भरसक कोई कष्ट नहीं होने दिया। इसी तरह लक्ष्मणको भी पिता, माता और बड़े भाईका अनुराग देकर इस तरह आप्यायित करते रहे कि उन्हें अयोध्या तथा परिजनोंके वियोगका दुःख तनिक भी खलने न पाया। मेघनादके शक्तिबाणसे लक्ष्मणके आहत होनेपर रामको मर्मान्तिक पीड़ा हुई और वे फूट-फूटकर रो पड़े। नारीके पीछे भाईका प्राण जानेकी आशङ्कासे उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। धैर्यवान् होते हुए भी वे इस समय परम व्याकुल हो उठे। किंतु उसी समय संजीवनी बूटी लेकर हनुमान्‌के लौट आनेसे किसी तरह लक्ष्मणकी प्राण-रक्षा हो सकी।

भरतपर भी रामका ऐसा ही स्नेह था। उनकी साधुता एवं निश्छलतापर रामका पूरा विश्वास था। इधर भरत भी उनका पूर्ण समादर करते थे और सर्वदा उनकी आज्ञाका पालन करते थे। भरत जब इन्हें लौटा लानेके लिये चित्रकूट पहुँचे, तब रामने उन्हें सत्य और कर्तव्यनिष्ठाका उपदेश देते हुए बड़े प्रेमसे समझाया और सहारेके लिये अपनी खड़ाऊँ देकर सहृदयतापूर्वक विदा किया। वनवासकी अवधि बीतनेमें केवल एक दिन शेष रहनेपर भरतकी दशाका स्मरण कर राम अत्यन्त व्याकुल हो उठे और उन्होंने विभीषणसे पुष्पकविमानकी याचना की, जिससे वे यथासमय अयोध्या पहुँच सकें।

रामके इन्हीं गुणोंके कारण समस्त अयोध्यावासी और पशु-पक्षीतक उनमें अनुरक्त थे। वनवासके लिये प्रस्थान करनेपर भारी संख्यामें लोग तमसा नदीतक उनके साथ-साथ दौड़े गये। रामको आधी रातके समय उन्हें सोते छोड़कर लुक-छिपकर वहाँसे कूच कर देना पड़ा। जागनेपर लोगोंको बड़ा पछतावा हुआ। अत्यन्त दुःखित होकर वे अयोध्या लौट आये और वनवासकी अवधिभर रामकी मङ्गलकामनाके उद्देश्यसे नेम, व्रत, देवोपासना आदि करते रहे। उधर नावमें बैठकर रामके गङ्गापार चले जानेपर सुमन्त्र मूर्छित हो गये और उनके रथके घोड़े भी रामवियोगमें व्याकुल हो उठे। उस समय यदि कोई व्यक्ति राम-लक्ष्मणका नामोल्लेख कर देता था तो वे पशु विस्फारित नेत्रोंसे उसकी ओर देखने लगते थे—

जो कह रामु लखनु बैदेही। हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही॥

(वही, २। १४२। ४)

पिता दशरथने तो पहले ही कह दिया था कि रामके बिना मेरा जीना सम्भव नहीं और यही हुआ भी। माता कौशल्याको इस बातका उतना दुःख नहीं था कि राम-वनगमनकी बात सुनकर भी मेरी वज्रकी छाती विदीर्ण नहीं हुई, जितनी उन्हें इस बातकी ग्लानि थी कि राम-जैसे आज्ञाकारी सुशील पुत्रकी मुझ-जैसी माता हुई। मतिभ्रमसे पूर्व कैकेयीका भी राममें पूर्ण विश्वास था। इसीसे उनके राज्याभिषेककी बात सुनकर उसने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा था—

रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये।
तस्मात्तुष्टास्मि यद्राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति॥

(वा० रा० २। ७। ३५)

'मैं भी राम और भरतमें कोई भेद नहीं समझती। अतः जानकर कि राजा श्रीरामका अभिषेक करनेवाले हैं, मुझे बड़ी खुशी हुई है।'

प्रजाको हर तरहसे सुखी रखना वे राजाका परम कर्तव्य मानते थे। उनकी धारणा थी कि जिस राजाके शासनमें प्रजा दुखी रहती है, वह नृप अवश्य ही नरकका अधिकारी

होता है । जनकल्याणकी भावनासे ही उन्होंने राज्यका संचालन किया, जिससे प्रजा धन-धान्यसे पूर्ण, सुखी, धर्मशील एवं निरामय हो गयी—

प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः ।
निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः ॥

(वा० रा० १ । १ । ९०)

तुलसीदासने भी मानसमें राम-राज्यकी विशद चर्चा की है । लोकानुरञ्जनके लिये वे अपने सर्वस्वका त्याग करनेको तत्पर रहते थे । इसीसे भवभूतिने उनके मुँहसे कहलाया है—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥

(उत्तररामचरित १ । १२)

अर्थात् यदि आवश्यकता हुई तो जानकीतकका परित्याग मैं कर सकता हूँ ।' प्रजानुरञ्जनके लिये इतना बड़ा त्याग करनेपर उन्हें कितनी मर्मान्तक व्यथा हुई तथा सीता-विरह-कातर होकर किस तरह वे मुमूर्षुवत् हो गये, इसका अत्यन्त करुणोत्पादक चित्रण महाकवि भवभूतिकी कुशल लेखनीने 'उत्तररामचरित'में किया है ।

इस तरह रामके चरित्रमें भारतकी संस्कृतिके अनुरूप पारिवारिक और सामाजिक जीवनके उच्चतम आदर्श पाये जाते हैं । उनमें व्यक्तित्वविकास, लोकहित तथा सुव्यवस्थित राज्य-संचालनके सभी गुण विद्यमान थे । उन्होंने दीनों, असहायों, संतों और धर्मशीलोंकी रक्षाके लिये जो कार्य किये, आचार-व्यवहारकी जो परम्परा कायम की, सेवा और त्यागका जो उदाहरण प्रस्तुत किया तथा न्याय एवं सत्यकी प्रतिष्ठाके लिये वे जिस तरह अनवरत प्रयत्नवान् रहे, इन सबने उन्हें भारतके जन-जनके मानस-मन्दिरमें अत्यन्त पवित्र और उच्च आसनपर आसीन कर दिया है । जबतक वाल्मीकि-रामायण, तुलसीके रामचरितमानस तथा ऐसी ही शत-शत अन्य रचनाओंमें वर्णित रामकी कीर्ति-गाथाका चिन्तन-मनन होता रहेगा, तबतक भारतीय संस्कृति और उच्च नैतिक आदर्शोंकी यह सुखद परम्परा अक्षुण्ण बनी रहेगी तथा घोर दुर्दिनके समय भी वह देशवासियोंको शक्ति और प्रेरणा प्रदान करती रहेगी, इसमें संदेह नहीं ।

श्रीरामका सौन्दर्य, शक्ति एवं शील

[लेखक—डॉ० श्रीसत्यनारायणजी शर्मा, एम्० ए० (हिंदी एवं संस्कृत), पी-एच्० डी०, साहित्याचार्य, साहित्यरत्न]

तुलसीके भगवान् श्रीराम अनन्त-सौन्दर्यसम्पन्न हैं । करोड़ों कामदेवोंको लज्जित करनेवाले उनके असाधारण एवं अनन्त रूप-सौन्दर्यका अवलोकन कर आबाल-वृद्ध-वनिता सभी विस्मय-विमुग्ध हो जाते हैं । उनकी रूपमाधुरीका तुलसीपर इतना अधिक प्रभाव है कि अनेकानेक बार उसकी अभिव्यक्ति करते हुए भी उनको पुनरुक्तिका भानतक नहीं होता । सभी भक्त श्रीरामका दर्शन कर आत्मसुधि खो देते हैं और गद्गद हो जाते हैं ।[1] श्रीरामके अनुपम सौन्दर्यका इतना अधिक आकर्षण है कि वैरागी जनकसहित जनक-पुरवासी[2], वन-मार्गके ग्रामीण नर-नारी[3], कोल-भील[4], पशु-पक्षी, सज्जन-दुर्जन, ऋषि-मुनि, देवता—सभी बरबस वशीभूत हो जाते हैं । विषैले एवं तामसी प्रवृत्तिके सर्प-बिच्छू भी उनपर मुग्ध होकर उनका कोई अनिष्ट नहीं करते ।[5] औरोंकी तो बात ही क्या, उनके शत्रु खर-दूषण भी उनके सौन्दर्यपर मन्त्र-मुग्ध हैं ।[6] शूर्पणखा भी उनके सौन्दर्यपर विमुग्ध होकर ही उनसे अपना वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहती थी ।[7] क्षत्रियकुलके विश्वविदित द्रोही परशुराम भी असंख्य काम-देवोंका मानमर्दन करनेवाले उनके अपूर्व रूपका अवलोकन कर थकित रह गये ।[8] जनकपुरके 'बालक-वृन्द' तो उनका अद्भुत सौन्दर्य देखकर उनके पीछे ही लग जाते हैं ।[9] जनक-पुरकी वाटिकामें भगवान् रामने अपने भाई लक्ष्मणसहित लताकुञ्जसे प्रकट होकर सीताकी सखियोंको जिस सौन्दर्यका साक्षात्कार कराया, वह ऐसा विलक्षण एवं अपूर्व था कि सखियाँ अपने-आपको भूल गयीं ।[10] इतना ही नहीं उनमेंसे एक चतुराने तो उनकी मीठी चुटकी लेते हुए कि 'गौरीका ध्यान पीछे कर लेना',

१. मा० ४. १. ६; ५. ४४. ३; ७. ३२. २—४ ।
२. मा० १. २१५. ३; १. २२९. १; १. २२० ।
३. मा० २. १०९. २; २. ११३. ३ ।
४. मा० २. १३४. ४—६ ।
५. मा० २. २६१. ८ ।
६. मा० ३. १८. ३—५ ।
७. मा० ३. १६. ८—१० ।
८. मा० १. २६८; ८ ।
९. मा० १. २१८. २ ।
१०. मा० १. २३२; १. २३३ ।

श्रीरामकी रूप सुधाका आँख मूँदकर पान करती हुई सीताको झकझोरकर उन्हें उस सौन्दर्यको नेत्रोंसे देखनेके लिये विवश किया।[११] श्रीरामका रूप ऐसा अपूर्व है कि उसे स्वयं तो लोग देखते ही हैं, दूसरोंको भी देखकर नेत्रोंका लाभ लेनेकी शिक्षा देते हैं।[१२] विवाहके अवसरपर तो श्रीरामके त्रिभुवन-मोहन रूपके दर्शनार्थ शिव, विष्णु, ब्रह्मा, कार्तिकेय, इन्द्र आदि देवगण जनकपुरमें जुट गये थे।[१३] सीता-स्वयंवरमें उपस्थित सभी नागरिक अपलक नयनोंसे श्रीरामकी रूप-माधुरीका पान कर रहे थे।[१४] वनमार्गके पथिकगण एवं ग्रामीण उनके सौन्दर्यको देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। ग्रामीण वधुएँ उत्कण्ठित होकर सीतासे 'श्यामल-गौर-किशोर' राजकुमारोंका परिचय प्राप्त करती हैं।[१५] और उनके चले जानेपर भी उनकी सुकुमारताका स्मरण करती हुई खिन्न होकर विधिको उलाहना[१६] देती हैं तथा यही चाहती हैं—

'जौं मागा पाइअ बिधि पाहीं। ए रखिअहिं सखि आँखिन्ह माहीं॥'[१७]

तुलसीने भगवान् श्रीरामकी अद्वितीय शक्तिका भी उद्घाटन किया है। उनकी शक्तिके लवलेशसे तीनों लोकोंके चराचरपर विजय प्राप्त की जा सकती है।[१८] जिस समय भगवान् श्रीरामका अवतार हुआ था, उस समय रावण, वाली और परशुराम—ये तीन विश्वविश्रुत योद्धा विद्यमान थे। किष्किन्धाका सम्राट् वाली राक्षसराज रावणसे भी अधिक बली था। उसने उसे बुरी तरह परास्त ही नहीं किया था, अपि तु एक आख्यानके अनुसार अपनी काँखमें छः मासतक दबाये भी रखा था। क्षत्रियोंके जन्मजात शत्रु महामुनि परशुरामने तो कौतुकमें ही रावणको बंदी बनानेवाले महावीर सहस्रबाहुको भी मारकर इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियविहीन किया था। श्रीरामने रावण और वालीका तो वध किया ही, उन्होंने सीता-स्वयंवरमें परशुरामका भी मानमर्दन कर उन्हें तपस्याके लिये वनका रास्ता दिखलाया। ये सारे कार्य श्रीरामकी अतुलित शक्ति और अपूर्व वीरताकी पराकाष्ठाके ही परिचायक हैं। उनके बाण खींचते ही समुद्रके हृदयमें ज्वाला उठने लगी थी।[१९] उन्होंने सरकंडेका ही बाण जयन्तपर छोड़ा था[२०] और मारीचको 'बिनु फर सर'[२१] ही मारा था, जिनकी प्रतिक्रियाएँ अवर्णनीय हैं। उनके बाणोंमें ऐसी अद्भुत शक्ति है कि वे क्षणमात्रमें ही भयंकर राक्षसोंको काटकर रख देते हैं और वे सब लौटकर उनके तरकसमें घुस जाते हैं।[२२] श्रीरामकी शक्तिके बलपर ही, रावणके सामने आँख उठाकर भी न देख सकनेवाला विभीषण, कालके समान उससे युद्ध करने लगा था।[२३] श्रीराममें अनन्त कोटि दुर्गाओंके समान शत्रुओंके संहारकी शक्ति विद्यमान है।[२४] श्रीरामने अपनी अपूर्व शक्तिसे ताड़का, खर-दूषण, कुम्भकर्ण, मारीच आदि अत्याचारियोंका भी वध किया। रावण, मारीच आदि राक्षसोंने उनकी अतुलित शक्तिसे ही उन्हें परब्रह्मके रूपमें पहचाना था।[२५] भला, भगवान् श्रीरामसे भी अधिक शक्तिसम्पन्न कौन हो सकता है, जिनके लव, निमेष, परमाणु, वर्ष, युग और कल्प प्रचण्ड बाण हैं और साक्षात् काल जिनका धनुष है।[२६]

तुलसीने भगवान् श्रीरामके शीलका ऐसा मार्मिक अङ्कन किया है कि भक्तोंका हृदय स्वतः उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है। उनके मनोहर शील-स्वरूपको देखकर, उसका अनुभव कर मनुष्य अपनी वृत्तियोंको भी उसीके मेलमें ले चलनेके लिये प्रयत्नशील हो जाता है। श्रीरामकी सरलता एवं सुशीलताके अनुभवसे ही उसकी कुटिलता एवं दुष्टता धीरे-धीरे दूर होने लगती है और इस तरह वह भक्तिका अधिकारी बनता चलता है। अयोध्यामें श्रीरामराज्याभिषेकका आयोजन हो रहा है। कुलगुरु वसिष्ठ अभिषेककी सफलताके लिये श्रीरामको संयम करनेका आदेश देने आये हैं। भगवान् श्रीराम उनके प्रति जिस असाधारण शिष्टाचार एवं शीलका निर्वाह करते हैं, उसे देखकर वे प्रेमसे पुलकित हो जाते

११. मा० १. २३३. १-२।
१२. मा० २. ११३. ६।
१३. मा० १. ३१६. २—८।
१४. मा० १. २४३. ३।
१५. मा० २. ११५; २-३; २. ११६. १।
१६. मा० २. १२०. ३–४।
१७. मा० २. १२०. ५।
१८. मा० ५. २१।
१९. मा० ५. ५७. ६।
२०. मा० ३. ०. ८।
२१. मा० ३. २४. ५।
२२. मा० ६. ६८।
२३. मा० ६. ९४।
२४. मा० ७. ९०. ७। उत्तरार्द्ध।
२५. मा० ३. २५।
२६. मा० ६. मङ्गलाचरणका दोहा।

है ।'[२७] जब वसिष्ठ श्रीरामको अभिषेक-कार्यके सकुशल सम्पन्न होनेके निमित्त उपवास, हवन आदि संयम करनेका उपदेश देकर लौट जाते हैं, तब श्रीराम सोचने लगते हैं कि 'हम चारों भाई एक ही साथ जन्मे; खाना, सोना, लड़कपन, खेल-कूद, उपनयन-संस्कार और विवाह आदि उत्सव सब साथ-ही-साथ हुए । पर इस निर्मल वंशमें यही एक अनुचित बात है कि और सब भाइयोंको छोड़कर राज्याभिषेक बड़ेका ही होता है ।'[२८] वस्तुतः कुलकी परम्पराके अनुसार ज्येष्ठ राजकुमार होनेके नाते श्रीरामका अभिषेक कोई अनुचित नहीं था; पर अन्यान्य सभी उत्सवोंमें अपने भाइयोंके साथ सम्मिलित रहनेवाले श्रीरामको अपनी सुशीलताके कारण इस उत्सवमें भी एकाकी होना उचित नहीं प्रतीत होता । श्रीरामका यही शील-सम्पन्न प्रेमपूर्ण सुन्दर पश्चात्ताप भक्तोंके मनकी कुटिलता-को अपहरण करनेमें सफल हो सकता है[२९] । इसी तरह वनगमन-प्रसङ्गमें श्रीराम, लक्ष्मण एवं सीताको वनके लिये विदाकर जब सुमन्त्र अवध आने लगे, तब श्रीराम अपनी सुशीलताके कारण पिताके लिये प्रेमपूरित संदेश ही प्रेषित नहीं करते, प्रत्युत उनके लिये 'कटुबानी'का प्रयोग करनेवाले लक्ष्मणको रोकते भी हैं । इतना ही नहीं, लक्ष्मणके इस अनुचित आचरणपर उन्हें संकोच होता है और वे अपनी शपथ देकर सुमन्त्रसे उनकी कटु बातोंको पितासे नहीं कहनेका आग्रह करते हैं ।[३०] यह श्रीरामके शीलकी पराकाष्ठा है, जिसको श्रीरामके मना करनेपर भी उनके पितासे कहे बिना सुमन्त्रसे नहीं रहा गया ।[३१] अयोध्याके नागरिकोंके साथ भरतको चित्रकूटमें आते देखकर उनके प्रति लक्ष्मणके हृदयमें श्रीरामके प्रति स्नेहवश बहुत तरहकी कल्पित आशङ्काएँ एवं संदेह होने लगते हैं[३२] पर श्रीरामके निर्मल अन्तःकरणमें आशङ्का एवं संदेह-के लिये कोई अवकाश नहीं है । उन्हें अपने शीलके बलपर दूसरे-के शीलपर पूरा भरोसा है । अपने साथ अनिष्ट करनेवालोंके प्रति भी श्रीरामका शील-प्रदर्शन नहीं रुकता । वहीं चित्रकूट-में अपने कुकृत्योंसे खिन्न कैकेयीको श्रीराम यही समझाते हैं कि जो कुछ भी घटनाएँ घटित हुईं, वे सब विधाताके विधानके कारण हुई हैं, उनमें कैकेयीका कोई अपराध नहीं है ।[३३] जिन श्रीरामके शर-संधानके उपक्रमसे ही समुद्रमें भयंकर ज्वालाएँ उत्पन्न होने लगीं, वे ही श्रीराम पहले लगातार तीन दिनोंतक 'जड़-जलधि'से अनुनय-विनय करते रहे । बाली और रावण-का वध करके उन्होंने उनके राज्यका अपहरण नहीं किया, बल्कि उन्हींके उत्तराधिकारी भाइयोंको दे दिया। यह श्रीराम-के शीलकी पराकाष्ठाका ही द्योतक है कि जो सम्पत्ति शिवने रावणको दसों सिरोंकी बलि देनेपर प्रदान की थी, उसीको श्रीरामने विभीषणको संकोचके साथ दिया ।[३४] उन्हें ऐसा लगा कि इसे कुछ दिया ही नहीं गया । वस्तुतः श्रीरामके शील-स्वभावकी थाती लेकर ही भक्त उनके पासतक पहुँचनेका प्रयास करता है । जब जीवको प्रतिदिन किये जानेवाले अपने अपराधोंकी स्मृति होती है, तब भक्तिके मार्गमें उसके पैर लड़खड़ाने लगते हैं । लेकिन जब उसे शील-निधान भगवान्के उदार-स्वभावका स्मरण हो जाता है, तब उसके पैर तेजीसे बढ़ने लगते हैं ।[३५]

यथार्थतः मानसकारके भगवान् श्रीरामने अपने सौन्दर्य, शक्ति एवं शीलसे जन-जनके जीवनपर अपना अखण्ड आधिपत्य स्थापित कर लिया है । कदाचित् इसीलिये आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्लने अपना यह विचार व्यक्त किया है—'भगवान्का जो प्रतीक तुलसीदासजीने लोकके सम्मुख रखा है, भक्तिका जो प्रकृत आलम्बन उन्होंने खड़ा किया है, उसमें सौन्दर्य, शक्ति और शील—तीनों विभूतियोंकी पराकाष्ठा है । सगुणोपासनाके ये तीन सोपान हैं, जिनपर हृदय क्रमशः टिकता हुआ उच्चताकी ओर बढ़ता है ।'[३६] वस्तुतः श्रीरामके

२७. गुर आगमनु सुनत रघुनाथा ।
द्वार आइ पद नायउ माथा ॥
सादर अरघ देइ घर आने ।
सोरह भाँति पूजि सनमाने ॥
... ...
बरनि राम गुन सीलु सुभाऊ ।
बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ ॥
(मा० २ । ८ । २; २ । ९ । १)

२८. मा० २ । ९ । ५—७ ।

२९. मा० २ । ९ । ८ ।

३०. मा० २ । ९५ । ४-५ ।

३१. मा० २ । १५१ । ७-८ ।

३२. मा० २ । २२७ । ४—७ ।

३३. मा० २ । २४४ ।

३४. मा० ५ । ४९ (ख)

३५. मा० २ । २३३ । ६ ।

३६. गोस्वामी तुलसीदास—पृष्ठ ५३-५४ ।

सौन्दर्य, शक्ति एवं शीलकी झाँकी पाकर साधक स्वार्थमय सांसारिक तुच्छ प्रलोभनोंका सर्वथा परित्याग कर देता है। यही कारण है कि उनकी इस झाँकीका दर्शन कर जंगली कोल-भील भी अनायास ही मनकी उसी पवित्र भावभूमिपर पहुँच जाते हैं, जिसपर तपस्वियोंको भी काफी कठोर साधनाके पश्चात् ही पहुँचनेका सौभाग्य उपलब्ध होता है।

श्रीरामका स्वभाव

(लेखक—काव्य-वेदान्त-तीर्थ महाकवि श्रीवनमालीदासजी शास्त्री)

यस्त्वेकेन कृतेन किंचिदुप कारेणापि संतुष्यति
चित्ते लाति कदापि जीवककृतान् नवापकारान् बहून्।
तं नत्वा रघुवंशरत्नमनिशं श्रीरामचन्द्रं प्रभुं
तस्यैवात्मविशोधनाय हि मनाग् दिव्यं स्वभावं ब्रुवे॥

'जो एक बार किये हुए रंचकमात्र उपकारसे भी भलीभाँति प्रसन्न हो जाते हैं; किंतु इसके विपरीत, जीवके द्वारा किये हुए असंख्य अपराधोंको भी कभी मनमें नहीं लाते, उन रघुवंश-तिलक श्रीरामचन्द्र प्रभुके चरणोंमें बारंबार प्रणाम करके आत्मशुद्धिके लिये उन्हींके दिव्य स्वभावका यत्किंचित् वर्णन करता हूँ।'

प्राकृतिक-समस्त-दोष-गन्धशून्य, अशेष-कल्याण-गुणगण-भाजन, अहैतुककरुणावरुणालय, भक्तवाञ्छाकल्पतरु भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकारके अभिषेकार्थ बुलाये हुए राजमण्डलसे मण्डित सभामण्डपमें विराजमान मानरहित सर्वजनहितपरायण नृपतिवर्य श्रीदशरथने यह प्रस्ताव रखा कि 'मैं परमवृद्ध हो गया हूँ, अतः राजकीय भारको वहन करनेमें असमर्थ होकर श्रीरामजीको युवराज-पदपर अभिषिक्त कर देना चाहता हूँ; आप सब सभासदोंकी क्या सम्मति है।'

समस्त सभासद् एक स्वरसे बोले—'हम सब तो श्रीरामजीके राज्याभिषेककी प्रतिदिन प्रतीक्षा करते हैं; अतः आप उनको राज्याभिषिक्त करके हमारे चिराकाङ्क्षित मनोरथको परिपूर्ण कर दीजिये।'

सभासदोंके आन्तरिक भावकी परीक्षा लेते हुए दशरथजी बोले—'सभासदो! मैं धर्मपूर्वक इस पृथ्वीका निरन्तर पालन कर रहा हूँ, समस्त प्रजाको पुत्रके समान मानता हूँ; अतः अनुभवमें लाये हुए मुझ नृपतिको छोड़कर आपलोग श्रीरामको राजाके रूपमें क्यों देखना चाहते हैं?'

उत्तर देते हुए सभासद् बोले—''श्रीरामजीका स्वभाव लोकोत्तर है। देखिये, वे ग्राम अथवा नगरकी रक्षाके लिये लक्ष्मण-के साथ जब संग्रामभूमिमें जाते हैं, उस समय वहाँ जाकर विजय प्राप्त किये बिना पीछे नहीं लौटते और संग्रामभूमिसे लौटकर पुरवासियोंमें स्वजनोंकी भाँति प्रतिदिन उनके पुत्र, अग्निहोत्र, कलत्र, भृत्य, बान्धव आदिका कुशल-समाचार पूछते रहते हैं। जैसे पिता अपने औरस पुत्रोंका मङ्गल चाहते हैं, उसी प्रकार मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम समस्त जनताका मङ्गल चाहते रहते हैं। ब्राह्मण आदि वर्णोंसे सदा पूछते रहते हैं कि 'तुम्हारे सेवकवर्ग तुम्हारी सेवामें तो संलग्न रहते हैं न?' और वे जीवमात्रके दुःखमें दुखी एवं सुखमें सुखी रहते हैं तथा उनके स्वभावमें एक बड़ी विचित्र लोकोत्तरता यह है कि—

कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥
(वा० रा० २। १। ११)

''कोई व्यक्ति उनका कभी एक बार भी उपकार कर देता है तो वे उसके उस एक ही उपकारसे सदा संतुष्ट रहते हैं और अपने मनको वशमें रखनेके कारण किसीके सैकड़ों अपराध करनेपर भी उसके अपराधोंका स्मरणतक नहीं करते।''

सभासदोंकी अनुमतिसे श्रीरामाभिषेककी तैयारियाँ होने लगीं, किंतु कुब्जाकी कुचालसे प्रभावित कैकेयीकी प्रेरणा-से श्रीरामका वनवास हो गया। ननिहालसे आये हुए भरतजी अपनी माताके कुकृत्यसे अप्रसन्न होकर श्रीरामजीको प्रसन्न करनेके लिये शत्रुघ्न एवं पुरवासियोंके सहित, जब चित्रकूटपर पहुँचे, तब उनकी सेना-सम्पत्तिको पहिचानकर श्रीरामानुरक्त लक्ष्मणजीने भरतके परोक्षमें भरतजीको कुछ खरी-खोटी बातें सुनानी आरम्भ कर दीं। तब श्रीरामजीने कहा—

न हि ते निष्ठुरं वाच्यो भरतो नाप्रियं वचः।
अहं ह्यप्रियमुक्तः स्यां भरतस्याप्रिये कृते॥
(वा० रा० २। ९७। १५)

'देखो, लक्ष्मण! भरतके आनेपर तुम उनसे कोई कठोर या अप्रिय वचन न बोलना। यदि तुमने भरतके प्रति कोई भी प्रतिकूल व्यवहार किया तो वह मेरे ही प्रति किया हुआ समझा जायगा।'

श्रीरामजीके इस वचनसे यह ध्वनि निकलती है कि उनमें और उनके भक्तोंमें किंचित् भी भेद नहीं समझना

चाहिये। तात्पर्य—भक्तोंके प्रति किया हुआ अपराध भगवदपराध ही माना जाता है। अतएव 'जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥' (मानस २।२१७।३) कहा गया है। अर्थात् भगवान् भक्तोंके सुखमें ही सुखी एवं दुःखमें दुखी रहते हैं। यह उनका नित्य स्वभाव है। इस स्वभावको लक्ष्मणके प्रति आप पहले ही व्यक्त कर चुके हैं। यथा—

यद् विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं वापि मानद।
भवेन्मम सुखं किंचिद् भस्म तत् कुरुतां शिखी॥
(वा० रा० २।९७।८)

'अन्य जनोंको मान देनेवाले लक्ष्मण! देखो, भैया! भरतको, तुमको और शत्रुघ्नको छोड़कर यदि मुझे कोई किंचित् भी सुख मिलता हो तो उसे अग्निदेव जलाकर भस्म कर डालें।'

इसी तरह सीताहरणके बाद हनुमान्‌जीके प्रयत्नसे सुग्रीवके साथ श्रीरामजीकी मित्रता हो जानेपर जगज्जननी जानकीके दर्शन कर लौट आये हुए हनुमान्‌जीके द्वारा उनका शुभ समाचार सुनानेपर प्रसन्न हो प्रत्युपकारमें असमर्थता-सी जताते हुए एवं अपने वास्तविक स्वभावको व्यक्त करते हुए श्रीरामजी सभी मित्रोंके सामने कहने लगे कि—

इदं तु मम दीनस्य मनो भूयः प्रकर्षति।
यदिहास्य प्रियाख्यातुर्न कुर्मि सदृशं प्रियम्॥
एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः।
मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्त्वस्य महात्मनः॥
(वा० रा० ६।१।१२-१३)

'आज चूँकि मेरे पास पुरस्कार देनेयोग्य वस्तुका अभाव है, यह बात मेरे मनमें बड़ी कसक पैदा कर रही है कि यहाँ जिसने मुझे ऐसा प्रिय संवाद सुनाया है, उसका उसके ही समान मैं कोई प्रियकार्य नहीं कर पा रहा हूँ। इस समय इन महात्मा हनुमान्‌को मैं केवल अपना प्रगाढ़ आलिङ्गन प्रदान करता हूँ; क्योंकि यही मेरा सर्वस्व है।'

इसी भावको रूपान्तरसे व्यक्त करते हुए श्रीरामचरित-मानसकार भी कहते हैं—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥
(५।३२।३-४)

वस्तुतः सर्वेश्वर सर्वशक्तिमान् अघटितघटनापटीयान् भगवान्‌का कोई भी जीव उपकार कर सकता है क्या? तथापि अपनेद्वारा अपनी शक्तिसे स्वयं किये-कराये कार्यको भी अपने भक्तके ऊपर थोपकर आप सदाके लिये उसके ऋणी बन जाते हैं, उनके स्वभावकी यही लोकोत्तरता है। महाकवि श्रीकालिदासने 'शाकुन्तल' नाटकमें इसी भावको इस प्रकार समझाया है—

सिद्ध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः
सम्भावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्।
किं वाभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता
तं चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत्॥
(७।४)

'सेवकजन विशिष्टतम स्वामिजनोंके बड़े-बड़े महान् कार्योंमें भी जो सफलता प्राप्त करते हैं, उस सफलता-प्राप्तिमें अपने स्वामियोंके द्वारा प्राप्त सम्मानको ही प्रधान कारण समझना चाहिये। देखिये, सूर्यभगवान् गरुडके बड़े भाई अरुणको यदि अपना सारथि नहीं बनाते तो क्या वह लँगड़ा सारथि अरुणोदय-वेलामें अन्धकार दूर करनेमें समर्थ हो सकता था? कदापि नहीं।' इसी प्रकार श्रीहनुमान्‌के द्वारा किये हुए समुद्र-लङ्घन आदि कार्य भी श्रीरामजीके द्वारा प्राप्त सम्मानके ही फल हैं।

इसी भावको आनन्दवृन्दावनचम्पूकार कविवर्य श्रीकर्णपूरने स्वरचित 'चैतन्यचन्द्रोदय' नाटकमें रूपान्तरसे इस प्रकार कहा है—

अस्थानेऽपि प्रथयति कृपामीश्वरोऽसौ स्वतन्त्रः
स्थानेऽप्युच्चैर्जनयतितरां नूनमौदास्यमेव।
रामो देवः स गुहमकरोदात्मनीनं सखायं
कृष्णः स्तोत्रैः प्रणमति विधौ हन्त मौनी बभूव॥
(९।१०)

'निखिलवेदप्रतिपाद्य ईश्वर स्वतन्त्र है। अतः उसका दिव्य स्वभाव भी स्वतन्त्र है; क्योंकि वह कृपाके योग्य पात्र न होनेपर भी महती कृपा करता है और कृपाके योग्य पात्रके सम्बन्धमें भी भारी उदासीनता प्रकट कर देता है। देखो, राघवेन्द्र सरकार श्रीरामजीने सख्यके योग्य न होनेपर भी गुहराजको अपना परम हितैषी सखा बना लिया और व्रजराजवंशविभूषण श्रीकृष्णचन्द्र तो अनेक अलंकारोंसे अलंकृत स्तोत्रोंके द्वारा नमस्कार करनेवाले ब्रह्माके लिये भी

मौनी बन गये। तात्पर्य, मौनी बनकर भी पुत्रकी अपेक्षा मित्रोंकी विशेषता ही प्रकट कर गये।'

मित्रभावसे शरणमें आये हुए विभीषणके प्रति श्रीरामजीके लोकोत्तर स्वभावके परिचायक भावोद्गार कितने सुन्दर हैं—

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथंचन।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम्॥

(वा० रा० ६। १८। ३)

अर्थात्—

मित्र भाव से मो सरन आवै जो नर कोय।
त्यागूँ नहिं कौनिहु दसा दोसवंत हू होय॥

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम्॥

(वही, ६। १८। ३३-३४)

"जो एक बार भी शरणमें आ 'मैं तुम्हारा हूँ'—यों कहकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ। यह मेरा स्वाभाविक व्रत है। अतः कपिश्रेष्ठ सुग्रीव! जाओ, देखो। फिर चाहे विभीषण हो या स्वयं रावण ही आया हो, उसे ले आओ; मैंने उसे अभय-दान दे दिया।"

समुद्रपर सेतुबन्धन हो गया, लङ्कामें पहुँचकर सेना-संनिवेशके अनन्तर राघवेन्द्र सरकार श्रीरामजी लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवान्, हनुमान्, नल, नील, अङ्गद प्रभृति सेनापतियोंको साथ लेकर लङ्काकी शोभाको देखनेके लिये सुबेल पर्वतके दो योजन लंबे-चौड़े शिखरपर चढ़ गये और लङ्काकी शोभाका निरीक्षण करने लगे। इधर गोपुरके शृङ्गपर सुसज्जित सिंहासनपर बैठे हुए रावणके ऊपर सुग्रीवकी दृष्टि पड़ गयी। रावणको देखकर सुग्रीवसे रहा न गया। पर्वत-शिखरसे कूदकर, गोपुरपर आ, निर्भीक भावसे कुछ देरतक तो वे रावणको निहारते रहे। फिर क्रोधमें भरकर उससे बोले—'अरे दुष्ट रावण! देख, मैं अनन्तब्रह्माण्डनायक श्रीरामजीका सखा हूँ, अतः रामजीकी कृपासे आज तू मुझसे बचकर कहाँ जायगा।'—यों कहकर वे सहसा रावणपर टूट पड़े। उन्होंने उसके मुकुटोंको पृथ्वीपर फेंक चलाया। फिर क्या था, दोनोंका युद्ध आरम्भ हो गया। बहुत समयतक युद्ध होता रहा। अन्तमें रावणको मूर्च्छितकर सुग्रीव श्रीरामजीके निकट आ गये। श्रीरामजीने सुग्रीवके शरीरपर युद्धके चिह्न देखे। देखते ही प्रथम तो वे उनसे भुजा भरकर मिले। पश्चात् बोले—'हे मित्र! तुमने मुझसे बिना पूछे ही यह अतिशय साहसका कार्य कर डाला। देखो, राजालोग मित्रोंसे पूछे बिना ऐसे साहसके कार्य नहीं करते। हे साहसप्रिय सखे! आपने मुझको और इस सेनासहित विभीषणको संदेहमें डालकर महान् कष्टका कार्य किया है।' श्रीरामजी पुनः बोले—

इदानीं मा कृथा वीर एवंविधमरिंदम।
त्वयि किंचित् समापन्ने किं कार्यं सीतया मम॥
भरतेन महाबाहो लक्ष्मणेन यवीयसा।
शत्रुघ्नेन च शत्रुघ्न स्वशरीरेण वा पुनः॥
त्वयि चानागते पूर्वमिति मे निश्चिता मतिः।
जानतश्चापि ते वीर्यं महेन्द्रवरुणोपम॥
हत्वाहं रावणं युद्धे सपुत्रबलवाहनम्।
अभिषिच्य च लङ्कायां विभीषणमथापि च॥
भरते राज्यमारोप्य त्यक्ष्ये देहं महाबल।

(वा० रा० ६। ४१। ४-८)

"अरिंदम! वीरवर सुग्रीव! देखो, मित्र! आजसे पीछे मुझसे पूछे बिना [illegible] दुस्साहस न करना; क्योंकि [illegible] यदि कुछ हो जाता—अर्थात् यदि [illegible] प्रकार तुम्हारे [illegible] योग हो जाता तो मुझे सीता, [illegible] लक्ष्मण एवं उनके छोटे भाई शत्रुघ्नसे तथा अपने इस शरीरसे भी क्या प्रयोजन रह जाता। हे महेन्द्र और वरुणके समान महाबली मित्र! यद्यपि मैं तुम्हारे बल-पराक्रमको जानता था, तथापि तुम जबतक यहाँ लौटकर नहीं आये थे, उससे पहले मैंने यह निश्चित कर लिया था कि 'युद्धमें पुत्र, सेना और वाहनोंसहित रावणका वध करके, लङ्काके राज्यपर विभीषणका अभिषेक कर तथा अयोध्याका राज्य भरतको देकर अपने इस शरीरको त्याग दूँगा अर्थात् शीघ्र ही अपनी लीलाकी समाप्ति कर दूँगा'।"

इस प्रसङ्गका तात्पर्य यही है कि भगवान् अपने सखाओंसे इतना प्यार करते हैं कि उनके विरहमें सम्पूर्ण परिकरकी उपेक्षा करके बीचमें ही लीलासंवरण कर देनेतकका दृढ़ निश्चय रखते हैं। अहा! ऐसे कृतज्ञ सुहृद्‌शिरोमणि श्रीहरिका

कौन बुद्धिमान् मित्रभावसे सेवन नहीं करेगा। मित्रोंका उत्कर्ष दिखाते हुए श्रीरामजीने तो यहाँतक कह दिया—

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे॥
(मानस ७। ७। ४)

अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही॥
सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना॥
(वही, ७। १५। ३-४)

लङ्कापर विजय पाकर श्रीरामजी जब अयोध्यामें अभिषिक्त हो गये, तब अपने भावको प्रदर्शित करते हुए हनुमान्‌जीने उनसे निवेदन किया—'राजाधिराज भगवान् श्रीराम! आपके प्रति मेरा महान् स्नेह सदा ही बना रहे! और आपमें ही मेरी निश्चल भक्ति बनी रहे। आपके सिवा और कहीं मेरा आन्तरिक अनुराग न हो। और हे प्रभो! इस भूतलपर जबतक आपकी रामकथा प्रचलित रहे, तबतक निस्संदेह मेरे प्राण इस शरीरमें ही बने रहें।' यह प्रार्थना सुनते ही श्रीरामजीने हनुमान्‌को हृदयसे लगा लिया और कहा—'कपिश्रेष्ठ! ऐसा ही होगा।' पुनः बोले—

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥
मदङ्गे जीर्णतां यातु यत्त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्॥
(वा० रा० ७। ४०। २३-२४)

'कपे! मेरे प्रति तुमने जो-जो उपकार किये हैं, उनमेंसे एक-एकके बदले मैं तुम्हारे ऊपर अपने प्राण निछावर कर सकता हूँ। तुम्हारे शेष उपकारोंके लिये तो मैं तुम्हारा ऋणी ही रह जाऊँगा। कपिश्रेष्ठ! मैं तो यही चाहता हूँ कि तुमने जो-जो उपकार किये हैं, वे सब मेरे शरीरमें ही पच जायँ। उनका बदला चुकानेका मुझे कभी अवसर ही न मिले; क्योंकि पुरुषमें उपकारका बदला पानेकी योग्यता आपत्ति-कालमें ही आती है। तात्पर्य—मैं नहीं चाहता कि तुम आपत्तिमें पड़ो और मैं तुम्हारे उपकारोंका बदला चुकाऊँ। तुम्हारे ऊपर कभी आपत्ति आयेगी ही नहीं, यही हमारा गुप्त आशीर्वाद है।' इन रहस्योंको लक्ष्यमें रखकर ही गोस्वामीजीने बालकाण्डमें कहा है—

रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥
जेहिं अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली॥
सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी॥
ते भरतहि भेंटत सनमाने। राजसभाँ रघुबीर बखाने॥

प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सीलनिधान॥
(मानस १। २८। ३-४; १। २९)

इसी विषयको लक्ष्य बनाकर श्रीशंकरभगवान्‌ने पार्वतीके प्रति यथार्थ ही कहा है—

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥
(वही, ५। ३३। २)

अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना। ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना॥
(वही, ५। ४९। १)

मेरा वक्तव्य-विषय तो यद्यपि पूर्ण हो चुका है, तथापि—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥
(वही, १। १८)

—इस प्रमाणके अनुसार श्रीरामजीसे अभिन्नदेहा परम दयामयी जगज्जननी जानकीके स्वभावका दिग्दर्शन करा देना भी अपने प्रतिपाद्य विषयके अन्तर्गत ही है। मातृ-हृदयकी कोमलता तो जगत्प्रसिद्ध ही है। देखें, रावणवधके अनन्तर श्रीरामजीकी आज्ञासे हनुमान् विजयका शुभ समाचार सुनानेको जब श्रीसीता माताके निकट उपस्थित हुए, तब अपने स्वामीकी विजयका शुभ समाचार सुनकर, प्रसन्न हो, प्रत्युपकार-रूप पुरस्कार देनेमें असमर्थता प्रकट करती हुई मातासे हनुमान्‌जीने वरदानमें उन राक्षसियोंका मर्दन करनेकी आज्ञा माँगी, जो पहले सीतामाताकी भर्त्सना कर रही थीं। हनुमान्‌के कथनके अनन्तर पर-दुःखदुःखिनी दयाद्रवित-हृदया दयामयी माता बोलीं—

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः॥
पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति॥
(वा० रा० ६। ११३। ४४-४५)

'बेटा पवनकुमार! देखो, श्रेष्ठ पुरुष दूसरेकी बुराई करनेवाले पापियोंके पापकर्मको नहीं अपनाते—अर्थात्

बदलेमें उनके साथ स्वयं भी पापपूर्ण व्यवहार नहीं करना चाहते। अतः श्रेष्ठ पुरुषको अपनी प्रतिज्ञा एवं सदाचारकी रक्षा ही करनी चाहिये; क्योंकि साधु पुरुष अपने उत्तम चरित्रसे ही विभूषित होते हैं। सदाचार ही उनका आभूषण है। श्रेष्ठ पुरुषको चाहिये कि कोई पापी हो या पुण्यात्मा अथवा वधके योग्य अपराध करनेवाले ही क्यों न हों, उन सबपर दया ही करते रहें; क्योंकि संसारमें ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जिससे कभी अपराध हो ही नहीं।'

हनुमान्‌जी माताके इस लोकोत्तर उत्तरसे प्रसन्न एवं पुलकित होकर बोले—'माताजी! आप रघुवंशभूषण श्रीरामकी धर्मपत्नी हैं। अतः आपका ऐसे लोकोत्तर स्वभावसे सम्पन्न रहना उचित ही है।'

भगवान् श्रीरामका शील

(लेखक—पं० श्रीजगदीशजी शुक्ल, साहित्यालंकार, काव्यतीर्थ)

स्वभावकी समुज्ज्वलता और स्वाभाविक सुकुमारताको 'शील' कहते हैं। यह धर्मका उत्कृष्टतम रूप तो है ही, हृदयकी स्थायी स्थिति भी है। प्रयत्न करके भी शीलवान् पुरुष अपने स्वभावगत शीलका त्याग नहीं कर सकता। विरोधीके दुराचार और अत्याचारसे भी जिसमें विकार नहीं आ सके, मानवताका वही सर्वोच्च गुण 'शील' कहलाता है। इसलिये भगवान्‌के शीलका सरोवर, नाला, नहर या नद नहीं होता; शीलका सागर ही होता है। ग्रीष्मके कठोर तापसे सारे जलाशय तो सूख जाते हैं; किंतु समुद्र ज्यों-का-त्यों और जैसा-का-तैसा ही बना रहता है। इसी प्रकार शील भी किसी भी विरोधी या शत्रुके भारी-से-भारी कदाचार और दुर्व्यवहारसे भी विकृत या प्रभावित नहीं होता—बना-का-बना रह जाता है। इसलिये गोस्वामी तुलसीदासजी भगवान् रामको 'शीलसिन्धु' ही कहते हैं। चित्रकूटमें भगवान् राम जब अपने गुरु वसिष्ठजीसे मिलनेके लिये चलते हैं, तब गोस्वामीजी कहते हैं—

सीलसिंधु सुनि गुर आगवनू। सिय समीप राखे रिपुदवनू॥
(मानस २। २४२। १)

धृतराष्ट्रने अपने पुत्र दुर्योधनको शीलका स्वरूप बतलाया था—

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च शीलमेतत् प्रशस्यते॥
(महाभारत, शान्ति० १२४, शीलनिरूपणाध्याय)

''शरीरसे, मनसे और वचनसे भी किसी जीवका अनिष्ट न करना, सबके ऊपर कृपाभाव रखना और यथाशक्ति दान करना 'शील' कहलाता है।'' अद्रोह एक निषेधात्मक शब्द है। इसका विधेयात्मक स्वरूप है—प्रेम! प्राणिमात्रसे प्रेम होना शीलकी पहली स्थिति है। जब प्रेमीको कष्ट होता है, तब उसपर दया होना स्वाभाविक है। यही 'दया' शीलकी दूसरी स्थिति है। जिसपर दया आती है, उसके लिये संचय-भावनाका क्षुद्र बाँध टूट जाता है और त्याग-वृत्तिका सहज ही उदय हो जाता है। इसलिये 'दान' शीलकी तीसरी स्थिति है। 'प्रेम', 'करुणा' और 'दान' शीलके सहज स्वरूप हैं। प्रेम, करुणा और त्यागका महासमुद्र भगवान् रामके स्वभावमें सदा ही उफनता और लहराता रहता है। अतएव गोस्वामी तुलसीदासका कथन अक्षरशः सत्य है कि 'भगवान् राम शीलके सिन्धु हैं।'

भगवान् रामको पाकर शील भी समग्र और लोकोत्तर बन गया। केवल व्यवहारमें रहनेवाला शील 'शील' न होकर बाह्याचार है। बुद्धिगत शील भी शीलका साधारण और ढुलमुल स्वरूप है; क्योंकि वह मनके असहयोग और विद्रोहके कारण टूट जाता है। शीलका विशेष निखार और चमत्कार तब होता है, जब शील स्वभावमें आ जाता है।

'स्वभाव' वह भाव है, जो किसी भी प्रभावसे प्रभावित न हो। अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होनेवाला और अपनी निन्दा सुनकर क्रुद्ध होनेवाला वस्तुतः प्रशंसक और निन्दकके भावसे प्रभावित होनेके कारण 'परभाव'का ही शिकार बनता है; उसमें 'स्वभाव' नामक भाव रहता ही नहीं। 'स्व'का ज्ञान और भान हुए बिना 'स्व'के भावका उदय हो नहीं सकता। हम प्रायः अपने सगे-सम्बन्धियोंको 'स्व' समझते हैं; किंतु 'स्व'का यह स्वरूप थोथा और भङ्गुर है। 'स्व' तो एकमात्र भगवान् ही हैं, जो कभी भी 'पर' नहीं हो सकते। भगवान् सत्य और सनातन हैं, अतएव 'स्व' भी सत्य और सनातन है। हम प्रायः झूठे 'स्व'को ही देखते हैं, सच्चे 'स्व'को नहीं। किसी शायरने पतेकी बात बतलायी है—

जो है अपना वह नज़र आता नहीं। जो नज़र आते हैं, वे अपने नहीं॥

हमारा 'स्व' ही हमारा सच्चा सुहृद् और अकारण कृपालु है। उसमें शील, स्नेह और करुणाके गुण स्वाभाविक और नित्य हैं। इसमें उसी 'स्व'को जानना, पहचानना, मानना और अपनाना है। उसीका भाव 'स्वभाव' है। अन्य सारे भाव 'पर-भाव' हैं। इसलिये स्वभावगत शील ही सच्चा और पक्का शील है; क्रियागत नहीं, बुद्धिगत नहीं।

भगवान् रामके जीवनमें अथसे इतितक अयोध्याकी क्रीड़ाभूमिमें, जनकपुरकी रङ्गभूमिमें, काननकी लीलाभूमिमें तथा लङ्काकी युद्धभूमिमें भी उनके लोकोत्तर शीलकी बाँकी झाँकी हमें बार-बार मिलती है।

श्रीरामजीके बाल्यकालके स्वभावगत शीलका वर्णन करते हुए श्रीभरतजी कहते हैं—

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मो पर कृपा सनेहु बिसेषी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी॥
सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहुँ खेल जितावहिं मोही॥
(मानस २। २५९। ३-४)

अपराधीपर भी क्रोधका न होना, कृपा और स्नेह बनाये रखना, बाल-क्रीड़ामें भी क्रोधका न होना, किसीके जीको नहीं तोड़ना तथा हारे हुए खेलको भी जिता देना—ये सब शीलकी ही सुमधुर झाँकियाँ हैं।

क्रीड़ा-रत बालकका ध्यान क्रीड़ा-भूमिमें विजयकी ओर प्रायः अधिक रहता है—स्वास्थ्य, स्फूर्ति, मनोरञ्जन और अनुशासन आदिकी ओर कम। राम और भरतके चौगानमें राम विजयके नहीं, पराजयके इच्छुक हैं। भाई भरतको विजयी बनाकर स्वयं पराजयका रसास्वादन करनेमें उनकी समधिक रुचि है। पराजयोन्मुख अनुज भरतको विजयी बनाकर तथा अपनी हारको सप्रेम स्वीकार कर अग्रज राम आनन्दसे उल्लसित हो पड़ते हैं और आनन्दातिरेकमें अपने मित्रोंको, सेवकोंको तथा याचकोंको इनाम तथा दान देना शुरू कर देते हैं। प्रभुका इनाम और दान पानेवाले सदाके लिये अयाचक बन जाते हैं—

प्रभु बकसत गज-बाजि, बसन-मनि, जय-धुनि गगन निसान हये।
पाइ सखा-सेवक-जाचक भरि जनम न दूसरे द्वार गये॥
(गीतावली १। ४५। ५)

भगवान् राम बार-बार भरतलालजीको ही जिता देते हैं। रामजीके इस स्वभावगत शीलपर बार-बार न्योछावर होकर गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

तुलसी सुमिरि सुभाव-सील सुकृती तेइ जे एहिं रंग रए॥
(गीतावली १। ४५। ७)

भगवान् रामके स्वभाव-शीलको स्मरण करके जो इसी रंगमें रँगे हुए हैं, वे महान् पुण्यवान् हैं।

सीतापति रामके शील-स्वभावको सुनकर जिसके मनमें आनन्द नहीं होता, जिसकी देह पुलकित नहीं होती, जिसकी आँखोंमें प्रेमाश्रु नहीं उमड़ आते, वह अभागा मानव धूल फाँकता फिरे तो अच्छा रहे—

सुनि सीतापति-सील-सुभाउ।
मोद न मन, तन पुलक, नयन जल, सो नर खेहर खाउ॥
(विनयपत्रिका १००। १)

भगवान् रामके शील और स्नेहको देखने तथा समझनेपर भगवती भक्तिका आविर्भाव होता है। यदि ऐसा नहीं हुआ तो माताने जन्म देकर व्यर्थ ही अपनी जवानी बिगाड़ी। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

तुलसी राम-सनेह-सील लखि, जो न भगति उर आई।
तो तोहि जनमि जाय जननी जड तनु तरुनता गवाँई॥
(विनयपत्रिका १६४। ७)

शीलका संसार ही आला और निराला है। यह त्यागका पीयूष है, भोगका विष नहीं। परमार्थकी पवित्रता है, स्वार्थकी संकीर्णता नहीं। शीलवान् आपको विजेता और उन्नत बनाकर सुख पाता है, स्वयं विजेता और उन्नत बनकर नहीं। आपका लोक दीपकके आलोकसे आलोकित रहता है, इधर शीलकी दुनिया दिलकी रोशनीसे रोशन रहती है। किसीने कितना अच्छा कहा है—

तुम्हारी बज़्ममें इस बज़्ममें है फ़र्क इतना।
वहाँ चिराग़, यहाँ दिल जलाये जाते हैं॥

सुप्रसिद्ध कवयित्री श्रीमहादेवी वर्माका मन भी दीपक बनकर जलता रहता है। उसमें स्नेहका घृत भरा रहता है। आपने कहा है—

स्नेह-भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक मन रे।
('नीरजा')



भगवान् रामके शैशवके शीलका चमत्कार आप देख चुके। अब किशोर रामके शीलकी अनोखी और चोखी झाँकियाँ लीजिये।

राजा जनककी यज्ञशालामें भगवान् रामने जब शिव-धनुषको तोड़ डाला, तब परशुराम इस घटनामें अपने गुरु शंकरजीका और शिव-भक्त होनेके नाते अपने आपका भी अपमान मानकर आग-बबूला हो गये और घटना-स्थलपर पहुँच गये। परशुरामके कालके समान कराल वेषको देखते ही भयभीत राजा उठ खड़े हुए और अपने-अपने पिताके नामके साथ अपना-अपना नाम लेकर दण्डवत्-प्रणाम करने लगे—

देखत भृगुपति बेषु कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला॥
पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा॥
(मानस १। २६८। १)

आतङ्कके इसी कठिन वातावरणमें विश्वामित्रजीकी प्रेरणासे रामजी और लक्ष्मणजीने परशुरामके चरणोंमें प्रणाम किया। राम-लक्ष्मणकी सुन्दर जोड़ीको परशुरामने देखा और आशीर्वाद दिया। रामजीके अपरूप रूपको देखकर उनकी आँखें स्तम्भित रह गयीं—

रामु लखनु दसरथ के ढोटा। दीन्हि असीस देखि भल जोटा॥
रामहि चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन॥
(मानस १। २६८। ४)

टूटे हुए शिव-धनुषके टुकड़ोंको देखकर परशुराम क्रोधातिरेकसे तिलमिला उठे और उन्होंने राजर्षि जनकको 'जड' कहकर अपमानित करते हुए उनसे पूछा—'मूर्ख जनक! बता, धनुष किसने तोड़ा? उसे शीघ्र दिखा, नहीं तो अरे मूढ़! आज मैं जहाँतक तेरा राज्य है, वहाँतककी पृथ्वी उलट दूँगा'—

अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा॥
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटउँ महि जहँ लहि तव राजू॥
(मानस १। २६९। २)

अत्यधिक भयभीत राजा जनक मौन थे। देवता, मुनि, नाग और जनकपुरके सारे स्त्री-पुरुष भयग्रस्त और चिन्तामग्न हो गये। जनक-नन्दिनीका एक-एक क्षण एक-एक कल्पके समान लंबा हो गया। रामजीको तो न कोई हर्ष था न विषाद! रामजीने देखा कि सभी लोग सभय हो गये हैं, आतङ्ककी आँधी आ गयी है। जानकी अत्यधिक डर गयी हैं। इसीलिये वे सहज भावसे बोले—

नाथ संभुधनु भंजनिहारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा॥
(मानस १। २७०। १)

'शिव-धनुषका तोड़नेवाला आपका कोई सेवक ही होगा।' परशुराम धनुर्भङ्ग करनेवालेको अपना शत्रु समझ रहे थे और उसका वध करनेके लिये कमर कसकर आये थे। जनकजीसे वे कह चुके थे कि उस अपराधीको मुझे दिखा दो, नहीं तो तुम्हारे राज्यकी पृथ्वीको ही उलट दूँगा। रामजी कहते हैं कि धनुर्भञ्जक आपका सेवक है, शत्रु नहीं, रक्ष्य है, वध्य नहीं।'

परशुरामजी रामजीके लोकोत्तर सौन्दर्यपर तो अत्यन्त आकर्षित थे ही, इनके लोकोत्तर शीलपर भी विमुग्ध हो गये। परशुरामको यह विश्वास तो था नहीं कि धनुषको तोड़नेवाला यही दशरथ-कुमार राम है। भयभीत राजा बाहरी शीलका प्रदर्शन करके परशुरामको झुक-झुककर प्रणाम कर रहे थे और रामने भी विनयपूर्वक प्रणाम किया था। राजाओंकी नम्रता भय-प्रेरित थी और रामकी नम्रता शील-प्रेरित; किंतु दोनोंका बाहरी रूप एक ही था। परशुराम सोचते होंगे कि शिवचापका भञ्जक तो विश्व-विजयके अभिमानमें मस्तक तानकर कहीं खड़ा होगा—अपने आगे सारे विश्वको तुच्छ समझ रहा होगा। यह सामने खड़ा सौन्दर्य और शीलका सिन्धु राम तो इतना भोला-भाला है कि यह समझ ही नहीं रहा है कि शिव-चाप-भञ्जक मेरा सेवक हो सकता है या शत्रु। इसलिये रामजीको समझाते हुए परशुरामजी क्रोधपूर्वक कहते हैं—

सेवकु सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिअ लराई॥
सुनहु राम जेहिं सिवधनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न त मारे जैहहिं सब राजा॥
(मानस १। २७०। २-३)

परशुराम और रामका संवाद मूर्तिमान् क्रोध और विनयका संवाद है। रामके अतिशय विनयको देखकर यह भ्रम हो जाता है कि राम निर्बल और असमर्थ हैं। जिस शिव-चापको उठानेमें पृथ्वीके सभी वीर असमर्थ रह गये, उस धनुषको रामजीने अनायास ही तोड़ डाला; फिर भी उपस्थित राजाओंके ऊपर रामजीके पराक्रम या वीरत्वका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उनकी दृष्टिमें धनुर्भङ्गकी घटना कोई अनहोनी घटना हो गयी। इसीलिये वे विरोधी राजा विद्रोह और संग्राम करके सीताजीको छीन लेनेके लिये ताल ठोंक रहे थे।

उनकी ओरसे संघर्ष प्रारम्भ होनेवाला ही था कि परशुरामका अकस्मात् आगमन हो गया और वातावरण आतङ्कमय हो जानेके कारण वे विरोधी भूपाल दब गये। उन राजाओंके भ्रमका कारण निरभिमान रामका लोकोत्तर शील ही था।

परशुराम और रामका संवाद वीर और सूक्ष्मदर्शी लक्ष्मणको बेतुका लगा। एक ओर विरोधी राजाओंकी विद्रोहभरी वाणीको सुन-सुनकर वे उत्तेजित हो रहे थे, दूसरी ओर परशुरामकी अटपटी बातोंसे रामका अपमान उन्हें असह्य हो रहा था। इसलिये वे परशुरामजीकी बातें सुनकर रामके बोलनेके पहले ही परशुरामका अपमान करते हुए बोल उठे। अब लक्ष्मण और परशुरामके व्यङ्ग्य-विनोद-युक्त और उत्तेजनापूर्ण संवादका आरम्भ हुआ। लक्ष्मणकी कटूक्तियोंने परशुरामको अपने आपेमें नहीं रहने दिया और वे लक्ष्मणका वध करनेके लिये प्रस्तुत हो गये। परशुरामको कुठार सँभाले देखकर सभामें हाय-हाय मच गयी। रामजीने अपनी मधुर वाणीसे परशुरामजीको समझाया और लक्ष्मणको बालक बतलाकर उसपर कृपा करनेकी प्रार्थना की। परशुराम कुछ शान्त हो ही रहे थे कि लक्ष्मणने फिर व्यङ्ग्य-विनोद करना आरम्भ कर दिया। एक ओर परशुराम लक्ष्मणकी कटूक्तियोंके द्वारा कुपित और उत्तेजित हो रहे थे, दूसरी ओर वे रामके शीलसे इतना प्रभावित हो रहे थे कि रामजीसे कहने लगे—

राम तोर भ्राता बड़ पापी॥
(मानस १।२७६।३)

सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही।
(मानस १।२७६।४)

और—

बचउँ बिचारि बंधु लघु तोरा।
(मानस १।२७७।४)

रामजीके लोकोत्तर शीलका यह अनूठा चमत्कार है कि परशुराम-जैसा पराक्रमी और समर्थ क्रोधी रामजीके शीलसे प्रभावित होकर लक्ष्मणको क्षमा कर रहा है और पूछता है कि 'राम! तुम्हारा अनुज लक्ष्मण शीलमें तुम्हारा अनुगामी क्यों नहीं है?' शान्त और अनुकूल होते हुए भी परशुरामको लक्ष्मण चिढ़ा-चिढ़ाकर पुनः-पुनः और उत्तेजित कर रहे थे। परशुराम न जाने क्या अनर्थ कर डालें, इस कारण राजा जनक और सारे जनकपुरवासी अत्यन्त भयभीत होकर लक्ष्मणके इस कुकृत्यकी कड़ी निन्दा कर रहे थे। रामजीने भी अपनी आँखोंके संकेतसे लक्ष्मणको उलटा-सीधा बोलनेसे रोका। तब लक्ष्मण रामजीके निकटसे हटकर गुरु विश्वामित्र जीके समीप चले गये।

लक्ष्मणने सोचा होगा कि "बहक-बहककर बोलनेवाले परशुरामको जब पराजित कर दिया जायगा, तब विद्रोही और संघर्षके लिये उतारू ये सारे-के-सारे भूपाल स्वयं ही 'सटक सीताराम' हो जायँगे। और इसका सुमधुर परिणाम यह होगा कि भयंकर युद्ध और रक्तपात होते-होते बच जायगा। इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये वे परशुरामको दबा देना चाहते थे।

रामके मौनका अर्थ परशुरामने यह लगाया कि राम लक्ष्मणकी कटूक्तियोंको अपनी चुप्पीके द्वारा स्वीकृति दे रहे हैं—'मौनं स्वीकृतिलक्षणम्।' इसलिये अब वे रामपर भी कसकर बरस पड़े—

बंधु कहइ कटु संमत तोरें। तू छल बिनय करसि कर जोरें॥
करु परितोषु मोर संग्रामा। नाहिं त छाड़ कहाउब रामा॥
छलु तजि करहि समरु सिवद्रोही। बंधु सहित न त मारउँ तोही॥
(मानस १।२८०।१-२)

कुठारको उठाये हुए क्रुद्ध और उत्तेजित परशुराम बोलते जा रहे हैं और शीलके सागर राम मर्यादा-पालन और परशुरामकी प्रतिष्ठाके विचारसे खुलकर तो नहीं, किंतु मन-ही-मन परशुरामकी थोथी हेकड़ीपर मुस्कुराते जा रहे हैं। कितना अनोखा दृश्य है। अल्पसामर्थ्यवान् मार डालनेके लिये फरसा ताने हुए है और सर्वसमर्थ मार खानेके लिये स्वेच्छासे सिर झुकाये हुए है। एकके मुखपर कड़वी बकवास है, दूसरेके मुखपर मधुर मुस्कान—

भृगुपति बकहिं कुठार उठाएँ। मन मुसुकाहिं रामु सिर नाएँ॥
(मानस १।२८०।२)

सिर झुकाये हुए राम क्या कह रहे हैं? सुन लीजिये—

राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा। कर कुठारु आगें यह सीसा॥
(मानस १।२८०।४)

मतलब यह कि—

तलवार खूँ से रंग ले, अरमान रह न जाए।
बिस्मिल के सर पै कोई एहसान रह न जाए॥

और—

कातिलका इरादा है, बिस्मिलको मिटा देंगे।
बिस्मिलका तक़ाज़ा है, कातिलसे दुआ लेंगे॥

शीलका ऐसा सच्चा और पक्का चित्र संसारकी चित्रशाला-में कहीं मिल नहीं सकता। धन्य हैं हमारे प्रभु राम और धन्य है उनका लोकोत्तर शील! भगवान् रामके लोकोत्तर शील और गूढ़ार्थमय संवादसे परशुरामका भ्रम धीरे-धीरे मिटने लगा। भगवान् विष्णुका शार्ङ्गधनुष परशुरामके कंधेसे लटक रहा था, जिसे भगवान् विष्णुके अतिरिक्त अन्य कोई चढ़ा नहीं सकता था। परशुरामने उसी धनुषको रामजीके पूर्ण पुरुषत्वकी परीक्षाके लिये उनके हाथमें दिया। रामजीके हाथका स्पर्श पाते ही वह धनुष स्वयमेव अनायास चढ़ गया और रामजी अवतारी परमपुरुष प्रमाणित हो गये। सच है—

न दावे की ज़रूरत है न कोई रोक सकता है।
किसीमें फ़ितरती जौहर जो है, वह खुद चमकता है॥

अब परशुरामको यह विश्वास हो गया कि राम परम-पुरुष हैं, मानव नहीं। अब उन्होंने राम-लक्ष्मणकी सविनय स्तुति की, बार-बार उनसे क्षमा माँगी और उनका जय-जयकार करते हुए उन्होंने तपस्याके लिये मन्दराचलकी राह ली। ब्राह्मण होकर भी क्षत्रियकर्मा होनेका अभिमान उनके सिरपरसे उतर गया और सारे शस्त्रास्त्र त्यागकर वे अब सच्चे ब्राह्मण बन गये। क्रोध पराजित होकर विदा हो गया और शीलकी स्थायी विजय हुई।

रामने अपने शीलके द्वारा परशुरामके हृदयमें अपनी विजयका झंडा गाड़ दिया। सर्वसमर्थ राम भी परशुरामके ढेलेका उत्तर पत्थरसे देने लगते तो यह दो भैंसोंका युद्ध होता और इसमें जो पराक्रमी होता, वह तो विजयी होता ही, किंतु रामके शीलका लोकोत्तर चमत्कार और निखार लोक-लोचनोंके सामने नहीं आता।

भगवान् रामके शीलकी सबसे कड़ी परीक्षा लङ्कामें थी। शरणागतका उद्धार करना उतना आश्चर्यकारी नहीं होता, जितना हृदयस्पर्शी और विस्मयकारी होता है शरणमें नहीं आये हुए विरोधी और आक्रमणकारी दुष्टोंका उद्धार। राम और रावणकी सेनाओंने परस्पर घमासान युद्धका आरम्भ कर दिया है। निर्हेतुक कृपालु राम हनुमान् और अङ्गदको बुलाकर कहते हैं—'तुमलोग युद्ध-मृत राक्षसोंकी लाशोंको मेरे पास रख देना।' योद्धाओंको आश्चर्य होता है कि भगवान् राक्षसोंकी लाशोंको लेकर क्या करेंगे! हनुमान् और अङ्गद छोटे-छोटे राक्षसोंका वध तो करते नहीं थे, वे तो बड़े-बड़े सेनापतियोंका ही सफाया करते थे। कृपालु भगवान्‌की आज्ञाका पालन आरम्भ हो गया। लीजिये—

महा महा मुखिआ जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं॥
(मानस ६। ४४। १)

अब उन मृतक शरीरोंका उपयोग प्रभु क्या करते हैं!

कहइ बिभीषनु तिन्ह के नामा। देहिं राम तिन्हहू निज धामा॥
(मानस ६। ४४। २)

मृतक शरीरोंको पहचानकर विभीषण उनका नाम बतलाते हैं और प्रभु कृपापूर्वक उनको अपना धाम दे रहे हैं। अपना धाम तो अपने ही आदमियोंको दिया जाता है। वह धाम अपने प्रत्यक्ष अपकारी स्वभावापहारी शत्रुओंको दिया जा रहा है! प्रभुकी कृपासे नरभक्षी, द्विज-मांस-भोजी दुष्ट राक्षस उस परमपदको प्राप्त कर रहे हैं, जो योगियोंको भी दुर्लभ है! प्रभुके जिस शीलका खजाना इन अपात्रोंके लिये भी पूरा-का-पूरा खुल गया है, उस शीलकी समता किससे हो सकती है, कहाँ हो सकती है। प्रभुके इस लोकोत्तर शीलसे प्रभावित होकर भगवान् शंकर राम-भक्त पार्वतीको सप्रेम समझा रहे हैं—

उमा राम मृदुचित करुनाकर। बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर॥
देहिं परम गति सो जियँ जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी॥
अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मतिमंद ते परम अभागी॥
(मानस ६। ४४। ३-३)

शंकरजी पूछते हैं—'हे पार्वति! अपकारी दुष्ट असुरपर भी अकारण करुणा करनेवाला ऐसा कृपालु इस आकाशके तले दूसरा है कौन?' इसी प्रकारके शीलके दर्शन मिलते हैं भगवान् श्रीकृष्णमें भी। राक्षसी पूतनाने अपने स्तनोंमें विष लपेटकर दूध पिलाया शिशु कृष्णकी इहलीला समाप्त करनेके लिये और कृपालु कृष्णने उसे धायकी गति दे डाली। इस

आश्चर्यकी घटनासे अत्यन्त प्रभावित होकर उद्धवजी विदुरजीको समझाते हुए मुक्तकण्ठसे उद्घोष कर रहे हैं—

अहो बकी यं स्तनकालकूटं
जिघांसयापाययदप्यसाध्वी ।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं
कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥
(श्रीमद्भा० ३ । २ । २३)

राम और कृष्ण दो नहीं हैं—एक ही ब्रह्मके दो स्वरूप हैं, एक ही अवतारीके भिन्न-भिन्न अवतार। शीलका ऐसा स्वरूप भगवान्‌में ही मिल सकता है, इन्सानमें नहीं।

राम और रावणका अन्तिम लोमहर्षक युद्ध चल रहा है। भगवान् राम रावणके सिर और भुजाओंको बार-बार काट डालते हैं, फिर भी वह मरता नहीं—उसके नये-नये सिर और नयी-नयी भुजाएँ निकल आती हैं। देवता, सिद्ध और मुनि प्रभुके क्लेशको देखकर विशेष व्याकुल हो रहे हैं। प्रभु बहुत श्रम करते जा रहे हैं; किंतु शत्रु मरता नहीं। अन्तमें अत्यन्त निराश होकर प्रभु भक्त विभीषणकी ओर देखने लगते हैं, मानो वे विभीषणसे कह रहे हैं—'विभीषण! मैं तो युद्ध करते-करते थक गया, किंतु रावण मरा नहीं। तुम यदि रावण-वधका कोई उपाय जानते हो तो बताओ।'

सर्वज्ञ प्रभु न जानें और विभीषणसे रावण-वधका उपाय जानकर उपायज्ञ बनें, यह असम्भव बात है। वास्तविकता तो यह है कि अबतक प्रभु रावणकी युद्ध-लिप्साकी पूर्ति करते रहे। रावणकी मृत्युका समय अब उपस्थित हो गया है। अतएव प्रभु अब रावणका वध करना चाहते हैं और यह भी चाहते हैं कि रावण-वधसे भक्त विभीषणको कोई कष्ट नहीं हो। इसलिये रावण-वधके विषयमें विभीषणकी वर्तमान इच्छाको जानना चाहते हैं।

विभीषण रावणका भाई है और शरणागतिकालमें उसने रावणका भाई कहकर ही अपना परिचय दिया है—

नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता॥
(मानस ५ । ४४ । ४)

'अनुजो रावणस्याहम्'
(वाल्मीकीय० ६ । १९ । ४)

भाईसे भाईको कितना प्रेम होता है, इस बातको रामजीसे अधिक कोई नहीं जानता। जीवनभर भाईसे झगड़ा भी रहा हो, किंतु यदि उस भाईको बाहरी व्यक्ति मारना या दबाना चाहता है तो अपने सच्चे भाईसे सहन नहीं होता। भाईका खून देखकर तो भाईका खून उबल ही पड़ता है। विभीषण अबतक रावण-वधके लिये सारी सहायता करते रहे और रामजीको बार-बार प्रेरणा देते रहे; किंतु इतने भीषण संग्रामके बाद अब विभीषणकी मनःस्थिति क्या है, यही रामजीकी जिज्ञासा है।

विभीषण शरणागत हो चुके हैं। इसलिये प्रभु शरणागत विभीषणके दुःखको सहन नहीं कर सकते। रावण-वधके बाद यदि विभीषणका भ्रातृ-प्रेम उमड़ आया और वे दुखी हो गये तो प्रभुको अपार कष्ट हो जायगा। रावणका वध न हो, धर्मकी रक्षा न हो, अधर्मका विनाश न हो, देवता रावणके उत्पीड़नसे उत्पीड़ित ही रह जायँ, सीता माताका उद्धार न हो—ये सारी बातें रामको सहन हो सकती हैं; किंतु शरणागत विभीषणको कष्ट हो जाय, इस बातको प्रभु सहन नहीं कर सकते।

शरणागत-वत्सलताका ऐसा उत्कृष्टतम उदाहरण चिराग लेकर ढूँढ़नेपर भी मिल नहीं सकता। यह शरणागत-वत्सलता शीलका ही स्वरूप है। भगवान् रामके लोकोत्तर शीलकी कई झाँकियाँ मैंने उपस्थित कीं। उद्दण्डता और संकीर्णताकी इस दुनियामें क्षमताके साथ विनम्रता और उदारताका यह आदर्श आदरणीय ही नहीं, अनुकरणीय भी है। भगवान् रामके शीलके श्रवण-कीर्तन, पठन, चिन्तन-मनन और निदिध्यासनकी आज सबसे अधिक आवश्यकता है। दुराचार और अत्याचारके शिकार आज भारतीय परिवारमें यदि रामजीके शीलका समुचित संचार हो जाय तो हमारा अनाचार और कदाचार सदाचार बन जाय और हमारा भारतीय समाज आज ही रामराज्यका समाज बन जाय।

'भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।'

(लेखक—श्रीरामकृष्णप्रसादजी)

श्रीरामके विषयमें उसी व्यक्तिका कथन प्रामाणिक माना जा सकता है, जिसने रामको स्वयं देखा हो, और केवल देखा ही न हो, उनसे 'सम्पर्क' भी स्थापित किया हो। रामके तत्त्व, उनके चरित्र और उनके शील-स्वभावके विषयमें हजारों तथ्य और कथाएँ हम पढ़ते और सुनते हैं, लेकिन प्रामाणिक उसीको मानते हैं, जो उन लोगोंके द्वारा कही गयी है, जो रामके समकालीन थे या 'रामद्रष्टा' थे। उन तथ्यों तथा कथाओंके आधारपर हम रामको अवतार मानें या मर्यादापुरुषोत्तम कहें—यह हमारे विचार और श्रद्धापर निर्भर है। लेकिन यह सत्य है कि जिस आचार-विचार, शील-स्वभावका प्रतिपादन रामने किया है, वैसा किसी युगमें किसी मानवने भी किया हो, ऐसा हमें प्रमाण नहीं मिलता।

श्रीरामको देखकर ऐसे भी प्रश्न उठे हैं कि 'राम मानव हैं या राम ब्रह्म हैं?' इन प्रसङ्गोंपर विशेष न लिखकर एकाध प्रसङ्गपर यहाँ विवेचन किया जाता है। पहला प्रसङ्ग उस अवसरसे सम्बन्ध रखता है, जब राम और लक्ष्मण वनमें सीताजीको ढूँढ़ रहे थे। सोनेके मृगको मारकर जब रामजी लक्ष्मणसहित अपने आश्रमको लौटे, तब सीताजीको वहाँ न देखकर वे व्याकुल हो गये और उनकी आँखोंमें जल छा गया। तुलसीदासजी अपनी रामायणमें लिखते हैं—

मृग बधि बंधु सहित हरि आए। आश्रमु देखि नयन जल छाए॥
बिरह बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई॥
(मानस १। ४८। ३-४)

ऐसी दशा जब रामकी हो रही थी, ठीक उसी समय शंकरजी अपनी अर्द्धाङ्गिनी सतीसहित जा रहे थे। शंकरजीने रामजीको देखकर मन-ही-मन उनको प्रणाम किया और कुअवसर देखकर अपनेको प्रकट नहीं किया और उनका नाम स्मरण करते-करते आगे बढ़ गये। सतीको यह देखकर मनमें संशय हो गया कि ये जगद्वन्द्य शंकर क्यों एक मनुष्यको सच्चिदानन्द परमात्मा कहकर प्रणाम करते हैं—

संकरु जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा॥
तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा॥
ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥
(वहीं, १। ४९। ३-४; १। ५०)

सतीके मनमें यह आशङ्का हो गयी कि 'जो ब्रह्म माया रहित अजन्मा है और जिसके भेदको कोई जान नहीं सकता, वह क्यों शरीर धारणकर ऐसा मनुष्यवत् व्यवहार करेगा।' इसी अपनी शङ्काकी निवृत्तिके लिये सतीने अपने पति शिवजीसे निवेदन किया और शिवजीने भी उन्हें बहुत तरहसे समझाया, लेकिन उनका कोई उपदेश सतीजीको पसंद नहीं आया। तब विवश होकर शिवजीने उनसे कहा कि 'जाकर तुम परीक्षा ले लो कि राम कौन हैं'—

जौं तुम्हरें मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू॥
... ...
जैसें जाइ मोह भ्रम भारी। करेहु सो जतन बिबेक बिचारी॥
पुनि पुनि हृदयँ बिचारु करि धरि सीता कर रूप।
आगें होइ चलि पंथ तेहिं जेहिं आवत नरभूप॥
(वही, १। ५१। १-२; १। ५२)

सतीने रामजीकी परीक्षाके लिये स्वयं सीताजीका वेष बना लिया और जिधरसे रामजी आ रहे थे, उधर ही चलीं; लेकिन रामजीकी महिमा और प्रभाव जानते हुए लक्ष्मणजीने क्या कहा—

लछिमन दीख उमाकृत बेषा। चकित भए भ्रम हृदयँ बिसेषा॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु प्रभाउ जानत मतिधीरा॥
सती कपटु जानेउ सुरस्वामी। सबदरसी सब अंतरजामी॥
सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना। सोइ सर्बग्य रामु भगवाना॥
(वही, १। ५२। १-२)

रामजी तो अन्तर्यामी ठहरे; सतीका कपट जान गये और उन्होंने हाथ जोड़कर सतीको प्रणाम किया और अपने पितासहित अपना पूरा परिचय दिया और शंकरजीके विषयमें भी कुशल पूछी—

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥
(१। ५३। ८)

रामजीसे इतना सुनते ही अब तो सतीजीका मान ठौर ठिकाने लग गया। अब तो उन्हें भविष्यकी चिन्ता लग गयी कि अब शिवजीको वे क्या बतलायेंगी—

जाना राम सतीं दुखु पावा। निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा॥
सतीं दीख कौतुकु मग जाता। आगें रामु सहित श्री भ्राता॥

फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर बेषा॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना॥
देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका॥
बंदत चरन करत प्रभु सेवा। बिबिध बेष देखे सब देवा॥
(वही, १। ५३। २-४)

रामजीने सतीकी चिन्ता देखकर अपना कौतुक बता दिया कि वे मनुष्य नहीं, वे तो स्वयं ब्रह्म हैं। और इसके आगे जो-जो बातें हुई, वे सर्वविदित ही हैं।

सतीके ऐसे कपट आचरणसे शिवजीको बहुत ग्लानि हुई और उन्होंने सतीका त्याग कर दिया। सती अपने पिता दक्षके यज्ञमें जाकर जल मरीं, बड़ा हाहाकार मचा और उसके बाद उन्हीं सतीका पर्वतराज हिमालयके यहाँ पुनर्जन्म हुआ और वहाँ उनका 'पार्वती' नाम पड़ा। पार्वतीने घोर तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर देवताओंने पुनः पार्वतीका विवाह शिवजीसे करानेकी व्यवस्था की। तब शिवजीने अपने आराध्य रामकी आज्ञासे पार्वतीको अपनी अर्धाङ्गिनीरूपमें स्वीकार किया। यह तो एक प्रसङ्ग हुआ, जिसमें शिवजी और सतीके आचरणसे सिद्ध हुआ कि राम मनुष्य नहीं साक्षात् अवतार थे।

अब एक दूसरा प्रसङ्ग वाल्मीकिमुनिका है, जो रामके सम-सामयिक थे और जिन्होंने अपनी रचनाओंमें एक रचना रामायणकी भी की थी, जो आज 'वाल्मीकि-रामायण'के नामसे प्रसिद्ध है। रामका जब वनवास हुआ और अपने वनवास-के क्रममें जब वे वाल्मीकिमुनिके आश्रममें पहुँचे, तब परस्पर स्वागत-सत्कारके बाद जो वार्तालाप रामजीके और वाल्मीकि-मुनिके बीच हुआ था, वह भी बड़ा रोचक और मननीय है, जो यह प्रमाणित करता है कि 'राम मनुष्य नहीं, ब्रह्म थे।'

रामने वाल्मीकिमुनिसे पूछा—

अस जियँ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ॥
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बासु करौं कछु काल कृपाला॥
(वही, २। १२५। ३)

रामने वनमें निवासके लिये स्थानका पता पूछा, जिसपर वाल्मीकिमुनिका उत्तर सुनिये—

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा॥
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन॥
पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ॥
(२। १२६। १-२; २। १२७)

"तुम मुझसे पूछते हो कि 'कहाँ रहूँ?' तो मैं कहनेमें सकुचाता हूँ कि तुम कहाँ नहीं हो, जहाँ मैं तुम्हें रहनेके लिये कहूँ?"

सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता॥
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी॥
तिन्ह कें हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक॥
प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा॥
तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं॥
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी॥
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा॥

× × ×

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया॥
सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥
तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव बिष तें बिष भारी॥
जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी॥
जिन्हहि राम तुम्ह प्रान पिआरे। तिन्ह कें मन सुभ सदन तुम्हारे।
....

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना।
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि कें उर डेरा॥
....

एहि बिधि मुनिबर भवन देखाए। बचन सप्रेम राम मन भाए॥
(वही, २। १२७। २-४; १२८। १-२; १२९। १-४; १३०। ४; १३१। १;)

रामजीके प्रश्न और वाल्मीकिमुनिके उत्तरसे यह स्पष्ट है 'राम परमात्मा और सर्वव्यापक थे।' यद्यपि वे 'नर तनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥' (२। १२६। ३) अर्थात् देवताओं और संतोंके कार्यके निमित्त रामने अवतार लिया था और राजाओं-जैसा व्यवहार वे कर रहे थे; लेकिन उनके समसामयिक वाल्मीकिमुनिने उन्हें अवतार ही माना था।

अब तीसरा प्रसङ्ग काकभुशुण्डि और गरुडका है। जब गरुडको प्रबल मायाने मोह लिया, तब वे काकभुशुण्डिके पास गये और उनसे काकभुशुण्डिने आदिसे अन्ततक रामकथा

कही। काकभुशुण्डि रामके जन्मके समय शिवजीके साथ उनका चेला बनकर ज्योतिषी और चेलेके रूपमें रामजीके सूतिकागृहमें गये थे और बादमें काकरूप होकर रामके आँगनमें उनके साथ उन्होंने अनेक खेल खेले थे—

लघु बायस बपु धरि हरि संगा। देखउँ बालचरित बहुरंगा॥
लरिकाईं जहँ जहँ फिरहिं तहँ तहँ संग उड़ाउँ।
जूठनि परइ अजिर महँ सो उठाइ करि खाउँ॥
कहइ भसुंड सुनहु खगनायक। रामचरित सेवक सुखदायक॥
. . . .
बरनि न जाइ रुचिर अँगनाई। जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई॥
. . . .
मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग अंग प्रति छबि बहु कामा॥
नव राजीव अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख ससि दुति हरना॥
× × ×
मोहि सन करहिं बिबिधि बिधि क्रीड़ा। बरनत मोहि होति अति ब्रीड़ा॥
किलकत मोहि धरन जब धावहिं। चलउँ भागि तब पूप देखावहिं॥
(वही, ७। ७४। ४; ७। ७५ (क); ७। ७५। १–३; ७। ७६। ४)

रामके इतना निकट रहते हुए, रामके हाथसे पूआ खाते हुए और रामका बालचरित देखते हुए काकभुशुण्डिका कहना है कि—

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥
(वही, ७। ७२ क)

भक्तोंके निमित्त ही रामने मनुष्यका शरीर धारण किया और तदनुसार उन्होंने अनेक पवित्र चरित्र किये और वे सब चरित्र इतने मर्यादित थे कि बहुतेरे लोग रामको अवतारके अतिरिक्त 'मर्यादापुरुषोत्तम राम' भी कहते थे और कहते हैं; लेकिन संत तुलसीदासने अपनी रचना रामायणमें रामको साक्षात् अवतार ही माना है और उनके अद्भुत चरित्रोंको देखते हुए रामको अवतार मानना ही यथार्थ है। रामकी कथा काकभुशुण्डिसे सुनकर गरुडने कहा—

सुनि सब राम कथा खगनाहा। कहत बचन मन परम उछाहा॥
(वही, ७। ६७। ४)

उनका सारा मोह दूर हो गया और मनमें परम आनन्द छा गया, जो केवल भगवच्चरित्र सुननेसे ही हो सकता है, किसी मनुष्यके चरित्र सुननेसे नहीं हो सकता—

भवसागर चह पार जो पावा। रामकथा ता कहँ दृढ़ नावा॥
. . . .
श्रवनवंत अस को जग माहीं। जाहि न रघुपति चरित सोहाहीं॥
ते जड़ जीव निजात्मक घाती। जिन्हहि न रघुपति कथा सोहाती॥
(वही, ७। ५२। २–३)

जिन्हें इस असार संसारके आवागमनके चक्रसे मुक्ति पाना है, उनके लिये यह रामचरित एक दृढ़ नाव है और रामचरित सुनकर जो अपना जीवन तदनुसार नहीं बनाते, वे अपना स्वयं हनन अर्थात् आत्मघात करते हैं। जैसे समुद्रका थाह पाना कठिन है; वैसे ही रामके चरित्रका भी पार पाना कठिन है—

चरित सिंधु रघुनायक थाह कि पावइ कोइ॥
सुमिरि राम के गुन गन नाना। पुनि पुनि हरष भुसुंडि सुजाना॥
महिमा निगम नेति करि गाई। अतुलित बल प्रताप प्रभुताई॥
(वही, ७। १२३ ख; ७। १२३। १)

काकभुशुण्डिने अन्तमें कहा कि "रामकी प्रभुता और बल अतुलित है और इनकी महिमाको 'नेति-नेति' कहकर वेद और शास्त्रोंने बतलाया है। ऐसे रामके गुण और स्वभावकी तुलना किसी मनुष्य-विशेषके गुण और स्वभावसे कैसे की जा सकती है?" काकभुशुण्डि पुनः कहते हैं—

अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ॥
साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी। कबि कोबिद कृतग्य संन्यासी॥
जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पंडित बिग्यानी॥
तरहिं न बिनु सेएँ मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी॥
(वही, ७। १२३। २—४)

चाहे कोई किसी पदपर क्यों न आसीन हो; चाहे वह संन्यासी हो; योगीश्वर हो; तपस्वी और ज्ञानी हो या कोई भी क्यों न हो—वह इस भवसागरके चक्करसे मुक्त नहीं हो सकता; जबतक वह रामकी शरणमें न जाय। रामका यह स्वभाव है कि शुद्ध मनसे, सब कपट-जंजालोंको छोड़कर जो उनकी शरणमें जाता है; वे उस शरणागत व्यक्तिको तुरंत अपना लेते हैं।

रामका यही स्वरूप है और यही स्वभाव है कि जो उनकी शरणमें जाता है; उसको वे अपनाकर अपना बना लेते हैं, चाहे वह कैसा ही व्यक्ति क्यों न हो। गीतामें भी भगवान् कृष्णने यही बात कही है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
(९। ३०)

'यदि कोई अतिशय दुराचारी पुरुष भी भगवान्‌की उपासना करता है तो भगवान् उसे अपनाकर साधु-पुरुष बना देते हैं—इसमें कोई संदेह नहीं।' अतः अनन्यभावसे भगवान्‌की शरणमें जाना चाहिये और इसीमें मनुष्यका कल्याण है।

भगवान् श्रीरामका भ्रातृ-प्रेम

(लेखक—श्रीश्याममनोहरजी व्यास, एम्० एस्-सी०, बी० एड्०)

भगवान् राम कोटि-कोटि हिंदू जनताके प्राण हैं। भगवान् रामका आदर्श प्रत्येक भारतीयके लिये अनुकरणीय है।

मानवीय अनुरागात्मक सम्बन्धोंमें राम और लक्ष्मणका भ्रातृ-सम्बन्ध अद्वितीय है। वाल्मीकि-रामायणमें इसके प्रमाण यथेष्ट हैं। भगवान् राम प्रेमागार हैं। माता सीताके प्रति रामके अगाध प्रेमके बड़े भावपूर्ण प्रसङ्ग रामायणमें अनेक स्थलोंपर देखनेको मिलते हैं। किंतु इस अपरिमित दाम्पत्य-प्रेमसे भी कहीं बढ़कर उनका प्रेम लक्ष्मणके प्रति था। वाल्मीकि-रामायणमें ऐसे कई प्रसङ्ग आते हैं, जहाँ राम स्पष्ट शब्दोंमें घोषित करते हैं कि उन्हें लक्ष्मण सीतासे भी अधिक प्रिय हैं। करुणा और काव्य-सौष्ठवमें ये प्रसङ्ग बेजोड़ हैं। युद्धकाण्डका प्रसङ्ग है। मेघनादके बाणसे राम और लक्ष्मण दोनों मूर्च्छित थे। संयोगसे रामकी मूर्च्छा लक्ष्मणसे पहले जगी! अपने पास ही अचेतनावस्थामें सोये लक्ष्मणको देखकर भगवान् रामने कहा—

किं नु मे सीतया कार्यं लब्धया जीवितेन वा।
शयानं योऽद्य पश्यामि भ्रातरं युधि निर्जितम्॥
शक्या सीतासमा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता।
न लक्ष्मणसमो भ्राता सचिवः साम्परायिकः॥
परित्यक्ष्याम्यहं प्राणान् वानराणां तु पश्यताम्।
यदि पञ्चत्वमापन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः॥

(वा० रा० ६। ४९। ५–७)

'चाहे मैं सीताको फिरसे पा जाऊँ, किंतु यह मेरे लिये कहाँतक उचित है कि मेरा भाई मुझसे बिछुड़ जाय और मैं जीता रहूँ? सीताके समान पत्नी धरतीपर खोजनेपर प्राप्त हो सकती है, किंतु लक्ष्मण-जैसा सहायक एवं युद्धकुशल भाई मिलना अत्यन्त दुष्कर है। यदि लक्ष्मण सचमुचमें स्वर्गधामको चला गया है तो इन वानरोंकी साक्षीमें मैं भी अपने प्राणोंका अन्त कर डालूँगा।'

इसी प्रकार दूसरी बार भी जब रावणके सांघातिक शक्ति-प्रहारसे लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये, तब रामका हृदय इस आघातको सहन नहीं कर सका। शोकाकुल होकर वे कहने लगे—

यथैव मां वनं यान्तमनुयातो महाद्युतिः।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्॥

(वा० रा० ६। ४९। १७)

'जिस प्रकार वन-वनके संकटों और विपत्तियोंमें लक्ष्मणने मेरा अनुसरण किया, उसी प्रकार मैं भी लक्ष्मणके पीछे-पीछे उसका अनुसरण करता हुआ यमलोकको जाऊँगा।'

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः॥

(वा० रा० ६। १०१। १५)

'देश-देशान्तरमें पत्नियाँ भी आसानीसे मिल सकती हैं, स्वजन-बान्धव भी सर्वत्र उपलब्ध हो सकते हैं; किंतु मुझे पृथ्वीपर कहीं ऐसा स्थल दिखलायी नहीं पड़ता, जहाँ लक्ष्मण-जैसा भाई प्राप्त हो सके।'

सुन्दरकाण्डमें एक ऐसा प्रसङ्ग है, जहाँ सीता स्वयं अति सरस शब्दावलीमें लक्ष्मणका चरित्र-चित्रण करती हुई हनुमान्‌जीसे कहती हैं—

मत्तः प्रियतरो नित्यं भ्राता रामस्य लक्ष्मणः।

(वा० रा० ५। ३८। ६०)

'हनुमान्! तुम नहीं जानते। मेरे पतिको लक्ष्मण मुझसे अधिक प्रिय हैं।'

अपनी सहज चेतनामें नारीके लिये ऐसी अनुभूति स्वाभाविक है।

लक्ष्मणका स्वभाव भी आदर्श है। उनमें भी भ्रातृ-प्रेमकी भावना कूट-कूटकर भरी हुई है।

एक स्थानपर वे कहते हैं—

'मेरे लिये राममें ही सब समाहित है। वे मेरे सर्वस्व हैं। रामके पूर्व और रामके पश्चात् मैं कुछ नहीं देखता। उनकी स्वीकृति मेरे लिये सब कुछ है—वही मेरा लक्ष्य है, उनकी प्रसन्नता ही मेरा साध्य है।'

आदिकवि वाल्मीकिके अनुसार रामके हृदयमें हिल्लोलित लौकिक अनुराग एवं वैयक्तिक आसक्तियाँ उस महती इच्छामें डूबकर खो जाती हैं, जिसकी पूर्तिमें भगवान् रामने अपना सम्पूर्ण पुरुषार्थ—समस्त जीवन खपा दिया।

वह महत्त्वाकाङ्क्षा थी—सत्का संवर्धन, उच्च प्रतिष्ठाका अर्जन और धर्मका संरक्षण। भगवान् राम सदैव सत्यके उपासक रहे, श्रेयकी ओर ही अग्रसर हुए। भरतके प्रति भी उनका अगाध प्रेम था।

कैकेयीके कथनपर उन्होंने भरतके लिये युवराजपद त्याग दिया और चौदह वर्षका वनवास ग्रहण किया।

वन-प्रस्थानके अन्तिम समयमें रामने सुमन्त्रको संदेश देते हुए कहा था—

'मेरी कामना है कि मेरी माता सदैव धर्मका पालन करे और मेरे पिताजीके प्रति श्रद्धाभाव रखे। कैकेयीके प्रति भी उसका व्यवहार हितकर हो और युवराज भरतके प्रति भी वह अपने कर्त्तव्यको कभी न भूले।'

भगवान् रामका अपार प्रेम निरपेक्ष कर्त्तव्यकी प्रेरणा देता है।

भगवान् राममें मानवीय गुण कूट-कूटकर भरे हुए थे। वे सात्त्विक गुणोंके आगार थे। उनका भ्रातृ-प्रेम वास्तवमें अनुकरणीय है।

भगवान् श्रीरामका वानरोंके साथ सख्य-भाव

(लेखक—पं० श्रीजगदीशजी शुक्ल, साहित्यालंकार, काव्यतीर्थ)

भगवान् श्रीराम और सुग्रीवकी मैत्री तो मैत्रीके आकाशमें सबसे ऊँची उड़ान है। महाकवि भारविने बहुत सोच-विचारकर यह लिखा होगा कि हाथियोंके मित्र सियार नहीं होते—

भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिनः।

इस नीतिवाक्यका अर्थ केवल इतना ही है कि बड़ों और छोटोंकी मैत्री नहीं होती—मैत्री बराबरीके लोगोंकी ही होती है। किंतु भारविकी उस उक्तिसे भी सौगुनी सच्ची उक्ति यह है कि मनुष्योंके मित्र बंदर नहीं हुआ करते—

भवन्ति वै कीशसखा न मानवाः।

हाथी और सियार कम-से-कम सजातीय तो हैं—चार पैरोंवाले जानवर तो हैं; किंतु यहाँ तो एक नर है तो दूसरा वानर। एक मानव है तो दूसरा पशु। विनय-पत्रिकाकी एक पंक्तिने वानरका कितना अच्छा परिचय दिया है—

कौन सुभग सुसील बानर जिनहिं सुमिरत हानि।
(विनय० २१५। ६)

विनयमूर्ति श्रीहनुमान्‌ने भी अपनी जातिकी अच्छी विशेषता बतलायी है—

प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥
(रामचरितमानस ५। ६। ३)

नर और वानरकी संगतिपर सीता माताको भी बड़ा आश्चर्य हुआ था। तभी तो उन्होंने हनुमान्‌जीसे पूछा था—

नर बानरहि संग कहु कैसें। (रामचरितमानस ५।१३।५½)

सच मानिये, नर-वानरोंकी यह मित्रता—राम और सुग्रीवका यह सख्य-भाव, रामावतारकी एक बहुत बड़ी विशेषता है। रामके व्यक्तित्वमें—रामकी महामानवतामें वह चमत्कार था, जिसने बंदरोंके ऊपर भी अपना प्रभाव डाल दिया और उनके आचार-विचारको भी अत्यन्त ऊँचा, अत्यन्त विशुद्ध और ज्योतिर्मय बना दिया। किसीने सच कहा है—'जादू वह, जो सिरपर चढ़कर बोले।'

जिस दुनियामें 'आदमीको भी मयस्सर नहीं है इन्सां होना', उस दुनियामें पशुको भी मानव-धर्ममें दीक्षित करके मानव ही नहीं, महामानव बना देना कोई हँसी-खेल नहीं है—यह तो अनहोनी बात है—नहीं चलनेवाली गाड़ी है। फिर भी महावीर हनुमान्‌को देवत्वसे भी ऊँचे ईश्वरत्वके सिंहासनपर बैठाकर और सुग्रीवको अपना महामन्त्री बनाकर महामानव रामने उकठे काठमें भी फल लगा दिये और असम्भवको भी सम्भव बनाकर चमका दिया।

हनुमान्‌जीको जब सीता-हरणकी बात ज्ञात हुई, तब उन्होंने वानरोंके द्वारा सीताजीका पता लगानेके लिये रामजीकी सुग्रीवके साथ मैत्री करा दी। इस मैत्रीका उद्देश्य रामजीके द्वारा वालीका वध कराकर सुग्रीवको अकण्टक करनेका भी था।

हनुमान्‌ने राम और सुग्रीवके समीप आग धधकायी और अग्निको साक्षी बनाकर राम और सुग्रीव—दोनों ही शुद्ध हृदयसे भुजा फैलाकर आपसमें एक-दूसरेसे मिले। इसके बाद सुग्रीव रामके पास बैठ गये। इस प्रकार दोनोंका सख्य-सम्बन्ध सम्पन्न हुआ—

ततो हनूमान् प्रज्वाल्य तयोरग्निं समीपतः।
तावुभौ रामसुग्रीवावग्नौ साक्षिणि तिष्ठति॥

बाहू प्रसार्य चालिङ्गय परस्परमकल्मषौ ।
समीपे रघुनाथस्य सुग्रीवः समुपाविशत् ॥
(अ० रा०, कि० १ । ४४-४५)

गोस्वामी तुलसीदासजी भी यही कहते हैं—

तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ ॥
(श्रीरामच० ४ । ४)

मैत्री हो जानेके बाद लक्ष्मणजीने सारी राम-कथा और सीता-हरणकी बात कही । सुग्रीवने सीताजीका पता लगानेका पूरा आश्वासन दिया और सुग्रीवको अकण्टक करनेके लिये रामजीने भी वालिवधकी प्रतिज्ञा की—

प्रत्यभाषत काकुत्स्थः सुग्रीवं प्रहसन्निव ।
उपकारफलं मित्रं विदितं मे महाकपे ॥
वालिनं तं वधिष्यामि तव भार्यापहारिणम् ।
अमोघाः सूर्यसंकाशा ममेमे निशिताः शराः ॥
(वा० रा०, कि० ५ । २५-२६)

रामजीके उस वचनसे सुग्रीव संतुष्ट हुआ और प्रसन्न होकर बोला—'मित्र ! सर्वगुणसम्पन्न आप जब मेरे सखा हो गये, तब अवश्य ही मैं देवताओंका कृपापात्र हूँ ।...बन्धुओं और मित्रोंका मैं पूज्य हो गया हूँ; क्योंकि आप रघुवंशी राजकुमारने अग्निको साक्षी देकर मुझसे मैत्री की है'—

सर्वथाहमनुग्राह्यो देवतानां न संशयः ।
उपपन्नो गुणोपेतः सखा यस्य भवान्मम ॥
सोऽहं सभाज्यो बन्धूनां सुहृदां चैव राघव ।
यस्याग्निसाक्षिकं मित्रं लब्धं राघववंशजम् ॥
(वा० रा०, कि० ८ । २, ४)

श्रीरामचन्द्रजी फिर बोले—

सखा सोच त्यागहु बल मोरें । सब बिधि घटब काज मैं तोरें ॥
....
जो कछु कहेहु सत्य सब सोई । सखा बचन मम मृषा न होई ॥
(मानस ४ । ६ । ५, १२)

श्रीरामचन्द्रजीने यह भी कहा—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना । मित्रक दुख रज मेरु समाना ॥
(रामचरितमानस ४ । ६ । १)

फिर क्या था—

तिय-बिरही सुग्रीव सखा लखि प्रानप्रिया बिसराई ।
(विनय० १६४ । ३)

मित्र सुग्रीवको सुखी बनानेके लिये श्रीरामचन्द्रजीने एक ही बाणसे वालीको मार डाला और उसका अपने कर-कमलसे स्पर्श भी किया । वाली अपना वानर-शरीर त्यागकर उस परमपदको पहुँच गया, जो परमहंसोंके लिये भी दुर्लभ है—

वाली रघूत्तमशराभिहतो विमृष्टो
रामेण शीतलकरेण सुखाकरेण ।
सद्यो विमुच्य कपिदेहमनन्यलभ्यं
प्राप्तः परं परमहंसगणैर्दुरापम् ॥
(अ० रा०, कि० २ । ७१)

वालीको मारकर परमगति देकर श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवको वानरोंका राजा बनाया । इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीने अपनी मैत्रीका फल सुग्रीवको तत्काल ही दे दिया । सच है—

कबहुँ न कोउ रघुबीर-सो नेह निबाहनिहार ॥
(विनय० १९० । ४)

गोस्वामी तुलसीदासजी सावधान करते हुए कहते हैं—

बेद कह्यो, बुध कहत हैं, अरु हौंहुँ कहत हौं टेरि ।
तुलसी प्रभु साँचो हितू, तू हिय की आँखिन हेरि ॥
(विनय० १९० । ७)

और—

जानत प्रीति-रीति रघुराई ।
नाते सब हाते करि राखत, राम सनेह-सगाई ॥
(विनय० १६४ । १)

सुग्रीव वानरोंका राजा बन तो गया, किंतु इतना विषयासक्त बन गया कि राजा बनानेवाले श्रीरामचन्द्रजीका काम ही भूल गया । जब हनुमान्‌जीने उसे सावधान किया, तब सीताजीकी तलाशमें उसने वानरोंको भेजवाया—

इहाँ पवनसुत हृदयँ बिचारा । राम काजु सुग्रीवँ बिसारा ॥
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा । चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा ॥
सुनि सुग्रीवँ परम भय माना । बिषयँ मोर हरि लीन्हेउ ग्याना ॥
अब मारुत सुत दूत समूहा । पठवहु जहँ तहँ बानर जूहा ॥
कहहु पाख महुँ आव न जोई । मोरें कर ता कर बध होई ॥
तब हनुमंत बोलाए दूता । सब कर करि सनमान बहूता ॥
भय अरु प्रीति नीति देखराई । चले सकल चरनन्हि सिर नाई ॥
(रामचरितमानस ४ । १८ । १-३½)

इधर श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे लक्ष्मणजीने सुग्रीवकी राजधानी किष्किन्धामें जाकर जब क्रोध प्रकट किया, तब

भयभीत और लज्जित सुग्रीवने लक्ष्मणजीसे अपने अपराधके लिये क्षमा माँगी और लक्ष्मणजीके साथ ही वह हनुमान्‌जी और अङ्गदादि वानरोंको लिये हुए श्रीरामचन्द्रजीके पास गया और श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें माथा टेककर बोला—

अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटइ राम करहु जौं दाया॥
बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पावँर पसु कपि अति कामी॥
(रामचरितमानस ४। २०। १-२)

अब दल-के-दल बंदर आने लगे और श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनसे कृतार्थ होने लगे। ऐसा कोई एक भी बंदर नहीं था, जिससे रामचन्द्रजीने कुशल-प्रश्न नहीं किया हो। समुद्रकी तरह लहराती हुई वानरोंकी अपार भीड़को देखकर वानरराज सुग्रीव बोला—

राम काजु अरु मोर निहोरा। बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा॥
जनकसुता कहुँ खोजहु जाई। मास दिवस महँ आएहु भाई॥
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ। आवइ बनिहि सो मोहि मराएँ॥
(वही, ४। २१। ३-४)

वानरराज सुग्रीवकी आज्ञा पाते ही झुंड-के-झुंड बंदर स्थानानुसार चल पड़े। तब सुग्रीवने अङ्गद, नल और हनुमान् आदि प्रमुख बंदरोंको तथा जाम्बवान् आदि भालुओंको बुलाया और उनसे कहा—

सुनहु नील अंगद हनुमाना। जामवंत मतिधीर सुजाना॥
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता सुधि पूँछेहु सब काहू॥
मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु। रामचंद्र कर काजु सँवारेहु॥
. . . .

देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥
सोइ गुनग्य सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी॥
(रामचरितमानस ४। २२। १-१½, ३-३½)

× × ×

'जो आज्ञा' कहकर और श्रीरामचन्द्रजीको प्रणामकर सभी वानर चल पड़े। अन्तमें श्रीहनुमान्‌जीने आकर प्रणाम किया, तब प्रभुने उन्हें पास बुलाकर अपनी अँगूठी दी और कहा—

बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु॥
(रामचरितमानस ४। २३। ६)

हनुमान्‌जी समुद्र लाँघकर लङ्कामें गये। वहाँ सीता मातासे मिलकर उनका समाचार और संवाद लेकर श्रीरामचन्द्रजीके पास आये। मन्त्री, वानरों और भालुओंसे सलाह लेकर श्रीरामचन्द्रजी लङ्काके लिये चल पड़े। नल और नील नामक दो बंदरोंने समुद्रपर पुल बाँधा और सारी सेना लङ्कामें पहुँच गयी। वहाँ वानरों और राक्षसोंके बीच लोमहर्षक संग्राम हुआ और सदल-बल रावण मारा गया। इस प्रकार बंदरोंने अपने-अपने प्राण देकर श्रीरामचन्द्रजीके साथ सख्य-सम्बन्धका निर्वाह किया। रावण-वधके बाद श्रीरामचन्द्रजी बंदरों और भालुओंसे कहते हैं—

तुम्हरें बल मैं रावनु मारयो। तिलक बिभीषन कहँ पुनि सारयो॥
(रामचरितमानस ६। ११७। २)

बेचारे बंदर लज्जित होकर कहते हैं—

सुनि प्रभु बचन लाज हम मरहीं। मसक कहूँ खगपति हित करहीं॥
(रामचरितमानस ६। ११७। ५)

लङ्कासे अयोध्या वापस होनेपर श्रीरामचन्द्रजी गुरु वसिष्ठजीसे मित्र बंदरोंका परिचय देते हुए कहते हैं—

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥
मम हित लागि जनम इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे॥
(रामचरितमानस ७। ७। ४)

राम-माता कौसल्या इन राम-सखा वानरोंको रामके ही समान प्रिय समझती हैं—

कौसल्या के चरनन्हि पुनि तिन्ह नायउ माथ।
आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ॥
(रामचरितमानस ७। ८ (क))

अयोध्याजीमें श्रीरामचन्द्रजीने अपने वानर-मित्रोंको पहले नहलवाया, इसके बाद स्वयं स्नान किया। यह है मित्रका सम्मान—

राम कहा सेवकन्ह बुलाई। प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई॥
सुनत बचन जहँ तहँ जन धाए। सुग्रीवादि तुरत अन्हवाए॥
(रामचरितमानस ७। १०। १-२)

अयोध्यासे जब वानर-भालुओंकी विदाई होने लगी, तब उन्हें किस सम्मानके साथ भूषण और वसन पहनाये गये, यह सुनिये—

तब प्रभु भूषन बसन मगाए। नाना रंग अनूप सुहाए॥
सुग्रीवहि प्रथमहिं पहिराए। बसन भरत निज हाथ बनाए॥
प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराए। लंकापति रघुपति मन भाए॥
अंगद बैठ रहा नहिं डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला॥

जामवत नीलादि सब पहिराए रघुनाथ।
हिय धरि राम रूप सब चले नाइ पद माथ॥
(रामचरितमानस ७ । १६ । २–४; ७ । १७ क)

अयोध्यासे विदाईके समय जब अङ्गद अधिक प्रेम-विह्वल हो गये, तब श्रीरामचन्द्रजीकी आँखोंमें आँसू छलछला आये और उन्होंने अङ्गदको उठाकर छातीसे लगा लिया और स्वयं अपने हाथोंसे अपने गलेका बहुमूल्य हार और कपड़े उन्हें पहनाये—

अंगद बचन बिनीत सुनि रघुपति करुना सींव।
प्रभु उठाइ उर लायउ सजल नयन राजीव॥
निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ।
बिदा कीन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ॥
(रामचरितमानस ७ । १८ क, ख)

इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने अपने भरतादि भाइयोंके साथ बंदरोंको प्रेमवश कुछ दूरतक पहुँचाया।

भरत अनुज सौमित्रि समेता। पठवन चले भगत कृत चेता॥
× × ×
अति आदर सब कपि पहुँचाए। भाइन्ह सहित भरत पुनि आए॥
(रामचरितमानस ७ । १८ । ½, ३)

इस प्रकार भगवान् रामचन्द्रजीने बंदरोंके साथ सख्य-सम्बन्धका खूब ही निर्वाह किया। केवटको मित्र कहनेमें और वानर-मित्रोंकी प्रशंसा करनेमें भगवान्को बहुत ही सुख मिलता था—

केवट मीत कहे सुख मानत बानर-बंधु बड़ाई।
(विनय-पत्रिका १६४ । ५)

सचमुच, गौओंके बीचसे भगवान् श्रीकृष्णको और बंदरोंके बीचसे भगवान् रामचन्द्रको हटा दिया जाय तो ये दोनों अवतार बहुत बड़ी विशेषतासे हीन हो जायँ। गौओंके बीचमें श्रीकृष्णजीका और बंदरोंके बीचमें श्रीरामजीका विशेष महत्त्व है। पशुओंको भी मानव-धर्मकी दीक्षा दे देना, इन अवतारोंकी एक प्रमुख विशेषता है—

प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान॥
(रामचरितमानस १ । २९ क)

ऐसे भगवान्को छोड़कर जो भोगमें डूबे रहते हैं, वे कितने बड़े भाग्यहीन हैं—

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी॥
(रामचरितमानस ३ । ३२ । १½)

प्रीति-रीतिके एकमात्र ज्ञाता श्रीराम

जानत प्रीति-रीति रघुराई।
नाते सब हाते करि राखत राम सनेह-सगाई॥ १॥
नेह निबाहि देह तजि दसरथ कीरति अचल चलाई।
ऐसेहु पितु तें अधिक गीध पर ममता गुन गरुआई॥ २॥
तिय-बिरही सुग्रीव सखा लखि प्रानप्रिया बिसराई।
रन पर्‌यो बंधु बिभीषन ही को सोच हृदय अधिकाई॥ ३॥
घर गुरुगृह प्रिय सदन सासुरे, भइ जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहि सबरी के फलनि की रुचि माधुरी न पाई॥ ४॥
सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुच सिर नाई।
केवट मीत कहे सुख मानत, बानर-बंधु बड़ाई॥ ५॥
प्रेम कनोड़ो राम सो प्रभु त्रिभुवन तिहुँ काल न भाई।
तेरो रिनी हौं कह्यो कपि सों, ऐसी मानिहि को सेवकाई॥ ६॥
तुलसी राम-सनेह-सील लखि, जो न भगति उर आई।
तौ तोहि जनमि जाय जननी जड़ तनु-तरुनता गवाँई॥ ७॥
(विनयपत्रिका १६४)

विरागी श्रीराम

(लेखक—श्रीयमुनाप्रसादजी श्रीवास्तव)

भगवान् लीलामय हैं। श्रीरामावतारमें भगवान्ने एक बार वैराग्यकी अत्यन्त उपदेशप्रद लीला की, उसीके आधारपर 'योगवासिष्ठ' ग्रन्थकी रचना हुई है। उसी वैराग्यलीलाके सम्बन्धमें यहाँ कुछ लिखा जाता है।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी विद्याभ्यास करनेके लिये गुरुजीके पास गये—

गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥

(मानस १ । २०३ । २)

—और वहाँसे विद्यानिधान होकर घर आये। इसके पश्चात् अपने पिता महाराज दशरथजीसे आज्ञा लेकर भाइयों तथा पुरजनोंसमेत तीर्थयात्राको सिधारे और गङ्गा, यमुना, सरस्वती आदि पावन तीर्थोंमें स्नान-दान, पुण्य, जप-तप-ध्यान इत्यादि तथा चारों धामोंकी परिक्रमा करते हुए घर लौटे। उस समय इनकी अवस्था लगभग सोलह वर्षकी थी। एक दिन इन्हें उदास देखकर महाराजा दशरथने कहा—'रामचन्द्र! अब तुम शिकार खेलने जाया करो।' उस दिनसे श्रीरामचन्द्रजी शिकार खेलने जाने लगे—

बंधु सखा सँग लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥
पावन मृग मारहिं जियँ जानी। दिन प्रति नृपहि देखावहिं आनी॥

(मानस १ । २०४ । १)

इस प्रकार कुछ कालतक जीवहिंसा करते-करते एक दिन वे स्वयं उपरामताके शिकार हो गये और वैराग्यरूपी बाणोंसे घायल होकर घर आये। आपने वस्त्र-आभूषण इत्यादि उतार दिये, अकेली एक कौपीन धारण कर ली और एकान्तमें पद्मासन लगाकर बैठ गये। न लेना एक, न देना दो; जहाँ बैठे, वहीं बैठे रहते। जब कोई सेवक या मन्त्री आकर याद दिलाता, तब स्नान-ध्यान, संध्या-पूजन इत्यादि करते। इनका शरीर भी दुर्बल हो चला था।

राजकुमारकी यह दशा देख, महाराज दशरथ अत्यन्त दुःखी हुए। गुरु वसिष्ठजीको बुलाकर उन्होंने कारण पूछा। भगवान्के लीला-महत्त्वको जाननेवाले गुरु वसिष्ठजीने उत्तर दिया—'राजन्! चिन्ता मत करो। किसी निमित्तको लेकर ही श्रीरामचन्द्रजी दुःखी हुए हैं। अन्तमें उन्हें सुख मिलेगा।'

इसी बीच द्वारपालोंने आकर निवेदन किया—'महाराज! विश्वामित्रजी पधारे हैं।' विश्वामित्रजीका आगमन सुन महाराज दशरथ वसिष्ठजीसहित द्वारपर आये। विश्वामित्र-जीको साष्टाङ्ग दण्डवत् किया, अपने सिंहासनपर लाकर बैठाया और भलीभाँति उनकी पूजा की—

चरन पखारि कीन्हि अति पूजा। मो सम आजु धन्य नहिं दूजा॥

(वहीं, १ । २०६ । १½)

फिर आगमनका कारण पूछा और कहा—

जो फरमाओ बजा लाऊँ अदब से। दिलो जानो जबानो चश्मो लब से॥

विश्वामित्रजीने कहा—'राजन्! राक्षसलोग बहुत सताते हैं, उनके मारे मैं यज्ञ भी पूर्ण नहीं कर पाता। कृपा कर राम और लक्ष्मणको दे दीजिये'—

अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा॥

(वहीं, १ । २०६ । ५)

राम और लक्ष्मणकी माँग सुनते ही दशरथजीका शरीर काँप उठा।

महाराज दशरथको सावधानकर विश्वामित्रजीने कहा—

देहु भूप मन हरषित तजहु मोह अग्यान।
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौ इन्ह कहँ अति कल्यान॥

(मानस १ । २०७)

यह सुन महाराज दशरथने धीरज धरकर कहा—'मुनीश्वर! बुढ़ापेमें तो ये लाल हमें मिले हैं! इन्हें कैसे देते बनेगा। आपने सोचकर बात नहीं कही'—

सब सुत प्रिय मोहि प्रान की नाईं। रामु देत नहिं बनइ गोसाईं॥

(वहीं, १ । २०७ । ३½)

वे तो बहुत सुकुमार हैं। फूलोंकी सेजपर सोते हैं, अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ वार्त्तालाप करते हैं; बालकोंके साथ खेलते हैं। अस्त्र-शस्त्रकी विद्याका भी उन्हें ज्ञान नहीं है। रणभूमिको तो कभी स्वप्न नहीं देखा। वे संग्राम करना क्या जानें!

कहँ निसिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुंदर सुत परम किसोरा॥

(वहीं, १ । २०७ । ३)

आजकल वे कुछ विरागमग्न भी हैं और बहुत दुर्बल हो गये हैं।

मागहु भूमि धेनु धनु कोसा। सर्बस देउँ आजु सहरोसा॥
(१।२०७।१½)

यह सुन, विश्वामित्रजीने कहा—'राजन्! श्रीरामचन्द्रजीको बुलवाओ। देखें तो कैसा रोग है।'

महाराज दशरथने मन्त्रियोंकी ओर इशारा किया और मन्त्रियोंने श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर कहा—'कुमार! चलिये, पिताजीने बुलाया है।'

श्रीरामचन्द्रजीने उत्तर नहीं दिया। विलम्ब होता देख, मन्त्रियोंने राजाज्ञा दुहरायी और कहा—'कुमार! चलिये, पिताजीने बुलाया है।'

निद्रासे सचेत हुए प्राणीके समान सजग होकर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'मतिमन्दो! कौन किसका पिता है! मेरे न पिता है, न माता है, न भाई हैं, न मित्र हैं, न राज्य है। यह सब मिथ्या जंजाल है, जिसमें पशुओंके समान जीव उलझे हैं।'

मन्त्रियोंने श्रीरामचन्द्रजीके वचनोंको यथावत् महाराज दशरथके पास पहुँचाया और निवेदन किया—''महाराज! श्रीरामचन्द्रजी तो बड़ी भारी चिन्तामें निमग्न हैं। किसीकी कुछ सुनते ही नहीं। फल-फूल, भोजन-वस्त्र इत्यादि लेकर जाओ तो कह उठते हैं—'क्यों लाये? किसने मँगाया था? ले जाओ! अब कभी मत लाना!' माताजी मणिजटित आभूषण इत्यादि देती हैं तो इधर-उधर रख देते हैं अथवा किसी दीन-दुःखीको दे देते हैं। अन्तःपुरकी स्त्रियोंसे तो बात भी नहीं करते, उन्हें तो वे विषवत् समझते हैं। जहाँ बैठते हैं, बैठे ही रह जाते हैं, उठनेका नामतक भी नहीं लेते। हमलोग जब याद दिलाते हैं, तब स्नान-ध्यान, संध्या-भोजन इत्यादि करते हैं। महाराज! उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अपने इस त्यागका भी उन्हें अभिमान नहीं है। जब कभी मौजमें आते हैं और गाते हैं अथवा कुछ बोलते हैं, तब कहते हैं—'न यह राज्य सत्य है, न यह जगत् सत्य है; न भाई सत्य हैं, न मित्र सत्य हैं। मुझे न राज्यकी इच्छा है और न इन्द्रियविलासकी'।''

यह वृत्तान्त सुन महाराज दशरथ व्याकुल हुए, परंतु विश्वामित्रजीने हर्षित हो कहा—'राजन्! आप धन्य हैं, जो श्रीरामचन्द्र-ऐसे पुत्र आपको मिले हैं। वे तो बड़े विवेकी और परमज्ञानी तथा जीवन्मुक्त हैं। हम अवश्य नक रोग दूर करेंगे।'

राजाने फिर मन्त्रियोंकी ओर संकेत किया और कहा—'मन्त्रियो! जाओ और श्रीरामचन्द्रजीसे कहो कि विश्वामित्रजी आये हैं, राजसभामें बैठे हैं और आपको बुलाते हैं।'

मन्त्रियोंने विश्वामित्रजीकी आज्ञाका पालन किया। विश्वामित्रजीका नाम सुनते ही श्रीरामचन्द्रजी भाइयोंसहित दौड़े आये और पिताजी, वसिष्ठजी, विश्वामित्रजी तथा अन्य सभासदोंको प्रणाम कर महाराज दशरथके पास जा बैठे।

श्रीरामचन्द्रजीको आया देख, वसिष्ठजीने आशीर्वाद दिया और कहा—'श्रीरामचन्द्रजी! आपने विषयरूपी शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर ली है और उन्हें वशमें कर लिया है, अतः आपका मङ्गल हो।'

इसके पश्चात् विश्वामित्रजीकी बारी आयी। उन्होंने भी आशीर्वाद दिया और कहा—'श्रीरामचन्द्रजी! कहिये तो, आपको क्या दुःख है? हम उसे दूर करेंगे।'

अपने अभीष्टकी सिद्धि होते देखकर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—''मुनीश्वर! महाराज दशरथके घरमें जन्म लेकर मैंने बालक्रीड़ा की, यज्ञोपवीत धारण किया और ब्रह्मचर्यादि व्रतोंका पालन कर चारों वेद तथा छहों शास्त्रोंका अध्ययन किया। तीर्थोंमें गया, स्नान-ध्यान, दान-पुण्य, तप-व्रत इत्यादि किये, चारों धामोंकी परिक्रमा की और क्रम-क्रमसे बड़े होकर संसारके सभी सुख भोगे। मुझे तो ये सब मिथ्या प्रपञ्च और जीके जंजाल प्रतीत होते हैं। इनके रगड़े-झगड़ेमें मेरा मन नहीं लगता। इनसे मेरा चित्त ऊब उठा है।

''यह संसार मनकी कल्पनासे उपजा है। मनका कोई आकार नहीं है। वह भी कल्पित और मिथ्या है। कल्पित मनकी कल्पनासे उपजा हुआ यह संसार भी कल्पित और मिथ्या है।

''मन इन्द्रियोंका दास है। वह इन्द्रियोंके विलासके लिये ही सांसारिक भोगोंको सत्य समझकर उनके पीछे दौड़ता है। वह इस बातको भूल जाता है कि संसार और उसके भोग मृगतृष्णाके जलके समान असत्य और भ्रमोत्पादक हैं।

''विषयवासनाको ही 'भोग' कहते हैं। विषयोंसे प्रेम करनेका नाम 'बन्धन' है और विषयोंको त्याग देनेका नाम 'मोक्ष' है।

''मनके संकल्प अर्थात् वासनाओंसे संसार बनता है। चौरासी लाख योनियोंमें चक्कर लगानेका नाम 'संसार' है।

"शरीर वासनारूप है । वासनाके बलसे ही वह स्थित है। पुत्र, भाई, बन्धु, स्त्री इत्यादि सब वासनारूप हैं और उसीके पाप और पुण्यकी वासनासे स्थित हैं । वास्तवमें न कोई किसीका पुत्र है, न बन्धु है और न बान्धव इत्यादि है। वासनाओंका क्षय ब्रह्मज्ञानके द्वारा ही होता है।

"बाल्यावस्था जड और महादुःखदायिनी है । इस अवस्थामें विवेकशून्य होनेके कारण जीवको बड़ा क्लेश होता है । बालक कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी कहता है—'बर्फका टुकड़ा भून दो, मैं खाऊँगा।' कभी कहता—'चन्द्रमा उतार दो, मैं खेलूँगा।' और गुरुजीसे तो वह ऐसा डरता है, जैसे गरुडको देखकर सर्प डरता है।

"युवावस्था परम शत्रु है । इस अवस्थामें जीवको कामरूपी पिशाच आ घेरता है। उसको शान्त करनेके हेतु स्त्रीकी वाञ्छा होती है। स्त्री देखनेमें तो बड़ी सुन्दर लगती है, परंतु यथार्थमें वह अस्थि, मांस, रुधिर, मल-मूत्र, विष्ठा इत्यादिका पञ्जर है, जो एक दिन या तो भस्म हो जायगा या पशु-पक्षी आदिका आहार बनेगा। जिस प्रकार नेवला सर्पको बिलसे निकालकर मार डालता है, उसी प्रकार स्त्री कामान्ध पुरुषोंको अभिज्ञानसे विमुखकर चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करवाती है। स्त्री विषकी गाँठ है (इसी प्रकार कामपरतन्त्र स्त्रीके लिये पुरुष विषकी ग्रन्थि है)।

बिषरस भरा कनक-घटु जैसे।

"जरावस्था महादुःखदायिनी है । सम्पूर्ण दुःखोंका आक्रमण इसी अवस्थामें होता है । शरीर दुर्बल हो जाता है। इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण पड़ जाती है, कमर झुक जाती है, कूबड़ निकल आता है। स्त्री-पुत्रादि उसे देखकर हँसते हैं और उसका अपमान करते हैं; यहाँतक कि वृद्ध बैलकी तरह उसे त्याग देते हैं और मौत तो सदैव उसके सामने खड़ी रहती है।

"काल महाबली, महाक्रूर और महापराक्रमी है। यह जो दिखायी दे रहा है, सब उसका आहार है। उसके सामने कोई नहीं ठहरता और न वह किसीपर दया करता है। वह सम्पूर्ण विश्वको एक ग्रासमें भक्षण कर लेता है । उसके हाथसे बचना बड़ा कठिन है।

"मुनीश्वर! स्त्री-पुत्र-कलत्र इत्यादि सब अनित्य, मिथ्या हैं। जबतक यह शरीर स्थिर रहता है, तभीतक वे भासते हैं। शरीरके पात होते ही सब-के-सब न जाने कहाँ विला जाते हैं।

"जगत्के पदार्थोंके संसर्गसे बुद्धि मलिन हो जाती है। इस मलिनताको दूर करनेके लिये आत्मज्ञानरूपी चन्द्रमाको प्राप्त करनेकी आवश्यकता है। मुनीश्वर! जिसका अन्तः-करण शुद्ध हो जाता है, उसपर संसारी वासना अपना प्रभाव नहीं डाल सकती। इसलिये मैंने राज्य-वैभव और कुटुम्बादि-को त्याग दिया है और निरहंकार तथा विरागी होकर भवसागर पार करनेका विचार किया है।"

श्रीरामचन्द्रजीके उपर्युक्त परमोत्तम वचनोंको सुनकर सम्पूर्ण सभासदों और नर-नारियोंको वैराग्य हो गया—यहाँतक कि पशु और पक्षी भी संसारको असत्य समझने लगे।

यह प्रत्यक्ष चमत्कार देख विश्वामित्रजीने कहा—"श्रीरामचन्द्रजी! आपने सब कुछ जान लिया है और मेरे कहनेयोग्य कुछ भी शेष नहीं छोड़ा । अब आपको केवल मार्जनकी आवश्यकता है । इसलिये जो कुछ कहता हूँ, ध्यान देकर सुनो। श्रीरामचन्द्रजी! भोगकी इच्छा सबको होती है। इसीका नाम 'बन्धन' है। भोगोंकी वासना त्याग देनेका नाम 'मोक्ष' है। ज्यों-ज्यों जीवको भोगकी अभिलाषा होती है, त्यों-ही-त्यों वह नीचा होता जाता है। भोगकी वासना शान्त होते ही जीव गरिष्ठ हो जाता है, उस समय उसको आत्मानन्दकी प्राप्ति होती है।

"ज्ञानी लोग किसी फलकी इच्छा नहीं करते, इसीलिये भोगोंका त्याग करते ही उनकी विषयवासना आप-से-आप दूर हो जाती है। जिस प्रकार सूर्योदय होनेसे अन्धकारका अभाव हो जाता है, उसी प्रकार हे श्रीरामचन्द्रजी! आपको भोगकी इच्छा नहीं रही। अब तो आप शान्ति चाहते हैं। भगवान् वसिष्ठजी रघुवंशकुलके गुरु और त्रिकालदर्शी तथा परमज्ञानी हैं। उनके उपदेशसे आपको शान्ति मिलेगी। अब वे ही आपको उपदेश देंगे।"

विश्वामित्रजीके आदेशसे वसिष्ठजीने महाराज दशरथको मोक्षमार्गका उपदेश दिया। उसका सारांश यह है—

'राजन्! यह सम्पूर्ण जगत् संकल्पमात्र तथा वासनामय है। जैसी दृढ़ वासना होती है, वैसे ही सब हमें भासते हैं। पुत्र-कलत्र, बन्धु-बान्धव इत्यादि जीवके पाप और पुण्यकी वासनाओंसे स्थित हुए हैं। वास्तवमें न कोई किसीका पुत्र है, न बन्धु है, न बान्धव। यह सब कल्पनामात्र है।

'जगत्के सत्य भासनेसे ही नाना प्रकारकी वासनाएँ दृढ़ हो गयी हैं। इसलिये चित्तको बाहरसे हटाकर और इसे अन्तर्मुख करके आत्मभावना दृढ़ करनी चाहिये। आत्म-

भावनाके दृढ़ होते ही अज्ञान नष्ट हो जाता है और आत्मज्ञानकी प्राप्ति होती है।

'ईश्वर आत्मा तथा परमदेव हैं। विवेक उनका दूत है। वेदोंका अध्ययन, प्रणवका जप और चित्तको एकाग्र करनेसे आत्मदेवकी प्रसन्नता प्राप्त होती है और आत्मदेवकी प्रसन्नता प्राप्त होते ही विवेकका उदय होता है। विवेक चित्तरूपी शत्रुको मारकर तथा वासनारूपी मलिनताको दूर करके जीवको परमदेवके पास ले जाता है और जीव परमदेवके दर्शन पाकर परमानन्दको प्राप्त होता है।

'कामनारहित शुभ कर्म करनेसे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है। केवल दान-तप-व्रत-तीर्थादि सेवन करनेसे ही आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती।

'आत्मभावना जाग्रत् होते ही आत्मपदकी प्राप्तिका अभ्यास करना चाहिये। इस प्रकार अभ्यास करते-करते जब आत्मभावना दृढ़ हो जाती है, तब आत्मपदकी प्राप्ति होती है, जगत्‌की सत्यता नष्ट हो जाती है और जीव निश्शङ्क हो व्यवहार करता हुआ भी शान्त रहता है।

'अहंकारका त्याग करो, तभी सर्वत्यागी होओगे; इसीका नाम महात्याग है और यही वेदान्तका सार है।

× × × ×

'प्रिय राजकुमार! जो कुछ मुझे कहना था; वह मैंने कह दिया। यह सार-का-सार आत्मपद है। आपने इस सर्वोत्तम अविनाशी परमपदको पा लिया है। अब आप निश्शङ्क हो विचरिये।'

इसके अनन्तर वसिष्ठजीने महाराज दशरथसे आज्ञा लेकर श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीको विश्वामित्रजीके साथ कर दिया और सभा विसर्जन की।

प्रिय पाठको! कैसा विचित्र उपदेश है! यही तो एक राजमार्ग है, जिसके द्वारा हम और आप आवागमनके चक्करसे मुक्त होकर परमपदको प्राप्त कर सकते हैं।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हमारा और आपका कल्याण करें। बस, अब बोलिये भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी जय! जय!! जय!!!

जिज्ञासु श्रीराम

(लेखक—स्वामी श्रीसनातनदेवजी)

भगवान् राम मर्यादापुरुषोत्तम हैं। वे स्वयं साक्षात् सर्वेश्वर, सर्वसमर्थ और सर्वज्ञ होनेपर भी लोकमर्यादाके रक्षण और सर्वसाधारणके शिक्षणके लिये एक आदर्श मानवके समान आचरण करते हैं। उनकी सभी लीलाओंमें तदनुरूप मर्यादाका यथोचित आदर हुआ है, जिसके कारण वे वस्तुतः अलौकिक और अतिमानव होनेपर भी लौकिक और मानवीय-सी जान पड़ती हैं। वे जैसे आदर्श पति, स्नेही सुहृद्, समर्थ संरक्षक और सहृदय सहोदर हैं, वैसे ही अनुगत शिष्य और आज्ञानुवर्ती पुत्र भी हैं। अतः उनके प्रत्येक आचरणमें शील, शान्ति, गाम्भीर्य, औदार्य और सौजन्यका अद्भुत समावेश परिलक्षित होता है।

इसी प्रकार श्रीवासिष्ठ-महारामायणमें हम उन्हें एक सच्चे तत्त्वजिज्ञासुके रूपमें भी देखते हैं। इस जीवनमें अपने वास्तविक स्वरूपको ठीक-ठीक जान लेना ही मानवका परम पुरुषार्थ है। जिसने शरीर रहते उस परम तत्त्वको नहीं जाना, उसके लिये श्रुति महाविनाशकी घोषणा करती है—

'इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।'
(केनोप० २। ५)

किंतु भगवान् राम तो ज्ञातज्ञेय हैं, उन्हें वास्तवमें कुछ भी जानना अवशिष्ट नहीं है—यह बात स्वयं योगवासिष्ठके आरम्भमें कही गयी है। महामुनि विश्वामित्रजी कहते हैं—

ज्ञेयं यावन्न विज्ञातं तावत्तावन्न जायते।
विषयेष्वरतिर्जन्तोर्मरुभूमौ लता यथा॥
अतएव हि विज्ञातज्ञेयं विद्धि रघूद्वहम्।
यदेनं रञ्जयन्त्येता न रम्या भोगभूमयः॥
रामो यदन्तर्जानाति तद्वस्त्वित्येव सन्मुखात्।
आकर्ण्य चित्तविश्रान्तिमाप्नोत्येव मुनीश्वराः॥
(योग०, मुमुक्षु० २। ९-११)

''जबतक ज्ञेय पूर्णतया ज्ञात नहीं होता, तबतक जीवको विषयोंमें वैराग्य उसी प्रकार नहीं होता, जैसे मरुस्थलमें लता नहीं हो सकती। अतः रघुनाथजीको तो वास्तवमें ज्ञेय ज्ञात ही समझना चाहिये, तभी तो इन्हें रमणीय भोगसामग्रियाँ अनुरञ्जित नहीं कर पातीं। अतः हे मुनिगण! रामजी जिस बातको अपने अन्तःकरणमें जानते हैं, उसके विषयमें 'यही वास्तविक तत्त्व है'—ऐसी बात बाहरके श्रेष्ठ पुरुषोंसे भी सुनकर चित्तकी विश्रान्ति प्राप्त कर लेंगे।''

मुनिवर विश्वामित्रके ये वाक्य वास्तवमें तो प्रत्येक जिज्ञासुके चित्तकी दशाका दिग्दर्शन कराते हैं। अपना वास्तविक स्वरूप, भला, किसको ज्ञात नहीं है; क्योंकि वस्तुतः जीव ज्ञानस्वरूप ही है। और ज्ञानके सिवा अपनेतक और किसीकी पहुँच भी कहाँ है। साक्षात् अपरोक्ष तो केवल वही है। वास्तवमें तो इस 'और किसी'ने ही उस ज्ञानमात्रकी उपाधि बनकर उसे आच्छादित कर लिया है। यदि चित्त इससे विमुख हो जाय, इसकी ओरसे उसे परवैराग्य हो जाय, तो यह अनहुआ होनेके कारण अपनी मौत मर जाय। फिर तो उसे यह सत्ताशून्य भासने लगे और इससे मुक्त होनेपर ज्ञान अपने विशुद्ध रूपमें अवशिष्ट रह जाय। फिर तो प्रत्येक ज्ञानमें इस ज्ञानमात्रकी ही झाँकी होने लगे। इसीको श्रुतिने 'प्रतिबोधविदितम्' कहा है और इसीसे 'अमृतत्वकी प्राप्ति' बतायी है—

'प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते।'
(केनोप० २। ४)

अतः तत्त्वज्ञानके लिये यह परम आवश्यक है कि साधककी सम्पूर्ण अनात्मवर्गमें अनास्था हो जाय। अनात्म-वस्तुओंमें रमणीयता और महत्ता होनेके कारण ही तो जीव जगज्जालमें जकड़ा हुआ है। इनका मोह और प्रलोभन ही तो उसे अपने परमाराध्य परमार्थ-सत्यकी ओर नहीं देखने देता। इसीसे श्रुति कहती है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥
(ईश० १५)

'सत्यका मुख सुवर्णमय पात्रसे (अर्थात् आपात-रमणीय भोग्य पदार्थोंसे) ढँका हुआ है। हे जगत्पोषक प्रभु! सत्यधर्मके दर्शनके लिये आप उसे उघाड़ दीजिये।'

इस रमणीयताके जालसे मुक्त होनेपर जिसे ऐहिक और पारलौकिक—किसी भी प्रकारके भोगोंकी लालसा नहीं रहती, उसी भाग्यवान्के विशुद्ध अन्तःकरणमें सत्यकी जिज्ञासा जाग्रत् होती है। इस अवस्थामें आहार-निद्रादिका भी नियम नहीं रहता, शरीरका अनुसंधान छूट जाता है, आगे-पीछेकी कोई चिन्ता नहीं रहती और चित्त सब ओरसे सिमटकर एकमात्र अपने चरम लक्ष्यके अनुसंधानमें संलग्न रहता है। ऐसी स्थिति अनेकों जन्मोंतक भगवद्-भजन—चिन्तन करनेके पश्चात् ही प्राप्त होती है—

'अनेकजन्मभजनात् स्वविचारं चिकीर्षति।'

भगवान् रामकी नवकिशोर अवस्था है। वे भारतके सम्पूर्ण तीर्थोंके दर्शन करके लौटे हैं। इसी समय मुनिवर विश्वामित्र अपने यज्ञकी रक्षाके लिये उन्हें ले जानेके उद्देश्यसे महाराज दशरथके पास पधारते हैं। उनके याचना करनेपर एक बार तो महाराज रामजीके सम्भावित विरहकी व्यथासे व्याकुल हो जाते हैं; परंतु जब गुरुवर वसिष्ठजीके समझानेपर उन्हें लानेके लिये वे दूतोंको भेजते हैं, तब दूत लौटकर इन शब्दोंमें उनकी दशाका वर्णन करते हैं—

देव दोर्दलिताशेषरिपो रामः स्वमन्दिरे।
विमनाः संस्थितो रात्रौ षट्पदः कमले यथा॥
आगच्छामि क्षणेनेति वक्ति ध्यायति चैकतः।
न कस्यचिच्च निकटे स्थातुमिच्छति खिन्नधीः॥
(योग०, वैराग्य० १०। ४-५)

"अपने बाहुबलसे सम्पूर्ण शत्रुओंका मानमर्दन करनेवाले महाराज! रामजी तो इस समय अपने महलमें इस प्रकार अनमने-से बैठे हैं, जैसे रात्रिके समय भौंरा कमलमें बंद हो जानेपर रहता है। 'मैं अभी क्षणभरमें आता हूँ'—यों कहकर वे एकाग्र होकर ध्यान करने लगते हैं और अत्यन्त खिन्नचित्त होनेके कारण किसीके समीप नहीं रहना चाहते।"

जब महाराज दूतोंको सान्त्वना देकर उनसे श्रीरामकी मनोदशाका विशेष विवरण पूछते हैं तो वे बड़े करुणापूर्ण शब्दोंमें उनका इस प्रकार चित्रण करते हैं—

रामो राजीवपत्राक्षो यतः प्रभृति चागतः।
सविप्रस्तीर्थयात्रायास्ततः प्रभृति दुर्मनाः॥
यत्नप्रार्थनयास्माकं निजव्यापारमाह्निकम्।
सोऽयमाम्लानवदनः करोति न करोति वा॥
स्नानदेवार्चनादानभोजनादिषु दुर्मनाः।
प्रार्थितोऽपि हि नातृप्तेरश्नात्यशनमीश्वरः॥
लोलान्तःपुरनारीभिः कृतदोलाभिरङ्गणे।
न च क्रीडति लीलाभिर्धाराभिरिव चातकः॥
माणिक्यमुकुलप्रोता केयूरकटकावलिः।
नानन्दयति तं राजन् द्यौः पातविरसं यथा॥
क्रीडद्वधूविलोकेषु वहत्कुसुमवायुषु।
लतावलयगेहेषु भवत्यतिविषादवान्॥
यद्द्रव्यमुचितं स्वादु पेशलं चित्तहारि च।
बाष्पपूर्णेक्षण इव तेनैव परिखिद्यते॥

किमिमा दुःखदायिन्त्यः प्रस्फुरन्ति पुराङ्गनाः।
इति नृत्यविलासेपु कामिनीः परिनिन्दति ॥
भोजनं शयनं पानं विलासं स्नानमासनम्।
उन्मत्तचेष्टित इव नाभिनन्दत्यनिन्दितम् ॥
किं सम्पदा किं विपदा किं गेहेन किमिङ्गितैः।
सर्वमेवासदित्युक्त्वा तूष्णीमेकोऽवतिष्ठते ॥
नोदेति परिहासेपु न भोगेपु निमज्जति।
न च तिष्ठति कार्येपु मौनमेवावलम्बते ॥
इत्यादि। (योग०, वैराग्य० १०। ९—१९)

''कमलदललोचन राम जिस दिन विप्रवृन्दके साथ तीर्थ-यात्रासे लौटे हैं, तभीसे बड़े उदास रहते हैं। हमलोगोंके बार-बार प्रार्थना करनेपर वे अपने दैनिक नित्यकर्मोंको भी बड़े उदास मुखसे कभी करते हैं और कभी नहीं भी कर पाते। स्नान, देवपूजन, दान और भोजनके समय भी वे उदास ही रहते हैं। वे समर्थ हैं, तथापि हमारे प्रार्थना करनेपर भी पेटभर भोजन नहीं करते। अन्तःपुरकी चपल नारियाँ जब उन्हें आँगनमें झूलेपर बैठाती हैं, तब भी वे उनके साथ उसी प्रकार क्रीडा नहीं करते, जैसे चातक (स्वातिनक्षत्रसे अतिरिक्त) वर्षाकी धाराएँ पड़नेपर भी प्रसन्न नहीं होता। नीलमकी कलिकाएँ पिरोकर बनाये हुए केयूर और कङ्कण उन्हें उसी प्रकार आनन्दित नहीं कर पाते, जैसे पतनोन्मुख प्राणीको स्वर्ग। क्रीडानिरत ललनाओंकी ओर दृष्टि जानेपर, सुरभित समीर प्रवाहित होनेपर और लतानिकुञ्जोंमें प्रवेश करनेपर वे बड़े ही विषादग्रस्त हो जाते हैं। जो पदार्थ सर्वथा अनुकूल, स्वादिष्ट, कोमल और मनोमोहक होते हैं, उनको पानेपर भी वे सजलनयन-से होकर खिन्न होने लगते हैं। जब नृत्य-विलासपर उनकी दृष्टि जाती है, तब 'ये दुःखदायिनी नगरनारियाँ क्यों फुदक रही हैं!'—यों कहकर उनकी निन्दा करने लगते हैं। सब प्रकार निर्दोष भोजन, शयन, पान, विलास, स्नान और आसनको भी उन्मत्तकी-सी चेष्टा करते हुए वे प्रसन्न नहीं होते। 'सम्पत्ति, विपत्ति, गृह और मनोरथोंसे क्या लेना है? ये सभी असत् हैं'—यों कहकर वे चुपचाप अकेले बैठे रहते हैं। हास-परिहास होनेपर वे प्रसन्न नहीं होते, विषयभोगोंमें रुचि नहीं लेते और काम-काजमें भी तत्परता नहीं दिखाते। बस, गुम-सुम ही बैठे रहते हैं।''

उनकी करुण दशाका ऐसा ही वहाँ और भी विस्तृत वर्णन किया गया है। यह तो केवल संकेतमात्र है। सचमुच जिसके हृदयमें जिज्ञासाग्नि प्रज्वलित हो जाती है, उसकी ऐसी ही दशा होती है। उसकी सभी सांसारिक सुख-सम्पदाएँ और सुविधाएँ भस्मसात् हो जाती हैं। यही दशा इस समय मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामकी थी।

अस्तु, महाराज पुनः-पुनः दूतोंको भेजते हैं। तब राम उनके साथ सभामें पधारते हैं। वहाँ महाराज, मुनिराज और गुरुदेवके सहित सम्पूर्ण सभासदोंपर उनकी दृष्टि पड़ती है और वे सभीका यथायोग्य अभिवादन करते हैं। जब सामन्त-समाज आपको प्रणाम करता है, तब आप बड़े संकोचसे सिर झुकाकर वाणीद्वारा उसे स्वीकार करते हैं। महाराज कहते हैं, 'बेटा! मेरी गोदमें बैठो'; तो आप भूमिपर बिछे हुए बिछौनेपर बैठ जाते हैं—ऐसी अद्भुत है आपकी विनय।

जब भगवान् वसिष्ठ और विश्वामित्रजी आपकी मनोदशाके विषयमें प्रश्न करते हैं, तब आप बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें उसका विस्तृत वर्णन करते हैं। संसारकी ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्ति—कुछ भी आपको नहीं सुहाती। योगवासिष्ठके एक-एक सर्गमें आपके द्वारा श्री, आयु, अहंकार, चित्त, तृष्णा, बाल्य, यौवन, वार्धक्य, स्त्री, काल और दैवके दोषोंका चित्रण हुआ है। संसारकी क्षणभङ्गुरताका वर्णन करके आप अपनी प्रखर विवेकदृष्टिका परिचय देते हैं। इसी प्रकार सर्ग २८ से ३१ तक आपने जो कुछ कहा है, उससे आपमें विवेक, वैराग्य, शमादि षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुताका बड़ा स्पष्ट परिचय मिलता है। इन्हें ही वेदान्तग्रन्थोंमें 'साधनचतुष्टय' कहा गया है। जिज्ञासुमें इस साधनसम्पत्तिका होना अनिवार्य है। इसके बिना किसी भी साधकमें सच्ची जिज्ञासा जाग्रत् नहीं हो सकती।

ऐसी थी इस समय जगन्नियन्ता भगवान् राघवेन्द्रकी मनःस्थिति। जैसी उनकी अनेकों नरलीलाएँ थीं, वैसी ही यह जिज्ञासा-लीला भी थी। ऐसा न होता तो हम जिज्ञासुओंको सच्ची जिज्ञासाका स्वरूप कैसे जान पड़ता। प्रभुने तो वाणीके द्वारा नहीं, आचरणके द्वारा हमारा पथप्रदर्शन किया है। ऐसा वे न करते तो कौन करता। वे स्वयं तो मन और

वाणीसे अतीत हैं। शब्दके द्वारा उनके तत्त्व और रहस्यका परिचय कौन करा सकता है। अतः उन्होंने स्वयं ही अपने आचरणद्वारा हमें यह बता दिया कि 'यदि तुम सम्पूर्ण अनात्मवर्गसे विमुख हो जाओगे तो स्वयं ही तुम्हारा मुख आत्माकी ओर हो जायगा; यदि विषयमात्रमें तुम्हारी अनास्था हो जायगी तो सर्वसाक्षीमें स्वयं ही आस्था हो जायगी; यदि भोगोंमें तुम्हें कोई आकर्षण नहीं रहेगा तो योग स्वयं तुम्हें अकर्षित कर लेगा। बस, संसारसे मुख मोड़ लो; फिर मैं तो तुम्हारा स्वागत करनेके लिये हर समय ही प्रस्तुत हूँ।'

आत्मविजयी श्रीराम

(लेखक—आचार्य डा० श्रीविश्वबन्धुजी)

अयोध्यापुरीमें घोषणा हो चुकी थी कि दूसरे दिन प्रातः ही महाराज दशरथकी आज्ञाके अनुसार श्रीरामचन्द्रको युवराजके पदपर अभिषिक्त किया जायगा। जनता श्रीरामचन्द्रकी वीरता, धीरता, गम्भीरता, नम्रता, धर्म-परायणता आदि आर्यगुणोंको जानती और नित्यके व्यवहारसे पहचानती थी; अतः वह उन्हें हृदयसे चाहती थी। इस शुभ समाचारसे नर-नारियोंके हृदयमें प्रसन्नता और भी बढ़ रही थी। रात्रि होनेसे पहले-पहले घर-घरमें सजावट हो चुकी थी और इधर-उधर सब जगह खुशीसे भरे हुए लोग अगले दिन होनेवाले उस मङ्गलकार्यकी ही चर्चा कर रहे थे। श्रीरामचन्द्रने पिताके इस निश्चयको बहुत ही गम्भीरतासे सुना और शान्त एवं नम्रभावसे स्वीकार किया। वे जानते थे कि राज्य-भार उठाना और योग्यतापूर्वक धारण करना अतिकठिन कार्य है। वे हृदयमें भावनामयी शक्तिका आवाहन करनेमें मग्न थे, ताकि जिस परीक्षाके लिये वे बचपनसे तैयारी करते रहे थे, अब उसका समय आ जानेपर उसमें सफलताके साथ उत्तीर्ण हो सकें।

उधर सर्व-मङ्गल-विघातिनी आसुरी माया ताकमें बैठी थी। उसने झटसे झपटकर रात-ही-रातमें मन्थरारूपिणी उल्काद्वारा कैकेयी-रूपिणी महाज्वालाको प्रज्वलित करके काम-मोहित, वाग्-बद्ध महाराज दशरथके स्वर्ग-सम निवासको नरक-धाम बना डाला। सूर्योदयके पश्चात् श्रीरामचन्द्रको वहाँ बुलाया गया और जब वे वहाँ पहुँचे, तब उन्हें महाराजकी ओरसे यह आज्ञा सुनायी गयी 'कि तुम्हें कल चौदह वर्षोंके लिये वनवासको जाना होगा और तुम्हारे स्थानपर यहाँ भरतको युवराज बनाया जायगा।'

उन्होंने इस तीव्र-आघातिनी एवं सर्व-नाशिनी आज्ञाको माता कैकेयीके मुखसे सुना तो वे एकटक पिताकी ओर निहारने लगे। परंतु महाराज उनकी आँख-से-आँख मिलानेमें सफल न हो पाये। इसलिये वे समझ गये कि पिताजीको वह आज्ञा तो सर्वथा अनिष्ट है, परंतु वे कुछ विवश-से हैं और इसीलिये चुप हैं। हाँ, उनके मुखकी आकृतिसे ऐसा लगता था कि वे यह जानना चाहते हैं कि श्रीरामचन्द्र उनके वचन-बन्धनको सच्चा बनाये रख सकेंगे या नहीं। साथ ही कुछ ऐसा भी लगता था कि वे अपने अंदर-ही-अंदर यह चाहते हैं कि रामचन्द्र उस आज्ञाका उल्लङ्घन कर दें और अपने-आप राज्यका कार्य सँभाल लें।

परंतु श्रीरामचन्द्रजी अपनी स्वाभाविक गम्भीर मुद्रामें स्थिर थे। उनकी मुखश्रीमें कोई कुम्हलाहट नहीं आयी। उन्होंने माता कैकेयीको हल्की-सी मुस्कानसे केवल इतना ही कहना पर्याप्त समझा—'मुझे पिताजीकी और आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। मैं जीते-जी पिताजीके वचनको कभी झूठा न होने दूँगा। उनका मुझपर पूर्ण अधिकार है। मैं अपने सुख-स्वार्थकी लालसासे कभी भी उनके इस अधिकारका तिरस्कार न करूँगा न होने दूँगा। मैं पितृ-चरणोंमें समर्पित हो चुका हूँ। वे जहाँ चाहेंगे, वहाँ रहूँगा और जो चाहेंगे, वह करूँगा। बस, मुझे अब जानेकी अनुज्ञा दीजिये।' इतना कहनेके पश्चात् पिता तथा कैकेयीके चरणोंमें मस्तक झुकाकर श्रीरामचन्द्र बाहर निकल गये।

माता कौसल्याने प्रभातके समयमें श्रीरामचन्द्रसे यह समाचार सुना तो वह बौखला गयीं। उन्होंने माताके अधिकारको पिताके अधिकारसे गुरुतर बताते हुए श्रीरामको प्रेरणा करनी चाही कि श्रीरामचन्द्र वनको जानेका विचार न करें। लक्ष्मणने पिताकी मोहमयी अवस्था तथा अपनी

उग्रताका संकेत करते हुए श्रीरामचन्द्रको उत्तेजित करके राज्य सँभालनेके लिये तैयार करना चाहा । सीताजीने उनके सङ्ग वन जानेका दृढ़ संकल्प प्रकट करते हुए, मानो उन्हें वनमें जानेसे रोकना चाहा । मन्त्रि-मण्डल तथा प्रजा-मण्डलने उनके प्रति अपनी पूर्ण भक्ति प्रकट करते हुए और महाराज दशरथकी इस आज्ञाकी निन्दा करते हुए, मानो उनके हाथमें राज-मुकुट सौंप देना चाहा । स्वयं भरतने उनके पीछे अयोध्यामें पहुँचकर यह घटना सुनी तो अपनी माताकी दुरिच्छाका अनादर करते हुए, दौड़े-दौड़े जाकर, उन्होंने राज-सिंहासनपर मानो उन्हें बिठाना चाहा ही नहीं, वरं बिठा भी दिया । कारण, वे स्वयं उसपर कभी न बैठनेकी धारणाको पक्का कर चुके थे। अन्ततः यदि श्रीरामचन्द्र स्वयं भी महाराज दशरथकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना चाहते तो वे एक प्रकारसे पिताजी-की अप्रकट हार्दिक अभिलाषाको ही पूरा करते ।

परंतु नहीं, उनकी तो वनमें जाने और चौदह वर्षोंतक उधरसे न लौटनेकी धारणा बन चुकी थी । वे जानते थे कि महाराज दशरथने महारानी कैकेयीको विलास-भवनमें नहीं, वरं समर-भूमिमें और उनके हाव-भावपर मुग्ध होकर नहीं, वरं उसकी अबला-दुर्लभ वीरतासे प्रसन्न होकर ही दो वर प्रदान किये थे । एक प्रकारसे यह पति-पत्नीके बीचमें प्रतिज्ञा थी । इसका पालन केवल गृह-सुखकी दृष्टिसे ही नहीं, वरं राज्य-व्यवस्थाकी दृष्टिसे भी आवश्यक था । इसका पालन उस राज-सत्ताका दृढ़ आश्वासनरूप आधार था, जिसकी वृद्धिके लिये ही आदर्श राजा प्रजाके रक्षणार्थ सिंहासनपर आरूढ़ होता है ।

श्रीरामचन्द्र ऐसी प्रतिज्ञाको झुठलाकर राजा नहीं होना चाहते थे । वे अपना राजनीतिक श्रीगणेश स्वार्थमूलक असत्य व्यवहारद्वारा नहीं करना चाहते थे । कोई बात नहीं, वे राजा न बनें । कोई बात नहीं, वे वनमें ही समाप्त हो जायँ । परंतु यह नहीं होगा कि वे अपने व्यक्तिगत ऐश्वर्य-भोगकी लालसासे अपने इष्टमित्रों तथा पारिवारिक जनोंके स्नेह-पाशमें बँधकर अपने रघुवंशी पूर्वजोंके सत्यप्रतिष्ठित सिंहासनपर असत्य-पोषक होकर बैठें । पिताजी नहीं बचेंगे, माताजीको बुढ़ापेमें घोर दुःख रहेगा, भाई और पत्नीको मेरे लिये न जाने क्या-क्या कष्ट उठाने पड़ेंगे और स्वयं मुझपर न जाने क्या बीतेगी—यह सब कुछ था और वे इस काले बादलको अपने सामने स्पष्ट देख रहे थे; परंतु क्षण-क्षणमें उनकी ध्रुव-सम अन्तरात्माका विद्युत्-प्रकाश उस काले बादलको भी जाज्वल्यमान कर रहा था—राज्य श्रीरामचन्द्रके लिये नहीं था, वे राज्यके लिये थे। प्रजाके सेवक, पालक और शिक्षक बनकर मर्यादा-पालनरूपी धर्मके संस्थापन तथा मर्यादाभङ्गरूपी अधर्मके नाशके लिये ही उनका अवतार हुआ था ।

प्रतिवर्ष ही विजय-दशमी आती है और श्रीरामचन्द्र-द्वारा किये गये अधर्मनाशकी वार्ताको हमारे स्मृतिफलकपर नये सिरेसे अङ्कित करती हुई चली जाती है । परंतु यह उससे भी कहीं अधिक ध्यान देने और स्मरण रखनेकी बात है कि श्रीरामचन्द्रद्वारा रावणपर प्राप्त की गयी विजयकी आधार-शिला तो उसी समय रख दी गयी थी, जब श्रीरामचन्द्रजी आत्मविजयी होकर वनवासको निकल पड़े थे । आत्म-भूमिमें धर्म-संस्थापन करना ही अधर्म-नाशके लिये योग्यता पैदा करना है । सच्ची आत्म-विजय ही धर्म-संस्थापनका द्वार है ।

जो मनुष्य अपने कर्तव्योंकी अधिक मीमांसा करते हैं और अपने अधिकारोंकी रट कम लगाते हैं, वे अपने जीवनमें अवश्य ही कुछ ठोस कार्य कर जाते हैं । समाजके प्रत्येक सच्चे सेवककी ऐसी ही मानसिक धारणा होती है और होनी भी चाहिये ।



श्रीरामकी विनयशीलता*

(लेखक—श्रीशिवानन्दजी)

जीवनमें कार्य-सम्पादनके लिये विविध प्रकारकी शक्तियोंके उपचयकी आवश्यकता होती है; किंतु उनके उपयोगका कोई सुदूरसंस्थित उद्देश्य भी होना चाहिये। दुष्ट प्रकृतिके लोग परपीडनमें ही सुखका अनुभव करते हैं तथा सत्पुरुष अपनी पूरी शक्तियोंको जुटाकर परहित करनेमें अपने जीवनकी सार्थकता मानते हैं। यही आशय इस श्लोकमें भी व्यक्त हुआ है—

विद्या विवादाय धनं मदाय
शक्तिः परेषां परिपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेत-
ज्ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

'खल पुरुषकी विद्याका विवादमें प्रयोग होता है, धन मदका कारण बनता है एवं बलको परपीडनमें प्रयुक्त करता है। सत्पुरुष, इसके विपरीत, विद्याको ज्ञान-संवर्द्धनके लिये, धनको दान देनेके लिये तथा बलको पर-रक्षणके लिये उपयोगमें लाता है।'

समाज-व्यवस्थाके हितमें दण्डके द्वारा शिक्षणकी आवश्यकता होती है और एतदर्थ शक्तिका उपयोग करना एक कर्तव्य हो जाता है। 'दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः'—'दण्ड समस्त प्रजाओंपर शासन करता है।' दण्ड प्रकृतिका विधान है। पशु-जगत्‌में बंदर और बिल्ली भी अपने बच्चोंको पंजेसे मारकर समझानेका प्रयत्न करते हैं। 'दण्डो दमयतामस्मि' (गीता १० । ३८)। उचित दमन करनेवालोंके दण्डमें भी प्रभुका निवास है। दण्डके निमित्त बल-प्रयोग, अन्ततोगत्वा विवश होनेपर तथा अन्य सभ्य साधन विफल होनेपर ही होना चाहिये। दण्ड अपराधके अनुरूप, उपयुक्त, यथेष्ट तथा समीचीन होना चाहिये। दण्ड देनेके हेतु सत्ताधारी व्यक्तिके लिये क्रोध-प्रदर्शन करना भी आवश्यक हो जाता है—'अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः।' (किराता० १ । ३३)

सत्तावान् मनुष्यको अवसर आनेपर सत्ताके अधिरक्षणके लिये अमर्ष अथवा रोषका आभास कराना अत्यावश्यक होता है। साधारण जन अमर्षशून्य व्यक्तिकी अवहेलना करने लगते हैं और शत्रु उसका न तो आदर करते हैं न भय ही मानते हैं। सत्ताकी प्रतिष्ठाके संदर्भमें दण्ड और रोषका विशेष महत्त्व है। किंतु दण्ड और अमर्षके पीछे दण्डयिताके मनमें सद्भाव अवश्य होना चाहिये।

शौर्य-प्रदर्शनके पृष्ठमें आधारभूत सहज मार्दव एवं माधुर्य होनेपर व्यक्तित्वमें दीप्ति एवं आकर्षण उत्पन्न हो जाते हैं। केवलमात्र बलके लिये ही बल-प्रयोग करना तो पशुतामूलक होता है तथा उसमें एक नीरसता अथवा नृशंसताकी गन्ध आ जाती है। शौर्यकी महिमा विनम्रभावमें निहित होती है। कठोर पग उठानेपर भी हृदय मृदु एवं मधुर ही होना चाहिये। राम जो युद्धकालमें वज्रसे भी अधिक कठोर प्रतीत होते हैं, वास्तवमें वे अन्तस्तलमें कुसुमकी अपेक्षा भी अधिक कोमल हैं।

राम विषम स्थिति देखकर पलायन नहीं करते, बल्कि उसका डटकर सामना करते हैं। पहले वे समन्वयका प्रयत्न करते हैं और समन्वयके विफल होनेपर बलपूर्वक दुष्टताका प्रतिरोध करते हैं। समुद्रके द्वारा अनुनय-विनयका तिरस्कार होनेपर ही रामने उसपर शरसंधान किया। हनुमान् तथा अङ्गदके दौत्यकार्यके विफल होनेपर तथा समन्वयकी सम्भावना विलुप्त होनेपर ही रामने सैन्यसहित रावणका वध किया।

राम पराक्रमी हैं; किंतु उनके पराक्रमका सौन्दर्य उनकी निरभिमानता एवं विनयशीलतामें निहित है। राम अपने शौर्य एवं पराक्रमपर गर्व नहीं करते और उसका कहीं बखान भी नहीं करते। राम विचार एवं व्यवहारमें विनम्र हैं। जैसे कविकुल-शिरोमणि तुलसी स्वयं उत्कृष्ट कवि होकर भी अपनी विनम्रताका परिचय देते हैं, वैसे ही उनके उपास्य राम सर्वगुणसम्पन्न होकर भी परम विनयशील हैं। अपने सम्बन्धमें तुलसी कहते हैं—

कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू। सकल कला सब बिद्या हीनू॥
आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक बिधाना॥
भाव भेद रस भेद अपारा। कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा॥
कबित बिबेक एक नहिं मोरें। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें॥
(श्रीरामच० १ । ९ । ९-१०)

साधारणतः प्रभुता, [illegible] अथवा सम्पत्ति मिलनेपर मनुष्योंमें मदमत्तता आ जाती है और वे अपने सौन्दर्य [illegible]

* 'विनय'का अर्थ शिक्षा भी होता है—'विनयः शिक्षाप्रणत्योः' (हेमचन्द्र—अनेकार्थसंग्रहकोश (३ । [illegible])

बखान करने लगते हैं; किंतु राम तो विनीत हैं। उग्र परशुरामके गर्वीले शब्दोंको सुनकर आत्मपरिचय देते हुए वे कहते हैं—

राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तोहारा॥
(वही, १। २८१। ३)

रावणके साथ युद्ध करते हुए राम तीन प्रकारके मनुष्योंका वर्णन करते हैं, जो क्रमशः गुलाब, आम और कटहलके समान होते हैं। एक (गुलाब) फूल देते हैं, एक (आम) फूल तथा फल दोनों ही देते हैं और एक (कटहल) में केवल फल ही लगते हैं। मनुष्योंमें एक कहते हैं (करते नहीं); दूसरे कहते और करते भी हैं; तथा तीसरे, जो श्रेष्ठ हैं, केवल करते हैं, किंतु वाणीसे कहते नहीं—

.....................नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा॥
एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं॥
(वही, ६। ८९ का छंद)

श्रेष्ठ पराक्रमी राम अपने पराक्रमका स्वयं वर्णन नहीं करते, बल्कि अन्य जनोंके द्वारा प्रशंसा होनेपर भी संकोचका ही अनुभव करते हैं।

रामकी माताएँ भी उन्हें शालीनता एवं निरभिमानताका पाठ सिखाती हैं। यज्ञरक्षाके लिये धनुष उठानेवाले रामसे वे कहती हैं कि उनकी सफलताका कारण तो मुनिकृपा है—

देखि स्याम मृदु मंजुल गाता। कहहिं सप्रेम बचन सब माता॥
मारग जात भयावनि भारी। केहि बिधि तात ताड़का मारी॥
घोर निसाचर बिकट भट समर गनहिं नहिं काहु।
मारे सहित सहाय किमि खल मारीच सुबाहु॥
मुनि प्रसाद बलि तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरें टारी॥
मख रखवारी करि दुहुँ भाईं। गुरु प्रसाद सब बिद्या पाईं॥
मुनितिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी॥
कमठ पीठि पबि कूट कठोरा। नृप समाज महुँ सिवधनु तोरा॥
बिस्व बिजय जसु जानकि पाई। आए भवन ब्याहि सब भाई॥
सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौसिक कृपाँ सुधारे॥
(वही, १। ३५५। ४; १। ३५६; ३५६। १-३)

परम बलवान् रावणके वधका श्रेय भी राम स्वयं नहीं लेते। भालुओं एवं कपियोंको इस महान् कार्यके सम्पादनका यश देते हुए राम उनसे कहते हैं—

'तुम्हरे बल मैं रावनु मार्यो।' (वही, ६। ११७। २)

पुनः संग्राम-विजयके पश्चात् पुष्पक विमानपर बैठकर जब राम अयोध्या लौट रहे हैं, वे जानकीसे लक्ष्मण-हनुमान्-अङ्गद आदिके शौर्यकी प्रशंसा करते हैं; किंतु यह नहीं कहते कि मैंने दैत्यराज रावण और कुम्भकर्णका वध किया। उनके वधकी चर्चा कर्मवाच्यमें करते हुए, उसकी गौणता प्रदर्शित करते हैं तथा स्वयं उसका श्रेय नहीं लेते—

कह रघुबीर देखु रन सीता। लछिमन इहाँ हत्यो इँद्रजीता॥
हनूमान अंगद के मारे। रन महि परे निसाचर भारे॥
कुंभकरन रावन द्वौ भाई। इहाँ हते सुर मुनि दुखदाई॥
(वही, ६। ११८। ५-६)

इसके उपरान्त राम अपने एक कार्यकी चर्चा सोल्लास करते हैं—वह है शिवलिङ्गकी स्थापना—

इहाँ सेतु बाँध्यों अरु थापेउँ सिव सुख धाम।
सीता सहित कृपानिधि संभुहि कीन्ह प्रनाम॥
(वही, ६। ११९ क)

अयोध्यामें लौट आनेपर राम सब सखाओंको बुलाकर उनसे वसिष्ठमुनिकी अर्चना कराते हैं तथा उन्हें ही अपनी सफलताका यश देते हुए कहते हैं—

गुर बसिष्ट कुल पूज्य हमारे। इन्ह की कृपाँ दनुज रन मारे॥
(वही, ७। ७। ३)

उसी स्थलपर राम मुनिसे कपियोंकी प्रशंसा करते हुए अपनी कृतज्ञताका कैसा प्रकाशन करते हैं—

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे॥
(वही, ७। ७। ४)

राम सत्ताधारी होकर आश्रितजनको कैसा आदर देते हैं—

प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सीलनिधान॥
(वही, १। २९ क)

राम वृक्षोंकी शाखाओंपर कूदनेवाले कपियोंको अपने समान बनाकर उनके साथ सखाका-सा व्यवहार करते हैं। धन्य है पराक्रमी रामका शील तथा उनकी विनयशीलता!

भगवान् श्रीरामकी लोकप्रियता

(लेखक—श्रीराजेन्द्रनारायणसिंहजी)

यदि हम विश्वके समस्त सद्ग्रन्थों—इतिहास-पुराण आदिका अवलोकन करें और प्रत्येक महापुरुषके चरित्रपर विशुद्ध हृदयसे विचार करें तो हम यही पायेंगे कि भगवान् श्रीरामके समान लोकप्रिय जननायक दूसरा कोई नहीं हुआ। मनुष्यकी तो बात ही क्या, उस अजन्मा, निर्विकार, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक परम सच्चिदानन्द भगवान्‌के नाना अवतारोंका चरित्र पढ़नेपर भी जन-सामान्यके हृदयमें जैसा प्रेमसागर श्रीरामके प्रति उमड़ता दीखता है, वैसा भगवान्‌के अन्य अवतारोंका वर्णन पढ़नेपर नहीं उमड़ता।

अध्यात्म, वाल्मीकि, श्रीतुलसीकृत मानस तथा अन्य सभी रामायणोंमें रामकी लोकप्रियतामें कहीं असमानता नहीं मिलती। लोकप्रियता प्राप्त होनेके कई कारण तथा साधन होते हैं। कोई अपनी शारीरिक पूर्णता तथा सुन्दरता एवं व्यक्तित्वके कारण लोगोंमें प्रिय होता है तो कोई अपने चरित्रसे, तीसरा अपने आतङ्कसे, चौथा अपनी जन-कल्याणकी भावना या परोपकारसे। कोई अपने सगे-सम्बन्धियोंमें, कोई अपने आश्रितों अथवा सेवकोंमें, कुछ लोग अपने राष्ट्रमें और कुछ महापुरुष सारे विश्वमें प्रिय होते हैं। परंतु भगवान् श्रीराम इन सबमें ही नहीं, समस्त चेतन तथा जड पदार्थोंमें भी प्रिय थे। पृथ्वीपर ही नहीं, वे देवलोकतकमें प्रिय थे।

पत्थर-ऐसे जड-पदार्थ भगवान् रामके सम्पर्कमें आनेपर सदेह होकर उनका गुणानुवाद करते देखे जाते हैं—

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर॥

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही॥
(मानस, १। २१०; १ छं०)

श्रीरामके प्रभावसे पत्थर अपने मुख्य गुण-गुरुताको छोड़कर जलपर तैरकर उनके लिये मार्ग बनानेमें सहायक होते हैं—

'श्रीरघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान।'
(वहीं, ६। ३)

पुरुषोत्तम श्रीरामकी लोकप्रियताका वर्णन पूर्णरूपसे करना असम्भव है। वह तो कल्पनाकी वस्तु है। यदि देखा जाय कि भगवान् रामको सेतुपरसे जाते जानकर जलचर भी उनके दर्शनकी लालसासे किस उमंग-उत्साहसे उमड़ पड़ते हैं तो हृदय गद्गद हो जाता है—

देखन कहुँ प्रभु करुना कंदा। प्रगट भए सब जलचर बृंदा॥
(वहीं, ६। ३। २)

जड पदार्थों तथा जलचरोंमें श्रीरामकी लोकप्रियता देखनेके बाद थलचरोंपर उनका प्रभाव देखें तो स्पष्ट दिखायी देता है कि यहाँ भी वे सर्वत्र समानरूपसे प्रिय हैं—उपास्य हैं। यथासामर्थ्य वनस्पति वर्ग—पेड़-पौधेतक भगवान् श्रीरामके उपकारके लिये, समय-असमय उनकी इच्छापूर्तिमें तत्पर मिलते हैं। श्रीरामजीके चित्रकूटमें आ जानेसे वहाँके वृक्ष-लता आदि सभी स्वतः फलयुक्त और फूलयुक्त हो गये—

जब तें आइ रहे रघुनायकु। तब तें भयउ बनु मंगलदायकु॥
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। मंजु बलित बर बेलि बिताना॥
(वहीं, २। १३६। ३)

पुनः देखिये कि जब श्रीराम सेतु-रचना करके अपनी सेनाके साथ पार पहुँचकर वानरोंको फल-मूल खानेकी आज्ञा देते हैं, तब—

सब तरु फरे राम हित लागी। रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी॥
(६। ४। २½)

वन्य पशु-पक्षी भी उनके प्रभावसे अछूते नहीं रहे हैं। यह समुदाय भी रामको इतना मानता था कि इनके कारण ही सब प्राकृतिक गुणोंको भी त्यागकर, आपसमें शत्रुभाव-का त्याग करके, प्रेम और सहयोगसे जीवन व्यतीत करने लगे—

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगत बैर बिचरहिं सब संगा॥
(वहीं, २। १३७। ½)

प्रेमकी पराकाष्ठा देखिये कि वे पशु भी भगवान्‌को प्रेमके साथ देखते हैं, जिन्हें मारनेके लिये वे अहेरपर होते हैं—

फिरत अहेर राम छबि देखी। होहिं मुदित मृगबृंद बिसेषी॥
(वहीं, २। १३७। १)

क्या इस कोटिकी लोकप्रियता किसीको प्राप्त थी!

भगवान् श्रीरामको वनमें आया जानकर सारा आदिवासी समुदाय पागल-सा होकर उनकी सेवामें स्वयं तत्पर हो जाता है और अपने प्रियसे सेवा ग्रहण करते रहनेकी प्रार्थना करता है—

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई॥
कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना॥
(वही, २। १३४। १)

हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई॥
बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥
तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब। सर निर्झर जलठाउँ देखाउब॥
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देता॥
(वही, २। १३५। ३-४)

हमारे भगवान् श्रीराम ऐसे पुरुष थे। उनमें पता नहीं, कैसे दिव्य गुण थे या उनका कैसा दिव्य प्रभाव था कि समरभूमिमें खड़े हुए पूर्ण उत्तेजित, अपमानित तथा प्राण लेनेकी भावनासे युक्त दुर्धर्ष शत्रु भी उन्हें देखकर विमोहित हो जाते थे। उनके हृदयोंमें अपने-आप प्रेम और अनुराग उत्पन्न हो जाता था—

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी॥
× × ×
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥
(वही, ३। १८। ½, २½)

जब शत्रु-पक्षमें श्रीरामजीकी इतनी प्रियता थी, तब अन्य जनोंमें तो कहना ही क्या है। अन्य राज्योंके वासी भी, जिनसे भगवान् रामचन्द्रजीका न कोई पूर्व परिचय था न कोई सम्पर्क था, उनसे स्वाभाविक प्रेम करने लगते थे। बाल, वृद्ध और नारीसमेत सभी समानरूपसे उनके प्रेममें विभोर हो जाते थे! ऐसा अद्भुत था भगवान् श्रीरामका चरित्र। जब महर्षि विश्वामित्रके साथ लक्ष्मणसहित श्रीराम जनकपुर पहुँचते हैं और राजा जनक महर्षिका आगमन सुनकर उनकी अगवानीके लिये आते हैं, तब वे श्रीरामको देखते ही उनके प्रति अनुरक्त हो जाते हैं—

कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा। दीन्हि असीस मुदित मुनिनाथा॥
× × ×
मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥
प्रेम मगन मनु जानि नृपु करि बिबेकु धरि धीर।
बोलेउ मुनि पद नाइ सिरु गदगद गिरा गभीर॥
(वही, १। २१४। ¾, ४; २१५)

जब भगवान् श्रीरामजी भाई लक्ष्मणके साथ, गुरुकी आज्ञा लेकर नगरकी शोभा देखने निकलते हैं, तब नगरवासी यह समाचार सुनते ही अपना सब कारबार छोड़कर और गृह त्यागकर उनके प्रेम और अनुरागमें भाग निकलते हैं। स्त्रियाँ भी सारा गृहकार्य त्यागकर उनके दर्शनको दौड़ पड़ती हैं—

देखन नगरु भूप सुत आए। समाचार पुरबासिन्ह पाए॥
धाए धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी॥
× × ×
जुबतीं भवन झरोखन्हि लागीं। निरखहिं राम रूप अनुरागीं॥
(वही, १। २१९। १-२)

नगरके बालक भगवान्‌को घेरे रहते हैं, उनके साथ-साथ घूमते हैं और उन्हें नगरसे परिचित कराते जाते हैं—

पुर बालक कहि कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहि देखावहिं रचना॥
(वही, १। २२३। ४)
× × ×
सिसु सब राम प्रेम बस जाने। प्रीति समेत निकेत बखाने॥
निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई। सहित सनेह जाहिं दोउ भाई॥
(वही, १। २२४। १)

जो आदर्श पुरुष दूसरोंको इतना प्रिय था, दूसरे जिसमें इतना अनुराग रखते थे कि अपने सब परमावश्यक गृहकार्य तथा गृह-परिवार आदिकी ममताका सहर्ष त्याग कर देते थे, उसके लिये उसके अपने पुरजन, सुहृद्, समवयस्क, श्रेष्ठ-जन, गुरु-जन, सेवक तथा मित्र—सभी अपने प्राणतक न्योछावर करनेको तत्पर रहते थे—इसमें आश्चर्य ही क्या है। इस मन, बुद्धि, अहंकार तथा इन्द्रिय आदिके संघातरूप शरीरमें प्राण ही प्रमुख है। सबका अत्यधिक अनुराग या प्रेम अपने-अपने प्राणोंसे स्वाभाविक ही है। कोई अपने प्राणसे बढ़कर किसीको नहीं जानता-समझता। परंतु भगवान् श्रीराममें सबका प्रेम प्राणोंसे भी अधिक था। उनके ऊपर आयी किसी आपदा-विपदाको लोग अपने ऊपर आयी हुई-से भी अधिक मानते थे। उनका वियोग समझकर सब समझने लगते कि रामके वियोगसे अच्छा तो अपने प्राणका वियोग है। उनके वियोगमें सबको अपना-अपना प्राण ही निकलता ज्ञात होता था। जब श्रीरामके वनगमनका समाचार फैलता है, तब नगरके सभी नर-नारी व्याकुल हो जाते हैं—

नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी । छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥

× × ×

जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई । बड़ बिषादु नहिं धीरजु होई ॥

मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोकु न हृदयँ समाइ ।
मनहुँ करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ ॥

(वही, २ । २५ । ३, ४; ४६)

भगवान्‌को सीताजी तथा लक्ष्मणजीके साथ वनमें जाते देखकर सब उनके साथ हो जाते हैं । घरपर पछतानेके लिये विकलाङ्ग, वृद्ध या अबोध बालक ही रह जाते हैं—

बालक बृद्ध बिहाइ गृहँ लगे लोग सब साथ ।
तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ ॥

(वही, २ । ८४)

श्रीरामजी जब सबको वापस करनेमें लाचार हो गये और अच्छी तरह समझ गये कि ये पुरवासी किसी तरह भी समझाने-बुझानेसे वापस न होंगे, तब उन्हें सोते छोड़कर भगवान्‌को भागना पड़ा । सबका प्रेमानुराग भगवान्‌में इतना था कि उसका बोझा भगवान्‌के लिये भी असह्य-सा प्रतीत होता था । तभी तो भगवान् भी भागे । उनके चले जानेपर रथके घोड़ेतक अपना सर्वस्व लुटा हुआ अनुभव करके बेसुध हो गये थे—

रथु हाँकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं ।
देखि निषाद बिषादबस धुनहिं सीस पछिताहिं ॥

(वही, २ । ९९)

देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं । जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं ॥

नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचन बारि ।
ब्याकुल भए निषाद सब रघुबर बाजि निहारि ॥

(वही, २ । १४१ । ४; १४२)

भगवान् श्रीराम अपने सेवकों तथा मित्रोंमें कितने प्रिय थे, इसका आभास तो भगवान्‌के राज्याभिषेकके बाद सुग्रीव-विभीषण आदिको वापस अपने-अपने स्थानपर जानेके लिये कहे जानेपर उनकी दशाओंसे हो जाता है । भगवान्‌के वापस घर जानेके लिये कहनेपर—

एकटक रहे जोरि कर आगे । सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे ॥

(वही, ७ । १६ । १)

कुमार अङ्गद तो अपने प्रभुको छोड़ना ही नहीं चाहता । बार-बार भगवान्‌के पैरों पड़ता है और उन्हींके पास रहकर उनकी नीच-से-नीच सेवा-टहल करते रहनेकी आज्ञा माँगता है । उसको अपना सर्वस्व रामके ही पास ज्ञात होता है—

तब अंगद उठि नाइ सिरु सजल नयन कर जोरि ।
अति बिनीत बोलेउ बचन मनहुँ प्रेम रस बोरि ॥

सुनु सर्बग्य कृपा सुख सिंधो । दीन दयाकर आरत बंधो ॥

× × ×

नीच टहल गृह कै सब करिहउँ । पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ ॥
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही । अब जनि नाथ कहहु गृह जाही ॥

(वही, ७ । १७ । ३, ४)

भक्तशिरोमणि तथा भगवान्‌के विशुद्ध सेवक श्रीहनुमान्‌जी गये ही नहीं, अयोध्यामें ही रह गये ।

अपने परिवारमें श्रीराम कितने प्रिय थे, यह तो रामायणमें सर्वत्र देखनेको मिलता है । सब इसीलिये आश्चर्यचकित थे कि रामके वियोगमें उनके प्राण क्यों नहीं निकल गये । वे भगवान्‌के वियोग-दुःखमें भी जीवित रह जानेका कारण अपना कोई पूर्वजन्मका घोर पाप मानते थे । जगह-जगह बार-बार माताएँ तथा भाई विलाप करते हैं और परमेश्वरसे अपनी मृत्यु माँगते हैं । पिता महाराज दशरथने तो रामको वास्तवमें चौदह वर्षके लिये वनको चला गया सुनते ही उन्हींके नामको रटते हुए अपने प्राण त्याग दिये—

हा रघुनंदन प्रान पिरीते । तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते ॥

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम ।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम ॥

(वही, २ । १५४ । ४; १५५)

इस प्रकार अन्य रामायणोंसे भी उद्धरण देकर भगवान् श्रीरामकी लोकप्रियतापर एक पूरा ग्रन्थ लिखा जा सकता है । उनकी लोकप्रियताका विशद और पूर्ण वर्णन कर सकना मुझ-जैसे तुच्छ अज्ञानीकी सामर्थ्यके बाहर है । मात्र महात्मा तुलसीदासजीकृत मानसका ही कुछ थोड़ा-सा हवाला देकर यह दिखानेका प्रयास किया गया है कि श्रीरामके प्रति जड-चेतन, स्थावर-जंगम, जन्तु-वनस्पति, पुरजन-परिजन, शत्रु-मित्र, कुल-परिवार, बाल-वृद्ध तथा मुनि-[illegible] कैसा अनन्य प्रेम और अनुराग था । ऐसे मधुर [illegible] आदर्श नायकके चरित्रके किसी अंशका भी अनुगमन यदि कोई करे या करनेका संकल्प कर ले तो उसका स्वयंका जीवन तो धन्य हो ही जायगा, उसके द्वारा बहुतोंका कल्याण हो जायगा ।



श्रीरामका कला-प्रेम

(लेखक—डॉ० श्रीगोपालजी 'स्वर्णकिरण', एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

श्रीराम विष्णु, ब्रह्मा एवं महेश—इन तीनों देवोंके गुणोंको आत्मसात् करनेवाले परब्रह्म परमेश्वर हैं—

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद ।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद ॥
(श्रीरामच० १ । १९८)

अयोध्यानरेश दशरथकी सबसे बड़ी रानी कौसल्याकी गोदमें उनका आगमन प्रेम और भक्तिके कारण हुआ । विप्र (ब्राह्मण), धेनु (गौ), सुर (देवता) एवं संतों (साधुओं) के कल्याणके लिये मनुष्यके रूपमें श्रीराम आये । अपने आचरण, अपने व्यवहार, अपने कार्य-कलाप, अपने कला-प्रेम आदिसे उन्होंने सबको अपने वशीभूत कर लिया । श्रीरामका शरीर सामान्य मनुष्यका शरीर नहीं था, उनका मस्तिष्क सामान्य मनुष्यका मस्तिष्क नहीं था, उनका दृष्टिकोण सामान्य मनुष्यका दृष्टिकोण नहीं था । जन्मके समय ही माता कौसल्या श्रीरामके अद्भुत रूपको देखकर चकित-विस्मित हुईं; जब कौसल्याने प्रार्थना की, प्रभुने अपनी मायाका विस्तार समेटा, वे शिशुरूपमें होकर रोदन करने लगे, तब कहीं उनके जीमें जी आया । बाल्यकालमें श्रीरामने अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित किया, अपनी अलौकिक क्षमता दिखलायी और गुरुकी कृपासे थोड़े ही समयमें सभी विद्याएँ सीख लीं । गोस्वामी तुलसीदासने श्रीरामके नख-शिखका वर्णन इस प्रकार किया है—

काम कोटि छबि स्याम सरीरा । नील कंज बारिद गंभीरा ॥
अरुन चरन पंकज नख जोती । कमल दलन्हि बैठे जनु मोती ॥
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे । नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे ॥
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा । नाभि गभीर जान जेहिं देखा ॥
भुज बिसाल भूषन जुत भूरी । हियँ हरि नख अति सोभा रूरी ॥
उर मनिहार पदिक की सोभा । बिप्र चरन देखत मन लोभा ॥
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई । आनन अमित मदन छबि छाई ॥
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे । नासा तिलक को बरनै पारे ॥
सुंदर श्रवन सुचारु कपोला । अति प्रिय मधुर तोतरे बोला ॥
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे । बहु प्रकार रचि मातु सँवारे ॥
झगुलिआ तनु पहिराई । जानु पानि बिचरनि मोहि भाई ॥
सकहिं न कहि श्रुति सेषा । सो जानइ सपनेहुँ जेहिं देखा ॥
(श्रीरामच० १ । १९८ । १–६)

अर्थात् श्रीरामके नील कमल एवं गम्भीर (जलसे पूरित) बादलके समान श्यामल शरीरमें करोड़ों कामदेवकी शोभा है । लाल-लाल सुन्दर चरण-कमलोंके नखोंकी ज्योति ऐसी मालूम पड़ती है, जैसे कमलकी पँखुड़ियोंपर मोती बैठे हुए हों, स्थिर हों । चरणतलोंमें वज्र, ध्वजा और अंकुशके चिह्न हैं । नूपुर (पायजेब) की ध्वनि सुनकर मुनियोंका मन मोहित हो जाता है । कमरमें करधनी और पेटपर तीन रेखाएँ (त्रिवली) हैं । नाभिकी गम्भीरताको वे ही जान सकते हैं या जानते हैं, जिन्होंने उसे देखा हो । बहुत-से आभूषणोंसे सुशोभित विशाल भुजाएँ हैं । हृदयपर बाघके नखकी बहुत ही निराली छटा है । छातीपर रत्नोंसे युक्त मणियोंके हारकी शोभा और ब्राह्मण (भृगु) के चरणचिह्नको देखते ही मन लुभा जाता है । कण्ठ शङ्खके समान उतार-चढ़ाववाली तीन रेखाओंसे युक्त है और ठोढ़ी बहुत ही सुन्दर है । मुखपर असंख्य कामदेवोंकी छटा छा रही है । दो-दो छोटे-छोटे दाँत हैं, लाल-लाल होठ हैं । नासिका और तिलकके सौन्दर्यका तो वर्णन ही कौन कर सकता है । सुन्दर कान और बहुत ही सुन्दर गाल हैं । मधुर तोतले शब्द बहुत ही अच्छे लगते हैं । जन्मके समयसे रखे हुए चिकने और घुँघराले बाल हैं, जिनको माताने बहुत प्रकारसे बनाकर सँवार दिया है । शरीरके ऊपर पीली झँगुली है—ढीला-ढाला कुरता ! उनका घुटनों और हाथोंके बल चलना बहुत भला लगता है । उनके रूपका वर्णन वेद और शेषनाग भी नहीं कर सकते । उसे वही जानता है, जिसने कभी स्वप्नमें भी उसे देखा हो । वर्णनसे स्पष्ट है कि श्रीराम कलाकी साक्षात् प्रतिमा हैं !

श्रीरामके कलात्मक शरीरका वर्णन गोस्वामी तुलसीदासने अन्यत्र भी किया है । उदाहरणार्थ—

पीत बसन परिकर कटि भाथा । चारु चाप सर सोहत हाथा ॥
तन अनुहरत सुचंदन खोरी । स्यामल गौर मनोहर जोरी ॥
केहरि कंधर बाहु बिसाला । उर अति रुचिर नागमनि माला ॥
सुभग सोन सरसीरुह लोचन । बदन मयंक तापत्रय मोचन ॥
कानन्हि कनक फूल छबि देहीं । चितवत चितहि चोरि जनु लेहीं ॥
चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी । तिलक रेख सोभा जनु चाँकी ॥

रुचिर चौतनीं सुभग सिर मेचक कुंचित केस ।
नख सिख सुंदर बंधु दोउ सोभा सकल सुदेस ॥
(श्रीरामच० १ । २१८ । २–४; २१४)

अर्थात् लक्ष्मणसहित श्रीरामके वस्त्र पीले रंगके हैं, कमरके पीले दुपट्टोंमें तरकस बँधे हैं। हाथोंमें सुन्दर धनुष और बाण शोभायमान हैं। श्याम और गौर वर्णके शरीरोंके अनुरूप क्रमशः सुन्दर श्वेत और रक्त चन्दनके आड़े टीके हैं। साँवरे और गोरे रंगकी मनोहर जोड़ी है। सिंहके समान पुष्ट गर्दन (गलेका पिछला भाग) है, विशाल भुजाएँ हैं। चौड़ी छातीके ऊपर अत्यन्त सुन्दर गजमुक्ताकी माला है। सुन्दर लाल कमलके समान नेत्र हैं। तीनों तापसे मुक्ति देनेवाला चन्द्रमाके समान मुख है। कानोंमें सोनेके कर्णफूल शोभायमान हैं, जो दृष्टिगोचर होते ही देखनेवालोंके चित्तको मानो चुरा लेते हैं। उनकी चितवन (दृष्टि) बड़ी मनोहर है और भौंहें तिरछी एवं सुन्दर हैं। मस्तकके ऊपर तिलककी रेखाएँ ऐसी सुन्दर हैं, मानो मूर्तिमती शोभापर मुहर लगा दी गयी हो। सिरपर चौतनीं—चौकोनी टोपियाँ हैं, काले और घुँघराले बाल हैं। दोनों भाई नखसे लेकर शिखातक (एड़ीसे चोटीतक) सुन्दर हैं और सारी शोभा जहाँ जैसी चाहिये, वैसी ही है।

वर्णनसे यह स्पष्ट है कि लक्ष्मणके साथ-साथ श्रीरामने शरीर-सौन्दर्यपर भी ध्यान दिया। प्राकृतिक शोभाके साथ-साथ कलात्मक साज-शृङ्गार दोनोंके शरीरके सौन्दर्यको द्विगुणित कर देते हैं।

विवाहके समय श्रीरामका रूप-वर्णन—

स्याम सरीरु सुभायँ सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन॥
जावक जुत पद कमल सुहाए। मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाए॥
पीत पुनीत मनोहर धोती। हरति बाल रबि दामिनि जोती॥
कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर॥
पीत जनेउ महाछबि देई। कर मुद्रिका चोरि चितु लेई॥
पिअर उपरना काखासोती। दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती॥
नयन कमल कल कुंडल काना। बदनु सकल सौंदर्ज निधाना॥
सुंदर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलकु रुचिरता निवासा॥
(श्रीरामच० १ । ३२६ । १—४)

अर्थात् श्रीरामका साँवला शरीर स्वभावसे ही सुन्दर है। उसकी शोभा करोड़ों कामदेवको लज्जित करनेवाली है। महावरसे युक्त चरण-कमल बड़े सुहावने हैं, जिनपर मुनियोंके मन-भ्रमर छाये रहते हैं। पीले रंगकी पवित्र और सुन्दर धोती प्रातःकालके सूर्य और बिजलीकी ज्योतिको हर लेती है। कमरमें सुन्दर किङ्किणी और कटिसूत्र हैं। विशाल भुजाओंमें सुन्दर आभूषण हैं। पीले रंगका जनेऊ महान् शोभा दे रहा है। हाथकी अँगूठी चित्तको चुराये लेती है। पीला दुपट्टा काँखासोती (जनेऊकी तरह) शोभित है, जिसके दोनों छोरोंपर मणि और मोती लगे हुए हैं। कमलके समान सुन्दर नेत्र हैं, कानोंमें सुन्दर कुण्डल हैं और मुख तो सारी सुन्दरताका कोष ही है। सुन्दर भौंहें और मनोहर नासिका है। ललाटपर जो तिलक है, वह सुन्दरताका घर है।'

महावर, पीली धोती, किङ्किणी, कटिसूत्र, कराभूषण, अँगूठी, पीला दुपट्टा, कुण्डल, तिलक आदिसे श्रीरामका कलाप्रेम स्पष्टरूपमें यहाँ प्रतिभासित होता है। श्रीराम अपने शरीरके प्रति निश्चय ही उदासीन नहीं थे; अपितु लौकिक मान्यताके अनुसार उन्होंने अपनेको सजाया और सँवारा।

श्रीरामने मोददायक सुखद सम्बन्ध स्थापित करनेके प्रयत्नमें कलाको अधिष्ठित देखा (Art is an attempt to create pleasing forms.—Herbert Read) और अपने क्रीड़ा-कौतुकके माध्यमसे कलाके विभिन्न रूपोंका प्रदर्शन किया। शास्त्रवर्णित कलाके सभी भेदों (वात्स्यायनके 'कामसूत्र'में चौंसठ, 'प्रबन्धकोश'में बहत्तर, 'ललितविस्तर'में छियासी) का उन्होंने विधिवत् अभ्यास किया अथवा नहीं—यह गोस्वामी तुलसीदासकी रचनाओंसे स्पष्ट नहीं है; पर कलाके अधिकांश भेदोंका उन्हें ज्ञान प्राप्त था—यह हम निस्संकोच स्वीकार कर सकते हैं। घोड़ेपर चढ़ना यदि कला है तो श्रीराम इस कलामें पारंगत थे—

तुरग नचावहिं कुअँर बर अकनि मृदंग निसान।
नागर नट चितवहिं चकित डगहिं न ताल बँधान॥
(श्रीरामच० १ । ३०२)

अर्थात् श्रीराम आदि राजकुमार मृदङ्ग और नगाड़ेके शब्द सुनकर घोड़ोंको उन्हींके अनुसार इस प्रकार नचा रहे हैं कि वे तालके बँधानसे जरा भी डिगते नहीं। चतुर नट चकित होकर यह देख रहे हैं।

प्रश्नोत्तर यदि कला है तो श्रीरामने इस कलाका सहारा लेकर धनुर्यज्ञके बाद परशुरामके क्रोधको शान्त

कासले भर गयी, मानो वर्षा ऋतुने कासरूपी सफेद बालोंके रूपमें अपना बुढ़ापा प्रकट किया हो। अगस्त्यके तारेने उदय होकर मार्गके जलको उसी प्रकार सोख लिया, जैसे संतोष लोभको सोख लेता है। नदियों और तालाबोंका निर्मल जल ऐसी शोभा पा रहा है, जैसे मद और मोहसे रहित संतोंका हृदय हो। नदी और तालाबका जल वैसे ही धीरे-धीरे सूख रहा है, जैसे ज्ञानी विवेकवान् पुरुष ममताका त्याग करते हैं। शरद्ऋतु जानकर खञ्जन पक्षी आ गये, जैसे समय पाकर सुकृत सुशोभित होने लगते हैं—पुण्य प्रकट हो जाते हैं। धरती पंक और धूलसे मुक्त हुई वैसे ही सुशोभित है, जैसे नीतियुक्त, नीतिनिपुण राजाकी करनी। जलके कम हो जानेसे मछलियाँ उसी प्रकार, व्याकुल हो रही हैं, जैसे मूर्ख (विवेकशून्य) कुटुम्बी गृहस्थ धनके बिना व्याकुल होता है। निर्मल आकाश बादलोंके बिना वैसे ही सुशोभित है, जैसे भगवद्भक्त सभी आशाओंको छोड़कर सुशोभित होते हैं। कहीं-कहीं शरद्ऋतुकी थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही है—उसी प्रकार, जैसे कोई-कोई विरले व्यक्ति मेरी भक्तिको प्राप्त कर लेते हैं।'

लोभ, मोह, ममता, अनीति आदिको छोड़कर संतोष, वैराग्य, ज्ञान, नीति आदिको आत्मसात् करानेके उद्देश्यसे राम यहाँ लक्ष्मणको कलाके रूपोंका दर्शन कराते हैं। कला सचमुच ज्ञान-विज्ञानका कोष है।

सीताहरणके पश्चात् श्रीराम प्रकृति-जगत्‌से जो सीताका पता पूछते हैं, उसमें उनका कला-प्रेम प्रतिभासित होता है—

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना॥
कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा॥
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू॥
किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं॥
(रा० च० मा० ३। २९। ५—७$\frac{1}{2}$)

अर्थात् हे पक्षियो! हे पशुओ! हे भौंरोंकी पंक्तियो! तुमने कहीं मृगनयनी सीताको देखा है? खञ्जन, तोता, कबूतर, मृग, मछली, भौंरोंका समूह, प्रवीण कोकिल, कुन्दकली, अनार, बिजली, कमल, शरद्‌का चन्द्रमा और नागिनी, वरुणका पाश, कामदेवका धनुष, हंस, गज और सिंह—ये सब आज अपनी प्रशंसा सुन रहे हैं। बेल, सुवर्ण और केला हर्षित हो रहे हैं। इनके मनमें जरा भी शङ्का और संकोच नहीं है। हे जानकी! सुनो, तुम्हारे बिना ये सब आज ऐसे हर्षित हैं, मानो राज पा गये हों। अर्थात् तुम्हारे अङ्गोंके सामने ये सब तुच्छ, अपमानित और लज्जित थे, आज तुम्हें न देखकर ये अपनी शोभाके अभिमानमें फूल रहे हैं। तुमसे यह अनख—स्पर्द्धा कैसे सही जाती है? प्रिये! तुम शीघ्र प्रकट क्यों नहीं होती?

खञ्जन, तोता, कबूतर, मृग, मछली, भ्रमरसमूह, कोयल, कुन्दकली, अनार, बिजली, कमल, शरच्चन्द्र, नागिनी, बेल, सुवर्ण, केला आदि प्राकृतिक उपकरण नारी-शरीरकी उपमाके लिये वस्तुतः प्रसिद्ध हैं। श्रीराम महाविरही—अत्यन्त कामी रूपमें ही सही, इन प्राकृतिक उपकरणोंके माध्यमसे सीताके शरीर-सौन्दर्यको देख रहे हैं। सीताका शरीर कलाकी मूर्ति है। सीता निश्चय ही रावणके द्वारा अपहृता हैं, पर विभिन्न प्राकृतिक उपकरणों-के द्वारा सीताका शरीर श्रीरामके सामने अनायास उपस्थित हो जाता है।

पश्चिमी विचारक एवं कलाकार वाल्टर पेटरका कथन है कि 'All arts constantly aspire towards the condition of music.' (The Renaissance, Georgione) अर्थात् 'सभी कलाएँ स्थायीरूपसे संगीतकी स्थितिको प्राप्त करना चाहती हैं।' मतलब यह कि कलाके दर्शन राग-रागिनियोंमें सम्भव हैं। कला संगीतका पर्याय है, पर कला वस्तुतः केवल संगीत नहीं है। पश्चिममें इसको वास्तु, मूर्ति, चित्र, संगीत और काव्य-कलाके पाँच भेदोंके अन्तर्गत एक भेदके रूपमें देखते हैं। हमारे यहाँ भारतवर्षमें कलाका अर्थ है—अभिव्यञ्जनाकी प्रणाली—अभिव्यञ्जनाकी कुशल शक्ति ही तो कला है (साकेत, मैथिलीशरण गुप्त)। कला काव्यके अन्तर्गत है या अधिक-से-अधिक कलाका अर्थ है—'शिल्प-संगीत-भेद—कला शिल्पे संगीतभेदे च।' ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिमसे लेकर पूर्वतक कलाके आनन्द-तत्त्व, सुखतत्त्वपर ही दृष्टिको केन्द्रित किया गया और कलाका लक्षण बतलाया गया—'कं=सुखं लाति=ददाति इति।'—अर्थात्

जो सुख प्रदान करे, वह कला है।' इस लक्षणमें कलाका व्यापक रूप हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। श्रीराम कलाके इस लक्षण या रूपको स्वीकार करते हैं। विवाहके अवसरपर भिन्न-भिन्न प्रकारके वाद्योंका वादन सुनते हैं और आनन्द प्राप्त करते हैं, भिन्न-भिन्न प्रकारके दृश्य देखते और सुख पाते हैं, इत्यादि। श्रीराम शिल्प और संगीतके निष्णात पंडित हों अथवा नहीं, पर शिल्प और संगीतसे श्रीरामका विरागभाव कहीं भी सिद्ध नहीं होता।

वाणीके कुशल प्रयोक्ताके रूपमें श्रीराम कला-प्रेमीकी संज्ञा पा सकते हैं। वाल्मीकि मुनिने इनके सम्बन्धमें कहा है—वेदवेदान्ततत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः। (वा० रा० १। १। १४) अर्थात् श्रीराम सर्वशास्त्रतत्त्वज्ञ थे, पर धनुर्वेदमें वे अत्यधिक निष्णात थे। गोस्वामी तुलसीदासके राम इसके विलोम नहीं हैं। विनयशील आदर्श कलाप्रेमीके रूपमें श्रीरामने धनुषभङ्गके पश्चात् आये हुए परशुरामको सम्बोधित कर कहा—

देखि कुठार बान धनु धारी। भै लरिकहि रिस बीरु बिचारी॥
नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा। बंस सुभायँ उतरु तेहिं दीन्हा॥
जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं। पद रज सिर सिसु धरत गोसाईं॥
छमहु चूक अनजानत केरी। चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी॥
हमहि तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा॥
राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तोहारा॥
देव एकु गुनु धनुष हमारें। नव गुन परम पुनीत तुम्हारें॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे। छमहु बिप्र अपराध हमारे॥
(रा० च० मा० १। २८१। १-४)

अर्थात् हे मुने! आपको कुठार, बाण और धनुष धारण किये देखकर और वीर समझकर बालक लक्ष्मणको क्रोध आ गया। वह आपका नाम तो जानता था, पर उसने आपको पहचाना नहीं। अपने वंशके स्वभावके अनुसार उसने उत्तर दिया। यदि आप मुनिकी तरह आते तो हे स्वामी! बालक आपके चरणोंकी धूलि सिरपर रखता। अनजाने जो भूल हुई, उसको क्षमा कर दीजिये। ब्राह्मणोंके हृदयमें बहुत अधिक दया होनी चाहिये। नाथ! हमारी और आपकी बराबरी कैसी। कहिये न, कहाँ चरण और कहाँ मस्तक! कहाँ मेरा राममात्र छोटा-सा नाम और कहाँ आपका परशुसहित बड़ा-सा नाम! हे देव! हमारे तो एक ही गुण (डोरी) से युक्त धनुष है और आपमें परम पवित्र शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता—ये नौ गुण हैं। हमारे अपराधोंको आप क्षमा कीजिये!

स्पष्ट है, श्रीरामने शालीनतापूर्वक यहाँ परशुरामके क्रोधको शमित करनेका प्रयास किया है—अपनेको नीचा दिखलाकर और परशुरामको ऊँचा बतलाकर। कुशल व्यक्ति ही ऐसे वचनका प्रयोग कर सकता है।

श्रीरामने कलाको रुग्ण मनःस्थितिकी उपजके रूपमें स्वीकार नहीं किया, अपितु उसे स्वाभाविक मनःस्थितिकी उपजके रूपमें माना। श्रीरामकी दृष्टिमें कला परम विचार (Idea) का व्यवहार-रूप है। वह उत्तरोत्तर उत्कर्षको प्राप्त होती है। स्थूल और सूक्ष्म—दो मुख्य रूपोंमें वह हमारे सामने आती है। आकाङ्क्षा (Aspiration), अशान्ति (Disquiet), अस्पष्टता—रहस्यमयता (Mystery) तथा परिष्कृति (Sublimation) के सोपानसे होता हुआ विचार कलारूपमें हमारे मन-प्राणोंको छूता है। कला सृष्टिका सारतत्त्व है, प्राकृतिक सौन्दर्य या सुषमाका प्रतिरूप है, पर वस्तुनिष्ठ पर्यायके सहारे हम उसका रूप समझते हैं और ग्रहण करते हैं। विलक्षणता, सरलता, सम्प्रेषणीयता आदि आन्तरिक गुणोंके कारण वह मोहक प्रतीत होती है। कलाका यह शास्त्रीय रूप निस्संदेह श्रीरामको अज्ञात नहीं होगा, जब कि वे सर्वशास्त्रतत्त्वज्ञ, नीति-निपुण, आचार-कुशल, धर्म-वेत्ता, कर्मवीर पुरुषोत्तमके रूपमें स्वीकार किये जाते हैं। श्रीराम स्थूलरूपमें कलानिकायके प्रतिष्ठाता नहीं कहे जा सकते, पर विभिन्न उपयोगी ललित कलाओंके समर्थक अवश्य सिद्ध किये जा सकते हैं। उनका गुरुजन-प्रेम, पुरजन-परिजन-प्रेम, विद्या-प्रेम, धर्म-प्रेम, कला-प्रेम आदि सभी वास्तवमें विचार और विश्लेषणके विषय हैं।

भगवान् श्रीरामकी आदर्श राजनीति

(लेखक—श्रीशंकरदयालुजी श्रीवास्तव)

भगवान् रामके सम्बन्धमें प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। रामकथा तथा रामचरितका आश्रय लेकर अनेक ग्रन्थोंका प्रणयन हुआ। गोस्वामी तुलसीदासने रामचरितमानसमें लिखा है—

राम कथा कै मिति जग नाहीं।··················॥
नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा॥
(१।३२।३)

अर्थात्—'संसारमें रामकथाकी कोई सीमा नहीं, वह अनन्त है। श्रीरामके अनेक प्रकारके अवतार हुए हैं, अतः रामायण भी अगणित हैं।' वाल्मीकिरामायण एवं अध्यात्म-रामायणके अतिरिक्त योगवासिष्ठ एवं महाभारतमें तथा अग्निपुराण, नरसिंहपुराण आदि कई पुराणोंमें रामचरितका वर्णन मिलता है। तुलसीकृत रामायण भी बहुत प्रसिद्ध और प्रचलित है। अन्य अनेक काव्य-ग्रन्थ भी हिंदीमें लिखे गये हैं। संस्कृत और हिंदीमें ही नहीं, अन्य कई भारतीय भाषाओंमें भी राम-काव्योंकी रचना की गयी है। वाल्मीकिमुनि भगवान् रामके समसामयिक थे। नारदसे ही उन्होंने रामकथा और राम-महिमा नहीं सुनी थी, बल्कि राम और उनके परिवारके अनेक सदस्योंसे भी उनका सम्पर्क हुआ था। महाभारतके प्रणेता महर्षि वेदव्यास त्रिकालदर्शी थे। अतः उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह तथ्यपूर्ण और विश्वसनीय ही कहा जायगा। गोस्वामीजीने 'नानापुराण निगमागम'के आधारपर अपनी लोकप्रिय रामायणकी रचना की। रामायण, रामकाव्य तथा रामकथासे म्रियमाण हिंदू-जातिको बड़ा बल मिला। हिंदू-धर्म, हिंदू-संस्कृति, हिंदुओंके आचार-विचार तथा जीवन-परम्पराको सुरक्षित रखनेमें भी उनसे बड़ी सहायता प्राप्त हुई।

श्रीरामकी राजनीति

जहाँतक भगवान् रामकी राजनीतिका सम्बन्ध है, कोई ऐसा ग्रन्थ देखने-सुननेमें नहीं आया, जिसमें रामके राजनीतिक विचार तथा सिद्धान्त संगृहीत हों, अथवा जिसमें उनकी शासनप्रणालीका विशद वर्णन हो। वाल्मीकिमुनि तथा गोस्वामी तुलसीदासने रामराज्यका जो वर्णन किया है, उससे सामाजिक व्यवस्था ही अधिक प्रकट होती है, राजनीतिक व्यवस्था कम। श्रीरामकी राजनीति-विषयकी सामग्री रामायणों तथा राम-साहित्यसे सम्बन्धित अन्य ग्रन्थोंमें यत्र-तत्र बिखरी हुई पायी जाती है। इस प्रसङ्गमें हम एक बात और कहेंगे। रामका राज्याभिषेक वैदिक मन्त्रोंके साथ सम्पन्न हुआ था। इससे स्पष्ट है कि वेद राम-कालसे भी पहलेके हैं। वैदिक कालमें जो राजधर्म, राजनीतिक परम्परा तथा शासन-पद्धति प्रतिष्ठित थे, उनका प्रचलन दीर्घकालतक रहा। रामराज्यके समयमें भी वे बातें चलती रही हों तो इसमें आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं है। ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा यजुर्वेदके कतिपय मन्त्रों तथा मनुस्मृति, शुक्रनीतिसार, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थोंसे इस बातका प्रचुर प्रमाण मिलता है कि प्राचीन कालमें लोकतन्त्रकी पद्धति प्रचलित थी। किंतु उस लोकतन्त्रमें राजा भी होता था—और उस राजाको राज्य-व्यवस्थामें आदर एवं सम्मानका स्थान प्राप्त होता था। केवल राजाके अस्तित्वके आधारपर यह तर्क नहीं दिया जा सकता कि वह लोकतन्त्र नहीं, राजतन्त्र था। राजतन्त्रमें राजाको अनियन्त्रित अधिकार प्राप्त होते हैं; किंतु प्राचीन भारतमें ऐसा नहीं था। राजा अपने अमात्यों (मन्त्रियों), सभासदों तथा प्रजाजनोंके परामर्शसे राजकाज चलाता था। राजाका अस्तित्वमात्र राजतन्त्रका द्योतक माना जाय तो इंग्लैंड भी राजतन्त्र ही कहा जायगा। किंतु राजाके रहते हुए भी इंग्लैंड लोकतन्त्रीय राज्य ही माना जाता है। जापान भी एक लोकतन्त्रीय राज्य है, किंतु वहाँ भी सम्राट्का पद बना हुआ है।

धर्म और नैतिकता

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामकी राजनीति धर्म और नैतिकतापर आधारित थी। उसमें सदाचार और सत्याचरणकी प्रधानता थी। आधुनिक राजनीतिमें धर्मको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा जाता है और कहा जाता है कि राजनीतिको धर्मसे बिल्कुल पृथक् रखना चाहिये। धर्मको संघर्ष और विग्रहका कारण माना जाता है, इसीलिये राजनीतिक मामलोंमें उसे कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। उसे राजनीतिसे अलग रखनेमें ही समाजका कल्याण समझा जाता है। स्वतन्त्र भारतके संविधानमें भी राज्यका कोई धर्म नहीं माना गया है। उसे 'धर्म-निरपेक्ष राज्य'की संज्ञा दी गयी है। सभी नागरिकोंको अपने-अपने धर्मके अनुसार चलने तथा पूजा-उपासना

करनेकी स्वतन्त्रता दी गयी है, किंतु राज्य किसी एक धर्मका प्रचार-प्रसार नहीं कर सकता और न किसी धर्मके साथ पक्षपात कर सकता है। किंतु प्राचीन भारतीय संस्कृतिका मूलमन्त्र धर्म ही रहा है। धर्म ही भारतीय जीवनका मूलतत्त्व रहा है। धर्मविहीन राजनीति समाजमें कितनी स्वार्थपरता, अर्थलोलुपता और भ्रष्टाचार फैला रही है—यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है। यदि राजनीतिक जीवनमें पवित्रता लाना है, उसे भ्रष्टाचारसे मुक्त करना है और सत्यनिष्ठाकी प्रतिष्ठा करनी है तो राजनीति और राजनीतिज्ञोंको धर्मका आश्रय लेकर चलना होगा। यदि धर्म मनुष्यको सत्पथपर चलनेके लिये प्रेरित करता है, मनुष्यको सच्चा मानव बनानेका प्रयत्न करता है, उसको निस्स्वार्थ सेवा और त्यागकी शिक्षा देता है तो कोई कारण नहीं है कि राजनीति तथा राजनीतिक जीवनमें धर्मकी उपेक्षा-अवहेलना की जाय। महात्मा गांधी तथा आचार्य बिनोवा भावे-जैसे मनीषियोंने धर्मका महत्त्व समझा और उन्होंने इस बातपर बल दिया कि राजनीतिक कार्य-कलापमें भी धर्मका आधार आवश्यक है; किंतु भारतकी वर्तमान राजनीति पाश्चात्त्याभिमुख होकर चल रही है। अस्तु,

भगवान् रामका जीवन धर्मसे ओत-प्रोत था। चित्रकूटमें सभी सभासदोंके समक्ष भाषण करते हुए ऋषि वसिष्ठ कहते हैं—

'परम धुरीन भानुकुल भानू।'

(श्रीरामच० २। २५३। १)

रामराज्यके वर्णनके प्रकरणमें भी रामचन्द्रजीको 'श्रुतिपथ पालक धर्म धुरंधर।' (वही, ७। २३। १) कहा गया है। उसी प्रकरणमें गोस्वामीजीने लिखा है—

प्रातकाल सरऊ करि मज्जन। बैठहिं सभाँ संग द्विज सज्जन॥
बेद पुरान बसिष्ट बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं॥

(वही, ७। १२५। १)

इससे स्पष्ट है कि श्रीरामके शासन-कालमें राजसभामें धार्मिक प्रवचन होते थे। मुनि वसिष्ठ स्वयं वेद-पुराणकी कथाएँ सुनाते थे। तभी तो रामराज्य धर्मके वातावरणसे ओत-प्रोत था—

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग॥

(वही, ७। २०)

भगवान् राम चाहते थे कि सभी नागरिक धर्मके अनुसार आचरण करें। निषादराजकी विदाईके समय उन्होंने उसे उपदेश किया—

'मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू।'

(वही, ७। १९। १)

इन सब बातोंसे यह प्रमाणित होता है कि मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामकी राजनीति धर्मपर ही आधारित थी। उनका अखण्ड विश्वास था कि राज्यमें जब सब लोग धर्मका पालन करेंगे, धर्मानुसार आचरण करेंगे, तभी सम्पूर्ण समाजका कल्याण होगा, शान्ति और सुखका चारों ओर विस्तार होगा। प्राचीन भारतमें राजा, मन्त्री और सभासद्—सभीके आचरण एवं व्यवहारमें धर्मको बहुत महत्त्व दिया जाता था। एक श्लोकमें कहा गया है कि 'जिस सभामें सब सदस्योंके देखते हुए अधर्मसे धर्म और असत्यसे सत्यका हनन किया जाता है, उस सभामें सब मृतकके समान हैं। संसारमें एक धर्म ही अपना मित्र या सुहृद् है, जो मृत्युके पश्चात् भी साथ जाता है; और सब वस्तुएँ तो शरीरके साथ ही नष्ट हो जाती हैं। अतः सभी सभासदोंको किसी अवस्थामें धर्मके विरुद्ध आचरण नहीं करना चाहिये।'

सत्ताका मोह नहीं

संसारका इतिहास इस बातका साक्षी है कि सत्ता और सिंहासनके लिये कितने रक्तरञ्जित काण्ड और युद्ध हुए, कितने नृशंस और जघन्य अत्याचार हुए। सत्ताके लिये भाई-भाईमें, पिता-पुत्रमें और चचा-भतीजेमें घोर शत्रुता पैदा हो गयी और भीषण संघर्ष हुए। सत्तामें आनेके लिये बीभत्स और अमानुषिक कार्य किये गये; दानवता और पाशविकताके निम्नस्तरपर लोग उतर आये; किंतु भगवान् श्रीरामचन्द्रको सत्ताका कोई मोह नहीं था। मानवताके उच्च आदर्शोंके लिये, जीवनके उच्च मूल्योंके लिये उन्होंने हाथमें आती हुई सत्ताको तृणवत् त्याग दिया। महाराज दशरथने कुल-परम्पराके अनुसार ज्येष्ठ पुत्र होनेके नाते उन्हींका राज्याभिषेक करनेका निर्णय किया और उसके लिये सब तैयारी भी हो गयी; किंतु अकस्मात् अप्रत्याशितरूपसे, पिताको धर्मसंकटमें देखकर, उन्होंने [illegible] लिये वे राजमहलके जीवनका ऐश्वर्य वैभव छोड़कर वनगमनके लिये तैयार हो गये। उन्होंने राजसिंहासन भाई भरतके लिये छोड़ दिया। मनमें माता कैकेयी या और किसीके प्रति कोई दुर्भाव लाये बिना श्रीरामने [illegible] ही [illegible]

परम धर्म समझा । उनकी उस समयकी मनःस्थिति अत्यन्त उदात्त थी । उस समयके उनके मुखारविन्दके सम्बन्धमें गोस्वामीजीने बहुत ही ठीक लिखा है—

प्रसन्नतां या न गताभिषेकत-
स्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ।
(मानस २ । २ श्लोक)

—अपना राज्याभिषेक होनेकी बात सुनकर न तो श्रीरामचन्द्रजी हर्षसे फूल उठे और न वनवाससे उनका मुख मलीन हुआ—वे कितने बड़े स्थितप्रज्ञ थे, समबुद्धियुक्त एवं द्वन्द्वातीत थे । उन्हींकी तरह भाई भरतको भी सत्ताका कोई लोभ नहीं था । तभी तो अपने राज्याभिषेककी बात स्वीकार न करके रामचन्द्रजीको वनसे लौटा लाने और राजसिंहासनपर बैठानेके लिये वे दल-बलसहित चित्रकूट पहुँचे; किंतु किसीका आग्रह-अनुरोध श्रीरामको उनके संकल्पसे डिगा नहीं सका । यह भलीभाँति स्पष्ट हो जानेपर भी, कि वे चौदह वर्षकी वनवास-अवधिके समाप्त होनेके पूर्व अयोध्या कदापि नहीं लौटेंगे, भरतजी विधिवत् सिंहासनपर बैठकर शासन करनेके लिये सहमत नहीं हुए । रामजीकी पादुका लेकर वे चित्रकूटसे लौट गये और राजधानी अयोध्याके समीप नन्दिग्राममें उसकी स्थापना करके बड़े भाईकी ओरसे राजकाज चलाने लगे । वे राज्यको भगवान् रामकी धरोहर वस्तुके रूपमें मानते थे और एक तपस्वीकी भाँति वल्कल और मृगचर्म धारणकर कुटीमें रहते थे । लङ्का-विजयके पश्चात् श्रीरामचन्द्रके वापस आते ही भरतजीने उनके चरणोंमें पादुका पहना दी और शासनसूत्र उन्हें सौंप दिया । बड़ी धूमधामके साथ उन्होंने श्रीरामजीका राज्याभिषेक सम्पन्न कराया । वाल्मीकिरामायणके अनुसार वनवासकी अवधिमें भरतने राजकोषकी दसगुनी वृद्धि की ।

श्रीरामचन्द्रजीको सत्ता और राज्यके विस्तारका लोभ होता तो वालिवधके बाद राज्य सुग्रीवको न देकर स्वयं ले सकते थे । इसी प्रकार लङ्काके पतनके बाद उनका राज्य भी अधिग्रहण कर सकते थे । किंतु श्रीरामने पहले ही विभीषणको लङ्काधिप बनानेका वचन दे रक्खा था । वचन ही नहीं दिया था, अभिषेक भी करवा दिया था । रावणके वधके बाद श्रीरामने अपने वचनको पूरा किया और विधिवत् विभीषणका राज्याभिषेक कराया । सत्ताके प्रति अनुचित मोह और आसक्ति न होनेका एक बड़ा कारण कुलकी परम्परा, संस्कार, शिक्षा, सदाचार आदि था । त्याग भारतीय संस्कृतिका एक महामन्त्र रहा है और त्यागके लिये तपस्या आवश्यक होती है । आर्य-संस्कृति, जो आध्यात्मिक संस्कृति थी, परमार्थपर ही अधिक बल देती थी, स्वार्थपर नहीं । आग्नेय महापुराणमें श्रीरामचन्द्रजीद्वारा लक्ष्मणको जो राजनीति उपदिष्ट की गयी है, उसमें कहा गया है कि 'बाहर और भीतरसे शुद्ध रहकर राजा आस्तिकता (ईश्वर तथा परलोकपर विश्वास) द्वारा अन्तःकरणको पवित्र बनाये, गुरुजनोंका देवताओंके समान ही सम्मान करे ।' यह भी कहा गया है कि 'राजा विनयगुणसे सम्पन्न होकर आत्मज्ञानका चिन्तन करे ।' ऐसी शिक्षा और आचारके होते हुए राजसत्ताके लिये मोह कैसे उत्पन्न हो सकता है । महाराज दशरथका परिवार एक आदर्श संयुक्त परिवार था और सभी भाइयोंमें परस्पर प्रगाढ़ प्रेम था; फिर उसमें सत्ताका लोभ और संघर्ष हो ही कैसे सकता था । आजके राजनीतिज्ञ सत्ताके पीछे पागल हैं । उनका अपना कोई स्थिर सिद्धान्त और आदर्श नहीं है । वे सत्तामें आने और पद पानेके लिये निर्लज्जतापूर्वक निम्नस्तरपर उतर सकते हैं । जबतक शिक्षा-पद्धतिमें आमूलचूल परिवर्तन नहीं किया जाता, आर्य-संस्कृतिके आधारपर उसका पुनर्गठन नहीं किया जाता और शिक्षा-क्रममें धर्मको समुचित स्थान नहीं दिया जाता और राजनीतिमें सत्य, सदाचार और धर्मको यथेष्ट महत्त्व नहीं दिया जाता, तबतक सत्ता-मोह, पद-लोलुपता, अर्थलोलुपता, अवसरवादिता, स्वार्थपरता तथा सिद्धान्तहीन पथ-परिवर्तनकी कलुषित राजनीति बदल नहीं सकती ।

रामराज्यमें लोकतन्त्र

यद्यपि कहनेके लिये उस समय राजतन्त्र स्थापित था और वंशानुगत शासनका क्रम चलता था, तथापि वास्तवमें शासन लोकतन्त्रीय भावनाओंसे ओत-प्रोत होता था । यद्यपि राजाका आधुनिकरूपमें निर्वाचन नहीं होता था, किंतु मन्त्रियों, सभासदों आदिके परामर्शसे राजपदपर नियुक्ति की जाती थी । श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक करनेका निर्णय भी गुरु वसिष्ठ तथा अन्य मन्त्रियोंके परामर्शसे किया गया था । सभासदों एवं पुरवासियोंकी सहज सहमति भी थी । श्रीरामजी अपने सुन्दर स्वभाव, व्यवहार तथा अपनी धर्मपरायणताके कारण सबके लोकप्रिय बन चुके थे । इसलिये विरोध या असहमतिका कोई प्रश्न ही नहीं था । रामके वनवास-कालमें उनकी ओरसे भरतजी राजकाज सँभालें, यह निर्णय चित्रकूटमें भरी सभामें किया

गया था । वाल्मीकिरामायणके अनुसार जब अपने बड़े भाई वालीका वध हुआ समझकर सुग्रीव उनकी जगह राजपदपर प्रतिष्ठित हो गये, तब उन्होंने भी रामको बताया कि 'मन्त्रियोंने एक सभा करके मुझे राजा बना दिया ।' बादमें वाली जब जीवित लौट आये, तब विनीतभावसे सुग्रीवने कहा कि 'अराजकता बचानेके लिये मैंने राजमुकुट ग्रहण करना स्वीकार किया ।' किंतु वालीने जनसभा बुलाकर सुग्रीवपर विश्वासघात करनेका आरोप लगाया और उन्हें राज्यसे निष्कासित कर देनेका आदेश जारी कराया । इससे स्पष्ट है कि राजा स्वेच्छाचारी नहीं होते थे । वे राजसभा तथा मन्त्रियोंसे परामर्श करके कोई निर्णय करते थे । लङ्काधीश रावणने भी आक्रमणका भय उपस्थित होनेपर राजसभा बुलाकर परामर्श किया था कि क्या किया जाय ।

भगवान् राम कितने बड़े लोकतन्त्रवादी थे और जनमतका कितना अधिक आदर करते थे, यह उस प्रकरणसे स्पष्ट हो जाता है, जब उन्होंने पुरवासियोंकी एक महती सभा बुलाकर प्रजाको उपदेश दिया । उन्होंने कहा—

सुनहु सकल पुरजन मम बानी । कहउँ न कछु ममता उर आनी ॥
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई । सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई ॥
. . . .
जौं अनीति कछु भाषौं भाई । तौ मोहि बरजहु भय बिसराई ॥
(मानस ७ । ४२ । २–३)

इस कथनसे कितनी विनयशीलता, कितनी निरहंकारता, कितनी निश्छलता और सरलता प्रकट होती है । अपनी प्रभुता और राजपदका भगवान् रामको जैसे रञ्चमात्र भी गर्व नहीं था । उन्होंने सभामें उपस्थित सभी सभासदों तथा पुरवासियोंको इस बातकी स्वतन्त्रता दे दी कि यदि उनके कथनमें कोई बात अनुचित या नीति-विरुद्ध जान पड़े तो बिल्कुल भयरहित होकर वे उन्हें टोक दें, रोक दें और अपनी आपत्ति प्रकट कर दें । आज तो जनताद्वारा निर्वाचित मन्त्री भी, जो सिद्धान्तरूपसे जनताका सेवक माना जाता है, कहीं भाषण करते या बोलते हुए इतनी छूट अपने श्रोताओंको नहीं दे सकता । इसीलिये हम निस्संकोचरूपसे कह सकते हैं कि राजा होते हुए भी श्रीरामचन्द्रजी पूरे लोकतन्त्रवादी थे; जनताको और लोकमतको अपने पक्षमें रखकर वे काम करते थे ।

रामराज्यके वर्णनसे भी इस बातका प्रभूत प्रमाण मिलता है कि भगवान् रामके शासनमें चारों ओर लोकतन्त्रीय वातावरण व्याप्त था और सर्वसाधारणकी सुख-सुविधाका पूरा ध्यान रखा जाता था । लोगोंके जीवन-निर्वाहका स्तर ऊँचा था । निपट निर्धनता और अभावग्रस्तताकी स्थिति कहीं नहीं थी । कोई कष्टमयजीवन बितानेके लिये विवश नहीं था । समाजमें अधिक भेद-भाव और विषमता नहीं थी । जनतामें किसी प्रकारकी अशान्ति अथवा असंतोष नहीं था । सभी सुखी थे । सभी शान्तिके साथ सहयोगपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे । लोगोंमें (आज-कलकी तरह) पारस्परिक कलह वा संघर्ष नहीं था । वैर-वैमनस्य लोगोंमें नहीं था । रामचरितमानससे रामराज्यके वर्णनका कुछ अंश उद्धृत करनेका लोभ हम संवरण नहीं कर सकते—

राम राज बैठें त्रैलोका । हरषित भए गए सब सोका ॥
बयरु न कर काहू सन कोई । राम प्रताप बिषमता खोई ॥

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग ॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा । राम राज नहिं काहुहि ब्यापा ॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती । चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती ॥
(७ । १९ । ४; ७ । २०; ७ । २० । १)

अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा । सब सुंदर सब बिरुज सरीरा ॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना ॥
(७ । २० । ३)

रामराज कर सुख संपदा । बरनि न सकइ फनीस सारदा ॥
सब उदार सब पर उपकारी । . . . . ॥
(७ । २१ । ३-३½)

जिस शासनके अन्तर्गत सम्पूर्ण प्रजावर्ग सुखी एवं संतुष्ट हो, किसीको अर्थाभावका और खाने-पहननेका कष्ट न हो, सभी नागरिकोंमें पारस्परिक सहायता और सहयोगकी सुप्रवृत्ति हो, उसे आदर्श शासन ही कहा जायगा । जिस राजनीतिके फलस्वरूप समाजकी ऐसी सुव्यवस्था हो, लोगोंको इतना सुख-सुपास हो, भरपूर समृद्धि एवं सम्पन्नताकी स्थिति पैदा हो गयी हो, उसे हम आदर्श राजनीतिकी ही संज्ञा देंगे । वर्तमान कालमें कल्याणकारी राज्यकी बड़ी चर्चा है । [illegible] समग्र जनताके हित-कल्याणका ध्येय सामने रखकर काम करता है। किंतु जो उन्नतिशील राष्ट्र कल्याणकारी राज्यके ध्येयकी दिशामें आगे बढ़े हुए माने जाते हैं, उनमें भी लाखों व्यक्ति बेकारी और भुखमरी-सी अवस्थामें येन-केन प्रकारेण जीवन व्यतीत कर रहे हैं । औद्योगिक उन्नति और आर्थिक समृद्धि होनेके

बावजूद बहुतसे लोग अभावग्रस्त-जीवन व्यतीत करनेके लिये विवश होते हैं। किंतु इसके विपरीत रामराज्यमें दुःख-दैन्यका, गरीबी और बेकारीका कहीं चिह्नतक नहीं दिखायी पड़ता था। शोषण, भ्रष्टाचार, दमन, अत्याचार, उत्पीड़न और संघर्ष आदिका (जिनकी इतनी शिकायतें वर्तमान राज्योंमें पायी जाती हैं) रामराज्यमें एकदम अभाव था। यही कारण है कि रामराज्य आदर्श राज्य माना जाता है। महात्माजीने स्वतन्त्र भारतमें उसी तरहका रामराज्य स्थापित करनेकी कल्पना की थी। सर्वोदयी विचारक भी वैसे ही रामराज्यकी स्थापनाका स्वप्न देखते हैं, किंतु आजके चिन्तकों और विचारकोंका स्वप्न कभी पूरा हो सकेगा, इसकी सम्भावना बहुत कम है। राजा रामचन्द्रजी राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रमें एक ऐसा ऊँचा आदर्श छोड़ गये हैं, जिसको प्राप्त करना आधुनिक कालकी परिस्थितियोंमें असम्भव-सा जान पड़ता है। उसके लिये लोगोंको पहले धर्मपरायण, सत्यनिष्ठ तथा सच्चरित्र बनना होगा। शासकों तथा राजनीतिज्ञोंको भगवान् राम और भरतजीकी तरह त्याग और तपस्याका जीवन बितानेके लिये तैयार होना चाहिये।

ऊँच-नीचका भेदभाव नहीं

श्रीरामकी राजनीतिमें ऊँच-नीचका बहुत भेदभाव नहीं था। शूद्र तो थे, किंतु वे घृणाकी दृष्टिसे नहीं देखे जाते थे। कुछ लोगोंके मतसे शबरी शूद्रा थी, किंतु उसके प्रगाढ़ भक्तिभाव और प्रेमसे प्रभावित होकर श्रीरामचन्द्रजीने उसके आश्रममें पधारनेकी ही कृपा नहीं की, वरं उसके हाथसे बेर ग्रहण करके प्रसन्नतापूर्वक खानेमें भी कोई संकोच नहीं किया। गोस्वामीजीका कथन है कि भक्ति-भावमें विभोर शबरी रामजीको बढ़िया और मीठे-मीठे बेर खिलानेके उद्देश्यसे पहले उन्हें स्वयं चख लेती थी। केवल मीठे बेर ही रामजीको खानेके लिये देती थी। निषादराज भी शूद्र वर्णका था; किंतु उसकी सेवा और प्रेमको देखकर रामचन्द्रजीने उसके हाथके दिये कंद-मूल-फल ग्रहण करनेमें कोई संकल्प-विकल्प नहीं किया। निषादके साथ भगवान् राम और लक्ष्मणने बड़ा ही प्रेमपूर्ण व्यवहार किया। उसे सखाकी तरह माना। चित्रकूट जाते समय राम-सखाके रूपमें परिचय होनेपर भरतजी और वसिष्ठ मुनि भी गले लगाकर निषादसे मिले थे। जब श्रीरामजी लङ्कापर विजय प्राप्तकर अयोध्या वापस आ रहे थे, तब शृङ्गवेरपुरमें उसका प्रेम और आग्रह देखकर, निषादराजको भी साथ ले लिया और राज्याभिषेक हो जानेके बाद दूसरोंकी तरह उसे भी वस्त्र-आभूषण आदिकी भेंट देकर अयोध्यासे प्रेमपूर्वक विदा किया। यही नहीं, अपना प्रेम प्रकट करते हुए उससे यह भी कहा—

तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता॥
(मानस ७ । १९ । १½)

चित्रकूटमें अपने निवास-कालमें कोल-किरात तथा अन्य वनवासियोंके साथ भी श्रीरामचन्द्रजीने प्रेमभाव दिखाया। इस प्रसङ्गमें यह बात भी उल्लेखनीय है कि गरुड पक्षिराज तथा स्वयं हरिके वाहन होते हुए भी शिवजीकी सलाहसे राम-कथा सुनने तथा आत्मज्ञान और तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेके लिये अपनेसे हीन कोटिके पक्षी काकभुशुण्डिके पास गये। राम-महिमा सुननेके बाद गरुडजीने विनीत-भावसे कहा—

नाथ मोहि निज सेवक जानी। सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी॥
(मानस ७ । १२० । १)

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उन दिनों बड़प्पनका अभिमान त्यागकर अपने छोटेसे भी शिक्षा और ज्ञान प्राप्त करनेमें कोई संकोच नहीं किया जाता था।

लङ्कापर आक्रमण

श्रीरामजीका कुसुम-सा कोमल स्वभाव होते हुए भी वे दानवों, दैत्यों तथा राक्षसोंका दमन करनेके लिये कठोर-से-कठोर रुख अपना लेते थे। दुष्टोंका दलन कर जनता—प्रजाकी रक्षा करना आवश्यक राजकर्तव्य माना जाता था। तभी तो राक्षसोंसे यज्ञकी रक्षा करनेके लिये विश्वामित्रजी महाराज दशरथसे राम-लक्ष्मणको माँगकर अपने साथ ले गये थे। महाराज दशरथको मोहमें पड़ते देखकर गुरु वसिष्ठने उन्हें कर्तव्यका ज्ञान कराया और दोनों राजपुत्रोंको जाने देनेका परामर्श दिया। वनवास-कालमें और उसके पूर्व कितने ही राक्षसों और दानवोंका राम-लक्ष्मणने वध किया। रावणने मारीचके साथ कुचक्र कर और छद्मवेष धारणकर जब सीताजीको धोखा दिया और उनका अपहरण किया, तब तो अनीतिकी हद हो गयी। यह अपहरण ऐसा जघन्य और अपमानजनक था, जिसे श्रीराम सहन नहीं कर सके। रावणके कितने ही गुप्तचर आर्यदेशमें घुस आते थे। वाल्मीकिरामायणके अनुसार दण्डकवनमें रावणने अपनी बाहरी चौकी स्थापित कर रखी थी और खर-दूषणके नेतृत्वमें वहाँ राक्षसोंकी चौदह सहस्र सेना भी थी। रामचन्द्रजीने कपिराज सुग्रीवसे मैत्री कर ली और हनुमान्‌जीके द्वारा यह पता लग जानेपर कि

श्रीसीताजीका हरण लङ्काधीश रावणने किया है और उसने उन्हें एक वाटिकामें अवरुद्ध कर रखा है, श्रीरामचन्द्रजीने लङ्कापर आक्रमण करने और जानकीका उद्धार करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया। उनका स्वाभिमान तथा राष्ट्राभिमान जाग्रत् हो गया था, अतः उन्होंने वैर-शोधन करनेकी ठान ली।

सर्वप्रथम समुद्रके पार सेना उतारनी थी। सागरसे मार्ग देनेकी प्रार्थना की गयी; किंतु तीन दिनकी प्रतीक्षाके बाद भी जब समुद्रने उनका अनुरोध स्वीकार नहीं किया, तब रामचन्द्रजी बहुत ही क्रुद्ध हो उठे। उनका वह रौद्ररूप प्रकट करता था कि अपने संकल्पको पूरा करनेके लिये वे कितने दृढ़ थे। उन्होंने कहा—

अद्य मे तरणं वाथ मरणं सागरस्य वा ॥
(वा० रा० ६। २१। ८)

पुनः बोले—

चापमानय सौमित्रे शरांश्चाशीविषोपमान्।
समुद्रं शोषयिष्यामि पद्भ्यां यान्तु प्लवंगमाः ॥
(वही, ६। २१। २२)

इस प्रकार शर-संधान कर सागर सोख लेनेकी धमकी दी गयी। प्रचण्ड अग्निबाण छोड़नेसे जब सागरका जल आन्दोलित हो उठा और जीव-जन्तु जलने लगे, तब समुद्रदेव विवश होकर प्रकट हुए और उन्होंने विनीतभावसे अपनेको पार करनेका उपाय बताया, जिसके अनुसार नल-नील आदिने पुल तैयार किया और अपनी सम्पूर्ण सेनासहित रामचन्द्रजीने उस पार पहुँचकर सुवेल पर्वतपर डेरा डाल दिया। 'बिनु भय होइ न प्रीति' वाला रामजीका सिद्धान्त आज भी अनुकरणीय है।

यह बात उल्लेखनीय है कि आक्रमण प्रारम्भ करनेके पूर्व श्रीरामचन्द्रने हनुमान्‌जीसे यह पता लगा लिया था कि रावणका सैन्यबल कितना है, व्यूह-रचना और दुर्ग आदिकी व्यवस्था कैसी है। रावणका पक्ष त्यागकर जब विभीषण श्रीरामजीके दलके साथ आ मिले, तब पूछनेपर उनसे भी अनेक रहस्य ज्ञात हुए। अन्तमें अङ्गदको दूतरूपमें भेजा गया और उसके लौटनेपर परपक्षके बलाबलके सम्बन्धमें अनेक बातें मालूम हुईं। उस कालकी राजनीतिमें दूतों तथा गुप्तचरोंका भी स्थान था। रावणने शुक-शार्दूल आदि अपने अनेक गुप्तचरोंको भेद लेनेके लिये उस क्षेत्रमें भेजा था, जहाँ रामजीकी सेना पड़ाव डाले पड़ी थी। इन दोनों गुप्तचरोंने लौटकर रावणसे वानर-सेनाकी व्यूह-रचनाका वर्णन किया। शार्दूलने बताया कि उधर गरुड-व्यूहकी रचना की गयी है। वर्तमान-कालकी तरह राजदूत दूसरे देशोंमें रखे जाते थे और राजदूतावास या दूतावास होते थे या नहीं, इसका ठीक-ठीक पता नहीं है। न तो लङ्कामें कोशलराज्य अथवा किष्किन्धाका कोई राजदूत था और न रावणका ही कोई राजदूत इन दोनों राज्योंमें था। सम्भवतः आवश्यकता पड़नेपर दूत भेजनेकी प्रथा थी, स्थायी दूतावास नहीं होते थे। दूतोंको उस समय कदाचित् कुछ अधिक अधिकार और स्वतन्त्रता प्राप्त थी, तभी तो अङ्गदने और उनके पहले हनुमान्‌ने रावणके दरबारमें उनसे बराबरीके स्तरपर बातें कीं। उस तरहकी बातें आज कोई दूत या राजदूत नहीं कर सकता; कारण कि उसके अधिकार सीमित होते हैं और उसे मर्यादाके अंदर रहकर राजा या शासकसे वार्ता करनी होती है।

विधि-विधानकी दृष्टिमें दूत अवध्य होते थे। तभी तो जब हनुमान्‌जी वाटिका-विध्वंस करने तथा वाटिका-रक्षकों एवं अन्य निशाचरोंका वध करनेके पश्चात् पकड़कर रावणके सामने लाये गये और रावणने क्रोधमें आकर उनके वधका आदेश दिया, तब मन्त्रियोंसहित विभीषणने विरोध करते हुए समझाया कि दूतका वध करना नीतिके विरुद्ध है। वानर-सेनाने शुक और शार्दूलके साथ भी अच्छा व्यवहार नहीं किया। शुकको पकड़कर गिरफ्तार कर लिया और शार्दूलको बहुत मारा-पीटा गया। अन्तमें श्रीरामके कहनेके बादमें उसे छोड़ दिया गया। किंतु शुक और शार्दूल वस्तुतः रावणके गुप्तचर थे, दूत नहीं।

आग्नेयमहापुराणके 'राजधर्मकथन' नामक अध्यायमें श्रीराम लक्ष्मणसे कहते हैं कि 'स्वामी (राजा), अमात्य (मन्त्री), राष्ट्र (जनपद), दुर्ग, कोष, बल (सेना) और सुहृद्—ये राज्यके सात अङ्ग कहे गये हैं।' प्राचीन हिंदू-कालमें इन सात अङ्गोंकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। हो सकता है कि श्रीरामचन्द्रजी और उनके पूर्ववर्ती राजाओंके समयमें भी इन सब अङ्गोंका महत्त्व रहा हो। दुर्ग, कोष और सेनाका बड़ा महत्त्व था—यह स्पष्ट ही है। अमात्य भी अपरिहार्य थे। वाल्मीकिरामायणके बालकाण्डके सप्तम सर्गमें जहाँ अमात्योंका वर्णन किया गया है, वहाँ 'संधिविग्रहतत्त्वज्ञाः', 'नीतिशास्त्रविशेषज्ञाः'-जैसे विशेषणोंका प्रयोग मन्त्रीके लिये किया गया है। महाराज दशरथ और रामचन्द्रजीको मन्त्रणा देनेके लिये अमात्य थे और ऐसा प्रतीत होता है कि वसिष्ठ मुनि, जो गुरुपदपर प्रतिष्ठित थे, प्रधान मन्त्रीके रूपमें मान्य थे।

भगवान् रामचन्द्रजी मर्यादापुरुषोत्तम थे और उनकी राजनीति आदर्श राजनीति थी, जो कई अंशोंमें आज भी अनुकरणीय है। यदि आजके नेता और राजनीतिज्ञ पाठ और प्रेरणा लेना चाहें तो रामकी राजनीति, राजा और शासकके रूपमें रामका व्यवहार प्रेरणाका स्रोत सिद्ध हो सकता है। रामचन्द्रजी कोशलराज्यसे बाहर सुदूर दण्डकवनमें थे। वनवास-कालमें कोशलकी सेना, कोशलका धन-साधन युद्धके लिये उन्हें सुलभ नहीं था; फिर भी राक्षसोंका उत्पात, राक्षसोंद्वारा होनेवाला सीमातिक्रमण तथा सीताका अपहरण उन्हें सह्य नहीं हुए और किष्किन्धा-नरेश सुग्रीवके साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करके और वानर-भालुओंकी सेना गठित कर उन्होंने लङ्कापर चढ़ाई कर दी। साहस, दृढ़ संकल्प और बाहुबलने उनका साथ दिया और वे विजयी हुए। सत्ताके मोह और आसक्तिसे दूर रहकर भी श्रीरामचन्द्रने दीर्घकाल तक ऐसा सुशासन किया, जो आज भी एक आदर्श माना जाता है। अपनी प्राचीन सभ्यता-संस्कृति, नीति और धर्मके मूल्योंकी उपेक्षा करके हम कदापि उन्नति नहीं कर सकते—यह किसी भारतीयको भूलना नहीं चाहिये।

श्रीरामचन्द्रजीकी युद्धनीति एवं रणकौशल

(लेखक—श्रीभवानीशंकरजी पंचारिया, एम्० ए०)

श्रीरामचन्द्रजी धनुर्वेदके ज्ञाता और युद्धनीतिके सफल प्रयोक्ता माने जाते हैं। कहा जाता है कि जब वे संग्राम-भूमिमें कुपित हो जाते थे, तब श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ योद्धा भी घबरा उठते थे। इसी कारण अतिरथी वीर भी उनका विशेष सम्मान करते थे। यथा—

धनुर्वेदविदां श्रेष्ठो लोकेऽतिरथसम्मतः।
अभियाता प्रहर्ता च सेनानयविशारदः॥
अप्रधृष्यश्च संग्रामे क्रुद्धैरपि सुरासुरैः।
अनसूयो जितक्रोधो न दृप्तो न च मत्सरी॥

(वा० रा० २। १। २९-३०)

अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी इस लोकमें धनुर्वेदके सभी ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ थे। अतिरथी-वीर भी उनका विशेषरूप-से सम्मान किया करते थे। शत्रु-सेनापर आक्रमण और प्रहार करनेमें वे विशेष पटु थे। सैन्य-संचालनमें भी उन्होंने अधिक निपुणता प्राप्त की थी। संग्राममें कुपित होनेपर समस्त देवता और असुर भी उनको परास्त नहीं कर सकते थे। उनमें दोष-दृष्टिका सर्वथा अभाव था। वे क्रोधको जीत चुके थे। दर्प और ईर्ष्याका उनमें अत्यन्त अभाव था।

आदर्श युद्धनीतिका यह एक आवश्यक गुण होता है कि बिना युद्ध किये ही शत्रुपर भय तथा आतङ्कका इतना अधिक गहरा प्रभाव डाला जाता है कि शत्रु-शिविर आत्मसमर्पण करनेके लिये विवश हो जाय। श्रीरामकी युद्धनीति इसी विलक्षणताका प्रतीक रही है। कुमारावस्थामें ही श्रीरामने मारीचके मस्तिष्कमें ऐसा रण-कर्कश आतङ्क उत्पन्न कर दिया कि वह सोते-उठते-बैठते—यहाँतक कि सपनेमें भी श्रीरामको देखकर उद्भ्रान्त और अचेत हो जाया करता था। जब मारीचको रावणने अपनी सीताहरणकी कुत्सित योजनामें 'कनक-मृग' बनकर सहयोग देनेके लिये आग्रह किया, तब उसने श्रीरामके प्रति अपने अनुभव इस प्रकार कहे—

रकारादीनि नामानि रामत्रस्तस्य रावण।
रत्नानि च रथाश्चैव वित्रासं जनयन्ति मे॥

(वा० रा० ३। ३९। १८)

अर्थात् रावण! मैं रामसे इतना भयभीत हो गया हूँ कि रत्न और रथ आदि जितने भी रकारादि नाम हैं, वे मेरे कानोंमें पड़ते ही मनमें भारी भय उत्पन्न कर देते हैं।

श्रीरामने जनस्थानमें जिस पराक्रम और शौर्यसे रावणके चुनिंदे चौदह सहस्रसे अधिक राक्षसोंको रणभूमिमें धराशायी किया, उनके इस पराक्रमका सर्वप्रथम विवरण जब राक्षस-राज रावणने सुना, तब वह अवाक् रह गया। वह मारे क्रोधके जल उठा और लाल-लाल आँखें करके बोला—'कौन मौतके मुँहमें जाना चाहता है, कौन वह दुस्साहसी है, जिसे समस्त लोकोंमें कहीं भी ठौर-ठिकाना नहीं मिलनेवाला है? किसने मेरे जनस्थानका विनाश किया है? मेरा अपराध करके इन्द्र, यम, कुबेर और तो और विष्णु भी चैनसे नहीं रह सकेंगे। मैं कालका भी काल हूँ, आगको भी जला सकता हूँ, मौतको भी मृत्युके मुखमें डाल सकता हूँ। मैं अभी उससे अकेले ही लड़नेके लिये जाऊँगा।' (वा० रा० ३। ३१। ४-६)।

अकम्पन जो रावणका एक गुप्तचर था तथा जिसने जनस्थानमें श्रीरामका रणकौशल देखा था, उसने रावणको यह सलाह दी कि 'आप युद्धद्वारा श्रीरामको कदापि नहीं जीत सकेंगे। अतः उनके साथ युद्धका विचार त्याग दीजिये।' अपने विचारोंकी पुष्टिमें अकम्पनने निम्न तथ्य प्रस्तुत किये—

'यदि महायशस्वी श्रीराम कुपित हो जायँ तो उन्हें कोई भी काबूमें नहीं कर सकता। वे सम्पूर्ण लोकोंका संहार करके पुनः नये सिरेसे प्रजाकी सृष्टि करनेमें समर्थ हैं। जैसे पापी पुरुष स्वर्गपर अधिकार नहीं कर सकता, उसी प्रकार आप अथवा समस्त राक्षस-जगत् भी युद्धमें श्रीरामका मुकाबला नहीं कर सकता। मेरी समझसे तो सम्पूर्ण देवता और असुर मिलकर भी उनका वध नहीं कर सकते—'

न तं वध्यमहं मन्ये सर्वैर्देवासुरैरपि।
अयं तस्य वधोपायस्तन्ममैकमनाः शृणु॥
(वा० रा० ३। ३१। २८)

अकम्पनके विचारोंसे प्रेरित हो श्रीरामके रण-कौशलसे घबराकर रावणने युद्धके स्थानपर कूट उपायका सहारा लिया। अन्यथा ऐसे योद्धाको, जो इन्द्र, वरुण, कुबेर और यमादि समस्त लोकपालोंको पराजित कर चुका हो, उसे चोरीसे सीताका अपहरण करनेकी क्या आवश्यकता होती। युद्धनीतिका ज्ञाता रावण भी श्रीरामकी युद्धनीतिके आगे झुक जाता है और वह कूट उपायसे ही अपनी भगिनी तथा राक्षसोंके विनाशका प्रतिशोध लेना चाहता है। विद्वानोंका मत है कि जब सीधे युद्धसे किसीको अपनी विजयमें संदेह हो, या कोई अपनेसे बलवान् योद्धा सम्मुख हो तो वहाँ धोखा, छल-बल, इन्द्रजालका सहारा लेकर अपने विरोधीको पराजित करनेका उपक्रम करना चाहिये। रावणने श्रीरामके द्वारा जनस्थानमें बड़े-बड़े योद्धाओंके मारे जानेसे यह अनुमान लगा लिया कि निस्संदेह श्रीराम कोई साधारण योद्धा नहीं हो सकते—

सुर नर असुर नाग खग माहीं। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं॥
खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥
(रा० च० मा० ३। २२। १)

अतः यह श्रीरामकी युद्धनीति और रण-दक्षताका ही प्रतिफल था कि रावण-जैसा विश्व-विजेता और तत्कालीन अप्रतिम योद्धा समराङ्गणसे पलायन कर कूट उपायोंका अवलम्बन लेनेके लिये विवश हुआ। श्रीरामकी युद्धनीतिकी अनेक विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं। युद्धके सम्बन्धमें उनकी अत्यन्त उदार नीति थी। वे धोखा देकर युद्ध जीतनेके पक्षमें कभी नहीं रहे। अतः यह कहा जा सकता है कि उनकी युद्धनीति हमेशा आदर्शको सम्मुख रखते हुए आगे बढ़ती है। उनके युद्धसम्बन्धी आदर्शकी एक झलक उन्हींके एक संदर्भमें इस प्रकार उपलब्ध होती है—

बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम्।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परंतप॥
आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणं गतः।
अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना॥
(वा० रा० ६। १८। २७-२८)

श्रीरामकी शरणमें जब शत्रु-भ्राता विभीषण आया, तब (हनुमान्को छोड़कर) सबने राक्षस होनेके कारण उसको शरण न देनेका आग्रह किया, किंतु श्रीरामने एक सच्चे योद्धाका नीतिसम्मत कर्तव्य समझाते हुए कहा—'हे परंतप! यदि शत्रु भी शरणमें आये और दीनभावसे हाथ जोड़कर दयाकी याचना करे तो उसपर प्रहार नहीं करना चाहिये। शत्रु दुखी हो या अभिमानी, यदि वह अपने विपक्षीकी शरणमें जाता है तो शुद्ध हृदयवाले श्रेष्ठ पुरुष अपने प्राणोंका भी मोह त्यागकर शरणागतकी रक्षा करते हैं।' उन्होंने अपने इसी उदार सिद्धान्तके आधारपर विभीषणको, जो कि शत्रु-शिविरसे आया था, बिना हिचकके शरण दे दी। सुग्रीवके तीव्र विरोधपर उन्होंने उन्हें साफ-साफ कह दिया—"वह विभीषण हो या स्वयं मेरा शत्रु रावण ही क्यों न हो, मेरी शरणमें आनेके कारण उसे मैं अपना चुका हूँ। मेरा तो सदा यह व्रत ही रहा है कि जो एक बार भी शरणमें आकर—'मैं तुम्हारा हूँ'—यों कहकर मुझसे अभय चाहता है, उसे मैं सर्वप्राणियोंसे अभय कर देता हूँ"—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
(वा० रा० ६। १८। ३३)

इस प्रकार श्रीरामकी युद्धनीति अत्यन्त उदार सिद्धान्तोंपर आधारित थी। वे युद्धका प्रयोग बहुत सीमितमात्रामें करना पसंद करते थे। जबतक साम, दान और भेदनीतिसे काम निकल सकता हो, दण्डका प्रयोग नहीं करना चाहिये। जब अन्य उपाय पूर्णतया विफल हो जायँ

तभी युद्ध अथवा दण्डका प्रयोग करना उन्हें अच्छा लगता था। इसके विपरीत रावण साम, दान और भेदकी अपेक्षा दण्डको सर्वाधिक महत्त्व देता था। हनुमान्‌जीने लङ्का-प्रवेशके पश्चात् इस बातका अनुभव किया था कि 'राक्षसोंपर साम, दान और भेदका प्रयोग सफल नहीं हो सकता; वहाँ तो केवल दण्डके ही अवलम्बनद्वारा कार्य बन सकता है।'

दण्डका प्रमादरहित होकर प्रयोग करना ही उनकी युद्धनीतिका सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू था। वे युद्धमें कम-से-कम हिंसाका प्रदर्शन तथा कम-से-कम शक्तिका प्रयोग करना वाञ्छित समझते थे। युद्धमें क्रोध या प्रतिशोधकी भावनाको भी वे महत्त्व नहीं देते थे। इस प्रकार श्रीरामकी युद्धनीति धर्म-सम्मत और मर्यादासे संचालित थी। श्रीरामचन्द्रजीको गुरु वसिष्ठ, महर्षि विश्वामित्र और ब्रह्मर्षि अगस्त्यजीसे ऐसे अनेकानेक अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षा प्राप्त थी, जिनके प्रयोगद्वारा बहुत ही कम प्रयत्नसे आतङ्कवादियोंका सरलतापूर्वक सफाया किया जा सकता था; किंतु श्रीरामने उनका प्रयोग नर-संहारक कार्यके लिये कभी नहीं किया। इसके विपरीत रावण तथा मेघनादने उनपर अनेक अवसरोंपर भीषण मारक अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग किया था। इन्द्रजित् तो प्रायः कूटयुद्ध-विशारद था ही। इन्द्रको भी उसने इन्हीं ऐन्द्रजालिक उपायोंसे ही पराजित किया था। एक समय वानरोंके भीषण संग्रामसे कुपित होकर उसने इसी कूट अदृश्य युद्धका सहारा लेकर वानरदलसहित श्रीराम और लक्ष्मणको भी परेशान कर दिया। अन्तमें लक्ष्मणजीने अपने अग्रजको स्मरण दिलाया कि ऐसी स्थितिमें हमें भी ब्रह्मास्त्रका प्रयोग कर समस्त राक्षसोंका एक साथ ही विनाश कर देना चाहिये। : उन्होंने श्रीरामसे ब्रह्मास्त्रके प्रयोगकी अनुमति चाही।

श्रीरामने प्रत्युत्तरमें युद्धनीतिका प्रयोजन तथा उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा था—

नैकस्य हेतो रक्षांसि पृथिव्यां हन्तुमर्हसि ॥
अयुध्यमानं प्रच्छन्नं प्राञ्जलिं शरणागतम्।
पलायमानं मत्तं वा न हन्तुं त्वमिहार्हसि ॥
तस्यैव तु वधे यत्नं करिष्यामि महाभुज।
(वा० रा० ६। ८०। ३८—४०)

अर्थात् एक राक्षसके कारण भूमण्डलके समस्त राक्षसोंका वध करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। महाबाहो! जो युद्ध न करता हो, छिपा हो, हाथ जोड़कर शरणमें आया हो, युद्धसे भाग रहा हो अथवा पागल हो गया हो, ऐसे व्यक्तिको तुम्हें नहीं मारना चाहिये।'

उपर्युक्त कथनसे श्रीरामने युद्धनीतिके महान् आदर्शोंकी ओर संकेत करता है। उनके मतसे शक्तिका कम-से-कम प्रयोग किया जाना चाहिये। शक्तिका प्रयोग केवल अपराधीके विरुद्ध किया जाना चाहिये। निरपराध एक भी व्यक्तिको उससे किसी प्रकारकी क्षति नहीं पहुँचनी चाहिये। इसी कारण लक्ष्मणको उन्होंने ब्रह्मास्त्रके प्रयोगसे मना किया; क्योंकि उससे भीषण नर-संहारका भय था। यदि वे चाहते तो रथमें छिपे इन्द्रजित्‌को अपने श्रेष्ठ अस्त्रसे नष्ट कर सकते थे; किंतु इससे युद्धके नियमोंका उल्लङ्घन होनेका भय था। अस्तु, केवल मनमाना बल-प्रयोग कर शत्रुको नष्ट कर देना उनके मतसे युद्धनीतिका अङ्ग नहीं बन सकता। वे जघन्य-से-जघन्य अपराधी शत्रुको भी अस्त्र-शस्त्रसे हीन होनेपर निहत्थे मार डालना भी पसंद नहीं करते। श्रीराम-रावण-युद्धमें ऐसे कई प्रसङ्ग आते हैं, जिसमें रावणके पास धनुष, रथ और आयुधोंका अभाव देखकर श्रीरामने रावणको छोड़ दिया तथा उसे पुनः नवीन धनुष-बाण, रथ और आयुधोंसे सज्जित होकर संग्राम करनेका अवसर दिया। उदाहरणार्थ जब एक बार श्रीरामने देखा कि रावणके धनुष-बाण नष्ट हो चुके हैं, सुतरां वह युद्धभूमिमें विषहीन सर्पके समान प्रभावहीन हो गया है, तब श्रीरामने उससे कहा—

कृतं त्वया कर्म महत् सुभीमं
हतप्रवीरश्च कृतस्त्वयाहम्।
तस्मात् परिश्रान्त इति व्यवस्य
न त्वां शरैर्मृत्युवशं नयामि ॥
प्रयाहि जानामि रणार्दितस्त्वं
प्रविश्य रात्रिंचरराज लङ्काम्।
आश्वस्य निर्याहि रथी च धन्वी
तदा बलं प्रेक्ष्यसि मे रथस्थः ॥
(वा० रा० ६। ५९। १४२-४३)

अर्थात् आज तुमने बड़ा ही भयंकर कर्म किया है, मेरी सेनाके प्रधान-प्रधान वीरोंको मार डाला है। इतनेपर भी तुम्हें थका हुआ समझकर मैं तुम्हें बाणोंके द्वारा मारना नहीं चाहता; क्योंकि तुम युद्धके कारण पीड़ित हो गये हो। जाओ, लङ्कामें जाकर कुछ देर विश्राम करके फिर रथ और धनुषके साथ निकलना। फिर तुम मेरे पराक्रमको देखना।

श्रीरामने धर्मयुद्धको ही सर्वश्रेष्ठ युद्ध मानकर सदैव उसका ही आश्रय लिया था। इस प्रकारके युद्धमें शत्रु-

को सचेत और सावधान कर पराक्रमके द्वारा पराजित करना अभीष्ट होता है। श्रीरामने सावधान करके रावणको युद्धमें पराजित किया था। उन्होंने उसे धोखा देकर मारना उचित नहीं समझा था; जब कि रावण उन्हें धोखेसे भी पराजित करना चाहता था।

श्रीरामने लङ्का-अभियानके पूर्व विधिवत् रावणको तत्सम्बन्धी सूचना दी थी। उन्होंने अपने दूत अङ्गदके द्वारा रावणको स्पष्टतः कहला दिया था कि 'यदि वह सीताजी-को आदरसहित आगे करके, मुँहमें तृण दबाकर सामने आता है तो उसे क्षमा किया जा सकता है; अन्यथा जिस बलका सहारा लेकर उसने यह दुष्कर्म किया, उसका संग्रामभूमिमें आकर प्रदर्शन करे।' वाल्मीकिजीके शब्दोंमें श्रीरामने रावणको इस प्रकारका संदेश प्रेषित किया था—

'राक्षसराज! तुमने मोहवश घमंडमें आकर ऋषि-मुनि, देवता, गन्धर्व, नाग, यक्ष और राजाओंका बड़ा भारी अपमान किया है। मैं अपराधियोंको दण्ड देनेवाला शासक हूँ। तुमने वरदानके मदमें आकर मेरी भार्याका अपहरण किया है। अतः तुम्हें दण्डित करनेके लिये अब मैं लङ्काके द्वारपर खड़ा हूँ। राक्षस! यदि तुम युद्धमें स्थिरतापूर्वक लड़ना चाहते हो तो सचेत हो जाओ तथा जिस बलके भरोसे तुमने माया (कूट उपाय)-से सीताका अपहरण किया है; उसे युद्धके मैदानमें दिखाना। यदि तुम मेरी पत्नीको लेकर शरणमें नहीं आये तो मैं अपने बाणोंसे संसारको राक्षसोंसे शून्य कर दूँगा तथा निश्चय ही लङ्काके राज्यपर विभीषणको प्रतिष्ठित कर दूँगा। अब शूरताका आश्रय लेकर युद्धके लिये कटिबद्ध हो जाओ।'

(वा० रा० ६। ४१। ६२—७०)

उपर्युक्त तथ्योंसे ध्वनित होता है कि श्रीरामने रावणको युद्धके कारण तथा उसके निवारणका भी विधिवत् संदेश दिया। वे शान्तिपूर्ण वार्तासे भी समस्याको हल करनेके हेतु तैयार हो गये थे, किंतु रावणने उनकी इस नीतिको कमजोरी समझकर अभिमानवश कहला भेजा—

जौं पै समर सुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु गुन गाथा॥
तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा॥

(श्रीरामच० मा० ६। २७। ३-३½)

रावणके दृष्टिकोणमें शान्तिपूर्णवार्ता अर्थात् सामनीति तो शत्रुकी कमजोरी थी, जब कि श्रीरामने सामनीतिको युद्धनीति-का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग माना था तथा युद्धको अन्तिम साधनके रूपमें। वे युद्धमें विजयके लिये भी पशुबलको महत्त्व न देते हुए आत्मबलको सबसे अधिक महत्त्व देते थे। एक बार युद्धभूमिमें श्रीरामको रथहीन और पैदल देखकर विभीषणको यह शङ्का हो गयी कि ऐसे साधन-सम्पन्न दुर्जय रावणको वे कैसे जीत सकेंगे। इसका प्रत्युत्तर देते हुए श्रीरामने विभीषणको कहा था—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥

महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर॥

(श्रीरामच० मा० ७९। २—५½; ८० क)

अर्थात् मित्र सुन—जिससे जय होती है, वह रथ दूसरा ही है। शौर्य और धैर्य—उस रथके चक्के हैं। सत्य और शील उसकी मजबूत ध्वजा और पताका हैं। बल, विवेक, दम (इन्द्रियोंको वशमें करना) और परोपकार—ये चार उसके घोड़े हैं, जो क्षमा, दया और समतारूपी डोरीसे रथके साथ जुड़े हुए हैं। ईश्वरका भजन ही चतुर सारथि है। वैराग्य ढाल है और संतोष तलवार है। शम-यम-नियम—ये बहुत-से बाण हैं। ब्राह्मणों और गुरुका पूजन अभेद्य कवच है। इसके समान दूसरा कोई उपाय नहीं है। हे सखे! ऐसा धर्ममय रथ जिसका सहायक हो, उसके लिये जीतनेको कहीं भी शत्रु नहीं हैं। जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो, वह वीर संसाररूपी महान् दुर्जय शत्रुको भी जीत सकता है।

श्रीरामकी युद्धनीतिका यह एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है कि उसमें जय-पराजयको गौण, किंतु नीतिको सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। निरा पशुबल युद्धमें विजय पाने या दिलानेमें सहायक नहीं हो सकता, उसके लिये तो आत्मबल और सात्त्विक साधनोंका होना अनिवार्य है। श्रीरामने सीमित साधनोंके साथ शस्त्रास्त्रोंसे सज्जित रावणको इन्हीं

आत्म-सम्पद्रूप गुणोंसे पराजित किया था। वर्तमान कालमें मैकियावेलीके प्रभावसे युद्धमें विजयके लिये कूट साधनोंको अनिवार्यरूपसे प्रयुक्त करना आवश्यक माना जाता है। किंतु रावणने श्रीरामके साथ युद्धमें इन्हींका अवलम्बन लेकर अपना, अपने राक्षसवंशका विनाश किया था। इसीसे कहा गया है—

'यतो धर्मस्ततो जयः।'

श्रीरामके मतानुसार क्षत्रियोंको आर्तोंके आर्तस्वरका उच्छेद करनेके लिये ही शस्त्र-संचालन करना चाहिये, जिससे अत्याचारी किसी निर्बल और निरपराधपर अत्याचार न कर सके। जब उन्होंने दण्डकारण्यमें राक्षसोंके अत्याचारकी गाथा सुनी और अमानुषिक नरसंहारका दृश्य देखा, तब उन्होंने संकल्प ही कर लिया कि वे राक्षसोंका संहार कर वहाँके तपस्वियोंको अभयदान देनेमें कोई कसर न रख छोड़ेंगे। वे राज्य-विस्तारकी या उपनिवेशवादी नीतिसे प्रभावित होकर युद्धका आश्रय लेना उपयुक्त नहीं मानते थे। वे तो सम्पूर्ण विश्वमें सम्यक् न्याय-व्यवस्थाके स्थापनः वर्ण-आश्रम-व्यवस्थाकी रक्षा तथा धर्मकी स्थापनाके लिये ही युद्धका सहारा लेना उचित मानते थे। इसी कारण उन्होंने धर्मभ्रष्ट, आतङ्कवादी राक्षसोंका विनाश भी किया था, जब कि उस समयके अन्य लोग विग्रह या युद्धके प्रधान तीन कारण मानते थे। किष्किन्धाके वानरराज वालीके मतानुसार भी युद्धके तीन प्रमुख कारण होते हैं—

'भूमिर्हिरण्यं रूपं च विग्रहे कारणानि च।'

(वा० रा० ४। १७। ३१)

इन भूमि, सोना और चाँदीको वे युद्धका कारण कदापि नहीं मानते थे। न साम्राज्यवादी नीति ही युद्धका प्रयोजन हो सकता है। उनके अनुसार तो आत्मरक्षार्थ, राष्ट्ररक्षार्थ और धर्मरक्षार्थ ही युद्धका सहारा लेना उचित होता है। उनके द्वारा किये गये समस्त युद्धोंके पीछे इन्हींमेंसे किसी एक कारणकी प्रधानता देखी जाती है। राजधर्मके अनुसार संधि-पालन तथा मित्र-राष्ट्रोंकी सहायता भी युद्धका एक वैधानिक कारण होता है। श्रीरामने प्रमाद-वश कभी भी कोई युद्ध नहीं छेड़ा था। जब शूर्पणखा तथा अकम्पनने रावणको भ्रमित करते हुए यह कहा कि श्रीरामने विना कारण ही राक्षसोंका नाश किया, तब वह उनसे लड़नेके लिये तैयार हो गया; किंतु पराक्रमी रामसे वह प्रत्यक्ष युद्ध न कर धोखा-धड़ीसे विजय प्राप्त करना चाहता था। अतः मारीचको उसने कहा कि 'अकारण ही वीरताका प्रदर्शन करनेके लिये प्रमादी रामने मेरे जनस्थाननिवासी राक्षसोंको मार डाला है।' इसका प्रत्युत्तर देते हुए मारीचने उसे कहा था—

न रामः कर्कशस्तात नाविद्वान् नाजितेन्द्रियः।
अनृतं न श्रुतं चैव नैवं त्वं वक्तुमर्हसि॥

(वा० रा० ३। ३७। १२)

'श्रीरामको मैं जानता हूँ। वे क्रूर नहीं हैं। न वे मूर्ख और अजितेन्द्रिय ही हैं। उनमें मिथ्याभाषणका दोष भी मैंने नहीं सुना। अतः उनके बारेमें तुम्हें ऐसी उल्टी-ऊटपटाँग बातें नहीं कहनी चाहिये।' उसने रावणको रामका परिचय देते हुए कहा—

रामो विग्रहवान् धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः।

(वा० रा० ३। ३७। १३)

अर्थात् श्रीराम धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप, साधु और सत्यपराक्रमी हैं।

मारीचके मतसे उन्होंने (चौदह सहस्र राक्षसोंके वधके लिये) युद्धका आश्रय आत्मरक्षार्थ ही लिया था। प्रमादवश बल-प्रदर्शन उसका कारण नहीं था। उनके द्वारा रावणके साथ लड़ा गया महान् संग्राम भी, 'जो अनुपमेय था', आर्य राष्ट्र, धर्म और संस्कृतिके रक्षार्थ लड़ा गया था। अतः 'राम-रावण-युद्ध' प्रतिशोधात्मक युद्ध न होकर दो जीवन-पद्धतियोंके, दो संस्कृतियोंके और धर्म और अधर्मके मध्य लड़ा गया द्वन्द्व था।

श्रीरामद्वारा लड़े गये समस्त युद्धोंकी यदि समीक्षा की जाय तो सर्वत्र हम यही पायेंगे कि उन्होंने सदैव युद्धके नियमोंका पालन किया है। यद्यपि कतिपय विद्वानोंके मतसे वालीका छिपकर वध करना उनके जीवनका अपवाद था, फिर भी जिन परिस्थितियोंमें रामने वालीको बाण मारा था, यदि उनपर ध्यान दिया जाय तो यह निर्धारित होता है कि यदि वे तुरंत ही ऐसा न करते तो मित्रके साथ की गयी संधिका अनादर तथा शरणागतकी देखते-देखते ही मृत्युकी सम्भावना थी। फिर बाण भी तो उन्होंने इस प्रकारसे मारा था, जिससे वाली अपनी प्रहारक शक्तिको रोक दे। वहाँपर भी उन्होंने समाजनीति और लोकमर्यादा तथा धर्मको प्रधान कारण माना था। रावण वालीसे संधि करके आर्यावर्तमें अत्याचार करने लगा था। ऐसी स्थितिमें वालीको मारकर श्रीरामने एक प्रकारसे देशद्रोहीको दण्डित ही किया था।

श्रीरामपर कुछ लोग ताटकावधका भी आरोप लगा सकते हैं; क्योंकि वह स्त्री थी, अतः उसे मारना उचित नहीं था। धर्मयुद्धमें स्त्री, वृद्ध, बालक, निरशस्त्र और

रण-विमुखको मारना दोष माना जाता है, किंतु ताटका स्त्री होते हुए भी दो राष्ट्रोंको—मलद और करूषको नष्ट कर रही थी। राजधर्मके अनुसार राष्ट्रकी रक्षा प्रधान कार्य बतायी गयी है। ताटकावधके अवसरपर ही महर्षि विश्वामित्रने श्रीरामको कहा था कि—'तुम इस ताटकाको, जो छापामार युद्धमें प्रवीण है, स्त्री समझकर इसके प्रति दया न दिखाना। अन्यथा यह असाध्य रोगकी भाँति प्राण-लेवा हो सकती है।' प्रथम श्रीरामने ताटकाकी गमनशक्तिको नष्ट करनेके हेतु ही शस्त्र-संचालन किया; किंतु वह शस्त्र-संचालनके पूर्व ही इतने जोरसे झपटी कि यदि महर्षि विश्वामित्र श्रीराम-लक्ष्मणकी मन्त्र-बलसे रक्षा न करते तो उनको गम्भीर विपत्तिका शिकार होना पड़ता। ऐसी दशामें ताटका-वधका दोष भी उनपर नहीं लगाया जा सकता। वह युद्ध भी आत्मरक्षार्थ ही लड़ा गया था। राजधर्मके अनुसार ऐसे अत्याचारियोंका नष्ट किया जाना वैध ही माना गया है।

श्रीरामकी युद्ध-नीति कितनी उदात्त थी, इसका परिचय हमें रावणवधोपरान्त उनके द्वारा किये गये शत्रुके प्रतिव्यवहारके संदर्भसे भलीभाँति प्राप्त होता है। रावणका पराभव हो चुका है। विभीषण प्रतिशोधात्मक भावनाके कारण अपने ही भाईको मृत्युके पश्चात् भी घृणादृष्टिसे निहार रहा है। यह देख उदार श्रीरामको दया आ गयी और वे अपने मित्र विभीषणसे बोले—

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्॥
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।

(वा० रा० ६। १११। १००-१०१)

'वैर तो मरनेतक ही रहता है। मरनेके बाद उसका अन्त हो जाता है। अब हमारा प्रयोजन भी सिद्ध हो चुका है। अतः इस समय जैसे यह तुम्हारा भाई है, वैसे ही मेरा भी है। इसके लिये दाह-संस्कारकी उचित व्यवस्था करो।'

इतना ही नहीं, रावणकी प्रशंसा करते हुए श्रीरामने कहा—'यह निशाचर भले ही अधर्मी और असत्य-वादी रहा हो, किंतु संग्राममें सदा ही तेजस्वी, बलवान् तथा शूरवीर रहा है। सुना जाता है कि इन्द्र आदि देवता भी इसे परास्त नहीं कर सके थे। समस्त लोकको रुलाने-वाला यह रावण बल-पराक्रमसे सम्पन्न तथा मनस्वी था। इसने अनेकों दान, यज्ञ और श्रेष्ठ कार्य भी किये हैं।'

(वा० रा० ६। १११। ९८-१००)

उपर्युक्त विवरणसे ज्ञात होता है कि वे युद्धका लक्ष्य स्थायी शत्रुता नहीं, वरं शान्तिपूर्ण मैत्री-स्थापना समझते थे। उन्होंने अपने सभी प्रतिद्वन्द्वियोंसे इसी प्रकारका स्नेह तथा दयाका उदार व्यवहार किया था। विराधके इच्छानुसार उसको सनातन लोककी प्राप्ति करानेके लिये श्रीरामने अपने भाईको उसको खड्ढेमें गाड़नेका आदेश दिया था। इसी प्रकार कबन्धने अपने लिये अग्नि-संस्कारकी प्रार्थना की थी। उसे भी उसके इच्छानुसार श्रीरामने अग्नि-संस्कारद्वारा कृतार्थ किया था। अतः यह स्पष्ट है कि युद्धको वे खेल-भावनासे लड़ते हुए हार-जीतको गौण मानते थे। श्रीरामचन्द्र-जीकी युद्धनीतिकी यह विशेषता है कि वे रावणके समान साम्राज्य-विस्तारकी भावना या उपनिवेशवादी आकाङ्क्षाओंसे प्रेरित होकर युद्धमें प्रवृत्त नहीं होते थे। पराजित राष्ट्रोंके प्रति उनका बड़ा ही उदार दृष्टिकोण रहा है। जहाँ भी किसी दुष्ट शासकको उन्होंने युद्धमें जीता, वहाँ उसके स्थानपर वहींके लोकप्रिय जननेताको वहाँका शासक नियुक्त किया। लङ्कामें रावणके स्थानपर विभीषण और किष्किन्धामें वालीके बदले सुग्रीवको प्रतिष्ठित करना इसी बातका द्योतक है।

वे युद्धनिषेधके पक्षपाती थे। उनके मतानुसार चाहे जब, चाहे जहाँ समुचित कारणके बिना युद्धका आश्रय लेना युद्धनीतिका अपमान करना है। उदासीन और तटस्थ राष्ट्रोंको युद्धके लिये विवश करना भी उन्हें अभीष्ट नहीं था। युद्धमें केवल पराक्रम-प्रदर्शन उनका कभी भी ध्येय नहीं रहा। उनके अधिकांश युद्ध अत्याचार और अन्यायसे निर्बलोंकी रक्षाके साथ आत्मरक्षार्थ अथवा राष्ट्र, धर्म और संस्कृतिकी रक्षा-हेतु लड़े गये थे। उन्होंने प्रतिशोधकी भावनासे कभी भी युद्धका आश्रय नहीं लिया। वे सीमित-से-सीमित बलका प्रयोग करके शत्रुको पराजित करना श्रेयस्कर समझते थे। अतः यह कहा जा सकता है कि युद्धनीतिके क्षेत्रमें एवं रण-कौशलमें उनके समान अभीतक कोई योद्धा नहीं हुआ। उन्होंने सामनीतिद्वारा सज्जनोंको और दण्डनीतिसे दुष्टोंको अपने वशमें कर लिया था। भारतवर्षके लिये उनकी 'युद्धनीति' और 'संग्राम-कौशल'का अनुगमन करना अभ्युदयकारी सिद्ध होगा, जब कि हमारी सीमाके आस-पास आये दिन युद्धके बादल मँडराते रहते हैं। अतः 'रण-कर्कश' श्रीरामकी युद्धनीति हमारे राष्ट्रीय उत्कर्ष और स्वाभिमानी जीवनके लिये वरदान सिद्ध होगी। ईश्वर हमें वही बल, पराक्रम और कुशलता प्रदान करें।

बालकोंके आदर्श भगवान् श्रीराम

(लेखक—स्वर्गीय पं० श्रीरामनरेशजी त्रिपाठी)

श्रीराम यद्यपि राजाके पुत्र थे, तुलसीदासजीने उनके बालचरित्रका जो चित्रण किया है, वह एक साधारण गृहस्थके बालकोंके लिये भी उपयोगी है। वे लिखते हैं—

गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥

× × ×

बिद्या बिनय निपुन गुन सीला। खेलहिं खेल सकल नृप लीला॥

× × ×

बंधु सखा सँग लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥

(मानस १। २०३। २, ३; १। २०४। १)

आजकल भी लड़के यदि विद्या-विनय-निपुण और गुण-शील हों तो मृगया न सही, क्रिकेट खेलें, फुटबाल और हाकी खेलें, समाजकी कोई हानि नहीं हो सकती।

रामकी दिनचर्या सुनिये—

अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मातु पिता अग्या अनुसरहीं॥
जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा॥
बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई॥
प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥
आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा॥

(मानस १। २०४। २–४)

इस तरह राम साधारण बालकोंकी तरह खेलते-कूदते भी थे और स्वाध्याय भी चालू रखते थे। माता-पिता और गुरुके आज्ञानुगामी रहकर नगरके लोगोंको सुखी करनेके प्रसङ्ग भी सोचते और उपस्थित करते रहते थे। अपनी विनय, नम्रता, सुशीलता और सहज स्नेहसे राम बचपनसे ही लोकप्रिय हो चले थे।

इसके बाद वे मुनि विश्वामित्रके साथ जनकपुर जाते हैं। वहाँ नगर देखने निकलते हैं, तब नगरके बच्चे उनको घेर लेते हैं। राम उनमें ऐसा हिल-मिल जाते हैं कि बच्चे उनको बुला लेते हैं और वे उनके साथ उनके घर भी चले जाते हैं—

पुर बालक कहि कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहि देखावहिं रचना॥

(मानस १। २२३। ४)

× × ×

निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई। सहित सनेह जाहिं दोउ भाई॥

(मानस १। २२४। १)

बच्चोंके साथ घूमने-फिरनेमें देरी हो गयी, तब उन्हें डर भी लगा कि कहीं गुरुजी नाराज न हो जायँ। उन्होंने मधुर बातें कहकर बच्चोंको जबरदस्ती लौटाया—

कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मन माहीं॥

× × ×

कहि बातें मृदु मधुर सुहाईं। किए बिदा बालक बरिआईं॥

(मानस १। २२४। ३, ४)

एक प्रसङ्ग और लीजिये—

रातमें गुरुजी सोने लगे, तब राम-लक्ष्मण दोनों भाई उनके पैर दबाने लगे। उन्हें इस बातका अभिमान नहीं था कि वे राजाके लड़के हैं, किसीके पैर क्यों छूएँ। शिष्यका जो धर्म है, वे निरभिमान होकर उसे ही पालते थे।

मुनिने बार-बार कहा, तब राम सोने गये। लक्ष्मण तब रामके पैर दबाने लगे। रामने उन्हें पुनः-पुनः कहा, तब वे भी उठे—

मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥

× × ×

बार बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥
चापत चरन लखनु उर लाएँ। सभय सप्रेम परम सचु पाएँ॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जलजाता॥

(मानस १। २२५। १½, ३०)

यह सत्कुलाचरण है। जो सबसे छोटा, वह अपनेसे बड़ेके पीछे ही सेवासे निवृत्त होगा। पहले मुनि सोये, फिर राम और फिर लक्ष्मण; किंतु जागनेमें यह क्रम बदल गया। लक्ष्मण पहले जागे, ताकि अपनेसे बड़ोंकी सेवाके लिये वे तैयार मिलें। उनके बाद राम जागे और फिर मुनि। लक्ष्मणको सोनेका समय कम मिला, पर शिष्टाचारके पालनमें उन्होंने शिथिलता नहीं दिखायी—

उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान।
गुर तें पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान॥

(मानस १। २२६)

भाइयोंके प्रति रामके हृदयमें कैसा प्रेम था, इसकी कुछ झलक चित्रकूटमें हमें भरतके शब्दोंमें देखनेको मिलती है। भरतको स्मरण आ रहा है कि खेलमें हारें या जीतें, रामको कभी क्रोध नहीं आता था। उनका स्वभाव ही ऐसा था कि वे अपराधीपर भी क्रोध नहीं करते और भरतको तो हारा हुआ खेल भी जिता देते थे। हारनेसे भरतके मनको कुछ चोट न लग जाय, यहाँतक ध्यान वे रखते थे—

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मो पर कृपा सनेहु बिसेषी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी॥
सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहुँ खेल जितावहिं मोही॥
(मानस २। २५९। ३-४)

रामके विनम्र स्वभाव और बड़ोंके प्रति आदरभावका एक शाब्दिक चित्र हमें उस समय भी देखनेको मिलता है, जब राज्याभिषेककी सूचना देनेके लिये गुरु वसिष्ठजी रामके भवनमें जाते हैं। उस समय शिष्टाचारके पालनमें रामने जराभर भी त्रुटि नहीं होने दी। वर्णन यह है—

गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायउ माथा॥
सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने॥
गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी॥
सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू॥
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि नीती॥
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु यहु गेहू॥
आयसु होइ सो करौं गोसाईं। सेवकु लहइ स्वामि सेवकाईं॥
(मानस २। ८। १—४)

गुरुजीकी सिखायी नीतिका प्रयोग रामने उल्टे गुरुजी-पर ही किया—पर ऐसी मधुर उक्तिके साथ कि गुरुजीको अपमान नहीं लगा, बल्कि उसमें उनका अति सम्मान लक्षित हुआ। यह उत्तम कोटिके वाचिक शिष्टाचारका एक बहुत ही सुन्दर नमूना है।

पितामें रामकी कैसी भक्ति थी, यह उनके ही शब्दोंमें सुनिये। चित्रकूट पहुँचकर भरतने बहुत चाहा कि राम वापस चलकर अयोध्याका राज्य करें।

इसपर रामने कहा—

निज कर खाल खैंचि या तनु तें जौ पितु पग पानहीं करावौं।
होउँ न उरिन पिता दसरथ तें, कैसे ताके बचन मेटि पति पावौं॥
(गीतावली २। ७२)

इससे अधिक कोई क्या कह सकता है। महाराज दशरथके मनमें जो प्रेम पुत्रके लिये था, उससे अधिक पिताके वचनका मान पुत्रके मनमें था। आज हमारे युवकोंके मनमें भी रामके सब गुण बस जाते तो हम घर-घरमें राम पाते, देशमें सच्चा रामराज्य कायम हो जाता और तब तुलसीदासजीका यह प्रणाम कैसा सार्थक होता—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥
(मानस १। ७। १)

श्रीरामकी बाल-लीला

करतल सोभित बान-धनुहियाँ।
खेलत फिरत कनकमय आँगन, पहिरें लाल पनहियाँ॥
दसरथ-कौसिल्या के आगें, लसत सुमन की छहियाँ।
मानौं चारि हंस सरबर तें बैठे आइ सदेहियाँ॥
रघुकुल-कुमुद-चंद चिंतामनि, प्रगटे भूतल महियाँ।
आए आप देन रघुकुल कौं, आनँद-निधि सब कहियाँ॥
यह सुख तीनि लोक मैं नाहीं, जो पाए प्रभु पहियाँ।
'सूरदास' हरि बोलि भक्त कौं, निरबाहत गहि बहियाँ॥

श्रीरामका ग्रामजीवन और ग्रामीण जनताके प्रति स्नेह

(लेखक—ज्यो० पण्डित श्रीराधेश्यामजी द्विवेदी)

प्रजावत्सल भगवान् श्रीरामका ग्रामजीवन और ग्रामीण प्रजाके साथ सहवास एवं स्नेह उनके आनन्दमय जीवनका सबसे मधुर और सुखदायक प्रसङ्ग है। नगरोंमें या ग्रामोंके समीप या वनोंमें जहाँ भी श्रीराम पहुँचते हैं, प्रजा-जन अपनी सुध-बुध भूलकर उनपर मोहित हो जाते हैं और वे भी प्रेमपूर्वक प्रजाजनोंमें घुल-मिल जाते हैं। उनके जनकपुरमें पहुँचनेका वर्णन है—

जहँ-जहँ गवने बंधु दोउ तहँ-तहँ भीर बिसाल।
बाल-जुबा अरु बृद्ध सब डोलहिं संग बिहाल॥
नर-नारिन्ह मोहत फिरत गली-गली महँ धूम।

यह राजपुत्रोंका और नागरिक जनताका सम्पर्क था। ग्रामवासियोंके प्रेमकी दशा तो और भी अधिक हृदयपर असर डालती है। वनवास-कालमें जब श्रीराम ग्रामोंके पाससे निकलते हैं, उस समय प्रकट होनेवाली ग्रामवासियोंकी प्रीति और रीतिका गोस्वामी तुलसीदासजीने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

अबला बालक बृद्ध जन कर मीजहिं पछिताहिं।
होहिं प्रेमबस लोग इमि रामु जहाँ जहँ जाहिं॥

गावँ गावँ अस होइ अनंदू। देखि भानुकुल कैरव चंदू॥
(मानस २। १२१; २। १२१। ½)

ग्रामवासी कितने सहज भावसे और स्नेहसे श्रीरामजीसे पूछते हैं—

करि केहरि बन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु होई॥
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुम्हहि सिरु नाई॥

एहि बिधि पूँछहिं प्रेम बस पुलक गात जलु नैन।
कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहि कहि बिनीत मृदु बैन॥
(वही, २। १११। ४; ११२)

जिस ग्रामके पाससे श्रीराम निकलते थे, गाँवके बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष अपने घरोंके सब काम-काज छोड़कर तुरंत उनके साथ हो लेते थे—

सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृहकाजु बिसारी॥
बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्ह सुरमनि ढेरी॥
(वही, २। १११। १, २½)

अर्थात् ग्रामवासियोंकी उस समयकी दशाका वर्णन नहीं किया जा सकता; ऐसा लगता था, मानो दरिद्रोंने देवताओंकी मणियोंकी ढेरी पा ली हो।

भारतीय आदर्शको निभाते हुए ग्रामवासी श्रीरामचन्द्रजीकी प्रेम-भरी सेवा करते हैं—

एक देखि बट छाँह भलि डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गवाँइअ छिनुकु श्रमु गवनब अबहिं कि प्रात॥

एक कलस भरि आनहिं पानी। अँचइअ नाथ कहहिं मृदु बानी॥
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी। राम कृपाल सुसील बिसेषी॥
(वही, २। ११४; ११४। १)

"ग्रामवासी एक बरगदकी अच्छी छाया देखकर, वहाँ कोमल तिनके और पत्ते बिछाकर श्रीरामजीसे प्रेमपूर्वक कहते हैं कि 'यहाँ क्षणभर बैठकर थकावट दूर कर लीजिये' और पूछते हैं कि 'आप अभी जायँगे या सबेरे जायँगे?' एक ग्रामीण गगरा भरकर पानी ले आया और मधुर वाणी कहता है—'नाथ! मुँह-हाथ धोकर थोड़ा जल पी लीजिये।' कृपालु श्रीरामजी भी उनके प्यारे वचन सुनकर अत्यन्त प्रीतिपूर्वक वहाँ बैठकर उन्हें आनन्द देते हैं और बातचीत करते हैं।" प्रेमकी मूर्ति श्रीरामजी प्रेमके प्यासे ग्रामवासियोंको अपनी स्नेहभरी बातचीतसे तृप्त कर देते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

थके नारि नर प्रेम पिआसे। मनहुँ मृगी मृग देखि दिआ से॥
(वही, २। ११५। १½)

'प्रेमके प्यासे ग्रामवासी स्त्री-पुरुष थककर ऐसे खड़े हो जाते हैं, जैसे हिरनी और हिरन वनमें मशाल देखकर थक जाते हैं।'

ग्रामोंकी स्त्रियोंका श्रीजानकीजीके साथ प्रेमपूर्ण वार्तालाप और व्यवहार तो और भी चित्तको आनन्द देनेवाला होता है। गोस्वामी तुलसीदासजीने इसका कैसा सुन्दर वर्णन किया है—

सीय समीप ग्रामतिय जाहीं। पूँछत अति सनेहँ सकुचाहीं॥
बार बार सब लागहिं पाएँ। कहहिं बचन मृदु सरल सुभाएँ॥
राजकुमारि बिनय हम करहीं। तिय सुभायँ कछु पूँछत डरहीं॥
स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी। बिलगु न मानब जानि गवाँरी॥
कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥
(वही, २। ११५। २-३½; ११६। १)

"सीताजीके समीप गाँवकी स्त्रियाँ जाती हैं, पर अति स्नेहके कारण पूछते सकुचाती हैं। सब बार-बार पैरों लगाती हैं और सहज स्वभावसे मधुर वचन कहती हैं—'राजकुमारी! हम सब आपसे विनती करती हैं, पर स्त्री-स्वभावसे कुछ पूछते डरती हैं। हे स्वामिनि! हमारी ढिठाईको क्षमा करना, हमें गँवारिन जानकर बुरा न मानना—करोड़ों कामदेवोंको लजानेवाले ये तुम्हारे कौन हैं?'" सीताजीने भी सकुचाकर और मुस्कराकर उनको प्रेमपूर्वक ही उत्तर दिया। वे ग्रामवधूटियाँ उनके उत्तरको सुनकर ऐसी प्रसन्न हुईं, मानो किसी कंगालने राजाका कोष लूट लिया हो।

जब श्रीराम वहाँसे चलने लगे, तब ग्रामवासियोंको ऐसा दुःख हुआ, मानो उनका सर्वस्व ही जा रहा हो। श्रीराम सबको बड़ी कठिनाईसे प्रेमपूर्वक समझाकर लौटा पाते थे। श्रीरामको छोड़कर गाँवोंमें वापस जानेसे ग्रामवासियोंको भारी दुःख और पछतावा होता था, उनकी आँखोंमें जल भर आता था। श्रीरामके थोड़े समयके सहवाससे ही गाँवके लोग प्रेमवश हो जाते थे। श्रीरामको देखकर गाँव-गाँवमें ऐसा ही प्रेमपूर्ण और आनन्ददायी दृश्य उपस्थित हो जाता था।

प्रेमकी मूर्ति श्रीराम सुन्दर ग्रामों और वनोंमें बसनेवाली प्रजाके साथ समान भावसे मिलते थे और सभीको अपनी मधुर वाणीसे संतुष्ट करते थे। चित्रकूटपर कोल-किरात, भील—सभी सदा उनकी सेवामें लगे रहते थे। उन्होंने केवटपर अनुपम कृपा की, भीलोंके राजा गुहको अपना सखा बनाया, वनोंमें बसनेवाले मुनियों और संतोंके साथ सहवास कर उन्हें संतोष और शान्ति दी। वानरोंके राजासे मित्रता की और वानरोंकी संगठित सेना सजवाकर असुरोंका अन्त किया। इस प्रकार जंगलोंमें चौदह वर्ष बिताकर आततायी, छली, कपटी, दुष्ट राक्षसोंको मारकर श्रीरामने दीन वनवासी प्रजाकी सब प्रकारसे रक्षा की।

महाबली और अभिमानी रावण और उसके दुष्ट साथियोंको समाप्तकर, अयोध्यापुरीमें वापस आकर आदर्श रामराज्यकी स्थापना की। राजगद्दीपर बैठनेपर भी महाराज रामचन्द्रने प्रजाकी इच्छा और भावनाको सदा पहला स्थान देकर माना। उनके राज्यमें पुरजनोंकी सभा थी, जिससे वे सदा परामर्श लिया करते थे। एक साधारण धोबीके कहनेमात्रपर उन्होंने अपनी जीवनसङ्गिनी सतीशिरोमणि जानकीको त्याग दिया।

प्रजाके कष्टकी भनक कानमें पड़ते ही वे अधीर हो जाते थे और उसे तुरंत दूर करते थे। लवणासुरके अत्याचारोंसे दुखी व्रजप्रदेशकी प्रजाकी पुकारपर श्रीरामने अपने छोटे भाई शत्रुघ्नको भेजकर उसका वध कराया। वहाँकी प्रजाको निर्भय करके मथुरापुरीकी स्थापना करायी।

इस प्रकार प्रजाको प्रसन्न रखनेवाले रामका समस्त जीवन प्रजाको निर्भय और सुखी रखनेमें ही बीता। उन्हीं रामकी और उनके रामराज्यकी यादमें, प्रजाके सदाचार, सद्व्यवहार, सुख-समृद्धि और शान्तिके युगकी यादमें, आर्यवीर श्रीरामके समयसे आजतक इस देशमें रामनवमीका शुभ दिन हम मनाते हैं। श्रीरामके जन्मको लाखों वर्ष हो गये, पर प्रजाका हित चाहनेवाले, लोकोपकारक उनके राज्यकालकी सुख-समृद्धिकी स्मृति भारतकी प्रजाके हृदयपर अमिट है। करोड़ों युग बीत जानेपर भी वह सदा याद रहेगी और प्रजाके प्यारे रामकी पवित्र जन्मतिथि भारतीय प्रजाद्वारा पवित्र भावनासे मनायी जायगी।

'एकहिं बान'—रामबाणकी महत्ता

(लेखक—पं० श्रीमथुरानाथजी शुक्ल)

कोसलेन्द्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके बाणकी महत्तापर जब हम विचार करते हैं, तब गीताके इस भगवद्वचन—'रामः शस्त्रभृतामहम्' (१० । ३१) की यथार्थता अत्यन्त सुस्पष्ट हो जाती है। वास्तवमें राजाधिराज महाराज श्रीरामभद्रके समान संसारमें न तो कोई धनुर्धर हुआ, न हो सकेगा। भगवान् श्रीरघुनाथजीके परमपावन चरित्रके अनुशीलन करनेपर रामबाणकी जो महत्ताएँ दृष्टिगोचर होती हैं, वे सृष्टिके आदि-इतिहाससे लेकर आजतकके किसी भी धनुर्धरमें न तो देखी गयी हैं न सुनी ही गयी हैं। प्रथम महत्ता तो रामबाणकी यह है कि वह अमोघ या अन्वर्थ होता है—'जिमि अमोघ रघुपति कर बाना।' (मानस ५ । ० । ८ लाइन) और कभी लक्ष्यभ्रष्ट भी नहीं होता। शायद इसी प्रथम गुणके कारण किसी वस्तु और विशेषतया किसी औषध आदिकी अमोघताके लिये 'रामबाण-औषध'—ऐसा जगत्‌में शाब्दिक व्यवहार होने लगा, जो सर्वविदित है।

रामबाणकी द्वितीय महत्ता यह है कि श्रीराघवेन्द्र सरकार एक ही बाणका प्रयोग करते हैं। उनको दूसरे बाणकी कभी आवश्यकता ही नहीं होती। एक ही बाण समस्त संकल्पित कार्य पूर्ण कर देता है। इसीलिये प्रभुके सम्बन्धमें यह सुप्रसिद्धि है—'द्विःशरं नाभिसंधत्ते' 'रामो द्विर्नाभिभाषते' (महानाटक २ । २४; हनुमन्नाटक १ । ४८)—राम धनुषपर दूसरा बाण नहीं चढ़ाते और दो बात नहीं बोलते।' बस, एक ही बाण शत्रुसेनाका संहार करनेके लिये पर्याप्त होता है। श्रीमद्भागवतके अनुसार ब्राह्मण-बालकोंके लानेके प्रसङ्गमें आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका सुदर्शन चक्र उस गहन अन्धकारको विदीर्ण करता ऐसे वेगसे आगे बढ़ रहा था, जैसे श्रीरघुनाथजीके धनुषकी प्रत्यञ्चासे छूटा हुआ बाण शत्रुसेनामें प्रविष्ट हो जाता है—

तमः सुघोरं गहनं कृतं महद्
विदारयद् भूरितरेण रोचिषा।
मनोजवं निर्विविशे सुदर्शनं
गुणच्युतो रामशरो यथा चमूः॥
(श्रीमद्भा० १० । ८९ । ५१)

रावणवध-प्रसङ्गमें श्रीरामजीद्वारा ३१ बाण छोड़नेका मानसमें उल्लेख है; किंतु श्रीमद्भागवतमें एक ही बाणसे रावणके हृदयको भेदन करके मार डालनेकी बात लिखी है—

एवं क्षिपन् धनुषि संधितमुत्ससर्ज
बाणं सवज्रमिव तद्धृदयं बिभेद।
सोऽसृग् वमन् दशमुखैर्न्यपतद् विमाना-
द्धाहेति जल्पति जने सुकृतीव रिक्तः॥
(श्रीमद्भा० ९ । १० । २३)

ध्यान रहे, उपर्युक्त दोनों ही श्लोकोंमें बाणके लिये एक वचनका ही प्रयोग है। उसका कारण यह है कि श्रीरघुनाथजीके अक्षय तूणीरमें बहुत हल्के-हल्के केवल पाँच-सात बाण ही नित्य अखण्ड बने रहते हैं। युद्धमें निरन्तर प्रयोग करनेपर भी उनमें न्यूनाधिकता कभी नहीं होती। यह प्रभुके बाणोंका आश्चर्यजनक अपना अद्भुत वैशिष्ट्य है। उनमेंसे एक ही बाणका प्रयोग किया जाता है। अब उस बाणके प्रयुक्त होते ही सत्यसंकल्प प्रभुके संकल्पानुसार उसी बाणसे यथासंकल्पित संख्यामें प्रत्येक बाण अमोघ होकर शत्रुसंहार या उनका इच्छित कार्य कर डालता है।

अब केवल रामचरितमानससे महाराजश्रीके एक ही बाणका प्रयोग करनेके कुछ प्रसङ्ग उपस्थित किये जाते हैं—प्रथम ताड़का-वध-प्रसङ्गमें—'एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा।' (मानस १।२०८।३); फिर मारीचके सम्बन्धमें—'बिनु फर बान राम तेहि मारा।' (वही, १।२०९।२)। फिर 'पावक सर सुबाहु पुनि मारा।' (वही, १।२०९।२½) । जयन्त-लीलामें—'प्रेरित मंत्र ब्रह्म सर धावा।' (वही, ३ । १ । १) । मारीच-वध-प्रसङ्गमें—'तब तकि राम कठिन सर मारा।' (वही, ३ । २६ । ७) । वालि-वधकी प्रतिज्ञामें स्वयं श्रीमुखसे ही कहते हैं—'सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।' (वही, ४ । ६) । रावणकी रङ्गसभामें रङ्ग-भङ्ग करनेके लिये प्रभुने—'छत्र मुकुट ताटंक सब हते एकहीं बान।' (वही, ६ । १३ क) । यहाँ बाणकी अदृश्य शक्ति और श्रीरामकी अत्यन्त सूक्ष्म कार्यपटुता आश्चर्यमें डुबो देती है। मेघनादकी युद्धमायाको—'एक बान काटी सब माया।' (वही, ६ । ५१ । ३½) । कुम्भकर्णके वधके लिये—'तब प्रभु कोपि तीव्र सर लीन्हा।' (६ । ७० । २) । रावण-युद्ध-प्रसङ्गमें रावणकी राक्षसी माया हरनेके लिये—'निज सेन चकित बिलोकि हँसि सर चाप सजि कोसल धनी। माया हरी हरि निमिष महुँ हरषी सकल मर्कट अनी॥'
(वही, ६ । ८८ । १ छन्द)

और जब रावणने मायासे स्वयं सैकड़ों रूप धारण करके वानरसेना एवं देवताओंको अत्यन्त भयभीत कर दिया,

तब—

सुर बानर देखे बिकल हँस्यो कोसलाधीस।
सजि सारंग एक सर हते सकल दससीस॥

(वही, ६ । ९६)

महर्षि वाल्मीकिके आदिकाव्यके प्रथम सर्ग, मूल-रामायणमें लिखा है—

बिभेद च पुनस्तालान् सप्तैकेन महेषुणा।
गिरिं रसातलं चैव जनयन् प्रत्ययं तदा॥

(१ । १ । ६६)

उस समय श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवको अपने पराक्रमका विश्वास दिलानेके लिये एक बाणसे ही सात ताल-वृक्षों, पर्वत और रसातलतकको बींध डाला। उपर्युक्त सभी प्रसङ्गोंमें केवल एक ही बाणकी अत्यन्त अद्भुत और अलौकिक अमोघ शक्तिका वर्णन है।

रामबाणकी अत्यन्त आश्चर्यमयी लोकोत्तर अद्भुत तृतीय महत्ता यह है—जो विश्वके इतिहासमें किसी भी महाधनुर्धरमें न तो देखी गयी और न सुनी ही गयी है—कि वह बाण आज्ञापालक विनम्र सेवककी भाँति प्रभुका अभीष्ट कार्य करके धीरेसे पुनः उनके तूणीरमें प्रवेश कर जाता है और इस प्रकार भगवान् राघवेन्द्रका तूणीर निरन्तर अक्षय बना रहता है—

अस कौतुक करि राम सर प्रबिसेउ आइ निषंग।
रावन सभा ससंक सब देखि महा रसभंग॥

(वही, ६ । १३ ख)

और भी—

मदोदरि आगें भुज सीसा। धरि सर चले जहाँ जगदीसा॥
प्रबिसे सब निषंग महुँ जाई। देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाई॥

(वही, ६ । १०२ । ४)

अतः—

'नमस्ते रामबाणाय रामत्राण जयोऽस्तु ते।'

दशवदन-निधनकारी श्रीराम

(लेखक—पं० श्रीशिवकुमारजी शास्त्री, व्याकरणाचार्य)

जयति रघुवंशतिलकः कौसल्याहृदयनन्दनो रामः।
दशवदननिधनकारी दाशरथिः पुण्डरीकाक्षः॥

(अध्या० रा० ७ । १ । १)

भारतकी संस्कृति धर्म-प्रधान है। धर्मका सम्बन्ध आचारके साथ है। इस आचारके मूर्तिमान् विग्रह श्रीराम हैं। मानव-जीवनको सर्वाङ्ग-सुन्दर बनानेवाला अनुकरणीय तथा शिक्षाप्रद चरित्र अद्यावधि श्रीरामके चरित्रको छोड़कर और किसीका ढूँढ़नेसे भी नहीं मिलेगा। रामका चरित्र ही रामायणको अमर बना गया है, आज भी आबाल-वृद्ध जनताका इसीलिये वह कण्ठहार बना हुआ है।

मानव-जीवनके चार पुरुषार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। इन चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धिमें भी आचार ही प्रमुख आधार है। आचारके बिना विचारोंका न कोई मूल्य है और न महत्त्व। आचारके बिना विचार जैसे अंधे हैं, उसी प्रकार विचारके बिना आचार पङ्गु। आचार और विचार—क्रिया और ज्ञान—दोनोंका समन्वय ही मानवको उसके लक्ष्यतक पहुँचा देता है; इसके विपरीत दोनों बेमेल होते ही मानवको पतनके गर्तमें गिरा देते हैं। रावणका जीवन जहाँ आचार तथा विचार—क्रिया एवं ज्ञानके बेमेल होनेकी कहानी है, वहाँ श्रीरामका जीवन उनके सुन्दर समन्वयका आदर्श इतिहास है।

राम-रावणका युद्ध भिन्न आचारोंका प्रबल संघर्ष है। भारतीय संस्कृतिमें यह देवासुर-संग्रामके रूपमें प्रसिद्ध है। इसीको हम दैवी-सम्पत्ति और आसुरी-सम्पत्तिका संघर्ष भी कह सकते हैं।

श्रीराम और रावण दोनों ही भगवान् शंकरके अनन्य भक्त थे। दोनों ही परम कुलीन, विद्वान्, बलवान् तथा सम्पन्न थे; लेकिन एकका ज्ञान तथा बल दीनजन-रक्षणके लिये था तो दूसरेका दीनजन-पीडनके लिये। एक सदाचार-सम्पन्न थे तो दूसरा दुराचार-परायण। एक दैवी-सम्पत्तिके उपासक थे तो दूसरा मनसा-वाचा-कर्मणा आसुरी-सम्पत्तिका परम पोषक। श्रीराम यदि नियतात्मा, महापराक्रमी, तेजस्वी, धैर्यशाली, जितेन्द्रिय, आर्यधर्मपरायण, सर्वत्र सम-दृष्टि-सम्पन्न, सत्यप्रतिज्ञ, यशस्वी, शास्त्रीय मर्यादाके परम रक्षक और सर्वसद्गुण-सम्पन्न थे तो रावण अनियतचित्त उतावला, अजितेन्द्रिय, अनार्यकर्मकर्त्ता, सर्वत्र विषमबुद्धि, शास्त्रीय मर्यादाका विनाशक तथा प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी परम निन्दित स्वभाववाला एवं दुराचारी था। अतः श्रीराम-रावणका युद्ध जहाँ दो विरुद्ध आचारोंका युद्ध है, वहाँ श्रीरामकी विजय दैवी-सम्पत्तिकी, दैवी आचारकी, सदाचारकी विजय है और यह कहना अनावश्यक है कि

श्रीरामका अवतरण इसीकी स्थापनाके लिये हुआ था। असलमें सदाचारकी स्थापना ही धर्मकी स्थापना है।

यदि रावण सदाचारी होता तो वह एक आदर्श व्यक्ति माना जाता। रावणके सम्बन्धमें श्रीहनुमान्‌जीकी उक्ति कितनी सटीक है—

अहो रूपमहो धैर्यमहो सत्त्वमहो द्युतिः।
अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता॥
यद्यधर्मो न बलवान् स्यादयं राक्षसेश्वरः।
स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता॥
अस्य क्रूरैर्नृशंसैश्च कर्मभिर्लोककुत्सितैः।
सर्वे बिभ्यति खल्वस्माल्लोकाः सामरदानवाः॥
अयं ह्युत्सहते क्रुद्धः कर्तुमेकार्णवं जगत्।
(वा० रा० ५। ४९। १७—२०)

'इस राक्षसराजका रूप कैसा अद्भुत है, धैर्य कैसा अनोखा है, कैसी अनुपम शक्ति है और कैसा आश्चर्यजनक तेज है। इसका सम्पूर्ण राजोचित लक्षणोंसे युक्त होना कितने आश्चर्यकी बात है। यदि इसमें अधर्म न होता तो यह प्रबल राक्षसराज रावण इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवलोकका संरक्षक हो सकता था। इसके लोकनिन्दित क्रूरतापूर्ण निष्ठुर कर्मोंके कारण देवताओं और दानवोंसहित सम्पूर्ण लोक इससे भयभीत रहते हैं। यह कुपित होनेपर समस्त जगत्‌को एकार्णवमें निमग्न कर सकता है—संसारमें प्रलय मचा सकता है।'

यह हम ऊपर कह चुके हैं कि रावण विद्वान् था और शिवभक्त भी था; किंतु उसकी दूषित वासनाएँ उसकी विद्वत्ता तथा भक्तिको जीवोंमें भेद-दर्शनद्वारा नीचेकी ओर ले जा रही थीं। उसकी शिवभक्ति विषय-वासनाओंकी पूर्तिके लिये थी। अज्ञानी भेददर्शी पुरुषकी विद्या तथा भक्ति सदा भय देनेवाली होती हैं। दूसरोंको पीड़ा पहुँचानेमें जिसे सुख मिलता हो, जो सदा अशान्त रहता हो, विषयभोगोंकी प्राप्तिके लिये जो इन्द्रियोंका दास बन चुका हो, वह पुरुष क्या कभी सुखी रह सकता है। अनियत दस इन्द्रियाँ कब उसे शान्त रहने देंगी। अच्छी वस्तु भी दूषित पात्रमें पड़कर दूषित हो जाती है। विद्या सुपात्रको विनीत बनाती है, कुपात्रको नहीं; कुपात्रके पास जाकर तो वह भी कुविद्या हो जाती है। दूषित वासनाओंवाले अन्यायी पुरुषकी विद्या, गुण, शक्ति तथा धन कभी दूसरोंके हितमें नहीं लग सकते; वे एव दूसरोंको नीचा दिखानेके साथ-साथ स्वयंको भी नीचे ही ले जाते हैं। रावणका जीवन इसका साक्षी है। वह अनियन्त्रित वासनाओंसे पूर्ण था। इच्छा-सुख ही उसका सर्वस्व था। एक बात और—रावण प्रभु सर्वेश्वर श्रीरामका तिरस्कार कर अपनी शक्तिका प्रयोग करना चाहता था। जैसे संचालकके बिना यन्त्र हितकर नहीं होता, वैसे ही शक्तिमान् आधारके बिना शक्तिका प्रयोग भी सर्वनाशकारी होता है। परमात्मा श्रीराम जैसे सब जगत्‌के संचालक हैं, वैसे ही वे सबके शक्तिमान् आधार भी हैं। उनकी उपेक्षासे किसीका भला नहीं हो सकता। रावणको अपनी करनीका फल आखिर भुगतना ही पड़ा।

'दशग्रीव', 'दशानन', 'दशकण्ठ'—रावणके ये सभी नाम एक विशेष बातकी ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। श्रीरामके सम्बन्धमें कहा जाता है—'रामो द्विर्नाभिभाषते।' (वा० रा० २। १८। ३०) अर्थात् राम दो तरहकी भाषा नहीं बोलते। जो कहते हैं, वही कर डालते हैं; किंतु दशकण्ठ दस बातें बोलते हैं अर्थात् सत्यके साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं। उनकी कथनी और करनीमें अन्तर है। उनका ज्ञान क्रियाके साथ मेल नहीं खाता।

मानव-शरीरमें दस इन्द्रियाँ हैं—पाँच कर्मेन्द्रिय और पाँच ज्ञानेन्द्रिय। चक्षुः, श्रोत्र, त्वक्, रसना, घ्राण—ये पाँचों ज्ञानेन्द्रिय हैं तथा वाणी, हाथ, पाँव, मलेन्द्रिय तथा मूत्रेन्द्रिय—ये पाँच कर्मेन्द्रिय हैं। समझने अथवा ज्ञान करानेमें सहायक होनेके कारण चक्षुः आदि 'ज्ञानेन्द्रिय' तथा कर्म करनेमें सहायक होनेके कारण वाणी आदि 'कर्मेन्द्रिय' कहलाती हैं।

असुरराज रावण कर्मणा असुर था। सुर-असुर शब्दोंका सुन्दर विवेचन बृहदारण्यकोपनिषद्‌में हुआ है—

द्वया ह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च। ततः कानीयसा एव देवा ज्यायसा असुरास्त एषु लोकेष्वस्पर्धन्त।
(१। ३। १)

आचार्य शंकर इन पदोंकी व्याख्या करते हुए कहते हैं—

शास्त्रजनितज्ञानकर्मभाविता द्योतनाद्देवा भवन्ति। त एव स्वाभाविकप्रत्यक्षानुमानजनितदृष्टप्रयोजनकर्मज्ञानभाविता असुराः। स्वेष्वेवासुषु रमणात् सुरेभ्यो वा देवेभ्योऽन्यत्वात्।

अर्थात् शास्त्रजनित कर्म और ज्ञानसे भावित प्राणी प्रकाशमय होनेके कारण 'देव' हैं तथा स्वाभाविक प्रत्यक्ष

एवं अनुमानजनित दृष्ट प्रयोजनवाले ज्ञान और कर्मसे भावित होनेवाले प्राणी 'असुर' हैं। अपने ही प्राणोंमें रमण करनेके कारण अथवा सुर अर्थात् देवोंसे भिन्न होनेके कारण वे 'असुर' कहलाते हैं।

देवानां चासुराणां च वृत्त्युद्भवाभिभवौ स्पर्धा। कदाचिच्छास्त्रजनितकर्मज्ञानभावनारूपा वृत्तिः प्राणानामुद्भवति। यदा चोद्भवति तदा दृष्टप्रयोजना प्रत्यक्षानुमानजनितकर्मज्ञानभावनारूपा तेषामेव प्राणानां वृत्तिरासुर्यभिभूयते। स देवानां जयोऽसुराणां पराजयः। कदाचित्तद्विपर्ययेण देवानां वृत्तिरभिभूयत आसुर्या उद्भवः। सोऽसुराणां जयो देवानां पराजयः। एवं देवानां जये धर्मभूयस्त्वादुत्कर्ष आ प्रजापतित्वप्राप्तेः। असुरजयेऽधर्मभूयस्त्वादपकर्ष आ स्थावरत्वप्राप्तेः। उभयसाम्ये मनुष्यत्वप्राप्तिः।

अर्थात् दैवी और आसुरी वृत्तियोंका उठना और दबना ही देवता और असुरोंकी स्पर्धा अथवा युद्ध है। कभी प्राणोंकी शास्त्रजनित कर्म-ज्ञानभावनारूपा वृत्ति उठती है। जिस समय यह उठती है, उस समय उन्हीं प्राणोंकी दृष्ट-प्रयोजनवाली प्रत्यक्ष एवं अनुमानजनित कर्म-ज्ञान-भावनारूपा आसुरी वृत्ति दब जाती है। यही देवताओंकी जय और असुरोंकी पराजय है। कभी इसके विपरीत देवताओंकी वृत्ति दब जाती है और आसुरी वृत्तिका उत्थान होता है। वह असुरोंकी विजय और देवोंकी पराजय है। देवताओंकी विजय होनेपर धर्मकी अधिकता होनेके कारण प्रजापति-पद पानेतक ऊर्ध्वगमन होता है तथा असुर-वृत्तियोंके बढ़नेपर अधर्मकी अधिकता होनेके कारण स्थावरत्व-प्राप्तितक अधोगति होती है। दोनोंकी समानता होनेपर मनुष्यत्वकी प्राप्ति होती है।

इससे यह तो प्रमाणित हो ही जाता है कि असुर कामचारी होते हैं, इन्द्रिय-भोग-प्रधान होते हैं, सभी इन्द्रियजन्य भोगोंमें आसक्त होते हैं—

कुरंगमातंगपतंगभृङ्ग-
मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते
यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च॥
(गरुड० २। २। १८)

'एक-एक विषयमें आसक्त होनेसे हिरन, हाथी, पतंग, भौंरा तथा मछली विनाशको प्राप्त करते हैं; फिर यदि किसीकी पाँचों विषयोंमें आसक्ति हो जाय, तब तो कहा ही क्या जा सकता है। ऐसोंके विनाशमें क्या देर लगेगी।' महात्मा प्रह्लादने भगवान्‌के सामने निवेदन किया था—

जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति मावितृप्ता
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित्।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्ति-
र्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति॥
(श्रीमद्भा० ७। ९। ४०)

'जैसे किसी पुरुषकी बहुत-सी पत्नियाँ उसे अपने-अपने शयन-गृहमें ले जानेके लिये चारों ओरसे घसीटें, वैसे ही कभी न अघानेवाली जीभ स्वादिष्ट रसोंकी ओर, जननेन्द्रिय सुन्दरी स्त्रीकी ओर, त्वचा कोमल स्पर्शकी ओर, पेट भोजनकी ओर, कान मधुर संगीतकी ओर, नासिका भीनी-भीनी सुगन्धकी ओर, चपल नेत्र सौन्दर्यकी ओर तथा कर्मेन्द्रियाँ मुझे विभिन्न कर्मोंकी ओर खींचती हैं।'

रावण इसी प्रकार दस इन्द्रियोंके द्वारा अप्रतिहत कामाचारपरायण हो चुका था। इसीलिये उसे दशवदन, दशानन कहना उचित लगता है। जिस प्रकार 'कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्' कठोपनिषद्(४।१)के इस वाक्यमें 'आवृत्तचक्षुः'के 'चक्षुः' शब्दसे अन्य इन्द्रियोंका भी ग्रहण किया जाता है, उसी प्रकार 'दशानन' में 'आनन' शब्दसे इन्द्रियोंके ग्रहणके साथ-साथ दसों इन्द्रियोंकी कामासक्तिका बोध भी होता है।

कठोपनिषद्‌में कहा गया है—

पराचः कामाननु यन्ति बाला-
स्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा
ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते॥
(४। २)

'अज्ञानी पुरुष बाह्य विषयोंमें आसक्त हो मृत्युके फैले हुए जालमें फँस जाते हैं, पर धीर—ज्ञानी पुरुष अपने अमृत-भावको यथार्थरूपमें समझकर निश्चय ही अनित्य बाह्य सुखको नहीं चाहते।'

अतः श्रीराम भूभार उतारनेके लिये अवतरित हुए थे; उन्होंने आसुरी शक्तियोंपर विजय करनेके लिये अपने सदाचारकी शक्तिका आदर्श उपस्थित किया था और इसीके

बलसे उन्होंने रावणपर—असुरपर विजय प्राप्त की थी। रावणपर विजय इसीलिये सदाचारकी विजय है, धर्मकी विजय है। धर्मावतार भगवान् श्रीरामकी प्रतिज्ञा है—

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम् ॥
न हि प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ।
(वा० रा० ३ । १० । १८-१९)

'सीते ! मैं अपना जीवन छोड़ सकता हूँ, लक्ष्मणको तथा तुम्हें भी छोड़ सकता हूँ; पर ब्राह्मण एवं धर्मकी रक्षाके लिये की गयी प्रतिज्ञाका कभी भी त्याग नहीं कर सकता।'

धर्मपर आरूढ़ रहनेका श्रीरामका निश्चय ही रावण—असुर-रूपा-शक्ति—पर विजयका आदर्श उपस्थित करता है और इसी आदर्शका पालन करनेपर मानवका कल्याण हो सकता है; क्योंकि श्रीरामका जीवन ही लोक-शिक्षण और लोकोद्धारका मार्गदर्शन करानेके निमित्त हुआ था।

लोकनायक श्रीराम

(लेखक—डॉ० श्रीसुबालालजी उपाध्याय 'शुकरत्न', एम्० ए०, पी-एच्०डी०, साहित्याचार्य, तीर्थद्वय, रत्नद्वय)

वाल्मीकि ऐसे महापुरुषकी खोजमें थे, जो गुणवान्, पराक्रमी, धार्मिक, सत्यवादी, कृतज्ञ, दृढ़व्रत, चरित्रवान्, सभीका हित चाहनेवाला, विद्वान्, समर्थ, प्रियदर्शन, मनको अधिकारमें रखनेवाला, जितक्रोध, कान्तिमान्, किसीकी भी निन्दा नहीं करनेवाला, ईर्ष्याहीन और युद्धवीर हो (वा० रा०, बाल० १ । १–४)। ये सम्पूर्ण विश्वके आदर्श हैं। इन्हीं आदर्शोंकी प्राप्तिके लिये मनुष्य-जाति राम-चरित्रको बार-बार सुनती और पढ़ती है। वस्तुतः राम-चरित्रसे प्राप्त भावनाएँ, चिन्ताधाराएँ और विचार एक ऐसे स्तरपर पहुँचे हुए हैं, जो सार्वदेशिक और सार्वकालिक हैं तथा जो सारी दुनियाको जाग्रत् करनेमें पूर्ण समर्थ हैं। इस विलक्षण और शक्तिशाली चरित्रसे मनुष्य-मात्र अपने दिन-प्रतिदिनके जीवनमें मार्गदर्शन प्राप्तकर कृतकृत्य हो सकता है। राम-चरित व्यक्ति-चरित नहीं, वह समष्टि-चरित—विश्व-चरित है।

रामकी कथा मानव-जीवनकी कहानी है, जो रात-दिन प्रतिपल हमारे जीवनमें चलती रहती है। दुनियाकी ऐसी कौन-सी प्रमुख भाषा है, जिसमें राम-कथा न हो। यह भाषा, देश, जाति, धर्म और कालकी सीमाओंको तोड़कर, युग-युगके असंख्य नर-नारियोंके मनमें स्थान बनाती चली गयी। कवियोंकी अगणित पीढ़ियोंने संसारकी विविध भाषाओंमें रामचरित्रके इसी अक्षय महास्रोतसे अपनी-अपनी रमणीय काव्य-गङ्गाओंको प्रवाहित किया है। यह केवल जैनियों, बौद्धों और वैदिकोंकी ही नहीं, एशियाई मुसलमानोंकी भी है। लोकप्रियताके चरमोत्कर्षपर स्थित 'राम-लीला'के लिये भारतसे इंडोनेशियातकके आकाशमें तालियोंकी गड़गड़ाहट है। इतिहासकार रामकथाकी सार्वदेशिकताको खोजनेमें पूरे सफल हैं। इंडोनेशियामें २९ अगस्तसे ९ सितम्बर १९७१तक होनेवाला 'अन्ताराष्ट्रिय रामायण-महोत्सव' इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

भारतीयोंका तो यह जीवन-सर्वस्व है। सम्पूर्ण भारतीय सभ्यता और संस्कृति अपनी निश्शेष भव्यताके साथ 'राम'—इन दो अक्षरोंमें समाहित है। भारतके कोटि-कोटि जन रामकथाके साथ उठते-बैठते, सोते-जागते और चलते हैं। श्रीरामके जीवनसे प्रेरणा लेकर सैकड़ों पीढ़ियोंके असंख्य लोगोंने अपने जीवनको समृद्ध, सुसज्जित और अलंकृत किया है, अपनी चेतनाके स्तरको ऊँचा उठाया है। राम भारत-राष्ट्रकी प्रतिमूर्ति, पर्यायवाची और प्रतीक हैं।

श्रेष्ठ ज्ञान, अप्रतिहत वीरता, शुद्ध पवित्र चरित्र, निःस्वार्थ-सेवा एवं जनहितके अगणित उदाहरण विश्व-समाजमें देखे गये हैं; किंतु मनुष्य-जातिके सम्पूर्ण इतिहासमें ऐसा कोई व्यक्ति नहीं दिखायी देता, जो किसी भी क्षेत्रमें श्रीरामसे उच्चतर तो क्या, उनके बराबर भी हो। देवत्व और मनुष्यत्वका इतना अनुपम सम्मिश्रण संसारमें कहीं भी नहीं देखा-सुना गया। इस गोलमालकी दुनियामें बचावकी एकमात्र वस्तु है—मनुष्य बननेका प्रयास। श्रीराम उसीके सर्वोच्च आदर्श हैं। वे ऐसे आदर्श दे गये हैं, जिनके लिये मनुष्य अपने सम्पूर्ण अस्तित्वको समर्पित कर देता है। उनका चरित्र सम्पूर्ण चिन्मय ऊर्जा, स्फुरण, गति और उत्कर्षका अक्षय स्रोत है। उनके व्यक्तित्वसे जो प्रभाव उत्पन्न हुआ है, वह संगीत और सौन्दर्यकी भाँति अवर्णनीय है। इसीलिये रामायणके सम्बन्धमें महायोगी अरविन्द कहते हैं—'रामायण अपने ढंगकी सर्वाधिक महान् और विलक्षण कविता है। वह नैतिक आदर्शवाद और वीरतापूर्ण अर्द्धदिव्य मानव-जीवनका अत्यन्त उदात्त और सुन्दर महाकाव्य है।'

राम-चरित्रसे विकसित मूल्य शाश्वत हैं, प्रत्येक देश-कालके लिये उपयोगी हैं; वे मानसोल्लासके साथ सामाजिक चित्तके निर्माणमें पूर्ण समर्थ हैं। इसीलिये 'रामादिवद् वर्तितव्यं न क्वचिद्रावणादिवत्'—यह सूत्र मानव-समाजके लिये सदा, सर्वत्र मननीय है। जिस 'धर्म'का इस देशके जीवनमें सर्वोपरि महत्त्व रहा है, श्रीराम उसीके मूर्तिमान् रूप हैं—'रामो विग्रहवान् धर्मः' (३। ३७। १३)। वाल्मीकिने 'धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम्।' (२। २१। ४१) के अनुसार श्रीरामको स्थान-स्थानपर धर्मज्ञः, धर्मस्य परिरक्षिता (१। १। १२-१३), धर्मनित्यः (२। ३७। १९), धर्मात्मा (२। २८। २), धर्मवत्सलः (२। २८। १), धर्मभृतां वरः (२। ३७। १४) आदि कहा है। धर्म-प्राण भारतीय जीवन-दृष्टि, महान् चरित्र और मानवीय आदर्श सबसे अधिक श्रीरामके जीवनमें ही प्रत्यक्ष देखे गये हैं। उनका व्यक्तित्व भारतीय लोक-चेतनामें, हृदयकी धड़कनोंमें अजर, अमर तथा अमिट है।

वाल्मीकि उनके महान् गुणोंकी संक्षिप्त झलक बताते हुए लिखते हैं—'सारी धरतीपर उनकी समता कहीं नहीं थी। वे सभीसे मधुर वचन बोलते थे। यदि कोई कठोर कह भी देता तो वे इसका उत्तर नहीं देते थे। मनपर नियन्त्रण रखनेके कारण वे दूसरोंद्वारा किये गये सौ-सौ अपराधोंको भी याद नहीं रखते थे; परंतु यदि किसी प्रकार कोई एक बार भी उपकार कर देता तो उसीसे सदा संतुष्ट रहकर सर्वदा उस एक ही उपकारको याद रखते थे। वे बाहर-भीतरसे समानरूपसे शुद्ध थे। असाधारण वक्ता, अतुलनीय पराक्रमी, परम रूपवान् तथा समस्त सद्गुणोंके समुद्र थे। उन्हें सत्पुरुषोंके संग्रह, दीनोंपर अनुग्रह और दुष्टोंके निग्रहोंके अवसरका भी ठीक-ठीक ज्ञान था। क्रोधसे भरकर आये हुए देवता और असुर भी उन्हें पराजित नहीं कर सकते थे, फिर भी उनमें लेशमात्र भी घमंड और द्वेष नहीं था। वे कालके वशमें होकर उसके पीछे चलनेवाले नहीं थे, काल ही उनके पीछे चलता था।'
(वा० रा० २। १। १-३१)

विश्वके इतिहासमें खोजनेपर भी कोई ऐसा देश नहीं मिलेगा, जहाँ राजकुमार यह कहता हुआ सुना गया हो कि मैं भाइयोंको छोड़कर किसी प्रकार राज्याभिषेक नहीं कराऊँगा—

बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥

इसके विपरीत इतिहासके पन्नोंमें यह देखनेको तो जरूर मिलता है कि राज्यकी लालसासे किसी राजकुमारने अपने पिताकी हत्या कर दी अथवा राज्यके उम्मीदवार अपने भाइयोंको कैदमें डाल दिया अथवा मरवा दिया हो। काश, आज सत्ता पानेके लिये सभी प्रकारका गोरखधंधा रचनेवाले लोकनेताओंके मनमें इसका शतांश भी अनासक्त-भाव होता!

'सत्य ही ईश्वर है'—इसका दर्शन करनेवाले गांधीजीको श्रीरामकी इस सत्य-निष्ठासे कितनी प्रेरणा मिली होगी, जिससे प्रेरित होकर वे कहते हैं—'अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन।—मैं न तो पहले कभी झूठ बोला हूँ और न भविष्यमें बोलूँगा। 'रामो द्विर्नाभिभाषते।' (वा० रा० २। १८। ३०)—राम एक बार जो उन्होंने कह दिया, उसीका प्राणपणसे पालन करते हैं अर्थात् राम कभी अपनी बातको बदलते नहीं', जब कि आजका अपनेको 'नेता' कहनेवाला व्यक्ति क्षुद्र स्वार्थोंके लिये एक दिनमें ही तीन-तीन बार अपनी निष्ठा बदलता है। इससे कितनी भयंकरतासे राष्ट्रीय चरित्रका पतन होता है; इस बातसे वह बेखबर है। श्रीरामके वियोगसे शोकाभिभूत दशरथ जब यह कहते हैं—'बेटा राम! तुम मुझे कैद करके अयोध्याके सिंहासनपर बैठ जाओ, किंतु वन जानेका विचार छोड़ दो', तब श्रीराम उत्तर देते हैं—'मुझे न तो इस राज्यकी न सुखकी, न पृथ्वीकी न इन सम्पूर्ण भोगोंकी, न स्वर्गकी और न जीवनकी इच्छा है। पुरुषशिरोमणे! मेरे मनमें यदि कोई इच्छा है तो यही कि आप सत्यवादी बने रहें, आपका वचन मिथ्या न होने पाये। यह बात मैं आपके सामने सत्य और शुभकर्मोंकी शपथ लेकर कहता हूँ। तात! अब मैं यहाँ एक क्षण भी नहीं ठहर सकता। अतः आप इस शोकको अपने भीतर ही दबा लें। मैं अपने निश्चयके विपरीत कुछ नहीं कर सकता।' (वा० रा० २। ३४। ४७—४९)। एक स्थानपर उन्होंने बड़े आग्रहसे कहा कि 'लोभ, मोह, अज्ञान आदिसे किसी भी स्थितिमें मैं सत्यका सेतु भङ्ग नहीं कर सकता' (वा० रा० २। १०९। १७) और यह भी कि 'चन्द्रमासे उसकी प्रभा अलग हो जाय, हिमालय हिमका परित्याग कर दे अथवा समुद्र अपनी सीमाको लाँघकर आगे बढ़ जाय, किंतु मैं पिताकी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता।' (वही, २। ११२। १८)

माता-पिताकी आज्ञा माननेवाले तो बहुत हो सकते हैं, किंतु विमाताकी भी कठोरतम आज्ञाको शिरोधार्य करनेवाले श्रीराम ही हैं। सम्पूर्ण रामायणमें यह कहीं नहीं मिलता कि दशरथने अपने मुँहसे श्रीरामको वन जानेकी आज्ञा दी हो; वे कैकेयीके मुखसे ही आदेश सुनकर वन जानेका निश्चय करते हैं। उस अवसरपर पत्थरोंको भी रुला देनेवाला श्रीरामका उत्तर देखिये—'माँ! यह वन जानेका काम तो मैं तुम्हारे ही कहनेसे कर सकता था, तुमने पिताजीको क्यों कष्ट दिया ? मालूम होता है कि अब तुम मुझमें इस तरहका कोई गुण नहीं देखती। मुझपर तुम्हारा पूरा अधिकार है। फिर भी तुमने सीधे ही इस बातको मुझसे क्यों नहीं कहा !' आगे वे कहते हैं—'मैं पिताके कहनेसे आगमें भी कूद सकता हूँ, तीव्र विष भी पी सकता हूँ और समुद्रमें भी गिर सकता हूँ। (वा० रा० २। १८। २८-२९) बछड़ोंसे बिछुड़ी हुई गायकी तरह उच्च स्वरसे क्रन्दन करती हुई और आँसू बरसाती हुई कौसल्या जब अपने प्राणप्रिय पुत्र रामसे अपने वनगमनपर विचार करनेके लिये कहती हैं, तब श्रीराम अपनी विवशता बताते हैं—'माँ! मुझमें पिताजीके वचनको टाल देनेकी शक्ति नहीं है, मैं वनमें जानेकी ही इच्छा रखता हूँ। तुम बाधा न डालो, तुम्हारे चरणोंपर मस्तक रखकर प्रार्थना करता हूँ।' (वा० रा० २। २१। ३०)

इसी प्रसङ्गमें तनिक-तनिक-सी सफलतापर उछल-कूद मचानेवाले तथा जरा-सी तकलीफमें ही मुरझा जानेवाले लोगोंको श्रीरामके धैर्य, संतुलन और अनासक्त-भावसे शिक्षा लेनी चाहिये। उनके राज्याभिषेककी तैयारी है, सारी अयोध्या आनन्दसे थिरक रही है। सहसा श्रीरामको वनमें जानेकी आज्ञा मिलती है। आनन्द-वृष्टिके पश्चात् दुस्सह वज्रपात। कहाँ राज्य और कहाँ वनगमन।—'लिखत सुधाकर गा लिखि राहू।' (मानस २। ५४। १) किंतु श्रीराम बिना किसी घबराहट एवं बेचैनीके जिस धैर्य और सहजभावसे इस कर्तव्यको स्वीकार कर लेते हैं, उसकी तुलना विश्वमें अन्यत्र मिलनी असम्भव है। वे कहते हैं—'मुझे राज्य लेनेकी इच्छा नहीं है। महाराज ! आप सहस्रों वर्षोंतक पृथ्वीके अधिपति बने रहें। मैं तो अब वनमें निवास करूँगा।' 'मैं केवल धनका उपासक होकर संसारमें नहीं रहना चाहता'—

'नाहमर्थपरो देवि लोकमावस्तुमुत्सहे।'
(वा० रा० २। १९। २०)

अन्तमें यह कहते हुए कि 'वनमें रहनेपर तो मुझे राज्यसे भी करोड़गुना सुख मिलेगा'—

'राज्यात् कोटिगुणं सौख्यं मम राजन् वने सतः।'
(अ० रा० २। ३। ७०)

—उन्होंने सरलतासे अपना संकल्प प्रकट कर दिया कि अयोध्याका यह समृद्ध राज्य भरतको दे दिया जाय—

इयं सराष्ट्रा सजना धनधान्यसमाकुला।
मया विसृष्टा वसुधा भरताय प्रदीयताम्॥
(वा० रा० २। ३४। ४१)

वे आजके लोकनेताओंकी तरह यह नहीं कहते कि 'मैं ही शासन करनेयोग्य हूँ, मेरे सत्तामें पहुँचनेपर ही तुम्हारा कल्याण होगा। सत्ताको मुट्ठीमें किये बिना राष्ट्रिय अथवा जन-हितके कार्य करनेका संकल्प मुझमें नहीं है अथवा किसी तरह एक-दूसरेको धक्का देकर निकलना ही मनुष्यका पुरुषार्थ है।'

लक्ष्मणका उत्साह, माताका अनुरोध, स्वजनोंकी हृदय-व्यथा, पुरवासियोंका आर्तनाद, प्रजाका अपूर्व प्रेम और चित्रकूटमें ही जाकर भरतका लौटानेका आग्रह भी उन्हें अपने सत्य-संकल्पसे विचलित नहीं कर सके। वाल्मीकिने श्रीरामके इस अप्रतिम धैर्यकी व्यञ्जना अत्यन्त प्रिय शब्दोंमें की है—

न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुंधराम्।
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया॥
(वा० रा० २। १९। ३३)

स्थिति-परिवर्तनसे उनका मन कुछ भी क्षुभित नहीं होता। जनता उनके चेहरेपर कुछ भी विकार नहीं देखती। वे वैसे ही प्रसन्नमुख हैं, जैसे अभिषेकका शुभोदन्त श्रवण करनेपर थे। तुलसीदास और अधिक हृदयस्पर्शी शब्दोंमें इसी भावको व्यक्त करते हैं—

प्रसन्नतां या न गताभिषेकत-
स्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे
सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा॥
(मानस २। २ श्लोक)

मातु बचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुरतरु के फूला॥
सुख मकरंद भरे श्रियमूला। निरखि राम मनु भँवरु न भूला॥
(वही, २। ५२। २)

कितना महान् धैर्य! कितना विलक्षण मानसिक संतुलन !!
'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।'

(कुमार० १ । ५९) के अनुसार हम उन्हें प्रत्येक अवस्थामें शान्त, गम्भीर और पूर्ण धैर्यशाली पाते हैं। उनमें वह उच्च मनोबल था, जिसकी जड़को किसी तरहके भी आँधी-तूफान हिला सकनेमें असमर्थ थे। जीवन केवल दौड़ नहीं है; उसमें धैर्य, संतोष, कर्तव्य-निष्ठा, निश्छलता और अपने उद्देश्यके प्रति समर्पणका भाव भी चाहिये। चरमोत्कर्षकी मंजिल केवल उसीको मिलती है, जो पूर्ण निष्ठाके साथ इस राहपर चलता है।

राम 'राज्य' के भूखे नहीं थे; राम गृह-कलह नहीं चाहते थे, राज्यक्रान्ति भी नहीं। यदि वे चाहते अथवा अपने अधिकारोंके प्रलोभनमें फँस जाते तो यह कुछ कठिन नहीं था; क्योंकि जनता भी उनके साथ थी। उनके व्यक्तित्वके असाधारण प्रभावके कारण ही तो जनता महाराज दशरथके जीवनमें ही उनको राज्यासनपर ही अधिष्ठित देखना चाहती थी; किंतु यह सब नहीं हुआ, उन्होंने राज्य-तन्त्रको प्रजा-तन्त्रके रूपमें परिणत कर दिया। अधिकारकी अपेक्षा उनके सामने कर्तव्याचरण अधिक महत्त्व-पूर्ण था। सैन्यबलसे या अधिकार-बलसे गद्दीपर बैठनेवाले राजा रामके प्रति जन-मनमें यह आदर और आस्था नहीं होती। औरंगजेबने शाहजहाँको सात वर्षतक कैद करके रखा। अजातशत्रुने विन्दुसारको बंदी बनाया था। श्रीरामने पिताको सत्यप्रतिज्ञ सिद्ध करनेके लिये वनवास सहा। कदाचित् यह रामकी चरम कर्तव्यपरायणता ही थी कि जिसके प्रभावसे भरतने भी माँकी मोहान्धतासे मिलनेवाले राज्याधिकारको अस्वीकार कर, उनकी अनुपस्थितिमें चरणपादुकाओंको ही उनका प्रतीक मानकर एक प्रतिनिधिके रूपमें शासनका संचालन किया।

यद्यपि त्यागके प्रति यह निष्ठा रघुवंशियोंकी परम्परा रही है—'त्यागाय सम्भृतार्थानाम्' (रघु० १ । ७), तथापि 'त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः' (कैवल्योप० ३), 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' (ईशोप० १ । १ । १)—ये महान् वैदिक आदर्श श्रीरामके जीवनमें ही अपनी पूर्णताके साथ मूर्तिमान् हुए हैं। त्यागका यह आदर्श राम-चरित्रका मुख्य प्रसङ्ग है। रामायणोंमें प्रमुखरूपसे इसी प्रसङ्गका वर्णन है। उसके पश्चात् उन्होंने ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य किया, उसका कुछ वर्णन नहीं। सर्वस्व त्यागकर क्षणभरमें वनवासी बन गये, यही उनका महान् आदर्श था। त्यागी-वैरागी रामके उसी रूपके उपासक हैं। वे जटा बढ़ाकर, भस्म रमाकर आपके उसी रूपको बनाते हैं और वनवासी रामका ध्यान करते हैं। निम्नाङ्कित चारों दुर्लभताएँ श्रीराममें एकत्रित हुई थीं—

दानं प्रियवाक्सहितं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम्।
वित्तं त्यागनियुक्तं दुर्लभमेतच्चतुष्टयं लोके॥
(हितो० १ । १६३)

श्रीरामके जीवनमें नाना प्रकारके मनोविकारोंको उभारने-वाले अवसरोंका जाल-सा बिछा हुआ है। उनके कारण उनका महान् चरित्र अनेक स्थानोंपर असाधारण ऊँचाइयोंका स्पर्श करता है। भागवतकारके शब्दोंमें सीताके हाथोंके स्पर्शको भी सह सकनेमें असमर्थ 'पाणिस्पर्शाक्षमाभ्याम्' (९ । १० । ४) अतिसुकुमार चरणोंसे श्रीराम वनकी ओर चल पड़े—'राजिवलोचन रामु चले तजि बाप को राजु बटाऊ की नाईं।' (कविता० २ । १) उनके वियोगमें केवल पौर एवं जानपद ही नहीं, अपितु पशु-पक्षी, वृक्ष-लता और नदी-सरोवर भी विकल हो उठे, सब श्रीहीन हो गये—

चलत रामु लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा॥
(मानस २ । ८२ । १½)

लागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥
(वही, २ । ८२ । ४)

सारी अयोध्या ही यह संकल्प लेकर श्रीरामके पीछे चल निकली—'तद्वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति।' (वा० रा० २ । ३७ । २९), वह वन ही हमारा राष्ट्र होगा, जहाँ राम रहेंगे—'जहाँ राम तहँ अवध निवासू।' यह है लोक-नायककी दुर्लभ लोकप्रियता, राष्ट्र भी जिसके पीछे-पीछे फिरता है। कहाँ आजके लोकनायकोंकी स्थिति, जो चिल्ला-चिल्लाकर आत्मप्रशंसाद्वारा और हजारों बार अपने गुणोंका बखान करते हुए, रो-रोकर भिखारीकी तरह जनतासे वोट माँगते हैं और वोट प्राप्त करनेके लिये हर श्रेष्ठ गुण और व्यवस्थाकी हत्या करनेमें भी उन्हें संकोच नहीं होता। तुलसीदासजी तो और आगे बढ़कर उनकी इस लोक-प्रियताकी चर्चा करते हैं—

अस को जीव जंतु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाहीं॥
(मानस २ । १६१ । ३)

उनको वन भेजनेवाली कैकेयी भी (कुब्जाके बहकानेपर भी) रामकी प्रशंसा करती है—

कौसल्यातोऽतिरिक्तं च स तु शुश्रूषते हि माम्॥
राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा।
(वा० रा० २ । ८ । १८-१९)

'वे कौसल्यासे भी बढ़कर मेरी बहुत सेवा किया करते हैं। अतः श्रीरामको राज्य मिल रहा है तो उसे भरतको मिला हुआ समझ।'

'बैरिउ राम बड़ाई करहीं।' (मानस २ । १०९ । ३½)

सचमुच लोकनायकके व्यक्तित्व और आचरणमें भी सभी प्रकारके संदेहोंसे परे इसी प्रकारका प्रबल आकर्षण चाहिये, जो जनताके दिलोंमें उसके प्रति अडिग विश्वासको जन्म दे सके।

वे जहाँ भी जाते हैं, जिधरसे भी निकलते हैं, सारी जनता उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्यार करने लगती है—

गावँ गावँ अस होइ अनंदू। देखि भानुकुल कैरव चंदू॥

(वही, २ । १२१ । १)

कोल, भील, निषाद आदि, जो हीनदृष्टिसे देखे जाते थे, श्रीरामने उन्हें अपनाकर उनका सारा सामाजिक कलङ्क धो दिया। पत्नी और अनुजके साथ पैदल जन-सम्पर्क बढ़ाते हुए, पशु-पक्षियों तथा लता-वृक्षोंतकसे आत्मीयभाव प्रकट करते हुए, बिना किसी भेद-भावके सबसे मिलते और झोंपड़ियोंतकमें आतिथ्य ग्रहण करते हुए श्रीराम जंगलोंमें विचरते रहे। यही कारण है कि निषाद, वानर, ऋषि, तापस—सभी उनके उद्देश्यके अनुगामी बन जाते हैं। वही सच्चा लोकनायक है, जिसके कार्य, व्यवहार, चरित्र और व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर प्रजाका हर घटक उसे प्राणोंसे भी अधिक प्यार करे। तभी तो भरत जब उन्हें लौटानेके लिये जाते हैं, तब उनके साथ केवल द्विज ही नहीं, चतुर कुम्हार, जुलाहे, शस्त्र-व्यवसायी, मोरछल बनानेवाले, आरा चलानेवाले, मोतियोंमें छेद करनेवाले, रंगरेज, हाथी-दाँतका काम करनेवाले, चूनेकी पुताई करनेवाले, सुनार, धोबी, दर्जी आदि अनेक श्रमजीवियोंके दल भी सम्मिलित हो लिये थे (वा० रा० २ । ८३ । १२—१५)। यही कारण है कि श्रम और श्रमजीवियोंके प्रश्नको लेकर खूनी क्रान्तियोंसे भरा हुआ आजके राष्ट्रोंका इतिहास उस समय नहीं दुहराया गया। वे राजनीतिक उपेक्षा, अत्याचार और अमानवीय व्यवहारसे त्रस्त नहीं थे; उनका भी समाजमें सम्मानपूर्ण स्थान था। श्रीरामने संसारके इतिहासमें पहली बार सुग्रीव और हनुमान्-जैसे वानरजातिके योद्धाओं और जटायु-जैसे पक्षियोंतकको मानवीय मर्यादा और सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान की। रामने भरतसे कुशल-मङ्गल पूछते हुए यह भी प्रश्न किया था—'भरत! तुम कृषि करनेवाले और गोपालनसे आजीविका चलानेवाले श्रमिकोंको प्यार करते हो न?'—

कच्चित् ते दयिताः सर्वे कृषिगोरक्षजीविनः।

(वा० रा० २ । १०० । ४७)

क्या आजके नेताओंको भी मत प्राप्त कर लेनेके बाद जनतासे कुशल पूछनेका कभी समय मिलता है?

यह श्रीरामका ही प्रभाव था कि वसिष्ठ-जैसे महर्षिने भी प्रणाम करते हुए केवटको दौड़कर अपनी भुजाओंमें बाँध लिया—

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू॥
रामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा॥

(मानस २ । २४२ । ३)

वे बिना सेना और बिना युद्ध-सम्बन्धी तैयारियोंके वनमें गये और वहाँ जन-साधारणके न्याय और नैतिक संघर्षके मूल्योंको जाग्रत् करते हुए ही उन्होंने जन-सहयोग प्राप्त करनेका प्रयत्न किया, जिसके कारण जटायु, सुग्रीव, हनुमान् और असंख्य वानर तथा बादमें विभीषणतक उनकी सेवा-सहायताके लिये आ जुटे। यह कोई वेतनभोगी सैनिकोंकी सेना नहीं थी; श्रीरामकी कुशलता, व्यवहार और गुणोंसे आकृष्ट होकर ही ये सभी उनके चारों ओर एकत्रित हो गये थे।

कभी-कभी 'जैसेको तैसा'—यह दृष्टि रखकर व्यवहार करना भी एक नीति है। इसीसे जब रावणने आपको नकली मृग दिया, तब आपने भी उसे मायाकी सीता ही दी। विधवा शूर्पणखाके 'तातें अब लगि रहिउँ कुमारी।' (मानस ३ । १६ । ५)—ऐसे मिथ्या-कथनके प्रत्युत्तरमें श्रीरामने भी वैसा ही 'अहइ कुआँर मोर लघु भ्राता॥' (मानस ३ । १६ । ५½) कह दिया।

श्रीराम वाली-जैसे बलशालीसे भी मित्रता कर सकते थे, इससे उनका काम कितना सरल हो जाता! रावणमें भी कदाचित् वालीके कथनको अस्वीकार करनेका साहस नहीं था; किंतु श्रीराम मदान्ध दुराचारियोंको प्रोत्साहित नहीं करना चाहते। लोकनायकके तो चरित्रकी हर किरण युग-युगोंतक लोक-जीवनको प्रभावित, अनुशासित और प्रेरित करती है; वे क्षुद्र मनुष्योंकी तरह इस 'शार्ट कट'-को कैसे स्वीकार कर लेते। बलवान् और समर्थ, किंतु उद्धत तथा स्वेच्छाचारी अन्यायीका निग्रह एवं दमन करना तथा सदाचारी दीनको भी सहायता एवं बल प्रदानकर योग्य बना देना—यही तो श्रेष्ठ पुरुषोंकी नीति है। इसीसे श्रीरामने बलवान् किंतु

अन्यायी वालीका दमन कर हीन सुग्रीवको अपना योग्य और सहायक मित्र बनाया। यह उनकी चरम राजनीतिक कुशलता और सफलता भी है कि प्रबल राक्षसी और वानरी शक्तियाँ, जो परस्पर संधिके कारण दुर्जय बन चुकी थीं और जिनसे कभी भी अयोध्याके राज-सिंहासनको खतरा पैदा हो सकता था, आपसमें ही प्रतिद्वन्द्वी बन गयीं। जो शक्ति-संतुलन राक्षसोंके हाथमें पहुँच गया था, वह श्रीरामके पक्षमें हो गया।

यहाँ यह ध्यान देनेयोग्य है कि श्रीरामने वानर-दलमें प्रचलित और सम्मानित छुपे-छुपे गुरिल्ला आक्रमणकी नीतिसे वालीका वध किया था, फिर भी वालीने श्रीरामपर व्यङ्ग्य किया—

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं॥
(मानस ४।८।२½)

श्रीरामने इसका जो उत्तर दिया, वह बड़ा मर्मस्पर्शी तथा नीतिपूर्ण है। उन्होंने कहा—'जो स्वयं अधर्माचरण करता है, उसे दूसरोंसे धर्मानुसार आचरण चाहनेका कोई अधिकार नहीं है। तूने राजधर्म त्यागकर अनीतिका आश्रय लिया, पुत्रवधू-जैसी बन्धुपत्नीको बलपूर्वक अपने घरमें रख लिया। इसलिये तेरा वध धर्म ही है। धर्म अति सूक्ष्म है वह इस प्रकार स्थूल-दृष्टिसे नहीं जाना जा सकता। वेदोंसे, स्मृतियोंसे, बड़े-बड़े ऋषियोंके आचरणसे और अपने शुद्ध अन्तःकरणसे धर्मका निर्णय किया जाता है। मैं सब प्राणियोंका सुहृद् हूँ। मेरे बाणसे तुम्हारी भी सद्गति होगी। फिर भी तुम मरना चाहो तो सुखपूर्वक मरो। जीना चाहते हो तो अभी अपना बाण निकालकर तुम्हें जीवित कर सकता हूँ।'

श्रीरामका यह उत्तर सुनकर, वालीने अपने वधकी कार्यपद्धतिके विषयमें जो आपत्ति उठायी थी, उसे वापस ले लिया। ऐसे थे सर्वभूत-सुहृद् लोकनायक श्रीराम! महाभारत-युद्धमें भी कर्णके द्वारा धर्म-नीतिकी माँग करनेपर श्रीकृष्णने यही उत्तर दिया था।

अरविन्द इसका समाधान इस प्रकार करते हैं कि '''विभूति', 'अवतार' ऐसे शब्द हैं, जिनका अपना अर्थ और मर्यादा है और तुच्छ मानवीय मानदण्डोंके अनुसार निश्चित नैतिकता और अनैतिकता''''''के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।' ये मानदण्ड भी तो देश या युगके अनुसार बदलते रहते हैं, अतः आधुनिक नैतिक मनकी चीरफाड़ करनेवाली छुरीके द्वारा किया गया उनके कार्योंका विश्लेषण अपना सम्पूर्ण महत्त्व खो देगा।''

लोकनायकको उपकारियोंके प्रति किस प्रकार कृतज्ञ होना चाहिये, इसके लिये दो उदाहरण देना पर्याप्त होगा। सीताके अपहरणको रोकनेके प्रयत्नमें जटायुके प्राणोत्सर्गपर श्रीरामने जो मर्मवेदना प्रकट की और जिस भावनासे उसका अन्त्येष्टि-संस्कार किया, उसका उदाहरण अन्यत्र मिलना कठिन है। मृतक-मांसभोजी गीधको श्रीरामने पिता-जैसा सम्मान दिया। वे सीताका पता लगाकर लौटे हुए हनुमान्‌जीके विषयमें यहाँतक कह डालते हैं—'आज हनुमान्‌जीने सीताका पता लगाकर धर्मानुसार मेरी, समस्त रघुवंशकी तथा लक्ष्मणकी भी रक्षा कर ली है। मैं दीन हूँ, असमर्थ हूँ; मेरे मनमें तो यही बात कसक रही है कि जिसने मुझे ऐसा प्रिय संवाद सुनाया, उसका मैं कोई वैसा ही प्रिय कार्य नहीं कर सका।' एक स्थानपर, उनके उपकारोंका स्मरण करते हुए, वे आत्म-विभोर होकर कह उठते हैं—'कपिश्रेष्ठ! मुझपर तुम्हारे ऐसे महान् उपकार हैं कि उनमेंसे एक-एकके बदले अपने प्राणतक दे सकता हूँ। फिर भी शेष उपकारोंके लिये मुझे सदा तुम्हारा ऋणी बनकर ही रहना पड़ेगा। मैं चाहता हूँ कि तुमने जो भी उपकार किये हैं, वे सब मेरे शरीरमें ही विलीन हो जायँ, मुझे उनका बदला चुकानेका कभी अवसर न मिले, अर्थात् तुमपर कभी कोई विपत्ति आये ही नहीं; क्योंकि मनुष्य विपत्तियोंमें पड़नेपर ही प्रत्युपकारका पात्र बनता है।' (वा० रा० ७। ४०। २३-२४)

स्वार्थी और कृतघ्न लोगोंको श्रीरामके इस कृतज्ञ भावसे कुछ सीखना चाहिये। नीच समझे जानेवाले निषादसे भी उनका मिलन देखिये—

हिंसारत निषाद तामस बपु, पसु समान बनचारी।
भेंट्यो हृदय लगाइ प्रेम बस, नहिं कुल जाति बिचारी।
(विनय० १६६। ३)

वानरों और ऋक्षोंको भी गले लगानेवाले, सुग्रीव और निषादके मित्र श्रीरामका चरित्र ही ऐसा है, जिसकी सम्पूर्ण कहानी आदिवासियों, वनवासियों और ऐसे लोगोंके बीचसे गुजरी है, जो समाजद्वारा बहिष्कृत या उपेक्षित थे। भीलनीके बेरोंको भी प्रेमसिक्त मनसे खानेवाले तथा जीवन-भर उनके मिठासकी याद रखनेवाले श्रीरामके मधुर सरल स्वभाव और चरित्रको याद कर मन पुलकित हो उठता है—

घर गुरु गृहँ प्रिय सदन सासुरें भइ जब जहँ पहुँनाई ।
तब तहँ कहि सबरी के फलनि की रुचि माधुरी न पाई ॥
(वही, १६४ । ४)

वस्तुतः सभी दृष्टियोंसे लोकनायक श्रीरामका चरित्र व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और मनुष्य-जातिका एक सम्पूर्ण जीवन दर्शन है । समाजके सामान्य औसत आदमीकी जिंदगी भी किस प्रकार आसान, सरस, श्रेष्ठ, सम्मानित तथा कुण्ठा एवं क्षोभसे रहित बनायी जा सकती है; बिना थके और बिना भटके हुए साधारण मनुष्यके पुरुषार्थको जगाकर, समाजको एक बहुत बड़ा जेलखाना बननेसे कैसे रोका जा सकता है; वे मन-प्राण-संकल्पकी सम्पूर्ण शक्ति, आचरण और कार्योंसे निरन्तर यही प्रयत्न करते रहे । उनके अनुयायी भी नीतिको स्पष्ट आचरणके स्तरपर लाकर, कथनी और करनीका भेद समाप्तकर, एकलक्ष्य और एकमन होकर, एक-व्रत लेकर और एक अनुशासनमें रहकर, उनके कार्योंको बल-प्रदान करते रहे ।

अन्यायके साथ जिसका सिर दसों दिशाओंमें फैला है और जो किसी भी कालके अत्याचारी शासकसे अधिक शक्ति-सम्पन्न है, वरदानोंसे जिसकी दुष्टता और समाज-विरोधिता घटनेके स्थानपर और भी बढ़ चुकी है, जिसने राजसत्ताका उपयोग अपने अधिकारोंको अमिट बनाने, दुर्बलके दमन अथवा समाजकी मर्यादाको भङ्ग करनेके लिये ही किया है, संसारभरके सोनेको लूटकर, जिसने अपनी लङ्कामें भर लिया है, दुष्ट दस इन्द्रियोंसे संयुक्त दर्पोदग्र मन और मोहका मूर्तिमान् प्रतीक, दस इन्द्रियोंके विषय-सुखोंमें ही रमा हुआ, भौतिकवादका प्रबल प्रचारक वह दशवदन रावण, एक मुँह, एक मन, एक दिशावाले, संयम-प्रधान संस्कृतिके प्रतिनिधि दशरथपुत्र श्रीरामके द्वारा अपने सम्पूर्ण दर्प और अन्याय-पुष्ट शक्तिके साथ समाप्त कर दिया जाता है । अन्यायकी शक्ति कभी शाश्वत, अटल और अजेय नहीं होती ।

यश और पत्नीका अपहरण करनेवाले शक्तिमदान्ध [illegible] आततायीका हृदय भूख-हड़ताल और सत्याग्रहोंसे [illegible] बदला जा सकता । शक्ति अहिंसामें नहीं है, अन्याय-के प्रतिकारमें है । 'अहिंसा परमो धर्मः'—अहिंसा परम धर्म है, परंतु अन्यायका प्रतिकार उससे भी बड़ा धर्म है । यदि दोनों धर्मोंमें विरोध आ जाय तो अहिंसाको छोड़कर अन्यायका प्रतिकार करना होगा । अहिंसा वहींतक धर्म है, जहाँतक उससे अन्यायी और अत्याचारीको प्रोत्साहन नहीं मिलता । जहाँ अपनी कायरता छिपाने अथवा दुराचार एवं पापके प्रति उठनेवाली स्वाभाविक-आक्रोशकी भावनाको कुण्ठित करनेके लिये अहिंसाका राग अलापा जाता है, वहाँ अहिंसा धर्म नहीं रहती है । दुराचार, अनाचार, अन्याय और अधर्मके प्रतिकारकी भावना मानव-समाजकी अमूल्य निधि है; इस भावनासे रहित समाज समाज नहीं है, जाति जाति नहीं है, राष्ट्र राष्ट्र नहीं है । अहिंसावादियोंके पास इस प्रश्नका कोई जवाब नहीं है कि जब आक्रमणकारी मदान्ध राष्ट्र 'शक्ति' के बूटोंकी ठोकरोंद्वारा किसी राष्ट्रको कुचलकर गुलाम बनाना चाहता है, तब क्या रक्षाके लिये सेनाएँ रखनेकी जरूरत नहीं है ? यदि नहीं तो राष्ट्रकी जनताके ऊपर मनमाने अत्याचार कराने और भावी संततिको शताब्दियोंतक गुलाम बनानेके अतिरिक्त और कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता । इसीलिये प्रभु श्रीरामने हृदय-परिवर्तनपर शाश्वतिक विश्वास न कर (यद्यपि दो बार दूत भेजकर उन्होंने रावणको समझानेका भी प्रयत्न किया था) रावणके वधको ही उचित समझा ।

घटनाओंसे सजीव और अनेक मर्मस्पर्शी चरित्रोंसे परिपूर्ण होकर, जीवनकी दो शैलियाँ हमारे सम्मुख आकर अपना रूप प्रकट करती हैं । राक्षस सामाजिक जीवनकी जडता एवं विकारके प्रतिनिधि हैं । कोई भी दुष्कर्म उनकी क्रियाशीलताकी परिधिसे बाहर नहीं जाता—

पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद ।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद ॥
(श्रीरामच० मा० ७।३९)

रावण, विज्ञान और सौन्दर्यके प्रति सजग होता हुआ भी उस शक्ति-सम्पन्न भाग्यहीन मनुष्यके समान है, जिसने गलत आदर्श अपना लिया हो और जिसने कठोर अनुशासन तथा महान् तपका अभ्यास देवताओंसे उस दुर्दमनीय शक्ति-को प्राप्त करनेके लिये किया हो, जिससे विश्व उसकी वासनाओंकी माँगोंका प्रतिरोध करनेमें समर्थ न हो । उसके व्यक्तित्वकी सर्वोच्च शक्ति निम्नतम प्रवृत्तियोंकी संतुष्टिका ही साधन है । वह परम अहंकारी उसीको बुद्धिमान् मानता है, जिसका परामर्श उसकी प्रवृत्तियोंका औचित्य स्थापन करता हो । वह विभीषण-जैसोंके हितकर सत्य परामर्शका

शीघ्रतापूर्वक तथा प्रबल प्रतिरोधके साथ तिरस्कार कर देता है। वह चापलूसोंसे घिरा हुआ एक अहंकारी शासक है। उसकी लङ्का भौतिक भव्यतामें अयोध्याको भी पछाड़ देती है। हनुमान् उसकी समृद्धिसे चकाचौंध हो जाते हैं। किंतु वह समृद्धि एक आक्रामक, असंतुष्ट सुखवादका फल थी। रावणकी लङ्का इन्द्रियसुख-प्रधान सभ्यताका प्रतिनिधित्व करती है, जहाँका सम्पूर्ण समाज अपने नेताद्वारा अपनाये गये भ्रामक मार्गपर चल पड़ा था। इसके विपरीत श्रीरामकी अयोध्या भौतिक दृष्टिसे पूर्ण सम्पन्न होते हुए भी उस आदर्श सभ्यताकी प्रतीक है, जहाँपर भौतिक विकास और बौद्धिक शक्तिको नैतिकता प्रदान करते हुए उसे स्वभावकी पवित्रता और क्रियाकी कोमल आदर्शवादिताके अधीन कर दिया गया था; जहाँके असाम्प्रदायिक (आधुनिक प्रचलित अर्थमें), किंतु धर्म-सापेक्ष (यहाँ धर्म-सापेक्षका अर्थ है सभी श्रेष्ठ धर्मोंके श्रेष्ठ नियमोंका सम्मान) समाजमें उच्चस्तरीय जीवनकी पावन धारा सदैव प्रवाहित रहती थी; जहाँ जीवनमें सर्वत्र मानवीय मूल्योंकी चरम प्रतिष्ठाके कारण सुखी, सम्पन्न, समृद्ध और संतुष्ट नागरिक बसते थे।

जगज्जयी रावण अपने ही चरित्र-दोषसे नष्ट हो गया। उसीके कारण अपनी समस्त कला, संस्कृति और समृद्धि-सहित हाहाकारोंसे भरी हुई लङ्का भी नष्ट हो गयी। यहाँ भी श्रीरामका उदार चरित उस समय अपनी चरम सीमापर पहुँच जाता है, जब रावणके मर जानेके बाद उन्होंने उस विभीषणको, जो रावणके कुकर्मोंके कारण अब भी लज्जा, संकोच और विषादमें डूबा हुआ था, और जो उसे शत्रु समझकर उसके दाह-संस्कारमें रुचि नहीं दिखा रहा था, समझाते हुए कहा—'विभीषण! वैर-विरोध मृत्युतक ही हुआ करते हैं, अब हमारा सम्पूर्ण प्रयोजन समाप्त हो गया। अब यह जैसा तुम्हारा भाई है, वैसा ही मेरा भी। इसलिये अब तुम इसका संस्कार करो।'

विजितको अपमानित या जलील करना श्रीरामकी राजनीतिमें नहीं है। अन्यान्य शासकों और आक्रामकोंकी तरह प्रतिशोधकी कटु और विद्वेषपूर्ण भावना भी उनकी राजनीतिमें आदर नहीं पाती। वैदेशिक इतिहासमें किस प्रकार ऐकिलीजद्वारा हैक्टरकी लाशको सवारीके साथ बाँधकर शहरमें घसीटा गया था, इंग्लैंडके बादशाह चार्ल्स द्वितीयके सत्तारूढ होनेपर ऑलिवर क्रॉमवेलकी हड्डियोंको किस प्रकार कब्रसे निकालकर पीटा गया, था तथा रूसमें भी, जिस क्रेमलिनके चौराहेपर, जिस रेड स्क्वायरपर जिंदगी-भर सलामी ली थी स्टैलिनने, उसी स्क्वायरसे उसकी गड़ी हुई लाशको उखाड़कर किस प्रकार हटा दिया गया—यह इतिहासज्ञोंसे छिपा नहीं है। इन सारे उदाहरणोंकी तुलनामें हम श्रीरामके उस महत्तम उदार भावका मूल्य कुछ आँक सकते हैं।

फलतः संसारकी शौर्यगाथाओंमें रामके शौर्यकी कथा निराली है, जो केवल युद्ध-कौशलतक सीमित न रहकर सम्पूर्ण मनुष्य-चरित्रके विकासतक विस्तृत है। रामका शत्रु-विजय-अभियान सैन्यबलका नहीं, चरित्र-विकासका अभियान है। यही कारण है कि सीजर, सिकन्दर, और नेपोलियन-जैसे विजेता रामकी तेजस्विता और अमाप महत्ताके सामने तृणवत् प्रतीत होते हैं। इसीलिये महाकविने राक्षसोंका वध करते हुए भी उनको स्थान-स्थानपर 'परमोदार'* कहा है। विश्वामित्र आदि महर्षियोंसे प्राप्त जिन दिव्य अमोघ अस्त्रोंके प्रयोगसे महाबलशाली, जगद्विजयी, दुर्जेय राक्षसोंकी संसारभरको कँपा देनेवाली शक्ति भी धूलि-में मिल गयी, भारत उनकी खोजके द्वारा एक अप्रतिम शक्तिसम्पन्न राष्ट्र बन सकता है। श्रीराम इस राकेट और परमाणुके युगमें भी इस दिशामें भारत-राष्ट्रका पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं।

एक आदर्श लोकनायकके सभी गुण श्रीराममें हैं। लोकनायकके द्वारा किसीकी भी उपेक्षा करना उचित नहीं है। वे सेनाके हर घटकसे कुशल-प्रश्न पूँछते हैं—

अस कपि एक न सेना माहीं। राम कुसल जेहि पूछी नाहीं॥

(मानस ४। २१। १½)

इतना ही नहीं, गुरु वसिष्ठको उनका परिचय देते समय वे विजयका सारा श्रेय भी उन्हींको देना चाहते हैं—

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे॥

(वही, ७। ७। ४)

कितनी बड़ी उदारता और व्यवहार-कुशलता है यह! अयोध्यावासियोंसे भी वे सदैव सम्बन्धियोंके समान कुशल-प्रश्न पूछते हैं—

पौरान् स्वजनवन्नित्यं कुशलं परिपृच्छति।

(वा० रा० २। २। ३८)

* देखिये वा० रा० १। ३०।

इन्हीं गुणोंके कारण तो वे बाहर विचरनेवाले मूर्तिमान् प्राणके समान जनताके अत्यन्त प्रिय थे—

बहिश्चर इव प्राणो बभूव गुणतः प्रियः।
(वही०, २ । १ । १९)

तमिळके 'कम्ब-रामायण'में विभीषणके राजतिलकके बाद श्रीरामके कथनमें उनकी आत्मीयताका विस्तार कितना प्रिय है—

गुहनोडुम् ऐवरानेम् मुन्पु, पिन् कुनरु चूल्वान् ।
मकनोडुम् अरुवरानेम्, एम्मु पै अन्पिन् वन्त ॥
अकन् अमर् कातल् ऐय ! निन्नोडुम् एऴुवर् आनेम् ।
पुकल् अरुकानम् तन्तु पुतल्वराल् पोलिन्तान् नुन्तै ॥
(युद्धकाण्ड)

अर्थात् प्रथमतः हम चार भाई थे, फिर गुहके साथ पाँच भाई हुए; तदनन्तर सुग्रीवके साथ हम छः भाई हुए और अब तो तुम्हें भी मिलाकर हम सात भाई हो गये हैं। स्नेही बन्धु ! मुझे निबिड काननमें भेजकर हमारे पिता लाभान्वित ही हुए। श्रीरामका यह मैत्रीभाव विश्व-मैत्रीकी भावनाका विकास करनेके लिये कितना सहायक हो सकता है।

लोकनायकका व्यक्तित्व सभी प्रकारसे तेजस्वी, प्रभावशाली और आकर्षक होना चाहिये। व्यक्तित्वको चमकानेवाले सभी गुण श्रीराममें किस प्रकार एकत्रित हुए थे, यह जानना हो तो वाल्मीकिके पूछनेपर नारदजीके द्वारा—

समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः ॥
(१ । १ । ११)

—आदिके रूपमें दिया गया उत्तर अवश्य देखने योग्य है। लोकनेतामें अद्भुत वक्तृत्व शक्तिका होना भी अत्यावश्यक है—'प्रियंवदः' और 'मृदुपूर्वं च भाषते ।' (वा० रा० २ । १ । १३, १०)। श्रीराममें यह गुण भी अपनी सम्पूर्ण श्रेष्ठताके साथ प्राप्त होता है। आदिकविने बार-बार 'वदतां वरम्' कहा है और उनके सामने ...न् और अपनी वक्तृताके लिये प्रसिद्ध बृहस्पति ...ो भी तुच्छ माना है—

न भवन्तं मतिश्रेष्ठं समर्थं वदतां वरम् ।
अतिशाययितुं शक्तो बृहस्पतिरपि ब्रुवन् ॥
(वही, ६ । १७ । ५१)

यहाँ तुलसीदासजीके ये कथन भी स्मरणीय हैं—

प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ। तनु पुलकित मन अति हरषाऊँ ॥
सो सुख जानइ मन अरु काना। नहिं रसना पहिं जाइ बखाना ॥
(मानस ७ । ८७ । १, १½)

उनके हृदयकी विशालता उस समय अपनी चरम सीमापर पहुँचती है, जब वे जिस कैकेयीने उन्हें वनवास दिया है, उसके प्रति भी अपनी मातृभक्ति अणुमात्र भी शिथिल नहीं करते। चित्रकूटसे भरतको अयोध्या लौटाते समय वे अपनी तथा जानकीजीकी शपथ देकर कहते हैं—

मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति ॥
मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन ।
(वा० रा०, २ । ११२ । २७-२८)

'रघुनन्दन ! मैं तुम्हें अपनी और सीताकी शपथ देकर कहता हूँ कि तुम माता कैकेयीकी रक्षा करना, उनके प्रति कभी क्रोध न करना।'

स्नेह, उत्कृष्ट प्रेम और पालन-पोषणकी दृष्टिसे सभी माताएँ उनके लिये समान हैं—

स्नेहप्रणयसम्भोगैः समा हि मम मातरः ॥
(वा० रा० २ । २६ । ३२)

रामको प्राणोंसे भी अधिक प्यार करनेवाली, किंतु मन्थराकी दुर्मन्त्रणासे रामके वन-गमनका वर माँगनेवाली कैकेयी, राम-विरहके कारण परिवार, अयोध्या और सम्पूर्ण राज्यमें क्षोभ, विषाद और करुणाके उमड़ते हुए अपरिसीम दुःख-सागरको देखकर, अपने राम-द्रोहके कारण अत्यन्त दुःखित हुई थीं और जीवनभर इस आगमें कुढ़ती, झुलसती और सुलगती रहीं। किंतु श्रीराम ही थे, जिन्होंने चित्रकूटमें तीनों माताओंमें सबसे पहले—

'प्रथम राम भेंटी कैकेई।'
(रा० च० मा० २ । २४३ । ३½)

—कैकेयीसे ही सर्वप्रथम भेंट की और जब अयोध्या लौटे, तब भी सबसे पहले—

'कैकेइ कहँ पुनि पुनि मिले'
(वही, ७ । ख)

—कैकेयीसे ही बार-बार मिले, जिससे उन्हें मनमें श्रीरामकी ओरसे अणुमात्र भी असंतुष्टभावका बोध और संकोचका अनुभव न हो। श्रीरामकी यह उदारता अनुपम है।

जो समस्त साहित्यमें एक सर्वाधिक पवित्र नारी हैं, देदीप्यमान पवित्रता और गम्भीर भक्तिकी अविस्मरणीय

स्थान है; श्रीराम स्वयं जिनके लिये 'त्वया जगन्ति पुण्यानि' (उत्तरराम० १। ४३) कहते हैं, दीपशिखा सी ज्योतिर्मयी, नित्यसाध्वी अपनी उस प्रिया सीताका भी लोककी प्रसन्नताके लिये राजा राम ('राजा प्रकृतिरञ्जनात्' रघु० ४। १२) परित्याग कर देते हैं। क्या आज बड़े-से-बड़े नेताके जीवनमें भी लोक और समाजके प्रति इतनी निष्ठा है? क्या आज सैकड़ों लोगोंके बलिदानके बावजूद और लाखों लोगोंद्वारा जेल भर देनेपर भी सत्यता और ईमानदारीसे जनताकी आकाङ्क्षाओंका आदर किया जाता है?

कौटल्यके अनुसार राजाका अपना कोई हित या सुख नहीं होना चाहिये। वह तो प्रजाकी सुख-सुविधाओं एवं प्रजाके अभीष्टोंकी व्यवस्था करनेवाला व्यवस्थापकमात्र है—

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्॥
(कौ० अ०, अधि० ११९। ३४)

कालिदासने भी यही कामना की है—

'प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः।'
(अभि० शा० ७। ३४)

श्रीराम इस आदर्शके मूर्तिमान् रूप हैं। क्या आजके लोकनायकोंको भी कभी अपने मतदाताओंके दुःख-दर्दोंकी चिन्ता सताती है, जब कि 'श्रीराम प्रजाजनोंके दुःखोंमें उनसे भी अधिक दुःखका अनुभव करते हैं और उनके उत्सव तथा प्रसन्नताके समय पिताके समान परितुष्ट होते हैं'—

व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः॥
उत्सवेषु च सर्वेषु पितेव परितुष्यति।
(वा० रा० २। २। ४०-४१)

एक स्थानपर उन्होंने कहा है कि यह संसार व्यक्तिके इच्छानुसार नहीं चलता। बड़ी-बड़ी संचित सामग्रियाँ नष्ट हो जाती हैं। महती उन्नतियोंका पतन हो जाता है। सब संयोगोंका भी वियोगमें अन्त हो जाता है और जीवनका भी मरणमें अन्त निश्चित है—

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम्॥
(वा० रा० २। १०५। १६)

फलतः मनुष्य-जीवनकी सार्थकता सत्य और श्रेष्ठ नियमोंके पालन, राष्ट्रानुराग और परदुःखापहरणमें है। श्रीरामका जीवन कहीं भी अपने लिये नहीं है। अन्यत्र वे कहते हैं—'लक्ष्मण! मैं सत्य और आयुधकी शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं धर्म, अर्थ, काम तथा सम्पूर्ण पृथ्वी—सब कुछ तुम्हीं लोगोंके लिये चाहता हूँ। तुम सभी बन्धुओंको छोड़कर, यदि मुझे कुछ सुख मिलता हो तो उसमें आग लग जाय, वह जलकर भस्म हो जाय।' (२। ९७। ५—८)

तपस्वी महर्षियोंके उपस्थित होनेपर श्रीराम कहते हैं—'महर्षियो! किस कामसे यहाँ आपलोगोंका शुभागमन हुआ है? मैं सब कुछ छोड़कर आपकी क्या सेवा करूँ? आदेश मिलनेपर बड़े सुखसे मैं आपकी सभी इच्छाओंको पूर्ण कर सकता हूँ।' यह सारा राज्य, इस हृदयकमलमें विराजमान 'यह जीवात्मा तथा यह मेरा सारा वैभव आप ब्राह्मणोंकी सेवाके लिये ही है'—

इदं राज्यं च सकलं जीवितं च हृदिस्थितम्।
सर्वमेतद् द्विजार्थं मे सत्यमेतद् ब्रवीमि वः॥
(वा० रा० ७। ६०। १४)

क्या आजके लोकनायक जनप्रतिनिधियोंके पहुँचनेपर इतनी सहृदयता, उदारता और विनम्रता प्रदर्शित करनेकी भावना रखते हैं? एक और अद्भुत गुण था श्रीराममें; वे सभीको कुछ-न-कुछ देना ही चाहते थे, किसीसे कुछ भी लेना—यह उन्हें किसी भी स्थितिमें मंजूर नहीं था—

'दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात्' (वही, ३। ४७। १७)

आजके लोकनायकोंके जीवनमें केवल लेनेकी ही मुख्यता है और उनके इस आचरणके दुष्प्रभावसे समाजमें भी चारों ओर केवल लेना-ही-लेना सुनायी पड़ता है। श्रीराम तो अपनी जनतासे यह भी कहते हैं कि 'यदि भूलसे मैं कुछ अनीतिपूर्ण वचन कहूँ तो भय छोड़कर मुझे यह कहकर तुरंत रोक देना कि राम! तुम्हारा यह काम अनुचित है'—

जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥
(मानस ७। ४२। ३)

प्रखरबुद्धि और गहन अन्तर्दृष्टिके कारण वे किसी भी विषयको सभी पहलुओंके साथ एक बार ही समझ लेते थे। इसलिये कभी भी अपने निश्चित सिद्धान्तों, आदर्शों और संकल्पोंसे दूर हटनेका अवसर ही उनके जीवनमें उपस्थित नहीं हुआ। साधारण स्थितिकी तो बात ही नहीं, प्राण-संकट उपस्थित होनेकी विषम दशामें भी श्रीराम अपने निश्चित नियमोंका कभी उल्लङ्घन नहीं करते

(वा० रा० ५ । ३३ । २५) । उनका क्रोध तथा प्रसाद दोनों ही अमोघ हैं । अपने पापोंके कारण मारनेयोग्य व्यक्तियोंको बिना मारे वे नहीं रहते और अवध्यके ऊपर क्रोधके कारण कभी उनकी आँख भी लाल नहीं होती—

नास्य क्रोधः प्रसादश्च निरर्थोऽस्ति कदाचन ॥
हन्त्येष नियमाद् वध्यानवध्येषु न कुप्यति ।
(वा० रा० २ । २ । ४५-४६)

अपने उदार गुणोंसे प्रजाको अनुरञ्जित करनेके कारण ही तो उनका नाम 'राम' है (वही, १ । १८ । २९) । वे केवल धर्मके परिरक्षिता ही नहीं हैं[१], समृद्धिके साथ धर्मका आविर्भाव भी साक्षात् उन्हींसे हुआ है—

साक्षाद् रामाद् विनिर्वृत्तो धर्मश्चापि श्रिया सह ॥
(वही, २ । २ । २९)

इसलिये केवल वे ही नहीं, उनके व्यक्तित्वके चारों ओर चक्कर लगानेवाले सभी पात्र परिस्थिति-निरपेक्ष, स्वयं-स्फूर्त कर्तव्य-भावना और मानवीय गुणोंके सर्वोच्च मूर्तिमान् प्रतीक हैं । अतः आदिकविके शब्दोंमें मनुष्य-जीवनकी सार्थकता और जीवनका सर्वोच्च प्राप्य शिखर यही है कि 'या तो हम रामको देख सकें या रामकी दृष्टि हमारे ऊपर पड़ जाय, अन्यथा खुद हमारी आत्मा ही हमें कोसेगी'—

यश्च रामं न पश्येत्तु यं च रामो न पश्यति ।
निन्दितः स भवेल्लोके स्वात्माप्येनं विगर्हते ॥
(वही, २ । १७ । १४)

रामचरितसे मण्डित रामायण केवल हमारा ही राष्ट्रीय काव्य नहीं है, इंडोनेशिया-जैसे मुस्लिम देशका राष्ट्रीय काव्य भी रामायण है । कम्बोडियाके बौद्ध-मन्दिरोंकी दीवारोंपर आज भी रामायणके दृश्य उत्कीर्ण हैं । हिमालयसे उद्भूत शतशः जलधाराओंकी भाँति राम-कथा इस देशमें ही नहीं, इस देशके चारों ओर फैली हुई है । अमर है यह लोकनायक श्रीरामकी कहानी—

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ॥
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ।
(वही, १ । २ । ३६-३७)

कहते हैं, संसारके समूचे साहित्यमें इस प्रकारका लोकप्रिय काव्यजातीय ग्रन्थ नहीं है । समूचा भारतवर्ष एक स्वरसे इसे पवित्र, आदर्श काव्य-ग्रन्थ मानता है और सम्पूर्ण भारतीय साहित्यका आधा इस महाकाव्यके द्वारा अनुप्राणित है । प्रत्येक युगके आचार्य, कवि और नाटककार इस महाग्रन्थसे चालित हुए हैं ।

सदियोंकी परतन्त्रता और विदेशी आक्रमणोंके कारण इस देशका जीवन अस्त-व्यस्त तथा पथभ्रष्ट हो गया है । बौद्धिकता और चेतनाका वाहक आजका बुद्धिजीवी पश्चिमसे आयात ज्ञानके तूफानसे गुजर रहा है । संदेहोंकी चट्टानोंसे टकरा-टकराकर निराश नयी पीढ़ी जीवनकी तलाशमें लगी है । नैतिक संकट, मूल्य-विघटन, राजनीतिक दल-बदल और मानसिक रिक्तताके कारण जीवन सूना-सूना लगने लगा है । आत्म-विस्मृतिकी प्रबल धारामें बहते हुए समाजको रोकनेवाले श्रेष्ठ आदर्श भी विस्मृत होते जा रहे हैं । हमारा सम्पूर्ण जीवन एक बृहत् पाखण्ड और गोरखधंधा बन गया है । सत्ताधारीके हाथमें संचित प्रचारकी शक्ति जन-साधारणकी समझनेकी शक्तिको रौंदकर निकली जा रही है । अनैतिक शक्तियाँ राष्ट्र-जीवनको अपने पैरोंके नीचे कुचलनेमें लगी हैं । ऐसी स्थितिमें सार्वजनिक जीवनको शुद्ध करनेका एक ही शक्तिशाली उपाय है कि हम 'लोकनायक श्रीराम'को आदर्श मानकर अपने जीवनमें नैतिक, धार्मिक, लोकतान्त्रिक तथा आध्यात्मिक मूल्योंकी प्रभुताको स्वीकार करें । सत्यनिष्ठा, पवित्र आचरण, मानवीय प्रेम, त्याग, संयम, उदारता यदि शास्त्रोंकी खूँटीपर ही लटके रहें तो उनसे किसी समाजका कोई कल्याण नहीं हो सकता । इस मर्त्यलोकके मानवने रामसे भव्यतर गुणसम्पन्न और चरित्रवान् मानवकी कल्पना ही नहीं की है,[२]

---

१. रक्षिता जीवलोकस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।
रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य धर्मस्य च परंतप ॥
(वा० रा० ५ । ३५ । १०)

२—सत्यं दानं तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम् ।
विद्या च गुरुशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे ॥
(वही, २ । १२ । ३०)

'सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, पवित्रता, सरलता, विद्या और गुरुशुश्रूषा—ये सभी सद्गुण श्रीराममें स्थिररूपसे रहते हैं ।'

न तं पश्याम्यहं लोके परोक्षमपि यो नरः ।
स्वमित्रोऽपि निरस्तोऽपि योऽस्य दोषमुदाहरेत् ॥
(वही, २ । २१ । ५)

'मैं संसारमें एक मनुष्यको भी ऐसा नहीं देखता, जो अत्यन्त शत्रु एवं तिरस्कृत होनेपर भी परोक्षमें भी इनका कोई दोष बता सके ।'

दुनियाको सारी मानवताको हिलानेके लिये उनके चरित्रके प्रकाशपुञ्जकी ज्योति देश-देशान्तरों, मानवीय हृदयों, मस्तिष्कों और काव्य-ग्रन्थोंके रूपमें सदैव प्रज्वलित बनी रहेगी, जिसके प्रकाशमें करोड़ों लोगोंकी थकी हुई जिंदगी निश्चित ही सुख और शान्ति प्राप्तकर कृत-कृत्य होगी।

'रामो धर्मस्य विग्रहः'

(लेखक—श्रीदेवीरत्नजी अवस्थी 'करील', एम्० ए०, साहित्यरत्न)

महर्षि वाल्मीकि-जैसे तपःपूत महाकविका कथन है कि 'राम धर्मके मूर्त स्वरूप हैं।' जिस युगमें भगवान् राम इस भारतवर्षमें विद्यमान थे, उसी युगमें महर्षि वाल्मीकि भी हमारे इस देशको अपने तपःसम्भूत काव्यसे सद्गुणोंके क्षेत्रमें ऊँचा उठा रहे थे। वे दशरथ और जनक-जैसे लोकमान्य धराधीशोंके सम्मान्य मित्र थे। अपने योगबलसे वे प्रत्येक विषयकी पूर्ण और सम्यक् गवेषणा करनेमें समर्थ थे। आजका सशङ्कित पाठक योगबलकी बात सुनकर चौंक उठनेका अभ्यस्त हो गया है; इसलिये यह बताना भी आवश्यक है कि भारतीय परिभाषाके अनुसार, चित्तकी वृत्तियोंका पूर्ण निरोध ही 'योग' है। चित्तवृत्तिके निरोधके चमत्कार आज भी यदा-कदा देखनेको मिल जाते हैं।

इन पङ्क्तियोंका लेखक उस धर्मका अनुयायी है, जिसने सारी सृष्टिको संगठित कर रखा है; और उसका नाम केवल 'धर्म' ही है। जिन लोगोंको धर्मकी यह परिभाषा स्वीकार्य नहीं है और अपने धर्मको एक विशेष नाम देकर पुकारना जिनको रुचता है तथा जो अपनेको धर्मके क्षेत्रमें भारतसे बाहरका समझते हैं, उन्हें भी अपने ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक ज्ञानके संवर्धनके लिये रामके उस अत्यन्त प्राचीन व्यक्तित्वको समझनेका प्रयास करना चाहिये, जिसने सत्यकी प्रतिष्ठाके लिये यावज्जीवन धर्मकी आराधना की थी।

रामके महान् व्यक्तित्वको समझनेके लिये वाल्मीकिका आदिकाव्य सबसे पहला और सबसे अन्तिम आधार है; इसलिये हम वाल्मीकिके आश्रममें प्रविष्ट हुए बिना, अन्य किसी भी उपायसे रामके स्तुत्य चरित्रको पूर्णतया न समझ पायेंगे। एक बार एक सज्जनने मुझसे पूछा कि 'यदि भगवान्की सत्ताको स्वीकार न किया जाय तो क्या इससे कोई हानि हो सकती है?' मैंने उनसे कहा कि 'इसमें भगवान्की तो रत्ती-भर भी हानि नहीं हो सकती; क्योंकि भगवान् हानि-लाभसे सर्वथा परे हैं। पर यदि हम भगवान्की महती सत्ताका निषेध करेंगे तो स्वयं जीवनभर सत्यसे विमुख बने रहेंगे।' इसी प्रकार यदि हम अपनेको धर्मतः अभारतीय माननेका दुराग्रह बनाये रखें और रामके चरित्रको पूर्णतया समझनेकी चेष्टा न करें तो इससे रामकी महत्ताको कोई हानि नहीं पहुँचेगी; पर हम स्वयं उनकी महत्ताके उस आदर्शवादसे वञ्चित रह जायँगे, जो सदैव लोकके अभ्युत्थानके अमृत-रसकी वृष्टि करता रहता है।

वाल्मीकिकी रामायण ऐसे रामका चरित्र तो है ही, जो एक महापुरुष थे—इतने बड़े महापुरुष, जिन्हें जन-जीवन कोटि-कोटि कण्ठोंसे 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' कहकर सम्बोधित करता आ रहा है; साथ-ही-साथ वह ऐसे रामका भी चरित्र है, जो विष्णुके अवतार थे। इन दोनों चरित्रोंमें द्वित्व नहीं है। जो नर है, वही हमारा नारायण है। जो नर नहीं है, वह नारायणत्वका अधिकारी नहीं हो सकता है—ठीक उसी प्रकार, जैसे बिना एम्०ए०की उपाधिके कोई पी-एच्०डी०, डी०लिट्० आदिकी उपाधियाँ नहीं प्राप्त कर सकता। नारायणका स्वरूप हमारे लिये बोधगम्य नहीं है, वह योगियोंके लिये भी सरलतासे बोधगम्य नहीं हुआ करता; इसीलिये वाल्मीकिने नारदसे नररूपी रामके ही महच्चरित्रपर आदिकाव्यके सृजनकी प्रेरणा प्राप्त की थी।

जिन रामके महच्चरित्रसे वाल्मीकिने अपने आदिकाव्यके सृजनकी प्रेरणा प्राप्त की थी, वे नारायण होते हुए भी लोकके हितके लिये केवल नर थे। वे नारायणसे नर इसलिये बने कि उनके नरत्वसे लोग प्रेरणा प्राप्त करके अपने नरत्वको अधिक संवर्धित कर सकें। इन्हीं रामको वाल्मीकिने 'धर्मका मूर्तिमान् स्वरूप' कहा है। रामको वाल्मीकिने अपने रामायणमें सर्वत्र 'आर्य' कहा है। इसलिये संसार-भरके जितने भी देश अपनेको आर्यशाखाका मानते हैं, राम उन सबके पूर्वज हैं और अपने महच्चरित्रके कारण वे उन सभीके श्रद्धापात्र हैं। जिस प्रकार राम एक असाधारण व्यक्ति थे, उसी प्रकार उनकी रामायणके प्रणेता

वाल्मीकि भी असाधारण व्यक्तित्वसे विभूषित थे। उनकी असाधारणताके कारण ही उनका युग उन्हें 'महर्षि' कहकर प्रणाम करता था। उनका वह महर्षित्व आज भी ज्यों-का-त्यों बना है।

जिस योरप और अमेरिकासे हम आज बहुत अधिक प्रभावित हैं, उनके सभी विद्वान् अपने समाजको आर्य-शाखाका बताते हैं। ईरान और अफगानिस्तान-जैसे देश तो केवल अपनेको ही शुद्ध आर्य मानते हैं। पारसी भी अपनेको आर्यरक्तसे ओतप्रोत मानते हैं। अतः इन सभीको चाहिये कि वे अपने प्राचीनतम अग्रजन्मा रामके महच्चरित्रका अध्ययन करके अपनी सभ्यता और संस्कृतिका संवर्धन करें।

धर्मको अपनी सुविधाके लिये हम दो वर्गोंमें विभाजित कर सकते हैं। ये वर्ग हैं—सामान्य और विशेष। सामान्य धर्म वह सदाचार है, जो हमारे विकासका पथ प्रदर्शित करता है। विशेष धर्म वे कर्तव्य हैं, जो मनुष्यके लिये श्रेयस्कर गतिका निर्माण करते हैं। रामका व्यक्तित्व धर्मके इन दोनों वर्गोंका योग्यतम प्रतिनिधि था; इसीलिये वाल्मीकि रामको उनके निजके धर्मका तथा संसारभरके लोकधर्मका रक्षक मानते थे। वे बड़े स्पष्ट शब्दोंमें यह बात कहते हैं—

'रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता।'

(वा० रा० १।१।१४)

संसारके प्राचीनतम महापुरुषोंने समाजके संचालनके लिये प्रकृतिकी गतिके अनुसार वर्णों और आश्रमोंकी स्थापना की थी। यह वर्णाश्रम-व्यवस्था प्रकृतिके व्यापारोंका अध्ययन करके बनायी गयी थी; अतः हम इसे चाहें या न चाहें, यह व्यवस्था जबतक यह सृष्टि है, तबतक बनी ही रहेगी। मनुष्य ही नहीं, दूसरे प्राणी भी आँखोंसे देखते हैं, कानोंसे सुनते हैं, मुँहसे खाते हैं और पैरोंसे चलते हैं। इसीलिये आँखोंका धर्म है देखना, कानोंका धर्म है सुनना, मुँहका धर्म है खाना और पैरोंका धर्म है चलना। आपका ज चाहे जितना परिवर्तित हो जाय—चाहे आप चन्द्र- अपनी कोठी खड़ी करें या सूर्यलोकमें, आप का काम आँखोंको और देखनेका काम मुँहको नहीं प सकेंगे। प्राचीनताका प्रतिनिधित्व करनेवाले वेदोंने इसीलिये घोषणा की थी कि 'ब्राह्मणत्व विराट् पुरुषके मुखसे जन्मा है, उनके हाथोंने क्षत्रियत्वको जन्म दिया है, उनके जघनस्थलसे वैश्यत्वने जन्म पाया है और उनके पैरोंसे शूद्रत्व अवतरित हुआ है।' समस्त जड और चेतन सृष्टिमें ये वर्ण व्याप्त हैं।

वर्णोंकी भाँति आश्रमोंका विभाजन भी बड़ा ही लोकोपयोगी है। आश्रम-व्यवस्था केवल मानवसमाजतक सीमित है, पर उसकी उपयोगिता कभी नष्ट नहीं हो सकती। ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम आज भी मानवसमाजमें सर्वत्र व्याप्त हैं। अपनी सारी अव्यवस्थाओंसहित हमारे आजके विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय उसी प्राचीन ब्रह्मचर्याश्रमका प्रतिनिधित्व करते हैं। आजकी सारी अव्यवस्थाओंका भार लादे हुए हमारे गाँवोंके कच्चे-पक्के घर और नगरोंके बड़े-बड़े भवन, अपनी आधुनिक सुख-सुविधाओंसहित, उस प्राचीन गृहस्थाश्रमका ही यशोगान करते हैं। सारी अव्यवस्थाओंसमेत हमारे इस संसारके सभी मनुष्य, अपने पुत्रोंको समर्थ देखकर अपने-आप तृप्तिका अनुभव करते हुए, उसी प्राचीन वानप्रस्थ आश्रमकी महिमाको उजागर करते हैं; और सारी अव्यवस्थाओंसमेत संसारके थोड़े-से त्यागी-तपस्वी लोग, उसी संन्यासाश्रमकी प्राचीनताको संवर्धित करते हुए, संसारकी मानवताको असत्यसे सत्यकी ओर, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर तथा मृत्युसे जीवनकी ओर अग्रसर करते रहते हैं। ऐसे सार्वदेशिक और सार्वकालिक वर्णाश्रमधर्मके मूर्तिमान् स्वरूप थे राम! प्राचीनोंने उन्हीं रामके नरत्वमें नारायणत्वका प्रतिपादन किया था। मैं स्वतः उन्हें नारायणका अवतार मानता हूँ, पर उनका वह नारायणत्व अगम है, अगोचर है; इसलिये उनका मनुष्यरूप ही धर्मका मूर्तिमान् स्वरूप है। रामका यह मनुष्यरूप एक साथ सभीको सत्प्रेरणा देनेमें समर्थ है; फिर चाहे कोई किसी धर्मका और किसी देशका क्यों न हो। निश्चयपूर्वक रामका यह धर्मस्वरूप उन्हें भी प्रेरणा देगा, जो ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास नहीं रखते।

ऊपर सामान्य और विशेष धर्मोंका उल्लेख हो चुका है। वर्णाश्रमधर्म इन दोनों धर्मोंका समन्वय है। दूसरेको हीन, नीच और अस्पृश्य समझनेकी भावनासे इस वर्णाश्रम-धर्मका कोई सम्बन्ध नहीं है। आँखें यदि पैरोंको अपनेसे छोटा और पापजन्मा समझने लगें तो सारे शरीरका निस्तार कैसे होगा। इन सामान्य और विशेष धर्मोंको रामने अपने आचरणद्वारा जिस प्रकार धन्य बनाया था,

उसका अध्ययन सदैव श्रेयस्कर है। वाल्मीकि रामके ऐसे आचरणको जन-जनमें प्रविष्ट करना चाहते थे। वे चाहते थे कि लोग रामके चरित्रका चिन्तन करके श्रेय प्राप्त करें। जब रामके चरित्रका चिन्तन होगा, तभी हमारा आचरण रामवत् होगा; इसीलिये वाल्मीकिने चाहा था कि 'हमारा ब्राह्मणवर्ग लोगोंके कानोंमें नित्य ही रामके चरित्र प्रविष्ट कराता रहे और सारे लोग अपने कल्याणके लिये रामके चरित्रका अध्ययन, मनन और चिन्तन करते रहें।' वाल्मीकि यह भी चाहते थे कि 'हमारी माताएँ उसी प्रकारके पुत्र उत्पन्न करें, जिस प्रकारके पुत्र कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयीने उत्पन्न किये थे'—

चिन्तयेद् राघवं नित्यं श्रेयः प्राप्तुं य इच्छति।
श्रावयेदिदमाख्यानं ब्राह्मणेभ्यो दिने दिने॥
(वा० रा० ७। १११। २०)

राघवेण यथा माता सुमित्रा लक्ष्मणेन च।
भरतेन च कैकेयी जीवपुत्रास्तथा स्त्रियः॥
(वही, ६। १२८। ११०)

ऊपरके श्लोक यह स्पष्ट बताते हैं कि वाल्मीकि रामके चरित्रसे जनजीवनको क्यों ओतप्रोत बनाना चाहते थे। वे क्यों चाहते थे कि सभी स्त्रियाँ राम, भरत और लक्ष्मण-जैसे पुत्र उत्पन्न करें। निश्चय ही वे ऐसा इसलिये चाहते थे कि देशकी भावी पीढ़ियाँ राम, भरत और लक्ष्मण-जैसे युवकोंसे विभूषित हो उठें। रामायणके प्रचारमें वाल्मीकिका यही उद्देश्य था। तुलसीदास, कम्बन और कृत्तिवास-जैसे रामचरितके परवर्ती महाकवि भी यही चाहते थे। उन्होंने हिंदी, तमिळ और बँगला भाषाओंमें इसीलिये रामचरितको काव्यबद्ध किया था कि वाल्मीकिकी यह आशा पूर्ण हो।

व्यास-जैसे तपोनिष्ठ महर्षि कहते थे कि 'मैं दोनों हाथ उठाये हुए बारंबार सबको श्रेयमार्गपर चलनेको कहता रहता हूँ; पर लोग मेरी नहीं सुनते।' चाहिये यह कि हम वाल्मीकि और व्यास-जैसे महर्षियोंकी सुनें। तुलसीदास, कम्बन और कृत्तिवास-जैसे भक्तोंकी सुनें; और रामके महच्चरित्रके अनुसार अपने चरित्रको ढालनेका प्रयत्न करते रहें। वास्तविक रामभक्ति इसीमें है।

रामका चरित्र धर्ममय था। 'वे धर्मके मूर्तिमंत स्वरूप थे'—वाल्मीकि-रामायणका यह संदेश हमें सदैव स्मरण रखना चाहिये। वाल्मीकिके परवर्ती महापुरुषोंद्वारा भारतीय भाषाओंमें रामचरित्रका संव्यूहन इसीलिये किया गया था कि हम रामके उस मूर्तिमंत धार्मिक स्वरूपको अपनी आँखोंसे देखें और तद्वत् अपने आचरणका सृजन करें। रामके इस धर्मस्वरूपका वास्तविक दर्शन तभी सम्भव होगा, जब हम अपने आचरणको रामवत् बनानेके संकल्पकी साधनामें श्रद्धा और विश्वासपूर्वक जुटे रहें।

रामका देश वैदिक सम्पत्तिका धनी था। राम उसी देशमें उपजे थे, जिसके गीत विक्रमकी बीसवीं शतीमें उत्पन्न महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरने इन शब्दोंमें गाये थे—

प्रथम प्रभात उदित तव गगने।
प्रथम सामरव तव तपोवने॥

वाल्मीकिने रामके जिन गुणोंका वर्णन अपने आदिकाव्यमें किया है, उनमें एक अक्षर भी अत्युक्तिपूर्ण नहीं है। उन्होंने रामको 'वेद-वेदाङ्ग-तत्त्वज्ञ' कहा है। पर राम हमारी भाँति केवल अखण्ड पाठ करके वेद-वेदाङ्ग-तत्त्वज्ञ नहीं बने थे। वे अपने आचरणको वेदोंकी शिक्षाके अनुरूप बनाकर वेद-वेदाङ्ग-तत्त्वज्ञ बने थे। यजुर्वेदमें कामना की गयी है कि 'हमारे राष्ट्रमें ब्राह्मणत्वका वर्चस बढ़े, हमारे राष्ट्रके शत्रुसंहारक क्षत्रियोंमें महारथियोंका पौरुष जाग्रत् हो, हमारे राष्ट्रमें प्रचुर मात्रामें दूध देनेवाली गौएँ समृद्ध हों, हमारे राष्ट्रमें महाभारके वहन करनेवाले बड़े-बड़े बैल उत्पन्न हों, हमारे राष्ट्रके घोड़े तीव्रगामी हों, हमारे राष्ट्रकी स्त्रियाँ सदाचारिणी हों, हमारे राष्ट्रके रथी विजेता हों, हमारे राष्ट्रके यजमान सभाओंकी मर्यादा बढ़ानेवाले वीर युवक उत्पन्न करें, हमारे राष्ट्रमें समय-समयपर वृष्टि हुआ करे, हमारे राष्ट्रमें ओषधियाँ फलदायिनी होकर समृद्ध हों, हमारे राष्ट्रका पूर्ण कल्याण हो।'—

'आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।' (यजु० २२। २२)

रामने वेदोंकी इस शिक्षाका संव्यूहन अपने चरित्रमें किस प्रकार किया; इसके ज्ञानके लिये हमें निरन्तर रामचरितका अध्ययन करना चाहिये। वेदोंकी इसी शिक्षासे प्रेरित होकर ही रामने अपनी इस प्रतिज्ञाको यावज्जीवन कार्यान्वित किया था—

गोब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय च।
तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः॥
(वा० रा० १।२६।५)

राम विश्वामित्रसे कहते हैं—'गौ और ब्राह्मणोंके हितके लिये तथा इस देशके हितके लिये मैं आप-जैसे महान् ऋषिकी आज्ञाको क्रियान्वित करनेके लिये उद्यत हूँ।' राम जीवनभर इस महत्कर्मकी साधनामें उद्यत रहे। उन्होंने यावज्जीवन वेदोंकी शिक्षाके अनुसार गायोंको प्रचुरदुग्धदात्री बनानेका कार्य किया। उन्होंने यावज्जीवन वेदोंकी शिक्षाके अनुसार ब्राह्मणत्वके वर्चसको बढ़ानेका कठिनतम कार्य किया। उन्होंने यावज्जीवन वेदोंकी शिक्षाके अनुसार क्षात्रधर्मको संवर्धित करनेका कार्य किया। उन्होंने यावज्जीवन वेदोंकी शिक्षाके अनुसार अपने युगके जीवन-यौवनको और अपनी मातृभूमिको जिस प्रकारसे समृद्ध किया, उसके सम्यक्ज्ञानके लिये हमें वाल्मीकीय रामायणका अनुशीलन करना चाहिये।

स्वामी रामतीर्थने धर्मकी व्याख्या करते हुए जिस जीवित-जाग्रत् धर्मको 'नकद धर्म' कहा है, उस नकद धर्मकी प्रेरणा उन्हें रामके चरित्रसे ही मिली थी। रामका सारा जीवन कर्मप्रधान था। उन्होंने कैकेयीकी मति पलटनेके लिये कोई तान्त्रिक विधि नहीं अपनायी, उन्होंने वैदिक शिक्षाका अनुसरण करके स्वयं अपने शुद्धाचरणद्वारा कैकेयीकी मतिको पलट दिया। रामका आचरण ही उनका सर्वस्व था; क्योंकि यह सिद्धान्त उन्हें उत्तराधिकारमें मिला था कि आचरणसे ही धर्म उत्पन्न होता है—

'आचारप्रभवो धर्मः।' (विष्णुसहस्रनाम ३७)

यद्यपि वे अपनी वक्तृत्वशक्तिके लिये अपने युगमें बड़े विख्यात थे और स्वयं वाल्मीकिने उनकी भाषणकलाकी बहुत-बहुल प्रशंसा की है; फिर भी उन्होंने कोरे भाषणोंके बलसे जनजीवनको प्रभावित करनेकी चेष्टा कभी नहीं की। मनुष्य-सुख और दुःखमें किस प्रकार एक-समान रहना है, यह उन्होंने अपने स्वयंके आचरणद्वारा सबको दिखा दिया। तपोव्रती होकर वन जानेका संकल्प लेते ही उन्होंने अपने भविष्यकी कोई चिन्ता न करके अपनी सारी निजी सम्पत्तिका दान कर दिया। वे चाहते तो अपनी निजी सम्पत्ति अपनी माताके पास सुरक्षित रख सकते थे; किंतु ऐसा न करके उन्होंने अपनी पूरी सम्पत्ति दानमें दे दी। यह दान उन्होंने इसलिये दिया कि तपस्वीके लिये सम्पत्ति वर्जित है। रामकी निजी सम्पत्ति करोड़ोंकी थी। यह करोड़ोंकी सम्पत्ति सीताजीके नामसे भी जमा रह सकती थी; पर उन्होंने यह सारा दान सीताजीसे ही करवाया। अपने इस महान् त्यागसे एक ओर तो उन्होंने तपोबलकी मर्यादाको संवर्धित किया और दूसरी ओर उन रामभक्तोंका मार्ग भी प्रशस्त किया, जिनकी परम्परामें विवेकानन्द, तिलक और गांधी-जैसे आधुनिक महापुरुषोंके नाम लिये जा सकते हैं।

अयोध्यासे राम जब वनको चले, तब उनका वह वनगमन—वह राज्य-निर्वासन, जिसे वाल्मीकिने भी 'निर्वासन' ही कहा था, बड़ा अपमानजनक था। लक्ष्मण तो इसके प्रबलतम विरोधी थे ही, सारी जनताने इसका क्रियात्मक विरोध किया; पर धर्मात्मा राम कहते रहे कि 'पिताकी आज्ञाके औचित्य और अनौचित्यपर पुत्रको विचार करनेका कोई अधिकार नहीं है।' उनके युगके कार्ल मार्क्स जाबालिने उनसे कहा कि 'आप बुद्धिमान् होकर साधारण लोगों-जैसी बातें कर रहे हैं! धर्म एक व्यर्थका ढकोसला है। कोई किसीका पूज्य नहीं होता है। माता-पिता आदिकी मान्यता व्यर्थ है। सबसे बड़ी बात है—अर्थ। अर्थको छोड़कर धर्मकी बात करनेवाले स्वयं ही अपने विनाशक हैं। व्यर्थकी बातोंमें मत पड़िये। अयोध्या लौटकर अपना राज्य सँभालिये।' जाबालिका व्याख्यान पूरा भौतिकवादी है, जिसकी कुछ ही बातें मैंने पाठकोंकी जानकारीके लिये दी हैं। पर इस भौतिकवादी व्याख्यानका रामपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने जाबालिसे कहा कि 'आप मेरे प्रेमके मारे ऐसा कहते हैं।'

राम यदि अपने वनवासके लिये जनमत-संग्रहको सहमत होते तो उन्हें केवल दो मत मिलते और उनकी जमानत जब्त हो जाती। इन दो मतदाताओंके नाम इस प्रकार होते—

१—दशरथके आत्मज राजकुमार राम

और

२—अश्वपतिकी आत्मजा महारानी कैकेयी।

—इन दो व्यक्तियोंको छोड़कर करोड़ों लोगोंमें एक भी ऐसा मनुष्य नहीं था, जो वनवासके विषयमें रामके मतका समर्थन करता। लोगोंने शारीरिक बल लगाकर उनका मार्ग रोका, युवक उनके रथपर लटक गये, पर राम तो राम ही थे; वे अपने व्यवहार-बलसे सारी कठिनाइयाँ पार कर गये। लोगोंकी इस घेराधारीको सुनकर दशरथजी भी अपने पूरे

रनिवासको लेकर अपने राजसमाजसहित आते दीख पड़े। ऐसा समय रामके लिये कितना कठिन होगा, इसकी कल्पना कीजिये। स्वयं दशरथजीने पुकारकर आदेश दिया कि 'रथ रोको।' सुमन्त्रने कहा—'मैं राजाज्ञाका उल्लङ्घन कैसे करूँ?' रामने इस अवसरपर सुमन्त्रसे कहा कि 'इस राजाज्ञाके माननेसे स्वयं महाराजके सत्यको क्षति पहुँचेगी, इसलिये आप तीव्रतासे रथ हाँकिये।'

चित्रकूटमें जब भरत उनसे लौट चलनेका आग्रह करने लगे और वसिष्ठसमेत अयोध्याका सारा समाज भरतका अनुमोदन और समर्थन करने लगा, तब रामने अपने पक्षमें जो बात कही, वह सारे संसारकी मानवी आचार-संहिताको अलंकृत करनेवाली है। उन्होंने कहा कि 'पिताकी बेची हुई, दानमें दी हुई और धरोहरमें रखी हुई वस्तुको लौटानेका कोई अधिकार पुत्रको नहीं होता। मेरे पिताके दो आदेश अलग-अलग हैं—

१–रामको चौदह वर्षोंके लिये वनोंमें निर्वासन।
२–भरतको उस अवधितक राज्यका हस्तान्तरण।

'इसलिये पुत्रके नाते, पिताको निरस्त करनेका अधिकार रामको जिस प्रकार बिल्कुल ही नहीं है, उसी प्रकार पुत्रके नाते उस आदेशको निरस्त करनेका अधिकार भरतको भी प्राप्त नहीं है।' उन्होंने अपनी भाषणपटुताका पूर्ण प्रभाव प्रदर्शित करते हुए सारी सभासे कहा कि 'भरत-को यह कहनेका कोई अधिकार ही नहीं है कि वे पिताद्वारा चौदह वर्षोंके लिये उनको सौंपी गयी धरोहर नहीं सँभालेंगे। उनका यह कहना बिलकुल गलत है कि वे मेरे प्रतिनिधि बनकर वन जायँ और मैं उनका प्रतिनिधि बनकर राज्यकी देख-रेख करूँ।' उन्होंने अपनी भाषणशक्तिका पूरा वर्चस दिखाते हुए कहा कि 'पिताने मुझे चौदह वर्षके लिये वनवास दिया है, भरतको नहीं; अतएव वनमें मैं रहूँगा, भरत नहीं। वनके लिये भरतको अपना प्रतिनिधि मैं बना ही नहीं सकता; क्योंकि इससे पिताकी आज्ञाका पूर्ण उल्लङ्घन हो जायगा।' उन्होंने फिर कहा, 'जिस प्रकार मुझे वनका आदेश पितासे प्राप्त हुआ है, ठीक उसी प्रकार भरतको पितासे राज्यकी देख-रेखका आदेश प्राप्त हुआ है। यदि भरत मुझको ही अपना प्रतिनिधित्व सौंपते हैं तो इस कार्यसे भी पिताकी आज्ञाका पूर्णतया उल्लङ्घन हो जायगा; क्योंकि पिताने राज्यभारकी धरोहर उन्हें सौंपी है, मुझे नहीं। पिताने यह कभी आज्ञा नहीं दी कि हम दोनों इस कर्तव्यके लिये अपने प्रतिनिधि भी नियुक्त कर सकते हैं; अतः हम दोनोंके कर्तव्य सर्वथा अलग-अलग हैं; और इसलिये सर्वथा अलग-अलग रहकर हम दोनोंको अपने पिताके आदेशोंका पालन करना चाहिये।' ऊपर जिन त्रेतायुगके कार्ल मार्क्सकी चर्चा की गयी है, उनका वर्चस्वी भाषण भी रामने पूर्ण मनोयोगसे सुना और कह दिया कि 'महर्षि जाबालि मेरे बड़े स्नेही हैं, वे मेरे स्नेहके कारण ऐसा कह रहे हैं; अतएव उनके तर्क अविचारणीय हैं।' उन्होंने स्वयं जाबालिसे कहा कि 'मेरी हितैषिताके कारण जो बातें आप कह रहे हैं, वे कर्तव्य-सी लगती तो हैं, पर हैं वे अकर्तव्य! वे पथ्य-सी प्रतीत तो होती हैं; किंतु हैं वे कुपथ्य!'

भवान् मे प्रियकामार्थं वचनं यदिहोक्तवान्।
अकार्यं कार्यसंकाशमपथ्यं पथ्यसंनिभम्॥
(वा० रा० २। १०९। २)

रामके परम प्रभावशाली धर्मनिष्ठ भाषणसे भरत और वसिष्ठसमेत अयोध्याका वह सारा समाज रामके पक्षमें हो गया। इसके उपरान्त जो कुछ हुआ, उससे सभी परिचित हैं। रामकी इसी प्रकारकी धर्मनिष्ठाओंपर रीझकर वाल्मीकिके स्वर-में-स्वर मिलाकर सारे भारतवर्षने उस प्राचीनतम युगमें यह घोषणा प्रसारित की थी—

'रामो धर्मस्य विग्रहः।'

निषादराज गुह रामके एक मित्र थे। वे रामके बड़े पुराने मित्र थे। वाल्मीकीय रामायण रामके जीवनका सम-सामयिक महाकाव्य है, इसलिये उसमें रामके जीवनकी ऐतिहासिकता भी सुरक्षित है। वाल्मीकिके निषादराज गुह एक सम्पन्न राज्याधिकारी थे। उनके यहाँ अनेक आकार-प्रकारकी बड़ी-छोटी और सजी-धजी पाँच सौ नौकाएँ थीं। वे चार पैसे प्रति सवारी उतराई लेकर यात्रियोंको गङ्गापार पहुँचानेवाले निर्धन केवट नहीं थे।

राम जब उनके यहाँ पहुँचे, तब उन्होंने उनके भोजन और शयनका राजोचित प्रबन्ध किया। उन्होंने रामका स्वागत करते हुए उनसे कहा कि 'मेरा यह सारा राज्य आपका है। आप इसके राजा बनें। आप हमारे स्वामी बन-कर यहाँका शासन चलायें। हम सभी लोग आपके सेवक बन-कर आपकी आज्ञाओंका अनुवर्तन करेंगे। ये भक्ष्य, भोज्य, पेय और लेह्य व्यञ्जन प्रस्तुत हैं; पूरी साज-सज्जासहित

ये राजसी पलंग भी आपकी सेवामें प्रस्तुत हैं और घोड़ोंकी पूरी खाद्य-सामग्री भी प्रस्तुत है'—

स्वागतं ते महाबाहो तवेयमखिला मही ॥
वयं प्रेष्या भवान् भर्ता साधु राज्यं प्रशाधि नः ।
भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च लेह्यं चेतदुपस्थितम् ।
शयनानि च मुख्यानि वाजिनां खादनं च ते ॥
(वा० रा० २ । ५० । ३८–३९)

भगवान् शंकरके पुत्र स्वामिकार्तिकका एक नाम 'गुह' भी था । सम्भवतः निषादराजके पिताने इसीलिये अपने पुत्रका नाम 'गुह' रखा होगा । निषादराज गुह इस प्रकार रामका आतिथ्य पहले भी तो करते रहे होंगे । ऐसे अभिन्न मित्रका यह आतिथ्य सर्वथा स्वीकार करनेयोग्य तो था ही, पर उनके इस स्वागत-निवेदनपर उत्तरमें रामने अपने उन पुराने और अभिन्न मित्रसे जो बातें कहीं, वे इतिहासके पन्नोंपर स्वर्णाक्षरोंमें लिखनेयोग्य हैं; किंतु हमारा अभागा इतिहास रामको ऐतिहासिक पुरुष ही नहीं मानता । रामने अपने उन परम मित्र निषादराज गुहसे कहा —

'आपने इतना स्नेह उँड़ेल दिया ! आप मेरे पास पैदल ही चले आये ! मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, आपको देखकर ! आपके इस स्वागत-सत्कारसे तो हमलोग सदाके लिये अर्चित हो उठे !'

इतना कहकर रामने निषादराज गुहको अपनी सुन्दर भुजाओंके पाशमें लपेट लिया और कहा—'मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि मुझे आप-जैसे स्वस्थ और प्रसन्न बान्धवोंसे घिरे हुए स्वस्थ और प्रसन्न मित्रके दर्शन हुए । आपके मित्रोंमें, आपके वनोंमें और आपके राज्यक्षेत्रमें सब लोग कुशलसे तो हैं ?'

इसके उपरान्त रामने उनसे फिर कहा कि 'प्रेमपूर्वक आप जो-जो वस्तुएँ लाये हैं, वे सारी वस्तुएँ मुझे स्वीकार हैं; पर मैंने वनचारी तपस्वीका व्रत धारण कर लिया है, वल्कल-वस्त्र और कुश धारण कर लिये हैं, मृगचर्म धारण कर रखा है—यह आप स्वयं समझ लें । इस व्रतके कारण इन सारी सुविधाओंकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं है । इसलिये आप इन वस्तुओंको वापस भेज दें और केवल घोड़ोंका चारा-दाना मुझे दे दें । ये चारों घोड़े मेरे पिताको बड़े प्रिय हैं । इनको खिलाने-पिलानेसे ही मेरा पूरा सत्कार हो जायगा । मैं तो फल-मूलाहारी हूँ । वे भी अपने या लक्ष्मणके तोड़े हुए होने चाहिये, किसी अन्यके नहीं ।'

अपने मित्र निषादराज गुहसे रामने उस समयकी लोक-भाषा संस्कृतमें जो कुछ कहा था, वह वाल्मीकीय रामायणमें पद्यबद्ध होकर ज्यों-का-त्यों इस रूपमें आजतक सुरक्षित है—

गुहमेवं ब्रुवाणं तु राघवः प्रत्युवाच ह ।
अर्चिताश्चैव हृष्टाश्च भवता सर्वदा वयम् ॥
पद्भ्यामभिगमाच्चैव स्नेहसंदर्शनेन च ।
भुजाभ्यां साधुवृत्ताभ्यां पीडयन् वाक्यमब्रवीत् ॥
दिष्ट्या त्वां गुह पश्यामि ह्यरोगं सह बान्धवैः ।
अपि ते कुशलं राष्ट्रे मित्रेषु च वनेषु च ॥
यत् त्विदं भवता किंचित् प्रीत्या समुपकल्पितम् ।
सर्वं तदनुजानामि नहि वर्ते प्रतिग्रहे ॥
कुशचीराजिनधरं फलमूलाशनं च माम् ।
विद्धि प्रणिहितं धर्मे तापसं वनगोचरम् ॥
अश्वानां खादनेनाहमर्थी नान्येन केनचित् ।
एतावतात्र भवता भविष्यामि सुपूजितः ॥
एते हि दयिता राज्ञः पितुर्दशरथस्य मे ।
एतैः सुविहितैरश्वैर्भविष्याम्यहमर्चितः ॥
(२ । ५० । ४०–४६)

इसके बाद गुहके द्वारा प्रस्तुत उन सारे भक्ष्य, भोज्य, पेय और लेह्य व्यञ्जनोंको और उन राजसी पलँगोंकी सारी साज-सज्जाको त्यागकर अयोध्याके उन महाराजकुमारने अपने छोटे भाईका भरा हुआ पानी मात्र पी लिया और भूमि-पर बिछी हुई घासपर लेटकर वह रात काट दी । यह था रामका जीवित धर्म, जिसके कारण वाल्मीकिने उन्हें 'धर्मका साक्षात् स्वरूप' कहा है ।

वाल्मीकि-जैसे महर्षिकी महान् रचनामें जिन रामको इस प्रकारसे सुसम्मानित किया गया है, वे कितने प्रभावशाली थे, उनका व्यक्तित्व कितना महान् था, इसे बार-बार हमें सोचना चाहिये । सर्वथा अपरिचित क्षेत्रमें जो भी उन्हें मिलता था, वही उनका हो जाता था । हनुमान्, सुग्रीव, अङ्गद और जाम्बवंत—सब-के-सब सर्वथा अपरिचित व्यक्ति ही तो थे । अङ्गदके पिताका तो उन्होंने वध भी कर डाला था; पर उन्होंने स्वप्नमें भी अङ्गदका अविश्वास नहीं किया । उनके व्यक्तित्वका ही यह प्रभाव था कि सभी लोग उनके हो गये थे । कैसा उदात्त चरित्र रामका था, इसका एक और उदाहरण देखिये ।

रामकी सेना लङ्काके उपक्षेत्रोंमें छावनी डाल रही थी। कुछ सेना छावनी डाले पड़ी थी, कुछ डेरे डाल रही थी, कुछ अभी पुल पार कर रही थी। ऐसी अस्त-व्यस्तताके समयमें शत्रुकी सैन्यशक्तिका अनुमान लगानेके लिये रावणने अपने मन्त्रिमण्डलके दो मन्त्रियोंको गुप्तवेषमें रामकी छावनीमें भेजा। ये दोनों मन्त्री थे—शुक और सारण। रामकी छावनीमें ये दोनों-के-दोनों पकड़ लिये गये। इस प्रकार जो लोग पकड़े जाते हैं, वे आजके युगमें भी तुरंत मार डाले जाते हैं; और उस युगमें भी वे पूर्णरूपसे वध्य थे। रामके सामने जब वे लाये गये, तब दोनों-के-दोनों अपनी मृत्युकी घड़ियाँ गिन रहे थे। रामसे कहा गया कि 'ये दोनों रावणके मन्त्रिमण्डलके सदस्य शुक और सारण हैं। इन्हें छावनीके अंदर पकड़ा गया है। ये गुप्तचर बनकर आये थे।'

अपने पक्षके प्रतिवेदनको सुननेके बाद रामने जो किया, उसका उदाहरण अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। संसारभरके सैनिक इतिहासका यह अकेला ही उदाहरण है। जो शत्रु गुप्तचरके वेषमें पकड़े गये थे, वे रावणके मन्त्रिमण्डलके बड़े प्रभावशाली सदस्य थे। उनकी दी हुई सूचना रामके लिये बड़ी भयावह सिद्ध हो सकती थी; पर यह जानते हुए भी रामने उनसे जो कुछ कहा, उसको सुनिये। उसके श्रवणमात्रसे आपका वक्षःस्थल समुन्नत हो जायगा। रामने उनसे कहा कि 'आपने तो अपने राजाके आदेशका पालन किया है। मुझे आशा है, आप हमारी सैन्यशक्तिका अनुमान लगा चुके होंगे; अब आप स्वतन्त्र हैं; जहाँ चाहें, चले जायँ। पर यदि आप अभी अपने कामको पूरा नहीं समझते और यह समझते हैं कि अभी आपको कुछ और देखना चाहिये था तो विभीषणके साथ जाइये। ये आपको जो भी आप चाहेंगे, पूर्णतया दिखा देंगे'—

यदि दृष्टं बलं सर्वं वयं वा सुसमाहिताः।
यथोक्तं वा कृतं कार्यं छन्दतः प्रतिगम्यताम्॥
अथ किंचिददृष्टं वा भूयस्तद् द्रष्टुमर्हथः।
विभीषणो वा कार्त्स्न्येन पुनः संदर्शयिष्यति॥

(वा० रा० ६। २५। १८-१९)

वैष्णवी शक्तिकी द्वादश कलाओंसे सम्पन्न भगवान् रामके नारायणत्वका मूल्याङ्कन तो हमारी शक्तिसे बाहरकी बात है; हम ससीम उस असीमका मूल्याङ्कन क्या करें। पर उन रामके चरित्रोंका अनुशीलन हमें अवश्य करना चाहिये, जो हमारे पूर्वज होकर नररूपमें हमारे देशमें जन्मे और हमारे अन्य पूर्वजोंके साथ जिन्होंने घोड़ोंपर चढ़कर चौगानके खेलोंके गेंद अपने बल्लोंसे उछाले; सरयूकी धारामें जिन्होंने तैराकीकी प्रतियोगिताएँ जीतीं और शस्त्रास्त्रोंके प्रशिक्षणोंकी परीक्षाओंमें विशेषताओंसे विभूषित होकर हमारे क्षात्रधर्मको अलंकृत किया; जिन्होंने परम सत्ताशाली होकर भी जनताकी इच्छाको अपनी इच्छासे ऊपर स्थान दिया और उसके संतोषके लिये जिन्होंने अपनी उस पुनीता पत्नीको भी त्याग दिया, जिसके शुद्धाचरणके वे स्वयं ही सबसे बड़े समर्थक थे; जिन्होंने अपनी वह महती पीड़ा सदैव अपनेतक ही सीमित रखी और अपना वह पीड़ित हृदय लिये हुए जिन्होंने अपनी जनताको स्वर्गोपम सुखोंसे परम सम्पन्न बना दिया; जिन्होंने अपने परमशत्रु रावणकी परम प्रशंसा करके उसे भी अपना भाई बनाकर अपनी ही भाँति अजर-अमर बना दिया। रामद्वारा की हुई रावणकी यह प्रशंसा हमें इसलिये अवश्य सुननी और समझनी चाहिये कि हमारे युगमें जनरल डगलस मैकार्थरने अपने विरोधी जनरल तोजोको फाँसीपर लटकवाकर उनकी तलवार गलवायी थी और उस गले हुए धातुद्रवसे अपनी डाढ़ी बनानेका सेविंग सेट तैयार करवाया था। रावणकी प्रशंसामें रामने विभीषणसे कहा था कि 'ये प्रचण्ड पराक्रमी युद्धमें असमर्थ होकर नहीं गिरे, ये निर्भीक होकर समराङ्गणमें जूझे हैं। ये उन लोगोंमें हैं, जिनके कारण क्षात्रधर्म व्यवस्थित होता है। ऐसे लोग युद्धभूमिमें अपनेको ऊँचा रखनेका प्रयत्न करते हुए ही मारे जाते हैं।'''युद्धमें सदैव किसीकी विजय-ही-विजय नहीं हुआ करती। आदिकालसे ही यह नियम है कि जब एक हारता है, तभी दूसरा जीतता है। वीर लोग या तो शत्रुको जीत लेते हैं या शत्रुद्वारा मारे जाते हैं। इनको तो पूर्वकालके महापुरुषोंद्वारा निर्दिष्ट उत्तम गति प्राप्त हुई है। क्षत्रियोंके लिये यह गति बड़े आदरकी वस्तु है। इनके-जैसे क्षत्रियका युद्धमें इस प्रकार हत होना किसी भी प्रकारसे शोचनीय नहीं है।'

नायं विनष्टो निश्चेष्टः समरे चण्डविक्रमः।
अत्युन्नतमहोत्साहः पतितोऽयमशङ्कितः॥
नैवं विनष्टाः शोच्यन्ते क्षत्रधर्मव्यवस्थिताः।
वृद्धिमाशंसमाना ये निपतन्ति रणाजिरे॥

× × ×

नैकान्तविजयो युद्धे भूतपूर्वः कदाचन।
परैर्वा हन्यते वीरः परान् वा हन्ति संयुगे॥
इयं हि पूर्वैः संदिष्टा गतिः क्षत्रियसम्मता।
क्षत्रियो निहतः संख्ये न शोच्य इति निश्चयः॥

(वही, ६ । १०९ । १४-१५, १७-१८)

कितनी अच्छी बात होती कि आजका यह दुमुँही बातें करनेवाला हमारा समाज उन रामकी इस वाणीका प्रसाद ग्रहण कर पाता, जिनके लिये वाल्मीकिने कह रखा है—

'रामो द्विर्नाभिभाषते।' (वही, २ । १८ । ३०)

शील-शक्ति-सौन्दर्यके मूर्तिमान् विग्रह श्रीराम

(लेखक—श्रीरामप्रकाशजी अग्रवाल)

विश्वके वाङ्मयमें व्यक्तित्वका ऐसा अद्भुत प्रकाश कदाचित् ही दृष्टिगोचर होगा, जैसा भारतके आदिकाव्य वाल्मीकिरामायण और मध्यकालीन काव्य रामचरितमानसमें श्रीरामके व्यक्तित्वका। व्यक्तित्वकी विधायक विभूतियोंको काव्य और कलाकी दृष्टिसे तीन प्रमुख स्तम्भोंमें वर्गीकृत किया जा सकता है—शील, शक्ति और सौन्दर्य। अन्य देशोंके धार्मिक और ललित साहित्यमें इन तीनों विभूतियोंके पृथक्-पृथक् उदाहरण तो प्राप्त हो सकते हैं, पर तीनोंका एकत्र समाहार दुर्लभ है। श्रीराममें इन तीनोंकी पृथक्-पृथक् और एकत्र पराकाष्ठाने उन्हें 'पुरुषोत्तम', 'नारायण', 'भगवान्', 'ईश्वर', 'ब्रह्म', 'परब्रह्म', 'परात्पर ब्रह्म' आदि अभिधानोंसे विभूषित कर दिया है और वे भारतीय काव्य, कला एवं दार्शनिक तत्त्वचिन्तनके अक्षय प्रेरणा-स्रोत बने हुए हैं।

शील, शक्ति और सौन्दर्यको यदि एक ही तत्त्वमें देखा जाय तो उसे 'प्रकाश' कह सकते हैं। मानसिक विभूतियोंका प्रकाश 'शील' है, आत्मिक विभूतियोंका 'शक्ति' और कायिक विभूतियोंका 'सौन्दर्य'। 'प्रकाश' सौन्दर्य भी है, शील भी और शक्ति भी। वह आँखोंको सुख देता है, इसलिये 'सौन्दर्य' है; मनको आह्लादित करता है, इसलिये 'शील' है और आत्माको आलोकित करता है, इसलिये 'शक्ति' है। इन तीनों विभूतियोंकी समन्वित अतीन्द्रिय अनुभूति ही 'आनन्द' है। ये ही **'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्'** हैं। इन्हें 'प्रकाश'के अतिरिक्त जिस एक अन्य शब्दसे व्यञ्जित किया जा सकता है, वह है—'तेज'। गीतामें भगवान् कृष्णने अपने तेजकी अभिव्यक्ति 'विभूतिमान्' और 'ऊर्जित' पदार्थोंमें बतलायी है (अध्याय १०, श्लोक ४१), जिनमें शील, सौन्दर्य और शक्तिका संकेत मिलता है। अन्यत्र भी शील, शक्ति और सौन्दर्यके समन्वयमें भागवत तत्त्वकी व्यञ्जना होती है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

(विष्णुपुराण ६ । ५ । ७४)

शील, शक्ति और सौन्दर्यके साथ यश, ज्ञान और वैराग्यका मिलाप हो जानेपर मानवमात्रकी आराधनाका आलम्बन साकार हो उठता है। ऐसा ही विग्रह नरमें नारायणकी प्रतिष्ठा करता है।

१—श्रीरामका शील

'शील' आचरणमें मूर्तिमान् होता है। वह समाजकी उन मर्यादाओंका स्थापन करता है, जिनसे धर्मका स्वरूप निर्मित होता है। महापुरुषोंका जीवन ऐसे ही शीलसे अनुप्राणित होता है। वह जनताके लिये साक्षात् धर्म बन जाता है और उसके अनुकरण, अनुकीर्तन एवं चिन्तनसे सात्त्विक विभूतियाँ प्राप्त होती हैं। महर्षि वाल्मीकिने रामको 'विग्रहवान् धर्म' कहा है और गोस्वामी तुलसीदासने 'धर्मधुरीण', 'धर्मसेतु' आदि। ऐसे श्रेष्ठ चरितका गायन ही महाकाव्यके मानदण्डोंका विधायक होता है और उसमें धर्म एवं कवित्व मिलकर एकाकार हो जाते हैं। रामायण और रामचरितमानस ऐसे ही कालजयी महाकाव्य हैं, जिनमें धर्म और कवित्वके उच्चतम शिखर लक्षित होते हैं।

वाल्मीकिरामायण (बालकाण्ड) के प्रथम सर्गमें ही रामके चारित्रिक गुणोंकी तालिका प्राप्त होती है। ये गुण हैं—धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवाक्, दृढ़-संकल्प, सच्चरित्र, सर्वभूतहितरत, विद्वान्, समर्थ, प्रियदर्शन, आत्मवान्, जितक्रोध, द्युतिमान्, अनसूयक, धृतिमान्, बुद्धिमान्, नीतिमान्, वाग्मी, शुचि, इन्द्रियजयी, समाधिमान्, वेद-वेदाङ्ग-सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ, साधु, अदीनात्मा और विचक्षण। इनके अनन्तर उन्हें गम्भीरतामें समुद्रके समान, धैर्यमें हिमालयके

समान, वीरतामें विष्णुके समान; क्रोधमें कालाग्निके समान, क्षमामें पृथ्वीके समान और दानमें कुबेरके समान बतलाया गया है। संक्षेपमें, उन्हें दूसरा धर्म ही (**धर्म इवापरः**) कहा गया है। इसी प्रकार, तुलसीके वाङ्मयमें रामके गुणोंका विकीर्ण उल्लेख होनेके अतिरिक्त एक ही स्थानपर विनय-पत्रिकामें शील-स्वभावके अवयवोंको गिनाया गया है—

'सुनि सीतापति सील सुभाउ।' (पद १००)

ये अवयव इस प्रकार हैं—अक्रोध (कभी किसीने उनके चन्द्रमुखपर रिसकी रेखातक नहीं देखी), सौहार्द (खेलमें जीतकर भी हार मान लेना), कृतको विस्मृत-कर तनिक भी अविनयपर पश्चात्ताप करना (चरणके स्पर्शसे अहल्याका उद्धार), क्षमा और सहिष्णुता (परशुराम-प्रसङ्गमें), औदार्य (कैकेयीके विषयमें), कृतज्ञता (हनुमान्के प्रति), अदोषदर्शन एवं गुण-ग्राहकता (सुग्रीव और विभीषणके प्रसङ्गमें), यशोलिप्सामें अनासक्ति तथा निरहंकारता (भक्तोद्धारकी प्रशंसासे मुँह छिपाना और सकृत् प्रणामकी बार-बार चर्चा)।

श्रीरामका यह शील अयोध्यासे लङ्कातक, जन्मके आँगनसे रणके प्राङ्गणतक, स्वजन-परिजनसे अरिजनतक, सभ्य नागरिकसे असभ्य वनेचरतक, अनुरागीसे वीतरागी-तक और पापात्मासे पुण्यात्मातक—सभीको प्रभावित करता है। उन्होंने जंगली जातियों और नरभक्षक राक्षसोंको इसी शीलके प्रभावसे आर्यमार्गमें दीक्षित करते हुए (**'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'**) वन-यात्रा की है। रामकी वन-यात्रा वस्तुतः उनके शीलकी ही दिग्विजय है। उनकी लङ्का-विजय भी उनके शीलकी ही जय है, जिसका प्रकाशन गोस्वामीजीने धर्म-रथके रूपकमें किया है (लङ्काकाण्ड ८०)। इस प्रकार उनका शील ही उनकी आन्तरिक शक्ति या चरित्रकी शक्ति है।

श्रीरामके शीलके रम्य चित्र वाल्मीकिरामायणसे अधिक रामचरितमानसमें हैं। रामायणको 'शक्ति'का काव्य कहा जा सकता है और रामचरितमानसको मुख्यतः 'शील'का। मानसमें चित्रित रामके शीलकी झाँकियाँ हृदयपर अमिट छाप छोड़ती हैं। धनुर्भङ्गके अवसरपर दर्प और अमर्षसे काँपते हुए भृगुवंशके अवतंस परशुरामको रामका यह उत्तर आगपर अमृतका छींटा ही था—

राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तोहारा॥
(१। २८१। ३)

इसमें अपनी लघुता और प्रतिद्वन्द्वीकी महत्ताको स्वीकारना उनके सहज शीलका प्रकाशन है। इसी प्रकार वालीके करुणार्द्र वचनोंको सुनकर प्राण-दान देनेको उद्यत होना, जटायुकी अन्त्येष्टि पिताके समान करना, प्रबल प्रतिद्वन्द्वी रावणका दाह-संस्कार परम सम्मानके साथ कराना (यह चित्र शीलकी दृष्टिसे वाल्मीकिरामायणमें अधिक प्रभावोत्पादक है) और अयोध्या लौटनेपर सर्वप्रथम कैकेयीसे भेंट करना (मानस, उत्तर० ९। १)—ये श्रीरामके शीलके अविस्मरणीय चित्र हैं। उनके शीलको यदि एक शब्दमें पुकारें तो वह है—विनय (वरिष्ठों एवं पूज्योंके प्रति) अथवा करुणा (छोटों अथवा दीनोंके प्रति)। वे विनयकी मूर्ति हैं और करुणाके आगार। पहला पक्ष उन्हें आदर्श मानव (पुरुषोत्तम) बनाता है और दूसरा लोकरक्षक भगवान्।

२—श्रीरामकी शक्ति

श्रीरामकी शक्तिका विवेचन भौतिक नहीं, आध्यात्मिक आधारोंपर ही किया जा सकता है। शक्तिका वास्तविक केन्द्र आत्मा है, शरीर नहीं। रामके व्यक्तित्वमें शक्तिका यही आदर्श मूर्तिमान् हुआ है। भुजबल और शस्त्रबल उनके लिये नगण्य हैं—ये दोनों ही उनके आत्मबलपर आश्रित हैं। इसी आत्मबलका पर्याय है—'सत्य'। जिस प्रकार उनके शीलकी धुरी है—'करुणा', उसी प्रकार उनकी शक्तिकी धुरी है—'सत्य'। **'रामो द्विर्नाभिभाषते'** (राम दो वचन नहीं बोलता) में उनका 'संकल्प' सत्य बनकर बोलता है, जिससे उनकी चतुर्विध वीरता परिचालित होती है।

सत्य अपनेमें पूर्ण होता है। उसे किन्हीं बाहरी उपकरणोंकी अपेक्षा नहीं होती—**'क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोप-करणे।'** (महानाटक ६। २७) उसकी अभिव्यक्ति जिन गुणोंके रूपमें होती है, वे ही शक्तिके विधायक होते हैं। ये गुण हैं—निर्भीकता, दृढ़ता, स्थिरता, धैर्य, आत्मविश्वास, गाम्भीर्य आदि। रामके शरीर-बल और शस्त्र-बलके आधार ये ही गुण हैं। कथाके सभी वीरता एवं उत्साहपूर्ण प्रसङ्गोंमें इन्हीं गुणोंका चमत्कारपूर्ण प्रकाशन हुआ है—विश्वामित्रकी यज्ञ-रक्षामें, धनुष-यज्ञमें, वन-पथपर, विराध-कबन्ध-वालि-वधमें, ताल-वेधन और दुन्दुभि-अस्थिसमूहके प्रक्षेपणमें,

चौदह सहस्र राक्षसोंके मारने, खर-दूषण-त्रिशिराके वधमें, सागरके निग्रहमें, रावणके मुकुटों और मन्दोदरीके ताटङ्कोंके हरणमें तथा महायुद्धमें।

धनुष-यज्ञके अवसरपर सुनयनाकी शङ्काका समाधान करते हुए रामकी इसी सूक्ष्म शक्तिकी उद्भावना चतुर सखियोंने एक छोटेसे वाक्यमें कर दी है—'तेजवंत लघु गनिअ न रानी।' (१ । २५५ । ३) तुलसीके द्वारा किया गया शक्तिका यह बिम्ब-विवेचन अत्यन्त भावपूर्ण है—विशाल सागरको अगस्त्यके कण्ठने पचा लिया था, उदय होते सूर्यका लघु मण्डल त्रैलोक्यके तमको हर लेता है, मत्त गजराजको छोटा-सा अंकुश वशीभूत कर लेता है, एक लघु मन्त्र मात्रसे त्रिदेव वशीभूत हो जाते हैं और सुकुमार काम भी तो अपने कुसुम-शायकसे ही सकल लोकको अधीन कर लेता है। (मानस १ । २५५ । ४; २५६; १ । २५६ । १)

भगवान् राम कोई शस्त्रागार साथ लेकर वनको नहीं गये थे। भगवती सीता अपनी सहज शोभामें बिना अलंकारोंके ही दीप्तिमती थीं और श्रीराम बिना शस्त्रास्त्रके अपनी सहज शक्तिसे वीर्यवान्-ऐश्वर्यवान् थे। काँधेपर धनुष, कमरमें तरकस और तरकसमें कुछ बाण—बस, यही तो था उनका शस्त्रागार! रामका बाण अमोघताका प्रतीक बन गया है। वही उनकी सूक्ष्म एवं अगोचर शक्तिका सूचक है। इसीके बलपर वे शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ हैं—

'रामः शस्त्रभृतामहम्।' (गीता १० । ३१)

३—श्रीरामका सौन्दर्य

श्रीरामके भुवनमोहन सौन्दर्यके उपमान हैं आकाशमें चन्द्रमा और धरतीपर कमल। उनका एक-एक अङ्ग चन्द्रमा और सम्पूर्ण व्यक्तित्व चन्द्रमा है। अतः वाल्मीकिने उन्हें 'सोमवत्प्रियदर्शनः' (वा० रा० १ । १ । १८) कहा है। उनमें सोमका प्रकाश भी है और अमृत भी। प्रकाश आँखोंको सुख देता है और अमृत हृदयको पवित्र करता है। आशय यह है कि रामका सौन्दर्य राजस वृत्तियोंको तृप्त करता हुआ सत्त्वगुणकी ओर ले जाता है। वाल्मीकिरामायणमें 'चन्द्र' उनकी शोभाका उपमानमात्र है, जब कि मानसमें वह रामके अभिधानका अभिन्न अङ्ग बन गया है—'रामचन्द्र', जिसकी संगीतात्मक ध्वनि और भी आह्लादकारिणी बन गयी है।

चन्द्रमा और कमलमें जैसे सृष्टिका सारा सौन्दर्य पुञ्जीभूत हो गया है, मानो ब्रह्माण्डके सौन्दर्यको नाप लेनेके लिये दो ही उपमान पर्याप्त हैं। कमलकी शोभा नेत्रेन्द्रियको तृप्त करनेके साथ ही घ्राणेन्द्रियको भी तृप्त करती है और जलके बीच रहता हुआ, उदय होते सूर्यकी किरणोंसे प्रस्फुटित होकर, वह पावनताके साथ सचेतनताका संदेश देता है। राजस-तृप्तिके साथ सत्त्वगुणका संचार दोनों ही करते हैं। भगवान् रामके सौन्दर्यकी यही कसौटी है। वह अपवित्रको भी पवित्र बनाता है और पवित्रको तो पवित्रताके उच्चतम शिखरपर ले जाकर बैठा देता है।

'राम' शब्दका अर्थ ही है—'वह, जिसमें मन रमण करे।' रामतापनीय उपनिषद्में इस नामकी व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है—'रमन्ते योगिनोऽनन्ते।' पर कविगणने कथाके आश्रयसे योगियोंके अतिरिक्त सांसारिक जनका भी रामके सौन्दर्यमें रमण कराया है और इस प्रकार सौन्दर्यके माध्यमसे उन्हें योगकी उच्चतम कोटितक पहुँचा दिया है। जहाँ-जहाँसे राम गुजरते हैं और जिस-जिसपर उनकी दृष्टि अथवा जिस-जिसकी उनपर दृष्टि पड़ती है, वह सौन्दर्य-जनित समाधिमें लीन होता जाता है। मिथिलापुरके नर-नारी, बाल-वृद्ध और शृङ्गवेरपुरकी समीपवर्तिनी ग्रामवधुएँ ही नहीं, घोर तामसिक निशाचर और फिर भगिनीके नासिका-कर्ण-निपातनसे और भी विक्षुब्ध शत्रु निशाचरतक इस सौन्दर्यके प्रभावसे तमोगुणके पातालसे उछलकर सत्त्वगुणके आकाशको छूते हुए अपने वैर-भावको भूल जाते हैं। खर दूषणकी सौन्दर्य-अमृतके आह्लादमें डूबी हुई यह उक्ति देखिये

हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई॥
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥
(मानस ३ । १८ । २-२½)

वीतराग, परंतु गुरुके धनुर्भङ्गसे परम कुपित परशुधर परशुराम भी क्षणभरके लिये इस रूपराशिके आगे परास्त हो जाते हैं

रामहि चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन॥
(वही, १ । २६८ । ४)

श्रीरामका सौन्दर्य जड प्रकृतिको भी आकृष्ट करता है, उसमें विनय और भक्तिका संचार करता है। बादल उनपर

छाया करते हैं और वनस्पतियाँ वसन्तमयी बन जाती हैं। विषम विषसे भरे हुए साँप और बिच्छू भी उन्हें देखकर अपना तीक्ष्ण तमस् त्याग देते हैं (अयोध्याकाण्ड २६१। ४) और उनके दर्शनार्थ सेतुबन्धके समय मकर-नक्र-झष-व्याल आदि जलचरोंकी भीड़ लग जाती है। इस प्रकार भगवान् रामकी वनयात्रा सौन्दर्यकी विजय-यात्रा बन गयी है। उनके बाणके समान उनका वर्ण भी अमोघ है। सारे वनवासी उनकी रूप-छविसे चकित और थकित हो उठे थे। महर्षि वाल्मीकिने उस रूप-समाधिका परिचय दिया है अपनी रामायणके ३। १। १३ में।

भगवान् रामके दिग्विजयी सौन्दर्यमें कोमलताके साथ पौरुषका अद्भुत संगम हुआ है। वे 'सोमवत्प्रियदर्शनः' और 'कोटि मनोज लजावनिहारे' (मानस २। ११६। $\frac{१}{२}$) कुसुम-कोमल ही नहीं हैं; अपितु कालाग्निसदृश प्रचण्ड और वज्रकठोर भी हैं। उनके नख-शिख-निरूपणमें उनके वृषभकंध, कलभकर-सदृश प्रलम्ब भुज और विस्तीर्ण वक्षःस्थल आदिकी ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया है; क्योंकि वे 'रघुसिंघ' और 'सूर्यवंशके सूर्य' हैं। इस सौन्दर्यमें एक शासनकारिणी शक्ति है, सहज प्रभुत्व है। विना राजदण्डके, विना शस्त्रास्त्रके और विना स्थूल भौतिक बलके यह सौन्दर्य अपनी आन्तरिक शक्तिसे सम्पूर्ण सृष्टिपर शासन करता है।

लङ्काके महाभियानमें यह बाह्य आकृति और अन्तःप्रकृतिका सौन्दर्य 'पदुम अठारह जूथप बंदर की (५। ५४। १$\frac{१}{२}$) विशाल वाहिनीका कोमल नियन्त्रण करता है। दिवसके रणसे श्रान्त रघुसिंहके अनुचर उनकी एक ही शीतल चितवनसे अपनी क्लान्ति भूल जाते हैं; क्योंकि उस श्यामल-धवल प्रकाश-किरणमें हृदयकी करुणा और समदर्शिताका मिश्रण है।

श्रीरामके शील-शक्ति-सौन्दर्य विश्वकी श्रद्धा-आराधन-आकर्षणके केन्द्र हैं। वाल्मीकिसे लेकर आजतकका कवि उससे उच्चतम काव्य-रचनाकी प्रेरणा प्राप्त करता रहा है। स्व० कविवर मैथिलीशरण गुप्तने 'साकेत'की प्रस्तावनामें ठीक ही कहा है—

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय, सहज सम्भाव्य है॥

सभी प्रकारके, सभी प्रवृत्तियोंवाले मनुष्योंको यह विग्रह प्रभावित करता है। तमोगुणी प्रकृतिके लोगोंको उनकी शक्ति, रजोगुणीको उनका सौन्दर्य और सत्त्वगुणीको उनका शील विशेषरूपसे आकृष्ट करता है; पर ये तीनों विभूतियाँ परस्पर गुँथी हुई हैं। इसलिये इनमेंसे किसी एक भी विभूतिका साक्षात्कार अन्य दो विभूतियोंमें भी अनायास ही प्रविष्ट करा देता है। इस शील-शक्ति-सौन्दर्यके मूर्त विग्रहमें अखिल विश्वके कल्याणका संदेश है। करुणा श्रीरामका शील है, सत्य उनकी शक्ति है और प्रकाश उनका सौन्दर्य।

श्रीरघुवीरसे विनय

यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
और आस-बिस्वास-भरोसो, हरो जीव-जड़ताई॥
चहौं न सुगति,सुमति, संपति कछु, रिधि-सिधि, बिपुल बड़ाई।
हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई॥
कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआईं।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो, कमठ अंड की नाईं॥
या जग में जहँ लगि या तनु की प्रीति-प्रतीति, सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाईं॥

(विनय-पत्रिका १०३)

भगवान् श्रीरामके अवतारका प्रयोजन

(१)

(लेखक—श्रीअनन्तनारायणजी मणि)

परमेश्वरने विपुल विभिन्नताओं तथा नाना रूपोंवाले इस व्यापक विश्वको रचकर इसके ताल-स्वरको सुरक्षित रखने एवं समस्त प्राणियोंका मङ्गल करनेके लिये मानवताको कुछ शाश्वत और विश्वव्यापी नियमोंका वरदान दे रखा है। 'श्रुति' नामसे विदित इन नियमोंको, दैवी स्फुरणाओंको, जो वास्तवमें भगवदुच्छ्वास ही हैं, प्राचीनकालके ऋषियोंने अपने दिव्य श्रोत्रोंसे सुना। परवर्ती पीढ़ियोंके कल्याणार्थ गुरु-शिष्य-परम्पराद्वारा वेदोंका प्रचार चलता रहा। सनातनधर्मके मूल हैं—वेद—'वेदोऽखिलं धर्ममूलम्' (मनु० २। ६) और सम्पूर्ण दृश्य जगत् आश्रित है एकमात्र धर्मपर—'धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा'। (अपरनारायणोप० ८) इस प्रकार धर्म-अर्थ-मोक्ष-कामरूप चतुर्विध पुरुषार्थकी प्राप्तिके साधन हैं—वेद। जब अर्थ और कामका आधार था धर्म, मानव-जाति वैदिक आज्ञाओंके रूपमें दैवी विधानको मानकर भगवत्ताकी ओर ले जानेवाले विकासशील पथपर अग्रसर होती जाती थी। किंतु संसारके आध्यात्मिक इतिहासपर दृष्टिपात करनेसे ज्ञात होता है कि पूर्णताकी ओरकी यह यात्रा सर्वदा समानरूपसे ऊँचे ही नहीं चढ़ती गयी है, अपितु उसमें बीच-बीचमें उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। इसका दोष विधानों अथवा विधान रचनेवालोंपर मढ़ा जाता है, किंतु अपराध दोनोंमेंसे किसीका नहीं है। सृष्टिके शीर्षस्थानीय मानव-प्राणियोंको 'बुद्धि' और 'पुरुषार्थ'नामक दो अनुपम शक्तियाँ प्राप्त हैं, जिनसे पशु-जगत् वञ्चित है। धीमान् जन इन शक्तियोंका उपयोग धर्मानुकूल आचरण करने तथा जीवन बितानेमें करके स्वनिर्मित बन्धनोंको काटते हुए मोक्षकी ओर अग्रसर होते जाते हैं। परंतु जहाँ पुरुषार्थ है, वहाँ कर्म स्वातन्त्र्य भी है। अतएव मनुष्य बहुधा संसारके मायावी प्रलोभनोंद्वारा मोहित होकर, विधानोंकी अवहेलना करके, अधार्मिक जीवन व्यतीत करता है, जिसके फलस्वरूप दुःख और शोकको प्राप्त होकर नष्ट हो जाता है और इस प्रकार विकासके पथपर उसकी उन्नति रुक जाती है। जब इतिहास-के किसी कालमें इस प्रकारके धर्मविरोधी आचरणोंकी बाढ़ तथा आसुरी शक्तियोंके हाथमें विजयध्वज आ जानेसे उस कालकी जनता एकदम असहाय हो उठती है, तब नियमोंका विधाता मानवोंके बीच प्रकट होकर धर्मको पुनः अपने आसनपर प्रतिष्ठित करता है।

इस प्रकार सर्वशक्तिमान्, असीम और परमधर्म-विधायक तथा उपनिषदोंमें निर्दिष्ट सत्यपुरुष भूले हुए प्राणियोंपर सकरुण होकर, उन्हें सान्त्वना देनेके लिये साकार-रूप अङ्गीकार करके, सीमामें बँधकर अवतरित होते हैं। उस रूपमें अपने चरित्रके द्वारा वे बोलते हैं, क्रियाशील होते हैं, मङ्गलकी वर्षा करते हैं, प्रेरणा देते हैं, रास्ता दिखाते हैं और मानवताके लिये आलोक-पुञ्ज बनते हैं। यद्यपि अवतारका उद्देश्य होता है—(१) सज्जनोंकी रक्षा, (२) दुर्जनोंका संहार और (३) धर्मकी पुनःप्रतिष्ठा, तथापि प्रमुख उद्देश्य धर्मसंस्थापन ही है। देखनेमें तो भगवान् किसी तात्कालिक समस्याको निमित्त बनाकर अवतार लेते हैं, किंतु उनके अवतरणका मुख्य उद्देश्य होता है—शाश्वत समाधानोंको छोड़ जाना। भगवान्का अवतरण होता है—मानवके आरोहणके लिये।

समयकी आवश्यकता तथा परिस्थितिकी विकटताके अनुरूप नाना अवतार हुए हैं। उनमेंसे मुख्य हैं—मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण आदि श्रीहरिके दशावतार।

विभिन्न अवतारोंमेंसे श्रीरामावतारके मुख्य प्रयोजन, विलक्षण असाधारणता तथा गौरवपर विचार करनेका यहाँ एक लघु प्रयास किया गया है, जब कि इनके पूर्ववर्ती अवतारोंका उद्देश्य दुष्टनिग्रह एवं शिष्टपरिपालनतक ही सीमित था, रामावतारका मुख्य उद्देश्य था—'धर्मसंस्थापन'। इसकी विशेषता इसी बातमें है कि भगवान्ने इसमें एक मनुष्यका—आदर्श मानवका रूप धारण किया। रामावतारकी महिमा है यह दिखलानेमें कि प्रत्येक दशा तथा परिस्थितिमें भी मन, वचन और कर्मसे धर्मानुकूल जीवन व्यतीत किया जा सकता है। इस अवतारमें दशरथपुत्र बनकर श्रीरामने यही कर दिखाया—

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना॥

'जब वेदवेद्य परम पुरुषने दशरथसुतके रूपमें जन्म लिया, तब वेद भी वाल्मीकिके मुखसे रामायणरूपमें प्रकट हुए।'

क्रियाशील वेद ही रामायण हैं। इस प्रकार सर्वेश्वर भगवान् दशरथपुत्र श्रीरामके रूपमें जीवनके रङ्गमञ्चपर पधारे और अपने अनन्त कल्याणगुणोंके द्वारा वैदिक जीवनका आचरण किया एवं अपने पिताके माध्यमसे ऐसे शाश्वत आदर्श चरित्रको प्रस्तुत किया, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ीके लिये अनुकरणीय है। महाराज दशरथको पिताके रूपमें स्वीकार करना ही रामावतारके प्रधान उद्देश्य धर्मसंस्थापनको पुष्ट करना है, जैसा कि भगवद्गीतामें कहा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥
(३। २१)

'श्रेष्ठ व्यक्ति जैसा आचरण करता है, दूसरे लोग उसका अनुकरण करते हैं। लोग उसीके द्वारा स्थापित आदर्शोंपर चलते हैं।'

अयोध्याके राजपुत्रके रूपमें अवतरित होकर उन मूर्तिमान् धर्मने अपने पिताके माध्यमसे यह प्रदर्शित किया कि अमृतत्वका निवास उस त्यागमें ही है, जिसकी प्रशंसा उपनिषदोंने चिल्ला-चिल्लाकर की है—

न कर्मणा न प्रजया धनेन
त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः॥
(महानारायणोप० ८। १४)

'न तो कर्मसे, न संततिसे और न धनसे, अपितु एकमात्र त्यागसे ही अमृतत्व-लाभ सम्भव है।'

यशस्वी महाराज दशरथ सोचते थे कि यद्यपि उनके पास सब कुछ था, परंतु उनके दुःखका हेतु था, संतानाभाव। श्रीरामने अपने तीन अनुजोंके साथ उनका पुत्र बनकर न केवल दशरथकी इस धारणाको ही दूर किया, वरं अपने पिता तथा शेष समस्त मानव-जातिके सामने अपने जीवनसे यह स्पष्ट कर दिया कि वास्तविक सुख केवल त्यागमें है। अपने पितृवाक्य-परिपालनसे उन्होंने अपने सत्यकामत्व तथा दृढ़व्रतत्व-जैसे अतुलनीय गुणोंको सबके सामने रखा। स्वयं महाराज दशरथसे लेकर कौसल्या, लक्ष्मण, अयोध्याकी जनता, वसिष्ठ आदितक तथा सबके अन्तमें भरतने भी श्रीरामसे अयोध्यामें रहनेके लिये आग्रह किया; किंतु सभी असफल रहे। श्रीमद्रामायणके चौबीस सहस्र श्लोकोंका पारायण करनेवाला साधारण मनुष्य भी, आदर्श वीर, कर्तव्यपरायण पुत्र, आदर्श भ्राता, पति एवं अग्रजके रूपोंमें नरलीला करनेवाले रामके नानाचरित्रगत अगणित दिव्य गुणोंसे अभिभूत हो उठता है। इस प्रकार श्रीरामके निम्नलिखित दिव्य, किंतु मानवीय गुण, जिनको अपनाकर व्यक्ति लाभान्वित हो सकता है, रामावतारके विभिन्न पार्श्वोंसे प्रतिबिम्बित होते हैं। इन रूपोंमें मुख्य ये हैं—गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्य एवं दृढ़व्रत, चरित्रवान्, सर्वहितकारी, विद्वान्, समर्थ, प्रियदर्शन, आत्मवान्, जितक्रोध, द्युतिमान्, अनसूयक, रणाजिर-जातरोष, नियतात्मा, महावीर्य, धृतिमान्, वशी, बुद्धिमान्, नीतिमान्, वाग्मी, श्रीमान्, शत्रु-निवर्हण, यशस्वी, ज्ञानसम्पन्न, शुचि, श्रीमान्, धाता, धर्म-परीक्षक, वेद-वेदान्त-तत्त्वज्ञ, सर्वशास्त्रार्थ-तत्त्वज्ञ, स्मृतिमान्, प्रतिभानवान्, सर्वलोकप्रिय, साधु, अदीनात्मा, विचक्षण, आर्य, सर्वसम, सदैवप्रियदर्शन, समुद्रगम्भीर, हिमवानिव स्थिर, सोमवत् प्रियदर्शन, कालाग्निसदृश क्रोधी, पृथ्वी-सम क्षमाशील, शरणागतवत्सल, त्यागमें कुबेरके सदृश और सत्यपालनमें दूसरे धर्मराजके समान। उपर्युक्त गुणोंकी एक शाश्वत महत्ता है, जिसका आजके उलझनों और तनावोंसे भरे पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रिय, अन्ताराष्ट्रिय जीवनमें सार्थक उपयोग है। रामायणके सतत तथा आलोचनात्मक अध्ययनसे न केवल हमारी दैनिक समस्याओंका, अपितु आधुनिक कालकी व्यवस्था, राज्यशासन, राजनीति और मानव-सम्बन्धोंसे सम्बन्धित समस्याओंका सफल एवं स्थायी समाधान प्राप्त होगा। इसका कारण यह है कि रामायण शासक तथा शासित, पति एवं पत्नी, माता-पिता और संतति तथा भ्राताओं, मित्रगणों और सेवकोंके लिये एक कर्तव्य-दर्पण है। इस प्रकार रामायणकी सार्वभौम प्रियता और उससे आज भी प्राप्त सुख-सान्त्वना ही उसका मुख्य उद्देश्य है। ऋषि वाल्मीकिजीकी स्तुतिके अन्तर्गत—

यः पिबन् सततं रामचरितामृतसागरम्।
अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम्॥

—ध्यान-श्लोकमें जब स्वयं कविकी रामामृत-तृषाको सदा अतृप्त बताया गया है, तब हम-जैसे नवागत तो इस अवतारकी महानतामें जितनी ही डुबकी लगाते हैं, उतनी ही अधिक अतृप्तिका अनुभव अतप [illegible] छोटे-

से लेखनी सीमित परिधिमें इस महान् अवतारके गौरवके साथ कोई न्याय नहीं किया जा सकता। अतः इच्छा न होते हुए भी कुछ और अधिक कहनेके प्रलोभनका हम संवरण करते हैं। परतु अपूर्णताकी इस भावनाका अधिकांशमें समाधान इस बातसे हो जाता है कि 'कल्याण'के इस ऐतिहासिक अङ्कमें श्रेष्ठ, सुविज्ञ एवं दत्तचित्त विद्वानों-द्वारा इस अद्वितीय अवतारपर भेजे हुए अनेक लेखोंसे लाभ उठानेका अवसर हमें प्राप्त होगा। इस अङ्कको छापकर 'कल्याण'ने धर्मसंस्थापनकी अपनी परम्पराका यथार्थ-रूपसे निर्वाह किया है।

(२)

(लेखक—श्रीदेवदत्तजी मिश्र, का० व्या० सां० स्मृतितीर्थ)

भगवान् श्रीकृष्णने श्रीमद्भगवद्गीतामें अवतारका प्रयोजन स्वयं कहा है। यथा—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥
(४। ७-८)

अर्थात् जब-जब पृथ्वीपर धर्मका ह्रास और अधर्मका उत्थान होता है, तब-तब मैं अवतार ग्रहण करता हूँ। एवं जब पापियोंद्वारा सज्जन (धार्मिक) मनुष्य सताये जाते हैं, तब मैं पापियोंको मारकर सज्जन पुरुषोंकी रक्षा करनेके लिये प्रत्येक युगमें अवतार ग्रहण करता हूँ।

इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि अवतारका कारण धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि है तथा दुर्जनोंकी वृद्धिसे सज्जन मनुष्योंको कष्ट होना है।' भगवान्ने सूत्ररूपसे अपने अवतार-का यही कारण बतलाया है। वस्तुतः अवतारका इतना ही कारण पर्याप्त नहीं है; क्योंकि भगवान् तो 'कर्तुमकर्तुमन्यथा-कर्तुं समर्थ' हैं। वे तो इच्छामात्रसे इस कामको कर सकते थे। वे सर्वव्यापी हैं, सर्वसमर्थ हैं एवं परम दयालु हैं।

वे संसारके सभी प्राणियोंके कष्ट दूर करनेके विचारसे अवतार ग्रहण करते हैं। उनका अवतार परम पवित्र और पापियोंके पापको नष्ट करनेवाला होता है। नरसिंहपुराणमें सहस्रानीक राजाके पूछनेपर महर्षि मार्कण्डेयजीने कहा था—

अवतारानहं वक्ष्ये देवदेवस्य चक्रिणः।
तान्शृणुष्व महीपाल पवित्रान् पापनाशनान्॥
(अ० ३६, श्लोक १)

मार्कण्डेयजीने कहा—'हे राजन्! मैं चक्रपाणि भगवान् विष्णुके अवतारोंका वर्णन करता हूँ, आप ध्यान देकर सुनिये। ये अवतार अत्यन्त पवित्र हैं और श्रोताके पापोंको दूर करने-वाले हैं।'

मनुष्यके हृदयमें जो अनेक जन्मोंके सत्कर्म और दुष्कर्मोंकी वासना संचित रहती है, उसीके कारण संसारमें आवागमनका चक्र लगा रहता है। अवतारोंकी कथा सुननेसे संचित वासनाएँ दूर हो जाती हैं और तब मनुष्य भगवत्प्राप्ति अथवा मुक्तिका पात्र होता है।

भगवान्ने चौरासी लाख योनियोंका निर्माण किया है। उनमें सबसे श्रेष्ठ मनुष्य-योनिको कहा है; क्योंकि मनुष्योंको उन्होंने विवेक-शक्ति दी है एवं कर्म करनेमें स्वतन्त्रता दी है। अन्य योनियाँ तो केवल भोग-योनियाँ हैं; मनुष्ययोनिमें जीव किये हुए कर्मके फल भोगनेके लिये उन योनियोंमें जाता है। कठोपनिषद्के नचिकेता और यमके संवादमें लिखा है—

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेय-
स्ते उभे नानार्थे पुरुषꣳसिनीतः।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु
भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते॥
(कठोप०, अ० १, वल्ली २, मन्त्र १)

यमने नचिकेतासे कहा कि 'श्रेय (विद्या) और प्रेय (अविद्या)—ये दोनों विरुद्ध धर्मवाले हैं। इनमें श्रेय अर्थात् विद्या (ज्ञान)-को जो ग्रहण करता है, उसका कल्याण होता है और जो प्रेय—अविद्या अर्थात् अज्ञान—सांसारिक भोगोंको अच्छा समझकर ग्रहण करता है, अर्थात् विवेक न होनेसे आपातरमणीय विनाशी स्त्री-पुत्र-धन आदिको ग्रहण करता है, वह परम पुरुषार्थ (भगवत्प्राप्ति) से च्युत हो जाता है।' परंतु मनुष्य इन दोनोंमें एकको ग्रहण करनेके लिये स्वतन्त्र हैं। इसी वल्लीके द्वितीय मन्त्रमें लिखा है—

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत-
स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥
(कठोप०, अ० १, वल्ली २, मन्त्र २)

तात्पर्य यह है कि मनुष्यके सामने विद्या और अविद्या दोनों ही आती हैं और दोनों आपसमें दूध और पानीकी तरह मिली हुई हैं। इनमें हंसकी तरह विवेकी पुरुष दूधरूपी श्रेय (विद्या) को ग्रहण करता है और मन्दबुद्धि अपने शरीरादि-के क्षणिक सुखरूपी प्रेय (अविद्या) को ग्रहण करता है।

अतः अविवेकी पुरुषोंका उद्धार करनेके अभिप्रायसे भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं।

दूसरी बात है कि भगवान्‌ने अवतार ग्रहणकर अपने आचरणसे लोकशिक्षा दी है। भगवान् विष्णुने आवश्यकतानुसार अनेकों अवतार ग्रहण किये हैं, जिनमें रामावतार और कृष्णावतार प्रधान समझे जाते हैं। भगवान्‌ने महाराज दशरथको अपना पिता बनाया और स्वयं आचरण करके मनुष्योंको शिक्षा दी कि माता-पिताके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये। साथ ही अपने भाइयोंके साथ, मित्रोंके साथ, शत्रुओंके साथ, अपनी स्त्रीके साथ तथा पर-स्त्रीके साथ, अपने भक्तोंके साथ, भृत्योंके साथ, गुरुजनोंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये; इसकी भी शिक्षा स्वयं आचरण करके श्रीरामने सभी मनुष्योंको दी है।

सबसे बड़ी शिक्षा तो भगवान् श्रीरामने इन्द्रिय-संयमकी दी है। श्रीरामका सबसे प्रिय वह मनुष्य है, जिसने अपने मनको वशमें करके इन्द्रियोंको संयत रखा है। यही कारण है कि हनुमान्‌जी भगवान्‌के अत्यन्त प्रिय हैं। लोककण्टक दुष्ट रावणको मारकर जब भगवान् राम अयोध्या लौटे, तब उन्होंने युद्धके सहायकोंको पुरस्कार देकर पुनः अपने-अपने स्थानोंपर लौटा दिया; परंतु हनुमान्‌जीको विदा नहीं किया, सदाके लिये अपने सांनिध्यमें रखा।

भगवान् श्रीरामने माता-पिताकी आज्ञासे देवलोकके राज्यसे भी समृद्धिशाली राज्यको छोड़कर मनुष्योंको शिक्षा दी कि 'ऐहिक सुखकी सामग्रीमें आसक्ति नहीं रखनी चाहिये; क्योंकि ऐहिक सुख विनाशी है। धर्मका पालन करना अविनाशी है।' स्त्री और बालकपर अत्याचार करनेवाले आततायीका वध करनेमें दोष नहीं है—इसी बातकी शिक्षा रावण-वधसे उन्होंने दी है। मित्रके साथ निष्कपट व्यवहार करना चाहिये, इस बातकी शिक्षा सुग्रीव और विभीषणको राज्य और स्त्री देकर दी है। इसीलिये कहा है—**'रामो द्विर्नाभिभाषते।'** अर्थात् रामने कभी दो तरहकी बात नहीं की है। जब उन्होंने सुग्रीवके साथ अग्निके समक्ष मित्रता की और प्रतिज्ञा की कि 'मैं वालीको मारकर तुम्हारी स्त्री और राज्यको वापस दिला दूँगा', तब अपना काम होनेके पहले मित्रका काम कर दिया।

अपने वचनके अनुसार सीताकी खोज करानेके पहले उन्होंने अपने मित्रको दिये वचनकी रक्षा की। इसी तरह जब विभीषण रावणसे अपमानित होकर श्रीरामके पास आया, तब रामने लङ्काका राज्य पहले ही दे दिया, रावणवधके पश्चात् तो देना नाममात्रके लिये था।

भगवान्‌के रामावतार लेनेका प्रयोजन आततायी दुष्ट रावणका वध करना तो था ही, सत्यनिष्ठ एवं धार्मिक महाराज दशरथका महत्त्व बढ़ाना भी था। वाल्मीकि-रामायणमें देवताओं और ऋषियोंने भगवान् विष्णुसे प्रार्थना करके कहा था कि 'आप परम धार्मिक सत्यसंध महाराज दशरथके पुत्ररूपमें उत्पन्न होकर उस दुष्टका नाश कीजिये।'

राज्ञो दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो ॥
धर्मज्ञस्य वदान्यस्य महर्षिसमतेजसः।
अस्य भार्यासु तिसृषु ह्रीश्रीकीर्त्युपमासु च ॥
विष्णोः पुत्रत्वमागच्छ कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम्।
तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककण्टकम् ॥
अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम्।
(वा० रा० १। १५। १९—२२)

'अयोध्याके राजा महर्षियोंके समान तेजस्वी, महादानी और अपने धर्मको जानने तथा पालन करनेवाले हैं। उनकी तीन स्त्रियाँ हैं, जो ह्री (लज्जा), श्री (लक्ष्मी) और कीर्तिस्वरूपा हैं। हे विष्णो! आप अपनेको चार रूपोंमें विभक्त करके उन्हीं स्त्रियोंके गर्भसे मनुष्यरूपमें उत्पन्न होकर उस लोककण्टक दुष्ट रावणको मारिये; क्योंकि ब्रह्माजीके वरदानके कारण वह देवताओं और अन्य जीवोंसे अवध्य है।'

भगवान् विष्णुने देवताओंके इस वचनको सुनकर कहा—

भयं त्यजत भद्रं वो हितार्थं युधि रावणम्।
सपुत्रपौत्रं सामात्यं समन्त्रिज्ञातिबान्धवम् ॥
हत्वा क्रूरं दुराधर्षं देवर्षीणां भयावहम्।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥
वत्स्यामि मानुषे लोके पालयन् पृथिवीमिमाम्।
(वा० रा० १। १५। २८—३०)

'देवगण! आपका कल्याण हो, आपलोग भयको छोड़ दीजिये। मैं आपलोगोंके हितके लिये उस दुष्ट रावणको पुत्र-पौत्र, अमात्य-मन्त्री और बन्धु-बान्धवोंके साथ मार डालूँगा। आपलोगोंको भय देनेवाले कठोर और अत्यन्त पराक्रमी रावणको मारकर दस हजार और दस सौ अर्थात् ग्यारह हजार वर्षतक इस पृथ्वीकी रक्षा करते हुए मनुष्यलोकमें रहूँगा।'—यों कहकर भगवान् विष्णु ब्रह्मा आदि देवताओं और महर्षियोंसे पूजित होकर अन्तर्हित हो गये।

इसके पश्चात् भगवान् विष्णुने स्वयं विचारकर संसारमें सबसे श्रेष्ठ और धार्मिक महाराज दशरथको अपना पिता बनाया। परब्रह्म परमात्मा समस्त संसारके माता-पिता हैं। उन त्रैलोक्याधिपति भगवान्‌ने ही जिसको अपने पिता होनेका

महत्त्व दिया, उसके महत्त्वका वर्णन दूसरा कोई क्या कर सकता है । इसी बातको महाकवि भट्टिने अपने भट्टिकाव्यके (रावण-वध) के मङ्गलाचरणमें लिखा है—

अभून्नृपो विबुधसखः परंतपः
श्रुतान्वितो दशरथ इत्युदाहृतः।
गुणैर्वरं भुवनहितच्छलेन यं
सनातनः पितरमुपागमत् स्वयम्॥
(१ । १)

अर्थात् देवताओंके मित्र, शत्रुओंको उखाड़ फेंकनेवाले दशरथ नामसे प्रसिद्ध एक राजा इस धरातलपर हुए थे। वे सब गुणोंसे अलंकृत थे। उनके गुणोंको कहाँतक कहा जाय, जिनको इस संसारका हित करनेके बहानेसे सनातन परब्रह्म रामने स्वयं अपना पिता बनाया ।'

जो स्वयं सृष्टि करते हैं, जिनकी आज्ञासे सूर्यादि देवगण भी चलते हैं, वे स्वयं महाराज दशरथके पुत्र बन गये और उनकी आज्ञा पालन करनेके लिये जंगलोंमें चौदह वर्षतक भटकते रहे ।

मनु शतरूपाके रूपमें जो इन दोनोंने पुत्रके रूपमें प्रभुको देखना चाहा था, उसी तपके फलस्वरूप भगवान्ने उनको अपना पिता बनाया ।

महाराज दशरथका भगवान्में इतना प्रेम था, जिससे भगवान् उनके पुत्र बने एवं भगवान्के क्षणिक वियोगको भी वे सहन न कर सके । जिन भगवान्को उन्होंने कठिन तपस्यासे पुत्ररूपमें प्राप्त किया था, उन्हींको चौदह वर्षोंके लिये वनवासकी आज्ञा देकर वे कैसे जीवित रह सकते थे।

पूर्णब्रह्म श्रीरामचन्द्रकी माया-मानुष-रूपमें अवतार-लीला

[लेखक—डॉ० श्रीनीरजाकान्तजी चौधुरी (देवशर्मा), एम्०ए०, पी-एच० डी०]

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषाऽऽरोपितभ्रूविजृम्भ-
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽवतान्नः॥
(श्रीमद्भा० ९ । १० । ४)

'भगवान् श्रीरामने अपने पिता राजा दशरथके सत्यकी रक्षाके लिये राजपाट छोड़ दिया और वे वन-वनमें फिरते रहे। उनके चरण-कमल इतने सुकुमार थे कि परम सुकुमारी श्रीजानकीजीके करकमलोंका स्पर्श भी उनसे सहन नहीं होता था। वे ही चरण जब वनमें चलते-चलते थक जाते, तब हनूमान् और लक्ष्मण—उन्हें दबा-दबाकर उनकी थकावट मिटाते। शूर्पणखाको नाक-कान काटकर विरूप कर देनेके कारण उन्हें अपनी प्रियतमा श्रीजानकीजीका वियोग भी सहना पड़ा। इस वियोगके कारण क्रोधवश उनकी भौंहें तन गयीं, जिन्हें देखकर समुद्रतक भयभीत हो गया। इसके बाद उन्होंने समुद्रपर पुल बाँधा और लङ्कामें जाकर दुष्ट राक्षसोंके जंगलको दावाग्निके समान दग्ध कर दिया। वे कोसलनरेश हमारी रक्षा करें।'

शरणागतका सम्बल अवतार है

पर और अपर ब्रह्म, अवतार और जीव, एक ही तत्त्व हैं। परब्रह्म अज और अनादि होकर भी मायाके प्रभावसे, लीला-रसका आस्वादन करनेके लिये तथा धर्मकी ग्लानि और अधर्मका अभ्युत्थान होनेपर साधुजनके परित्राण और दुष्कृतकारीका उद्धार करनेके लिये युग-युगमें अवतरित होते हैं। ये अवतार असंख्य हैं; कभी प्रकट होते हैं, कभी गुप्त। मूढ़जन मानुषीतनुमें उनको न पहचानकर उनकी अवज्ञा करते हैं—

'अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।'
(गीता ९ । ११)

सेमिटिक दर्शनका मूल आधार

यह अवतारवाद खीष्टमतानुयायी पाश्चात्त्य गवेषकोंके लिये स्वाभाविकरूपमें दुर्बोध्य है। इसके कारण ये हैं—

(१) पहली बात यह है कि सेमिटिक मतसे केवल पुरुष (मनुष्य) के सिवा किसी प्राणीकी, वृक्ष-लता आदिकी तो बात ही क्या, यहाँतक कि नारीकी भी आत्मा नहीं होती।

(२) दूसरी बात यह है कि मनुष्य-जन्म केवल एक ही बार होता है और इस जीवनके कर्मोंके फलस्वरूप ईसाई और मुसल्मान मतके अनुसार अक्षय स्वर्ग मिलता है या अनन्त नरककी प्राप्ति होती है। सुदूर भविष्यमें किसी एक दिन देवदूत जिब्रायल तुरही बजायेंगे, तब आदियुगसे जितने मनुष्य (क्या स्त्रियाँ भी ?) कब्रसे पूर्ववत् रूप धारण करके ईश्वरके सिंहासनके सामने विचारार्थ उपस्थित होंगे। पुण्यवान् जन

(ईसाई मतसे जो ईसाई नहीं हैं तथा मुस्लिम मतसे जो लोग मुसल्मान नहीं हैं, वे इस दलमें न होंगे) दाहिनी ओर पापी लोग और बायीं ओर (सारे हिंदू निस्संदेह इस दलमें पड़ेंगे; परंतु उनका देह तो रहेगा नहीं, फिर उनका क्या होगा ?) खड़े होंगे। पुण्यवान् लोग स्वर्गमें जायँगे—चिरकालके लिये और पापियोंके अदृष्टमें अनन्तकालतक नरक (Hell) या दोजखकी आगमें झुलसना आदि कष्ट अवश्यम्भावी है। इसीलिये देहको सावधानीपूर्वक कफनसे लपेटकर कब्रमें गाड़नेकी प्रथा है। देखा जाता है कि पापी और पुण्यवान, सबको एक निर्दिष्ट समयतक कब्रमें देहके भीतर या पास रहना होगा; निस्संदेह यह महाकष्टप्रद है। वर्तमान समयमें स्वर्ग-नरक दोनों खाली हैं। जान पड़ता है दरवाजे बंद हैं।

(३) सेमिटिक दर्शनके अनुसार यहूदी, ईसाई या मुस्लिम—किसी भी मतसे स्वर्गमें देवी नहीं हैं। जुहोवा, गॉड या अल्लाह अकेले स्वर्गमें एकेश्वर हैं। रोमन कैथलिक लोग मेरीकी भक्ति करते हैं, मन्दिरमें उपासना करते हैं, किंतु वह यीशुकी कुमारी माता मात्र हैं; महामाया या जगत्का कारण मूलप्रकृति नहीं है।*

(४) चौथी बात यह है कि सेमिटिक दर्शनमें निर्गुण ब्रह्म या मोक्षकी कल्पना ही नहीं है। साधारण जीव शिव तो है ही नहीं, उसकी आत्मा भी नहीं है। सेमिटिक स्वर्गमें एकमात्र देवता हैं—जेहोवा, गॉड या अल्लाह (खुदा), जो पितृपद-वाच्य (our father in heaven) है। वे देवदूतोंकी सहायतासे पृथ्वीके ऊपर शासन-संचालन करते हैं। ईसाइयोंके मतसे खीष्ट उनके पुत्र हैं (only begotten son)। ईश्वर, पुत्र और पवित्र आत्मा (God, the son and the Holy Ghost)—ये त्रिक (Trinity) दैवशक्तियाँ हैं।

(५) सेमिटिक दर्शनमें मनुष्य और दूसरे जीवोंके पुनर्जन्मकी धारणा जैसे नहीं है, वैसे ही उनका ईश्वर कभी अवतार ग्रहण नहीं करता। ईसाई मतसे यीशु उनके पुत्रके रूपमें मानव-जातिका पाप ग्रहण करनेके लिये अवतीर्ण हुए थे। मुसल्मान हजरत मुहम्मदको एकमात्र पैगम्बरके रूपमें मानते हैं। उनके मतसे उन्होंने पृथ्वीपर आकर प्रकृत धर्मकी प्रतिष्ठा की थी।

(६) ईसाई मतसे जगत्की सृष्टि ई० पूर्व ४००४ सालमें, अर्थात् आजसे केवल छः हजार वर्ष पूर्व हुई थी। वैज्ञानिक उन्नतिके फलस्वरूप जो कोटि-कोटि वर्षके प्राचीन प्रस्तर आदि आविष्कृत हुए हैं, इससे विद्वानोंकी सेमिटिक सृष्टिसिद्धान्तके ऊपर अश्रद्धा उत्पन्न हुई है। एक जन्मके कर्म-फलस्वरूप अनन्त नरक या स्वर्ग-भोगकी कल्पना किसी बुद्धिमान् मनुष्यके मनमें नहीं बैठती। इसी कारण आजकल पाश्चात्त्य देशोंमें बुद्धिवादी लोग (Rationalists) ईसाई मतके प्रति और ईश्वरके अस्तित्वमें संदेहयुक्त होकर बहुत संख्यामें निरीश्वरवादी होते जा रहे हैं। बहुतेरे पर्यटकोंके साथ लेखककी बातचीतमें यह बात स्पष्ट ज्ञात हुई है।

भेदनीति और क्रम-विकासवाद

इसी कारण मैं कह रहा था कि पाश्चात्त्य-देशवासियोंके सामने हिंदू-दर्शन, असंख्य देव-देवियाँ, पुनर्जन्म, अवतार-वाद—ये सभी दुर्बोध्य व्यापार हैं; ईश्वर एक है, वह अनेक कैसे हो सकता है ?

इसके सिवा ईसाइयोंके, विशेषतः धर्मप्रचारकों (Missionaries) के सामने वैदिक धर्म, देव-देवियोंकी पूजा, यज्ञ, आचार-विचार, ब्राह्मणोंका सत्कार—ये सभी विशेषरूपसे आँखके काँटे हैं।

ये पद पदपर भेद और वितण्डावादकी सृष्टि करके शास्त्र और धर्ममें हिंदू-जातिके विश्वासको शिथिल करनेकी चेष्टा करते आ रहे हैं और इसमें बहुत कुछ सफल भी हुए हैं।

इसके ऊपर क्रमविकासवादी वैज्ञानिक हैं। ये लोग उनकी भी सहायता करनेसे नहीं चूकते। प्रत्येक पदमें पाश्चात्त्य गवेषक लोग इस क्रमविकासवादकी दुहाई देते हैं। स्थानाभावके कारण इस विषयकी सामान्य आलोचना करना ही बस होगा।

कुछ प्रचलित पाश्चात्त्य सिद्धान्त

(१) 'मनुष्य और वानर, किसी सुदूर अतीत कालके एक ही पूर्वपुरुष प्राणीके वंशज हैं', गत शताब्दीमें डार्विन साहबने इस मतका प्रचार किया है। पाश्चात्त्य देशोंमें उनका यह सिद्धान्त विध्वस्त हो गया है, किंतु उसका प्रवाह चल रहा है। आजकलके वैज्ञानिक लोगोंके विचारसे अमीवा (amoeba) या अणुकीटसे प्राणी-जगत्की आदिसृष्टि है तथा उससे क्रमशः मत्स्य, सरीसृप, द्विपद और चतुष्पद स्तन्यपायी जीवोंका विकास हुआ है।

* "Note the absence of mother goddesses in such strongly patriarchal societies as Judea, Islam and Protestant Christendom."—Durant: 'Life of Greece. (p. 178 f. n.)

(२) इस प्रकार मनुष्य पहले नंगा, असभ्य, गुहावासी और कच्चा मांस खानेवाला था। क्रमशः उसने सभ्य होना सीखा। आधुनिक कालके इतिहासमें यही शिक्षा दी जाती है।

(३) वर्तमान हिंदुओंके पूर्वपुरुष आर्यजातिसे निकले हैं तथा ग्रीक, रोमन, स्लाव, नर्डिक, पारसीक आदि जातिके पूर्वजोंके साथ एक साथ रहना-सहना, एक भाषा और एक धर्म था—इस प्रकारके उपन्यासकी रचना गत शताब्दीके मध्यमें हुई है। यह अब विश्वके इतिहासकी एक प्रधान आधार-शिला समझी जाती है और इस देशमें भी आर्य-द्रविड़, ब्राह्मण-शूद्र आदि नाना प्रकारकी कल्पना करके भयानक स्थिति उपस्थित की गयी है।

(४) वेदमन्त्र अनादि नहीं हैं। केवल तीन हजार या उससे कुछ वर्ष पूर्वके आर्य-कवियोंके काव्यमात्र हैं। ऋग्वेद आदि-ग्रन्थ है, दूसरे तीन वेद अर्वाचीन हैं। अथर्ववेद निम्नश्रेणीकी कार्मण विद्या (Black magic) है। ब्राह्मण-ग्रन्थ वेद नहीं है।

(५) उपनिषद् एक पृथक् रचना, क्षत्रियप्रणीत है। ब्राह्मण लोग यज्ञसम्बन्धी कर्मकाण्डके आडम्बरमें व्यस्त रहते थे। वे बहुदेवपूजक होनेके कारण निर्गुण एकेश्वर-वादकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे। एक निर्गुण निराकार ब्रह्मकी धारणा पहले नहीं थी, क्रमशः बादमें हुई है।

(६) रामायण-महाभारत मूलतः महर्षि वाल्मीकि और कृष्णद्वैपायनद्वारा प्रणीत शास्त्र-ग्रन्थ नहीं हैं। चारण-भाट आदि स्तुति-पाठ करनेवाले कवियोंके द्वारा रचित जो गाथाएँ एक दूसरेके मुखसे सुनकर याद कर ली गयी थीं, उन्हें क्रमशः एकत्र करके ये दो ग्रन्थ विशद आकारमें तैयार कर लिये गये।

इसी प्रकार अष्टादश पुराण भी व्यासरचित नहीं हैं। ये ग्रन्थ आधुनिक कालमें गुप्तयुगके बाद व्यासके नामसे लिखे गये हैं और सोलहवीं शताब्दीतक इनका क्रमविकास और परिवर्धन हुआ है।

(७) हिंदुओंने बौद्धोंसे* संन्यास और दर्शनकी शिक्षा ली है। मूर्त्तिपूजा, मूर्तिकला और स्थापत्य-कलाकी भी यही बात है।

(८) जन्मद्वारा जातिभेद पहले नहीं था। क्रमशः श्रमविभाग (Division of Labour) के आधारपर वर्ग और जाति-भेदकी सृष्टि हुई है। ब्राह्मण-क्षत्रियमें बराबर झगड़ा-विवाद चलता रहता था। इस देशके प्राचीन अधिवासियोंको वेदमें 'दस्यु' नामसे अभिहित किया गया है। क्रमपूर्वक वे ही 'दास' बने हैं। वर्तमान शूद्रवर्ण उनके ही वंशज हैं।

(९) अवतारवाद मिथ्या है।※ हिंदुओंके अवतार प्राणिजगत्के क्रमविकासवादके प्रतीक हैं। क्रमपूर्वक विकासके अनुसार पहले मत्स्य, पश्चात् क्रमशः कूर्म, वराह (स्थलचर और जलचारी), नृसिंह (अर्द्धनर-पशु), वामन (असभ्य ह्रस्वकाय जाति, जैसी अफ्रिकामें है), परशुराम (निष्ठुर दुर्दान्त प्रकृतिके वन्य लोग), राम (कृषिका विस्तार करनेवाले), बलराम (हलधर, कृषिवेत्ता आदि)।

(१०) शिव, दुर्गा एवं काली वैदिक देव-देवियाँ नहीं हैं; ये असभ्य जातियोंसे आयी हैं।

(११) राम-कृष्ण आदि पहले खण्डजातियों (Tribes) के नेता थे। क्रमशः जातीय नायकके रूपमें परिगणित हुए। अन्त देवत्वमें उन्नीत हुए हैं।

वर्त्तमान प्रसङ्गमें मैं मुख्यतः रामके अवतारत्वके सम्बन्धमें आलोचना करके दिखलाऊँगा कि अवतारके विषयमें ये सब धारणाएँ और सिद्धान्त भ्रान्तिमूलक तथा दुर्बुद्धिसे प्रेरित कुविचारके प्रचार मात्र हैं।

श्रीरामके सम्बन्धमें पाश्चात्त्य मत

पाश्चात्त्य लेखकों और गवेषकोंने अपनी इच्छाके अनुसार श्रीरामचन्द्रके सम्बन्धमें लिख डाला है। यहाँ संक्षेपमें उसका कुछ निदर्शन किया जायगा।

(१) वेबर (Weber) के मतसे रामायण दाक्षिणात्य और सिंहलद्वीप (Ceylon) स्थित आर्य-सभ्यताके विस्तारकी कहानी है।

(२) लासेन (Lassen) कहते हैं कि 'इसमें आर्यों-की दक्षिण-विजयकी प्रथम चेष्टा रूपकके आकारमें वर्णित है।' (Allegorically the first attempt of the Aryans to conquer the south.)

(३) मैकडॉनेल (Macdonell) इन सिद्धान्तोंको नहीं मानते, किंतु वे जेकबी (Jacobi) के साथ सहमत

* विवेकानन्दतक प्रभावित होकर ऐसा ही लिखते हैं।

※ सनातनधर्मके स्तम्भस्वरूप दशनामी संन्यासी सम्प्रदायके एक विशिष्ट मठके आचार्य एवं सर्वजनमान्य साधुने भी इसी प्रकारका प्रचार किया है। विदेशी शिक्षाका ऐसा ही सर्वनाशी प्रभाव है।



राम-रावण-युद्ध

हैं कि रामायण अन्ततः रूपक न होनेपर भी वह वस्तुतः प्राचीन भारतीय उपाख्यानोंके ऊपर प्रतिष्ठित है।

सीता शुरूसे ही ऋग्वेदकी खेतकी हराईकी देवी (Furrow Goddess) थी। राम अवश्य ही इन्द्र अथवा पर्जन्यके देवता थे।

'राम-रावणका युद्ध इन्द्र-वृत्रके संग्रामकी कहानीका प्रतीक है। इन्द्रजित् या इन्द्रशत्रु ऋग्वेदमें वृत्रका नाम है, दोनों एक ही हैं।'

इन्द्रकी शुनी सरमा रामायणमें सीताको सान्त्वना देनेवाली राक्षसी-रूपा है। वायुदेवके पुत्र हनूमान् मरुद्गणके सहित इन्द्रके सौख्यकी बात स्मरण करा देते हैं।

मैकडॉनेलके विचारसे प्रोफेसर जेकबीकी यह कल्पना सम्भव जान पड़ती है कि हनूमान्के साथ कृषिकार्यका कुछ सम्पर्क था और वे वर्षाके एक उपदेवता थे।

"His conflict with Ravana would represent the Indra-Vritra myth of the legend. Indrajit is equivalent to Indra-satru, an epithet of Vṛitra in Riveda. Prof. Jacobi's surmise that he (Hanumat) must have been connected with agriculture and may have been a genius of the monsoon has some probability."—(History of Sanskrit Literature, P. 312-13)

मैकडॉनेलके मतसे रामायणमें शुरूमें केवल पाँच काण्ड (अयोध्याकाण्डसे लङ्काकाण्डतक) थे। स्तुतिकार बन्दी-भाट लोगोंने पीछे सब जोड़ा है।

"कारण यह है कि मूल काव्यका खण्डजातीय (tribal) नायक आगे जोड़े गये अंशोंमें जातीय नायकके रूपमें परिवर्तित हो गया है। वह समस्त जन-समाजके लिये नैतिक आदर्शका प्रतीक बन गया है और मूल पाँच काण्डोंका (कुछ प्रक्षिप्त वाक्योंके सिवा) मनुष्य-नायक (महाभारतके कृष्णके समान ही) बालकाण्ड और उत्तरकाण्डमें देवताके रूपमें परिणत होकर भगवान् विष्णुके साथ एकाकार हो गया है।" (३०४-५)

"For the tribal hero of the former (original poem) has in the latter (additions) been transformed into a national hero, the moral ideal of the people; and the human hero (like Krishna in the Mahabharata) of the five genuine books (excepting a few interpolations) has in the first and last been deified and identified with god Vishnu." (History of Sanskrit Literature, p. 304-5)

(४) प्रो० विंटर्नीज़ (१९२०) ने कुछ दिन कलकत्ता विश्वविद्यालय और शान्तिनिकेतनमें अध्यापन किया था। उनकी पुस्तक 'History of Indian Literature' अंग्रेजीमें अनूदित हुई है और इस देशके कालेजों और विश्वविद्यालयोंमें प्रामाणिक मानी जाती है। उन्होंने अपना मन्तव्य प्रकट किया है कि 'असल रामायणमें अर्थात् अयोध्याकाण्डसे लङ्काकाण्डतक रामकी भगवत्ता या विष्णुके अवतार होनेका कोई उल्लेख नहीं है।'

(५) कीथ (Keith) साहबने 'History of Sanskrit Literature' में लिखा है कि 'रामायण दो प्राचीन उपाख्यानोंका तालमेल है। उनमेंसे दूसरा है सीताहरणके लिये रावणके साथ रामका युद्ध। यह मूलतः एक प्राकृतिक आख्यान (Nature myth) है—इसमें अनेक अलौकिक और काल्पनिक घटनाओंका समावेश है।' (४३पृ०) यह मत मैकडॉनेलकी ही प्रतिध्वनि है।

श्रीरामकी भगवत्ता और अवतारत्वका उल्लेख

हम अब रामायण, महाभारत-हरिवंश, वेद तथा लौकिक प्राचीन साहित्यसे प्रमाण उद्धृत करके दिखलाते हैं कि श्रीरामकी भगवत्ता और अवतारत्व किसी क्रमविकासका फल नहीं है; क्योंकि अति प्राचीनकालसे ही सनातन शास्त्र आदिमें पूर्ण भगवान् श्रीरामकी महिमा सुप्रतिष्ठित है।

(१) वाल्मीकिरामायण—

बालकाण्ड और उत्तरकाण्डके सिवा अनेक स्थलोंमें श्रीरामका भगवत्स्वरूप व्यञ्जित हुआ है। केवल थोड़े-से उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(क) अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः॥
(अयोध्या० १ । ७)

(ख) दिव्यं च मानुषं चैवमात्मनश्च पराक्रमम्।
(अरण्य० ६६ । २०)

(ग) गरुडके साथ श्रीरामका कथोपकथन । (लङ्का० ५०)

(घ) विष्णुं मन्यामहे रामं मानुषं रूपमास्थितम् ।
(लङ्का० ३५ । ३५)

(ङ) आश्वस्तश्च विशल्यश्च लक्ष्मणः शत्रुसूदनः ।
विष्णोर्भागममीमांस्यमात्मानं प्रत्यनुस्मरन् ॥
(लङ्का० ५९ । १२२)

यहाँ लक्ष्मण स्मरण करते हैं 'कि वे भी विष्णुके अंशावतार हैं ।'

(च) मन्दोदरीका प्रलाप । (लङ्का० १११ । ११—१७)

(छ) सीताकी अग्नि-परीक्षाके बाद ब्रह्मा, शिव तथा अन्य प्रमुख देवता प्रकट होकर यह व्यक्त करते हैं कि 'राम स्वयं विष्णु हैं और सीता लक्ष्मी हैं'—

सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः ॥
वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ।
(लङ्का० ११७ । २७-२८)

आश्चर्यकी बात यह है कि मैकडॉनेल साहब इस घटनाको उत्तरकाण्डमें डाल देते हैं । * (History of Sanskrit Literature, p. 315-16.) १८९९ ई० से आजतक इस भूलका संशोधन नहीं हुआ । वे आज इहलोकमें नहीं हैं, तथापि यह भारात्मक भूल है और अमार्जनीय है ।

इधर वे कहते हैं कि रामके भगवत्ता-विषयक जो वाक्य इन तथाकथित मूल काण्डोंमें हैं, वे प्रक्षिप्त हैं; किंतु किस प्रकार, किसके द्वारा और क्यों—इत्यादिके विषयमें कोई प्रमाण नहीं देते । अतएव मैं उनके इस वक्तव्यको निरर्थक मानता हूँ ।

इसके सिवा विंटर्नाज् कहते हैं कि 'पाँच काण्डोंमें कहीं भी श्रीरामके अवतारत्वकी सूचना नहीं है । हम ऊपर देख चुके हैं कि उनकी यह बात मिथ्या है । अतएव इन दो प्रसिद्ध गवेषकोंके रामायणमें निष्णात होनेकी बात ठीक नहीं जँचती तथा उनके उल्टे सिद्धान्त ग्राह्य नहीं हो सकते ।

(२) महाभारत-हरिवंश

(क) ममापि सफलं चक्षुः स्मारितश्चास्मि राघवम् ॥
रामाभिधानं विष्णुं हि जगद्धृदयनन्दनम् ॥

* At the end of the Seventh Book, Brahmā and other gods come to Rāma to pay homage to him.

सीतावक्त्रारविन्दार्कं दशास्यध्वान्तभास्करम् ॥
मानुषं गात्रसंस्पर्शं गत्वा भीम त्वया सह ।
(हनुमद्वाक्य, वनपर्व १५१ । ६-८)

(ख) तदर्थमवतीर्णोऽसौ मन्नियोगाच्चतुर्भुजः ।
विष्णुः प्रहरतां श्रेष्ठः स तत् कर्म करिष्यति ॥
(ब्रह्मवाक्य, वन० २७६ । ५)

(ग) विष्णुना वसता चापि गृहे दशरथस्य वै ।
दशग्रीवो हतश्छन्नं संयुगे भीमकर्मणा ॥
(धौम्यवाक्य, वन० ३१५ । २०)

(घ) रामायणं महाकाव्यमुद्दिश्य नाटकं कृतम् ।
जन्म विष्णोरमेयस्य राक्षसेन्द्रवधेप्सया ॥
(हरि०, विष्णु० ९३ । ६)

राम विष्णुके अवतार हैं, यह महाभारत-हरिवंशके इतिहासमें भी स्वीकृत हुआ है । और भी बहुत-से अवतरण दिये जा सकते हैं, बाहुल्यके भयसे रुकना पड़ता है ।

(३) वेद

(क) संहिता—

भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं च जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥
(साम० उत्तर १४४८)

'राम सीताके साथ वनमें गये थे । लम्पट रावण रामके परोक्षमें सीताको हरण करने आया था । रावणके विध्वंस हो जानेपर सीताकी अग्नि-परीक्षाके समय द्युतिमान् अग्निदेव सीताको गोदमें लेकर रामके सामने आये थे ।'

श्रीमन्नीलकण्ठसूरि प्रसिद्ध भाष्यकार और वेदज्ञ महान् पण्डित थे । उन्होंने 'मन्त्ररामायण' ग्रन्थमें प्रायः १५० मन्त्रोंके साथ इस मन्त्रका उल्लेख किया है । उनके मतसे इन सब मन्त्रोंमें रामायणी कथा विद्यमान है ।

(ख) उपनिषद्—

रामतापनीय-रामरहस्य-मुक्तिक-कलिसंतरणादि उपनिषदोंमें रामके अवतारत्वकी कथा उपलब्ध होती है । मुक्तिकोपनिषद्में हनूमान्‌के प्रश्नके उत्तरमें सीता-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न आदिके साथ अयोध्या नगरीमें रत्नमण्डपमें समुपविष्ट रामने मुक्तिके तत्त्वका उपदेश किया है तथा उनको वेदान्तका आश्रय लेनेके लिये कहा है । चारों वेदोंके

११८० शाखाएँ हैं और प्रत्येक शाखाका एक उपनिषद् है। श्रीरामने १०८ मुख्य उपनिषदोंका नाम लिया है।

राम त्वं परमात्मासि सच्चिदानन्दविग्रहः। (१।४)
काश्यां तु ब्रह्मनालेऽस्मिन् मृतो मत्तारमाप्नुयात्॥ (१।१९)
वैदेहीं मामकीं मुक्तिं यान्ति नास्त्यत्र संशयः। (१।४७)

कलिसंतरणोपनिषद्में—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—कलिका यह प्रसिद्ध तारक-मन्त्र ब्राह्मणोंके जपके लिये निर्दिष्ट हुआ है। बाहुल्यके भयसे विशेष मन्त्रादि उद्धृत नहीं किये जाते।

(४) प्राचीन साहित्य

(क) कालिदास (प्रथम शताब्दी ई० पूर्व)

इस महाकविने अपने विभिन्न काव्योंमें, विशेषतः रघुवंशमें अनेक स्थानोंमें रामके अवतारत्वकी घोषणा की है।

(ख) कौटल्य—चाणक्य (ई० पू० चतुर्थ शताब्दी)

इनके अर्थशास्त्रमें **'मानाद्रावणः परदारानप्रयच्छन्'** (१।६।९)—में रावण-वधका उल्लेख है।

(ग) भास (ई० पूर्व पाँचवीं शताब्दी)

महाकवि भासका काल मौर्ययुगके पूर्व है; क्योंकि कौटल्यके अर्थशास्त्रमें उनके 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण' नाटकसे **'नवं शरावं'**—इत्यादि श्लोक उद्धृत हुए हैं तथा उनके (१) यज्ञफल, (२) प्रतिमा और (३) अभिषेक नाटकोंका विषयवस्तु 'रामायण' है।

इन सब तथा अन्यान्य नाटकोंमें भी कहीं-कहीं भासने अपनी ओजस्विनी भाषामें श्रीरामचन्द्रका भगवान् विष्णुके अवतारके रूपमें कथन किया है।

अभि० ४।१४, अभि० ६।२८में सीताके साथ रामके माया-मानुष-वेषमें अवतारका स्पष्ट उल्लेख है। अनेक स्थलोंमें वराह, वामन और नृसिंह अवतारोंकी बात भी है। रामको नारायण, वाराह, वामन तथा कृष्णके साथ अभिन्न कहा गया है (अभि० १।१; अभि० ३; बाल० १।१)

(५) शंकराचार्य (सातवीं शताब्दी)

विष्णुसहस्रनाम-भाष्यमें भगवत्पादने राम (३९४), क्षम (४४२), सुमुख (४५६), कपीन्द्र (५०१), जितामित्र (५२४), भूशय (६२८), शूरसेन (७०४), धनुर्धर (८५७), धनुर्वेद (८५८) तथा क्षमिणां वर (९१९)—विष्णुके इन नामोंकी रामके वाचक कहकर व्याख्या की है।

इसके सिवा सीता-रामके भगवत्ताविषयक उनकी बहुत-सी स्तुतियाँ हैं। उनके मतसे राम- कृष्ण-नारायण अभिन्न हैं।

हमने देख लिया कि क्या शास्त्रमें, क्या प्राचीन साहित्यमें, कहीं भी रामके अवतारत्वमें क्रम-विकासका कोई चिह्न परिलक्षित नहीं होता।

'जय-विजय-उद्धारलीला' महानाटकमें नारायणके अवतार-व्यूह

भगवान्‌की अवतारलीला श्रीमद्भागवतमें विस्तृतरूपमें वर्णित है। इसका तत्त्व दुरवगाह है। स्वयं लोकपितामह ब्रह्माने इस विषयमें देवर्षि नारदको कुछ उपदेश दिया है। (भागवत, स्कन्ध २) भक्ताधीन भगवान् भक्तके उद्धारके लिये युग-युगमें किस प्रकार बारंबार नाना रूपोंमें नाना लीलाएँ करते हैं, कभी-कभी कमलालया लक्ष्मी भी उनकी लीलाकी सहकारिणी बनती हैं—इसका विचार करनेपर स्तम्भित होना पड़ता है।

अनेक युग पूर्वकी कथा है। पाण्ड्य देशके राजा परमविष्णुभक्त इन्द्रद्युम्न अगस्त्यके शापसे महान् गजके रूपमें जन्म लेते हैं। एक ग्राहके द्वारा आक्रान्त होनेपर वे आर्त्त होकर उद्धारके लिये पूर्वजन्मस्मृत भगवत्स्तुति करते हैं, तब विष्णु तत्काल गरुडकी पीठपर वहाँ पहुँचकर ग्राहको मारकर गजराजकी रक्षा करते हैं और वे भगवान्‌के करस्पर्शसे अज्ञानसे मुक्त होकर पीतवसन और चतुर्भुजरूप धारणकर नारायणके एक पार्षद बन जाते हैं। (भागवत, स्कन्ध ८)

यह भी विष्णुका एक लीलावतार है (भागवत, स्कन्ध २)। यह दृश्य विश्व-महानाटककी प्रस्तावनारूपमें है। ये चतुर्भुज पार्षद जय हैं। वे विजयके साथ वैकुण्ठके द्वारपाल बनते हैं। एक बार पञ्चवर्षीय बालकके रूपमें स्थित सनकादि मुनिको उनके वैकुण्ठमें प्रवेश करते समय बाधा देनेके कारण वे अभिशप्त होकर वैकुण्ठसे च्युत हो गये। (भागवत, स्कन्ध ३) इसके बाद अपने प्रिय भक्त जय-विजयको ब्रह्मशापसे मुक्त करनेके लिये भगवान् बारंबार अवतार ग्रहण करते हैं।

(प्रथम अङ्क)

वराहलीलामें पृथिवी-उत्तोलन और हिरण्याक्ष (विजय)-वध; नृसिंहरूपमें हिरण्यकशिपु (जय)-का संहार, भक्त प्रह्लादकी रक्षा, वामनरूपमें हिरण्यकशिपुके प्रपौत्र (प्रह्लादके पौत्र) बलिके पास जाकर तथा भूमि-ग्रहणके छलसे त्रिपादविक्षेपद्वारा बलिको स्वर्गसे उतारकर उन्हें सुतल-लोकका राज्य तथा भावी इन्द्रका पद-दान करके स्वयं उनके द्वारपालके रूपमें अवस्थान करना ।

(द्वितीय अङ्क)

(२) भगवान्‌का राम और उनके तीन भाइयोंके रूपमें अयोध्यामें आविर्भाव । राक्षसराज रावण (जय)-ने सीता (लक्ष्मी)-को हरकर लङ्कापुरीमें रक्खा ('मातेव परिरक्षिता') । उसका और कुम्भकर्ण (विजय)-का सवंश वध करके भक्त विभीषणको राक्षसराज्य प्रदान किया । रामकी आदर्श प्रजापालन-लीला ।

(३) इसके आगे अन्तिम अङ्कमें जय शिशुपाल और विजय दन्तवक्त्र बनते हैं । श्रीभगवान् श्रीकृष्णरूपमें उनका उद्धार करनेके लिये अवतीर्ण होते हैं । संकर्षणरूप बलराम (लक्ष्मण) ज्येष्ठ भ्राताके रूपमें बाल्यकालसे ही उनके साथी होते हैं । लक्ष्मी और भूदेवी, रुक्मिणी और सत्यभामा तथा दूसरे अनेक रूपोंमें उनकी लीलासङ्गिनी बनती हैं ।

मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह और वामन अवतार ऊर्ध्व-लोकके विराट्‌रूप हैं । मनुष्य-पक्षमें इन सब लीलाओंकी धारणा करना भी असम्भव है । परशुराम, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, कृष्ण, बलराम—ये सभी माया-मानुष-वेषमें नरलोकमें लीला करते हैं । हम श्रीभगवान्‌को अपने ही बीच एक मनुष्यके रूपमें, अपने ही समान सुख-दुःख भोगते देखते हैं । राम पूर्णब्रह्म मर्यादापुरुषोत्तम हैं; परंतु जान पड़ता है, मानो वे आत्म-विस्मृत हैं । वे ही श्रीकृष्ण-वेषमें पूर्ण ज्ञानी सजते हैं । इसके बाद अन्यान्य अवतार-लीलाएँ होती हैं ।

श्रीरामचन्द्र वराह-नृसिंह-कृष्ण-बलराम आदि अवतारोंके साथ एक सूत्रमें ग्रथित हैं ।

हमने देख लिया कि नटवर श्रीमन्नारायण भक्ताधीन होकर उनके उद्धार तथा अन्य अनेक कार्योंके लिये विश्व-रङ्गमञ्चकी विशाल पट-भूमिकामें बारंबार दल-बलके साथ अवतीर्ण होकर लीला करते हैं । एक-एक लीलामें उनका एक पृथक् ही मोहनरूप होता है । वे उरुक्रम हैं, उनकी अनुपम शक्ति है । वे अनिर्वचनीय, अमेय और अनुपमेय हैं ।

"न तस्य उपमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः प्रति ।"

(—शुक्लयजुः-संहिता ३२ । ३)

तथापि वह भक्तके प्रति अहैतुकी कृपाके सागर हैं ।

यहाँ इस ऐतिह्यमें रामका अभिनय अकेला या असंलग्न नहीं है । उसकी भूमिका बहुत युगों पूर्व घटित गजेन्द्रमोक्षकी घटनाके साथ अङ्गाङ्गीभावसे ग्रथित है । वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम (रामे वैष्णवतेजः-संक्रमणम्) आदि अवतारोंके साथ इस एकका घनिष्ठ योग है । यह असम्बद्ध नहीं है । पुनः वे ही कृष्ण बनते हैं तथा लक्ष्मण, बलराम । अतएव राम और कृष्ण पहले खण्ड-जातीय कथानायक थे, क्रमशः जातीय कथानायक, मानव-नायकसे देवत्वको प्राप्त हुए—इस प्रकारकी पाश्चात्त्य ग्रीक-रोमन रीतिकी घटनाका आरोप जो लोग करते हैं, वे अपनी मूढ़ताका परिचय देते हैं, इसके सिवा और क्या कहा जा सकता है । क्रम-विकासवाद इस क्षेत्रमें पूर्णतः दुर्बल और अप्रासङ्गिक है ।

वेदका साक्ष्य

सनातनधर्मके ऐतिह्यके अनुसार वेद स्वतःप्रमाण और अवितर्क्य हैं । मत्स्य-कूर्म-वराह आदि अवतारोंका उल्लेख वेदमें सर्वत्र ओतप्रोत है । हम बाहुल्यके भयसे कुछ थोड़े प्रमाण देते हैं—

(१) मत्स्य—

"मनवे ह···तस्या वनेनिजानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे ।"

(शतपथ ब्रा० १ । ८ । १ । १)

(२) कूर्म—

(क) 'स यत्कूर्मो नाम०'—इत्यादि

(शतपथ० ब्रा० ७ । ५ । १ । ५)

(ख) 'अन्तरतः कूर्मभूतं सर्पन्तम्'

(तै० आरण्यक १ । २५ । ९२)

(३) वराह—

(क) 'आपो वै इदमग्रे···वराहो भूत्वाऽहरत्'—इत्यादि

(तै० सं० ७ । १ । ५ । १)

(ख) वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय।
(अथर्वसं० १२ । १ । ४८)

(ग) 'अथ वराहविहतम्'—इत्यादि
(शतपथ ब्रा० १४ । १ । २ । ११)

(घ) उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।
भूमिर्धेनुर्धरणी लोकधारिणी ॥
(तै० आ० १० । १)

(४) नृसिंह—

(क) 'प्रतद् विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः'—इत्यादि (ऋक्सं० १ । १५४ । २)

(ख) 'अथ कस्मादुच्यते नृसिंहमिति'—इत्यादि ।
(नृसिंहपूर्वतापनी उप० २ । ९)

(ग) वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि ।
तन्नो नरसिंहः प्रचोदयात् ॥
(तै० आ० १० परिशिष्ट १ । ६)

(५) वामन—

(क) 'इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्'।—इत्यादि
(ऋक्संहिता १ । २२ । १७)

(ख) 'त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।'—इत्यादि
(ऋक्संहिता० १ । २२ । १८–२१)

(ग) 'यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुः'—इत्यादि
(ऋक्सं० ६ । ४९ । १३)

ऋग्वेदमें और भी अनेक मन्त्रोंमें उल्लेख है ।

(घ) वामनो ह विष्णुरास । (शत० ब्रा० १ । २ । ५ । ५)

(ङ) त्रेधा विष्णुरुरुगायो विचक्रमे ।
(तै० ब्रा० ३ । १ । २ । ६)

(६) परशुराम—

ऋक्संहिता १०।११०।११ मन्त्रके ऋषि हैं । उनके पिता जमदग्निके द्वारा दृष्ट बहुतसे मन्त्र हैं ।

(७) राम—पहले उल्लेख किया जा चुका है ।

(८) कृष्ण—

(क) कालिको नाम सर्पो नवनागसहस्रबलः ।
यमुनाह्रदे ह स जातो यो नारायणवाहनः ॥—इत्यादि
(ऋक्सं० ७ । ५५ । ४ खिल)

(ख) श्रीमन्नीलकण्ठसूरिने कृष्णविषयक बहुत-से वेद-मन्त्रोंको उद्धृत किया है । ('कल्याण' १९४८, पृ० ९४१, 'वेदोंमें व्रजलीला'—श्रीनीरजाकान्त चौधुरी द्रष्टव्य)

पुरातत्त्व-विषयक प्रमाण

गजेन्द्र-मोक्षकी कहानी केवल श्रीमद्भागवत और वामनपुराणमें उपलब्ध होती है । यह उपाख्यान प्राचीन है; क्योंकि भरहुत स्तूपके प्राकारमें 'गज-कुलीर-जातक'का चित्र (ई०पूर्व द्वितीय शताब्दी) इसका ही अनुकरण है । मूल उपाख्यान तथा दोनों पुराण अन्ततः ई०पूर्व षष्ठ शताब्दीसे भी प्राचीन हैं, इसमें संदेह नहीं ।

कौशाम्बी (ई०पूर्व द्वितीय शतक)में 'रावणके द्वारा सीताहरण' तथा 'अशोकवनमें सीता'की पक्की मिट्टी-की बनी चित्रभित्ति प्राप्त हुई है ।

भरहुत और साँची स्तूप (ई०पूर्व द्वितीय शतक)में ऋष्यशृङ्ग और श्याम (सिन्धुवध) जातकके चित्र हैं । वे रामायणकी कहानीकी अनुकृति-स्वरूप हैं, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ।

रामचरित्र रूपक नहीं है

राम दक्षिणभारतमें आर्यसभ्यता फैलाते हैं, राम-रावण-युद्ध इन्द्र-वृत्रके संग्रामका प्रतीक है, इन्द्रजित् और इन्द्र-शत्रु एक ही व्यक्ति हैं, देवशुनी सरमा ही विभीषणकी पत्नी तथा सीताकी सेविका है, हनूमान् वर्षाके देवता हैं—इत्यादि पाश्चात्त्य सिद्धान्त निराधार हैं । इनको लेकर सिर खपाना समयका दुरुपयोग मात्र है ।

हम आर्य बाहरसे नहीं आये, यह मैं अन्यत्र प्रमाणित कर चुका हूँ । (देखिये 'आर्यलोग बाहरसे नहीं आये', गीताप्रेस) वृत्रासुर रावणसे बहुत पहले हो चुका है । उसका इतिहास पृथक् है । वैदिक मन्त्र त्रेतायुगके समकालीन नहीं हो सकते ।

पाश्चात्त्य लेखक वेदमें साधारण प्रवेश करके ही जिस प्रकार विजृम्भण करने लगते हैं, वह हास्यास्पद है ।

सीतादेवी सीरध्वज जनकके यज्ञ-कर्षणके समय भूमिसे उद्भूत हुई थीं, इसी कारण उनका नाम 'सीता' हुआ । किंतु उनके साथ या रामके साथ कृषिका कोई सम्बन्ध कभी न था

वेवर साहब (१८५० ई०) ने लिखा है—"Sita is but the field furrow. × × She actually represents Aryan husbandry, which has to be protected by Rama, whom I regard as originally identical with Balarama,—'Halabhrit, the plough-bearer.' Now this allegorical form of the Ramayana certainly indicates *a priori*, that this poem is later than the war part of the Mahabharata."

—History of Indian Literature, p. 192.

कैसा अद्भुत प्रस्ताव है—बलरामका हल है तो मूसल क्यों नहीं है ? क्या राम और बलराम एक हैं ? आर्य 'कृषि' (सीता)के रक्षक हैं—यह उन्मत्त प्रलाप है । क्या वे धनुष-बाण लेकर कृषि करते थे ? वे तो १४ वर्षके वनवासमें कृष्ट अन्नतक नहीं खाते, कृषि करना तो दूर रहा। महाभारत एक हिसाबसे रामायणका उपसंहार है; क्योंकि वह 'जय-विजय-उद्धार' महानाटकका अन्तिम अङ्क है। वह कैसे आदिकाव्य रामायणके पूर्व हो सकता है ?

फिर भी, आश्चर्यकी बात यह है कि स्वयं गुरुदेव रवीन्द्रनाथने हू-बहू वेवरकी इस बातको ही दुहराया है। पाश्चात्त्य प्रभाव कितनी गहराईतक पहुँचा है, इसका अनुमान इससे लगता है । हम इस विषयकी आलोचना यहाँ ही समाप्त करते हैं ।

वानर और राक्षस क्या असभ्य, अनार्य जातिके थे ?

आधुनिक शिक्षित लोगोंकी धारणा है कि रामायणके राक्षस और वानर असभ्य जातिके हैं—यहाँतक कि धर्ममें प्रगाढ़ श्रद्धा रखनेवाले वरेण्य पुरुषोंको भी इस प्रकारका मत प्रकट करते देखा जाता है । यदि ऐसी बात है तो महर्षि वाल्मीकिकी सत्यसंधताके ऊपर क्या कालिमा नहीं आती ? किंतु थोड़ा ध्यान देकर पढ़नेसे यह समझमें आ जाता है कि वानर लोग प्राकृत कपि नहीं हैं। रावणने अमर होनेका वर माँगते समय मनुष्य और वानर-भालूका नाम नहीं लिया था। इसी कारण उसका नाश करनेके लिये श्रीरामचन्द्रको माया-मानुषका अवतार लेना पड़ा। देवगण ब्रह्माके आदेशसे योनिविशेषमें अवतीर्ण हुए । इन वानर-भालुओंका देवताओंके अंशसे जन्म है। वे कामरूपी, कामचारी और प्रचण्ड-शक्तिसम्पन्न थे । उनकी आयु भी सुदीर्घ थी । हनूमान्ने समुद्र लाँघते समय विराट्रूप धारण किया था। एक युगके उपरान्त गन्धमादन पर्वतपर भीमके समान वीर उस रूपका किंचित् दर्शन कर मोहग्रस्त हो गये थे और रावणके अन्तःपुरमें उन्होंने नन्हा-सा आकार धारण किया। हनूमान् अब भी हैं, इसका अनुभव उनके भक्तोंको होता है। 'हनुमानचालीसा' प्रतिदिन पाठ करनेसे अद्भुत फल होता है । कुरुक्षेत्रके युद्धमें और विराट-नगरके युद्धमें उन्होंने अर्जुनके रथकी ध्वजापर आरूढ़ होकर सहायता की थी। किष्किन्धाके वानर वस्त्राभूषण आदि पहनते थे, उनके यहाँ शिविकाका व्यवहार था, शवका दाह होता था। इसके अतिरिक्त हनूमान्-अङ्गद आदिके लाङ्गल भी थे।

ऋक्षराज जाम्बवंत दीर्घजीवी हैं। वामन अवतारकी प्रदक्षिणा उन्होंने की थी । मनके समान उनकी अतिद्रुत गति थी। उस समय मनमें आनन्दित होकर भेरी बजाकर उन्होंने विजय-महोत्सव किया था (भागवत ८। २१।८)। द्वापरमें उनकी कन्या जाम्बवती (सीताका अवतार) श्रीकृष्णकी एक मुख्य महिषी बनीं (भागवत स्कन्ध १० अ० ५६)। प्राकृत वानर-भालुओंके लिये ये घटनाएँ अलौकिक और अविश्वसनीय हैं। रामायण और महाभारत इस प्रकारकी अलौकिक घटनाओंसे पूर्ण हैं। परंतु शंकराचार्य कहते हैं कि अलौकिक होनेपर भी इतिहास-पुराणमें विश्वास करना ही पड़ेगा—'तस्मात् समूलमितिहासपुराणम्'—(ब्रह्मसूत्रभाष्य १ । ३ । ३३ की अन्तिम पंक्तियाँ)

दूसरी ओर राक्षस जाति एक असुर-योनिविशेष थी। उनका रूप भयंकर था, स्वभाव क्रूर था और वे कच्चा मांस खाते थे । वे रात्रिंचर (निशिचर), कामरूपी और कामचारी थे । शूर्पणखा और हिडिम्बाने सुन्दर मानुषी वेष धारण किया था। विभीषण और उनके मन्त्रियोंने मनुष्यवेषमें युद्ध किया। वे नररूपमें ही अयोध्या गये थे। सरमा पक्षीरूप धारण करके सीताको संवाद लाकर सुनाती थी। राक्षस लोग दीर्घायु थे। रावणने मांधाता और अनरण्यके साथ युद्ध किया और अन्तमें रामके हाथोंसे मारा गया ।

द्वापरयुगतक राक्षसोंके अस्तित्वका प्रमाण मिलता है। भीमने कुछ राक्षसोंको मारा था। उनकी राक्षसी पत्नी हिडिम्बा गर्भधारण करके घटोत्कचको उत्पन्न करती है। घटोत्कच जन्म लेते ही पूर्णवयस्क हो उठा था। वह पाण्डवोंको कंधेपर रखकर आकाश-गमन किया करता था।

अतएव राक्षस असभ्य अथवा काफिर भी नहीं थे। राक्षसराज विभीषण आज भी राक्षसराज्यका शासन कर रहे हैं। कहा जाता है कि चौदहवीं शताब्दीके प्रसिद्ध निबन्ध 'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि'के रचयिता, देवगिरि राज्यके मन्त्री हेमाद्रिने विभीषणके प्रसादसे ज्वार-शस्यकी महाराष्ट्रमें सर्वप्रथम खेती की थी। राक्षसोंमें वर्णाश्रमकी प्रथा थी। आजकलका सिंहलद्वीप (Ceylon) रावणकी लङ्का नहीं है।

उपसंहार

संस्कृत भाषा और साहित्यमें, विशेषतः शास्त्रों और दर्शनोंमें पाश्चात्त्य गवेषकोंका ज्ञान गम्भीर नहीं है। इसके अतिरिक्त भ्रान्त सेमिटिक दर्शन तथा ग्रीक और रोमके ऐतिह्यके प्रभावसे उनकी बुद्धि मलिन हो गयी है। उसके ऊपर भेदभावका प्रभाव है और विजित जातिके ऊपर प्रभुत्वाकाङ्क्षा है तथा मिशनरी पादरियोंका हिंदूधर्म-विद्वेष भी काम करता है। श्रीराम-सीताकी भगवत्ता और साधारण रूपमें अवतारत्वके विषयमें उन्होंने तथाकथित वैज्ञानिक क्रम-विकासवादका प्रयोग करके जिन सिद्धान्तोंको खड़ा किया है, उनके ऊपर इन सबकी छाया पड़ती है। उनके ये सारे सिद्धान्त मिथ्या, निर्मूल तथा अकिंचित्कर हैं।

इसके अतिरिक्त हमने दिखलाया है कि केवल वेदोंमें ही अवतार-तत्त्व स्पष्टरूपमें वर्तमान हो, इतना ही नहीं है; बल्कि श्रीभगवान्‌के राम तथा अन्यान्य मुख्य अवतार सभी वेदोंमें संक्षेपरूपसे वर्णित हैं। राम रूपक नहीं हो सकते। उनके तथा रामायणके विषयमें पुरातत्त्व-सम्बन्धी प्रमाणोंका अभाव नहीं है। वानर और राक्षस असभ्य जातिके मनुष्य हैं, यह धारणा भी भ्रममूलक है। देवतालोग रावणके वधार्थ वानर और भालुओंके वंशमें जन्म लेकर रामकी सहायता करते हैं। राक्षस एक विशिष्ट असुर-जाति हैं। उनकी विशेषता देखनेसे ही ज्ञात हो जाता है कि वे कोई नरभक्षक असभ्य आदिवासी मनुष्य-जाति नहीं हैं। ये सब अलौकिक घटनाएँ हैं, यह विश्वास किये बिना गति नहीं है। भारतका ऐतिह्य साक्षी है कि वही एक पूर्ण-पुरुषोत्तम अनेक बनकर जगत्‌के कण-कणमें अनुप्रविष्ट है। प्रत्येक जीव शिव होनेके लिये जन्म लेता है, जन्म-जन्मान्तरमें उसी दिशामें अग्रसर होता है। इस देशमें सभी मानो पहलेसे ही पूर्ण हैं। वर्णमाला ही इसका प्रमाण है। सृष्टिके आदिसे ही वह श्रेष्ठ वैज्ञानिक रीतिसे सुसम्बद्ध और स्वयं परिपूर्ण है।

दूसरी ओर हिब्रू भाषामें कोई स्वर-वर्णतक नहीं है। अंग्रेजीमें केवल २६ अक्षर हैं, जो ग्रीककी अपेक्षा दो अधिक हैं। छन्द, व्याकरण, स्वर आदिसे अति उच्च स्तरके निर्दोष वाक्योंकी कल्पना अन्य देशोंमें की भी नहीं जा सकती। उधर, ग्रीक भाषामें सिकन्दरके समय भी विशेष्य और क्रियाके अतिरिक्त कोई दूसरे पद न थे—यहाँ-तक कि सर्वनाम, अव्यय आदिका व्यवहार उसके बाद भी बहुत दिनोंतक वहाँ अज्ञात था।

अतएव भारतमें क्रमविकासवादका मेल नहीं खाता। ऋषिलोग पूर्ण पुरुष थे; उनके वंशज हम भले ही क्रमशः अवनतिकी ओर जा रहे हैं। मर्यादापुरुषोत्तम राम और जगन्माता सीता जय-विजय-उद्धाररूप एक महाविश्वनाटकके महानायक और महानायिकाकी भूमिकामें अवतीर्ण हैं। उन्होंने सदाके लिये अत्युच्च आदर्श स्थापित किया। वे पितृभक्ति, गुरुभक्ति, भ्रातृस्नेह, मित्रस्नेह, पातिव्रत, प्रजा-नुराग तथा भवसागरसे उद्धारकी तरी राम-नामको जगत्‌के जीवोंके उद्धारार्थ दे गये।

हम गोस्वामीजीकी स्तुतिके द्वारा श्रीरामके चरण-कमलोंमें भक्तिपूर्वक वन्दना करते हैं—

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥

(मानस १। ६ श्लोक)

मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीकी ऐतिहासिकता एवं भगवत्ता

(लेखक—डॉ० श्रीप्रभाकरजी त्रिवेदी, एम०ए०, डी०लिट्०)

हिंदू जातिके धार्मिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक जीवनपर जो प्रभाव मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रका है, वह किसी दूसरेका नहीं। हिंदू-परिवारोंमें बालकोंके जन्मके समय प्रायः ऐसे गीत गाये जाते हैं, मानो स्वयं श्रीरामचन्द्र ही उत्पन्न हुए हों; विवाहके समय भी ऐसे माङ्गलिक गान होते हैं, मानो राम एवं सीताका ही विवाह हो रहा हो; तथा मनुष्य-शरीरकी अन्तिम यात्रा 'राम-नाम सत्य है'की ध्वनिके साथ समाप्त होती है। कश्मीरसे रामेश्वरम्तक तथा कटकसे रनकच्छतक भारतवर्षके कोने-कोनेमें भगवान् रामचन्द्रके मन्दिर बने हुए हैं। लाखों हिंदू प्रतिदिन रामायणका पाठ करते हैं। अयोध्या, पञ्चवटी, चित्रकूट, रामेश्वरम् आदि तीर्थ-स्थानोंकी यात्रामें लाखों हिंदू प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये खर्च करते हैं तथा कोई भी अध्यापक, जो अपने विद्यार्थियोंके नामोंको अक्षर-क्रममें लिखनेका अभ्यासी है, वह अच्छी प्रकार जानता है कि पूरी कक्षाके लगभग पचीस प्रतिशत नाम रामसे सम्बद्ध होते हैं।

जो राम हिंदू जातिके जीवनके रग-रगमें इस प्रकार रम रहा है, वह कभी था कि नहीं था—वह ऐतिहासिक है या काल्पनिक—इस प्रकारके प्रश्न भी हमारे देशके मनीषियोंके मनमें उत्पन्न होने लगे हैं। क्या यह एक महान् आश्चर्यकी बात नहीं है? इस महान् आश्चर्यका कारण क्या है? इसका कारण है—पाश्चात्य संस्कृति एवं वैज्ञानिक आविष्कारोंकी चकाचौंधके कारण उत्पन्न होनेवाला हमारा मतिभ्रम। मेरा विश्वास है कि मुस्लिम शासकोंकी तलवार आठ सौ वर्षोंमें हिंदू-संस्कृतिको जो हानि नहीं पहुँचा पायी, वह पाश्चात्य संस्कृतिकी चकाचौंधने दो सौ वर्षोंमें कर डाली; क्योंकि तलवारकी चोट गर्दनपर पड़ी थी, बुद्धिपर नहीं। इधर पाश्चात्य संस्कृतिकी चोट बुद्धिपर पड़ी, गर्दनपर नहीं।

वायुके वेगसे दौड़नेवाली रेलगाड़ियों, समुद्रके गर्भमें अठखेलियाँ करनेवाली पनडुब्बियों, आकाशमें उड़नेवाले विमानों तथा विज्ञानके नित्य नूतन अन्य अनेक आविष्कारोंसे प्रभावित होकर हमने यह समझना प्रारम्भ कर दिया कि जिन लोगोंने ये आविष्कार किये हैं, उनकी बुद्धि हमारी बुद्धिसे, उनका खान-पान हमारे खान-पानसे, उनकी वेष-भूषा हमारी वेष-भूषासे तथा उनका धर्म हमारे धर्मसे अच्छा है। कुशल यह हुई कि विगत शताब्दीमें स्वामी दयानन्द सरस्वती, श्रीरामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी तथा महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय-जैसे कुछ महापुरुषोंका आविर्भाव इस देशमें हो गया, जिससे उपर्युक्त विचारधाराने एक नया मोड़ लिया तथा हमारे देशमें आङ्गल भाषा एवं विज्ञानके विद्वानोंने भी यह समझना प्रारम्भ किया कि हिंदू-धर्म एवं संस्कृति वास्तवमें महान् हैं।

तो प्रश्न यह है कि 'मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी ऐतिहासिक पुरुष हैं या नहीं? वे वास्तवमें कभी इस देशमें उत्पन्न हुए थे या केवल महर्षि वाल्मीकिकी प्रखर बुद्धि एवं उत्कट कल्पनाशक्तिकी उपज हैं? और यदि वे एक ऐतिहासिक पुरुष थे तो क्या वे एक असामान्य शील-शक्ति-सौन्दर्य-सम्पन्न मनुष्य मात्र थे या भगवान्के अवतार थे?'—इन दोनों प्रश्नोंका विवेचन क्रमशः किया जायगा।

१. मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीकी ऐतिहासिकता

किसी महापुरुषकी ऐतिहासिकताके प्रमुखतया निम्नलिखित प्रमाण हो सकते हैं—

१—ऐतिह्य अर्थात् परम्परागत इतिहास।

२—किसी प्रामाणिक पुस्तकमें उनके जीवनवृत्तका वर्णन।

३—तत्कालीन अथवा परवर्ती पुस्तकोंमें उनके प्रसङ्ग-सम्बन्धी चर्चाएँ।

४—उसके द्वारा लिखित पुस्तकें, या निर्मित भवन, मन्दिर, सेतु आदि।

५—यदि वह राजा है तो उसके राज्यकालके सिक्के।

१—मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रके अस्तित्व एवं जीवनकी प्रमुख घटनाओंके सम्बन्धमें लोक-परम्परा जितनी मुखरित है, हिंदू जातिके प्रत्येक व्यक्तिकी जिह्वापर राम-नामका जितना आवर्तन होता है, उसकी तुलना संसारके

इतिहासमें असम्भव है। जैसा इस लेखके प्रारम्भमें ही कहा जा चुका है, उनके जीवनसे सम्बद्ध स्थानोंमें प्रतिवर्ष मेले लगते हैं, उनके नामसे इस देश तथा परदेशमें सहस्रों मन्दिर हैं तथा जन-जीवनके प्रत्येक क्षेत्रपर उनके आदर्शोंका अतुल प्रभाव है।

२—चौबीस सहस्र श्लोकोंमें ग्रथित आदिकवि महर्षि वाल्मीकिद्वारा रचित रामायण उनके जीवन-वृत्तका ही वर्णन करती है। योगिराज श्रीअरविन्द घोषने तो यहाँतक लिखा है कि 'सृष्टिके प्रारम्भसे लेकर आजतक संसारके किसी भी साहित्यमें वाल्मीकि-रामायण-जैसा सर्वाङ्गसुन्दर ग्रन्थ नहीं लिखा गया।'

३—वाल्मीकि-रामायणके बाद संस्कृत-साहित्यके सभी परवर्ती ग्रन्थोंमें मर्यादापुरुषोत्तमके सम्बन्धमें अनेक प्रसङ्ग आये हैं। स्कन्दपुराणादि अनेक पुराणोंमें तो श्रीरामचन्द्रकी कथा बड़े विस्तारके साथ कही गयी है। महाभारत-जैसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण महाग्रन्थमें भी श्रीरामचन्द्रके जीवन-सम्बन्धी अनेक प्रसङ्ग आये हैं। उदाहरणार्थ, हिमालयके किसी दुर्गम स्थानमें जब पवनतनय श्रीहनुमान् तथा महाबली भीमकी भेंट होती है तथा भीम अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे भी अत्यन्त वृद्ध वानरके रूपमें सोये हुए महावीर-की पूँछ उठानेमें असमर्थ हो जाते हैं, तब वे हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं तथा उन्हें प्रणाम करके पूछते हैं, 'महाराज! आप साधारण वानर नहीं हैं। कृपया मुझे बतलाइये कि आप कौन हैं। यदि कोई गुप्त बात न हो और मेरे सुननेयोग्य हो तो कृपया बतलाइये। मैं यह शिष्य-भावसे पूछता हूँ और आपकी शरणमें आया हूँ।'

महावीर हनुमान्ने उत्तर दिया—'मैं केसरीके गर्भसे उत्पन्न पवनतनय हनुमान् हूँ। पूर्वकालमें सभी वानर यूथपति इन्द्रतनय वाली तथा सूर्यकुमार सुग्रीवकी सेवामें उपस्थित रहते थे। सुग्रीवसे मेरी वैसी ही मित्रता थी, जैसी वायुकी अग्निके साथ।'

इसके उपरान्त श्रीहनुमान्ने वाली एवं सुग्रीवके विरोधकी चर्चा करते हुए श्रीरामचन्द्रजीकी समस्त कथा तथा उस प्रसङ्गमें अपने पराक्रम आदिका संक्षेपमें वर्णन किया।*

पाण्डवोंके वनवासके समय द्वैतवनमें महाराज युधिष्ठिरसे भेंट करनेके लिये दीर्घायु महर्षि मार्कण्डेय पधारे। महाराजने उनका समयानुकूल यथोचित स्वागत किया। सर्वज्ञ महर्षि द्रौपदी, युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुनको देखकर मुस्कराने लगे। तब धर्मराज युधिष्ठिरने उनसे पूछा, 'मुने! ये सब तपस्वी तो मेरी दुर्दशा देखकर दुखी हैं, किंतु आप प्रसन्नता-पूर्वक मुस्कराते-से दीख रहे हैं। इसका क्या कारण है?' 'महर्षिने उत्तर दिया, 'महाराज! न तो मैं हर्षित ही हो रहा हूँ न मुस्करा रहा हूँ। आज आपकी यह विपत्ति देखकर मुझे सत्यप्रतिज्ञ दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रका स्मरण हो आया। पिताकी आज्ञासे लक्ष्मणके साथ धनुष हाथमें लेकर वनमें घूमते हुए श्रीरामचन्द्रको ऋष्यमूक पर्वतके शिखरपर मैंने देखा था।' (महाभारत, वनपर्व अध्याय २५ श्लोक ६ से ९ तक)

महर्षि मार्कण्डेयने 'मैंने देखा था।' कहा। यह नहीं कहा कि 'मैंने महर्षि वाल्मीकिविरचित एक उपन्यास पढ़ा था, जिसमें प्रमुख पात्र श्रीरामचन्द्रजी उसी प्रकार दुःखमय जीवन व्यतीत करते हुए दिखाये गये हैं, जैसे आप कर रहे हैं।'

श्रीमद्भगवद्गीताके दशम अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनकी प्रार्थनापर अपनी विभूतियोंका वर्णन करते हुए कहते हैं—

'रामः शस्त्रभृतामहम्।' (गीता १०। ३१)

'मैं शस्त्रधारियोंमें राम हूँ।'

इस श्लोककी व्याख्यामें स्वामी शंकराचार्यने अपने भाष्यमें लिखा है, 'रामो दाशरथिः।' अर्थात् यहाँ रामका अर्थ है—महाराज दशरथके पुत्र श्रीरामचन्द्र (परशुराम या बलराम नहीं)।

इस प्रकार महाभारत, भागवत एवं अन्य पुराणोंमें श्रीरामचन्द्रके सम्बन्धमें अनेकों प्रसङ्ग संक्षेप या विस्तारसे आये हैं। उनके जीवन-सम्बन्धी परवर्ती काव्य-नाटक-चम्पू-ग्रन्थोंकी चर्चा इस प्रसङ्गमें असंगत है।

४ तथा ५—रह गयी बात सिक्कों तथा भवनों आदिकी। इस सम्बन्धमें स्मरणीय है कि अनेक प्रसिद्ध हिंदू एवं मुसल्मान राजाओंके सिक्के अब भी प्राप्त नहीं हो सके हैं और उनके द्वारा निर्मित भवनादि भी अब

* देखिये, महाभारत, वनपर्व, अध्याय १४७।

पूर्णतया भूमिसात् हो चुके हैं। हिंदू-गणनाके अनुसार श्रीरामचन्द्रके आविर्भावको तो लगभग नौ लाख वर्ष बीत चुके—पाँच सहस्र वर्ष कलियुगके, आठ लाख चौसठ सहस्र वर्ष द्वापरके तथा कुछ सहस्र वर्ष त्रेताके। यदि पाश्चात्त्य विद्वान् इस गणनाको नहीं स्वीकार करते तो उसका प्रमुख कारण यह है कि भारतीय इतिहासकी किसी भी घटनाको ईसामसीहके जन्मके बहुत पहले स्वीकार करनेमें उन्हें आन्तरिक क्लेशका अनुभव होता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि महाभारतकालसे बहुत पहलेकी बात होनेसे श्रीरामचन्द्रका आविर्भावकाल अत्यन्त प्राचीन है। अतः यदि उनके राज्यकालका कोई सिक्का या भवन उपलब्ध न हो तो इस आधारपर उनकी ऐतिहासिकतापर कोई आँच नहीं आ सकती। आश्चर्यकी बात है कि मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रद्वारा निर्मित श्रीरामेश्वरम्के सेतुका कुछ अंश अब भी वर्तमान है, जो शिला-खण्डोंका समूह-मात्र है तथा जिसका दर्शन दो बार तो मैं भी कर चुका हूँ। इस सेतुपर छोटे-छोटे खंभे बनाकर रेलवे लाइन बिछा दी गयी है, जिसपर पम्बन तथा मण्डपम् स्टेशनोंके बीच ट्रेनें चलती हैं और इस प्रकार भारत और रामेश्वर द्वीपको सम्बद्ध करती है। यह दूरी इस समय लगभग तीन मीलकी होगी। यदि रामेश्वरम्द्वीप तथा लङ्काके बीचका सेतु नहीं दीख पड़ता तो इसका कारण वे सभी लोग सुगमतापूर्वक समझ सकते हैं, जिन्होंने धनुष्कोटिमें समुद्रको अपनी उत्ताल तरंगोंके साथ गरजते हुए देखा है।

प्रश्न यह होता है कि 'उपर्युक्त प्रचुर प्रमाणोंके रहते हुए कुछ आधुनिक विद्वान् श्रीरामचन्द्रकी ऐतिहासिकतामें संदेह क्यों करते हैं?' इसका कारण इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं दीखता कि मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रके जीवन-सम्बन्धी कुछ घटनाएँ असामान्य प्रतीत होती हैं। अतः इस बातपर विचार कर लेना आवश्यक है कि उनके जीवनकी कौन-सी घटनाएँ असामान्य हैं। क्या पिताकी आज्ञासे राज्यका लोभ छोड़कर चौदह वर्षतक दण्डकारण्यका निवास स्वीकार कर लेना उनमेंसे एक है? जिस देशके इतिहासमें परशुरामने अपने पिताकी आज्ञासे माताका शिरश्छेद कर दिया, जिस देशके इतिहासमें पूरुने अपने पिता ययातिको अपनी युवावस्था दे दी[1], जिस देशके इतिहासमें भीष्मपितामह-ने पिताकी आज्ञासे नहीं, वरं उनकी इच्छामात्रका अनुसंधान कर राज्यका ही त्याग नहीं किया, वरं आजीवन ब्रह्मचर्य-पालनकी प्रतिज्ञा कर भीष्मकी उपाधि प्राप्त की, उस देशके इतिहासमें पिताकी आज्ञासे चौदह वर्षतक अरण्यवास स्वीकार करना कोई असामान्य बात नहीं प्रतीत होती।

तो क्या अहल्याका उद्धार असामान्य बात थी? क्या अहल्याके उद्धारके प्रसङ्गमें श्रीरामचन्द्रजीने प्रस्तर-खण्डका स्पर्श कर उसे मनुष्य नहीं बनाया था? जो लोग भारतीय ऋषि-मुनियोंकी दिव्य शक्तियोंपर विश्वास रखते हैं, आजकल भी जिन्हें दिव्य ज्ञान एवं दिव्य शक्तिसे सम्पन्न योगसिद्ध महात्माओंके सम्पर्कमें आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उन्हें अहल्याके उद्धारकी घटना कोई असामान्य बात नहीं प्रतीत होगी। उस सम्बन्धमें जो कुछ असामान्य बात है, वह है गौतमऋषिके शापकी। जिस प्रकार ऋषियोंमें शाप देनेकी शक्ति थी, उसी प्रकार शापसे उद्धारका समय एवं परिस्थिति निश्चित करनेकी भी शक्ति थी। महर्षि गौतमने अहल्याके लिये शापसे उद्धारका समय निश्चित किया था—

यदा त्वेतद् वनं घोरं रामो दशरथात्मजः।
आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा पूता भविष्यसि॥
(वा० रा० १। ४८। ३१)

'जब दशरथनन्दन दुर्धर्ष रामचन्द्र इस घोर वनमें आयेंगे, तब तुम पवित्र होओगी अर्थात् इस शापसे मुक्त होओगी।'

महाभारतके अनुसार महर्षि अगस्त्यने महाराज नहुषके सर्पयोनिसे उद्धारका समय निश्चित किया था द्वापरमें युधिष्ठिरसे साक्षात्कार होनेपर। अतः युधिष्ठिरसे साक्षात्कार होनेपर नहुषको सर्पयोनिसे मोक्ष प्राप्त हो गया। (महाभा०, वनपर्व, अध्याय १८१। ४०)

अतः अहल्या-उद्धारके सम्बन्धमें जो कुछ असामान्यता है, वह गौतमके शाप एवं उद्धारकी शक्तिमें है। यदि वे चाहते तो उद्धारके लिये किसी निश्चित संवत्सरके निश्चित तिथिका सूर्योदय या सूर्यास्तका समय निश्चित कर देते तथा वह समय उपस्थित होते ही अहल्याका उद्धार हो जाता। अतः भगवान् रामचन्द्रकी भगवत्ता तथा पतितपावनतापर लेशमात्र भी संदेह न करते हुए अहल्याके उद्धारका कारण महर्षि गौतमके शापोद्धार-प्रणालीके निर्धारणको मानता हूँ।

१. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय ८४। २७—३०।

अतः यह कोई ऐसी असामान्य बात नहीं है, जिसके कारण श्रीरामचन्द्रकी ऐतिहासिकतापर संदेह उत्पन्न हो।

मेरी समझमें श्रीरामचन्द्रजीके जीवनव्रतसे सम्बद्ध वास्तवमें असामान्य (अर्थात् असम्भाव्य) बात श्रीहनूमान्‌से उनकी भेंटकी घटनासे प्रारम्भ होती है। श्रीहनूमान्‌ने श्रीरामचन्द्र तथा लक्ष्मणका परिचय पूछते हुए तथा अन्ततः अपना परिचय देते हुए जो बातें कहीं, उन्हें सुनकर रामने उनका कुछ भी उत्तर न देते हुए धीरेसे लक्ष्मणसे कहा—'लक्ष्मण! ये कपिराज महात्मा सुग्रीवके मन्त्री हैं। तुम इनके साथ स्नेहयुक्त एवं मधुर वाक्योंमें वार्तालाप करो। जिसने ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेदका अध्ययन नहीं किया है, वह इस प्रकारकी बात नहीं कर सकता; इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरणशास्त्रका विधिवत् अध्ययन किया है; क्योंकि बहुत बात करते हुए भी इन्होंने एक भी अशुद्ध शब्दका उच्चारण नहीं किया'—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्॥
(वा० रा० ४। ३। २८-२९)

फिर सुग्रीवसे, वालीसे, तारासे तथा आगे चलकर अङ्गद, जाम्बवान् तथा नल-नील आदिसे श्रीरामचन्द्र तथा लक्ष्मणकी अपनी मातृभाषा, अर्थात् संस्कृतभाषामें वार्तालाप होते रहनेके प्रसङ्ग बारंबार आये हैं।

यहाँ प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि पुच्छधारी वानरोंके लिये वेदों एवं व्याकरणका अध्ययन एवं व्याकरणादि शास्त्रोंका विशद ज्ञान क्या असम्भाव्य नहीं है? यही बात गृध्रराज जटायुके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। एक ओर तो महर्षि वाल्मीकिने उपर्युक्त वानरोंके पुच्छोंकी भी बारंबार चर्चा की है और दूसरी ओर वालीका चारों समुद्रोंपर संध्या करने तथा सुग्रीवके वैदिक मन्त्रोंसे राज्याभिषेक आदिका भी वर्णन किया है।

आजकलके बंदर तो संस्कृत क्या, शुद्ध या अशुद्ध हिंदी या मराठी या तमिळ भी नहीं बोलते। अतः उस समयके बंदरोंका शुद्ध संस्कृतमें वार्तालाप करना असम्भव-सा प्रतीत होता है।

कुछ इसी प्रकारकी आशङ्का हनूमान् आदिके पराक्रमके सम्बन्धमें भी उत्पन्न हो सकती है। हनूमान्‌का शतयोजन-विस्तीर्ण समुद्रको आकाशमार्गसे कूदकर या उड़कर पार करना तथा लक्ष्मणकी रक्षाके लिये कुछ ही घंटोंमें लङ्कासे हिमाचलतक आना-जाना यदि असम्भाव्य-सा प्रतीत हो तो इसमें आश्चर्यकी बात नहीं है।

इस शङ्काका समाधान *वाल्मीकिरामायणमें ही वर्तमान* है। यदि हम उसे ध्यानसे पढ़नेका प्रयत्न करें तो हमारी *सभी शङ्काओंका सम्यक् समाधान सुगमतापूर्वक हो सकता है।* यह ज्ञातव्य है कि वानरोंकी सामान्य भाषा संस्कृत नहीं थी; संस्कृत मनुष्योंकी ही भाषा थी। यह इस बातसे प्रकट होता है कि हनूमान्‌ने जब सीताको अशोकवाटिकामें प्रथम बार देखा, तब उन्हें अनेक बार सोचना पड़ा कि 'वे सीतासे किस भाषामें तथा किस प्रकार वार्तालाप प्रारम्भ करें, जिससे वे उनपर संदेह न करें तथा उनकी बातोंपर विश्वास करें।' इस प्रसङ्गमें उन्होंने सोचा, 'यदि मैं मनुष्योंकी भाषा संस्कृतमें वार्तालाप करूँ तो सीता मुझे रावण समझकर भयभीत हो जायँगी।'

अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्॥
यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥
(वा० रा० ५। ३०। १७-१८)

इसके अतिरिक्त, लङ्कासे सीताके अन्वेषणोपरान्त लौटे हुए हनूमदादि वानरोंद्वारा मधुवनके विध्वंसकी कहानी उसके रक्षक दधिमुखने जब राम तथा लक्ष्मणके समक्ष ही सुग्रीवको सुनायी, तब राम तथा लक्ष्मण उसे समझ नहीं पाये। (वही, ५। ६३। १३-१४)

अतः लक्ष्मणने सुग्रीवसे पूछा, 'इस बंदरने अत्यन्त दुखी होकर आपसे क्या कहा?' सुग्रीवने उत्तर दिया, 'आर्य लक्ष्मण! दधिमुखने हनुमदादिद्वारा मधुवनके विध्वंसकी बात कही। मेरा अनुमान है कि सीता अवश्य देखी गयी—किसी अन्यके द्वारा नहीं, हनूमान्‌के द्वारा।' (वही, (५। ६३। १९)

इस प्रसङ्गसे यह प्रतीत होता है कि सुग्रीव तथा दधिमुखका वार्तालाप वानरी भाषामें हुआ, जिसे राम तथा लक्ष्मण समझ नहीं पाये। किंतु सुग्रीव तथा लक्ष्मणके वार्तालापकी भाषा संस्कृत थी। इन सब प्रसङ्गोंसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि सुग्रीव, हनुमान्, अङ्गद, नल, नील

आदि कुछ ही वानर संस्कृत समझते तथा बोल सकते थे, सभी बंदर नहीं। अन्य बंदरोंसे राम एवं लक्ष्मणका सम्पर्क इन उपर्युक्त बंदरोंके माध्यमसे ही होता था।

अब प्रश्न यह होता है कि 'ये प्रमुख बंदर संस्कृत कैसे जानते थे ?'

एक ओर ब्रह्मासे रावणने यह वरदान माँगा था कि मनुष्यादि प्राणियोंको छोड़कर देव-दानवादि किसी अन्यके द्वारा हमारा वध न हो सके (क्योंकि मनुष्यादिको वह तृणवत्[2] समझता था;) तथा दूसरी ओर भगवान् नन्दीने रावणको यह शाप दिया कि 'तुमने वानररूप मुझे देखकर वज्रपातके समान अट्टहास कर अपमानित किया; अतः मेरे रूपके समान तेजस्वी, मेरे वीर्यसे युक्त वानर तुम्हारे कुलके विनाशके लिये उत्पन्न होंगे। नख एवं दंष्ट्रारूप आयुधवाले, मनके समान गतिमान्, युद्धोन्मत्त, बलवान् तथा गतिमान् पर्वतके समान आकारवाले ये वानर पुत्रों एवं मन्त्रियोंसहित तुम्हारे प्रबल दर्पको नष्ट करेंगे।'[3] अतः सबल-वाहन रावणके विनाशके लिये रामके सहायतार्थ देवताओंने ब्रह्माकी सम्मतिसे वानरियोंसे अत्यन्त तेजस्वी, शूरवीर, बुद्धिमान् तथा असामान्य शक्ति एवं गतिसे सम्पन्न पुत्रोंको उत्पन्न किया।

प्रजननशास्त्र (Genetics)का यह एक सामान्य नियम है कि यदि माता-पिताके गुण समान न हों तो उनकी संतानमें कभी माताके तथा कभी पिताके गुणोंका अधिक मात्रामें संक्रमण होता है, यद्यपि दोनोंके कुछ-न-कुछ गुण संतानमें अवश्य वर्तमान रहते हैं। पंद्रह-बीस वर्ष पूर्व समाचारपत्रोंमें यह समाचार प्रकाशित हुआ था कि किसी रूसी वैज्ञानिकने आलू तथा टमाटरके संयोगसे एक ऐसा नया पौधा उत्पन्न किया है, जिसमें नीचे आलू तथा ऊपर टमाटर फलता है। अतः उपर्युक्त विधिसे उत्पन्न वानरोंको मातृपक्षसे वानरी आकृति एवं वानरी भाषा प्राप्त हुई थी तथा पितृपक्षसे देवताओं-जैसे अद्भुत तेज तथा पराक्रमके साथ-साथ संस्कृत भाषा एवं कुछ शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त हुआ था। इसी प्रकार जटायुके संस्कृत भाषा एवं ज्योतिषसम्बन्धी ज्ञानकी व्याख्या भी हो जाती है। अतः उपर्युक्त वानरोंके अद्भुत पराक्रम एवं संस्कृत-ज्ञानकी संतोषजनक व्याख्या उपर्युक्त सिद्धान्तके आधारपर हो जानेके कारण तथा श्रीरामचन्द्रकी ऐतिहासिकताके सम्बन्धमें ऊपर दिये गये अनेक प्रमाणोंके कारण उनके ऐतिहासिक अस्तित्वकी बात असंदिग्धरूपसे सिद्ध हो जाती है।

२. (वा० रा०, उत्तरकाण्ड, सर्ग १० । १९–२२)

३. (वा० रा०, उत्तरकाण्ड, सर्ग १६ । १६–१९)

२. मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीकी भगवत्ता

अब इस प्रश्नपर विचार किया जायगा कि मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी एक असामान्य शील-शक्ति-सौन्दर्यसे सम्पन्न पुरुषमात्र थे या भगवान्के अवतार थे!

संसारकी नियमबद्धता, उसकी विचित्र रचना तथा उपकार्युपकारकभाव देखकर शंकराचार्य आदि प्राच्य तथा प्लेटो, अरस्तू, देकार्ते, लॉक, बर्कले आदि प्रमुख पाश्चात्य दार्शनिकोंने ईश्वरकी सत्ता स्वीकार की है। यद्यपि उन्नीसवीं शताब्दीका विज्ञान प्रमुखतया जडवादी था, आइन्स्टाइन, एडिंगटन आदि आधुनिक वैज्ञानिकोंकी विचारधारा प्रमुखतया ईश्वरवादी प्रतीत[4] होती है। ईश्वरके प्रमुख कार्य हैं— सृष्टि एवं प्रलयकी व्यवस्था करना तथा नैतिक नियमानुसार संसारका संचालन करना। इन कर्तव्योंका निर्वाह तभी हो सकता है, जब ईश्वरको न्यायी, सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिशाली स्वीकार किया जाय। इसीलिये स्वामी शंकराचार्यने कहा है—'मनके द्वारा भी जिस जगत्की रचना तथा रूपकी कल्पना करना सम्भव नहीं है ······ उस जगत्की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय जिस सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिशाली कारणसे उत्पन्न होते हैं, वही ब्रह्म (अर्थात् ईश्वर) है[5]।'

अतः यदि ईश्वर सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिशाली है तो वह यदि उचित एवं आवश्यक समझे तो किसी भी रूपमें प्रकट हो सकता है, अर्थात् अवतार ले सकता है।

४. देखिये—

1. The Philosophy of Physical Sciences by Eddington.
2. Has Science Discovered God?
3. The Great Design by Hans Driesh etc.

५. 'अस्य जगतः ······ मनसाप्यचिन्त्यरचनारूपस्य जन्मस्थितिभङ्गं यतः सर्वज्ञात् सर्वशक्तेः कारणाद्भवति तद् ब्रह्मेति।'

(ब्रह्मसूत्र, अध्याय १, पाद १, सूत्र २ पर शंकराचार्यका भाष्य)

उदाहरणार्थ, केनोपनिषद् (तृतीय खण्ड) में देवताओंका गर्व दूर करनेके लिये ब्रह्मके यक्षरूपमें प्रकट होनेकी बात आयी है । उसी प्रकार छान्दोग्योपनिषद् (४ । ८) में सत्यकाम जाबालको ब्रह्मविद्याका उपदेश देनेके लिये ब्रह्मके वृषभ, अग्नि, हंस तथा मद्गु (जल-कुक्कुट)—इन रूपोंमें प्रकट होनेकी स्पष्ट चर्चा है । जैसे ब्रह्म यक्षादि उपर्युक्त रूपोंमें प्रकट हो सकता है, वैसे ही वह यदि आवश्यक समझे तो मनुष्यरूपमें भी अवतार ले सकता है । ऐसा होनेमें किसी प्रकारकी तार्किक असम्भावना नहीं दीखती ।

यद्यपि पौरस्त्य तथा पाश्चात्त्य अनेक धुरंधर दार्शनिकोंने तर्कके आधारपर ईश्वरका अस्तित्व सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है, अनेक वर्षोंतक दर्शनशास्त्रका अध्ययन एवं अध्यापन करते रहनेके उपरान्त मेरा व्यक्तिगत विश्वास यही है कि यद्यपि तर्क अनेक अंशोंतक ईश्वर-सिद्धिमें सहायक होता है, शुद्ध तर्कके आधारपर ईश्वरका अस्तित्व असंदिग्ध रूपसे सिद्ध नहीं किया जा सकता । किंतु इस सम्बन्धमें, जैसा कई वर्ष पूर्व प्रसिद्ध दार्शनिक प्रो० के० सी० भट्टाचार्यने कहा था—(If Logic cannot catch God, so much the worse for Logic and not for God). —यदि तर्कशास्त्र ईश्वरको सिद्ध नहीं कर सकता तो यह दुर्भाग्य तर्कशास्त्रका है, ईश्वरका नहीं ।

स्वामी शंकराचार्यने भी बादरायणके 'तर्काप्रतिष्ठानात्' (ब्रह्मसूत्र २ । १ । ११) इस सूत्रपर भाष्य करते हुए कुछ ऐसा ही मत प्रकट किया है । अतः मेरी समझमें ईश्वरके अस्तित्व एवं उसके अवतारके सम्बन्धमें भी एकमात्र प्रमाण है—दिव्यदृष्टिसम्पन्न योगसिद्ध महापुरुषोंका अनुभव अर्थात् दिव्य ज्ञान । अतः प्रश्न यह है कि 'क्या वाल्मीकि-रामायणके अनुसार श्रीरामचन्द्रकी भगवत्तामें पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध होते हैं ?'

कुछ विद्वानोंका मत है कि वाल्मीकिने रामका चरित्र-चित्रण एक मातृ-पितृ-भक्त, शील-शक्ति-सौन्दर्य-सम्पन्न महावीर-के रूपमें ही किया था । उनपर भगवत्ताका आरोप बहुत बादमें हुआ । यह सत्य है कि महर्षि वाल्मीकिने रामके कथाप्रवाहमें गोस्वामी तुलसीदासके समान पदे-पदे उनके ईश्वरत्वका स्मरण दिलाते रहनेका प्रयास नहीं किया है; अतः कथाप्रवाहकी दृष्टिसे वाल्मीकिका वर्णन गोस्वामी तुलसीदासके वर्णनसे, कुछ प्रसङ्गोंको छोड़कर, अधिक आकर्षक प्रतीत होता है; तो भी यदि ध्यानसे पढ़ा जाय तो वाल्मीकि-विरचित रामायणमें भी श्रीरामचन्द्रके ईश्वरत्वके समर्थक अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं । मैं रामावतारके प्रारम्भमें ही देवताओंके ब्रह्माके साथ विष्णुभगवान्‌के पास जाकर उन्हें रावणवधके लिये प्रार्थना करने आदिकी बात नहीं कहता, जिसे कुछ लोग श्रीरामचन्द्रका ईश्वरत्व सिद्ध करनेके लिये मूल रामायणमें बादमें जोड़े हुए प्रसङ्ग समझ सकते हैं । मैं कुछ ऐसे प्रमाणोंकी चर्चा करना चाहता हूँ, जो वाल्मीकिकी लेखनीसे उसी प्रकार छलक पड़े हैं, जैसे असावधानीसे चलनेवाले व्यक्तिके हाथसे जल या दूधका कुछ अंश छलक पड़ता है ।

१—महर्षि विश्वामित्र ताटका, सुबाहु तथा मारीचके वधके लिये श्रीरामचन्द्रकी सहायताकी याचना करने महाराज दशरथके यहाँ पहुँचे । महाराजने उनका बड़ा स्वागत किया तथा उन्हें जो कुछ भी वे माँगें, देनेका वचन दिया । किंतु जब उन्हें पता चला कि महर्षि दुर्दान्त राक्षसोंके वधके लिये श्रीरामचन्द्रको ले जाना चाहते हैं, तब उनके होश उड़ गये । कुछ देरके लिये वे मूर्च्छित हो गये । पुनः संज्ञालाभ करनेपर उन्होंने बड़े दैन्यके साथ कहा—

ऊनषोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः ।
न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः ॥'
(वा० रा० १ । २० । २)

'कमलके समान नेत्रोंवाले मेरे रामचन्द्र केवल पंद्रह वर्षके हैं । वे राक्षसोंके साथ युद्ध करनेके योग्य नहीं हैं ।'

किंतु महर्षि विश्वामित्रने बल देकर कहा, 'सुबाहु एवं मारीचको रामचन्द्रके अतिरिक्त (संसारमें) कोई भी दूसरा व्यक्ति नहीं मार सकता ।'·········'सत्यपराक्रम महात्मा राम-(की महिमा) को मैं जानता हूँ, महातेजस्वी वसिष्ठ जानते हैं तथा ये जो लोग तपस्यामें निरत हैं, वे भी जानते हैं—

अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् ॥
वसिष्ठोऽपि महातेजा ये चेमे तपसि स्थिताः ।
(वा० रा० १ । १९ । १४-१५)

महर्षि विश्वामित्रके इस कथनसे ध्वनित होता है कि श्रीरामचन्द्र स्वभावतः दिव्यशक्तिसम्पन्न अर्थात् परमात्माके अवतार थे ।

२—जटायु श्रीरामचन्द्रसे केवल इतना ही कह पाया कि 'जिस सीताको आप ओषधिके समान खोज रहे हैं, उसे तथा

मेरे प्राणोंको ले कर रावण दक्षिण दिशाकी ओर चला गया' और उसके प्राणपखेरू उड़ गये । श्रीरामचन्द्र बड़े दुःखी हुए। उन्होंने लक्ष्मणकी सहायतासे जटायुका पितृवत् दाह-संस्कार किया, उसे जलाञ्जलि प्रदान की तथा कहा, 'जो गति यज्ञशील मनुष्यकी होती है, जो गति आजीवन अग्निमें हवन करनेवालोंकी होती है, युद्धभूमिमें पीठ न दिखानेवालोंको जो गति प्राप्त होती है तथा भूमिदान करनेवालेको जिन सर्वश्रेष्ठ लोकोंकी प्राप्ति होती है, मेरी आज्ञासे आप उन लोकोंको प्राप्त करें।' (वा० रा० ३ । ६८ । २९-३०)

प्रश्न यह होता है कि यज्ञशील मनुष्योंको, हवनशील मनुष्योंको, शूरवीरोंको तथा भूमिदान करनेवालोंको एक ही प्रकारकी गति प्राप्त होती है या भिन्न-भिन्न प्रकारकी? ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि इन सभी लोगोंको उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है तो भी सबको एक ही गति नहीं प्राप्त होती। यदि सबको भिन्न-भिन्न गतियोंकी प्राप्ति होती है तो युद्धमें पीठ न दिखानेवालोंको जो गति प्राप्त होती है, उसका अधिकारी तो जटायु धर्म-युद्धमें प्राण परित्याग करनेके कारण स्वतः था। उसके लिये श्रीरामचन्द्रकी अनुकम्पाकी कोई आवश्यकता नहीं थी। किंतु यज्ञशीलों, हवन करनेवालों तथा भूमिदान करनेवालोंकी गतियोंका अधिकारी न होते हुए भी ये गतियाँ उसे श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे प्राप्त हुईं। यदि कोई तपस्वी किसी अनधिकारी व्यक्तिको उत्तम गति प्राप्त कराता तो उसे कहना पड़ता, 'मेरी तपस्याके एक अंशसे तुम्हें ये गतियाँ प्राप्त हों', जिस प्रकारके प्रसङ्ग वाल्मीकि-रामायणमें अन्यत्र अनेक बार आ चुके हैं। किंतु, 'मेरी आज्ञासे तुम्हें ये गतियाँ प्राप्त हों।'—यह कहनेका अधिकार परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसीको नहीं है।

३—विभीषण श्रीरामचन्द्रकी शरणमें आना चाहते हैं। उन्होंने लङ्कासे समुद्रके उत्तरी तटपर आकर श्रीरामचन्द्रको वानरोंद्वारा अपने विचारकी सूचना दी। इस सम्बन्धमें कुछ निर्णय लेनेके पूर्व श्रीरामचन्द्रजीने अपने मन्त्रिमण्डलसे परामर्श किया। एक हनूमान्को छोड़कर लक्ष्मण, सुग्रीव, जाम्बवान्, अङ्गद आदि सबने यही मत प्रकट किया कि 'विभीषण शत्रुका भाई है—इसपर विश्वास करना बुद्धिमत्ताकी बात नहीं होगी। यह धोखा देकर हम सबको मार डालनेका प्रयत्न करेगा।' किंतु श्रीरामचन्द्रको हनूमान्की बात ही उचित प्रतीत हुई। उन्होंने यह भी कहा कि 'मैं शरणागतका परित्याग कभी भी नहीं कर सकता—यह मेरी प्रतिज्ञा है।' जहाँतक धोखा देकर हानि पहुँचानेकी बात थी, उसके उत्तरमें उन्होंने सुग्रीवसे कहा—'विभीषण दुष्ट हो या अदुष्ट, वह हमारा कुछ भी अहित क्या कर सकता है! वानरराज! इच्छा होनेपर मैं उँगलीके अग्रभागसे संसारके सभी पिशाचों, दानवों, यक्षों तथा राक्षसोंका संहार कर सकता हूँ'—

पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान्।
अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर॥
(वा० रा० ६ । १८ । २३)

यह स्पष्ट है कि ऐसा कथन सर्वशक्तिमान् परमात्माके लिये ही सम्भव है, किसी महावीरमात्रके लिये नहीं।

यद्यपि वाल्मीकि-रामायणसे इस प्रकारके अनेक प्रसङ्ग उद्धृत किये जा सकते हैं तो भी लेख अधिक लंबा हो जानेके कारण केवल एक और प्रसङ्गकी चर्चा करके इसे समाप्त कर रहा हूँ।

४—मेघनादकी मृत्युके उपरान्त रावणने राम तथा लक्ष्मणसे युद्ध करनेके लिये महती सेना भेजी। उस दिन श्रीरामचन्द्रने दो घंटेके युद्धमें दस सहस्र रथी, अठारह सहस्र हाथी, चतुर्दश सहस्र अश्वारोही तथा दो लक्ष पदाति राक्षसोंका संहार करके सुग्रीव, विभीषण, हनूमान्, जाम्बवान् तथा मैन्द एवं द्विविदसे कहा—'यह दिव्य अस्त्रबल या तो मेरे पास है या भगवान् शंकरके पास'—

'एतदस्त्रबलं दिव्यं मम वा त्र्यम्बकस्य वा।'
(वा० रा० ६ । ९३ । ३८)

दिव्य अस्त्रबलमें भगवान् शंकरकी समकक्षताके कारण तथा विष्णुका नाम नहीं लेनेके कारण मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रका भगवान् विष्णुका अवतार होना स्पष्टतः ही ध्वनित होता है। उपर्युक्त तथा अन्य अनेक प्रसङ्गोंसे, जिनकी चर्चा विस्तारसे नहीं की जा सकी, यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि महर्षि वाल्मीकिके अनुसार ही मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र विष्णुभगवान्के अवतार थे। उनका अवतारत्व परवर्ती कालमें आरोपित नहीं किया गया।

भगवान् रामका जन्मकाल एवं जन्मकुण्डली

(लेखक—आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्० ए०)

श्रीरामको सभी लोग मर्यादापुरुषोत्तम मानते हैं; किंतु कुछ लोग श्रीरामको अवतारी पुरुष न मानकर केवल 'महामानव' ही मानना चाहते हैं। इसी संदर्भमें श्रीरामके जन्मकाल आदिपर कई विचारधाराओंसे विचार होने लगा है। सर्वप्रथम यहाँपर कुछ पाश्चात्त्य ऐतिहासिकोंके विचारोंका उल्लेख किया जा रहा है। जोन्स नामक एक अंग्रेज इतिहासज्ञने श्रीरामका जन्म-काल ई० पू० २०२९ वर्ष स्वीकार किया है। दूसरे पाश्चात्त्य इतिहासज्ञ विद्वान् टॉडने ईसापूर्व ११०० वर्ष श्रीरामका जन्म-समय निर्धारित किया है। बेंथली नामक पाश्चात्त्य इतिहासज्ञने उनका जन्मकाल ईसापूर्व ९५० वर्ष ही अङ्गीकार किया है और विल्फर्ड नामक इतिहासज्ञने ईसापूर्व १३६० वर्ष रामका जन्मकाल माना है। इस प्रकार सभी पाश्चात्त्य इतिहासज्ञ विद्वानोंने अपने-अपने अध्ययनके आधारपर श्रीरामका जन्म-समय ईसाके पूर्व मानकर अपनी मान्यताकी 'इतिश्री' कर दी। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके जन्मकालके विषयमें भारतीय इतिहासज्ञोंके विचार भी मतभेदसे परिपूर्ण हैं। मतभेद होना स्वाभाविक और अनिवार्य भी है। त्रेता-युगकी बातको वर्ष-गणनामें आबद्ध करना सरल नहीं है।

श्रीरामके जन्मकालके निर्णयके लिये भारतीय ज्योतिष-की गणना ही सर्वथा मान्य हो सकती है। संत तुलसीदासजीने ज्योतिषकी आधारशिलाको संदेहास्पद स्थितिमें रख दिया। उनका कहना है—

जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल॥

नौमी तिथि मधुमास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता॥
(मानस १। १९०; १९०। १)

—इस उल्लेखसे वास्तविक वर्षका ज्ञान प्राप्त करना सरल नहीं है। केवल चैत्रमास, शुक्लपक्ष, नवमी तिथि और अभिजित् नक्षत्रके संकेतसे वर्षका वास्तविक ज्ञान कठिन है।

इस सम्बन्धमें आदिकविने जो संकेत दिया है, वह अन्धकारमें 'प्रकाश-स्तम्भ'का कार्य करता है। आदिकविने लिखा है—'श्रीरामके जन्मकालके समय (महाराज दशरथके पुत्रेष्टि-यज्ञ-समाप्तिके बाद बारह मास बीतनेपर) चैत्र शुक्ला नवमीके दिन, पुनर्वसु नक्षत्रके समय, कर्क-लग्नमें, पाँच ग्रह जब अपने-अपने उच्चमें स्थित थे, गुरु चन्द्रमाके साथ थे, उसी समय श्रीरामका अवतार हुआ'—

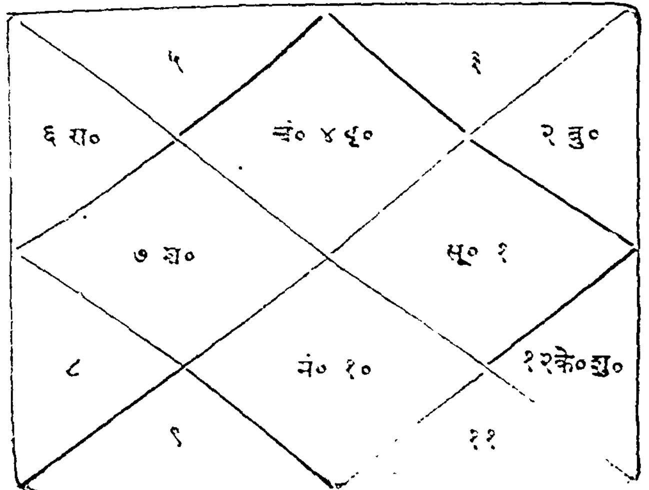
ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ॥
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह॥
(वा० रा० १। १८। ८-९)

वाल्मीकिजीने अपनी रामायणमें पाँच ग्रहोंको उच्चका और गुरु एवं चन्द्रमाको एक साथ बतलाकर ज्योतिषके ज्ञाताओंके लिये 'मार्ग' प्रकाशमय बना दिया। संत कवि तुलसीदासजीने अन्य प्रमाणोंके आधारपर अभिजित् नक्षत्रका उल्लेख किया है। अब प्रश्न यह होता है कि उस समय कौन-से पाँच ग्रह उच्चके थे। इस सम्बन्धमें कई प्रमाणोंके आधारपर यही अवगत होता है कि रवि, भौम, गुरु, शुक्र और शनि उच्चके थे। अर्थात् रवि मेषके थे, मङ्गल मकरके, गुरु कर्कराशिस्थ थे, शुक्र मीनके और शनि तुलाके थे।

भारतीय विचारधाराके आधार

श्रीरामके जन्मकाल-निर्णयमें भारतीय विचारधाराके लिये वाल्मीकि-रामायणके ये दो श्लोक दो प्रकाश-स्तम्भ हैं। भारतीय गणितज्ञ और फलितज्ञ यह मानते हैं कि स्थूल रीतिसे एक राशिपर सप्तर्षिगण लगभग २। सहस्रवर्ष, वरुण १४ वर्ष और शनि लगभग ढाई वर्षतक रहता है। इसी प्रकार सूर्य एक राशिपर एक मास और गुरु एक राशिपर प्रायः एक वर्ष रहते हैं। सूर्य, गुरु, शनिके विचारसे पाँचों उच्चस्थ ग्रहोंकी गणना करनेमें सरलता हो जाती है और इस हिसाबसे श्रीरामचन्द्रजीका जन्मकाल आजसे १, ८५, ५८,०७१ वर्ष पूर्व हुआ था।

श्रीरामका जन्माङ्ग



जन्माङ्गमें पाँच ग्रहोंकी उच्चता तो वाल्मीकिके वचनोंसे प्रमाणित हो जाती है, किंतु बुध और राहु तथा केतुकी स्थितिमें मतभेद है। बहुत-से विद्वान् बुधको एकादश भावमें, राहुको तृतीय भावमें और केतुको नवम भावमें मानते हैं।

पाँच उच्चस्थ ग्रहोंका प्रभाव

राजा श्रीराम और रामराज्यकी तुलना अन्य किसी राजा और किसी राज्यसे नहीं की जा सकती; न तो श्रीराम-जैसा राजा होगा, न रामराज्य-जैसा सुखदायी राज्य। पुराणोंके उल्लेखसे अवगत होता है कि श्रीरामने राजा बननेपर ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य किया। यह सब पाँच उच्चस्थ ग्रहोंका प्रभाव था। यद्यपि मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी विशेषता पाँच उच्चस्थ ग्रहोंसे नहीं थी, ग्रह तो उन्हींके प्रभावसे प्रभावित थे, तथापि लौकिक विचारधारासे उन पाँचों उच्चस्थ ग्रहोंने भी अपना प्रभाव दिखलाया। मङ्गल भी उच्चस्थ थे। मङ्गल शुभद ग्रह नहीं हैं। अतः मङ्गलने मर्यादापालक श्रीरामके जीवनमें स्त्री-विषयक कष्ट दिया। पुनर्वसुके चतुर्थ चरणमें राम अवतरित हुए और पुनर्वसुके चौथे चरणके कारण गुरुकी दशा चार वर्ष शेष रही। गुरुके बाद ही शनिदेवकी महादशा प्रारम्भ होती है, जो १९ वर्षतक चलती है। बुधकी महादशामें मर्यादापालक श्रीरामको वनमें जाना पड़ा था और पुराणोंके उल्लेखानुसार (मानसके अनुसार नहीं) बुधकी महादशामें ४१ वर्षकी अवस्थामें वनयात्रा समाप्त हुई थी। इस प्रकार भगवान् श्रीरामकी कुण्डलीके अनुसार उनके आविर्भाव-कालका संक्षेपमें विचार किया गया।

एक मनोहर झाँकी

(द्रष्टा—एक भक्त)

अयोध्यापुरीमें महाराज दशरथका विविध प्रकारके रत्नोंसे जटित बड़ा ही सुन्दर और विचित्र रसोई-घर है। उसमें स्वर्णकी चौकियोंपर अनेकों प्रकारके स्वर्णके थाल सजाये हुए हैं। उनमें अनेकों प्रकारके मिष्टान्न तथा अन्य प्रकारकी भोजन-सामग्री सजायी हुई है। महाराज दशरथ राजीव-लोचन शिशुरूप भगवान् रामका सुकोमल हाथ पकड़े वहाँ पधारते हैं और एक सुन्दर आसनपर बैठ जाते हैं। महाराज स्वयं अपने हाथसे ही भगवान्‌को भोजन करा रहे हैं। बड़ी मधुर छवि है। भगवान् रामकी बालसुलभ चपलता और दशरथका वात्सल्यप्रेम देखते ही बनता है। अनेकों प्रकारके मीठे, फीके और चटपटे पदार्थ अपने हाथसे ही वे श्रीरामके मुँहमें दे रहे हैं। पहले मधुर पदार्थ—लड्डू, जलेबी, बर्फी, बादामका हलुआ, रसगुल्ला, खीरमोहन आदिका ग्रास देते हैं; फिर सुहाल, नमकीन, पूरी, रोटीका और तदनन्तर भुजिया, दाल, समोसा, कचौड़ी, बड़ा, पकौड़ी आदि बहुत-सी वस्तुओंमेंसे केवल एक-एक ग्रास खिला रहे हैं। बाहर आँगनमें कौएके वेषमें काकभुशुण्डिजी और वानरके वेषमें हनुमान्‌जी प्रसादकी प्रतीक्षामें ध्यान लगाये बैठे हुए हैं। दोनोंके ही मनमें भगवान्‌का प्रसाद पानेकी उत्कट लालसा है; दोनों ही भगवान्‌की कृपाकी बाट देख रहे हैं। भगवान् अपने पिता दशरथको प्रसन्न करनेके लिये उनकी इच्छाके अनुसार भोजन कर रहे हैं और भीतर-ही-भीतर उन्हें प्रसाद देनेकी भी सोच रहे हैं। कभी-कभी मुस्कराकर उनकी ओर देख लेते हैं। भगवान् तो अन्तर्यामी हैं ही और उनकी भक्तवत्सलताका तो कहना ही क्या है। अवसर पाते ही वे थालमेंसे एक रोटी लेकर बड़े जोरसे आँगनकी ओर भागे। दशरथजी खिलाते-खिलाते मुग्ध हो रहे थे, आँगनमें चले जानेपर उन्होंने देखा और वे भी उनके पीछे पकड़नेके लिये दौड़े।

दौड़ते हुए दशरथने कहा—'बेटा! लाल! इस प्रकार खाते हुए कहाँ जा रहे हो?' तनिक सुनो तो सही। बेटा! मेरे पास लौट आओ, मेरे हाथसे खाओ, कहीं दौड़कर भी खाया जाता है?' परंतु भगवान् उनकी पकड़में नहीं आये। वृद्ध शरीरके कारण दशरथजी हाँफने लगे, उनसे दौड़ा नहीं गया। माता कौसल्याने कहा—'महाराज! आप परिश्रम न करें, मैं अभी अपने लालको पकड़कर लाती हूँ।' दशरथजी बैठ गये। माता कौसल्याने दौड़कर रामलालाकी बाँह पकड़ ली।

आँगनमें मणियाँ जड़ी हुई थीं। स्फटिक और नीलमके खंभे बने हुए थे। भगवान्‌ने उनमें अपनी परछाईं देखी और लगे नाचने। उन्होंने देखा कि मेरे नाचनेके साथ-साथ खंभोंमें बहुत-से राम नाच रहे हैं। भगवान् जितने उल्लासके साथ नाचते, जितना उछलते, ज्यों-ज्यों ठुमुक-ठुमुक पैर

रखते, त्यों-ही-त्यों प्रतिबिम्बकी मूर्तियाँ भी नाचतीं और अपने-अपने पैर रखतीं। उस समय आनन्द और प्रेमकी मधुमयी धारा प्रवाहित होने लगी, परम सुखका समुद्र उमड़ आया। अहा हा! कितनी मधुर छवि है। कैसा सुन्दर नर्तन है। कमलके समान सुन्दर रतनारी आँखें प्रेमकी वर्षा कर रही हैं। पीत अँगुलीकी शोभा विलक्षण ही है। काले-काले लंबे-लंबे घुँघराले कपोलोंतक लटकते हुए केश मनको बरबस हरण कर रहे हैं, श्याम मूर्तिमें हरी झलक अनुपम ही है। हाथमें रोटी लिये हुए नाच रहे हैं। कैसा आनन्द है! कौसल्या तो मुग्ध हो गयीं। उन्हें स्मरण ही नहीं रहा कि महाराज थालपर जीमनेके लिये बैठे हैं। वे निर्निमेष नेत्रोंसे भगवान्‌के इस अनूप रूपरसका पान करने लगीं। धन्य!

श्रीकाकभुशुण्डिजी भगवान्‌का चरणस्पर्श करनेके लिये अपनी चोंच बढ़ा रहे हैं, भगवान् दौड़कर उनके पीछे आ जाते हैं और बोलते हैं—'पूँ'! काकभुशुण्डिजी उड़ जाते हैं। भगवान् भी पीछे-पीछे दौड़ते हैं। कभी-कभी भगवान् अपनी रोटी दिखाकर अपने पास बुला लेते हैं। कभी-कभी चिढ़ाकर भगा देते हैं। इसी प्रकार काकभुशुण्डिजीके साथ खेल रहे हैं। तदनन्तर भगवान् रोटीका एक टुकड़ा काकभुशुण्डिजीके सामने गिरा देते हैं; वे प्रेममुग्ध होकर रोटीका टुकड़ा उठा लेते हैं और बड़े प्रेमसे सब कौओंको भगवान्‌के प्रसादका रसास्वादन कराते हुए स्वयं पाते हैं। भगवान्‌के प्रसादकी कुछ ऐसी महिमा है कि वह एकसे अनन्त बन जाता है। कैसा आनन्द है! कितना मधुर दर्शन है! काकभुशुण्डिजी भगवान्‌का प्रसाद पा रहे हैं।

हनुमान्‌जी भगवान्‌के साथ खेलनेके लिये नन्हा-सा रूप धारण करके आये हुए थे। वे भी उसी समय भगवान्‌के चरणोंका स्पर्श करनेके लिये लालायित हो उठे। वे चरण-स्पर्शके लिये लपके ही थे कि भगवान् अपनी बाल-लीलाका अभिनय पूर्ण करनेके लिये चौंककर उछल पड़े। वात्सल्य-भावसे माता कौसल्या लाठी लेकर हनुमान्‌जीकी ओर दौड़ीं, तबतक वे भगवान्‌के प्रसादी रोटीके टुकड़ेको लेकर कूद गये थे। उनके कूद जानेपर भगवान् हँसने लगे। हनुमान्‌जी प्रसाद पाने लगे और माता कौसल्या भगवान्‌का हाथ पकड़कर उन्हें महाराजके पास ले चलीं। उन्होंने भगवान् रामकी बाँह पकड़कर कहा—'लल्ला! चलो, महाराज थाल-पर बैठे हुए तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं, तुम्हें खिलानेके लिये बड़े ही उत्सुक हो रहे हैं।' भगवान् अपने सखाके साथ धूलमें लोटने लगे। उनके मुँहमें लगा हुआ खीरका चावल जमीनपर गिर रहा है। भगवान् काकभुशुण्डिकी ओर देखकर हँस रहे हैं और वे उड़ते हुए उसे लेना ही चाहते हैं। धन्य है भगवान्‌की भक्तवत्सलता!

थालपर बैठे हुए महाराज दशरथ भगवान्‌को खिलानेके लिये बहुत ही उत्सुक हैं। उनका एक-एक पल कल्पके समान बीत रहा है। भला, भगवान् कबतक उनकी प्रतीक्षाकी उपेक्षा करते, वे अपनी माँके साथ ठुमुक-ठुमुक दौड़ते हुए उन्हींके पास जा रहे हैं। महाराज दशरथके आनन्दका क्या कहना। वे बड़े प्रेमसे बोले—'लल्ला! तुम भोजन छोड़कर कहाँ भाग गये।' भगवान्‌के मुखारविन्दमें लगी हुई धूलको वे अपने दुपट्टेसे झाड़ रहे हैं और शेष बचा हुआ कैर, करैली, पापड़ आदि चरपरा भोजन कराते जा रहे हैं। अपूर्व आनन्द, अनुपम आनन्द और अनन्त आनन्द।

मनुष्यके वेषमें देवराज इन्द्र आकर भगवान्‌का मुँह धुला रहे हैं। देवर्षि नारद पान दे रहे हैं। अब भगवान् अपने पिताकी कनिष्ठिका अँगुली पकड़े हुए ठुमुक-ठुमुक चल रहे हैं। पहले महलमें गये, फिर सभामण्डपमें।

पार्षदोंने, जो कि वहाँ मनुष्यरूपमें थे, प्रसाद बाँट-बाँटकर खूब खाया और जिन पात्रोंमें भगवान्‌ने भोजन किया था, सेवकोंने उनमेंसे प्रसाद लेकर भक्तोंको बाँटा और शेष स्वयं पा लिया। फिर उन पार्षदोंको (पात्रोंको) शुद्ध करके रख दिया। सब लोग सभामण्डपमें एकत्र होकर भगवान्‌की अनूप रूप-माधुरीका रस लेने लगे।

अहा! परमात्मा, परमेश्वर, परमपुरुष होते हुए भी भक्तोंको आनन्दित करनेके लिये प्रभु कैसी-कैसी लीला कर रहे हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

(गीता ४। ६)

'मैं अजन्मा और अविनाशीस्वरूप होते हुए भी, तथा समस्त प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ।'

'सब भाँति सनेही'

(लेखक—पं० श्रीसूरजचंदजी शाह, सत्यप्रेमी 'डाँगीजी')

भगवान् अनन्तकी जननी सुमित्राम्बा अपने सुपुत्रको शिष्य मानकर उपदेशामृत पिला रही हैं—

तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥
(मानस २७३ । १)

साथ ही 'लच्छन धाम रामप्रिय, सकल जगत्के आधार-स्तम्भ' लक्ष्मणको परम वात्सल्यसे सराबोर 'तात' शब्दसे सम्बोधित कर रही हैं वे। पुत्रको सम्पूर्ण जीवोंके 'परम भक्ताचार्य' पदपर अभिषिक्त कर रही हैं और कह रही हैं—"तुम्हारी माँ तो बेटा! 'वैदेही' है। देहातीत अवस्थाकी सुदृढ़ भूमिकासे उत्पन्न सत्-शक्ति सीताकी शरण ले। देहकी माताका सम्बन्ध भूल जा, तभी 'रामप्रिय'का निश्चल विशेषण सफल कर सकेगा।"

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥
(वही, २ । ७४ । २)

'राग-द्वेष-मत्सर-मद-मोहादिके स्वप्नमें भी वश न होकर सब प्रकारसे स्नेही भगवान् रामको पालक मानकर भक्ति करना।'

जगदाधार-जननी सुमित्राम्बा प्रभुको 'सब भाँति सनेही' कैसे कह रही हैं? 'दस इन्द्रियोंके घोड़ोंसे चलनेवाले इस देहरूपी रथकी तो तुम्हारे पिता गुरु वसिष्ठके प्रतापसे रक्षा कर लेंगे, पर सर्वस्वकी रक्षा सर्वान्तर्यामी परमात्मा सर्वत्र सर्वदा करते रहते हैं। प्रभु सब प्रकारसे स्नेही पिता हैं—उनकी सेवा ही तेरा परम धर्म है। मेरी कोख धन्य है।'

श्रीमाताजीका यह शाश्वत-कल्याणकारी उपदेश श्रवण करके श्रीलक्ष्मणजी प्रभुके चरणोंमें ऐसे भागे, जैसे कठिन पाठके न समझनेसे ऊबे हुए विद्यार्थी छुट्टीका घंटा पड़ते ही दौड़ते हैं। और प्रभु—प्रभु तो ऐसे, जो भक्तोंके लिये खड़े-खड़े बाट देखा करते हैं। इतने स्नेही हैं कि हमारा कल्याण करनेके लिये प्रतिलव, प्रतिपल, प्रतिक्षेत्र और प्रति-भावमें 'हाजिरे-हुजूर' हैं। अपनेपर श्रद्धा न करनेवालोंका भी वे पालन-पोषण करते हैं। उनके स्नेहको कौन समझ सकता है—

तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
(वही, ५ । १४ । ३)

जो प्रभुका मन है, वही प्रेमका मर्म समझता है और वह मन—

सो मनु रहत सदा तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥
(वही, ५ । १४ । ३½)

वह मन पवित्र-सत्य-बुद्धिप्रदायिनी माँ सीताके पास ही है—प्रकृतिके अधीन है। श्रीहनुमान्जीको भगवती सीताने अपना पुत्र माना कि वे सम्पूर्ण गुणोंके भंडार हो गये—

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥
(वही, ५ । ३१ । ३)

'विपद् विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः॥'

प्रभु तो ताड़का और मारीचका भी उद्धार कर देते हैं। वे ऐसे स्नेही हैं कि जो कोई किसी भी भावसे उनसे मिला, उसका कल्याण हो गया।

भक्त सूरदासजीकी उक्ति है—

इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परौ।
पारस सो दुविधा नहिं जानत, कंचन करत खरौ॥
(सूरविनय० २७१ । २)

भगवान् पापीसे घृणा नहीं करते, पापको निर्मूल कर देते हैं।

जिसके लिये हम सर्वस्व समर्पण कर सकें, वह हमारा स्नेही और जो हमारे लिये सर्वस्व समर्पण कर सके, उसके हम स्नेही—श्रीभरतजी ही रामके स्नेही हैं और हम सबके प्रत्येक दशामें श्रीराम ही सब प्रकारसे स्नेही हैं। वे तो 'मैं तुम्हारा हूँ'—यह कहकर केवल एक बार शरणमें आ जानेवालेको तुरंत छातीसे लगा लेते हैं, चाहे वह गीध हो या व्याध अथवा शबरी ही क्यों न हो। प्रभु सहज कृपालु हैं, इनकी कृपाका पार कोई नहीं पा सकता। प्रभुसे मिलनेके लिये कोई शर्त नहीं है। उनका किसी भी भावसे नाम लिया कि उन्होंने अपनाया।

वनवाससे लौटनेपर उन्हें माता कौशल्याम्बाने अपने हाथसे सरस मधुर व्यञ्जनसहित भोजन परोसा और प्रभुसे पूछा—'कहाँ मिला होगा ऐसा भोजन!' श्रीराम बोले, 'माँ! तुम्हारे परोसे हुए भोजनकी

तुलना किसके साथ हो सकती है। अनुपम स्वाद है!' श्रीलक्ष्मणजीने प्रभुको याद दिलायी—'भैया! माँको बोल दूँ कि आपने शबरीके बेरोंकी प्रशंसा बहुत की थी?' प्रभुने माँसे कहा, 'हाँ, मैया! लक्ष्मण सच कहता है। शबरीके बेर तो अलौकिक थे—उतना दिव्य और पवित्र आनन्द तो माँ सुनयनाजीका परोसा हुआ भोजन करनेमें भी नहीं आया।' यों कहते-कहते भगवान् रो पड़े। धन्य स्नेह!

जैसे गाय बछड़ेके अङ्गोंपर लगे हुए मलको प्रेमपूर्वक जीभसे स्वच्छ कर देती है, उसी प्रकार प्रभु अपने भक्तके पापोंका क्षालन कर देते हैं।

'जटायु की धूरि जटान सों झारी।'

—यह कविकी उक्ति प्रसिद्ध है।

संत तुकाराम तो कहते हैं—

'वाट वाहे ऊभा भेटी ची आवडी कृपालु तातडी उतावीळ।'

भगवान् तो अपने भक्तोंसे मिलनेके लिये इतने उतावले रहते हैं कि एक मामूली-सी ईंटपर 'अटेन्शन'की मुद्रामें कटिबद्ध खड़े हैं—उनको हमसे मिलनेके लिये इतनी जल्दी है कि जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते; परंतु हम तो उनकी तरफ आँख उठाकर देखनेको भी तैयार नहीं हैं। क्यों? किसी सुमित्राम्बा-जैसे गुरुकी कृपा हमपर नहीं हुई।

बिनु गुर होइ कि ग्यान' (७। ८९ क)

ज्ञान क्या गुरु बिना किसीको होता है?—कभी नहीं। मान हटे बिना ज्ञान सम्भव नहीं और गुरुचरणोंमें नमन किये बिना मनुष्य 'मानी' तो हो सकता है, 'ज्ञानी' नहीं। मानका हनन हो जाय और हनूमान्‌जी-सरीखे ज्ञानियोंमें अग्रगण्य गुरु मिलें तो संत तुलसीदासकी तरह सबको प्रभु-दर्शन हो जायँ। यों तो श्रीलक्ष्मणजी और हनूमान्‌जी भी प्रभुके स्नेहका मर्म जानते हैं; परंतु बोलिये—

भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥

(वही, २। २१७। ३½)

श्रीभरत-सरीखा 'रामसनेही' कौन है, जिसे निरन्तर प्रभु राम भी अपने हृदयमें जपते रहते हैं? सब छोड़कर 'सब भाँति सनेही' प्रभुको श्रीलक्ष्मणके समान जिसने शरण ग्रहण कर ली, उसका उद्धार ध्रुव है।

भगवान् राम दस इन्द्रियोंद्वारा संचालित रथस्वरूप देहमें होनेपर भी 'ब्रह्म' हैं और भगवती सीता विदेहपुरीमें पैदा होनेपर भी 'माया' हैं। देहातीत भूमिकाकी माया और देहगत परब्रह्म मिलकर ही उत्तम लीलाएँ सम्पन्न कर सकते हैं। हम बद्ध जीव भी उनकी शरण ग्रहण करके लीला-लहरोंमें सम्मिलित हो सकते हैं।

वह दिन कब होगा, जब यह प्रभुका सनातन अंश जीव अपने शाश्वत नित्य ध्रुव स्वरूपको समझकर सद्गुरु-कृपासे उनकी स्वधाम-लीला-लहरीका अङ्ग बनकर नित्य सच्चिदानन्दमें निमग्न रहेगा।

'सब भाँति सनेही' राम कृपा करें, तब संत मिलें और संत मिलें, तब विवेक जाग्रत् हो और विवेक जाग्रत् हो, तब संसार-घोर-निधिके पार हम जा सकते हैं।

'नामु लेत भव सिंधु सुखाहीं।' (वही, १। २४। २)

सुजनो! मनमें विचार कर लो और निश्चय कर लो कि नाम लिया और बेड़ा पार। प्रभु 'सब भाँति सनेही' हैं; वे अपने-आप सब सँभालेंगे।

अपनी दीनता

अपने कौन-कौन गुन कहिए।
देख-देख कें लाजन मरियत, ठौर नहीं कहुँ रइए।
जान परत नरकहुँ में कैसेहुँ कौनहु गति नहिं पइए॥
रग-रग, रोम-रोममें दूषन भूषन-से सजवइए।
तब का सान-गुमान करें उर, का काहू से कइए॥
एक अधार लियौ सिय जू कौ, उनही के गुन गइए।
मैथिलि-सरन न द्वार द्वार फिर धूर चाटबे जइए॥

—श्रीमैथिलिशरणजी 'भक्तमाली'

श्रीराम-चरित्रके कुछ हृदयस्पर्शी प्रसङ्ग

(लेखक—श्रीचन्द्रशेखरजी पाण्डेय, एम्० ए०, टी० टी०)

भक्त-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने अनुपम ग्रन्थ 'रामचरितमानस'-में यद्यपि स्थान-स्थानपर श्रीरामकी निर्गुण निराकार परब्रह्मके साथ एकताका स्पष्ट संकेत किया है, तथापि रामचरित्रकी विशेषता कहिये अथवा कविकी अद्भुत कुशलता समझिये, पाठकके मनमें यह भाव स्थायीरूप नहीं ले पाता। ऐसे स्थलोंसे आगे बढ़कर लीला-प्रसङ्ग आते ही कुछ पता भी नहीं चल पाता कि यह ज्ञान कब लुप्त हो गया। बस, मन श्रीरामके हर्ष-विषादपूर्ण लीला-तरंगोंमें डूबने-उतराने लगता है, हृदय भक्ति-रससे सराबोर हो जाता है। ज्ञानके ऊपर भक्तिकी यह विजय स्वाभाविक भी है। ज्ञानका आधार बुद्धि है और भक्तिका हृदय। इसीलिये सहृदय पाठकके मनपर भक्ति अनायास ही ज्ञानको अपसारित करके प्रतिष्ठित हो जाती है। तभी तो परम ज्ञानी योगेश्वर भगवान् शंकर भक्ति-भावसे प्रेरित होकर श्रीराम या श्रीकृष्णके बालस्वरूपकी झाँकीके लिये विह्वल-मनसे चल पड़ते हैं। भक्तिप्रेमकी इस महिमाको बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर'ने अपनी अमर काव्य-रचना 'उद्धव-शतक'-में इन शब्दोंमें व्यक्त किया है—

> है कैं उपदेस औ—सँदेस-पन ऊधौ चले
> सुजस कमाइबे उछाह-उदगार में।
> कहै रतनाकर निहारि कान्ह कातर पै
> आतुर भए यौं रह्यौ मन न सँभार में॥
> ज्ञान-गठरी की गाँठि छरकि न जान्यो कब
> हरैं-हरैं पूँजी सब सरकि कछार में।
> डार में तमालनि की कछु बिरमानी अरु
> कछु अरुझानी है करीरनि के झार में॥(२४)

गलित-ज्ञान-गर्व तथा गोपी-प्रेम-दीक्षित उद्धवजी मथुरा लौटकर श्रीकृष्णसे अपनी ज्ञान-चतुरताकी दुर्दशाका वर्णन अत्यन्त निरसंकोच-भावसे इस प्रकार करते हैं—

> रावरे पठाए जोग देन कौं सिधाए हुते
> ग्यान-गुन-गौरव के अति उदगार में।
> कहै रतनाकर पै चातुरी हमारी सबै
> कित धौं हिरानी दसा दारुन अपार में॥
> उड़ि उधिरानी किधौं ऊरध उसासनि में,
> बहि धौं बिलानी कहूँ आँसुनि की धार में।
> चूर ह्वै गई धौं भूरि दुख के दरेरनि में,
> छार ह्वै गई धौं बिरहानल की झार में॥(१२०)

प्रेम-भक्तिका प्रसङ्ग मुझे प्रेमावतार श्रीकृष्णकी ओर खींच ले गया। कोई बात नहीं, इसे भी बुद्धिपर भक्तिकी विजयका एक उदाहरण मान लीजिये। आइये, अब श्रीराम-चरित्रके कुछ उन प्रसङ्गोंपर विचार करें, जो बरबस मनको भाव-विभोर कर देते हैं।

वन-गमन-प्रसङ्गपर विचार करते हैं तो उसमें विभिन्न पारिवारिक परिस्थितियाँ, उत्कृष्ट मानव-चरित्रकी सम्भावनाएँ तथा श्रीरामकी अनेक विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं। सुमन्त्रके साथ आनेपर राम अपने पिताको व्यथित एवं मूर्च्छित पाते हैं। कैकेयीके बतानेपर भी उन्हें विश्वास नहीं होता कि महाराज केवल इसी कारण इतने दुखी हैं। राम कहते हैं—'अवश्य मुझसे कोई बड़ा अपराध हुआ है, जिसके कारण पिताजीको इतना दुःख हो रहा है।'

> थोरिहिं बात पितहि दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी॥
> राउ धीर गुन उदधि अगाधू। भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू॥
> (रा० च० मा० २। ४१। ३-३½)

हृदयकी इस सरलतापर कौन हृदय मुग्ध न होगा। कैकेयीके शपथपूर्वक कारण बतानेपर राम शान्त-गम्भीर हो जाते हैं और परिस्थितिकी जटिलताका अनुभव करते हुए शीघ्र ही अपने कर्तव्यका निर्णय कर लेते हैं। व्यथित पिताको मधुर वचनोंसे सान्त्वना देकर राम माता कौशल्याके पास आते हैं। भोली माताको कैकेयी-काण्डका अभी कुछ पता नहीं है। वह तो इस प्रतीक्षामें है कि 'मेरे लालका राजतिलक कब होगा।' ऐसे अवसरपर राम आकर जब सूचित करते हैं कि 'पिताजीने मुझे राज्य दिया तो है, किंतु वनका', तब माताके हृदयपर क्या बीती होगी, इसका अनुमान करके ही हृदय विदीर्ण हो जाता है।

> बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके॥
> कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू॥
> (वही, २। ५३½, १½)

फिर भी कौशल्या रामकी माता थीं। धर्माधर्म, नीति-अनीति और उचित-अनुचितका विचार करके वे हृदयपर

पत्थर रख लेती हैं तथा रामको वन जानेकी आज्ञा दे देती हैं। करुणाजनक परिस्थिति यहीं शान्त नहीं हो जाती। जब सीता भी वन जानेकी इच्छा प्रकट करती हैं, तब इसकी करुणा-धाराका वेग और भी प्रबल हो जाता है। कौशल्याका हृदय (साथ-ही-साथ पाठकका भी) यह सोचकर फटा जा रहा है कि जिस सीताने पलँग, पीढ़ा तथा गोद छोड़कर कठोर धरतीपर कभी पैर नहीं रक्खा, वह वनके कँटीले-कँकरीले मार्गपर कैसे चलेगी। किंतु सीताकी अनन्य पति-परायणताके सामने स्वयं रामकी भी कुछ नहीं चली। इसी प्रकार संकोची राम लक्ष्मणके भ्रातृ-प्रेमके सामने भी झुक गये। राम, सीता और लक्ष्मणके वन-गमनकी बात सुनकर अयोध्यामें विषादका सागर ही उमड़ पड़ता है। उस समय प्रजाका हाहाकार किसीको भी रुला सकता है।

वन-गमन-प्रसङ्गकी करुणताकी चरम सीमा दशरथ-मरणकी घटना है। रामके गङ्गापार हो जानेपर सुमन्त्र जब लौटकर महाराजको बताते हैं कि 'मैं श्रीरामको लौटा लानेमें असफल हुआ', तब दशरथजीका विलाप सुनकर करुणा भी रो पड़ती है। सहृदय पाठक उस प्रसङ्गको सस्वर नहीं पढ़ सकता। बस, वह मन-ही-मन पढ़ता जाता है और नेत्रोंसे अश्रु बरसाता जाता है। किसमें इतना धैर्य है, जो निम्नाङ्कित अर्द्धालियोंको लय-धुनके साथ पढ़ सके—

कहँ लखनु कहँ रामु सनेही। कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही॥
सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहिं न प्रेम पनु मोर निबाहा॥
हा रघुनंदन प्रान पिरीते। तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते॥
(रा० च० मा० २। १५४। १, ३, ३½)

राम-चरित्रका एक अन्य मार्मिक स्थल है—चित्रकूटमें राम-भरत-मिलन। गोस्वामीजी भरतके उदात्त चरित्रकी स्थापना आरम्भसे ही करते आये हैं। जो व्यक्ति रामका पक्ष लेकर स्वर्गसे भी महान् अपनी जननीकी भर्त्सना कर सकता है, वह रामका कितना अनन्य भक्त होगा, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। अयोध्याके विशाल राज्यको जिसने वमनके समान त्याग दिया, वह कितना महान् होगा। रामके वन जानेकी बात सुनकर जो पिताकी मृत्यु भी भूल गया, वह राम-प्रेमकी मूर्ति नहीं तो और क्या है! भरतके राम-प्रेमपर चर-अचर सभी मुग्ध हैं, तभी तो चित्रकूट जाते समय बादलोंने उनपर छाया की—

किएँ जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कहँ जस भा भरतहि जात॥
(रा० च० मा० २। २१६)

ऐसे भरतके आनेका समाचार पाकर राम हर्षातिरेकमें उठकर लड़खड़ायें तो आश्चर्यकी बात नहीं—

उठे रामु सुनि पेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥
(रा० च० मा० २। २३९। ४)

रामको साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए धरतीपर लेटे रहनेमें भरत परम सुखका अनुभव कर रहे हैं। किंतु भक्तवत्सल राम अपने प्रिय भरतको लेटे रहने दें, तब न? वे भरतको हृदयसे लगानेको आकुल हैं। इस इच्छाकी पूर्तिके लिये उन्हें बलप्रयोग करना पड़ा—

बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान॥
(रा० च० मा० २। २४०)

राम-भरत-मिलनका यही भाव-रस-सिन्धु तब भी उमड़ पड़ता है, जब राम लङ्कासे अयोध्या आते हैं।

रामके मनमें भरतके लिये कितना ऊँचा भाव था, इसका सबसे बड़ा प्रमाण चित्रकूटकी सभामें मिलता है। गुरुजनोंके सम्मुख भरतकी प्रशंसा करते हुए राम कहते हैं कि 'संसारमें भरतके समान दूसरा कोई भाई नहीं हुआ।'

भयउ न भुअन भरत सम भाई।
(वही, २। २५८। २)

माताओंसे रामके मिलनेका प्रसङ्ग भी कुछ कम हृदय-स्पर्शी नहीं है। कैकेयीके पश्चात्ताप एवं अन्तःक्षोभका अनुमान करके राम पहले उसीसे मिले—

प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभायँ भगति मति भेई॥
(रा० च० मा० २। २४३। ३½)

कैकेयीके हृदयका समाधान करनेके बाद ही राम निश्चिन्त हुए और तब लक्ष्मणके साथ अपनी मातासे मिलनेके लिये जाते हैं। माता-पुत्रका यह मिलन कितना भावपूर्ण रहा होगा। इतने दिनोंके बाद रामसे मिलकर कौशल्याने जिस परम आह्लादका अनुभव किया होगा, उसका आभास पाठकको भी गद्गद करनेमें समर्थ है—

पुनि जननी चरननि दोउ भ्राता। परे पेम ब्याकुल सब गाता॥
अति अनुराग अंब उर लाए। नयन सनेह सलिल अन्हवाए॥
(रा० च० मा० २। २४४। २-२½)

एक नहीं, चित्रकूटके सभी प्रसङ्ग मार्मिक स्थलोंसे पूर्ण हैं। सीताका सासोंसे और अपने माता-पितासे मिलना तथा सभामें राम-भरत-संवाद आदि वर्णनोंमें पाठक सहज ही तल्लीन हो जाता है।

सीता-हरणके पश्चात् सीताके लिये रामके विलापका प्रसङ्ग तो शुद्ध भाव-जगत्‌की वस्तु है, जो रामकी ईश्वरताको सर्वथा लुप्त कर देता है। राम मानवीय धरातलसे कुछ भी ऊपर उठे नहीं दीखते। किंतु उनका करुण-विलाप अवाञ्छनीय या असंगत प्रतीत नहीं होता। वह भी एक आदर्श स्थापित करता है कि एक पतिको अपनी पत्नीके प्रति कितना स्नेह होना चाहिये। सीताके वियोगमें राम इतने विकल हो गये कि उनका मन छोटे भाई लक्ष्मणकी उपस्थितिकी भी कुछ चिन्ता नहीं करता और वे कह उठते हैं—

हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता॥
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥
किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं॥
(रा० च० मा० २९। ३½। ४½, ७½)

लक्ष्मणकी उपस्थितिका संकोच तो दूर रहा, राम प्रवर्षण पर्वतपर रहते हुए स्वयं लक्ष्मणसे ही मनका उद्गार प्रकट करते हैं—

'घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥
(रा० च० मा० ४। १३। ½)

एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महुँ आनौं॥
कतहुँ रहउ जौं जीवति होई। तात जतन करि आनउँ सोई॥
सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी॥
(रा० च० मा० ४। १७। १-२)

यहाँ राम अपनी दीनताके कारण दयनीय और सहानुभूतिके पात्र हो जाते हैं। स्नेह-विकलताके साथ ही रामने सुग्रीवपर क्रोध भी किया और उसे मारनेकी बात कही, जिसपर गोस्वामीजीने अवसर पाकर शंकरजीके मुखसे शीघ्र ही कहलवा दिया—

जासु कृपाँ छूटहिं मद मोहा। ता कहुँ उमा कि सपनेहुँ कोहा॥
(रा० च० मा० ४। १७। ३)

किंतु स्नेह-घटरूपी प्रसङ्गपर इस ज्ञान-सलिलकी एक बूँद भी नहीं ठहरती। पाठकका हृदय रामकी व्यथासे पूर्ववत् व्यथित रहता है।

सीताके विरहमें रामकी व्याकुलताका पूर्ण परिपाक तब दीखता है, जब वे हनुमान्‌जीके द्वारा सीताको मौखिक संदेश भेजते हैं। कुछ प्रकट, कुछ संकेतमें रामने अपनी मार्मिक व्यथाको इस प्रकार स्पष्ट किया है—

कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता॥
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू॥
कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा॥
कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥
(रा० च० मा० ५। १४। १-३½)

अपने प्राणनाथ, जीवन-धन, प्रिय पति रामका ऐसा मार्मिक संदेश सुनकर सीताका चेतनाशून्य हो जाना अत्यन्त स्वाभाविक है। सहृदय पाठककी भी कुछ यही दशा होती है। स्नेह-सिन्धुमें आकण्ठमग्न होकर जैसे वह भी तन-मनकी सुधि भूल जाना चाहता है।

हृदय-स्पर्शी ही नहीं, हृदयको खण्ड-खण्ड करनेवाला प्रसङ्ग लक्ष्मणका शक्ति लगनेसे मूर्छित होना है। संजीवनी लानेके लिये गये हुए हनुमान्‌जीको आनेमें कुछ विलम्ब हुआ। रामसे रहा नहीं गया। वे लक्ष्मणका शीश अपनी गोदमें रखकर करुणविलाप करने लगते हैं। धर्मव्रतधारी सत्यसंकल्प राम यहाँतक कह देते हैं कि 'यदि मैं जानता कि वनमें आनेसे तुम्हारा बिछोह हो जायगा तो मैं पिताजीकी बात न मानता।' रोते हुए रामको ऐसा कहते पाकर कौन हृदय न रो पड़ेगा।

निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम्ह प्रान अधारा॥
सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी। सब बिधि सुखद परम हित जानी॥
उतरु काह दैहउँ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई॥
(रा० च० मा० ६। ६०। ७-८)

इसके बाद ही यद्यपि शंकरजी कह उठते हैं—
उमा एक अखंड रघुराई। नर गति भगत कृपाल देखाई॥
(रा० च० मा० ६। ६०। ९)

तथापि राम तथा पाठकके आँसुओंमें यह बात बह-सी जाती है। पाठकके हृदयको इस कथनसे नहीं, वरं हनुमान्‌जीके आनेपर और लक्ष्मणके सजीव होनेपर ही शान्ति मिलती है।

राम-चरित्रमें रामद्वारा सीताके परित्यागका प्रसङ्ग इतना हृदय-स्पर्शी और करुण है कि गोस्वामीजीकी लेखनीने कदाचित् चलना अस्वीकार कर दिया और वे लव-कुश-काण्डकी रचना नहीं कर सके। आदिकवि वाल्मीकि तथा

भवभूति आदि कवियोंने इस प्रसङ्गपर करुणाकी ऐसी धारा बहायी है, जिसके समक्ष विशाल शिला-खण्ड-सदृश हृदय भी नहीं ठहर सकता। सीताकी मधुर स्मृतिमें रामकी मूक वेदना चरमबिन्दुको स्पर्श करती हुई भी अव्यक्त रहती है।

वस्तुतः रामने अपने जीवनमें वेदना, पीड़ा, करुणाको ही स्वेच्छासे स्वीकार किया। मानव-समाजके समक्ष रामको यही आदर्श स्थापित करना था कि जो संसारका कल्याण करना चाहता है, उसे वेदना और करुणाको ही अपनी सहचरी बनाना चाहिये। इस वेदनाका अन्त भी जीवनके साथ ही होता है। लोक-हितैषीको तो इस आशासे परिचय भी नहीं होना चाहिये कि बस, अमुक कार्यके बाद मेरे जीवनमें भी सुख-चैन प्रवेश करेगा। समाज-हित ही उसका साध्य है, जीवन-सर्वस्व है और सहज स्वभाव है।

रामका अन्त अत्यन्त करुणाजनक तथा लोक-हृदयको व्यथित कर देनेवाला है। धर्म, कर्तव्य एवं सत्यका पालन करनेके लिये रामको प्रिय लक्ष्मणको प्राणदण्ड देना पड़ता है। सोचिये, यह निर्णय सुनाते समय रामके हृदयपर क्या बीती होगी। वज्र-हृदय भी पिघल जायगा। इसीलिये रामको 'वज्रसे भी अधिक कठोर' कहते हैं। उनकी दूसरी विशेषता भी है, 'कुसुमसे भी अधिक कोमल', यह दूसरी बात है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राम-चरित्रमें दो-चार नहीं, प्रत्युत उनका समग्र जीवन ही हृदयस्पर्शी प्रसङ्गोंसे पूरित है। अपार वेदना स्वीकार तथा सहन करनेवाले श्रीराम धन्य हैं। उन्हें नित्यप्रतिका कोटिशः प्रणाम।

श्रीराम-कथा-तत्त्व-चिन्तन

(लेखक—संतप्रवर परमहंस श्रीरामचन्द्रजी शास्त्री डोंगरे महाराज)

१—रामजन्म

भगवान् शंकर ज्योतिषी बनकर अयोध्याकी गलियोंमें घूम रहे हैं। शंकरके इष्ट बालक राम हैं। प्रातःकालसे ही देव-गन्धर्व प्रभुके आविर्भावकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। जबतक वैष्णव आतुर नहीं होते, तबतक भगवान्‌का जन्म नहीं होता। परम पवित्र अवसर उपस्थित हुआ है। चैत्रमास, शुक्लपक्ष, नवमी तिथि, मध्याह्नका समय—

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभा सिंधु खरारी॥
कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता॥
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता॥
(रा० च० मा० १। १९१ छं० १-२)

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥
(वही, १। १९२)

दशरथके यहाँ साक्षात् परब्रह्म श्रीहरि प्रकट हुए हैं। जो निर्गुण हैं, वे आज भक्तोंके प्रेमके वशीभूत होकर सगुण बने—

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
(वही, १। ११५। १)

वेद जिनका इस प्रकार वर्णन करते हैं, वे ही श्रीहरि भक्तोंका हित करनेके लिये दशरथके पुत्र बनकर आये हैं।

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥
जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान॥
(वही, १। ११७। ३-४; ११८)

आकाशसे देव-गन्धर्व पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। आज प्रभुने यह ज्ञात करा दिया कि 'मैं अपने भक्तोंका चारों ओरसे रक्षण करता हूँ' इसीलिये उनका चतुर्भुजरूपसे प्रादुर्भाव हुआ है। माताजीने उनकी सुन्दर स्तुति की। स्तुतिके अनन्तर उन्होंने प्रभुसे प्रार्थना की—

"नाथ! मेरे लिये आप बालक बनें। 'माता' कहकर मुझे पुकारें!" मैयाको केवल यह अनुसंधान कराना था कि 'मैं ईश्वर हूँ।' तुरंत चतुर्भुजरूप अदृश्य हो गया। प्रभु दो करवाले बालक बन गये। दासियोंको पता चल गया कि कौसल्या माताकी गोदमें सुन्दर पुत्र विराजमान है। कौसल्याने

नवलखा हार दासीको दिया। दासीके संकोच करनेपर माताने कहा—'मेरा राम सुखी रहे, मैं प्रसन्नतासे तुम्हें यह दे रही हूँ।'

दासी कहती है—'मुझे कुछ नहीं चाहिये; मुझे तो श्रीरामको खिलाना है।' माताने दासीकी गोदमें श्रीरामको रखा दिया। आज उसका ब्रह्म-सम्बन्ध हुआ है। दासी दौड़ती हुई महाराज दशरथके निकट आ गयी। बोली—'महाराज! महाराज!! बधाई है; लाला हुआ है, बधाई है!!! ऐसा ज्ञात होता है कि साक्षात् नारायण पधारे हैं।' दशरथजी वृद्ध हो गये थे। आज अनेकों वर्ष पश्चात् पुत्र उत्पन्न हुआ है। पुत्र भी साधारण नहीं है। साक्षात् नारायण भगवान् पुत्ररूपसे पधारे हैं। दशरथजीने शृङ्गार धारण किया और आये। प्रथम गणपति-पूजन हुआ। इतना अधिक दान दिया गया कि अयोध्यामें कोई गरीब ही नहीं रहा। वसिष्ठजीने 'मधुमती' ऋचाके उच्चारणसे अभिषेक किया। दशरथजी अन्तःपुरमें पधारे। आज लाला रामके दर्शनसे सारी दासियाँ देहानुसंधान भूल गयी हैं। जब देहानुसंधान ही नहीं, तब परदा ही कैसे करें? सभी परमानन्दमें हैं। देव और गन्धर्व सूक्ष्मरूपसे लालाका दर्शन करने आये हैं।

श्रीरामके जन्मोत्सवमें समस्त देवताओंको आनन्द प्राप्त हुआ है। दुःख हुआ है तो एकमात्र चन्द्रमाको। लाला रामके दर्शन करके सूर्यनारायण स्तब्ध बनकर स्थिर हो गये हैं। आगे बढ़ते ही नहीं। 'सूर्य अस्ताचलकी ओर बढ़ें तो मैं आपके दर्शन कर सकता हूँ।' चन्द्रने श्रीरामसे विनती की। 'इस सूर्यको आगे बढ़नेके लिये कहिये न। यह मुझे आपके दर्शन नहीं करने देता।' यों कहकर चन्द्रमा रोने लगा। तब श्रीरामने चन्द्रमाको आश्वासन दिया—'आजसे मैं तेरा नाम धारण करूँगा।' चन्द्रमा इसपर भी प्रसन्न नहीं हुआ। तब श्रीरामने कहा, 'तू धैर्य धारण कर। इस बार सूर्यको अवसर दिया है, भविष्यमें कृष्णावतारके समय अकेले तुझको ही अवसर दूँगा। कृष्णावतारमें रात्रिके बारह बजे मैं अवतार धारण करके आऊँगा। अतः तुझे लाभ प्राप्त होगा।' कृष्ण-जन्मके समय केवल तीन ही प्राणी जागते रहते हैं—वसुदेव, देवकी और चन्द्र। जो रातमें जागता रहता है, उसे कन्हैया प्राप्त होता है; जो सोता रहता है, कन्हैया उसे नहीं मिलता। जागना अर्थात्—

जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥

(वही, २।९२।२)

गीताजीमें भी कहा है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

(२।६९)

'सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंके लिये जो रात्रि है, नित्य-शुद्ध परमानन्दको प्राप्त करनेकी ओर जो दृष्टि भी नहीं करते, उस नित्य-शुद्ध परमानन्दमें योगी पुरुष जाग्रत् हैं, उसमें से रहते हैं। जो प्राणी नाशवान्, क्षणभङ्गुर सांसारिक सुखोंमें जागते रहते हैं, उन सुखोंकी ओर तत्त्वके ज्ञाता मुनि दृष्टि भी नहीं करते, ज्ञानी मुनिके लिये वह रात्रिके समान है।'

सांसारिक सुखोंमें संलिप्त रहनेवालोंके लिये परमानन्द रात्रिके समान है। ऐसे पुरुषोंको परमात्माका ज्ञान नहीं होता।

वसुदेव-देवकीजीकी स्थिति देखो। सम्पत्ति गयी, ऐश्वर्य गया, संतति गयी, बिना अपराधके हाथ-पैरोंमें बेड़ी पड़ी। ऐसा होने हुए भी, ऐसे कष्टमें भी, वे भगवान्का स्मरण करते हैं। अति कष्टमें प्रभुके नामका विस्मरण न हो जाय, यही ध्यान रखनेकी बात है। दुःखमें सावधान रहकर जो ईश्वरका भजन करता है, उसीके यहाँ भगवान् पधारते हैं।

विद्यारण्य स्वामीने कहा है—'नल और राम-जैसोंके जीवनमें दुःखके अवसर आये हैं, तब अपनी तो बात ही क्या है। अतः दुःखसे डरो मत।'

दशरथजीने प्रभुका बाल-स्वरूप देखा, हृदय भर गया। दशरथके आनन्दका वर्णन करनेकी शक्ति सरस्वतीमें भी नहीं है। राम-दशरथका दृष्टि-विनिमय हुआ। लाला रामने मन्द-मन्द मुस्कराना आरम्भ किया। दशरथजी श्रीरामकी जीभपर मधु लगाने लगे। राजाने वसिष्ठजीको वेदमन्त्रोंका उच्चारण करनेके लिये कहा। वसिष्ठजी कहते हैं, 'रामके दर्शन करके वेद तो क्या, मैं तो नाम भी भूल गया, मन्त्र कैसे बोलूँ।'

भगवान्के दर्शनमें नाम-रूप विस्मरण हो जाता है, तभी दर्शनका आनन्द आता है—ब्रह्म-दर्शनका आनन्द आता है।

अत्र ''वेदा अवेदाः (भवन्ति)।

(बृह० उप० ४।३।२२)

ईश्वरदर्शनोपरान्त वेद भी विस्मृत हो जाते हैं, नाम विस्मृत होता है और स्वयंका भी संधान नहीं रहता। वसिष्ठजी कहते हैं कि 'मेरा नाम क्या है, यह भी मैं भूल गया हूँ।'

कौसल्याने पुत्रको गोदमें उठाया और वे बाहर आयीं। अयोध्याकी प्रजा रामलल्लाका दर्शन कर रही है। किसीको भूख-प्यासका भी संधान नहीं है।

रामके बिना आराम नहीं मिलता। प्राणिमात्र आरामको खोजता है। प्राणिमात्र शान्तिका उपासक है। श्रीरामकी मर्यादाओंका पालन करनेसे वास्तविक शान्ति मिलती है। मनुष्य रामकी मर्यादाओंको जीवनमें उतारते नहीं हैं, इसीलिये उन्हें वास्तविक शान्ति नहीं मिलती। धर्मका फल है—शान्ति, अधर्मका फल है, अशान्ति। जो धर्मकी मर्यादाओंका पालन नहीं करता, उसे शान्ति नहीं प्राप्त होती। मानव जब मर्यादाका उल्लङ्घन करते हैं, तब अशान्ति आती है। मर्यादा-धर्मके बिना ज्ञान, भक्ति या त्याग सुलभ नहीं होता। आजकल पहलेसे कहीं अधिक भीड़ मन्दिर और कथामें होती है। ऐसा लगता है कि आजकल भक्ति और ज्ञान बढ़ गये हैं; परंतु किसीको शान्ति नहीं मिलती। इसका कारण यही है कि कोई मर्यादाधर्मका पालन नहीं करता।

आजकल लोग धर्मको भूल गये हैं। धर्मके बिना शान्ति नहीं मिलती। धर्मकी मर्यादा मत छोड़ना; तभी भक्ति सुलभ होगी। मर्यादा-धर्मका पालन किये बिना भक्ति-ज्ञान अर्थहीन हैं। सूर्य-चन्द्र धर्मकी मर्यादामें हैं। सागर अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता; जब कि लोगोंको किंचित् भी धन प्राप्त हो जाय, अधिकार प्राप्त हो जाय, सम्मान मिल जाय तो समझते हैं कि 'मैं महान् अधिकारी हूँ। मुझसे पूछनेवाला है कौन ?' आखिर, उसे समझना चाहिये कि 'प्रभुने तुझे जो ज्ञान दिया है, धन दिया है अथवा अधिकार दिया है, वह धर्मकी मर्यादाओंको पालनेके लिये दिया है, मर्यादाओंको तोड़नेके लिये नहीं।'

श्रीरघुनाथजी मर्यादापुरुषोत्तम और सब गुणोंके भंडार हैं। श्रीराम स्वयं सर्वशक्तिसम्पन्न, सर्वगुणनिधान होते हुए भी धर्मका, मर्यादाओंका पालन करते हैं।

जिसमें समस्त दिव्य गुण एक हो जाते हैं, वह परमात्मा है। लक्ष्मणजी विवेकके, भरतजी वैराग्यके और शत्रुघ्नजी सद्विचारके स्वरूप हैं। भरत और शत्रुघ्न अर्थात् वैराग्य और सद्विचार यदि अयोध्यामें न हों तो दशरथ कैकेयीके अधीन हो जायँ, अन्यथा नहीं।'

चन्दन और पुष्पसे श्रीरामकी अर्चना करो, साथ-ही-साथ रामकी आज्ञाओंका भी पालन करो। यही उनकी उत्तम सेवा है। श्रीरामकी मर्यादाओंका पालन करोगे तो श्रीराम तुम्हारी प्रार्थना अवश्य सुनेंगे। श्रीरामका चरित्र इतना पवित्र है कि स्वयं उसका स्मरण करते हुए हम पवित्र हो जाते हैं। व्यवहार रावणके समान करे और जप रामनामका करे तो रामनामका फल नहीं मिलता। व्यवहार राम-जैसा करो और राम-नामका जप करो तो तुम्हारे मुखसे अमृत निर्झरित होगा। श्रीरामचन्द्रजीकी यही उत्तम सेवा है कि श्रीरामजीके प्रत्येक सद्गुणको जीवनमें उतारनेका प्रयत्न करो।

श्रीरामका अवतार राक्षसोंका वध करनेके लिये ही नहीं हुआ था, बल्कि मानवमें जिस राक्षसी वृत्तिने जड़ जमा ली थी, उसका विनाश करनेके लिये हुआ था—उन उच्च आदर्शोंको बतलानेके लिये हुआ था, जिनका आचरण करनेसे राक्षसी वृत्तिका विनाश किया जा सकता है। श्रीरामका अवतार संसारको मानव-धर्मका उपदेश देनेके लिये है। श्रीरामकी अमुक लीला अनुकरणीय है, अमुक लीला चिन्तनीय है, ऐसी बात नहीं है। श्रीरामका समग्र व्यवहार अनुकरणीय है। राम सब गुणोंके भंडार हैं।

प्रत्येक स्त्रीमें राम मातृभाव रखते थे। किसी भी स्त्रीको राम कामभावसे नहीं देखते थे। मनुष्य एक ओरसे पुण्य करता है और दूसरी ओरसे पाप भी चालू रखता है। अन्तमें खाली हाथ ही जाता है।

राम माता-पिताकी आज्ञामें सदैव रहते थे। स्वतन्त्र-स्वच्छन्दकी तरह किसी भी दिन उन्होंने व्यवहार नहीं किया। राम सदैव दशरथ-कौसल्याको प्रणाम करते थे। आजकलके लड़कोंको माता-पिताको प्रणाम करनेमें शर्म आती है। धूल पड़े ऐसी विद्यापर, जो उन्हें माता-पिताकी वन्दना करनेसे रोके। बापकी सम्पत्ति लेनेमें संकोच नहीं होता और वन्दना करनेमें संकोच होता है। माता-पिता लक्ष्मी-नारायणके स्वरूप हैं। उनकी वन्दना करनी चाहिये।

श्रीरामकी उदारता एवं दीनवत्सलताकी जोड़ जगत्में नहीं है। राम-जैसे राजा न तो हुए और न भविष्यमें हो सकते हैं।

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर, राम सरिस कोउ नाहीं॥
जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी।
सो गति देत गीध सबरी कहुँ, प्रभु न बहुत जिय जानी॥

× × × ×

तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो॥
(विनयपत्रिका, १६२)

रामचरित दिव्य है, रामकथा समुद्रके समान है। भगवान् शंकरने एक करोड़ श्लोकोंमें श्रीरामचन्द्रजीकी कथाका वर्णन किया है। वे पार्वतीजीको नित्यप्रति राम-कथा सुनाते हैं। श्रीहनुमान्‌जी नित्यप्रति रामकथाश्रवण करते हैं। वे जहाँ-जहाँ रामकथा होती है, उपस्थित रहते हैं—

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं
तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं
मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

देखा, कैसी मुद्रामें वे रामकथा सुनते हैं! हाथ जोड़कर, सिर झुकाये हुए, प्रेमपुलक अश्रुसिक्त नयनोंमे। रामकी शक्ति उनमें समायी हुई है। वे राक्षसोंका—राक्षस-वृत्तियोंका विध्वंस करनेवाले हैं।

शंकर भगवान् राम-कथाके आचार्य हैं। शंकर संसारको बोध कराते हैं, 'मैंने विषपान कर लिया, परंतु रामनामके प्रभावसे मुझे कुछ भी नहीं हुआ।' जीवनमें विषपानके अनेकों अवसर आते हैं; उस समय प्रेमसे 'श्रीराम', 'श्रीराम' कहो। राम-राम कहनेपर मुखसे अमृत निकलता है, अतः विष कष्ट नहीं दे सकता।

श्रीराम-राम जपताँ सब कष्ट जाय। श्रीराम-राम भजताँ शुभ सर्व थाय॥

[अनुवादक—श्रीबालकृष्ण चतुर्वेदी]

विदग्ध अयोध्या

(लेखक—श्रीहरिकृष्ण दुजारी)

भगवान् राघवेन्द्र आज भगवती सीता तथा भाई लक्ष्मणके सहित मुनिवेषमें खड़े हैं। वल्कल-वस्त्र धारण किये हुए हैं। माता कैकेयीकी आज्ञा और पिता दशरथकी धर्मरक्षा उन्हें अभीष्ट है। वे वनगमनके लिये तैयार हैं। उनके मुखपर नित्यकी भाँति तेज और प्रसन्नता व्याप्त है, दुःखकी छायाका कहीं लेश भी नहीं है। नाना वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित राजपुत्र आज मुनिवेषमें भी उतने ही प्रसन्न हैं—

कीर के कागर ज्यों नृपचीर, बिभूषन उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगवास के रूख ज्यों, पंथ के साथ ज्यों लोग-लोगाई॥
संग सुबंधु, पुनीत प्रिया, मनो धर्मु क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन रामु चले तजि बाप को राजु बटाउ की नाईं॥
(कवितावली, अयोध्या० २)

'श्रीरामने, जिन्हें अङ्ग ही ऐसे प्राप्त थे जो आभूषण-तुल्य थे, राजोचित वस्त्रों और अलंकारोंको उसी सहजभावसे त्याग दिया, जैसे साँप अपने केंचुलको त्याग देता है। उन्होंने अयोध्याको राहके पड़ावके वृक्षोंकी तरह और वहाँके स्त्री-पुरुषोंको रास्तेके साथियोंके समान त्याग दिया। साथमें पतिव्रताकी मूर्ति प्रिया और सुन्दर भाई ऐसे जान पड़ते हैं, मानो धर्म और क्रिया सुन्दर देह धारण किये हुए हों। कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी अपने पिताका राज्य बटोहीकी तरह छोड़कर चल दिये।'

चारों ओर करुण-क्रन्दन व्याप्त है। महल, रनिवास, [illegible] और [illegible] हाहाकारका स्वर गूँज रहा है। लग रहा है, पृथ्वी फटेगी और आकाश गिरेगा। प्रभुका ऐसा वेष देखकर कौन अपने हृदयको रोक सकेगा? युवा अवस्था है, सौन्दर्य-माधुर्यके तो वे सिन्धु ही हैं। व्यथाका स्रोत फूट पड़ा है। सभीकी आँखोंसे आँसुओंकी प्रबल धाराएँ बह रही हैं—निरन्तर और निरन्तर।

हाय! आज प्यारे रघुनाथ चौदह सालके लिये वन जा रहे हैं। चर-अचर—सभीके वे प्यारे हैं। जगमें ऐसा कौन है, जिसके हृदयको उन्हें देखकर शान्ति न मिली हो? सभी उनके मृदु स्वभाव, शील-सौन्दर्यसे मुग्ध हैं। हाय! ऐसे प्यारे रघुनाथ आज हमें छोड़कर जा रहे हैं। जन-समुदाय उनके दर्शनार्थ जनपथपर उमड़ रहा है। जिस-किसीने सुना कि आज श्रीराम वनवासके लिये प्रस्थान कर रहे हैं, उसे विश्वास नहीं हो रहा है। क्या यह सत्य हो सकता है? क्या कभी ऐसा भी हो सकता है? यह सब तो कल्पनासे दूरकी वस्तु है। आज तो रघुवीरका राजतिलक होगा। महाराज दशरथ उन्हें युवराजपदपर आरूढ़ करेंगे। सभी आनन्दके समुद्रमें डूब रहे हैं। परंतु जब राघवेन्द्रको इस रूपमें देखते हैं, मुखसे भीषण चीत्कार निकलती है और लोग मूर्छित हो-होकर गिर पड़ते हैं। उष्ण अश्रुधाराओंसे पृथ्वी भीग जाती है, जिससे धूलके कण, जो वायुमें उड़ रहे थे, उड़ने बंद हो जाते हैं।

हाय! आज श्रीराम चौदह सालके लिये वन जा रहे हैं। उनकी भीषण कठिनाइयोंको स्मरणकर कौन अपने

हृदयको धीरज देकर रोक रखेगा ? जो प्रभु सदैव रथ-घोड़ों एवं हाथियोंपर सवारी करते थे, वे आज नंगे पैर पैदल जा रहे हैं ! जो रघुनाथ नाना प्रकारके व्यञ्जनोंसे भरे थालोंमें प्रसाद ग्रहण करते थे, वे वनके कंद-मूल खाकर अपना जीवन व्यतीत करेंगे ! मृदुल-मनोहर शय्यापर शयन करनेवाले श्रीराम जमीनपर, वृक्षोंकी छालपर, पत्तोंपर विश्राम करेंगे ! विधाताके इस विधानपर सभी मौन हैं । जनसमुदाय एक-दूसरेकी तरफ देखता है, चीत्कार निकलती है; पर सभीकी वाणी अवरुद्ध है, कोई क्या कहे ? महाराज दशरथ क्या इतने क्रूर हो सकते हैं ? महारानी कैकेयी क्या ऐसा भी वरदान माँग सकती हैं ? शीलसिन्धु श्रीरामके लिये क्या कहा जाय, जो सभीको अपार स्नेह लुटाते हैं ! सभी माताओंको गर्व था कि उन्हें श्रीरामसे माता कौसल्याकी तरह ही प्यार-स्नेह मिलता है । सखागणको गर्व था कि प्यारे राघव उनके हैं—वे स्वच्छन्दतासे उनके साथ उठते-बैठते, खेलते-कूदते, शयन करते थे । सभी सखाओंको उनसे भरत-लक्ष्मण-सा प्यार मिलता था । पिताके समवयस्कोंको पिता दशरथ-जैसा आदर मिलता था । आज सभी उनके द्वारा मिलनेवाले इन सुखोंसे वञ्चित होंगे । धू-धू करके सबके अन्तरमें ज्वाला जलती है ।

नहीं-नहीं, राघवेन्द्र उन्हें छोड़कर नहीं जायँगे । जो हमारे तनिकसे दुःखमें स्वयं दुःखी हो जाते थे, जो क्षणभर भी हमें उदास नहीं देख सकते थे, जो सदैव हमको नये-नये सुख देनेको तत्पर रहते थे, वे प्यारे राम क्या कभी ऐसा भी कर सकते हैं ? यह सभीकी कल्पनाके बाहरकी वस्तु है । सभी रघुनाथकी करुणासे आप्लावित हैं । श्रीराम स्नेहके महासमुद्र हैं, जिसकी गहराईकी थाह किसीने नहीं पायी है । क्या वे इतने क्रूर—निर्दय भी हो सकते हैं ? नहीं, ऐसा तो सम्भव नहीं है । पर राघवेन्द्र तो उसी वेषमें आगे बढ़ते जा रहे हैं । सभीकी ओर करुणदृष्टि डालकर मुस्कुरा रहे हैं । उनके विशाल नेत्रोंमें वही स्नेह है । जनसमुदाय चारों ओरसे उन्हें घेरे हुए है । सब फूट-फूटकर रो रहे हैं—'हा रघुनन्दन ! हा रघुनन्दन ! हा राघवेन्द्र ! प्राणवल्लभ ! इतने निर्दयी, इतने क्रूर मत बनो ।'

महलके प्राङ्गणमें महाराजा दशरथ विविध प्रकारसे विलाप कर रहे हैं—

मन्ये खलु मया पूर्वं विवत्सा बहवः कृताः ।
प्राणिनो हिंसिता वापि तन्मामिदमुपस्थितम् ॥
न त्वेवानागते काले देहाच्च्यवति जीवितम् ।
कैकेय्या क्लिश्यमानस्य मृत्युर्मम न विद्यते ॥
(वा० रा० २ । ३९ । ४-५)

'जान पड़ता है, मैंने पूर्वजन्ममें अवश्य ही बहुत-सी गौओंका उनके बछड़ोंसे विछोह कराया है; अथवा अनेक प्राणियोंकी हिंसा की है, इसीसे आज मेरे ऊपर यह संकट आ पड़ा है । समय पूरा हुए बिना किसीके शरीरसे प्राण नहीं निकलते; तभी तो कैकेयीके द्वारा इतना क्लेश पानेपर भी मेरी मृत्यु नहीं हो रही है ।'

योऽहं पावकसंकाशं पश्यामि पुरतः स्थितम् ।
विहाय वसने सूक्ष्मे तापसाच्छादमात्मजम् ॥
एकस्याः खलु कैकेय्याः कृतेऽयं खिद्यते जनः ।
स्वार्थे प्रयतमानायाः संश्रित्य निकृतिं त्विमाम् ॥
एवमुक्त्वा तु वचनं बाष्पेण विहतेन्द्रियः ।
रामेति सकृदेवोक्त्वा व्याहर्तुं न शशाक सः ॥
(वा० रा० २ । ३९ । ६-८)

"ओह ! अपने अग्निके समान तेजस्वी पुत्रको महीन वस्त्र त्यागकर तपस्वियोंके-से वल्कल-वस्त्र धारण किये सामने खड़ा देख रहा हूँ (फिर भी मेरे प्राण नहीं निकलते) ! इस वरदानरूप शठताका आश्रय लेकर स्वार्थ-साधनके प्रयत्नमें लगी हुई एकमात्र कैकेयीके कारण ये सब लोग महान् कष्टमें पड़ गये हैं—ऐसी बात कहते-कहते राजाके नेत्रोंमें आँसू भर आये । उनकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं और वे एक ही बार 'हे राम !' कहकर मूर्च्छित हो गये । आगे कुछ न बोल सके ।"

महाराज दशरथ बार-बार मूर्च्छित होते हैं और फिर उन्हें होश आता है । करुणक्रन्दनसे उनका गला भरा हुआ है । अश्रुओंसे शरीर भीग गया है, गला अवरुद्ध होनेसे कुछ बोल सकते नहीं । उनके हृदयमें महान् दावानल धधक रहा है । उनके हृदयमें एक ही लालसा है—उनके प्राणस्वरूप श्रीराम किसी भी तरह रुक जायँ, वनमें न जायँ । वे जानते हैं कि 'मेरे प्राण, मेरे ही क्या—पूरी अयोध्याके प्राण मेरे राममें हैं ।' बिना राम अब सुख कहाँ ? क्या रामके बिना उनके प्राण रह पायेंगे ?

रघुनाथ पियारे, आजु रहौ (हो) ।
चारि जाम बिस्राम हमारें, छिन-छिन मीठे बचन कहौ (हो) ॥
बृथा होउ बर बचन हमारो, कैकइ जीव कलेस सहौ (हो) ।

आतुर ह्वै अब छाँड़ि अवधपुर, प्रान-जिवन! कित चलन कहौ (हो)॥
बिछुरत प्रान पयान करैंगे, रहौ आजु, पुनि पंथ गहौ (हो)।
अब 'सूरज' दिन दरसन दुरलभ, कलित कमल-कर कंठ गहौ (हो)॥
(सूर-रामचरितावली २०)

'प्यारे रघुनाथ ! आज (भर) रह जाओ ! मेरे पास (कम-से-कम) चार पहर और ठहरे रहो और क्षण-क्षणमें मधुर वचन सुनाओ (जानेकी बात मत कहो) । (कैकेयीको दिया) मेरा वररूपी वचन चाहे झूठा हो जाय और कैकेयी अपने हृदयमें क्लेश पाये । हे प्राणोंके भी जीवन-प्राण ! अब आतुर होकर—शीघ्रतामें आकर अयोध्याका त्याग करके कहाँ चलनेकी बात कहते हो ? तुम्हारा वियोग होते ही मेरे प्राण भी प्रयाण कर जायँगे—देहसे निकल जायँगे; अतः कम-से-कम आज तो रह जाओ, फिर मार्ग पकड़ना (चले जाना) । अब आगेके दिनोंमें तो तुम्हारा दर्शन दुर्लभ है ही; (इस समय तो गोदमें बैठ जाओ) और अपनी सुन्दर कमल-नालके समान भुजाओंसे मेरा गला पकड़ लो (गलेमें भुजाएँ डालकर एक बार मिल लो) ।'

इधर माता कौसल्या उन्मादिनी हो रही हैं, दहाड़ मार-मारकर रो रही हैं । उन्हें लग रहा है, कहीं भूकम्प तो नहीं आ रहा है, पृथ्वी फट तो नहीं रही है । उनके प्राण हाहाकार कर रहे हैं । कभी सोचती हैं कि शरीरमें प्राण हैं या नहीं । कभी सोचती हैं—नहीं-नहीं, उनके रघुनाथ नहीं जा रहे हैं; वे उन्हें छोड़कर जा भी नहीं सकते । उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा है । परंतु जब रघुनाथ चल पड़े, तब उनका धीरज भी जाता रहा—'हा ! राघवेन्द्र ! तुम इतने निष्ठुर कैसे हो गये ? तुम्हारा हृदय तो बड़ा ही कोमल है । सदैव हमारी रुचिका इतना ध्यान रखते थे, आज तुम्हें क्या हो गया ?'

बिह्वल तन-मन, चकित भई सो, यह प्रतच्छ सुपनाए ।
गदगद-कंठ 'सूर' कोसलपुर, सोर, सुनत दुख पाए ॥
(सूर-रामचरितावली १८ । ४)

'उनका शरीर और मन—दोनों विह्वल हो गये । आश्चर्यमें पड़कर वे यही नहीं समझ सकीं कि यह सब प्रत्यक्षमें हो रहा है या स्वप्न है; उनका कण्ठ गद्गद हो गया । सूरदासजी कहते हैं कि इस बातका कोलाहल अयोध्यामें हो गया और उसे सुनकर सभी दुःखी हो गये ।' कौसल्याजी कहती हैं—

न हि तावद् गुणैर्जुष्टं सर्वशास्त्रविशारदम् ।
एकपुत्रा विना पुत्रमहं जीवितुमुत्सहे ॥
न हि मे जीविते किंचित् सामर्थ्यमिह कल्प्यते ।
अपश्यन्त्याः प्रियं पुत्रं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥
(वा० रा० २ । ४३ । १९-२०)

'जो उत्तम गुणोंसे युक्त और सम्पूर्ण शास्त्रोंमें प्रवीण हैं, उन अपने पुत्र श्रीरामके बिना मैं इकलौते बेटेवाली माँ जीवित नहीं रह सकती । अब प्यारे पुत्र श्रीराम और महाबली लक्ष्मणको देखे बिना मुझमें जीवित रहनेकी कुछ भी शक्ति नहीं है ।'

यदि राम वनं सत्यं यासि चेन्नय मामपि ।
त्वद्विहीना क्षणार्द्धं वा जीवितं धारये कथम् ॥
यथा गौर्बालकं वत्सं त्यक्त्वा तिष्ठेन्न कुत्रचित् ।
तथैव त्वां न शक्नोमि त्यक्तुं प्राणप्रियं सुतम् ॥
(अध्यात्मरामायण २ । ४ । ८-९)

'राम ! यदि सचमुच ही तुम वनको जाते हो तो मुझे भी साथ ले चलो; तुम्हारे बिना मैं आधे क्षण भी कैसे जीवित रह सकती हूँ ? जिस प्रकार गौ अपने अल्पवयस्क बछड़ेको छोड़कर अन्यत्र नहीं रह सकती, उसी प्रकार मैं भी तुझ अपने प्राणप्रिय पुत्रको नहीं छोड़ सकती ।'

माताएँ विविध प्रकारसे प्रलाप करती हैं—

सुनि सुत स्याम राम कहँ जैहौ ।
रहि चरननि लपटाय जननि दोउ, निरखि बदन, पाछें पछितैहौ ॥
कोमल कमल सुभग सुंदर पद, तरनि-तेज ग्रीषम दुख पैहौ ।
जिन बिन छिन न बिहात बिलोकत, कैसें चौदह बरस बितैहौ ॥
चंपक कुसुम बिसेष बरन तन, बिपति मानि तृन-सेज बिछैहौ ।
अति अनूप आनन रसना धरि कैसें जठर मूल-फल खैहौ ॥
तजि मन मोह ईस-अमरन सजि, गिरि-कंदर जानकी बसैहौ ।
फाटत नहीं बज्र की छतिया, अब मोहि नाथ अनाथ कहैहौ ॥
कह अपराध किए कौसल्याँ, पुत्र-बिछोह दुसह दुख दैहौ ।
सूर-स्याम भुज गहें समझावत, तुम जननी मम कतहि बटैहौ ॥
(सूर-राम-चरितावली २३)

'मेरे पुत्र श्रीराम ! सुनो, तुम कहाँ जाओगे ?'—इतना कहकर दोनों माताएँ चरणोंसे लिपटी रह गयीं । फिर कहने लगीं—'अब हमारा मुख देख लो; हमारे जीनेकी अब आशा नहीं है; अतः पीछे पश्चात्ताप

करोगे कि माताओंके भली प्रकार दर्शन नहीं कर सके। तुम्हारे सुन्दर चरण कमलके समान कोमल, सुन्दर तथा चमकीले हैं; वनमें गर्मीके दिनोंमें सूर्यकी प्रचण्ड धूपमें जलती भूमिपर चलनेमें कितना कष्ट पाओगे ? जिन माताओंको देखे बिना एक क्षण भी नहीं बीतने देते थे, सदा हमारे पास ही रहते थे, अब उनके बिना चौदह वर्ष कैसे बिताओगे ? हाय ! तुम्हारा शरीर तो चम्पाके फूलके-से वर्णका है और अब विपत्ति समझकर वनमें तिनकोंकी शय्या बिछाओगे, तिनकोंपर सोओगे। इस अत्यन्त अनुपम मुखमें जिह्वापर रखकर वनके कड़वे, कसैले कंद तथा फल कैसे खाओगे और वे तुम्हें कैसे पचेंगे ? मनका मोह—स्नेह छोड़कर शंकरजीके लिये उचित आभूषण भस्मादिसे सजाकर अब श्रीजनकनन्दिनीको पर्वतकी गुफामें बसाओगे ? हमारा यह हृदय वज्रका बना है, जो अब भी नहीं फटता; हाय ! हम सबके स्वामी (पालक) होकर भी अब तुम अनाथ कहे जाओगे। इस कौसल्याने क्या अपराध किये हैं, जो इसे पुत्र-वियोगका दारुण दुःख दोगे' ?''

धर्मज्ञ गुरु वसिष्ठजी किंकर्तव्यविमूढ होकर खड़े हैं। उनसे कुछ भी बोला नहीं जा रहा है, वे क्या कहें ? उनका हृदय भी स्वीकार नहीं करता कि रघुनन्दन उन्हें छोड़कर चले जायँगे। उनकी अवस्था भी अर्धमूर्च्छित-सी हो रही है।

उधर पूरे रनिवासमें हाहाकार मच गया है। सभी अपनी सुध-बुध खोकर शोकमग्न हो, कह रहे हैं—

अनाथस्य जनस्यास्य दुर्बलस्य तपस्विनः।
यो गतिः शरणं चासीत् स नाथः क्व नु गच्छति॥

(वा० रा० २। ४१। २)

'हाय ! जो हम अनाथ, दुर्बल और शोचनीय जनोंकी गति—सब सुखोंकी प्राप्ति करानेवाले और शरण—समस्त आपत्तियोंसे रक्षा करनेवाले थे, वे हमारे नाथ—मनोरथ पूर्ण करनेवाले श्रीराम कहाँ चले जा रहे हैं ?'

आज राघवेन्द्र कठोर हो गये हैं, मानो उनका हृदय पाषाणका हो गया हो। वे सब कुछ देख रहे हैं, उन भगवान् श्रीरामसे कुछ भी छिपा नहीं है; परंतु वे फिर भी सबकी उपेक्षा करके वनके लिये आगे बढ़ रहे हैं। जन-समुदाय उनके साथ-साथ आगे बढ़ रहा है। वे सबको समझाना चाहते हैं, पर बोल नहीं सकते। वे प्रीतिकी रीतिको जाननेवाले क्या कुछ बोल सकेंगे।

नगरनिवासियोंकी अवस्था विचित्र हो रही है। महाकरुण स्वर सबकी वेदनाको बढ़ा रहा है। सभी करुण-विलाप कर रहे हैं—'हाय ! उस विधुवदनको जी भरकर निरख लेने दो।' अश्रुओंके स्रोतमें सभी अवगाहन कर रहे हैं। जहाँ उनके प्यारे, प्राणप्यारे रघुनन्दन हैं, वहीं उनकी अयोध्या है, वहीं उनका सुख है, वहीं उनको शान्ति है। सभीके सुखका, शान्तिका, उल्लासका आज सूर्यास्त होने जा रहा है। सभीके जीवनके रसका समुद्र आज सूख रहा है। सूर्यके बिना प्रकाश कैसा ? सभी नगरनिवासी मूर्छित हो-होकर गिर रहे हैं, पुनः कुछ होश आनेपर आगे बढ़ रहे हैं। हृदयमें एक ही लालसा है—हाय ! उस नीलसुन्दरका एक बार मुखचन्द्र देख लें। आह ! आज उनके राघवेन्द्र जा रहे हैं, पर उनके प्राण नहीं निकल रहे हैं। अब जीवनमें और काम ही क्या है ?

समस्त दिशाएँ व्याकुल हो उठीं। आज अवधकी बड़ी ही भयावनी स्थिति हो रही है। चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार व्याप्त हो रहा है। कोई दशरथको कोस रहे हैं, कोई कैकेयीको गाली दे रहे हैं, कुछ अपने भाग्यकी भर्त्सना कर रहे हैं। सभी अपनी सुध-बुध खो बैठे हैं—

पुम्भिः कदाचिद् दृष्टा वा जानकी लोकसुन्दरी।
सापि पादेन गच्छन्ती जनसंघेष्वनावृता॥
रामोऽपि पादचारेण गजाश्वादिविवर्जितः।
गच्छति द्रक्ष्यथ विभुं सर्वलोकैकसुन्दरम्॥

(अध्या० रा० २। ५। ६-७)

'हाय ! जिस त्रिलोकसुन्दरी जानकीको पहले कभी किसी पुरुषने शायद ही देखा हो, वही आज बिना किसी परदेके जनसमूहमें पैदल चल रही है। अरे ! इन सर्वलोक-सुन्दर भगवान् श्रीरामकी ओर भी देखो, ये भी आज बिना हाथी-घोड़ेके पैदल ही जा रहे हैं।'

बाष्पपर्याकुलमुखो राजमार्गगतो जनः।
न हृष्टो लक्ष्यते कश्चित् सर्वः शोकपरायणः॥
न वाति पवनः शीतो न शशी सौम्यदर्शनः।
न सूर्यस्तपते लोकं सर्वं पर्याकुलं जगत्॥

(वा० रा० २। ४१। १७-१८)

'महलसे निकला हुआ कोई भी मनुष्य प्रसन्न नहीं दिखायी देता था। सबके मुख आँसुओंसे भीगे हुए थे और सभी शोकमग्न हो रहे थे। शीतल वायु नहीं चलती थी। चन्द्रमा सौम्य नहीं दिखायी देता था। सूर्य भी जगत्को उचित मात्रामें ताप या प्रकाश नहीं दे रहा था। सारा संसार ही अस्तव्यस्त हो उठा था।'

पुरवासियोंको देह-गेहका कुछ भी ज्ञान नहीं रहा। भूख-प्यासका कुछ भी भान नहीं है। नयनोंकी नींद तो कभीकी समाप्त हो गयी है। प्राणोंमें एक ही स्पन्दन, हृदयकी एक ही पुकार—हाय! रघुनन्दन कोसलनाथ प्राणनाथ किसी तरह रुक जायँ।

'हे सखि! चल, कैकेयीके पास चलें, शायद वह मानकर हम मछलियोंको जल दे दे। शायद वहाँ हम चातकियोंको स्वातिकी बूँद मिल जाय? नहीं-नहीं, वह क्रूर कैकेयी कभी भी यह स्वीकार नहीं करेगी। उस हृदयहीनाके पास जल कहाँ?'

'सखि! उस कैकेयीका हृदय फट कैसे नहीं गया। उस मन्दभागिनीसे उन नवकिशोर, सौन्दर्य-सिन्धु, छबीले, कमलनयन········राघवेन्द्रके लिये यह वर कैसे माँगा गया। सखी! क्या उपाय करें कि वे हमारे प्राणवल्लभ वन न जायँ।'

बालकोंमें भी यही चर्चा है—'भैया! दशरथजीकी इस बुढ़ापेमें बुद्धि जाती रही। वे तो अपनी रानीके गुलाम बन गये! इस नारी-मोहने किसका नाश नहीं किया? उनसे ये वर कैसे दिये गये? भैया! वे हमारे रघुनाथ क्या इस योग्य हैं? अब हमारा जीवन व्यर्थ है। भैया! अब हमें जीवित रहकर क्या करना है। भैया! हम अब किसके साथ बैठकर खायँगे, अब हमें कौन पूछेगा। हाय! वे स्नेही जा रहे हैं। भैया! उन्हें रोक लो, हमारे रामको रोक लो। कह दो···'आज'·····'केवल आज हमारे साथ और खेल लें।'

'भैया मेरी, केवल एक दिनके लिये ही उन्हें रोक लो। अब हमारे हृदयके टुकड़े होनेवाले हैं। देखो, भैया! अब पृथ्वी फटनेवाली ही है। अरे, क्या भूकम्प आ गया! भैया! कह दे न कोसलेशसे कि हमें भी साथ ले लें।'

'अरे दादा! अब हमारा पिताकी तरह कौन सम्मान करेगा। वह हमारा वत्स आज जा रहा है। वह अपने पिता दशरथसे हमें कम सम्मान नहीं देते थे·····'—यह वृद्धोंकी वाणी है।

अयोध्यानाथ राघवेन्द्र बहुत कोशिश कर रहे हैं कि कैसे भी नगरवासी चले जायँ। वे उन्हें बहुत प्रकारसे उपदेश देकर समझा रहे हैं।

किए धरम उपदेस घनेरे। लोग प्रेमबस फिरहिं न फेरे॥
(राम० च० मा० २। ८४। ३)

श्रीराम बड़े ही असमंजसमें पड़ जाते हैं, उनका स्नेह वे भूल नहीं सकते—

सीलु सनेहु छाड़ि नहिं जाई। असमंजस बस भे रघुराई॥
(वही, २। ८४। ४)

केवल मानव-मानवी ही वियोगसे व्यथित नहीं हैं—पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, वनकी ओषधियाँ आदि जड वस्तु तक इस वियोग-वह्निमें धू-धू करके जल रहे हैं।

रघुनन्दनके रथके घोड़े भी आज अपने अनोखे स्नेहशील मालिकको जाते देखकर हिनहिना रहे हैं—

'रथु हाँकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं।'
(वही, २। ९९)

तत् समाकुलसम्भ्रान्तं मत्तसंकुपितद्विपम्।
हयशिञ्जितनिर्घोषं पुरमासीन्महास्वनम्॥
(वा० रा० २। ४०। १९)

'उस समय सारी अयोध्यामें महान् कोलाहल मच गया। सब लोग व्याकुल होकर घबरा उठे। मतवाले हाथी श्रीरामके वियोगसे कुपित हो उठे और इधर-उधर भागते हुए घोड़ोंके हिनहिनाने एवं उनके आभूषणोंके खनखनानेकी आवाज सब ओर गूँजने लगी।'

पसु-पंछी तृन-कन त्याग्यौ, अरु बालक पियौ न पयौ।
'सूरदास' रघुपति के बिछुरें, मिथ्या जनम भयौ॥
(सूर-रामचरितावली ३४। ४)

विभिन्न पक्षियोंने चारा चुगना बंद कर दिया और बच्चोंने अपनी माताओंका दूध पीना बंद कर दिया। वे बेचारे ऊँचे-ऊँचे पेड़ोंपर चढ़कर कोसलनाथसे पुकार-पुकारकर प्रार्थना कर रहे हैं कि 'आप आगे मत बढ़िये, लौट चलिये। आप तो सभी प्राणियोंपर अहैतुकी कृपा करनेवाले हैं, फिर क्यों आज हमें निराश कर रहे हैं।' अवधके उद्यानोंके पपीहे, मोर, कोयल, चकवे, तोते, मैना, सारस,

हंस और चकोर—सभी व्यथित हैं। वे यत्र-तत्र मौन बैठे हैं और निर्जीव-से लग रहे हैं। जिन उद्यानोंमें कोयलोंका मधुर स्वर गूँजता था, वे ही आज श्मशान-से लग रहे हैं।

आज बेचारे उन पशुओंकी क्या हालत है, जो रघुनन्दनके साथ खेलते थे ? हजारों हाथी, घोड़े, मृग, गायें, बैल एवं बकरियोंके नेत्रोंसे झर-झर अश्रुपात हो रहे हैं—'हे कोसलेश ! आज तुम इतने निष्ठुर क्यों हो गये हो ?'

राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े॥
(रा० च० मा० २। ८३। १)

कोशलके वृक्षः पेड़, पौधे, वनौषधियाँ, लताएँ, फूल, अङ्कुर, कलियाँ—सभीकी दशा दयनीय हो रही है। राघवेन्द्रकी विरहाग्नि इन्हें भी भस्म कर रही है—

अनुगन्तुमशक्तास्त्वां मूलैरुद्धतवेगिनः।
उन्नता वायुवेगेन विक्रोशन्तीव पादपाः॥
(वा० रा० २। ४५। ३०)

'वृक्ष अपनी जड़ोंके कारण अत्यन्त वेगहीन हैं, इसीसे तुम्हारे पीछे नहीं चल सकते; परंतु वायुके वेगसे इनमें जो सनसनाहट पैदा होती है, उनके द्वारा ये ऊँचे वृक्ष मानो तुम्हें पुकार रहे हैं—तुमसे लौट चलनेकी प्रार्थना कर रहे हैं।'

सुन्दर उद्यान शोभाविहीन हो रहे हैं। फूलोंकी कलियाँ मुरझा रही हैं। पुष्पोंमें सुगन्ध नहीं है। इस विरह-दावानल-का प्रभाव जड वस्तुओंपर भी कम नहीं है—

लीनपुष्करपत्राश्च नद्यश्च कलुषोदकाः।
संतप्तपद्माः पद्मिन्यो लीनमीनविहंगमाः॥
(वा० रा० २। ५९। ७)

'नदियोंके जल मलिन हो गये हैं। उनमें फैले हुए कमलोंके पत्ते गल गये हैं। सरोवरोंके कमल भी सूख गये हैं। उनमें रहनेवाले मत्स्य और पक्षी भी नष्टप्राय हो गये हैं।'

नदियों, छोटे जलाशयों तथा बड़े सरोवरोंके जल गरम हो गये हैं। वनों और उपवनोंके पत्ते सूख गये हैं।

चले गये, वे सबको छोड़कर चले गये। हाय ! आशा-की एक झलक थी कि शायद सुमन्त्रके साथ लौट आयें। उस सुमन्त्रकी प्रतीक्षा है। 'प्यारे रघुवीर लौट आयें', उल्लासकी क्षीण रेखा वही एक बची है।

× × ×

अपना सिर पीटते हुए, अपनेको धिक्कारते हुए बिना रघुवीरके सुमन्त्र धीरे-धीरे रथ हाँकते हुए अवध पहुँचते हैं। डरते-डरते, थर-थर काँपते, सूर्यके अस्ताचलमें प्रवेश करनेपर अँधियारेमें वे अवधमें प्रवेश करते हैं। लज्जा और संकोच-वश वे अपना चेहरा नगरवासियोंको दिखाना नहीं चाहते। परंतु नगरवासी तो बड़ी उत्सुकतासे भूख-प्यासको भूलकर उनकी प्रतीक्षामें हैं। कब सुमन्त्र उनके प्यारे राम-जानकी-लक्ष्मणसहित लौटें। तनिक-सी भी आहट पाकर वे सशङ्कित होकर इधर-उधर देखते हैं, शायद उनके प्राणवल्लभ लौट आये हों। लोग रथकी आहट पाते ही दौड़ते हैं और उसको चारों ओरसे घेर लेते हैं—सुमन्त्रका भयभीत अश्रुपूर्ण चेहरा देखकर ही उनके प्राण उड़ने लगते हैं। एक ही पुकार है—'हमारे प्राणनाथ राघवेन्द्र कहाँ हैं ?'

सुमन्त्र मौन हैं! गला अवरुद्ध है उनका, शरीर काँप रहा है, नेत्रोंसे अविरल अश्रुपात हो रहे हैं। 'अरे क्या आपने उन्हें छिपा दिया है ?'—लोग पूछते हैं। वे रथपर चढ़ते हैं, चारों ओर देखते हैं; उन्हें विश्वास नहीं होता कि उनके रघुनाथ लौटे नहीं हैं। परंतु सुमन्त्रको मौन देखकर सब-के-सब घबरा उठते हैं। 'क्या वे सचमुच नहीं लौटे ?' 'नहीं'...... सुमन्त्र— झूठ-मूठ उन्हें चिढ़ा रहे हैं, कहीं पासमें ही उन्हें छिपा आये हैं।'......अन्तमें उन्हें विश्वास करना पड़ता है कि राघवेन्द्र, अनुज लक्ष्मण, जानकी—कोई नहीं लौटे हैं। पुनः वही करुणा व्याप्त हो उठती है—क्रन्दन-रुदन गूँज उठता है। मूर्च्छित हो-होकर लोग गिरने लगते हैं।

नगर-रमणियाँ कहती हैं—'सखी ! सुना है, हमारे कोसलेश जनकजीके दरबारमें सीताके स्वयंवरके लिये गये थे। बड़े-बड़े राजा, राजेश्वर, सम्राट् इकट्ठे हुए थे, पूरा समाज जुटा था। एक-से-एक बढ़कर रणवीर, बलशाली योद्धा थे; जिनकी तुलना इन्द्र-कुबेर आदिसे की जा सकती है; महाबलशाली बाणासुर-दशानन-जैसे शूरवीर भी वहाँ मौजूद थे, जिन्हें संग्रामभूमिमें सदैव ही अपने जीतनेका अभिमान था। उनमेंसे कोई भी योद्धा उस शिव-धनुषको हिला नहीं सका। शिव-धनुष अत्यन्त ही कठोर वज्रके समान था। हमारे कोसलकिशोर श्रीरामके स्पर्श करते ही उस धनुषके टुकड़े हो गये। सखी ! उस धनुषको महादेवजीने बड़े ही कठोर तत्त्वोंसे दुष्टोंका नाश करनेके लिये बनवाया था; परंतु हमारे राघवेन्द्रने उसे तोड़नेमें कुछ भी गर्वका अनुभव नहीं

किया । सखी ! वे आज हमारे कोमल-से प्रेमको तिनकेकी तरह क्यों तोड़ रहे हैं । इसमें उनको कौन-से गर्वका अनुभव हो रहा है ? इसमें उनकी क्या वीरता है ? आज वे इतने निर्दयी, कठोर क्यों बन रहे हैं ?'

'सखी ! उनकी शूरवीरताकी गाथाका हमें ज्ञान है । उन्होंने मुनि कौशिकके यज्ञकी बड़े-बड़े राक्षसोंसे रक्षा की थी । पराक्रमी सुबाहु और ताड़काका उन्होंने अपने तेज बाणोंसे वध कर डाला था; परंतु आज हमें इस तरह तड़फड़ाते छोड़ गये, इसमें उनका कौन-सा शौर्य है ?'

'अरी सखी ! उनके चरणकी रजके स्पर्शसे कठोर पाषाण-शिलाने सुन्दर नारीका रूप धारण कर लिया । परंतु आज वे स्वयं इतने कठोर पाषाण क्यों बन रहे हैं ?'

'हे राघव ! एक बार आप पुनः लौट आयें, इतने निर्दयी न बनें ! आज हमारा हृदय फटनेको हो रहा है । एक बार अपना कमललोचनाभिराम मुखड़ा दिखा दो, फिर न जाने हमारे प्राण-पखेरू कब उड़ जायँ ।' वृद्ध-बाल, तरुण-तरुणियाँ—सभी पछाड़ खा-खाकर गिर रहे हैं, मूर्च्छित हो रहे हैं, पुनः उठ रहे हैं । 'हे रघुवीर ! आपने परशुरामजीका मान भङ्ग किया, इसमें तो आपकी महिमा बढ़ी, यह बात तो हमारी समझमें आ गयी है; परंतु आज इस तरह विरहाग्निमें हमें जलानेमें तुम्हारी कौन-सी महिमा बढ़ेगी ? अब हम अनाथोंकी कौन सुध लेगा ?'

सुमन्त्र बड़ी कठिनाईसे महलमें प्रवेश करते हैं । दौड़ी आती हैं माता कौसल्या और सुमित्रा । 'अरे, हमारे लाडले कहाँ हैं ?' उनकी वाणी अवरुद्ध हो जाती है, नेत्र अश्रुपूरित हो उठते हैं । कुछ बोल नहीं सकतीं । 'हा राम ! हा लक्ष्मण ! हा जानकी ! वे कहाँ हैं ? उन मुखचन्द्रोंका हमें जल्दी दर्शन करा दो । वे कहीं वनको तो नहीं चले गये हैं ? कहीं तुम उन्हें छिपा तो नहीं आये ?' नेत्रोंमें जलभरे सुमन्त्र मौन हैं । माताएँ समझ जाती हैं, उनके प्राणवल्लभ नहीं लौटे । वे शोकसे व्याकुल हैं और उनकी वाणी विकल है । 'वे सलोने-साँवरे, इसी आँगनमें छोटे-छोटे धनुष-बाण लिये खेला करते थे । मनोहारिणी वाणी बोलते थे । कमरमें पीताम्बरकी पिछौरी धारण किये रहते थे । कमलनयन अति सुकुमार मेरे लाल मधुर भाषणमें तत्पर रहते थे । अरी ! वह दिन हम कैसे भूल सकती हैं—वे चन्द्रमाको देखकर, उसे लेनेके लिये रूठ पड़ते थे । मेरे लाल विवाह करके लौटे, उस समय दोनों वर-वधू मेघ और बिजलीके समान सुन्दर वर्णके-से लग रहे थे । उन्हें विवाहके वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत देख सभी समाज ठगा-सा रह गया था । जिन्होंने उन्हें देखा, उन्हें लग रहा था कि उनके जन्म लेनेका फल उन्हें मिल गया है । हाय, उन सलोने साँवरोंको एक बार पुनः हमें दिखा दो ।'

माता कौसल्या बार-बार काँप रही हैं । अर्ध-अचेत-सी होकर गिर पड़ती हैं । 'हे सुमन्त्र ! मुझे जल्दीसे इसी रथमें मेरे लाडलों—राम-जानकी-लक्ष्मणके पास ले चलो । अब देर मत करो । सहन नहीं हो रहा है; लग रहा है, अब प्राण नहीं बचेंगे । हाय ! उस सलोने साँवरेने मेरे लिये कोई संदेश भी कहा है ?' बड़ी विकल दशा है उनकी—पंखविहीन पक्षीकी तरह छटपटा रही हैं और वहीं मूर्च्छित होकर गिर पड़ती हैं । पुनः होश होनेपर 'हाय ! मेरे लाल-लाडली किस तरह वनमें रहते होंगे । क्या वे दुःखी थे ? हाय ! वे लोग कभी विदेशमें अकेले नहीं रहे । मेरी लाडली सीता, जो जंगली जानवरका चित्र देखकर डर जाती थी, हे सुमन्त्र ! अब वह किस तरह उस भयावने वनमें रहती होगी ! उस बीहड़ जंगलमें वे लोग कैसे विचरण करते होंगे ! उनके कोमल चरणोंमें—नहीं सुमन्त्र ! अब आगे मुझसे कुछ नहीं बोला जाता ।' बस, पुनः मूर्च्छित होकर गिर पड़ती हैं । फिर होश आनेपर—'हाय राम ! हे जनकनन्दिनी सीते ! हे सुमित्रानन्दन ! तुमलोग जंगलमें क्या खाते होगे ! जो कभी भी कंद-मूल-फल खाकर नहीं रहे, वे अब उन्हें कैसे खाते होंगे ?' पुनः आँखोंके सामने अँधेरा छा जाता है—गला रुक जाता है—मूर्च्छित हो जाती हैं ।

सुमन्त्र किसी तरह महाराजा दशरथके पास पहुँचते हैं । दशरथ जैसे ही सुमन्त्रको देखते हैं, उन्हें कुछ आशा लगती है, जैसे धधकती हुई अग्निमें कुछ पानीके छींटे गिरे हों ! वे सुमन्त्रको हृदयसे लगा लेते हैं । 'भैया मेरे ! मेरे प्यारे राम-जानकी-लक्ष्मण कहाँ हैं ? कुशलपूर्वक लौट आये हैं न ?' सुमन्त्रका विषादपूर्ण चेहरा एवं मौन वाणी देखते ही उन्हें समझनेमें देर नहीं लगती कि उनके लाडले लौटे नहीं हैं ।

सुमन्त्र महाराजको बहुत धीरज देनेकी कोशिश कर रहे हैं । उन्हें यही समझाते हैं कि प्यारोंका मिलना-बिछुड़ना, सुख-दुःख—सब काल और कर्मके अधीन है । महाराज उसी तरह विलाप करते हैं—'मेरे प्यारे सखे ! मुझे जल्दी वहीं ले चलो, जहाँ मेरे सौन्दर्यनिधान हों । उनका कोमल मृदुल स्वभाव याद करके मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है । मेरे प्यारे ! मेरे लाल कितने शीलसिन्धु हैं । एक बार उनका कमललोचन मुखड़ा दिखा दो । सुमन्त्र ! वे कुशलसे तो हैं न ? वे किशोर वनमें किस तरह रहते होंगे ?'

सुमन्त्र उन्हें राघवेन्द्रकी गाथा सुनाते हैं—'उन्होंने पहला विश्राम तमसाके तटपर एवं दूसरा विश्राम गङ्गातीरपर किया। बटके दूधसे राम-लक्ष्मणने अपनी जटाओंका शृङ्गार किया। निषादराज गुहने उनकी बड़ी सेवा की।' तड़पती हुई मछलीको मानो बूँद-दो-बूँद जल मिला हो; उसी तरह महाराजको ये शब्द सुनकर कुछ शान्ति मिली। उनकी याद करके पुनः वे मूर्च्छित होने लगते हैं।

महाराजकी विकलता बढ़ जाती है। करुण-क्रन्दन पुनः गूँज उठता है—'सखे! शीघ्रतासे अब मुझे वहाँ श्रीरामके पास पहुँचा दो। अब उनके दर्शन बिना प्राण नहीं रह सकते।' क्षण-क्षणमें मूर्च्छित होते हैं और पुनः होश होनेपर उसी करुण वेदनासे कराह उठते हैं। 'हा रघुनाथ! हा जानकी! हा लक्ष्मण!' गलेसे आवाज निकलती एवं बंद हो जाती है और प्राण कण्ठमें आ जाते हैं।

'मेरे प्यारे सखा! तुम तो इतने निर्दय मत बनो। मुझे एक बार, बस, एक बार ही राम-रूप-अमृतका पान करा दो। देखो, प्यारे, मेरी वृद्धावस्था है और अब प्राण बिना मेरे लाडलेके नहीं रहेंगे। ये प्रयाण करनेवाले ही हैं। बस, एक झलक दिखा दो। सुमन्त्र! मेरे हृदयकी दशा तुम क्या जानो। देखो, जरा—देखो तो सही, तुम्हें पता है कि बिना जलके मछलीकी क्या दशा होती है? बिना मणिके सर्पकी क्या दशा होती है? बिना स्वातिकी बूँदके चातककी क्या दशा होती है? नहीं, तुम्हें मालूम नहीं। अब देर मत करो, भैया! अब सहन नहीं हो रहा है। बस, मेरी देहको उठाकर रथमें डाल दो और दौड़ा दो उस ओर, जिस ओर प्यारे राघवेन्द्र, सीता और लक्ष्मण हों।' उनके अश्रुपूर्ण नेत्र हैं, उनका गला अवरुद्ध है, नेत्रोंके सामने अँधेरा छा जाता है और वे मूर्च्छित होकर गिर पड़ते हैं।

भयउ कोलाहलु अवध अति सुनि नृप राउर सोरु।
बिपुल बिहग बन परेउ निसि मानहुँ कुलिस कठोरु॥

(श्रीरामच० मा० २। १५३)

'तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥'

(लेखक—पं० श्रीसदाशिवजी जोशी)

गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने ग्रन्थ 'मानस'में लिखा है कि जिस समय लङ्काधिपति रावण महामाया सीताजीका हरण करनेके निमित्तसे समुद्रतटपर मारीचके निवासस्थान-पर गया हुआ था और उसे कपट-मृग बननेके लिये बाध्य कर रहा था, उसी समय भगवान् श्रीरामजीने भी अपने आश्रम पञ्चवटीमें एक अद्भुत युक्ति-रचना प्रारम्भ की। शेषावतार श्रीलक्ष्मणजी तब कंद-मूल-फल लानेके लिये वनमें गये हुए थे और ऐसे समय भगवान्ने सीताजीसे एकान्तमें हँसकर कहा—'प्रिये! तुम मेरा एक संकल्प सुनो। राक्षसोंके वधके निमित्त मैं एक अत्यन्त मनोहर मानवीय लीला करूँगा। अतः जबतक सारे राक्षसोंका विनाश न हो जाय; तबतक तुम अग्निमें ही निवास करो।' जब भगवान्ने सब बातें समझाकर कहीं, तब सीताजी भगवान्के चरण-कमलोंको हृदयमें रखकर अग्निमें समा गयीं; इतना ही नहीं, उन्होंने अपनी एक छायारूप सीताको आश्रममें रख छोड़ा, जिसका ठीक अपना-सा ही रूप और शील था। आगे गोस्वामीजीने इस प्रसङ्गमें यह भी लिखा है—

'लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना॥'

(मानस ३। २३। २½)

२—यहाँपर दो बातें विचारणीय हैं—पहली यह कि इस प्रकारकी युक्ति रचनेकी भगवान्को क्या आवश्यकता हुई और दूसरे यह कि अग्नि-प्रवेशका वास्तविक अर्थ क्या है; क्योंकि साधारणतः मोटे तौरपर अग्निप्रवेशका अर्थ होता है अपने शरीरको आगमें जला देना। यदि हम इसपर सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करें तो ज्ञात होगा कि भगवान्की इस मधुर लीलाके भीतर एक बहुत बड़ा ईश्वरीय सिद्धान्त अन्तर्हित है। इस सिद्धान्तको भगवान् श्रीकृष्णने श्रीमद्भगवद्गीतामें प्रतिपादित किया है और वह है—

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'

(४। ११)

अर्थात् 'जो भक्त मेरी शरणमें जिस भावनासे आते हैं, मैं ठीक उसी प्रकारसे उनकी सेवा करता हूँ।' ('भज सेवायस्') ।' मारीचके पास जानेके पूर्व रावण अपने मनमें विचार करता है कि—

सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥

(मानस ३। २२। २)

चूँकि यहाँपर रावण मारीचको कपट-मृग बनाकर भगवान्की शरण ले रहा है, अतः भगवान् भी कपटकी सीता देकर उसे मुक्त करनेकी युक्ति करते हैं। इस मायारूपी सीताके निमित्तसे वे न केवल रावणका ही उद्धार करते हैं, अपितु समूचे राक्षस-कुलको तार देते हैं। परंतु इस माया-सीताका भेद भगवान् किसीको भी नहीं जनाते; अन्यथा इसका रहस्य खुलनेपर उनकी सारी लीलाओंपर पानी फिर जाता; क्योंकि जब रावणके मायारूपी सीताको हर ले जानेपर भगवान् विरहमें 'हा सीते! हा सीते!' कहते हुए वनमें प्रमत्त होकर फिरते तो सर्वप्रथम श्रीलक्ष्मणजी ही इस स्वाँगको देखकर हँसते और यदि सुग्रीवादि वानरोंको यह पता चल जाता कि जिन सीताको रावण हर ले गया है, वे वास्तविक सीता नहीं हैं तो सम्भव है कोई भी वानर सीताकी खोजका प्रयास न करता; अतएव भगवान्ने इस रहस्यको किसीपर भी प्रकट नहीं होने दिया।

३—अब इस दूसरी बातपर विचार करना है कि 'सीताजीके अग्नि-प्रवेशका क्या तात्पर्य है।' पञ्चवटीमें भगवान्के समक्ष अग्नि-प्रवेश करनेके बाद, रावण-वधके उपरान्त उनका लङ्कामें पुनः प्रकट हो जाना गोस्वामीजीने लिखा है। लङ्कामें सीताजी प्रकट होती हैं, साक्षात् अग्निदेवके सांनिध्यमें। वे ही उनका हाथ पकड़कर श्रीरामजीको इस प्रकार सौंपते हैं, जैसे क्षीरसागरने विष्णुभगवान्को लक्ष्मी समर्पित की थी। महामाया सीताजीके पुनः प्राकट्यसे यही अर्थ निकलता है कि पञ्चवटीमें उन्होंने स्थूल अग्निमें प्रवेश नहीं किया था। बल्कि सच तो यह है कि उन्होंने चराचरमें व्याप्त सत्तामें, जिसे अग्निकी भी संज्ञा दी गयी है, प्रवेश किया था। श्रुतिका वचन है—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
(श्वेताश्वतर उप० ४। २)

प्रश्न यह उठता है कि वह कौन-सी विद्या है, जिसका आश्रय लेकर सीताजीने अग्नि-प्रवेश किया। योगशास्त्रमें एक साधनका उल्लेख है, जिसके माध्यमसे साधक दूसरेके देखनेमें आनेवाली शरीरकी दृश्यताशक्तिका अपने संकल्पमात्रसे अवरोध कर सकता है; उसका अवरोध कर लेनेपर दूसरेके नेत्रोंकी प्रकाशन-शक्तिसे उसका सम्बन्ध हट जाता है, इस कारण उसे कोई देख नहीं सकता। इस विद्याका नाम 'अन्तर्धान-विद्या' है। महर्षि पतञ्जलिका मूल सूत्र यों है—

कायरूपसंयमात् तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाशासम्प्रयोगेऽन्तर्धानम्। (३। २१)

इस प्रसङ्गमें इसी अन्तर्धान-विद्याका प्रयोग किया गया है, यही बात समझमें आती है; अन्यथा अग्नि-प्रवेश करनेके बाद पुनः सीताजी प्रकट नहीं हो सकती थीं। अग्निप्रवेश तो वास्तवमें लङ्कामें मायारूपी सीताने किया और अग्निप्रवेश करनेपर वह प्रतिबिम्ब और कलङ्क इत्यादि सब भस्म हो गये; अन्तर्धान-विद्याका प्रयोग पञ्चवटीमें 'अग्नि-प्रवेश'के नामसे किया गया। इसकी पुष्टि अध्यात्मरामायणके अवलोकनमें हो जाती है। वहाँ संदर्भित प्रसङ्गके अन्तर्गत इस प्रकार उल्लेख है—

अथ रामोऽपि तत्सर्वं ज्ञात्वा रावणचेष्टितम्।
उवाच सीतामेकान्ते शृणु जानकि मे वचः॥
रावणो भिक्षुरूपेण आगमिष्यति तेऽन्तिकम्।
त्वं तु छायां त्वदाकारां स्थापयित्वोटजे विश॥
अग्नावदृश्यरूपेण वर्षं तिष्ठ ममाज्ञया।
रावणस्य वधान्ते मां पूर्ववत्प्राप्स्यसे शुभे॥
श्रुत्वा रामोदितं वाक्यं सापि तत्र तथाकरोत्।
मायासीतां बहिः स्थाप्य स्वयमन्तर्दधेऽनले॥
(३। ७। १—४)

यहाँपर 'अन्तर्दधे' शब्दका ही प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ होता है, वे 'अन्तर्धान हो गयीं'।

अतः इससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि सीताजीका भगवान्से कभी वियोग हुआ ही नहीं, बल्कि वे अदृश्यरूपसे वनमें सदा उनके साथ थीं।

४—प्रतिबिम्बरूपिणी सीता, जैसा पहले कहा जा चुका है, वस्तुतः अग्निमें समा गयीं; परंतु इस रहस्यका भी भेद कोई जान नहीं सका। जितने वानरादि एवं राक्षस लङ्कामें सीताजीकी अग्नि-परीक्षाके समय प्रत्यक्षदर्शीके रूपमें थे, उन्होंने प्रतिबिम्बरूपिणी सीताका भस्म होना और अग्निदेवका वास्तविक सीताको लाकर भगवान्को सौंपना आदि कुछ भी नहीं देखा। उन्होंने केवल यही देखा कि सीताजीने अग्निमें प्रवेश किया और उनके प्रवेश होते ही अग्नि शीतल हो गयी। सचमुच भगवान्की लीलाओंका भेद पाना कठिन है। जो भगवान्की कृपाके पात्र होते हैं, वे ही उनकी लीलाओंका भेद जान सकते हैं।

लोक-रामायणके कतिपय भाव

(लेखक—भक्त श्रीदुलाभाईजी 'काग')

रामायण हमारे भारतीय जीवनका एक आदर्श धर्मग्रन्थ है। संस्कृतिके नामपर आसुर-भावसे रँगे हुए कुछ लोग भगवान् रामके आदर्श जीवनके ऊपर कीचड़ उछालनेकी अनेक प्रकार चेष्टा कर रहे हैं। उन बेसमझ लोगोंके हृदयमें न भावसद्भाव है और न चरित्रबलसे सुपुष्ट विचार-सौष्ठव ही। ऐसे लोग बिना सोचे-समझे ही साधारण जनके हृदयपर अपने विकृत मनोभावोंको बलात् लाद देते हैं।

भगवती सीताका अपहरण करनेके लिये रावण पञ्चवटीमें आया। उसके बाह्यरूपमें दम्भ है, किंतु हृदयमें कामकी ज्वाला प्रज्वलित है। उसको देखकर वनके पत्ते-पत्ते, पशु-पक्षी आदि सभी काँप उठते हैं। यह स्वयं अपने-आपमें भी डर रहा है—

रावण हाल्यौ वनमाँ रे, पनु ध्यान सीताना तनमाँ।
रामनो चोर वनीने रे रावण हाल्यौ वनमाँ॥
देव-दनुजने जेना डर थी, निद्रा न आवे नयनमाँ।
झाड़ हले त्यों जानकी जोतो, धर धर थातो मनमाँ॥
चितनी शान्ती गई सिधावी, चिन्ता पेठी मनमाँ।
निर्भयता तो चाली निसरी, भे भराणो मनमाँ॥
मूँडे मारगडे पगलाँ भरताँ, तेज रहे नहिं तनमाँ।
भोजन काजे श्वान भराणो रेढ़ा राजभुवनमाँ॥
देव ऋषीनी टळी उदासी (आनो) काल छे थोड़ा दिनमाँ।
सघले पापे सीता बनावी, जे कीधा जोवनमाँ॥
'काग' कहे मनमाँ राम रमे ने, जानकि रमे नयनमाँ।
बीक मोहने पाश बँधाणो भावीतणा बन्धनमाँ॥

'सीताका हरण करनेके लिये रावणने वनमें प्रवेश किया। उसका ध्यान तो सीताके रूप-सौन्दर्यके ऊपर लगा हुआ है। वनके वृक्षोंकी डाल-डाल और पात-पातमें भी वह सीताको ही देख रहा है। आज वह रामके 'धन' का चोर है; इसलिये वृक्षोंकी हिलती हुई पत्तियोंसे भी उसे डर लग रहा है—उसका हृदय काँप रहा है। जिस रावणके भयसे देवों और दानवोंकी नींद हराम हो गयी थी, वही त्रिलोकी-रावण आज भयभीत है। भला, रामजीके धनके चोरको कहीं शान्ति मिल सकती है?

'रावणके चित्तकी शान्ति चली गयी है; उसका स्थान चिन्ताने ले लिया है। निर्भयता दूर हो गयी है; वह भय लग रहा है। पाप-मार्गपर चलनेवालेके अन्तरमें, भला, सत्यका दिव्य तेज कैसे टिक सकता है।

'आज रावणका हृदय अन्धकारसे भरा हुआ है। रावणकी भी आज ऐसी दशा है, मानो भूखा कुत्ता किसी रक्षकविहीन राजभवनमें घुस रहा हो।

'देवगण और ऋषिगण आज प्रसन्न हो रहे हैं। वे जानते हैं कि अब रावणका अन्तकाल पास आ रहा है। यौवनमें किये हुए पापोंने ही उसका विनाश करनेके लिये सीताका रूप धारण किया है। रावणके हृदयमें भले घट-घटवासी राम स्वयं बस रहे हों, पर इस समय इसके कामातुर नेत्रोंमें सीताका रूप ही रम रहा है। भावीके वशीभूत होकर वह मोह और भयके पाशमें बँध चुका है।'

× × ×

रावणने भगवती सीताका हरण करके उनको अशोक-वाटिकामें रखा तथा अनेक प्रलोभन दे-देकर उनको समझाने लगा; परंतु उसके सभी प्रयत्न विफल हुए। एक दिन एकान्तमें मन्त्रीने आकर रावणसे कहा—'आप रामका रूप धारण करके जाइये तो सीता आपके वशमें हो जायगी।' 'मैंने यह भी कर देखा है।'—रावणने कहा। 'जब मैं रामका रूप धारण करके उसके पास जाता हूँ, तब विपरीत विचार अपने प्रभावमें मुझे खींच लेते हैं।' मन्त्रीने प्रश्न किया—'ऐसे कौन-से विचार घिर आते हैं?'

रावण उत्तर देता है—

'मैंने जब रामका रूप धारण किया, मेरी आन्तरिक भावनाओंमें परिवर्तन होने लगा । मैं उस समय सोचने लगा— मेरा बड़ा भाई तो कुबेर है, अतः लङ्काका राज्य करनेका मुझे अधिकार नहीं है । मैं तो कुबेरका छोटा भाई हूँ, अतः उनकी सेवा करना ही मेरा धर्म है और यह सुवर्णमयी लङ्का नगरी स्वयं देवीरूपमें प्रकट होकर मुझे वनमें जानेका आदेश देती है । अन्य लोगोंको त्रस्त करके छीनी हुई यह सम्पत्ति मेरे हृदयको कम्पित कर देती है; मानो मेरे ही पाप प्रत्यक्ष प्रकट होकर मुझे डरा-धमका रहे हैं । रामका स्वरूप धारण कर लेनेपर मुझे विभीषण याद आने लगता है । मुझे रोनेकी इच्छा हो जाती है । दिव्य प्रेम स्वयं साकार बनकर मुझे भरतके भ्रातृप्रेमका पाठ पढ़ाता है । मन्दोदरीकी प्रेमयुक्त बातें मेरे अन्तरको संतप्त कर देती हैं । पूर्वकृत पाप मेरे हृदयको रुला देते हैं । रामका मात्र रूप धारण करनेपर मैं स्वयं रामका स्वरूप बनने लग जाता हूँ, उस समय श्रीजानकी मुझे माताके समान दिखायी देती हैं । मेरा रावणत्व मुझसे रूठ जाता है । अतः रामका रूप धारण करके मैं सीताके सम्मुख नहीं जा सकता ।'

पराक्रमी श्रीरामका जलधि-नियन्त्रण

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

दया सद्गुणगण-निलय श्रीरामके रोम-रोममें भरी है । वे दयामय हैं, दयानिधान हैं, दयासिन्धु हैं; किंतु उनमें शौर्य एवं शक्तिका अभाव नहीं है । वे अनुपम वीर एवं अद्भुत योद्धा हैं । श्रीरामके तीक्ष्ण शर अमोघ होते हैं । वे अत्यन्त सरल, विनयी एवं प्रेमकी सजीव प्रतिमा हैं, किंतु शस्त्रधारी नृशंस शत्रुके सम्मुख उपस्थित होते ही कराल काल बन जाते हैं ।

किशोरावस्थामें ही श्रीराम जब अपने प्रिय अनुज लक्ष्मणसहित महामुनि विश्वामित्रके साथ उनके यज्ञकी रक्षाके लिये जा रहे थे, अत्यन्त क्रूर एवं भयानक राक्षसी ताड़का क्रुद्ध होकर इनकी ओर दौड़ी । महामुनिने संकेत किया ही था कि 'एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा'— श्रीरामने एक ही बाणमें उसे समाप्त कर दिया और जब महामुनिके यज्ञ करते समय क्रोधी मारीच और सुबाहुने अनेक रक्त-पिपासु राक्षसोंके साथ आक्रमण किया, तब श्रीरामके बाणसे मारीच तो सौ योजन दूर समुद्रके पार जा गिरा, सुबाहुको भी ससैन्य प्राणोंसे हाथ धोने पड़े ।

परम पराक्रमी परशुरामजीके कठोर वचनोंको सुनकर श्रीरामने उनसे धनुष लेकर तुरंत चढ़ा दिया और क्रोधपूर्वक उन्होंने परशुरामजीसे कहा—

ब्राह्मणोऽसीति पूज्यो मे विश्वामित्रकृतेन च ।
तस्माच्छक्तो न ते राम मोक्तुं प्राणहरं शरम् ॥
इमां वा त्वद्गतिं राम तपोबलसमर्जितान् ।
लोकानप्रतिमान् वापि हनिष्यामीति मे मतिः ॥

(वा० रा० १ । ७६ । ६-७)

'आप ब्राह्मण होनेके कारण मेरे पूज्य हैं तथा विश्वामित्रजीकी बहिन सत्यवतीके पौत्र हैं, इसलिये मैं आपके प्राण हरण करनेवाला बाण नहीं छोड़ सकता; किंतु मैं आपकी गतिका अथवा तपोबलसे प्राप्त होनेवाले अनुपम लोकोंका विनाश अवश्य करूँगा ।'

श्रीरामकी इस शक्तिसे प्रभावित होकर परशुरामजीने उनकी स्तुति की और तप करनेके लिये वे वनमें चले गये । वनवास-कालमें अरण्यमें विचरण करते हुए हड्डियोंके ढेर देखकर प्रभुने मुनियोंसे पूछा—'ये अस्थियाँ कैसी हैं ?' मुनियोंने बताया—'निसिचर निकर सकल मुनि खाए ।' (मानस ३ । ८ । ४) यह सुनते ही श्रीरामके नेत्रोंमें आँसू भर आये और प्रबल-पराक्रमी श्रीरामने तुरंत 'निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह ।' (वही, ३ । ९)—अपनी विशाल भुजा उठाकर प्रतिज्ञा की—'मैं इस पृथ्वीको राक्षसोंसे रहित कर दूँगा ।' दण्डकारण्यमें तो उन्होंने सहस्रों राक्षसोंसहित खर-दूषणको क्षणभरमें ही मार गिराया । युद्ध करते समय श्रीराम जिस तीव्रतासे बाण मारते थे, उसे देखने और समझनेका शत्रुओंको अवसर भी नहीं मिलता था और उनके प्राण-पखेरू उड़ जाते थे—

'दस दस बिसिख उर माझ मारे सकल निसिचर नायका ।'

मित्र सुग्रीवने दुर्दमनीय वालीकी वीरता और उसके भयसे सदा त्रस्त रहनेकी अपनी व्यथा-कथा श्रीरामसे निवेदित की, तब श्रीरामने उन्हें धैर्य बँधाते हुए अत्यन्त दृढ़ताके साथ कहा—

सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान॥

(वही, ४ । ६)

'सुग्रीव ! सुनो, मैं वालीको एक ही बाणसे मार दूँगा। (मेरा बाण छूटनेपर) ब्रह्मा और रुद्रकी शरणमें जानेपर भी उसके प्राणोंकी रक्षा नहीं हो सकेगी।'

और महाबलशाली वाली श्रीरामके एक ही बाणसे मारा गया।

पदे-पदे सर्वोच्च कर्तव्यनिष्ठ पुरुषके रूपमें दर्शन देनेवाले श्रीरामने अजेय रावणका उसके सम्पूर्ण सहायकों-सहित वध कर डाला। इस प्रकार तपस्वी ऋषि-मुनियोंकी चिन्ता दूर हुई। वे निरापद तपश्चर्यामें प्रवृत्त हुए। श्रीरामने अपनी अमित शक्तिसे धर्मकी स्थापना की एवं अपनी कीर्तिका विस्तार किया।

अमित-पराक्रमी श्रीराम अपनी प्राणप्रिया सीतादेवीके हरणसे दुखी और लज्जित थे; पर उन्हें दृढ़ विश्वास था कि 'मैं दुष्ट दशाननका शिरश्छेदन कर अपनी धर्मपत्नीको अवश्य ले आऊँगा।' उन्होंने अपने इस मनोगत भावको जटायुवे कहे संदेशमें स्पष्ट भी कर दिया था। देह-त्याग करते हुए पक्षिराज जटायुसे श्रीरामने कहा था—

तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरनकामा॥
सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ॥

(वही, ३ । ३० । ५; ३ । ३१)

इस प्रकार श्रीराममें दुष्ट-दलनके निमित्त अमित पराक्रम एवं पौरुषके दर्शन होते ही रहते हैं। वे कर्त्तव्य-पालनमें दक्ष एवं परम नीतिज्ञ भी थे। श्रीराम ससैन्य जलधि पारकर लङ्काके सुदृढ़ दुर्गपर आक्रमण करना चाहते हैं; पर असंख्य भयानक जलजन्तुओंसे पूरित समुद्रको पार कैसे किया जाय ? यही बात वे विभीषणसे पूछते हैं। विभीषणजी प्रभु श्रीरामके अग्निबाणकी शक्ति बताते हुए कहते हैं—

× × × ।कोटि सिंधु सोषक तव सायक॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिअ सागर सन जाई॥

प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि कहिहि उपाय बिचारि।
बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि॥

(वही, ५ । ४९ । ४; ५ । ५०)

'प्रभो ! आपके बाण करोड़ों समुद्रोंको सोख लेनेवाले हैं; तथापि नीतिमें जैसा कहा गया है, उसके अनुसार जलधिके पास जाकर प्रार्थना करनी चाहिये। वह आपका कुलगुरु भी है। वह आपको उपाय बता देगा, जिससे वानर-भालुओं-की विशाल वाहिनी सरलतासे पार उतर जायगी।'

श्रीरामने विभीषणके परामर्शका आदर करते हुए प्रेमपूरित स्वरमें कहा—

सखा कही तुम्ह नीकि उपाई। करिअ दैव जौं होइ सहाई॥

(वही, ५ । ५० । $\frac{1}{2}$)

विभीषणका परामर्श एवं श्रीरामकी स्वीकृति—लक्ष्मणजी-को अच्छी नहीं लगी, वे दुःखी हो गये। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें निवेदन किया—

नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा॥
कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥

(वही, ५ । ५० । २)

कुपित लक्ष्मणकी वाणी सुनकर श्रीरामने हँसते हुए कहा—'मैं ऐसा ही करूँगा। तुम धैर्य धारण करो।'

नीति-निपुण और परम विनयी श्रीरामने अपने भाईको इस प्रकार समझाया और फिर समुद्रके तटपर गये। वहाँ उन्होंने मस्तक झुकाकर सागरको प्रणाम किया और उसके तटपर कुशासन बिछाकर बैठ गये। इस प्रकार परम पराक्रमी श्रीराम तीन दिन अनवरतरूपसे जड जलधिके किनारे बैठे उससे प्रार्थना करते रहे; किंतु उसने श्रीरामकी प्रार्थनापर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। तब श्रीरामने कुपित होकर कहा—

लछिमन बान सरासन आनू। सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू॥
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुंदर नीती॥
ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा॥

(वही, ५ । ५७ । १-२)

—यों कहकर भगवान् श्रीरामने क्रोधसे नेत्र लालकर अपना धनुष चढ़ाया और तूणीरसे एक कालाग्निके समान तेजोमय बाण निकालकर, उसे धनुषपर रखकर, खींचते हुए कहा—

पश्यन्तु सर्वभूतानि रामस्य शरविक्रमम्।
इदानीं भस्मसात्कुर्यां समुद्रं सरिताम्पतिम्॥

(वा० रा० ६ । २ । ६५)

'समस्त प्राणी रामके बाणका पराक्रम देखें, मैं इसी समय नदीपति समुद्रको भस्म किये डालता हूँ।'

श्रीरामके यों कहते ही वन-पर्वतादिसहित धरती काँपने लगी और आकाशमें तथा दसों दिशाओंमें अन्धकार छा गया। क्षुब्ध होकर समुद्र एक योजन आगे आ गया तथा बड़े-बड़े मत्स्य, नाके, मकर और मछलियाँ भयभीत हो गयीं।

जलधिका अहंकार चूर्ण हुआ। वह सुवर्ण-थालमें अपने ही भीतर स्थित दिव्य रत्न लिये ब्राह्मणके वेषमें प्रभुके सम्मुख उपस्थित हुआ और भयाक्रान्त होकर प्रभुके चरणोंको पकड़कर क्षमा-याचना करने लगा।

'सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे॥'
(मानस ५। ५८। ३)

समुद्रने कहा—

जडोऽहं राम ते सृष्टः सृजता निखिलं जगत्।
स्वभावमन्यथाकर्तुं कः शक्तो देवनिर्मितम्॥
दण्ड एव हि मूर्खाणां सन्मार्गप्रापकः प्रभो।
भूतानाममरश्रेष्ठ पशूनां लगुडो यथा॥
(अ० रा० ६। ३। ७१, ७७)

'हे राम! सम्पूर्ण संसारकी रचना करते समय आपने मुझे जड ही बनाया था; फिर आपके बनाये स्वभावको कोई कैसे बदल सकता है।' 'हे अमरश्रेष्ठ प्रभो! पशुओंको जैसे लाठी ठीक मार्गपर ले जाती है, उसी प्रकार (मुझ-जैसे) मूर्ख जीवोंके लिये दण्ड ही सन्मार्गपर लानेवाला होता है।'

'प्रभो! आपने मुझे अच्छी शिक्षा दी, पर मर्यादा भी आपकी ही बनायी हुई है। आपके अग्निबाणसे निश्चय ही मैं सूख जाऊँगा और आपकी विशाल वाहिनी पार भी चली जायगी; पर मेरा यश नहीं रह पायेगा। आपकी ही बनायी मेरी मर्यादा नष्ट हो जायगी।'

जलधिकी इस विनीत वाणीको सुनकर श्रीरामने मुस्कराते हुए कहा—

'जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ।'
(मानस ५। ५९)

'मेरी सेना जिस प्रकार पार उतर जाय, वह उपाय बताओ।' जलधिने श्रीरामसे कहा—

नलः सेतुं करोत्वस्मिन् जले मे विश्वकर्मणः।
सुतो धीमान् समर्थोऽस्मिन् कार्ये लब्धवरो हरिः॥
कीर्तिं जानन्तु ते लोकाः सर्वलोकमलापहाम्।
(अ० रा० ६। ३। ८४-८५)

'राम! विश्वकर्माका पुत्र मतिमान् नल मेरे जलपर पुल निर्माण करे। नल वानर वरके प्रभावसे इस कार्यको करनेमें समर्थ है। इससे सब लोग आपकी संसार-मलापहारिणी कीर्ति जान जायँगे।'*

जलधिकी इस विनयपूर्ण उचित वाणीको सुनकर श्रीरामने उससे कहा—'मेरा यह तेजोमय शर अव्यर्थ है, अतः इसका लक्ष्य शीघ्र बताओ।'

श्रीरामकी यह वाणी सुनकर एवं उनके कर-कमलोंमें उस महाबाणको देखकर समुद्रने कहा—'राम! उत्तरकी ओर द्रुमकुल्य नामक एक देश है। वहाँ अत्यधिक अनाचारी रहते हैं। उनसे मुझे कष्ट भी होता है। आप अपने अमोघ बाणका लक्ष्य उसे ही बनायें।'

श्रीरामने वह तेजोमय शर छोड़ दिया और वह क्षणमें ही उक्त देशको ध्वंस कर पुनः प्रभुके तूणीरमें आ गया।

यह दृश्य देखकर जलधिने पुनः प्रभुके चरणोंकी वन्दना की और फिर वह अपने स्थानको चला गया।

श्रीरामने सुग्रीव एवं लक्ष्मणके साथ नलको वानर-भालुओंकी सहायतासे जलधिपर सेतु-निर्माण करनेकी आज्ञा दे दी।

---

* नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाईं रिषि आसिष पाई॥ तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे॥
मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहउँ बल अनुमान सहाई॥ एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहिं यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ॥
(रामचरितमानस ५। ५९। १-२)

श्रीरामकी गोभक्ति

(लेखक—श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी, एम्०ए०-द्वय)

भारतीय संस्कृति-सभ्यताके आधारस्तम्भ गौकी गरिमा, गौकी महिमाका विस्तृत विवेचन वेदोंसे लेकर अर्वाचीन ग्रन्थोंतकमें पाया जाता है। श्रीकृष्णकी गोभक्तिसे तो लोग परिचित हैं; किंतु श्रीरामकी अद्वितीय गोभक्तिका रहस्योद्घाटन सभीके लिये अपेक्षित और अत्यावश्यक है।

दैत्यों और दानवोंके अनाचार-अत्याचारसे समस्त सुर-नर-मुनि-समाज संत्रस्त था, पीड़ित था। अनेकों बार ऋषि-मुनियों और देवताओंने एक साथ संयुक्त होकर समवेत स्वरमें श्रीरामजीसे भूभार उतारनेकी, अवतार लेनेकी प्रार्थना की, किंतु कोई सुनवाई नहीं हुई। अन्तमें—

'सँग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका।'

(मानस १। १८३। छन्द)

जब पृथ्वीने गोमाताका रूप धारणकर उस समुदायमें सम्मिलित होकर आर्तस्वरसे, करुण स्वरसे पुकार की, प्रार्थना की, तब तो गो-द्विज-हितकारी भगवान्‌का करुण कोमल हृदय पिघल उठा; अब तो उन्हें रामरूपमें अवतरित होना स्वीकार करना पड़ा और कहना पड़ा—

'तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा॥' (वही, १। १८६। ३)

सभी लोग बड़ी उत्कण्ठासे, बड़ी उत्सुकतासे श्रीराम-जन्मकी प्रतीक्षा कर रहे थे, मार्ग देख रहे थे; किंतु फिर भी राम-जन्म होनेमें विलम्ब हो रहा था। महाराज दशरथने पुत्रप्राप्तिके लिये कई विवाह किये; परंतु आशा निराशामें ही बदलती रही। अब तो ऋषियोंको पुनः श्रीरामकी गोभक्तिका ध्यान आया और उन्होंने शृङ्गी ऋषिको बुलाकर पुत्रकाम-यज्ञ प्रारम्भ करा दिया। यज्ञमें विभिन्न प्रकारके मिष्टान्नोंकी आहुतियाँ दी जा रही थीं, किंतु अग्निदेव फिर भी प्रसन्न नहीं हो रहे थे। जैसे ही गोघृत और गोदुग्धसे बने हुए हविष्यान्नकी आहुतियाँ दी जाने लगीं, अग्नि देवता प्रसन्न होकर उसी हविष्यान्नको लेकर तुरंत प्रकट हो गये—

'प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें॥' (वही, १। १८८। ४)

और आशीर्वाद देते हुए राजासे कहने लगे—

'यह हवि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई॥'

(वही, १। १८८। ४)

इस प्रकार वह निराकार-निर्विकार व्यापक ब्रह्म गोभक्तिके वशीभूत होकर, नारायणसे नर बनकर, भूभार-निवारण करनेके लिये, गो-संरक्षण और गोसंवर्द्धन करनेके लिये श्रीरामरूपमें अवतरित हो गया—

'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।'

(वही, १। १९२)

श्रीरामजीके जन्म लेते ही गो-सेवाके कार्य प्रारम्भ होने लगे, गोदान किये जाने लगे—

'हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह।'

(वही, १। १९३)

श्रीरामजीकी बालक्रीड़ाओं, शिशुलीलाओंमें भी गोभक्ति सर्वत्र झलकती है। गोदुग्ध और गोदधि भारतीय भोजनके सदैवसे प्रमुख अङ्ग रहे हैं। गोदुग्धकी महिमाको भोजनके लिये सांकेतिक ढंगसे बतानेवाले श्रीरामजी इसी लिये भोजन करते समय मुखमें दही-भात लगाकर, किलकारी मारकर, बाहर भाग जाते हैं—

भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ॥

(वही, १। २०३)

समस्त भूमण्डलके विजेताओंको पराजित करनेवाले उस शिवधनुषको तोड़नेके पश्चात् भी श्रीरामजीके विवाहका मुहूर्त निश्चित नहीं हो पा रहा था। वर-कन्या दोनों पक्षोंके बड़े-बड़े ज्योतिर्विज्ञान-विशारद—विश्वामित्र, वसिष्ठ और शतानन्द आदि विवाहके लग्नमुहूर्तका संशोधन कर रहे थे; किंतु उपयुक्त लग्न नहीं मिल रहा था। जैसे ही ऋषियोंको श्रीरामकी गोभक्तिका स्मरण आया, उसी क्षण सारी समस्या सुलझ गयी, लग्न-मुहूर्त मिल गया। गोभक्ति-भावनासे अवतरित होनेवाले श्रीरामके विवाहका समय गोधूलि-वेला ही सबसे उत्तम हो सकता है, यह सोचकर सभी ऋषि-महर्षि एक स्वरसे कह उठे—

धेनुधूरि बेला बिमल सकल सुमंगल मूल।
बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन जानि सगुन अनुकूल॥

(वही, १। ३१२)

श्रीरामजीके राज्य-सिंहासनारूढ़ होनेपर गौओंका लालन-

पालन—गोसंरक्षण और गोसंवर्द्धन इतना अधिक हुआ कि सम्पूर्ण देशमें घी और दूधकी नदियाँ बहने लगीं, मनचाहा घी-दूध लोगोंको प्राप्त होने लगा—

'मनभावतो धेनु पय स्रवहीं ॥'

(वही, ७ । २२ । २ ½)

परिणामस्वरूप सभी देशवासी रोगों-दोषोंसे मुक्त होकर, सुन्दर, स्वस्थ, सशक्त, बलवान्, चरित्रवान्, दीर्घजीवी जीवन व्यतीत कर रहे थे—

'अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा । सब सुंदर सब बिरुज सरीरा ॥'

(वही, ७ । २० । २ ½)

उपरिवर्णित श्रीरामकी गोभक्ति हम सभी लोगोंके लिये अनुकरणीय और अनुसरणीय है ।

भगवान् रामकी शक्ति-पूजा

(लेखक—श्रीरामकाल)

महामाया महिषमर्दिनी भगवती मातृशक्तिकी परिपूर्णतम चिन्मय प्रतीक हैं । उनकी उपासनासे रूप, जय और यशकी प्राप्ति होती है । जगदीश्वरीकी महिमा अपार है । देवताओं-द्वारा की गयी देवीकी स्तुति है—

हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषै-
र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा ।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ४ । ७)

'देवि ! आप सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिकी कारणभूता हैं । आपमें सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण—तीनों हैं; तो भी दोषोंके साथ आपका संसर्ग नहीं जान पड़ता । भगवान् विष्णु और महादेव आदि भी आपका पार नहीं पाते । आप ही सबका आश्रय हैं । यह समस्त जगत् आपका अंशभूत है, आप सबकी आदिभूता अव्याकृत परम प्रकृति हैं ।'

भगवान् रामने परा अम्बा जगदीश्वरीकी पूजा की, रावणके वध और भगवती सीताके उद्धारके लिये—ऐसा उल्लेख श्रीमद्देवीभागवत, कालिकापुराण और कृत्तिवास-रचित बँगला रामायणमें मिलता है । बँगलासाहित्यके रामभक्त कवि कृत्तिवासने अपनी सप्तकाण्डी रामायणके लङ्काकाण्डमें रामके दुर्गोत्सवका विस्तारसे वर्णन किया है । रामने आश्विन शुक्लपक्षमें लङ्कामें युद्ध करते समय रावणके विनाश और सीताके उद्धारके लिये जगदम्बाका 'बोधन' किया ।

रामने जगदम्बाका उस समय स्मरण किया, जब रावणसे उनका विकट संग्राम हो रहा था । रावण युद्ध-भूमिमें राघवेन्द्रके सम्मुख था । वह वानरोंका संहार कर रहा था । वह रथपर था, राम विरथ—रथविहीन थे । इन्द्रके सारथि मातलिने स्वर्गसे आकर उन्हें देवराजका रथ दिया । रामने रथकी परिक्रमा कर उसे नमस्कार किया । रथपर आरूढ़ हो वे रावणसे घोर युद्ध करने लगे । कृत्तिवासीय रामायणमें इसी स्थलसे देवीपूजाका क्रम चित्रित किया गया है । रावणने इन्द्रका रथ पहचाना । उसने मनमें संकल्प किया कि 'यदि मेरे प्राण इस बार बच गये तो मैं एक-एक कर समस्त वानरसेनाका संहार कर दूँगा ।' युद्ध भीषणरूप धारण करने लगा । रावणने जगदम्बाका स्मरण किया और उनसे प्रार्थना की—'माँ तारा ! आप दयामयी हैं, असमयमें मेरी रक्षा कीजिये । संसारमें मुझे अब किसीका भरोसा नहीं है । शंकरने भी मेरा त्याग कर दिया, इसलिये मैंने आपका स्मरण किया है । आप शक्ति, मुक्ति और तृप्ति हैं । मेरा शोकनिवारण कीजिये ।' दयामयी पार्वती सहज प्रसन्न हो उठीं । वे उसे अभयदान करनेके लिये रथपर बैठ गयीं ।

रामने रावणके रथपर जगदम्बाको देखकर विस्मय प्रकट किया । उन्होंने माँको प्रणाम किया । राम चिन्तित हो उठे । उनकी चिन्तासे इन्द्र व्यथित हुए । उन्होंने ब्रह्मासे उपाय पूछा । ब्रह्माने इन्द्रसे कहा कि चण्डीपूजासे ही रावणका संहार सम्भव है । इन्द्रके निवेदनपर ब्रह्माने रणस्थलमें आकर रामको देवीपूजाका क्रम बताया । राघवेन्द्रने सागर-तटपर जाकर देवीका स्तवन किया । उन्होंने चण्डीपाठ किया । वानरगण उत्सव और नृत्य करने लगे । रामने मृण्मयी मूर्ति बनायी; षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी और नवमीको पूजा कर दशमीको देवीका शास्त्रविधिसे विसर्जन किया ।

हनुमान्ने दूर-दूरसे पुष्प आदि लाकर अनेक प्रकारकी पूजा-सामग्री एकत्र की । रामने बड़ी श्रद्धासे पूजा की और देवीने अप्रकट रूपसे उनकी पूजा स्वीकार की, पर उनका साक्षात् दर्शन न हो सका । विभीषणने कहा कि जगदम्बाको प्रसन्न करनेका उपाय है—उनके चरणोंमें एक सौ आठ नीले उत्पलोंका समर्पण । हनुमान् देवीदहसे नीलोत्पल लेने चल पड़े । इधर लीलाविहारी रामने महाशक्ति दुर्गादेवीका स्तवन किया—

दुर्गे दुःखहरा तारा दुर्गतिनाशिनी ।
दुर्गमे शरणा विन्ध्यगिरि निवासिनी ॥
दुराराध्या ध्यानसाध्या शक्ति सनातनी ।
परात्परा परमा प्रकृति पुरातनी ॥
नीलकण्ठप्रिया नारायणी निराकारा ।
सारात्सारा मूलशक्ति सवित्री साकारा ॥
महिषमर्दिनी महामाया महोदरी ।
शिवनितम्बिनी श्यामा सर्ववाणी शंकरी ॥
विरूपाक्षी शताक्षी शारदा शाकम्भरी ।
भ्रामरी भवानी भीमा धूमा क्षेमंकरी ॥
काली कालहरा कालाकाले कर पार ।
कुलकुण्डलिनी कर कातरे निस्तार ॥
लम्बोदरी बाघाम्बरा कलुषनाशिनी ।
कृतान्तदलनी कालउरोविलासिनी ॥
(कृत्तिवासीय रा०, लङ्का०)

देवी फिर भी प्रकट न हुई, रामके नयनोंमें अश्रु आ गये । हनुमान्ने एक सौ आठ नीले कमल दिये । रामने माँके चरणोंपर कमल चढ़ाये, पर वे एक सौ सात ही थे । हनुमान्ने कहा कि 'अब देवीदहमें एक भी कमल नहीं है, संकल्प-भङ्ग और परीक्षाके लिये निस्संदेह देवीने एक कमलका अपहरण कर लिया है ।' राम कातर हो उठे । उन्होंने देवीका स्तवन किया । फिर भी देवीका साक्षात्कार नहीं हुआ । रामने विचार किया कि 'मुझे लोग नीलपद्माक्ष कहते हैं । मैं अपना एक नयन जगदम्बाके चरणमें समर्पित कर दूँगा ।' उन्होंने बाणसे ज्यों ही नयन निकालना चाहा कि भगवतीने प्रकट होकर उनका हाथ पकड़ लिया । देवीने प्रत्यक्ष दर्शन दिया । रामने रावणके संहारकी अनुमति माँगी । देवीने कहा—'मुझे नयन नहीं चाहिये ।' संकल्प पूरा हो गया । देवीने रामकी स्तुति की—'आप दयामय अखिल ब्रह्माण्डनायक हैं; आप अच्युत, अव्यय और सकल चराचरकी गति हैं ।' देवीने कहा—

मायार मनुष्य तुमि, चतुर्बाहु, आइले भूमि,
नाशिते राक्षस-दुराचार ।
(कृत्तिवासीय रामा०, लङ्का०)

'तुम मायासे मनुष्य बने हुए हो, तुम साक्षात् चतुर्भुज विष्णु हो, जो दुराचारी राक्षसोंका विनाश करनेके लिये धराधामपर अवतीर्ण हुए हो ।' देवीने रामसे निवेदन किया कि तुमने लोकको ज्ञान करानेके लिये मेरी पूजा की । मैं धन्य हो गयी । तुमने भूमण्डलमें मेरा प्रकाश किया ।'

लोके जानावार जन्य, आमारे करिले धन्य,
अवनीते करिले प्रकाश ।
(कृत्तिवासीय रामायण, लङ्का०)

देवीने पूजासे प्रसन्न होकर रावण-वधकी आज्ञा दे दी । रामने रावणका अन्त करनेके लिये युद्ध-भूमिमें महासंहार-यज्ञ आरम्भ कर दिया ।

दशमी ते पूजा करि: विसर्जिया महेश्वरी,
संग्रामे चलिल रघुपति ।
(कृत्तिवासीय रामायण, लङ्का०)

'दशमीके दिन अन्तिम पूजा करके श्रीरामने भगवती महेश्वरीका विसर्जन कर दिया और रावणके साथ संग्राम करने चल दिये ।' विजय-कोदण्ड धारणकर राम रथमें आसीन हो गये । युद्ध हुआ और लङ्कापति रावणका वध कर रामने सीताका उद्धार किया । रामने जगदीश्वरीकी कृपासे विजय प्राप्त की । उनकी शक्तिपूजा सार्थक हो गयी ।



भगवल्लीलाके दर्शनसे मोह और श्रवणसे मोहनाश

(लेखक—श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन)

भगवान् श्रीरामकी लीलाओंमें अनेकों विलक्षणताएँ हैं। उनमें एक बड़ी ही विचित्रता देखनेमें आती है कि भगवान्‌की लीलाको 'देखने'से अहङ्कारके कारण मोह होता है और 'सुनने'से मोह नष्ट हो जाता है।

एक बार भगवान् शिव सतीजीके साथ कैलास जा रहे थे। मार्गमें उन्हें लक्ष्मणसहित भगवान् श्रीरामके दर्शन हुए, जो 'बिरह-बिकल' होकर सीताजीको खोजते हुए फिर रहे थे। शिवजीने आनन्दसे भरकर 'जय सच्चिदानन्द जग पावन' कहा और आगे बढ़ चले। परंतु भगवान्‌की उस मोहमयी लीलाको देखकर सतीजी मोहमें पड़ गयीं। पहले तो उनके विचारमें आया—

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥
(मानस १। ५०)

फिर विचार आया कि यदि श्रीरामको भगवान् विष्णुका अवतार मान ही लिया जाय, तो भी—

बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी॥
खोजइ सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम श्रीपति असुरारी॥
(वही, १। ५०। १)

इसके सिवा—'संभु गिरा पुनि मृषा न होई।' (वही, १। ५०। १½)। इस प्रकार सतीजी सभी ओरसे मोहरूपी भँवरमें पड़ गयीं। यह बात अन्तर्यामी शिवजीसे छिपी न रह सकी। उन्होंने सतीजीको बहुत बार समझाया, परंतु कुछ लाभ होता न देखकर अन्तमें 'हरिमाया-बलु' जानकर आज्ञा दे दी—

जौं तुम्हरें मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू॥
(वही, १। ५१। ½)

मनमें भरे अपार संशयको मिटानेके लिये सतीजी श्रीरामकी परीक्षा लेने चल पड़ीं; परंतु परीक्षा लेनेके बदले स्वयं ही परीक्षाका विषय बन गयीं और भयके कारण संशय भी वहीं-का-वहीं रह गया। आगे जब सतीजीने पार्वतीजीके रूपमें पुनर्जन्म ग्रहण किया, तब एक दिन अवसर पाकर वे शिवजीके पास अपने पूर्वजन्मकी कथा स्मरण करती हुई आयीं। तब उन्होंने 'हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी' कहते हुए अपने पूर्वजन्मकी शङ्काको सामने रखा। इसपर शिवजीने पार्वतीजीके मोहकी निवृत्तिके लिये उन्हें विस्तारसे श्रीरामचरित सुनाया। उसे सुननेके बाद उनका मोह दूर हो गया—'तुम्हरी कृपाँ कृपायतन अब कृतकृत्य न मोह।' (वही, ७। ५२ क) यही नहीं कि केवल मोह ही दूर हुआ हो—

'राम चरन उपजेउ नव नेहा।' (७। १२८। ४)
और 'उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस।'

शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम्।
कालेन नातिदीर्घेण भगवान् विशते हृदि॥
(श्रीमद्भा० २। ८। ४)

अर्थात् जो लोग भगवान्‌की लीलाओंका श्रद्धाके साथ नित्य श्रवण और कथन करते हैं, उनके हृदयमें थोड़े ही समयमें भगवान् प्रकट हो जाते हैं।

इसी प्रकार एक और प्रसङ्ग गरुडमोहका है। जब भगवान् श्रीरामने लीलापूर्वक अपनेको मेघनादके हाथों बँधा लिया, तब लीलारसिक श्रीनारदजीने गरुडजीको भेजा। श्रीरामके बन्धन काटकर लौटते समय गरुडजीको भी मोहने घेर लिया। उन्होंने सोचा—

भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जाकर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम॥
(वही, ७। ५८)

अपनी शङ्काको लेकर वे पहले नारदजीके पास ही गये। नारदजीने कहा—

जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआईं बिमोह मन करई॥
जेहिं बहु बार नचावा मोही। सोइ ब्यापी बिहंगपति तोही॥
(मानस ७। ५८। ३)

अतः नारदजीने 'महामोह उपजा उर तोरें। मिटिहि न बेगि कहें खग मोरें॥' (वही, ७। ५८। ३½) यों कहकर उसे ब्रह्माजीके पास भेज दिया। ब्रह्माजीने भी भगवान्‌की असीम प्रभाववाली मायाको जानकर उसे शिवजीके पास भेज दिया। शिवजीने गरुडजीसे मिलनेपर कहा—

मिलेहु गरुड़ मारग महँ मोही । कवन भाँति समुझावौं तोही ॥
तबहिं होइ सब संसय भंगा । जब बहु काल करिअ सतसंगा ॥
सुनिअ तहाँ हरिकथा सुहाई ।························॥

(वही, ७ । ६० । २—२½)

क्योंकि—

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ॥

(वही, ७ । ६१)

इस प्रकार कहकर शिवजीने गरुडजीको श्रीरामकथामृतरसिक काकभुशुण्डिजीके पास भेज दिया । वहाँ प्रेमपूर्वक श्रीरामचरित सुननेके पश्चात् उनका मोह दूर हो गया—'राम चरन नूतन रति भई । माया जनित बिपति सब गई ॥' (वही, ७ । १२४ । २) इसके सिवा 'जीवन जन्म सुफल मम भयऊ ।'

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-
नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य ॥

(श्रीमद्भा० १२ । ४ । ४०)

अर्थात् 'जो लोग अत्यन्त दुस्तर संसार-सागरसे पार जाना चाहते हैं अथवा जो लोग अनेकों प्रकारके दुःख-दावानलसे दग्ध हो रहे हैं, उनके लिये पुरुषोत्तम भगवान्की लीला-कथारूप रसके सेवनके अतिरिक्त और कोई साधन, कोई नौका नहीं है । वे केवल लीला-रसायनका सेवन करके ही अपना मनोरथ सिद्ध कर सकते हैं ।'

श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु !

'जानत प्रीति-रीति रघुराई'

(लेखक—श्रीमहेशजी भटनागर, एम्० ए०)

नन्दिग्राममें भरत-कुटीरके सम्मुख शिविका रुकी । अर्चनाका थाल लिये माण्डवीने कुटीमें प्रवेश किया । दीपकका प्रकाश फैला हुआ था । भरत प्रभुकी पादुकाओंके समीप ध्यानावस्थित थे । नयनोंसे अश्रु प्रवाहित हो रहे थे । किंतु चौदह वर्षोंमें सदा उदास, खिन्न, गम्भीर आकृतिपर मुस्कानकी रेखा देखकर माण्डवी गद्गद हो गयी । कुछ क्षण वह विस्मयविमुग्ध-सी पतिके पल-पलमें परिवर्तित होनेवाले मुखके भावोंको देखती रही । फिर आगे बढ़ी । पादुकाओंको प्रणामकर उसने पतिके चरणोंमें मस्तक टेका । भरत चौंके । भावलोकसे धरापर आये ।

'प्रभु आ रहे हैं, माण्डवि ! प्रभु आ रहे हैं ।' हर्षातिरेकमें अश्रु पोंछते हुए भरत बोले । उनका शरीर पुलकित हो रहा था ।

'कोई सूचना ?' माण्डवीने उत्सुकतासे पूछा । 'नहीं ! मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, प्रभु रणाङ्गणमें बैठे हैं । रावण-विजयपर हर्षोल्लास छा रहा है । राघवेन्द्र सरकारकी जयसे दिशाएँ ध्वनित हो रही हैं । सहसा विभीषणने गगनसे विमानद्वारा वस्त्राभूषण बरसाये । वानर-भालुओंका दौड़ना, परस्पर झपटना, प्रत्येक वस्तुको ध्यानसे देखकर अस्त-व्यस्त ढंगसे पहनना हास्यका वातावरण उपस्थित कर रहा था । उनकी विनोदमयी क्रीडाओंको देखकर प्रभु मैथिली-लक्ष्मणसहित हँस रहे हैं । प्रभु बड़े कौतुकी हैं माण्डवि ! अनन्तलीलामय हैं ।

'विभीषणने करबद्ध हो, राघवेन्द्रसे नगरमें चलकर विश्राम करनेकी प्रार्थना की । प्रभुके नेत्र अश्रुपूरित हो गये । वे करुणा-विगलित अवरुद्ध कण्ठसे बोले, 'मेरे द्वारा एक क्षणका विलम्ब महान् अनर्थकारक हो जायगा, लङ्केश ! मेरी प्रतीक्षामें बैठा भरत कहीं·····', प्रभु आगे न बोल सके । फिर कहा—'मेरे गमनका शीघ्र प्रबन्ध करो ।' कितने भृत्य-वत्सल हैं राघवेन्द्र । भरभरा उठे भरतके नयन । सहसा आह्लादके स्वरमें बोले—'देखो, माण्डवि ! मेरा दक्षिण नेत्र, मेरी दाहिनी भुजा फड़क रही है । आयेंगे न प्रभु ?' भरतने उत्सुकतासे माण्डवीकी ओर देखा ।

'अवश्य आयेंगे देव !' वाणीमें विश्वासका पुट था ।

'मेरे कुकृत्योंसे मुझे त्याग तो नहीं देंगे ?'

'नहीं । प्रभु उदार हैं । अपने जनके दोषोंपर दृष्टिपात भी नहीं करते । फिर आप तो·······'

'सत्य कहती हो, माण्डवि ! इस जनपर शैशवसे प्रभुकी अपार कृपा रही है । साधारण क्रीडामें भी स्वतः हारकर मुझे विजयश्री दिलानेमें उनका हाथ रहता था, मुझे गौरवान्वित करनेमें प्रभु सदा प्रयत्नशील रहते थे; किंतु

इस अभागेके कारण अकारण करुणामय रामको कितने कष्ट उठाने पड़ रहे हैं ! मैं कृतघ्न हूँ, मैं नारकी हूँ, माण्डवि !' रो पड़े भरत और निकल पड़े अश्रु माण्डवीके आरक्त नेत्रोंसे ।

'आप अधीर होंगे तो परिजनोंकी क्या दशा होगी ?'

'मुझे केवल एक दुःख है, माण्डवि ! पूज्य पिताश्री मुझे प्रभुके चरणोंमें अर्पित नहीं कर गये ।'

'अब तो प्रभु आ रहे हैं । वे अवश्य आपको अपनायेंगे ।' माण्डवीने आँचलसे भरतके नेत्र पोंछे ।

बालरविकी किरणने कुटीमें झाँका । माण्डवी बोल उठी—'देखिये, देव ! प्रभुके आगमनमें प्रकृतिका भव्य रूप, हरितिमासे ढके फलोंसे लदे वृक्षोंकी शोभा, अभिनव तरुदलोंमें क्रीड़ा करते हुए पक्षियोंका प्रमुदित कलरव और सुनिये कलकलनिनादिनी सरयूका प्रसन्नतामें निमज्जित स्वर ! अरुणोदय कितना मनोमोहक है, कितना सौम्य है, जैसे सूर्यकुलभूषण प्रभुके शुभागमनपर सूर्यदेव प्रसन्न हो रहे हों । प्रकृतिका अणु-अणु चौदह वर्षोंके अवसादसे ऊबकर, झूमता हुआ प्रभुके आगमनकी सूचना दे रहा है । ऐसा भान होता है कि कोई शीघ्र ही शुभ संदेश देनेवाला है ।'

'तुमने मेरे डगमगाते विश्वासको स्थिर कर दिया, माण्डवि !' सराहनाके स्वरमें भरत बोले ।

पतिकी अर्चना करके माण्डवी उठी । 'अब चलूँ, माताओंको धैर्य दूँ । बड़ी माँ तो नित्य ही शकुन मनाती हैं । कागको, प्रभुके आगमनका संदेश देनेपर, दूध-भातका दोना देने और सोनेसे चोंच मढ़ानेका आश्वासन देती हैं । मैं कहूँगी—'माँ ! प्रभु आ रहे हैं । अब कागकी चोंच मढ़ाइये, खिलाइये उसे खीर !'' माण्डवी हँस पड़ी और भरत मुस्करा गये ।

'बड़ी माँ परम वात्सल्यमयी हैं । उनकी दशा मुझसे नहीं देखी जाती । प्रभुके वियोगमें अस्थिमात्र रह गयी हैं ।'

'मुझे उर्मिलाकी चिन्ता है । वह गीले काष्ठकी भाँति अन्तरमें सुलगती रहती है । कुमार उसे पहचान भी न पायेंगे ।'

'हाँ, जाओ । उसे सान्त्वना दो ।' पतिके चरणोंमें प्रणाम करके माण्डवी चली गयी ।

भरत पुनः प्रभुके ध्यानमें बैठ गये । क्षणभरका विलम्ब उन्हें युग-सा प्रतीत हो रहा था । तनिक-सा स्वर सुनकर वे कुटीके द्वारपर खड़े हो जाते । विस्फारित दृगोंसे देखते रह जाते और निराश होकर आसनपर बैठ जाते । हृदयमें दुर्भावनाएँ जाग पड़तीं । विश्वासका सम्बल छूट जाता ।

'प्रभु क्यों नहीं आये ?' प्रश्न मनमें उठता; किंतु समाधान न पाकर अपने दोषोंका विश्लेपण करने लगते । 'मैं पामर हूँ, कुटिल हूँ, कपटी हूँ, समस्त अनर्थोंकी जड़ हूँ; तभी तो प्रभुने चित्रकूटमें मेरे अनुनय करनेपर भी मुझे अपने साथ नहीं लिया । लक्ष्मण धन्य है; प्रभुके सदा सांनिध्यमें रहकर अपने जीवनको कृतकृत्य कर रहा है; एक मैं हूँ, जो प्रभुके प्रत्येक मङ्गलमय विधानमें रोड़ा बनकर रहा । ऐसे नराधमको प्रभु कैसे अपनायें ! तभी तो वे नहीं आये ।' रो उठे भरत अपनी विवशतापर ! उनका हृदय अपनी मलिनतापर हाहाकार कर रहा था । एक संकल्प उनके उरमें उठा—'यदि प्रभु न आये तो भरत भी इस जीवन-लीलाको समाप्त कर देगा । ऐसे प्रभुविमुख जीवनसे लाभ ? प्रभु, राघवेन्द्र ! निराश्रयोंके आश्रय ! आपके विना भरतकी क्या गति होगी ।'

'सेवक, आपकी सागरके समान उमड़नेवाली कृपासे वञ्चित होकर, कैसे जीवित रह सकेगा, कृपासिन्धु !' भरत रुके । 'मुझमें सेवकके कोई गुण नहीं हैं, मेरे नाथ ! मेरे दोषोंपर दृष्टिपात करोगे तो मेरा कभी उद्धार न होगा, अन्तर्यामी ! कभी उद्धार न होगा ।' सिंहासनपर मस्तक रखकर भरत फफक-फफककर रो पड़े !

धीरेसे द्वार खुला ! एक ब्राह्मणने प्रवेश किया । पार्श्वमें स्थित हो, भरतकी दशा देखकर वह भावविभोर हो गया । ''ये ही राम-प्रेमकी अनुरागमयी मूर्ति भरत हैं ? जिनका संसार स्मरण करता है, वे ही अपने भरतका 'कमठ अंडकी नाईं' निरन्तर ध्यान करते हैं । भरत न होते तो संसारमें भ्रातृ-प्रेमकी धुरीको कौन धारण करता ? धर्मकी पताका कौन फहराता ?''

भरतने मस्तक उठाया । 'दयामय ! प्रणतपाल ! भरत दोषी है, कलङ्की है, अपराधी है, फिर भी आपका है । आप मेरे हैं, मेरे सर्वस्व हैं, मेरे जीवन हैं ।' गुनगुना उठे भरत ।

'जनकी चूकको क्षमा कर देनेवाले, अहैतुकी कृपाकी वर्षा करनेवाले मेरे प्रभु ! मुझे आपकी करुणाका विश्वास है ।' विश्वासभरा स्वर निकल पड़ा—

'अपुन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस ।'
(मानस २ । १८३)

उनकी उद्विग्नता शान्त हो गयी । 'श्रीराम, जय राम, जय जय राम'का जप उमंगसे करने लगे । 'नयनोंसे प्रेमाश्रु बह रहे थे ।

ब्राह्मण बेसुध हो गया । अपना स्वर मिलाकर वह भी गुणगान करने लगा । कर्तव्यका ध्यान आते ही वह आगे बढ़कर बोला, 'कुमार ! प्रभु राघवेन्द्र आ रहे हैं ।' भरत वैसी ही तल्लीनतासे जप करते रहे । 'कोशलेश प्रभु आ रहे हैं, देव !' जप चलता रहा । ऊँचे स्वरमें ब्राह्मणने कहा—

'रघुनन्दन राम मैथिली और अनुजसहित आ रहे हैं ।' भरत चौंके ।

'प्रभु मैथिली-अनुजसहित आ रहे हैं ? मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ । ब्राह्मण देवता ! तुम कौन हो ?' भरत ब्राह्मणके समक्ष खड़े हो गये । 'कोई भी हो, मुझे ऐसा लगता है, तुम मेरे राघवेन्द्रके अनन्य सेवक हो । तुमने मुझे उबार लिया, विप्रवर !' भरत ब्राह्मणके चरणोंमें झुके, किंतु उसने बीचमें ही उठा लिया उन्हें । भरतने ब्राह्मणको आलिङ्गनबद्ध कर लिया । नेत्रोंसे झरना बह रहा था । गद्गद वाणीसे भरत बोले, 'सत्य कहो, भैया ! मेरी डूबती नैयाके कर्णधार बनकर आनेवाले तुम कौन हो ? मेरे मृत प्राणोंको संदेश-सुधासे जीवन देनेवाले तुम कौन हो ?'

ब्राह्मण भरतकी विह्वलता देखकर सुध-बुध भूल गया । 'मैं आपका सेवक हूँ, भरतलाल !' कहकर चरणोंमें झुका । भरत उसे अधरमें उठाते हुए चकित रह गये, 'अरे ! आञ्जनेय ! हनूमान् ! मेरे प्रभुके अनन्य सेवक !' ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसे स्वयं प्रभु राम उन्हें मिल गये हों । भरत बार-बार पवनसुतको छातीसे लगा लेते हैं । 'महावीर ! मैं जन्म-जन्मान्तरमें भी तुमसे उऋण नहीं हो सकता । तुम्हारे दर्शनसे ही मेरी व्यथा मिट गयी । प्रभु सकुशल हैं न ?'

'हाँ, कुमार !'

'माँ जनकनन्दिनी प्रसन्न हैं ?'

'हाँ, देव !'

'मेरा लक्ष्मण सुखी है न ?'

'हाँ, कुमार !'

'अरे ! मैं बड़ा पागल हूँ, हनुमान् ! तुम्हारे शुभ संदेशने मुझे बावला बना दिया । मैं तुम्हें आसन देना भूल ही गया । लो, यहाँ बैठो मेरे पास !' हनुमान् आसनपर बैठ गये । 'बड़े भाग्यसे संतोंके दर्शन होते हैं ।' भरतने फलोंकी थाली आगे बढ़ाते हुए कहा—'प्रभुको भोग लगाकर प्रसाद पाओ, हनुमान् !' भरतके प्रेमातिरेकपर मुग्ध हो मारुति प्रभुको अर्पणकर फल खाने लगे ।

'प्रभु कहाँ हैं ? कब आयेंगे यहाँ ? कोई संदेश दिया है मेरे प्रभुने ?' भरतकी उत्सुकता बढ़ रही थी । 'महर्षि भरद्वाजके आश्रममें । आपकी कुशल जाननेके लिये मुझे भेजा है ।' 'कभी प्रभु मेरा स्मरण भी करते हैं ?'

हनुमान्‌जी गद्गद हो गये । अवरुद्ध कण्ठसे बोले—'स्मरण ही नहीं, अहर्निश आपका चिन्तन करते हैं । आपके नामका जप करते हैं । एक क्षणके लिये प्रभु अपने भरतको विस्मृत नहीं करते । आपकी चर्चासे राजीव-नयन अश्रु-पूरित हो जाते हैं ।'

प्रभुकी अपार वत्सलतापर भरत विह्वल हो गये । रोम-रोम पुलकित हो गया । ''दीन-हीनपर कृपा करनेवाले करुणा-मय प्रभुसे कहना—'आपके वियोगमें अयोध्यावासी मृतक-तुल्य हो रहे हैं । माताएँ प्रतीक्षामें पलक-पाँवड़े बिछाये बैठी हैं ।' और कहना हनुमान् ! 'वियोगमें दग्ध होनेवाले प्राणोंको शान्ति दें । विलम्ब न करें' ।''

पवनसुत चरणोंमें अभिवादन करके विदा हुए । भरत हनुमान्‌को नेत्रभर देखते रहे । उनका मन-मयूर आनन्दाति-रेकमें नाच रहा था ।

× × ×

राघवेन्द्रके आगमनका समाचार विद्युत्-गतिसे नगरमें फैल गया । जन-जनका मानस हर्षसे उद्वेलित हो उठा । अपने हृदय-सम्राट्के स्वागतमें नगरवासी नगरकी साज-सज्जामें जुट गये । चौदह वर्षोंसे मरुस्थल बने नगरमें उमंग-उत्साह-की सरिता हिलोरें लेने लगी । प्रत्येक भवन तोरण, पताका एवं मङ्गल-कलशोंसे सुशोभित हो गया । वीथियाँ सुगन्धसे सींची गयीं । विविध मणि-मुक्ताओंसे चौक पूरे गये । चारों ओर वाद्य बजने लगे । नारियाँ मङ्गलगीत गाने लगीं । सबकी दृष्टि चातककी भाँति आकाशकी ओर लगी थी ।

गगनमें विमान देखकर जन-रव गूँजा । 'प्रभु आ गये । राघवेन्द्र सरकार आ गये ।' हर्षकी लहर फैल गयी । अपना-अपना कार्य छोड़कर जो जिस अवस्थामें था, भागा ।

नगरके प्रवेशद्वारपर सब एकत्रित हो गये। प्रभु अपने समाजके साथ विमानसे उतरे। प्रभु-प्रेरणासे विमान कुबेरके लोकको खिन्न होकर चला गया। 'दशरथनन्दन महाराज रामचन्द्रकी जय!' का घोष ध्वनित हुआ। 'प्रभु रामकी जय! महारानी जानकीजीकी जय! सौमित्रि लक्ष्मणकुमारकी जय!'

प्रभु आगे बढ़े। मार्गमें कुसुम बिखेरती हुई नारियाँ चलने लगीं। झरोखोंसे सुन्दरियाँ आरती करके पुष्प बरसाने लगीं। महर्षि गुरु वसिष्ठकी जयकार हुई। प्रभुने गुरुदेवको आते हुए देखा। वे पृथ्वीपर धनुष-बाण रखकर गुरुके श्रीचरणोंमें लोट गये। महर्षिने हृदयसे लगाकर आशीर्वाद दिया। अश्रुपात होने लगा। 'युगों पश्चात् तुम्हें पाकर संतप्त हृदय शीतल हो गया, राघव!' मैथिलीने प्रणाम किया। 'अखण्ड सौभाग्यवती होओ, बेटी!' लक्ष्मणको चरणोंमें झुकते देख महर्षिने हृदयसे लगा लिया।

प्रत्येक व्यक्तिको आभास हुआ, प्रभु मिलकर कुशल पूछ रहे हैं। प्रभुकी प्रजावत्सलतापर जन-जन जय-जयकी ध्वनि करने लगा। इस विशाल जन-समूहमें प्रभुके नेत्र उत्सुकतासे अपने जनको ढूँढ़ रहे थे। जीर्णकाय भरतको तपस्वी-वेषमें देखकर प्रभु पुकारते हुए बढ़े—'भरत! मेरे भैया!' 'पाहि नाथ! पाहि नाथ!' कहकर भरत प्रभुके श्रीचरणोंमें लोट गये। प्रभुने बलात् भरतको उठाकर हृदयसे लगा लिया। दोनोंके नेत्रोंसे आँसुओंकी झड़ी लग रही थी, वियोगजन्य तापको शीतल करनेके लिये।

अनुपम भ्रातृ-मिलन देखकर गगनसे देवगण पुष्प बरसाकर प्रभुकी जय-जयकार करने लगे। जनता हर्षसे झूमने लगी और एक स्वरसे बोल उठी—'महाराज राघवेन्द्रकी जय! दाशरथि रामकी जय!! परम भागवत भरतलालकी जय!!!'

अपूर्व सुखद मिलनको सुग्रीव एवं विभीषणने देखा। दोनोंका हृदय भ्रातृ-द्रोहकी ग्लानिसे फूत्कार कर उठा। विभीषणने कंधेपर हाथ रखते हुए सुग्रीवसे कहा—'कपिराज! इस दिव्य भ्रातृ-मिलनको देख रहे हो?'

'हाँ', पश्चात्तापसे उसका स्वर दबा हुआ था। 'मुझे अपने व्यवहारपर दुःख होता है, लङ्केश! बाली भैया इतने बुरे न थे। मुझसे अटूट स्नेह करते थे। हम दोनोंमें घनिष्ठता थी। मैंने अपनी स्वार्थपरतासे उन्हें अपना शत्रु बना लिया। मेरा दृढ़ अनुराग होता तो वे एक दिन अवश्य अपना लेते।' सुग्रीवके नेत्र डबडबा गये। भर्राये स्वरमें बोले—'मेरे ऊपर प्रतिशोधका प्रेत चढ़ा था। प्रतिहिंसा नाड़ियोंमें दौड़ रही थी। उनका वध कराके ही हृदयका शूल शान्त हुआ।' कपिपतिने मुख नीचा कर लिया।

'यही दशा मेरी है, बन्धु!' भारी कण्ठसे विभीषणने कहा—''हृदय ग्लानिसे फटा जा रहा है। बड़े भैया मुझे बहुत चाहते थे। मुझे मन्त्रीका पद दे दिया था उन्होंने। प्रत्येक विषयमें मेरा परामर्श लेते थे, मेरी बात मानते थे। मैं संयमसे काम लेता तो सम्भव था, वे अनीतिसे बच जाते। उनसे असहयोग कर मैं विद्रोही हो गया। 'घरका भेदी लङ्का ढाहे' का अयश मस्तकपर ले लिया। संसार मुझे 'भ्रातृहन्ता' कहकर पुकारेगा, कपिराज!' ।'' विभीषण उदास हो गये।

'भरत भ्रातृ-प्रेमकी आदर्श मूर्ति हैं।' सुग्रीवने कहा 'और हम दोनों भ्रातृद्रोही, विश्वासघाती और भ्रातृ-हत्यारे हैं!'

जय-जयकार हुआ। भगवान् भरतसे पूछ रहे थे—'कुशलसे तो हो, भैया!'

'प्रभु!' अवरुद्ध कण्ठ हो रहा था भरतका। 'मेरे प्रभु..........'भरत आगे न कह सके

'भरत!' प्रभुने भरतकी पीठ थपथपायी।

'श्रीचरणोंमें ही कुशल है, प्रभु! आरतिहर! विरह-सागरमें डूबते हुए जनको आपने उबार लिया।'

'क्षमा करो, भरत! विलम्बके लिये मैं लज्जित हूँ।'

'नाथ!' भरत चरणोंमें गिरकर रो उठे। प्रभुने बलात् हृदयसे लगा लिया और अपने उत्तरीयसे भरतके आँसू पोंछे।

'मेरी भावनाएँ श्रीमुखसे कहकर मुझे लज्जित न करें, करुणा-शील! क्षमाप्रार्थी तो सेवक है। प्रभुको कितना कष्ट हुआ है, इस जनके कारण!' शत्रुघ्नने प्रभुके पादपद्मोंको स्पर्श किया। प्रभुने उसे भुजाओंमें भर लिया।

'भरत!' गम्भीर हो प्रभुने कहा—'मुझे तुमपर गर्व है। तुम्हारे अतुलनीय त्याग, तुम्हारे अनन्य भ्रातृ-प्रेमने मुझमें सदा साहस और शक्तिका संचार किया है। मैंने प्रवासमें भाइयोंको एक-दूसरेके रक्तका प्यासा देखा। उनके आन्तरिक द्वन्द्वमें स्वार्थपरताका ताण्डव देखा। यही कारण है दक्षिण-पथकी दो महान् शक्तियोंकी पराजयका।'

भरत अपनी प्रशंसा सुनकर संकुचित हो गये। जनको गौरव देना ही प्रभुका स्वभाव है। लक्ष्मणने समीप आकर

कहा—'प्रभु! माताएँ आ रही हैं।' श्रीरामने कौशल्या तथा सुमित्रा अम्बाको देखा। प्रभु ऐसे भागे, जैसे बछड़ा उमाहता हुआ अपनी बिछुड़ी माँसे मिलता है। राम माताओंके चरणोंमें लिपट गये। 'आयुष्मान् होओ, मेरे लाल! यशस्वी होओ!' आशिष देते हुए कौशल्या अम्बाने रामको हृदयसे लगा लिया। जल चूने लगा माँकी पुतलियोंसे। 'राघव!' गद्गद स्वरमें अम्बा बोली—'दीर्घ अवधिसे प्रज्वलित हो रही हृदयाग्नि निर्वापित हो गयी। चिरतृषित नेत्रोंकी पिपासा शान्त हो गयी, राजीवलोचन!' माँ बलैया लेने लगीं। 'आज महाराज होते तो कितने प्रसन्न होते। तुम्हारे राज्यारोहणकी अधूरी साध लेकर महाराज चले गये।' माँका कण्ठ भर आया।

'व्यथित न हो, अम्बे! राम अब अपनी जननीको छोड़कर कहीं नहीं जायगा।' कौशल्या अम्बाने मैथिली और लक्ष्मणको हृदयसे लगा, नेत्र मूँद लिये उस कृपणकी भाँति जो अपनी निधिको छिननेके भयसे छातीसे लगाये रहता है। अम्बा फूली नहीं समा रही थीं।

''माँ! लक्ष्मणके शक्ति लगनेपर तुमने हनुमान्‌के द्वारा संदेश भेजा था कि 'राघवसे कहना, अयोध्या एकाकी न आये। बिना लक्ष्मणके राम अच्छा न लगेगा।' तो लो।'' लक्ष्मणकी भुजा पकड़ते हुए प्रभु बोले—'सँभालो अपनी थाती। मैथिलीसहित लक्ष्मणको सौंपकर मेरा उत्तरदायित्व पूर्ण हो गया, अम्बा!' कौशल्या अम्बाके मुखपर मुस्कान खेल गयी। लक्ष्मणने सुमित्रा अम्बाके चरण छूए। माँने उसे हृदयसे लगा लिया। 'वत्स! तूने जननीका पद देकर मुझे गौरवान्वित कर दिया।' आशीर्वाद देती हुई वैदेहीको महारानी सुमित्राने भुजाओंमें आवेष्टित कर लिया।

प्रभुके संकेतसे मानव-वेषधारी ऋक्ष-वानरोंने माताओं तथा गुरुदेव वसिष्ठके चरणोंमें प्रणाम किया। प्रभुने परिचय देते हुए कहा—'गुरुदेव! ये सब मेरे सखा ही नहीं, मेरी जीवन-नैयाके खेवैया हैं। मेरे लिये प्राणोंका उत्सर्ग करनेको सदा तत्पर रहे हैं। सत्य कहता हूँ, अम्बे! मुझे ये सब भरतसे भी अधिक प्रिय हैं।' प्रभुने सखाओंका पृथक्-पृथक् परिचय दिया। फिर सबको सम्बोधित करते हुए बोले—'ये मेरे पूज्य गुरुदेव हैं। इनकी अपार कृपासे ही निशाचरोंका उन्मूलन हुआ है। ये मेरी जननी हैं कौशल्या अम्बा और यह मेरी छोटी माँ सुमित्रा अम्बा हैं। हम सबको भीषण कष्टोंसे उबारनेमें इनके आशीर्वादका बहुत बड़ा हाथ है।'

प्रभुके सखाओंने माताओं तथा गुरुदेवके चरण छुए। माताओंने पुत्रवत् जानकर वात्सल्यभरे स्वरसे आशीर्वाद दिया।

'भरत!' प्रभुने पुकारा। 'सखाओंके विश्रामकी व्यवस्था करो।' फिर सबको विदा देकर जननी-सहित महलमें चले गये।

× × ×

महारानी कैकेयीका कक्ष, जो कभी कार्य-कलापका केन्द्र था, जहाँसे निकलनेवाले आदेश तथा विज्ञप्तियोंकी उत्सुकतासे प्रतीक्षा होती थी, जहाँ बड़े-बड़े चक्रवर्ती नरेश भयभीत-से प्रवेश पाते थे, वह अब निर्जन, सुनसान-सा था। सूर्यकी किरणें त्रसित-सी प्राङ्गणमें झाँककर चली जातीं। रात्रिमें शशिकी शीतल रश्मियाँ दाहकतासे पीड़ित हो, तिरोहित हो जातीं। वासन्ती सुषमा निदाघकी उष्णताका अनुभव करके आनेका नाम न लेती। सर्वत्र उदासी और उपेक्षाका वातावरण छाया था।

महारानी कैकेयी अपने प्रकोष्ठमें एकाकी खोयी-सी घूमतीं। विगत घटनाएँ उनके मस्तिष्कमें घूम जातीं। पश्चात्तापकी ठंडी साँस उनके हृदयसे फूट पड़ती। अधिक व्यथित हो जातीं तो नेत्र रोने लगते। व्यथाके भारको दबाये, महाराज दशरथके चित्रके समक्ष खड़ी हो जातीं। अपलक नेत्रोंसे देखती हुई बुदबुदा उठतीं, 'देव! राम-वनवासकी अवधि समाप्त हो रही है। राम आनेवाले हैं। राम राजा होंगे और भरत उनका सहयोगी। आपके रामराज्यका स्वप्न साकार होगा, किंतु मेरा क्या होगा।'

कण्ठ रुँध गया। 'नाथ! कैसा असीम प्रेम था आपका! मेरी प्रशंसा करते अघाते न थे। प्रशासकीय विषयोंमें मेरी मन्त्रणा लेते थे। समरमें मैं ही आपकी सहयोगिनी बनकर जाती थी। आपको स्मरण है, देव! जब देवासुर-संग्राममें रथकी कीली निकलनेसे रथ गिरने लगा था, मैंने अपनी अँगुली लगाकर भयंकर दुर्घटनासे उसे बचा लिया था। आपने मेरे साहस, मेरी सूझकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। दो वर देनेका वचन दे दिया, किंतु वे वरदान मेरे लिये अभिशाप हो गये।

'अन्तिम समयमें आपका प्रेम अमिट घृणामें परिवर्तित हो गया।' वे रुकीं। घटना भयंकरतासे घूम रही थी। कैसा पिशाच आरूढ़ हो गया था मुझपर! आपकी करुण याचनाओंमें षड्यन्त्रकी दुर्गन्ध आयी मुझे! आपकी निश्छल सरलतामें कुटिलता लगी और आपका प्रेम केवल ढोंग

प्रतीत हुआ । आपके कुसुम-कोमल हृदयको मेरे कटु शब्दोंने मर्माहत कर दिया । पुत्रकी ममतामें मुझ मोहान्ध पिशाचिनीको मिला क्या ? अखण्ड वैधव्य । सर्वस्व दाँव-पर लगाकर इस हारी हुई जुआरिनीको उपलब्ध हुए पुत्रकी घृणा, तिरस्कार और ग्लानि ।' विदीर्ण होते हुए हृदयको उन्होंने कसकर सँभाला ।

त्वरित गतिसे आती हुई वृद्धाने पुकारा—'महारानी !' उसके स्वरमें हर्ष था । 'मन्थरा ! तू ! कैसे आयी ?' आश्चर्यसे कैकेयीने पूछा । 'फिर कोई षड्यन्त्रकी योजना बनाकर लायी है क्या ? अब किसका निर्वासन चाहती है ? अपनी पुत्रीवत् कैकेयीको वैधव्य देकर, पुत्रसे वञ्चित कर, संसारमें अपयशकी पात्री बनाकर अब और क्या साध लेकर आयी है ?' रो उठीं अञ्चलमें मुख छिपाकर कैकेयी । उनका दबा हुआ आक्रोश आँसुओंमें बहने लगा ।

'अब अधिक न कहो, महारानी !' भर्राये स्वरमें मन्थरा बोली । "तुम मेरी दशा नहीं समझ सकती; हर समय हृदयमें जलन रहती है । मेरी आत्मा मुझे कचोटती है; मनुष्यकी छायासे मुझे भय लगने लगा है; दिनमें बाहर निकलनेका साहस नहीं होता । जन-जनकी अँगुलियाँ उठने लगती हैं—'यही है घरफोड़ी, जिसने अयोध्या उजाड़ दी; यह साढ़साती जा रही है ।' भागती हूँ दूर, बहुत दूर, भीगी बिल्लीकी तरह ।" वह रुकी । हाँफने लगी ।

"तुमने सत्य कहा था, बिटिया रानी ! —'काने-लँगड़े-कुबड़े बड़े कुटिल, कुचाली होते हैं । उसपर स्त्री और वह भी दासी ।' उस दिन छोटे कुमार मुझे घसीटकर और लात मारकर रह गये । प्राण ले लेते तो अच्छा था । एक पापिनी, कुल-उजाड़नीसे पृथ्वी मुक्त हो जाती । भाग्यमें अभी ठोकरें बदी हैं ।" मन्थरा फूट-फूटकर रो उठी और द्रवित हो गयीं महारानी कैकेयी । उन्हें मन्थरा निर्दोष लगी । 'मेरा हृदय ही अविश्वासी हो गया था । मत रो, पगली ! अब तो शेष जीवन ही रोते बीतेगा ।'

'माँ ! छोटी माँ ? कहाँ हो अम्बे !'

कैकेयी चौंकी ! 'यह तो रामका स्वर है । क्या राघव आ गया ?'

'यही सुख-संवाद सुनाने आयी थी, रानी बिटिया !' कहकर मन्थरा लकड़ी टेकती एक ओर चली गयी । राम कक्षमें आये ! दौड़कर माँके चरणोंमें लिपट गये । कैकेयीने रामको हृदयसे लगा लिया । उन्हें लगा, जैसे उनकी युगोंकी व्यथा शान्त हो गयी हो ।

'राघव !' कैकेयीके मुखसे निकला और मुखपर आँसू ढुलक पड़े !

'मेरे नयन तुम्हें उस विशाल जन-समूहमें ढूँढ़ रहे थे, अम्बे ! ऐसा भास हुआ, माँ अपने रामसे रुष्ट है । मनाने आया हूँ ।'

'क्या कह रहे हो, राघव ! तुमसे नहीं, स्वयंसे रुष्ट हूँ । क्षमा करो, राम !'

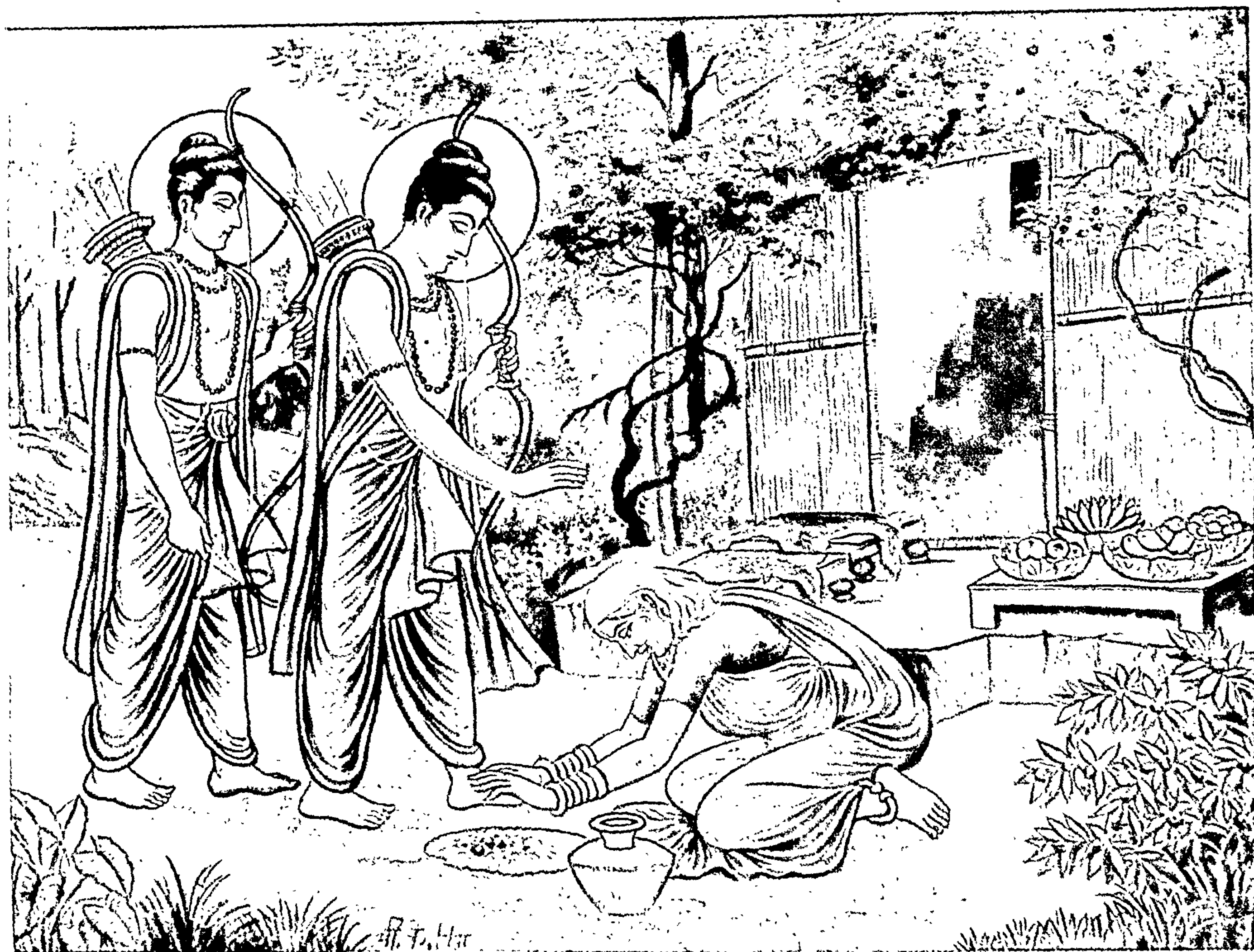
'अपने पुत्रसे क्षमा ?' प्रभु माँकी शान्तिदायिनी गोदमें थे ।

"हा राघवेन्द्र ! तुम्हारे सामने मेरी दृष्टि नहीं उठती । मेरी आत्मा प्रताड़ित करती है मुझे । अहर्निशकी शान्ति छिन गयी है मेरी । इतिहास मुझे कभी न क्षमा करेगा । आनेवाली पीढ़ी—'कलङ्किनी, पतिघातिनी, पुत्र-परित्यक्ता' कहकर घृणासे मुझपर थूकेगी । मैं पापिनी हूँ, हत्यारी हूँ । मैं तुम्हारी माँ कहलानेयोग्य नहीं हूँ ।"

'अम्बे ! तुम्हारी महानता स्वार्थी संसार न समझ सकेगा, अपयशका भाजन बनना, स्वेच्छासे वैधव्य-वरण करना, घृणा, आक्रोश, कटु आलोचनाओंको सुनना और सहना तुम्हारा ही काम था । सत्य कहता हूँ, माँ ! तुम ऐसा साहस न करती तो संसार रावणके अत्याचारोंसे मुक्त न होता । तुम्हारे रामको वनवासी जीवन बिताकर संत-समागमका अवसर न मिलता ! तुम्हारा महान् त्याग है, माँ !'

"मेरे स्वार्थको त्यागकी संज्ञा न दो, राघव ! मैं पुत्र-प्रेममें अंधी हो गयी थी । केवल भरतको सिंहासनासीन देखनेके लिये मैं संसारमें बड़ी-से-बड़ी विपत्ति ढहानेके लिये तत्पर थी और वही क्रिया मैंने । राम ! सत्य कहती हूँ, मैं जननी होकर भी भरतको न समझ सकी । जान पाती तो यह अनर्थ न होता । जिसके लिये यह खेल खेला, वह भी मेरा न हो सका । मेरा हृदय निरन्तर क्षुब्ध रहता है । भरत मुझे 'माँ' कहकर नहीं पुकारता । मेरी छायासे भागता है । मैं हारे जुआरीकी भाँति कहींकी नहीं रही । पति-पुत्र दोनोंसे हाथ धो बैठी ।" कैकेयी रुआसी हो गयी ।

'दुखी मत होओ, माँ ! तुम्हींने एक दिन कामना की थी—राम और सीता मेरे पूत-पतोहू बनकर रहें । मुझे अपना ही बना लो, माँ !' रामने कैकेयीके चरण पकड़ लिये !



शबरीपर कृपा

[पृष्ठ ४३१

'तुम कहती थी न ? राम और भरत मेरे दो नेत्र हैं। फिर यह अलगाव कैसा ?'

'नहीं राम !' कैकेयीने रामको अपने समीप बैठा लिया ! 'तुम मुझे अन्यथा न समझो ! विश्वास करो, तुम मुझे भरतसे बढ़कर प्रिय हो। अलगावने ही अनर्थकी सृष्टि कर दी। भरतके त्यागने मेरे नेत्र खोल दिये। राम ! पश्चात्तापकी अग्निमें मेरा कलुष, मेरा स्वार्थ, मेरी अंधी ममता भस्म हो गयी।'

'जिस कार्यका परिणाम शुभ हो, सुखदायी हो, वह श्लाघनीय है। त्रैलोक्यमें शान्तिकी स्थापनाका श्रेय तुम्हें ही है, जननी ! तुम्हारी निन्दा करनेवाला नारकी है। भरतजननी होनेका गौरव तुमसे कोई न छीन सकेगा। माँ ! राम उसी गौरवमयी जननीको प्रणाम करता है।' कैकेयी मुस्करायीं। रामका मस्तक चूमकर आशीर्वाद देने लगीं ! ग्लानि और विषादका भार हटनेसे हृदय प्रसन्न हो गया ! 'मन्थराको भी क्षमादान दे दो, राम !' कहकर कैकेयीने मन्थराको पुकारा ! मन्थरा लज्जासे झुकी, दुखी-सी श्रीरामके चरणोंमें लिपट गयी—'मुझे क्षमा करो, सरकार ! मैं पापिनी हूँ।' 'नानी माँ !' वृद्धाको उठाते हुए प्रभु बोले, 'पश्चात्तापकी अग्निने तुम्हें कुंदन बना दिया है। अब तुम पवित्र हो।'

उसी समय प्रहरीने सूचना दी—'गुरुदेवने स्मरण किया है।' प्रभु खड़े हो गये। मुस्कराते हुए प्रभु बोले—'इच्छा होती है, माँ ! तुम्हारे चरणोंमें ऐसे ही बैठा रहूँ।'

कैकेयी हँस पड़ीं। 'सिंहासनपर यथाशीघ्र बैठकर इन नेत्रोंको सफल करो, राघव !' 'आशीर्वाद दो, माँ ! राम अपने महान् उत्तरदायित्वको जनताका सेवक बनकर निभा सके।' 'जननीका आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ है, राघवेन्द्र !'

प्रभु माँके चरणोंमें अभिवादन करके विदा हुए !

× × ×

महाराज, राजराजेन्द्र, राघवेन्द्र रामका राज्याभिषेक सूर्यकुलकी मर्यादा एवं परम्पराके अनुसार आनन्दपूर्वक समारोहके साथ सम्पन्न हुआ। श्रीकिशोरीजीसहित श्रीरामको सिंहासनपर सुशोभित देखकर जन-जनका मानस हर्षोद्वेलित हो गया। माताएँ अपनी चिर-पोषित कामना-लताको पुष्पित-पल्लवित देखकर फूली नहीं समा रही थीं। पुनः-पुनः उनकी आरती उतारती थीं।

चक्रवर्ती महाराज दशरथका अभाव उनके अपार हर्षमें टीस उठा देता और दो बूँद आँसू कपोलोंपर लुढ़क जाते ! दानके बाहुल्यने याचकोंको अयाचक बना दिया। सुरगण विमानोंसे पुष्प बरसाकर हर्ष बिखेर रहे थे !

'राघवेन्द्र सरकारकी जय ! कोशलेश दाशरथि रामकी जय ! महारानी जनकनन्दिनी किशोरीजीकी जय !' के नारोंसे दिशाएँ प्रतिध्वनित हो रही थीं।

× × ×

महारानी जानकीकी प्रिय सखी पल्लवीको आते देखकर गौतमीने टोका—'इतने दिनसे कहाँ थी, पल्लवी ?'

'महाराज तथा महारानीके साथ मिथिला गयी थी। प्रभु वहाँ निमन्त्रित थे।'

'किसलिये ?'

''चौदह वर्षके पश्चात् प्रभु अपनी ससुराल न जाते ? अच्छा, कारण बताऊँ ? सुन ! महारानी सुनयनाने सुना, राघवेन्द्रको किसीके हाथका भोजन रुचिकर नहीं लगता। सभी माताएँ खिलाकर हार गयीं। गुरुपत्नी देवी अरुन्धती भी प्रभुको संतुष्ट न कर सकीं। महारानीने संकल्प किया—'मैं अपने जामाताको अलभ्य पदार्थ खिलाकर प्रसन्न करूँगी'।''

'दो-ही-दो गये थे ?'

''नहीं ! अरी वे मानववेषधारी भालू-वानर भी साथ थे। सभीने प्रभुसे ससुराल देखनेका आग्रह किया। जानती हो, प्रभु कितने संकोची हैं ? अपने जनकी प्रार्थनाकी कभी उपेक्षा कर सकते हैं ? महाराजने स्वीकृति दे दी। महारानी संकोचमें पड़ गयीं—'कहीं ये लोग ससुरालमें प्रभुको उपहासास्पद न बना दें।' प्रभुके समझानेपर शान्त हो गयीं।''

'कोई ऐसी घटना तो नहीं हुई ?'

'गौतमी ! बड़ा आनन्द आया।' गौतमीकी जिज्ञासा बढ़ी। वह उत्सुकतासे सुनने लगी।

''प्रभुने वहाँ सबको समझा दिया था कि 'कोई ऐसा अशोभनीय कार्य न हो, जिससे मुझे लज्जित होना पड़े।' सबने एक स्वरसे आश्वासन दिया—'प्रभु हम सब विशेष-रूपसे प्रत्येक विषयमें सतर्क एवं सावधान रहेंगे। फिर भी आप वयोवृद्ध अनुभवी जाम्बवंतजीको हमारा नेता बना दें। हम सब इन्हींका अनुसरण करेंगे।' जामवंतजी प्रभुकी प्रेरणासे सुव्यवस्थाका संचालन करने लगे।

''प्रभुकी नित्य नवीन विविध आकर्षक रूपोंमें पहुनाई होने लगी। एक दिन, रात्रिमें विशेष नवीनतम व्यञ्जनोंकी व्यवस्था थी। सभी अपने-अपने स्थानपर बैठे थे। विविध प्रकारके अलौकिक स्वादवाले व्यञ्जन परोसे गये। भोज प्रारम्भ हुआ!

''सबका ध्यान जामवंतजीकी ओर था। वे जैसा करते, सब उन्हींका अनुसरण करते। सहसा दोनों हाथ उठाकर जामवंतजी अपने आसनसे उछले। फिर क्या था, सभी अनुयायी उसी मुद्रामें उछले। हास्यका ठहाका जनकपुर-वासियोंमें फैल गया।

'हैं तो वानर-भालू ही!' नारीकण्ठने हँसते हुए व्यङ्ग्य किया।

'मानव-वेषधारी भले ही हों, जातिगत स्वभाव तो नहीं बदल सकता।' दूसरी बोली।

'ननदोईजीको ये ही सखा मिले?' मुस्कराते हुए उसने प्रभुकी ओर देखा।

'और क्या वनमें देवता मिलते?'

''महाराजने नीची गर्दन कर ली। कुमार लक्ष्मण दाँत पीसने लगे और महारानी मैथिली तो चकित रह गयीं। उन्हें जिसका भय था, वही सामने आया! वानर-ऋक्ष-समाज समझ ही नहीं पा रहा था। सब आश्चर्यसे एक दूसरेकी ओर देखने लगे!

''हास-परिहासमें भोज समाप्त हुआ। प्रभुको जब एकान्त मिला, तब उन्होंने सखाओंको बुलाकर अशिष्टताका कारण पूछा। सबने एक स्वरसे निवेदन किया—

'हम कोई कारण नहीं बता सकते, प्रभु! हमने जामवंतजीका अनुसरण किया है। हमने समझा, यह कोई राजकीय भोजकी परिपाटी होगी।' सरल स्वभावसे सबका वही उत्तर था।

''प्रभुने जामवंतजीकी ओर देखा। करबद्ध जामवंतजी बोले—'क्षमा करें सरकार! अपराध हुआ। वास्तविकता यह थी, प्रभु! जब मैं कटहलके कोयेको उठाकर खाने लगा, कोया मेरे हाथसे छिटककर ऊपरको उछला। भला, मैं ऐसा दुस्साहस कैसे सहन कर सकता था। कहीं जनकपुरकी नारियाँ मुझे कायर न समझ बैठें। मुझे लगा, कोया मुझे चुनौती दे रहा है। मेरे नाथ! समरमें एक भी असुर मेरे कठोर पंजेसे सुरक्षित न जा सका, फिर यह तुच्छ कोया निःशङ्क चला जाय? मैंने उछलकर उसे पकड़ ही तो लिया।' कहकर जामवंतजीने राघवेन्द्र सरकारके चरण पकड़ लिये। नेत्रोंमें जल भरा था। 'इस असभ्य आचरणके लिये हमें क्षमा करें सरकार'!''

''प्रभु उनकी भोली वाणी सुनकर हँस पड़े।''

'सरकारको ससुरालका भोजन रुचिकर लगा, पल्लवी?'

'नहीं! प्रभुने वही कहा, सुस्वादु है, किंतु शबरीके फल-जैसा मधुर नहीं।'

गौतमी हँस पड़ी! प्रभुने सासके स्नेहकी भी उपेक्षा कर दी! क्यों री, पल्लवी! कैसे थे फल उस वनवासिनीके जिन्हें प्रभु भूल नहीं पाते।

'अरे हाँ, सरकार अभी-अभी सब राजमाताओंके आग्रहपर भीलनीके फलोंकी कथा सुनायेंगे!' तू भी चल!' दोनों हँसती हुई चल दीं।

× × ×

विशाल कक्षमें प्रभु श्रीकिशोरीजीसहित आसीन थे। सभी माताएँ, विशिष्ट मन्त्रीगण, गुरुदेव वसिष्ठ, देवी अरुन्धती, परिजन एवं पुरजन विद्यमान थे। सब उत्सुकतासे प्रभुके मुखकी ओर देख रहे थे। प्रभु राम गम्भीर वाणीमें कहने लगे—

''वह भीलनी थी। नाम था शबरी! भीलराजकी एकमात्र दुहिता थी। दसवें जन्मदिनके अवसरपर अनेक महिषोंके बलिदानपर वह रुष्ट हो गयी। 'मेरे जीवनके लिये इतने प्राणियोंकी हत्या? इस जघन्य कार्यके लिये मेरा जन्म-दिवस नहीं मनाया जायगा।' विरोध सफल हुआ।

''फिर उसका विवाह पशुस्वभावके क्रूर व्यक्तिसे निश्चित हुआ। उसके संस्कारोंमें दया, अहिंसा और भगवद्भक्ति थी। विवाहकी रात्रिको, पिताके अपयशकी चिन्ता न करके, वह गृह-परित्याग करके भागी। रात्रिभर वह जी तोड़कर भागती रही। प्रातःकाल वह महर्षि मतंगके आश्रममें मूर्च्छित पड़ी पायी गयी।

''दयार्द्र ऋषिके प्रयाससे वह प्रकृतिस्थ हुई। उसने रो-रोकर अपनी कथा सविस्तर सुनायी। त्रिकालदर्शी ऋषिने उसे संस्कारी बालिका समझकर अपने आश्रममें स्थान दे दिया। गुरुमन्त्र देकर उसके मानसको परिष्कृत करके ऋषिने प्रभुके नाम-जपकी विधि समझायी। वह साधनामें लग गयी।

''शबरी रात्रिमें उठकर आश्रम तथा दूर-दूरतक मार्गको झाड़ती। प्रत्येक ऋषिकी कुटीमें हवनके लिये समिधा बटोर-कर रख आती। इस नवीन व्यवस्था एवं सुविधासे आश्रम-वासी प्रसन्न भी थे और चकित भी।

''एक दिन किसी कर्मकाण्डी ब्रह्मचारीने उसे देख लिया। अन्त्यज, अछूत, अस्पृश्य सुनकर उसकी भर्त्सना की, अपशब्दोंसे भविष्यमें आश्रमको दूषित न करनेकी चेतावनी दी। उसने आश्रमके सभी ऋषियोंको भड़काया। महर्षि मतंगसे उस अछूत नारीको आश्रमसे निकालनेकी प्रार्थना की, इस धमकीके साथ कि यदि वे उसे नहीं निकालेंगे तो महर्षि-का भी बहिष्कार सार्वजनिक रूपसे कर दिया जायगा।

''दयालु ऋषिने सामाजिक बहिष्कार स्वीकार किया, किंतु शरणागता शबरीको आश्रमसे नहीं जाने दिया। महर्षिका देहावसान निकट था। उन्होंने शबरीको बुलाकर कहा—'बेटी! धैर्यसे कष्ट सहन करती हुई साधनामें लगी रहना। प्रभु राम एक दिन तेरी कुटियामें अवश्य आयेंगे।'

''प्रभु आयेंगे? मुझ दीन-हीनकी कुटियामें प्रभु आयेंगे?'

''हाँ बेटी! प्रभुकी दृष्टिमें कोई दीन-हीन नहीं, कोई अस्पृश्य नहीं। वे तो भावके भूखे हैं, अन्तरकी प्रीतिपर रीझते हैं।' शबरीमें आत्मबल जगा। उसका मन अप्रत्याशित आनन्दसे भर गया। महर्षिकी जीवन-लीला समाप्त हुई।

''प्रभु आयेंगे।' गुरुदेवकी वाणी उसके कानोंमें गूँजती रहती और इसी विश्वासपर वह कर्मकाण्डी ऋषियोंके अनाचार शान्तिसे सहती हुई अपनी साधनामें लगी रही।

''एक दिन जलाशयमें जल भरते देखकर उस अभिमानी बटुकने शबरीके मस्तकपर जलसे भरा घड़ा दे मारा। शबरीका सिर फट गया। जलाशय रक्तरञ्जित हो गया। जल दूषित हो गया। जलमें कीड़े पड़ गये। जल न मिलनेसे शबरी सबकी कोपभाजन हो गयी।

''अब वह वृद्धा हो गयी थी। नित्य मेरे दर्शनोंकी लालसासे कुटीको झाड़ती-बुहारती, गौके गोबरसे लीपकर पवित्र करती। मेरे भोगके लिये फल लाकर रखती और फिर मुझे लानेके लिये दूरतक लकड़ी टेकती हुई जाती। ऊँचे टीलोंपर चढ़कर, जहाँतक उसके नेत्र देख पाते, मुझे खोजती। संध्याको टूटी-सी निराशा लिये लौटती। मुनिके शब्द उसके व्यथित हृदयको आशा बँधाये रखते थे।

''प्रातःसे फिर उसकी प्रतीक्षा प्रारम्भ हो जाती। कभी गुनगुनाती, कभी उच्चस्वरसे गाती। कभी प्रेममें मतवाली हो नाचती, कभी रोती अपनी दीनता-हीनतापर। 'प्रभु मुझे कैसे मिलेंगे? मुझसे कोई भी साधन नहीं बनता। नारी वैसे ही अधम होती है, फिर मैं तो दुर्बुद्धि गँवारिन हूँ। कैसे अपनायेंगे मुझे मेरे नाथ?' किंतु महर्षिकी वाणीका स्मरण आनेपर उसकी दीनता लुप्त हो जाती। वह उमंगमें भरी मुझे लेने जाती। बालक-युवा सभी उसे चिढ़ाते—'प्रभु आ रहे हैं।' और वह विश्वास करके मुझे खोजने जाती। कहते-कहते प्रभुका हृदय भर आया।'' कुछ क्षण रुककर फिर बोले—'मार्गमें लोगोंसे पूछती, तुमने मेरे रामको देखा है? आ रहे हैं न मेरे प्रभु?' लोग उसका उपहास करते। उसे विभिन्न मार्गोंपर भेजकर ठहाका मारकर हँसते। वृद्धा भटकती हुई अन्तमें खिन्नता लेकर अपनी कुटियामें लौट आती। उसे किसीपर क्रोध न आता। सोचती, 'आज प्रभुको कोई कार्य हो गया होगा, कल अवश्य आयेंगे।'

''प्रातः उठते ही सबसे कहती, 'आज प्रभु मेरी कुटियामें अवश्य आयेंगे।' सब हँस पड़ते। कोई कितना ही व्यङ्ग कसता, विनोद करता, उसे चिन्ता न थी! एक दिन उसने सबके मुखसे सुना, 'राम आ रहे हैं।' वह हर्षसे पागल-सी हो उठी। कुटीको झाड़-बुहारकर फल लेने वृक्षपर चढ़ गयी और मधुर फल तोड़ने लगी। उसी समय एक ऋषि आया। उसने डरा-धमका वृद्धाको भगा दिया।

''कुछ क्षण पश्चात् लुकती-छिपती वृक्षोंके नीचे गिरे फलोंको दोनोंमें भरने लगी। स्वच्छ जलसे उसने फलोंको धोकर कुटीमें रखा। वह विचारने लगी—'कहीं खट्टे न हों। मेरे प्रभु तो मधुर-प्रिय हैं। अपने रामको मीठे फल खिलानेकी इच्छासे वह मर्यादा भूल गयी। उत्कट प्रेममें नियम नहीं रहता, माँ।' श्रीरामने कौसल्या अम्बाकी ओर देखा।

''वह अपने फलोंको चखती जाती। मीठे-मीठे फल दोनोंमें भरकर रख दिये।

'अरी, तेरे राम भ्रातासहित आ रहे हैं।' एक वृद्धने सूचना दी। फिर क्या था? बिना लकुटके भागी। मुझे देखा, निहाल हो गयी। चरणोंमें लोट गयी। देहकी सुध-बुध भूल गयी। अश्रुजलसे मेरे चरणोंको भिगोने लगी। बलात् मैंने उसे उठाया। आगे-आगे मार्ग दिखाती चलने लगी। मुझे देखती जाती। वह गद्गद हो रही थी।

''वृद्धा हमें कुटियामें लायी। हाथोंसे मेरे चरण धोकर आसनपर बैठाया। फलोंके दोनेको सामने रखकर मेरे समीप बैठ गयी। स्नेहसिक्त वाणीमें बोली—'प्रभु! मैं अपने

हाथसे फल खिलाऊँगी। खाओगे न भीलनीके हाथसे फल? मैं अन्त्यज हूँ, मेरे नाथ!' —कहते-कहते लुढ़क पड़े वृद्धाके नेत्रोंसे दो अश्रु!

''मैंने कहा—'बूढ़ी माँ! मुझे क्षुधा लग रही है। मुझे शीघ्र खिलाओ अपने हाथसे फल!' वह हर्षसे विह्वल हो गयी। मुझे और लक्ष्मणको अपने हाथोंसे फल खिलाने लगी। वह देती जाती और मैं माँगता जाता, 'और दो, बूढ़ी माँ, और दो।' वह और भी उत्साहसे देने लगती, जैसे माँ अपने अबोध शिशुको खिलाती है।

''मैं तृप्त ही नहीं हो रहा था। न जाने कैसा मिठास था, कैसा माधुर्य था उन फलोंमें। इच्छा हो रही थी, वह खिलाती और मैं खाता रहता। वह असीमित प्रसन्नतासे बावली हो रही थी। उसे लगा, महर्षिकी वाणी आज सत्य हुई है। उसकी चिर प्रतीक्षा, उसकी साधना पूर्ण हो गयी। एक तृप्ति-सी उसके नयनोंके कोरोंसे झाँक रही थी।

राघवेन्द्र प्रभु राम रुके। उनका कण्ठ भर आया। भरे हुए स्वरसे प्रभु बोले—'उन जैसे फलोंका स्वाद फिर मुझे कहीं नहीं मिला। कैसी माधुरी थी उन फलोंमें।' कहते-कहते प्रभु इस प्रकार मौन हो गये, जैसे फलोंके स्वादमें लीन हो गये हों।

माताएँ संकुचित हो गयीं। उनके भोजनमें केवल प्रदर्शन था। प्रेमका अहंभाव था। शबरी-जैसी उत्कट भावना नहीं थी, निश्छलता नहीं थी। सब स्तब्ध थे। तभी पल्लवीका स्वर गूँजा। वह गा रही थी—

जानत प्रीति रीति रघुराई।
नाते सब हाते करि राखत राम सनेह सगाई॥
घर गुरु गृह प्रिय सदन सासुरे भइ जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहि सबरी के फलनि की रुचि माधुरी न पाई॥
(विनय० १६४)

सबके श्रवणोंमें पल्लवीका स्वर गूँजता रहा—
'जानत प्रीति रीति रघुराई।'

रामलीलाका सुन्दर स्वरूप

(लेखक—श्रीउमरावसिंहजी रावत, एम्० ए०)

योगेश्वर भगवान् कृष्णने आजसे लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व अर्जुनके सम्मुख यह घोषणा की थी—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥
(गीता ४। ७-८)

इस घोषणाके पूर्व अथवा पश्चात्के संसारके इतिहासपर यदि एक दृष्टि डाली जाय तो इसकी सत्यता स्पष्ट दिखलायी देगी। संसारमें साधुपरित्राण, दुष्टदलन और धर्मसंस्थापनके लिये भगवान् अवतीर्ण होते हैं; परंतु अधिकांशतः (भक्तोंकी भाषामें हम कह सकते हैं कि) परमात्माकी सृष्टिविधायिनी शक्ति अथवा वैष्णवी शक्ति या विष्णुके आंशिक अवतार ही होते हैं। रामावतार अथवा कृष्णावतारकी आवश्यकता बहुत कम पड़ती है। पाप बढ़ते-बढ़ते जब रावणत्वकी कोटितक पहुँच जाता है, तभी रामत्वका उदय होता है और अवश्य होता है—यह एक ध्रुव सत्य है। योगेश्वर श्रीकृष्णके विषयमें कुछ कहना तो मेरे विषयके बाहर है; अतएव केवल इतना कहकर मैं आगे बढ़ जाऊँगा कि उनमें समस्त मानवी और अलौकिक गुणोंका चरम विकास देखा जाता है, जिसे न समझ सकनेके कारण ही अनर्गल कल्पनाओंका जन्म हुआ।

श्रीकृष्णके व्यक्तित्वको समझना टेढ़ी खीर है, लोहेके चने चबाना है; परंतु रामत्वको समझना सर्वसाधारणके लिये भी सरल है। धनवान् और निर्धन, विद्वान् और मूर्ख, बाल-वृद्ध और युवा, स्त्री और पुरुष, हिंदू और ईसाई-मुसलमान आदि अन्य जातियाँ, आर्य और अनार्य जातियाँ, पश्चिम और पूर्व—सभीके लिये रामका चरित्र शिक्षाप्रद है, सभीके लिये उसमें ऐहिक और पारलौकिक जीवनकी उन्नतिके हेतु प्रचुर सामग्री विद्यमान है। राम परब्रह्म न सही, विष्णुके अवतार भी न सही, उन सात्त्विक गुणोंकी समष्टि तो अवश्य है, जिन्हें 'रामत्व' कहते हैं और जो बलात् प्रत्येक पवित्रात्माको—चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान या ईसाई—अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। मनुष्य होनेके नाते मेरी प्रत्येक मानव-बन्धुसे प्रार्थना है कि वह जातिगत वा सम्प्रदायगत संकुचित भावभूमिसे ऊपर उठकर रामको समझनेका प्रयत्न करे। राम केवल हिंदुओंके नहीं, वे मनुष्यजातिके हैं—नहीं-नहीं, समस्त चराचर जगत्के हैं। विश्वके कल्याणके हेतु जिन-जिन वस्तुओंकी आवश्यकता है, वे सभी आपको रामके चरित

अथवा रामायणमें मिलेंगी, जिसका अधिकाधिक प्रचार होनेपर ही विश्वमें वह शान्ति स्थापित होगी, जिसे रामराज्यकी शान्ति कहते हैं। इस कार्यके सम्पादनके लिये रामायणका पठन-पाठन, मनन और श्रवण अत्यन्त आवश्यक तो है ही, प्रत्यक्षरूपमें अर्थात् नाटकीय ढंगपर रामचरित्रका प्रचार करना भी कम आवश्यक नहीं है, बल्कि इस प्रकार अधिक सफलता मिलनेकी सम्भावना है। रामचरितका यही नाटकीय ढंग अर्थात् रामलीला ही मेरा प्रस्तुत विषय है।

कई वर्ष पूर्व मेरे एक पूजनीय वयोवृद्ध सज्जनने पौड़ीके रामलीला-रङ्गमञ्चसे अपने वक्तव्यमें कहा था कि 'हम रामलीला धार्मिक दृष्टिसे करते हैं, नाट्यकलाकी दृष्टिसे नहीं।' वाक्यके प्रथम अंशसे मैं पूर्णतः सहमत हूँ, द्वितीय अंशके विषयमें कुछ कहनेकी धृष्टताके लिये क्षमाप्रार्थी हूँ। इसपर मैं कुछ प्रश्न करूँगा—'क्या आप रामके भक्त हैं? क्या आप समस्त चराचर जगत्को रामत्वमें लीन करना चाहते हैं और उसे राममय देखना चाहते हैं? क्या आप रामराज्यकी स्थापनाके द्वारा विश्वमें शान्ति देखनेके अभिलाषी हैं? केवल श्रद्धालु भक्तोंके संकुचित क्षेत्रसे रामचरितको ऊपर उठाकर क्या आप अविश्वासियों और अश्रद्धालुओंके मनमें भी श्रद्धा उत्पन्न करनेके आकाङ्क्षी हैं? यदि हाँ, तो मेरे कथनमें आपको कुछ-न-कुछ तथ्य अवश्य मिलेगा।'

नाट्यकला हमारे लिये कोई नवीन वस्तु नहीं है। जब कि समस्त संसार अज्ञानान्धकारमें निमग्न, असभ्यावस्थाहीमें था, तब भी हमारे भारतमें नाटक लिखे और खेले जाने लगे थे। भरत-मुनिके नाट्यशास्त्रमें इसका सूक्ष्म ब्यौरेवार विवेचन तो हुआ ही है, उससे भी पहले इस कलापर लक्षणग्रन्थ लिखे जा चुके थे। कहनेका तात्पर्य यह है कि नाट्यकला भी बहुत प्राचीन कालसे हमारी भारतीय सभ्यताका एक अङ्ग ही रही है। ऐसी दशामें अब हम उसे हेय क्यों समझें? इस कलामें हमारे देशमें भी समय-समयपर सुधार होते रहे हैं और अब भी हो रहे हैं। अतएव उन सुधारोंको अब रामलीलाके क्षेत्रमें ले आनेमें हमें आनाकानी नहीं करनी चाहिये। हमारी रामलीलामें धार्मिकताका साम्राज्य तो अवश्य हो; परंतु स्वाभाविकता और कलाका ह्रास कदापि नहीं होना चाहिये। उसमें अलौकिकताका पुट अवश्य हो; परंतु स्वाभाविकताका नाश करके नहीं। अर्थात् धार्मिकता और कला, अलौकिकता और स्वाभाविकताका उचित सामञ्जस्य हमारा उद्देश्य होना चाहिये। इस प्रकार हम अपनी रामलीलाको सर्वकालीन और विश्वव्यापी बना सकेंगे। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये अपनी मन्दबुद्धिके अनुसार मैं कुछ व्यावहारिक कार्यक्रम रखना चाहता हूँ और ऐसी अनधिकार धृष्टताके लिये विद्वत्समाजसे क्षमा चाहता हूँ।

सर्वप्रथम तो यह होना चाहिये कि एक 'सार्वदेशिक रामलीला-प्रचारिणी सभा'की देशमें स्थापना की जाय और समस्त भारतमें उसकी शाखाएँ तथा प्रशाखाएँ खोली जायँ। क्रमशः इस उपरिलिखित केन्द्रीय सभाकी शाखाएँ विदेशोंमें भी खोली जायँ और इस प्रकार रामलीला भारतव्यापी होनेके उपरान्त विश्वव्यापी बना दी जाय। उस केन्द्रीय सभाकी संरक्षकतामें किसी विद्वान्के द्वारा अथवा विद्वन्मण्डलीके द्वारा एक रामायण-महानाटकका सम्पादन कराया जाय, जिसमें मुख्य आधार तो वाल्मीकि और तुलसीकृत रामायणोंका हो, परंतु उसके अतिरिक्त रामचरितपर जो कुछ भी लिखा गया है, सबसे सामग्री ली जाय। यह कहनेकी तो अब आवश्यकता नहीं रह जाती कि उसका अधिकांश गद्यमें ही होना चाहिये और कम-से-कम संवाद तो, जहाँतक हो सके, गद्यहीमें हों; क्योंकि पद्यमें वार्तालाप करना अस्वाभाविक तो लगता ही है, इसके अतिरिक्त श्रोताओं अथवा दर्शकोंपर पद्यका तात्पर्य ठीकसे समझमें न आ सकनेके कारण उसका पूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता। गद्यमें संवाद होनेसे थोड़े ही समयमें बहुत-सी बातें दिखायी जा सकती हैं और अशिक्षित व्यक्ति भी उसके तात्पर्यको समझकर पूर्ण लाभ उठा सकता है। उस महानाटकका रूप-आकार कैसा हो, इसका निर्णय तो विद्वान् ही करेंगे। हाँ, मैं अपनी सम्मतिके रूपमें कुछ उस ओर संकेतमात्र कर देना चाहता हूँ, जिसकी सहायतासे रामलीलाकी वर्तमान प्रणालीमें कुछ-कुछ सुधार अभीसे किये जा सकते हैं। रामलीलामें आदिसे अन्ततक सम्मिलित होनेवाले तीन पात्र—राम, लक्ष्मण और सीता हैं; अतएव इनका अभिनय करनेवाले पात्रोंका चुनाव सबसे अधिक सावधानीसे होना चाहिये।

यह सब लिखनेमें मेरा उद्देश्य यही है कि पात्रोंके चुनावमें, और विशेषतः इन तीन मुख्य पात्रोंके चुनावमें, बहुत बड़ी सावधानीकी आवश्यकता है; क्योंकि ये तीन पात्र ऐसे हैं, जिनपर सारी लीलाकी सफलता और असफलता निर्भर है। इन्हींपर सब दर्शकोंका ध्यान केन्द्रित रहता है और इनमें थोड़ी भी असावधानी बहुत खटकती है। साधारण पात्रोंके

द्वारा यदि थोड़ी असावधानी हो भी जाय तो वह उतनी नहीं खटकती ।

कैसा अच्छा होता कि हमारे राम, लक्ष्मण और सीता—ये तीन मुख्य पात्र सारी रामलीलामें कम-से-कम दो-दो होते—धनुष्ययज्ञतकके कुमार राम, लक्ष्मण तथा कुमारी सीता और वनवासके समय युवा राम-लक्ष्मण तथा युवती जगज्जननी जानकी । ऐसा होनेपर स्वाभाविकता भी बनी रहेगी और अभिनेताओंका पाठ भी कम और सरल हो जायगा ।

अब थोड़ा उन खटकनेवाली बातोंका दिग्दर्शन कराया जायगा, जो आजकलकी अधिकांश रामलीलाओंमें पायी जाती हैं । धनुष्यज्ञ या सीता-स्वयंवरका आजकल बहुत ही विकृत रूप सामने आता है । रामलीला-संचालकोंको स्मरण रखना चाहिये कि हम प्रसिद्ध योगिराज महाराज जनककी राजसभा दिखा रहे हैं और जगदम्बा सीताके स्वयंवरमें उपस्थित हैं । उस युगके राजा लोग कैसे होते थे, किस सभ्यताके साथ वे राजसभामें बैठते थे तथा बात करते थे—इत्यादि बातोंकी ओर ध्यान देना चाहिये । इस बातकी कोई आवश्यकता नहीं कि सहस्रों वर्ष पश्चात् उत्पन्न होनेवाली अँगरेजी भाषाका उसमें प्रयोग किया जाय और उस समय न पायी जानेवाली किसी अँगरेज आदि जातिकी उसमें उपस्थिति दिखायी जाय । सारांश, उसमें तत्कालीन समाजका याथातथ्य ऐतिहासिक चित्रण होना चाहिये । धनुष तोड़नेमें अन्य राजाओंकी असमर्थता और रामकी समर्थता दिखानेमें भी स्वाभाविकताका पल्ला न छोड़ा जाय ।

अब वनवासवाले प्रसङ्गपर आ जाइये । यह रामचरितका सर्वोत्कृष्ट भाग है । इस सूक्ष्म प्रसङ्गके विवेचनके लिये वाल्मीकिरामायणसे भी सहायता ली जाय । कम-से-कम वह दृश्य तो अवश्य दिखाया जाय, जिसमें माता कौसल्या अपने पुत्रके राज्याभिषेकके उत्सवमें खुशियाँ मना रही हैं, ब्राह्मणों और दास-दासियोंको अनगिनत धन और आभूषण लुटा रही है, देवी-देवताओंकी पूजामें संलग्न है और एकाएक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए धीर-वीर मर्यादापुरुषोत्तम राम उपस्थित होकर कह बैठते हैं—

'देवि नूनं न जानासि महद्भयमुपस्थितम् ।'

(वा० रा० २ । २० । २७)

'देवि ! निश्चय ही तुम्हें मालूम नहीं है, तुम्हारे ऊपर महान् भय उपस्थित हो गया है ।'

आगे चलकर अभागिनी माता कौसल्यापर किस प्रकार वज्रपात हो जाता है, इसे दिखानेमें भी अत्यन्त सावधानीकी आवश्यकता है । कुछ दूर आगे चलकर माता किस प्रकार धैर्य धारणकर अपने पुत्रको आशीर्वाद देती हुई वन जानेकी आज्ञा देती है तथा जिन देवी-देवताओंको अभीतक राज्याभिषेकके मङ्गलके लिये मना रही थी, उन्हींको अब अपने पुत्रकी वनमें रक्षा और मङ्गलके निमित्त मना रही है, यह दृश्य भी देखने और दिखानेयोग्य ही है । धन्य है वह ध्रुव विश्वास और अटल श्रद्धा, जो घोरतम विपत्तिमें भी विचलित न हो सके । मर्यादापुरुषोत्तमकी माता कौसल्या और पुण्यश्लोक महात्मा भरतके चुनावमें भी कम सावधानीकी आवश्यकता नहीं । इस प्रकार रामचरितके मार्मिक स्थलोंको पहचानना, उन्हें सुरुचिपूर्ण मार्मिक ढंगसे दर्शकोंके सामने रखना—इस कार्यके सम्पादनके लिये उपयुक्त अभिनेताओं और अभिनेत्रियोंका चुनाव करना रामलीलाके संचालकोंको अपना कर्तव्य समझना चाहिये ।

वनवासके उपरान्त सीताहरणके पश्चात्का वह दृश्य भी कम मर्मस्पर्शी नहीं है, जब कि किष्किन्धापुरीमें राम लक्ष्मणको सीताके आभूषण दिखलाते हैं । लक्ष्मणका भोलेपनसे यह उत्तर देना कि—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ॥
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ।

(वा० रा० ४ । ६ । २२-२३)

'भैया ! मैं इन बाजूबंदोंको तो नहीं जानता और न इन कुण्डलोंको ही समझ पाता हूँ कि किसके हैं; परंतु प्रतिदिन भाभीके चरणोंमें प्रणाम करनेके कारण मैं इन दोनों नूपुरोंको अवश्य पहचानता हूँ ।'

—कितना मर्मस्पर्शी है ! यह है हमारी आर्यसभ्यता, जिसने लक्ष्मण-जैसे जितेन्द्रियको उत्पन्न किया । इस प्रकारकी गौरवमयी सभ्यताका स्मरण कराना तथा उसीमें दर्शकोंको निमग्न कर देना ही हमारी रामलीलाका उद्देश्य होना चाहिये ।

राम-वनगमन-प्रसङ्गके पश्चात् लक्ष्मणको शक्ति लगनेका हृदयविदारक करुण-दृश्य सामने आता है । हमारे चरित्रनायकपर यह विपत्तिकी पराकाष्ठा है । 'पिताने तज दिया, सीता हरी गयी' इत्यादि शब्दोंसे व्यक्त रामका करुण-क्रन्दन भी जिसके हृदयको द्रवीभूत न कर सके, उसका हृदय हृदय नहीं, पत्थर है । विपत्ति-पर-विपत्ति पड़ना और उसपर भी रामके एकमात्र

आधार और आश्रय प्रियबन्धु लक्ष्मणका रण-शय्यापर शयन—इस दृश्यको देखकर और रामके विलापको सुनकर भी जो व्यक्ति रो न पड़े, उसकी संसारमें क्या औषध है ? ऐसी परिस्थितिमें सुषेण वैद्यवाले प्रहसनके दृश्यको उपस्थित कर देना केवल भयंकर भूल ही नहीं, अपितु अपराध भी है। साहित्यके नौ रसोंमें, कुछ परस्पर मित्र रस होते हैं, कुछ विरोधी रस तथा कुछ उदासीन रस। करुण और हास्य—ये दो सर्वथा विरोधी रस हैं, इनका एक ही स्थानपर आ जाना महान् साहित्यिक दोष है। किसी घोर विपत्तिमें फँसे हुए व्यक्तिको रोते हुए देखकर यदि कोई हँसने लगे, या दूसरेको हँसानेका प्रयत्न करने लगे तो आप उसे क्या समझेंगे ? मेरी समझसे तो यह सुषेण वैद्यवाला दृश्य बिल्कुल न रहे तो भी कोई हानि नहीं। कितनी ही रामायणोंके अनुसार यह वैद्यवाला कार्य जाम्बवंत ही करता है या सुषेण नामका वानर ही करता है। ऐसी स्थितिमें मैं नहीं समझता कि लङ्काके सुषेण वैद्यको लानेकी यहाँ क्या आवश्यकता है। इस कार्यको यदि सुषेण नामका वानर ही सम्पादित कर दे तो अधिक स्वाभाविक, युक्तियुक्त और उपयुक्त होगा। हाँ, यदि संजीवनी ओषधिके आ जानेपर हास्य-विनोद, आमोद-प्रमोद हो जाय तो कोई हानि नहीं। बल्कि ऐसा होना स्वाभाविक भी है और होना चाहिये। इस प्रसङ्गपर गोस्वामी तुलसीदासजी अपनी भिन्न-भिन्न रामायणोंमें बहुत कुछ लिख चुके हैं। हमारा कर्तव्य तो केवल इतना रह जाता है कि हम हृदयग्राही रूपमें उस सामग्रीको अपने दर्शकोंके सामने उपस्थित कर दें। यहाँपर उन सूक्ष्म स्थलोंको नहीं भूल जाना चाहिये, जो रामके चरित्रको साधारण कोटिसे बहुत ऊँचे ले जाते हैं। उनमेंसे एक रामकी शरणागतवत्सलता है। गोस्वामीजीने अपनी 'गीतावली'में इसका बड़ा ही हृदयस्पर्शी वर्णन किया है—

मेरो सब पुरुषारथ थाको।
बिपति बँटावन बंधु बाहु बिन करौं भरोसो काको॥
सुनु, सुग्रीव ! साँचेहूँ मो पर फेरयो बदन बिधाता।
ऐसे समय समर-संकट हौं तज्यो लषन-सो भ्राता॥
गिरि-कानन जैहैं साखा-मृग, हौं पुनि अनुज-सँघाती।
ह्वैहै कहा बिभीषन की गति, रही सोच भरि छाती॥
(गीतावली ६।७।१-३)

घोर विपत्तिकालमें भी यह है हमारे चरित्रनायककी अपने शरणागतकी रक्षाके लिये व्याकुलता—जिसके बलपर ही वे आज अपने भक्तोंके हृदय-सम्राट् बने हुए हैं। हमारा प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास इस प्रकारकी घटनाओंसे शून्य नहीं है, परंतु रामकी शरणागतवत्सलता कुछ विलक्षण है। सम्पत्तिकालमें तो सभी शरण दे सकते हैं, परंतु घोर विपत्तिके समय भी किसीको शरण देना रामका ही काम था। यह था उनका आत्म-विश्वास—जिसके बलपर उन्होंने समस्त-भुवन-विजयी लङ्कापतिके विरोधी विभीषणका समुद्र-तटपर ही राज्यतिलक कर दिया था।

इस व्याकुलता और करुण-विलापके पश्चात् सेवकके आदर्श और कार्य-पटुताकी प्रतिमूर्ति बालब्रह्मचारी महावीर हनुमान्‌जीके ये वीरदर्पपूर्ण उत्साहवर्द्धक वाक्य भी नहीं भूलने चाहिये—

जौं हौं अब अनुसासन पावौं।
तौ चंद्रमहि निचोरि चैल-ज्यों, आनि सुधा सिर नावौं॥
कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृत-कुंड महि लावौं।
भेदि भुवन, करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं॥
बिबुध-बैद बरबस आनौं धरि, तौ प्रभु-अनुग कहावौं।
पटकौं मीच नीच मूषक-ज्यौं, सबहि को पापु बहावौं॥
(वही, ६।८।१-३)

—इन शब्दोंसे रामको अथवा श्रोताओंको कितनी सान्त्वना मिलेगी, यह सोचनेकी बात है। यह रामके सेवकका आत्म-विश्वास है। कोई इसे गर्वोक्ति समझेंगे, परंतु नहीं। यह ब्रह्मचर्यका प्रताप है और है एक सच्चे भक्तका अपने स्वामीपर दृढ़ विश्वास—जिसके बलपर महावीरजी मृत्युको पकड़कर मूषककी तरह पटककर मार देना चाहते हैं, फिर लक्ष्मणको मारनेवाला रहा ही कौन !

अब अन्तमें नन्दिग्रामके जटा-वल्कल-धारी उस महात्माके पास आ जाइये, जिसने अपनी अभूतपूर्व कठोर तपस्याके द्वारा बड़े-बड़े योगियोंको भी लज्जित कर दिया था। इस दृश्यको यों ही छोड़ देना उस महात्माके प्रति घोर अन्याय करना है। आज चौदह वर्षकी अवधि समाप्त होनेवाली है। पुण्यश्लोक भरतके निष्कलङ्क हृदयमें स्वभावतः यह भाव उत्पन्न होता है कि मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम अभीतक क्यों नहीं लौटे। अपनेको ही दोषी ठहराकर, अपनेको ही बार-बार धिक्कारते हुए चिन्तामग्न भरतजी अस्पष्ट स्वरमें कुछ गुनगुना रहे थे कि बटुरूपधारी हनूमान्‌जीका दिया हुआ रामके लौट आनेका शुभ संवाद उनके कर्ण-कुहरमें प्रविष्ट

होता है। उस समय उनकी क्या दशा हुई होगी, इसके प्रदर्शनमें अत्यन्त सावधानीकी आवश्यकता है। जिस उत्साह, उमंग और उतावलीके साथ उन्होंने रामके स्वागतकी तैयारी की होगी, उसका दिखाना भी आवश्यक है। स्वागतकी ये सब तैयारियाँ रङ्गमञ्चपर ही दिखायी जानी चाहिये तथा कुछ दूर और आगे बढ़कर रङ्गमञ्चपर ही अर्थात् दर्शकोंके सम्मुख ही राम और भरतका मिलाप दिखाया जाना चाहिये— रङ्गमञ्चके बाहर नहीं।

इस प्रकार जिस 'रामायण-महानाटक' का मैं स्वप्न देख रहा हूँ, उसके पूर्वार्धका यह ढाँचा तैयार किया जा सकता है। सम्पूर्ण सामग्री रखना न तो मेरा उद्देश्य है और न मुझमें उतनी योग्यता ही है। मेरा अभिप्राय तो केवल उस ओर संकेतमात्र कर देना था। रामका उत्तर-चरित भी उस महा-नाटकके अन्तर्गत आना चाहिये; हाँ, उसका रङ्गमञ्चपर दिखाया जाना अभी भारतीय रुचिके विरुद्ध है—इसके लिये अभी कुछ और अधिक ठहरनेकी आवश्यकता है। दुःखान्त नाटक देखनेकी भारतीय जनता जबतक पूर्ण अभ्यस्त न हो जाय, तबतक रामका उत्तर-चरित न दिखाना ही उचित है।

परमभाग्यवान् पिता दशरथ

जिनके यहाँ भक्तिप्रेमवश साक्षात् सच्चिदानन्दघन प्रभु पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए, उन परमभाग्यवान् महाराज श्रीदशरथकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है। महाराज दशरथजी मनुके अवतार थे, जो भगवान्‌को पुत्ररूपसे प्राप्तकर अपरिमित आनन्दका अनुभव करनेके लिये ही धराधाममें पधारे थे और जिन्होंने अपने जीवनका परित्याग और मोक्ष-तकका संन्यास करके श्रीराम-प्रेमका आदर्श स्थापित किया।

श्रीदशरथजी परम तेजस्वी मनुमहाराजकी भाँति ही प्रजाकी रक्षा करनेवाले थे। वे वेदके ज्ञाता, विशाल सेनाके स्वामी, दूरदर्शी, अत्यन्त प्रतापी, नगर और देशवासियोंके प्रिय, महान् यज्ञ करनेवाले, धर्मप्रेमी, स्वाधीन, महर्षियोंके सदृश सद्गुणोंवाले, राजर्षि, त्रैलोक्यप्रसिद्ध पराक्रमी, शत्रुनाशक, उत्तम मित्रोंवाले, जितेन्द्रिय*, अतिरथी†, धन-धान्यके संचयमें कुबेर और इन्द्रके समान, सत्यप्रतिज्ञ एवं धर्म, अर्थ तथा कामका शास्त्रानुसार पालन करनेवाले थे। (वा० रा० १।६।१ से ५ तक)

इनके मन्त्रिमण्डलमें महामुनि वसिष्ठ, वामदेव, सुयज्ञ, जाबालि, काश्यप, गौतम, मार्कण्डेय, कात्यायन, धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप और धर्मपाल आदि विद्या-विनयसम्पन्न, अनीतिमें लजानेवाले, कार्यकुशल, जितेन्द्रिय, श्रीसम्पन्न, पवित्र-हृदय, शास्त्रज्ञ, शस्त्रज्ञ, प्रतापी, पराक्रमी, राजनीतिविशारद, सावधान, राजाज्ञाका अनुसरण करनेवाले, तेजस्वी, क्षमावान्, कीर्तिमान्, हँसमुख, काम-क्रोध और लोभसे बचे हुए एवं सत्यवादी पुरुषप्रवर विद्यमान थे। (वा० रा० १।७)

आदर्श राजा और मन्त्रिमण्डलके प्रभावसे प्रजा सब प्रकारसे धर्मरत, सुखी और सम्पन्न थी। महाराज दशरथकी सहायता देवता लोग भी चाहते थे। महाराज दशरथने अनेक यज्ञ किये थे। अन्तमें पितृ-मातृ-भक्त श्रवणकुमारके वधका प्रायश्चित्त करनेके लिये अश्वमेध, तदनन्तर ज्योतिष्टोम, आयुष्टोम, अतिरात्र, अभिजित्, विश्वजित् और आप्तोर्याम आदि यज्ञ किये। इन यज्ञोंमें दशरथने अन्यान्य वस्तुओंके अतिरिक्त दस लाख दुग्धवती गायें, दस करोड़ सोनेकी मुहरें और चालीस करोड़ चाँदीके रुपये दान दिये थे।

इसके बाद पुत्रप्राप्तिके लिये ऋष्यशृङ्गको ऋत्विज बनाकर राजाने पुत्रेष्टि यज्ञ किया, जिसमें समस्त देवतागण अपना-अपना भाग लेनेके लिये स्वयं पधारे थे। देवता और मुनि-ऋषियोंकी प्रार्थनापर भगवान् श्रीविष्णुने दशरथके यहाँ पुत्ररूपसे अवतार लेना स्वीकार किया और यज्ञपुरुषने स्वयं प्रकट होकर पायसान्नसे भरा हुआ सुवर्णपात्र देते हुए दशरथसे कहा कि 'राजन्! यह खीर अत्यन्त श्रेष्ठ, आरोग्यवर्धक और प्रजाकी उत्पत्ति करनेवाली है। इसको अपनी कौसल्या

---

* यद्यपि राम-वनवासकी घटनाके कारण कहीं-कहीं दशरथजीको कामुक बतलाया गया है, परंतु ऐसी बात नहीं थी। वे यदि कामपरायण होकर कैकेयीके वशमें होते तो यज्ञपुरुषकी खीरका आधा भाग कौसल्याको और केवल अष्टमांश ही कैकेयीको नहीं देते। यद्यपि उन्होंने बहुविवाह किये थे, जो अवश्य ही आदर्श नहीं है, यह उस समयकी एक प्रथा-सी थी। भगवान् श्रीरामने इस प्रथाको तोड़कर आदर्श सुधार किया।

† जो दस हजार धनुर्धारियोंके साथ अकेला लड़ सकता है, उसे 'महारथी' कहते हैं और जो ऐसे दस हजार महारथियोंके साथ अकेला लोहा लेता है, वह 'अतिरथी' कहलाता है।

आदि तीनों रानियोंको खिला दो।' राजाने प्रसन्न होकर मर्यादाके अनुसार कौसल्याको बड़ी समझकर उसे खीरका आधा भाग, मझली सुमित्राको चौथाई भाग और कैकेयीको आठवाँ भाग दिया। सुमित्राजी बड़ी थीं, इससे उनको सम्मानार्थ अधिक देना उचित था, इसीलिये बचा हुआ अष्टमांश राजाने फिर सुमित्राजीको दे दिया, जिससे कौसल्याके श्रीराम, सुमित्राके (दो भागोंसे) लक्ष्मण और शत्रुघ्न एवं कैकेयीके भरत हुए। इस प्रकार भगवान्ने चार रूपोंसे अवतार लिया।

राजाको चारों ही पुत्र परमप्रिय थे, परंतु इन सबमें श्रीरामपर राजाका विशेष प्रेम था। होना ही चाहिये; क्योंकि इन्हींके लिये तो उन्होंने जन्म धारणकर सहस्रों वर्ष प्रतीक्षा की थी। वे रामका अपनी आँखोंसे क्षणभरके लिये भी ओझल होना नहीं सह सकते थे। जब विश्वामित्रजी यज्ञरक्षार्थ श्रीराम-लक्ष्मणको माँगने आये, उस समय श्रीरामकी उम्र पंद्रह वर्षसे अधिक थी, परंतु दशरथने उनको अपने पाससे हटाकर विश्वामित्रके साथ भेजनेमें बड़ी आनाकानी की। आखिर वसिष्ठके बहुत समझानेपर वे उन्हें भेजनेके लिये तैयार हुए। श्रीरामपर अत्यन्त प्रेम होनेका परिचय तो इसीसे मिलता है कि जबतक श्रीराम सामने रहे, तभीतक उन्होंने प्राणोंको रक्खा और अपने वचन सत्य करनेके लिये, रामके बिछुड़ते ही राम-प्रेमानलमें अपने प्राणोंकी आहुति दे डाली!

श्रीरामके प्रेमके कारण ही दशरथ महाराजने केकय-राजके साथ शर्त हो चुकनेपर भी भरतके बदले श्रीरामको युवराज-पदपर अभिषिक्त करना चाहा था। अवश्य ही ज्येष्ठ पुत्रके अभिषेककी रघुकुलकी कुलपरम्परा एवं भरतके त्याग, आज्ञावाहकता, धर्मपरायणता, शील और रामप्रेम आदि सद्गुण भी राजाके इस मनोरथमें कारण और सहायक हुए थे। परंतु परमात्माने कैकेयीकी मति फेरकर एक ही साथ कई काम करा दिये। जगत्में आदर्श-मर्यादा स्थापित हो गयी, जिसके लिये श्रीभगवान्ने अवतार लिया था। इनमें निम्नलिखित १२ आदर्श मुख्य हैं—

(१) दशरथकी सत्यरक्षा और श्रीरामप्रेम।

(२) श्रीरामके वनगमनद्वारा राक्षस-वधादिरूप लीलाओं-द्वारा दुष्ट-दलन।

(३) श्रीभरतका त्याग और आदर्श भ्रातृ-प्रेम।

(४) श्रीलक्ष्मणजीका ब्रह्मचर्य, सेवाभाव, रामपरायणता और त्याग।

(५) श्रीसीताजीका आदर्श पवित्र पातिव्रत-धर्म।

(६) श्रीकौसल्याजीका पुत्रप्रेम, पुत्रवधूप्रेम, पातिव्रत, धर्मप्रेम और राजनीति-कुशलता।

(७) श्रीसुमित्राजीका श्रीरामप्रेम, त्याग और राजनीति-कुशलता।

(८) कैकेयीका बदनाम और तिरस्कृत होकर भी प्रिय 'राम-काज' करना।

(९) श्रीहनूमान्जीकी निष्काम प्रेमाभक्ति।

(१०) श्रीविभीषणजीकी शरणागति और अभय-प्राप्ति।

(११) सुग्रीवके साथ श्रीरामकी आदर्श मित्रता।

(१२) रावणादि अत्याचारियोंका अन्तमें विनाश।

यदि भगवान् श्रीरामका वनवास न होता तो इन आदर्श मर्यादाओंकी स्थापनाका अवसर ही शायद न आता। ये सभी मर्यादाएँ महान् और अनुकरणीय हैं।

जो कुछ भी हो, महाराज दशरथने तो श्रीरामका वियोग होते ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर प्रेमकी टेक रख ली।

जिअन मरन फलु दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा॥
जिअत राम बिधु बदनु निहारा। राम बिरह करि मरनु सँवारा॥
(मानस २। १५५। १)

श्रीदशरथजीकी मृत्यु सुधर गयी, रामके विरहमें प्राण देकर उन्होंने आदर्श स्थापित कर दिया। दशरथके समान भाग्यवान् कौन होगा, जिसने श्रीराम-दर्शन-लालसामें अनन्य-भावसे राम-परायण हो, रामके लिये, राम-राम पुकारते हुए प्राणोंका त्याग किया!

श्रीरामायणमें लङ्का-विजयके बाद पुनः दशरथके दर्शन होते हैं। श्रीमहादेवजी भगवान् श्रीरामको विमानपर बैठे हुए दशरथजीके दर्शन कराते हैं। फिर तो दशरथ सामने आकर श्रीरामको गोदमें बैठा लेते हैं और आलिङ्गन करते हुए उनसे प्रेमालाप करते हैं। यहाँ लक्ष्मणको उपदेश करते हुए महाराज दशरथ स्पष्ट कहते हैं—'सुमित्रा-सुखवर्धन लक्ष्मण! श्रीरामकी सेवामें लगे रहना; तेरा इसमें बड़ा कल्याण होगा। इन्द्रसहित तीनों लोक, सिद्ध पुरुष और सभी महान् ऋषि-मुनि पुरुषोत्तम श्रीरामका अभिनन्दन कर उनकी पूजा करते हैं। वेदोंमें जिन अव्यक्त, अक्षर ब्रह्मको देवताओंका हृदय और गुप्त तत्त्व कहा है, वे परम तपस्वी राम वही हैं।' (वा० रा० ६। ११९। ३०—३२)

यहाँपर शङ्का होती है कि जब शुद्ध सच्चिदानन्दघन श्रीराममें मन लगाकर 'राम-राम' कीर्तन करते हुए दशरथने प्राणोंका त्याग किया था, तब फिर उनकी मुक्ति कैसे नहीं हुई ? यदि श्रीरामनामके प्रतापसे मुक्ति नहीं होती तो फिर यह कैसे कहा जाता है कि अन्तकालमें श्रीरामनाम लेनेसे समस्त बन्ध कट जाते हैं और नाम लेनेवाला परमात्माको प्राप्त होता है ? और यदि राममें मन लगाकर मरनेपर भी मुक्ति नहीं होती तो फिर गीताके उस भगवद्वचनकी व्यर्थता होती है, जिसमें भगवान्ने यह कहा है कि—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥
(८। ५)

'जो पुरुष अन्तकालमें मुझको स्मरण करता हुआ शरीर छोड़कर जाता है, वह निस्संदेह मेरे ही स्वरूपको प्राप्त होता है।'

इन प्रश्नोंका उत्तर तो गीताके इससे अगले श्लोकमें ही मिल जाता है। जिस प्रकारकी भावना करता हुआ मनुष्य प्राण छोड़ता है, उसी प्रकारकी गतिको वह प्राप्त होता है। ज्ञानमार्गी साधक अद्वैत, अक्षर परब्रह्ममें चित्तकी वृत्तियों-को विलीनकर देहत्याग करता है तो उसकी अवश्य ही 'सायुज्य' मुक्ति होती है; परंतु ऐसी बात हुए बिना केवल श्रीरामनामके जपसे 'सायुज्य' मुक्ति नहीं होती। इसमें कोई संदेह नहीं कि श्रीराममें मन लगाकर 'राम-राम' कीर्तन करते हुए प्राण-त्याग करनेवाला मुक्त हो जाता है। सच तो यह है कि बिना मन लगाये भी श्रीरामनामका अन्तकालमें उच्चारण हो जानेसे ही जीव मुक्तिका अधिकारी हो जाता है। इसीसे संतोंने अन्तमें श्रीरामनामको दुर्लभ बताया है—

'जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं ॥'
(मानस ४। ९। १½)

परंतु मुक्ति होती वैसी ही है, जैसी वह चाहता है। 'तो क्या मुक्ति भी कई प्रकारकी होती है ? यदि कई प्रकारकी मुक्ति है तो फिर मुक्तिका महत्त्व ही क्या रह गया ?' इस प्रश्नका उत्तर यह है कि तत्त्वबोधरूप मुक्ति तो एक ही है; परंतु केवल तत्त्वबोध होकर 'सायुज्य' मुक्ति भी हो सकती है, जिसमें जीवकी भिन्न सत्ता यथार्थ स्व-स्वरूप परमात्म-सत्तामें अभिन्नरूपसे विलीन हो जाती है और तत्त्वका पूरा बोध होनेके साथ-ही-साथ सगुण, साकार, सौन्दर्य और माधुर्यकी पराकाष्ठा, अनूप-रूप भगवत्स्वरूपमें परम प्रेम होनेके कारण वह मुक्त पुरुष (सायुज्यमुक्तिरूपी धनका स्वामी होनेपर भी) भगवान्की सामीप्य, सालोक्य, सार्ष्टि और सारूप्य-मुक्तिका रसमय सुख भोगता है। केवल तत्त्वबोधद्वारा प्राणोंका उत्क्रमण न होकर परमात्मामें मिल जाना—यह अभेद मुक्ति और अभेद-ज्ञानपूर्वक साकार ईश्वरके सेवार्थ व्यवहारमें भेद रहना, यह चतुर्विध भेदमुक्ति—ये दोनों वास्तवमें एक ही मुक्तिके दो स्वरूप हैं। परंतु शुद्ध प्रेमी भक्त इन दोनों प्रकारकी मुक्तियोंसे भी अलग रहकर केवल भगवत्सेवामें लगा रहता है। जैसे भगवान् नित्य, मुक्त, अज, अविनाशी होते हुए भी लीलासे अवतार-शरीर धारण करके विविध कर्म करते हैं, ऐसे ही वह भक्त भी उन्हींका अनुसरण करता हुआ, उन्हींकी भाँति, भगवान्की पवित्र लीलामें लीलासे ही लगा रहता है। वह मुक्ति नहीं चाहता। अतएव जब उसे भगवदिच्छासे, भगवदर्थ, भगवदाज्ञानुसार निर्लेपभावसे एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाना पड़ता है, तब वह भगवत्स्मरण और भगवन्नाम-गुण-कीर्तन करता हुआ ही जाता है। दूसरा काम तो उसको कोई रहता ही नहीं; क्योंकि उसकी स्थिति दृढ़ अनन्य विशुद्ध प्रेमभावसे प्रेममय परमात्मामें ही रहती है। इतना होनेपर भी उपर्युक्त कारणसे ऐसे भक्तकी अभेद मुक्ति नहीं होती। इसीलिये भगवान् शिवजी जगज्जननी उमासे दशरथजीके सम्बन्धमें कहते हैं—

तातें उमा मोच्छ नहिं पायो। दसरथ भेद भगति मन लायो ॥
सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं ॥
(वही, ६। १११। ३-३½)

अतएव यह नहीं समझना चाहिये कि अन्तमें श्रीरामनामका जप-कीर्तन करनेसे और श्रीराममें मन लगानेसे मुक्ति नहीं होती और इसी कारण दशरथजीकी भी मुक्ति नहीं हुई। समझना यह चाहिये कि दशरथजीको उस मुक्तिकी कोई परवा नहीं थी। वे तो रामरसके रसिक थे। इसीलिये उस रसके सामने उन्होंने मोक्षका भी जान-बूझकर ही संन्यास कर दिया। ऐसे मोक्ष-संन्यासी प्रेमी भक्तोंकी चरण-सेवाके लिये मुक्ति तो पीछे-पीछे घूमा करती है। भगवान्ने तो अपने श्रीमुखसे यहाँतक कह डाला है—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।

न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत् ॥
न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः ।
न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान् ॥
निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥
(श्रीमद्भा० ११ । १४ । १४-१६)

'जिस मेरे भक्तने अपना आत्मा मुझको अर्पण कर दिया है, वह मुझको छोड़कर ब्रह्माका पद, इन्द्रका पद, चक्रवर्ती राजाका पद, पातालका राज्य, योगकी सिद्धियाँ और मोक्ष भी नहीं चाहता । उद्धवजी ! मुझे आत्मस्वरूप शिवजी, संकर्षण, प्रिया लक्ष्मीजी और अपना स्वरूप भी उतने प्रिय नहीं हैं, जितने तुम-जैसे अनन्य भक्त प्रिय हैं । ऐसे निरपेक्ष, मननशील, शान्त, निर्वैर और समदर्शी भक्तोंकी चरण-रजसे अपनेको पवित्र करनेके लिये मैं उनके पीछे-पीछे सदा फिरता हूँ ।' कैसी महिमा है !

यद्यपि भक्त अपने भगवान्‌को पीछे-पीछे फिरानेके लिये मुक्तिका तिरस्कार कर उन्हें नहीं भजते, उनका तो भगवान्‌के प्रति ऐसा अहैतुक प्रेम हो जाता है कि वे भगवान्‌के सिवा दूसरी ओर ताकना ही नहीं जानते । बस, यह अहैतुक प्रेम ही परम पुरुषार्थ है, यह जानकर वे मुक्तिका निरादर कर भक्ति करते हैं—

'अस बिचारि हरि भगत सयाने । मुक्ति निरादर भगति लुभाने ॥'
(मानस ७ । ११८ । ३½)

क्योंकि भगवान्‌के गुण ही ऐसे हैं कि जिनको देखकर निर्ग्रन्थ आत्माराम मुनि भी उनकी अहैतुकी भक्ति करने लगते हैं—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ॥
(भागवत १ । ७ । १०)

परमभाग्यवती माता कौसल्या

रामायणमें महारानी कौसल्याका चरित्र बहुत ही उदार और आदर्श है । ये महाराज दशरथकी सबसे बड़ी पत्नी और भगवान् श्रीरामचन्द्रकी जननी थीं । प्राचीन कालमें मनु-शतरूपाने तप करके श्रीभगवान्‌को पुत्ररूपसे प्राप्त करनेका वरदान पाया था; वे ही मनु-शतरूपा यहाँ दशरथ-कौसल्या हैं और भगवान् श्रीराम ही पुत्ररूपसे उनके घर अवतरित हुए हैं । श्रीकौसल्याजीके चरित्रका प्रारम्भ अयोध्याकाण्डसे होता है । भगवान् श्रीरामका राज्याभिषेक होनेवाला है । नगरभरमें उत्सवकी तैयारियाँ हो रही हैं । आज माता कौसल्याके आनन्दका पार नहीं है; वह रामकी मङ्गल-कामनासे अनेक प्रकारके यज्ञ, दान, देवपूजन और उपवास-व्रतमें संलग्न है । श्रीसीता-रामको राज्यसिंहासनपर देखनेकी निश्चित आशासे उसका रोम-रोम खिल रहा है । परंतु श्रीराम दूसरी ही लीला करना चाहते हैं । सत्यप्रेमी महाराज दशरथ कैकेयीके साथ वचनबद्ध होकर श्रीरामको वनवास देनेके लिये बाध्य हो जाते हैं ।

धर्मके लिये त्याग

प्रातःकाल श्रीराम माता कैकेयी और पिता दशरथ महाराजसे मिलकर वनगमनका निश्चय कर लेते हैं और माता कौसल्यासे आज्ञा लेनेके लिये उसके महलमें पधारते हैं । कौसल्या उस समय ब्राह्मणोंके द्वारा अग्निमें हवन करवा रही है और मन-ही-मन सोच रही है कि 'मेरे राम इस समय कहाँ होंगे, शुभ लग्न किस समय है ?' इतनेहीमें नित्य प्रसन्नमुख और उत्साह-पूर्ण हृदयवाले श्रीरामचन्द्र माताके समीप जा पहुँचते हैं । रामको देखते ही माता एकाएक उठकर वैसे ही सामने जाती है, जैसे घोड़ी बछेरेके पास जाती है । राम माताको पास आयी देख उसके गले लग जाते हैं और माता भी भुजाओंसे पुत्रका आलिङ्गन कर उनका सिर सूँघने लगती है ।

इस समय कौसल्याके हृदयमें वात्सल्य-रसकी बाढ़ आ गयी । उसके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बहने लगी । कुछ देरतक तो यही अवस्था रही, फिर कौसल्या रामपर निछावर करके बहुमूल्य वस्त्राभूषण बाँटने लगी । श्रीराम चुपचाप खड़े थे । अब स्नेहमयी माँसे रहा नहीं गया । उसने हाथ पकड़कर पुत्रको नन्हे-से शिशुकी भाँति गोदमें बैठा लिया और लगी प्यार करने—

'बार बार मुख चुंबति माता । नयन नेह जलु पुलकित गाता ॥'
(मानस २ । ५१ । १½)

जैसे रङ्क कुबेरके पदको प्राप्तकर फूला नहीं समाता, आज वही दशा कौसल्याकी है । इतनेमें उसे स्मरण आया कि

दिन बहुत चढ़ गया है, मेरे प्यारे रामने अभी कुछ खाया भी नहीं होगा। अतएव माँ कहने लगी—

'तात जाउँ बलि बेगि नहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥'
(वही, २ । ५२ । ½)

माता सोच रही है कि 'लगनमें बहुत देर होगी, मेरा राम इतनी देर भूखा कैसे रह सकेगा। कुछ मिठाई ही खा ले, दो-चार फल ही ले ले तो ठीक है।' उसे यह पता नहीं था कि राम तो दूसरे ही कामसे यहाँ आये हैं। भगवान् रामने कहा—'माता-पिताने मुझको वनका राज्य दिया है, जहाँ सभी प्रकारसे मेरा बड़ा कल्याण होगा। तुम प्रसन्नचित्तसे मुझको वन जानेके लिये आज्ञा दे दो। चौदह साल वनमें निवास कर पिताजीके वचनोंको सत्य कर पुनः इन चरणोंके दर्शन करूँगा। माता! तुम किसी तरह दुःख न करो।'

रामके ये वचन कौसल्याके हृदयमें शूलकी भाँति बिंध गये। हा! कहाँ तो चक्रवर्ती साम्राज्यके ऊँचे सिंहासनपर बैठनेकी बात और कहाँ अब प्राणाराम रामको वन जाना पड़ेगा! कौसल्याजीके हृदयका विषाद कहा नहीं जाता, वह मूर्च्छित हो गिर पड़ी और थोड़ी देर बाद जगकर भाँति-भाँतिसे विलाप करने लगी।

कौसल्याके मनमें आया कि पिताकी अपेक्षा माताका स्थान ऊँचा है; यदि महाराजने रामको वनवास दिया है तो क्या हुआ, मैं उसे नहीं जाने दूँगी। परंतु फिर सोचा कि यदि बहिन कैकेयीने आज्ञा दे दी होगी तो मेरा उसे रोकनेका क्या अधिकार है; क्योंकि मातासे भी सौतेली माताका दर्जा ऊँचा माना गया है। इस विचारसे कौसल्या श्रीरामको रोकनेका भाव छोड़कर मार्मिक शब्दोंमें कहती है—

जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥
(वही, २ । ५५ । १)

मातासे कहा गया कि 'पिताकी ही नहीं, माता कैकेयीकी भी यही सम्मति है।' यहाँपर कौसल्याने बड़ी बुद्धिमानीके साथ यह भी सोचा कि 'यदि मैं श्रीरामको हठपूर्वक रखना चाहूँगी तो धर्म तो जायगा ही, साथ ही दोनों भाइयोंमें परस्पर विरोध भी हो सकता है'—

'राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू॥'
(वही, २ । ५४ । २)

अतएव सब तरहसे सोचकर धर्मपरायणा साध्वी कौसल्याने हृदयको कठिन करके रामसे कह दिया—'बेटा! जब पिता-माता दोनोंकी आज्ञा है और तुम भी इसको धर्म-सम्मत समझते हो, तब मैं तुम्हें रोककर धर्ममें बाधा नहीं देना चाहती; जाओ और धर्मका पालन करते रहो। एक अनुरोध अवश्य है—

'मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ॥'
(वही, २ । ५६)

पातिव्रतधर्म

कह तो दिया, परंतु फिर हृदयमें तूफान आया। अब कौसल्या अपनेको साथ ले चलनेके लिये आग्रह करने लगी और बोली—

कथं हि धेनुः स्वं वत्सं गच्छन्तमनुगच्छति।
अहं त्वानुगमिष्यामि यत्र वत्स गमिष्यसि॥
(वा० रा० २ । २४ । ९)

'बेटा! जैसे गाय अपने बछड़ेके पीछे, वह जहाँ जाता है, वहीं जाती है; वैसे ही मैं भी तुम्हारे साथ तुम जहाँ जाओगे, वहीं जाऊँगी।' इसपर भगवान् रामने माताको अवसर जानकर पातिव्रत-धर्मका बड़ा ही सुन्दर उपदेश दिया, जो स्त्रीमात्रके लिये मनन करनेयोग्य है। भगवान् बोले—

'माता! पतिका परित्याग कर देना स्त्रीके लिये बहुत बड़ी क्रूरता है; तुमको ऐसी बात सोचनी भी नहीं चाहिये। जबतक ककुत्स्थवंशी मेरे पिताजी जीते हैं, तबतक तुमको उनकी सेवा ही करनी चाहिये; यही सनातन धर्म है। जीवित स्त्रियोंके लिये पति ही देवता है और पति ही प्रभु है। महाराज तो तुम्हारे और मेरे स्वामी और राजा हैं। भाई भरत भी धर्मात्मा और प्राणिमात्रका प्रिय करनेवाले हैं। वे भी तुम्हारी सेवा ही करेंगे; क्योंकि उनका धर्ममें नित्य प्रेम है। माता! मेरे जानेके बाद तुमको बड़ी सावधानीके साथ ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे महाराज दुःखी होकर दारुण शोकसे अपने प्राण न त्याग दें। सावधान होकर सर्वदा वृद्ध महाराजके हितकी ओर ध्यान दो। व्रत-उपवासादि नियमोंमें तत्पर रहनेवाली धर्मात्मा स्त्री भी यदि अपने पतिके अनुकूल नहीं रहती तो वह अधम गतिको प्राप्त होती है; परंतु जो देवताओंका पूजन-नमस्कार आदि बिल्कुल न करके भी पतिकी सेवा करती है, उसको उसीके फलस्वरूप उत्तम

स्वर्गकी प्राप्ति होती है । अतएव पतिका हित चाहनेवाली प्रत्येक स्त्रीको केवल पतिकी सेवामें ही लगे रहना चाहिये । स्त्रियोंके लिये श्रुति-स्मृतिमें एकमात्र यही धर्म बतलाया गया है ।' (वा० रा० २ । २४)

साध्वी कौसल्या तो पतिव्रताशिरोमणि थी ही, पुत्र-स्नेहसे रामके साथ जानेको तैयार हो गयी थी । अब पुत्रके द्वारा पातिव्रत-धर्मका महत्त्व सुनते ही पुनः कर्तव्यपर डट गयी और श्रीरामको वन-गमनके लिये उसने आज्ञा दे दी ।

जब राम वनको चले जाते हैं और महाराज दशरथ दुःखी होकर कौसल्याके भवनमें आते हैं, तब आवेशमें आकर वह उन्हें कुछ कठोर वचन कह बैठती है । इसके उत्तरमें जब दुःखी महाराज आर्त्तभावसे हाथ जोड़कर कौसल्यासे क्षमा माँगते हैं, तब तो कौसल्या भयभीत होकर अपने कृत्यपर बड़ा भारी पश्चात्ताप करती है । उसकी आँखोंसे निर्झरकी तरह आँसू बहने लगते हैं और वह महाराजके हाथ पकड़, उन्हें अपने मस्तकपर रख घबराहटके साथ कहती है— 'नाथ ! मुझसे बड़ी भूल हुई । मैं धरतीपर सिर टेककर प्रार्थना करती हूँ, आप मुझपर प्रसन्न होइये । मैं पुत्र-वियोगसे पीड़ित हूँ, आप क्षमा कीजिये । देव ! आपको जब मुझ दासीसे क्षमा माँगनी पड़ी, तब मैं आज पातिव्रत-धर्मसे भ्रष्ट हो गयी । आज मेरे सतीत्वपर कलङ्क लग गया । अब मैं क्षमाके योग्य नहीं रही, मुझे अपनी दासी जानकर उचित दण्ड दीजिये । अनेक प्रकारकी सेवाओंके द्वारा प्रसन्न करनेयोग्य बुद्धिमान् स्वामी जिस स्त्रीको प्रसन्न करनेके लिये बाध्य होता है, उस स्त्रीके लोक-परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं । स्वामिन् ! मैं धर्मको जानती हूँ; आप सत्यवादी हैं, यह भी मैं जानती हूँ । मैंने जो कुछ कहा, पुत्र-शोककी अतिशय पीड़ासे घबराकर कहा है ।' कौसल्याके इन वचनोंसे राजाको कुछ सान्त्वना हुई और उनकी आँख लग गयी । (वा० रा० २ । ६२)

उपर्युक्त अवतरणसे यह पता लगता है कि कौसल्या पातिव्रत-धर्मके पालनमें बहुत ही आगे बढ़ी हुई थी । स्त्रियोंको इस प्रसङ्गसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये ।

कर्तव्यनिष्ठा

दशरथजी रामके वियोगमें व्याकुल हैं । उनका खान-पान छूट गया है । मृत्युके चिह्न उनके शरीरपर प्रत्यक्ष दीख पड़ने लगे हैं । नगर और महलोंमें हाहाकार मचा हुआ है । ऐसी अवस्थामें धीरज धारण कर, अपने दुःखको भुला श्रीरामकी माता कौसल्या, जिसका प्राणाधार पुत्र वधूसहित वनवासी हो चुका है, अपने उत्तरदायित्व और कर्तव्यको समझती हुई महाराजसे कहती है—

नाथ समुझि मन करिअ बिचारू । राम बियोग पयोधि अपारू ॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू । चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू ॥
धीरजु धरिअ त पाइअ पारू । नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू ॥
जौं जियँ धरिअ बिनय पिय मोरी । रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी ॥
(मानस २ । १५३ । ३-४)

धन्य ! रामजननी देवी कौसल्या, ऐसी अवस्थामें तुम्हीं ऐसे आदर्श वचन कह सकती हो । धन्य तुम्हारे धैर्य, साहस, पातिव्रत, विश्वास और तुम्हारी आदर्श कर्तव्यनिष्ठाको !

वधू-प्रेम

कौसल्याका अपनी पुत्र-वधू सीताके प्रति कितना वात्सल्य था, इसका दिग्दर्शन नीचेके कुछ शब्दोंसे होता है । जब सीताजी रामके साथ वन जाना चाहती हैं, तब रोती हुई कौसल्या कहती है—

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई । रूप रासि गुन सील सुहाई ॥
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई । राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई ॥
पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा । सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा ॥
जिअन मूरि जिमि जोगवत रहऊँ । दीप बाति नहिं टारन कहऊँ ॥
(वही, २ । ५८ । १, ३)

जब सुमन्त्र श्रीसीता-राम-लक्ष्मणको वनमें छोड़कर अयोध्या आता है, तब कौसल्या अनेक प्रकारकी चिन्ता करती हुई पुत्रवधूका कुशल-समाचार पूछती है । फिर जब चित्रकूटमें सीताको देखती है, तब बड़ा ही दुःख करती हुई कहती है—'बेटी ! धूपमें सूखे हुए कमलके समान, मसले हुए कुमुदके समान, धूलसे लिपटे हुए सोनेके समान और बादलोंसे छिपाये हुए चन्द्रमाके समान तेरा यह मलिन मुख देखकर मेरे हृदयमें जो दुःखरूपी अरणीसे उत्पन्न शोकाग्नि है, वह मुझे जला रही है ।' (वा० रा० २ । ११४ । २५-२६)

यदि आज सभी सासोंका बर्ताव पुत्रवधुओंके साथ ऐसा हो जाय तो घर-घरमें सुखका स्रोत बहने लगे ।

राम-भरतके प्रति समान भाव और प्रजाहित

कौसल्या राम और भरतमें कोई अन्तर नहीं मानती थी । उसका हृदय विशाल था । जब भरतजी ननिहालसे

आते हैं और अनेक प्रकारसे विलाप करते हुए एवं अपनेको धिक्कारते हुए, सारे अनर्थोंका कारण अपनेको मानते हुए माता कौसल्याके सामने फूट-फूटकर रोने लगते हैं, तब माता सहसा उठकर आँसू बहाती हुई भरतको हृदयसे लगा लेती है और ऐसा मानती है, मानो राम ही लौट आये। उस समय शोक और स्नेह उसके हृदयमें नहीं समाता, तथापि वह बेटे भरतको धीरज बँधाती हुई कोमल वाणीसे कहती है—

अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥
जनि मानहु हियँ हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी॥
(मानस २ । १६४ । ३)

राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे॥
बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥
भएँ ग्यानु बरु मिटै न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥
अस कहि मातु भरतु हियँ लाए। थन पय स्रवहिं नयन जल छाए॥
(वही, २ । १६८ । १—२½)

कैसे आदर्श वाक्य हैं! रामकी माता ऐसी न हो तो और कौन हो?

महाराजकी दाहक्रियाके उपरान्त जब वसिष्ठजी और नगरके लोग भरतको राजगद्दीपर बैठाना चाहते हैं और जब भरत किसी प्रकार भी नहीं मानते, तब माता कौसल्या प्रजाके सुखके लिये धीरज धरकर कहती है—

× × × । पूत पथ्य गुर आयसु अहई॥
सो आदरिअ करिअ हित मानी। तजिअ बिषादु काल गति जानी॥
बन रघुपति सुरपति नरनाहू। तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू॥
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा। तुम्हही सुत सब कहँ अवलंबा॥
लखि बिधि बाम कालु कठिनाई। धीरजु धरहु मातु बलि जाई॥
सिर धरि गुर आयसु अनुसरहू। प्रजा पालि परिजन दुखु हरहू॥
(वही, २ । १७५ । १—३)

प्रजाहितका इतना ध्यान श्रीराम-माताको होना ही चाहिये। माताने रामके वन जाते समय भी कहा था—'मुझे इस बातका तनिक भी दुःख नहीं है कि रामको राज्यके बदले आज वन मिल रहा है; मुझे तो इसी बातकी चिन्ता है कि रामके बिना महाराज दशरथ, पुत्र भरत और प्रजाको महान् क्लेश होगा'—

राजु देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु॥
(वही, २ । ५५)

पुत्र-प्रेम

कौसल्याकी पुत्रवत्सलता आदर्श है। रामके वनवाससे कौसल्याको प्राणान्त क्लेश है; परंतु प्यारे पुत्र श्रीरामकी धर्मरक्षाके लिये कौसल्या उन्हें रोकती नहीं, वरं कहती है—

'बेटा! मैं तुझे इस समय वन जानेसे रोक नहीं सकती। तू जा और शीघ्र ही लौटकर आ। सत्पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करता रह। तू प्रेम और नियमके साथ जिस धर्मका पालन कर रहा है, वह धर्म ही तेरी रक्षा करे।' (वा० रा० २ । २५ । २-३) इस प्रकार धर्मपर दृढ़ रहने और महात्माओंके सन्मार्गका अनुसरण करनेकी शिक्षा देती हुई माता पुत्रकी मङ्गलरक्षा करती है और कहती है—

पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरुह सेवी॥
अंतहुँ उचित नृपहि बनबासू। बय बिलोकि हियँ होइ हराँसू॥
(मानस २ । ५५ । २)

कर्तव्यपरायणा धर्मशीला त्यागमूर्ति माता कौसल्या इस प्रकार पुत्रको सहर्ष वनमें भेज देती है। वियोगके दावानलसे हृदय दग्ध हो रहा है, परंतु पुत्रके धर्मकी टेक और उसकी हर्ष-शोकरहित सुख-दुःख-शून्य आनन्दमयी मञ्जुल मूर्तिकी ओर देख-देखकर अपनेको गौरवान्वित समझती है। यह है सच्चा प्रेम! यहाँ मोहको तनिक भी गुंजाइश नहीं। भरतजीके सामने कौसल्या गौरवके साथ प्यारे पुत्र श्रीरामकी प्रशंसा करती हुई कहती है—'बेटा! महाराजने तेरे बड़े भाई रामको राज्यके बदले वनवास दे दिया, परंतु इससे उनके मुखपर कुछ भी म्लानता नहीं आयी'—

पितु आयस भूषन बसन तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु पहिरे बलकल चीर॥
मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू। सब कर सब बिधि करि परितोषू॥
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी। रहइ न राम चरन अनुरागी॥
सुनतहिं लखनु चले उठि साथा। रहहिं न जतन किए रघुनाथा॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई॥
(वही, २ । १६५, १६५ । १-२)

यह सब होनेपर भी माताका हृदय पुत्रका मधुर मुखड़ा देखनेके लिये निरन्तर व्याकुल है। चौदह साल बड़ी ही कठिनतासे श्रीरामके ध्रुव सत्य वचनोंकी आशापर बीतते हैं। लङ्का-विजय कर श्रीराम जब अयोध्या लौटते हैं और जब

माताको यह समाचार मिलता है, तब वह सुनते ही इस प्रकार दौड़ती है, जैसे गाय बछड़ेके लिये दौड़ा करती है—

कौसल्यादि मातु सब धाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई॥
जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं।
दिन अंत पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं॥
(वही, ७। ५। ४½; छन्द १)

बहुत दिनोंके बाद पुत्रका मुख देखकर कौसल्याके प्रेम-समुद्रकी मर्यादा टूट जाती है। वह पुत्रको हृदयसे लगाकर बार-बार उसका सिर सूँघती है तथा कोमल मस्तक और मुखमण्डलपर हाथ फेरती एवं टकटकी लगाकर देखती हुई मनमें बहुत ही आश्चर्य करती है कि मेरे इस कलके कुसुम-कोमल कमनीय शिशुने रावण-जैसे प्रबल पराक्रमीको कैसे मारा होगा। मेरे राम-लक्ष्मण तो बड़े ही सुकुमार हैं, ये महावली राक्षसोंसे कैसे जीते होंगे ?

कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि। चितवति कृपासिंधु रनधीरहि॥
हृदयँ बिचारति बारहिं बारा। कवन भाँति लंकापति मारा॥
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे॥
(वही, ७। ६। ३-३½)

माता! क्यों, तुम इस बातको भूल गयी कि ये तुम्हारे 'सुकुमार बारे बालक' लीलासंकेतसे ही त्रिभुवनको बनाने-बिगाड़नेवाले हैं। इन्हींकी मायासे सब कुछ हो रहा है। ये तो तुम्हारे प्रेमके कारण तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपसे प्रकट होकर जगत्का कल्याण करते हुए तुम्हें सुख पहुँचा रहे हैं। माता! तुम धन्य हो!

कौसल्याको अपने धर्मपालनका फल मिलता है। उसका शेष जीवन सुखमय बीतता है और अन्तमें वह श्रीरामके द्वारा तत्त्वज्ञान प्राप्तकर—

रामं सदा हृदि ध्यात्वा छित्त्वा संसारबन्धनम्।
अतिक्रम्य गतीस्तिस्रोऽप्यवाप परमां गतिम्॥

हृदयमें सर्वदा श्रीरामका ध्यान करनेसे संसार-बन्धनको छिन्न कर सात्त्विक, राजस, तामस—तीनों गतियोंको लाँघकर परमपदको प्राप्त हो जाती है!

भक्तहृदया माता कैकेयी

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

उस समय महाराज दशरथके आश्चर्यकी सीमा न रही, जब उन्हें विदित हुआ कि 'मेरी अनिन्द्यसुन्दरी पत्नी कैकेयी अत्यन्त सरल, बुद्धिमती एवं साध्वी ही नहीं, अपितु अनुपम वीराङ्गना भी है। केकयराजकी इस लाड़ली पुत्रीने एक बार मेरे सारथिके हत हो जानेपर स्वयं सारथिका कार्य कर मेरे प्राणोंकी रक्षा की थी और दूसरी बार उसने मेरे रथके धुरेके टूट जानेपर उसके स्थानपर अपना हाथ लगा दिया। कितने साहस और धैर्यका परिचय दिया था इसने ! यह पीड़ासे छटपटा उठी थी, इसके नेत्रोंके कोये काले पड़ गये थे, पर इसने उफतक नहीं की और सच भी यही है कि यदि शम्बरासुरके साथ होनेवाले भयानक युद्धमें मेरी सेवाके लिये वीराङ्गना कैकेयी मेरे साथ नहीं होती तो मेरी प्राण-रक्षा सम्भव नहीं थी।'

'तुम मुझसे कोई वर माँग लो।' आनन्द एवं कृतज्ञतासे भरे महाराज दशरथने अपनी आदर्श पत्नीसे साग्रह कहा।

'आप मुझपर प्रसन्न रहें—बस, इतना ही मुझे अभीष्ट है।' पतिपरायणा कैकेयीको किसी वरकी आवश्यकता नहीं थी। वे तो पतिके सुख एवं उनकी सेवासे ही संतुष्ट थीं।

'नहीं, तुम दो वर मुझसे माँगो।' महाराज दशरथने विशेष आग्रह किया।

'अच्छा, कभी माँग लूँगी।' त्यागमयी कैकेयीने महाराज दशरथकी विचार-धारा मोड़नेके लिये कह दिया।

श्रीरामको युवराज-पद देनेका निश्चय हुआ। उस समय भरत और शत्रुघ्न ननिहालमें थे। कारण जो भी रहा हो, महाराज दशरथने भरत और शत्रुघ्नको उक्त शुभ समारोहपर बुलाना आवश्यक नहीं समझा। केकय-नरेशको भी निमन्त्रण नहीं भेजा गया। कहा जाता है कि कैकेयीसे परिणयके समय महाराज दशरथने इन्हींके पुत्रको राज्यका उत्तराधिकारी स्वीकार किया था; किंतु अपने वंशकी प्रथा एवं श्रीरामके प्रति अत्यधिक अनुरागके कारण उन्हें युवराज-पदपर अभिषिक्त करनेकी सारी तैयारी कर ली गयी। महारानी कैकेयीके पास भी यह समाचार नहीं पहुँच पाया। महारानी कैकेयी इस बातसे पूर्णतया परिचित थीं कि 'इस राज्य-पदका अधिकारी मेरा पुत्र भरत है।' किंतु कैकेयी रघुवंशकी मर्यादा एवं श्रीरामके प्रति स्नेहके कारण उनके युवराज बनाये जानेका संवाद सुनते ही आनन्दमग्न हो गयीं। उनकी

प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। दासी मन्थराके द्वारा यह समाचार पाते ही अत्यन्त हर्षमें भरकर उन्होंने उसे तुरंत एक बहुमूल्य आभूषण प्रदान किया—'दिव्यमाभरणं तस्यै कुब्जायै प्रददौ शुभम्॥' (वा० रा० २।७।३२) और उससे कहा—

इदं तु मन्थरे मह्यमाख्यातं परमं प्रियम्।
एतन्मे प्रियमाख्यातं किं वा भूयः करोमि ते॥
रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये।
तस्मात् तुष्टास्मि यद् राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति॥

न मे परं किंचिदितो वरं पुनः
प्रियं प्रियार्हे सुवचं वचोऽमृतम्।
तथा ह्यवोचस्त्वमतः प्रियोत्तरं
वरं परं ते प्रददामि तं वृणु॥
(वा० रा० २। ७।३४-३६)

'मन्थरे! यह तूने बड़ा ही प्रिय समाचार सुनाया। तूने मेरे लिये जो यह प्रिय संवाद सुनाया, इसके लिये मैं तेरा और कौन-सा उपकार करूँ? मैं भी राम और भरतमें कोई भेद नहीं समझती। अतः यह जानकर कि राजा श्रीरामका अभिषेक करनेवाले हैं, मुझे बड़ी खुशी हुई है। मन्थरे! तू मुझसे प्रिय वस्तु पानेके योग्य है। मेरे लिये श्रीरामके अभिषेकसम्बन्धी इस समाचारसे बढ़कर दूसरा कोई प्रिय एवं अमृतके समान मधुर वचन नहीं कहा जा सकता। ऐसी परम प्रिय बात तुमने कही है; अतः अब यह प्रिय संवाद सुननेके बाद तू कोई श्रेष्ठ वर माँग ले, मैं उसे अवश्य दूँगी।'

महारानी कैकेयीकी इस हर्षपूरित वाणीको सुनते ही मन्थराने उसके दिये हुए आभूषणको उठाकर फेंक दिया एवं श्रीरामके विरुद्ध कितनी ही बातें कहने लगी। मन्थराकी इन बातोंको सुननेपर भी कैकेयी श्रीरामके धर्म-ज्ञान, गुण, जितेन्द्रियता, कृतज्ञता, सत्यवादिता एवं पवित्रता आदिका ही बखान करती रहीं।

इतनेपर भी मन्थरा जब महाराज दशरथ और श्रीरामकी निन्दा करने लगी, तब महारानी कुपित हो गयीं। उन्होंने मन्थराको डाँटते हुए कहा—

'पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी॥'
(मानस २।१३।४)

—'यह तो मङ्गल एवं अभ्युदयका शुभ अवसर है। इस समय तेरे मनमें जलन कैसी?' महारानी कैकेयीने मन्थरासे कहा—

कौसल्या सम सब महतारी। रामहि सहज सुभायँ पिआरी॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी। मैं करि प्रीति परीछा देखी॥
जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहुँ राम सिय पूत पुतोहू॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्ह कें तिलक छोभु कस तोरें॥
(वही, २।१४।३-४)

इन थोड़ी-सी पंक्तियोंसे स्पष्ट पता चल जाता है कि महारानी कैकेयी श्रीरामको कितना अधिक प्यार करती थीं और उन्हें श्रीरामके राज्याभिषेकमें कितना आनन्द एवं प्रसन्नता थी। इसके अनन्तर दासी मन्थराके बहकानेसे लक्ष्मण और सीतासहित श्रीरामको चौदह वर्षके लिये अरण्यवास करना पड़ा। यह अस्वाभाविक एवं परम अमङ्गल-मय दुःखद घटना कैसे घट गयी? जो कैकेयी अपने पवित्र रघुवंशकी मर्यादाका ध्यान ही नहीं रखती थीं, श्रीरामको प्राणाधिक प्यार करती थीं, अत्यन्त शीलवती साध्वी नारी थीं, श्रीरामके राज्याभिषेकके संवादसे प्रमुदित होकर मन्थरा-को बहुमूल्य आभूषण ही नहीं दिया, उसे मुँहमाँगी वस्तु देनेके लिये वचन दे चुकी थीं, मन्थराकी विपरीत बात सुनकर उसकी जीभतक खिंचानेकी बात कुछ ही क्षण पूर्व कह चुकी थीं, उनके द्वारा ऐसा अनर्थकारी कार्य कैसे हो गया, जिससे वे सदाके लिये दुष्टा और पापिनी कहलायीं? श्रीरामके प्रति भरतकी अद्भुत आदर्श प्रीति एवं भक्तिसे परिचित होकर भी उन्होंने भरतके लिये राज्य एवं श्रीरामके लिये अरण्य-वासका वरदान कैसे माँगा?

इसमें मुख्यतया दो हेतु प्रतीत होते हैं—

(१) कैकेयीने भगवान् श्रीरामकी लीलामें सहायता करनेके लिये जन्म लिया था। वे श्रीरामको साक्षात् परमात्मा समझती थीं, इसी कारण उनके द्वारा इस प्रकारके वरदान-की याचना हुई। यदि श्रीरामका राज्याभिषेक हो जाता तो वे वनमें नहीं जाते और वन-गमनके बिना ऋषि-मुनियों-को दर्शन, सीता-हरण तथा रावण-वध आदि क्रिया नहीं हो पातीं। साधु-परित्राण एवं दुष्ट-विनाश—अवतारके ये प्रमुख कार्य नहीं हो पाते।

(२) महाराज दशरथका मृत्यु-काल निकट था। उसके लिये भी किसी निमित्तकी अपेक्षा थी और वह निमित्त महारानी कैकेयीको बनना पड़ा।

दूसरी ओर कमलनयन श्रीरामका राज्याभिषेक न हो, इसके लिये देवसमुदाय प्रयत्नशील था ही—

एतस्मिन्नन्तरे देवा देवीं वाणीमचोदयन् ।
गच्छ देवि भुवो लोकमयोध्यायां प्रयत्नतः ॥
रामाभिषेकविघ्नार्थं यतस्व ब्रह्मवाक्यतः ।
मन्थरां प्रविशस्वादौ कैकेयीं च ततः परम् ॥
ततो विघ्ने समुत्पन्ने पुनरेहि दिवं शुभे ।
तथेत्युक्त्वा तथा चक्रे प्रविवेशाथ मन्थराम् ॥

(अ० रा०, २ । २ । ४४–४६)

"इसी समय देवताओंने सरस्वती देवीसे आग्रह किया —'देवि ! तुम यत्नपूर्वक भूलोकस्थित अयोध्यापुरीमें जाओ और वहाँ ब्रह्माजीकी आज्ञासे रामचन्द्रजीके राज्याभिषेकमें विघ्न उपस्थित करनेके लिये यत्न करो । प्रथम तो तुम मन्थरामें प्रवेश करना और फिर कैकेयीमें । शुभे ! इस प्रकार विघ्न उपस्थित हो जानेपर तुम फिर स्वर्गलोकको लौट आना ।' इसपर सरस्वतीने 'बहुत अच्छा' कहकर वैसा ही किया और मन्थरामें प्रवेश किया *।"

जगन्नियन्ता श्रीरामकी प्रेरणासे सुरोंके द्वारा प्रेरित होकर जब सरस्वती देवीने कैकेयीकी बुद्धि बदल दी, तब 'सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि ॥' और 'भावी बस प्रतीति उर आई ।'

इस प्रकार सुस्पष्ट है कि श्रीरामकी परम अन्तरङ्ग प्रेमपात्री महारानी कैकेयीने प्रभुकी लीलामें बड़ी सहायता की और इस सहायतामें उन्होंने अपने लिये चिरकालिक अपयश एवं कलङ्क ग्रहण किया । पापिनी, कलङ्किनी, कुलघातिनी आदि शब्दोंको उन्होंने प्रभुकी सेवाके निमित्त सर्वथा मौन होकर सदाके लिये स्वीकार कर लिया ।

पर वे सर्वथा निर्दोष ही नहीं, प्रभुके अत्यधिक प्रेमी भक्तोंमें भी सम्मानित हैं । श्रीरामके वियोगमें विकल-विह्वल भरतजी चित्रकूट जाते समय जब भरद्वाजमुनिसे मिले, तब भरद्वाजजीने उनसे कहा था—

न दोषेणावगन्तव्या कैकेयी भरत त्वया ।
रामप्रव्राजनं ह्येतत् सुखोदर्कं भविष्यति ॥
देवानां दानवानां च ऋषीणां भावितात्मनाम् ।
हितमेव भविष्यद्धि रामप्रव्राजनादिह ॥

(वा० रा०, २ । ९२ । ३०-३१)

'भरत ! तुम कैकेयीके प्रति दोष-दृष्टि न करो । श्रीरामका यह वनवास भविष्यमें बड़ा ही सुखद होगा । श्रीरामके वनमें जानेसे देवताओं, दानवों तथा परमात्माका चिन्तन करनेवाले महर्षियोंका इस जगत्‌में हित ही होनेवाला है *।'

चित्रकूटमें जब भरतजीने श्रीरामको लौटनेके लिये विशेष आग्रह किया, तब प्रभुके संकेतसे वसिष्ठजीने भरतजीको एकान्तमें ले जाकर कहा—'आज मैं तुमसे एक सुनिश्चित गुप्त रहस्य बताता हूँ । भगवान् राम साक्षात् नारायण हैं । पूर्वकालमें ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर उन्होंने रावणको मारनेके लिये दशरथके यहाँ पुत्ररूपसे जन्म लिया है । इसी प्रकार योगमायाने जनकनन्दिनी सीताके रूपमें अवतार ग्रहण किया है और शेषजी लक्ष्मणके रूपमें अवतरित होकर उनका अनुगमन कर रहे हैं । ये रावणको मारना चाहते हैं, इसलिये निस्संदेह वनको ही जायँगे'—

कैकेय्या वरदानादि यद्यन्निष्ठुरभाषणम् ।
सर्वं देवकृतं नोचेदेवं सा भाषयेत् कथम् ।
तस्मात्त्यजाग्रहं तात रामस्य विनिवर्तने ॥

(अ० रा०, २ । ९ । ४५-४६)

'कैकेयीके वरदान और निष्ठुर भाषण आदि जो कुछ भी कार्य हैं, वे सब देवताओंकी प्रेरणासे ही हुए हैं; नहीं तो वह ऐसे वचन कैसे बोल सकती थी । इसलिये हे तात ! तुम रामको लौटानेका आग्रह छोड़ दो ।'

फिर तो भरतजी प्रभुकी पादुका लेकर अयोध्या लौटनेकी तैयारी करने लगते हैं और माता कैकेयी एकान्तमें प्रभुसे मिलती हैं । उनके नेत्रोंमें आँसू भरे होते हैं । अत्यन्त दुखी होकर वे कहती हैं—'हे राम ! मायासे मोहित होकर मैंने बहुत बड़ा अपकर्म किया है, किंतु आप मेरी कुटिलताको क्षमा कर दें; क्योंकि साधुजन सर्वदा क्षमाशील ही होते

* सारद बोलि बिनय सुर करहीं । बारहिं बार पाय लै परहीं ॥
बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु ।
रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु ॥

(मानस २ । १० । ४; । ११)

नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि ।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि ॥

(वही, २ । १२)

* तुम्ह गलानि जियँ जनि करहु समुझि मातु करतूति ।
तात कैकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति ॥

(मानस २ । २०६)

हैं। देवताओंका कार्य सिद्ध करनेकी दृष्टिसे आपने ही मुझसे यह कर्म करवाया है। अब मैंने आपको पहचान लिया है, आप देवताओंके भी मन और वाणी आदिसे परे हैं।'

पाहि विश्वेश्वरानन्त जगन्नाथ नमोऽस्तु ते।
छिन्धि स्नेहमयं पाशं पुत्रवित्तादिगोचरम्॥
त्वज्ज्ञानानलखड्गेन त्वामहं शरणं गता।
(अ० रा० २। ९। ६१-६२)

'हे विश्वेश्वर! हे अनन्त! आप मेरी रक्षा कीजिये। हे जगन्नाथ! आपको नमस्कार है। हे प्रभो! मैं आपकी शरण हूँ। आप अपने ज्ञानाग्निरूप खड्गसे मेरे पुत्र और धन आदिके स्नेह-बन्धनको काट डालिये।'

कैकेयीके ये अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्ण, सर्वथा सरल एवं स्पष्ट वचन सुनकर हँसते हुए भगवान् श्रीरामने उनसे कहा—

यदाह मां महाभागे नानृतं सत्यमेव तत्।
मयैव प्रेरिता वाणी तव वक्त्राद् विनिर्गता॥
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थमत्र दोषः कुतस्तव।
गच्छ त्वं हृदि मां नित्यं भावयन्ती दिवानिशम्॥
सर्वत्र विगतस्नेहा मद्भक्त्या मोक्ष्यसेऽचिरात्।
अहं सर्वत्र समदृग् द्वेष्यो वा प्रिय एव वा॥
नास्ति मे कल्पकस्येव भजतोऽनुभजाम्यहम्।
मन्मायामोहितधियो मामम्ब मनुजाकृतिम्॥
सुखदुःखाद्यनुगतं जानन्ति न तु तत्त्वतः।
दिष्ट्या मद्गोचरं ज्ञानमुत्पन्नं ते भवापहम्॥
स्मरन्ती तिष्ठ भवने लिप्यसे न च कर्मभिः।
(अ० रा०, २। ९। ६३-६८)

'महाभागे! तुमने जो कुछ कहा है, वह ठीक ही है, मिथ्या नहीं। मेरी प्रेरणासे ही देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये तुम्हारे मुखसे वे शब्द निकले थे। इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। अब तुम जाओ; अहर्निश निरन्तर हृदयमें मेरी ही भावना करनेसे तुम सर्वत्र स्नेहरहित होकर मेरी भक्तिद्वारा शीघ्र ही मुक्त हो जाओगी। मैं सर्वत्र समदर्शी हूँ, मेरा कोई भी प्रिय या अप्रिय नहीं है।

'मायावी पुरुष जिस प्रकार अपनी ही मायासे रचे पदार्थोंमें राग-द्वेष नहीं करता, उसी प्रकार मेरा भी किसीमें राग-द्वेष नहीं है। जो पुरुष जिस प्रकार मेरा भजन करता है, मैं भी वैसे ही उसका ध्यान रखता हूँ। हे मातः! मेरी मायासे मोहित होकर लोग मुझे सुख-दुःखके वशीभूत साधारण मनुष्य जानते हैं। वे मेरे वास्तविक स्वरूपको नहीं जानते। तुम्हारा बड़ा भाग्य है, जो तुम्हारे अंदर संसार-भयको दूर करनेवाला मेरा तत्त्वज्ञान उत्पन्न हुआ है। तुम मेरा स्मरण करती हुई घरमें ही रहो, इससे तुम कर्म-बन्धनमें नहीं बँधोगी।'

भगवान् श्रीरामकी वाणीसे स्पष्ट हो जाता है कि भक्त-हृदया कैकेयी परम पुण्यमयी, महाभाग्यवती एवं सर्वथा निर्दोष थीं। वे तत्त्वज्ञान-सम्पन्न थीं। उन्होंने भगवान् श्रीरामकी लीलामें सहयोग देनेके लिये, बिना किसी लौकिक स्वार्थके, शुद्ध राम-काजके निमित्त, सदाके लिये अपकीर्तिको वरण कर लिया। वे उच्चकोटिकी प्रभुभक्त थीं। भरत-जैसे श्रीरामके अनन्य भक्तकी वे जननी थीं। ऐसी माता कैकेयी तिरस्कार एवं लाञ्छनाके योग्य नहीं, वे तो सदा ही पूजनीया और प्रणम्या हैं।

श्रीरामसे निवेदन

अब आये तुम्हरी सरन, हारे के हरि नाम।
साख सुनी रघुबंसमनि, 'निर्बलके बल राम'॥
जपबल तपबल बाहुबल, चौथो बल है दाम।
हमरे बल एकौ नहीं, पाहि पाहि श्रीराम॥
अब तुम सों बिनती यहै, राम गरीब नेवाज।
इन दुखियन अँखियान महँ, बसै आप को राज॥
अबलों हम जीवित रहे, लै लै तुम्हरो नाम।
सोइ अब भूलन लगे, अहो राम गुनधाम॥
कौन काज जन्मत मरत, पूछत जोरे हाथ।
कौन पाप यह गति भई, हमरी रघुकुलनाथ॥

—स्व० बालमुकुन्द गुप्त

भक्तिमयी सुमित्रा देवी

जो केवल इसीलिये गर्भ-धारण करती हैं और इसीलिये पुत्र-प्रसव करती हैं कि उनका पुत्र माता-पिता, सुख-सम्पत्ति, विलास-यौवन, घर-परिवार, नव-विवाहिता पत्नी—सभीके मोहको तृणवत् त्यागकर, स्वेच्छासे ही विराग, तपस्या एवं संयमको स्वीकार करके केवल भगवान्‌की ही सेवा करे।, भगवान्‌की सेवा ही जिसके जीवनका एकमात्र लक्ष्य हो और जो भगवान्‌की सेवामें ही अपनेको खपा दे—ऐसी परम सौभाग्यवती लक्ष्मण-शत्रुघ्न-जननी सुमित्रा-सरीखी माताएँ जगत्में विरली ही होती हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्र जब वन जाने लगे और जब श्रीरामजीके आदेशसे एकमात्र रामको परम वस्तु माननेवाले लक्ष्मणजी माता सुमित्रासे आज्ञा माँगने गये, उस समय उस विशालहृदया यथार्थजननी मङ्गलमयी माताने जो कुछ कहा, उसमें भक्ति, प्रीति, त्याग, बलिदान, समर्पण, नारी-जीवनकी सफलता, पुत्रका स्वरूप—सभीका परम श्रेष्ठ सार आ गया है। माताका वह उपदेश यदि जगत्‌की सभी माताओंके लिये आदर्श बन जाय तो यही जगत् वैकुण्ठ बन सकता है। माता सुमित्रा कहती हैं—

'बेटा! जानकीजी तुम्हारी माता हैं और सब प्रकारसे स्नेह करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे पिता हैं। जहाँ श्रीरामजीका निवास हो, वहीं अयोध्या है। जहाँ सूर्यका प्रकाश हो, वहीं दिन है। यदि निश्चय ही सीता-राम वनको जाते हैं तो अयोध्यामें तुम्हारा कुछ भी काम नहीं है। गुरु, पिता, माता, भाई, देवता, स्वामी—इन सबकी सेवा प्राणके समान करनी चाहिये; फिर श्रीरामचन्द्रजी तो प्राणोंके भी प्रिय हैं; हृदयके भी जीवन हैं और सभीके स्वार्थरहित सखा हैं। जगत्में जहाँतक पूजनीय और परम प्रिय लोग हैं, वे सब रामजीके नातेसे ही [पूजनीय और परमप्रिय] माननेयोग्य हैं। हृदयमें यों जानकर, बेटा! उनके साथ वन जाओ और जगत्में जीनेका लाभ उठाओ! मैं बलिहारी जाती हूँ, [हे पुत्र!] मुझ समेत तुम बड़े ही सौभाग्यके पात्र हुए, जो तुम्हारे चित्तने छल छोड़कर श्रीरामके चरणोंमें स्थान प्राप्त किया है। संसारमें वही युवती स्त्री पुत्रवती है, जिसका पुत्र श्रीरघुनाथजीका भक्त हो। नहीं तो, जो रामसे विमुख पुत्रसे अपना हित मानती है, वह बाँझ ही अच्छी। पशुकी भाँति उसका ब्याना (पुत्र प्रसव करना) व्यर्थ ही है। तुम्हारे ही भाग्यसे श्रीरामजी वनको जा रहे हैं; हे तात! इसमें दूसरा कोई कारण नहीं है। सम्पूर्ण पुण्योंका सबसे बड़ा फल यही है कि श्रीसीतारामजीके चरणोंमें स्वाभाविक प्रेम हो। राग, रोष, ईर्ष्या, मद और मोह—इनके वश स्वप्नमें भी मत होना। सब प्रकारके विकारोंको त्यागकर मन, वचन और कर्मसे श्रीसीतारामजीकी सेवा करना। तुमको वनमें सब प्रकारसे आराम है; कारण, श्रीरामजी और सीताजीरूप पिता-माता तुम्हारे साथ हैं। पुत्र! तुम वही करना, जिससे श्रीरामचन्द्रजी वनमें क्लेश न पावें, मेरा यही उपदेश है।'

सिद्धान्त तथा उपदेशका उपसंहार करती हुई माता अन्तमें आशीर्वाद देती हुई कहती हैं—

> उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।
> पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥
> तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
> रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई॥
>
> (मानस २। ७४। १ छन्द)

"बेटा! मेरा यही उपदेश है, (अर्थात् तुम वही करना) जिससे वनमें तुम्हारे कारण श्रीरामजी और श्रीसीताजी सुख पायें और पिता-माता, प्रिय परिवार तथा नगरके सुखोंकी याद भूल जायँ। तुलसीदासजी कहते हैं कि सुमित्राजीने इस प्रकार हमारे प्रभु (श्रीलक्ष्मणजी) को सीख देकर (वन जानेकी) आज्ञा दी और फिर यह आशीर्वाद दिया कि 'श्रीसीताजी और श्रीरघुवीरजीके चरणोंमें तुम्हारा निर्मल (निष्काम और अनन्य) एवं प्रगाढ़ प्रेम नित्य नया-नया हो'।" माताकी क्या सुन्दर आशीष् है। धन्य है।

प्रिय पुत्र लक्ष्मणको रामकी सेवामें भेजकर ही माता निश्चिन्त नहीं हो जातीं। जब लक्ष्मणके शक्ति लगने और रण-भूमिमें मूर्च्छित होकर गिर जानेका संवाद उन्हें मिलता है, तब वे अपनी कोखको सफल हुई मानती हैं और उनका रोम-रोम प्रसन्नतासे खिल उठता है। पर साथ ही यह चिन्ता आ सताती है कि 'मेरे राम शत्रुओंमें अकेले रह गये' और शत्रुघ्नको वहाँ भेजनेका निश्चय करके कहती हैं—'बेटा! हनुमान्‌के साथ जाओ।' माताका आदेश सुनते ही शत्रुघ्नजी हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं और शरीरसे

पु..कित होकर ऐसे प्रसन्न होते हैं, मानो विधाताके विधानसे उनके पूरे दाँव पड़ गये हों—

तात! जाहु कपि सँग', रिपु सूदन उठि कर जोरि खरे हैं।
प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु बिधिबस सुढर ढरे हैं॥
(गीतावली ६। १३। ४)

श्रीहनुमान्‌जीके विनय करने और आश्वासन देनेपर माता मानती हैं।

सचमुच ऐसी ही माता पुत्रवती हैं और ऐसी मातासे जन्म धारण करनेवाले ही वास्तवमें पुत्र हैं—इन माता-पुत्रोंके चरणोंमें कोटि-कोटि नमस्कार!

राजा जनक

प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम पद गूढ़ सनेहू॥
जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई॥
(मानस १। १६। १)

'अनेक ऋषियोंके साथ महर्षि विश्वामित्र हमारे नगरके आम्र-काननमें पधारे हैं'—यह संवाद पाते ही महाराज जनक* अपने मन्त्रियों एवं ब्राह्मणोंके साथ विश्वामित्रजीसे मिलने चले।

महाराज जनकने श्रीविश्वामित्रजीके चरणोंमें सादर प्रणाम किया। विश्वामित्रजीने इन्हें बड़े ही प्यारसे अपने समीप बैठाकर कुशल-प्रश्न पूछा। इसी बीच नवजलधरवपु श्रीरामके साथ श्रीलक्ष्मण वाटिका अवलोकन कर लौटे।

'स्याम गौर मृदु बयस किसोरा। लोचन सुखद बिस्व चित चोरा॥'
(वही, १। २१४। २½)

तेज-पुञ्ज दोनों अलौकिक बालकोंको देखकर वहाँ उपस्थित सभी लोग उठकर खड़े हो गये। महर्षि विश्वामित्रने उनको निकट बैठा लिया। उनके अद्भुत रूप-लावण्यको देखकर सब-के-सब आनन्दित हो गये। उनके शरीर पुलकित हो गये तथा नेत्रोंसे आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे। उनके दर्शन कर महाराज विदेहकी तो अत्यन्त विचित्र दशा हो गयी।

'मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥'
(वही, १। २१४। ४)

प्रेम-मग्न महाराज जनकने विवेकपूर्वक धैर्य धारण किया और महर्षिके चरणोंमें मस्तक झुकाकर गद्गद कण्ठसे यह पूछा—

कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि रघुकुल पालक॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा॥
सहज बिराग रूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
(वही, १। २१४। १-१½)

इतना ही नहीं, उन्होंने श्रीविश्वामित्रजीके सम्मुख अपनी मानसिक स्थिति निस्संकोच प्रकट कर दी—

'इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥'
(वही, १। २१५। २½)

सच तो यह है कि महाराज जनकका भगवान् श्रीरामके प्रति जो अत्यन्त गूढ़ स्नेह था, वे उसे किसीपर किसी प्रकार भी व्यक्त नहीं होने देना चाहते थे। उनके अकथनीय प्रेम-सम्बन्धको वे और श्रीराम ही जानते थे। उस अद्भुत प्रीतिको महाराज जनकने ऐश्वर्यमय नीतिकुशल जीवनमें छिपा रखा था; पर सीता-स्वयंवरके लिये धनुष-यज्ञका आयोजन करनेपर जब उनके आमन्त्रणपर महर्षि विश्वामित्रके साथ उनके प्राणधन राम-लक्ष्मण पधारे, तब उनका वह गूढ़ भाव, वह अपार प्रेम गुप्त नहीं रह सका, प्रकट हो गया और उनके मुँहसे उपर्युक्त वाणी निकल गयी। वे श्रीराम और लक्ष्मणको देखते ही रह गये। मन-वाणीसे अगोचर ब्रह्म आज प्रत्यक्ष—नयनगोचर हो गया। फिर उनके आनन्दका क्या कहना? वे प्रेममें इतने विभोर हो गये थे कि उन्हें तन-मनकी सुधि भी भूली जा रही थी।

आज उन्हें वर्षों पूर्व नारदजीकी कही हुई वाणी सत्य सिद्ध होती दीख रही थी। श्रीनारदजीने उनसे कहा था—

* महाराज निमिके शरीरका मन्थन कर ऋषियोंने एक कुमार उत्पन्न किया था, उसका नाम 'जनक' पड़ा। वह माताके शरीरसे उत्पन्न नहीं हुआ, इस कारण 'विदेह' कहा गया और मन्थनसे उत्पन्न हुआ, इस कारण उसकी संज्ञा 'मिथिल' हुई। इस कुलमें आगे उत्पन्न होनेवाले सभी राजाओंको 'विदेह' और 'जनक' कहा गया। महर्षि याज्ञवल्क्यके अनुग्रहसे वे सभी 'आत्मज्ञानी' और 'योगी' हुए। इसी कुलमें ये सीताजीके पिता महाराज 'सीरध्वज' जनक भी उत्पन्न हुए थे। ये अत्यन्त ज्ञानी, विद्वान्, सर्वसद्गुणसम्पन्न, कर्मठ, धर्मात्मा एवं श्रीभगवान्‌के परम भक्त थे। श्रीरामके गूढ़ प्रेमको ये किसीपर प्रकट नहीं होने देते थे, सदा गुप्त रखते थे।

शृणुष्व वचनं गुह्यं तवाभ्युदयकारणम् ॥
परमात्मा हृषीकेशो भक्तानुग्रहकाम्यया ।
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं रावणस्य वधाय च ॥
जातो राम इति ख्यातो मायामानुषवेषधृक् ।
आस्ते दाशरथिर्भूत्वा चतुर्धा परमेश्वरः ॥
योगमायापि सीतेति जाता वै तव वेश्मनि ।
अतस्त्वं राघवायैव देहि सीतां प्रयत्नतः ॥
नान्येभ्यः पूर्वभार्यैषा रामस्य परमात्मनः ।

(अ० रा० १ । ६ । ६२—६६)

"राजन् ! अपने कल्याणका कारणरूप यह परम गुह्य वचन सुनो—परमात्मा हृषीकेश भक्तोंपर कृपा, देवताओंकी कार्य-सिद्धि और रावणका वध करनेके लिये माया-मानवरूपसे अवतीर्ण होकर 'राम' नामसे विख्यात हुए हैं। वे परमेश्वर अपने चार अंशोंसे दशरथके पुत्र होकर अयोध्यामें रहते हैं और इधर योगमायाने तुम्हारे यहाँ सीताके रूपमें जन्म लिया है। अतः तुम प्रयत्नपूर्वक इस सीताका पाणिग्रहण रघुनाथजीके साथ ही करना, और किसीसे नहीं—क्योंकि यह पहलेसे ही परमात्मा रामकी ही भार्या हैं' ।"

सीताजीका विवाह हो जानेपर तो श्रीजनकजीने निश्चितरूपसे अपना जीवन सफल समझ लिया और उन्होंने सदा-सर्वदाके लिये प्रभु-पद-पद्मोंकी शरण ग्रहण की ।

अद्य मे सफलं जन्म राम त्वां सह सीतया ॥
एकासनस्थं पश्यामि भ्राजमानं रविं यथा ।
यत्पादपङ्कजपरागसुरागयोगि-
वृन्दैर्जितं भवभयं जितकालचक्रैः ।
यन्नामकीर्तनपरा जितदुःखशोका
देवास्तमेव शरणं सततं प्रपद्ये ॥

(अ० रा० १ । ६ । ७१-७२, ७५)

श्रीजनकजीने कहा—'हे राम ! आज मेरा जन्म सफल हो गया, जो मैं सूर्यके समान देदीप्यमान और सीताके साथ एक आसनपर विराजमान आपको देख रहा हूँ।...जिनके चरण-कमल-परागके रसिक, काल-चक्रको जीतनेवाले योगि-जनोंने संसार-भयको जीत लिया है। तथा जिनके नाम-कीर्तनमें लगे रहकर देवगण दुःख और शोकको जीत लेते हैं, उन आपकी मैं निरन्तर शरण ग्रहण करता हूँ ।'

इसी प्रकार विवाहोपरान्त जब पुत्र-पुत्रवधुओंसहित महाराज दशरथ अयोध्याके लिये प्रस्थान करते हैं, तब श्रीजनकजी अधीर हो जाते हैं। उनका प्रेम छिप नहीं पाता । उनके नेत्र अश्रुपूरित हैं । वे एकटक कभी दशरथजीकी ओर, कभी श्रीरामकी ओर और कभी सीताकी ओर देखते हैं । श्रीराम क्या जा रहे हैं, उनका प्राण चला जा रहा है। दशरथजी बार-बार प्रेमपूर्वक उन्हें लौट जानेके लिये कहते हैं; किंतु इनका मन नहीं मानता, हृदय छटपटा उठता है। श्रीदशरथजीके बार-बार आग्रह करनेपर वे रथसे उतरकर, साश्रुनयन, हाथ जोड़े उनसे प्रार्थना करने लगे । मुनियोंकी स्तुति कर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और अन्तमें अपने जामाता,—निखिलब्रह्माण्डनायक नवनीरदघन श्रीरामके समीप जाते हैं, तब उनके नेत्र बरबस झरने लगते हैं। हाथ स्वतः जुड़ जाते हैं। वे बोलना चाहते हैं, पर प्रीतिवश बोला नहीं जाता । वाणी अवरुद्ध हो जाती है। बड़े साहससे धीरे-धीरे विनम्र वाणीमें उन्होंने कहा—

राम करौं केहि भाँति प्रसंसा। मुनि महेस मन मानस हंसा ॥
करहिं जोग जोगी जेहि लागी । कोहु मोहु ममता मदु त्यागी ॥
ब्यापकु ब्रह्मु अलखु अबिनासी । चिदानंदु निरगुन गुनरासी ॥
मन समेत जेहि जान न बानी । तरकि न सकहिं सकल अनुमानी ॥
महिमा निगमु नेति कहि कहई । जो तिहुँ काल एकरस रहई ॥

नयन बिषय मो कहुँ भयउ सो समस्त सुख मूल ।
सबइ लाभु जग जीव कहँ भएँ ईसु अनुकूल ॥

सबहि भाँति मोहि दीन्हि बड़ाई । निज जन जानि लीन्ह अपनाई ॥

× × ×

मोर भाग्य राउर गुन गाथा । कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा ॥

(मानस १ । ३४० । २—४; ३४१, ३४१ । १/२, २)

इस प्रकार स्तुति करते-करते विदेहराजने अन्तमें श्रीरामसे याचना की, वरदान माँगा—

'बार बार मागउँ कर जोरें । मनु परिहरै चरन जनि मोरें ॥'

(वही, १ । ३४१ । २१/२)

यहाँ भी जनकजीकी गूढ़ प्रीति प्रकट हो गयी । उनकी प्रेमाभक्तिकी प्रशंसा किन शब्दोंमें की जाय ? पराम्बा जगज्जननी सीता पुत्रीके रूपमें जिनकी गोदमें क्रीड़ा कर चुकी हों एवं सच्चिदानन्दघन प्रभुने जिनके यहाँ दूल्हा बनकर विवाह किया हो, प्रभुके विवाहका उत्सव हुआ हो, मङ्गल-वाद्य बजे हों, उनके सौभाग्य, उनके प्रेम और उनकी भक्तिका गुणगान कौन किस प्रकार करे ?

भगवान् श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण एवं धर्मपत्नी सीताके

साथ अयोध्याको त्यागकर वन-गमन करते हैं और भरतजी विकल-विह्वल होकर श्रीरामको लौटानेके लिये चित्रकूट जाते हैं। यह संवाद पाकर श्रीजनकजी भी चित्रकूट पहुँचते हैं। वे श्रीरामके दर्शन एवं भरतकी भक्ति देखकर निहाल हो जाते हैं, उनसे कुछ कहते नहीं बनता। महारानी कौसल्याके इच्छानुसार सुनयनाजी जब जनकजीसे उनका संदेश कहती हैं, तब श्रीजनकजी उनसे स्पष्ट कह देते हैं कि भरत और श्रीरामके पारस्परिक प्रेमको समझना सम्भव नहीं; वह अतर्क्य है—

'देवि परंतु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी॥'

(वही, २। २८८। २½)

पर श्रीजनकजीकी गूढ़ प्रीति एवं दृढ़ विश्वासको भी समझना सरल नहीं। जनकजी कर्मयोगके श्रेष्ठ आदर्श, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य एवं बारह प्रधान भागवताचार्योंमें माने जाते हैं। वे परम ज्ञानी होकर भी श्रीभगवान्‌के प्रति विलक्षण प्रेमके अनुपम आदर्श बन गये। धन्य थे जनकजी और धन्य था उनका गूढ़ प्रभु-प्रेम! —शि० दु०

महारानी सुनयना

परम सौभाग्यशालिनी देवी सुनयना विदेहराज जनककी धर्मपत्नी थीं। ये अत्यन्त सरल, साध्वी, सद्धर्म-परायण, विनयी, संयमी एवं उदार थीं; जीवमात्रके प्रति इनके हृदयमें दया थी। एक बारकी बात है, जब अवर्षणसे प्रजा त्राहि-त्राहि करने लगी; तब विदेहराज जनकने यज्ञ करनेका निश्चय किया। यज्ञार्थ परिष्कृत स्थलको सोनेके हलसे जोतते समय उन्हें एक अनुपम तेजस्विनी दिव्य कन्या प्राप्त हुई। महारानी सुनयना उस कन्याको पाकर कृतार्थ हो गयीं। उक्त कन्याका नाम 'सीता' रखा गया। सुनयनाजी सीताको अपने प्राणसे भी अधिक प्यार करती थीं, इस कारण स्वाभाविक ही वे सीताका तनिक भी म्लान मुख नहीं देख पाती थीं। वे रात-दिन सीताके ही सुखकी चिन्ता किया करती थीं।

इनके एक पुत्र भी था। नाम था—लक्ष्मीनिधि। कुछ समयके अनन्तर इनकी कोखसे एक कन्याने जन्म लिया। नाम था—उर्मिला। उर्मिला अत्यन्त सद्गुणवती एवं रूप-वैभव-सम्पन्न थी। सीता एवं उर्मिलाके सयानी होनेपर महाराज जनकने सीता-स्वयंवरका निश्चय किया। उन्होंने घोषणा कर दी कि 'शिव-धनुषको भङ्ग करनेवाला वीर पुरुष ही सीताका पाणिग्रहण कर सकेगा।'

स्वयंवरमें देश-देशके नरेश पधारे। उसी समय महर्षि विश्वामित्रके साथ श्याम-गौर श्रीराम और लक्ष्मण भी वहाँ पहुँचे। श्रीराम और लक्ष्मणके लोकविनिन्दक सौन्दर्यको देखकर सुनयनाजी अत्यन्त प्रसन्न हुईं। 'ये निश्चय ही दिव्य पुरुष हैं'—इस विचारसे अपनी सहेलियों-सहित उनकी भी इच्छा हुई कि 'किसी प्रकार मेरी प्राणप्रिय पुत्री सीताका विवाह इनके साथ हो जाता तो बड़े सौभाग्यकी बात होती।'

पर सभामण्डपमें रावण और बाणासुरके प्रवेश करते ही वे काँप गयीं। वे दोनों उक्त धनुषको प्रणाम कर वहाँसे चले गये, तब उनका जी हल्का हुआ। परंतु आगन्तुक वीर-नरेशोंके समुदित प्रयत्नसे भी जब धनुष नहीं हिल सका, तब विश्वामित्रकी आज्ञासे नीलकलेवर श्रीराम धनुषकी ओर चले—यह देखकर सुनयनाजी अधीर हो गयीं। उन्होंने श्रीरामके सौन्दर्यको अच्छी तरह देखकर अत्यन्त व्याकुलतासे कहा—

कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा॥
बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा॥

(मानस १। २५७। २-२½)

सुनयनाजीकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। वज्रतुल्य शिवधनुष और कुसुम-कोमल श्रीराम। श्रीराम-दर्शनके साथ ही सुनयनाजीके हृत्क्षेत्रमें स्नेह उत्पन्न हो गया था। वे अशान्त हो गयी थीं, छटपटा रही थीं; पर जब क्षणार्धमें ही भुवनमोहन श्रीरामने धनुर्भङ्ग कर दिया, तब उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही—

'सखिन्ह सहित हरषी अति रानी। सूखत धान परा जनु पानी॥'

(मानस १। २६२। १½)

किंतु उसी समय प्रबल-पराक्रमी परशुरामजी आ पहुँचे। 'भृकुटी कुटिल नयन रिस राते।' (वही, १। २६७। ३)—परशुरामजीका उग्र स्वरूप एवं भयानक क्रोध देखकर सुनयनाजी डर गयीं और पछताने लगीं—

'मन पछिताति सीय महतारी। बिधि अब सँवरी बात बिगारी॥'
(वही, १। २६९। ३½)

सुनयनाजी इस विपत्तिसे त्राण पानेके लिये मन-ही-मन प्रार्थना करती रहीं, पर सुमित्रानन्दनके निर्भीक और स्पष्ट उत्तर सुनकर काँप जाती थीं। उनकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। पर जब परशुरामजी नील-पीत श्रीराम-लक्ष्मणके चरणोंकी वन्दना कर प्रस्थित हुए, तब उनकी जानमें-जान आयी।

मङ्गल-वाद्य बजने लगे। महाराज दशरथ बारात लेकर पहुँचे और अपने पति विदेहराजके साथ माता सुनयनाने सीताका पाणि श्रीरामके हाथमें एवं उर्मिलाका हाथ लक्ष्मणके कर-कमलोंमें दे दिया। उसी समय उनके देवर-की दो कन्याएँ माण्डवी और श्रुतकीर्ति भी क्रमशः भरत और शत्रुघ्नके साथ ब्याह दी गयीं।

महारानी सुनयनाके आनन्दकी सीमा नहीं थी।

× × ×

'लक्ष्मण और जानकीसहित श्रीराम पिताके आदेशसे वनमें गये हैं'—यह संवाद पाते ही महाराज जनक भी ससैन्य चित्रकूट पहुँचे। उनके साथ उनकी सहधर्मिणी सुनयना भी थीं। जब महाराज दशरथकी सभी रानियाँ एकत्र हुईं, सुनयनाजी भी वहाँ पहुँचीं। उन्होंने दुःखी होकर कहा—

'सीय मातु कह बिधि बुधि बाँकी। जो पय फेनु फोर पबि टाँकी॥'
(वही, २। २८०। ४)

'माता सुनयनाने कहा—विधाताकी बुद्धि बड़ी टेढ़ी है, जो दूधके फेन-जैसी कोमल वस्तु वज्रकी टाँकीसे फोड़ रहा है (अर्थात् जो अत्यन्त कोमल और निर्दोष हैं, उनपर विपत्ति-पर-विपत्ति ढहा रहा है)।'

कौसल्याकी अत्यन्त स्नेहमयी विनीत वाणीको सुनकर सुनयना-जीने उनके चरण पकड़कर उनकी बड़ी प्रशंसा की और उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि '"श्रीरामचन्द्रजी वनमें जाकर देवताओंका कार्य करके अवधपुरीमें अचल राज्य करेंगे तथा देवता, नाग और मनुष्य—सब श्रीरामचन्द्रजीकी भुजाओंके बलपर अपने-अपने स्थानों (लोकों)में सुख-पूर्वक बसेंगे'—यह सब याज्ञवल्क्यमुनिने पहलेसे ही कह रक्खा है। देवि! मुनिका कथन मिथ्या नहीं हो सकता"'—

रामु जाइ बनु करि सुर काजू। अचल अवधपुर करिहहिं राजू॥
अमर नाग नर राम बाहु बलु। सुख बसिहहिं अपनें अपनें थलु॥
यह सब जागबलिक कहि राखा। देबि न होइ मुधा मुनि भाषा॥
(वही, २। २८४। ३-४)

वल्कल-वसन धारण किये जब सीताने माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया, तब उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये, पर अत्यन्त संतोष भी हुआ—'पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ।' (मानस २। २८६। १) उस समय सुनयनाजीने सीताको पति-प्रेम-विषयक अनेक सीखें दीं और सीतामें वे सभी सद्गुण देखकर मन-ही-मन प्रसन्न भी हुई थीं।

सीताजी माता-पितासे मिलने आयी थीं। माता-पिता और पुत्री सभीके हृदयमें अद्भुत आनन्द एवं प्रेमके अश्रु थे; पर रात्रि अधिक हो गयी—'इहाँ बसब रजनीं भल नाहीं।' (मानस २। २८६। ३½) सोच रही थीं; पर संकोचवश कुछ कह नहीं पाती थीं। सुनयनाजीने यह बात समझ ली। वे महान् पतिव्रता थीं। उन्होंने अपनी पुत्रीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और प्रेमपूर्वक सीताको विदा किया।

त्रैलोक्यपावनी सीताकी माता एवं मुनिजन-वन्दित श्रीरामकी सासु-पदका गौरव तो सुनयनाजी-सरीखी महिमा-मयी देवी ही प्राप्त कर सकती हैं।

—शि० दु०

श्रीभरत

भरतजीका चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल और आदर्श है। उसमें कहीं कुछ भी दोष नहीं दीख पड़ता। भरतजीकी महिमा अपार है। वाल्मीकीय रामायणमें आपको श्रीविष्णुका ही अंशावतार बताया गया है। साथ ही उनका चरित्र उन्हें एक साधु-शिरोमणि, आदर्श स्वामि-भक्त, महात्मा, निःस्पृह और भक्ति-प्रधान कर्मयोगी सिद्ध करता है। भरतजी धर्म और नीतिके जाननेवाले, सद्गुणसम्पन्न, त्यागी, संयमी, सदाचारी, प्रेम और विनयकी मूर्ति, श्रद्धालु और बड़े बुद्धिमान् थे। वैराग्य, सत्य, तप, क्षमा, तितिक्षा, दया, वात्सल्य, धीरता, वीरता, गम्भीरता, सरलता, सौम्यता, मधुरता, अमानिता और सुहृदता आदि गुणोंका इनमें विलक्षण विकास हुआ था। भ्रातृ-प्रेमकी तो आप मानो सजीव मूर्ति ही थे।

भरतकी पितृ-भक्ति

विवाहके बाद भरतजी शीघ्र ही अपने मामाके साथ ननिहाल चले गये थे, इस कारण रामायणमें इनकी पितृ-भक्तिका विशेष वर्णन नहीं आता। परंतु नानाके घर रहते हुए एक दिन इन्होंने मित्रगोष्ठीमें अपने दुःस्वप्नकी बात कहकर जो पिताके लिये दुःख प्रकट किया है और अयोध्यामें लौटनेके बाद मातासे पिताजीके स्वर्गवासका समाचार पानेपर शोकके कारण इनकी जो दशा हुई तथा इन्होंने पिताके लिये जिस प्रकार विलाप किया है, उससे इनके श्रद्धा-समन्वित सच्चे पितृ-प्रेमका पता चलता है। जब माताने इनसे धैर्य धारण करनेके लिये कहा, तब उसके उत्तरमें आप कहते हैं—

'मैंने तो यह सोचा था कि महाराज श्रीरामका राज्याभिषेक करेंगे और स्वयं यज्ञकी दीक्षा लेंगे। इसी विचारसे मैं वहाँसे प्रसन्नतापूर्वक चला था; किंतु यहाँ आनेपर वे सभी बातें विपरीत ही दिखायी दीं। आज जो मैं सर्वदा अपना प्रिय और हित करनेवाले पिताजीको नहीं देखता, इससे मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है' (वा० रा० २।७२।२७-२८) इत्यादि।

भ्रातृ-भक्ति

उपर्युक्त ढंगसे पिताके लिये शोक करते-करते ही भरतके हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीका प्रेम उमड़ पड़ता है और वे कहने लगते हैं—

'जो मेरे भाई, पिता और बन्धु हैं, जिनका मैं परम प्रिय दास हूँ और जो पवित्र कर्म करनेवाले हैं, उन श्रीरामचन्द्रजीको आप शीघ्र मेरे आनेकी सूचना दें। धर्मको जाननेवाले श्रेष्ठ मनुष्यके लिये बड़ा भाई पिताके समान ही होता है। मैं उनके चरणोंमें प्रणाम करूँगा। अब वे ही मेरे आश्रय हैं।' (वा० रा० २।७२।३२-३३)

इसपर कैकेयीने उन्हें सारी घटना कह सुनायी और राज्य स्वीकार करनेके लिये कहा।

कैकेयीके मुखसे इस प्रकार भाइयोंके वन-गमनकी बात सुनकर भरतजी महान् दुःखसे संतप्त हो जाते हैं। वे व्याकुल हृदयसे माताको बहुत-कुछ बुरा-भला कहते हैं और यह भी कह डालते हैं—

'मैं समझता हूँ, लोभके वशमें होनेके कारण तू अबतक यह न जान सकी कि मेरा श्रीरामचन्द्रजीके प्रति कैसा भाव है। इसी कारण तूने राज्यके लिये इतना बड़ा अनर्थ कर डाला।' (वा० रा० २।७३।१३)

इसके सिवा और भी बहुत-सी बातें भरतजीने माताके प्रति कहीं। उसके बाद भरतजी माता कौसल्यासे, जो उनसे मिलनेके लिये आ रही थीं, रास्तेमें ही मिले और उनकी गोदमें लिपटकर रोने लगे। इसके अनन्तर वे अनेक प्रकारसे शपथ करके माता कौसल्याको विश्वास दिलाते हैं कि रामजीके वनवासमें उनकी सम्मति नहीं थी।

इसके बाद मुनि वसिष्ठजीके आज्ञानुसार राजा दशरथके अन्त्येष्टि-कर्मकी तैयारी होती है। उस समय राजाके शवको देखकर भरतजी फिर विलाप करते हुए कहते हैं—

'राजन्! मैं तो परदेश गया हुआ था, आपके पास पहुँचने भी नहीं पाया; उसके पहले ही धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजीको और महाबली लक्ष्मणको वनमें भेजकर आपने यह क्या विचार किया?' (वा० रा० २।७६।६)

भरतको इस प्रकार विलाप करते देखकर महामुनि वसिष्ठजी फिर समझाते हैं। उसके बाद विधि-विधानसे राजा दशरथकी अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न होती है। नगरमें आकर दस दिनोंतक भूमिपर शयन करते हुए भरत बड़े दुःखसे समय बिताते हैं।

श्राद्ध आदिसे निवृत्त हो जानेपर राजसभामें श्रीवसिष्ठजी तथा अन्य सभी सभासद् भरतजीको समझाकर आग्रहपूर्वक राज्य स्वीकार करनेके लिये कहने लगे। तब भरतजीने कहा—

'मैं और यह राज्य दोनों ही श्रीरामके हैं। आपलोग मुझे धर्मका उपदेश दीजिये। श्रीरामचन्द्रजी सब प्रकार मुझसे बड़े हैं; इसलिये—

'पुरुषोत्तम श्रीरघुनाथजी अयोध्याकी तो बात ही क्या, त्रिलोकीके भी राजा होने योग्य हैं; मैं उन्हींका अनुसरण करूँगा···। आप-जैसे गुणवान् श्रेष्ठ साधु पुरुषोंके सामने ही उन्हें बलपूर्वक लौटा लानेके लिये मैं सब प्रकारके उपाय करूँगा। इसपर भी यदि मैं आर्य श्रीरामचन्द्रजीको वनसे लौटा लानेमें समर्थ नहीं हुआ तो जैसे श्रेष्ठ भाई लक्ष्मण रहते हैं, उसी तरह मैं भी वहीं वनमें निवास करूँगा।' (वा० रा० २। ८२। १६, १८-१९) भरतके ऐसे भ्रातृ-प्रेममें सने वचन सुनकर वहाँ बैठे हुए सभी सभासदोंकी आँखोंसे आनन्दके आँसू बहने लगते हैं।

श्रीरामको लौटा लानेके लिये जब भरत दल-बलके साथ चित्रकूटके लिये प्रस्थान करते हैं, उस समय रास्तेमें उनकी निषाद-राज गुहसे भेंट होती है। इनके साथ चतुरङ्गिणी सेना देखकर गुहके मनमें संदेह हो जाता है और वे अपना संदेह इनके सामने प्रकट कर देते हैं। उस समय भरत निषादसे कहते हैं—

'निषादराज! ऐसा अवसर न आये, जो इस प्रकार दुःखदायक हो। तुमको मुझपर शङ्का नहीं करनी चाहिये; क्योंकि रघुकुल-भूषण श्रीराम मेरे बड़े भाई हैं और मैं उनको पिताके समान समझता हूँ। मैं उन वनवासी श्रीरामको वनवाससे लौटा लानेके लिये जा रहा हूँ।' (वा० रा० २। ८५। ९-१०) भरतकी बात सुनकर निषादराजका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वह हर्षमें भरकर कहने लगा—

'आप धन्य हैं, जो बिना प्रयत्नके मिले हुए राज्यको त्याग देना चाहते हैं; अतः इस भूमण्डलमें आपके समान मुझे कोई दूसरा नहीं दिखायी देता।' (वही, २। ८५। १२) —इत्यादि।

इस प्रकार दोनोंमें बड़ी देरतक बातें होती रहीं। श्रीरामके वियोगमें उन्हींका चिन्तन करते-करते शोकाग्निसे संतप्त हो जानेके कारण भरतजी सहसा मूर्च्छित हो गये। पासमें बैठे हुए शत्रुघ्न भी उनको पकड़कर रोने लगे और बेहोश हो गये। यह देखकर निषादराज मुग्ध हो गया। थोड़ी देर बाद चित्तके स्वस्थ होनेपर भरतजीने फिर गुहसे पूछा—

'निषादराज! उस दिन रातको मेरे भाई श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ यहाँ किस जगह ठहरे थे तथा उन्होंने क्या भोजन करके कैसे बिछौनोंपर शयन किया था? सब बातें मुझे बताओ।' (वही, २। ८७। १३)

भरतके इस प्रकार पूछनेपर गुह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने सारी घटना ज्यों-की-त्यों सुना दी। उसने उन्हें वह इंगुदीका वृक्ष और कुशका बिछौना दिखाया, जहाँपर श्रीरामने सीताके साथ रात्रिमें शयन किया था। उस स्थानको देखकर भरतजीकी विचित्र दशा हो गयी। वे भाँति-भाँतिसे विलाप करने लगे—

'हाय! मैं मारा गया। मैं बड़ा क्रूर हूँ, जिसके कारण श्रीरघुनाथजीको सती सीताके साथ अनाथकी भाँति ऐसी शय्यापर सोना पड़ता है। जो सम्राट्के वंशमें उत्पन्न, सब लोकोंको सुख देनेवाले और सबका प्रिय करनेवाले हैं; जिनका वर्ण नील कमलके समान है, नेत्र लाल हैं; जो सब प्रकारसे सुख भोगनेके योग्य और दुःखके अयोग्य हैं; वे प्रियदर्शन श्रीरघुनाथजी अत्युत्तम प्रिय राज्यको छोड़कर किस प्रकार पृथ्वीपर शयन करते हैं? उत्तम लक्षणोंवाला लक्ष्मण ही धन्य और बड़भागी है, जो संकटके समय बड़े भाई श्रीरामके साथ रहकर उनकी सेवा करता है।' (वा० रा० २। ८८। १७—२०) भरतजीने विलाप करते हुए इसी प्रकारकी और भी बहुत-सी बातें कहीं।

आगे चलकर जब भरतजी महर्षि भरद्वाजके आश्रममें पहुँचते हैं, उस समय महर्षि कुशल पूछनेके बाद उनके हृदयपर गहरी चोट पहुँचानेवाला प्रश्न कर बैठते हैं। वे कहते हैं—'तुम्हारा यहाँ वनमें किस निमित्तसे आना हुआ? तुम निरपराधी धर्मात्मा राम और लक्ष्मणका कोई अनिष्ट तो नहीं करना चाहते?' (वही, २। ९०। १३) यह सुनकर दुःखके कारण भरतकी आँखोंमें जल भर आया। वे लड़खड़ाती हुई वाणीमें बोले—

'मुने! मुझसे कोई अपराध नहीं हुआ है। फिर भी आप यदि मुझे इतना अपराधी समझते हैं, तब तो मैं हर तरहसे मारा गया। अतः आप मुझसे ऐसी कठोर बात न

कहें। मेरी अनुपस्थितिमें मेरी माताने जो कुछ कहा या किया है, वह मुझे अभीष्ट नहीं है। मैं उससे तनिक भी प्रसन्न नहीं हूँ और न मैंने उसकी बातको माना ही है। मैं तो उन नरश्रेष्ठ श्रीरामको प्रसन्न करके अयोध्या लौटा ले आनेके लिये और उनके चरणोंकी वन्दना करनेके लिये वनमें आया हूँ। अतः मुझे इस प्रकार आया हुआ समझकर आप मुझपर कृपा कीजिये और बतलाइये कि इस समय महाराज श्रीरामचन्द्रजी कहाँ हैं।' (वा० रा० २। ९०। १५–१८)

यह सुनकर भरद्वाजजी बड़े प्रसन्न हुए और भरतजीकी प्रशंसा करके बोले—

'भरत! मैं तुम्हारे मनकी बात जानता हूँ; तथापि उसे दृढ़ करनेके लिये और तुम्हारी कीर्तिका अधिक विस्तार करनेके लिये ही मैंने तुमसे ये सब बातें पूछी हैं।' (वा० रा० २। ९०। २१)

इसके बाद और भी बहुत-सी बातें हुईं। भरद्वाजजीके अधिक आग्रहसे उनका आतिथ्य भरतको स्वीकार करना पड़ा। ऋषिराजने बड़े ही विचित्र ढंगसे सेना और परिवार-सहित भरतका अतिथिसत्कार किया। बड़े ही आनन्दसे वह रात्रि व्यतीत हुई। उसी प्रसङ्गमें यह बात आयी है—

'भरतने उस राजमहलमें [जिसे मुनिने अपने योगबलसे रचा था] दिव्य राज्यसिंहासन, छत्र और चँवर भी देखे तथा मन्त्रियोंके साथ उन्होंने राजा श्रीरामकी भाँति उनका सम्मान किया। श्रीरामको प्रणाम करके उस आसनकी पूजा की और स्वयं हाथमें चँवर लेकर मन्त्रीके आसनपर जा बैठे।' (वही, २। ९१। ३८-३९) कितनी ऊँची भावना और भक्ति है! कैसा पवित्र भाव है! कितनी निरभिमानता और कितना त्याग है!

जब भरत चित्रकूटके निकट पहुँच जाते हैं, उस समय आकाशमें धूल उड़ती हुई देखकर श्रीराम लक्ष्मणसे उसका कारण जाननेके लिये कहते हैं। लक्ष्मण वृक्षपर चढ़कर देखते हैं और यह निश्चय करके कि सेनासहित भरत आ रहे हैं, उनके प्रति संदेह प्रकट करते हुए कठोर वचन कहने लगते हैं। तब श्रीरामचन्द्रजी भरतके गुण और प्रेमकी बड़ाई करते हुए कहते हैं—

''जिस प्रकार इस समय यह भरत हमलोगोंसे मिलनेके लिये आ रहा है, वह सर्वथा उचित है। हमलोगोंके अहितका आचरण तो वह कभी मनसे भी नहीं कर सकता। भरतने तुम्हारा कब और क्या अपकार किया है, जिसके कारण तुम आज उससे ऐसा भय, इस तरहकी आशङ्का कर रहे हो! (भरतके आनेपर) तुम उसे कोई कठोर या अप्रिय वचन न कहना।'''यदि तुमने उसके साथ कोई प्रतिकूल बर्ताव किया या अप्रिय वचन कहे तो वह बर्ताव मेरे ही साथ किया समझा जायगा। यदि तुम राज्यके लिये ऐसी कठोर बात कहते हो तो भरतसे मिलनेपर मैं उसे कह दूँगा कि 'यह राज्य लक्ष्मणको दे दो!' मेरे यह कहनेपर वह अवश्य ही मेरी बातका अनुमोदन करेगा और तुमको राज्य दे देगा।'' (वा० रा० २। ९७। १३–१५, १७, १८)

इस प्रकार यद्यपि भरतजी सर्वथा साधु और निर्दोष थे, तथापि उनको सबके संदेहका शिकार बनना पड़ा। भरतके सदृश सर्वथा निःस्पृह, धर्मात्मा एवं त्यागी महापुरुषका इस प्रकार सबके संदेहका शिकार बनना जगत्‌के इतिहासमें एक अनोखी बात है। इतनेपर भी भरत सब कुछ सहते हैं। धन्य उनका प्रेम! धन्य उनकी स्वामिभक्ति!! और धन्य उनकी सहिष्णुता!!!

इधर भरत भाई शत्रुघ्न, गुह और प्रधान-प्रधान मन्त्रियोंको श्रीरामके आश्रमको खोजनेके लिये आज्ञा देकर कहने लगते हैं—

'जबतक भाई श्रीरामचन्द्रके कमल-दलसदृश विशाल नेत्रोंवाले और चन्द्रमाके समान सुशोभित उस मुख-कमलको मैं न देख लूँगा, तबतक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। जबतक अपने भ्राताके राजचिह्नोंसे युक्त युगल चरणोंमें मस्तक रखकर मैं प्रणाम न कर लूँगा, तबतक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। जबतक राज्यके सच्चे अधिकारी भगवान् श्रीराम अभिषेकके जलसे सिक्त होकर अपने पिता-पितामहोंके साम्राज्यपर प्रतिष्ठित न हो जायँगे, तबतक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी।' (वा० रा० २। ९८। ७, ९-१०)

इस प्रकार बहुत कुछ कहकर पुरुषश्रेष्ठ भरतजीने पैदल ही श्रीरामकी खोज करनेके लिये उस गहन वनमें प्रवेश किया। ऊँचे वृक्षपर चढ़कर उन्होंने दूरसे ही श्रीरामके आश्रमको और उसमें बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीको पहचाना, इससे उनमें नया जीवन आ गया। वे बड़े प्रसन्न हुए और गुहको साथ लेकर आश्रमकी ओर चल दिये।

श्रीरामकी कुटियाके पास पहुँचकर भरत देखते हैं कि समस्त पृथ्वीके स्वामी, धर्मपरायण भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सीता

और लक्ष्मणके साथ एक चबूतरेपर बैठे हैं। उन्होंने कृष्णमृग-चर्म और वल्कल-वस्त्र धारण कर रक्खे हैं। उनके मस्तकपर जटाएँ शोभा दे रही हैं तथा सिंहके-से कंधे, बड़ी-बड़ी भुजाएँ और कमलके समान नेत्र हैं! श्रीरामको इस अवस्थामें देखकर महात्मा भरत शोकमें निमग्न हो जाते हैं। भाईकी ओर दृष्टि पड़ते ही आर्त्तभावसे विलाप करते हुए गद्गद वाणीसे कहने लगते हैं—

'हाय! जो राजसभामें बैठकर प्रजा और मन्त्रिवर्गके द्वारा सम्मान पानेयोग्य हैं, वे ही ये मेरे बड़े भाई यहाँ जंगली पशुओंसे घिरे बैठे हैं! जो महात्मा पहले हजारोंके लागतके वस्त्रोंका उपयोग करते थे, वे आज यहाँ धर्माचरण करते हुए केवल दो मृगचर्म धारण करके रहते हैं!···हाय! जो सब प्रकारसे सुखके योग्य हैं, वे श्रीराम मेरे ही कारण इतना दुःख उठा रहे हैं। मैं कितना क्रूर हूँ! मेरे इस लोकनिन्दित जीवनको धिक्कार है।' (वा० रा० २।९९।३१-३२, ३६)

इस प्रकार विलाप करते-करते भरतजी दुःखसे व्याकुल हो गये। उनके मुख-कमलपर आँसुओंकी धारा बहने लगी। वे अत्यन्त दुःखसे विह्वल हो जानेके कारण श्रीरामके चरणोंको छू सकनेके पहले ही 'हा आर्य!' कहकर उनके पास दीनकी भाँति गिर पड़े। शोकसे उनका गला रुँध गया, कुछ भी बोल नहीं सके। फिर शत्रुघ्नने भी रोते-रोते श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम किया। जटा और वल्कल धारण किये भरतको हाथ जोड़े पृथ्वीपर पड़ा देख श्रीरामने बड़ी कठिनाईसे पहचाना। उन्होंने दोनों भाइयोंको उठाया और छातीसे लगा लिया। भरतका बर्ताव देखकर समस्त वनवासी रोने लगे।

तदनन्तर भाई भरतको गोदमें बैठाकर श्रीरामचन्द्रजीने पूछा—'भाई! तुम राज्य छोड़कर वल्कल-वस्त्र, मृगचर्म और जटा धारण करके यहाँ क्यों आये?' इसपर भरतजीने पिताकी मृत्युका समाचार सुनाकर कहा—

'सबको सम्मान देनेवाले रघुनन्दन! परम्परानुसार तथा योग्य होनेके कारण भी इस राज्यके अधिकारी आप ही हैं। अतः न्यायसे इस राज्यको आप धर्मानुसार ग्रहण करके अपने सुहृदोंका मनोरथ पूर्ण करें। मैं···आपका छोटा भाई, शिष्य और दास हूँ। इन मन्त्रियोंके साथ आपके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रार्थना करता हूँ, मुझपर कृपा करें।' (वा० रा० २।१०१।१०, १२)

इसी तरहकी और भी बहुत-सी बातें कहकर भरतजी नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए पुनः श्रीरामके चरणोंमें गिर पड़े और राज्याभिषेकके लिये उनसे प्रार्थना करने लगे। तब श्रीरामजीने बहुत-सी शास्त्रोक्त बातें कहकर और पिताकी आज्ञाका महत्त्व दिखाकर भरतको राज्य ग्रहण करनेके लिये बहुत कुछ समझाया, परंतु उन्हें संतोष नहीं हुआ। उन्होंने कहा—'भगवन्! आपकी बराबरी कौन कर सकता है; आपके लिये सुख-दुःख, मान-अपमान, निन्दा-स्तुति—सब समान हैं। जिसको आपकी तरह ज्ञान है, वह संकट पड़नेपर भी विषाद नहीं करेगा; परंतु मैं ऐसा नहीं हूँ। अतः मैं बारंबार आपके चरणोंमें माथा टेककर याचना करता हूँ, आप दया कीजिये! आप पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं, मेरा और मेरी माताका कलङ्क धोकर पूज्य पिताजीको भी निन्दासे बचाइये।'—इत्यादि

भरतके इस प्रकार कहनेपर सम्पूर्ण ऋत्विज्, पुरवासी, भिन्न-भिन्न समुदायके नेता और माताएँ—ये सब अचेत-से होकर आँसू बहाते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे और सभीने अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार श्रीरामचन्द्रजीसे लौटनेकी प्रार्थना की।

तदनन्तर श्रीरामने फिर बहुत-से न्याय और धर्मसे पूर्ण वचन कहकर भरतको समझाया। इस प्रकार बात होते-होते जब श्रीरामचन्द्रजीने किसी तरह भी स्वीकृति नहीं दी, तब भरतजीके मनमें बड़ा दुःख हुआ; वे बोले—'जब-तक मेरे स्वामी मुझपर प्रसन्न नहीं होंगे, तबतक मैं बिना कुछ खाये-पीये यहीं इनके सामने बैठा रहूँगा।' इतना कहकर वे दर्भासन बिछाकर जमीनपर बैठ गये। तब श्रीरामचन्द्रजीने फिर भरतको समझाया कि 'भाई! तुम्हारा यह कार्य धर्मके विरुद्ध है। अतः तुम इस दुराग्रहका त्याग करो।' यह सुनकर भरत तुरंत ही खड़े होकर पुनः सबके सामने कहने लगे कि 'यदि पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये इनका वनमें रहना अनिवार्य हो तो इनके बदले मैं ही चौदह वर्षतक वनमें निवास करूँगा।' इसपर फिर श्रीरामने भरतको समझाया कि 'भाई भरत! इस प्रकार बदला करनेका हमलोगोंको अधिकार नहीं है।' इसके बाद सबके सामने भगवान् श्रीरामने कहा—

'मैं जानता हूँ भरत बड़ा क्षमाशील और गुरुजनोंका सत्कार करनेवाला है। इस सत्यप्रतिज्ञ महात्मामें सभी कल्याणकारी गुण वर्तमान हैं। वनवासकी अवधि

करके फिर जब मैं लौटूँगा, तब मैं अपने इस धर्मशील भाईके साथ इस पृथ्वीका प्रमुख राजा बनूँगा । कैकेयीने राजासे वर माँगा, मैंने उनकी आज्ञाको स्वीकार कर लिया । इसलिये भाई भरत ! अब तुम मेरा कहना मानकर उन पृथ्वीपति राजाधिराज पिताजीको असत्यके बन्धनसे मुक्त करो ।' (वही, २ । १११ । ३०—३२)।

उन अतुलित तेजस्वी भाइयोंका वह रोमाञ्चकारी संवाद सुनकर और आपसका प्रेमपूर्ण वर्ताव देखकर वहाँ आये हुए जन-समुदायके साथ सभी महर्षि विस्मित और मुग्ध हो गये । अन्तरिक्षमें अदृश्य-भावसे खड़े हुए मुनि और वहाँ प्रत्यक्ष बैठे हुए महर्षि उन दोनों भाइयोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ।

इसके बाद सब महर्षियोंने भरतको श्रीरामकी बात मान लेनेके लिये समझाया । इससे श्रीरामको बड़ी प्रसन्नता हुई, परंतु भरतको संतोष नहीं हुआ । वे लड़खड़ाती हुई जबानसे हाथ जोड़कर फिर श्रीरामसे कहने लगे—'आर्य ! मैं इस राज्यकी रक्षा नहीं कर सकता । आप इस राज्यको स्वीकार करके दूसरे किसीको इसके पालनका भार सौंप दीजिये ।' (वही, २ । ११२ । १३) यह कहकर भरत अपने भाईके चरणोंमें गिर पड़े । तब श्रीरामचन्द्रने उनको उठाकर गोदमें बैठा लिया और मधुर स्वरसे बोले—

'प्यारे भाई ! तुम्हें स्वभावसे ही तथा शिक्षाके फलस्वरूप जो यह विनययुक्त बुद्धि प्राप्त हुई है, इससे तुम सारी पृथ्वीकी रक्षा करनेमें भी पूर्णतया समर्थ हो ।' (वही, १ । ११२ । १६)

सूर्यतुल्य तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीके ये प्रेम और शिक्षाभरे वचन सुनकर और उनकी दृढ़ता देखकर भरतने कहा—

'आर्य ! ये दो स्वर्णभूषित पादुकाएँ हैं, आप इनपर अपने चरण रखें । ये ही सम्पूर्ण जगत्‌के योगक्षेमका निर्वाह करेंगी ।' (वही, २ । ११२ । २१)

धन्य है भरतके उच्चतम भावको !

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने उन पादुकाओंपर अपने मङ्गलमय चरण-युगल रखकर उन्हें भरतको दे दिया । उन पादुकाओंको प्रणाम कर भरतने श्रीरामसे कहा—

'वीर रघुनन्दन ! मैं भी चौदह वर्षोंतक जटा और चीर धारण करके फल-मूलका आहार करूँगा और आपके आनेकी बाट जोहता हुआ नगरसे बाहर ही रहूँगा । परंतप ! इतने दिनोंतक राज्यका सारा भार आपकी इन चरण-पादुकाओंपर ही रहेगा । रघुश्रेष्ठ ! चौदह वर्ष पूरे होनेके बाद, उसी दिन यदि मुझे आपके दर्शन नहीं मिलेंगे तो मैं धधकती आगमें प्रवेश कर जाऊँगा ।' (वही, २ । ११२ । २३—२६)

भरतकी यह प्रतिज्ञा सुनकर भगवान्‌ने प्रसन्नतापूर्वक उसका अनुमोदन किया । तदनन्तर दोनों भाइयोंको माता कैकेयीके साथ अच्छा व्यवहार करनेकी शिक्षा देकर और दोनोंका हृदयसे आलिङ्गन करके विदा किया । उस समय भाई भरतके वियोगमें श्रीरामचन्द्रजीकी आँखोंमें जल भर आया ।

तदनन्तर भरतजी भगवान्‌की पादुकाओंको मस्तकपर धारण करके बड़ी प्रसन्नतासे रथपर सवार हुए तथा रास्तेमें भरद्वाजजीसे मिलकर उनसे सारी बातें कहकर और आज्ञा लेकर शृङ्गवेरपुर होते हुए अयोध्या पहुँचे । फिर माताओंको महलमें रखकर भरतने सब गुरुजनोंसे कहा—

'अब मैं नन्दिग्रामको जाऊँगा, इसके लिये आप सब लोगोंकी आज्ञा चाहता हूँ । बहुत दुःखकी बात है, महाराज तो स्वर्ग सिधार गये और मेरे परम पूज्य गुरु श्रीराम वनमें निवास करते हैं । अतः मैं वहीं रहकर श्रीराम-वियोगमें इन सब दुःखोंको सहन करूँगा और राज्यके लिये श्रीरामचन्द्रजीकी प्रतीक्षा करूँगा; क्योंकि महायशस्वी श्रीराम ही हमलोगोंके राजा हैं ।' (वही, २ । ११५ । २-३)

भरतकी ऐसी बात सुनकर मन्त्रियोंसहित पुरोहित श्रीवसिष्ठजीने कहा—

'भरत ! भ्रातृ-भक्तिसे प्रेरित होकर तुमने जो वचन कहा है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है । वास्तवमें वह तुम्हारे ही योग्य है । तुम अपने भाईके दर्शनार्थ सदा ही लालायित रहते हो, उन्हींके हितमें संलग्न हो और अत्यन्त उत्तम मार्गपर चल रहे हो; अतः तुम्हारे विचारका अनुमोदन कौन पुरुष नहीं करेगा ।' (वही, २ । ११५ । ५-६)

इस प्रकार सबकी आज्ञा लेकर भरत श्रीरामचन्द्रजीकी पादुकाओंको सिरपर रखे शत्रुघ्नके साथ नन्दिग्राम चले गये । वहाँ रथसे उतरकर सब गुरुजनोंसे बोले—

'मेरे भाईने यह राज्य मुझे उत्तम धरोहरके रूपमें दिया है । उनकी ये सुवर्ण-भूषित पादुकाएँ ही सबका योगक्षेम

नियाहनेवाली हैं। मैं इन्हें आर्य श्रीरामचन्द्रजीके साक्षात् चरण मानता हूँ। आपलोग शीघ्र ही इनपर छत्र लगायें। मेरे गुरुकी इन चरणपादुकाओंके प्रभावसे ही इस राज्यमें धर्मकी स्थापना होगी। उन्होंने प्रेमके कारण ही मुझे यह अमूल्य धरोहर सौंपी है। अतः मैं उनके लौटनेतक इसकी भलीभाँति रक्षा करूँगा तथा उनके आनेपर शीघ्र ही इनको पुनः भगवान्‌के चरणोंसे युक्त कर इन पादुकाओंसे सुशोभित आर्यके चरणोंका दर्शन करूँगा। श्रीरघुनाथजीके आते ही उनकी सेवामें यह राज्य समर्पित कर दूँगा; फिर मेरा सब भार हल्का हो जायगा। मैं उनकी आज्ञाके अधीन रहकर उन्हींकी सेवामें लग जाऊँगा। मेरे पास धरोहरके रूपमें रखे हुए इस राज्यको, इन पादुकाओंको और अयोध्याको भी श्रीरामकी सेवामें समर्पित करके मैं सब प्रकारके दुःख और पापोंसे मुक्त हो जाऊँगा।' (वही; २।११५।१४।१६–२०)

फिर धैर्यवान् भरतजी जटा-वल्कल धारण किये मुनिका वेष बनाकर नन्दिग्राममें रहने लगे। वे राज्यशासनका समस्त कार्य भगवान्‌की चरण-पादुकाओंको निवेदन करके करते थे। उनके ऊपर स्वयं छत्र लगाते और चँवर डुलाते थे। इस प्रकार उन्होंने बड़े भाई श्रीरामचन्द्रजीकी चरण-पादुकाओंका राज्याभिषेक किया। राज्यका जो कोई कार्य उपस्थित होता, जो भी बहुमूल्य भेंट आती, भरतजी वह सब पहले उन पादुकाओंको अर्पण करते और पीछे उसका यथायोग्य प्रबन्ध करते।

× × ×

लङ्का-विजयके बाद विभीषणको राज्य देकर, सीता और लक्ष्मणके साथ भगवान् श्रीराम अयोध्या लौटनेके लिये तैयार हुए। उस समय विभीषणने श्रीरामजीसे स्नान आदि करके वस्त्रालंकार धारण करनेकी प्रार्थना की। तब भगवान् भरतकी भक्ति याद करके कहते हैं—

'सत्यपरायण, धर्मात्मा, महाबाहु, सुकुमार भरत सब प्रकारके सुख-भोगोंके योग्य होकर भी मेरे लिये दुःख भोग रहा है। उस धर्मचारी कैकेयीपुत्र भरतके बिना मुझे स्नान और वस्त्राभूषण धारण करना रुचिकर नहीं है।'''उस भाई भरतको देखनेके लिये तो मेरा मन छटपटा रहा है।' (वही, ६।१२१।५-६, १८) इससे मालूम होता है कि भरतका श्रीराममें कितना प्रेम था।

उसके बाद श्रीराम सीता, लक्ष्मण और सब समुदायके साथ पुष्पक-विमानपर बैठकर अयोध्याके लिये चले और भरद्वाज-आश्रमपर पहुँचकर अपने आनेका शुभ संवाद देनेके लिये हनुमान्‌को प्यारे भरतके पास भेजा।

नन्दिग्राममें पहुँचकर श्रीहनुमान्‌ने देखा कि भरत शहरके बाहर आश्रममें रहते हैं। भाईके वियोगसे उनका शरीर दुर्बल हो गया है। उसपर मैल जम गयी है। उनका मुख सूख गया है, उसपर दीनताका भाव झलक रहा है। वे केवल फल-मूलका ही आहार करते हैं। इन्द्रियाँ उनके वशमें हैं। वे मस्तक-पर लंबी जटाओंका भार तथा शरीरपर वल्कल और मृगचर्म धारण किये धर्माचरणपूर्वक तपस्या कर रहे हैं। उनका मन सब ओरसे संयत और ध्यानमें निमग्न है। उनका तेज ब्रह्मर्षियोंके समान है। वे श्रीरामकी चरणपादुकाओंकी सेवा करते हुए पृथ्वीका शासन कर रहे हैं। हनुमान्‌जीने यह भी देखा कि भरतके प्रेम और व्यवहारसे आकर्षित होकर काषाय-वस्त्र धारण किये हुए मन्त्री, पुरोहित और सेनाके प्रधान-प्रधान वीर भी उन्हींके पास रहते हैं। वायुपुत्र हनुमान्‌जीने भरतजीको श्रीरामके आगमनका समाचार सुनाया।

हनुमान्‌के मुखसे भगवान्‌के आनेका समाचार सुनकर भरतजी हर्षसे विह्वल हो गये। उनको शरीरकी सुधि नहीं रही। थोड़ी देरमें स्वस्थ होनेपर उन्होंने हनुमान्‌को हृदयसे लगा लिया और प्रेमाश्रुओंसे भिगोते हुए उनसे कहने लगे—

'मुझपर दया करके आनेवाले तुम कोई देवता हो या मनुष्य? सौम्य! तुमने मुझे बड़ा ही प्रिय संदेश दिया; इसके बदलेमें तुम्हें जो कुछ प्रिय हो, वह मैं दे सकता हूँ। मेरे स्वामीको गहन वनमें गये हुए बहुत वर्ष बीत गये। आज ही मैं अपने नाथका आनन्ददायक समाचार सुन रहा हूँ।' (वही, ६।१२५।४३; १२६।१)

इसके बाद भरतजीने वानरोंके साथ श्रीरामकी मित्रता होनेके विषयमें पूछा। इसपर हनुमान्‌जीने वन-गमनसे लेकर लङ्कासे लौटते हुए भरद्वाजके आश्रममें पहुँचनेतककी सारी बातें कह सुनायीं। यह सब सुनकर भरतजी बड़े प्रसन्न हुए और पास ही खड़े हुए शत्रुघ्नको नगरकी सजावट करने और सबको श्रीरामकी अगवानीके लिये तैयार होनेकी सूचना देनेको कहा। समाचार सुनते ही सारे नगरमें हर्ष और प्रेमकी बाढ़ आ गयी। सभी भगवान्‌के आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। धर्मज्ञ भरतजीने श्रीरामकी पादुकाओंको सिरपर रखकर उन्हें सुन्दर मालाओंसे

सुशोभित किया और उनपर स्वर्णच्छत्र लगाकर स्वर्ण-भूषित सफेद चँवर डुलाते हुए चले। थोड़ी दूर जानेपर जब उन्हें श्रीरामचन्द्रजी आते हुए दिखायी नहीं दिये, तब वे प्रेमाकुल होकर हनुमान्‌जीसे पूछने लगे—'हनुमान् ! क्या बात है ? अभीतक रघुकुल-भूषण आर्य श्रीराम मुझे दिखायी नहीं दे रहे हैं।' इतनेमें ही श्रीभरतजीने विमानको आते हुए देखा और उसपर बैठे हुए श्रीरामको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। फिर श्रीरामकी आज्ञासे वह विमान पृथ्वीपर उतरा। श्रीभरतजी विमानके भीतर श्रीरामको देखकर हर्षसे भर गये और पुनः उनके चरणोंमें गिर पड़े। श्रीरामचन्द्रजीने बहुत दिनोंके बाद दृष्टिगोचर हुए भाई भरतको उठा, गोदमें बैठाकर प्रेम और हर्षपूर्वक हृदयसे लगाया। इसके बाद भरतने भाई लक्ष्मणसे मिलकर सीताके चरणोंमें प्रणाम किया।

तदनन्तर धर्मज्ञ श्रीभरतजीने श्रीरामकी उन दोनों पादुकाओंको हाथमें लेकर श्रीरामके चरणोंमें पहना दिया और हाथ जोड़कर कहा—

'यह धरोहररूपमें रक्खा हुआ आपका सम्पूर्ण राज्य मैंने आज आपको लौटा दिया। आज मेरा जन्म सफल हो गया और मेरे समस्त मनोरथ पूर्ण हो गये, जो मैं अयोध्यामें लौटकर आये हुए आपको देख रहा हूँ।'—इत्यादि। (वह, ६। १२७। ५४-५५)

—इस प्रकार कहते हुए भ्रातृप्रेमी भरतको देखकर राक्षसराज विभीषण और सुग्रीवादि वानरोंकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली।

श्रीरामका राज्याभिषेक हो जानेके बाद भरत भी लक्ष्मणकी भाँति ही श्रीरामकी सेवामें रहने लगे। कुछ दिन बाद श्रीरामने भरतके मामाका समाचार पाकर गन्धर्वोंपर विजय करनेके लिये भरतको भेजा। भरतजीने भगवान्‌की आज्ञा पालन करनेके लिये ही वहाँ जाकर गन्धर्वोंपर विजय प्राप्त की। पुनः भगवान्‌के आज्ञानुसार वहाँके राज्यपर अपने पुत्रोंका अभिषेक करके वे शीघ्र ही भगवान्‌के पास लौट आये और उनसे सब बातें कह दीं। पूरी बातें सुन लेनेपर श्रीरामने भरतकी प्रशंसा की और बहुत प्रसन्न हुए।

इसके बाद लक्ष्मणका त्याग करनेपर श्रीरामचन्द्रजीने परमधाम पधारनेकी इच्छासे भरतका राज्याभिषेक करनेकी बात कही; परंतु भरतने उसे स्वीकार नहीं किया। वे इस तरहकी बात सुनते ही अचेत हो गये और चेत होनेपर राज्यकी निन्दा करते हुए बोले—

'राजन् ! मैं निश्चयपूर्वक सत्य तथा स्वर्गकी शपथ करके कहता हूँ कि मैं आपसे अलग रहकर राज्य भी नहीं चाहता।' (वही, ७। १०७। ६)

—तब श्रीरामने भरतकी सलाहसे कुश और लवको राज्यपर अभिषिक्त किया और शत्रुघ्नको बुलाकर सबके साथ परमधाम पधार गये।

वास्तवमें भरतकी राम-भक्ति जगत्‌के इतिहासमें अद्वितीय है। इनका त्याग, संयम, व्रत, नियम—सभी सराहनीय और अनुकरणीय हैं। इनके चरित्रसे स्वार्थ-त्याग, विनय, सहिष्णुता, गम्भीरता, सरलता, क्षमा, वैराग्य और स्वामिभक्ति आदि सभी गुणोंकी शिक्षा ली जा सकती है। भक्तिसहित निष्कामभावसे गृहस्थमें रहते हुए प्रजापालन करनेका ऐसा सुन्दर उदाहरण अन्यत्र मिलना कठिन है।

भानु-कुल-भानुसे विनय

भानु-कुल-भानु भगवान रामचंद्र ! मेरे
सरवस एक, अपनौई एक, ध्यान दै।
नाथ ! सदा मेरी एक तोही सौं बनै, कै ठनै,
जूटै, किधौं टूटै, इतनौ सौ बरदान दै॥
जायो इहि देस, पथ आरज दिखायौ इतै,
याही तव कर्म-भूमि, या कौ अभिमान दै।
चाहें पारब्रह्मह्‌ कौ पारब्रह्म होवै, तऊ
मानव ही मानौं तोहि, ऐसो मोहि ग्याल दै॥
दोहा—मोदक कर, किलकत-नचत, धूलि-धूसरित केस।
इन नैनन में खेलिये, रामलला एहि बेस॥

—श्रीरायकृष्णदासजी

माण्डवी

माण्डवी—ये राजा जनकके भाई कुशध्वजकी कन्या थीं। जिस समय सीता, उर्मिला एवं श्रुतकीर्तिका पाणिग्रहण क्रमशः श्रीराम, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्नने किया, उसी समय इनका पाणिग्रहण श्रीरामके अनन्य-भक्त भरतजीने किया था। इनकी अपने पति-चरणोंमें प्रगाढ़ श्रद्धा, सीताके प्रति अद्भुत प्रीति तथा श्रीरामके चरणोंमें अलौकिक भक्ति थी। ये अपनी सेवा तथा सद्व्यवहारसे श्वशुर-कुलमें सबको सदा संतुष्ट रखती थीं। इनके जीवनमें स्वार्थका लेश भी नहीं था। ये निश्छल, सद्धर्मपरायण, संयमी एवं पति-चरणानुगामिनी थीं।

कैकेयीने महाराज दशरथसे श्रीरामके लिये अरण्यवासका वरदान माँगा तो ये लज्जा और ग्लानिसे भर गयीं। इन्होंने सोचा, 'जिन कमललोचन श्रीरामके लिये हमारा सर्वस्व सदा प्रस्तुत रहता है और जिन सुर-मुनि-पूजित श्रीरामके बिना पतिदेव (भरतजी) अपना जीवन-धारण नहीं कर सकते, उनके अरण्य-गमनसे हमपर बड़ा लाञ्छन लगेगा। आन्तरिक पीड़ा तो अलग रही, यह कलङ्क अमिट रहेगा। पर जब भरतजी ननिहालसे लौटकर श्रीरामको लौटाने चित्रकूटके लिये प्रस्थित हुए, तब इनका जी हल्का हुआ।

सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामके वन-गमन और श्वशुरके प्राणान्तसे ये अत्यन्त व्याकुल हो गयी थीं, छटपटाती रहती थीं। भरतजी चित्रकूटसे लौटे तो नन्दिग्राममें श्रीरामकी पादुकाओंको सिंहासनपर प्रतिष्ठित करके 'कंद असन बलकल बसन'—श्रीराम-लक्ष्मणकी ही भाँति तपोमय जीवन व्यतीत करने लगे। शत्रुघ्नजी उनकी सेवामें रहते थे। इस प्रकार माण्डवी भी पतिके समीप रहनेपर भी उनसे दूर एकान्त-जीवन व्यतीत कर रही थीं, उनका समय भी निरन्तर भजन-पूजनमें लग रहा था।

दुःखके दिन बीते। रावण-वध कर प्रभु सीता और लक्ष्मणसहित सकुशल लौटे। भरतजी भी नन्दिग्रामसे आकर राज्य-भवनमें रहने लगे। माण्डवीसे दो पुत्र उत्पन्न हुए—तक्ष और पुष्कल। माण्डवीके दोनों पुत्र परम पराक्रमी एवं अद्भुत योद्धा थे। अश्वमेध यज्ञके समय शत्रुघ्नके साथ पुष्कल भी गये थे और उन्होंने कुशलतापूर्वक अश्वकी रक्षा की। तक्ष और पुष्कलने अपने पिता भरतके साथ केकयदेशमें तीन करोड़ गन्धर्वोंको रणमें पराजितकर सिन्धुनदीके दोनों ओर अपना साम्राज्य स्थापित किया था। सिन्धुदेशमें तक्षके नामपर तक्षशिला नगर बसा एवं गन्धार (अफगानिस्तान) देशमें पुष्कलके नामपर एक प्रसिद्ध पुरी बसायी गयी, जिसका नाम था—पुष्कलावती।

—शि० दु०

निवेदन

मो सम को त्रिकाल बड़भागी।
तजि साकेत, सँकेत हिये के भये राम अनुरागी॥
कहाँ धवल पावन पयोधि, जेहि सीकर सृष्टि समाई।
कहाँ मोह-तममय हिय मेरो, भरी महा मलिनाई॥
ना स्वागत हित पुण्य पाँवड़े रघुपति सकेउ बिछाई।
श्रद्धा-भक्ति हृदय की साँची, पूजहु नहिं बनि आई॥
पाप-पहार गयउ बहि पलमें, आरति आँसु गिराये।
दीनबंधु सुनि गिरा दीन की सरनागत अपनाये॥
कलुष काटि हिय पावन कीन्हो, जस कीन्हो विस्तार।
रोम-रोम प्रति कोटि बिस्व जेहि, ताकर अन्त अपार॥
जाकी एक किरन ते राजत विद्युत-रवि-ससि-आगि।
तेहि प्रकास तम-तोम निवारेउ दीन दास हित लागि॥
जिमि प्रभु मोहि राखि सरनागत, अपत-अघिहि अपनाये।
तिमि मेरो हिय सदा आपनो मंदिर रखहु बनाये॥

—रा० रामदास गौड़

श्रीलक्ष्मण और देवी उर्मिला

रामायणमें रामसेवाव्रती श्रीलक्ष्मणजीका, तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीउर्मिलादेवीजीका चरित्र बड़ा ही अनुपम है। लोग कहेंगे कि 'उर्मिलाके चरित्रका तो रामायणमें कहीं वर्णन ही नहीं है, फिर वह अनुपम कैसे हो गया?' वास्तवमें उनके चरित्रके सम्बन्धमें कविका मौनावलम्बन ही चरित्रकी परम उच्चताका सूचक है। उनका चरित्र इतना महान् त्यागपूर्ण है कि कविकी लेखनी उसका चित्रण करनेमें अपनेको असमर्थ पाती है। सीताजी श्रीरामके साथ वन जानेके लिये आग्रह करती हैं और न ले जानेपर प्राण-परित्यागके लिये प्रस्तुत हो जाती हैं, यद्यपि ऐसा करना उनका अधिकार था और इसीलिये श्रीराम अपने पहले वचनोंको पलटकर उन्हें साथ ले गये। श्रीरामने जो सीताजीको घर-नैहरमें रहनेका उपदेश दिया था, वह तो लोक-शिक्षा, सती-पतिव्रताके परम आदर्शकी स्थापना और पत्नीके प्रति पतिके कर्तव्यकी सत्-शिक्षाके लिये था। वास्तवमें सीताको श्रीरामजी वनमें ले जाना ही चाहते थे; क्योंकि उनके गये बिना रावण अपराधी नहीं होता और ऐसा हुए बिना उसकी मृत्यु असम्भव थी, जो अवतारधारणका एक प्रधान कार्य था। श्रीसीताजी साक्षात् जगन्नायिका और श्रीराम सच्चिदानन्दघन जगदीश्वर थे। वे उनसे अलग कभी रह ही नहीं सकतीं। केवल पातिव्रत्यकी बात होती तो सीताजी भी शायद उर्मिलाकी भाँति अयोध्यामें रह जातीं। उर्मिला सीताजीकी छोटी बहिन थीं, परम पतिव्रता थीं। बड़ी बहिन सीताजी जैसे अपने स्वामी श्रीराममें अनुरक्ता और सेवाव्रतधारिणी थीं, वैसे ही उर्मिला भी थीं। वे भी सीताकी भाँति ही साथ जानेके लिये प्रेमाग्रह कर सकती थीं; परंतु उनके घर रहनेमें ही श्रीरामकाजमें सुविधा थी, जिसमें सेवक बनकर रहना उनके पतिका एक-मात्र धर्म था और जिसमें उर्मिला पूर्ण सहमत और सहायक थीं। इन्द्रजित् मेघनादको वरदान था कि जो महापुरुष लगातार बारह वर्षतक फल-मूल खायेगा, निद्राका त्याग करेगा और अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करेगा, उसीके हाथोंसे मेघनादका मरण होगा। इसलिये जैसे रावण-वधमें कारण बननेके लिये सीताजीका श्रीराम-लीलामें सहयोगिनी बनकर वन जाना आवश्यक था, वैसे ही लक्ष्मणजीका भी रामलीलामें शामिल होनेके लिये तीव्र महाव्रत-पालनपूर्वक मेघनाद-वधके लिये वन जाना आवश्यक था और ठीक इसी तरह उर्मिला-जीको भी रामलीलाको सुचारुरूपसे सम्पन्न करानेके लिये ही, जो दम्पतिके जीवनका व्रत था, घरपर रहना आवश्यक था। उर्मिलाजी साथ जातीं, तब भी लक्ष्मणजीका महाव्रत-पालन होना कठिन था और वे घरपर रहते, तब तो कठिन था ही।

यह बात श्रीलक्ष्मणजीने उर्मिलाजीको अवश्य समझा दी होगी या महान् विभूति होनेके कारण वे इस बातको समझती ही होंगी। इसीसे उन्होंने पतिके साथ जानेके लिये एक शब्द भी न कहकर आदर्श पातिव्रत-धर्मका वैसा ही पालन किया, जैसा श्रीसीताजीने साथ जानेके लिये प्रेमाग्रह करके किया था। घर रहनेमें ही पति श्रीलक्ष्मणजीका सेवाधर्म सम्पन्न होता है; जिन श्रीरामकी सेवाके लिये लक्ष्मणजी अवतीर्ण हुए थे, वह सेवाकार्य इसीमें सफल होता है—यह बात जाननेके बाद आदर्श पतिव्रता देवी उर्मिला कैसे कुछ कह सकती थीं। वे आजकलकी भाँति भोगकी भूखी तो थीं ही नहीं। पतिकी धर्मरक्षामें सहायक होना ही पत्नीका धर्म है, इस बातको वे खूब समझती थीं और यही उर्मिलाजीने किया।

लोग कहते हैं कि 'लक्ष्मण बड़े निष्ठुर थे; राम तो सीताको साथ ले गये, परंतु लक्ष्मणने तो उर्मिलासे बाततक नहीं की।' पर वे क्या बात करते; वे इस बातको खूब जानते थे कि 'मेरा और मेरी पत्नीका एक ही धर्म है। मेरे धर्मपालनमें मद्गतप्राणा कर्तव्य-परायणा प्रेममयी उर्मिलाको सदा ही बड़ा आनन्द मिलता है। वह धर्मके लिये सानन्द मेरा बिछोह सह सकती है। जनकपुरसे व्याहकर आनेके बाद बारह वर्षोंमें लक्ष्मणजीकी अनुगामिनी सती उर्मिलाने अपना रामसेवा-धर्म निश्चय कर लिया था; उसी निश्चयके अनुसार पतिको रामसेवामें भेजनेके लिये वीराङ्गना उर्मिला भी उसी प्रकार शान्त और प्रसन्न थीं, जैसे लक्ष्मण-माता वीर-प्रसविनी देवी सुमित्राजी प्रसन्न थीं। धर्मपरायणा वीराङ्गनाएँ अपने पति-पुत्रोंको हँसते-हँसते रणाङ्गणमें भेजा ही करती हैं, वैसे ही यहाँ सुमित्रा और उर्मिलाने भी किया। अवश्य ही उर्मिला कुछ बोली नहीं; परंतु यहाँ न तो बोलनेका अवकाश था और न धर्ममें नित्य हार्दिक सम्मति होनेके कारण बोलनेकी आवश्यकता ही थी तथा न मर्यादा ही ऐसी आज्ञा

देती थी। सेवा-धर्ममें तत्पर निःस्वार्थ सेवकको तुरंत करने-योग्य प्रबल मनचाहा सेवाकार्य सामने आ पड़नेपर सलाह-मशविरेके लिये न तो अवकाश ही रहता है और न उसकी सहधर्मिणी पत्नी भी इससे दुःख मानती है; क्योंकि वह अपने पतिकी स्थितिसे भलीभाँति परिचित होती है और उसके प्रत्येक त्यागपूर्ण महान् कार्यका अनुमोदन करना ही अपना धर्म समझती है।

एक बात और है, सेवक परतन्त्र होता है। स्वामी श्रीराम तो स्वतन्त्र थे, वे अपने साथ जानकीजीको ले गये। परंतु परतन्त्र, सेवापरायण लक्ष्मण भी यदि उर्मिलाको साथ ले जाना चाहते तो यह अनुचित होता; उन्हें रामजीकी सम्मति लेनी पड़ती। श्रीरामजी जहाँ वनमें सीताजीको साथ ले जानेमें ही आपत्ति करते थे, वहाँ वे उर्मिलाको साथ ले जानेमें कैसे सहमत होते। जो कार्य स्वामीकी रुचिके प्रतिकूल हो, उसकी कल्पना भी सच्चे सेवकके चित्तमें उत्पन्न नहीं हो सकती। इसी प्रकार पतिकी रुचिके प्रतिकूल कल्पना सती पतिव्रता पत्नीके हृदयमें नहीं उठ सकती। उर्मिला परम पतिव्रता थीं, लक्ष्मण इसको जानते थे। धर्मपालनमें उनकी चिरसम्मति उन्हें प्राप्त थी। एक बात यह भी है कि लक्ष्मणजी सेवाके लिये वन जाना चाहते थे, सैरके लिये नहीं। पत्नीको साथ ले जानेसे उसकी देखभालमें भी इनका समय जाता तथा दो स्त्रियोंके सँभालनेका भार श्रीरामपर पड़ता। सेवक अपने स्वामीको संकोचमें कभी नहीं डाल सकता, लक्ष्मणजी और उर्मिलाजी दोनों ही इस बातको जरूर समझते थे। अतएव उन्होंने कोई निष्ठुरता-का बर्ताव नहीं किया, प्रत्युत इसीमें लक्ष्मणजी और उर्मिलाजी दोनोंकी सच्ची महिमा है।

वनवासमें श्रीलक्ष्मणजीके व्रतपालनका महत्त्व देखिये। वे दिन-रात श्रीसीतारामके पास रहते हैं। कंद-मूल-फल ला देना, पूजाकी सामग्री जुटा देना, आश्रमको झाड़ना-बुहारना, वेदिकापर चौका लगा देना; श्रीसीतारामकी रुचिके अनुसार उनकी हर प्रकारकी सेवा करना और दिन-रात सजग रहकर वीरासनसे बैठे, राममें मन लगाये, राम-नाम जपते हुए पहरा देना ही उनका कार्य है। वे अपने कार्यमें बड़े ही तत्पर हैं। ब्रह्मचर्यव्रतका पता तो इसीसे लग जाता है कि माता सीताकी सेवामें सदा प्रस्तुत रहनेपर भी उन्होंने उनके चरणोंको छोड़कर अन्य किसी अङ्गका कभी दर्शनतक नहीं किया। यह बात इसीसे सिद्ध है कि लक्ष्मणजी सीताजीके गहनोंको पहचान नहीं सके। जब रावण श्रीसीताजीको आकाशमार्गसे ले जा रहा था, तब उन्होंने पहाड़पर बैठे हुए वानरोंके दलमें कुछ गहने डाल दिये थे। श्रीराम-लक्ष्मण सीताको खोजते हुए जब हनुमान्‌जीकी प्रेरणासे सुग्रीवके पास पहुँचे, तब सुग्रीवने श्रीरामको वे गहने दिखलाये। श्रीरामके पूछनेपर लक्ष्मणजी बोले—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥

(वा० रा० ४। ६। २२)

'स्वामिन्! मैं इन केयूर और कुण्डलोंको नहीं पहचानता। मैंने तो प्रतिदिन चरणवन्दनके समय माताजीके नूपुर देखे हैं, अतः उन्हें पहचान सकता हूँ।' आजकलके देवरोंको इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। श्रीलक्ष्मणजीके इस महान् व्रतपर श्रीरामका बड़ा भारी विश्वास था, इस बातका पता इसीसे लगता है कि वे मर्यादापुरुषोत्तम होनेपर भी लक्ष्मणजीके साथ सीताजीको अकेले बेधड़क छोड़ देते थे। जब खर-दूषण भगवान्‌के साथ युद्धके लिये आये थे, तब श्रीरामने जानकीजीको लक्ष्मणजीकी संरक्षकतामें एकान्त गिरिगुहामें भेज दिया था—

'राम बोलाइ अनुज सन कहा।'—'लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर।'

(मानस ३। १८। ५-५½)

श्रीशत्रुघ्न

श्रीशत्रुघ्नजीका चरित्र भी अपने ढंगका निराला ही है। वाल्मीकीय रामायणमें श्रीशत्रुघ्नजीको भी भगवान् विष्णुका ही अंशावतार माना गया है; परंतु उनके चरित्रसे यही सिद्ध होता है कि आप श्रीरामके दासानुदासोंमें अग्रगण्य थे। श्रीशत्रुघ्नजी मौनकर्मी, प्रेमी, सदाचारी, मितभाषी, सत्यवादी, विषयविरागी, सरल, तेजःपूर्ण, गुरुजनके अनुगामी और वीर थे। श्रीरामायणमें इनके सम्बन्धमें विशेष विवरण नहीं मिलता; परंतु जो कुछ मिलता है, उसीसे इनकी महत्ताका कुछ अनुमान किया जा सकता है। आप बाल्यकालसे ही सदा भरतजीके साथ रहते थे, अतः श्रीभरतजीका और इनका चरित्र साथ ही चलता है। इसलिये रामायणमें इनके विषयमें कोई विशेष बात अलग नहीं कही गयी है। इनके गुण और चरित्रोंका अनुमान भरतके व्यवहारसे लगा लेना चाहिये।

बालकाण्डमें इनके प्रेमका वर्णन करते हुए कहा गया है—

अथैनं पृष्ठतोऽभ्येति सधनुः परिपालयन्।
भरतस्यापि शत्रुघ्नो लक्ष्मणावरजो हि सः॥
(वा० रा० १। १८। ३२)

'जैसे लक्ष्मण हाथमें धनुष लेकर श्रीरामकी रक्षा करते हुए उनके पीछे चलते थे, उसी तरह ही वे लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्न भी भरतके साथ रहते थे।'

जनकपुरमें सब भाइयोंके विवाहका कार्य सम्पन्न होनेके बाद वहाँसे लौटकर अयोध्या आनेके कुछ ही दिन पश्चात् भरतजीको उनके मामा युधाजित् अपने देश ले जाने लगे, तब शत्रुघ्नजी भी उनके साथ ही ननिहाल गये। उस समय भरतजीके प्रेममें उन्होंने माता-पिता, भाई-बन्धु और नवविवाहिता स्त्रीका कुछ भी मोह न करके भाई भरतके साथ रहना ही अपना परम कर्तव्य समझा। फिर अयोध्यासे बुलावा जानेपर भरतजीके साथ ही वे लौट आये। अयोध्या पहुँचनेपर माता कैकेयीके द्वारा पिताके मरण तथा लक्ष्मण और सीताके साथ श्रीरामके वनवासका समाचार सुनकर इनको भी बड़ा भारी दुःख हुआ। भाई लक्ष्मणके शौर्यसे आप परिचित थे, अतः इन्होंने शोकपूर्ण हृदयसे बड़े आश्चर्यके साथ भरतजीसे कहा—

'आर्य! जो दुःखके समय आत्मीय व्यक्तियोंकी तो बात ही क्या, समस्त प्राणियोंको सहारा देनेवाले हैं, वे ही सदा-पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी पत्नीके साथ वनमें भेज दिये गये (यह कितने दुःखकी बात है), जो भाई लक्ष्मणजी बड़े ही बलवान् और पराक्रमी भी हैं, उन्होंने पिता-माताका निग्रह करके भी श्रीरामको इस संकटसे क्यों नहीं मुक्त कर दिया?' (वा० रा० २। ७८। २-३)

इस प्रकार बातें हो रही थीं, श्रीशत्रुघ्नजी दुःख और क्रोधमें भरे थे; उसी समय राम-विरह-व्याकुल एक द्वारपालने सूचना दी कि 'राजकुमार! जिस क्रूरा पापिनी मन्थराके षड्यन्त्रसे श्रीरामचन्द्र वन भेजे गये हैं, वह वस्त्राभूषणोंसे सज-धजकर खड़ी है।' (वही, २। ७८। ९) यह सुनकर शत्रुघ्नजीको बड़ा क्रोध आया। वे मन्थराकी चोटी पकड़कर उसे आँगनमें घसीटने लगे। यह देखकर कुब्जाकी अन्य सहेलियोंने सोचा कि दयामयी कौसल्याकी शरण गये बिना शत्रुघ्न हमें भी नहीं छोड़ेंगे। अतः वे तुरंत ही दौड़कर कौसल्याजीके पास चली गयीं। कैकेयी उसे छुड़ानेके लिये आयीं तो शत्रुघ्नने उन्हें भी फटकार दिया। आखिर भरतने आकर शत्रुघ्नको समझाया कि स्त्रीजाति अवध्य मानी गयी है और यह भी कहा—

इमामपि हतां कुब्जां यदि जानाति राघवः।
त्वां च मां चैव धर्मात्मा नाभिभाषिष्यते ध्रुवम्॥
(वा० रा० २। ७८। २३)

'भाई! यदि कहीं कुबड़ी तुम्हारे हाथसे मारी गयी तो इस घटनाको जानते ही धर्मात्मा श्रीराम तुमसे और मुझसे भी निश्चय ही बोलना छोड़ देंगे।'

भरतकी इस बातको सुनकर शत्रुघ्नने कुब्जाको मूर्च्छित अवस्थामें ही छोड़ दिया।

इस प्रसङ्गमें समझनेकी पहली बात तो यह है कि श्रीरामकी धर्मनीतिमें स्त्रीजातिका कितना आदर था, जिससे कि वे हर हालतमें अवध्य मानी जाती थीं। दूसरी यह कि शोकाकुल भरतने ऐसी परिस्थितिमें भी अपने छोटे भाईको समझाकर अधर्मसे रोका। तीसरी यह कि क्रोधातुर होनेपर भी शत्रुघ्नने तुरंत ही बड़े भाईकी बात मान ली। इसके बाद श्रीरामको लौटानेके लिये भरतजी जब वनमें जाने लगे, तब शत्रुघ्न भी साथ गये। चित्रकूटके पास पहुँचकर भरतकी आज्ञासे वे श्रीरामकी पर्णकुटी ढूँढ़ने लगे। जब भरतजी श्रीरामजीको

देखकर उनकी ओर दौड़े, तब रामदर्शनोत्सुक शत्रुघ्न भी उनके पीछे-पीछे पहुँचे। वहाँ कविने कहा है—

शत्रुघ्नश्चापि रामस्य ववन्दे चरणौ रुदन्।
तावुभौ च समालिङ्ग्य रामोऽप्यश्रूण्यवर्तयत्॥
(वा० रा० २। ९९। ४०)

'शत्रुघ्नने भी रोते-रोते श्रीरामके चरणोंकी वन्दना की। उन दोनोंको हृदयसे लगाकर श्रीराम भी आँसू बहाने लगे।' उसके बाद शत्रुघ्न भाई लक्ष्मण और सीताजीसे भी बड़े प्रेमसे मिले।

सब लोग इकट्ठे हुए, बातचीत आरम्भ हुई। वहाँ श्रीराम और भरतके संवादमें लक्ष्मण और शत्रुघ्नका कोई काम ही नहीं था। शत्रुघ्नजीने तो अपना जीवन रामसेवक श्रीभरतजीको अर्पण कर रक्खा था; अतः उनके विषयमें जो कुछ कहना होता, वह स्वयं भरत ही कह देते।

पादुकाएँ लेकर अयोध्या लौटते समय दोनों भाई फिर श्रीरामकी प्रदक्षिणा और उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनसे मिले। लक्ष्मणकी भाँति शत्रुघ्नका भी स्वभाव तेज था। कैकेयीके प्रति इनके मनमें रोष था, श्रीराम इस बातको जानते थे। इस कारण विदा करते समय श्रीरामने शत्रुघ्नको वात्सल्य-भावसे शिक्षा देते हुए कहा—

मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति॥
मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन।
(वा० रा० २। ११२। २७-२८)

'रघुनन्दन शत्रुघ्न! निश्चय ही तुम्हें मेरी और सीताकी शपथ है, तुम माता कैकेयीकी सेवा करना, उनपर कभी क्रोध न करना।'

इससे भी पता चलता है कि शत्रुघ्नजीका श्रीराममें कितना प्रेम और भक्तिभाव था।

इसके बाद शत्रुघ्नजी भरतके साथ अयोध्या लौटकर बराबर उनके आज्ञानुसार राज्य और परिवारकी सेवा करते रहे। शत्रुघ्नजी हर हालतमें भरतके पास रहकर उनकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते रहते थे। भरतजीके मनमें भी शत्रुघ्नपर बड़ा भरोसा था। इसी कारण वे छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े कार्यके लिये शत्रुघ्नको ही आज्ञा देते थे।

इसके बाद श्रीरामके लौटकर आनेतक शत्रुघ्नजीके विषयमें वाल्मीकीय रामायणमें कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं मिलती। श्रीहनुमान्‌जीद्वारा श्रीरामचन्द्रजीके आनेका समाचार मिलनेपर भरतजीकी आज्ञासे शत्रुघ्नने ही श्रीरामकी अगवानीका और नगरको सजानेका तथा राजमार्ग और अन्य सब रास्तोंको ठीक करानेका प्रबन्ध किया। श्रीरामका राज्याभिषेक होनेके बाद भी आप श्रीभरतजीके साथ-साथ ही श्रीरामका सेवाकार्य किया करते थे। भाईके नाते श्रीलक्ष्मण और श्रीशत्रुघ्नपर भरतजीका समान अधिकार होनेपर भी श्रीभरतजी अपना काम शत्रुघ्नसे ही करवाते थे।

सीता-वनवासके बाद एक दिन बहुत-से ऋषियोंने श्रीरामके पास आकर लवणासुरके अत्याचारोंका वर्णन किया। इसपर श्रीरामने उनको आश्वासन दिया और सभामें यह प्रस्ताव रक्खा कि 'लवणासुरको मारनेके लिये कौन जायगा? किसको आज्ञा दी जाय—भरतको या शत्रुघ्नको?' यह सुनकर भरतजीने कहा कि 'मुझे आज्ञा मिले, मैं लवणासुरको मार डालूँगा।' भरतकी बात सुनकर शत्रुघ्नजीने अपने आसनसे खड़े होकर श्रीरामको प्रणाम करके कहा—

'रघुनाथजी! मझले भाई श्रीभरतजीने तो पहले आपके बहुत कार्य किये हैं; क्योंकि इन्होंने आपके वियोगका संताप हृदयमें रखकर भी आपके न रहनेपर आपके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए अयोध्याका पालन किया है। राजन्! महायशस्वी भरतजीने नन्दिग्राममें तृणकी शय्यापर शयन कर और फल-मूलका भोजन करके जटा और चीर धारण किये हुए आपके वियोगकालको व्यतीत किया है। इस प्रकारके दुःखोंका अनुभव करनेके अनन्तर इस समय मुझ दासके रहते हुए इनको पुनः यह लवणासुर-वधका परिश्रम नहीं मिलना चाहिये।' (वा० रा० ७। ६२। ११—१५)

शत्रुघ्नजीके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—

'राजन् ! बड़े भाई भरतजीके रहते हुए मुझ छोटेका राज्याभिषेक कैसे हो सकता है ? इस कार्यमें मुझे अधर्मकी प्रतीति होती है । इधर मुझे आपकी आज्ञाका पालन भी अवश्य करना चाहिये; क्योंकि पुरुषोत्तम ! महाभाग ! आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना भी घोर पाप है । वीर ! यही बात मैंने आपसे और वेद-शास्त्रोंसे भी सुन रक्खी है । अतः पूज्य भाई भरतजीके लवणासुरको मारनेकी बात स्वीकार कर लेनेके बाद फिर मुझे कोई उत्तर नहीं देना चाहिये था । मैंने ये बहुत ही अविचारपूर्ण दुर्वचन कह डाले कि 'लवणासुरको मैं मारूँगा ।' पुरुषश्रेष्ठ ! इस दुरुक्तिका ही फल यह राज्याभिषेकरूप दुर्गति मुझे मिली है । बड़े भाईकी आज्ञा हो जानेपर फिर उत्तर नहीं देना चाहिये; क्योंकि ऐसा कार्य करना अधर्मयुक्त और परलोकके विरुद्ध है । इसलिये रघुवर ! अब मैं दुबारा कुछ भी उत्तर नहीं दूँगा [मैं आपके इच्छानुसार करनेको तैयार हूँ] ।' (वा० रा० ७ । ६३ । २-७)

कैसा सुन्दर त्याग है ! श्रीरामके वियोगमें राज्यप्राप्तिको आप दुर्गति समझते हैं । वास्तवमें बात भी ऐसी ही है; साधकोंको इसी बातपर विशेष ध्यान देना चाहिये ।

इसके बाद श्रीशत्रुघ्नजीने लवणासुरपर चढ़ाई की । उस समय श्रीरामने शत्रुघ्नको लवणासुरको मारनेकी युक्ति बतलायी तथा रास्तेमें खर्चके लिये बहुत-सा धन और बड़ी भारी सेना उनके साथ देकर उन्हें विदा किया । रास्तेमें जाते समय शत्रुघ्नजी एक रात श्रीवाल्मीकिके आश्रममें ठहरे। उसी रात्रिमें श्रीसीताजीकी कोखसे कुश-लव—इन दो यमज (जोड़ले) पुत्रोंका जन्म हुआ था । इसलिये वह रात्रि भी श्रीशत्रुघ्नजीके लिये बड़ी ही आनन्ददायिनी हुई । इसके बाद शत्रुघ्नजी वहाँसे चलकर रास्तेमें सात दिन ठहरते-ठहरते यमुना-किनारे च्यवन ऋषिके आश्रममें पहुँचे ।

वहाँ च्यवन ऋषिसे लवणासुरकी दिनचर्या और उसके बल-पराक्रमकी जानकारी प्राप्त की । फिर जब लवणासुर अपने घरसे आहारके लिये वनमें निकल गया, तब उसके लौटनेसे पहले ही शत्रुघ्नजीने जाकर उसके नगरका द्वार रोक लिया । शत्रुघ्नको देखकर लवणासुर कहने लगा—'इससे क्या होगा ? नराधम ! इस तरहके हजारों मनुष्योंको तो मैं रोज खाता हूँ ।' इसपर शत्रुघ्नजीने अपना परिचय देते हुए कहा—'मैं तुम्हारे साथ युद्ध करना चाहता हूँ ।' इसके बाद दोनोंका आपसमें घोर युद्ध हुआ । अन्तमें शत्रुघ्नजीने कानतक धनुष तानकर एक दिव्य बाण उसकी छातीमें मारा । वह छातीको छेदकर पातालमें प्रवेश कर गया और फिर वापस आकर शत्रुघ्नजीके तरकसमें स्थित हो गया । देवता और महर्षिगण शत्रुघ्नजीकी प्रशंसा करने लगे तथा आकाशसे जय-जयकारकी ध्वनि और पुष्पोंकी वर्षा होने लगी ।

इस प्रकार लवणासुरको मारकर तथा वहीं अच्छी तरह मधुरापुरी बसाकर, उसके राज्यका प्रबन्ध करके बारह वर्षके बाद शत्रुघ्नजी श्रीरामका दर्शन करनेके लिये वहाँसे अयोध्याकी ओर लौटे । आते समय फिर शत्रुघ्नजी श्रीवाल्मीकि ऋषिके आश्रममें ही ठहरे । वहाँ उन्होंने मधुर स्वरमें गाये जाते हुए श्रीरामचरित्रको सुना । उसे सुनकर उनका हृदय करुणासे भर गया । वे रात्रिमें वहीं लेटकर श्रीरामके विषयमें ही विचार करते रहे । उनको नींद नहीं आयी । सवेरा होनेपर नित्यकर्मके बाद मुनिकी आज्ञा लेकर श्रीरामदर्शनकी उत्कण्ठासे वे अयोध्याकी ओर चल पड़े । अयोध्या पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीके महलमें आये; वहाँ इन्द्रके समान आसनपर विराजमान श्रीरामको उन्होंने प्रणाम किया और कहा—'भगवन् ! आपके आज्ञानुसार मैं लवणासुरको मारकर वहाँ नगर बसा आया हूँ ।'

'महाराज रघुनाथजी ! ये बारह वर्ष मैंने आपके वियोगमें बड़ी कठिनतासे बिताये हैं । इसलिये अब मैं आपके बिना वहाँ निवास करना नहीं चाहता । अतएव महापराक्रमी श्रीरामजी ! आप मुझपर ऐसी कृपा करें, जिससे मातृविहीन बालककी भाँति मैं आपसे अलग होकर बहुत दिनतक कहीं न रहूँ ।' (वा० रा० ७ । ७२ । ११-१२)

शत्रुघ्नकी यह बात सुनकर श्रीरामने उन्हें हृदयसे लगाया और कहा—'वीर ! तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये, यह क्षत्रिय-स्वभावके अनुरूप नहीं है । तुम्हें क्षात्रधर्मके अनुसार प्रजाका पालन करना चाहिये । समय-समयपर मुझसे मिलनेके लिये आ जाया करो ।' इस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे शत्रुघ्नजीने दीन वाणीसे उनकी बात स्वीकार कर ली । फिर भरत और लक्ष्मणसे मिलकर और सबको प्रणाम करके वे मथुरा लौट गये ।

इसके बाद जब भगवान् परमधाम पधारने लगे, तब फिर शत्रुघ्नको बुलाया गया । तब शत्रुघ्नजी अपने पुत्रोंका राज्याभिषेक करके अयोध्यामें पहुँचे और श्रीरामके पास आकर उनको प्रणाम करके गद्गदवाणीसे कहने लगे—

'महाराज रघुनाथजी ! मैं अपने दोनों पुत्रोंका

राज्याभिषेक करके आपके साथ चलनेका निश्चय करके आया हूँ। वीर ! अब आप मुझे कोई दूसरी आज्ञा न दें; क्योंकि किसीके भी द्वारा, और विशेषतः मेरे-जैसे अनुयायीके द्वारा आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन हो, यह मैं नहीं चाहता। अभिप्राय यह है कि मैंने आजतक आपकी आज्ञाका कभी त्याग नहीं किया है। अतः अब भी वैसा न करना पड़े, इसकी आप ही रक्षा करें।' (वा० रा० ७ । १०८ । १४-१५)

भगवान् श्रीरामने शत्रुघ्नजीकी प्रार्थना स्वीकार की और श्रीशत्रुघ्नजी भी श्रीरामचन्द्रजीके साथ-ही-साथ परमधाम पधार गये।

यह श्रीशत्रुघ्नजीका छोटा-सा जीवन-चरित्र केवल वाल्मीकीय रामायणके आधारपर लिखा गया है; इसमें दूसरी किसी रामायणसे या पुराणोंसे कोई बात नहीं ली गयी है। इस कारण सम्भव है कि उनके प्रेम और गुणोंकी समस्त बातें पाठकोंके सामने न आयें; परंतु इसके लिये क्षमा-प्रार्थनाके सिवा मैं कर ही क्या सकता हूँ।

श्रुतकीर्ति

श्रुतकीर्ति—ये भी राजा जनकके भाई कुशध्वजकी ही पुत्री थीं। सीता, उर्मिला एवं माण्डवीके साथ ही इनका भी विवाह शत्रुघ्नजीसे हुआ था। श्रुतकीर्तिजी अत्यन्त सरल, सेवापरायण एवं पतिप्राणा थीं। ये सीता, उर्मिला एवं माण्डवीको प्राणकी तरह प्यार करती थीं; इस कारण ये सभीको प्रिय थीं। सभी इनकी सराहना करते थे। भरत एवं लक्ष्मणके प्रति इनके मनमें आदरके भाव थे, पर श्रीरामको तो ये देवतुल्य मानती थीं। सास, ससुर एवं गुरुजनके प्रति इनके मनमें बड़ी श्रद्धा थी। ये नारी-जातिके सम्पूर्ण उत्तम आदर्श गुणोंसे विभूषित थीं।

कैकेयीने श्रीरामके वनवासका वरदान माँगा, तब ये भी दुःख और लज्जासे गड़ गयीं। इनके पतिदेव शत्रुघ्नकुमार भरतजीके अनुगामी थे। इस कारण इनपर भी लाञ्छन आ सकता था। फलतः श्रुतकीर्तिजी अत्यन्त उदास और दुःखी हो गयी थीं; पर भरत और शत्रुघ्नके ननिहालसे लौटकर चित्रकूट प्रस्थित होनेपर ये प्रसन्न हो गयीं। चित्रकूटसे लौटनेपर जब भरतजी नन्दिग्राममें तापस-वेषमें रहने लगे, तब शत्रुघ्नजी भी उनकी सेवाके लिये उनके साथ बने रहे। चौदह वर्षतक पतिदेव भरतजीकी सेवामें वनवासियोंकी भाँति रहे, पर श्रुतकीर्तिजीने आपत्ति नहीं की। वे घरमें ही वैराग्यमय जीवन व्यतीत करती हुई सर्वेश्वर प्रभुकी उपासनामें अपना समय व्यतीत करती थीं।

चतुर्दश वर्षके उपरान्त अनुज-जानकीसहित प्रभु अयोध्या लौटे। फिर तो सबके दुःखके दिन समाप्त हो गये। श्रुतकीर्तिको भी पतिके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। समयपर इनके दो पुत्र हुए—सुबाहु और शत्रुघाती। मथुराका शासन-सूत्र सुबाहुके धर्ममय हाथोंमें था और शत्रुघाती वैदिशनगरके नरेश हुए। —शि० दु०

शत्रुघ्न-वन्दना

जयति जय शत्रु-करि-केसरी शत्रुहन शत्रु-तम-तुहिनहर किरणकेतू।
देव-महिदेव-महि-धेनु-सेवक सुजन-सिद्ध-मुनिसकलकल्याण-हेतू॥
जयति सर्वांगसुन्दर सुमित्रा-सुवन, भुवन-विख्यात भरतानुगामी।
वर्म-चर्मासि-धनु-बाण-तूणीर-धर शत्रु-संकट-समय यत्प्रणामी॥
जयति लवणांबुनिधि-कुंभसंभव महादनुज-दुर्जन-दवन दुरितहारी।
लक्ष्मणानुज, भरत-राम-सीता-चरण-रेणु-भूषित-भाल-तिलकधारी॥
जयति श्रुतकीर्ति-वल्लभ सुदुर्लभ सुलभ नमत नर्मद भुक्ति-मुक्तिदाता।
दास तुलसी चरण-शरण सीदत विभो, पाहि दीनार्त्त-संताप-हाता॥

लव-कुश

लोकापवादके भयसे मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामने अपनी सर्वथा निर्दोष साध्वी पत्नी सीताको लक्ष्मणके द्वारा वनमें महर्षि वाल्मीकिके आश्रमके समीप छोड़वा दिया। उन्हें महर्षि वाल्मीकिने अपने आश्रममें अत्यन्त स्नेहपूर्वक रखा। कुछ ही दिनोंमें उक्त आश्रममें ही भगवती सीताके गर्भसे एक साथ यमजरूपमें दो पुत्र उत्पन्न हुए। महर्षिने बड़ेका नाम 'कुश' और छोटेका 'लव' रखा। उनके सारे संस्कार महर्षिके संरक्षणमें आश्रममें ही हुए। उपनयन-संस्कारके होते ही दोनों कुमार वेदाध्ययनमें प्रवृत्त हुए। कुछ ही दिनोंमें वे दोनों श्रीरामकुमार शास्त्र एवं शस्त्रमें पारंगत हो गये। ऋषिकुमारोंकी तपश्चर्या एवं क्षत्रियकुमारका शौर्य—ये सभी विशिष्टताएँ उनमें थीं।

लव-कुश शारीरिक दृष्टिसे भी अत्यन्त सुन्दर थे। उनका कण्ठ-स्वर कोमल था। वाल्मीकिजीने उन दोनों बालकोंको सात काण्ड, पाँच सौ सर्ग तथा चौबीस सहस्र श्लोकोंमें रचित सम्पूर्ण वाल्मीकीय रामायण भी मुखस्थ करा दिया। लव-कुश उक्त रामचरित्रको लय और स्वरके साथ जब वीणाके साथ गाते, तब श्रोता मुग्ध हो जाते। ऋषि-मुनि आश्चर्य-चकित हो जाते।

कुमारौ स्वरसम्पन्नौ सुन्दरावश्विनाविव।
तन्त्रीतालसमायुक्तौ गायन्तौ चेरतुर्वने॥
तत्र तत्र मुनीनां तौ समाजे सुररूपिणौ।
गायन्तावभितो दृष्ट्वा विस्मिता मुनयोऽब्रुवन्॥
गन्धर्वेष्विव किंनरेषु भुवि वा देवेषु देवालये
पातालेष्वथवा चतुर्मुखगृहे लोकेषु सर्वेषु च।
अस्माभिश्चिरजीविभिश्चिरतरं दृष्ट्वा दिशः सर्वतो
नाश्रायीदृशगीतवाद्यगरिमा नादर्शि नाश्रावि च॥

(अ० रा०, उ० ६। ३०—३२)

"वे अश्विनीकुमारके समान अति सुन्दर कुमार उसे वीणा बजाकर स्वरसहित गाते हुए वनमें विचरा करते थे। उन देवस्वरूप बालकोंको जहाँ-तहाँ मुनियोंके समाजमें गाते देख वे मुनिगण अत्यन्त विस्मित हो आपसमें कहने लगते थे—'हम चिरजीवियोंने बहुत दिनोंसे सभी दिशाएँ देखीं; किंतु गन्धर्वलोक, किंनरलोक, भूलोक, देवलोकके देवताओंमें, पाताल अथवा ब्रह्मलोक आदि किसी भी लोकमें गाने-बजानेकी ऐसी कुशलता न कभी जानी, न देखी और न सुनी ही है'।"

इस प्रकार लव-कुश महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें अपने पवित्र धर्मका पालन करते हुए निवास करते थे। उन्हें जब भी अवकाश मिलता, महर्षिके चरण-कमलोंमें बैठकर संसारसागरसे पार जानेका मार्ग पूछते, तत्त्वज्ञानसम्बन्धी प्रश्न करते और महर्षि वाल्मीकि उन्हें अत्यन्त विस्तारपूर्वक समझाते थे। इस प्रकार उन दोनों बालकोंका सांसारिक भ्रम मिट गया और वे अन्तःकरणसे मुक्त होकर बाहरसे सम्पूर्ण क्रियाएँ करते हुए महर्षिके समीप रहने लगे।

उस समय अयोध्यानरेश श्रीराम एक पर्णशालामें रहते हुए अपनी सहधर्मिणी सीताकी स्वर्णप्रतिमा बनवाकर यज्ञ कर रहे थे। उक्त यज्ञके दर्शनार्थ प्रायः सभी ऋषि, राजर्षि, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य गये थे। महर्षि वाल्मीकि भी लव-कुशके साथ वहाँ पहुँचे। महर्षिके लिये अन्य ऋषियोंके समीप रहनेकी सुव्यवस्था कर दी गयी।

वहाँ महर्षि वाल्मीकिने अपने शिष्य लव-कुशसे कहा—

तत्र तत्र च गायन्तौ पुरे वीथिषु सर्वतः॥
रामस्याग्रे प्रगायेतां शुश्रूषुर्यदि राघवः।
न ग्राह्यं वै युवाभ्यां तद्यदि किंचित्प्रदास्यति॥

(अ० रा०, उ० ७। २-३)

'तुम दोनों जहाँ-तहाँ नगरकी गलियोंमें सब ओर गाते हुए विचरो और यदि महाराज रामकी सुननेकी इच्छा हो तो उनके सामने भी गाओ; परंतु वे कुछ देने लगें तो लेना मत।'

महर्षि वाल्मीकिके आदेशानुसार दोनों बालकोंने राम-चरित्रका गान आरम्भ कर दिया। उनके गान सुनकर स्त्री-पुरुष और गृहस्थ-विरक्त सभी झूम उठते। पूर्ववर्ती आचार्यों-के बताये नियमोंके अनुकूल वह गीत भगवान् श्रीरामने भी सुना। भगवान् श्रीरामने उन बालकोंको अपने समीप बुलाया। उस समय वहाँ ऋषि-महर्षि, विद्वान् एवं उच्चवर्गका समुदाय उपस्थित था। लव-कुशने वीणा बजाते हुए गान प्रारम्भ किया। समस्त श्रोता मुग्ध होकर सुनने लगे। किसीकी तृप्ति ही नहीं होती थी। ऋषि-मुनि एवं समस्त नरेश अलौकिक संगीत-श्रवणके साथ उन कुमारोंको अपलक नेत्रोंसे देख रहे थे। वे परस्पर कहने लगे कि 'इन बालकोंकी मुखाकृति तो श्रीरामचन्द्रजीसे बिल्कुल मिलती है। ये बिम्बसे

उत्पन्न प्रतिविम्बके तुल्य प्रतीत होते हैं।' उन्होंने यहाँतक कहा कि—

जटिलौ यदि न स्यातां न वल्कलधरौ यदि।
विशेषं नाधिगच्छामो गायतो राघवस्य वै॥
(वा० रा०, उत्तर० ९४। १५)

'यदि इनके सिरपर जटा न होती और ये वल्कल न पहने होते तो हमें श्रीरामचन्द्रजीमें तथा गान करनेवाले इन दोनों कुमारोंमें कोई अन्तर नहीं दिखायी देता।'

सीताके दोनों पुत्रोंके गानसे संतुष्ट होकर श्रीरामचन्द्रजीने भरतको उन दोनों बालकोंको अठारह सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ देकर पुरस्कृत करनेका आदेश किया, किंतु जब उन कुमारोंने स्वर्ण-मुद्राओंको स्वीकार नहीं किया, तब श्रीराम आश्चर्यचकित हो गये। उसी समय उन्हें उन बालकोंसे पूछनेपर पता चला कि 'इस महान् काव्यके रचयिता महर्षि वाल्मीकि हैं, जो यहाँ पधारे हुए हैं। ये दोनों कुमार उनके प्रिय शिष्य हैं।'

इस प्रकार कई दिन उक्त काव्यका गान सुननेपर श्रीरामको विदित हुआ कि 'कुश और लव दोनों कुमार सीताके ही सुपुत्र हैं।' श्रीरामने अपने दूतोंके द्वारा महर्षि वाल्मीकिके पास संदेश भेजा कि 'निष्पाप सीता महामुनिकी अनुमति लेकर यहाँ आकर, सम्पूर्ण सभासदों, ऋषियों-महर्षियों, राजाओं एवं विद्वानों तथा जन-समुदायके सम्मुख अपनी शुद्धता प्रमाणित करें।'

दूसरे दिन महर्षि वाल्मीकि जनकनन्दिनीको लेकर श्रीरामकी भरी सभामें पहुँचे। उस समय देवी सीताकी बड़ी विचित्र स्थिति थी—

तमृषिं पृष्ठतः सीता अन्वगच्छदवाङ्मुखी।
कृताञ्जलिर्बाष्पकला कृत्वा रामं मनोगतम्॥
(वा० रा० ७। ९६। ११)

'महर्षिके पीछे सीता सिर झुकाये चली आ रही थीं। उनके दोनों हाथ जुड़े थे और नेत्रोंसे आँसू झर रहे थे। वे अपने हृदयमन्दिरमें बैठे हुए श्रीरामका चिन्तन कर रही थीं।'

गैरिक-वस्त्रधारिणी सीताके दर्शन कर सबके नेत्र बरसने लगे। देवतातक वहाँ आ गये थे। महर्षिने सबके बीच परम साध्वी सीताकी परम पवित्रताकी घोषणा की। उन्होंने यहाँतक कह दिया कि 'मिथिलेशकुमारी सीतामें कोई दोष हो तो मुझे मेरी सहस्रों वर्षकी तपस्याका फल न मिले।' और उन्होंने कहा—

इमौ तु जानकीपुत्रावुभौ च यमजातकौ।
सुतौ तवैव दुर्धर्षौ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥
(वा० रा० ७। ९६। १८)

'ये दोनों कुमार कुश और लव जानकीके गर्भसे जुड़वाँ पैदा हुए हैं। ये आपके ही पुत्र हैं और आपके ही समान दुर्धर्ष वीर हैं, यह मैं आपको सच्ची बात बता रहा हूँ।'

यह सब सुन और जान लेनेपर तथा महर्षिकी वाणीमें सम्पूर्णतया विश्वास करनेपर भी मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामने भगवती सीताको जनसमुदायमें शुद्धता प्रमाणित करनेकी बात कही। तब वहाँ सबको उपस्थित जानकर उन्होंने हाथ जोड़े तथा दृष्टि नीचे किये सतीशिरोमणि सीताने कहा—

रामादन्यं यथाहं वै मनसापि न चिन्तये।
तथा मे धरणी देवी विवरं दातुमर्हति॥
(अ० रा०, उ० ७। ४०)

'यदि मैं भगवान् रामके अतिरिक्त अन्य पुरुषका मनसे भी चिन्तन नहीं करती तो पृथिवीदेवी मुझे आश्रय दें।'

सीताके इतना कहते ही वहीं सबके सम्मुख धरती फटी और एक अद्भुत एवं दिव्य सिंहासन, जिसे महापराक्रमी नागोंने धारण कर रखा था, प्रकट हुआ। सिंहासनके साथ पृथ्वीकी अधिष्ठातृदेवी भी दिव्यरूपमें प्रकट हुईं और उन्होंने जानकीको अत्यधिक प्यारसे अपनी गोदमें बैठाया और सीताजी रसातलमें प्रवेश कर गयीं। उनके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा होने लगी।

यह दृश्य लव-कुश अपने नेत्रोंसे देख रहे थे। वे अत्यन्त व्याकुल हो गये। उनके पराक्रम एवं शौर्यसे तो अवध-वासिनी उसी समयसे परिचित थी, जब अश्वमेधयज्ञका अश्व पकड़ा गया था। शत्रुघ्न, पुष्कल, वानरराज सुग्रीव, हनुमान तथा महाराज सुरथ आदि वीर उनके द्वारा बुरी तरह पराजित हो चुके थे। कुश और लवको मातृ-वियोगमें विकल-विह्वल देख नेत्रोंमें आँसू भरे श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें हृदयसे लगा लिया और अपनी पर्णशालामें ले गये।

कुश और लव समर्थ श्रीरामके वीर पुत्र थे; किंतु महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें वे अपनी जननी श्रीजानकीके साथ थे, तब पिता दुर्लभ थे और जब उन्हें पिताके समीप रहनेका सुअवसर प्राप्त हुआ, तब सदाके लिये उनका मातृ-वियोग हो गया।

—शि० दु०

भक्त सचिव सुमन्त्र

सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा॥
राम बिमुख लहि बिधि सम देही। कबि कोबिद न प्रसंसहिं तेही॥

(मानस ७। ९५। १-१½)

सूतकुलोत्पन्न सुमन्त्रजी अवधनरेश दशरथके बालमित्र, सखा और उनके निजी सारथि थे। उत्तर-कोसल राज्यके ये ही महामन्त्री थे। ये समस्त राज्य-सेवकोंके अध्यक्ष भी थे। महाराज दशरथ प्रत्येक राज्यकार्य इनके परामर्श एवं सम्मतिसे ही करते थे। महाराज एवं उनकी समस्त रानियाँ इनका बड़ा सम्मान करती थीं। ये श्रीरामको अत्यधिक प्यार करते थे और श्रीराम इन्हें अपने पिताके तुल्य समझते थे। श्रीरामने स्वयं अपने मुखारविन्दसे कह भी दिया था—

'तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें।'

(वही, २। ९५। ½)

महाराज दशरथने गुरु वसिष्ठकी आज्ञा प्राप्तकर सुमन्त्र-जीसे सम्मति ली और दूसरे दिन श्रीरामको युवराज-पदपर अभिषिक्त करनेका निश्चय हो गया। परम बुद्धिमान् सुमन्त्रजी व्यवस्थामें लग गये। किंतु दूसरे दिन जैसे अनभ्र वज्रपात हो गया। अन्तःपुरमें सुमन्त्रजीने महाराज दशरथको मूर्च्छित और उनके समीप क्रोधपूरित कैकेयीको देखा। श्रीरामके चौदह वर्षतक अरण्यमें रहनेके निश्चयसे वे अवसन्न हो गये। वे कुछ बोल भी न सके।

महाराज दशरथके आदेशानुसार सुमन्त्रजी लक्ष्मण और सीतासहित श्रीरामको रथमें बैठाकर शृङ्गवेरपुर पहुँचे। वहाँ श्रीराम और लक्ष्मणने वटके दूधमें अपने काले घुँघराले बालोंको चिपकाकर जटा बना लिया। यह दृश्य देखकर सुमन्त्रजी छटपटा उठे। उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये—

'अनुज सहित सिर जटा बनाए। देखि सुमंत्र नयन जल छाए॥'

(वही, २। ९३। २)

कुछ क्षण बाद धैर्य धारणकर सुमन्त्रजीने श्रीरामसे कहा—'रघुनन्दन! मैं आपके बिना अकेले अयोध्या नहीं लौट सकूँगा। आप मुझे भी अपने साथ चलनेकी आज्ञा दीजिये। मैं वनमें आपकी तपश्चर्यामें किसी प्रकारकी बाधा नहीं उपस्थित होने दूँगा।' इसके अनन्तर अत्यन्त दुःखी होकर उन्होंने कहा—

यदि मे याचमानस्य त्यागमेव करिष्यसि।
सरथोऽग्निं प्रवेक्ष्यामि त्यक्तमात्र इह त्वया॥

(वा० रा० २। ५२। ४९)

'यदि इस तरह याचना करनेपर भी आप मुझे त्याग ही देंगे तो मैं आपके द्वारा परित्यक्त होकर यहाँ रथसहित अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा।'

सिसकते हुए सुमन्त्रजीने पुनः कहा—

प्रसीदेच्छामि तेऽरण्ये भवितुं प्रत्यनन्तरः।
प्रीत्याभिहितमिच्छामि भव मे प्रत्यनन्तरः॥
इमेऽपि च हया वीर यदि ते वनवासिनः।
परिचर्यां करिष्यन्ति प्राप्स्यन्ति परमां गतिम्॥

(वा० रा० २। ५२। ५२-५३)

"आप प्रसन्न होकर आज्ञा दीजिये। मैं वनमें आपके पास ही रहना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि आप प्रसन्नता-पूर्वक कह दें कि 'तुम वनमें मेरे साथ ही रहो।' वीर! ये घोड़े भी यदि वनमें रहते समय आपकी सेवा करेंगे तो इन्हें परम गति प्राप्त होगी।"

फिर उन्होंने श्रीरामसे अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—'मैं वनमें आपकी प्रत्येक रीतिसे सेवा करूँगा। इस सुखके सम्मुख मैं देवलोकको भी त्याग दूँगा।'

पर श्रीरामके विनयपूर्ण उत्तरके सम्मुख कोई वश न चलते देखकर सुमन्त्रजीने उन्हें महाराज दशरथका संदेश सुनाया और शिशुकी भाँति वे रो पड़े।

'करि बिनती पायन्ह परेउ दीन्ह बाल जिमि रोइ।'

(मानस २। ९४)

श्रीरामके प्रति अतिशय प्रीतिके कारण महामति सुमन्त्रजीकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। वे जलहीन मीनकी भाँति छटपटा रहे थे—

'नयन सूझ नहिं सुनइ न काना। कहि न सकइ कछु अति अकुलाना॥'

(वही, २। ९८। २)

श्रीरघुनाथजीने अत्यन्त आदरपूर्वक सुमन्त्रजीसे कहा—

'जानामि परमां भक्तिमहं ते भर्तृवत्सल।'

(वा० रा० २। ५२। ६०)

'सुमन्त्रजी! आप स्वामीके प्रति स्नेह रखनेवाले हैं। मुझमें आपकी जो उत्कृष्ट भक्ति है, उसे मैं जानता हूँ।'

और उन्होंने बड़े ही सम्मानसे सुमन्त्रजीको समझाया। पूर्वजोंके धर्म-पालन-निमित्त अनेक कष्ट सहनेकी बातें कहीं और नौकारूढ़ होकर गङ्गा-पार चले। गङ्गाजीसे पार उतरकर श्रीरामजी जबतक दृष्टिपथमें थे, सुमन्त्रजी टकटकी लगाये उधर ही देखते रहे। श्रीरामके वनमें दूर निकल जानेपर वे फूट-फूटकर रोने लगे।

निषादराज जब श्रीरामको पहुँचाकर लौटे, तब उन्होंने सुमन्त्रजीको मणिहीन फणिकी भाँति छटपटाते देखा। उन्होंने अपने चार सेवकोंके साथ उन्हें अयोध्या भेज दिया। सुमन्त्रजीमें साहस नहीं था कि वे दिनमें अयोध्यामें प्रवेश करें। एक तो उनका हृदय फटा जा रहा था, दूसरे वे नगरनिवासियोंको क्या मुँह दिखाते, कौन संवाद सुनाते? किसी प्रकार रात्रिके अन्धकारमें उन्होंने नगरमें प्रवेश किया और रथ राजद्वारपर ही छोड़कर भवनमें गये। महाराज दशरथको उन्होंने दुःखी हृदयसे समाचार सुनाकर उन्हें धैर्य बँधानेका प्रयत्न करते हुए अपनी स्थिति बतायी—

'मैं आपन किमि कहौं कलेसू। जिअत फिरेउँ लेइ राम सँदेसू॥'

(मानस २। १५२। १½)

महाराज दशरथने प्राण त्याग दिया। सुमन्त्रजीने धैर्य धारण कर राज्यकी व्यवस्था सँभाली। भरतजी श्रीरामकी पादुका लेकर लौटे। वे पादुकाएँ सिंहासनपर प्रतिष्ठित हुईं और सुमन्त्रजी श्रीरामका स्मरण करते हुए चौदह वर्षतक राज्यकी सारी व्यवस्था सुचारुरूपसे करते रहे। अन्ततः प्रभु श्रीराम वनसे लौटे। सुमन्त्रजीकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। दशरथनन्दन श्रीरामजी सुमन्त्रको अपने पिताकी ही भाँति सम्मान प्रदान करते रहे और राम-राज्यमें भी सुमन्त्रजी आजीवन महामन्त्रीके उच्चतम पदपर बने रहे।

—शि० दु०

रामभक्त निषादराज

नहि रामात् प्रियतमो ममास्ते भुवि कश्चन।
ब्रवीम्येव च ते सत्यं सत्येनैव च ते शपे॥

(वा० रा० २। ५१। ४)

'मैं सत्यकी शपथ खाकर सच-सच कहता हूँ कि इस भूतलपर मुझे श्रीरामसे बढ़कर प्रिय दूसरा कोई नहीं है।'

—निषादराज गुह

ये निषादोंके राजा गुह पुण्यतोया जाह्नवीके तटपर शृङ्गवेरपुरमें निवास करते थे। ये दशरथनन्दन श्रीरामके प्रिय सखा थे। आखेटके समय ये प्रायः श्रीरामके साथ रहते और उनकी सारी सुविधाकी व्यवस्था करते। श्रीरामके प्रति इनकी प्रीति अद्भुत थी।

उन्हें जब विदित हुआ कि पिताके आदेशसे उनके प्राणप्रिय श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण एवं पत्नी सीताके साथ उनके राज्यमें पधारे हैं, तब उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। वे भक्तिपूर्वक फल, मधु और पुष्पादि लेकर वृद्ध मन्त्रियों एवं बन्धु-बान्धवोंसहित प्रभुके सम्मुख उपस्थित हुए। भेंटकी सामग्री सम्मुख रखकर दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े। श्रीरामने तुरंत उन्हें उठाकर गलेसे लगा लिया और फिर श्रीरामजीके कुशल पूछनेपर गुहने हाथ जोड़कर कहा—

'धन्योऽहमद्य मे जन्म नैषादं लोकपावन॥'

(अ० रा० २। ५। ६४)

'हे लोकपावन! मैं धन्य हूँ, आज मेरा निषाद-जातिमें जन्म लेना सफल हो गया।' और अत्यन्त विनयके साथ उन्होंने कहा—

देव धरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जनु नीचु सहित परिवारा॥
कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ। थापिअ जनु सबु लोगु सिहाऊ॥

(मानस २। ८७। ३-३½)

'प्रभो! मेरा सर्वस्व आपका ही है। आप कृपापूर्वक यहीं रह जायँ और हमलोगोंकी रक्षा करें। नगरमें चलकर मेरा घर पवित्र कर दें और जो कुछ फल-मूल उपस्थित है, उसे स्वीकार करें। मैं आपका दास हूँ, मुझपर कृपा करें।'

पर जब श्रीरामने पिताके द्वारा वनवास देनेकी बात कही, तब निषादराज बड़े दुःखी हुए। रात्रिमें वृक्षके नीचे कुशकी साथरीपर देवी सीता और प्रभु श्रीरामको शयन करते देखा तो वे रो पड़े। अधीर हो गये। उस समय सुमित्रा-नन्दन लक्ष्मणने उन्हें अनेक प्रकारसे तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया।

दूसरे दिन प्रभुके साथ निषादराज भी गङ्गाके पार उतरे। उन्होंने गुहको लौट जानेके लिये कहा। इससे उनके मनमें बड़ी व्यथा हुई—

'तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू। सुनत सूख मुखु भा उर दाहू॥'

(वही, २। १०२। १)

और अत्यन्त दीन वाणीमें उन्होंने प्रभुके साथ दो-चार दिन रहनेकी स्वीकृति चाही। उनकी सहज प्रीतिको देखकर प्रभुने उन्हें साथ ले लिया, किंतु दो-चार दिन बाद प्रभुकी आज्ञासे वे लौट आये। वे रहते तो थे शृङ्गवेरपुरमें, पर उनका मन अपने प्राणाराम श्रीराममें ही लगा रहता था। वे अपने अनुचरोंसे श्रीरामका समाचार प्राप्त करते रहते थे।

भरतजी प्रभु श्रीरामको लौटानेके लिये शृङ्गवेरपुरके समीप पहुँचे और यह संवाद निषादराजको भी मिला। ससैन्य भरतके वन-गमनसे निषादराजके मनमें शङ्का हुई। उनकी बुद्धि मलिन नहीं होती तो सेनासहित श्रीरामके पास क्यों जाते? निषादराजने तुरंत अपने पुरवासियोंको सावधान कर पाँच सौ नौकाएँ गङ्गाकी मध्यधारामें खड़ी कर दीं। एक-एक नौकापर शत-शत वीर निषाद युद्धार्थ तैयार थे।

निषादराज अत्यन्त बुद्धिमान् भी थे। सुपटु राजनीतिज्ञ-की भाँति इधर भरतकी वाहिनीका सर्वनाश करनेकी योजना बनायी और उधर विनयपूर्वक भरतके पास पहुँचे। प्रभु श्रीरामके प्रति भरतकी श्रद्धा एवं भक्ति देखकर निषादराज विह्वल हो गये। उन्होंने अत्यन्त आदरपूर्वक ससैन्य भरतजी-को पार उतार दिया और स्वयं उनके साथ चित्रकूट पहुँचे। वहाँ प्रभुका दर्शन कर वे आनन्द-विभोर हो गये।

प्रेमानन्दमें छके निषादराजकी विचित्र दशा हो गयी थी। उन्हें कुछ पता ही नहीं था कि वे कहाँसे आये हैं और क्या कर रहे हैं। वे समझते थे, मैं अयोध्यामें श्रीरामके साथ हूँ। जब राघवेन्द्रने सुना कि यहाँ पूज्य गुरुदेव तथा माताएँ आदि सभी आये हैं, तब वे तुरंत सबके दर्शनार्थ चले। पीछे-पीछे निषादराज भी चलते रहे। भगवान् श्रीराम जिनके चरणोंमें प्रणाम करते, निषादराज भी बच्चोंकी तरह वहीं माथा टेक देते थे। उनकी ऐसी श्रद्धा-भक्ति एवं आत्म-विस्मृतिकी दशा देखकर माताओंने उन्हें हृदयसे आशीष् दी और वसिष्ठजीने आनन्दविह्वल होकर उन्हें अपने अङ्कमें भर लिया।

चित्रकूटसे भरतजीके साथ निषादराज भी लौट आये, पर उनका मन अहर्निश श्रीरामके अरुण चरणोंमें ही लगा रहता था। उन्हें एक-एक दिन वर्षतुल्य प्रतीत होता था। अन्ततः वह दिन भी आया, जब प्रभु देवताओंका कार्य सिद्ध-कर और वनवासके दिन पूरे करके लक्ष्मण एवं सीतासहित कुशलपूर्वक गङ्गा-तटपर पहुँचे। यह समाचार जब निषाद-राजने सुना, तब वे प्रेममें व्याकुल होकर प्रभुके दर्शनार्थ दौड़ पड़े—

सुनत गुहा धायउ प्रेमाकुल। आयउ निकट परम सुख संकुल॥
प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही। परेउ अवनि तन सुधि नहिं तेही॥
प्रीति परम बिलोकि रघुराई। हरषि उठाइ लियो उर लाई॥

(वही, ६। १२०। ५-६)

—कृपानिधान भगवान् श्रीरामने निषादराजको अपने हृदयसे लगाकर अतिशय प्यारसे अपने समीप बैठाया और उनका कुशल-मङ्गल पूछने लगे। निषादराजके तन, मन और प्राण—सभी आनन्दमग्न थे। उन्होंने प्रभुसे अत्यन्त विनयपूर्वक निवेदन किया—

अब कुसल पद पंकज बिलोकि बिरंचि संकर सेव्य जे।
सुख धाम पूरन काम राम नमामि राम नमामि ते॥

(मानस ६। १२०। छं० १)

'आपके जो चरण-कमल ब्रह्माजी और शंकरजीसे सेवित हैं, उनके दर्शन करके मैं अब सकुशल हूँ। हे सुखधाम! हे पूर्णकाम रामजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ।'

करुणामूर्ति प्रभु श्रीराम अयोध्या पधारे और राज्य-सिंहासनासीन हुए। निषादराज उक्त महोत्सवमें आदिसे अन्ततक उपस्थित रहकर अपने योग्य सेवाका कार्य करते और प्रभुकी मनोहर मूर्तिके दर्शन कर अकथनीय सुखका अनुभव करते रहे। सबको विदा करते समय कमलनयन श्रीरामने निषादको बड़े ही प्रेमसे अपने पास बुलाकर उन्हें बहुमूल्य भूषण-वसन प्रदान किये और अतिशय स्नेहसिक्त वाणीमें कहा—

जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू॥
तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता॥

(वही, ७। १९। १-१½)

करुणामय जगदाधार प्रभु श्रीरामके इस वचनसे निषादराजके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये और वे प्रभु-पद-पद्मोंमें गिर पड़े। और फिर—

'चरन नलिन उर धरि गृह आवा।' (वही, ७। १९। २½)

—शि० दु०

सखा सुग्रीव

न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः।
मद्विधा वा पितुः पुत्राः सुहृदो वा भवद्विधाः॥
(वा० रा० ६।१८।१५)

श्रीरामजी सुग्रीवजीसे कहते हैं—'भैया! सब भाई भरतके समान आदर्श नहीं हो सकते। सब पुत्र हमारी तरह पितृभक्त नहीं हो सकते और सभी सुहृद् तुम्हारी तरह दुःखके साथी नहीं हो सकते।'

सभी सम्बन्धोंके एकमात्र स्थान श्रीहरि ही हैं। उनसे जो भी सम्बन्ध जोड़ा जाय, उसे वे पूरा निभाते हैं। सच्ची लगन होनी चाहिये, एकनिष्ठ प्रेम होना चाहिये। प्रेमपाशमें बँधकर प्रभु स्वामी बनते हैं। वे सखा, सुहृद्, भाई, पुत्र, सेवक—सभी कुछ बननेको तैयार हैं। उन्हें शिष्टाचारकी आवश्यकता नहीं, वे तो सच्चा स्नेह चाहते हैं।

प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सीलनिधान॥
(मानस १।२९ क)

सुग्रीवको भगवान्‌ने स्थान-स्थानपर अपना सखाभक्त माना है। वाली और सुग्रीव—ये दो भाई थे। दोनोंमें ही परस्पर बड़ा स्नेह था। वाली बड़ा था, इसलिये वही वानरोंका राजा था। एक बार एक राक्षस रात्रिमें किष्किन्धा आया। आकर बड़े जोरसे गरजने लगा। वाली उसे मारनेके लिये नगरसे अकेला ही निकला। सुग्रीव भी भाईके स्नेहके कारण उसके पीछे-पीछे चला। वह राक्षस एक बड़े भारी बिलमें घुस गया। वाली अपने छोटे भाईको द्वारपर बैठाकर उस राक्षसको मारने उसके पीछे-पीछे उस गुफामें चला गया। सुग्रीवको बैठे-बैठे एक वर्ष बीत गया, किंतु वाली उस गुफामेंसे नहीं निकला। एक महीनेके बाद गुफामेंसे रक्तकी धार निकली। सुग्रीवने समझा, मेरा भाई मर गया है, अतः उस गुफाको एक बड़ी भारी शिलासे ढककर वह किष्किन्धापुरी लौट गया। मन्त्रियोंने जब राजधानीको राजासे हीन देखा, तब उन्होंने सुग्रीवको राजा बना दिया। थोड़े ही दिनोंमें वाली आ गया। सुग्रीवको राजगद्दीपर बैठा देखकर वह बिना ही जाँच-पड़ताल किये क्रोधसे आग-बबूला हो गया और उसे मारनेको दौड़ा। सुग्रीव भी अपनी प्राणरक्षाके लिये भागा। भागते-भागते वह मतंग ऋषिके आश्रमपर जा पहुँचा। वाली वहाँ शापवश जा नहीं सकता था। अतः वह लौट आया और सुग्रीवका धन-स्त्री आदि सब कुछ उसने छीन लिया। राज्य, स्त्री और धनके हरण होनेपर दुःखी सुग्रीव अपने हनुमान् आदि चार मन्त्रियोंके साथ ऋष्यमूक पर्वतपर रहने लगा।

सीताजीका हरण हो जानेपर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मणजीके साथ उन्हें खोजते-खोजते शबरीके बतानेपर ऋष्यमूक पर्वतपर आये। सुग्रीवने दूरसे ही श्रीराम-लक्ष्मणको देखकर हनुमान्‌जीको भेजा। हनुमान्‌जी उन्हें आदरपूर्वक ले आये। अग्निके साक्षित्वमें श्रीराम एवं सुग्रीवमें मित्रता हुई। सुग्रीवने अपना सब दुःख भगवान्‌को सुनाया। भगवान्‌ने कहा—'मैं वालीको एक ही बाणसे मार दूँगा।' सुग्रीवने परीक्षाके लिये अस्थिसमूह दिखाया।........श्रीरामजीने उसे पैरके अँगूठेसे ही गिरा दिया। फिर सात ताड़ोंको एक ही बाणसे गिरा दिया। सुग्रीवको विश्वास हो गया कि श्रीरामजी वालीको मार देंगे। सुग्रीवको लेकर श्रीरामजी वालीके यहाँ गये। वाली लड़ने आया, दोनों भाइयोंमें बड़ा युद्ध हुआ। अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीने तककर एक ऐसा बाण वालीको मारा कि वह मर गया।

वालीके मरनेपर श्रीरामजीकी आज्ञासे सुग्रीव राजा बनाये गये और वालीके पुत्र अङ्गदको युवराजका पद दिया गया। तदनन्तर सुग्रीवने वानरोंको इधर-उधर श्रीसीताजीकी खोजके लिये भेजा और श्रीहनुमान्‌जीद्वारा सीताजीका समाचार पाकर सुग्रीव अपनी असंख्य वानरी सेना लेकर लङ्कापर चढ़ गये। वहाँ उन्होंने बड़ा पुरुषार्थ दिखलाया। सुग्रीवने संग्राममें रावणतकको इतना छकाया कि वह भी इनके नामसे डरने लगा।

लङ्का-विजय करके ये भी श्रीरामजीके साथ श्रीअवधपुरी आये और वहाँ श्रीरामजीने उनका परिचय कराते हुए गुरु वसिष्ठजीसे कहा—

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥
मम हित लागि जनम इन्ह हारे। भरतहु तें मोहि अधिक पिआरे॥
(वहीं, ७।७।४)

श्रीरामजीने सुग्रीवजीको स्थान-स्थानपर 'प्रिय सखा' कहा है और अपने मुखसे स्पष्ट कहा है कि 'तुम्हारे समान आदर्श निःस्वार्थ सखा संसारमें विरले ही होते हैं।' श्रीरामजीने थोड़े दिन इन्हें अवधपुरीमें रखकर विदा कर दिया और ये भगवान्‌की लीलाओंका स्मरण-कीर्तन करते हुए अपनी पुरीमें

रहने लगे। अन्तमें जब भगवान् निजलोक पधारे, तब ये भी आ गये और भगवान्‌के साथ ही साकेत गये। सुग्रीव-जैसे भगवत्कृपाप्राप्त सखा संसारमें विरले ही होते हैं। उनका समस्त जीवन रामकाज और रामस्मरणमें ही बीता। यही जगमें जीवनका परम लाभ है। भगवान्‌से प्रार्थना करते हुए सुग्रीवजी कहते हैं—

त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्तिस्त्वन्नामसंगीतकथासु वाणी।
त्वद्भक्तसेवानिरतौ करौ मे त्वदङ्गसङ्गं लभतां मदङ्गम्॥
त्वन्मूर्तिभक्तान् स्वगुरुं च चक्षुः पश्यत्वजस्रं स शृणोतु कर्णः।
त्वज्जन्मकर्माणि च पादयुग्मं व्रजत्वजस्रं तव मन्दिराणि॥
अङ्गानि ते पादरजोविमिश्रतीर्थानि बिभर्त्वहिशत्रुकेतो।
शिरस्त्वदीयं भवपद्मजाद्यैर्जुष्टं पदं राम नमत्वजस्रम्॥
(अ० रा० ४। १। ९१-९३)

'प्रभो! मेरी चित्तवृत्ति सदा आपके चरण-कमलोंमें लगी रहे, मेरी वाणी सदा आपके नामकीर्तन एवं लीलागान करती रहे, हाथ आपके भक्तोंकी सेवामें लगे रहें और मेरा शरीर (आपके पाद-स्पर्श आदिके मिलसे) सदा आपका अङ्ग-सङ्ग करता रहे। मेरे नेत्र सर्वदा आपकी मूर्ति, आपके भक्त और अपने गुरुका दर्शन करते रहें; कान निरन्तर आपके दिव्य जन्म-कर्मोंकी कथा सुनते रहें और मेरे पैर सदा आपके मन्दिरोंकी यात्रा करते रहें। हे गरुडध्वज! मेरा शरीर आपकी चरण-रजसे युक्त तीर्थोदकको धारण करे और मेरा सिर निरन्तर आपके उन चरणोंमें प्रणाम किया करे, जिनकी शिव और ब्रह्मादि देवगण भी सदैव सेवा करते हैं।'

रामभक्त विभीषण

(लेखक—डॉ० श्रीगोपीनाथजी तिवारी एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

गोस्वामी तुलसीदासके मानसके समस्त पात्रोंके नाम सार्थक हैं। वे 'यथा नाम तथा गुण'के निदर्शन हैं! भविष्य-द्रष्टा ऋषिराज वसिष्ठने राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्नका नामकरण उनके गुणोंके आधारपर किया। यथा—

बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥
जाके सुमिरन तें रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥

लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥
(मानस १९६। ४, १९७)

राक्षसोंके नाम भी इसी प्रकारके हैं। रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद, खर, दूषण, त्रिशिरा, महोदर आदि सभी नाम सार्थक हैं। इन सबसे भिन्न हैं विभीषण! विभीषणका अर्थ है—विशेषतया भीषण; किंतु विभीषणजी आकारसे ही भीषण थे, गुणोंसे नहीं। अतः वे 'यथा नाम तथा गुणः' न होकर नामके विपरीत गुणवाले राक्षस थे। विभीषणका चरित्र भी गोस्वामीजीको प्राचीन रामायणों एवं रामकाव्योंसे प्राप्त था। उन्होंने उसे संशोधित एवं परिष्कृत करके विभीषणको ऊँचा उठाया है और उन्हें सम्माननीय पद प्रदान किया है।

विभीषणका दर्शन सबसे पहिले हमें आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणमें होता है। लोकप्रवादके रूपमें विभीषणका नाम उन देशद्रोहियोंमें गिना जाता है, जो शत्रुसे मिलकर देशका घात कराते हैं। सुग्रीवने भी तो यही किया था, किंतु सुग्रीवका नाम देशद्रोहियोंमें क्यों नहीं गिना जाता है? दोनोंको ही उनके बड़े भाईने निरादर करके निकाल दिया था। दोनों ही रामकी शरणमें पहुँचे और रामने दोनोंके भाइयोंको युद्धमें मारा। दोनोंकी परिस्थितियोंपर विचार करें तो विभीषणने अपने स्वार्थके लिये भाईका विरोध नहीं किया, वरं भाई रावणके जघन्य कृत्योंका विरोध किया था। एक डाकू है। वह गरीबोंकी सहायता करता है, अपने साथियोंकी समृद्धिका ध्यान रखता है, किंतु है अनाचारी दस्यु। वह मृत्युका मेला रचता है, स्त्रियोंकी माँग पोंछता है और कन्याओंको बलात् हर लेता है। यदि उसका भाई या पुत्र उसका विरोध करे तो क्या वह देशद्रोही है? प्रह्लादने पिताका विरोध किया और नरसिंहदेवका साथ दिया। विभीषण यदि जनक, दशरथ या ऐसे किसी राजाका भाई होता और उसके विरुद्ध शत्रुका साथ देता तो दोषी माना जाना चाहिये था; किंतु उसने विरोध किया रावणकी अनैतिक और घृणित प्रवृत्तिका। रामकाव्योंमें विभीषण इसी रूपमें चित्रित है।

आदिकाव्यमें महर्षि वाल्मीकिने उसे धार्मिक पुरुषके रूपमें चित्रित किया है—

'विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मपरः शुचिः।'
(वा० रा० ७।१०।६)

कविको 'धर्मात्मा' कहकर संतोष नहीं होता है और वह लिखता है कि 'विभीषण सदा ही धर्मकार्योंमें रत था तथा पवित्र था।'

रावण-कुम्भकर्णके साथ विभीषण भी तपस्या करने गया और उसने भी दोनों भाइयोंके साथ घोर तप किया। कुम्भकर्ण ग्रीष्ममें पञ्चाग्नि तपता था, शिशिरमें जलके मध्य बैठता था और वर्षामें वीरासनपर बैठकर वर्षा-प्रहार सहता था। रावणने अपने सिर काटकर अग्निको होमे। विभीषणने अपने हाथ सिरके ऊपर उठाये रखे तथा वेदपाठ करता रहा। ब्रह्मा प्रकट हुए। रावणने वर माँगा—'प्रभो! मुझे मृत्युमे भय न रहे और अमरता प्रदान करें।' ब्रह्माने कहा—'दशग्रीव! पूर्ण अमरता नहीं मिल सकती।' तब रावण बोला—'अच्छा तो मुझे गरुड, सर्प, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस और देवताओंसे अवध्य बना दीजिये। नर-वानरोंको तो मैं कुछ समझता ही नहीं। उन्हें तो वैसे ही चुटकीसे मसल सकता हूँ।' कुम्भकर्णने झपकी लेते-लेते कहा—'प्रभो! बस, मुझे सोनेका वरदान दीजिये। सोना ही मुझे सबसे प्रिय है।' विभीषणके पास आकर ब्रह्माजी बोले—'धर्मनिष्ठ वत्स! वर माँग।' विभीषणने वर माँगा—'प्रभो! दारुण संकटमें भी मेरी धर्म-मति नष्ट न हो। मुझे ब्रह्मास्त्रका प्रयोग प्राप्त हो तथा मैं जिस आश्रममें भी रहूँ, मेरी धर्मप्रवृत्ति बनी रहे; क्योंकि जिनका धर्ममें अनुराग बना रहता है, उन्हें जगमें कुछ भी दुर्लभ नहीं होता।' ब्रह्माजी प्रसन्न हो बोले—'पुत्र! राक्षसकुलमें उत्पन्न होनेपर भी तुम्हारी बुद्धि धर्ममें लगी है, तुम धन्य हो। तुम्हें अधर्म रुचिकर नहीं होगा। तुमको मैं अमरत्व भी प्रदान करता हूँ।' जिस अमरत्वको रावण न प्राप्त कर सका, उसे विभीषणने सहज ही पा लिया।

रावण जब हनुमान्‌को मरवानेका उद्योग करने लगा, तब धर्मात्मा विभीषणने रावणको राज्यधर्म समझाते हुए कहा—'भाई! यह रामका दूत है। राजनीतिमें दूत अवध्य है। अतः इसे कोई दूसरा दण्ड दीजिये। दूतको जो दण्ड दिये जा सकते हैं—वे हैं विरूप कर देना, शरीरपर चाबुक मारना, सिर मुँड़वा देना, तनपर कोई दाग देना।' रावणने धर्मात्मा विभीषणका परामर्श मानकर हनुमान्‌की पूँछको दागनेकी आज्ञा दी।

राम जब सागरतटपर आ पहुँचे, तब सूचना पाकर रावणने सभामें मन्त्रियोंसे परामर्श किया। सबने कहा—'भयकी क्या बात है। दोनों मानवोंको बाँध लेंगे या मार डालेंगे, वानरोंको मसल देंगे।' विभीषणने कहा—'भाई साहब! मैं इन लोगोंसे सहमत नहीं हूँ। मेरा विचार है कि सीताको लौटा दिया जाय ताकि सब राक्षस युद्धमें ध्वंससे बच जायँ, हमारे परिवार सकुशल रह सकें।' रावणने विभीषणकी बात अनसुनी कर सभा भङ्ग कर दी। विभीषणका धार्मिक हृदय बराबर कह रहा था—'रावणने पहले तो परायी स्त्रीका अपहरण किया और अब समस्त देशको युद्धमें झोंक दिया है; यह उचित नहीं है।' वह रात्रिमें पुनः रावणके रनिवासमें पहुँचा और उसने भाईको समझानेका उद्योग किया। पहले उसने रावणकी प्रशंसा की, उसके गुणोंका बखान किया और तब कहा—'भइया! मेरी बात मानो। सीताने जबसे लङ्कामें पदार्पण किया है, तबसे बराबर हमारी नगरीमें अपशकुन हो रहे हैं। अतः उसे रामके पास लौटा दो। पर-स्त्री-हरण अनुचित कार्य है।' रावण बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने विभीषणको बहुत डाँटा-फटकारा। विभीषणने इस डाँट-फटकार, दुत्कार और अपमानकी ओर दृष्टिपात न करके रावणको फिर समझाया। रावण अब आगबबूला हो आपेसे बाहर हो गया और बोला—'विभीषण! तुरंत मेरे सामनेसे हट जाओ।' विभीषण घर चला गया।

दूसरे दिन राजसभामें युद्ध-मन्त्रणा हुई। कुम्भकर्णने भी कहा—'रावण! पर-स्त्री-हरण कर तूने बुरा काम किया है, यह अनीति है। परंतु मैं युद्धमें तेरा ही साथ दूँगा।' विभीषणने पुनः रावणको समझाया, रावणके पक्षमें बोलनेवाले प्रहस्त तथा मेघनादको भी उसने दुत्कारा। तब रावण उसे धिक्कारता है, कुलकलङ्क कहता है और दूर हो जानेको कहता है। विभीषण उठता है और चार राक्षसोंके साथ बाहर जाता हुआ कहता है—'रावण! अब तुम्हें कोई अनीतिमार्गमें न रोकेगा। ये सब खुशामदी टट्टू हैं, ठकुरसुहाती कहते हैं। तुम अनीतिकी राहपर जाकर अपना, अपने वंशका तथा देशका नाश करने जा रहे हो।' इतना कहकर विभीषण रामके पास चला गया। विभीषणकी न्यायपरायण धर्मबुद्धि पर-स्त्री-हरणमें घोर अनीति देखती है और वह रावणके इस कार्यका घोर विरोध करता है। उसने रावणको समझाने और न्यायमार्गपर लानेका भरसक प्रयत्न किया, रावणकी गालियाँ सहीं; पर जब उसने देखा—यहाँ पत्थरपर पानी पड़ रहा है,

उसकी धर्मबुद्धि अन्याय सहन न कर सकी और वह भाई रावणको छोड़कर चला गया । वाल्मीकि-रामायणमें विभीषणका यही रूप चित्रित है ।

अध्यात्मरामायणका वक्ता विभीषणके चरित्रमें कुछ जोड़ता है; अन्यथा वह वही है, जो वाल्मीकिके ग्रन्थमें प्राप्त है । अध्यात्मरामायणमें भी वह वाल्मीकीय रामायणके समान धार्मिक तथा नीतिमान् है । वहाँ भी जब रावण हनुमान्‌के वधकी आज्ञा देता है, तब विभीषण भाई रावणको समझाता है । रावण विभीषणके परामर्शको मानकर हनुमान्‌की पूँछ जलानेकी आज्ञा देता है । सीता-हरणके पश्चात् विभीषण रावणको केवल एक बार राजसभामें परामर्श देता है कि 'सीताको लौटा देना चाहिये ।' रावण इसपर विभीषणको बुरी तरह फटकारता हुआ कहता है—'विभीषण ! भाईके रूपमें तू मेरा शत्रु है । तू अनार्य है, कृतघ्न है । तुझे अपने साथ रखना ठीक नहीं है । सजातीय ही जाति-नाश किया करते हैं । तुझे धिक्कार है । यदि तेरे स्थानपर कोई अन्य व्यक्ति होता तो मैं उसे मसलकर रख देता ।' वाल्मीकीय रामायणमें विभीषणने रावणको तीन बार समझाया है, जब कि अध्यात्ममें केवल एक बार, और वह भी राजसभामें । वाल्मीकि-रामायणमें रावणने उसे बार-बार धिक्कारा-डाँटा, दुत्कारा और शब्दोंसे बींधा । अध्यात्मरामायणका विभीषण भी रामके पास चला गया । अध्यात्मरामायणका विभीषण रामका भक्त है । उनमें रामको भगवान्‌के रूपमें चित्रित किया गया है । केवल राजसभामें रावण विभीषणको एक बार डाँटता है और विभीषण उसे छोड़कर रामकी शरणमें चला जाता है, मानो वह इसके लिये पहलेसे ही तैयार था । वहाँ वह रामके पास जाकर यह भी कहता है कि 'रावणने मुझे खड्गसे मारनेका प्रयास किया, अतः मैं भागकर आपकी शरणमें आया हूँ ।' अध्यात्मरामायणके वक्ताने राजसभाके प्रसङ्गमें इस बातकी चर्चा नहीं की है कि रावण तलवार लेकर विभीषणको मारने दौड़ा । तब क्या विभीषणने यह असत्य-भाषण किया ? नहीं ! जिस रूपमें अध्यात्मरामायणके वक्ताने विभीषणका चरित्राङ्कन किया है, उसके अनुसार वह झूठ नहीं बोल सकता । कवि किसी बातको एक स्थानपर न कहकर दूसरेपर कह दिया करता है । अच्छा तो यह होता कि ग्रन्थकार राजसभामें ही रावणद्वारा असि उठवाता । तब यह संदेह उत्पन्न न होता कि विभीषणने असत्यभाषण किया । अध्यात्मरामायणने रावणके तलवार उठानेकी बात कहलाकर *विभीषणके रामकी ओर जानेकी बातको अधिक प्राकृतिक* बना दिया है । विभीषण क्या करता उस परिस्थितिमें ! उसने रावणको छोड़ना ही उचित ठहराया और रामकी शरणमें जाना हितकर समझा । वह भगवान् रामके पास जाकर उनकी स्तुति करता है और उनसे प्रार्थना करता है—

> कर्मबन्धविनाशाय त्वज्ज्ञानं भक्तिलक्षणम् ।
> त्वद्ध्यानं परमार्थं च देहि मे रघुनन्दन ॥
>
> न याचे राम राजेन्द्र सुखं विषयसम्भवम् ।
> त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदास्तु मे ॥
>
> (अध्यात्म० ६ । ३ । ३६-३७)

अर्थात्—'हे प्रभो ! सांसारिक कर्मपाशोंके नाशके लिये मुझे भक्ति-युक्त ज्ञान दीजिये । साथ ही अपना ध्यान और पारमार्थिक कल्याण प्रदान कीजिये । मैं ऐन्द्रिय विषयोंसे उद्भूत सुखोंकी इच्छा नहीं करता; वरं मुझे अपने कमल-चरणोंकी भक्तिका दान कीजिये ।'

अध्यात्मरामायणके वक्ताने विभीषणको नीतिमान् और धार्मिक बनानेके साथ-ही-साथ उसे ज्ञानी और भक्त भी चित्रित किया है । उक्त ग्रन्थमें ज्ञानकी प्रधानता है, अतः विभीषण ज्ञानी भक्त है । उधर गोस्वामीजी उसे भक्त, केवल भक्तके रूपमें चित्रित करते हैं । उनके मानसमें भी वह धार्मिक और नीतिमान् है । उसके घोर तप करनेके पश्चात् जब सृष्टिकर्ता ब्रह्मा उससे वर माँगनेको कहते हैं, तब वह केवल भगवान्‌के चरण-कमलोंमें निश्चल प्रेम माँगता है—

> गए बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर मागु ।
> तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु ॥
>
> (मानस १ । १७७)

इस प्रकार गोस्वामीजीके विभीषण परम भक्तके रूपमें प्रथम बार सम्मुख आते हैं । गोस्वामीजी विभीषणके चरित्रको और ऊँचा उठानेके हेतु एक सर्वथा मौलिक कल्पना करते हैं, जो तुलसीसे पूर्व किसी रामायणकारने नहीं की है । यह है सीता-खोजके अवसरपर विभीषणकी हनुमान्‌से भेंट । वाल्मीकीय रामायण तथा अध्यात्मरामायणमें हनुमान् रावणके राजमहलोंमें सीताका अन्वेषण करते हुए अशोक-वाटिकामें

पहुँचते हैं; किंतु मानसमें हनुमान्‌जी रावणका सौध खोजते हैं । रावणके राजमहलके निकट ही उन्हें एक भवन दिखायी देता है । देखनेसे ही ज्ञात हो जाता है कि यह किसी रामभक्तका मकान है । हनुमान् देखते हैं—

भवन एक पुनि दीख सुहावा । हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा ॥
रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ ॥
(मानस ५ । ४ । ४; ५)

इससे स्पष्ट है कि विभीषण पहलेसे ही रामका भक्त था । तभी तो उसका घर 'रामायुध'-चिह्नित था । हनुमान्‌जीने सोनेवाले व्यक्तिपर दृष्टि फेंकी । वह राक्षस था । प्रातःकाल होने जा रहा था । हनुमान्‌जी एक गवाक्षपर बैठकर देखने लगे । विभीषण जागे । उनके मुखसे निकला—राम-राम, राम-राम । हनुमान्‌जी अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन्होंने समझ लिया कि निश्चिततया यह कोई रामभक्त है, सज्जन है और तब वे ब्राह्मणका रूप बनाकर विभीषणके पास गये । मानसमें हनुमान्‌जी जब भी कहीं कुछ पता लगाने गये हैं, ब्राह्मणका रूप धरकर पहुँचे हैं । सुग्रीव जब महावीरको दो आगन्तुकोंका पता लगाने भेजते हैं, तब भी—

बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ । माथ नाइ पूछत अस भयऊ ॥
(वही, ४ । ० । ३)

ब्राह्मण-वेष बनाया तो, किंतु व्यवहारमें एक त्रुटि हो ही गयी । ब्राह्मण क्षत्रियको प्रणाम नहीं करता है, किंतु हनुमान्‌जीने माथा नवाकर पूछा—

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा । छत्री रूप फिरहु बन बीरा ॥
(वही, ४ । ० । ३½)

हनुमान्‌जीको लगता है, ये भी क्षत्रिय नहीं, क्षत्रियरूपमें कोई और हैं । बात तो सत्य थी । क्षत्रियरूपमें स्वयं भगवान् थे, यही तुलसीका मन्तव्य है । दूसरी बार विप्ररूप धरकर विभीषणके पास पहुँचे । यहाँ हनुमान्‌जी प्रणाम नहीं करते; क्योंकि सामने प्रभु नहीं हैं । विभीषण ही प्रणाम कर कुशल-मङ्गल पूछते हैं—

करि प्रनाम पूँछी कुसलाई । बिप्र कहहु निज कथा बुझाई ॥
(वही, ५ । ५ । ३)

आगे तीसरी बार रामकी आज्ञासे भरतकी दशाका पता लगानेके लिये अयोध्यामें विप्ररूप धरकर जाते हैं । यहाँ तो विभीषण और हनुमान्—दोनों ही रामकी चर्चा करके अत्यन्त आनन्द पाते हैं और प्रगाढ़ मित्र बन जाते हैं । अतः आगे जब रावण आज्ञा देता है कि इस बंदरको मार डालो, तब विभीषण आकर ऐसा प्रकट करते हैं, मानो वे उस वानरको जानते ही नहीं और कहते हैं—

नाइ सीस करि बिनय बहूता । नीति बिरोध न मारिअ दूता ॥
आन दंड कछु करिअ गोसाँई । सबहीं कहा मंत्र भल भाई ॥
(वही, ५ । २३ । ४)

नीतिमान् विभीषणकी बात रावण मान जाता है । सारी लङ्कामें विभीषण अपने उच्च आचार, सज्जनोचित व्यवहार, नीतिज्ञान और न्याय-पथ-गामिताके लिये प्रसिद्ध था ।

रावणको हनुमान्‌ने समझाया—

देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी । भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी ॥
जाकें डर अति काल डेराई । जो सुर असुर चराचर खाई ॥
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै । मोरें कहें जानकी दीजै ॥
(वही, ५ । २१ । ४-४½)

मन्दोदरीने भी लङ्का-दहनके पश्चात् लङ्कावासियोंकी व्याकुलता जानकर रावणको एकान्तमें ले जाकर सीताको वापस भेजनेके लिये विनयपूर्वक कहा—

तव कुल कमल बिपिन दुखदाई । सीता सीत निसा सम आई ॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हे । हित न तुम्हार संभु अज कीन्हे ॥
(वही, ५ । ३५ । ५)

किंतु रावणने हँसकर उसे गलेसे लगाया और राजसभामें पहुँचा । वहाँ उसने मन्त्रियोंसे उनका मत पूछा । सब मन्त्र देनेवाले ठकुरसुहाती कहने लगे । विभीषण भी इसी अवसरका लाभ उठानेके लिये राजसभामें पहुँचा । उसका हृदय दुःखी था, वह बार-बार सोचता था कि 'रावण अन्याय-पथपर जा रहा है । पहले तो दूसरेकी स्त्रीका हरण पाप है, उसपर भी वह उन भगवान् रामकी प्यारी पत्नी है, जिनका मैं भक्त हूँ । मुझे रावणको समझाना ही चाहिये, चाहे जो कुछ भी फल हो । वह क्रुद्ध हो तो हो; पर मैं उसे कुपथसे विरत करूँगा ।' रावण राजसभामें बैठकर सबका मत ले रहा है; यह सूचना पाकर विभीषण अपने कक्षसे राजसभामें आ जाता है और आज्ञा पाकर अपना नीति-धर्ममय मत प्रकट करता है—

जो आपन चाहै कल्याना । सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना ॥
सो परनारि लिलार गोसाईं । तजउ चउथि के चंद कि नाईं ॥
(वही, ५ । ३८ । ३)

तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला ॥
ताहि बयरु तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा ॥
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही ॥
(वही, ५ । ३८ । ३½, ३)

रावणके नानाका मन्त्री वृद्ध माल्यवान् विभीषणका समर्थन कर रावणको समझाता है—

तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन ॥
(वही, ५ । ३९ । १)

रावणने प्रतिहारको पुकारकर कहा—'कौन है यहाँ? इन दोनोंको यहाँसे निकाल दो।' माल्यवान् इस समय तो घर चला जाता है और युद्ध प्रारम्भ हो जानेपर पुनः रावणको समझानेका प्रयास करता है—

परिहरि बयरु देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही ॥
(वही, ६ । ४८ । ३½)

रावण उसे अपने यहाँसे भाग जानेका आदेश देता है—

बूढ़ भएसि न त मरतेउँ तोही। अब जनि नयन देखावसि मोही ॥
(वही, ६ । ४८ । ४½)

वह भी रावणको छोड़कर चला जाता है।

विभीषण रावणको सुबोध देता है—

तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार ॥
(वही, ५ । ४०)

विभीषणके इस कथनसे ज्ञात होता है कि रावण विभीषणको बहुत मानता था। तभी तो वह रावणके क्रुद्ध हो जानेपर भी समझानेका साहस करता है। मुनि पुलस्त्यने भी अपने एक शिष्यके हाथ विभीषणके पास संदेश भिजवाया था कि 'तू रावणको समझा दे कि वह सीताको लौटा दे और रामसे शत्रुता छोड़कर उनका भक्त बन जाय। नहीं तो सारा परिवार नष्ट होगा और राक्षस भी सब मारे जायँगे।' मुनि पुलस्त्य रावणके पितामह थे। उन्होंने विभीषणके पास यह संदेश भेजा, रावणके पास नहीं; क्योंकि वे जानते थे, 'रावण मेरी बात भी न सुनेगा; किंतु शायद विभीषणका परामर्श मान ले।' पुलस्त्यका संदेश पाकर विभीषणको पूर्ण निश्चय हो गया कि 'रावण सारी जाति, देश और वंशको नष्ट करने जा रहा है। वह घोर अनीतिका पथ पकड़े हुए है। मैं उसे समझाऊँगा, बार-बार समझाऊँगा।' वह रावणसे भी कहता है—'भाई! पितामहका संदेश यही है, जो मैं आकर आपसे बता रहा हूँ। अतः मान जाओ और सीताको लौटा दो, रामसे वैर छोड़ दो और उन्हें प्रभु मानो।'

रावण क्रुद्ध होकर खड़ा हो गया और बोला—'अच्छा, तू मरना ही चाहता है। तू शत्रुके पक्षका समर्थन कर रहा है, तो जा, उसके पास जाकर उसे ही नीति सिखा। जा, यहाँसे निकल' और यों कहकर उसे लात मारकर ढकेला। तब भी विभीषण पैर पकड़कर बार-बार समझाने लगा। रावण न माना और विभीषण रामकी शरणमें चला गया। गोस्वामीजीके सामने यह तथ्य था कि लोग विभीषणको दोष दे सकते हैं कि उसने बन्धुद्रोह किया, देशद्रोह किया। गोस्वामीजीने स्पष्टतया उस परिस्थितिको रखा है, जब विवश होकर विभीषणको रावणका त्याग करके रामके पास जाना पड़ा। वह भगवान् रामका परम भक्त था। किंतु दाशरथि राम ही भगवान् हैं, इसका ज्ञान उसे हनुमान्से हुआ। तबसे बराबर वह रावणके कुकृत्यका विरोध हृदयसे करने लगा। उसकी कामना थी कि रावण सीताको वापस भेज दे, रामको मनुष्य न मानकर भगवान् समझने लगे तथा उनकी भक्ति हृदयमें धारण करे। समझानेपर भी रावण इस हठपर अड़ा रहा कि 'मैं रामका वैरी बना रहूँगा और सीताको न लौटाऊँगा।' फलतः विनय-पत्रिकाका वह पद यहाँ चरितार्थ हुआ—

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ॥
(विनय०, १७४)

अन्यायी दुर्योधनका विनाश श्रीकृष्णने उसके भाई अर्जुनसे कराया। अर्जुनको श्रीकृष्णने समझाया और उसने शस्त्र उठाया। विभीषणने जब देखा, रावण अन्यायमार्ग नहीं छोड़ेगा, देशको रसातलकी ओर ले जायगा, तब वह रामकी शरणमें चला गया, जिनका वह भक्त बन चुका था। तलवारको लेकर मारनेके लिये दौड़नेकी अपेक्षा चरण-प्रहार अधिक कठोर था। वह घोर अपमान विभीषणका ही नहीं था, वरं उसकी धर्मबुद्धिका था, मुनि पुलस्त्यका था, माल्यवान् आदि बुद्धिजीवियोंका था। ऐसे रावणको वह वशमें नहीं कर सकता था, बाँधकर नहीं डाल सकता था, अतः त्यागकर अपने रामकी शरणमें चला गया। जाते समय उसने कहा—

रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालु बस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि॥

(मानस ५। ४१)

'खोरि' शब्द व्यञ्जित करता है कि विभीषण समझ रहा था कि 'मैं भले मार्गपर नहीं जा रहा हूँ, मुझे जाना नहीं चाहिये था। किंतु विवशता आ पड़ी थी। वह अब वहाँ रह नहीं सकता था।'

वह भगवान्‌के चरणकमल-दर्शनकी कामना करता हुआ भगवान्‌के चरणोंपर गिरता है और कहता है—'मैं आर्त्त हूँ। मेरा कोई नहीं। मुझे रावणने त्याग दिया है। अब आप ही मेरे रक्षक हैं।' रामने उसे अपना लिया।

रामने कहा—

कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा॥
खल मंडलीं बसहु दिनु राती। सखा धरम निबहइ केहि भाँती॥
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती॥
बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥

(वही, ५। ४५। २-३½)

रामने नीतिपूर्वक उसे लङ्काका राजा तो घोषित किया ही, उससे कहा, 'तुम वर भी माँग लो।' निश्छल भावसे वह स्पष्टतया कह देता है—

उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही॥
अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी॥

(वही, ५। ४८। ३-३½)

उर-वासनाके लिये रामने जलसे तिलक कर दिया और अपनी भक्ति भी दी। अध्यात्मरामायणका ज्ञानी भक्त यहाँ केवल भक्तके रूपमें दिखायी पड़ता है।

कुम्भकर्ण भी विभीषणके इस कार्यका समर्थन करता हुआ कहता है—

सुनु सुत भयउ कालु बस रावन। सो कि मान अब परम सिखावन॥
धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन। भयहु तात निसिचर कुल भूषन॥
बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा सुख सागर॥

(वही, ६। ६३। ४-४½)

गीतावलीमें गोस्वामीजीने विभीषणके चरित्रको और संशोधित किया है। रावण जब लात मारकर उसे बाहर निकाल देता है, तब विभीषण सीधे रामके पास नहीं पहुँचता। वह अपने घर माँके पास जाता है। वहाँ शिवजी भी बैठे थे। शिव कहते हैं—'अब तू रामकी शरण जा। वहाँ ही तेरा त्राण होगा' और भक्त विभीषण रामके शरणागत होता है। एक बार महात्मा गांधीने कहा था—'तुलाके दो पलड़ोंमें सत्य और देश रखे जायँ तो सत्यका पलड़ा भारी होगा। मुझसे कहा जाय कि एकको ग्रहण करो तो मैं सत्यको अपनाऊँगा।' भक्त विभीषणने भी वही किया। उसने रामरूपी सत्यको ग्रहण किया।

श्रीरामसे वर-याचना

(रचयिता—मानसतत्त्वान्वेषी वैद्य पं० श्रीभैरवानन्द शर्मा 'व्यापक' रामायणी)

रामचन्द्र! राजीवविलोचन! रघुकुल-भूषण! सीतानाथ!
दास आपके पद-पंकजमें सादर नवा रहा है माथ॥
हे नर-भूषण! त्रिभुवन-भूषण! दो 'व्यापक' को यह वरदान।
रसना करती रहे निरन्तर 'रामचरितमानस'का गान॥
नीरज-मण्डित नीर सदा यद्यपि सर्वत्र भरा रहता।
तो भी राजहंसका मानस[1] 'मानस' बिना नहीं रमता॥
इसी भाँतिसे मेरा मानस 'मानस-तट'पर वास करे।
इसे छोड़कर किसी वस्तुकी नहीं किसीसे आश करे॥

१—अस्ति यद्यपि सर्वत्र नीरं नीरजमण्डितम्। न रमेद् राजहंसस्य मानसं मानसं विना॥

राम-सेवक श्रीहनुमान्

(लेखक—श्रीशिशिरकुमार सेनगुप्त)

उस स्वर्णनिर्मित नगरी लङ्काके राजा रावणका ऐश्वर्यशाली राजदरबार था, जिसके सामने कुबेरका ऐश्वर्य भी नगण्य हो रहा था। अत्यन्त बहुमूल्य रत्नाभूषणोंसे जटित स्वर्णसिंहासनपर रावण बैठा था, जो शक्ति और पराक्रमकी प्रतिमा तथा अहंकार, धृष्टता और साहसकी प्रतिमूर्ति था।

शृङ्खलामें आबद्ध हनूमान्‌जी उस शक्तिशाली राजाके सामने खड़े हुए। उन्होंने समुद्रको पार किया और अनेक कठिनाइयोंको पारकर लङ्का पहुँचे। उन्होंने अशोक-वाटिकामें सीताका पता लगाया, उनसे बातें कीं और प्रभुका दिया हुआ संदेश तथा मुद्रिका उनको प्रदान की। परंतु लङ्का छोड़नेके पहले वे अपने प्रभुके शक्तिशाली शत्रुसे भेंट कर लेना चाहते थे। इसलिये उन्होंने उसके राजकीय उद्यानको ध्वस्त कर दिया और बहुतेरे रक्षकोंको मार डाला और अन्तमें स्वेच्छासे युवराज इन्द्रजित्‌के हाथों बंदी बने—यह सोचकर कि वे उस मुख्य दुश्मनके सामने उपस्थित किये जायँगे, जो अजेय है तथा जिसने दण्डकारण्यसे सीताका अपहरण किया है।

'तू कौन है? तू कहाँसे आया है?'—रावणने पूछा। हनूमान्‌जीने उत्तर दिया—'मैं वानरराज सुग्रीवका सहचर और अक्लिष्टकर्मा कोशलाधिपति रामचन्द्रका दास हूँ।'

'तूने मेरे शासनकी अवहेलना करनेका साहस कैसे किया? और मेरे जन धनका विनाश क्यों किया? क्या तू नहीं जानता कि मेरी वक्र भृकुटि देखकर देवता लोग भी काँप उठते हैं?'—इस प्रकार राक्षसराजने हनूमान्‌जीसे प्रथम प्रश्न किया।

हनूमान्‌जीने उत्तर दिया—'हाँ, मैं जानता हूँ कि तुम्हीं वह शठ हो, जिसने परस्त्रीका अपहरण किया है। अतएव तुम्हारा अवश्य ही मेरे प्रभुके हाथोंसे विनाश होगा।'

इस उत्तरसे वह भयानक राक्षसराज अत्यन्त कुपित हुआ। वह बोला—'अरे! तू बड़ा धृष्ट और मूर्ख है! क्या तू नहीं जानता कि मैं तुझे तत्काल प्राणदण्ड दे सकता हूँ! क्या तू मुझसे डरता नहीं?'

डरना तो दूर रहा, अपने प्रभुके प्रति अटूट श्रद्धासे प्रभावित होकर हनूमान्‌जीने फौरन उत्तर दिया—

न मे समा रावणकोटयोऽधमा
रामस्य दासोऽहमपारविक्रमः।
(अध्यात्म० ५।४।२९)

'तुम्हारे-जैसे करोड़ों नीच रावण मेरी समता नहीं कर सकते। क्या तुम नहीं जानते कि मैं श्रीरामचन्द्रका सेवक हूँ और इस कारण मुझमें अटूट और असीम शक्ति है?'

वीराग्रगण्य और विश्वको भयभीत करनेवाला रावण यह सुनकर चकित और स्तब्ध हो उठा; परंतु आत्मस्थ होते ही उसने हनूमान्‌को प्राणदण्ड देनेकी आज्ञा दे दी।

विभीषण सोच-विचार करते हुए बोले कि 'दूतका वध करना नैतिक नहीं है।' इसपर यह निश्चय किया गया कि हनूमान्‌की पूँछमें आग लगा दी जाय। पूँछमें आग लगा दी गयी। परंतु अहंकार, धृष्टता और वासनासे अंधे हुए उस पापी रावणकी समझमें नहीं आया कि जानकीकी शोकाग्निसे सारी नगरी भस्म हो सकती है। हनूमान्‌जीने सोनेकी नगरीको जलाकर भस्मावशिष्ट कर दिया।

× × × ×

वनवासके चौदह वर्ष अन्धकारमय, विपत्तिजनक तथा निराशा और कठिनाइयोंसे पूर्ण थे। अन्तमें उस लंबे दुःस्वप्नका अवसान हुआ, अयोध्यामें श्रीरामके राज्याभिषेकका सुखद और सुनहला दिन समीप आ गया। अवधके जीवन और ज्योति अयोध्याधिपति अपनी नगरीमें लौटे। अपूर्व सजावटके दृश्योंके बीच, आनन्दोन्मत्त कोटि-कोटि जनताके जय-जयकारके बीच और स्वर्गके देवताओं और अप्सराओंकी भीड़में राम और सीताको अयोध्या तथा विश्वके राजा-रानीके रूपमें राजमुकुट पहनाया गया।

जन-संकुल और खूब सजा-सजाया दरबार था। वहाँ बड़े-बड़े ऋषि-मुनि बैठे हुए थे, जिनका दर्शन पावनकारी था और जिनकी चरण-रज अधम-से-अधम पापीको भी निष्पाप बनानेमें समर्थ थी। वहाँ मन्त्री और योद्धागण भी थे, जो अपने रण-कौशल और विक्रमके लिये प्रख्यात थे। वहाँ वे शक्तिशाली योद्धा भी थे, जिन्होंने अपनी अदम्य शक्तिसे विश्व-विजयी राक्षसराजका सामना करके उसे पराजित किया था। वहाँ वानराधिपतियों एवं योधाओंमें अग्रगण्य सुग्रीव और अङ्गद,

नल और नील तथा गवय और गवाक्ष भी थे, जिनके सामने अजेय लङ्कापति रावण भी भय और त्रासमे काँप जाता था। वहाँ आयुर्वेद-विशारद जाम्बवान् तथा अनुपमेय हनूमान्, जो सभी अवसरोंपर उपयोगी थे, उपस्थित थे। वहाँ स्वामी और सखा श्रीरामचन्द्रके अनन्य भक्त राक्षसराज विभीषण भी थे। दरबारमें चतुर्दिक् मङ्गल-गानके साथ-साथ दिव्य संगीतकी लहरें उठ रही थीं तथा राजा और रानीके चारों ओर दिवौकसोंकी भीड़ लगी थी, जो त्रासप्रद रावणके अत्याचारसे मुक्ति प्रदान करनेवाले प्रभुके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करने और धन्यवाद देने आये थे। दयालु प्रभुकी कृपादृष्टि फिरते ही, जिसने जैसी सेवा की थी, उसकी सुखद स्मृतिमें प्रत्येकको प्रदान करनेके लिये पारितोषिक और उपहारकी असीम धारा प्रवाहित होने लगी। युद्धके साथियोंमेंसे प्रत्येकको प्रभुने प्रेमपूर्वक अपने समीप बुलाया और उन रत्नाभूषणों तथा उपहारोंसे अनुगृहीत किया, जो राजाओंको स्वप्नमें भी दुर्लभ थे। सबको प्रेमपूर्वक याद किया गया और बहुमूल्य पारितोषिक प्रदान किया गया। परंतु अपने भक्त हनूमान्‌को कोई वस्तु देनेकी कृपा नहीं की गयी।

यह बात करुणामयी सीताजीको सह्य नहीं हुई। उन्होंने श्रीरामकी ओर देखा और प्रभुकी चितवनमें सम्मतिकी झलक दिखलायी दी। माताने अनुपम रमणीय और बहुमूल्य अपना हार गलेसे उतारा और परम अनुग्रह-पूर्वक हनूमान्‌की ओर देखा। हनूमान्‌का हृदय हर्षसे पुलकित हो उठा। उन्होंने आगे बढ़कर अपने प्रभु और महाराज्ञी सीताके सामने प्रणिपात किया। उस हारको लेकर गलेमें पहन लिया। उस दीप्तिमान् आभूषणकी दिव्य चमकसे सब लोग चमत्कृत हो उठे, परंतु हनूमान्‌के मनपर कुछ असर न पड़ा। वे बारंबार उसको देखते रहे। हनूमान्‌के मुखकी दीप्त मुस्कान जाती रही। उन्होंने हारको गलेसे उतारा और एक-एक करके उसके मनियोंकी जाँच करते हुए कई बार हारको फेर डाला। उस गौरवमयी राजसभाके सभी लोगोंकी दृष्टि हनूमान्‌के ऊपर थी। वे एकटक होकर हनूमान्‌को देख रहे थे और उनका भयाक्रान्त विस्मय अदमनीय था। हनूमान्‌ने अचानक हारको छिन्न-भिन्न करके दाँतसे पीस-पीसकर फेंक दिया।

इस अशिष्ट कुचेष्टाको देखकर सब लोग स्तब्ध रह गये। लक्ष्मण अपने आपेसे बाहर होकर बोल उठे—'प्रभो! आपने अनुग्रह करके अपने इस सेवकको यह दिव्य आभूषण प्रदान किया है। इसे ऐसा बहुमूल्य हार, दुर्लभ आभूषण प्रदान करना आपके लिये उचित नहीं था।'

श्रीरामचन्द्रजी मधुर मुस्कानके साथ बोले—'हनूमान्‌से पूछा जाय, जिससे राजसभाके सभी लोगोंको उनकी धृष्टताका कारण ज्ञात हो सके।' भक्तोंमें परम भक्त हनूमान् कहने लगे—'मेरे प्रभु! इसमें संदेह नहीं कि माताका दिया हुआ उपहार अमूल्य है। परंतु जब मैंने इस हारको पहना तो मुझे ऐसा लगा कि इसके भीतर मेरे सिरजनहार प्रभुका पवित्र नाम अङ्कित नहीं है। मेरे मनमें आया कि मैं भूल कर रहा हूँ। माताजी मुझे ऐसी नगण्य वस्तु क्यों देने लगीं, जिसमें राम-नाम न हो? मैंने, जहाँतक हो सका, सावधानीसे इस हारकी जाँच की और जब मुझको निश्चय हो गया कि मैं भूल नहीं कर रहा हूँ, तब मैंने विरक्तिवश इसको फेंक दिया। तत्काल मेरे मनमें आया कि मेरे प्रभु अदृश्य रूपमें विश्वके प्रत्येक पदार्थमें हैं और कदाचित् उनका नाम हारके भीतर अङ्कित हो; इसलिये मैंने इस आभूषणको तोड़कर जाँचा; परंतु बड़ी निराशाके साथ मैंने देखा कि इसके भीतर रामनाम अङ्कित नहीं है।'

'परंतु तुम्हारे अपने शरीरके भीतर क्या रामनाम अङ्कित है?'—लक्ष्मणने पूछा! लक्ष्मणके मुखसे ये शब्द निकलते ही हनूमान्‌ने अपने वक्षःस्थलको फाड़कर खोल दिया और आश्चर्यके साथ लोगोंने उसके भीतर सर्वत्र राम-नाम चमकते हुए देखा तथा सब लोग उसे देखकर संतुष्ट हो गये।

वहाँ उपस्थित देवता और मानव सभी इस दृश्यको देखकर आश्चर्यचकित हो स्तब्ध रह गये। आकाशसे देवताओंने इस अद्भुत दृश्यको देखकर पुष्पवृष्टि की और गन्धर्व तथा अप्सराएँ संगीतके साथ-साथ आनन्दपूर्वक नृत्य करने लगीं। लक्ष्मण यह देखकर परम प्रसन्न हुए कि कम-से-कम एक ऐसा भक्त भी है, जो अपने प्रभुकी इतनी विस्मयजनक मनोनुरागमयी भक्ति करता है—उन प्रभुकी जिनके साथ वनमें उन्होंने चौदह वर्ष आहार-निद्रा त्यागकर बिताये हैं तथा जो राम उनके जीवन-धन, जीवन-सर्वस्व एवं जीवन-प्राण हैं।

राम और सीताके कमलनेत्र एक दिव्य आनन्दसे चमक उठे तथा वचनातीत प्रेमपूर्वक प्रभुने मधुर स्वरमें हनूमान्‌से कहा—'वत्स! तुम निश्चय ही भक्तराज हो। जबतक यह पृथ्वी रहेगी और रामका नाम लोग लेंगे, तबतक तुम अद्वितीय भक्तके रूपमें प्रसिद्ध रहोगे। मृत्यु तुम्हारे पास कभी नहीं फटकेगी। तुम सदा-सर्वदा अपने प्रभुके प्रिय नामका गान सुनते और गाते हुए इस भूलोकमें निवास करो।'

युवराज अङ्गद

मूक, भला, कैसे सकें ये जगजन भूले हुए।
नीलकान्त प्रभु बाहुके अङ्गद स्वर्णङ्गद हुए॥

वनवासके समय भगवती जानकीका अन्वेषण करते हुए मर्यादापुरुषोत्तम ऋष्यमूकपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने सुग्रीवसे मित्रता की। सुग्रीवका पक्ष लेकर उन्होंने वानरराज वालीको मारा। मरते समय वालीने अपने पुत्र अङ्गदको उन सर्वेश्वरके चरणोंमें अर्पित किया। वालीने कहा—

यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिये।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिये॥
(मानस ४। ९। २ छं०)

प्रभुने अङ्गदको स्वीकार किया। सुग्रीवको किष्किन्धाका राज्य मिला, किंतु युवराजपद वालिकुमार अङ्गदजीका ही रहा। अङ्गदने भगवान्‌की इस कृपाको हृदयसे ग्रहण किया। श्रीसीताजीको ढूँढ़ते हुए जब वानर-वीरोंका दल दक्षिण समुद्र-तटपर पहुँचा और गृध्रराज सम्पातिसे यह पता चल गया कि जानकीजी लङ्कामें हैं, उस समय यह प्रश्न सामने आया कि सौ योजन समुद्र पार करके लङ्कामें कौन जाय, इसपर युवराज राम-काजके लिये लङ्का जानेको उद्यत हो गये थे। परंतु जाम्बवन्तजीने उन्हें नहीं जाने दिया। हनुमान्‌जी लङ्का गये और वहाँके समाचार ले आये। भगवान्‌की कृपासे समुद्रपर सेतु बाँधा गया। असंख्य वानरी सेना लङ्काके त्रिकूटपर्वतपर उतर गयी। अब प्रभुने अङ्गदको दूत बनाकर रावणके पास भेजा। श्रीरामने अङ्गदके विषयमें वहाँ कहा है—

बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ॥
(वही, ६। १६। ३½)

अङ्गदजीके इस दौत्यकर्मको ठीक-ठीक समझना चाहिये। श्रीहनुमान्‌जी रावणसे मिल चुके थे। उसे सामनीतिसे समझानेका जो प्रयत्न उन्होंने किया, वह असफल हो चुका था। उसीको फिर दुहराना बुद्धिमानी नहीं थी। रावण अहंकारी है, वह शिक्षा सुनना ही नहीं चाहता, प्रलोभनका उसपर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता—यह पता लग चुका था। अब तो हनुमान्‌जीके कार्यको आगे बढ़ाना था। डाँटकर, भय दिखाकर ही बुद्धिहीन अहंकारी लोगोंको रास्तेपर लाया जा सकता है। यदि रावण न भी माने तो उसके साहसको तोड़ देना, उसके अनुचरोंको भयभीत कर देना आनेवाले युद्धकी दृष्टिसे आवश्यक था। अङ्गदजीने यही किया। रावणकी राजसभामें उनकी तेजस्विता, उनका शौर्य अद्वितीय रहा। श्रीराम सर्वेश्वर हैं। उनके सेवककी प्रतिज्ञा त्रिलोकीमें कोई भङ्ग नहीं कर सकता—यह अविचल विश्वास अङ्गदमें था; इसीसे उन्होंने रावणकी सभामें प्रतिज्ञा की—

जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं रामु सीता मैं हारी॥
(वही, ६। ३३। ४½)

इस प्रतिज्ञाका दूसरा कोई अर्थ करना अङ्गदके दृढ़ विश्वासको न समझना है। रावण नीतिज्ञ था। उसने अनेक प्रकारकी भेदनीतिसे काम लिया। उसने सुझाया—'वाली मेरा मित्र था। ये राम-लक्ष्मण तो वालीको—तुम्हारे पिताको मारनेवाले हैं। यह तो बड़ी लज्जाकी बात है कि तुम अपने पितृघातीका पक्ष ले रहे हो।' अङ्गदने रावणको स्पष्ट फटकार दिया—

सुनु सठ भेद होइ मन ताकें। श्रीरघुबीर हृदय नहिं जाकें॥
(वही, ६। २०। ३)

जब रावण भगवान्‌की निन्दा करने लगा, तब युवराज उसे सह नहीं सके। क्रोध करके उन्होंने मुट्ठी बाँधकर दोनों भुजाएँ भूमिपर बड़े जोरसे दे मारीं। भूमि हिल गयी। रावण गिरते-गिरते बचा। उसके मुकुट पृथ्वीपर गिर पड़े। उनमेंसे चार मुकुट अङ्गदने उठाकर भगवान्‌के पास उछाल दिये। इतना शौर्य दिखाकर, इतना पराक्रम प्रकट करके जब वे प्रभुके पास आये और जब उन दयामयने पूछा—

रावनु जातुधान कुल टीका । भुज बल अतुल जासु जग लीका ॥
तासु मुकुट तुम्ह चारि चलाए । कहहु तात कवनी बिधि पाए ॥
(वही, ६ । ३७ । ३½)

परंतु जिनपर प्रभुकी कृपा है, जो भगवान्‌के चरणोंके अनन्य भक्त हैं, उनमें कभी किसी प्रकार भी अहंकार नहीं आता । उस समय अङ्गदजीने बड़ी सरलतासे उत्तर दिया—

सुनु सर्बग्य प्रनत सुखकारी । मुकुट न होहिं भूप गुन चारी ॥
साम दान अरु दंड बिभेदा । नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा ॥
नीति धर्म के चरन सुहाए । अस जियँ जानि नाथ पहिं आए ॥
(वही, ६ । ७ । ४-५)

—जैसे अङ्गदने कुछ किया हो, इसका उन्हें बोधतक नहीं । वे सर्वथा निरभिमान हैं । इसके पश्चात् युद्ध हुआ । रावण मारा गया । उस युद्धमें युवराज अङ्गदका पराक्रम वर्णनातीत है । लङ्का-विजय करके श्रीराम अयोध्या पधारे । राज्याभिषेक हुआ । अन्तमें कपिनायकोंको विदा करनेका अवसर आया । भगवान् एक-एकको वस्त्राभरण देकर विदा करने लगे । अङ्गदका हृदय धक्-धक् करने लगा । वे एक कोनेमें सबसे पीछे दुबककर बैठ गये । 'कहीं प्रभु मुझे भी जानेको न कह दें'—इस आशङ्कासे । श्रीरामके चरणोंसे पृथक् होना होगा, इस कल्पनासे ही वे व्याकुल हो गये । जब सभी वानर-यूथपतियों एवं रीछ-नायकोंको भगवान् अपने उपहार दे चुके, जब सब आज्ञा पाकर उठ खड़े हुए, तब अन्तमें प्रभुने अङ्गदजीकी ओर देखा । अङ्गदका शरीर काँपने लगा । उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी । वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये और कहने लगे—

सुनु सर्बग्य कृपा सुख सिंधो । दीन दयाकर आरत बंधो ॥
मरती बेर नाथ मोहि बाली । गयउ तुम्हारेहिं कोंछें घाली ॥
असरन सरन बिरदु संभारी । मोहि जनि तजहु भगत हितकारी ॥
मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता । जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता ॥
तुम्हहि बिचारि कहहु नरनाहा । प्रभु तजि भवन काज मम काहा ॥
बालक ग्यान बुद्धि बल हीना । राखहु सरन नाथ जन दीना ॥
नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ । पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ ॥
(वही, ७ । १७ । १-३½)

'नाथ ! मेरे पिताने मरते समय मुझे आपके चरणोंमें डाला है, अब आप मेरा त्याग न करें । मुझे जिस किसी भी प्रकार अपने चरणोंमें ही पड़ा रहने दें !' यह कहकर अङ्गद श्रीरघुनाथजीके चरणोंपर गिर पड़े । करुणासागर प्रभुने उठाकर उन्हें हृदयसे लगा लिया । अपने निजी वस्त्र, अपने आभरण और अपने कण्ठकी माला श्रीराघवने अङ्गदको पहनायी और स्वयं अङ्गदको पहुँचाने चले । अङ्गद बार-बार प्रभुको दण्डवत्-प्रणाम करते हैं । बार-बार उस कमलमुखकी ओर देखते हैं । बार-बार सोचते हैं—"अब तो मुझे प्रभु कह दें कि 'अच्छा, तुम यहीं रहो ।'"

दूरतक दयाधामने अङ्गदको पहुँचाया । जब हनुमान्‌जी सुग्रीवसे अनुमति लेकर श्रीरामके पास लौटने लगे, तब अङ्गदजीने उनसे कहा—

कहेहु दंडवत प्रभु सैं तुम्हहि कहउँ कर जोरि ।
बार बार रघुनायकहि सुरति कराएहु मोरि ॥
(वही, ७ । १९ क)

महाभाग ! आपकी 'सुरति' क्या रघुनायकको करानेकी आवश्यकता है ? वे दयाधाम क्या अपने ऐसे प्रेमियोंको कभी भूल सकते हैं !

जगत्में जीवन सार्थक किसका है ?

सो जननी, सो पिता, सोइ भाइ, सो भामिनि, सो सुतु, सो हितु मेरो ।
सोइ सगो, सो सखा, सोइ सेवकु, सो गुरु, सो सुरु, साहेबु, चेरो ॥
सो 'तुलसी' प्रिय प्रान समान, कहाँ लौं बनाइ कहौं बहुतेरो ।
जो तजि देह को गेह को नेहु, सनेह सों राम को होइ सबेरो ॥
रामु हैं मातु, पिता, गुरु, बंधु, औ संगी, सखा, सुतु, स्वामि, सनेही ।
राम की सौंह, भरोसो है राम को, राम रँग्यो, रुचि राच्यो न केही ॥
जीअत रामु, मुएँ पुनि रामु, सदा रघुनाथहि की गति जेही ।
सोइ जिऐ जगमें 'तुलसी', नतु डोलत और मुए धरि देही ॥
(कवितावली, उत्तरकाण्ड ३५-३६)

ऋक्षपति जाम्बवान्

सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता । सोइ महि मंडित पंडित दाता ॥
धर्म परायन सोइ कुल त्राता । राम चरन जा कर मन राता ॥
(मानस ७ । १२६ । १)

भक्त जाम्बवान् पद्मयोनि ब्रह्माके अंशावतार थे। श्रीभगवान्‌की सेवाके लिये ब्रह्माजी अपने एक रूपसे जाम्बवान्‌के रूपमें धरतीपर पधारे थे। भुवनमोहन प्रभुका ध्यान, उनके परम मङ्गलमय नामका जप तथा उनकी मङ्गलकारिणी लीला-कथाके श्रवण एवं चिन्तनमें उन्हें बड़ा सुख मिलता था। त्रेतामें जब क्षीराब्धिशायी प्रभुने दशरथनन्दनके रूपमें अवतार लिया, तब प्रभुकी लीलामें सहायक होने एवं प्रभुके दर्शन तथा उनकी सेवाका लाभ प्राप्त करनेके लिये जाम्बवान्‌जी सुग्रीवके मन्त्री बन गये। जाम्बवान्‌जी आयुमें सबसे बड़े थे ही, वे अत्यन्त बुद्धिमान्, महाबलशाली एवं प्रबल पराक्रमी भी थे।

भगवती सीताको ढूँढ़नेके लिये जाम्बवान्, अङ्गद एवं हनुमान् आदि समुद्रतटपर पहुँचे तो महासागरको देखकर हतोत्साह हो गये। 'लङ्का कौन जाय? समुद्र पार कौन करे?' विचार हो रहा था। किसीकी बुद्धि कुछ काम नहीं कर रही थी। उस समय जाम्बवान्‌जीने अपनी वृद्धावस्थापर खेद प्रकट करते हुए अपनी शक्तिके सम्बन्धमें अपने ही मुँहसे कह दिया था—

जरठ भयउँ अब कहइ रिछेसा। नहिं तन रहा प्रथम बल लेसा ॥
जबहिं त्रिबिक्रम भए खरारी। तब मैं तरुन रहेउँ बल भारी ॥

बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ।
उभय घरी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाइ ॥
(वही, ४ । २८ । ४; ४ । २९)

फिर अङ्गदादिको निराश देखकर जाम्बवान्‌जीने ही पवनपुत्र हनुमान्‌को उनकी शक्ति और पराक्रमकी स्मृति दिलाकर सागर पार करनेकी प्रेरणा दी थी। जाम्बवान्‌जीने कहा—

रामकार्यार्थमेव त्वं जनितोऽसि महात्मना।
जातमात्रेण ते पूर्वं दृष्ट्वोद्यन्तं विभावसुम् ॥
पक्वं फलं जिघृक्षामीत्युत्प्लुतं बालचेष्टया।
योजनानां पञ्चशतं पतितोऽसि ततो भुवि ॥
अतस्त्वद्बलमाहात्म्यं को वा शक्नोति वर्णितुम्।
उत्तिष्ठ कुरु रामस्य कार्यं नः पाहि सुव्रत ॥
(अ० रा० ४ । ९ । १८–२०)

"महात्मा वायुने राम-कार्यके लिये ही आपको उत्पन्न किया है। जिस समय आपका जन्म हुआ था, उसी समय आप सूर्यको उदय होते हुए देखकर 'मैं इस पके फलको लेना चाहता हूँ'—यों कहकर बाल्लीलासे ही पाँच सौ योजन ऊँचे उछलकर पृथिवीपर गिरे थे। अतः ऐसा कौन है, जो आपके बलका माहात्म्य वर्णन कर सके। हे सुव्रत! आप खड़े हो जाइये और यह राम-कार्य करके हम सबकी रक्षा कीजिये।"

जाम्बवान्‌जीकी प्रेरणादायिनी वाणीसे हनूमान्‌जी अत्यन्त प्रसन्न हो गये। सिंहनाद करते हुए उन्होंने कहा—'मैं समुद्र पारकर सम्पूर्ण लङ्काको ध्वंसकर माता जानकीको ले आऊँगा या आप आज्ञा दें तो मैं दशाननके गलेमें रस्सी बाँधकर और लङ्काको त्रिकूटपर्वतसहित बायें हाथपर उठा लाकर प्रभु श्रीरामके सम्मुख डाल दूँ। अन्यथा केवल माता जानकीको ही देखकर चला आऊँ।'

पवनपुत्रके तेजोमय वचन सुनकर जाम्बवान्‌जी बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने हनूमान्‌से कहा—

दृष्ट्वैवागच्छ भद्रं ते जीवन्तीं जानकीं शुभाम् ॥
पश्चाद्रामेण सहितो दर्शयिष्यसि पौरुषम्।
कल्याणं भवताद् भद्र गच्छतस्ते विहायसा ॥
गच्छन्तं रामकार्यार्थं वायुस्त्वामनुगच्छतु।
× × ×
(अ० रा० ४ । ९ । २५–२७)

'वीर! तुम्हारा शुभ हो, तुम केवल शुभलक्षणा जानकीजीको जीती-जागती देखकर ही चले आओ। फिर रामचन्द्र-

जीके साथ जाकर अपना पुरुषार्थ दिखलाना। हे भद्र! आकाशमार्गसे जाते हुए तुम्हारा कल्याण हो। रामकार्यके लिये जाते समय वायु तुम्हारा अनुगमन करें।'

रामसे रावणका युद्ध प्रारम्भ हुआ, तब प्रभु श्रीराम प्रायः प्रत्येक महत्त्वपूर्ण अवसरपर जाम्बवान्‌जीसे परामर्श करते। जाम्बवान्‌जी जैसे युद्धकालमें प्रभुके मन्त्री ही हो गये थे। मेघनादसे युद्ध प्रारम्भ हुआ, तब उसने सबको मायासे व्याकुल कर दिया, किंतु जाम्बवान्‌जीपर उसकी मायाका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अपितु घननादके दुर्वचन सुनकर जाम्बवान्‌जीने क्रुद्ध होकर कहा—'अरे दुष्ट! खड़ा रह।' इतना सुनते ही मेघनादकी क्रोधाग्निमें जैसे घृताहुति पड़ गयी। मेघनादने कहा—

बूढ़ जानि सठ छाँड़िउँ तोही। लागेसि अधम पचारै मोही॥

(मानस ६। ७३। २½)

'अरे मूढ़! मैंने तुझे बूढ़ा समझकर छोड़ दिया था। अरे अधम! तू अब मुझे ही ललकारने लगा है!'

इतना कहकर दशाननपुत्रने एक अत्यन्त तीक्ष्ण एवं चमकते हुए शूलसे जाम्बवान्‌पर भीषण प्रहार किया; किंतु जाम्बवंतजीने उक्त शूलको अपने हाथमें पकड़ लिया और उसे लेकर तुरंत मेघनादकी ओर दौड़े और—

मारिसि मेघनाद कै छाती। परा भूमि घुर्मित सुरघाती॥
पुनि रिसान गहि चरन फिरायो। महि पछारि निज बल देखरायो॥
बर प्रसाद सो मरइ न मारा। तब गहि पद लंका पर डारा॥

(वही, ६। ७३। ४-४½)

—उसे मेघनादकी छातीपर दे मारा—। वह देवताओंका शत्रु चक्कर खाकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। जाम्बवान्‌ने फिर क्रोधमें भरकर पैर पकड़कर उसको घुमाया और पृथ्वीपर पटककर उसे अपना बल दिखलाया। किंतु वरदानके प्रभावसे वह मारनेपर भी नहीं मर सका। तब जाम्बवान्‌जीने उसका पैर पकड़कर लङ्कापर फेंक दिया।'

ऐसे प्रभुके अनन्य भक्त एवं प्रबल पराक्रमी जाम्बवान्‌जीके लिये व्यङ्गके साथ लङ्काधिपति रावणने अङ्गदसे कहा था—

जामवंत मंत्री अति बूढ़ा। सोइ कि होइ अब समरारूढ़ा॥

(वही, ६। २२। २)

किंतु रावणके साथ युद्धमें जब रावणके तीक्ष्ण शरोंसे हनूमान्‌जी आदि सभी वानर मूर्च्छित हो गये, तब रावण बड़ा प्रसन्न हुआ। यह देखकर अनेक भालुओंके साथ जाम्बवान्‌जी रावणकी ओर दौड़े। बलशाली रावण उन भालू-योद्धाओंको पकड़-पकड़कर पृथ्वीपर पटकने लगा। अपने दलका संहार देखकर जाम्बवान्‌जी अत्यन्त क्रुद्ध हो गये—

देखि भालुपति निज दल घाता। कोपि माझ उर मारेसि लाता॥

उर लात घात प्रचंड लागत बिकल रथ ते महि परा।

(वही, ६। ९; ७। ७½ १ छं०)

जाम्बवान्‌जीने कुपित होकर रावणकी छातीमें लात मारी। वक्षमें प्रचण्ड पदाघात होते ही दशानन व्याकुल होकर रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा।

राम-रिपु रावणको मूर्च्छित देखकर फिर लात मारकर ऋक्षपति जाम्बवान् प्रभुके पास चले गये—

मुरुछित बिलोकि बहोरि पद हति भालुपति प्रभु पहिं गयो।

(वही, ६। ९७। १ छं०)

× × ×

अयोध्यामें कमललोचन श्रीरामका राज्याभिषेक हुआ। प्रभुने समस्त वानर-भालुओंको वस्त्राभूषणका उपहार देकर विदा किया। किंतु प्रभु-पद-प्रेमी जाम्बवान्‌जी प्रभुसे पुनः (द्वापरमें) दर्शन देनेका वचन लेकर ही वहाँसे प्रस्थित हुए।

—शि० दु०

राम-पद-पद्म-प्रेमी केवट

'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् ।'

(ना० भ० सू० ५१)

श्रीरामचरणानुरागी केवटकी प्रीति रामचरितमें अपना विशिष्ट स्थान रखती है। प्रभु-पद-कमलोंमें उनकी श्रद्धा-भक्ति और प्रीतिकी सीमा नहीं है। भगवान् राघवेन्द्र भगवती सीता और लक्ष्मणसहित गङ्गा-तीरपर आये और पार उतरनेके लिये केवटसे नाव माँगी; पर 'माँगी नाव न केवटु आना।' (मानस २ । ९९ । १½) केवट स्पष्ट कह देते हैं, 'मैंने सुना है और सभी लोग कहते हैं कि आपकी चरण-रजकी ऐसी महिमा है, जिसके स्पर्शसे कठोर पाषाण भी स्त्री बन जाता है। यदि मेरी नौकाकी भी यही दशा हुई तो मैं अपने परिवारका भरण-पोषण कैसे करूँगा? और कोई धंधा तो मैं जानता नहीं। अतएव—

एहि घाट तें थोरिक दूरि अहै
कटि लौं जल थाह दिखाइहौं जू।

—यहाँसे थोड़ी ही दूरपर गङ्गामें कमरतक ही जल है और मैं स्वयं साथ चलकर आपको मार्ग बता दूँगा। आप पार हो जायँगे।' यह सब कहनेमें केवटका एकमात्र उद्देश्य था, सर्वेश्वरके दुर्लभ चरणकमलोंकी स्पर्श-प्राप्ति—उनका प्रक्षालन करके सम्पूर्ण परिवारको कृतार्थ कर लेना।

कितनी सुकृतियोंसे महाराज जनकको यह सौभाग्य प्राप्त हुआ था—

बहुरि राम पद पंकज धोए। जे हर हृदय कमल महुँ गोए॥

(मानस १ । ३२७ । २½)

और—

जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।

(वही, ५ । ४२)

—उन्हीं चरणोंपर केवटकी दृष्टि थी। निश्छल केवटने उनसे कह भी दिया—

जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥

(वही, २ । ९९ । ४)

'प्रभो! आपको नौकासे पार जाना हो तो मुझे चरण धो लेने दीजिये; अन्यथा मैंने कह ही दिया है, यहाँसे थोड़ी ही दूरपर थाहभर जल है, वहाँसे पार हो जाइये। मैं चलकर मार्ग बता दूँगा। आगे-आगे मैं ही रहूँगा। नावपर चढ़ानेके लिये तो मेरी शर्त यही है—

पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं॥
बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं॥

(वही, २ । ९९ । १ छं०)

केवटकी भक्ति एवं उसकी प्रेममयी अटपटी वाणीको सुनकर राघवेन्द्र जानकी और लक्ष्मणकी ओर देखकर मुस्कराने लगे। यही सरलता, यही निश्छलता, यही हृदयकी पवित्रता एवं यही प्रीति तो प्रभुको प्रिय है। इसी भक्तिपर तो प्रेमसिन्धु प्रभु बिक जाते हैं—भक्तके वश हो जाते हैं। उन्होंने हँसकर केवटसे कह दिया। भैया!

× × × × सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई॥
बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू॥

(वही, २ । १०० । १)

अमित-भाग्यशाली, राम-पद-पद्म-प्रेमी केवटकी महिमा क्या कही जाय? जिन करुणा-वरुणालय प्रभुके नामका स्मरण कर असंख्य मनुष्य संसार-सागरके पार उतरते हैं, वे ही निखिल-सृष्टिपति भगवान् श्रीराम केवटका निहोरा करते हैं! केवटने प्रभुकी आज्ञा प्राप्त की और दौड़ पड़े—'पानि कठौता भरि लेइ आवा।' प्रेमकी उमंगमें आनन्दमें निमग्न होकर वे प्रभुके दुर्लभ पदपद्मोंको अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक धोने लगे। वे प्रभुके चरण-कमलोंको खूब अच्छी तरह रगड़-रगड़कर, दबा-दबाकर धो रहे थे। केवटके इस सौभाग्यका क्या कहना!

बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं । एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं ॥
(वही, २ । १०० । ४)

महात्मा केवटका—नहीं, नहीं, उनके पूर्वजों एवं उनके सम्पूर्ण परिवारका जीवन धन्य हो गया । वे कृतार्थ हो गये । अनन्तकालीन जन्म-जरा-मरणके कठोर पाशसे वे सहज ही मुक्त हो गये—

पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार ।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार ॥
(वही, २ । १०१)

केवट नौका खेते हुए प्रभुको पार उतार रहे थे । उनकी दृष्टि अब भी प्रभुके पाद-पद्मोंमें ही गड़ी थी । उनके आनन्द एवं प्रेमकी सीमा नहीं थी । प्रभु पार उतरे और गङ्गाकी रेतमें खड़े हो गये । प्रभुको संकोच हुआ कि 'इसे कुछ पारिश्रमिक नहीं दिया ।' तब—

पिय हिय की सिय जाननिहारी । मनि मुदरी मन मुदित उतारी ॥
(वही, २ । १०१ । १½)

प्रभुने कहा—'यह उतराई लो ।'

भगवान्‌की इस वाणीसे केवट व्याकुल हो गये । उन्होंने प्रभुके चरण पकड़ लिये । अपने सौभाग्य, कृतज्ञता एवं प्रेमके सूचक अश्रु उनके नेत्रोंसे झर रहे थे । उन्होंने प्रभुके सम्मुख स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त कर दिया—'नाथ ! आज मैंने क्या नहीं पाया ? मेरे दोष, दुःख और दरिद्रताकी आग आज बुझ गयी । मैंने बहुत समयतक मजदूरी की । विधाताने आज भरपूर मजदूरी मुझे दे दी ।'

नाथ आजु मैं काह न पावा । मिटे दोष दुख दारिद दावा ॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी । आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी ॥
(वही, २ । १०१ । ३)

भक्त केवटने और कहा—'प्रभो ! आपके अनुग्रहसे मुझे अब कुछ नहीं चाहिये । आपने तो मुझे सब कुछ दे दिया ।' पर वे चतुराईके साथ यह भी कह देते हैं—

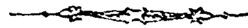
फिरती बार मोहि जो देबा । सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा ॥
(वही, २ । १०१ । ४)

दीनदयालु श्रीरामने अनेक बार कहा, श्रीसीता और लक्ष्मणने भी पारिश्रमिक लेनेके लिये जोर दिया; पर परम कृतार्थ केवटने कुछ भी स्वीकार नहीं किया । कोई मार्ग न देखकर—

बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ ॥

ऐसे श्रीराम-चरणानुरागी केवटके प्रेम और उनकी भक्तिका स्मरण भी मनुष्यको पवित्र करता रहेगा ।*

—शि० दु०



* अध्यात्मरामायणमें यह प्रसङ्ग अहल्योद्धारके बाद ही प्रभुके मिथिलापुरी जाते समय आता है । अहल्योद्धारसे सर्वत्र समाचार प्रचारित हो गया था कि श्रीरामकी चरण-धूलिसे शिला भी स्त्री बन जाती है । वहाँ केवटके वचन इस प्रकार हैं—

क्षालयामि तव पादपङ्कजं नाथ दारुदृषदोः किमन्तरम् ।
मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते पादयोरिति कथा प्रथीयसी ॥
पादाम्बुजं ते विमलं हि कृत्वा पश्चात् परं तीरमहं नयामि ।
नोचेत्तरी सद्युवती मलेन स्याच्चेद्विभो विद्धि कुटुम्बहानिः ॥
(१ । ६ । ३-४)

'हे नाथ ! यह बात प्रसिद्ध है कि आपके चरणोंमें कोई मनुष्य बना देनेवाला चूर्ण है । (आपने कभी शिलाको भी बना दिया, फिर) शिला और काष्ठमें भेद ही क्या है ? अतः नौकापर चढ़ानेसे पूर्व मैं आपके चरणकमलोंको धोऊँगा । इस प्रकार आपके चरणोंको मलरहित करके मैं आपको श्रीगङ्गाजीके उस पार ले चलूँगा । नहीं तो हे विभो ! आपकी चरण-रजके स्पर्शसे यदि मेरी नौका सुन्दर युवती हो गयी तो मेरे कुटुम्बकी आजीविका ही मारी जायगी ।'

प्रेमी जटायु

सर्वत्र खलु दृश्यन्ते साधवो धर्मचारिणः ।
शूराः शरण्याः सौमित्रे तिर्यग्योनिगतेष्वपि ॥
(वा० रा० ४ । ६८ । २४)

श्रीराम कहते हैं—'लक्ष्मण ! सर्वत्र—यहाँतक कि पशु-पक्षी आदि योनियोंमें भी शूरवीर, शरणागतरक्षक, धर्मपरायण साधुजन मिलते हैं ।'

प्रजापति कश्यपजीकी पत्नी विनतासे दो पुत्र हुए—अरुण और गरुड । इनमेंसे भगवान् सूर्यके सारथि अरुणजीके दो पुत्र हुए—सम्पाति और जटायु । बचपनमें सम्पाति और जटायु उड़ानकी होड़ लगाकर ऊँचे जाते हुए सूर्य-मण्डलके पासतक चले गये । असह्य तेज न सह सकनेके कारण जटायु तो लौट आये; किंतु सम्पाति ऊपर ही उड़ते गये । सूर्यके अधिक निकट जानेपर सम्पातिके पंख सूर्य-तापसे भस्म हो गये । वे समुद्रके पास पृथ्वीपर गिर पड़े । जटायु लौटकर पञ्चवटीमें आकर रहने लगे । महाराज दशरथसे आखेटके समय इनका परिचय हो गया और महाराजने इन्हें अपना मित्र बना लिया ।

वनवासके समय जब श्रीरामजी पञ्चवटी पहुँचे, तब जटायुसे उनका परिचय हुआ । मर्यादापुरुषोत्तम अपने पिताके सखा गृध्रराजका पिताके समान ही सम्मान करते थे । जब छलसे स्वर्णमृग बने मारीचके पीछे श्रीराम वनमें चले गये और जब मारीचकी कपटपूर्ण पुकार सुनकर लक्ष्मणजी बड़े भाईको ढूँढ़ने चले गये, तब सूनी कुटियासे रावण सीताजीको उठा ले गया । बलपूर्वक रथमें बैठाकर वह उन्हें ले चला । श्रीविदेहराज-दुहिताका करुणक्रन्दन सुनकर जटायु क्रोधमें भर गये । वे ललकारते-धिक्कारते रावणपर टूट पड़े और एक बार तो राक्षसराजके केश पकड़कर उसे भूमिमें पटक ही दिया ।

जटायु वृद्ध थे । वे जानते थे कि रावणसे युद्धमें वे जीत नहीं सकते । परंतु नश्वर शरीर राम-काजमें लग जाय, इससे बड़ा सौभाग्य और क्या होगा । रावणसे उनका भयंकर संग्राम हुआ । अन्तमें रावणने उनके पंख तलवारसे काट लिये । वे भूमिपर गिर पड़े । जानकीजीको लेकर रावण भाग गया । श्रीराम विरह-व्याकुल होकर जानकीजीको ढूँढते वहाँ आये । जटायु मरणासन्न थे । उनका चित्त श्रीरामके चरणोंमें लगा था । उन्होंने कहा—'राघव ! राक्षसराज रावणने मेरी यह दशा की है । वही दुष्ट सीताजीको लेकर दक्षिण दिशाकी ओर चला गया है । मैंने तो तुम्हारे दर्शनके लिये ही अबतक प्राणोंको रोक रक्खा था । अब वे विदा होना चाहते हैं । तुम आज्ञा दो ।'

श्रीराघवके नेत्र भर आये । उन्होंने कहा—'आप प्राणोंको रोकें । मैं आपके शरीरको अजर-अमर तथा स्वस्थ बनाये देता हूँ ।' जटायु परम भागवत थे । शरीरका मोह उन्हें था नहीं । उन्होंने कहा—'श्रीराम ! जिनका नाम मृत्युके समय मुखसे निकल जाय तो अधम प्राणी भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है—ऐसी तुम्हारी महिमा श्रुतियोंमें वर्णित है,—आज वे ही तुम प्रत्यक्ष मेरे सम्मुख हो; फिर मैं शरीर किस लाभके लिये रक्खूँ ?'

दयाधाम श्रीरामभद्रके नेत्रोंमें जल भर आया । वे कहने लगे—'तात ! मैं तुम्हें क्या दे सकता हूँ । तुमने तो अपने ही कर्मसे परम गति प्राप्त कर ली । जिनका चित्त परोपकारमें लगा रहता है, उन्हें संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है । अब इस शरीरको छोड़कर आप मेरे धाममें पधारें ।'

श्रीरामने जटायुको गोदमें रख लिया था । अपनी जटाओंसे वे उन पक्षिराजकी देहमें लगी धूलि झाड़ रहे थे । जटायुने श्रीरामके मुख-कमलका दर्शन करते हुए उनकी गोदमें ही शरीर छोड़ दिया—उन्हें भगवान्‌का सारूप्य प्राप्त हुआ । वे तत्काल नवजलधर-सुन्दर, पीताम्बरधारी, चतुर्भुज तेजोमय शरीर धारणकर वैकुण्ठ चले गये । जैसे सत्पुत्र श्रद्धापूर्वक पिताकी अन्त्येष्टि करता है, वैसे ही श्रीरामने जटायुके शरीरका सम्मानपूर्वक दाहकर्म किया और उन्हें जलाञ्जलि देकर श्राद्ध किया । पक्षिराजके सौभाग्यकी महिमाका कहाँ पार है । त्रिभुवनके स्वामी श्रीराम, जिन्होंने दशरथजीकी अन्त्येष्टि नहीं की, उन्होंने अपने हाथों जटायुकी अन्त्येष्टि विधिपूर्वक की । उस समय उन्हें श्रीजानकीजीका वियोग भी भूल गया था ।

रामभक्त शबरी

(लेखिका—श्रीमती सावित्री त्रिपाठी, बी० ए०)

भगवान् श्रीराम कहते हैं—

भक्तौ संजातमात्रायां मत्तत्त्वानुभवस्तदा ।
ममानुभवसिद्धस्य मुक्तिस्तत्रैव जन्मनि ॥
(अ० रा० ३ । १० । २९)

'भक्तिके उत्पन्न होनेमात्रसे ही मेरे स्वरूपका अनुभव हो जाता है और जिसे मेरा अनुभव हो जाता है, उसकी उसी जन्ममें निस्संदेह मुक्ति हो जाती है ।'

परम भक्तिमती शबरीका जन्म तो हुआ था भील-वंशमें, किंतु उसके संस्कार अत्यन्त शुभ थे । शैशवमें ही वह मूक पशुओंकी हिंसा देखकर छटपटा जाती थी । उन्मुक्त गगनमें पंख पसारकर उड़नेवाले पक्षीको शरविद्ध होते देखकर उसका शुभ संस्कार-सम्पन्न सुकोमल हृदय तड़प उठता था । रक्तसे लथपथ जीवोंको तड़पते देखकर शबरीका हृदय अधीर और अशान्त हो जाता था । उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगती थी । वह एकान्तमें रोते-रोते चिल्ला पड़ती थी—'हे भगवन् ! मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कुछ समझमें नहीं आता, दया करो, नाथ !'

इसी प्रकारकी चिन्ता और दुःखसे दुःखी दयामयी शबरी युवती हुई । उसके विवाहकी तैयारी होने लगी, पर शबरीका मन और अशान्त होने लगा । यद्यपि उसने सुन लिया था कि वर सुन्दर और वीर ही नहीं, लक्ष्यवेधमें भी निपुण था । उसकी दृष्टिसे भागता हुआ मृग बचकर निकल जाय, सम्भव नहीं था । वह अपने एक ही पैने बाणसे दो पक्षियोंको एक ही साथ मार लेता था । वरकी प्रशंसा सुनकर शबरीके प्राण छटपटाने लगे । वह एकान्तमें जाकर फूट-फूटकर रोने लगी । रोते-रोते वह निखिल सृष्टिके स्वामी करुणामय प्रभुसे व्याकुल होकर प्रार्थना करने लगी—'हे दयामय ! हे सर्वव्यापी करुणामूर्ति भगवन् ! मुझ नीच और अभागिनीपर दया कीजिये । मैं इस पापपूर्ण जीवनको सह नहीं पाऊँगी । भोले-भाले जीवोंके कोमल कण्ठपर तेज छुरी चलते, उन्हें चीत्कार करते और छटपटाते देखनेकी अपेक्षा मृत्युकी गोदमें सो जाना मैं अच्छा समझती हूँ । मुझे मार्ग नहीं सूझ रहा है । मैं अत्यन्त नीच और मूर्ख स्त्री हूँ, पर आपकी शरणमें हूँ । आप मेरी रक्षा कर लें । मुझे उबार लीजिये, नाथ !' रोते और प्रार्थना करते रात्रि अधिक बीत गयी, पर शबरीने अपना कर्तव्य भी निश्चित कर लिया ।

नीरव अर्द्धरात्रि । नीले आकाशमें तारे चमक रहे थे और चन्द्रदेव अपनी अमृतमयी शीतल किरणें पृथ्वीपर बिखेर रहे थे । शबरी चुपचाप घरसे निकली और सघन वनमें विलीन हो गयी । उसे ऊबड़-खाबड़ मार्गकी चिन्ता नहीं थी । नदी, वन, पर्वत तथा शेर-भालूका उसे तनिक भी ध्यान नहीं था । भय नहीं था । वह भागती जा रही थी । उसे एक ही भय था कि मैं अपने माता-पिताके हाथ न आ जाऊँ । वह अपने हिंसक एवं निर्मम जीवनसे बचकर आजीवन ब्रह्मचारिणी रहकर प्रभु-भजनमें अपना जीवन समाप्त कर देना चाहती थी ।

वह भागती ही जा रही थी । उसे अपने शरीर तथा क्षुधा-पिपासादिकी कोई चिन्ता नहीं थी । शरीर पसीनेसे भीग गया था । वह थककर चूर-चूर हो गयी थी और हाँप रही थी । दो दिन बाद शबरी पम्पासरपर पहुँची ।

प्रातःकालकी वेला थी । शबरी थक गयी थी । वह एक वृक्ष-मूलसे सटकर अपना सिर थामकर बैठ गयी । उसी समय मतंग ऋषि अपने शिष्योंसहित स्नानार्थ जाते हुए कह रहे थे—'भगवान्‌की प्राप्तिके लिये भगवान्‌के बन जाओ । अपना तन, मन, प्राण, बुद्धि, अहंकार आदि सब कुछ प्रभुपर अर्पित कर दो । भगवान्‌का ध्यान, भगवान्‌के नामका जप और भगवान्‌की कथाका श्रवण-मनन उन्हें प्राप्त करनेका सरल और सुगम साधन है । तुम शुद्ध हृदयसे उनकी ओर एक पग चलोगे तो वे महिमामय दयानिधान प्रभु सहस्र-सहस्र पग तुम्हारी ओर बढ़ आयेंगे ।'

शबरी जैसे कृतार्थ हो गयी । महर्षिके दर्शन एवं उनकी वाणीसे उसने अद्भुत शान्तिका अनुभव किया । उसने वहीं रहना अपने लिये हितकर समझा । उसने सोचा, 'मैं शूद्रा हूँ, मेरे यहाँ रहनेसे ऋषियोंकी तपस्यामें बाधा पड़ेगी ।'—इस विचारसे उसने उन तपस्वियोंके आश्रमसे कुछ दूर अपने लिये एक छोटी कुटिया बना ली ।

उसकी बुद्धिमें यह बात अच्छी तरह समा गयी थी कि भक्त भगवान्‌को प्राणप्रिय होते हैं । उन भक्तोंकी कृपासे

भगवत्कृपा स्वतः प्राप्त हो जायगी। अपनी इस दृढ़ धारणाके कारण शबरीने ऋषियोंकी सेवा करते रहनेका निश्चय किया। बहुत रात्रि रहते ही वह उठ जाती और ऋषियोंके आश्रमसे पम्पासर-तटके समूचे मार्गमें झाड़ू लगा देती। महात्माओंको स्नानार्थ पम्पासर जानेमें तनिक भी कष्ट न हो, इसलिये वह एक-एक कंकड़ी बड़ी सावधानीसे साफ करती, मार्गमें जल छिड़कती और उनपर सुगन्धित पुष्प बिखेर देती। ऋषियोंकी कुटियोंके समीप चुपकेसे सूखी लकड़ियाँ रख आती, जिससे उन्हें समिधा लानेका कष्ट न उठाना पड़े।

शबरीका यह प्रतिदिनका नियम हो गया था; पर ऋषि-वर्ग चकित था कि गुप्त रीतिसे यह सेवा कौन करता है। ऋषि किसी निर्णयपर नहीं पहुँच सके। इस कारण कुछ शिष्योंने पहरा देना शुरू किया और शबरी पकड़ ली गयी। शिष्योंने उसे मतंग मुनिके सामने उपस्थित किया।

शबरी डर रही थी। डरते-डरते उसने दूरसे ही महामुनिके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। वह बोल नहीं पा रही थी। हाथ जोड़े खड़ी थी। उसका शरीर काँप रहा था और नेत्रोंसे आँसू झर रहे थे।

दयालु मतंग मुनिने शबरीको ध्यानपूर्वक देखा। उन्होंने उसके पूर्वके शुभ संस्कार तथा उसके हृदयको भक्तिका उर्वरक्षेत्र समझकर उससे बड़े ही प्यारसे कहा—'बेटी! तू बड़ी ही भाग्यशालिनी है। तुमपर करुणामूर्ति प्रभुकी अद्भुत कृपा है। तुम्हारा जन्म और जीवन सफल होकर रहेगा।'

फिर मतग मुनिने अपने शिष्यों और ऋषियोंकी ओर देखकर कहा—'भगवान्‌को भक्त प्राणोंसे प्यारे हैं और यह शबरी परम भगवद्भक्त है। भगवान्‌की प्राप्तिमें, उनकी भक्तिमें वर्ण और धर्मकी बाधा नहीं। उन्हें पानेका ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ही नहीं, कीट-पतंगादि सभी जीवोंको समान अधिकार है।'

परम भगवदनुरागी तपस्वी मतंग मुनिने शबरीसे कहा—'बेटी! तू मेरे पास ही रह। मैं तेरे लिये कुटिया बनवा देता हूँ। तू यहाँ रहकर अपनेयोग्य सेवा तथा भगवान्‌की प्राप्तिके लिये निरन्तर साधन-भजन करती रह।'

शबरीने दण्डकी भाँति पृथ्वीपर लेटकर रोते-रोते कहा—'मैं निश्चय ही भाग्यशालिनी हूँ और मेरा भाग्य-सूर्य आज उदित हुआ है, जो आपने मुझ नीचातिनीच परम मूर्ख शूद्रा नारीको अपने चरणोंके समीप रखकर दयामय प्रभुकी प्रीतिका अवसर प्रदान किया।' उसके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु झर रहे थे।

महामुनिकी बातोंसे अन्य ऋषि कुपित हो गये। उन्होंने कहा—'इस पवित्रतम आश्रममें शूद्राको स्थान देकर ऋषिने उचित नहीं किया है। ये मर्यादाका उल्लङ्घन कर रहे हैं।' ऋषिगण श्रीभगवान्‌की भक्तिकी महिमा नहीं समझ पा रहे थे।

शबरी मतंग मुनिकी कुटियासे कुछ ही दूरीपर छोटी-सी कुटियामें रहकर आश्रममें, आश्रमसे पम्पासरतक झाड़ू देती और सूखी लकड़ियोंके लानेका काम करती। दूर-से ऋषियोंके चरणोंमें प्रणाम करती और उनका उपदेश श्रवण करती। इसके बाद वह रात-दिन श्रीभगवान्‌के ध्यान और भजनमें तन्मय रहती। रात्रिमें कुछ ही देर सोती और एक समय मतंग मुनिके दिये हुए प्रसादको अत्यन्त श्रद्धापूर्वक ग्रहण करके रह जाती। उसे अपने शरीरकी ममता नाममात्र भी नहीं रह गयी थी। उसकी एक ही कामना थी कि इसी जीवनमें जितना शीघ्र हो, श्रीभगवान्‌की प्राप्ति हो जाय।

एक दिनकी बात है। शबरी श्रीभगवान्‌के ध्यानमें तल्लीन, सरोवरसे लौट रही थी। उसे अपने शरीरका भी ध्यान नहीं था। इस कारण स्नानसे लौटे हुए ऋषिसे उसका शरीर छू गया। ऋषि अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। बोले—'अत्यन्त नीच कहीं की; छू दिया मुझे, पुनः स्नान करना पड़ेगा। हमलोगोंकी यह दुर्दशा मतंग मुनि करवा रहे हैं।'

शबरी तो प्रभुके ध्यानमें छकी थी। उसे कुछ भी पता नहीं था कि कब क्या हुआ और ऋषिके क्षोभका भी उसे पता नहीं चला; अन्यथा वह दूरसे उनके चरणोंमें गिरकर क्षमा-प्रार्थना करती।

ऋषि पुनः स्नान करने पम्पासर गये, किंतु वे आश्चर्य-चकित थे। उन्होंने देखा कि सरोवरका निर्मल जल रक्त हो गया है और उसमें कीड़े रेंग रहे हैं। ऋषि बिना स्नान किये ही उदास होकर लौट आये।

कुछ दिनों बाद जब महामुनि मतंगका अन्तकाल निकट आया, तब शबरी अत्यन्त व्याकुल हो गयी। फूट-

फूटकर रोती हुई शबरीने कहा—'मुनिनाथ! मैं आपके विना नहीं जी सकूँगी। मेरे आधार आप ही हैं। ऋषियोंकी सेवा और श्रीभगवान्‌का ध्यान तथा भजन करनेका जो पुण्यमय अवसर मुझे प्राप्त हुआ है और मैं दयामय प्रभुको प्राप्त करनेके लिये व्याकुल हो रही हूँ, वह आपके चरण-कमलोंमें निवास करनेका ही फल है। आपके विना मेरा उद्देश्य पूर्ण नहीं होगा और श्रीभगवान्‌की प्राप्तिके विना मैं यह अधम शरीर रखकर ही क्या करूँगी? आपके ही साथ मैं भी अपना नश्वर शरीर छोड़ दूँगी।'

मतंग ऋषिने बड़े ही प्यारसे शबरीको समझाया—'बेटी! धीरज रख। अधीर मत हो। मेरे प्रयाणका समय आ गया है। मुझे जाना ही चाहिये, पर तू अभी यहीं रहकर पूर्ववत् साधन-भजन करती रह। अखिललोकपति भगवान् विष्णुने अयोध्यानरेश दशरथके यहाँ अवतार लिया है। वे दशरथनन्दन श्रीराम अपने पिताकी आज्ञासे चौदह वर्षके लिये वनमें आये हैं। वे भुवनमोहन करुणासिन्धु श्रीराम अपने अनुज श्रीलक्ष्मणसहित यहाँ शीघ्र पधारेंगे। तू उनका दर्शन करके कृतार्थ होगी। तेरी साधना सफल हो जायगी।'

मतंग मुनिने शरीर त्याग दिया। शबरी चीत्कार कर उठी।

महर्षिके न रहनेसे शबरी दुखी और उदास थी, किंतु उसे उनकी वाणीपर पूर्ण विश्वास था। 'भगवान् इस दण्डकारण्यमें अवश्य पधारेंगे और मुझे भी उनका दुर्लभ दर्शन प्राप्त होगा। मैं उनके योगीन्द्र-मुनीन्द्र-वन्दित चरण-सरोरुहको इन नेत्रोंसे देखकर अवश्य कृतार्थ होऊँगी।' शबरी आनन्दमग्न रहने लगी। वह प्रतिदिन दूरतक मार्ग स्वच्छ कर आती कि दयामय प्रभुके यहाँ पधारनेमें कष्ट न हो। कहीं कोई पत्ता खड़कता तो वह चौंक जाती कि श्रीभगवान् तो नहीं आ रहे हैं। वह प्रतिदिन दूर-दूरतक जाकर मीठे-मीठे फलोंको ले आती और उन्हें एकत्र कर सुरक्षित रखती श्रीभगवान्‌के सम्मुख रख देनेके लिये। वह रात-दिन प्रभुके आनेकी बाट जोहती। रातमें अच्छी तरह सो भी नहीं पाती थी।

ऋषिगण भी प्रभुके आगमनकी प्रतीक्षामें थे। वे उनके स्वागतके लिये प्रस्तुत थे। वे समझते थे कि प्रभु सर्वप्रथम हमारे यहाँ ही पधारेंगे; किंतु उनके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही; जब उन्होंने देखा कि भगवान् श्रीराम अपने अनुज लक्ष्मणसहित दण्डकारण्यमें आकर शबरीकी कुटियाका पता पूछने लगे। प्रेममूर्ति भगवान् श्रीराम अपने भाईके साथ भक्तिमती शबरीकी कुटियाके द्वारपर आकर खड़े हो गये। शबरीका क्या कहना?

सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जियँ भाए॥
सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई॥
प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥
(रामचरितमानस ३।३३।३-४½)

श्याम-गौरके त्रैलोक्यमोहन सौन्दर्यको देखकर शबरी आत्मविभोर हो गयी। वह प्रभुके चरणारविन्दको पकड़कर उनके मुखारविन्दकी ओर अपलक नेत्रोंसे देखने लगी। उसकी वाणी अवरुद्ध थी। उसने सानुज प्रभुको सुन्दर आसनपर बिठाया, श्रीराम तथा लक्ष्मणके चरण अच्छी प्रकार धोये और उस चरणोदकको अपने शरीरपर छिड़का। इसके अनन्तर उसने अर्घ्यादिसे भगवान्‌का सत्कार कर अत्यन्त श्रद्धा एवं प्रीतिपूर्वक उनका पूजन किया। फिर उसने इकट्ठे किये हुए फलोंको उनके सम्मुख रख दिया। श्रीभगवान् आनन्दपूर्वक उन फलोंको खाने लगे। भक्ति-मती शबरी अत्यन्त प्रेमसे फलोंको परसती जाती और श्रीभगवान् उन्हें सराह-सराहकर सुखपूर्वक खाते जा रहे थे। शबरीके मीठे बेरोंको खाते समय भगवान् श्रीराम अनुभव कर रहे थे, जैसे उनकी जन्म देनेवाली प्रेममयी जननी कौसल्याजी उन्हें भोजन करा रही हों।

इस प्रकार अपनी कामनापूर्ति देखकर शबरीने श्रीभगवान्‌से भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर कहा—'प्रभो! मेरे गुरु महामुनि मतंगजीने इस संसारसे विदा होते समय आपके यहाँ आनेकी बात कहकर मुझे शरीर रखनेकी आज्ञा दी थी। आज उनका वचन पूरा हुआ। आज मेरी प्रसन्नता-की सीमा नहीं। किंतु मैं अत्यन्त नीच और गँवार स्त्री हूँ, आपकी दासी कहलानेका मेरा मुँह ही कहाँ है।'

कथं रामाद्य मे दृष्टस्त्वं मनोवागगोचरः।
स्तोतुं न जाने देवेश किं करोमि प्रसीद मे॥
(अ० रा० ३।१०।१९)

'राम! आप तो मन या वाणीके विषय नहीं हैं, फिर न जाने आज मुझे आपका दर्शन कैसे हो गया। देवेश्वर! मैं आपकी स्तुति करना नहीं जानती। अब मैं

क्या करूँ ? प्रभो ! आप स्वयं ही मुझपर प्रसन्न होइये ।'*

शबरीके अन्तर्हृदयकी विशुद्ध प्रीति और उसकी दीनता देखकर श्रीभगवान्‌ने उससे कहा—

पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जातिनामाश्रमादयः ।
न कारणं मद्भजने भक्तिरेव हि कारणम् ॥
यज्ञदानतपोभिर्वा वेदाध्ययनकर्मभिः ।
नैव द्रष्टुमहं शक्यो मद्भक्तिविमुखैः सदा ॥
(अ० रा० ३ । १० । २०-२१)

'पुरुषत्व-स्त्रीत्वका भेद, अथवा जाति, नाम और आश्रम—ये कोई भी मेरे भजनके कारण नहीं हैं । उसका कारण तो एकमात्र मेरी भक्ति ही है । जो मेरी भक्तिसे विमुख हैं, वे यज्ञ, दान, तप अथवा वेदाध्ययन आदि किसी भी कर्मसे मुझे कभी नहीं देख सकते †।'

इसके अनन्तर भगवान् श्रीरामने शबरीकी भक्तिके वश होकर उसके सामने 'नवधा-भक्ति'का वर्णन किया । भगवान्‌ने उससे कहा—

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं । सावधान सुनु धरु मन माहीं ॥
(मानस ३ । ३४ । ३½)

और प्रभुने आगे बताया—

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ॥
गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान ।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान ॥
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा । पंचम भजन सो बेद प्रकासा ॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा । निरत निरंतर सज्जन धरमा ॥
सातवँ सम मोहि मय जग देखा । मोतें संत अधिक करि लेखा ॥
आठवँ जथालाभ संतोषा । सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा ॥
नवम सरल सब सन छलहीना । मम भरोस हियँ हरष न दीना ॥
(रामचरितमानस ३ । ३४ । ४; ३५; ३ । ३५ । १-२½)

श्रीभगवान्‌ने शबरीको फिर बताया कि 'स्त्री-पुरुष ही नहीं, चराचर प्राणियोंमेंसे किसीमें यदि उपर्युक्त नौ प्रकारकी भक्तिमेंसे कोई एक भी भक्ति हो तो वह मुझे अत्यन्त प्रिय है । तुम्हारी भक्ति तो सब प्रकारसे दृढ़ है । इस कारण जो गति योगियोंके लिये दुर्लभ है, आज वह तुम्हें सुलभ हो गयी—

जोगि बृंद दुरलभ गति जोई । तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई ॥‡
(मानस ३ । ३५ । ४)

इसी बीच ऋषियोंका समुदाय भी भगवान्‌के दर्शनार्थ शबरीकी कुटियाके समीप आ गया । ऋषियोंका ज्ञानाभिमान लुप्त हो गया था । उनके मुँहसे स्वतः निकल गया—'भक्तिमती शबरी ! तू धन्य है ।' जब ऋषियोंने पम्पासरके निर्मल जलके रक्तमें परिणत होने और उसमें कीड़े पड़नेकी बात कही तो श्रीलक्ष्मणजीने उन्हें स्पष्ट बताया कि 'आपलोगोंने परम भगवद्भक्त और महान् तपस्वी दयालु मतंग ऋषिसे द्वेष किया और बाल-ब्रह्मचारिणी परम भगवद्भक्ता सती शबरीका अपमान किया है । इसी कारण पम्पासरका जल सर्वथा दूषित हो गया है । साध्वी शबरीके पुनः स्पर्श करते ही वह जल पूर्ववत् निर्मल हो जायगा ।'

ऋषियोंके आग्रह एवं श्रीभगवान्‌के आदेशसे शबरीने सरोवरका स्पर्श किया और उसका जल पहलेकी भाँति स्वच्छ हो गया ।

शबरीकी साधना सफल हो गयी । श्रीभगवान्‌ने उसकी सारी लालसा और सारी आकाङ्क्षा पूरी कर दी थी । अब उसे अपने जीवनमें कुछ भी पाना और कुछ भी करना शेष नहीं था । प्रभु-पदपद्मोंकी दृढ़ भक्ति उसे प्राप्त हो ही गयी थी, इसी कारण जब भगवान् उसकी कुटियासे चलने लगे, तब उसने अधीर होकर ऋषि-मुनियोंके सामने ही अपने पार्थिव शरीरको त्याग दिया ।

ऋषिगण जय-जयकार करने लगे ।

---

*केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी । अधम जाति मैं जड़मति भारी ॥ अधम ते अधम अधम अति नारी । तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी ॥
(रामचरितमानस ३ । ३४ । १-१½)

† कह रघुपति सुनु भामिनि बाता । मानउँ एक भगति कर नाता ॥
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई । धन बल परिजन गुन चतुराई ॥ भगति हीन नर सोहइ कैसा । बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ॥
(रामचरितमानस ३ । ३४ । २-३)

‡ मत्सान्मद्भक्तियुक्ता त्वं ततोऽहं त्वामुपस्थितः ॥ इतो मद्दर्शनान्मुक्तिस्तव नास्त्यत्र संशयः ।
(अ० रा० ३ । १० । ३१-३२)

'तू मेरी भक्तिसे युक्त है । इसीलिये मैं तेरे पास आया हूँ । अब मेरा दर्शन होनेसे तेरी मुक्ति हो जायगी—इसमें संदेह नहीं ।'

परमभक्त काकभुशुण्डि

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य ।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य ॥
(मानस ७ । ११९ ख)

बात है तबकी, जब लङ्कामें युद्ध हो रहा था । लीलाधारी भगवान् श्रीराम मेघनादके नागपाशमें बँध गये । प्रभुको बन्धन-मुक्त करनेके लिये देवर्षि नारदने गरुडको भेजा । गरुडने नागपाश तो काट दिया, किंतु गरुडके मनमें संदेह हो गया—यदि ये सर्वसमर्थ भगवान् हैं तो तुच्छ मेघनादके बन्धनमें कैसे बँध गये—

भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जा कर नाम ।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम ॥

नाना भाँति मनहि समुझावा । प्रगट न ग्यान हृदयँ भ्रम छावा ॥
(वही, ७ । ५८; ५८ । ३)

इस प्रकार व्याकुल होकर गरुडजी नारदजीके पास पहुँचे और उन्होंने अपने मनका संदेह मुनिके सम्मुख प्रकट किया । नारदजीने भगवान् रामकी प्रबल मायाकी महिमा बताते हुए कहा—'गरुड ! तुम्हारे हृदयमें भी महामोह उत्पन्न हो गया है । तुम ब्रह्माके पास जाओ और वे जो आज्ञा दें, वही करो ।'

गरुडजी ब्रह्माके पास पहुँचे । उन्होंने उन्हें पार्वतीवल्लभ शंकरजीके पास भेज दिया । गरुड श्रीशंकरजीके पास चले । उस समय श्रीशंकरजी कुबेर-गृह जा रहे थे । गरुडजीने भगवान् शंकरके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर अपना संदेह प्रकट किया । भगवान् शंकर बोले—'तुम्हारा संदेह तभी निवारण हो सकता है, जब तुम कुछ समयतक सत्सङ्ग करो । मेरे पास तो समय नहीं है, तुम महात्मा काकभुशुण्डिके पास जाओ । वे परम प्रवीण श्रीराम-भक्त हैं । वे सदा ही श्रीभगवान्की लीला-कथा कहते हैं और उनके पास वयोवृद्ध राजहंस तथा श्रेष्ठ पक्षी कथा सुनते हैं । तुम वहाँ जाकर प्रभुचरित्र सुनो । वहीं तुम्हारा भ्रम दूर हो सकेगा ।'

भगवान् शंकरके आज्ञानुसार गरुडजी नीलाचलपर काकभुशुण्डिजीके परम पावन आश्रममें पहुँचे । काकभुशुण्डिजीके आश्रमका ही ऐसा प्रभाव था कि वहाँ पहुँचते ही विष्णुवाहन गरुडजीका सारा संशय छिन्न हो गया ।

स्नानादिसे निवृत्त होकर गरुडजी काकभुशुण्डिजीके समीप उस समय पहुँचे, जब वे हरि-कथा प्रारम्भ करना ही चाहते थे । उन्होंने गरुडजीका सम्मानपूर्वक स्वागत किया और उनके इच्छानुसार धीरे-धीरे विस्तारपूर्वक परमपावन सम्पूर्ण रामचरित सुनाया ।

गरुडजीकी इच्छासे काकभुशुण्डिजीने उन्हें बताया—''पूर्वके किसी कल्पमें कलियुगमें मेरा जन्म अयोध्यामें शूद्र-कुलमें हुआ था । एक बार अकाल पड़ा । इस कारण मैं अयोध्या छोड़कर उज्जयिनी चला गया । मैं अत्यन्त दरिद्र था, किंतु कुछ समय बाद मेरे पास कुछ सम्पत्ति भी हो गयी । वहाँ भगवान् शंकरके उपासक परम साधु एक सरल ब्राह्मण रहते थे । उन्होंने कृपापूर्वक मुझे शिव-मन्त्रकी दीक्षा दे दी । मैं भगवान् शंकरका भक्त था, किंतु राम-कृष्णके प्रति मेरे मनमें बड़ी ईर्ष्या थी । मैं उनकी निन्दा किया करता था । मेरे गुरुदेव यह जानकर बड़े दुखी थे । वे मुझे बार-बार शिव-रामका अभेद-तत्त्व समझाते । वे कहते—'भगवान् शंकर सदा ही अत्यन्त श्रद्धापूर्वक राम-नामका जप करते हैं । तुम्हें श्रीरामके प्रति द्वेष नहीं करना चाहिये ।' इस प्रकार गुरुके बार-बार समझानेपर भी मेरे मनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था । मैं अहंकारमें चूर था और परम पूज्य गुरुकी भी उपेक्षा कर दिया करता था ।

''एक बारकी बात है । मैं अपने आराध्य भगवान् शंकरके मन्दिरमें उनका नाम जप रहा था । उसी समय वहाँ मेरे गुरुदेव पधारे, किंतु मैंने अहंकारके कारण उठकर उन्हें प्रणाम नहीं किया । मेरे गुरुके मनमें तो कोई विचार नहीं हुआ, पर मेरी यह उद्दण्डता भगवान् शंकर नहीं सह सके । उन्होंने तुरंत शाप दिया । आकाशवाणी हुई—'यह एक सहस्र जन्म ग्रहण करेगा ।' इस आकाशवाणीसे मेरे दयालु गुरुदेव 'हाय ! हाय !!' कर उठे । उन्होंने प्रभुसे अत्यन्त करुण स्वरमें प्रार्थना की । गुरुदेवकी प्रार्थनासे संतुष्ट होकर भगवान् उमानाथने कहा—'मेरा शाप व्यर्थ नहीं जायगा । इसे अधम योनियोंमें एक हजार बार अवश्य जन्म लेना पड़ेगा, किंतु इसे जन्म और मृत्युका कष्ट नहीं होगा । जो भी शरीर इसे प्राप्त होगा, यह अनायास ही बिना कष्टके उसे त्याग देगा । मेरी कृपासे

इसे ये सारी बातें याद रहेंगी। अन्तिम जन्ममें यह ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न होगा। उस समय इसे भगवान् श्रीरामके चरणोंमें प्रीति प्राप्त हो जायगी और इसकी अव्याहत गति होगी।'

"भगवान् शंकरके शापके अनुसार अनेक योनियोंमें भटकनेके बाद अन्तमें मैंने देव-दुर्लभ ब्राह्मण-कुलमें जन्म लिया। दयामय आशुतोषकी दयासे मुझे पूर्वजन्मकी स्मृति थी, इस कारण मेरा मन भगवान् श्रीरामके चरणोंका चिन्तन कर रहा था। कुछ ही समय बाद मेरे माता-पिता परलोकवासी हुए और मैं प्रभु-भजनके लिये घर त्यागकर वनमें चला गया। वहाँ जहाँ-कहीं ऋषि-मुनि मिलते, मैं उनसे श्रीराघवेन्द्रका गुणगान सुनता। इस प्रकार धीरे-धीरे मेरे मनमें श्रीरामके चरण-दर्शनकी लालसा तीव्र हो गयी। मैं जिस ऋषिसे पूछता, वे ही निर्गुण, निराकार एवं सर्वव्यापक प्रभुका उपदेश देते; पर मेरा संतोष नहीं होता था। मेरा हृदय तो त्रैलोक्यमोहन भक्तभयहारी श्रीराघवेन्द्रके दर्शनार्थ व्याकुल हो रहा था। इसी प्रकार मैं महर्षि लोमशके आश्रममें पहुँच गया और उनके चरणोंमें प्रणाम कर मैंने उनसे सगुण-साकार प्रभुके दर्शनका उपाय पूछा। महर्षि लोमशने मुझे अधिकारी ब्राह्मणबालक समझकर उपदेश देना प्रारम्भ किया। वे निर्गुण-निराकार ब्रह्मका प्रतिपादन करते, किंतु मैं उनका खण्डन कर सगुण-साकारका समर्थन करने लगा। महर्षि बार-बार मुझे निर्गुण ब्रह्मको समझानेका प्रयत्न करते और मैं प्रत्येक बार उनका खण्डन कर सगुण-साकारकी प्राप्तिका मार्ग पूछता।

"मूर्ख कहींका!' ऋषि क्रुद्ध हो गये। उन्होंने मुझे शाप दे दिया—'तू मेरे सत्य वचनपर विश्वास न कर तर्क करता जा रहा है। तुझे अपने पक्षका अत्यन्त दुराग्रह है। जा, तुरंत अधम काग हो जा।'

"तत्काल मेरा शरीर कौएका हो गया, किंतु इसका मुझे तनिक भी क्लेश नहीं हुआ। मैंने अत्यन्त आदरपूर्वक मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और उड़कर जाना ही चाहता था कि दयालु लोमशजीके हृदयमें मुझ-जैसे क्षमाशील ब्राह्मण-बालकको शाप देनेपर पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने अत्यन्त स्नेहसे मुझे बुलाया और अनेक प्रकारसे मुझे प्रसन्न करते हुए उन्होंने मुझे भगवान् श्रीरामके बालरूपका ध्यान तथा श्रीराम-मन्त्र प्रदान किया। इतना ही नहीं, मेरे मस्तकपर अपना स्नेहमय कर-कमल फेरते हुए उन्होंने मुझे आशीष् प्रदान की—'तुम्हारे हृदयमें श्रीराम-भक्ति सदा बनी रहे और श्रीराम तुम्हें सदा प्यार करें। ज्ञान-वैराग्य एवं सम्पूर्ण शुभ गुण तुममें सदा निवास करेंगे। तुम इच्छानुसार रूप धारण कर सकोगे और तुम्हारी मृत्यु भी इच्छानुसार ही होगी। तुम मनमें जो इच्छा करोगे, भगवत्कृपासे वह सब पूरी हो जायगी। इतना ही नहीं, तुम जिस आश्रममें रहोगे, वहाँ एक योजनतक अविद्या प्रविष्ट नहीं हो सकेगी।'

"मैं कृतार्थ हो गया और गुरुकी आज्ञा प्राप्तकर मैंने उनके चरणोंकी वन्दना की और फिर यहाँ आ गया। यहाँ रहते मुझे सत्ताईस कल्प व्यतीत हो गये। श्रीभगवान् जब-जब अवतार ग्रहण करते हैं, तब-तब मैं श्रीरामकी पाँच वर्षकी आयुतक उनके भुवनमोहन रूप एवं अत्यन्त दुर्लभ बाल-लीलाको देखकर कृतार्थ होता हूँ और फिर हृदयमें उनके उस शिशुरूपको धारणकर यहाँ इस आश्रममें लौट आता हूँ। यहाँ मैं सदा भगवान् श्रीरामका ध्यान, जप एवं मानसिक पूजाके साथ नियमितरूपसे प्रभुकी लीला-कथा कहता हूँ, जिसे श्रेष्ठ राजहंस आदरपूर्वक सुनते हैं।"*

परमभक्त काकभुशुण्डिजीकी महिमाका बखान किस प्रकार किया जाय, जहाँ जानेपर भगवान् शंकरको विशेष आनन्द प्राप्त हुआ था। भगवान् शंकरने स्वयं अपने मुखारविन्दसे माता पार्वतीसे काकभुशुण्डिजीके आश्रमका वर्णन करते हुए कहा था—

जब मैं जाइ सो कौतुक देखा। उर उपजा आनंद बिसेषा॥
तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउँ कैलास॥
(वही, ७। ५६। ५; ७। ५७)

—शि० दु०



* यह अत्यन्त सुन्दर प्रसङ्ग गोस्वामी तुलसीदासविरचित श्रीरामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें विस्तारपूर्वक दिया गया है।

रामभक्त अगस्त्यजी

यह बर मागउँ कृपानिकेता। बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता॥
(मानस ३। १२। ५)

विन्ध्यगिरिकी गतिको अवरुद्ध कर देनेवाले परमतेजस्वी अगस्त्यजीका आश्रम अत्यन्त मनोहर था। वहाँ प्रत्येक ऋतुमें सुन्दर पुष्प एवं सुस्वादु फल सुलभ थे! मृगादि पशु वहाँ शान्ति एवं सुखपूर्वक विचरण करते थे एवं नाना प्रकारके पक्षी मधुर स्वरमें गान करते रहते थे। राक्षस-गण उनके आश्रमके समीप भी नहीं आते थे। वे भयाक्रान्त होकर दूर चले गये थे। आश्रम प्रत्येक दृष्टिसे सुखद एवं निरापद था। इसी कारण तपश्चर्याके लिये वहाँ ऋषि-मुनि ही नहीं, देवता, यक्ष, नाग और पक्षी भी अत्यन्त संयमित जीवन व्यतीत करते हुए निवास करते थे। तपस्वी अगस्त्यजीकी प्रशंसा करते हुए स्वयं कमल-लोचन श्रीरामने अपने अनुज लक्ष्मणसे कहा था—

नात्र जीवेन्मृषावादी क्रूरो वा यदि वा शठः।
नृशंसः पापवृत्तो वा मुनिरेष तथाविधः॥
(वा० रा० ३। ११। ९०)

'ये मुनि ऐसे प्रभावशाली हैं कि इनके आश्रममें कोई झूठ बोलनेवाला, क्रूर, शठ, नृशंस अथवा पापाचारी मनुष्य जीवित नहीं रह सकता।'

जिस समय क्षीराब्धिके निकट ब्रह्माजीने प्रभुसे रावणका वधकर पृथ्वीका भार हरण करनेकी प्रार्थना की थी, उसी समय-से तपस्वी अगस्त्यजी उस पवित्रतम आश्रममें रहकर श्रीरामके दर्शनार्थ उनके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने अपने शिष्य सुतीक्ष्णजीके विशेष आग्रहसे गुरुदक्षिणा माँगी थी—'मुझे यहाँ भगवान् श्रीरामके दर्शन कराओ।'

सुतीक्ष्णजीने श्रीअगस्त्यजीके चरणोंमें प्रणाम किया और भगवान् श्रीरामकी प्राप्तिके लिये वहाँसे चले गये। वे निरन्तर साधन-भजनमें लगे रहते थे। श्रीरामके चरणोंमें उनकी भक्ति अनुपम थी और इसी कारण श्यामसुन्दर श्रीरामने श्रीसीता एवं लक्ष्मणसहित उन्हें दर्शन दिया। उनकी लालसा पूरी हुई। वे प्रभुके साथ अपने गुरु श्रीअगस्त्यजीके आश्रमकी ओर चले। आश्रमके पास पहुँचकर सुतीक्ष्णजी तुरंत अपने गुरुके पास चले गये। उस समय श्रीअगस्त्यजी रामभक्तोंके साथ प्रभुका गुणगान कर रहे थे। वहाँ पहुँचकर—

दण्डवत् प्रणिपत्याह विनयावनतः सुधीः।
रामो दाशरथिर्ब्रह्मन् सीतया लक्ष्मणेन च।
आगतो दर्शनार्थं ते बहिस्तिष्ठति साञ्जलिः॥
(अ० रा० ३। ३। ९)

"उन्हें विनयपूर्वक दण्डवत्-प्रणाम कर सुबुद्धि सुतीक्ष्णजीने कहा—'ब्रह्मन्! दशरथकुमार श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ आपके दर्शनोंके लिये आये हैं और अञ्जलि बाँधे आश्रमके बाहर खड़े हैं'।"*

इस संवादमें कितना सुख था, इसे परमभक्त श्रीअगस्त्यजी ही जानते थे। 'सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए।' (मानस ३। ११। ४½)—श्रीअगस्त्यजी अपने परमाराध्यके दर्शनार्थ दौड़ पड़े।'

रामोऽपि मुनिमायान्तं दृष्ट्वा हर्षसमाकुलः।
सीतया लक्ष्मणेनापि दण्डवत्पतितो भुवि॥
द्रुतमुत्थाप्य मुनिराड् राममालिङ्ग्य भक्तितः।
तद्गात्रस्पर्शजाह्लादस्रवन्नेत्रजलाकुलः॥
(अ० रा० ३। ३। १३-१४)

'मुनीश्वरको आते देख श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और सीताके सहित पृथिवीपर दण्डके समान लेट गये। तब मुनिराजने तुरंत ही रामको उठाकर प्रेमपूर्वक हृदयसे लगा लिया और उनके शरीर-स्पर्शसे प्राप्त हुए आनन्दसे उनके नेत्रोंमें जल भर आया।'

फिर अगस्त्यजीने बड़े ही स्नेहसे उनसे कुशल-प्रश्न पूछा। प्रभु श्रीरामके अमृतमय वचनोंसे अगस्त्यजीका रोम-रोम पुलकित हो रहा था। उन्होंने लक्ष्मण एवं सीतासहित अपने प्राणाराम श्रीरामको सुन्दर आसनपर बैठाया तथा उनकी प्रेमपूर्वक पूजा की। वनके सुन्दर एवं सुस्वादु फलोंसे प्रभुको संतुष्टकर वे कहने लगे—'आज मेरे-जैसा भाग्यशाली कोई नहीं, जो मैं, जिनमें योगियोंका मन रमण करता है तथा जो भक्तोंको आनन्द प्रदान करनेवाले हैं, उन धर्मात्मा रामको विदेहतनया सीता और लक्ष्मणके साथ अपने आश्रममें

* तुरत सुतीछन गुर पहिं गयऊ। करि दंडवत कहत अस भयऊ॥
नाथ कौसलाधीस कुमारा। आए मिलन जगत आधारा॥
राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिनु देव जपत हहु जेही॥
(मानस ३। ११। ३-४)

प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। दयामय! आपकी दया अनन्त है।' इस प्रकार स्तुति करते हुए अगस्त्यजीने प्रभु श्रीरामसे कहा—

दीर्घकालं मया तप्तमनन्यमतिना तपः।
तस्येह तपसो राम फलं तव यदर्चनम्॥
सदा मे सीतया सार्धं हृदये वस राघव।
गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्मृतिः स्यान्मे सदा त्वयि॥

(अ० रा० ३। ३। ४३-४४)

'प्रभो! मैंने बहुत समयतक अनन्यभावसे तपस्या की है। राम! आज जो मैंने आपकी प्रत्यक्ष पूजा की, यह उस तपस्याका फल है। राघव! सीताके सहित आप सर्वदा मेरे हृदयमें निवास करें; मुझे चलते-फिरते सदा आपका स्मरण बना रहे।'

इस प्रकार स्तुति कर महाभाग अगस्त्यजीने (राक्षसोंका संहार करनेके लिये) पूर्वकालमें श्रीरामके लिये इन्द्रका दिया हुआ धनुष, बाणोंसे कभी खाली न होनेवाले दो तरकस तथा एक रत्नजटित खड्ग देते हुए मुनिजनवन्दित श्रीरामसे कहा—

अनेन धनुषा राम हत्वा संख्ये महासुरान्।
आजहार श्रियं दीप्तां पुरा विष्णुर्दिवौकसाम्॥
तद्धनुस्तौ च तूणी च शरं खड्गं च मानद।
जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा॥

(वा० रा० ३। १२। ३५-३६)

'श्रीराम! पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने इसी धनुषसे युद्धमें बड़े-बड़े असुरोंका संहार करके देवताओंकी उद्दीप्त लक्ष्मीको उनके अधिकारसे लौटाया था। मानद! आप यह धनुष, ये दोनों तरकस, ये बाण और यह तलवार (राक्षसोंपर) विजय पानेके लिये ग्रहण कीजिये—ठीक उसी तरह, जैसे वज्रधारी इन्द्र वज्र ग्रहण करते हैं।'

सर्वसमर्थ सर्वेश्वर श्रीरामने उन श्रेष्ठ आयुधोंको ले लिया और विनयपूर्वक पूछा—'महामुने! आप मुझे कृपापूर्वक ऐसा स्थान बताइये, जहाँ जल एवं पुष्प-फलादिकी सुविधा हो और मैं वहाँ कुटी बनाकर सुखपूर्वक रह सकूँ।'

अपने परमाराध्य, निखिल सृष्टिके स्वामी, जगदाधार श्रीरामके मुखारविन्दसे ऐसा वचन सुनकर अगस्त्यजीके नेत्र भर आये। वे प्रभुके सौन्दर्य, शील एवं विनय आदि गुणोंपर अत्यन्त मुग्ध थे ही, उन्हें यह सम्मान देते देखकर गद्गद हो गये। उनकी वाणी अवरुद्ध-सी हो गयी। कुछ देर बाद उन्होंने श्रीरामके मुखारविन्दकी ओर एकटक निहारते हुए कहा—

संतत दासन्ह देहु बड़ाई। तातें मोहि पूँछेहु रघुराई॥
है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचबटी तेहि नाऊँ॥
दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिबर कर हरहू॥

(मानस ३। १२। ७-८)

पद्मपत्राक्ष श्रीरामने अगस्त्यजीके चरणोंमें सादर प्रणाम निवेदन किया और फिर यहाँसे 'चले राम मुनि आयसु पाई।' (वही, ३। १२। ९)

धन्य थे महाभाग अगस्त्यजी और धन्य थी उनकी श्रीराम-पदप्रीति।

—शि० दु०

रामनाम

राम-नामका सुमिरन कर ले प्रेमसहित नर बारंबार।
वेद-पुराण-शास्त्र सब गाते उसकी महिमा अपरंपार॥
शेष, गणेश, महेश, भवानी, वालमीकि, नारद, हनुमान।
तुलसी, सूर, कबीर, व्यास, शुक, ध्रुव, प्रहलाद, भुसुण्ड महान॥
मीरा, चरणदास, सहजो भी करते जिसका नित गुण-गान।
शबरी, गीध, विभीषण, गणिका, अजामील, गज भक्त समान॥
राम-नामने किया सभीको सुगम पंथसे मोक्ष प्रदान।
वैरभावसे सुमिरन करता, उसका भी होता कल्यान॥
चलते-फिरते, सोते-जगते रक्खो सदा उसीका ध्यान।
श्वास-श्वासमें राम जपो, बस पाओ पावन पद निर्वान॥
मगन ध्यानमें मन जब होता, आहा आती अजब बहार।
पुलकित तनु, आनन्द-अश्रुकी बहती निशिदिन अविरल धार॥

—भगवत नारायण भार्गव

प्रेमी भक्त श्रीसुतीक्ष्णजी

अखिल बिस्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबरि दाया॥
तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया। भजै मोहि मन बच अरु काया॥

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥

(मानस ७।८६।४; ७।८७)

'गुरुदेव!' सुतीक्ष्णजीने अपनी शिक्षा समाप्त होनेपर अपने गुरु श्रीअगस्त्यजीसे अत्यन्त विनयपूर्वक कहा 'आपके चरणोंमें रहकर मैंने विद्या प्राप्त की है। आप कृपापूर्वक कुछ गुरु-दक्षिणा बताइये। मैं आपके चरणोंमें क्या उपस्थित करूँ?'

'मैं तुम्हारी श्रद्धासे प्रसन्न हूँ।' श्रीअगस्त्यजीने स्नेह-पूर्वक उत्तर दिया—'तुम्हें गुरु-दक्षिणा देनेकी आवश्यकता नहीं। मैं तुम्हें स्नेहपूर्वक वैसे ही उऋण कर दे रहा हूँ।' 'नहीं गुरुदेव!' सुतीक्ष्णजी बोले—'आपने मुझे दुर्लभ विद्या-दान दिया है। आप गुरु-दक्षिणाके लिये मुझे कुछ आज्ञा दीजिये।'

'तुम्हें गुरु-दक्षिणा देनेकी आवश्यकता नहीं' अगस्त्यजीने पुनः उत्तर दिया—'मैं तुम्हें ऋणमुक्त कर दे रहा हूँ। तुम सुखपूर्वक चले जाओ।'

'परम पूज्य गुरुदेव!' सुतीक्ष्णजीने आग्रहपूर्वक पुनः निवेदन किया—'आप कुछ-न-कुछ गुरु-दक्षिणामें अवश्य माँगिये। गुरु-दक्षिणा दिये बिना मेरा संतोष नहीं होगा।'

'अत्यधिक हठ उचित नहीं।' अगस्त्यजीके मनमें कुछ रोष उत्पन्न हो गया। 'पर तुम नहीं मानते और मुझे गुरु-दक्षिणा देना ही चाहते हो तो जगद्वन्द्य परमप्रभु श्रीरामको लाकर मुझसे मिला दो।'

श्रीसुतीक्ष्णजीने गुरुदेवके चरणोंमें सादर साष्टाङ्ग दण्डवत् किया और वहाँसे चलकर अरण्यमें एक कुटिया बना ली। श्रीसुतीक्ष्णजीकी कुटियाके समीप अन्य कितने ही ऋषि रहते थे। वह स्थान सुतीक्ष्ण-आश्रमके नामसे प्रख्यात था। उक्त आश्रम अत्यन्त मनोरम था। वहाँ प्रत्येक ऋतुके पुष्प और फल सुलभ थे। आश्रम प्रत्येक दृष्टिसे तपस्वियोंके उपयुक्त एवं सुखद था।

श्रीसुतीक्ष्णजीकी भगवान् श्रीराममें अद्भुत रति थी। वे मन, वाणी एवं कर्मसे श्रीराघवेन्द्रके भक्त थे। स्वप्नमें भी किसी अन्य देवताकी आशा नहीं रखते थे। वे निरन्तर श्रीरामके ध्यान एवं उनके भजन-स्मरणमें ही लगे रहते थे। अत्यन्त सरल एवं निश्छल प्रकृतिके श्रीसुतीक्ष्णजी प्रायः श्रीरामके स्मरणमें रोते-रोते बेसुध हो जाते थे। प्रभु-प्रेममें पगे रहनेके कारण उन्हें फल एवं जल ग्रहण करनेका ध्यानतक नहीं रहता था, इस कारण उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था। देहमें मांसका नाम नहीं था। केवल अस्थि-पञ्जर ही शेष रह गया था। श्रीसुतीक्ष्णमुनिमें नवधा भक्तिके सभी आदर्श उपस्थित हो गये थे। वे राम-मन्त्रके अनन्य उपासक थे।

'भगवती सीता एवं अनुज लक्ष्मणसहित प्रभु श्रीराम इधर ही आ रहे हैं'—यह संवाद पाते ही सुतीक्ष्णजी उठकर खड़े हो गये और मनमें अनेक मनोरथ करते हुए आतुरतासे दौड़ पड़े। उस समय उनके मनकी बड़ी विचित्र स्थिति थी। सुतीक्ष्णजीकी भक्ति, उनकी योग्यता, उनकी नम्रता एवं विनय दुर्लभ है। वे कहते हैं—

हे बिधि दीनबंधु रघुराया। मो से सठ पर करिहहिं दाया॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं॥
नहिं सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा॥
एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की॥

(मानस ३।९।२–४)

श्रीसुतीक्ष्णजी प्रभुको प्राप्त करनेकी योग्यताका अपनेमें सर्वथा अभाव देखते हैं। उन्हें अपनेमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, जप, यज्ञ, सत्सङ्ग एवं प्रभु-पद-पद्मोंमें दृढ़ अनुराग—कुछ भी नहीं दीखता, पर करुणामूर्ति प्रभुके स्वभावकी आशा और उसका विश्वास अवश्य है और ये ही भक्तिकी पराकाष्ठाके लक्षण हैं।

'आज संसार-सागरसे मुक्ति प्रदान करनेवाले प्रभुके मुख-कमलका दर्शन कर मेरे नेत्र सफल होंगे, कृतार्थ हो जायँगे।'—अपने इस भावसे श्रीसुतीक्ष्णजी प्रेममें मग्न हो गये। उस समय उनकी दशा अत्यन्त विचित्र हो गयी थी। वे किस दिशामें, कहाँ, किसलिये जा रहे हैं—इसका उन्हें पता ही न था। उन्हें मार्ग नहीं सूझ रहा था। वे कभी जोरसे श्रीभगवान्के परम मङ्गलमय, परम मधुर नामका उच्चारण करने लगते तो कभी सर्वथा मौन हो जाते, जैसे उनकी वाणी ही नहीं है। प्रेमविह्वल श्रीसुतीक्ष्णजी

कभी पीछे लौट जाते और कभी अपने आराध्य श्रीरामके गुण गा-गाकर नृत्य करने लगते । वे कभी गाते, कभी रोते और कभी अट्टहास करने लगते । श्रीरामके ध्यानमें तल्लीन होकर वे कभी नाचते तो कभी मौन खड़े हो जाते ।

दयासिन्धु, सर्वेश्वर, प्रेममूर्ति प्रभु श्रीराम वृक्षकी ओटसे श्रीसुतीक्ष्णजीकी यह प्रेमपूर्ण स्थिति देख रहे थे । उनकी यह अतिशय प्रीति देखकर प्रभु उनके हृदयमें प्रकट हो गये । महामुनिने अपने हृद्देशमें त्रैलोक्यवन्दित अपने जीवन-धन श्रीरामके मधुर मनोहर स्वरूपका दर्शन किया तो उनकी स्थिति अत्यन्त विचित्र हो गयी । उन्हें रोमाञ्च हो आया । वे मार्गमें ही अचल होकर बैठ गये—

मुनि मग माझ अचल होइ बैसा । पुलक सरीर पनस फल जैसा ॥
(मानस ३ । ९ । ७½)

फिर तो प्रभु श्रीराम उनके समीप आ गये । प्रभु श्रीसुतीक्ष्णजीको अनेक प्रकारसे जगाने लगे; किंतु ध्यानजनित अनिर्वचनीय सुखकी समाधिके कारण वे नहीं जगे । सच बात तो यह है कि प्रभु श्रीराम वृक्षकी ओटसे श्रीसुतीक्ष्ण-जीके अतिशय प्रेमकी स्थिति देखकर तत्काल उनके समीप पहुँचकर उन्हें सुखी करना चाहते थे; किंतु श्रीसुतीक्ष्णजीके समीप पहुँचनेमें कुछ देर हो जायगी, यह सोचकर अपने विरद-के रक्षार्थ त्वराके कारण प्रभु उनके हृदयमें प्रकट हो गये थे । फिर श्रीसुतीक्ष्णजीके हृदयकी वह अद्भुत प्रीति अक्षुण्ण बनी रहनेपर वहाँसे हट भी कैसे सकते थे ! अतएव लीला-अवतारविग्रह राजकुमारके मधुर रूपको छिपाकर प्रभुने नित्य अवतारी विग्रह शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज रूपका उन्हें दर्शन कराया । फिर तो श्रीसुतीक्ष्णजी छटपटा उठे । हृद्देशमें अपने जीवनाराध्य श्रीरामके स्थानपर श्रीविष्णुके* दर्शन कर वे मणिहीन फणिकी भाँति व्याकुल हो गये—

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें । बिकल हीन मनि फनिबर जैसें ॥
(वही, ३ । ९ । ९½)

जब व्याकुल होकर श्रीसुतीक्ष्णजी जगे तो उनके सम्मुख सीता एवं लक्ष्मणसहित उनके आराध्य त्रैलोक्यमोहन, धनुर्धर श्रीराम खड़े थे । फिर तो—

परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी । प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी ॥

और भक्तप्राणधन भगवान् श्रीरामने उन्हें उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया । प्रभु श्रीरामसे मिलते हुए सुतीक्ष्णजीकी ऐसी शोभा हो रही थी, जैसे तमाल-तरुसे कनक-लता मिल रही हो । और मुनि श्रीसुतीक्ष्णजीने खड़े होकर नवनीरदवपु श्रीरामके मुखारविन्दको देखा तो वे चित्रलिखित-से खड़े रह गये । फिर हृदयमें धैर्य धारणकर उन्होंने बार-बार प्रभुके चरणोंमें सिर रखा तथा अपने आश्रममें लाकर प्रभुकी श्रद्धा-भक्तिसे एवं विधिपूर्वक पूजा की ।

फिर अपनी दीनता एवं अल्पज्ञता तथा प्रभुकी अपार महिमाका संकेत करते हुए श्रीसुतीक्ष्णजीने अत्यन्त विनयपूर्ण शब्दोंमें श्रीभगवान्‌की स्तुति की । स्तुति करते हुए श्रीसुतीक्ष्ण-जीने कहा—

जो कोसल पति राजिव नयना । करउ सो राम हृदय मम अयना ॥
अस अभिमान जाइ जनि भोरे । मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥
(वही, ३ । १० । १०-१०½)

अभी कुछ ही देर पूर्व ध्यानमग्न मुनि तो जगाये नहीं जग रहे थे और अब कितनी चतुराईसे वरकी याचना कर रहे हैं !

इत्येवं स्तुवतस्तस्य रामः सुस्मितमब्रवीत् ।
मुने जानामि ते चित्तं निर्मलं मदुपासनात् ॥
अतोऽहमागतो द्रष्टुं मदृते नान्यसाधनम् ।
मन्मन्त्रोपासका लोके मामेव शरणं गताः ॥
निरपेक्षा नान्यगतास्तेषां दृश्योऽहमन्वहम् ।
(अ० रा० ३ । २ । ३५—३७)

"श्रीसुतीक्ष्णजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर श्रीरामचन्द्र-जीने उनसे मुस्कराकर कहा—'मुने ! मैं यह जानता हूँ कि तुम्हारा चित्त मेरी उपासनासे निर्मल हो गया है और तुम्हारा मेरे अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है; इसीलिये मैं तुम्हें देखने आया हूँ । संसारमें जो लोग मेरे

* श्रीसुतीक्ष्णजी-जैसे सर्वगुणसम्पन्न भक्तके मनमें अपने इष्टके प्रति अनन्य श्रद्धा एवं भक्ति थी; इस कारण अवतार और अवतारीमें किंचित् भी भेद न मानते हुए भी उन्हें तो अपने परमाराध्य नीलकलेवर श्रीराम ही प्राणप्रिय थे । इसे उन्होंने अपने ही मुखसे स्पष्ट भी कर दिया—

जदपि बिरज ब्यापक अबिनासी । सब के हृदयँ निरंतर बासी ॥
तदपि अनुज श्री सहित खरारी । बसतु मनसि मम काननचारी ॥
(मानस ३ । १० । ९)

मन्त्रकी उपासना करते हैं और मेरी ही शरणमें रहते हैं तथा नित्य निरपेक्ष और अनन्य-गति रहते हैं, उन्हें मैं नित्य-प्रति दर्शन देता हूँ।''

श्रीभगवान्‌ने और कहा—'त्वं ममोपासनादेव विमुक्तोऽसीह सर्वतः।' (वही, ३।२।३८)—तुम केवल मेरी उपासनासे इस जीवितावस्थामें ही सब प्रकार मुक्त हो गये हो।'

फिर अति आतुरताका आनन्द प्राप्त करनेके लिये अपने प्रेमी भक्त श्रीसुतीक्ष्णजीसे विनोद करते हुए कहा—

परम प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो बर मागहु देउँ सो तोही॥
(वही, ३।१०।११½)

'हे मुनि! मैं आपपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। आपकी जो इच्छा हो, माँगिये। मैं आपको वही दूँगा।'

श्रीसुतीक्ष्णजीने तो पहले ही श्रीभगवान्‌से वर माँग लिया था, 'पर श्रीभगवान् और देनेके लिये प्रस्तुत हैं। इससे लगता है कि मेरी माँगमें कहीं-न-कहीं त्रुटि अवश्य रह गयी है। अनन्त ज्ञाननिधि प्रभुसे सर्वथा अल्पज्ञ जीव अपनी बुद्धिके अनुसार ही तो याचना करेगा'—यह सोचकर अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये मुनिने बड़ी ही विनम्रतासे निवेदित किया—

मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाचा। समुझि न परइ झूठ का साचा॥
तुम्हहि नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई॥
(वही, ३।१०।१२-१२½)

श्रीभगवान्‌ने पुनः विनोद किया। श्रीसुतीक्ष्णजीको ध्यान अत्यधिक प्रिय है, पर श्रीभगवान्‌ने अपने वरदानमें ध्यानका स्पर्श भी नहीं किया। वरदान देते हुए प्रभु बोले—

अबिरल भगति बिरति बिग्याना। होहु सकल गुन ग्यान निधाना॥
(वही, ३।१०।१३)

पर श्रीसुतीक्ष्णजीको भक्ति अत्यन्त दृढ़ थी। अपने अभीष्टकी सिद्धिके लिये उन्होंने निखिल सृष्टिके स्वामी, अपने परमाराध्य प्रभु श्रीरामसे निवेदन किया—

प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा। अब सो देहु मोहि जो भावा॥
अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम॥
(वही, ३।१०।१३½; ३।११)

'हे धनुष-बाण-धारी भगवान् श्रीराम! आप भाई श्रीलक्ष्मण और माता जानकीसहित सदा ही मेरे हृदयमें आकाशमें चन्द्रवत् निवास करें।'

और मुनिकी श्रद्धा-भक्ति एवं प्रेमके अधीन प्रभुने प्रसन्नतापूर्वक तत्क्षण कह दिया—'एवमस्तु।' और फिर बोले—

गुरुं ते द्रष्टुमिच्छामि ह्यगस्त्यं मुनिनायकम्।
किंचित्कालं तत्र वस्तुं मनो मे त्वरयत्यलम्॥
(अ० रा० ३।२।३९)

'अब मैं तुम्हारे गुरु मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीसे मिलना चाहता हूँ, मेरा चित्त उनके पास कुछ दिन रहनेके लिये उतावला हो रहा है।'

श्रीसुतीक्ष्णजीने तुरंत कहा—'प्रभो! आश्रमसे आये मुझे बहुत दिन बीत गये और इस कारण मुझे गुरुजीके दर्शन किये भी अत्यधिक दिन हो गये। अब मैं आपके साथ ही गुरुजीके यहाँ चलूँगा, इसमें आपके लिये संकोचका कोई प्रश्न नहीं है। मैं अपने स्वार्थसे चलना चाहता हूँ।'

बहुत दिवस गुर दरसनु पाएँ। भए मोहि एहिं आश्रम आएँ॥
अब प्रभु संग जाउँ गुर पाहीं। तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं॥
(मानस ३।११।१-१½)

प्रभुने सुतीक्ष्णजीकी चतुराई समझ ली और उन्होंने मुस्कराते हुए उन्हें अपने साथ ले लिया। मार्गमें अपनी भक्तिकी अद्भुत बातें सुनाते हुए प्रभु श्रीराम जब अगस्त्य मुनिके आश्रमके समीप पहुँचे, तब—

तुरत सुतीछन गुर पहिं गयऊ। करि दंडवत कहत अस भयऊ॥
नाथ कोसलाधीस कुमारा। आए मिलन जगत आधारा॥
राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिनु देव जपत हहु जेही॥
(वही ३।११।४-५)

श्रीसुतीक्ष्णजी तुरंत अपने गुरुके पास पहुँचे और उनके चरणोंमें दण्डवत् करके उन्होंने निवेदन किया—नाथ! आप लक्ष्मण और माता जानकीसहित जिन परम प्रभुका दिन-रात नामजप करते रहते हैं, वे विश्वाधार कोशल-कुमार आपसे मिलने पधारे हैं।

सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए। हरि बिलोकि लोचन जल छाए॥
(वही, ३।११।४½)

श्रीसुतीक्ष्णजीकी वाणी सुनते ही श्रीअगस्त्यजी तुरंत उठ खड़े हुए और आतुरतासे प्रभुके दर्शनार्थ दौड़ पड़े तथा सीता-अनुजसहित नवघनसुन्दर श्रीरामको देखते ही प्रेम-निमग्न हो गये। उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये।

इस प्रकार श्रीसुतीक्ष्णजीने अपनी अनुपम भक्तिसे प्रभु-प्राप्तिके साथ ही अपने गुरुकी माँगी हुई गुरु-दक्षिणा भी उन्हें दे दी और उनसे उऋण हो गये। —शि० दु०

परमभक्त महर्षि अत्रि एवं भक्तिमती सती अनसूया

प्रसीद मे नमामि ते । पदाब्ज भक्ति देहि मे ॥

(मानस ३ । ३ । ११ छंद)

परमतपस्वी महर्षि अत्रि ब्रह्माजीके मानसपुत्र और प्रजापति हैं। दक्षिण दिशामें इनका निवास है। इनकी परम पतिव्रता पत्नी अनसूया स्वायम्भुव मनुकी पुत्री देवहूतिकी बेटी तथा भगवान् कपिलकी भगिनी थीं। महर्षि कर्दम उनके पिता थे। जैसे महर्षि अत्रि राग-द्वेषरहित परम भगवद्भक्त थे, वैसे ही देवी अनसूया असूयारहित भक्तिमती थीं।

ब्रह्माजीने इन्हें सृष्टि करनेकी आज्ञा दी। सृष्टि करनेके पूर्व इस भगवद्भक्त दम्पतिने तप करनेका निश्चय कर, अत्यन्त कठोर तपस्या की। इनकी तपश्चर्याका लक्ष्य संतानकी प्राप्ति नहीं, निखिल सृष्टिके स्वामी परम प्रभुको अपने सम्मुख देखना था। श्रद्धा एवं विश्वासपूर्वक दीर्घकालीन कठोर तपश्चरणके फलस्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और आशुतोष महेश्वर—तीनों देवताओंने प्रत्यक्ष दर्शन देकर इन्हें कृतार्थ किया। ये उनके चरणकमलोंमें लेट गये और गद्गद कण्ठसे त्रिदेवोंकी स्तुति करने लगे।

'वर माँगो'—महर्षि अत्रि एवं सती अनसूयाकी श्रद्धा-भक्ति एवं दृढ़ प्रीतिसे प्रसन्न होकर त्रिदेवोंने कहा।

'हमारे मनमें लौकिक कामना नहीं है।' भक्त दम्पतिने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयपूर्वक निवेदन किया; 'किंतु विधाताने सृष्टि उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी है। अतएव आप तीनों पुत्ररूपमें मेरे यहाँ पधारें।'

'ऐसा ही होगा।' त्रिदेव अन्तर्धान हो गये और कुछ समय बाद इनके यहाँ श्रीविष्णुके अंशसे 'दत्तात्रेय', ब्रह्माके अंशसे 'चन्द्रमा' और शंकरके अंशसे 'दुर्वासा'का जन्म हुआ।

जिन परम प्रभुकी चरण-रजके स्पर्शसे सम्पूर्ण पाप-ताप नष्ट हो जाते हैं और जीव अक्षय सुख-शान्ति प्राप्त कर लेता है, वे ही महामहिम करुणानिधान भगवान् परम भगवद्भक्त अत्रिके आँगनमें देवी अनसूयाकी गोदमें खेल रहे थे, पल रहे थे। देवी अनसूया सतत बालकोंकी ही चिन्तामें रहने लगी थीं।

महर्षि अत्रि एवं देवी अनसूयाकी श्रद्धा-भक्ति एवं अपने चरणोंमें दृढ़ प्रीति देखकर भगवान् श्रीराम अपनी धर्मपत्नी सीता एवं भाई लक्ष्मणसहित इनके आश्रममें पधारे थे।

'सीता और लक्ष्मणसहित परम प्रभु मेरे आश्रममें आये हैं।' यह समाचार सुनते ही महर्षि अत्रिकी विचित्र दशा हो गयी। उनकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। उनका शरीर पुलकित हो गया। वे मुनिजनवन्दित श्रीरामको देखते ही आतुर होकर दौड़ पड़े।* और—

गत्वा मुनिमुपासीनं भासयन्तं तपोवनम्।
दण्डवत् प्रणिपत्याह रामोऽहमभिवादये ॥
पितुराज्ञां पुरस्कृत्य दण्डकाननमागतः।
वनवासमिषेणापि धन्योऽहं दर्शनात्तव ॥

(अ० रा० २ । ९ । ८०-८१)

"वहाँ पहुँचनेपर उन्होंने अपने आश्रममें विराजमान और सम्पूर्ण तपोवनको प्रकाशित करते हुए मुनीश्वरके पास जा, उन्हें दण्डवत्-प्रणाम करके कहा—'मैं राम आपका अभिवादन करता हूँ। मैं पिताकी आज्ञासे दण्डकारण्यमें आया हूँ। इस समय वनवासके मिससे भी आपका दर्शन कर मैं कृतार्थ हो गया'।"

श्रीरामको दण्डवत् करते हुए महर्षिने उन्हें तुरंत उठाया और अपने हृदयसे लगा लिया। प्रेमाधिक्यके कारण महर्षिके दोनों नेत्रोंसे अश्रु बह रहे थे। श्रीरामके अलौकिक सौन्दर्यको देखकर उनके नेत्र शीतल हो गये। फिर अत्यन्त आदरपूर्वक वे प्रभुको अपने आश्रममें ले आये।

करत दंडवत मुनि उर लाए। प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए ॥
देखि राम छबि नयन जुड़ाने। सादर निज आश्रम तब आने ॥

(मानस ३ । २ । ३-३½)

इसके अनन्तर महर्षि अत्रिने सीता और लक्ष्मणसहित प्रभु श्रीरामको अत्यन्त पवित्र आसनपर बैठाकर विधिपूर्वक उनकी पूजा की और वन्यफलोंसे उनका आतिथ्य-सत्कार किया। महर्षिकी प्रेममयी भावना एवं सेवासे श्रीराम अत्यन्त संतुष्ट हुए। महर्षि अत्रिने आसनपर बैठे हुए कमल-

---

* अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ। सुनत महामुनि हरषित भयऊ ॥
पुलकित गात अत्रि उठि धाए। देखि रामु आतुर चलि आए ॥

(मानस ३ । २ । २-२½)

दल-लोचन नवनीरदवपुको जी भरकर देखा और कृतार्थ हो, बद्धाञ्जलि प्रभुकी स्तुति करने लगे—

प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरखि।
मुनिबर परम प्रबीन जोरि पानि अस्तुति करत॥*

(वही, ३। ३)

परम भाग्यवान् महर्षि अत्रि प्रभुकी सौन्दर्य-सुधाका पान करते हुए उनकी स्तुति कर रहे थे। प्रेमातिरेकसे उनकी विलक्षण दशा हो गयी थी। प्रार्थनाके अन्तमें सिर झुकाकर परमभक्त श्रीअत्रिजीने अपनी तीव्रतम लालसा व्यक्त की—

बिनती करि मुनि नाइ सिरु कह कर जोरि बहोरि।
चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि॥

(वही, ३। ४)

इसके बाद धर्मज्ञ ऋषिने भगवान् श्रीरामको अपनी धर्म-पत्नी अनसूया देवीका परिचय देते हुए कहा—'एक बारकी बात है। अनवरत रूपसे दस वर्षतक वर्षा न होनेके कारण सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गयी। धरती तवेकी तरह तप रही थी और पशु-पक्षियोंका प्राणान्त हो रहा था। उस समय इन्होंने अत्यन्त कठोर नियमके साथ उग्र तप किया, जिसके फल-स्वरूप फल-मूल उत्पन्न हुए और इन्होंने मन्दाकिनीकी पवित्र धारा बहायी। इन्होंने दस सहस्र वर्षतक कठोर तप करके ऋषियोंकी सारी बाधाएँ दूर कर दीं।' फिर महर्षिने कहा—

देवकार्यनिमित्तं च यया संत्वरमाणया।
दशरात्रं कृता रात्रिः सेयं मातेव तेऽनघ॥
तामिमां सर्वभूतानां नमस्कार्यां तपस्विनीम्।
अभिगच्छतु वैदेही वृद्धामक्रोधनां सदा॥

(वा० रा० २। ११७। १२-१३)

'निष्पाप श्रीराम! जिन्होंने देवताओंके कार्यके लिये अत्यन्त उतावली होकर दस रातके बराबर एक ही रात बनायी थी, वे ही ये अनसूया देवी तुम्हारे लिये माताकी भाँति पूजनीया हैं। ये सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये वन्दनीया तपस्विनी हैं। क्रोध तो इन्हें कभी छू भी नहीं सका है। विदेहनन्दिनी सीता इन वृद्धा अनसूया देवीके पास जायँ।'

प्रभु श्रीरामका आदेश पाकर श्रीसीतादेवी अत्यन्त तपस्विनी वृद्धा अनसूयाजीके समीप जाकर दण्डकी भाँति उनके चरणोंमें लोट गयीं—

दण्डवत्पतितामग्रे सीतां दृष्ट्वातिहृष्टधीः।
अनसूया समालिङ्ग्य वत्से सीतेति सादरम्॥
दिव्ये ददौ कुण्डले द्वे निर्मिते विश्वकर्मणा।
दुकूले द्वे ददौ तस्यै निर्मले भक्तिसंयुता॥
अङ्गरागं च सीतायै ददौ दिव्यं शुभानना।
न त्यक्ष्यतेऽङ्गरागेण शोभा त्वां कमलानने॥

(अ० रा० २। ९। ८७—८९)

"अनसूयाजीने अपने सम्मुख सीताजीको दण्डके समान पड़ी देख, अति हर्षित हो, 'बेटी सीता!' कहकर आदर-पूर्वक आलिङ्गन किया और भक्तिसहित उन्हें विश्वकर्माके बनाये हुए दो दिव्य कुण्डल और दो स्वच्छ रेशमी साड़ियाँ दीं। सुन्दर मुखवाली अनसूयाजीने उन्हें दिव्य अङ्गराग भी दिया और कहा—'कमलमुखि! इस अङ्गरागके लगानेसे तेरे शरीरकी शोभा कभी कम न होगी'।"

इसके अनन्तर अनसूयाजीने सती सीताके मिससे पातिव्रत-धर्मका बड़ा सुन्दर उपदेश दिया। अन्तमें उन्होंने कहा—

सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहु तुलसिका हरिहि प्रिय॥
सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित॥

(मानस ३। ५ क, ख)

साथ ही अनसूयाजीने सीताजीको आशीष् दी, 'रघुनाथजी तुम्हारे साथ कुशलपूर्वक घर लौटें।' अनसूयाजीके अत्यन्त स्नेहपूर्ण उपहार, उपदेश एवं आशीष्से श्रीसीताजी बहुत प्रसन्न हुईं। फिर उन्होंने बड़ी ही श्रद्धा और प्रीतिसे लक्ष्मण और सीतासहित श्रीरामजीको भोजन कराया। इसके बाद उन्होंने हाथ जोड़कर श्रीरामजीसे कहा—

राम त्वमेव भुवनानि विधाय तेषां
संरक्षणाय सुरमानुषतिर्यगादीन्।
देहान् बिभर्षि न च देहगुणैर्विलिप्त-
स्त्वत्तो बिभेत्यखिलमोहकरी च माया॥

(अ० रा० २। ९। ९२)

'राम! इन सम्पूर्ण भुवनोंकी रचना करके आप ही इनकी रक्षाके लिये देवता, मनुष्य और तिर्यगादि योनियोंमें शरीर धारण करते हैं, तथापि देहके गुणोंसे आप लिप्त नहीं होते। सम्पूर्ण संसारको मोहित करनेवाली माया भी आपसे सदा डरती रहती है।'

* श्रीरामचरितमानसमें अत्यन्त सुन्दर स्तुति है।

परम प्रभु श्रीरामने श्रीसीता और लक्ष्मणसहित उस दिन महर्षि अत्रिके ही आश्रममें विश्राम किया और दूसरे दिन स्नानोपरान्त प्रभु श्रीरामने अत्यन्त विनयपूर्वक महर्षि अत्रिसे निवेदन किया—

.... । आयसु होइ जाउँ बन आना ॥
संतत मो पर कृपा करेहू । सेवक जानि तजेहु जनि नेहू ॥
(मानस ३ । ५ । १-१½)

जिस परम प्रभुकी कृपा-प्राप्तिके लिये योगीन्द्र-मुनीन्द्र सतत प्रयत्नशील रहते हैं, उन प्रभुको अपने मुखारविन्दसे इस प्रकारकी विनीत वाणीमें आज्ञा माँगते देखकर महर्षिके अङ्ग-प्रत्यङ्ग पुलकित हो गये और उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। उनकी वाणी अवरुद्ध-सी हो गयी। साहसपूर्वक उन्होंने कहा—

केहि विधि कहौं जाहु अब स्वामी । कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी ॥
(वही, ३ । ५ । ४½)

प्रेममूर्ति प्रभुने पुनः विनयपूर्वक महर्षिसे निवेदन किया—'मुने! हम ऋषि-मुनियोंसे पूरित दण्डकारण्यमें जाना चाहते हैं। आप हमें मार्ग बतानेके लिये कुछ शिष्योंको साथ भेज दीजिये—मार्गप्रदर्शनार्थाय शिष्यानाज्ञप्तुमर्हसि। (अ० रा० ३ । १ । ३)

श्रुत्वा रामस्य वचनं प्रहस्यात्रिर्महायशाः।
प्राह तत्र रघुश्रेष्ठं राम राम सुराश्रय ॥
सर्वस्य मार्गद्रष्टा त्वं तव को मार्गदर्शकः।
तथापि दर्शयिष्यन्ति तव लोकानुसारिणः ॥
(अ० रा० ३ । १ । ३-४)

"श्रीरामजीका यह कथन सुनकर महायशस्वी अत्रि मुनिने श्रीरघुनाथजीसे हँसकर कहा—'हे राम! हे देवताओंके आश्रयस्वरूप! सबके मार्गदर्शक तो आप हैं, फिर आपका मार्गदर्शक कौन बनेगा। तथापि इस समय आप लोक-व्यवहारका अनुसरण कर रहे हैं। अतः मेरे शिष्यगण आपको मार्ग दिखाने जायँगे'।"

भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभु श्रीरामने महर्षि अत्रिके चरण-कमलोंमें सिर झुकाया और वे दण्डकारण्यके लिये प्रस्थित हुए। महर्षि अत्रि खड़े-खड़े अश्रुपूरित नेत्रोंसे देखते ही रहे।

धन्य थे श्रीरामप्रेमी महर्षि अत्रि और परम वन्दनीया अनसूयाजी। —शि० दु०

महात्मा वाली

उमा दारु जोषित की नाईं । सबहि नचावत रामु गोसाईं ॥
(मानस ४ । १० । ३½)

देवराज इन्द्रके अंशसे उत्पन्न किष्किन्धानरेश वानरराज वाली अमित-पराक्रमी थे। वे संध्या-पूजन, देवाराधन करते थे। ब्राह्मणों तथा गौओंके भक्त थे। उनमें न कोई अधर्म था और न उनको प्रमाद ही स्पर्श करता था। उनका अपार ऐश्वर्य और महान् धन-वैभव था। पराक्रम इतना महान् था कि युद्धके लिये आये राक्षसराज रावणको उन्होंने नन्हे-से कीड़ेकी भाँति पकड़कर अपनी काँख (बगल) में छः महीनेतक दबाये रक्खा और फिर लाकर घरमें बाँध दिया। महर्षि पुलस्त्यके कहनेपर उन्होंने दशाननको छोड़ा। वालीके भयसे राक्षस उनके राज्यमें उत्पात नहीं करते थे। परंतु प्रारब्धकी महिमा अपार है। अपने छोटे भाई सुग्रीवसे उनको चिढ़ हो गयी। सुग्रीवको मारकर उन्होंने निकाल दिया और उनकी सम्पत्ति तथा स्त्री भी छीन ली।

वालीको सुग्रीव प्राणोंके समान प्रिय थे और सुग्रीव भी वालीका पिताके समान आदर करते थे। एक दिन मयका पुत्र मायावी नामक राक्षस आया और आधी रातको नगर-द्वारपर आकर उसने वालीको युद्धके लिये ललकारा। वाली दौड़ पड़े। राक्षस भागकर एक गुफामें घुस गया। सुग्रीव भी बड़े भाईके साथ दौड़े आये थे। उन्हें द्वारपर पंद्रह दिनतक प्रतीक्षा करनेको कहकर वाली गुफामें चले गये। सुग्रीव एक महीने वहीं बैठे रहे। अन्तमें जब गुफासे रक्तकी धारा निकली, तब उन्होंने निश्चय किया कि 'हो-न-हो राक्षसने मेरे भाईको मार दिया।' तब गुफाद्वारपर शिला रखकर प्राणभयसे वे भाग आये। मन्त्रियोंने आते ही उन्हें राज्यतिलक कर दिया। कुछ समय बाद असुरको मारकर वाली लौटे। गुफाद्वार बंद देखकर क्रोधसे आग-बबूला हो गये। शिला हटाकर नगरमें आनेपर जब उन्होंने सुग्रीवको राजा बना देखा, तब उन्हें ऐसा लगा कि जान-बूझकर सुग्रीवने ही मुझे गुफामें बंद करके मार डालना चाहा था; अतः वे सुग्रीवपर टूट पड़े। घायल होकर सुग्रीव भाग खड़े हुए। इस प्रकार केवल भ्रमके कारण इतना बड़ा अनर्थ हो गया।

वालीने दुन्दुभि नामक राक्षसको मारकर एक बार ऋष्यमूक पर्वतपर फेंक दिया था। उस राक्षसके रक्तसे मतंग ऋषिका आश्रम अपवित्र हो गया। इससे ऋषिने शाप दिया—'वाली इस पर्वतपर आते ही मर जायगा।' इससे वाली वहाँ नहीं जाते थे। सुग्रीव उसी पर्वतपर रहने लगे। वहीं मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके साथ उनकी मित्रता हुई।

श्रीरामने उन्हें वालीसे युद्ध करनेको भेजा। जब सुग्रीवकी ललकार सुनकर वाली दौड़े; तब ताराने पैर पकड़कर उन्हें समझाना चाहा। उस समय वालीने कहा—'तारा! श्रीराम तो समदर्शी हैं और यदि कदाचित् वे मुझे मारेंगे भी, तो मैं सदाके लिये सनाथ हो जाऊँगा।'

वाली श्रीरामके स्वरूपको जानते थे। जब प्रभुने उनकी छातीमें बाण मारा और वे गिर पड़े, तब सर्वेश्वर उनके सम्मुख आये। वालीने उन्हें उलाहना दिया छिपकर मारनेके लिये; किंतु 'हृदयँ प्रीति मुख बचन कठोरा।' (मानस ४।८।२) को वे सर्वान्तर्यामी भलीभाँति जानते थे। वाली कहे कुछ भी, उनकी अवस्था तो दूसरी ही थी—

पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा॥
(वही, ४।८।१½)

भगवान्‌ने भी वालीके वचनका उत्तर देकर बताया कि 'यह जानकर भी कि सुग्रीव भगवान्‌के आश्रित हैं, उन्हें मारनेका प्रयत्न अहंकारवश ही किया गया।' दयामयने वालीके शरीरको अमर कर देनेका प्रस्ताव उसके सामने रखा। वालीने उत्तर दिया—'प्रभु! ऐसा सुअवसर बार-बार हाथ नहीं लगता।'

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥
जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अबिनासी॥
मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा॥
(वही, ४।९।२-२½)

वालीने भगवान्‌की स्तुति की और वरदान माँगा—'नाथ! कर्मवश जिस किसी भी योनिमें जन्म ग्रहण करूँ, वहाँ मेरा आपके श्रीचरणोंमें प्रेम रहे—

जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ॥
(वही, ४।९।२ रा छंद)

वह दिव्य झाँकी उस बड़भागीके सम्मुख थी—

स्याम गात सिर जटा बनाएँ। अरुन नयन सर चाप चढ़ाएँ॥
(वही, ४।८।१)

श्रीरामके चरणोंमें चित्तको लगाकर इस छविका दर्शन करते हुए वालीने इस प्रकार शरीर छोड़ दिया—

सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग॥
(वही, ४।१०)

भक्त-हृदय कुम्भकर्ण

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥
(मानस २।१३६।½)

भगवान्‌की लीला अद्भुत है। जो तर्क करना चाहते हैं, वे उसमें अविश्वास करके अशान्त होते हैं और जो श्रद्धालु हैं, विश्वासी हैं, वे उन लीलामयकी अद्भुत क्रीड़ाओंमें आनन्द प्राप्त करते हैं। रावणका छोटा भाई कुम्भकर्ण सृष्टिका ही प्राणी था; फिर भी वह सृष्टिकर्ताके लिये ही एक समस्या हो गया था। जब तपस्या करते हुए कुम्भकर्णके पास ब्रह्माजी वरदान देने पहुँचे, तब वरदान देना तो दूर, उन्हें दूसरी ही चिन्ता हो गयी। वे सोचने लगे—'यदि कहीं यह नित्य भोजन करेगा तो सारा विश्व कुछ ही कालमें इसके द्वारा नष्ट हो जायगा।' सरस्वतीके द्वारा ब्रह्माजीने कुम्भकर्णकी बुद्धि भ्रमित करा दी और उसने छः महीने सोते रहनेका वरदान माँग लिया।

पाप-पुण्य, धर्म-कर्मसे भला कुम्भकर्णको क्या काम! वह तो छः महीनेतक खर्राटे लेता पड़ा रहता था एक पहाड़की बड़ी भारी गुफामें। छः महीनेपर केवल एक दिनके लिये जागता था। वह दिन भोजन करने तथा कुशल-मङ्गल पूछनेमें ही बीत जाता था। रावणके अपकर्मोंमें कुम्भकर्णका कोई हाथ नहीं था, न हो ही सकता था। उस महाकायका हृदय निर्मल था। वह इतना शुद्ध अधिकारी था कि स्वयं देवर्षि नारदने उसे तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया था।

जब लङ्काकी सेना वानर-रीछोंकी मारसे संत्रस्त हो गयी, जब अनीक, अकम्पन आदि राक्षसनायक कपियोंके हाथ मारे गये, तब रावणने कुम्भकर्णको जगानेका आदेश दिया। अनेक उपायोंके द्वारा किसी प्रकार राक्षस कुम्भकर्णको जगा सके। जागनेपर सब बातें सुनकर कुम्भकर्ण बड़ा दुःखी हुआ। उसने रावणसे कहा—

जगदंबा हरि आनि सठ अब चाहत कल्यान॥
भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा। अब मोहि आइ जगाएहि काहा॥
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना॥
(वही, ६।६२; ६।६२।१)

परंतु बड़े भाईका अनादर करना कुम्भकर्णको अभीष्ट नहीं था। वह तो अपने नेत्रोंको सफल करना चाहता था। उसने अपनी एकमात्र इच्छा व्यक्त की—

स्याम गात सरसीरुह लोचन। देखौं जाइ ताप त्रय मोचन॥
(वही, ६।६२।४)

विभीषणजी जानते थे कुम्भकर्णके निष्कपट हृदयको। वे युद्धके लिये आते हुए उस अपने भाईके समीप गये। कुम्भकर्णने उनको बड़ी सुन्दर शिक्षा दी—

धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन। भयहु तात निसिचर कुल भूषन॥
बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा सुख सागर॥
बचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर।

(वही, ६। ६३। ४-४½; ६। ६४)

हृदयमें भक्तिका यह निर्मल भाव लेकर कर्तव्यसे विवश वह महाकाय युद्धमें आया। वह 'देखौं जाइ ताप त्रय मोचन' का संकल्प लेकर चला था। अतः भक्तवत्सल प्रभुने भी कहा—'मैं देखउँ खल बल दलहि' (वही, ६। ६। ७) और वे 'राजिवनैन' स्वयं 'कर सारंग साजि कटि भाथा।'

(वही, ६। ६७। ½)

कुम्भकर्णके सम्मुख पहुँचे। संग्राममें पराक्रम प्रदर्शित करके, श्रीरामके बाणोंसे शरीर त्यागकर कुम्भकर्ण उन प्रभुमें ही लीन हो गया—

तासु तेज प्रभु बदन समाना। सुर मुनि सबहिं अचंभव माना॥

(वही, ६। ७०। ४)

परंतु इसमें आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं है। यह ठीक है कि कुम्भकर्ण राक्षस था, राक्षसी आहार करनेवाला था, तमोगुणरूपा घोर निद्रामें पड़ा रहता था और रावणका पक्ष लेकर लड़ने आया था; किंतु श्रीराम तो भाव देखते हैं और कुम्भकर्ण भावपूर्ण हृदयसे श्रीरघुनाथजीको परम ब्रह्म ही मानता था। वह उनके दर्शन करके, उनके बाणोंसे देह त्यागकर कृतार्थ होने ही आया था और तब उसकी परमगति हो, इसमें आश्चर्यकी भला कौन-सी बात है!

महाभागा अहल्या

महर्षि विश्वामित्रके साथ मिथिला जाते हुए श्रीराम और लक्ष्मणने पत्र-पुष्प एवं फलोंसे सम्पन्न एक आश्रम देखा। उक्त रमणीय आश्रममें मृग, पशु-पक्षी अथवा अन्य कोई जीव नहीं दीख रहा था। वह सर्वथा निर्जन एवं सूना था। इसका कारण श्रीरामने महर्षि विश्वामित्रसे पूछा।

'यह परम तपस्वी महर्षि गौतमका आश्रम है।' विश्वामित्रजीने राम और लक्ष्मणको बताया—'महर्षिके कठोर तपसे प्रसन्न होकर ब्रह्माने उनकी सेवाके लिये एक अत्यन्त लावण्यवती कन्या प्रदान की थी। उसका नाम था, अहल्या। वे महर्षि गौतमकी पत्नी थीं। उनके पिताका नाम वृद्धाश्व। वे अत्यन्त सेवा-परायणा थीं। वे अहर्निश महर्षिकी सुख-सुविधाकी व्यवस्थामें लगी रहती थीं। सुन्दरी अहल्या सदाचारिणी, सद्धर्मपरायणा एवं पतिभक्ता थीं।

'महर्षि देवलोक न छीन लें'—इस आशङ्कासे इन्द्रने महर्षि गौतमके वेषमें अहल्यासे छल किया और इस कारण महर्षिने इन्द्रको तो शाप दिया ही, अहल्याको भी शाप दे दिया—'तू मेरे आश्रममें शिलामें निवास कर। यहाँ तू निराहार रहकर धूप, वायु और वर्षा आदिको सहन करती हुई दिन-रात तपस्या कर और एकाग्रचित्तसे हृदयमें विराजमान परमात्मा रामका ध्यान कर। अबसे यह मेरा आश्रम विविध प्रकारके जीव-जन्तुओंसे रहित हो जायगा।'

महर्षि गौतमने अन्तमें कहा—'इस प्रकार तुझे तपस्या करते जब सहस्रों वर्ष बीत जायँगे, तब राम और लक्ष्मण यहाँ पधारेंगे तथा वे तेरी आश्रयभूत शिलापर अपने दोनों चरण रखेंगे। उसी समय तू शापमुक्त हो जायगी और फिर मेरे समीप आ जायगी।'

इतना कहकर महर्षि गौतम हिमालय पर्वतपर चले गये। विश्वामित्रने कहा—'यह बात सहस्रों वर्ष पूर्वकी है। अहल्या प्रचण्ड धूप, वर्षा एवं वातमें अनवरतरूपसे अत्यन्त कठोर तप कर रही है।

तदागच्छ महातेज आश्रमं पुण्यकर्मणः।
तारयैनां महाभागामहल्यां देवरूपिणीम्॥

(वा० रा० १। ४९। ११)

'महातेजस्वी श्रीराम! अब तुम पुण्यकर्मा महर्षि गौतमके इस आश्रमपर चलो और इन देवरूपिणी महाभागा अहल्याका उद्धार करो।'

महर्षि विश्वामित्रके आदेशानुसार श्रीरामने उक्त शिलापर अपने चरण रखे और उसी समय महर्षि-पत्नी अहल्याको देखा। उन्हें देखकर भगवान् श्रीरामने, 'मैं राम हूँ'—कहते हुए उन्हें प्रणाम किया—

ततो दृष्ट्वा रघुश्रेष्ठं पीतकौशेयवाससम्॥
चतुर्भुजं शङ्खचक्रगदापङ्कजधारिणम्।
धनुर्बाणधरं रामं लक्ष्मणेन समन्वितम्॥

स्मितवक्त्रं पद्मनेत्रं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ।
नीलमाणिक्यसंकाशं द्योतयन्तं दिशो दश ॥
(अ० रा० १ । ५ । ३७–३९)

'तब अहल्याने रेशमी पीताम्बर धारण किये श्रीरघुनाथजीको देखा । उनकी चार भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित थे; कंधेपर धनुष-बाण विराजमान थे तथा साथमें श्रीलक्ष्मणजी थे । उनका मुख मुसकानयुक्त, नेत्र कमलदलके समान और वक्षःस्थल श्रीवत्साङ्कसे सुशोभित था । अपने नीलमणि-सदृश श्याम-विग्रहसे वे दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे ।'

अहल्याके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये । उन्हें अपने पतिके वचनकी स्मृति हुई तो वे गद्गद हो गयीं । उनके आनन्दकी सीमा नहीं थी । उन्होंने प्रभुकी बड़ी ही श्रद्धासे पूजा की और फिर उनके चरणोंमें साष्टाङ्ग लोट गयीं । फिर हाथ जोड़कर उन्होंने श्रीरामकी स्तुति की—

मैं नारि अपावन प्रभु जगपावन रावन रिपु जन सुखदाई ।
राजीव बिलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई ॥
मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना ।
देखेउँ भरि लोचन हरि भवमोचन इहइ लाभ संकर जाना ॥
बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउँ बर आना ।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना ॥
(मानस १ । २१० छन्द २-३)

देव मे यत्र कुत्रापि स्थिताया अपि सर्वदा ।
त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदास्तु मे ॥
(अ० रा० १ । ५ । ५८)

'हे देव ! मैं जहाँ कहीं भी रहूँ, वहीं सर्वदा आपके चरण-कमलोंमें मेरी आसक्तिपूर्ण भक्ति बनी रहे ।'

इस प्रकार महाभागा अहल्याने स्तुति कर कमलदललोचन श्रीरामके चरणोंमें बार-बार प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा कर वे सानन्द अपने पतिके पास चली गयीं । —शि० दु०



मन्दोदरी

मन्दोदरी दानवराज मयकी पुत्री थी । उसकी माताका नाम हेमा था । हेमा अप्सरा थी । उसके लिये दानवपुरीमें अधिक दिनोंतक रहना सम्भव नहीं था । नवजात कन्याको छोड़कर वह देवलोक चली गयी । मयने पुत्रीका नाम मन्दोदरी रखा । मन्दोदरी अत्यन्त सुन्दरी, सरल, सुशीला तथा सद्गुणवती थी । दानवराज मयकी सम्पूर्ण ममता और स्नेहका केन्द्र मन्दोदरी ही थी । इस कारण वे अधिकांश मन्दोदरीको अपने साथ ही रखते थे । मन्दोदरीने धीरे-धीरे यौवनमें प्रवेश किया ।

एक बारकी बात है । दानवराज अपनी प्राणप्रिय पुत्री मन्दोदरीके साथ गहन वनमें भ्रमण कर रहे थे कि उनका अचानक लङ्काधिपति रावणसे साक्षात्कार हो गया । रावण कुँआरा था । उसकी दृष्टि मन्दोदरीपर पड़ी तो वह उसपर मुग्ध हो गया । उसने अपने पितामह ब्रह्मा तथा उच्चवंशका परिचय देते हुए मन्दोदरीकी याचना की । दानवराजने सुयोग्य वर समझकर उसके हाथों अपनी कन्या (मन्दोदरी)को सविधि समर्पित कर दिया ।

देव, गन्धर्व एवं नागोंकी कितनी ही कन्याओंसे रावणका परिणय हुआ था; पर वह मन्दोदरीको सर्वाधिक प्यार करता था । मन्दोदरी भी रावणको हृदयसे चाहती थी और उसे सदा सत्पथपर चलते रहनेके लिये पदे-पदे समझाया करती थी । रावण भी उसकी बातोंको ध्यानपूर्वक सुनता था ।

मन्दोदरी सती नारी थी और इसी कारण उसे विदित हो गया था कि जगदाधार स्वामीने श्रीरामके रूपसे अयोध्यामें अवतार ग्रहण किया है और वे पिताके आदेशसे वनमें पधारे हैं । वे धीरे-धीरे धरतीको राक्षसोंसे रहित करते जा रहे हैं ।

जब रावणने छलपूर्वक सीताका हरण किया, तब मन्दोदरीने उसे बड़े ही आदरसे समझाया था—'नाथ ! श्रीराम साक्षात् परमात्मा हैं । आप उनसे वैर न करें । इसका परिणाम शुभ नहीं होगा । सीता साक्षात् योगमाया हैं । आप मेघनादको राज्य-पदपर प्रतिष्ठित कर दें और हमलोग कहीं एकान्तमें चलकर श्रीरामका भजन करें । वे दया-निग्रह निश्चय ही हमपर दयाकी वृष्टि करेंगे ।'

पर रावणपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा । इतना अवश्य था कि वह विभीषण और माल्यवंतकी तरह मन्दोदरीका अपमान नहीं करता था । जब भी अवसर मिला, मन्दोदरी उसे अवश्य समझाती । वह रावणसे बार-बार कहती—

पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु । अग जग नाथ अतुल बल जानहु ॥
(मानस ६ । ३५ । ४)

अनेक बार समझानेपर भी जब रावणके मनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, तब मन्दोदरीने यहाँतक कह दिया—

अहह कंत कृत राम बिरोधा। काल बिबस मन उपज न बोधा॥

× × ×

निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं॥

(वही, ६ । ३६ । ३, ४)

और फिर अत्यन्त विनयके साथ उसने कहा—

कृपासिंधु रघुनाथ भजि नाथ बिमल जसु लेहु॥

(वही, ६ । ३७)

रावण अपनी बुद्धिमती पत्नी मन्दोदरीकी बातोंको हँसकर टाल देता। वह अच्छी प्रकार समझता था कि यह मेरे कल्याणके लिये ही चिन्तित है।

रावण मारा गया। मन्दोदरी चीत्कार कर उठी। वह पतिके शवके समीप जाकर विलाप करने लगी। उस समय भी उसका दृढ़ विश्वास था कि दयामय सर्वात्मा परमात्माने मेरे पतिको अपने दुर्लभ धाममें भेजकर उनका अत्यन्त हित ही किया है। रोते-रोते उसने भगवान्‌की दयाका बखान करते हुए कहा—

अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन।
जोगि बृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान॥

(वही, ६ । १०४)

अश्रुपूरित नेत्रोंसे उसने नील-कलेवर धनुर्धर श्रीरामको देखा तो उसका कष्ट निवारण हो गया। वह प्रेममें भरकर सुखी हो गयी।

लङ्काके राजा विभीषण हुए, पर मन्दोदरी लङ्काकी महारानी बनी ही रही। —शि० दु०

त्रिजटा

त्रिजटा रावणके अन्तःपुरमें रहनेवाली एक राक्षसी थी। विभीषणकी भाँति यह भी साधु प्रकृतिकी थी। 'राम चरन रति निपुन बिबेका।' (मानस ५ । १० । ½) भगवान् श्रीरामके चरणोंमें इसकी दृढ़ प्रीति थी। वह अपनी प्रभु-प्रीति किसीपर व्यक्त नहीं होने देती थी।

रावणने छलपूर्वक सीताका हरण किया और उन्हें अशोक-वाटिकामें रखा। सीताके समीप कितनी ही राक्षसियाँ रहती थीं। उनमें त्रिजटा भी थी। उस समय त्रिजटा वृद्धा हो गयी थी। वह श्रीराम-पत्नी सीताका अत्यधिक ध्यान रखती थी। उन्हें धैर्य बँधाती तथा अनेक रीतिसे उनकी व्याकुलता दूर करती रहती थी।

राक्षसियाँ अनेक प्रकारसे जनकनन्दिनीको डराती थीं। इसपर त्रिजटा उनसे कहती—

शृणुध्वं दुष्टराक्षस्यो मद्वाक्यं वो हितं भवेत्॥
न भीषयध्वं रुदतीं नमस्कुरुत जानकीम्।

(अ० रा० ५ । २ । ४८-४९)

'अरी दुष्टा राक्षसियो! मेरी बात सुनो, इसीसे तुम्हारा हित होगा। तुम इन रोती-बिलखती जानकीजीको डराओ मत, बल्कि इन्हें नमस्कार करो।'

त्रिजटाको रावण-वधका आभास पहले ही हो गया था। उसने अन्य राक्षसियोंको अपने स्वप्नकी बात बतायी। उसने कहा—'मैंने स्वप्नमें देखा है कि एक बंदरने लङ्का जला दी है और राक्षसोंकी पूरी सेना मारी गयी है। रावण गलेमें मुण्ड-माला पहने, शरीरमें तेल लगाये, नंगा होकर अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ गोबरमें डुबकी लगा रहा है। लङ्काका राज्य विभीषणको मिला है और पूरे नगरमें कमललोचन श्रीरामकी दुहाई फिरी है। विजयी कमललोचन श्रीरामने सीताको बुलवाया है।'

फिर जोर देकर त्रिजटाने कहा—

यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी॥

(मानस ५ । १० । ३½)

त्रिजटाकी इन बातोंको सुनकर राक्षसियाँ भयभीत हो गयीं और वे श्रीजानकीजीके चरणोंमें सिर रखने लगीं।

वियोगिनी सीताको त्रिजटाका बड़ा सहारा था। जब भी कोई कष्ट होता, उससे कह देतीं। सीता त्रिजटाको माता कहती थीं—

त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तैं मोरी॥

(वही, ५ । ११ । ½)

पर त्रिजटा सदा ही सीताको सर्वेश्वर प्रभुकी लीलाकी सहायिका एवं परम पूजनीया समझती थीं। एक बार जब अत्यन्त व्याकुल होकर सीताने अपने शरीरको जलाकर भस्म

कर देनेके लिये त्रिजटासे चिता बनाकर उसमें अग्नि प्रज्वलित करनेकी बात कही, तब त्रिजटा अधीर हो गयी। उसने—

सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि॥
(वही, ५ । ११ । २½)

इस प्रकार त्रिजटा विनयपूर्वक अपनी सेवा तथा दशरथनन्दन श्रीरामके गुणगानसे सीतादेवीका दुःख-निवारण कर उन्हें सुख पहुँचाती रही।

—शि० दु०



मारीच

मारीच ताड़का नामक राक्षसीका पुत्र था। अपने राक्षसी स्वभाववश वह ऋषि-मुनियोंके यज्ञ आदि कार्योंमें विघ्न डालता था। महर्षि विश्वामित्रजीके यज्ञमें उपद्रव करते समय वह भगवान् श्रीरामके बाणसे सौ योजन दूर जा गिरा था। रावण सीता-हरणकी अपनी नीच योजना लेकर मारीचके पास गया।

दसमुख गयउ जहाँ मारीचा। नाइ माथ स्वारथ रत नीचा॥
(मानस ३ । २३ । ३)

अपने स्वार्थवश रावणने उसको सिर नवाकर सीता-हरणकी अपनी पूरी योजना बतायी और उसको कपटी मृग बननेके लिये कहा। मारीच भगवान् रामकी प्रभुता एवं बलको भूला नहीं था। उसने उन्हें साक्षात् ईश्वरके रूपमें पहचान लिया था। उसने रावणको बहुत समझाया कि 'उनसे वैर नहीं करना चाहिये, वे मनुष्यरूपमें साक्षात् ईश्वर हैं। ताड़का, सुबाहु, खर, दूषण एवं त्रिशिराका वध करनेवाले श्रीराम क्या मामूली मनुष्य हो सकते हैं?' उसने रावणसे बहुत विनय की एवं उससे लौटनेके लिये प्रार्थना की। परंतु रावण अपने अहंकारके नशेमें चूर था, उसे अपने बलका गर्व था। उसने मारीचको बहुत डराया एवं भय दिखाया। मारीचने दोनों तरफ ही अपनी मृत्युको देखा। उसकी भगवान् श्रीरामके चरणोंमें प्रीति हो गयी थी। रावणके हाथ मरनेकी अपेक्षा उसने भगवान् राघवेन्द्रके हाथ मरना अच्छा समझा और उन्हींकी शरण ली।

अस जियँ जानि दसानन संगा। चला राम पद प्रेम अभंगा॥
मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहउँ परम सनेही॥
(वही, ३ । २५ । ४)

मारीचके हृदयमें श्रीरामके प्रति प्रेम था और उनके दर्शनकी लालसा थी। भयवश उसने रावणकी नीच योजना स्वीकार की और स्वर्ण-जैसे रंगके कपट-मृगका रूप धारण कर लिया।

सीताने उस मृगको देखकर उसका चर्म लानेके लिये रामसे प्रार्थना की। भगवान् राम अपने हृदयमें सब बात जानते थे, परंतु उन्हें देवताओंका कार्य करना था। भाई लक्ष्मणको सीताकी रखवालीका कार्य सौंपकर वे उस कपट-मृगके पीछे दौड़े—

निगम नेति सिव ध्यान न पावा। मायामृग पाछें सो धावा॥
(वही, ३ । २६ । ५½)

मारीच मृगवेषमें प्रभुको पीछे फिर-फिरकर बार-बार देख रहा था। उनके दर्शन कर वह अपनेको धन्य समझ रहा था। अन्तमें प्रभुका तेज बाण उसे लगा और उसने भगवान् रामका स्मरण करते-करते अपना शरीर छोड़ दिया। प्रभुने उसके हृदयके प्रेमको पहचान लिया और अपना दुर्लभ परमपद उसे दिया—

बिपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ।
निज पद दीन्ह असुर कहुँ दीनबंधु रघुनाथ॥
(वही, ३ । २७)



रामराज्य—ऐतिहासिक मीमांसा

(लेखक—श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

राष्ट्र

राष्ट्र-शब्दकी ऐतिहासिक व्याख्या करनेमें बड़ी कठिनाई है। प्राचीन भारतमें हर एक छोटे-बड़े राज्य अपनेको 'राष्ट्र' कहते थे। छोटे शासकका शासन जितनी सीमामें होता, उसे एक जिला या 'विषय' भी कहते थे। इस प्रकारके जिलेको भी 'राष्ट्र' कहते थे।

महाराष्ट्र

छोटे राज्य जैसे पल्लव, वाकाटक या गहरवाल भी अपनेको राष्ट्र कहते थे। छोटे राज्योंके एक जिलेमें सैकड़ों ग्राम होते थे। उदाहरणके लिये ईसवी सन् ७८० में मराठा लोगोंके 'कढ़ातक' नामक जिलेमें चार हजार ग्राम थे। ऐसे छोटे राष्ट्रोंके कारण ही छत्रपति शिवाजीने इनको अपने छत्रके नीचे लाकर अपने देशको 'महाराष्ट्र' की संज्ञा दी थी।

छोटे राष्ट्रोंको अपने अधीन कर एक साम्राज्यकी व्यवस्था स्थापित करनेवाला ही सम्राट् तथा चक्रवर्ती होता था। यह प्रणाली रामायणकालमें भी थी और यही परिपाटी चन्द्रगुप्त मौर्यने भी मौर्य-साम्राज्यकी रचनाके बाद अपनायी थी। घरेलू मामलोंमें साम्राज्यके अधीन राजा वैसे ही स्वतन्त्र रहते थे, जैसे आज भारतीय प्रजातन्त्रमें प्रादेशिक शासन हैं। आज हर प्रदेशमें 'डिवीजन' या 'क्षेत्र' हैं, जिनका प्रबन्ध कमिश्नरके हाथमें होता है। मौर्य-कालमें ऐसे डिवीजनको 'पाठक', 'पेठ' या 'भुक्ति' कहते थे।

वैदिककाल

वैदिकयुगमें सब राजाओंके ऊपर एक सम्राट् या साम्राज्यकी स्थापना करते हुई, यह वेदोंके अध्ययनसे स्पष्ट होता है। ऋग्वेदमें 'स्वतन्त्र जातियों' का वर्णन बार-बार मिलता है। इनके 'मुखिया' को 'विश्पति' या 'जनपति' कहते थे। यदु, पूरु, अनु, तुर्वसु आदि वंश तथा जातियोंका वर्णन है। किंतु इन सभी जातियोंमें अपने देशकी एकता तथा रक्षाकी भावना थी। 'विश्वामित्र' द्वारा की गयी वन्दनासे भारतकी रक्षाकी प्रार्थना की जाती थी—

'विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम्।' (ऋ० ३।५३।१२)

आदि वैदिककालमें कुरु-पञ्चाल देशसे ही भारतका बोध होता था। राजसूय यज्ञद्वारा 'भारत'पर एकच्छत्र शासनकी स्थापनाके मन्त्र बने। अथर्ववेद तथा तैत्तिरीय-संहितामें ऐसे यज्ञका वर्णन है, जिसको अन्य जातियोंके ऊपर विजय प्राप्त करनेवाले नरेश करते थे; पर राजसूय यज्ञ 'राष्ट्र'के ऊपर आधिपत्यका द्योतक इन ऋचाओंसे नहीं है।

वैदिक ऋचाओंमें नरेशकी तीन श्रेणियाँ स्पष्ट हैं—राजा, महाराजा तथा सम्राट्। राजाओंको 'स्वराट्' तथा 'भोज' भी कहते थे। अभिषेककी जो ऋचाएँ हैं, उनसे 'राज्य', 'स्वाराज्य', 'भौज्य,' 'वैराज्य', 'महाराज्य' और 'साम्राज्य' शब्द मिलते हैं। इन पदोंकी व्याख्या सायण आदि भाष्यकारोंने की है।

दशरथका राज्य

जो हो, ऊपर लिखी व्याख्यासे दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं—दशरथ तथा भगवान् रामके राज्यकी मर्यादा समझमें आ जाती है। दशरथ चक्रवर्ती नरेश थे। उनके शासनके अन्तर्गत बहुत-से नरेश थे, जो अपने आन्तरिक शासनमें स्वतन्त्र थे। अयोध्या उस समय विस्तृत 'राष्ट्र' रहा होगा। केकयनरेश, निषादराज, राजा जनक—इन सबपर चक्रवर्ती सम्राट् दशरथ-का आधिपत्य था। जिन राजाओंने सम्राट्के विरुद्ध विप्लव कर दिया था तथा जो अपनेको स्वतन्त्र मान बैठे थे, उनमें ही दक्षिणका बाली अथवा लङ्काका रावण आदि थे। रावणके सेवक उत्तरमें जाकर तपस्वियोंको परेशान करते थे। राज्यमें दुर्व्यवस्था फैलाते थे। सम्राट् दशरथकी सत्ताको नष्ट करना चाहते थे। उनके दमनके लिये ही विश्वामित्रने वसिष्ठकी सहायतासे श्रीराम-लक्ष्मणको अपने साथ ले जानेकी अनुमति प्राप्त की थी।

दशरथका बुढ़ापा आ गया था। शासन करनेकी शक्ति उनकी क्षीण हो चुकी थी। इसीलिये उन्होंने अपने परम पराक्रमी पुत्र रामको राज्य सौंपनेका संकल्प किया था। पर राम-ऐसे साधु तथा मनस्वी नरेश गद्दीपर बैठते ही साम्राज्यकी रक्षा करने तथा धर्म-विरोधियोंका हनन करने तुरंत निकल पड़ेंगे, यह निश्चित नहीं था। अतएव देवताओंने षड्यन्त्र

करके रामको वनवास करा दिया। सूर्यवंशका झंडा एक बार फिर कोने-कोनेमें फहराने लगा।

प्रजाकी सम्मति

किंतु एकमात्र राजाको अधिकार नहीं था कि वे ज्येष्ठ पुत्र या जिसे चाहें, गद्दी दे दें। अथर्ववेदमें 'राजकृतः' (३।५।७) शब्द आया है। वाल्मीकिने भी 'राजकर्तारः' शब्दका प्रयोग किया है। प्रजा तथा नरेश-परिवारकी रक्षाका भार ब्राह्मणोंपर था। वे ही अन्तिम निर्णय करते थे कि गद्दीपर कौन बैठे। अतएव अभिषेक करानेवालोंको 'राजकर्तारः' कहते थे।

प्रजाकी शङ्काका समाधान

प्रजाको भी अपनी बात कहनेका अधिकार था। जब सूर्यवंशी सम्राट् प्रतीपने शंतनुको तथा ययातिने पूरुको गद्दी देनेका निश्चय किया, तब जनताने राजमहलपर आकर राजासे पूछा कि 'ज्येष्ठ पुत्रके स्थानपर छोटे लड़केको क्यों गद्दी दे रहे हैं?' प्रतीपने सफाई दी थी कि 'ज्येष्ठ पुत्र देवापिको कोढ़ हो गया है। वह राज नहीं कर सकता।' ययातिने उत्तर दिया कि "चूँकि उनके अन्य पुत्र उन्हें 'यौवन' देनेकी परीक्षामें असफल रहे, अतएव पूरुको राज्य दिया जायगा।"

रामको युवराजपद देनेपर विचार

इक्ष्वाकुवंशमें ज्येष्ठ पुत्रको ही राज्य देनेकी परिपाटी थी। प्रजा भी उस परिपाटीसे संतुष्ट थी। दशरथने भी यही निर्णय किया; पर उन्हें अपने निर्णयकी स्वीकृति प्रजाजनसे प्राप्त करनी थी, अपने अधीन राजाओंसे नहीं। इसीलिये उन्होंने नागरिकोंकी सभा बुलायी। वाल्मीकिने लिखा है—

समानिनाय मेदिन्यां प्रधानान्पृथिवीपतिः ॥
न तु केकयराजानं जनकं वा नराधिपः।
त्वरया चानयामास पश्चात्तौ श्रोष्यतः प्रियम् ॥
अथोपविष्टे नृपतौ तस्मिन् परपुरार्दने।
ततः प्रविविशुः शेषा राजानो लोकसम्मताः ॥
(२।१।४६,४८-४९)

पौर-जानपदकी सम्मति

प्राचीन भारतमें सम्राट्के प्रदेशोंका शासन 'पौर' के हाथमें होता था। यह 'पौर' शासनका मुखिया होता था। तथा सम्भ्रान्त लोगोंकी सभाकी सम्मतिसे राज-काज करता था। राजाकी ओरसे सिक्का छापना, सिक्केका वजन ठीक रखना, देशकी आर्थिक हालतके अनुसार मुद्राका विस्तार या प्रचार—यह कार्य 'जानपद' लोगोंके जिम्मे था। इस प्रकार जानपदलोग देशकी आर्थिक व्यवस्थाके जिम्मेदार थे। शासक तथा अर्थसंचालकका मिलकर काम करना जरूरी होता है। इसीलिये 'पौर-जानपद'की सभा राज्यका काम मिल-जुलकर करती थी।

प्रदेशके शासक 'पौर'का मन्त्रियोंसे मतभेद भी हो जाता था, जिसे राजाको निपटाना पड़ता था। सम्राट् अशोकके समयकी घटना है कि सम्राट्के तक्षशिलाके गवर्नर (पौर) विप्लव कर बैठे। उनको शान्त करनेके लिये अशोकने अपने पुत्र युवराज कुणालको भेजा। कुणालके स्वागतमें पौर आये और हाथ जोड़कर बोले—

'न तो हम कुमारके विरुद्ध हैं और न राजा अशोकके। उनके मन्त्री यहाँ आकर हमारा अपमान करते हैं।'

'दुष्टात्मानोऽमात्या आगत्यास्माकमपमानं कुर्वन्ति।'
(दिव्यावदान पृ० ४०७)

पौर-जानपद तथा मन्त्रीमें मतभेद न हो, इसीलिये राजा उन्हींको राजमन्त्र देता था—यानी मन्त्री बनाता था और राजकाज (दण्ड) का काम सौंपता था, जिन्हें पौर-जानपदका विश्वास प्राप्त हो। मुख्यमन्त्रीको 'मन्त्रिण' कहते थे। महाभारतके शान्तिपर्वमें लिखा है—

तस्मै मन्त्रः प्रयोक्तव्यो दण्डमाधित्सता नृपाः ॥
पौरजानपदा यस्मिन्विश्वासं धर्मतो गताः।
(१२।८३।४५-४६)

और महाभारतके ही अनुसार राजा जो भी कार्य करता था **'पौरान् समाश्वास्य'**—पौर लोगोंको संतुष्ट करके, उनके परामर्शसे करता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि केकयराज, जनक आदि नरेश थे, पौर नहीं थे। इसीलिये दशरथने उनको नहीं बुलाया। पौर तो 'वाइसराय' (उप-नरेश) थे—पूरा परिवार ही पौर हो सकता था।

दशरथद्वारा रामका गुण-वर्णन

वाल्मीकिने अयोध्याकाण्डमें दशरथद्वारा पौर-जानपदोंके सामने श्रीरामके गुणोंका वर्णन करके उनकी सम्मति प्राप्त करनी चाही थी। उन्होंने कहा—

अहोऽस्मि परमप्रीतः प्रभावश्चातुलो मम ।
यन्मे ज्येष्ठं प्रियं पुत्रं यौवराज्यस्थमिच्छथ ॥
यौवराज्याय रामस्य सर्वमेवोपकल्प्यताम् ॥
राज्ञस्तूपरते वाक्ये जनघोषो महानभूत् ।
शनैस्तस्मिन् प्रशान्ते च जनघोषे जनाधिपः ॥
(२ । ३ । २, ४-५)

पौर-जानपद भी 'भरताग्रज' के युवराज बनाये जानेसे बहुत संतुष्ट थे । उन्होंने सहमति दी । उनकी ओरसे मुख्यवक्ताने श्रीरामके सर्वगुणोंकी प्रशंसा की ।

ते तमूचुर्महात्मानं पौरजानपदैः सह ।
बहवो नृप कल्याण गुणाः सन्ति सुतस्य ते ॥
(वही, २ । २ । २६)

रामका अभिषेक

रामके अभिषेकके लिये पौर-जानपद हाथ जोड़े खड़े हुए—

उदतिष्ठत रामस्य समग्रमभिषेचनम् ।
पौरजानपदाश्चापि नैगमश्च कृताञ्जलिः ॥
(वही, २ । १४ । ५४)

अतएव रामके युवराजपदपर नियुक्तिमें प्रजाकी सर्व-सम्मति थी, यह तो निर्विवाद सिद्ध हो जाता है ।

दशरथने प्रजाको ही आगे रखा—

जौं पाँचहि मत लागै नीका । करहु हरषि हियँ रामहि टीका ॥
(मानस २ । ४ । १½)

श्रीरामने भी प्रजाको सम्बोधितकर कहा था—

नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई । सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई ॥
जौं अनीति कछु भाषौं भाई । तौ मोहि बरजहु भय बिसराई ॥
(वही, ७ । ४२ । २, ३)

ज्येष्ठ पुत्रको राज्य देनेकी परिपाटी इक्ष्वाकु-वंशमें चली आयी थी । वाल्मीकि लिखते हैं—

इक्ष्वाकूणां हि सर्वेषां राजा भवति पूर्वजः ।
पूर्वजे नावरः पुत्रो ज्येष्ठो राजाभिषिच्यते ॥
(वा० रा० २ । ११० । ३६)

फिर भी दशरथने प्रजाकी सम्मति प्राप्त करना उचित समझा । भरत ननिहालमें थे, फलतः किसीको कोई शङ्का न हो, इसलिये भी यह कार्य उचित था । दूसरे, दशरथ भी परम पुरुषार्थी तथा प्रकाण्ड विद्वान् थे । ज्योतिषके अनुसार उनकी तुरंत मृत्यु होनेवाली है, इसका अनुमान उन्हें था । मृत्युके कारणतक वे नहीं पहुँच पाये थे । वसिष्ठ ऋषि जानते थे, समझते थे; अतएव वे भी राजाके कार्यमें सहयोगी बन गये ।

शुक्रनीतिमें भी लिखा है कि ज्येष्ठ पुत्रको ही गद्दी मिलनी चाहिये । महाभारतमें लिखा है कि 'ज्येष्ठ पुत्रको छोड़कर छोटे लड़केको कैसे राजा बनाया जा सकता है ।'

कथं ज्येष्ठानतिक्रम्य कनीयान् राज्यमर्हति ॥
(महा० १ । ८५ । २२)

फिर भी जनमतसे राजाके निर्वाचनकी प्रणाली महाभारत-कालसे आजके १३०० वर्ष पूर्वतक चली आयी थी । ईसवीय सन् १३० में रुद्रदमन नरेश चुने गये थे । ईसवीय सन् ६०६ में हर्षवर्धन भी चुने गये नरेश थे । बंगालमें व्यवस्था स्थापित करनेवाले गोपालको भी जनताने नरेश बनाया और पाल-वंशका राज्य चला ।

अस्तु, श्रीरामको युवराज बनानेके लिये दशरथने राज-नीति, धर्म तथा प्रजा—तीनोंका आश्रय लेकर युगयुगादिसे चले आनेवाले ऐतिहासिक कार्यक्रमको ही अपनाया था ।

राजा राम

वनवास तथा लङ्काकाण्डकी घटनाओंपर हम यहाँ प्रकाश नहीं डालना चाहते । इस लेखका विषय 'राम-राज्य' है । रामने जब वनवासके बाद राज्य सँभाला, उस समय उनके सामने वही मन्त्र था, जो उन्होंने भरतको सुमन्त्रके द्वारा कहलाया था—

'पालेहु प्रजहिं करम मन बानी ।'
(मानस २ । १५१ । २)

—मनसा-वाचा-कर्मणा प्रजाका पालन करना । भरतने अयोध्यामें मन्त्रियोंसे जो कहा था, उसीकी मूर्ति थे राम—

'चाहिअ धरमसील नरनाहू ।'
(वही, २ । १७८ । ½)

रामने जिस प्रकार राज्य किया तथा जिन सिद्धान्तोंपर वे चले, उन्हें पढ़कर आजकी अपनी दुर्गति देखकर नेत्रोंमें आँसू आ जाते हैं । महात्मा गांधी उसी रामराज्यका सपना देखते संसारसे चले गये । प्राचीन भारतमें राजधर्मका बड़ा महत्त्व था । महाभारतमें लिखा है—

सर्वे धर्मा राजधर्मप्रधानाः
सर्वा विद्या राजधर्मेषु युक्ताः
सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्टाः ॥
(महा०, शा० ६३ । २७, २९)

'राजधर्म सब धर्मोंमें प्रधान है । सारी विद्या राजधर्ममें ही नियुक्त है ।' सब लोक राजधर्ममें निहित हैं ।' राजधर्मका प्रतीक राजा है । इसीलिये शाप देनेवाले या अनुग्रह करनेवाले सभी देवता राजाके शरीरमें विराजमान रहते हैं । विष्णुपुराणमें लिखा है—

एते चान्ये च ये देवाः शापानुग्रहकारिणः ।
नृपस्यैते शरीरस्थाः सर्वदेवमयो नृपः ॥
(१ । १३ । २२)

निर्धन राम

भगवान् राम राजाके रूपमें भी सर्वदेवमय थे । पर यदि वे अपने कर्तव्यसे च्युत होते तथा धर्मसे विचलित होते, कुशासन करते, राज्यका संचालन ठीकसे न करते तो मनुके अनुसार लोकमें सपरिवार घोर पापका फल भोगते—

धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम् ॥
(७ । २८)

राजा प्रजाका सेवक होता था, स्वामी नहीं । रामने बार-बार अपनेको प्रजाका सेवक कहा है । प्राचीन कालमें राजा 'सर्वजित्' तथा 'सार्वभौम'—सम्पूर्ण भूमिका स्वामी हो सकता था, पर अधिकारी नहीं । 'पूर्वमीमांसादर्शन'की टीका 'भाट्टदीपिका'में स्पष्ट लिखा है—'सार्वभौमस्यापि न तस्याः स्वामित्वम् ।' कात्यायन लिखते हैं कि अपना काम चलानेके लिये वह भूमिसे आयका छठा हिस्सा ले सकता था—

भूमेः स्वामी स्मृतो राजा नान्यद्द्रव्यस्य सर्वदा ।
तत्क्रिया बलिषड्भागं शुभाशुभनिमित्तजम् ॥
(कात्यायनः 'स्मृतिसारोद्धा' परि० १ । १४)

रामकी राजसभा

राजाके जो कर्तव्य निश्चित थे, उन्हींके भीतर उसको चलना पड़ता था । राजाको चाहिये कि वह धर्मशास्त्रके अनुसार, क्रोध और लोभ छोड़कर, न्यायाधीश, मन्त्री एवं ब्राह्मण—पुरोहितकी सम्मतिसे शासन करे—'शुक्रनीतिसार'में यही बात लिखी है—

धर्मशास्त्रानुसारेण क्रोधलोभविवर्जितः ।
सम्राड्विवाकः सामात्यः स ब्राह्मणपुरोहितः ॥
(४ । ४ । ५२८)

राजा तो अपनी मन्त्रणा-सभाका मुख-वक्ता (अध्यक्ष) ही होता था तथा अपने सभासदोंके कार्यका परीक्षक होता था । इस सभामें सभी जातिके लोग होते थे 'शुक्रनीति'में ही लिखा है—

राज्ञा नियोजितव्यास्ते सभ्याः सर्वासु जातिषु ।
....
वक्ताध्यक्षो नृपः शास्ता सभ्याः कार्याः परीक्षकाः ॥
(४ । ५ । ५४०, ५६२)

न्यायाधीश निर्णय दे देता । पर अन्तिम निर्णय राजाका होता था । 'नारदस्मृति'ने इसका वर्णन किया है । 'मृच्छकटिक' नाटकमें भी है—

आर्य चारुदत्त ! निर्णये वयं प्रमाणम् ।
शेषे तु राजा । (९ । ३९ के पूर्वका गद्य)

'हमने तो न्यायके अनुसार दण्ड दे दिया । शेष राजा जाने ।'

राजापर बन्धन

किंतु श्रीरामने कभी धर्मकी अवहेलना नहीं की । जातिका धर्म, जानपदका धर्म, श्रेणी-धर्म, कुलधर्म और स्वधर्म—सबका वे पालन करते थे । इसीलिये मनुस्मृतिके नीचे लिखे वाक्यके वे सजीव उदाहरण थे—

जातिजानपदान्धर्माञ्श्रेणीधर्मांश्च धर्मवित् ।
समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥
(८ । ४१)

रामराज्यके समयमें भी नागरिकोंकी सभा होती थी, जिसे आज हम 'म्युनिसिपल कार्पोरेशन' कहते हैं । उस समय भी मेयर होते थे, जिनके लिये 'श्रेष्ठिनः' शब्द है । चाणक्यने नगरके शासकको 'नागरिक' की संज्ञा दी है । रामराज्यके समय लोक-सभाका संगठन था, जिसे व्यासने 'जानपद' कहा है । उसके अध्यक्षको 'देश' कहते थे । उस समय भी वर्ग थे, जिन्हें 'श्रेणी' कहते थे । याज्ञवल्क्यने इन्हें यही संज्ञा दी है । बादमें चलकर जानपदको 'राष्ट्र' कहा जाता था । सभाके अध्यक्ष या स्पीकरको 'राष्ट्रमुख्य' कहते थे । बादमें 'स्पीकर' को 'महत्तर' कहने लगे थे—'ग्रामवोपमहत्तराः ।'

इन सभाओंके निर्णयोंको 'समय' या 'सामयिकी' कहते थे। 'आपस्तम्ब'में भी 'सामयिकी' शब्द आया है। इनके बनाये नियमोंको 'संविद्' (अंग्रेजीमें स्टैच्यूट) भी कहते थे। याज्ञवल्क्यके 'संविद्-व्यतिक्रम-प्रकरण' (२। १८६) में लिखा है—

निजधर्माविरोधेन यस्तु सामयिको भवेत्।
सोऽपि यत्नेन संरक्ष्यो धर्मो राजकृतश्च यः॥

राजाको धर्म-विरुद्ध निर्णयोंको बचाकर चलना पड़ता था। मन्त्री कितने हों, यह भी निर्धारित था। एकसे अधिक मन्त्री रखने पड़ते थे—'**एको मन्त्री न कर्तव्यः**'। वाल्मीकिने मन्त्रिपरिषद्की रचना भी बतला दी है। (२।१००।१८) मन्त्रीके जो अवगुण होते थे, उनका निराकरण करना पड़ता था (महाभारत)।

प्रजाकी निन्दा

और सबसे कठिन कार्य था प्रजाकी निन्दाका ध्यान रखना। अर्थशास्त्रमें चाणक्यने लिखा है—

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्॥
(अ० १। १९। १६)

'प्रजाके सुखमें ही राजाका सुख है तथा प्रजाके हितमें ही राजाका हित है। अपना हित प्रिय नहीं है। प्रजाका हित प्रिय है।' इसीलिये गुप्तचरद्वारा बराबर पता लगाते रहना चाहिये कि जनपदमें, राष्ट्रमें मेरे विषयमें लोग क्या कह रहे हैं।

महाभारतके शान्तिपर्वमें यही बात लिखी है—

जानन्ति यदि मे वृत्तं प्रशंसन्ति न वा पुनः।
कच्चिद्रोचेजनपदे कच्चिद्राष्ट्रे च मे यशः॥

प्रजाकी इच्छाके विपरीत कार्य न करे। यदि धर्मके अविरुद्ध हो, फिर भी लोकको अप्रिय हो, तो भी वह कार्य न करे। 'बृहस्पतिसूत्र'में लिखा है—

१—जनकोपे सति क्षुद्रं कर्म न कुर्यात्।
२—धर्ममपि लोकविक्रुष्टं न कुर्यात्॥
(१। ६४, ४)

रामद्वारा सीताका त्याग इस आदर्शकी पराकाष्ठा है। अस्तु, रामका राज्य महाभारतके इस कथनका सजीव उदाहरण था—

आत्मत्यागः सर्वभूतानुकम्पा
लोकज्ञानं पालनं मोक्षणं च।
विषण्णानां मोक्षणं पीडितानां
क्षात्रे धर्मे विद्यते पार्थिवानाम्॥
(शान्ति० ६४। २७)

'अतएव आत्मत्याग, सब प्राणियोंपर दया, लोकवृत्तान्तका ज्ञान, प्रजाका पालन, पीड़ितोंका कष्ट-निवारण—यही क्षात्रधर्म है।'

ऐसे ही भगवान् रामकी प्रशंसा घर-घर चारों ओर थी। अयोध्याकाण्डमें वाल्मीकि लिखते हैं—

आशंसते जनः सर्वो राष्ट्रे पुरवरे तथा।
आभ्यन्तरश्च बाह्यश्च पौरजानपदो जनः॥
(२। ५१)

भीतर-बाहर सब जगह उनकी प्रशंसा थी। गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी॥
(मानस २। ७०। ३)

साम दान अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा॥
(वही, ६। ३७। ४½)

राजु कि रहइ नीति बिनु जानें। अघ कि रहहिं हरिचरित बखानें॥
(वही, ७। १११। ३)

धन्य सो भूपु नीति जो करई। धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई॥
(वही, ७। १२६। ३)

और भी ऐसे राज्यमें—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥
(वही, ७। २०। ½)

एक वह युग था हमारे देशमें, जब राजा गर्वसे कहता था—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
न नाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥
(छान्दोग्य० ५। ११। ५)

'देशमें न चोर हो, न कायर, न शराबी, न धर्मविहीन, न अपढ़, न व्यभिचारी, फिर व्यभिचारिणीकी तो बात ही क्या।'

हे भगवन्! वह कैसा सुनहला युग रहा होगा? और आज जब हम 'धर्म' से ही निरपेक्ष हैं, तब तो इन वस्तुओंकी आशा भी क्या?

स्पष्टवक्ता काकमुनि

(लेखक—पण्डित श्रीमंगलजी उद्धवजी शास्त्री, सद्विद्यालंकार)

[१]

बात उस समयकी है कि जिस समय धारा नगरीमें महाराजा भोजका राज्य था। राजसभामें पण्डितों, कविजनों और गुणज्ञोंका अधिकाधिक सम्मान होता था; स्वयं महाराजा भी विद्वान् एवं काव्यमर्मज्ञ थे। राजाका सुयश चारों दिशाओंमें फैला हुआ था।

किंतु मनुष्यमें अपने ही गुणगान सुननेकी आदत बहुत बुरी होती है। उससे मनुष्यका अभिमान बढ़ता है और वह अपनेको सर्वश्रेष्ठ समझने लगता है। एक दिन भोजकी राजसभामें एक चारण कविने आकर प्रशस्तिकाव्य सुनानेकी आज्ञा माँगी। आज्ञा पाकर वह गाने लगा—

उदित भये द्वै सूर्यसम, जग-तम नाशन हेतु।
एक भोज हैं भूपति, दूजे रघुकुल·········॥

कविराज अपना मुँह खोलकर आनन्दसे गा रहे थे, मगर काव्य अधूरा ही रह गया। अकस्मात् सभाभवनमें उड़ता हुआ एक कौवा आ गया और उसने कविके मुँहमें विष्ठा कर दी और वहाँसे भागकर वह प्राङ्गणके एक वृक्षके ऊपर जा बैठा।

प्रशस्तिकाव्य अपूर्ण रह गया। कविराज 'थू···थू···' करते अपने आसनपर बैठ गये। उपस्थित सभाजन मुँहपर दुपट्टे रखकर हँसने लगे। कुछ सभ्य लोग मारे शर्मके नीचा मुँह रखकर मौन बैठे रहे और महाराजा भोज क्रोधसे तिलमिला उठे। कामना पूर्ण नहीं होनेपर मनुष्यको क्रोध आ ही जाता है, वैसे ही प्रशंसा सुनते-सुनते महाराजा भोज अपनेको स्वयं राम समझने लगे थे। उनकी प्रबल इच्छा थी कि कोई विद्वान् या कवि 'रामकथा'के समान 'भोजकथा' लिख दें तो मेरे प्रजाजन रामकथाको छोड़कर भोजकथाका पारायण करने लगें और इसी तरह सारे भारतमें इस भोजकथाका प्रचार-प्रसार हो जाय। और मेरा यश चारों दिशाओंमें फैल जाय।

राक्षसी लोकैषणा भी वित्तैषणासे कहीं बढ़कर बुरी होती है। अपनी योग्यताको भूलकर मनुष्य उसके पीछे पड़ जाता है। महाराजा भोजने भी अपनी सभामें बैठनेवाले दो-एक विद्वानोंको प्रलोभन देकर अपनी यशोगाथा लिखनेकी प्रार्थना की; परंतु परनिन्दासे भी बढ़कर दोषयुक्त इस मिथ्या प्रशंसाको विद्वानोंने अस्वीकार कर दिया। आज इस कविराजने अपने प्रशस्ति-काव्यमें उन्हें राम और सूर्यकी उपमा देकर गुणगान करनेका प्रारम्भ किया ही था कि न मालूम यह कौवा कहाँसे आ पड़ा। इस रङ्गमें भङ्ग करनेवाले कौवेको जिंदा पकड़ लानेकी राजाने आज्ञा कर दी।

आज्ञानुसार चिड़ीमारोंने उस वृक्षके ऊपर एक विस्तृत जाल बिछा दिया। अब कौवा उस जालमें आ गया और उसे पिंजड़ेमें रखकर सभामें उपस्थित किया गया। राजाने कौवेका न्याय करनेके लिये अगला दिन निश्चित कर दिया।

[२]

आज सभागृह खचाखच भरा था। राजाके हुक्मसे कौवेको सभामें हाजिर किया गया। कौवेको देखकर महाराजा भोजके नेत्र क्रोधसे रक्त हो गये। उन्होंने आज्ञा देते हुए कहा—'मेरे मेहमानका अपमान करनेवाले इस कौवेका शिरश्छेद किया जाय!'

अबतक तो कौवा मौन था, राजाज्ञाको सुनकर अब वह बोलने लगा—

'राजन्! मैं कलसे अभीतक मौन रहकर देख रहा हूँ। मैंने भी तेरी प्रशंसा तो बहुत सुनी थी; किंतु जैसी तेरी प्रशंसा हो रही है, वैसा तू है नहीं। तू न्यायके नामपर अन्याय कर रहा है।'

'मैं अन्याय कर रहा हूँ?' राजाके स्वरमें उत्तेजना थी। वह बोला—'मेरे मेहमानका सभामें अपमान करके क्या तुमने अपराध नहीं किया?'

'इसीका उत्तर तो मैं दे रहा हूँ।' कौवा बोला। 'अपराधीको सजा देनेसे पूर्व उसे निर्दोष होनेका मौका नहीं देनेवाला न्यायाधीश क्या न्यायाधीश हो सकता है?'

'तो बोलो, काक महाशय!' भोज राजाने कहा। 'अपनी निर्दोषता सिद्ध कर सकते हो तुम? मेरे माननीय अतिथिका इतना भारी अपमान तुमने क्यों किया?'

'तो सुनिये महाराज!' कौवा बोला। 'जो मनुष्य किसी प्रलोभन या स्वार्थके वश होकर किसीकी

मिथ्या प्रशंसा करता है, उसका मुँह अपवित्र हो जाता है। तेरे माने हुए कविराजने तुम्हें सूर्य और भगवान्‌की उपमा देकर तुम्हारी मिथ्या प्रशंसा की। भला, कहाँ लोकसंग्रही भगवान् राम और कहाँ प्रशंसाप्रिय एक सामान्य राजा तुम! इस मिथ्या प्रशंसाके द्वारा अपवित्र मुँहमें विष्ठा करके मैंने कौन-सा अपराध किया? अपवित्र स्थानमें विष्ठा करना कोई अपराध तो नहीं बनता?'

'एक बात और'—थोड़ी देर रुककर कौवा बोला। 'इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः'—अपनी सच्ची प्रशंसा स्वयं करना या सुनना भी महापाप है। फिर तुझे तो प्रशंसा सुननेका व्यसन पड़ गया है। ऐसी प्रशंसा मनुष्यको अभिमानी बना देती है। भला, तू एक साधारण मनुष्य सूर्य-समान कैसे बन गया? कहाँ भगवान् रामका अविचल धर्मराज्य और कहाँ तेरे लालची और लम्पट अधिकारियोंके बलपर चलनेवाला तेरा वर्तमान राज्य! अतः तुम्हारी और भगवान् रामकी समानता भी अतिशयोक्तिके सिवा और कुछ नहीं हो सकती। सूर्यका-सा प्रताप एवं बल प्राप्त करनेवालेको निरभिमानी, विनम्र एवं आत्मनिष्ठ बनना चाहिये; उन गुणोंका तुझमें अंश भी नहीं है।'

कौवेकी स्पष्ट, सत्य एवं न्यायोचित बातें सुनकर राजा भोज बहुत प्रभावित हुआ। कौवेको सम्मान देकर उसने उसे सोनेके पिंजड़ेमें बैठाया और विनयपूर्ण वाणीसे वह कहने लगा—'पक्षिराज! सचमुच आप साधारण पक्षी नहीं हैं; अपितु मेरी आँखें खोलनेके लिये आये हुए कोई काकवेषधारी मुनि हैं। मैं आपको अपराधसे मुक्त करता हूँ। अब आप मुझे यह बतलाइये कि 'मेरा राज्य रामराज्य कैसे बन सकता है?'

'राजन्!' काकमुनि बोले—'सत्य कभी-कभी तो मधुर भी होता है, किंतु बहुधा वह कटु होता है; मगर उस कटुसत्यको भी सुनने-समझनेकी मनुष्यमें क्षमता होनी चाहिये। अपने राज्यको रामराज्य बनानेके लिये भगवान् रामके आदर्श गुणों और चरित्रको अपने हृदयमें स्थापित करना चाहिये—रामस्य चरितं ग्राह्यम्—भगवान् रामके आदर्शगुणयुक्त चरित्रको ग्रहण करना चाहिये।'

'तो मुनिराज!' भोजराजने जिज्ञासा प्रकट करते हुए कहा। 'भगवान् रामके राज्यका नमूना आज भी कहीं देखनेको मिल सकता हो तो मुझे कृपया दिखाइये।'

''क्यों नहीं? रामराज्यके प्रजाजन कैसे सुखी और संतुष्ट थे, इसका नमूना अगर तुम देखना चाहते हो तो तुम्हें त्रेतायुगकी प्राचीन अयोध्यामें चलना पड़ेगा। आज तो वह स्थान एक बीहड़ जंगलके रूपमें है। वहींपर थी, वह 'देवानां पूरयोध्या।' देवनगरी अयोध्याको तो यवनोंने नष्ट कर दिया है; किंतु उसी स्थानपर मैं तुम्हें उस आदर्शकी कुछ झलक दिखलाऊँगा।''

महाराजा भोजने काकमुनिके वाक्यपर पूर्णतः विश्वास किया और अपने विश्वासपात्र मन्त्रिमण्डल और थोड़े खास सेवकोंसहित प्रस्थान करके वे निर्दिष्ट स्थानपर जा पहुँचे। एक विशाल शामियानेमें मुकाम किया गया, सेवकोंके लिये अलग व्यवस्था की गयी। अब राजाने काकमुनिसे पूछा—'कहिये काकमुनि! अब क्या आज्ञा है?'

'मुझे साथमें लेकर उत्तर दिशाकी ओर चलिये।' काकमुनि बोले। 'और चार विश्वासपात्र अधिकारियोंको भी साथमें रखिये।'

राजाने आज्ञाका पालन किया। थोड़ा चलनेके बाद काकमुनि बोले—'बस, यहींसे पूर्वाभिमुख भूमिको खुदवानेका प्रबन्ध कीजिये।'

आज्ञानुसार खुदाई की गयी। थोड़ी गहराईपर खुदवानेसे उन्हें एक गुफाका प्रवेशद्वार दिखायी पड़ा। अब काकमुनिने कहा—'राजन्! मेरे पिंजरको और इन चारों अधिकारियोंको साथमें लेकर आप इस भूगर्भमें प्रवेश कीजिये और इसी गुफामें रामराज्यकी झलक आपको देखनेके लिये मिलेगी।'

राजा भोजकी उत्सुकता बढ़ गयी थी। वे सुवर्ण-पिंजरको हाथमें लेकर उस गुफामें आगे बढ़ने लगे। थोड़ी दूर जाते ही उन्हें दिव्य प्रकाश दिखायी पड़ा। राजाने देखा कि गुफाके मध्य चौकमें दिव्य रत्नोंसे भरा हुआ एक सुवर्णथाल जगमगा रहा था। माणिक, नीलम एवं मुक्ताफलोंका रंग-बिरंगा प्रकाश चारों ओर फैल रहा था। वहाँ पहुँचकर काकमुनि बोले—'अपने अधिकारियोंके द्वारा इस थालको उठवाकर अब हमें अपने मुकामपर चलना है।'

चार अधिकारी मन्त्रीगणको थाल उठानेकी आज्ञा देकर राजा आगे चलने लगे। पीछे-पीछे थालको उठाये हुए अधिकारी लोग आ रहे थे। शामियानेमें पहुँचकर एक उच्चासनके ऊपर उस थालको रखा गया। राजाके सम्मुख उच्चासनपर बैठे हुए काकमुनि कहने लगे—

'राजन्! अब मैं हमारे राजा रामके प्रजाजनोंकी आर्थिक, नैतिक एवं धार्मिक परिस्थितिका यथार्थ दिग्दर्शन कराऊँगा, किंतु··········'

सभी लोगोंकी दृष्टि अब सुवर्णपिंजरमें बैठे हुए काकमुनिके ऊपर लगी हुई थी। थोड़ी देर रुककर काकमुनि बोले—'किंतु इससे पहले हमारे साथ आये हुए इन चारों मन्त्रियोंके ऊपर बराबर ख्याल रखा जाय—ये लोग बाहर न निकल सकें, ऐसा प्रबन्ध करना आवश्यक होगा।'

राजाने शामियानेके चारों ओर प्रहरियोंका पहरा लगा दिया और उन मन्त्रियोंको आज्ञा दी गयी कि वे लोग जहाँ बैठे हैं, उसी स्थितिमें वहीं बैठकर इस कहानीको सुनते रहें। अब काकमुनिने कहना शुरू किया—

[२]

"राजन्! अब ध्यान देकर सुनिये। भगवान् रामके राज्यमें घटित हुई यह घटना है। उनके प्रजाजनोंमें धर्म, नीति और चारित्र्यके साथ-साथ संतोष एवं औदार्य-जैसे भगवद्गुणोंका भी सम्पूर्ण आविर्भाव था। रामराज्यमें—

सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥
(मानस ७। २०। १, ३)

"अयोध्याके नगरसेठ भी वैसे ही उदार और धर्मप्रेमी थे। किंतु भाग्यवशात् उन्हें कोई संतान नहीं हुई और इसलिये वे पति-पत्नी बड़े उदास रहते थे। अपना भविष्य जाननेके लिये नगरसेठने राज्यके सारे ज्योतिषियोंकी एक सभा बुलवायी। नगरसेठके प्रश्नपर चर्चा चलने लगी। अन्तमें ज्योतिषियोंने सर्वसम्मतिसे निर्णय देते हुए कहा—

'सेठजी! आप दोनों पति-पत्नी पूर्वजन्ममें भी श्रीमंत पति-पत्नी थे। आपके एक सुन्दर पुत्र भी हुआ। अपनी समृद्धिके अनुसार उस बालकका लालन-पालन होने लगा। किंतु उस पुत्रको उच्च संस्कार देनेमें न माताने ध्यान दिया और न पिताने ही। वे तो अपने ऐश्वर्य-भोगमें मस्त थे। पुत्र-पुत्रियोंके स्वच्छन्द और दुराचारी होनेमें माता-पिताका दोष ही कारणरूप है। शास्त्र भी यही कहता है—

दुःशीलं मातृदोषेण पितृदोषेण मूर्खता।
स्वैरत्वं सङ्गदोषेण दारदोषैर्दरिद्रता॥

अर्थात् मातृपक्षके दोषसे संतानोंमें बुरा स्वभाव, पितृपक्षके दोषसे मूर्खता, दुःसङ्गसे स्वच्छन्दता और पत्नीके दोषोंसे दरिद्रता मिलती है।

'अपने संतानोंको अनेक प्रकारके दोषोंसे माता-पिता बचा सकते हैं, अन्यथा माता-पिताको भी इनके पापोंका साझीदार बनना पड़ता है और पूर्वजन्मके इसी दोषके कारण इस जन्ममें आप संतानहीन हैं।'

"ज्योतिषियोंका निर्णय सुनकर नगरसेठने प्रार्थना की—'अब किसी भी प्रायश्चित्तसे उन दोषोंका निवारण हो सकता हो तो कृपया बतलाइये।'

'प्रायश्चित्त तो अवश्य हो सकता है।' ज्योतिषियोंने कहा। 'इन दोषोंका निवारण होता है—लक्ष्मीनारायणके पूजनसे, और हमारे महाराजा रामचन्द्र और भगवती सीता साक्षात् लक्ष्मीनारायणरूपसे यहींपर विराज रहे हैं। पुत्र होनेके बाद उस युगल स्वरूपको अपने घरमें पधराकर उनके पूजनका तुम व्रत रखो। इस व्रतप्रतिज्ञासे तुम्हारे यहाँ अवश्य पुत्र होगा।'

"ज्योतिषियोंका यथाविधि सम्मान करके सेठ-सेठानीने व्रत रखनेका संकल्प किया और एक वर्षमें यह संकल्प सिद्ध हुआ। सेठके यहाँ गुलाबके फूल-सा सुन्दर पुत्र हुआ। जब पुत्र दो महीनेका हुआ, तब नगरपतिने भगवान् रामचन्द्रजीके पास जाकर अपने व्रतका और व्रतके द्वारा हुए पुत्रजन्मका वर्णन किया। युगल-सरकारने नगरपतिके घरपर पधारनेकी अनुमति दे दी।

"दूसरे दिन शुभ मुहूर्तमें नगरसेठके महालयमें भगवान् राम और भगवती सीताजीका शुभागमन हुआ। सुवर्णमय झूलेके ऊपर श्रीसियारामकी जोड़ी विराजमान हुई। पत्नी और पुत्रको साथमें रखकर सेठने साक्षात् श्रीलक्ष्मीनारायणका पूजन किया। सेठानीने अपने बालकको श्रीसीतामैयाकी गोदमें रख दिया और स्वयं युगल-सरकारने पुत्रको आशीर्वाद दिया।

"भगवान्‌की विदाईके समय नगरसेठने बहुमूल्य रत्न एवं मुक्ताफलोंसे भरा हुआ एक सुवर्णथाल श्रीचरणोंमें समर्पित किया। प्रसन्न होकर भगवान् राम बोले—'इतने बहुमूल्य रत्नोंको हम राजभंडारमें कहाँ रख छोड़ेंगे? राजकोष तो परिपूर्ण भरा हुआ है। हमने तुम्हारी इस भेंटको स्वीकार किया, अब इन्हें अयोध्याके गरीबोंको प्रसादके रूपमें बाँट दीजिये।'—यों कहकर युगल-सरकार अपने राजमहलमें पधार गये।

"अब सुवर्णथालको लेकर नगरसेठ स्वयं अयोध्याके गरीबोंको बाँटने निकल पड़े, किंतु रत्नोंको लेनेवाला एक भी दरिद्र मनुष्य अयोध्यामें न मिल सका। दूसरे दिन सारे राज्यमें भी तलाश किया, किंतु रामराज्यमें भला गरीब और गरीबीका चिह्न भी कैसे मिल सकता था। रामराज्यमें सब कोई सुखी और संतुष्ट थे। दूसरोंका धन हड़पकर गरीबी मिटानेका यहाँ कोई प्रश्न ही नहीं था।

"तीन-चार दिनके बाद नगरसेठने रामसभामें आकर निवेदन किया कि 'सारे राज्यमें एक भी दरिद्र मनुष्य नहीं है, अब इन रत्नोंका क्या किया जाय?'

—'हमारे राज्यमें एक भी दरिद्र मनुष्य नहीं है?' प्रसन्न होकर भगवान् बोले। 'यह तो बड़े आनन्द और गौरवकी बात है। सेठजी! आपका संकल्प तो सफल हुआ ही है, आपकी श्रद्धा-भक्तिका पूर्ण फल आपको मिल गया और मुझे इसी बहाने परीक्षण करनेका मौका मिला कि मेरी सम्पूर्ण प्रजा सुखी और संतुष्ट है। प्रजाका असंतोष ही चोरी, लूट, छल-कपट और रिश्वतको जन्म देता है। प्रजाके इन दुर्गुणोंमें धनकी अपेक्षा असंतोष ही प्रमुख कारण होता है।'

'अब रही उस रत्नथालकी बात!' भगवान् थोड़ी देर रुककर फिर बोले। 'उसे अयोध्याके प्रवेशद्वारके चौकमें—जहाँ विशाल चबूतरा और पीपलका पेड़ लगा है, वहींपर रख दो; जिस किसीको आवश्यकता होगी, ले जायगा। सम्भव है, शर्मके कारण किसीने न भी लिया हो तो अब वह निर्भयतासे ले सकेगा।'

"सेठने भगवान् रामकी आज्ञाका पालन किया, मूल्यवान् रत्नोंसे भरा हुआ यह थाल चबूतरेपर रख दिया। दिनके बाद महीने और महीनोंके बाद वर्ष बीतने लगे; किंतु वह भरा हुआ थाल वहीं-का-वहीं पूर्ववत् पड़ा रहा।

'राजा भोज!' काकमुनि बोले। 'यह है रामराज्यकी एक छोटी-सी झलक! प्रजाजनोंके शील, संतोष, धर्म और नीतिका इससे बढ़कर कहीं और उदाहरण मिल सकता है? मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारे दिलमें राम बननेकी गहरी आकाङ्क्षा है; मगर तुम राम नहीं बन सकते। भगवान् श्रीरामने राजा बननेसे पहले स्वयं तपस्वी बनकर वन-वनमें फिरकर धर्मका परित्राण और अधर्मका विनाश किया था। राम स्वयं राजा बननेसे पूर्व प्रजाके हृदयमें बस चुके थे। तुम्हें रामका गुणपूजक भक्त बनना चाहिये।'

—काकमुनिके कथनसे महाराजा भोज प्रसन्न हो गये। वे बोले—'तो क्या सम्मुखमें पड़ा हुआ यह रत्नपूर्ण सुवर्ण-थाली वही है, जिसे नगरसेठने चबूतरेपर रखा था?'

'इसमें कोई शङ्का नहीं।' काकमुनि बोले। 'जिस समयका यह इतिहास है, उस समय भगवान् रामकी राजधानी यहींपर थी। अब तुम्हें विचार करना चाहिये कि क्या तुम्हारी प्रजा धर्म, नीति, सदाचार, सुख और संतोषसे पूर्ण है? तुम्हारे निकटवर्ती कर्मचारी और मन्त्रीगण भी निष्पक्ष, न्यायनिष्ठ एवं सत्यप्रिय हैं?'

'जी हाँ, काकमुनि!' राजा भोजके स्वरमें किंचित् गर्वका आवेश आ गया। वे बोले—'मेरी प्रजा और मेरे कर्मचारी लोग रामराज्यकी प्रजा और कर्मचारियोंसे किसी तरह कम नहीं हैं। मेरे मन्त्रीगण मेरे सम्पूर्ण विश्वासपात्र हैं।'

'यह तुम्हारा मिथ्या आत्मसंतोष है।' काकमुनि बोले। 'ऐसा गर्व करके तुम अपनी आत्मवञ्चना कर रहे हो। राजन्! तुम्हारे हाँ-हजूरोंने और दान-दक्षिणाके लोभी कविजनोंने तुझे मिथ्या उपमाएँ देकर तुम्हारी आँखें बंद करा दी हैं। तुम्हारे कान तथ्य सुननेके नहीं, प्रशंसाको सुननेके आदी बन गये हैं। तुम्हारा हृदय तुम्हारे जी-हजूर-अधिकारियोंद्वारा छीन लिया गया है। तुम्हारी निर्णयात्मक शक्ति नष्टप्राय हो चुकी है, और…'

'खबरदार!'—कौवेको रोककर महाराजा भोज क्रोधावेशमें आकर बोल उठे। 'दुष्ट कौवे! तू मेरी निन्दा कर रहा है। मेरे अङ्गरक्षक और इन अधिकारी लोगोंके समक्ष तू मेरा

अपमान कर रहा है। अब मेरे क्रोधको अधिक उकसाना ठीक नहीं, वरना……'

—'बस करो……' कहते-कहते काकमुनि उस बंद सुवर्णपिंजरेमेंसे बाहर निकल आये और उन्होंने राजाके सम्मुख एक उच्चासनपर बैठकर कहना शुरू किया—'राजन्! आगे बोलनेसे पहले तेरे लिये मेरे अन्तिम वाक्योंको सुन लेना उचित होगा। मुझे कुछ भी दण्ड देना तेरी सामर्थ्यके बाहरकी बात है। जिस मनुष्यमें अपने सच्चे दुर्गुणोंको सुनने-समझनेकी क्षमता नहीं है, उसे अपनी प्रशस्तियाँ सुननेका कोई अधिकार नहीं है। अब तो 'तू' तू नहीं रह गया, तेरा अस्तित्व तेरे लालची और रिश्वतखोर अधिकारियोंकी मुट्ठीमें बँधा हुआ है। अतः सर्वप्रथम तुझे राम बननेकी वृथाभिलाषाको स्थगित करना होगा; क्योंकि मैं तेरे दोषोंको देखने नहीं आया, किंतु उनको दूर करके तुझे सच्चा रामभक्त बनाने आया हूँ। तेरे अन्तरमें औदार्य, दान, शील, शौर्य आदि जो भी सद्गुण हैं, वे भी भगवान् रामके दिये हुए हैं; किंतु तेरे निकटवर्ती लोगोंने उन सद्गुणोंका सदुपयोग करनेका अवसर ही नहीं आने दिया!

''राजन्! तेरे प्रजाजन सुखी हैं या दुःखी, इसकी जाँच तो तुझे स्वयं करनी होगी। तेरे माने हुए ये चारों मन्त्री तेरे विश्वासपात्र हैं या विश्वासघातक, इसकी तू परीक्षा अभी कर ले। अपने कथनकी प्रामाणिकता तो इसी समय मैं स्वयं दे रहा हूँ। ये तेरे चारों विश्वासपात्र अधिकारी, जो तेरे सम्मुख हाजिर हैं, उनके कपड़ोंकी तलाशी लेकर तू ही देख ले कि इन्होंने अपने साथ चलते-चलते ही इस थालमेंसे एक-एक बहुमूल्य मुक्ताफलकी चोरी की है। राजन्! जरा कान खोलकर सुन ले, तेरे अधिकारी लोगोंकी अनीति और तेरे प्रजाजनोंकी हीन परिस्थितिका जवाबदार तू ही है; क्योंकि '**राजा कालस्य कारणम्**—राजा ही कालका कारण होता है।' यहाँ 'राजा' शब्द किसी व्यक्तिविशेषके लिये नहीं, किंतु जिसके पास सत्ताकी बागडोर रहती है, वही 'राजा' है। तेरे राज्यको रामराज्य, और तुझको राम कहनेवालोंके ऊपर तुझे प्रेम होता है और मेरी तरह कटु सत्य कहनेवालोंके ऊपर तुझे क्रोध आता है—इसीसे निश्चित होता है कि न तेरेमें राम बननेकी क्षमता है और न तेरा राज्य रामराज्य बन सकता है। धोबीके कटुवचन-द्वारा श्रीरामने जो कर दिखाया था, वह तो तुझे मालूम ही होगा। कहना सरल है, किंतु करना अत्यन्त मुश्किल होता है,' कहकर काकमुनिने अपना कथन समाप्त किया।

अब राजाने उन मन्त्रियोंके ऊपर दृष्टिपात किया तो वे थरथर काँप रहे थे; उन्होंने अपने कपड़ेमें छिपाया हुआ एक-एक रत्न निकालकर राजाके चरणोंमें रख दिया और अपनी इस धृष्टताके लिये बारंबार क्षमायाचना की।

अब महाराजा भोजकी आन्तरिक परिस्थिति बदल रही थी, उसका गर्व भी पिघल रहा था। अपने आसनसे उठकर उसने काकमुनिको प्रणाम किया और वह गद्गद वाणीसे प्रार्थना करने लगा—

'क्षमा कीजिये, मुनिराज! मैंने आपके समक्ष बहुत अविनय किया। किंतु आपके इस उपदेशने मेरी आँखें खोल दीं। अब यह आज्ञा दीजिये कि इस सुवर्णथालकी क्या व्यवस्था की जाय।'

'उसे भूगर्भमें ही पूर्ववत् रखवा दो।' काकमुनि बोले। 'भगवान् रामकी दिव्य सम्पत्तिको अपने पास रखनेका किसीको अधिकार नहीं है और मैं तुझे अनुरोध करता हूँ कि वर्तमान अयोध्यामें श्रीसरयूके तटपर निवास करनेवाले किसी संत-महात्माके मुखसे एक बार श्रीरामचरितमानस सुनकर ही अपने देशको वापस लौट जाना और सच्चे धर्म, न्याय एवं नीतिसे अपनी प्रजाका पालन करना। अब मैं भी अपने कर्तव्यपालनका संतोष लेकर यहाँसे विदा होता हूँ।'

'श्रीराम जय राम जय जय राम' का उच्चारण करते हुए स्पष्टवक्ता काकमुनि वहाँसे विदा हो गये।

रामराज्यका स्वरूप और उसका प्रभाव

(लेखक—डॉ० श्रीस्वामीनाथजी शर्मा)

रावणरूपी अवाञ्छित तत्त्वोंका विनाश होनेपर ही रामराज्यकी स्थापना होती है। सामाजिक उन्नति और मानव-कल्याणके लिये रामराज्य अनिवार्य शर्त है। रामराज्य एक स्थितिविशेषका नाम है और यह स्थिति अनुकूल तत्त्वोंके परिपक्व होनेपर स्वतः उत्पन्न हो जाती है। यह ऐसी सिद्धि है, जिसमें साधनोंपर ही सारा उत्तरदायित्व रहता है और सारा महत्त्व भी उन्हींपर केन्द्रित रहता है। तुलसीके राम उन आदर्शोंके प्रतीक हैं, जो आदर्श राज्यकी स्थापनाके लिये साधन-स्वरूप हैं। इन्हीं आदर्शोंकी अवस्थिति उस आदर्श राज्यकी सृष्टि तथा स्थायित्वका कारण बनती है, जो कल्पनाका स्वर्ग होते हुए भी मनुष्यद्वारा लभ्य है, जो अलौकिक होते हुए भी लोक-सुलभ हो जाता है और जो आदर्श होते हुए भी यथार्थकी पकड़में आ जाता है।

रामराज्यका प्रमुख साधक तत्त्व है—राजाका आचरण। गीताने '**यो यच्छ्रद्धः स एव सः।**' कहकर मनुष्यको उसकी श्रद्धाकी प्रतिकृति माना है। आचरण इसी श्रद्धाका बाह्य रूप है। श्रद्धा आचरणकी प्रेरिका है और आचरण श्रद्धाका विज्ञापक। श्रद्धासे आचरणका महत्त्व पृथक्‌रूपसे इसलिये मान्य है कि उससे समाज प्रभावित होता है। आदर्श वैयक्तिक व्यवहार ही समाजका उन्नायक होता है। भगवान् राम अपने आचरणके द्वारा ही उन आदर्शोंके बीज बोते हैं, जो 'रामराज्य'के विशाल वृक्षका रूप धारण करता है। राज्यका रूप-निर्धारण राजाके व्यक्तित्वपर निर्भर होता है। राजा अपनी स्थानगत विशिष्टताके कारण सबकी आँखोंका केन्द्र-बिन्दु बन जाता है और अपने कार्योंसे प्रजाको किसी-न-किसी रूपमें प्रभावित करता रहता है। उसकी कार्यप्रणालीको प्रजा संस्काररूपमें ग्रहण करती है। राजा चाहे कोई व्यक्ति हो, चाहे कोई दल, वह अपनी व्यवहार-पद्धतिसे सारे देश तथा समाजके चरित्र-गठनमें पर्याप्त मात्रामें कारण बनता है। 'यथा राजा तथा प्रजाः।' इसीलिये कहा गया है। यही कारण है कि प्रजाके सुख-दुःखकी सारी जिम्मेदारी राजाके सिर थोपी गयी है। गोस्वामी तुलसीदासका तो यह निर्भ्रान्त मत है—'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी॥' (मानस २। ७०। ३)। प्रजाके दुःखका अर्थ है कि राजा अपने कर्तव्यसे च्युत हो गया है। वह पालक नहीं, घालक बन गया है; वह रक्षक नहीं, भक्षक हो गया है।

रामने अपने व्यक्तित्वको राज्यतन्त्रमें अनुस्यूत कर उसे आदर्श राज्यत्वकी चरम सीमातक पहुँचा दिया था उन्होंने अपने आचरणद्वारा प्रजा तथा समाजको आद रूपमें ढाला था।

आचरणके दो रूप होते हैं—वैयक्तिक तथा सामाजिक वैयक्तिक आचरण हमारे निजी जीवनसे सम्बन्ध रखता है और सामाजिक दूसरोंके प्रति किये गये व्यवहारसे। रामका व्यक्तिगत जीवन भी समाजके लिये ही था। सीता-त्यागके कारण रामकी आलोचना वैयक्तिकताके संकुचित दृष्टिकोणका परिणाम है। सामाजिकताके व्यापक क्षेत्रमें रामका यह कार्य राजोचित व्यवहारका आदर्श प्रस्तुत करता है। स्वार्थ-संकुल क्षुद्र हृदय उन रामके विशाल मानसकी छाँहतक नहीं छू सकता, जिनका कहना था कि 'लोकाराधनके लिये स्नेह, दया, सौख्य अथवा जानकीको भी छोड़ना पड़ जाय तो मुझे व्यथा न होगी।'[1]

समाज व्यक्तिके बलिदानसे फूलता-फलता है और बलिदानी समाजसे आदर और प्रतिष्ठा पाता है। राम ऐसे व्यक्तिगत व्यवहारकी साक्षात् मूर्ति थे। उन्होंने अपने जीवनमें कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे॥ (वही, ७। २३। १/२) जहाँ संग्रह-वृत्ति नहीं होती, वहाँ कोई संघर्ष भी नहीं होता। जब देनेकी होड़ लग जाती है, तब लेनेकी भावना शान्त हो जाती है। रामने व्यक्तिके रूपमें अपने अंदर आजीवन इसी त्यागकी प्रवृत्तिको प्रोत्साहित किया। राजाके रूपमें उन्होंने अपनी प्रजाके लिये ही अपने कोषका उपयोग किया। तुलसीदासजीके विचारानुसार 'प्रजा सुभाग ते भूप भानु सो होइ।' जिसको 'बरषत हरषत लोग सब करषत लखै न कोइ।' आधुनिक कराधान-पद्धतिमें जिस अप्रत्यक्ष कर-प्रणालीको अत्यन्त वाञ्छनीय माना जाता

---

१. स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥
(उत्तररामचरित १। १२)



है, वही गोस्वामीजीको भी प्रिय थी। रामने अपने अनवरत दानसे प्रजाको उसी प्रकार सुखी और संतुष्ट रखा, जैसे सूर्य भापके रूपमें जल खींचकर वर्षासे सृष्टिको आह्लादित कर देता है।

राम 'श्रुति पथ पालक धर्म धुरंधर। गुनातीत अरु भोग पुरंदर॥' (वही, ७। २३। १) थे। यह राजाका कल्याण-विधायक रूप है। इसमें राजाकी निरङ्कुशताका अङ्कुश है, उसकी स्वेच्छाचारिताका नियन्त्रण है तथा उसकी अमर्यादित इच्छाओंपर प्रतिबन्ध है। रामने राज्य-प्रबन्धकी कोई निजी व्यवस्था नहीं स्थापित की थी। वे 'श्रुतिपथ पालक' थे। ऋषि-मुनियोंने जो विधान बनाया था, वे उसीको कार्यान्वित करते थे। वे धर्मकी धुरी धारण करनेवाले थे। धर्मका जो सर्व-मान्य रूप था, उसका रक्षण करना और उसे व्यवहारकी वस्तु बनाना उन्होंने अपने जीवनका ध्येय बनाया था। भरतसे इसीलिये कविने कहलाया था कि 'चाहिअ धरमसील नरनाहू।' (वही, २। १७८। ½)। तुलसीके राजा राम शासक कम हैं, लोकनायक अधिक। वे विधान नहीं बनाते, वे आदर्श आचरण प्रस्तुत करते हैं। जब शासक और विधायक एक हो जाते हैं, तब राज्य-व्यवस्थामें उच्छृङ्खलताका मार्ग खुल जाता है। शासक अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं तथा स्वार्थोंको विधायकपर लादता जाता है और विधायक उनकी पूर्तिके लिये विधानका स्वरूप परिवर्तित करता जाता है। इस प्रक्रियाके फलस्वरूप सुधार विकारका समानार्थी-सा बन जाता है। आदर्श शासन-व्यवस्था तभी हो सकती है, जब शासक और विधायकको अलग-अलग रखा जाय।

राजाका वैयक्तिक आदर्श आचरण जब प्रजाके प्रति समुचित व्यवहारसे संयुक्त हो जाता है, तब एक ऐसी स्पृहणीय जीवन-पद्धतिके दर्शन होते हैं, जिसमें शासक और शासितकी भावनामें अप्रियताकी गन्धतक नहीं होती। यही कारण है कि राजाका पालकरूप विशेष प्रिय होता है। राम भरतसे कहते हैं—'राज धरम सरबसु एतनोई।' (वही, २। ३१५। ½)

मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥
(वही, २। ३१५)

राजा या शासकका यह प्रमुख कर्तव्य है कि प्रजाके प्रत्येक वर्गका, उसकी स्थिति, क्षमता, संस्कार तथा योग्यता आदिके अनुकूल, पालन करे और उसे पुष्ट करे। प्रजा-पालन कर्तव्य है और विवेक मार्गदर्शक। असमानता विवेककी अपेक्षा करती है। सबको एक ही लाठीसे हाँकना मूर्खता है, साथ ही असफलताको आमन्त्रण देना भी है। विवेकपूर्ण राजा कुशल वैद्यके समान प्रजाके विभिन्न वर्गों तथा व्यक्तियोंके आवश्यकतारूपी रोगका समुचित निदान जानकर अनुकूल व्यवस्था करता है। यही उत्तम राजनीति है और इसका अनुसरण ही उचित राजधर्म है। रामने वन-गमनके समय इसीलिये सुमन्त्रसे कहा था—'कहब सँदेसु भरत के आएँ। नीति न तजिअ राजपदु पाएँ॥' (वही, २। १५१। १½) गोस्वामीजीको इस कुव्यवस्थापर बड़ा क्षोभ होता था कि 'साम न दाम न भेद कलि केवल दंड कराल।' ही राजनीतिका एकमात्र अङ्ग रह गया है। इन नीतियोंके अभावका अर्थ यही है कि शासक अनाचारी तथा अविचारी हो गया है। जब रामने अङ्गदसे पूछा कि 'तुमने रावणके जो चार मुकुट यहाँ फेंक दिये थे, वे तुम्हें कैसे मिले', तब अङ्गदने कहा—

सुनु सर्बग्य प्रनत सुखकारी। मुकुट न होहिं भूप गुन चारी॥
साम दाम अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा॥
नीति धर्म के चरन सुहाए। अस जियँ जानि नाथ पहिं आए॥
(वही, ६। ३७। ४-५)

जो राजा अथवा शासक धर्मविमुख हो जाता है; उसमें इन चारों नीतियोंके प्रयोगकी क्षमता नहीं रह जाती। जो राजा नीतिमान् नहीं होता; जिसमें विभिन्न परिस्थितियों तथा व्यक्तियोंके साथ यथोचित व्यवहार करनेकी कुशलता नहीं होती, वह निश्चय ही शोचनीय होता है—

'सोचिअ नृपति जो नीति न जाना।'
(वही, २। १७१। २)

नीतिनिपुण राजाके लिये गोस्वामीजीके हृदयमें अपार आदरका भाव था—

पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जसि करनी॥
(वही, ४। १५। ३½)

राजाकी नीतिमत्ताकी कसौटी है, प्रजाके प्रति उसका व्यवहार। यदि राजा या शासक अपनी पदगत विशिष्टताका झीना आवरण अलग कर सके और अपने मानवीय व्यक्तित्वको जन-साधारणके धरातलपर ला सके तो उसकी श्रेष्ठता सराहनीय हो जाती है; उसकी गरिमा स्पृहणीय बन जाती है और उसकी शक्ति वाञ्छनीय हो जाती है। रामका जीवन-व्यवहार वैयक्तिक

स्तरपर था, न कि राजकीय स्तरपर। राम पुरके बाहर जाते हैं, जहाँ 'सीतल अवँराई' थी और उनके बैठनेके लिये—

'भरत दीन्ह निज वसन डसाई।'

(वही, ७ । ४९ । ३)

सामान्य ग्रामीण वातावरण उत्पन्न हो जाता है, जिसमें मर्यादा है किंतु असमानता नहीं, समता है किंतु अनधिकारता नहीं, एकरूपता है किंतु अविचारता नहीं। राम अपने पुरवासियोंके समक्ष अपना आशय प्रकट करते हैं; किंतु उसके पूर्व उनसे कहते हैं—

नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई॥
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥

(वही, ७ । ४२ । २-३)

यहाँ राजा अपनी प्रजासे नहीं बोल रहा है, मनुष्य मनुष्यसे बोल रहा है। सिंहासन समतल भूमिमें परिवर्तित हो गया है, सत्ता समानाधिकारमें परिणत हो गयी है और विशेषता सामान्यकी समकक्षतामें संतोषका अनुभव कर रही है। जहाँ शासन कम होता है, वहीं अनुशासन अधिक रहता है; जहाँ आज्ञा कम दी जाती है, वहीं उसका पालन अधिक होता है। जो भावना दूसरोंके व्यक्तित्वका आदर करती है, वही उनकी पूजाकी अधिकारिणी होती है। गोस्वामीजीने 'नृपाला' को 'ईस अंस भव' माना है सही, किंतु इसके साथ ही उसका 'साधु सुजान सुसील' भी होना अनिवार्य माना है। निरंकुशता तथा स्वेच्छाचारिता नृपालके व्यवहारक्षेत्रमें अपरिचित एवं अमान्य बातें हैं। एक शासकको अनियन्त्रित बनाती है, दूसरी अमर्यादित। इनकी उपस्थिति ही राजमद है, जिसका रिणाम शासकका कलङ्कित होना है—

सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥

(वही, २ । २२८ । ३½)

इस राजमदका उपचार है—परिष्कृत संस्कार, संतुलित शिक्षा एवं साधु-स्वभाव। भरतके आगमनका समाचार सुनकर लक्ष्मणकी कोपोक्तिपर राम उनसे चित्रकूटमें कहते हैं—

कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राजमदु भाई॥
जो अचवँत नृप मातहिं तेई। नाहिन साधु सभा जेहिं सेई॥

(वही, २ । २३० । ३-३½)

साधु-समाजका कल्याणकारी प्रभाव ही राज्य-सत्तासे उत्पन्न होनेवाले अवगुणोंका शमन करता है।

रामने अपने आचार-व्यवहारसे उस आदर्शकी स्थापना की, जिसमें प्रजाकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता तथा निर्भीकताकी प्रतिश्रुति होती है। प्रजाकी आलोचना उनको कदापि क्रोधित नहीं करती थी; वे उस आलोचनाका कारण समाप्त करनेका प्रयत्न करते थे। दूसरेकी जीभपर ताला लगानेकी अपेक्षा अपने आचरणका सुधार शासन-तन्त्रके प्रत्येक अधिकारीका आवश्यक कर्तव्य है। शासनको अपने दोष-मार्जनके लिये सदैव तत्पर रहना चाहिये, न कि दोषसूचक उँगलीको खंडित करनेका प्रयत्न करना। शासकको भी 'निन्दक नियरे' रखना चाहिये। इसकी छिद्रान्वेषी आँखें पथ-भ्रष्ट होनेसे बचाती रहती हैं तथा सुधारका द्वार खुला रखती हैं। रामने इसीलिये—

सिय निंदक अघ ओघ नसाए। लोक बिसोक बनाइ बसाए॥

(वही, १ । १५ । १½)

—थे कि प्रजाकी जीभ न सी दी जाय और वह शासनके कार्योंपर अपना मतामत व्यक्त करनेमें हिचक न करे। रामके इस कार्यमें व्यक्तित्वका कर्तव्यमें विलय है, पदगत शक्ति और सामर्थ्यका नीति और आदर्शके समक्ष अस्त्र-त्याग है।

रामके समान आदर्श-समन्वित तथा आचरण-सम्पन्न शासक जब राज्य-सिंहासनपर विराजमान हो जाता है, तब संसारके इतिहासमें एक अद्भुत अध्यायका आरम्भ हो जाता है। शासक अपने व्यक्तित्वसे वातावरणको ओतप्रोत कर देता है, उसमें अपनी सत्त्वमत्ता पूर्णतया अन्तःक्षिप्त कर देता है और तब यह वातावरण जनसाधारणको आचार-व्यवहारका उचित निर्देशन देता है, उनकी भावनाओंको कल्याणमय रूप प्रदान करता है और उनके जीवनको आदर्श मानवताके साँचेमें ढाल देता है। इस वातावरणमें जीवन बनाया नहीं जाता, वह बन जाता है; मार्ग दिखाया नहीं जाता, वह देख लिया जाता है। जीवनके आदर्श स्वतः ढलते जाते हैं।

जब 'राम राज बैठे', तब 'त्रैलोका हरषित भए' और उनके सारे शोक नष्ट हो गये। यह व्यक्तित्व-गरिमाका प्रभाव है। एक सत्त्ववान् व्यक्ति सारे समाजको प्रेरित तथा आश्वस्त करनेकी क्षमता रखता है। हाँ, उसे होना चाहिये पूर्णतः सत्त्व-सम्पन्न। रामका प्रताप देखिये कि उसने सारी विषमता नष्ट कर दी। फलतः 'बयरु न कर काहू सन कोई।' (वही, ७।१९।४) अभावमें ईर्ष्या और विद्रोहकी भावना होती है और आधिक्यमें शोषण तथा अपव्ययकी। जबतक दोनों वर्गोंकी असमानताका

समाधान नहीं मिलता। अर्थ-वितरणके संतोषजनक प्रश्नसे नहीं मिलते, तबतक समाजमें ईर्ष्याकी आग सुलगती रहती है और किसी भी समय इस प्रकार सब ध्वस्त करनेकी सम्भावना रहती है। भौतिक धरातलपर अर्थ-वैषम्य मिटानेका प्रयत्न उत्तम और वाञ्छनीय तो है ही, तथा ही सामाजिक अशान्तिको दूर करनेके लिये आवश्यक भी है; किंतु इतनेसे ही समस्याकी आत्यन्तिक निवृत्ति सम्भव नहीं हो सकती। भौतिकतामें संघर्ष किसी-न-किसी रूपमें बना ही रहता है। जबतक व्यक्ति-की विचार-दृष्टिको नैतिकताका अङ्कुश नहीं मिलता, उसमें समाजके उन्नायक तत्त्वोंके दर्शन करनेकी क्षमता नहीं आती। रामके प्रतापसे यही बात हुई थी।

विपन्नताका अभाव सामाजिक सौहार्दकी सृष्टि करता है। समाजमें शान्ति और सुनीतिका निवास होता है और पारस्परिक व्यवहारमें सरलता और सहृदयताकी मिठास घुली रहती है। एक ऐसे वातावरणका निर्माण हो जाता है, जिसमें मानव-मनकी कुटिलता, नम्रिता तथा शठता अपने-आप नष्ट हो जाती है; स्वभावमें मृदुता एवं सरलता आ जाती है; वृत्तियाँ शान्त और सुस्थिर हो जाती हैं; इच्छाएँ स्वस्थ तथा निर्विकार हो चलती हैं। मनुष्य स्वयमेव जीवनके आदर्श आचरणकी ओर उन्मुख हो जाता है। रामराज्यमें इसीलिये—

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग॥
(वही, ७। २०)

धर्ममय जीवन सभी सांसारिक समस्याओंका स्वाभाविक समाधान है। इसमें स्वाभाविक सरलता होती है, जो सांसारिक उलझनोंको स्थान नहीं देती; एक निःस्पृहता होती है, जो ममताके बन्धनकी अप्रियता गले नहीं मढ़ती और एक उदारता होती है, जो अपनत्वमें विश्वत्वका अन्तर्भाव कर देती है। इस जीवन-प्रणालीमें उन भौतिक तत्त्वोंका अस्तित्व ही मिट जाता है, जो दुःख तथा शोकके कारण बनते हैं। अतः यदि राम-राज्यमें 'दैहिक दैविक भौतिक तापा' (वही, ७। २०। १) किसीको व्याप्त नहीं करते थे तो आश्चर्यकी बात नहीं है। इन तापोंकी अनुपस्थितिमें मानव वस्तुतः अपनी सिद्धताकी सीमापर पहुँच गया था; क्योंकि उस समय—

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥
(वही, ७। २१। ३)

इस स्वाभाविक सरलता और सुन्दरताका स्रोत था रघुवीरका चरित्र, जिसे स्वयं राजा रामने अपने चरित्रसे प्रकट किया था। जब राजा स्वयं परोपकारी और उदार है, तब प्रजामें संकीर्ण स्वार्थ और कृपणता कैसे उपज सकती थी? जब राजा स्वयं एकपत्नीव्रतके व्रतका पालक है, तब प्रजा अनेक पत्नियोंमें गार्हस्थ्य-सुखका आविष्कार कैसे सोच सकती है? आचार-सम्बन्धी दृष्टिसे राजा तथा प्रजामें चिर-साम्य-सा था। उस समय इसीलिये—

सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी॥
एकनारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥
(वही, ७। २२। ४)

जब मनुष्य पूर्णताकी इस सीमापर पहुँच जाता है, तब सामाजिक जीवन अतीव आह्लादक एवं सुन्दर रूप धारण कर लेता है। विधानकी बाध्यता अनावश्यक हो जाती है; विधान जीवनका स्वाभाविक एवं नियमित अङ्ग बन जाता है। वैयक्तिक संतुष्टि सम्बन्धोंमें स्निग्धता उत्पन्न करती है और सामाजिक समृद्धि वैयक्तिक सुखकी सृष्टि करती है। न कहीं संघर्ष होता है न तनाव। लोभके पैर उखड़ जाते हैं, तृष्णाकी साँस घुट जाती है तथा ईर्ष्याकी आँखें मुँद जाती हैं; शान्तिका साम्राज्य छा जाता है और चैनकी वंशी बजने लगती है। राजाका दण्डात्मक रूप बदल जाता है और उसकी शक्ति कल्याणकारी प्रवृत्तियोंकी ओर मुड़ जाती है। रामके आदर्श शासनका फल यह हुआ कि उस समय—

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र कें राज॥
(वही, ७। २२)

—की स्पृहणीय स्थिति उपस्थित हो गयी थी। अपराध अभावके कारण होते हैं, अथवा स्वभावके कारण। दोनों ही अस्तित्वहीन हो गये थे। समाज समृद्धि सुवितरित थी और स्वभाव संस्कृत हो गया था। अतः दण्डका स्थान ही नहीं रह गया था। अभेदमें भेदकी गति हो ही नहीं सकती और शत्रुताके अभावमें किसीको जीतनेका प्रश्न ही नहीं उठता।

मनुष्य जब अपनी शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकासकी पूर्णतापर पहुँच जाता है, तब वह अपने चारों ओर प्रसरित संसारके रूप-परिवर्तनका सशक्त साधन सिद्ध होता है। वह भौतिक जगत्को अपनी आनन्द एवं उल्लासकी वृत्तिसे ओतप्रोत कर देता है। वह अपने जीवनके स्पन्दन-शील पुलकसे जड सृष्टिको अनुप्राणित करता है तथा वातावरणको अपने अनुशासित तथा संयमित जीवनसे इतनी प्रबलतासे अभिभूत कर देता है कि विद्रोही पस्त हो जाते हैं, उद्दण्ड दब जाते हैं और उच्छृङ्खल नियन्त्रित हो जाते हैं। प्रकृतिके तत्त्व उसकी आज्ञाका पालन करते हैं। रामराज्यमें इसी अवस्थाका बोलबाला था। मानव-जगत्की सुख, शान्ति और व्यवस्था प्रकृतिके क्षेत्रपर भी अपनी स्निग्ध छाया डालकर अपने प्रभावकी सार्वभौमिकता सिद्ध कर रही थी। प्रकृति मानवकी सहचरी बन गयी थी। फलस्वरूप—

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन॥
लता बिटप मागें मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं॥

बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज॥
(वही, ७। २२। १/२, २ १/२; ७। २३)

मानव-उल्लास संक्रामक बन गया था। उससे प्रकृतिमें प्रफुल्लताका संचार हुआ। वह भी पल्लवित और पुष्पित हो, विहँस उठी। मानव-समाजमें "बयरु न कर काहू सन कोई" की अभिनन्दनीय स्थिति थी तो प्रकृतिमें भी "एक सँग गज पंचानन" रहते थे और निर्वैरताकी व्यापक घोषणा करते थे। मानव-समृद्धिने प्रकृतिके प्रभूत प्राचुर्यको प्रोत्साहित किया और मानवीय अनुशासन तथा व्यवस्थाने प्राणि-जगत्पर अपनी धाक जमायी। मनुष्यकी इच्छाएँ सूर्य-चन्द्रकी शक्तियोंका नियमन करने लगीं; वे वन-वनकी प्रवृत्तियोंका संचालन करने लगीं। मानव सार्वभौम बन गया। मृत्युलोकमें रहते हुए भी अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियोंका विकास करके वह प्राणमय लोककी विभूतियोंसे सम्पन्न हो गया, जिस लोकके प्राणी किसी भी वृक्षसे इच्छा करने या आदेशमात्र देनेपर आम या कोई भी मनचाहा फल, फूल या कोई भी इच्छित वस्तु प्राप्त कर सकते हैं। मानव वस्तुतः सृष्टिका स्वामी बन गया था।

यही गोस्वामी तुलसीदासका राम-राज्य है। इसमें मनुष्य अपनी मानवताका चरम विकास करके सारी जड-चेतन सृष्टिका नियन्ता बनकर ही रहता है। इसे कोरा आदर्श अथवा कविका कल्पना-विलास कहकर नहीं टाला जा सकता। इसकी बुद्धिग्राह्यता कविकी विचारधारा तथा जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोणके सम्यक् ज्ञानकी अपेक्षा रखती है। गोस्वामीजीका यथार्थ है—मनुष्यत्व और आदर्श है—आत्मोपलब्धि, भगवत्प्राप्ति अथवा उनके शब्दोंमें रामभक्तिकी आत्यन्तिक उपलब्धि; क्योंकि उनके मतानुसार—

सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं॥
(वही, ६। १११। ३ १/२)

मानवजीवनरूपी यह यथार्थ हमें मोक्षरूपी आदर्श प्राप्त करानेके लिये सोपान-सदृश है। ज्यों-ज्यों हम आदर्शकी ओर बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों यथार्थसे सम्बन्ध-सूत्र ढील पड़ता जाता है। इस उद्दिष्ट आदर्शके पथपर निरन्तर प्रगति करते रहनेसे अन्तमें वह स्थिति अपने-आप आ जाती है, जब यथार्थ—भौतिक यथार्थ—अपने-आप छूट जाता है और तब जीव शिव हो जाता है। रामराज्यमें मानव-विकास इस सीमापर पहुँच गया था, इसीलिये—

'राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥'
(वही, ७। २०। २)

—बन गये थे। जब मनुष्य इस अवस्थापर पहुँच जाता है, तब उसकी चिच्छक्तिका परम विकास हो जाता है और वह जड-चेतन सृष्टिपर अपनी इच्छाका साम्राज्य स्थापित कर लेता है। यही रामराज्यकी पूर्णता है, यही उसका चरम विकास है।

श्रीरामचन्द्रजीका आदर्श मन्त्रिमण्डल

(लेखक—श्रीभवानीशंकरजी पंचारिया, एम्० ए०)

हमारे देशमें प्राचीनकालसे अद्यावधि 'मन्त्रि-परिषद्'का राज्य-व्यवस्थामें प्रयोग प्रचलित है तथा मन्त्रिमण्डलकी प्रथा मूलरूपसे भारतीय है। अतः कतिपय पाश्चात्त्य विचारकोंका यह कथन भ्रमयुक्त प्रतीत होता है कि 'ब्रिटिश कैबिनेट' ही मन्त्रिपरिषद्की जननी है। भारतीय राजदर्शनमें मन्त्रिपरिषद्का यत्र-तत्र उल्लेख इस बातका प्रतीक है कि 'ब्रिटिश कैबिनेट'के पूर्व भी भारतवर्षमें मन्त्रिपरिषद्का गठन होता रहा है। श्रीरामचन्द्रजीका आदर्श मन्त्रिमण्डल इस बातकी सत्यताका ज्वलंत प्रमाण है।

आदर्श राज्यके प्रणेता श्रीरामका मत है कि राज्यकी विजयका मूलबिन्दु 'मन्त्र-शक्ति' है। महर्षि वाल्मीकिके शब्दोंमें—

'मन्त्रो विजयमूलं हि राज्ञां भवति राघव।'

(वा० रा० २। १००। १६)

'श्रेष्ठ मन्त्रणा ही राजाओंकी विजयका मूल कारण है।'

श्रीरामके उपरिवर्णित आशयका समर्थन हमें समस्त भारतीय राजनीतिज्ञोंके चिन्तनमें प्राप्त होता है। भगवान् मनुका कथन है कि 'सहजमें होनेवाला कार्य भी एक पुरुषसे होना कठिन है, फिर राज्य-संचालन-जैसे महान् उत्तरदायित्वका निर्वाह अकेले राजासे होना क्या कठिन न होगा?' (मनु० ७। ५५)

महर्षि शुक्राचार्यके मतसे भी इसी बातकी पुष्टि होती है। उनके अनुसार तो 'राज्यकी अभिवृद्धि चाहनेवाले नरेशके लिये उचित है कि वह सहायताके लिये श्रेष्ठ मन्त्रियोंको चुन ले, अन्यथा राज्यका पतन निश्चित ही है।' (शुक्रनीतिसार २। ८१)

अर्थशास्त्रके प्रवक्ता आचार्य चाणक्यका अभिमत है कि 'जिस प्रकार एक चक्रसे रथ नहीं चल सकता, उसी प्रकार बिना मन्त्रियोंकी सहायताके अकेले राजासे राज्य नहीं चल सकता।' (अर्थ० १। ३)

राजनीतिके प्रकाण्ड पण्डित रावणने भी इस सत्यको स्वीकार करते हुए अपनी मन्त्रिपरिषद्के समक्ष निम्न भाव अभिव्यक्त किये हैं—

'मन्त्रमूलं च विजयं प्रवदन्ति मनस्विनः।'

(वा० रा० ६। ६। ५)

'मनीषियोंका कथन है कि विजयका मूल कारण मन्त्रियोंकी दी हुई मन्त्रणा ही है।'

मन्त्रियोंका महत्त्व

रामायणके अनुशीलनसे ज्ञात होता है कि रावणकी पराजय और श्रीरामचन्द्रजीकी विजयका एक मुख्य कारण मन्त्रणा थी। इसी कारण प्राचीनकालसे ही भारतीय राजदर्शनके अन्तर्गत मन्त्रियोंका महत्त्व स्वीकार किया जाता रहा है। समस्त राजचिन्तकोंका मन्त्रिमण्डलसम्बन्धी परामर्श न केवल राजाके लिये ही सहायकके रूपमें बताया गया है, अपितु वह प्रजाकी निरंकुश शासकोंसे रक्षाका भी एक शस्त्रके रूपमें साधन-प्रयोग चित्रित किया गया है। श्रीरामके राजदर्शनके अन्तर्गत मन्त्रिपरिषद्के गठन, मन्त्रणाविधि, मन्त्रियोंकी योग्यता, कार्य-प्रणाली आदिकी ओर भी विशेष ध्यान देनेका आग्रह द्रष्टव्य है। श्रीरामचन्द्रजीने चित्रकूटकी राजसभामें अपने अनुज भरतजीको राजनीतिका उपदेश देते हुए कहा था—'श्रेष्ठ मन्त्रणा ही राज्यकी समृद्धि और राज्यके उत्कर्षका प्रधान साधन होती है। श्रेष्ठ मन्त्रणाकी सफलता उसकी गोपनीयतापर निर्भर होती है। अतः श्रेष्ठ मन्त्रियोंका यह कर्तव्य है कि वे निश्चित किये गये मन्त्रोंको सर्वथा गुप्त रखें। किसी भी मन्त्रकी गोपनीयता दो-से-चार कानतक ही सुरक्षित रह सकती है—छः कानोंमें पहुँचनेपर उसकी गोपनीयता भङ्ग होनेकी सम्भावना रहती है। अतः तुम किसी गूढ़ कार्यपर अकेले ही तो विचार नहीं करते? अथवा बहुत-से लोगोंसे एक साथ बैठकर तो गुप्त मन्त्रणा नहीं करते? कहीं ऐसा तो नहीं होता कि तुम्हारी निश्चित की गयी मन्त्रणा फूटकर शत्रुके राज्यतक फैल जाती हो? तुम्हारे सब कार्य पूरे हो जानेपर ही अथवा पूरे होनेके समीप पहुँचनेपर ही दूसरे राजाओंको ज्ञात होते हैं न? कहीं ऐसा तो नहीं होता कि तुम्हारे भावी कार्यक्रम वे पहले ही जान लेते हों?' (वा० रा० २। १००। १६—२०)

उपरिवर्णित प्रसङ्गमें श्रीरामचन्द्रजीने राजनीतिके मर्म-

मन्त्र-शक्तिकी गोपनीयताकी ओर भरतजीका ध्यान आकर्षित किया है। अतः मन्त्रकी गोपनीयता ही राजनीतिका सार है।

मन्त्रिपरिषद्का गठन करते समय रखने-योग्य सावधानियाँ

श्रीरामने राजाओंको मन्त्रिपरिषद्के गठनहेतु परामर्श देते समय कतिपय तथ्योंको दृष्टिमें रखनेका सुझाव भी दिया है। उनके अनुसार नीतिशास्त्रके ज्ञाता पुरुषोंको ही मन्त्रिपद दिया जाना उचित है। अपने इस कथनकी पुष्टिमें उन्होंने नीतिज्ञ पुरुषोंके मतोद्धरणका आश्रय लेते हुए कहा है—

एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दक्षो विचक्षणः।
राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम्॥
(वा० रा० २। १००। २४)

'यदि एक भी मन्त्री मेधावी, शूरवीर, चतुर और नीतिज्ञ हो तो वह राजा या राजकुमारको बहुत बड़ी सम्पत्तिकी प्राप्ति करा सकता है।'

श्रीरामचन्द्रजीका यह कथन भी ध्यान देनेयोग्य है कि 'राजाओं अथवा राजपुत्रों या आधुनिक राज्याधिकारियोंको सहस्रों मूर्खोंके बदले एक ही विद्वान् विषम परिस्थितिमें अर्थकी प्राप्ति और उनकी विपद्से निवृत्ति करा सकता है, जब कि सहस्रों मूर्खोंसे संकटापन्न स्थितिमें कुछ भी सहायता नहीं प्राप्त होगी।'

सहस्राण्यपि मूर्खाणां यद्युपास्ते महीपतिः।
अथवाप्ययुतान्येव नास्ति तेषु सहायता॥
(वा० रा० २। १००। २३)

इससे यह सिद्ध होता है कि मन्त्रिमण्डल भले ही छोटा हो, किंतु प्रतिभा-सम्पन्न, नीतिज्ञ, चतुर एवं कार्यकुशल विद्वानों तथा जितेन्द्रिय पुरुषोंसे उसका सज्जित होना श्रेयस्कर होगा। श्रीरामके इस सारगर्भित मतकी पुष्टि सुग्रीवकी विपन्नावस्थासे की जा सकती है, जिसमें वे हनुमान्‌जी-जैसे नीतिज्ञ और मन्त्रज्ञ सचिवशिरोमणिकी सहायतासे ही पुनः किष्किन्धाका राज्यवैभव, पत्नी आदि प्राप्तकर सम्पन्न बन सके थे। अस्तु, श्रेष्ठ मन्त्रियोंकी उत्तम मन्त्रणा विपत्तिसे मुक्ति और सम्पत्ति तथा समृद्धि दिलानेमें सहायक सिद्ध होती है। अतएव मन्त्रिमण्डलकी श्रेष्ठता ही राज्यकी सफलताका प्रमुख साधन होती है।

मन्त्रियोंकी योग्यता

श्रीरामचन्द्रजीने मन्त्रियोंकी योग्यताका भी निर्देश किया है। उनके मतानुसार मनुष्य तीन कोटिके होते हैं— उत्तम, मध्यम और अधम। अतः उत्तम प्रकृतिके मन्त्रियोंको उच्च और मध्य श्रेणीवालोंको मध्यम कार्य तथा अधम पुरुषोंको उनके योग्यतानुसार कार्य सौंपे जाने चाहिये। मन्त्रिपद देनेके सम्बन्धमें श्रीरामका स्पष्ट निर्देश है कि घूसखोर, छल-छिद्रयुक्त अधम पुरुषोंको मन्त्रणाके कार्यसे सदैव दूर रखा जाय; क्योंकि ऐसे व्यक्तियोंके संसर्गसे राज्यमें भ्रष्टाचारिता या रिश्वतखोरीका सदैव भय बना रहेगा। इसी आशयसे श्रीरामने भरतको कहा था—

'*तुमने ऐसे व्यक्तियोंको ही अपने राज्यमें मन्त्री* बनाया है न, जो घूस न लेते हों, निश्छल प्रकृतिके हों, तथा जिनके आचरणकी शुद्धता बाप-दादाके समयसे देख ली गयी हो। जो बाहर-भीतरसे पवित्र एवं श्रेष्ठ हों, ऐसे अमात्योंको ही तुम उत्तम कार्योंमें नियुक्त करते हो न?'
(वा० रा० २। १००। २६)

यदि अयोग्य व्यक्तियोंको मन्त्रिपदपर नियुक्त कर दिया जाता है तो राज्यकी प्रजा न केवल मन्त्रियोंका ही, अपितु राजाका भी अनादर करने लगती है। इसी कारण मन्त्रियोंमें पवित्रता, विद्वत्ता, कार्य कुशलता, नीतिज्ञता और राजभक्ति होना अत्यावश्यक माना गया है। महर्षि वाल्मीकिने इस बातका भी संकेत दिया है कि यदि कोई अयोग्य, लोभी और विदेशी अथवा स्वदेशके प्रति अनिष्ठा रखनेवाला व्यक्ति मन्त्रिमण्डलमें प्रवेश पा जाता है तो संकटकालीन अवस्थामें वह शत्रु-शिविरमें प्रलोभनद्वारा जा सकता है। नीतिज्ञ कुम्भकर्णने रावणको इसी आशयकी सीख करते हुए कहा था कि 'तुम्हारे समस्त मन्त्री मुझे मित्रमुख-शत्रु प्रतीत होते हैं; क्योंकि वे धृष्टतावश अहितकर बातको हितकारी मान रहे हैं। अतः उन्हें मन्त्रणाकार्यसे मुक्त कर देना चाहिये; क्योंकि वे कार्य बिगाड़नेवाले होते हैं।' (वा० रा० ६। ६३। १४—१८)

अतः मन्त्रिपरिषद्के सदस्योंका स्वदेशी होनेके साथ-साथ स्वदेशानुरागी होना भी जरूरी है। मन्त्रियोंमें राजभक्ति तथा निष्ठा ऐसी होनी चाहिये कि आवश्यकता पड़नेपर वे अपने राष्ट्र अथवा स्वामीकी रक्षाके लिये आत्मोत्सर्ग भी कर सकें।

गुण-विवेचन

श्रीरामने भरतको कहा था—'तात ! तुमने अपने ही समान शूरवीर, शास्त्रज्ञ, जितेन्द्रिय, कुलीन तथा बाहरी चेष्टाओंसे ही मनकी बातको समझ लेनेवाले सुयोग्य व्यक्तिको ही मन्त्रिपद दिया है न ?' (वा० रा० २ । १०० । १५)

राजनीतिज्ञ श्रीरामने यहाँ इस बातका संकेत किया है कि ऐसा व्यक्ति ही मन्त्रिपदके योग्य होता है, जो उपरिवर्णित समस्त योग्यताओंसे युक्त हो । श्रीरामचन्द्रजीने मन्त्रिमण्डलके सदस्योंमें शूरवीरताको एक कसौटी माना है, यद्यपि आधुनिक युगमें इस तथ्यकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता—यहाँतक कि अस्त्र-शस्त्रके संचालनके ज्ञानसे शून्य व्यक्तिको भी इस देशके रक्षा-विभागका मन्त्री बना दिया जाता है । किंतु हमारे पुराने राजदर्शनमें मन्त्रियोंमें पराक्रम या शूरवीरताका तत्त्व जरूरी था; क्योंकि सैन्य-व्यवस्था तथा सैनिकोंमें जोश लानेके लिये राजा तथा मन्त्री भी युद्धस्थलमें जाते थे । यदि प्रतिरक्षाका उत्तरदायित्व निभानेवाले व्यक्तिको युद्धसम्बन्धी ज्ञान न हो तो प्रतिरक्षा-विभाग एक प्रकारका उपहास ही सिद्ध होगा । मन्त्रियोंका शास्त्रज्ञ तथा नीतिज्ञ होना भी आवश्यक माना जाता है; क्योंकि मन्त्रणा-कार्य अत्यन्त गूढ होता है, जिसमें प्रत्युत्पन्नमतित्व, अनुभव, कार्यकुशलता आदिका तो अत्यन्त महत्त्व होता है । नीति-निर्धारण तो आजकल भी मन्त्रियोंका प्रधान कार्य है । अतः दूरदर्शिताके अभावसे अथवा नीतिकी अल्पज्ञतासे नीति-निर्धारण-कार्यमें त्रुटियोंकी सम्भावना होगी । जितेन्द्रियता तो मन्त्रियोंके लिये सर्वाधिक महत्त्व रखती है; कारण कि सामान्य नागरिक राजपुरुषोंके आचरणोंसे प्रेरित होकर प्रायः अपने आचरणको निर्धारित करते हैं । कहा भी गया है—'यथा राजा तथा प्रजाः ।'

वर्तमान युगमें तो राजाके स्थानपर मन्त्रियोंके आचरणसे ही प्रायः सबसे अधिक नागरिकगण प्रभावित होते हैं । प्रजातन्त्रमें, विशेषकर संसदीय व्यवस्थामें तो राज्यकी व्यावहारिक दृष्टिसे मन्त्री ही सर्वेसर्वा होते हैं । यदि राजपुरुष अथवा मन्त्रीगण सत्यवक्ता, ईमानदार एवं नीर-क्षीर-विवेकी होते हैं तथा अपनी राष्ट्रभक्तिका परिचय देते हैं तो प्रजापर इनका असाधारण प्रभाव निश्चित रूपसे ही पड़ता है । यदि मन्त्रियोंमें कोई कमी अथवा चारित्रिक विशेषताओंमें त्रुटि होती है तो प्रजा भी प्रायः उन-उन दोषोंसे प्रभावित हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं । इसी कारण भारतीय राज-दर्शनके अन्तर्गत चारित्रिक विशेषताओंका विशेष महत्त्व बताया गया है । मन्त्रियोंका उत्तम, कुलीन परिवार-का होना भी इसी कारणसे आवश्यक माना गया है । अन्तिम बात जो कही गयी है, वह है—उनका मनो-वैज्ञानिक होना । यदि मन्त्री मनोवैज्ञानिक नहीं है तो वह सद्भावनाके कार्यमें अक्षम माना जायगा । महाराज दशरथके सभी मन्त्री बड़े मनोवैज्ञानिक थे । वे मानवके मुख, उसके हाव-भाव, बाह्य तथा आन्तरिक चेष्टाओंसे ही उसको पहचान जाते थे तथा उसके मन्तव्यका पता लगा लेते थे । अस्तु, मन्त्रीमें इस योग्यताका आवश्यक माना जाना उचित ही कहा जा सकता है ।

रावणके पतनका कारण

राजनीतिज्ञ आदिकवि महर्षि वाल्मीकिके काव्य-ग्रन्थ 'रामायण'के अनुशीलनसे ज्ञात होता है कि श्रीरामकी विजय और रावणकी पराजयका मूल कारण उनके मन्त्रियोंकी दी गयी मन्त्रणा ही थी । महर्षि व्यास एवं आचार्य कौटल्य-प्रभृति मनीषियोंने महर्षि वाल्मीकिके इस आशयको स्वीकार किया है कि मन्त्रियोंमें विशेष योग्यताका होना परम आवश्यक है । जिस मन्त्रीमें जितनी अयोग्यता अथवा त्रुटियाँ होंगी, राज्यमें भी उसी प्रकारके दोष अथवा कमियाँ होंगी ही । इस हेतु रावणके मन्त्रिमण्डलकी समीक्षामें महर्षि वाल्मीकिने स्पष्ट निर्देश किया है कि "रावणके पतनके लिये उसके मन्त्री ही अधिक उत्तरदायी हैं । कारण; हनुमान्‌जीके द्वारा किये हुए लङ्कादहनको देखकर उसने अपने मन्त्रियोंको कहा था—'आपलोग यह जानते ही हैं कि एक ही व्यक्तिने आकर हमारे राज्यमें कितना भारी उत्पात मचाया है । अतः अब आपलोग मुझे ऐसी मन्त्रणा दें, जिससे राज्य, सेना, नगर एवं नगरवासियोंका—सबका कल्याण हो ।'' रावणके ही शब्दोंमें—

'हितं पुरे च सैन्ये च सर्वं सम्मन्त्र्यतां मम ।'

(वा० रा० ६ । ६ । १८)

अर्थात् रावणने अपने मन्त्रिमण्डलसे नगर, सेना और नगर-निवासी—सबके लिये परिणाममें हितकारी सलाह चाही थी । किंतु विभीषणके अतिरिक्त सबने चाटुकारिता ही परिचय दिया, जिसके कारण रावण युद्धोन्मुख हुआ और अन्तमें सबका

पतन हुआ । विभीषणने उसी अवसरपर रावणके विरोधके बावजूद भी मन्त्रियोंकी कड़ी आलोचना करते हुए युद्ध न करनेका परामर्श दिया था; किंतु अल्पमतके कारण उसकी हितभरी सलाह एक प्रकारसे नक्कारखानेमें तूतीकी आवाज सिद्ध हुई और रावणके अयोग्य, मूर्ख एवं अनीतिज्ञ मन्त्रियोंने राक्षसवंशके विनाशका मार्ग उसको मन्त्रणाके रूपमें बता दिया। रामके साथ विग्रह और सीताहरणको एक मूर्खतापूर्ण कार्य बताते हुए मारीचने रावणसे स्पष्ट कहा था—'जो तुम्हें इस प्रकारके उद्योगकी सलाह दे रहा है, वह तुम्हारा कोई कमजोर शत्रु है, जो तुम्हारे विनाशके लिये तुम्हें एक बड़े शत्रुसे उलझाकर समस्त राक्षसवंशका सींग काट लेना चाहता है ! तुम्हें जो ऐसी मन्त्रणा दे रहा है, वह मन्त्री तो वधके योग्य है ।' (वा० रा० ३ । ४१ । ६)

श्रीरामचरितमानसके रचयिता गोस्वामी तुलसीदासजीने इस सम्बन्धमें उचित ही लिखा है कि 'यदि मन्त्री भयवश उचित मन्त्रणा न दे तो राज्यका विनाश वैसे ही हो जाता है, जैसे चिकित्सक रोगीकी इच्छानुसार अथवा आचार्य विद्यार्थीके कहे अनुसार चलने लगे तो उनका क्रमशः पतन होने लगता है ।'

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास ॥
(श्रीरामचरितमानस ५ । ३७)

राजनीतिज्ञ आदिकवि वाल्मीकिजीने अपने राजदर्शनके अन्तर्गत दुर्लभ मन्त्रणाका संकेत करते हुए एक स्थानपर लिखा है कि—'सदा प्रिय लगनेवाली मीठी-मीठी बातें कहनेवाले तो सुगमतासे मिल सकते हैं, किंतु जो सुननेमें अप्रिय, किंतु परिणाममें हितकर हो, ऐसी बात कहने और सुननेवाले दुर्लभ होते हैं ।'

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥
(वा० रा० ६ । १६ । २१)

बुरे मन्त्रियोंका चित्रण करते हुए रामायणमें महर्षि वाल्मीकिजीने कहा है कि 'जो बुरे मन्त्री होते हैं, वे साम-दान-भेदादिका शत्रुद्वारा प्रयुक्त किये जानेपर अपने स्वामीका विनाश करनेमें भी संकोच नहीं करते । अतः राज्याधिकारियोंको चाहिये कि वे ऐसे व्यक्तियोंको, जो लोभादिके कारण शत्रुओंसे मिल गये हों और अपने मित्र-से बने रहकर वास्तवमें शत्रुका काम करते हों, उन्हें तुरंत पदच्युत कर देना चाहिये ।' (वा० रा० ६ । ६३ । १७-१८)

मन्त्रणाविधि

श्रीरामके मतानुसार विजय चाहनेवाले राजाको चाहिये कि वह किसी भी गूढ़ विषयपर अकेला ही निर्णय न करे । उसे सावधानीपूर्वक किसी भी महत्त्वपूर्ण विषयपर मन्त्रणा करते समय बहुत-से लोगोंके साथ एक साथ बैठकर भी मन्त्रणा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि ऐसी स्थितिमें मन्त्रणा अवश्य प्रकट हो जाया करती है । गुप्त मन्त्रणाके शत्रु-शिविरमें पहुँचनेपर बड़ा अनर्थकारी परिणाम होनेका भय बना रहता है । अधिक-से-अधिक तीन या चार मन्त्रियोंके साथ एकत्र बैठकर अथवा अलग-अलग मिलकर सलाह करनी चाहिये । (वा० रा० २ । १०० । ७१)

लोग तर्क, अनुमान, युक्तियों आदिसे मन्त्रणाको न ताड़ सकें, इस बातकी सावधानी मन्त्रणा करते समय रखी जानी चाहिये । श्रेष्ठ मन्त्रणा तो कार्यके पूर्ण होने अथवा पूर्ण होनेके संनिकट पहुँचनेपर ही प्रकट होती है । तभी मन्त्रणाका लाभदायक परिणाम प्राप्त हो सकता है ।

कार्य-विभाजन एवं मन्त्रणाके प्रकार

महर्षि वाल्मीकिके अनुसार मन्त्रियोंमें कार्यका उचित विभाजन भी किया जाना चाहिये तथा मन्त्रिमण्डलका अधिक विस्तार नहीं करना चाहिये । मन्त्रियोंके संख्यात्मक विकासके स्थानपर उन्हें गुणात्मक विकास रुचिकर प्रतीत होता है । राजनीतिके ज्ञाता रावणको भी अभिमत है कि "मन्त्रियोंको उनके योग्यतानुसार कार्य दिया जाना चाहिये । उनके अनुसार मन्त्रणा भी तीन प्रकारकी होती है । जिसमें शास्त्रोक्त दृष्टिसे सब मन्त्री मिलकर एकमत होकर प्रवृत्त होते हैं, उसे 'उत्तम मन्त्र' कहते हैं । जहाँपर प्रारम्भमें कई प्रकारके मतभेद होनेपर भी अन्तमें समस्त मन्त्रियोंका कर्तव्य-विषयक निर्णय एक हो जाता है, वह 'मध्यम मन्त्र' कहलाता है और जहाँ भिन्न-भिन्न बुद्धियोंका आश्रय लेकर सब ओरसे स्पर्द्धापूर्वक भाषण किया जाय और एकमत होनेपर भी जिससे कल्याणकी सम्भावना न हो, वह मन्त्र निश्चय ही 'अधम' कहलाता है ।" (वा० रा० ६ । ६ । १२—१४)

आदिकाव्य रामायणमें महर्षि वाल्मीकिने क्रमशः श्रीराम तथा रावणके मन्त्रिमण्डलके रूपमें आदर्श एवं अयोग्य मन्त्रिमण्डलका दिग्दर्शन कराया है । श्रीरामचन्द्रजीका मन्त्रिमण्डल विनयशील, सलज्ज, कार्य-कुशल, जितेन्द्रिय, श्रीसम्पन्न, शास्त्रविद्या एवं शस्त्रविद्याके ज्ञाता, सुदृढ़, पराक्रमी,

यशस्वी और राज्यकार्योंमें सावधान तथा राजाज्ञानुसार कार्य करनेवाले, तेजस्वी, क्षमाशील, कीर्तिमान् तथा मुस्कराकर बात करनेवाले आठ मन्त्रियोंसे युक्त था। ये सभी मन्त्री महाराज दशरथके समयसे ही कार्य करते चले आ रहे थे। उनके नाम थे—धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल और सुमन्त्र। इनके अतिरिक्त ऋषियोंमें श्रेष्ठतम वसिष्ठ और वामदेव—ये दो महर्षि राजाके माननीय पुरोहित थे। समय-समयपर सुयज्ञ, जाबालि, काश्यप, गौतम, दीर्घायु, मार्कण्डेय और विप्रवर कात्यायन भी मन्त्रणा दिया करते थे। (वा० रा० १। ७। ३—५)

श्रीरामके मन्त्रियोंकी यह विशेषता थी कि वे कभी भी काम-क्रोध अथवा स्वार्थकी वृत्तिसे प्रेरित होकर झूठ नहीं बोलते थे। स्वराष्ट्र या शत्रुराष्ट्रकी कोई भी बात उनसे छिपी नहीं रहती थी। दूसरे राजा क्या कर रहे हैं और आगे क्या करनेवाले हैं—ये सभी बातें उन्हें गुप्तचरोंद्वारा ज्ञात होती रहती थीं। वे सब व्यवहार-कुशल थे। उनके सौहार्दकी अनेक अवसरोंपर परीक्षा ली जा चुकी थी। वे मौका पड़नेपर अपने पुत्रोंको भी दण्ड देनेमें नहीं हिचकते थे। कोष तथा चतुरङ्गिणी सेनाके संग्रहमें सदा लगे रहते थे। शत्रुने भी यदि अपराध न किया हो तो उसकी हिंसा नहीं करते थे। उनमें उत्साह और शौर्य भरा रहता था। वे राजनीतिके ज्ञाता होनेके कारण सदैव सत्पुरुषोंकी रक्षा करते रहते थे। वे प्रजाको कष्ट न पहुँचाकर न्यायोचित धनसे राजकोष भरते थे। वे अपराधके अनुसार तीक्ष्ण या मधुर दण्डका प्रयोग करनेमें दक्ष थे। वे सदैव धर्ममें आस्था रखते हुए अधर्मसे बचते रहते थे। उनके पराक्रमके कारण विदेशोंमें भी उनकी ख्याति फैल चुकी थी। संधि और विग्रहके उपयोगी अवसरोंका उन्हें पूर्ण ज्ञान था। उनकी सूक्ष्म दूरदर्शिताके कारण कोसलराज्यके भीतर कहीं भी एक भी मनुष्य मिथ्यावादी, दुष्ट या लम्पट दिखायी नहीं देता था। नीतिशास्त्रमें उनकी विशेष रुचि थी तथा सदा प्रिय लगनेवाली बात वे बोला करते थे। वे राज्यके अभ्युदय-हेतु नीतिरूपी नेत्रोंसे सदैव जाग्रत् रहते थे। उनमें राजकीय मन्त्रणाको गुप्त रखनेकी पूर्ण क्षमता थी—

मन्त्रसंवरणे शक्ताः शक्ताः सूक्ष्मासु बुद्धिषु।
नीतिशास्त्रविशेषज्ञाः सततं प्रियवादिनः॥
(वा० रा० १। ७। १९)

श्रीरामचन्द्रजीके मतानुसार 'नास्तिकों तथा वेद एवं धर्मके विपरीत आचरण करनेवालोंको कदापि मन्त्रिमण्डलमें सम्मिलित नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे वास्तवमें अज्ञानी होते हुए भी अपने आपको बहुत बड़ा ज्ञानी पण्डित मानते हैं।' (वा० रा० २। १००। ३८)

प्रत्येक राष्ट्र श्रीरामचन्द्रजीके आदर्श मन्त्रिमण्डलसम्बन्धी विचारोंके आधारपर यदि अपने मन्त्रणा-कार्यका शुभारम्भ करने लग जाय तो न केवल लौकिक अभ्युदय ही, अपितु पारलौकिक अभ्युदयकी प्राप्तिमें भी सफल हो सकता है।

श्रीसीताराम-वन्दना

(वेदान्ती स्वामी श्रीरँगीलीशरणजी वेदाचार्य, काव्यतीर्थ, साहित्य-वेदान्ताचार्य, मीमांसाचार्य)

जनअभिराम राम सुख दाता।
लीला ललित कलान विधाता॥
राम समान राम, नहिं आना।
करुना बरुनालय भगवाना॥

कनक-बरन तन जनक किसोरी।
रामचंद मुख चंद चकोरी॥
अमल कमल कोमल सुकुमारी।
राम रँगीली जनक कुमारी॥

रमत जोगिजन राम चरनमें।
तारन तरन हरन भय छनमें॥
ब्रह्म सच्चिदानंद अगारी।
सरन वरेन्य राम अवतारी॥

श्रीरामकालीन गुप्तचर-व्यवस्था

[लेखक—आचार्य श्रीवकरामजी शास्त्री, एम्० ए० (हिंदी, संस्कृत) साहित्यरत्न]

रामायणके अध्ययनसे अवगत होता है कि रामायणकालीन गुप्तचर-व्यवस्था बहुत ही दृढ़ और उपयुक्त थी। आजकी स्थिति और रामायणकालीन परिस्थितिमें बहुत अन्तर था। आजकल-जैसा छल-छिद्र, राग-द्वेष, पाखण्ड उन दिनों नहीं था, किंतु राज्य-संचालनके लिये राजनीतिक व्यवस्थाएँ अपने-अपने स्थानपर समयोचित सुदृढ़ बनायी गयी थीं। उस समयकी गुप्तचर-व्यवस्था भी समयानुसार बहुत ही उत्तम थी। रामकालीन गुप्तचर-व्यवस्थाके कई रूप ज्ञात होते हैं। श्रीरामकी गुप्तचर-व्यवस्था और रावणकी गुप्तचर-व्यवस्थामें बहुत अन्तर था। श्रीरामके गुप्तचर जहाँ विद्वान् थे और सात्त्विक आचरण, आहार-व्यवहारवाले थे, वहाँ रावणके गुप्तचर कपटी—मायावी थे। रावणके गुप्तचर नाना प्रकारकी मायाका प्रयोग करके केवल धोखेबाजीका सहारा लेते रहे और रामके गुप्तचर दया, धर्म, सदाचार एवं शालीनताका व्यवहार करते हुए अपने कार्यमें लगे रहते थे।

आजकल भारतके कोने-कोनेमें, गाँव-गाँव, नगर-नगरमें पाकिस्तान और चीनके गुप्तचर जालकी भाँति छाये हुए हैं—यहाँतक कि घर-घरमें दोनों दुश्मन देशोंके गुप्तचर फैले हैं और सक्रिय हैं। ऐसे असमयमें भारतको भी अपने बचाव और अपनी सुरक्षाके लिये व्यवस्था करनी पड़ी है। जिस प्रकार आज भारतमें घुसकर पाकिस्तान और चीनके गुप्तचर भारतके विरुद्ध आचरण कर रहे हैं और भारतकी शान्ति-व्यवस्थाको बिगाड़ना चाहते हैं, उसी प्रकार श्रीरामके युगमें भी रावणके गुप्तचर सर्वत्र फैलकर अपना काम करते रहे, यह बात बहुत ही विचित्र ढंगसे आदिकाव्य वाल्मीकि-रामायणमें लिखी है।

रावण जब सीताको चुराकर लङ्कापुरीमें ले गया, तब उसने सीताको अशोकवाटिकामें छिपा दिया। रावण बहुत बड़ा राजनीतिज्ञ था। उसको विश्वास था कि श्रीराम बदला लेनेके लिये सीताका पता लगाकर लङ्कापर चढ़ाई करेंगे। अतः उसने राजनीतिक व्यवस्थाके अनुसार अपने कई अनुभवी गुप्तचरोंको श्रीरामके पीछे लगा दिया। अपने अनुभवी गुप्तचरोंको रावणने भलीभाँति समझाया, उनके बल और साहसकी प्रशंसा की और सावधान करते हुए कहा—'तुमलोग जनस्थान (भारत) में जाकर बहुत ही सावधानी बरतना और सर्वदा श्रीरामका समाचार लेते रहना। मैंने अनेकों युद्धोंमें तुम्हारी बहादुरी देखी है। अतः मैं तुमको जनस्थानमें नियुक्त कर रहा हूँ।'

> जनस्थाने वसद्भिस्तु भवद्भी राममाश्रिता।
> प्रवृत्तिरुपनेतव्या किं करोतीति तत्त्वतः॥
> युष्माकं तु बलं ज्ञातं बहुशो रणमूर्धनि।
> अतश्चास्मिञ्जनस्थाने मया यूयं निवेशिताः॥
>
> (वा० रा० ३। ५४। २६, २८)

राजा जनकजी अपने शासनकालके बहुत बड़े ज्ञानी एवं दार्शनिक विद्वान् राजा थे। यह सब होते हुए वे बहुत बड़े राजनीतिज्ञ भी थे। राजा दशरथने जब कैकेयीको प्रसन्न करनेके लिये उसे दो 'वरदान' प्रदान कर दिये, तब उसने एक वरदान श्रीरामके लिये वनवास और दूसरेमें भरतलालके लिये अयोध्याका राज्य माँग लिया और रामवियोगसे दशरथजीका प्राणान्त हो गया। भरतलालजी अपने ननिहालसे बुलाये गये। अयोध्याकी इन दुःखद घटनाओंका राजा जनकको भी पता लगा। राजा जनकने अपनी राजनीतिकताका परिचय दिया और उन्होंने अपने चार गुप्तचरोंको अयोध्या भेज दिया। जनकजीके गुप्तचर केवल श्रीभरतलालजीके मनोभावोंको और उनके क्रिया-कलापोंको ही जाननेके लिये भेजे गये। वे चारों गुप्तचर अयोध्या पहुँचे। उन्होंने भरतजीके मनोभावोंका अध्ययन किया। राजा जनकके चारों दूत (गुप्तचर) भरतजीकी गतिविधिका ठीक पता लेकर तिरहुत वापस चले गये। उन दूतोंको भरतजीके मनमें किसी प्रकारके कपटका भान नहीं हुआ था—

> गए अवध चर भरत गति बूझि देखि करतूति।
> चले चित्रकूटहि भरतु चार चले तेरहूति॥
> दूतन्ह आइ भरत कइ करनी। जनक समाज जथामति बरनी॥
>
> (मानस २। २७१; २७१।१)

श्रीरामकी सेनामें (वानरी सेनामें) भी कई गुप्तचर थे, जो मायासे रहित थे। श्रीरामके अङ्गरक्षक और समर्थ सेनापति हनुमान्‌जी भी महान् गुप्तचर थे,

गुप्तचरोंके अगुआ थे। हनुमान्‌जी अपना छोटा-बड़ा—सब प्रकारका रूप बना लेते थे। सीताको जब यह संदेह हुआ कि यह बंदर भयानक और विशालकाय राक्षसोंके सामने क्या कर सकता है, तब हनुमान्‌जीको अपना बड़ा रूप दिखाना पड़ा था—

मोरें हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा॥
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥
(वही, ५। १५। ४)

हनुमान्‌जीके दौत्यकर्मकी सफलतापर देवोंको भी संदेह हो गया था। देवोंके आदेशसे ही सुरसा आगे पहुँचकर हनुमान्‌जीके बल और बुद्धिका 'थाह' लगाने लगी। हनुमान्‌जी बल और बुद्धि, दोनोंमें कुशल थे, पारंगत थे। सुरसाने अपना मुख फैलाना प्रारम्भ किया तो बढ़ाती ही चली गयी। हनुमान्‌जी अपने शरीरको उसका दूना करते गये। अन्तमें जब सुरसाने सौ योजन चौड़ा मुख फैलाया, तब हनुमान्‌जीने अति सूक्ष्मरूप धारण कर लिया—

सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा॥
(वही, ५। १। ५)

अब सुरसाको हनुमान्‌जीकी बल-बुद्धिका पता चल गया। उसने 'प्रमाण-पत्र' देकर कहा—

मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा॥
(वही, ५। १। ६)

और प्रमाणके साथ ही आशीर्वाद देते हुए सुरसाने कहा—

राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान॥
(वही, ५। २)

गुप्तचर हनुमान्‌को लङ्कामें प्रवेश करना था। किंतु लङ्कामें प्रवेश करना सरल नहीं था। लङ्काके फाटकपर एक राक्षसी रक्षिकाके रूपमें अवस्थित थी। उसका काम लङ्कामें प्रवेश करनेवालों (चोरों या गुप्तचरों) का पता लगाना था। विचित्र गुप्तचरी थी वह राक्षसी। उसने हनुमान्‌जीको 'मशक'-रूपमें भी पहचान लिया। हनुमान्‌जी यदि बलनिधान नहीं होते तो वहीं मारे जाते। बुद्धिके साथ उनके बलकी भी सीमा नहीं थी।

उसको शिक्षा देकर हनुमान्‌जी आगे बढ़े। लङ्कामें पहुँचते ही उन्हें जब रावणके गुप्तचरोंका समूह दिखलायी पड़ा तो वे भी आश्चर्यचकित हुए। हनुमान्‌जीने निस्तब्ध निशामें लङ्कामें प्रवेश किया। उस समय रावणके गुप्तचर सक्रिय रहकर अपना-अपना कार्य कर रहे थे। रावणको संदेह था कि श्रीरामके गुप्तचर पता लेनेके लिये लङ्कामें प्रवेश कर सकते हैं। अतः उसने गुप्तचरोंकी भी सुदृढ़ व्यवस्था कर दी थी। आदिकविने विस्तारसे रावणके गुप्तचरोंके जालका उल्लेख किया है। इसी स्थलपर अवगत होता है कि रावणके गुप्तचर संन्यासी, जटाधारी आदिका वेष बनाये लङ्कामें विचरण कर रहे थे। कोई गुप्तचर मृगचर्म, कोई गोचर्म ओढ़े था। कोई गुप्तचर 'अग्निहोत्री' बनकर हवन कर रहा था। कोई सैनिकके रूपमें पहरेपर था। रावणके गुप्तचर एक आँखवाले भी थे। कोई बौने थे, कोई नाक-कानसे हीन थे; कोई मोटा था; कोई दुर्बल था; कोई गोरा था; कोई काला था; कोई गुप्तचर कुरूप था, कोई अति सुन्दर था—

ददर्श मध्यमे गुल्मे राक्षसस्य चरान् बहून्।
दीक्षिताञ्जटिलान् मुण्डान् गोजिनाम्बरवाससः॥
दर्भमुष्टिप्रहरणानग्निकुण्डायुधांस्तथा।
कूटमुद्गरपाणींश्च दण्डायुधधरानपि॥
एकाक्षानेकवर्णांश्च लम्बोदरपयोधरान्।
करालान् भुग्नवक्त्रांश्च विकटान् वामनांस्तथा॥
(वा० रा० ५। ४। १५-१७)

विभीषण जब श्रीरामकी शरणमें पहुँचे, तब विभीषणके साथ उनके चार साथी भी श्रीरामकी शरणमें पहुँचे। विभीषणके वे चारों साथी बहुत कामके थे। वे चारों पक्के गुप्तचर थे। 'समुझइ खग खग ही कै भाषा।' (७। ६१। ४½) रावणके गुप्तचरोंका भेद विभीषणके वे चारों गुप्तचर भलीभाँति जानते थे। उनके नाम थे—अनल, शरभ, सम्पाति और प्रघस। इन चारों गुप्तचरोंने श्रीरामकी सेनामें आकर बहुत काम किया। रावणके जितने प्रख्यात गुप्तचर श्रीरामकी गतिविधि और श्रीरामकी सेनाका पता लेनेके लिये श्रीरामके पास पहुँचे, वे सभी पहचान लिये गये। उनको पकड़ लिया गया। उन्हीं चारों गुप्तचरोंने रावणके चारों फाटकोंकी लड़ाईकी योजनाका भेद दिया और श्रीरामके सैनिकोंको रावणकी चारों फाटकोंकी लड़ाई-योजनाको जानकर अपनी योजना बनानेमें सहायता मिली थी।

श्रीरामजी जब अयोध्याके राजा बने, तब उनके गुप्तचर भी सक्रिय होकर 'श्रीरामराज्य' के संचालनमें सहायक बने। श्रीरामके चार गुप्तचर केवल राजमहलके आस-पास रहकर राजघरानेके जनोंके प्रति लोकभावनाका पता लगाते रहे। उन चारोंके नाम भी रामायणमें उल्लिखित हैं। वे चारों गुप्तचर थे—(१) विजय, (२) मधुमत्त, (३) सुरज और (४) कालिय। इसके अतिरिक्त कई अन्य गुप्तचर भी थे, जो अयोध्यामें ही रहकर प्रजाके दुःख-सुखकी जानकारी रखते रहे और श्रीरामको नित्यकी सूचना देते रहे। भद्र, वक्र और सुमागध नामक गुप्तचर भी प्रमुख गुप्तचरोंमें थे। भद्र नामक गुप्तचर श्रीरामका विदूषक भी था। वह उनका बहुत मुँह-लगा था और उसीके संदेशपर श्रीरामने सीताका परित्याग किया। यह प्रसङ्ग बहुत ही मार्मिक और करुण-रससे ओतप्रोत है। अयोध्याके एक मूर्ख धोबीकी चर्चा भद्र गुप्तचरने श्रीरामको सुना दी थी। लोकरञ्जक श्रीरामने उसी सूचनापर केवल लोकापवादको लेकर सीता-जैसी सती साध्वी महानारीका परित्याग किया।

इस प्रकार रामायणके अध्ययनसे अवगत होता है कि श्रीरामके युगमें गुप्तचर-व्यवस्थाको पर्याप्त महत्त्व दिया जाता था।

श्रीरामचरित्रके चिन्तन और श्रीरामके आदर्शोंके अनुसरणसे ही देशका कल्याण सम्भव है।

(लेखक—डॉ० श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू, एम्० ए०, डी० लिट०)

आज हमारे देशकी विघटनात्मक परिस्थितिका कारण स्वार्थसिद्धिके लोभसे मर्यादाहीनताकी अति है। जैसे कोई विशाल श्याम जलधर पूर्णचन्द्रको अपने अङ्कमें छिपा ले, उसी प्रकार 'स्व'के अनन्त विस्तारके भीतर हमारा जीवन सर्वाङ्ग समा गया है। इस 'स्व'-के गौरवकी आँधी इसी शताब्दीमें मध्ययोरपमें फ्रायड-से उठी और उसने बढ़ते-बढ़ते सत्यकी ओरसे हमारी आँखें बंद कर दी। फ्रायडके 'सप्रेशन' अर्थात् दमनके सिद्धान्तानुसार इच्छाओं या भावोंके दब जानेकी अत्यन्त हानिकारक प्रतिक्रिया होती है, जो अन्तमें पुरुषके व्यक्तित्वको विकृत कर देती है। इसलिये फ्रायडके कथना-नुसार व्यक्तित्वके पूर्ण और सहज विकासके लिये एक व्यक्तिकी इच्छाओं, आशाओं और भावोंके व्यक्त करने और क्रियात्मक रूप देनेमें पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये। इसके साथ-साथ यह भी सुना गया कि यदि कोई व्यक्ति अपने व्यवहारमें दोषयुक्त है तो इसका उत्तरदायित्व उस दोषी व्यक्तिपर नहीं, बल्कि उस दूषित समाजपर है, जिसने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दीं, जिनके कारण वह व्यक्ति दोषी बना। इन विचारोंके परिणामस्वरूप शिक्षाके क्षेत्रमें स्वतन्त्रताका जय-जयकार मच गया। बच्चोंको डाँटना-पीटना और उनके व्यवहारपर प्रतिबन्ध लगाना बंद हो गया। कारागारके क्षेत्रमें बंदियोंको मारना, उनपर कठोरता करना बंद होने लगा और पुराने प्रतिबन्ध ढीले पड़ गये। गृह और परिवारके क्षेत्रमें बच्चोंपरसे सब प्रकारका निषेध छूट गया, उनपर रोक लगानेकी मनाही हो गयी, उनको स्वतन्त्रता दे दी गयी। गृहकी इस स्वतन्त्रताने आज 'परमिसिव सोसाइटी'का रूप ले लिया है, जिस समाजमें कोई प्रतिबन्ध है ही नहीं, बस, छूट-ही-छूट है—रहन-सहनमें छूट, खाने-पीने, घूमने-फिरनेमें छूट, पुरुष-स्त्रीके रति-सम्बन्धी व्यवहारमें छूट। आजकलके इस सभ्य और प्रगतिशील कहलानेवाले 'परमिसिव'—छूट-प्रधान जीवनमें और हमारे भारतीय परम्परा-बद्ध जीवनमें यह अन्तर है कि आजकलका सभ्य-समाज मर्यादाको विकासकी बाधा मानता है; परंतु हमारा भारतीय सामाजिक जीवन मर्यादाप्रधान है। जीवनमें प्रतिबन्धकी, मर्यादाकी परमावश्यकता है। जबतक सरिता मर्यादामें रहती है, अपने दोनों किनारोंके बन्धनकी मान्यताको स्वीकार करती है, वह सुन्दर लगती है। परंतु जब वह मर्यादा तोड़कर स्वतन्त्र हो जाती है, तब वह जल-प्रकोपका कारण बन जाती है, दुःखदायी हो जाती है, बिगड़ जाती है। परंतु आजकलका प्रगति-शील कहलानेवाला समाज कोई सीमा-मर्यादा नहीं मानता, कोई 'अथॉरिटी'—अधिकार नहीं मानता, कोई नियम नहीं मानता, किसीके प्रति कोई धर्म नहीं मानता। इस समाजकी उच्छृङ्खलताके साथ समाजकी 'परमिसिव-नेस'—छूटकी अतिके योगदानसे एक ऐसे दृष्टिकोणका

जन्म हुआ है, जिसमें व्यक्तिका 'स्व' सर्वोपरि है और इस 'स्व'के अर्थ और उद्देश्यकी ही प्रमुखता है। अतएव आजकल जो अपनेको बहुत अधिक आधुनिक और प्रगतिशील मानते हैं, उनके लिये अपने 'स्व'-की रक्षासे अधिक कोई वस्तु मूल्य नहीं रखती। ऊँचे-से-ऊँचे सिद्धान्तका मूल्य तभीतक है, जबतक वह 'स्व'के हितकी पुष्टि करे; सत्यकी उतनी ही आवश्यकता है, जहाँतक वह 'स्व'के अर्थमें सहायक हो; देशप्रेम उतना ही उचित है, जहाँतक उसके द्वारा 'स्व'का लाभ उन्नति कर सके। अगर 'स्व'के अर्थका हनन होता हो तो ऐसा सिद्धान्त, ऐसा सत्य, ऐसा देशप्रेम त्याज्य है। जबसे हमें स्वतन्त्रता मिली है, तबसे जन-जीवनमें 'स्व'के पक्षने विशेष बल ग्रहण कर लिया है और इस 'स्व'के प्रेमने वर्तमान विघटनात्मक परिस्थिति उत्पन्न कर दी है, जिसके कारण सुखके स्थानपर हम दुःखका भोग कर रहे हैं।

परंतु जिस 'स्व'को आज इतना ऊँचा स्थान दिया गया है, उसका विचार हमारी सांस्कृतिक परम्परामें हीन अथवा नगण्य है। जो हमारे भीतर स्थित है, जो हमारा आत्मा है, जिसके बिना हमारा अस्तित्व असम्भव है, उस 'हम'से अभिन्न 'स्वान्तःस्थमीश्वरम्' के लिये भी वेद 'स्व' नहीं प्रयोग करते। उसे वे 'तत्' अर्थात् 'वह' कहते हैं। किसीके लिये 'मैं' या 'मेरा' प्रयोग करना वेदादेशानुसार असत्य है; क्योंकि—

'मैं अरु मोर तोर तैं माया।' (मानस ३। १४। ३)

—'मैं' या 'मेरा' कुछ है ही नहीं। जो कुछ है, वह 'तत्' है, 'वह' है। 'मैं'का या 'स्व'-का विचार रखना, 'मेरे हित' या 'स्व-हित'का ध्यान रखना माया है, भ्रम है, मोह है, अज्ञान है, मूढ़ता है।

श्रीमाँ दुर्गाके भक्त जानते हैं कि माँ भगवती सिंहवाहिनी हैं। श्रीमाँ भगवतीको सिंह बहुत प्रिय है। सिंह हिंसक पशु है। जब हम अपने 'स्व'-की पूर्णरूपसे हिंसा कर देते हैं, उसका सर्वनाश कर देते हैं, तब हम सिंहके गुण, उसके धर्म और उसके स्तरको प्राप्त होते हैं। तभी हम श्रीमाँ दुर्गाके प्रिय वाहन बननेयोग्य होते हैं। इसी भारतीय विचार-परम्पराकी पुष्टि हमें करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रसे मिलती है।

जिस 'स्व'के अनन्त विकासकी महिमा फ्रायडके द्वारा आँधीके समान फूटी, भारतीय संस्कृतिने उस 'स्व'के नियन्त्रणकी आवश्यकतापर बल दिया। हमारे पूर्वजोंने एक छोटा-सा, परंतु बहुत उपयोगी सिद्धान्त अपने दैनिक जीवनको सुखद बनानेके लिये प्रतिपादित किया था। वह यह था कि अतिको सर्वत्र वर्जित करना चाहिये—'अति सर्वत्र वर्जयेत्।' सामान्य सांसारिक जीवनमें सुन्दरता-तककी अति दुःखदायी हो जाती है और भलाईकी अति भी सुखप्रद नहीं होती। इस सिद्धान्तकी अवहेलना करनेमें विदेशोंमें छूटकी अतिके कारण एक प्रतिबन्ध-शून्य समाज—परमिसिव सोसाइटी—का निर्माण हुआ, जो सुखकी खोज करते-करते 'बोरडम'के—ऊबनेके अनन्त खारे समुद्रमें जा गिरा। 'हिप्पी'-वाद इस सर्वाङ्ग जीवनसे सर्वाङ्ग ऊबनेकी प्रतिक्रिया है। मर्यादाका उल्लङ्घन सुखद नहीं होता—न अपने लिये न औरोंके लिये। 'स्व'का विकास उसी सीमातक वाञ्छनीय है, जहाँतक वह समाजके हितके प्रतिकूल न हो; अतएव 'स्व'-को अनन्त छूट नहीं मिलनी चाहिये। उसपर नियम लागू करना, उसकी सीमा निर्धारित करना आवश्यक है। मर्यादामें रहे बिना हमारा 'स्व' नियन्त्रित नहीं रहता।

जिन प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी भक्तवर तुलसीदासजीने करुणानिधानके रूपमें आराधना की, उन श्रीसीतापतिके महर्षि वाल्मीकिने मर्यादापुरुषोत्तमके रूपमें दर्शन किये। सरकार श्रीरामचन्द्रजीका जीवनभर मर्यादा-निर्वाह करना उनके चरित्रकी विलक्षणता है। जब वे विद्याध्ययन करने गये, तब उन्होंने स्वच्छन्दतासे व्यवहार नहीं किया। उन्होंने यह नहीं सोचा कि 'मैं अनन्तलोकनायक हूँ। मुझे एक मानव—यह गुरु—क्या शिक्षा दे सकेगा? इससे शिक्षा पानेका नाटक करनेमें मेरा समय नष्ट होगा। अधिक उचित तो यह होता कि मैं इस गुरुको नवीनतम आधुनिक शिक्षा-पद्धतिके नियम सिखाऊँ।' प्रभुने ऐसा नहीं किया।

'जाकी सहज स्वास श्रुति चारी।' (वही, १। २०३। २३)

—उन करुणानिधान प्रभु श्रीरघुनाथजीने गुरुकी सादर सेवा की और विनयपूर्वक विद्या ग्रहण की—उसी प्रकार, जैसे किसी शिष्ट शिष्यको ग्रहण करना उचित था। उन्होंने आदर्श शिष्यकी मर्यादा पाली। उन्होंने गुरुके घरमें रहकर

अपने 'स्व'को नियन्त्रित रखा। असामान्य होते हुए भी वे मर्यादापालन-हेतु सामान्य बने रहे। इसी प्रकार राजरस-भङ्ग-प्रसङ्गमें करुणामय प्रभुने यह नहीं कहा कि "युवराज-पद 'मेरा' है। यह 'मेरा' जन्मसिद्ध अधिकार है। वृद्ध पिताजीको 'मेरे' जन्मसिद्ध अधिकारके हरणका अधिकार नहीं है। युवराज-पदका 'मेरा' अपना व्यक्तिगत प्रश्न है, इत्यादि।" प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने 'स्व'हितका विचार नहीं किया, न 'स्व'के अर्थका विचार किया। उन्होंने कुल-हितका विचार अपने सामने रखा, पर-हितका विचार किया, मर्यादा रखी। सरकार श्रीरघुनाथजीने इसी प्रकार सागर-तरण-प्रसङ्गमें मर्यादाकी रक्षा की।

कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। विनय करिअ सागर सन जाई॥

प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि कहिहि उपाय बिचारि।
बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि॥
(वही, ५। ४९। ४; ५०)

प्रभुका एक ही बाण 'कोटि सिंधु सोषण'में समर्थ था। फिर भी उन्होंने मर्यादापालन श्रेष्ठ समझा। उन्होंने यह नहीं कहा कि "मर्यादाको हटाओ। यह 'मेरी' प्रतिष्ठाका प्रश्न है। सागर पार करना 'मेरा' अधिकार है।" अपने 'स्व'को नियन्त्रणमें रखकर उन्होंने परहितके लिये, सागरके हितके लिये, मर्यादा-पालन किया।

करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको सदा इसका विचार रहता था कि दूसरेका भला हो, लोक-कल्याण हो। वे इसीको सर्वश्रेष्ठ कर्म मानते थे। यही श्रेष्ठ धर्म था। प्रभुके श्रीमुखका वचन है—

'पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।' (वही, ७। ४०। ½)

कृपालु श्रीरामचन्द्रजीका जीवन सदा परहित-अर्पित रहा। उन्होंने तीनों लोकोंके रुलानेवाले रावणका संहार लोक-कल्याणार्थ किया। इसमें रावणका अपना कल्याण भी निहित था। उसने मुक्ति पायी, जो रावण-ऐसे राक्षसके लिये अन्यथा असम्भव थी—

आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयं।
तुम्हहू दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं॥
(वही, ६। १०३। १ छं०)

और असंख्य राक्षसोंका संहार भी उनके और लोक-कल्याणके लिये किया।

आजकलकी विघटनात्मक परिस्थिति जो 'स्व'हितके विचारकी अतिके कारण हमारे सामने आ खड़ी हुई है, उसका एकमात्र उपाय 'स्व'हितके स्थानपर 'पर'हितके विचारको स्थान देना है। करुणामय प्रभु 'पर'हितको बहुत मूल्य देते थे। माता शबरीको नवधा-भक्ति समझाते हुए करुणानिधानने संतोंके सङ्गको सर्वप्रथम रखा—

'प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।' (वही, ३। ३४। ४)

संतोंको इतना ऊँचा स्थान जगदीश्वर प्रभुने इस कारण दिया कि संत सदा जगत्-हितमें मग्न रहते हैं—

'संत सरल चित जगत हित।' (वही, १। ३ ख)

संतोंको जगत्के हितकी चिन्ता रहती है; 'स्व'हितकी कभी नहीं। अर्थात् संत परमधार्मिक हैं; क्योंकि वे परहितके धर्मका निर्वाह करते हैं, जिसके समान करुणानिधानके वचनानुसार अन्य धर्म नहीं है। जब इस परहितरूपी परमधर्मका ह्रास होता है—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
(वही, १। १२०। ३)

—तब-तब असुरोंकी संख्या-वृद्धि होती है। इन असुरोंकी व्याख्या गोस्वामी तुलसीदासजीने इन शब्दोंमें की है—

............चोर जुआरा। जे लंपट पर धन पर दारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी
(वही, १। १८३। १-१½)

'स्व'की अतिके द्वारा, मर्यादा-हीनताके कारण असुर-प्रकृतिके व्यक्तियोंकी वृद्धि हो जाती है और विघटनात्मक परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है, जैसी आजकल हो गयी है।

जानकीनाथ श्रीरामचन्द्रजीने 'पर'हितको एक विलक्षण ढंगसे अपने जीवन-कालमें कार्यरूप दिया। सरकार त्रिलोकी-नाथ थे, प्रभु थे, चक्रवर्ती थे। उन्होंने दिग्विजय की, बहुत-से राजाओंको पराजित किया। यदि अन्य कोई राजा होता तो विजित राज्योंके प्रबन्धके लिये अपने सम्बन्धियोंको नियुक्त करता; परंतु करुणानिधान प्रभुने ऐसा नहीं किया।

तब रघुपति सब सखा बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिरु नाए॥
परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु बचन उचारे॥
तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई॥

अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्बगत सर्बहित जानि करेहु अति प्रेम॥
(वही, ७। १५। १-२; १६)

करुणामय प्रभु श्रीरघुनाथजीने यह नहीं कहा कि "ये 'मेरे' देश हैं।" उन्होंने यह भी नहीं कहा कि "तुम 'मेरे' लिये या 'मेरी' ओरसे राज्य करना और इसके बदलेमें इतनी-इतनी राशि 'मेरे' राज्यकोषमें भेजते रहना।" करुणानिधानने केवल यह कहा कि 'तुम्हारा देश तुम्हारा गृह है।' वहाँ रामराज्य बना रहे, जनताका सर्वाङ्ग कल्याण करनेवाला राज्य बना रहे, इसलिये प्रभुने उन्हें यह याद दिलाया कि 'अपने देशमें जाकर मुझे दृढ़ भावसे भजना।' यहाँ 'भजेहु मोहि' के 'मोहि'-का अर्थ अयोध्यानरेश दशरथजीके सबसे बड़े पुत्र श्रीरामचन्द्रजीसे नहीं है; बल्कि 'भजेहु मोहि'के 'मोहि'से उसकी ओर संकेत है, जो प्रत्येकके अंदर बैठा हुआ है, 'स्वान्तःस्थमीश्वरम्' है, सबका आदिस्रोत है, सब कारणोंका कारण है, सर्वगत है, सबमें रमण करनेवाला 'राम' है। करुणामय सरकारने अपने सखाओंको अपने सर्वगत सर्वहितरूपसे स्मरण करनेको कहा; क्योंकि रामराज्यमें 'स्व'हितका स्थान नहीं होता। उसमें सब कार्य 'पर'हित, सर्वहित होते हैं। रामराज्यमें राजा 'स्व'हितके लिये नहीं राज्य करता, वह करुणामय प्रभुके दासके रूपसे सरकारका भजन करता है; सरकार श्रीरामचन्द्रजीके सर्वगतरूपमें जनताको देखकर सर्वहित अर्थात् जनकल्याणमें लगा रहकर करुणानिधान प्रभु श्रीरघुनाथजीकी सेवा करता है। इसके फलस्वरूप रामराज्यमें—

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥
(वही, ७। २०। ३)

और—

हरषित रहहिं नगर के लोगा। करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा॥
(वही, ७। २४। २)

रामराज्यका अलौकिक सुख प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रका फल था, जिसमें 'स्व'का कोई विचार न होकर केवल 'पर'हितका विचार रहता था।

परंतु राज्यकी दशा केवल राजापर निर्भर नहीं करती। राज्यकी दशामें प्रजाका भी हाथ होता है। सरकार श्रीरामचन्द्रजीका ऐसा विलक्षण प्रतिभाशाली चरित्र था कि उसने सारी प्रजापर गहरा प्रभाव डाल रखा था। इसका फल यह हुआ कि रामराज्यमें—

राम भगति रत नर अरु नारी। (वही, ७। २०। २)

और—

'अहनिसि बिधिहि मनावत रहहीं। श्रीरघुबीर चरन रति चहहीं॥
(वही, ७। २४। २½)

जहाँ रामराज्य होता है, वहाँ राजा तथा प्रजा सब 'पर'-हितके आदर्शसे प्रेरित होते हैं। तभी वहाँ सुखका साम्राज्य होता है। रामराज्य अनन्त सुखका राज्य है।

इसके विपरीत आज हमने 'स्व'हित और 'स्व'अर्थपर अनुचित बल देकर वर्तमान विघटनात्मक परिस्थिति उत्पन्न कर दी है। हमलोग आज 'मैं' और 'मेरा'के अर्थमें सदा कार्य करते हैं। आज हमारा धर्म 'परहित' नहीं है, 'स्वहित' है, स्वार्थ है। अतएव हम असंत हो गये हैं—

जे पर दोष लखहिं सहसाखी। परहित घृत जिन्ह के मन माखी॥
(वही, १। ३। २)

हम अधम हो गये हैं—

करहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना॥
(वही, ७। ४०। २)

हम राक्षस हो गये हैं—

पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद॥
(वही, ७। ३९)

आजकी इस पतित दशाका उद्धार एकमात्र यही है कि हम करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रका चिन्तन करके तथा सरकारकी पवित्र लीलाओंको स्मरण करके अनुप्राणित हों और जिस परहित-धर्मको सरकार श्रीजानकीनाथजीने सर्वोपरि घोषित किया था, उसका अनुसरण करें।

सर्वथा अनुकरणीय आदर्श

(लेखक—डॉ० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

भक्तोंने ब्रह्मकी सगुण लीलाके दो स्वरूप माने हैं—प्रथम लोक-रक्षक तथा दूसरा लोक-रञ्जक। ये क्रमशः उनके ऐश्वर्य एवं माधुर्यकी प्रधानताके आधारपर हैं। परात्पर ब्रह्मके ऐश्वर्यका पूर्ण दर्शन रामावतारमें होता है।

निर्गुण ब्रह्मके अवतारोंके दो हेतु निरूपित हैं—सामान्य और विशेष। धर्मकी रक्षा, अधर्मका नाश सामान्य हेतु हैं। मनुष्य स्वभावसे 'शिवम्'-प्रिय है। अतः धर्मकी हानिमें उसकी आत्मा परम व्याकुल हो जाती है। सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवनके नष्ट-भ्रष्ट होनेपर जीवनसे निराशा हो जाती है। कहना तो यही उचित होगा कि जीवन ही नीरस हो जाता है। तब जनताकी त्राहि-त्राहिकी भावना वसुंधरामें भी आत्मा भर देती है और वह गो-रूप धारणकर सर्वव्यापी परमात्मासे रक्षाकी याचना करती है।

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा॥
(मानस १। १८६। १)

—के सुशीतल आश्वासनसे जीवनसे प्रीति बढ़ जाती है। अवतारका विशेष हेतु है—भक्तोंको मधुर लीलाओंद्वारा निरतिशय सुख पहुँचाना। इससे उपासक और उपास्यका सम्बन्ध नित्य नवीन, साथ ही परम प्रगाढ़ हो जाता है। मनु और शतरूपाकी एकमात्र चाह है, परात्परके उस रूपका दर्शन, जो निर्गुण होनेपर भी सेवकके मनोरञ्जनार्थ सगुण हो जाता है, अथवा यों कहिये कि सगुण होनेपर सेवकके अधीन हो जाता है। उन्हींके शब्दोंमें तुलसी-रामायणके रामका दर्शन कीजिये, जिनका चरित नित्य उदात्त एवं नित्य मङ्गलमय है—

उर अभिलाष निरंतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई॥
अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथबादी॥
नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा॥
संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई॥
जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा॥
(वही, १। १४३। २-४)

इस निर्गुणरूपका पूर्ण सगुण-परिचय नीचेकी चौपाइयोंमें मिलता है—

जो सरूप बस सिव मन माहीं। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं॥
जो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥
(वही, १। १४५। २-३)

अर्थात् तुलसीके राम परात्पर ब्रह्म हैं, जो लोक-शिक्षणके लिये विविध मानव-लीला करते हैं। वे मर्यादापुरुषोत्तम हैं, जो सदा जीवनके आत्मपक्ष एवं लोकपक्षपर ध्यान रखते हैं। सुन्दर जीवन जीनेके लिये इन उभय पक्षोंका संतुलन नितान्त आवश्यक है। रामके उदात्त चरितका दर्शन हमें उनके बचपनसे ही होने लगता है। रामका परात्परब्रह्मत्व धीरता, गम्भीरता और कोमलतासे परिपूर्ण है। उन्होंने माताको पालनेमें ही अपना विराट् स्वरूप दिखाया, लेकिन परिस्थितिकी अद्भुतताको 'माई' सम्बोधनद्वारा मधुर बना दिया—

'यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई॥'
(वही, १। २०१। ४)

उनकी बाललीला भी संयत है। प्रातःकाल उठकर गुरुजनोंका अभिवादन करना एवं आज्ञा माँगकर अयोध्याकी भलाईमें तत्पर रहना पिताके मनको आह्लादसे भर देता है—

आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा॥
(वही, १। २०४। ४)

पुनः कुछ बड़े होनेपर दोनों भाई सोत्साह मुनिके यज्ञकी रक्षाके लिये घर छोड़ वनमें जाते हैं। वहाँ अस्त्र-शस्त्र-संचालनमें दक्ष होकर विघ्नकारी राक्षसोंका संहार करते हैं। हम लोकरक्षाके लिये अवतीर्ण राममें रावण और कुम्भकर्ण-जैसे राक्षसोंके संहार करनेकी शक्तिका अंदाज बचपनमें ही कर लेते हैं।

पुष्पवाटिकावाले प्रसङ्गमें रामका शील देखते ही बनता है। लक्ष्मणको जनकपुर देखनेकी इच्छा है; परंतु संकोचवश वे कह नहीं पाते। राम लक्ष्मणके मनकी बात ताड़ जाते हैं और अति विनयपूर्वक विश्वामित्रसे स्वीकृतिके लिये निवेदन करते हैं—

नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं॥
जौं राउर आयसु मैं पावौं। नगर देखाइ तुरत लै आवौं॥
(वही, १। २१७। ३)

ऐसे शीलपर रीझकर महर्षि कहते हैं—

सुनि मुनीसु कह बचन सप्रीती। कस न राम तुम्ह राखहु नीती॥
धरम सेतु पालक तुम्ह ताता। प्रेम बिबस सेवक सुखदाता॥
(वही, १। २१७। ४)

ऋषि-मुनियोंद्वारा आचरित सदाचारके पालनकी तत्परता राममें देखते ही बनती है। गुरुसे पहले जगना और सो जानेके बाद सोना, नित्य संध्या करना तथा गुरुके लिये पुष्पादि लाना आदि क्रियाओंको देखकर सनातन संध्या एवं गुरुसेवा आदिके प्रति सहज प्रवृत्ति हो जाती है।

रामका आत्म-संयम भी इसी पुष्पवाटिकामें चरमोत्कर्षपर पहुँच जाता है। साङ्गोपाङ्ग श्रृङ्गार मर्यादापुरुषोत्तमके सम्बन्धसे मर्यादित हो जाता है। पाठकको इस स्थलमें रति-भावका सात्त्विक दर्शन होता है—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही॥
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥
भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल॥
देखि सीय सोभा सुख पावा। हृदयँ सराहत बचनु न आवा॥

× × ×

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा॥
सो सबु कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता॥
(वही, १। २२९। १–२½; २३०। २)

और फिर प्रतिज्ञा-वाक्य—

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥
(वही, १। २३०। ३)

रामकी धीरता और गम्भीरताका दर्शन, गङ्गाके अनवरत प्रवाहकी भाँति, आद्योपान्त 'मानस'में होता है। धनुष-भङ्ग होनेके बाद परशुरामकी भयंकर क्रोधाग्निको रामका सुशीतल शील शान्त कर देता है। जिस गम्भीर परिस्थितिमें परशुरामका आगमन होता है, उसमें शीलके रूपमें पूज्य-भावनाको सुरक्षित रखना कोई साधारण बात नहीं है।

अयोध्यामें सुखके कुछ ही दिन व्यतीत हुए थे कि राज्याभिषेकको लेकर उपद्रव खड़ा हो जाता है। [illegible] परम विचित्र है। जो माता नित्य स्नेह करती थी; [illegible] वन भेजनेके लिये कोपभवनमें जाकर वरदान [illegible] महाराज दशरथके लिये भयंकर संकट [illegible] है। वे वरदान देकर मूर्च्छित हो जाते हैं; [illegible] पिताको सत्यपालनके लिये दृढ़ करता है। क्रान्तिकी वैसी भूमिकामें भी राम माता कैकेयीको एक भी कठोर शब्द नहीं कहते। वे वनवासजन्य कष्टको सहकर भाइयोंके प्रीति-भाजन बनते हैं। यदि राम पिताकी रुचि रखनेके लिये घर रह जाते तो अवश्य महाराज स्वर्गवासी न होते; परंतु भाइयोंके मनपर वैसा प्रभाव नहीं पड़ता, जैसा वन जानेके बाद पड़ा। रामके त्यागने भ्रातृ-भक्तिके लिये मार्ग प्रशस्त कर दिया।

रामके त्यागका ही यह फल था कि चित्रकूटमें राज्य कन्दुककी भाँति भाइयोंके पैरसे ठुकराया गया दीख पड़ता है। रामके त्यागने भरतके हृदयको जीत लिया तथा भरतके त्यागने रामका सम्पूर्ण प्रेम प्राप्त कर लिया।

सुमन्त्रके लौटते समय लक्ष्मणने पिताके प्रति आक्रोश प्रकट किया; लेकिन रामका शील सजग—सावधान हो गया। उन्होंने बार-बार सुमन्त्रसे विनती की कि लक्ष्मणकी बातोंको पिताजीसे कृपया न कहना—

पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित [illegible]
सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन सँदेसु [illegible]
(वही, २। [illegible])

चख-चखकर मीठी जातिके बेर उन्हें खिलाती है। यह है प्रेमका सहज स्वाभाविक रूप, जो नीति और नियमके परेकी चीज है और रामको यही प्रिय भी है।

चित्रकूटकी सभामें राम कैकेयीसे केवल इसी बातको प्रकट करनेके लिये बार-बार मिलते हैं कि उसकी कुटिलताका ध्यान उन्हें रञ्चमात्र भी नहीं है। राम-जैसा शीलवान् ही अपने प्रति अपकार करनेवालेके चित्तको भी शान्त करनेकी चिन्ता कर सकता है। यह उनके शीलका चरमोत्कर्ष है।

रामकी सत्य-निष्ठा भरत-जैसे भाईके आग्रहपर भी दृढ़ रहती है। परंतु जैसे ही राम भरतपर सत्य-पालनादिके औचित्यका भार देते हैं, भरत शीघ्र ही रामकी इच्छाको प्रधानता दे देते हैं। इस प्रकार उनका पिताके आज्ञा-पालनका व्रत सुरक्षित हो जाता है।

अरण्यकाण्डमें रामको हम प्रिया-विरहमें विलाप करते हुए देखते हैं; परंतु वह सब प्रेमकी मर्यादा एवं लोक-संग्रहके लिये ही था। पत्नी हर ली जाय और कोई हर्षमें 'थियेटर' देखने जाय तो इससे पारिवारिक जीवनपर बम-विस्फोट-सा आघात पहुँचता है। ऐसी परिस्थितिमें रोना और प्राप्तिका प्रयास ही श्लाघ्य है। अथवा कहिये कि वे प्रवृत्ति-मार्गकी स्वाभाविकताके ब्याजसे निवृत्तिमार्गकी निरापदताको सुदृढ़ करते हैं—

कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह कें मन बिरति दृढ़ाई॥
(वही, ३। ३८। १)

सीता-हरणके सम्बन्धमें सूचना देनेवाले जटायुके प्रति उनकी कृतज्ञता देखिये। उसे वे बार-बार 'तात' कहकर सम्बोधन करते हैं—

राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ कही तेहिं बाता॥
(वही, ३। ३०। २½)

पुनः कृपा कर उसे अपने देव-दुर्लभ धाममें भेज देते हैं—

तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरनकामा॥
(वही, ३। ३०। ५)

और 'पूरनकाम' कहकर भक्तोचित निष्कामताकी प्रशंसा करते हैं।

जीवनका सारतत्त्व है—प्रेम, जो अपनी अभिव्यक्ति विविध रूपोंमें करता रहता है। सामाजिक जीवनको सरस बनानेमें मैत्रीका प्रमुख स्थान है। किष्किन्धामें रामका सख्य-प्रेम दिखायी पड़ता है। सुग्रीवसे मित्रता होती है, अग्निसाक्षी देकर। सुग्रीवको मित्र बनाकर राम उसके सम्पूर्ण कष्टोंके निवारणके लिये तत्पर हो जाते हैं। मित्रके कष्टको देख-सुनकर भी दुःखी नहीं होनेवालेको पातकी सिद्ध करते हैं—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥
(वही, ४। ६। १)

इसके पूर्व ही वे वालीको मारनेकी प्रतिज्ञा करते हैं—

सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान॥
(वही, ४। ६)

राम अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सुग्रीवको किष्किन्धाकी राज्यश्री देते हैं। लेकिन सुग्रीव भी सामान्य कमजोरियोंके शिकार हुए बिना नहीं रहते। वे राज्य-सुखमें फँसकर कर्तव्य-च्युत हो जाते हैं। जिसने निर्भय किया, उसीके कार्य-साधनमें इतनी दीर्घसूत्रता! रामकी त्योरी चढ़ती है। लक्ष्मणको वे आज्ञा देते हैं—

'भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव॥'
(वही, ४। १८)

लेकिन एक बार जिसने रामका सख्य प्राप्त कर लिया, उसे फिर किस बातका भय! रामकी शरणमें आते ही सम्पूर्ण अपराधोंका क्षमापन होता है।

युद्धभूमिमें भी राम अपनी सेनाको कृपादृष्टिसे पुष्ट करते रहते हैं। विजयके बाद अयोध्या आनेपर राम गुरुके सामने अपने वानर-मित्रोंकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥
(वही, ७। ७। ३½)

वाल्मीकीय रामायणमें वानरोंकी प्रशंसा करते हुए राम कहते हैं—

सुहृदो मे भवन्तश्च शरीरं भ्रातरस्तथा॥
युष्माभिरुद्धृतश्चाहं व्यसनात् काननौकसः।
धन्यो राजा च सुग्रीवो भवद्भिः सुहृदां वरैः॥
(वा० रा० ७। ३९। २३-२४)

'वनवासी वानरो! आपलोग मेरे मित्र हैं, भाई हैं तथा शरीर हैं, एवं आपलोगोंने मुझे संकटसे उबारा है। अतः आप-सरीखे श्रेष्ठ मित्रोंके साथ राजा सुग्रीव धन्य हैं।' यह रामका शील ही है, जिससे प्रभावित होकर हर समय वानर-

समुदाय (उनके लिये) अपने प्राणोंको न्योछावर करनेके लिये तैयार रहता था।

रामने यद्यपि नरलीला की है, फिर भी उनके तात्त्विक स्वरूपको पहचाननेवाले भक्तकी ब्रह्मभावनामें फीकापन नहीं आने पाया है। रामके परम सेवक हनुमान्से भेंट होनेपर विभीषण पूछते हैं—

तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥
तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता॥
जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा॥
(मानस ५। ६। १-२$\frac{१}{२}$)

इसपर श्रीहनुमान्‌जी अपना अनुभव कहते हैं—

सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥

अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥
(वही, ५। ६। ३-४; ५। ७)

ऐसा उत्तर प्राप्त होते ही परम कृपालु रामके दर्शनके लिये विभीषण व्यग्र हो जाते हैं। वे चाहते हैं कि रावणके हृदयमें सद्बुद्धि जगे और वह सीताको रामको लौटा दे। अतः उसे उपदेश देने लगते हैं। पर परिणाम विपरीत होता है। उन्हें चरण-प्रहारतक सहना पड़ता है। विभीषणका निर्वेद पुष्ट होता है और वे रामकी शरणमें आते हैं। उन्हें आते देखकर सेनापतियोंके मनमें आसुरी मायाके प्रति शङ्का होती है। वे विभीषणको बाँध रखनेकी मन्त्रणा देते हैं; परंतु शरणागत-वत्सल रामकी अहैतुकी कृपा देखिये। राम कहते हैं—

सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी॥
× × × ×
कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
(वही, ५। ४२। ४; ४३। $\frac{१}{२}$)

और उसके बाद तो शरणागत-अधिकारीके लक्षणोंकी सारणी ही प्रस्तुत कर देते हैं—

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥
पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ॥
जौं पै दुष्टहृदय सोइ होई। मोरें सनमुख आव कि सोई॥
निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥
(वही, ५। ४३। १-२$\frac{१}{२}$)

फिर तो शरणागत विभीषण रामकी कृपा पाकर कृतकृत्य हो जाते हैं।

युद्धभूमिमें राम रावण-जैसे भौतिकतामें समृद्ध, आसुरी-सम्पदा-सम्पन्न वीरसे लड़ रहे हैं। परंतु रामके पास रथ एवं कण्टकाकीर्ण भूमिमें उपयोगी पदत्राणोंका अभाव देखकर विभीषणके मनमें सबल शत्रुपर विजय पानेमें शङ्का होती है। वे तुरंत रामसे प्रश्न करते हैं—

नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥
(वही, ६। ७९। १$\frac{३}{२}$)

उत्तरमें राम धर्ममय रथका बड़ा ही सुन्दर चित्रण करते हैं, जिससे विजय पाना अत्यन्त सहज है। लेकिन साथ ही प्राकृत युद्धमें रामका धैर्य एवं शौर्य परम अगाध दिखायी पड़ता है। लक्ष्मणको शक्तिबाण लगनेके बादका विलाप लोक-संग्रहके दृष्टिकोणसे बहुत महत्त्वपूर्ण है। यही सगुण लीलाकी विशेषता है। भ्रातृप्रेममें राम पिताकी आज्ञाको भी तोड़नेकी बात कहते हैं। धन्य है उनका भ्रातृप्रेम! वाल्मीकीय रामायणमें राम कहते हैं—

यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युतिः।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्॥
इष्टबन्धुजनो नित्यं मां स नित्यमनुव्रतः।
इमामवस्थां गमितो राक्षसैः कूटयोधिभिः॥
(वा० रा० ६। १०१। १३-१४)

'महातेजस्वी लक्ष्मणने वन आते समय जिस प्रकार मेरा अनुसरण किया था, उसी प्रकार अब मैं भी इसके साथ यमलोकको जाऊँगा। यह सदा-सर्वदा ही मेरा प्रियबन्धु और अनुयायी रहा है। हाय! कपटयुद्ध करनेवाले राक्षसोंने आज इसे इस अवस्थामें पहुँचा दिया।'

रामकी प्रजारञ्जकताके सम्बन्धमें अधिक क्या कहा जाय! वे सदैव इस बातपर ध्यान रखते थे कि किसी भी प्रजाको किसी प्रकारका कष्ट न हो। मानवोंकी तो बात ही क्या कहनी है, रामराज्यमें कुत्तेतकके प्रति न्यायकी कथा मिलती है। उन्होंने प्रजारञ्जनके लिये ही जानकी-जैसी परम पतिव्रताका परित्याग कर दिया।

राम एकपत्नीव्रतके परमादर्श हैं। उन्होंने अपने ही परिवारमें बहुविवाहके कुफलको देखा था। अतः उन्होंने एकपत्नीव्रती रहकर संसारके सामने एक नया आदर्श उपस्थित किया, जो सुन्दर एवं शान्त जीवनके लिये परमावश्यक है।

रामराज्य तो इतना सुखमय था कि उसकी कामना युगोंसे होती आ रही है और न जाने कब उसके दर्शन होंगे । रामराज्यका बहुत ही विशद वर्णन उत्तरकाण्डमें मिलता है ।

सम्पूर्ण भूमण्डलके एकच्छत्र चक्रवर्ती सम्राट् होनेपर भी रामने कभी भी अपने राज्य-शासनमें मनमानी नहीं की । वे सदा अपनी प्रजाओंसे कहते रहते थे—

जौं अनीति कछु भाषौं भाई । तौ मोहि बरजहु भय बिसराई ॥
(मानस ७ । ४२ । ३)

इस तरह हम देखते हैं कि यद्यपि राम भगवान् थे, फिर भी लोक-शिक्षणके लिये ही उन्होंने विविध मानवोचित लीलाएँ कीं । रामचरितमानसको पढ़कर तद्वत् आचरण ही प्रबन्धकारको अभीष्ट है; क्योंकि रामावतारका उद्देश्य ही था मर्यादित जीवनका आदर्श बताना । रामके सम्पूर्ण चरित अनुकरणीय हैं । जो मानस पढ़कर उसके अनुसार अपना आचरण नहीं बनाता, उसका समय वैसा ही व्यर्थ बीता समझना चाहिये, जैसा कि प्रमादी द्यूतप्रेमियोंका । अतः जीवनको सब प्रकारसे सुन्दर बनानेका एकमात्र उपाय है, रामचरितको अपने जीवनमें उतारना । रामचरितकी इसी विशेषतासे प्रभावित होकर राष्ट्रकवि श्रीमैथिलीशरण गुप्तने कहा है—

राम, तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है ।
कोई कवि बन जाय, सहज सम्भाव्य है ॥

जय राम !

वेदोंमें भगवान् श्रीराम

(लेखक—मानसतत्त्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी)

वेदेषु कथिता या च स्वर्धुनी लोकपावनी ।
सा श्रीरामकथा दिव्या पुनातु भुवनत्रयम् ॥

'वेदोंमें जो लोकपावनी गङ्गाके रूपमें कही गयी है, वह दिव्य श्रीरामकथा तीनों लोकोंको पवित्र करे ।'

आजकल कई लोग हर बातमें वेदोंकी दुहाई देते रहते हैं और कहते हैं कि अपौरुषेय वेद जब सृष्टिके आरम्भकालसे ही हैं, तब सृष्टिके बहुत बाद इस श्वेतवाराहकल्पके वैवस्वत मन्वन्तरमें होनेवाले श्रीराम, श्रीकृष्ण आदिके नाम-चरित्र उनमें कैसे आ सकते हैं ? वे लोग—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥
(ऋग्वेद १० । १९० । ३)

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥
(श्वेताश्वतरोपनिषद् ६ । १८)

इत्यादि वेदोपनिषदोंकी अनेक श्रुतियोंको नहीं देखते-विचारते कि इस सृष्टिसे पहलेके कल्पोंमें श्रीराम, श्रीकृष्ण आदिके जो चरित्र हुए थे, उनका संकेत इस सृष्टिके आरम्भमें अवतरित वेदोंने किया है । भगवान् श्रीराम और उनके पूर्वजोंका जैसा स्पष्ट उल्लेख वेदोंमें है, उसका स्थानाभावसे यहाँ दिग्दर्शनमात्र स्थालीपुलाक-न्यायसे कराया जाता है ।

पहले भगवान् श्रीरामजीके पूर्वजोंका संकेत वेदोंमें देखिये—

१–वैवस्वतमनु—'मनुर्वै यत्किंचावदत् तद्भेषजमेवावदत् ।'
(कृष्णयजुर्वेद, काठकसंहिता, स्थानक ११, अनुवाक ५, मन्त्र ९)

अर्थात् मनुने जो कुछ भी कहा है, वह मानवजातिके लिये परम पथ्य है ।

२–इक्ष्वाकु—'यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको० ।'
(अथर्ववेद १९ । ३९ । ९)

'ईज ऐक्ष्वाको राज० ।'
(शतपथब्राह्मण १३ । ५ । ४; ५)

३–सुद्युम्न—'सुद्युम्नो द्युम्नं यजमानाय धेहि ।'
(कृष्णयजुर्वेदीय मैत्रायणीसं० १ । २ । १९)

४–सुदास—'विश्वामित्रो यदवहत् सुदासमप्रियायत० ।'
(ऋग्वेद ३ । ५३ । ९)

५–सगरके साठ हजार पुत्र—

'षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे ।'
(अथर्व० २० । १२७ । १)

६–रघु—'रघुः श्येनः पतयत्० ।' (ऋग्वेद ५ । ४५ । ९)

७–११—कृष्णयजुर्वेदीय मैत्रायणीयोपनिषद्के अन्तिम आरण्यक १ । ४ में एक साथ कुछ चक्रवर्तियोंकी सूची देते हुए श्रुतिने श्रीरामजीके पूर्वजोंके कई नाम गिनाये हैं—

अथ किमेतैर्वापरेऽन्ये महाधनुर्धराश्चक्रवर्तिनः । केचित् सुद्युम्नभूरिद्युम्नेन्द्रद्युम्नकुवलयाश्वयौवनाश्ववध्र्यश्वाश्वपतिः शशबिन्दुर्हरिश्चन्द्रोऽम्बरीषो ननक्तुः शर्यातिर्ययातिरनरण्यो-

ऽक्षसेनादयोऽथ मरुत्तभरतप्रभृतयो राजानो मिषतो बन्धुवर्गस्य महतीं श्रियं त्यक्त्वास्माल्लोकादमुं ल्लोकं प्रयाताः॥

(पृ० ५४४)

१२—चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः
सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान्
कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः॥

(ऋग्वेद १ । १२६ । ४)

इस मन्त्रपर श्रीनीलकण्ठजीका विस्तृत भाष्य है। उसका सारांश इस प्रकार है—'राजा दशरथके यज्ञसे विदा होकर ऋत्विक्लोग जब अपने स्थानको जाने लगे, तब उन हजारों ऋत्विजोंको दानमें मिले हुए बड़े वेगवाले चालीस-चालीस लाल रंगके श्यामकर्ण घोड़े और अत्यन्त सुशिक्षित मतवाले गजेन्द्रोंकी पंक्तियोंको सेवकगण प्रत्येकके आगे-आगे लिये चलते हैं।'

यह तो हुआ भगवान् श्रीरामजीके पूर्वजोंका वेदोंमें संकेत। भगवान्‌की पुरी श्रीअयोध्याजीका जितना स्पष्ट और विस्तृत वर्णन वेदमें है, उतना अन्य किसी भी पुरी या क्षेत्रका नहीं है। देखिये—अथर्ववेद, काण्ड १०, सूक्त २, मन्त्र २८ के उत्तरार्द्धसे सूक्तान्तके मन्त्र ३३ तक साढ़े पाँच मन्त्र।

भगवान् श्रीरामजीके विपक्षी राक्षसोंमें भी बहुतोंका सुस्पष्ट वर्णन वेदमें है। उनमेंसे एकाधकी कुछ चर्चा यहाँ की जाती है—

कबन्ध—'नीचीनवारं वरुणः कबन्धं प्र ससर्ज०।'

(ऋग्वेद ५ । ८५ । ३, नि० १० । ४)

छः आँख और तीन सिरवाला त्रिशिरा—

(क) 'स इद्दासं तुवीरवं पतिर्दन् षलक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत्।'

(ऋग्वेद १० । ९९ । ६)

(ख) 'त्रीन् त्स मूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे०।'

(ऋग्वेद ९ । ७३ । १)

दशानन-रावण—

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः।
स सोमं प्रथमः पपौ स चकाराऽरसं विषम्॥

(अथर्ववेद ४ । ६ । १)

यहाँ दो-चार इस प्रकारके मन्त्रोंका संकलन कर दिया जाता है, जिनमें स्पष्ट शब्दोंमें श्रीसीताजी एवं श्रीरामके नाम एवं चरित्रका वर्णन है। जैसे—

श्रीसीताजी—

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि॥

(ऋग्वेद ४ । ५७ । ६, तथा (कुछ अन्तरसे) अथर्व० ३ । १७ । ८; तै० आ० ६ । ६ । २)

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्॥

(ऋग्वेद ४ । ५७ । ७; अथर्व० ३ । १७ । ४)

घृतेन सीता मधुना समक्ता
विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वो-
र्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना॥

(अथर्व० ३ । १७ । ९)

भगवान् श्रीरामजी—

(१) 'अधो रामो सावित्रिः' (यजुर्वेद २९ । ५९)

—में सवितृकुलोत्पन्न रामका ही वर्णन हुआ है—

(२) नक्तंजातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च।
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत्॥

(अथर्व० १ । २३ । १)

इस मन्त्रका अर्थ इस प्रकार है—

'ओष' अथवा 'दोष' शब्द उपपद रखकर 'धेट्' धातुसे कर्ममें 'कि' प्रत्यय होकर 'ओषधि' शब्द बनता है। 'ओष'-का अर्थ है—'दाह'। 'दाह' शब्दसे सांसारिक त्रिविध तापोंका ग्रहण है। ओषधयति—जो त्रिविध तापका पान कर जाय, अर्थात् नाश कर दे, उसका नाम 'ओषधि' है। 'दोष' शब्द उपपद रखकर बनाना हो तो दकारका लोप कर देना होगा। तब इस अर्थमें 'दोषं धयति' यह व्युत्पत्ति होगी। 'नक्तंजातास्य' एक पद है। 'नक्तंजात' चन्द्रमाका नाम है। 'आस्य' का अर्थ 'मुख' होता है। चन्द्रमाके समान जिसका मुख हो, उसे 'नक्तंजातास्या' कहते हैं। 'ओषधि' के साथ इसका कर्मधारय-समास है। 'किलास' में दो शब्द हैं—किल+आस। क्रीडनार्थक 'किल' धातुसे 'किल' शब्द बना है। किलम् अस्यतीति किलासम्। जो क्रीडाको दूर कर दे, उसे 'किलास' कहते हैं। 'पलित'का अर्थ है—सफेद केश। 'पलित' शब्दसे

तद्धितका 'अच्' प्रत्यय करनेसे 'पलित'का 'श्वेत केशवाला' अर्थ हो जाता है। 'रजनी' शब्दका अर्थ पतिका रञ्जन करनेवाली स्त्री है। अथवा 'रकारार्थो रामः'—इस वचनके अनुसार 'र' का अर्थ राम है। 'जनि' का अर्थ जन्म है। रामका जन्म जिससे हुआ है, उसका नाम 'रजनी' है। 'ई' स्त्रीप्रत्यय है। यहाँ कौसल्याजीसे तात्पर्य है। यह सम्बोधनका रूप है। 'असिक्नी'का अर्थ है—जिस स्त्रीके केश सफेद न हुए हों। केशश्वैत्य मृत्युका परिचायक है। अतः यहाँपर 'असिक्नी' कहनेका तात्पर्य है कि जिसकी मृत्यु अभी बहुत दूर है। यहाँ भी तात्पर्य कौसल्याजीसे ही है। इस प्रकार शब्दार्थ समझ लेनेके बाद मन्त्रार्थ बहुत सुगम हो जाता है। मन्त्रार्थ—

नक्तंजातास्योषधे!—हे चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाली तथा भगवद्दर्शनसे त्रितापको नाश करनेवाली अथवा सर्वदोषका नाश करनेवाली! **असिक्नि**—हे मृत्युसे दूर रहनेवाली चिरजीविनि! **रजनि**—हे स्वपति महाराज दशरथका अनुरञ्जन करनेवाली श्रीकौसल्याजी!! **इदम्**—इन। **किलासम्**—क्रीडाको फेंक देनेवाले, क्रीड़ाविरक्त। **यत् च**—और जो। **पलितम्**—सफेद केशवाले हैं, उन दशरथजीको। **कृष्णे**—श्यामवर्णवाले। **रामे**—अपने पुत्र भगवान् श्रीराममें। **रञ्जय**—आसक्त बना दो। अथवा रामे, कृष्णे 'सति सप्तमी' के रूप हैं। 'जाते'का अध्याहार करना है। श्यामस्वरूप भगवान् रामके प्रकट होनेपर वृद्ध दशरथजीको आप प्रसन्न कीजिये। ('तत्त्वदीपिका' वर्ष ३, अङ्क ४ आदि)

३—मुनिवर श्रीवसिष्ठजीने भगवान् श्रीरामजीसे ..। था—

संवत्सरं न मांसमश्नीयात् न रामामुपेयात्। ···
नास्य राम! उच्छिष्टं पिबेत् तेज एव तत्संश्यति॥
(तै० आ० ५। ८। १३)

'हे राम! (युवराजको चाहिये कि युवराजपद मिलनेके एक दिन पूर्वसे ही), **संवत्सरम्**—एक वर्षतक! **मांसम् अश्नीयात्**—'मांस' शब्दसे अभिहित वस्तुओंका सेवन न करे। उन वस्तुओंमेंसे कुछ ये हैं—

प्राण्यङ्गचूर्णं चर्माम्बु जम्बीरं बीजपूरकम्।
अयज्ञशिष्टमापादि यद्विष्णोरनिवेदितम्॥ १॥
दग्धमन्नं मसूरं च मांसं चेत्यष्टधामिषम्।
गोछागीमहिषीक्षीरादन्यदुग्धादि चामिषम्॥ २॥
धान्ये मसूरिका प्रोक्ता अन्नं पर्युषितं तथा।
द्विजक्रीता रसाः सर्वे लवणं भूमिजं तथा॥ ३॥
ताम्रपात्रस्थितं गव्यं जलं पल्वलसंस्थितम्।
आत्मार्थं पाचितं चान्नं ह्यामिषं तत्स्मृतं बुधैः॥ ४॥
(सरोजसुन्दरीग्रन्थोद्धृत पद्मपुराणवचन)

'किसी प्राणीके अस्थ्यादि अङ्गोंका चूर्ण, मशकका जल, जँभीरी नीबू, बिजौरा नीबू, अहुतशेष उड़द आदि अन्न, मसूर, भगवान् विष्णुको अनिवेदित अन्न, जला हुआ अन्न—ये आठ प्रकारके अन्न आमिष (मांस) में परिगणित हैं। इसी प्रकार गाय, भैंस और बकरीके अतिरिक्त पशुके दूध, दही, घी, छाँछ आदि, अन्नोंमें मसूर और बासी अन्न भी आमिष कोटिमें ही हैं। ब्राह्मणसे खरीदे हुए दूध, घी, तेल आदि रस और पृथ्वीसे उत्पन्न लवण (नमक), ताम्रपात्रस्थ गव्य, गड्ढेका जल और मात्र अपने लिये पाचित अन्न भी आमिष ही हैं।'

आकर्षणेऽपि पुंसि स्यादामिषं पुन्नपुंसकम्।
भोग्यवस्तुनि सम्भोगेऽप्युत्कोचे पललेऽपि च॥
(मेदिनीकोश ३१। ३१)

संवत्सरं न रामामुपेयात्—युवराजव्रती सालभरतक ब्रह्मचर्यसे रहे।

अस्य उच्छिष्टं न पिबेत्—उस व्रतीका जूठा जलतक कोई सालभरतक न पीये (राम करहु सब संजम आजू)। ऐसा करनेसे **तत्**—उस व्रती युवराजका। **तेजः संश्यति एव**—तेज, प्रताप, ऐश्वर्य दिनानुदिन बढ़ता ही जाता है।

४—भद्रो भद्रया सचमान आगात्
स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्
रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्॥
(ऋ० १०। ३। ३; साम० १५। २। ३)

इस मन्त्रके पूर्वार्धमें रावणद्वारा श्रीसीताजीका हरण होना कहा गया है और उत्तरार्धमें श्रीसीताजीकी अग्निपरीक्षा एवं शुद्धिका विवरण है।

५—प्रतद्दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु।
ये युक्त्वाय पञ्च शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम्॥
(ऋ० १०। ९३। १४)

इस मन्त्रमें श्रीरामजीके राज्याभिषेकपर आनेवाले राजाओं तथा देवताओंका वर्णन है। सायणने अपने भाष्यमें 'असुरे' का अर्थ 'बलवति' करके रामका विशेषण माना है।

६—सचन्त यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन्।
आ यन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न पुनर्यतो नकिरद्धा नु वेद॥
(ऋ० १० । १११ । ७)

श्रीनीलकण्ठसूरिने विस्तृत भाष्य करते हुए इसमें श्रीराममन्त्रोद्धार एवं षडक्षर श्रीराममन्त्रराजका माहात्म्य दिखलाया है।

स्थानाभावके कारण यहाँ निर्देशमात्र ही किया गया है। आजसे लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व चतुर्धरवंशावतंस महापण्डित श्रीनीलकण्ठसूरिने ऋग्वेदके डेढ़ सौ मन्त्रोंका संकलन 'मन्त्र-रामायण'के नामसे करके सुन्दर भाष्य लिखा था। फिर १३० मन्त्रोंका एक संकलन 'मन्त्र-भागवत'के नामसे करके उसपर भी भाष्य लिखा। स्थानाभावसे यहाँ निर्देशमात्र ही किया गया है।



श्रीरामकी भगवत्ता—एक दार्शनिक विवेचन

(लेखक—साहित्य-महोपाध्याय प्रो० श्रीजनार्दनजी मिश्र 'पङ्कज', एम्० ए०, शास्त्री, व्याकरण-साहित्य-सांख्य-योग-वेदान्त-दर्शनाचार्य, साहित्यरत्न)

श्रीरामचरितमानसके चारों घाटोंके श्रोताओंकी—श्रीपार्वतीजी, श्रीभरद्वाजजी, श्रीगरुडजी तथा हमारी और आपकी एक ही शङ्का है। वह यह कि 'दशरथनन्दन कौसल्यानन्दवर्धन श्रीराम कौन हैं? क्या वे व्यापक, विरज, अज ब्रह्म हैं? क्या ब्रह्म भी नराकार—नरावतार होता है? क्या नररूपधारी नारायणका ऐश्वर्य-पक्ष अक्षुण्ण या एकरस बना रहता है? क्या उसकी सर्वज्ञता अखण्ड बनी रहती है?' पार्वतीके कई प्रश्नोंमें एक प्रश्न—

सेस सारदा बेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुन गाना॥
तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥
रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई॥
जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥
(रा० च० मा० १ । १०७ । ३-४; १०८)

अध्यात्मरामायणमें भी श्रीपार्वतीजी यही पूछती हैं—
वदन्ति रामं परमेकमाद्यं निरस्तमायागुणसम्प्रवाहम्।
....

यदि स्म जानाति कुतो विलापः सीताकृतेऽनेन कृतः परेण।
जानाति नैवं यदि केन सेव्यः समो हि सर्वैरपि जीवजातैः॥
(बालकाण्ड १ । १२, १४)

'श्रीरामचन्द्रजीको परम, अद्वितीय, सबके आदिकारण और प्रकृतिके गुण-प्रवाहसे परे बतलाते हैं।......अतः मैं पूछती हूँ कि वे आत्मतत्त्वको जानते थे तो उन परमात्माने सीताके लिये इतना विलाप क्यों किया? और यदि उन्हें आत्मज्ञान नहीं था तो वे अन्य सामान्य जीवोंके समान ही हुए, फिर उनका भजन क्यों करना चाहिये?'

दूसरे शङ्कालु श्रोता हैं—प्रयागनिवासी श्रीभरद्वाजमुनि। मानसकारके शब्दोंमें—

रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही॥
एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा॥
नारि बिरहँ दुखु लहेउ अपारा। भयउ रोषु रन रावनु मारा॥
प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि॥
(रा० च० मा० १ । ४५ । ३-४; ४६)

तीसरे शङ्कालु विहगराज गरुडजी हैं। रणक्षेत्रमें मेघनादकृत बन्धनमें रामको देखकर श्रीरामके परात्पर ब्रह्म होनेमें इन्हें संदेह हो गया—ये विकल-विक्षुब्ध हैं। मानसकारके शब्दोंमें—

प्रभु बंधन समुझत बहु भाँती। करत बिचार उरग आराती॥
ब्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा॥
सो अवतार सुनेउँ जग माहीं। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं॥
(रा० च० मा० ७ । ५७ । ३-४)

चौथे शङ्कालु हम-सभी हैं और आज भी श्रीरामके परात्पर ब्रह्म होनेमें बहुतोंको संदेह बना है।

अब भगवान् अथवा ईश्वर क्या है? कौन है? क्यों है? उसकी आवश्यकता क्यों है?—इन सारी शङ्काओंके समाधानमें भारतीय दर्शनशास्त्र जुटे हैं। उनका विवेचन एवं चिन्तन नितरां अपेक्षित है। 'कल्याण'के पाठकोंकी सुविधा और जानकारीके लिये पहले मैं ईश्वर और उसके ऐश्वर्यपक्षपर भारतीय दर्शनगत विचारोंको प्रस्तुत कर रहा हूँ।

(१) गौतम-प्रणीत न्यायदर्शनमें ईश्वर और भगवान् राम

अक्षपाद-प्रणीत 'न्याय-दर्शन' एक आस्तिक दर्शन है। नैयायिक भगवान्को 'जगन्नियन्ता' एवं 'कर्मफलदाता' स्वीकार करते हैं। न्यायदर्शन (४ । १ । १९) में 'ईश्वर' शब्दका उल्लेख हुआ है—

'ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात्।'

यदि कोई प्रश्न कर बैठे कि सुख-दुःखरूपी फलका दाता कौन है ? इस सम्बन्धमें न्यायसूत्रकार गौतमका पक्ष है—'यदि कर्मके अधीन ही उसका फल रहता तो कर्म करनेके साथ ही कर्मफल मिल जाता; किंतु ऐसा देखनेमें तो नहीं आता। हमलोग कर्म करते हैं; किंतु उन कर्मोंका फल लगे हाथ हमें नहीं मिलता। इससे प्रतीत होता है कि कर्म-फलकी प्राप्ति किसी औरके अधीन है; और जिसके अधीन है, वह है 'ईश्वर'। लेकिन अपने न्यायदर्शनके सूत्र ४।१।२० में महर्षि गौतमने ऊपरके पक्षका खण्डन किया है। उनका कहना है—

'न पुरुषकर्माभावे फलानिष्पत्तेः।'

तात्पर्य यह है कि यदि फल देना ईश्वरके हाथमें ही रहता तो फिर कर्म करनेकी क्या आवश्यकता होती ? अर्थात् बिना कर्म किये ही ईश्वर फल दे देता। किंतु ऐसा नहीं होता, देखनेमें नहीं आता। कर्माभावमें फलकी निष्पत्ति नहीं होती। उससे तो यही सिद्ध होता है कि केवल ईश्वरेच्छा फल-प्रदानमें कारण नहीं हो सकती।

न्यायभाष्यकार श्रीवात्स्यायन लिखते हैं—

'पुरुषोऽयं समीहमानो नावश्यं समीहितं फलं प्राप्नोति। तेनानुमीयते यत् पराधीनं पुरुषस्य कर्मफलाराधनमिति, यदधीनं स ईश्वरः। तस्मादीश्वरः कारणमिति।' (४। १ । १९)

वे फिर लिखते हैं—

'ईश्वराधीना चेत्फलनिष्पत्तिः स्यादपि तर्हि पुरुषस्य समीहामन्तरेण फलं निष्पद्येत।' (४ । १ । २०)

अर्थात् कर्म-फल न तो केवल कर्मके अधीन है न केवल ईश्वरके ही। कर्म स्वतः फल सम्पादित नहीं करता और न ईश्वर स्वयं अपनी इच्छाके अनुसार फल देता है। वह कर्मके अनुसार ही फल-प्रदान करता है। अतः सिद्धान्त यह निकला कि फलकी पर्यवसिति 'पुरुषकार' और 'ईश्वर'—दोनोंपर ही आश्रित है। दूसरे शब्दोंमें यों कहिये कि कर्म और फल—दोनोंका संयोजक 'ईश्वर' है।

श्रीरामचरितमानसके अयोध्याकाण्डमें 'लक्ष्मणगीता' प्रसिद्ध है। शृङ्गवेरपुरमें प्रथम रात्रि-निवासके समयका प्रसङ्ग है। कोमल पत्तोंकी सेजपर भगवान् श्रीराम वैदेहीके साथ विश्रामका नाटक कर रहे हैं। उन्हें भूमिपर सोता देख, निषादराज अत्यन्त विषण्ण हो, कहते हैं—

रामचंदु पति सो बैदेही। सोवत महि बिधि बाम न केही॥
सिय रघुबीर कि कानन जोगू। करम प्रधान सत्य कह लोगू॥
(रा० च० मा० २ । ९० । ४)

यहाँ कर्मफलको प्रधान कहा गया है। निषादराज अत्यन्त विषण्ण हैं—

'भयउ बिषादु निषादहि भारी। राम सीय महि सयन निहारी॥'
(वही, २ । ९१ । १)

अब इसपर श्रीलक्ष्मणजीकी उक्ति देखिये, जो जैमिनिके 'मीमांसादर्शन' पर आधारित जान पड़ती है—

'बोले लखन मधुर मृदु बानी। ग्यान बिराग भगति रस सानी॥'
(वही, २ । ९१ । $1\frac{1}{2}$)

क्या बोले—

'काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥'
(वही, २ । ९१ । $1\frac{1}{2}$)

आनन्दरामायण तथा अध्यात्मरामायण (२ । ६ । ६) से तुलनीय—

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः॥

प्रातःस्मरणीय गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने मीमांसाके अनुसार विश्वको कर्मप्रधान माना है, पर ऐसे अवसरपर कर्म और फलका संयोजक ईश्वर स्वयंसिद्ध है।

ईश्वरकी व्याख्या करते हुए भाष्यकार वात्स्यायन कहते हैं—

'आप्तकल्पश्चायं यथा पितापत्यानां तथा पितृभूत ईश्वरो भूतानाम्। न चात्मकल्पादन्यः कल्पः सम्भवति। न तावदस्य बुद्धिं विना कश्चिद् धर्मो लिङ्गभूतः शक्य उपपादयितुम्। आगमाच्च द्रष्टा बोद्धा सर्वज्ञाता ईश्वर इति।' (४ । १ । २१ का भाष्य)

अर्थात् ईश्वर जगत्पिता है। सृष्टिके यावतीय नियम उसकी बुद्धिके परिचायक हैं। संसारकी विलक्षण रचना-चातुरी विश्वनियन्ताकी असीम बुद्धिका प्रमाण है। ईश्वर-की सहायताके बिना सृष्टिका उपपादन नहीं हो सकता। श्रुति-प्रमाणोंसे भी ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी तथा अनन्त बुद्धिशाली है।

'वात्स्यायन-भाष्य'के अनुसार तो—

'पुरुषकारमीश्वरोऽनुगृह्णाति फलाय पुरुषस्य यतमान-स्येश्वरः फलं सम्पादयति।' (४ । १ । २१)

अर्थात् पुरुषकार मनुष्य करता है और फल ईश्वर देता है।

ईश्वरका अस्तित्व

नैयायिकोंने जगत्के रचयिता ईश्वरके अस्तित्वकी सिद्धि-के लिये अनुमान-प्रमाणका आश्रय लिया है। तदनुसार—

'क्षित्यादिकं सकर्तृकं कार्यत्वाद् घटवत्।'

अर्थात् घट-पट आदि जितने कार्य-द्रव्य संसारमें दृष्टिगोचर होते हैं, वे सब स्वतः नहीं बन जाते; उन्हें बनानेवाला कोई निमित्त-कारण (कर्त्ता) होता है। घट-निर्माणके लिये कुम्भकारकी आवश्यकता है और सदैव रहेगी। पट (वस्त्र) निर्माणके लिये तन्तुवाय (जुलाहे)-की अपेक्षा होती है, होती रहेगी। अतः जिस प्रकार घट-पट-की उत्पत्ति सापेक्ष है—उसके लिये कर्त्ताका होना आवश्यक है, उसी प्रकार इस जगत्की रचनाके लिये एक कर्त्ता अवश्य होना चाहिये और वही 'ईश्वर' है। समस्त कार्योंकी उत्पत्ति सकर्तृक अर्थात् कर्त्ताके द्वारा होती है। जगत् भी कार्य है, इसलिये जगत्की उत्पत्ति भी किसी कर्त्ताके द्वारा हुई है, होती रहेगी। इस प्रकार जगत्कर्त्ताका अनुमान होता है। 'सर्व-वेदान्त-सिद्धान्त-संग्रह'-कारने लिखा भी है—

'कार्यत्वाद् घटवच्चेति जगत्कर्त्तानुमीयते।'

अब एक बार श्रीरामचरितमानसकारकी ओर आइये। पूज्यचरण क्या लिख रहे हैं—

'जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा।'
(मानस १ । १८५ । ३ छं०)

निश्चय ही गोस्वामी श्रीतुलसीदासका सिद्धान्त 'वेदान्त-दर्शन'से प्रभावित है। उस ईश्वरने त्रिगुणात्मक जगत्की सृष्टि की है और वही इस सृष्टिका अभिन्ननिमित्तोपादानकारण है। मुण्डकोपनिषद्में कहा गया है—

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि
तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्॥
(१ । १ । ७)

जिस प्रकार मकड़ी जालनिर्माणमें स्वयं ही निमित्त और उपादान कारण है, उसे दूसरे सहायककी आवश्यकता नहीं पड़ती, उसी प्रकार वेदान्त-प्रतिपादित ब्रह्म इस जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है। अद्वैतवादी जडतत्त्वकी सत्ता परमात्म-तत्त्वसे भिन्न नहीं मानते। जडतत्त्वको अनिर्वचनीय माया अथवा 'अविद्या' मानते हैं, जो न 'सत्' है न 'असत्'। यही जगद्गुरु शंकराचार्यका 'विवर्तवाद' अथवा 'अध्यासवाद' है। जिस प्रकार कोई मायावी (बाजीगर) अपनी माया-शक्तिसे नाना प्रकारके जड-चेतन पदार्थोंको प्रकट करके दिखलाता है, जो अपनी वास्तविक सत्ता नहीं रखते, केवल भ्रान्तिमात्र होते हैं, उसी प्रकार यह जगत् है।

मायाके सम्बन्धसे ब्रह्मको 'ईश्वर' कहते हैं और वही 'भग' अर्थात् षडैश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण 'भगवान्' कहलाता है। जिस प्रकार मायाके सम्बन्धसे ब्रह्मको 'ईश्वर' कहते हैं, उसी प्रकार अविद्याके सम्बन्धसे वह 'जीव' कहलाता है। यही 'अद्वैत' अथवा 'निर्विशेषाद्वैत' कहलाता है। अपने शुद्ध स्वरूपसे चेतनतत्त्वका नाम परमात्मा, निर्गुण ब्रह्म, शुद्ध ब्रह्म और परब्रह्म है। 'पुरुष' शब्दका दर्शनगत प्रयोग जीव, ईश्वर और परमात्मा—तीनों अर्थोंमें होता है।

कहना नहीं होगा कि श्रीरामचरितमानसमें प्रतिपादित रामको परात्पर ब्रह्म, ब्रह्म, परमात्मा, पुरुष तथा ईश्वर—सभी शब्दोंसे अभिहित किया गया है। वे ही वेदान्त-प्रतिपादित सच्चिदानन्द हैं, सांख्यका पुरुष तथा नैयायिकों-का जगत्कर्त्ता ईश्वर भी है।

श्रीसम्प्रदायका चित्-अचित्-विशिष्ट ब्रह्म ही विशिष्टाद्वैतवादका मूलाधार है। 'चित्' अर्थात् जीव, 'अचित्' अर्थात् विषय, इन्द्रियाँ, 'शरीर' आदि पञ्चभूतोंसे निर्मित भौतिक जगत् और 'ब्रह्म'—यद्यपि ये तीनों भिन्न हैं, तथापि चित् एवं अचित् अर्थात् जीव और जगत्—ये दोनों एक ही ब्रह्मके शरीर हैं। जीवात्मा ब्रह्मका शरीर है, ब्रह्म इसका अन्तर्यामी आत्मा है। इस प्रकार विशिष्टरूपने ब्रह्मको अद्वैत माननेसे यह सिद्धान्त 'विशिष्टाद्वैतवाद' कहलाता है।

'शुद्धाद्वैतवाद'के प्रवर्तक वल्लभाचार्यजी, जिन्होंने ब्रह्मसूत्रके 'अणुभाष्य'की रचना की है, शंकराचार्यकी भाँति इस बातको नहीं मानते कि जीव और ब्रह्म एक हैं और न मायात्मक जगत्को मिथ्या ही मानते हैं। श्रीवल्लभाचार्यजी मायाको ईश्वरकी इच्छासे विभक्त हुई एक शक्ति बतलाते हैं। मायाधीन जीवको बिना ईश्वरके अनुग्रह या कृपाके ज्ञान या मोक्ष नहीं हो सकता; अतएव मोक्षका मुख्य साधन 'ईश्वर-भक्ति' है। मायारहित शुद्ध जीव और परब्रह्म एक ही वस्तु है, दो नहीं हैं, यह सिद्धान्त 'शुद्धाद्वैतवाद' कहलाता है और सांख्ययोगके सदृश ही है।

अनीश्वरवादी नैयायिकोंके अनुमानके विरुद्ध अपना यह तर्क पेश करते हैं कि 'आपने जगत्का कार्य होना यों ही मान लिया है। यदि जगत्का कार्यत्व मान लिया जाय, तब तो उसका कर्ता स्वतः सिद्ध हो जाता है। अतः जो हेतु यहाँ दिया गया है, वह स्वयं असिद्ध अथवा साध्यसम होनेके कारण हेत्वाभासमात्र है।'

इस आक्षेपका निराकरण करनेके लिये नैयायिकोंने युक्तियाँ दी हैं। उनका कहना है कि जगत्का कार्यत्व हेतुसिद्ध है। कार्यका लक्षण है, सावयवत्व। घट-पट आदि द्रव्य 'सावयव' हैं, अतएव वे कार्यकी श्रेणीमें हैं। जिस द्रव्यके भाग नहीं हो सकते अर्थात् जो भिन्न-भिन्न अवयवोंके संयोगसे नहीं बने हैं, वे कार्य नहीं हैं। ऐसे दो द्रव्य हैं—परमाणु और आकाश। ये दोनों अनादि और नित्य हैं। ये किसीके द्वारा निर्मित नहीं, स्वतः शाश्वत-रूपसे विद्यमान हैं। अतः अन्य सभी द्रव्य संयोगजन्य होनेके कारण 'कार्य' हैं।

परमाणु (लघुतम परिमाण) और आकाश (महत्तम परिमाण) के बीच जितने अवान्तर परिमाणवाले द्रव्य हैं, द्व्यणुकसे लेकर विशाल पवतपर्यन्त, वे सभी सावयव होनेके कारण कार्य हैं। कालविशेषमें उनकी उत्पत्ति किसी विशेष प्रेरणाशक्तिके द्वारा हुई। परमाणुको आकाशकी तरह अनादि और स्वयम्भू नहीं माना जा सकता।* अतः सादि होनेके कारण उनका कार्यत्व स्पष्ट है।

सृष्टिमें जितने पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं, उन सभीमें भिन्न-भिन्न अवयवोंके संयोग पाये जाते हैं। अतएव यह सृष्टि निस्संदेह कार्यकी कोटिमें आ जाती है। नैयायिकोंकी युक्तियाँ हैं—

जो-जो सावयव पदार्थ हैं, वे सभी कार्य हैं। यथा—घट-पट, कुड्य (दीवार) आदि। जगत् (पृथ्वी आदि) सावयव हैं। इसलिये जगत् भी एक कार्यपदार्थ है। 'सर्वसिद्धान्तसंग्रह'कारने भी लिखा है—

कार्यत्वमप्यसिद्धं चेत् क्ष्मादेः सावयवत्वतः।
घटकुड्यादिवच्चेति कार्यत्वमपि साध्यते॥

नैयायिकोंके मतोंका निष्कर्ष यह है कि जिस प्रकार भिन्न-भिन्न अवयवोंके संयोगसे निर्मित घट कुलालका कार्य है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न अवयवोंके संयोगसे बने सागर, भूधर-प्रभृति भी किसी ब्रह्माण्ड-कुलालके कार्य हैं। अतएव सृष्टि-रचना-चातुरीको देखकर स्पष्ट हो जाता है कि इस जगत्का निर्माता अनन्त ज्ञानराशिका अक्षय भंडार है।

यहाँ अनीश्वरवादी आक्षेप कर सकते हैं कि सागर-भूधर-प्रभृतिको किसीने बनाया, इसका क्या प्रमाण? यदि आकाशकी ही तरह उन्हें भी 'स्वयम्भू' मान लिया जाय तो क्या हानि? उसकी युक्ति होती है कि ये कार्य नहीं हैं, अर्थात् किसी कालविशेषमें उत्पन्न नहीं होकर शाश्वतरूपसे वर्तमान हैं, जैसे आकाश। पर नैयायिकोंने इस तर्कका मुँहतोड़ उत्तर दिया है। वे कहते हैं कि पर्वतादिका अकार्य (उत्पत्तिरहित) होनेका जो हेतु दिया जाता है, वह असिद्ध होनेके कारण हेत्वाभास मात्र है—अप्रमाण है। पर्वतकी रचना कभी हुई ही नहीं—यह जाननेके लिये कोई प्रमाण नहीं। आकाशका दृष्टान्त यहाँ लागू नहीं होता। भी सादि होनेसे आकाशके भी कारणकी अपेक्षा है।

इस प्रकार कार्य-कारणका अनुमान कर नैयायिक ईश्वरकी प्रतिपत्ति करते हैं। अतः जगत् सकर्तृक है; क्योंकि यह कार्य है। और जो-जो कार्य हैं, वे-वे सकर्तृक हैं। यथा—घट-पट। यहाँ विरुद्ध हेतुकी गुंजाइश नहीं; क्योंकि लिङ्ग (कार्यत्व) और साध्य-विपर्यय (अकर्तृत्व) में व्याप्ति-सम्बन्ध नहीं है। भाव यह कि जो-जो कार्य हैं, वे-वे अकर्तृक हैं, ऐसी बात नहीं कह सकते।

---

* अवान्तरमहत्त्वेन वा कार्यत्वानुमानस्य सुकरत्वात्।
भूभूधरादिकं सर्वं सर्वविद्धेतुकं मतम्।
नगसागरादिकमकर्तृकम्। अजन्मत्वात्। गगनवत्।

यहाँ जो-जो हेतु दिये गये हैं, उन्हें असिद्ध कहकर टाला नहीं जा सकता। जगत्का कार्य होना उसके सावयवत्वसे स्वतःसिद्ध है।

श्रीरामचरितमानसके सुन्दरकाण्डमें रावण-हनुमत्संवादमें श्रीरामको ईश्वरका वह रूप दिया गया है, जिसे न्याय-दर्शनमें 'ब्रह्माण्ड-कुलाल' कहते हैं। अखिल ब्रह्माण्डोंका स्रष्टा 'कुलाल' वही है और वह रावण-जैसे शठों एवं खलोंको सीख देनेके लिये मनुजावतार ग्रहण करता है। देखिये—

सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥
जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन॥
धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता॥
हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा। तेहि समेत नृप दल मद गंजा॥

(रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड २०। २—४)

भगवान् रामकी शक्ति पाकर ही प्रकृति सृष्टि-पालन-संहार करती रहती है। यह सांख्य-सिद्धान्तकी ओर एक संकेत है।

कार्य-कारणके अनुमानसे न्याय-दर्शनने ईश्वरको जगत्कर्ता प्रमाणित किया है। जो-जो कार्य हैं, वे-वे अकर्तृक हैं—ऐसी बात नहीं कही जा सकती। यह हेतु अनैकान्तिक भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि यहाँ विपक्ष (साध्यके अभाव)में अकर्तृक पदार्थोंमें लिङ्ग (कार्यत्व)की वृत्ति नहीं पायी जाती। यह 'अनुमान सत्प्रतिपक्ष' भी नहीं है, इसलिये कि जगत्को अकर्तृक सिद्ध करनेवाला पक्ष देखनेमें नहीं आता। यह 'अनुमानबाधित' भी नहीं है, इसलिये कि किसी भी अन्य प्रमाणके द्वारा जगत्का 'सकर्तृकत्व' खण्डित नहीं होता। अतः पूर्वोक्त अनुमान सर्वथा निर्दोष एवं अखण्डनीय है। श्रीरामचरितमानसके कतिपय स्थलोंपर गोस्वामीजीने सांख्य-की प्रकृति, उनके शब्दोंमें 'माया'के जिम्मे जगत्के निर्माणादि कार्य दिखलाये हैं।

बालकाण्डके अन्तर्गत—

'ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।'

(मानस १। १९१। ३ छं०)

अयोध्याकाण्डके अन्तर्गत—

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥

(मानस २। १२५। १ छं०)

यहाँ रामको 'श्रुति-सेतु-पालक' तथा जगन्नियन्ता—'जगदीश' कहा गया है और जानकी उसकी माया है, जो उस रामका रुख पाकर सृष्टि, स्थिति एवं संहार-कार्य किया करती है। रामको सांख्यका असङ्ग पुरुष—असङ्गो नहि सज्जते—प्रतिपादित किया गया है।

(२) सांख्य-दर्शनमें

कतिपय विद्वान् एवं समालोचकोंने 'सांख्य-दर्शन' को निरीश्वरवादी कह डाला है। लेकिन 'सांख्य' एक आस्तिक दर्शन है। निश्चय ही 'सांख्य' और 'योगदर्शन'को कैवल्य, जिसमें संसारका बीजमात्र भी रह न जाय, अभिमत है। 'पुरुष'—जीव, परमात्मा तथा पुरुष-विशेष (ईश्वर)के अर्थमें व्यवहृत हुआ है। सांख्ययोगका अभिमत कैवल्य भी उस रामकी भक्तिसे अन्यत्र अतिदुर्लभ होता हुआ भी भक्त के लिये सुलभ हो जाता है। देखिये—

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥

(रामचरितमानस ७। ११८। २)

अब पाठकोंके आगे 'सांख्य-दर्शन' के 'ईश्वरासिद्धेः' सूत्रपर विचार प्रकट किया जा रहा है। यह सूत्र प्रथम अध्याय (सां० द० १। ८९)के प्रत्यक्ष प्रमाणके क्रममें उपस्थापित है। इस सूत्रमें 'प्रत्यक्ष'का लक्षण बतलाया गया है—इन्द्रियोंके संनिकर्षरूप सम्बन्धको प्राप्त हुआ, जो उस विषयके आकारका विज्ञान (चित्तवृत्ति) है, वह 'प्रत्यक्ष' कहलाता है। इसपर यह शङ्का होती है कि योगियोंको बिना इन्द्रियोंके संनिकर्षके चित्तवृत्ति वस्तुके आकारकी होकर प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। इसलिये उपर्युक्त लक्षणमें 'अव्याप्ति-दोष' आ जाता है।

इसका समाधान यह है—

'योगिनां बाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः।'

(सां० द० १। ९०)

अर्थात् योगियोंका बाह्य प्रत्यक्ष न होनेसे ऊपरवाले लक्षणमें अव्याप्ति-दोष नहीं आता, इसलिये कि उपर्युक्त लक्षण केवल 'बाह्य प्रत्यक्ष' नहीं, वह 'आभ्यन्तर प्रत्यक्ष' है। योगियोंका लीन (सूक्ष्म, व्यवहित, विप्रकृष्ट) वस्तुओंके साथ अतिशय सम्बन्ध होनेसे अव्याप्ति-दोष नहीं आता।

दूसरी शङ्का भी है—योगियोंको ईश्वरका प्रत्यक्ष होता है, इसलिये सूत्रगत लक्षणमें अव्याप्ति-दोष आता है। इसीका उत्तर सूत्रकार कपिलने 'ईश्वरासिद्धेः'—इस सूत्रमें दिया है, जिसका तात्पर्य यह है कि ईश्वरकी असिद्धिसे अव्याप्ति-दोष नहीं आता। निश्चय ही यह सूत्र ईश्वरके अस्तित्वके अभावको नहीं बतलाता, किंतु यही कहता है कि ईश्वरके शुद्ध स्वरूपका प्रत्यक्ष अन्तःकरणद्वारा नहीं होता, अर्थात् चित्तवृत्ति ईश्वरके शुद्ध स्वरूपके साथ तदाकार होकर उसका ज्ञान नहीं करा सकती।

संसारमें कोई चेतन मुक्त और बद्धसे भिन्न नहीं। यदि कोई ईश्वरको बद्ध माने तो वह सृष्टि करनेकी शक्ति नहीं रख सकता। यदि मुक्त मानेगा तो वह इच्छाके अभावसे सृष्टि उत्पन्न नहीं कर सकेगा; क्योंकि संसारमें जितनी भी सृष्टि नियमित दीखती है, वह कर्ताकी इच्छासे होती है।*

इस प्रकार मुक्त-बद्ध, दोनों चेतनके द्वारा सृष्टिका होना अनुमानसे सिद्ध न होगा। इसलिये मानसिक प्रत्यक्ष अवश्य मानना पड़ेगा। ईश्वरका योगियोंको समाधि-अवस्थामें प्रत्यक्ष होता है; क्योंकि स्थिर मनके बिना ईश्वरका बोधक कोई प्रमाण नहीं। ईश्वरको बद्ध और मुक्त दोनों प्रकारका नहीं कह सकते; क्योंकि दोनों सापेक्ष हैं, अर्थात् जो पहले बँधा था, वही बन्धनसे छूटनेके बाद 'मुक्त' कहला सकता है। ईश्वर इन दोनों अवस्थाओंसे पृथक् है। जगत्की रचना उसका स्वभाव है। इसलिये इच्छाकी आवश्यकता नहीं। श्रीरामचरितमानसमें श्रीरामको परब्रह्म, परमात्मा, सच्चिदानन्द, जगदीश, ईश्वर एवं ईश आदि सम्बोधनोंसे अभिहित किया गया है।

अध्यात्मरामायणमें स्पष्ट लिखा है—

मधुमासे सिते पक्षे नवम्यां कर्कटे शुभे।
पुनर्वस्वृक्षसहिते उच्चस्थे ग्रहपञ्चके॥
मेषं पूषणि सम्प्राप्ते पुष्पवृष्टिसमाकुले।
आविरासीज्जगन्नाथः परमात्मा सनातनः॥

(अध्यात्मरा० १। ३। १४-१५)

श्लोकसे सुस्पष्ट है कि 'श्रीदशरथनन्दन श्रीराम जगन्नाथ एवं सनातन परमात्मा हैं। अयोध्यामें चैत्र शुक्ला नवमी तिथिको, कर्कलग्नमें, सूर्यके मेषस्थ तथा बृहस्पति, मङ्गल, शुक्र एवं शनिके उच्चस्थ रहते हुए इनका प्राकट्य हुआ।'

सांख्यने पुरुषकी संनिधिको विषम परिणाममें निमित्त-कारण माना है, पुरुषविशेषका उल्लेख नहीं किया; किंतु सामान्यतः दृष्ट-प्रमाणसे उसकी सिद्धि होती है। सांख्यने प्रधान अर्थात् मूलप्रकृतिको जगत्का स्वतन्त्र कारण माना है। गोस्वामीजीकी सीता ही मूलप्रकृति हैं, पर सीता सृष्टि-स्थिति-पालनमें सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र नहीं। मानसकारने स्पष्ट कर दिया है—'जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की।' अर्थात् पुरुष (परमात्मा) श्रीरामका रुख पाकर ही सीता सृष्टि-स्थिति-प्रलय कर पाती हैं, अन्यथा नहीं। सांख्यने भी मूलप्रकृतिको जगत्का उपादानकारण माना है, उसको उसके कार्योंकी अपेक्षासे स्वतन्त्र बतलाया है; क्योंकि वह गुणों (सत्त्वरजस्तम)की साम्यावस्था है, जो पुरुषके लिये निष्प्रयोजन है। इस साम्य-परिणाम तथा विषम-परिणाममें निमित्तकारण ईश्वर ही है, जिसकी संनिधिसे परिणाम हो रहा है। अथ च—'रुख पाइ कृपानिधान की'—लिखकर गोस्वामीजीने सांख्य-सिद्धान्तका परिष्कार कर डाला है। सांख्यने ईश्वरको २५ तत्त्वोंसे अलग वर्णन नहीं किया है। अतः उसने योगके पुरुष-विशेष ईश्वरको पुरुषमें ही सम्मिलित कर दिया है।

धर्म, अधर्म, अज्ञान, वैराग्य, अवैराग्य, ऐश्वर्य तथा अनैश्वर्य—इन सात रूपोंमें प्रकृति अपने आपको बाँधती है। वही फिर पुरुषार्थके लिये एक रूप (ज्ञान)से अपने आपको छुड़ाती है। इसलिये प्रकृतिके कार्योंको साथ लेकर जीवसंज्ञक पुरुषमें बन्ध, मोक्ष, सांख्य आदि सब कुछ सिद्ध होते हैं। सांख्यकी वास्तविकताको समझनेके लिये इस बातका विवेक होना अति आवश्यक है कि कहाँ 'पुरुष' शब्द जीव-अर्थमें प्रयुक्त हुआ है, कहाँ ईश्वर-अर्थमें और कहाँ शुद्ध चेतन परमात्म-स्वरूपमें।

अतः गोस्वामीजीद्वारा प्रतिपादित राम वेदान्तका परब्रह्म—सृष्टिका अभिन्ननिमित्तोपादानकारण है तथा सांख्यप्रतिपादित पुरुष (परमात्मतत्त्व) है।

पातञ्जल योगदर्शनका ईश्वर (**क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः**) **क्लेशकर्मविपाकाशयैः**—क्लेश, कर्म, उनके फल और वासनाओंसे, **अपरामृष्टः**—अछूता—सम्बन्धरहित, असम्बद्ध, निर्लिप्त, **पुरुषविशेषः**—अन्य पुरुषोंसे विशेष (विभिन्न, उत्कृष्ट) चेतन है। जो दुःख देते हैं (क्लिश्नन्तीति), वे 'क्लेश' कहलाते

*मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः। कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः॥

हैं। वे अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश-संज्ञक पाँच प्रकारके हैं।

यद्यपि सभी पुरुषोंमें वास्तविक क्लेशादि नहीं हैं, पुरुष तो ईश्वरके समान सदा असङ्ग और निर्लेप है, तथापि चित्तमें रहनेवाले क्लेशादिकोंका पुरुषके साथ अत्यधिक सम्बन्ध है, अर्थात् चित्तमें रहनेवाले क्लेशादि पुरुषमें अविवेकसे आरोपित हैं—जैसे योद्धाओं (लड़नेवालों)में जीत-हार होती है, पर वह स्वामीकी कही जाती है अर्थात् जैसे राजा और सेनाका परस्पर स्वस्वामिभाव-सम्बन्ध होनेसे सेना-कर्तृक जय-पराजयका स्वामिभूत राजामें व्यवहार होता है; क्योंकि वही उसके फलका भोक्ता है।

इस प्रकार श्रीरामचरितमानस (१ । ० । ६ छं०) में सभी आस्तिक-दर्शनोंके मतोंका समन्वय है—

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥

'जिसकी मायाके वशीभूत सम्पूर्ण विश्व, ब्रह्मादि देवता और असुर हैं, जिसकी सत्तासे रस्सीमें सर्पभ्रमकी भाँति यह सारा दृश्य-प्रपञ्च सत्य ही प्रतीत होता है और जिसके चरण ही केवल भवसागरसे तरनेकी इच्छा रखनेवालोंके लिये एकमात्र नौका हैं, उन सब कारणोंके कारण और सबसे श्रेष्ठ, राम कहे जानेवाले भगवान् श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ।'

सती-प्रसङ्गमें तो गोस्वामी तुलसीदासजीने अद्वैतवाद, द्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद तथा विशिष्टाद्वैतवाद—सभी वेदान्त-प्रतिपादित वादोंको अपने रामरूपमें चरितार्थ दिखलाया है।

मनु-शतरूपाकी तपश्चर्याके प्रसङ्गमें यह स्पष्ट कर दिया गया है कि 'विधि-हरि-शम्भुको नचानेवाला राम ही तटस्थ एवं कूटस्थ ब्रह्म है।'

'जेहि कारन अज अगुन अनूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा॥'
(मानस १ । १४० । १)

—में पञ्चाननका पञ्चमुख उपदेश सार है। गोस्वामीजीके मतानुसार राम उत्प्रेरक तथा सर्वान्तर्यामी ईश्वर हैं।

'उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन'में वेदमाता गायत्रीके—'धियो यो नः प्रचोदयात्'—इस तीसरे चरणका भाष्य ही समा गया है। वे सगुण तथा निर्गुणमें भेद नहीं मानते।

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेमबस सगुन सो होई॥
(मानस १ । ११५ । १)

श्रीरामचरितमानसका राम सच्चिदानन्द है। वहाँ मोह-रात्रिका लवलेश नहीं। कहते हैं—

'राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लव लेसा॥'
(मानस १ । ११५ । २½)

और वह राम व्यापक ब्रह्म भी है। वह परमानन्द है। 'आनन्दं ब्रह्म'—यों कहा गया है—

'राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना॥'
(मानस १ । ११५ । ४)

कहीं-कहीं तो प्रकारान्तरसे द्वैतका निरसन भी है—

चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ। प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएँ॥
उमा राम बिषइक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा॥
(मानस १ । ११६ । २)

—जो मनुष्य आँखमें उँगली लगाकर देखता है, उसके लिये तो चन्द्रमा प्रकट ही दो हैं। श्रीरामके विषयमें ऐसी मोटी कल्पना करना कैसा है, जैसा आकाशमें अन्धकार, धूम और धूलिका होना।

इसके अतिरिक्त वह राम ही 'सकल-प्रकाशक' है—

बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
(वही, १ । ११६ । ३-३½)

विषय, इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंके देवता और जीवात्मा—ये सभी एककी सहायतासे एक चेतन होते हैं—अर्थात् विषयोंका प्रकाश इन्द्रियोंसे, इन्द्रियोंका इन्द्रिय-देवताओंसे और इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवताओंका चेतन-जीवात्मासे प्रकाश होता है। इन सभीका जो परम प्रकाशक है, अर्थात् जिससे इन सभीको प्रकाश प्राप्त होता है, वही अनादि ब्रह्म अयोध्यानरेश श्रीरामचन्द्र हैं।

वेदान्तप्रतिपादित—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥
(श्वेताश्वतरोप० ३ । १९)

उपर्युक्त श्लोकानुवाद मानसकारके शब्दोंमें देखिये—

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान॥
(वही, १। ११७। ३-४; ११८)

अतः राम वेदान्तादिप्रतिपादित शुद्ध सनातन तत्त्व और पूर्ण परात्पर ब्रह्म हैं, यह सर्वथा सुस्पष्ट है।

पुराणों तथा उपपुराणोंमें श्रीरामकथा

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

बहुत-से पुराण यद्यपि खण्डित तथा लुप्त भी हो गये हैं, फिर भी जो उपलब्ध हैं, उन्हें ठीकसे सँभाला जाय तो २००के लगभग हो जाते हैं। इन सबका विस्तारसे उल्लेख भी शक्य नहीं है। यहाँ संक्षेपमें अक्षरक्रमसे पुराण तथा उपपुराण सबके ही रामकथा-स्थलमात्रका निर्देश किया जायगा।

१—अग्निपुराण—आरम्भमें अध्याय २ से १२ तकमें रामायण-सार है, फिर अध्याय २४० से २६० तकके अध्यायोंमें भगवान् श्रीरामद्वारा श्रीलक्ष्मणजीसे कही गयी राजनीतिका वर्णन है।

२—आदिपुराणके भी १२वें तथा अन्य कई अध्यायोंमें विस्तारसे रामकथा आती है।

३— कल्किपुराणमें रामकथा संक्षेपसे है।

४—कालिकापुराणके ६२वें अध्यायमें वह बहुत विस्तारसे है। उसे नागेशभट्टने वाल्मीकि-रामायण ५। १०८। १० की टीकामें पूर्णतया उद्धृत कर दिया है।

५—कूर्मपुराणके १। १९—२१ तथा २। ३४वें अध्यायमें संक्षिप्त रामकथा वर्णित है।

६—गरुडपुराणके अ० १४३ आदिमें अग्निपुराणके ही समान रामायणसारका वर्णन है।

७—नरसिंहपुराणका अनुवाद मूलसहित 'कल्याण'के गतवर्षके विशेषाङ्कमें पूरा-का-पूरा प्रकाशित हो गया है। इसके ४७ से ५०तकके बड़े-बड़े अध्यायोंमें श्रीरामचरित्रका विस्तारसे वर्णन किया गया है। इसमें कई विलक्षण बातोंका उल्लेख हुआ है। एक तो रामके वनवासकी वर्षसंख्या १४ के बदले १२ ही है, जिसका हम सौरवर्ष तथा चान्द्रवर्षके भेद एवं कल्पभेदके कथानक-भेदसे समाधान कर सकते हैं।

८—पद्मपुराणमें रामकथाका बहुत विस्तारसे बार-बार वर्णन हुआ है। इसके सृष्टिखण्डमें अ० १४ तथा ४०से ७०तकमें भगवान्‌की वन-यात्रा, तीर्थयात्रा, पुष्करमें श्राद्धादिका वर्णन है। फिर पूरा पातालखण्ड रामचरित्रमय ही है। इसमें रामाश्वमेधयज्ञका ७० अध्यायोंमें विस्तारसे वर्णन है। फिर श्रीजाम्बवंतद्वारा किसी पूर्वकल्पके भी अद्भुत रामचरित्रका इसके ८९से ९२तकके अध्यायोंमें वर्णन पाया जाता है। इसके उत्तरखण्डके अध्याय २५४में अष्टोत्तरशत रामनाम तथा इसीके ७१ वें अध्यायमें श्रीराम-सहस्रनाम (वासुदेव-सहस्रनाम) का वर्णन है। यह वासुदेव-सहस्रनाम रामसहस्रनाम भी कैसे हैं, इस सम्बन्धमें पूरी जानकारीके लिये 'कल्याण' वर्ष ३६, अङ्क ६, पृ० ९८२से ९८४तकमें प्रकाशित मेरा 'श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी महाराज प्रतिदिन किस ग्रन्थका पाठ करते थे' शीर्षक लेख देखा जा सकता है।

९—बृहन्नारदीयपुराण, पूर्वभागके ७५ में तथा अ० ७९। ७—२६ में रामचरित्र है तथा इसमें आयी हुई मार्कण्डेय, ब्रह्मा एवं स्कन्दादिकी सूचियोंमें भी रामचरित्रका उल्लेख है। राममन्त्र-ध्यान, उपासना-विधि भी इसके भागवत-तन्त्रमें विस्तारसे है।

१०—बृहद्धर्मपुराणमें तो वह बहुत विस्तारसे प्राप्त होता है। इसका, कालिकापुराणका तथा देवीभागवतका रामचरित्र बहुत अंशोंमें मिलता है।

११—ब्रह्मपुराण अधिकतर भगवान् रामके ही चरित्रसे भरा पड़ा है। इसके अध्याय ४३ में विश्वामित्रो-

का चरित्र है। १२३वें अध्यायमें सवा दो सौ श्लोकोंमें विस्तारसे रामचरित्रका वर्णन है। इसमें एक स्थानपर सीता-रक्षणके लिये अङ्गद-हनुमान् आदिद्वारा प्राणत्याग करने तथा एक जगहपर विभीषणद्वारा जगन्नाथजी एवं भगवान् श्रीरामनाथजीकी प्रतिमा प्राप्त करनेकी कथा है। देखिये अध्याय ७०—१७६ तथा अध्याय १५४—१५७ आदि।

'मरिष्याव इति ह्युक्त्वा गौतमीं पुनरीयतुः॥'

(१५७। २६ इत्यादि)

१२—ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें भी बार-बार श्रीसीतारामका चरित्र आया है। कृष्णजन्मखण्डके ६२वें अध्यायमें संक्षेपसे पूरा रामचरित्र आ गया है। इसमें एक जगह शूर्पणखाके पुष्करमें घोर तपस्या करके, अगले जन्ममें कुब्जा होकर, कृष्णरूपमें रामको प्राप्तकर कृतार्थ होनेकी कथा आती है। उस समय वर देते हुए उससे श्रीब्रह्माजीने कहा था—'श्रीराम प्रकृतिसे परे, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि सबके स्वामी हैं। इस जन्ममें एकनारीव्रत होनेसे उनकी प्राप्ति तुम्हारे लिये सर्वथा असम्भव है। जन्मान्तरमें वे तुम्हें पतिरूपमें प्राप्त हो सकेंगे।'

जन्मान्तरे च भर्तारं प्राप्स्यसि त्वं वरानने।
देहं तत्याज सा वह्नौ सा च कुब्जा बभूव ह॥

(कृ० ज० खं० ६२। ५०)

यही कथा अत्यल्प अन्तरसे गर्गसंहिताके मथुराखण्डमें भी आती है। इसमें राजा बहुलाश्वसे देवर्षि नारदने कहा था—

सैव शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी॥
अभूच्छ्रीमथुरायां तु कुब्जा नाम महामते।

(वही, ११। १०-११)

१३—ब्रह्माण्डपुराण, खण्ड ३। ७३ आदिमें भगवान् रामके २४वें त्रेतामें अवतार लेनेकी कथा आती है।

१४—भविष्यपुराणमें कई बार रामकथाका उल्लेख आया है। इसके प्रतिसर्गपर्व, अध्याय १५ तथा इसके उत्तर-पर्वके ६३वें एवं १६९वें अध्यायोंमें दशावतार-जयन्ती आदिमें रामके व्रतका विधान आदि है।

१५–१८ भागवत, देवीभागवत, देवीपुराण और महाभागवतमें भी रामकथा विस्तारसे वर्णित है। भागवत स्कन्ध ५ के अध्याय १९ में तथा स्कन्ध ९ के १०–१३ अध्यायोंमें रामकथा है। देवीभागवतके चौथे तथा नवें स्कन्धोंमें तथा देवीपुराणके चौरासीवें अध्यायमें रामकथा है।

१९—मार्कण्डेयपुराणके अन्तमें विस्तृत रामकथा थी, पर वह नष्ट हो गयी—यह नारदपुराणकी सूचीसे स्पष्ट है।

२०—लिङ्गपुराणके ६६वें अध्यायमें रामकी चर्चामात्र है।

२१—वामनपुराणमें भी रामचरित्रका उल्लेख प्राप्त होता है।

२२—वायुपुराणके २। २९; ९९। १८३–१९९ में रामचरित्र है।

२३—वाराहपुराणके ४५वें अध्यायमें रामचरित्र है।

२४—विष्णुपुराणके ४थे अंशमें रघुवंशका वर्णन तथा रामचरित्र है।

२५—शिवपुराणके सती (पार्वती) खण्डकी पूरी रामकथा रामचरितमानसके प्रारम्भमें गोस्वामीजीद्वारा अनूदित है।

२६—स्कन्दपुराण, ब्रह्मखण्डके सेतुखण्ड तथा धर्मारण्य-खण्ड पूरे-के-पूरे रामचरित्रमय हैं। वैष्णव-खण्डमें भी सम्पूर्ण अयोध्यामाहात्म्य एवं रामायण-माहात्म्य, रामकथाएँ ही हैं।

२७—हरिवंशपुराण अध्याय १। ४१ आदिमें रामचरित्र है।*



* हरिवंशको कुछ लोग महाभारतमें और दूसरे लोग उपपुराणोंमें गणना करते हैं।

संहिता-साहित्यमें भगवान् श्रीसीताराम

(लेखक—डॉ० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव', एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

रामोपासनामें मधुर-उपासनाको लेकर अनेक संहिताओंका निर्माण हुआ है। इन संहिताओंका कालनिर्णय इस प्रकार विवादग्रस्त है कि क्या अन्तःसाक्ष्य और क्या बहिःसाक्ष्य, किसी प्रकार भी किसी निश्चयपर पहुँचना बड़ा कठिन हो जाता है। साहित्य, साधना एवं सिद्धान्त-संस्थापनकी दृष्टिसे इन संहिताओंका विशेष महत्त्व स्वीकार करना पड़ता है और इनके भीतरसे साधनाका जो स्रोत अखण्ड रूपसे प्रवाहित होता आ रहा है, वह अनेकानेक मधुररसके उपासकोंके लिये परम आश्रय एवं आनन्दका कारण रहा है। इस सम्प्रदायमें मान्य संहिता-ग्रन्थोंकी सूची इतनी विशाल एवं व्यापक है कि उनका विस्तारसे विवेचन सम्भव नहीं है; फिर भी यह ध्यान तो रहेगा ही कि कोई विशेष महत्त्वकी उपयोगी वस्तु छूट न जाय।

(१) श्रीहनुमत्संहिता

इसमें 'हनुमान्-अगस्त्यका संवाद' है और भगवान् रामकी रासलीला तथा जल-विहारका बड़े ही विस्तारसे एवं परम मनोहर शैलीमें वर्णन हुआ है। सीताकी सभी सखियाँ उनकी कायव्यूह हैं; क्योंकि सीताके शरीरसे ही १८१०८ सखियोंकी सृष्टि होती है, जिनके साथ भगवान् राम उतने ही शरीर धारण कर रास करते हैं। इसमें कुल ६० श्लोक हैं।

(२) श्रीशिवसंहिता

यह बीस अध्यायोंका ग्रन्थ है। इसके आरम्भमें वर्णित 'शिव-पार्वती-संवाद'में, तथा पुनः 'अगस्त्य-हनुमान्के संवाद'-में साधुसमागमकी महिमा, श्रीरामके अनेक गुणों और विभूतियों-का वर्णन, ध्यान, वन-दर्शन और पुनः वन-केलिका वर्णन आया है। रास-विलासके प्रसङ्गमें ठीक वैसा ही भव्य मनोहारी वर्णन है, जैसा श्रीमद्भागवतके रासपञ्चाध्यायीमें मिलता है। नदी-नद—सब स्तब्ध हो; जहाँ-के-तहाँ रुक गये। पशु-पक्षी, कीट-पतंग सब ब्रह्मानन्दमें मग्न हो, आत्मविभोर हो गये। आकाशमें देवताओंके विमान इस दृश्यको देखनेके लिये छा गये—यहाँतक कि इस दृश्यको देखकर शिवका हृदय भी विमोहित हो गया और वे अपना ताण्डव-नृत्य भूल गये।

(३) श्रीलोमशसंहिता

श्रीलोमशसंहिताकी पूरी प्रति उपलब्ध नहीं है। केवल एक खण्डित प्रति मिली है, जिसमें १५वें अध्यायसे लेकर २२वें अध्यायतक कुल आठ अध्याय प्राप्त हैं। इनमें परमश्रेष्ठ मुनि पिप्पलाद तथा लोमशजीका संवाद है। कोटि-कंदर्पलावण्य रसमूर्ति भगवान् श्रीरामका सीताजीके साथ और सीताजीकी अनेक सखियोंके साथ नानाविध रास-विलासका भी इसमें वर्णन है।

(४) श्रीबृहद्ब्रह्मसंहिता

यह दस अध्यायोंमें निबद्ध संहिता वैष्णवोंकी मधुर साधनाका प्रधान उपजीव्य ग्रन्थ है। इसमें राधा-कृष्ण और सीता-राम, दोनोंकी युगल उपासनाका विधान है। इसके प्रारम्भके पाँच अध्यायोंमें वैष्णव-साधनाका सामान्य विधान प्रस्तुत किया गया है। सातवें अध्यायमें श्रीरामावतारका हेतु तथा पुनः षडक्षर श्रीराममन्त्रकी महिमाका वर्णन है। **'श्रीरामः शरणं मम'** पर समाप्त होनेवाले इस अध्यायमें अनेक श्लोक हैं। यहाँ भगवान् श्रीरामका एक बड़ा ही भव्य ध्यान है।

(५) श्रीअगस्त्यसंहिता

यह श्रीवैष्णवोंकी परम प्रामाणिक संहिताओंमें परमादरणीय है। इसमें अगस्त्य और सुतीक्ष्णका संवाद है। आरम्भमें वर्णाश्रमधर्मकी प्रतिष्ठा है, फिर भिन्न-भिन्न फलोंकी प्राप्तिके लिये विभिन्न राममन्त्रोंके न्यास, विनियोग, कीलक, बीज आदिके साथ उल्लेख है। इसके अनन्तर इक्कीसवें अध्यायतक 'ब्रह्मविद्या'का निरूपण है। इसके बादके अध्यायमें हृदय-कमलमें सीतारामकी आश्लिष्ट युगलमूर्तिका मङ्गलमय ध्यान है। इसके अनन्तर षडक्षर मन्त्रकी महिमा एवं यन्त्र-कव-चादिका विस्तारसे वर्णन है और युगलमूर्तिके षोडशोपचार-पूजनका विधान है।

(६) श्रीवाल्मीकिसंहिता

श्रीरामानन्दीय वैष्णवोंमें इस संहिताको परम श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा जाता है। इसमें कुल पाँच अध्याय हैं। आरम्भमें देवगुरु बृहस्पति सभी मुनियोंके समक्ष श्रवण-कीर्तनादि नवधा-भक्तिका व्याख्यान करते हैं। फिर राममन्त्रकी महिमा कहते हैं और उसकी गुरु-परम्परा बताते हैं, जो अन्यत्र दी हुई

परम्पराके अनुरूप ही है। इसके अनन्तर विरक्त वैष्णवोंके लक्षण एवं कुल्कृत्यका वर्णन है, तथा दीक्षासंस्कार, कण्ठी-धारण आदि वैष्णवाचारोंका वर्णन है। इस संहितामें लक्ष्य करनेयोग्य बात एक है और वह यह कि ऊर्ध्वपुण्ड्रके भेद-प्रभेदमें भगवान् रामका श्रीहनुमान्‌के प्रति वचन है कि मेरे अनुरागी भक्त ऊर्ध्वपुण्ड्रके बीचमें 'श्री' (लाल रेखा) नहीं धारण करते और सीताजीके भक्त बीचमें 'बिन्दु-श्री' लगाते हैं। इसके अन्तमें भी **'श्रीरामः शरणं मम'** मन्त्रकी महिमाका वर्णन है।

अब हम उन संहिताओंका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना चाहेंगे: जिनका उल्लेख रामावत-सम्प्रदायके मधुरोपासक संतोंने साम्प्रदायिक आकर-ग्रन्थोंके भाष्यमें मतस्थापनके लिये उद्धृत किया है।

(७) श्रीशुकसंहिता

आरम्भमें गोलोकविहारी भगवान् कृष्ण एवं राधारानीके रास-विलासका वर्णन है, फिर लीला-रहस्यका वर्णन है, जिसमें राधा और कृष्ण दोनों ही परम देवाधिदेव भगवान् रामके शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं। ये राम पुरुषोत्तममात्र नहीं हैं, वे सनातन परब्रह्म हैं।

(८) श्रीवसिष्ठसंहिता

इस संहिताका नामोल्लेख एवं विषय-विवरण 'उपासनात्रय-सिद्धान्त' में आया है। इसमें दिव्य अयोध्याका वर्णन है। इसके ३६वें अध्यायमें लिखा है कि सर्वोपरि वैकुण्ठ है, वैकुण्ठसे भी परे गोलोक है, गोलोकके मध्यमें साकेतलोक है, साकेतलोकके पूर्व मिथिला है, दक्षिणमें चित्रकूट है, पश्चिममें वृन्दावन है, उत्तरमें महावैकुण्ठ है, जहाँ सब पार्षदोंके सहित श्रीमन्नारायण रहते हैं। ये ही नारायण सृष्टिकर्ता २४ अवतारोंके कारण हैं और ये ही श्रीरामचरितके मुख्याचार्य हैं। साकेत-लोक सप्तावरणोंके भीतर है। इन आवरणोंका सविशेष वर्णन ही इस संहिताका मुख्य विषय है। परात्पर ब्रह्म राम ही सबके आदिकारण हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि इनके अंशके आवेश हैं।

(९) सदाशिवसंहिता

स्वामी रामचरणदास 'करुणासिन्धुजी'ने 'श्रीरामनवरत्न-सार-संग्रह' ग्रन्थ तैयार किया था। इसमें कई स्थानोंपर नाम-महिमाके सम्बन्धमें 'सदाशिवसंहिता'का उल्लेख है। इसके अनन्तर दिव्य अयोध्या एवं उसके सात आवरणोंका विशेष विस्तारसे वर्णन तथा साकेतविहारी भगवान् राम और भगवती सीताका बड़ा ही भव्य ध्यान है।

(१०) श्रीमहाशम्भुसंहिता

'श्रीरामनवरत्न'के पृष्ठ ११ पर महाशम्भुसंहिताके दो श्लोक उद्धृत हैं, जो जानकीजीने श्रीरामचन्द्रके प्रति कहे हैं। यहाँ 'राम' नामकी महिमाका विषय है। श्रीजानकीजी कहती हैं कि "कोई प्रणवको श्रेष्ठ कहते हैं, कोई अन्य किसी मन्त्रको; परंतु प्रणव या अन्य बीजमन्त्र भी रकार-मकारसे ही सिद्ध होते हैं। राममन्त्रका प्रभाव पूरा-का-पूरा समझ लेना कठिन है। वेद अनादिकालसे 'राम'के नामकी थाह नहीं ले पा रहे हैं, औरोंकी तो क्या कथा!"

(११) हिरण्यगर्भसंहिता

'श्रीरामनवरत्न'के उक्त संस्करणके पृष्ठ ४१में 'हिरण्यगर्भ-संहिता'का उल्लेख है और अगस्त्यजीने सुतीक्ष्णजीसे कहा है कि 'अद्वैत आनन्दरूप शुद्ध-चैतन्य-सत्त्वैकलक्षण श्रीरामचन्द्र-जी सबके भीतर-बाहर इस ब्रह्माण्डमें प्रकाशित हो रहे हैं।'

(१२) महासदाशिवसंहिता

श्रीरामनवरत्नके उक्त संस्करणके पृष्ठ ५७–५९ तक 'महासदाशिवसंहिता'का उल्लेख है, जिसमें यह कहा गया है कि 'नाना प्रकारके मन्त्रों, नामों एवं चिह्नोंमें भरमना और भटकना व्यर्थ है। सबसे श्रेष्ठ श्रीरामनाम है, जिसके परमाचार्य श्रीहनुमान्‌जी हैं; शेष सभी नाम श्रीरामनामके अंशमात्र हैं; परम धाम श्रीरामधाम है, रामभक्ति ही राजमार्ग है। श्रीमैथिलीजीके सहित श्रीरामजीका मन्त्र, श्रीहनुमान्‌जीको महान् गुरुके रूपमें मानना तथा श्रीसीतारामजीके प्रति सखीभाव—यही सदा मुक्ति देनेवाला है।'

(१३) ब्रह्मसंहिता

श्रीरामनवरत्नमें पृष्ठ २६पर 'ब्रह्मसंहिता'का एक ही श्लोक उद्धृत है—

> पूर्णः पूर्णावतारश्च श्यामो रामो रघूद्वहः।
> अंशा नृसिंहकृष्णाद्या राघवो भगवान् स्वयम्॥

'भगवान् रामजी पूर्णावतार एवं पूर्ण ब्रह्म हैं, कृष्ण-नृसिंहादि अवतार अंश हैं; श्रीराघव स्वयं भगवान् हैं।'

(१४, १५, १६, १७) पुराणसंहिता, आलन्दारसंहिता, बृहत्सदाशिवसंहिता तथा सनत्कुमारसंहिता श्रीराधाकृष्णकी लीलाओंसे सम्बद्ध होते हुए भी श्रीसीतारामकी मधुर उपासनाको हृदयंगम करनेके लिये परम उपयोगी हैं।

अध्यात्मरामायणके श्रीराम

(लेखक—कविराज पं० श्रीनन्दकिशोरजी गौतम 'निर्मल', एम्० ए०)

अखिललोकनायक त्रयतापहारी मर्यादापुरुषोत्तम आनन्दकन्द दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रके चरित्रको प्रकाशित करनेवाले प्रधानभूत तीन ग्रन्थ-रत्नोंमें प्रथम है—आदिकाव्य 'वाल्मीकिरामायण', द्वितीय है—'अध्यात्मरामायण' तथा तीसरा, 'रामचरितमानस' । महर्षि वाल्मीकिने भगवान् रामका अपने काव्यमें जो चरित्र-चित्रण किया है, उसके अनुशीलनसे ज्ञात होता है कि उनका आदर्श चरित्र लोकके लिये परम अनुकरणीय था ।

अध्यात्मरामायणके कतिपय स्थलोंपर राम हमें अतिमानुष कर्म करते हुए दिखायी देते हैं । इनसे उनके ईश्वर होनेका स्पष्ट संकेत मिलता है । यथा-अर्धमुहूर्तमें एकाकी श्रीरामद्वारा चौदह हजार राक्षसोंका नाश कर दिया जाना—

खरश्च निहतः संख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा ।
चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां महात्मनाम् ॥
निहतानि क्षणेनैव रामेणासुरशत्रुणा ।
(अध्या० । ३ । ५ । ४३-४४)

जगज्जननी माता सीताके शब्दोंमें भी वे लोकनाथ प्रदर्शित किये गये हैं—

'कौसल्या लोकभर्तारं सुषुवे यं मनस्विनी ।'

तथा—

कथानककी घटनाओंको लेकर वाल्मीकि और अध्यात्मरामायणमें भिन्नता है । रामचरितमानस और अध्यात्मरामायणके घटनाक्रममें कुछ परिवर्तनके साथ अत्यन्त साम्य दिखायी देता है । ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि गोस्वामी तुलसीदासने अपने 'रामचरितमानस'का मुख्य आधार 'अध्यात्मरामायण'को ही बनाया है ।

'अध्यात्मरामायण' एक आख्यानके रूपमें 'ब्रह्माण्डपुराण'के उत्तरखण्डके अन्तर्गत माना जाता है । अतः इसके रचयिता महामुनि वेदव्यास ही हैं । इस परमपवित्र गाथाको साक्षात् भगवान् विश्वनाथने अपनी प्रिया आदिशक्ति पार्वतीको सुनाया है । इसमें परम रसायन रामचरितका वर्णन करते-करते पद-पदपर प्रसङ्गानुसार भक्ति, ज्ञान, उपासना, नीति और सदाचारके दिव्य उपदेश दिये गये हैं । विविध विषयोंका वर्णन होते हुए भी इसमें प्रधानता 'अध्यात्मतत्त्व'के विवेचनकी ही है और इसीलिये इसका 'अध्यात्मरामायण'—यह नाम सर्वथा सार्थक है । प्रस्तुत ग्रन्थमें भगवान् श्रीराम मूर्तिमान् 'अध्यात्मतत्त्व' हैं । शायद ही किसी काण्डका कोई सर्ग हो, जिसमें श्रीरामको अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक विष्णुका स्वरूप न बताया गया हो ।

ग्रन्थके प्रारम्भमें ही माता पार्वती भगवान् शंकरसे श्रीपुरुषोत्तमभगवान्‌के सनातन तत्त्वको पूछती हैं—

'पृच्छामि तत्त्वं पुरुषोत्तमस्य
सनातनं त्वं च सनातनोऽसि ॥'
(१ । १ । ७)

क्योंकि वे भगवान् राम सिद्धगणोंके द्वारा परम अद्वितीय, आदिकारण, प्रकृतिके गुण-प्रवाहसे परे बताये जाते हैं; किंतु कोई-कोई कहते हैं कि श्रीराम परब्रह्म होनेपर भी अपनी मायासे आवृत होनेके कारण अपने आत्मस्वरूपको नहीं जानते थे । अतः वसिष्ठादिके उपदेशसे उन्होंने अध्यात्मतत्त्वको जाना—

वदन्ति रामं परमेकमाद्यं
निरस्तमायागुणसम्प्रवाहम् ।
भजन्ति चाहर्निशमप्रमत्ताः
परं पदं यान्ति तथैव सिद्धाः ॥
वदन्ति केचित् परमोऽपि रामः
स्वाविद्यया संवृतमात्मसंज्ञम् ।
जानाति नात्मानमतः परेण
सम्बोधितो वेद परात्मतत्त्वम् ॥
(१ । १ । १२-१३)

माता पार्वती भी यही शङ्का करती हुई भगवान् भूतनाथसे प्रश्न करती हैं—

यदि स्म जानाति कुतो विलापः
सीताकृतेऽनेन कृतः परेण ।
जानाति नैवं यदि केन सेव्यः
समो हि सर्वैरपि जीवजातैः ॥
अत्रोत्तरं किं विदितं भवद्भि-
स्तद् ब्रूत मे संशयभेदि वाक्यम् ।
(१ । १ । १४-१५)

अर्थात् यदि वे आत्मतत्त्वको जानते थे तो उन परमात्माने सीताके लिये इतना विलाप क्यों किया और यदि उन्हें आत्मज्ञान नहीं था तो वे अन्य सामान्य जीवोंके समान ही हुए, फिर उनका भजन क्यों किया जाना चाहिये ? इस विषयको आप ऐसे वाक्योंसे समझाइये कि मेरा संदेह निवृत्त हो जाय।

तब देवादिदेव भगवान् नीलकण्ठ शिवने माँ अम्बिकाको रामका स्वरूप समझाते हुए इस प्रकार बताया—श्रीरामचन्द्रजी निस्संदेह प्रकृतिसे परे, परमात्मा, अनादि, आनन्दघन और अद्वितीय पुरुषोत्तम हैं, जो अपनी मायासे ही इस सम्पूर्ण जगत्को रचकर इसके बाहर-भीतर सब ओर आकाशके समान व्याप्त हैं तथा जो आत्मरूपसे सबके अन्तःकरणमें स्थित हुए अपनी मायासे इस विश्वको परिचालित करते हैं—

रामः परात्मा प्रकृतेरनादि-
रानन्द एकः पुरुषोत्तमो हि॥
स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा
नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः।
सर्वान्तरस्थोऽपि निगूढ आत्मा
स्वमायया सृष्टमिदं विचष्टे॥

(वही, १।१।१७-१८)

भगवान् श्रीराम जब समस्त विघ्न-बाधाओंको पारकर राजसिंहासनपर आरूढ़ हुए, तब भक्तवर हनुमान्को रामतत्त्वज्ञानकी अभिलाषा जाग्रत् हुई। अन्तर्यामी श्रीरामने श्रीहनुमान्के प्रति अपने तत्त्वका उपदेश देनेकी जगज्जननी सीताको आज्ञा दी। माता सीताने भी शरणागत हनुमान्को रामका निश्चित तत्त्व बताते हुए कहा था—

रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम्॥
आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम्।
सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकल्मषम्॥

(वही, १।१।३२-३३)

अर्थात् वत्स हनुमान्! तुम श्रीरामको साक्षात् अद्वितीय सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमेश्वर समझो। ये निर्विकार, निरञ्जन, सर्वव्यापक, स्वयं प्रकाशमान और पापहीन परमात्मा ही हैं।

तदनन्तर स्वयं भगवान् राम भी 'तत्त्वमसि'—वेदान्तके इस महावाक्यके आधारपर अपना अध्यात्मस्वरूप प्रियभक्त हनुमान्को ऐसा ही बताते हैं।

विश्रवाके पुत्र रावणके अत्याचारसे संतप्त होकर समस्त देवगण ब्रह्मासहित जब श्रीहरिसे अवतार-हेतु प्रार्थना करते हैं, तब शेषशायी परात्पर भगवान् नारायण उन्हें राजा दशरथके यहाँ कौसल्या आदि तीन रानियोंके द्वारा पुत्ररूपसे चार अंशोंमें प्रकट होनेका आश्वासन देते हैं—

तस्याहं पुत्रतामेत्य कौसल्यायां शुभे दिने।
चतुर्धाऽऽत्मानमेवाहं सृजामीतरयोः पृथक्॥

(वही, १।२।२७)

अपने चरणोंकी रजके स्पर्शसे जब श्रीराम अहल्याका उद्धार कर देते हैं, तब उनका परमात्मत्व सिद्ध हो जाता है और अहल्या भी उन्हें पुराणपुरुष परमात्मा बताती हुई गुणगान करती है—

'सोऽयं परात्मा पुरुषः पुराण
एकः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः।'

(वही, १।५।४९)

शिवधनुष-भङ्गके पश्चात् जानकीका परिणय कर जब राम अयोध्या लौटते हैं, तब भृगुनन्दन परशुराम उनसे अपना विष्णुधनुष चढ़वाकर उन्हें परमेश्वरके रूपमें स्वीकार करते हैं—

'राम राम महाबाहो जाने त्वां परमेश्वरम्॥'

(अ० रा०, बा० ७।२०)

मुनिवर वामदेव भी भगवान् रामको 'नारायण' और सीताको 'लक्ष्मी' बताते हैं—

एष रामः परो विष्णुरादिनारायणः स्मृतः।
एषा सा जानकी लक्ष्मीर्योगमायेति विश्रुता॥

(वही, २।५।११)

स्नेह और सेवाकी मूर्ति भरत भी अपनेको धिक्कारते हुए रामको 'परमात्मा' बताते हैं—

धिङ्मां जातोऽस्मि कैकेय्यां पापराशिसमानतः।
मन्निमित्तमिदं क्लेशं रामस्य परमात्मनः॥

(अ० रा०, अयो० ८।३१)

यहाँतक कि श्रीरामको वनवास देनेवाली माता कैकेयी भी आगे चलकर उन्हें विष्णुभगवान् बताती है—

'त्वं साक्षाद्विष्णुरव्यक्तः परमात्मा सनातनः।'

(वही, २।९।५७)

और तो और, राक्षसराज रावण भी उनका परम शत्रु होते हुए उन्हें 'परमात्मा' बताता है और उनके हाथसे मरकर परमपद प्राप्त करनेके लिये ही उनसे वैर ठानता है—

यद्वा न रामो मनुजः परेशो
मां हन्तुकामः सबलं बलौघैः ।
सम्प्रार्थितोऽयं द्रुहिणेन पूर्वं
मनुष्यरूपोऽद्य रघोः कुलेऽभूत् ॥
वध्यो यदि स्यां परमात्मनाहं
वैकुण्ठराज्यं परिपालयेऽहम् ।
नो चेदिदं राक्षसराज्यमेव
भोक्ष्ये चिरं राममतो व्रजामि ॥
इत्थं विचिन्त्याखिलराक्षसेन्द्रो
रामं विदित्वा परमेश्वरं हरिम् ।
विरोधबुद्ध्यैव हरिं प्रयामि
द्रुतं न भक्त्या भगवान् प्रसीदेत् ॥

(वही, अरण्य० ५ । ५९—६१)

'अथवा यह राम मनुष्य नहीं है, साक्षात् परमात्माने ही पूर्वकालमें की हुई ब्रह्माकी प्रार्थनासे मेरी सेनाके सहित मुझे वानरसेनाओंसे मारनेके लिये इस समय रघुवंशमें मनुष्यरूपमें अवतार लिया है। यदि परमात्माद्वारा मैं मारा गया, तब तो मैं वैकुण्ठका राज्य भोगूँगा, नहीं तो चिरकालपर्यन्त राक्षसोंका राज्य तो भोगूँगा ही । इसलिये मैं (अवश्य) रामके पास चलूँगा। सम्पूर्ण राक्षसोंके स्वामी रावणने इस प्रकार विचार कर भगवान् रामको साक्षात् परमात्मा हरि जानकर (यह निश्चय किया कि) मैं विरोध-बुद्धिसे ही भगवान्‌के पास जाऊँगा; (क्योंकि) भक्तिके द्वारा भगवान् शीघ्र प्रसन्न नहीं हो सकते।'

यहाँ आकर तो यह प्रसङ्ग और भी स्पष्ट हो जाता है कि राम साक्षात् श्रीहरि थे; क्योंकि रावणकी मृत्युके बाद उसके शरीरसे निकला हुआ तेज श्रीराममें आकर समा जाता है—

रावणस्य च देहोत्थं ज्योतिरादित्यवत्स्फुरत् ॥
प्रविवेश रघुश्रेष्ठं देवानां पश्यतां सताम् ।

(अ० रा०, युद्ध० ११ । ७८-७९)

इस रामायणके राम वस्तुतः अध्यात्मतत्त्व होनेके बाद भी अपने लौकिक चरित्रद्वारा आदर्श प्रस्तुत करते हैं कि कुलीन बालकको किस प्रकार माता-पिताको नित्य प्रणाम करना चाहिये। इसका उदाहरण श्रीराम अपने चरित्रद्वारा इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

प्रातरुत्थाय सुस्नातः पितरावभिवाद्य च ।
पौरकार्याणि सर्वाणि करोति विनयान्वितः ॥

(वही, बालकाण्ड ३ । ६४)

पुत्रको माता-पिताका कैसा आज्ञाकारी होना चाहिये, इस बातका तो श्रीरामने अपने आचरणद्वारा ऐसा अनूठा प्रमाण दिया है, जिसे विश्व जानता है। जहाँ उन्हें राजसिंहासन मिलनेवाला था, वहाँ उन्होंने वनवासको उससे भी अधिक हर्षके साथ स्वीकार कर पिताके सत्यकी रक्षा की—

राज्यात् कोटिगुणं सौख्यं मम राजन् वने सतः ।
त्वत्सत्यपालनं देवकार्यं चापि भविष्यति ।
कैकेय्याश्च प्रियो राजन् वनवासो महागुणः ॥

(वही, अयोध्या ३ । ७४-७५)

पुत्र पिताका इससे बढ़कर भक्त क्या हो सकता है कि वह उनके लिये अपना जीवन भी त्यागने और हलाहल तक पीनेको प्रस्तुत हो जाय—

'पित्रर्थे जीवितं दास्ये पिबेयं विषमुल्बणम् ।'

(वही, २ । ३ । ५९)

राम कितने धनुर्विद्या-विशारद और पराक्रमी थे, इस बातकी पुष्टि खर, दूषण और त्रिशिरासहित चौदह हजार राक्षसोंको आधे पहरमें मार देनेसे होती है—

तानि चिच्छेद रामोऽपि लीलया तिलशः क्षणात् ।
ततो बाणसहस्रेण हत्वा तान् सर्वराक्षसान् ॥

(वही, अरण्य० ५ । ३४)

संसारको रुलानेके कारण जिसका नाम ही 'रावण' पड़ा था, उस भयंकर राक्षसके हृदयको भी पराक्रमी रामने अपने तीक्ष्ण बाणद्वारा छेद डाला—

'बिभेद हृदयं तूर्णं रावणस्य महात्मनः ।'

(वही, युद्ध० ११ । ७१)

प्रजापालक श्रीरामने स्वर्णके समान शुद्ध अग्निपूता सीताको भी लोकनिन्दाके कारण त्याग दिया। भले ही स्वर्णमयी सीता बनवाकर ही अपने यज्ञकार्योंको उन्होंने पूर्ण किया, किंतु महान् एवं समर्थ राजा होते हुए भी दूसरे विवाहका नामतक नहीं लिया और अपने एकपत्नीव्रतके आदर्शको संसारमें प्रस्तुत किया—

'यज्ञान् स्वर्णमयीं सीतां विधाय विपुलद्युतिः ।'

(वही, ७ । ६ । ३४)

राम अपनी प्रजाको कितने प्रिय थे, इस बातका प्रमाण उनके वनगमनके समय प्रजाकी विह्वलतासे और उनके महाप्रयाणके समय उन्हींके साथ सबोंके प्रयाण करनेसे स्पष्ट होता है—

पौराः सर्वे समागत्य स्थितास्तस्याविदूरतः ।
शक्ता रामं पुरं नेतुं नो चेद्गच्छामहे वनम् ॥
(वही, अयो० ५ । ५३)

एवं—

तवानुगमने राम हृद्गता नो दृढा मतिः ।
पुत्रदारादिभिः सार्धमनुयामोऽद्य सर्वथा ॥
तपोवनं वा स्वर्गं वा पुरं वा रघुनन्दन ।
(वही, उत्तर० ९ । १३-१४)

'हे राम ! हमारे हृदयमें आपका अनुगमन करनेका ही दृढ़ विचार है । अतः हे रघुनन्दन ! आप तपोवन, नगर, स्वर्ग आदि कहीं भी जायँ, अब हम स्त्री-पुत्रादिके सहित सर्वथा आपका ही अनुसरण करेंगे ।'

रामके आदर्श राज्यको बार-बार स्मरणकर उसकी कल्पनाको साकार करनेमें हम भारतवासी ही नहीं, अपितु समग्र विश्वका जन-जन ही आज भी प्राणपणसे सचेष्ट है । श्रीरामके राज्यमें विधवाका क्रन्दन सुनायी नहीं देता था, सर्प और लुटेरोंका भय न था, मेघ समयपर वर्षा करते थे, प्रजा वर्णाश्रमधर्मोंसे युक्त थी एवं रामजी अपनी प्रजाका पुत्रवत् पालन करते थे । इस प्रकार राज्य करते हुए मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामने इस धराधामपर ग्यारह सहस्र वर्षोंतक निवास किया—

'न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम् ॥'
(वही, ६ । १६ । २९)

प्राकृत-साहित्यमें रामकथा

(लेखक—श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

भारतीय जन-मानसमें वैसे तो अनेक देवी-देवताओंके प्रति आदरकी भावना दिखायी देती है, पर उनमेंसे सबसे अधिक आदर लोक-जीवनमें जिन महापुरुषोंके प्रति दिखायी देता है, वे हैं—राम और कृष्ण । रामका चरित्र वास्तवमें ही एक आदर्श रहा है, अतः उनके चरितका जितना भी चिन्तन एवं प्रचार हो, अच्छा ही है ।

रामकथाको लेकर देश और विदेशोंमें इतने अधिक साहित्यका निर्माण हुआ है कि उन सबकी पूरी जानकारी प्राप्त कर लेना बहुत कठिन है । डा० रेवरेंड फादर कामिल बुल्केने इस सम्बन्धमें जो महत्त्वपूर्ण खोज की है, उससे रामकथासम्बन्धी साहित्यकी यद्यपि कुछ झाँकी मिल जाती है, तथापि अभी बहुत-से ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनकी ओर उनका ध्यान ही नहीं गया । ऐसे ही एक महत्त्वपूर्ण प्राकृत भाषाके जैन कथा-ग्रन्थ 'वसुदेव-हिन्डी'में वर्णित रामकथाको यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है । इस ग्रन्थकी रचना संघदास गणिने ५वीं शताब्दीमें की थी । वैसे इसमें श्रीकृष्णके पिता वसुदेवके भ्रमण-वृत्तान्तोंका वर्णन प्रधानरूपसे है; पर अन्य अनेक कथाएँ व प्रसङ्ग भी इसमें वर्णित हैं ।

स्व० श्रीनाथूरामजी प्रेमीने अपने 'जैन-साहित्य और इतिहास'में रामकथाकी विविध धाराओंका उल्लेख करते हुए अद्भुतरामायण, बौद्ध जातक और जैन उत्तरपुराणोंकी कथा संक्षेपमें दी है । उत्तरपुराणके अनुसार सीता मन्दोदरीकी कुक्षिसे उत्पन्न हुई थी । प्रेमीजीने लिखा है कि 'जहाँतक मैं जानता हूँ, यह उत्तरपुराणकी रामकथा श्वेताम्बर-सम्प्रदायमें प्रचलित नहीं है ।' पर बात वास्तवमें ऐसी नहीं है । दिगम्बर-साहित्यकी तरह श्वेताम्बर-साहित्यमें भी रामकथा-के दो रूपान्तर संगृहीत मिलते हैं, जिनमेंसे 'पउम-चरिउ' और 'त्रिषष्टिशलाकापुरुष-चरित'में वर्णित रामकथाने तो काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली; पर 'वसुदेव-हिन्डी'की रामकथाकी ओर विद्वानोंका ध्यान नहीं गया; क्योंकि एक तो 'वसुदेव-हिन्डी' श्रीकृष्णके पिता वसुदेवके भ्रमण-वृत्तान्त सम्बद्ध ग्रन्थ है, दूसरे, रामायणकी कथा उसमें प्रसङ्गवश बहुत ही संक्षेपमें आयी है और उस कथाका प्रचार कम रहनेसे परवर्ती ग्रन्थकारोंने 'पउम-चरिउ'की कथाको ही अधिक अपनाया । वैसे प्राकृत भाषामें एक अप्रसिद्ध विस्तृत 'सीता-चरित्र' भी प्राप्त हुआ है । उसके सम्बन्धमें हमारा एक लेख छप भी चुका है; पर विस्तृत आलोचना तो ग्रन्थके प्रकाशित होनेके बाद ही की जा सकती है ।

'वसुदेव-हिन्डी'के प्रथम खण्डके १४वें 'मदनवेगा लम्बक'में रामकथाका प्रसङ्ग इस रूपमें आया है—

'वैताढ्य पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें अरिंजयपुर नामके नगरमें मेघनाद नामक राजा था। उसकी रानी श्रीकान्ताके गर्भसे पद्मश्री नामकी रूपवती कन्या जनमी। यौवनावस्था प्राप्त होनेपर उसके रूपकी चर्चा विद्याधरोंमें सर्वत्र फैल गयी। मेघनादने पद्मश्रीके विवाहके सम्बन्धमें नैमित्तिक (ज्योतिषी)से पूछा तो उसने कहा कि यह कन्या तो किसी चक्रवर्तीकी मानीता रानी होगी। अन्तमें कन्याका विवाह उस सुभूम नामक चक्रवर्तीके साथ होता है, जिसने परशुरामसे अपने पिताकी मृत्युका बदला लेते हुए २१ बार इस भूमिको ब्राह्मणोंसे रहित कर दिया था। जिस प्रकार परशुरामने क्षत्रियवंशका संहार करना अपना उद्देश्य बना लिया था, उसी तरह सुभूम चक्रवर्तीने भी। उसे जितने भी ब्राह्मण मिले, सबको उसने मार डाला। वे ही ब्राह्मण बच पाये, जिन्होंने अपना ब्राह्मण (होना) नहीं बतलाया। सुभूमके ससुर राजा मेघनादके वंशमें बलि नामका राजा हुआ और उसीके वंशमें आगे चलकर रावण हुआ।' इसी प्रसङ्गमें 'वसुदेव-हिन्डी'में रामायणकी कथा दी है।

'वसुदेव-हिन्डी'की रामकथा बहुत ही संक्षिप्त है। अतः बहुत-से प्रसङ्गोंका तो उसमें उल्लेख ही नहीं हुआ है और जो मुख्य-मुख्य बातें इस कथामें आयी हैं, उनमेंसे कुछ अन्य ग्रन्थोंमें दूसरे प्रकारसे भी मिलती हैं। जैन-मान्यताके अनुसार लक्ष्मण आठवें वासुदेव हुए और उन्हींके हाथसे रावण मारा गया। मूलकथा नीचे दी जा रही है।

रावणका वंश

बलि राजाके वंशमें सहस्रग्रीव राजा हुआ था। उसके पञ्चशतग्रीव नामक पुत्र हुआ। उसके बाद शतग्रीव, बादमें विंशतिग्रीव और तत्पश्चात् दशग्रीव हुआ, जो रावणके नामसे प्रसिद्ध है। विंशतिग्रीव राजाके चार पत्नियाँ थीं—देववर्णनी, वक्रा, कैकेयी और पुष्पकूटा। देववर्णनीके चार पुत्र थे—सोम, वरुण, यम और वैश्रमण। कैकेयीके रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण (ये तीन पुत्र) तथा त्रिजटा और शूर्पणखा—ये दो पुत्रियाँ थीं। वक्राके महोदर, महार्य, महापार्श्व और खर (ये चार पुत्र) तथा आशालिका पुत्री थी। पुष्पकूटाके त्रिसार, द्विसार और विद्युज्जिह्व नामके पुत्र और कुम्भनासा कन्या थी।

रावण सोम-यम आदिके साथ वैर करके सपरिवार निकल गया और लङ्काद्वीपमें जा बसा। वहाँ उसने प्रज्ञप्ति विद्याकी साधना की और परिणामस्वरूप विद्याधर सामन्त उसे नमन करने लगे। इस प्रकार लङ्कापुरी ही उसका वासस्थान बन गयी। वहाँ रहते हुए विद्याधर लोग उसकी सेवा करने लगे।

मन्दोदरीका रावणसे विवाह

एक बार मग नामक विद्याधर अपनी मन्दोदरी नामक पुत्रीके साथ सेवार्थ रावणके पास पहुँच गया। वह कन्या लक्षण जाननेवालोंको बतलायी गयी। उन्होंने कहा—इसका प्रथम गर्भ कुलके क्षयका कारण बनेगा। परंतु अत्यन्त रूपवान् होनेसे रावणने उसका त्याग नहीं किया। पहले पैदा हुए बालकका त्याग कर दूँगा—यह विचार करके उसके साथ उसने विवाह कर लिया। धीरे-धीरे वह मन्दोदरी (रावणकी रानियोंमें) प्रधान (पटरानी) हो गयी।

राम-परिवार

इधर अयोध्या नगरीमें दशरथ राजा था। उसके तीन पत्नियाँ थीं—कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा। कौसल्याके राम, सुमित्राके लक्ष्मण और कैकेयीके भरत और शत्रुघ्न नामके पुत्र उत्पन्न हुए। देव-जैसे सुन्दर वे धीरे-धीरे बड़े हुए।

मन्दोदरीकी कुक्षिसे सीताकी उत्पत्ति व जनकद्वारा ग्रहण

रावणकी पटरानी मन्दोदरीके पुत्री हुई। उस पुत्रीको रत्नोंसे भरी पेटीमें रखा गया। मन्दोदरीने मन्त्रीसे कहा, 'जाओ, इसे छोड़ आओ।' उसने मिथिलामें जनक राजाकी उद्यानभूमि जब ठीक की जा रही थी, तब तिरस्करिणी विद्यासे आवृत करके कन्याको हलके अग्रभागपर डाल दिया। बादमें यह कन्या हलद्वारा जमीनसे निकाली गयी है—इस प्रकार राजासे निवेदन किया गया। वह कन्या धरिणी देवीको अर्पित की गयी और चन्द्रलेखाकी तरह बढ़नेवाली वह लोगोंके नयनों और मनका हरण करनेवाली बनी।

सीताका रामसे विवाह

बादमें 'यह रूपवती है'—यह विचारकर पिता जनकने स्वयंवरका आदेश दिया। बहुत-से राजपुत्र एकत्र हुए। उस समय (उस कन्या) सीताने रामको वरा। दूसरे कुमारोंको भी धन-सम्पत्तिसहित कन्याएँ दी गयीं। उन्हें लेकर दशरथ अपने घरको आये।

कैकेयीको दशरथसे दो वरदानोंकी प्राप्ति

स्वजनोपचारमें कुशल कैकेयीसे संतुष्ट होकर राजाने किसी समय उससे कहा था कि 'तू वर माँग'। उसने कहा—'अभी मेरा वर रहने दो, काम पड़नेपर माँगूँगी।' एक बार दशरथका सीमाके राजाके साथ विरोध हो गया। उसके बीच युद्धमें दशरथ पकड़े गये। देवी कैकेयीको कहलवाया गया कि 'राजा पकड़ लिये गये हैं; इसलिये तुम चली जाओ'। वह बोली—'शत्रु यदि प्रयत्न करेगा तो भाग जानेपर भी मुझे पकड़ लिया जायगा, इसलिये मैं खुद भी युद्ध करूँगी। मैं हारूँ नहीं, तबतक कौन भागा गिना जा सकता है?' इस प्रकार कहकर, कवच पहन, रथमें बैठ, छत्रसे युक्त हो, वह युद्ध करने चली। 'जो वापस मुड़े, उसे मार डालो'—इस प्रकार कहती हुई वह शत्रुसेनाका नाश करने लगी। अनुरागसहित अपना पराक्रम दिखलाते हुए योद्धा फिर युद्ध करने लगे। योद्धाओंको वह सरोपाव (पुरस्कार) देने लगी। इस प्रकार देवीद्वारा शत्रुसैन्यके पराजित होनेपर मुक्त हुए दशरथ कहने लगे—'देवी! तुम्हारा काम महान् पुरुष-जैसा है, इसलिये वर माँगो।' वह बोली, 'मेरा दूसरा वर भी अभी रहने दीजिये, काम पड़नेपर ले लूँगी।'

रामराज्याभिषेककी तैयारी और वनवास

बहुत वर्ष बीत जानेके बाद तथा पुत्रोंके युवा हो जानेपर वृद्ध दशरथने रामके राज्याभिषेककी आज्ञा दी। कुब्जा मन्थराने यह खबर कैकेयीको दी। प्रसन्न हो, उसने मन्थराको प्रीतिसूचक आभरण दिया। मन्थराने देवी कैकेयीसे कहा, 'दुःखदायिनी वेलामें तुम प्रसन्न हो रही हो! मैं तो अपमान-सागरमें डूब रही हूँ; यह तुम जानती नहीं। कौसल्या और रामकी तुम्हें चिरकालतक सेवा करनी पड़ेगी, उनका दिया हुआ खाना पड़ेगा। इसलिये मोह त्याग, राजाद्वारा तुम्हें पहलेसे जो दो वर प्राप्त हैं, उनसे क्रमशः भरतका राज्याभिषेक और रामका वनवास माँग लो।' मन्थराके वचन मान, कैकेयी कुपित मुँह बनाकर कोपभवनमें चली गयी। दशरथने यह सुना तो वे उसे मनाने गये। परंतु उसने कोप नहीं छोड़ा। दशरथने उससे कहा, 'बोल, क्या करूँ?' कैकेयीने कहा, 'तुमने दो वर दिये थे; यदि सत्यवादी हो तो उन्हें मुझे दो।' राजाने कहा—'बोल, क्या दूँ?' तब संतोषसे विकसित-वदन हो, वह कहने लगी—'एक वरसे भरत राजा बनें और दूसरे वरसे राम बारह वर्षतक वनमें रहें।' तब दुःखी हो, राजाने कहा, 'देवी! ऐसा बुरा हठ मत कर। बड़ा पुत्र (राम) गुणोंका आगार है, यही पृथ्वीका पालन कर सकता है; अतः इसके अतिरिक्त दूसरा जो कहे, वह दे दूँ।' कैकेयी बोली—'यदि सत्यवादी हो तो ये ही वर दो, दूसरा कुछ भी मुझे नहीं चाहिये। जो आपकी इच्छा हो, वह करो।' तब उसे बहुत ही भला-बुरा कहकर राजाने रामको बुलाया और गद्गद कण्ठसे बोले—'कैकेयी पूर्वकालमें मुझसे प्राप्त दो वर माँग रही है—राज्य भरतको मिले और तू वनमें जा। इसलिये तू ऐसा कर, जिससे मैं झूठा न बनूँ।' रामने नतमस्तक हो दोनों बातें स्वीकार कर लीं। फिर सीता और लक्ष्मणसहित राम वीर-वेषधारी होकर, लोगोंके मन, नयन और मुख-कमलको म्लान करते हुए, कमलवनको संकुचित करता हुआ सूर्य जिस तरह अस्ताचलको जाता है, उसी प्रकार प्रजाको बिलखते हुए छोड़कर वनको रवाना हो गये। 'हा पुत्र! हा ज्ञाननिधि! हा सुकुमार! हा अदुःखोचित! मुझ मन्दभाग्यके लिये अकारण ही देशनिष्कासित तू वनमें किस प्रकार समय बितायेगा?'—इस प्रकार विलाप करते हुए दशरथ मृत्युको प्राप्त हुए।

भरतको रामपादुकाओंकी प्राप्ति

पीछेसे भरत अपने मामाके देशसे लौटा। सच्ची घटना सुनकर उसने माताको फटकारा और अपने सगे-सम्बन्धियोंसहित वह रामके पास पहुँचा। उसने रामको पितृमरणका समाचार सुनाया। रामद्वारा पिताके जलदानकी क्रिया सम्पन्न हो जानेके बाद उन्हें आशाओंसे भरे मुँहवाली भरतकी माँ कैकेयीने कहा—'पुत्र! तुमने पिताकी आज्ञाका पालन किया। अब तुम्हें अपयशके कर्दमसे मेरा उद्धार, कुल-क्रमागत राज्य-लक्ष्मीका उपभोग और भाइयोंका पालन करना ही शोभा देगा।' रामने कहा—'माता! तुम्हारा वचन टाला नहीं जा सकता, परंतु उस अमान्यताका कारण सुनो। राजा सत्यप्रतिज्ञ होकर ही प्रजापालनमें समर्थ हो सकता है; सत्यसे भ्रष्ट होकर वह अपनी पत्नीके पालनमें भी अक्षम होता है। पिताके वचन-पालनार्थ ही मैंने वनवास स्वीकार किया है। अब मुझसे अयोध्या लौट चलनेका आग्रह मत करो।' रामने भरतको आज्ञा दी, 'यदि मैं तुमसे बड़ा हूँ और मेरा तुमपर अधिकार है तो तुम्हें मेरी आज्ञाका पालन करना है और माताकी भर्त्सना नहीं करनी है।' आँखोंमें आँसू लिये भरत हाथ जोड़कर

प्रार्थना करने लगा —'आर्य ! प्रजापालनके कार्यके लिये यदि शिष्यकी तरह मुझे नियुक्त किया गया है तो मुझे आप अपनी पादुकाएँ देनेकी कृपा करें ।' रामने 'ठीक है' कहकर वह बात मान ली—पादुकाएँ दे दीं । भरत पुनः अयोध्या चला गया ।

सीताहरणकी पूर्वभूमिका

इस तरह सीता-लक्ष्मणसहित राम तपस्वियोंके आश्रम देखते तथा दक्षिण दिशाकी ओर बढ़ते हुए एक निर्जन स्थानपर पहुँचे । वहाँ एकान्त वन-प्रदेशमें वे सीताके साथ रहे । कमलके समान नेत्रोंवाले और देवकुमारसदृश रामको देखकर कामवश हुई रावणकी बहन शूर्पणखा आकर एक दिन उन्हें कहने लगी, 'देव ! मुझे स्वीकार करें ।' तब रामने कहा—'मुझसे ऐसी बात मत कह, मैं परायी स्त्रीका सेवन नहीं करता ।' इसपर जनकदुलारी सीताने कहा—'पर-पुरुषसे प्रणयकी प्रार्थना कर रही है, इसलिये तू मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाली निर्लज्ज है ।' तब कुपित हो, भीषणरूप धारण कर वह सीताको डराने लगी और बोली 'तुम्हारे सतीत्वका मैं नाश कर दूँगी, तू मुझे पहचानती नहीं ?' फिर रामने—'यह स्त्री होनेके कारण अवध्य है'—यह विचारकर उसके नाक-कान काट लिये । शूर्पणखा अपने पुत्र खर-दूषणके पास गयी । इस निरपराधिनीको दशरथके पुत्र रामने इस प्रकार दुःखी किया है, यह जान वे कहने लगे, 'माता ! दुःखी मत हो । अपने बाणसे विंधे हुए राम और लक्ष्मणका रुधिर आज हम गिद्धोंको पिलायेंगे ।' इतना कहकर वे रामके पास पहुँचे । इन्होंने रामसे कहा—'भट ! युद्धके लिये तैयार हो ।' तब यम एवं वैश्रवण (कुबेरके) समान पराक्रमी राम और लक्ष्मण दोनों भाई धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर खड़े हो गये । उन्होंने युद्धमें शस्त्रबल और बाहुबलसे खर-दूषणका नाश कर दिया ।

उसके बाद पुत्रवधसे रुष्ट शूर्पणखा रावणके पास गयी । उसे अपने नाक-कान कटने और पुत्रोंके मरणका हाल सुनाया और कहने लगी—'देव ! वह मानवकी स्त्री है । मुझे तो ऐसा लग रहा है कि सम्पूर्ण युवतियोंके रूपका मन्थन करके लोकके लोचनोंको आनन्द देनेवाली उस नारीका निर्माण किया गया है । वह तुम्हारे अन्तःपुरके योग्य है ।'

सीताहरण

इस प्रकार सीताके रूप-श्रवणसे उन्मत्त हुए रावणने अपने अमात्य मारीचको प्रेरणा की, 'तू आश्रममें जा । वहाँ रत्नजटित मृगका रूप बनाकर तापसवेषधारी योद्धाओंको लुभा, जिससे मेरा काम हो जाय ।' तदनन्तर मारीच रत्न-जटित मृगका रूप धारणकर घूमने लगा । उसे देखकर सीताने रामसे कहा—'आर्यपुत्र ! अपूर्व रूपवाले इस मृग-शावकको पकड़िये, वह मेरे लिये खिलौना होगा ।' फिर राम 'ठीक है, ऐसा ही होगा'—यह कहकर धनुष हाथोंमें लेकर उसके पीछे-पीछे जाने लगे । वह मृग भी धीरे-धीरे चलकर फिर जोरसे भागने लगा । 'तू कहाँ जायगा ?' यों कहते-कहते राम भी उसके पीछे दौड़ने लगे । इस प्रकार दूरतक जानेके बाद रामने जान लिया कि 'जो वेगमें मुझे भी जीत रहा है, वह मृग नहीं हो सकता; यह तो कोई मायावी है ।' यह विचारकर उन्होंने बाण फेंका । तब मारीचने मरते-मरते विचारा कि 'स्वामीका काम कर दूँ ।' उसने 'लक्ष्मण ! मुझे बचाओ ।' इस तरह जोरकी चीख मारी । यह सुनकर सीताने लक्ष्मणसे कहा—'जल्दी जाओ, भयभीत स्वामीने ही यह चीख मारी है । निश्चय ही उनपर आपत्ति आयी है ।' तब लक्ष्मणने कहा—'मुझे भैयाके लिये तनिक भी भय नहीं है । तुम कह रही हो, इसलिये जा रहा हूँ ।' फिर वे भी हाथमें धनुष लेकर जिस मार्गसे राम गये थे, उसी मार्गपर तेजीसे भागे ।

यह अवसर पाकर विश्वसनीय तापसका रूप धारणकर रावण सीताके पास आया । सीताको देखकर उसके रूपातिशयसे मुग्ध रावणने बिना किसी विघ्नकी परवा किये विलाप करती हुई सीताका हरण कर लिया । उधर राम और लक्ष्मणने वापस आनेपर सीताको न पाकर, दुःखित हो, उसकी खोज आरम्भ की । रावणको मार्गमें जटायु विद्याधरने रोक लिया था । उसे हराकर किष्किन्धागिरिपरसे होता हुआ वह लङ्का पहुँचा । सीताके लिये विलाप करते हुए तथा मरनेको प्रस्तुत रामको लक्ष्मणने कहा, 'आर्य ! स्त्रीके लिये शोक करना आपको शोभा नहीं देता । यदि मरना ही चाहते हैं तो शत्रुकी पराजयके लिये प्रयत्न क्यों नहीं करते ?' मार्गमें जटायुने खबर दी कि 'रावणने सीताका हरण किया है ।' फिर, युद्ध करनेवालेके सामने तो जय एवं मरण दोनोंका मार्ग खुला है, किंतु विषाद-पक्षका अनुसरण करनेवाले निरुत्साहीके लिये तो केवल मरण ही है, इस प्रकार राम और लक्ष्मण दोनोंने विचार किया ।

सुग्रीव-मैत्री, वालि-वध

तत्पश्चात् राम और लक्ष्मण किष्किन्धागिरिपर पहुँचे । वहाँ वाली और सुग्रीव नामक दो विद्याधर भाई परिवारसहित

सीता-प्राप्ति एवं रामका राज्याभिषेक

तत्पश्चात् युद्ध-समाप्तिपर विभीषण सीताको लाया और उसे रामको सौंप दिया। रामकी आज्ञा मिलते ही विभीषणने रावणका संस्कार किया। फिर राम-लक्ष्मणने अरिंजयनगरमें विभीषणका और विद्याधरश्रेणीके नगरमें सुग्रीवका अभिषेक किया। फिर अपने परिवारसहित सुग्रीव सीता और रामके साथ पुष्पक-विमानमें अयोध्या नगरी गया। प्रजाजन और मन्त्रियोंने रामका राजाके रूपमें अभिषेक किया। फिर अत्यन्त प्रभावशाली रामने सुग्रीवको साथ लेकर अर्धभारतको जीत लिया। विभीषण राजा अरिंजयनगरमें रहने लगा।

विभीषणके वंशमें विद्युद्वेग नामका राजा हुआ। उसकी रानी विद्युत्प्रभा थी। उससे दधिमुख, दण्डवेग और चण्डवेग नामक पुत्र और मदनवेगा नामकी पुत्री हुई। उस मदनवेगाका विवाह श्रीकृष्णके पिता वसुदेवके साथ हुआ। उसीका वर्णन करते हुए संघदास गणिने बीचमें उपर्युक्त रामकथा भी दे दी है। इस कथामें रामके राज्याभिषेक एवं सीताके शेष जीवनका कोई उल्लेख नहीं किया गया है। ग्रन्थकारने संक्षेपमें जितनी कथा देनी आवश्यक समझी, उतनी ही 'वसुदेव-हिन्डी'में लिख दी; क्योंकि यह कोई स्वतन्त्र रामचरितसम्बन्धी ग्रन्थ नहीं है, इसलिये इसकी अधिक अपेक्षा भी नहीं की जा सकती।

रामका नाम प्राचीन जैनागमोंमें 'पउम' यानी 'पद्म' मिलता है। उनके सम्बन्धमें समवायाङ्गसूत्रादिमें संक्षिप्त उल्लेख है। विमलसूरिके 'पउम-चरिउ'में ही सर्वप्रथम जैन-मान्य रामकथा पूरे रूपमें दी गयी है। 'वसुदेव-हिन्डी'से मालूम होता है कि विमलसूरिके 'पउम-चरिउ'की परम्पराको संघदास गणिने नहीं अपनाया। उनके सामने रामसम्बन्धी लोक-कथाकी कोई अन्य ही परम्परा रही होगी। पर आज उस परम्परावाला 'वसुदेव-हिन्डी'के पहलेका कोई अन्य ग्रन्थ प्राप्त नहीं है।

श्रीवल्लभ-सम्प्रदायमें भगवान् श्रीराम

(लेखक—पं० श्रीसबलकिशोरजी पाठक)

श्रीमद्भागवत, द्वितीय स्कन्धके सप्तम अध्यायमें श्रीब्रह्माने श्रीनारदके प्रति जिस क्रमसे अवतारोंका वर्णन किया है, उस क्रममें मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम बीसवें अवतार हैं। अतः क्रमानुसार भगवान् श्रीराम अन्तर्यामीके 'हासपेशल' पदसे सूचित रुचिर हासरूप हैं। आचार्य श्रीवल्लभने स्वप्रकटित श्रीसुबोधिनी व्याख्यामें इस प्रसङ्गका मार्मिक विश्लेषण किया है।

इस संदर्भमें श्रीब्रह्माने भगवान् श्रीरामके चरित्रको केवल तीन ही श्लोकोंद्वारा वर्णन किया है। उसका आशय स्पष्ट करते हुए आचार्य श्रीवल्लभ बतलाते हैं कि "हास तीन ही प्रकारका होता है—प्रसन्नताके कारण होनेवाला हास 'सात्त्विक हास' कहलाता है, लोगोंको मोहित करनेके लिये किया जानेवाला हास 'राजस हास' कहलाता है और अभिमानियोंके अभिमान-खण्डनके लिये किया गया हास 'तामस हास' कहलाता है। यद्यपि भगवान् श्रीरामके अनन्त चरित्र हैं, परंतु सात्त्विक-राजस-तामस प्रकृतिवाले जीवोंके हितार्थ किये जानेवाले समस्त चरित्रोंका वर्गीकरण तीन श्लोकोंमें करते हुए श्रीब्रह्माने इन श्लोकोंद्वारा त्रिविध चरित्रोंको उपलक्षित किया है।"

श्रीब्रह्माद्वारा वर्णित श्रीरामचरितका प्रथम श्लोक—

प्रसन्नताहेतुक हासकी अभिव्यक्ति एवं सात्त्विक चरित्र

अस्मत्प्रसादसुमुखः कलया कलेश
इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य गुरोर्निदेशे।
तिष्ठन् वनं सदयितानुज आविवेश
यस्मिन् विरुध्य दशकन्धर आर्तिमार्च्छत्॥
(भाग० २। ७। २३)

'सर्वकलाओंके अधिपति भगवान् जब हमलोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये प्रसन्नमुख होते हैं, तब संकर्षणादि व्यूहात्मक श्रीलक्ष्मणादिरूप कलाके साथ इक्ष्वाकुके वंशमें श्रीरामरूपसे अवतीर्ण होते हैं। इस अवतारमें पिता दशरथकी आज्ञाका पालन करनेको वे पत्नी एवं लघु भ्राता लक्ष्मणके साथ वनवास करते हैं तथा दशग्रीव रावण उन्हें विरोधका विषय बनाकर पीड़ाको प्राप्त होता है।'

उक्त श्लोकपर आचार्य श्रीवल्लभका वक्तव्य

आप बतलाते हैं कि यहाँ 'अस्मत्प्रसादसुमुखः' इस पदद्वारा अन्तर्यामीके प्रसन्नता-हेतु सात्त्विक हासकी अभिव्यक्ति

स्पष्ट हो रही है। एवं कलाके साथ होनेसे उस हासकी पेशलता या सुन्दरता भी 'कलया' पदसे स्पष्ट हो रही है। दूसरी बात यह है कि ब्रह्मादि देवताओंने रावणादि असुरोंसे त्रस्त होकर अपनी रक्षाके उद्देश्यसे भगवत्प्रार्थना की थी—इसलिये भगवान्‌को हास हुआ कि 'इस रावणादि-वधको तो मेरी वह एक कला ही कर सकती है, जो वैकुण्ठमें विष्णुरूपसे स्थित है; मैंने रक्षा या पालनका कार्य तो उसे ही सौंप रखा है; इस साधारण-से कार्यके लिये ये लोग मुझसे प्रार्थना करते हैं, ये लोग अधिक घबरा गये हैं।'

'हासो हि कार्यस्यालपत्वे भवति ।' 'अनेन भगवान् पूर्ण एव रघुनाथोऽवतीर्ण इति सूचितम् ।'

कृपया पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ही श्रीरघुनाथरूपसे प्रकट हुए और आपकी ज्ञान-कला सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्यमयी शक्ति श्रीसीतारूपसे विदेहवंशमें प्रकट हुई। भगवान् श्रीरघुनाथके प्रकट होनेमें धर्मात्मा ऋषि-मुनियोंकी संकटसे रक्षा करना तो उद्देश्य था ही; क्योंकि धर्म भी आपकी अन्यतम कला है और आप 'कलेश' हैं—कलाओंके समर्थ स्वामी हैं। आपने इक्ष्वाकु राजाके वंशको अपने प्राकट्यके लिये इस दृष्टिसे चुना कि महाराज इक्ष्वाकु भगवद्भक्त थे। श्रीनरसिंहपुराणमें यह कथा प्रसिद्ध है कि 'इक्ष्वाकुकी भक्तिसे भगवान् श्रीरङ्गनाथ ब्रह्माजीके समीप न रह सके, महाराज इक्ष्वाकुके समीप आ गये।' अतः भक्तवंशका उद्धार ही मुख्य उद्देश्य था श्रीरामके अवतारका—यह सिद्ध हो जाता है। 'व्रतके समान पिता दशरथकी आज्ञाका पालन करते हुए भी श्रीरामभद्रने श्रीसीता एवं श्रीलक्ष्मणके साथ वन-प्रवेश क्यों किया? महाराज दशरथकी आज्ञा तो उस प्रकारकी नहीं थी।' आचार्य श्रीवल्लभ इस शङ्काका समाधान करते हैं कि—'देवानां कामनया तथा संकल्पः कृतः ।'—देवताओंकी कामना थी कि सपरिवार रावणका विनाश हो;' वह कामना तभी पूर्ण हो सकती थी, जब रावण श्रीसीताका हरण कर श्रीरामसे विरोध करता। अतः विरोधके निमित्त श्रीसीताको वनमें साथ ले जानेका संकल्प श्रीरामने किया तथा रावणके पुत्र इन्द्रजित् मेघनादके वधके लिये श्रीलक्ष्मणको साथमें लेनेका संकल्प किया; क्योंकि मेघनादका वध श्रीलक्ष्मण-द्वारा ही सम्भव था।

श्रीसीताहरणकी संगतिपर आचार्य श्रीवल्लभके विचार

यद्यपि सीताहरण केवल नाट्यमात्र था, तथापि यह नाट्य इसलिये आवश्यक था कि पत्नीके साथ पुरुषका या पतिके साथ स्त्रीका वनवास वास्तविक वनवास नहीं कहा जा सकता। अतः वनवासकी वास्तविकता सिद्ध करनेके लिये यह लीला हुई।

उक्त विवेचनसे इस संदर्भमें भगवान् श्रीरामके सात्त्विक चरित्रोंका दिग्दर्शन हो जाता है। (१) देवताओंका हित-साधन, (२) धर्मादि कलाओंका पालन, (३) भक्तवंशमें अवतारद्वारा भक्तोद्धार, (४) पिताकी आज्ञाका पालन तथा (५) वनवास—ये पाँचों ही चरित्र सात्त्विक हैं। रावणकी पीड़ा भी श्रीरामके सात्त्विक चरित्रसे विरुद्ध नहीं कही जा सकती। आचार्य श्रीवल्लभ कहते हैं—

'सत्त्वविरोधे तमसो लयो युक्त एव ।'

'सत्त्वसे विरोध करनेपर तमका लय होना उचित ही है।' श्रीरामसे विरोध करनेपर रावणको पीड़ित होना ही था।

श्रीब्रह्माजीद्वारा वर्णित रामचरितका द्वितीय श्लोक—

इतर-व्यामोहक हासकी अभिव्यक्ति एवं राजस चरित्र

यस्या ऽदादुदधिरूढभयाङ्गवेपो
मार्गं सपद्यरिपुरं हरवद् दिधक्षोः।
दूरेसुहृन्मथितरोषसुशोणदृष्ट्या
तातप्यमानमकरोरगनक्रचक्रः ॥

(वही, २ । ७ । २४)

'त्रिपुर विमानके जलानेको उद्यत शंकरके समान भगवान् श्रीराम शीघ्र ही लङ्काको जला देना चाहते थे। श्रीसीता एवं श्रीभरतादि प्रियजनोंके वियोगसे क्रोधाग्नि धधक उठी और आँखें अत्यन्त लाल हो गयीं। उनकी उस दृष्टिसे ही समुद्रके मकर, मत्स्य, सर्प, ग्राह आदि अधिक संतप्त होने लगे तथा भयसे थरथर काँपते हुए समुद्रने उन्हें मार्ग दे दिया।'

उक्त श्लोकपर आचार्य श्रीवल्लभका वक्तव्य

आप बतलाते हैं कि इस संदर्भमें भगवान् श्रीरामके रोषका वर्णन हुआ है; अतः इस चरित्रकी राजसता स्पष्ट ही है; और यहाँ भगवान् श्रीरामकी इतरव्यामोहक हासरूपता-का परिचय भी समुद्रके व्यामोहसे स्पष्ट उपलब्ध हो रहा है। समुद्रको उचित था कि भगवान् श्रीरामको प्रीतिपूर्वक मार्ग दे देता; उनकी प्रिय पत्नीके हरण करनेवाले रावणका वध

उन्हें करना था, ऐसी स्थितिमें उनके उस कार्यमें सहायता करना ही उचित था, परंतु व्यामोहवश समुद्र श्रीरामके मार्गमें विघ्नरूपसे ही उपस्थित हुआ। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम तो समुद्रकी मर्यादाकी रक्षाके लिये ही उसे पादाक्रान्त करना नहीं चाहते थे। अतः अनशन-व्रत लेकर उसके तटपर वे विनीतभावसे विराजमान हो गये। परंतु व्यामोहवश समुद्रको अन्यथा ही भान हुआ कि 'जब ये मेरे पार जानेके उपायको ही नहीं जानते, तब रावणका वध कैसे कर सकेंगे ? इनके पूर्वजोंने मुझे प्रकट किया है, इस नाते इनकी प्राणरक्षा मुझे करनी चाहिये। ये यहींपर रहें इसमें ही हित है।' जब पर्याप्त समयतक प्रतीक्षा करनेपर मार्ग न मिला, तब भगवान् श्रीरामको रोष आया और समुद्रके शोषणार्थ बाणका संधान किया।

उस समय श्रीरामका रोष प्रियजनोंके दुःख-निवारणार्थ था, इस कारण विवेकद्वारा वह नहीं रुक सका। '**हरवद-रिपुरम्**' इस योजनासे इस श्लोकमें यह भी सूचित किया गया है कि 'यदि रावणकी रक्षाके लिये उसके आराध्य शंकर भी पधारें तो भी उनके सहित उस लङ्काको जला डालना है; जिस स्थानपर वैदेही श्रीसीता दुःखित हों, वह स्थान ही सर्वथा भस्मसात् कर डालना है, रावण-वध तो साधारण-सी बात है'—ऐसा निश्चय श्रीरामने किया था। श्रीरामकी दृष्टिमात्रसे समुद्रको ताप हो जाना यह उनकी महिमा है। प्रियमिलनविलम्बासहिष्णु श्रीरामकी रोषमयी लाल आँखोंसे उस अगाध समुद्रमें क्षोभका होना तथा उसके अन्तर्वर्ती जलचरोंमें तीव्र तापका होना—ये श्रीरामकी लोकोत्तर सामर्थ्यके बोधक हैं।

समुद्र इतना भीत हुआ कि मानो विवाहिता पत्नीकी भाँति भीतिने उसके हृदयमें प्रवेश किया हो। उसके अङ्ग-अङ्ग काँपने लगे और मृत्युके चिह्न—शोषण आदि भी प्रतीत होने लगे। वह उनकी महिमाका प्रत्यक्ष कर शरणागत हुआ और मार्ग देनेमें अनुकूल हो गया। इस प्रकार इस श्लोकमें रोष-वर्णनसे चरित्रकी राजसता स्पष्ट हुई है और समुद्रके व्यामोहसे श्रीरामकी इतर-व्यामोहक हासरूपता भी स्पष्ट हुई है।

श्रीब्रह्माजीद्वारा वर्णित रामचरितका तृतीय श्लोक—

इतरगर्वापहारक हासकी अभिव्यक्ति एवं तामसचरित्र

वक्षःस्थलस्पर्शरुग्णमहेन्द्रवाह-
दन्तैर्विडम्बितककुब्जुष ऊढहासम्।
सद्योऽसुभिः सह विनेष्यति दारहर्तु-
र्विस्फूर्जितैर्धनुष उच्चरतोऽधिसैन्ये॥
(वही, २।७।२५)

'श्रीसीताका हरण करनेवाले रावणका गर्व अत्यन्त बढ़ चुका था, दिग्विजय तो उसके लिये एक साधारण तुच्छ बात थी। उसे वह अपनी प्रशंसाका हेतु नहीं समझता था; क्योंकि उसका शारीरिक बल इतना अधिक था कि उसके वक्षःस्थलसे टकराकर देवराज इन्द्रके वाहन ऐरावत हस्तीके दन्त चूर-चूर हो चुके थे। भगवान् श्रीराम उस रावणके प्राणोंके साथ उसके उस बढ़े-चढ़े गर्वको अपने उस धनुषकी टंकारोंसे शीघ्र ही दूर करेंगे, जो धनुष संग्राममें सबसे ऊपर खेलता है।'

उक्त श्लोकपर आचार्य श्रीवल्लभका वक्तव्य

आप बतलाते हैं कि यहाँ 'हास' शब्द गर्वका बोधक ही है, जिसके अपहरणद्वारा श्रीरामकी इतरगर्वापहारक हासरूपता स्पष्ट हो जाती है। इस चरित्रकी तामसता भी आततायी रावणके प्राण एवं गर्वके नाशद्वारा स्पष्ट ही है। दिग्विजयी वीरोंके सामर्थ्यसे भी रावणका सामर्थ्य कहीं अधिक था, इस कारण उसे महान् गर्व हो गया था; महाभिमानी रावणका वह गर्व प्राणोंके साथ ही गया। भगवान्के हासके सामने अन्यका हास नहीं ठहर सकता तथा इस चरित्रकी तामसता इस श्लोकमें '**उच्चरतः**' इस उभयार्थक पदद्वारा अधिक पुष्ट हुई है; क्योंकि उस महापराधी रावणकी मुक्तिमें प्रतिबन्ध उपस्थित करनेको श्रीरामका धनुष उस समय अपने मलरूप बाणोंको छोड़ रहा था, यह अर्थ भी यहाँ विवक्षित है। इस प्रकार आचार्य श्रीवल्लभने भगवान् श्रीरामकी अन्तर्यामिहासरूपताका समर्थन साकार ब्रह्मवादके समर्थनके अनुकूल किया है।

श्रीवल्लभसम्प्रदायमें मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके निम्नाङ्कित चरित्र पुष्टिलीलाके अनुरूप माने जाते हैं—

१—अहल्याका उद्धार,
२—शबरीका आतिथ्य-स्वीकार,
३—सेतुबन्धन तथा
४—समस्त अयोध्यावासियोंको साथ लेकर स्वधामगमन।

क्योंकि इन चरित्रोंमें निस्साधनजनोंको कृपा कर फलका दान दिया है और सेतुबन्धनका मुख्य उद्देश्य भी लङ्कामें रहनेवाली नारियोंको अपने दर्शनसे कृतार्थ करना ही था। रावणादि-वध तो आनुषङ्गिक ही था।

श्रीवैष्णव (रामानन्द) सम्प्रदायमें भगवान् श्रीराम

(लेखक—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'व्रजेश', साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

रामानन्द-सम्प्रदायमें, जो 'श्रीसम्प्रदाय' कहा जाता है, श्री-शब्दका अर्थ लक्ष्मीके स्थानपर 'सीता' किया जाता है। इस सम्प्रदायका दार्शनिक मत विशिष्टाद्वैत ही माना जाता है।

एकमात्र श्रीसीतानाथ ही इस सम्प्रदायके प्रवर्तक एवं उपास्य हैं। उनके प्रति अनन्य शरणागति इस सम्प्रदायकी साधना है। षडक्षर राम-मन्त्र (रां रामाय नमः) इस सम्प्रदायका मूल मन्त्र है और 'राम नाम' ही परम जाप्य है—

जाप्यं तत्तारकाख्यं मनुवरमखिलैर्वह्निबीजं तदादौ ।
रामो ङेऽन्त्ययान्तो रसमितशुभदस्वक्षरः स्यान्नमोऽन्तः ॥

(श्रीवैष्णवमताब्ज भास्कर, श्लो० १०)

ये राम विशुद्ध सनातन तत्त्व,, पूर्ण परात्पर ब्रह्म तथा सर्वथा निर्गुण, निराकार, निर्मान, अगोचर होते हुए भी भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये दृग्गोचर होते हैं तथा सौलभ्य, सौशील्य, मार्दव, औज्ज्वल्य, सौगन्ध्य आदि अनेक शुभ गुणोंके आकर, किमधिकं, अशेषकल्याणगुण-गण-निलय हैं। उनकी शरणागतवत्सल्ता, दृढ़व्रतता एवं कारुण्य आदिकी कहीं उपमा नहीं है—

'साक्षी कूटस्थ एको बहुशुभगुणवाननव्ययो विश्वभर्ता ।'

(वही, ८ तथा उसकी टीकाका सारांश)

'श्री' (सीता) इनसे सर्वथा अनन्य हैं, अतः राम ही सच्चे 'श्रीमान्' हैं[1]। वे हरि-अज-शिव-इन्द्रादिके भी नित्य अभिवन्द्य, अर्चनीय तथा शरण्य हैं। शुक-सनकादि योगियों-द्वारा इनका पदपद्म-किञ्जल्क नित्य ध्येय है। क्लेश-कर्मविपाक, आशयादिसे अपरामृष्ट होनेसे सच्चे अर्थमें ये ही ईश्वर हैं।[2] वेद-पुराणों तथा अगणित रामायणोंद्वारा गेय होनेसे वे समुदितसुयशा एवं उरुगाय[3] हैं। श्रेष्ठ वक्ता, वरद एवं चतुर्वर्गफलद होनेसे वे 'वदान्य' हैं। ब्रह्माने (वाल्मीकि-रामा० युद्धकाण्ड ११६ में) उन्हें शाश्वत चक्रायुध नारायण कहा है; अतः वे सर्वादिकारण, सर्वशक्तिमान्, निष्कलुष, अजरामर, आप्तकाम एवं सर्वथा निष्काम औपनिषद् पुरुष हैं—

श्रीमानर्च्यः शरण्यो विधिभवप्रमुखैर्योगिगम्याङ्घ्रिपद्मो
ऽस्पृश्यः क्लेशादिभिः सत्समुदितसुयशाः सूरिसान्यो वदान्यः ।
शश्वन्नारायणोऽजः सुमहितमहिमा साधुवेदैरशेषै-
र्निर्मृत्युः सर्वशक्तिर्विकलुषविजरो गीर्मतोऽस्यामगम्यः ॥

(वही, श्लोक ९)

अतः पूर्व पुरुषोंद्वारा इनके विषयमें—

वशी वदान्यो गुणवानृजुः शुचि-
र्मृदुर्दयालुर्मधुरः स्थिरः समः ।
कृती कृतज्ञस्त्वमसि स्वभावतः
समस्तकल्याणगुणामृतोदधिः ॥ (आलवन्दार० २१)

—की उक्ति सर्वथा ठीक ही है।

ब्रह्म राम—स्वामीजीके 'ब्रह्म राम' विश्वकी उत्पत्ति, रक्षा और इसका लय करते हैं। उसके प्रकाशसे सूर्य और चन्द्रमा संसारको प्रकाशित करते हैं। जो 'वायुको चलायमान करता है, जो पृथ्वीको स्थिर रखता है, वह ज्ञानस्वरूप, साक्षी, अनेक शुभ गुणोंसे युक्त, अविनाशी एवं विश्वभर्त्ता ईश्वर ही 'ब्रह्म' है। यह ब्रह्म नित्य है, ब्रह्मादिका विधायक, वेदोंका उपदेष्टा, स्वयं सर्वज्ञ कर्ता है, स्वतन्त्र है। इस ब्रह्म-पदसे श्रीरामचन्द्रका ही बोध होता है। रामानन्द उसी रामके सस्मित मुखकमलका स्मरण करते हैं, जो जानकीके कटाक्षोंसे अवलोकित, भक्तोंके मनोवाञ्छित धर्म-अर्थ-काम-मोक्षको देनेके लिये कल्पतरुके समान है।

सीतापति भगवान् राम समस्त गुणोंके एकमात्र आकर, सत्यस्वरूप, आनन्दस्वरूप तथा चित्स्वरूप हैं। स्वयं विष्णु ही रामके रूपमें अवतीर्ण हुए थे। वे लोकोत्तर बलशाली, अद्भुत दिव्य धनुष और बाणोंसे विभूषित तथा आजानुबाहु हैं। परम पुरुषोत्तम राम सीता और लक्ष्मणके साथ नित्य ही सुशोभित रहते हैं। भगवान् ही जीवोंके स्वामी हैं। एकमात्र वे ही 'शेषी' हैं। जीव उनका 'शेष' है। भगवान् राम ही जीवोंके परम प्राप्य हैं। वे ही एकमात्र उपाय भी हैं। स्वामीजीने भगवान् रामके अर्चावतार अथवा प्रतिमावतारके चारों भेदों—स्वयंव्यक्त, दैव, सैद्ध और मानुषकी पूजा षोडशोपचारसे करनेके लिये आदेश दिया है। रामानन्दजीके मतसे सीताके द्वारा ही रामकी प्राप्ति होती है। महारानी सीता पुरुषकारभूता हैं और वे उपाय भी हैं।

(१) 'अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा ।' इत्यादि (वाल्मीकि रामा० ५ । २१ । १५ में सीताजीका वचन)
(२) योगदर्शन १ । ७ ।
(३) देखिये 'गीतावली' २ । २८ तथा 'विनयपत्रिका' २२० वें पदकी अन्तिम पंक्ति ।
(४) एष आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विजिघित्सोऽपिपासः । (छान्दो० उपनिषद् ८ । १ । ५)

गौड़ीय वैष्णवसम्प्रदायमें भगवान् राम

(लेखक—श्रीरामलाल)

महाप्रभु चैतन्यदेवने सं० १५४२ वि०की फाल्गुन पूर्णिमाको नवद्वीपधाममें जन्म लेकर, भक्तियोग और संन्यास-आश्रमका आश्रय लेकर, हरिनाम-संकीर्तनकी माधुरीसे कलियुगको द्वापरमें रूपान्तरित कर दिया। उनकी कृपासे श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन कर लोग कृतार्थ हो गये। चैतन्य-देवके मतमें—व्रजपति नन्दके आत्मज श्रीकृष्ण ही आराध्य हैं। समस्त विद्याका फल चैतन्यदेवने 'कृष्ण-पद-प्रेम' ही स्वीकार किया। चैतन्यभागवतमें महाप्रभुकी उक्ति है—

सेइ से विद्यार फल जानिह निश्चय।
कृष्णपादपद्मे यदि चित्त वित्त रय॥

(चैतन्य-भागवत)

गौड़ीय वैष्णवसम्प्रदायमें यह परम मान्य तथ्य है कि कलियुगमें प्रेमरसका विस्तार करनेके लिये श्रीकृष्ण ही चैतन्यरूपमें प्रकट हुए। उनके संस्तवनमें सनातनगोस्वामीकी वाणी है—

नमः श्रीगुरुकृष्णाय निरुपाधिकृपाकृते।
यः श्रीचैतन्यरूपोऽभूत् तन्वन् प्रेमरसं कलौ॥

(श्रीबृहद्भागवतामृत १।१।१०)

जिस सीमातक गौड़ीय सम्प्रदायमें श्रीचैतन्यदेवद्वारा स्वमुखसे तथा अन्य उपासकों और भक्तोंद्वारा श्रीरामतत्त्वका निरूपण मिलता है, उसमें समन्वय, सहानुभूति और साम्प्रदायिक निष्पक्षता-उदारताका ही दर्शन होता है। तत्त्वतः भगवान् राम और कृष्णमें लेशमात्र भी भेद नहीं है, दोनोंमें स्वरूपतः अभेद है। बृहद्भागवतामृत ग्रन्थमें श्रीसनातन-गोस्वामीने श्रीरामभक्त हनुमान्‌की श्रीनारदके प्रति यह उक्ति व्यक्त की है—

सोऽधुना मथुरापुर्य्यामवतीर्णेन तेन हि।
प्रादुष्कृतनिजैश्वर्यपराकाष्ठाविभूतिना॥

(बृहद्भागवतामृत ४।७१)

हनुमान्‌जीके कथनका आशय यह है कि अब प्रभु रामने मथुरामें श्रीकृष्णरूपमें अवतार लेकर अपने ईश्वरत्व—प्रभुताकी चरम सीमा अभिव्यक्त कर दी है।

गौड़ीय सम्प्रदायके मुरारिगुप्तके जीवनमें भगवान् रामकी भक्ति सहजरूपसे संस्थित थी। वे चैतन्यमहाप्रभुके सहपाठी ही नहीं, उनकी संकीर्तन-लीलाके विशिष्ट परिकर भी थे। चैतन्यदेवके प्रति उनके मनमें सहज अनुराग था। उनके वे अन्तरङ्ग भक्त थे। वे भगवान् रामके उपासक थे। अपने आपको हनुमान् समझकर वे कभी-कभी भावावेशमें उन्हींकी तरह हुंकार भी करते थे। एक दिन चैतन्यमहाप्रभुने उनकी राम-निष्ठाकी बड़ी कड़ी परीक्षा ली। उन्होंने मुरारिगुप्तसे कहा कि 'श्रीकृष्ण और श्रीराममें कोई भेद नहीं है। हमारी हार्दिक इच्छा है कि तुम श्रीकृष्णकी ही लीलाका रसास्वादन किया करो, उन्हींकी पूजा-अर्चामें मन लगाओ।' मुरारिगुप्तने प्रभुकी आज्ञासे रातमें श्रीकृष्णके स्मरण-चिन्तनका प्रयत्न किया। पर उनके हृदयमें श्रीराम थे। वे रातभर रोते रहे। दूसरे दिन उन्होंने चैतन्यदेवसे निवेदन किया कि 'न तो मैं आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन कर सकता हूँ और न मनसे भगवान् रामको बाहर कर सकता हूँ। ऐसी दशामें मैं आत्मघातकर प्राण-त्याग कर दूँगा।' चैतन्यमहाप्रभुने प्रसन्नतासे उन्हें गले लगा लिया और उनकी रामनिष्ठाकी बड़ी प्रशंसा की। मुरारिगुप्त उनकी परीक्षामें उत्तीर्ण हो गये।

एक दिन परमभक्त श्रीवासके आँगनमें भगवन्नाम-संकीर्तन हो रहा था। चैतन्यदेवमें विशिष्ट भगवद्भावका आवेश हुआ।, इस महाप्रकाश-समयमें चैतन्यदेवने मुरारि-गुप्तको श्रीरामके प्रत्यक्ष दर्शनसे कृतार्थ किया। उन्होंने मुरारिगुप्तको अपने आराध्यको देखनेकी आज्ञा दी—

मुरारिरे आज्ञा हैल मम रूप देख।
मुरारि देखये रघुनाथ परतेख॥
दूर्व्वादल श्याम देखे सेइ विश्वम्भर।
वीरासने बसिया छे महा धनुर्धर॥

(चैतन्य-भागवत, मध्यलीला, १० वाँ अ०)

मुरारिगुप्त अपने इष्टदेवका प्रत्यक्ष दर्शन करके भाव-विभोर हो उठे। चैतन्यदेवने कहा—'मुरारि! उठो-उठो! तुम तो हमारे प्राण हो; मैं ही राघवेन्द्र हूँ, तुम साक्षात् हनुमान् हो।'

उठ, उठ, मुरारि! आमार तुमि प्राण।
आमि सेइ राघवेन्द्र, तुमि हनुमान॥

(चैतन्य-भागवत, मध्यलीला, १० वाँ अ०)

मुरारिगुप्तके द्वारा रचित 'रघुवीराष्टक'का श्रवणकर एक दिन चैतन्यदेवने उनकी बड़ी सराहना की। मुरारिने भगवान् रामकी महिमामें कहा है—

उद्यद्विभाकरमरीचिविबोधिताब्ज-
नेत्रं सुबिम्बदशनच्छदचारुनासम्।
शुभ्रांशुरश्मिपरिनिर्जितचारुहासं
रामं जगत्त्रयगुरुं सततं भजामि॥

'उदीयमान सूर्यकी किरणोंसे विकसित हुए कमलके समान जिनके आनन्ददायक बड़े सुन्दर दोनों नेत्र हैं, बिम्बफलके समान मनोहर अरुण रंगके जिनके दोनों ओठ हैं, मनको हरनेवाली जिनकी सुन्दर नासिका है तथा जिनके मनोहर हास्यके सम्मुख चन्द्रमाकी किरणें लज्जित हो जाती हैं, उन तीनों लोकके गुरु—स्वामी भगवान् रामका हम भक्तिभावसे स्मरण अथवा भजन करते हैं।'

चैतन्यमहाप्रभुने मुरारिगुप्तके 'रघुवीराष्टकस्तोत्र'-पाठसे प्रसन्न होकर उनके मस्तकपर 'रामदास' शब्द अङ्कित कर दिया।

दक्षिण भारतकी तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें महाप्रभु चैतन्यद्वारा किन्हीं-किन्हीं स्थलोंके राम-उपासकोंको रामतत्त्वनिरूपणसे कृतार्थ करनेका विवरण उपलब्ध होता है, जिसमें गौड़ीय सम्प्रदायकी राम-उपासनाके सम्बन्धमें पारस्परिक सहानुभूति और निष्पक्षता-उदारतापर प्रकाश पड़ता है। दक्षिणयात्राके समय रास्तेमें समान निष्ठासे चैतन्यदेव कृष्ण और रामके नाम-मन्त्रके उच्चारणसे लोगोंको धन्य करते चलते थे।

राम राघव राम राघव राम राघव पाहि माम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव रक्ष माम्॥'
एइ श्लोक पथे पढ़ि करिला प्रयान।
गौतमी गंगाय जाइ कैल ताहाँ स्नान॥
(चैतन्यचरितामृत, मध्यलीला ९। १२)

चैतन्यमहाप्रभुने सिद्धिवटकी ओर प्रस्थान किया। वहाँ भगवान् सीतापति रघुनाथकी मूर्तिकी वन्दना की, भगवान्‌को प्रणाम कर उन्होंने स्तुति की। वहाँ एक अनन्य रामभक्त ब्राह्मणका निमन्त्रण स्वीकारकर उन्होंने उसके यहाँ कृपापूर्वक पधारकर प्रसाद ग्रहण किया—

सिद्धि वट गेला—याहाँ मूर्ति सीतापति॥
रघुनाथ देखि कैल प्रणति-स्तवन।
ताहाँ एक विप्र ताँरे कैल निमन्त्रण॥
सेइ विप्र राम नाम निरन्तर लय।
राम नाम बिना अन्य बानी ना कहय॥
(चैतन्यचरितामृत, मध्यलीला ९। १५-१७)

दक्षिण भारतके तीर्थ-यात्रा-कालमें चैतन्यदेव सेतुबन्ध रामेश्वरकी ओर प्रस्थान करते समय श्रीशैल पर्वत होते हुए दक्षिण मथुरा—मदुरा पहुँच गये। मदुराके एक रामभक्त ब्राह्मणने प्रभु चैतन्यदेवको मध्याह्न-भोजनके लिये निमन्त्रित किया। उन्होंने कृतमाला नदीमें स्नानकर दोपहरको विप्रके निवास-स्थानको अपनी पवित्र चरण-धूलिसे धन्य किया। उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि ब्राह्मणने न तो अबतक भोजन ही सिद्ध किया है और न उसकी ओर उसकी लेशमात्र चेष्टा ही है। चैतन्यदेवने कारण पूछा तो उसने कहा कि 'यहाँ अयोध्याका राजवैभव तो है नहीं कि आज्ञा होते ही सामग्री एकत्र हो जाय; लक्ष्मणजी फल-फूल लेने अरण्यके भीतर गये हैं, उनके आनेपर ही सीतामाता भोजन-सामग्री सिद्ध करेंगी।'

विप्र कहे, प्रभु मोर अरण्ये वसति।
पाकेर सामग्री वने ना मिले सम्प्रति॥
वन्य शाक फल मूल आनिबे लक्ष्मण।
तबे सीता करिबेन पाक प्रयोजन॥
ताँर उपासना जानि प्रभु तुष्ट हैला।
आस्ते व्यस्ते सेइ विप्र रन्धन करिला॥
(चैतन्य-चरितामृत, मध्य० ९। १६७-१६९)

बात यह थी कि विप्र उस समय वनवासी रामके अरण्य-चरितके चिन्तनमें तल्लीन था। धीरे-धीरे उसने भोजन सिद्ध किया और इस तरह प्रभु चैतन्यदेवने उसकी उपासनासे परम संतुष्ट होकर तीसरे प्रहरके समय प्रसाद-ग्रहण किया। उन्होंने देखा कि विप्रने स्वयं भोजन नहीं किया। कारण पूछनेपर उसने महाप्रभुके सम्मुख निवेदन किया कि 'मैंने सुना है; दुष्ट राक्षस रावणने जगज्जननी सीताका अपहरण करते समय उनका स्पर्श किया; यह मेरे लिये बड़े ही दुःखकी बात है। मैं जीवन नहीं धारण करूँगा। इस बातका स्मरण होते ही मेरा हृदय फटने लगता है। यदि यह बात सच है तो मेरे लिये तो यह अपार शोकका प्रसङ्ग है।'

ए शरीर धरिवारे कभु ना जुयाय।
एइ दुःखे ज्वले देह, प्राण नाहि जाय॥
(चैतन्य-चरितामृत, मध्य० ९। १७३, १७४)

चैतन्यदेवने समझाया कि 'भगवती सीता तो साक्षात् भगवान्‌की प्रियतमा पत्नी हैं। वे चिन्मय तथा सर्वथा दिव्य हैं। प्राकृतिक—भौतिक इन्द्रियोंके द्वारा उनका दर्शन भी नहीं हो सकता। उन चिन्मय देवीका स्पर्श तो किसी भी तरह सम्भव ही नहीं है। रावणने तो मायासीताका हरण किया था, जो उसे वास्तविक सीतास्वरूपिणी ही दीख पड़ी थी। रावणके आनेपर वास्तविक सीता तो अदृश्य हो गयीं और रावणके सम्मुख उन्होंने मायासीता भेजी। चिन्मय वस्तुका भौतिक इन्द्रियोंद्वारा दर्शन नहीं होता। वेद-पुराण—सब-के-सब इस बातके प्रमाण हैं।'

ईश्वर प्रेयसी सीता चिदानन्दमूर्ति।
प्राकृत इन्द्रिये ताँरे देखिते नाहि शक्ति॥
स्पर्शिवार कार्य आछुक ना पाय दर्शन।
सीतार आकृति माया हरिल रावण॥
रावण आसिते सीता अन्तर्धान कैल।
रावणेर आगे मायासीता पाठाइल॥
अप्राकृत वस्तु नहे प्राकृत गोचर।
वेदपुराणे ते एइ कहे निरन्तर॥
(चैतन्य-चरितामृत, मध्य० ९। १७६-७९)

महाप्रभु चैतन्यदेवके समझाने-बुझानेपर ब्राह्मणने भोजन कर लिया। वहाँसे चैतन्यदेवने सेतुबन्ध रामेश्वरकी ओर प्रस्थान किया। रामेश्वरमें एक ब्राह्मण-मण्डलीके बीच बैठकर कूर्म-पुराणकी कथा सुनने लगे। सीताहरणका प्रसङ्ग चल रहा था। प्रभुने सुना कि जिस समय जानकीजीने दशग्रीव रावणको देखा, उन्होंने अग्निकी आराधना की। अग्निने सीताको अपने स्थानमें रख लिया और उनकी छायाको बाहर कर दिया। रावण उसी छायाको हरकर ले गया। चैतन्यदेव इस कथाको सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने प्राचीन पृष्ठ रख लिया; उसकी नयी प्रतिलिपि ब्राह्मणोंको दे दी। दक्षिण मथुरामें आकर उन्होंने रामभक्त ब्राह्मणको प्राचीन पृष्ठ दिखाकर उसे आश्वासन दिया कि रावणने छाया-सीताका हरण किया था—

पतिव्रता शिरोमणि जनक नन्दिनी।
जगतेर माता सीता श्रीराम गृहिणी॥
रावण देखि सीता लैल अग्निर शरण।
रावण हैते अग्नि कैला सीता आवरण॥
(चैतन्यचरितामृत मध्य० ९। १८७-१८८)

रामभक्त ब्राह्मणके चैतन्यदेवद्वारा परितोष-दानमें उनके हृदयकी कृपामयी उदारता और सहृदयताके साथ-साथ गौड़ीय वैष्णवसम्प्रदायकी निष्पक्ष सहानुभूतिका भी दर्शन होता है।

चैतन्यदेवके चरणारविन्द-मकरन्दके रसिक-मधुप स्वनामधन्य सनातनगोस्वामीने अपने 'बृहद्भागवतामृत' ग्रन्थके चौथे अध्यायमें हनुमान्‌जीकी रामोपासनापर प्रकाश डाला है। सनातनगोस्वामीका यह ग्रन्थ श्रीकृष्णकी भक्तिरस-महिमासे ओत-प्रोत है। बृहद्भागवतामृतमें हनुमान्‌द्वारा श्रीरामकी अर्चा-भक्तिका वर्णन श्रीमद्भागवतके पञ्चम स्कन्धके १९ वें अध्यायके पहलेसे आठवें श्लोकके अनुरूप किया गया है। किम्पुरुषवर्षमें श्रीलक्ष्मणजीके बड़े भाई, आदिपुरुष, सीता-हृदयाभिराम भगवान् श्रीरामके चरणोंकी संनिधिके रसिक परमभागवत श्रीहनुमान्‌जी अन्य किंनरोंके सहित अविचल भक्ति-भावसे उनकी उपासना करते हैं—

'किम्पुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं तच्चरणसंनिकर्षाभिरतः परम-भागवतो हनुमान् सह किम्पुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते।'
(श्रीमद्भागवत ५। १९। १)

बृहद्भागवतामृतमें सनातनगोस्वामीने उपर्युक्त श्लोकका विशद विवेचन प्रस्तुत किया है। प्रह्लादकी प्रेरणासे 'नारदजीने किम्पुरुषवर्षमें प्रवेशकर हनुमान्‌जीको श्रीरामकी उपासनामें रत देखा। नारदजीने हनुमान्‌जीका दर्शन किया। वे साक्षात् भगवान् रामचन्द्रजीके मूर्तिस्वरूपका पूजन वनमें पैदा होनेवाली विचित्र सामग्रियोंसे कर रहे थे। आनन्दपूर्वक वे गन्धर्व आदिके मुखारविन्दसे रामरसायनरूप रामायणका श्रवण कर रहे थे। उनका तन रोमाञ्चित और मन उल्लसित था। वे स्वरचित विचित्र दिव्य गद्य-पद्योंसे तथा प्रसिद्ध स्तोत्रोंसे स्तुति करते हुए प्रभुको दण्डवत् प्रणाम कर रहे थे।'

तत्रापश्यद्धनूमन्तं रामचन्द्रपदाब्जयोः।
साक्षादिवार्चनरतं विचित्रैर्वन्यवस्तुभिः॥
गन्धर्वादिभिरानन्दाद्गीयमानं रसायनम्।
रामायणं च शृण्वन्तं कम्पाश्रुपुलकाचितम्॥
विचित्रैर्दिव्यदिव्यैश्च गद्यपद्यैः स्वनिर्मितैः।
स्तुतिमन्यैश्च कुर्वाणं दण्डवत् प्रणतीरपि॥
(बृहद्भागवतामृत १। ४। ५५-५७)

सनातनगोस्वामीने बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे इस बृहद्भागवतामृत ग्रन्थमें हनुमान्‌जीकी महिमाका वर्णन किया है तथा भगवान् रामकी उपासना-पद्धतिका निरूपण किया है।

चैतन्यमहाप्रभुने सोलह भगवन्नाम तथा बत्तीस अक्षर-वाले तारक-महामन्त्रके प्रचारद्वारा श्रीराम और श्रीकृष्ण तथा भगवान् विष्णुकी स्वरूपात्मक अभिन्नताका प्रतिपादन किया। उन्होंने कहा कि—

'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥'

—मन्त्रराजके निरन्तर जापसे जीव संसार-बन्धनसे मुक्त होकर भगवान्‌के परमधामका अधिकारी हो जाता है। इस मन्त्रराजमें हरि, राम, कृष्ण—इन तीन भगवन्नामोंकी स्वरूपगत अभिन्नताका दर्शन उपलब्ध होता है। सर्वचित्तहर्ता भगवान् हरि हैं, सर्वचित्तरमण भगवान् राम हैं और सर्वचित्ताकर्षक भगवान् कृष्ण हैं।

गौड़ीय वैष्णवसम्प्रदायमें भगवान् रामके स्वरूप, रूप, गुण, लीला और नामकी महिमाके चिन्तनकी आधारशिला उदारता और निष्पक्षता है। अचिन्त्यभेदाभेद-दर्शनकी सीमामें भगवान् राम-कृष्ण स्वरूपतः अभिन्न हैं।

गुरु गोविन्दसिंहजी और श्रीराम

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

गुरु गोविन्दसिंहजी सिक्खोंके दसवें और अन्तिम गुरु हुए हैं। ये शस्त्र और शास्त्र दोनोंके धनी थे। इनका सम्पूर्ण जीवन त्याग, बलिदान एवं वीरताके साथ धर्मकी रक्षामें व्यतीत हुआ था। उन्होंने अपनी भावना स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त की थी—

सकल जगत में खालसा पंथ गाजै।
जगे धर्म हिंदू, सकल भंड भाजै॥

इनके अनुपम गुणोंके कारण लोगोंने इन्हें परमेश्वरका स्वरूप मानना प्रारम्भ कर दिया; किंतु इन्होंने इसका निषेध करते हुए सुस्पष्ट शब्दोंमें कहा—

जे मुझको परमेसर उचरहिं। ते नर घोर नरक मँह परहिं॥
मैं हौं परम पुरुष को दासा। देखन आयौ जगत तमासा॥

उक्त परमपुरुषके प्रति उनकी श्रद्धा, उनका विश्वास और उनकी निष्ठा अद्भुत थी। वे जीवनमें पदे-पदे उस महामहिम प्रभुकी कृपा और महिमाका दर्शन करते रहते थे। आप कहते हैं—

दीनन की प्रतिपाल करै नित, संत उबार गनी मन गारै।
पच्छि-पसू, नग-नाग, नराधिप, सर्ब समै सबको प्रतिपारै॥
पोषत है जल में, थल में, पल में, कल के नहिं कर्म बिचारै।
दीनदयाल दयानिधि दोष न देखत है; पर देत न हारै॥

(अकाल स्तुति १। २४३)

आपने यह भी स्वीकार किया है कि 'पृथ्वीपर जब-जब धर्म-पर आँच आती है और दुष्कृतियों एवं पापोंकी वृद्धि होती है तथा सर्वत्र अनाचार और दुराचारका प्रसार हो जाता है; तब-तब करुणासिन्धु परब्रह्म परमेश्वर अवतरित होते और साधु-पुरुषोंकी रक्षा, दुष्टोंका विनाश एवं धर्मकी स्थापना करते हैं'—

'जब जब होत अरिष्टि अपारा। तब तब देह धरत अवतारा॥'

('विचित्र नाटक')

दशरथ-नन्दन श्रीरामको वे साक्षात् परब्रह्म परमेश्वरका अवतार मानते थे। उन्हींके शब्दोंमें—

नृदेव देव राम हैं। अभेद धर्म धाम हैं॥
अबुद्ध नारि तें मनै। अशुद्ध बात को भनै॥
अगाध हैं, अनंत हैं। अभूत सोभवंत हैं॥
कृपालु कर्म-कारणं। बिहालु द्यालु तारणं॥
अनेक संत तारणं। अदेव देव कारणं॥
सुरेश भाय रूपणं। समृद्ध सिद्ध भूपनं॥

इस प्रकार गुरु गोविन्दसिंहजी दशरथकुमार श्रीरामको साक्षात् परमात्मा, अनादि, अनन्त, अनन्त सौन्दर्यसम्पन्न, परमकृपालु, सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ एवं साधु-पुरुषोंके त्राता मानते हैं। उन्होंने अपनी इस भावनाको अपनी समर्थ लेखनीसे 'गोविन्द-रामायण' में अनेक स्थलोंपर व्यक्त कर दिया है।

श्रवणकुमारके नेत्रहीन माता-पिताका [illegible] अवधनरेश महाराज दशरथ अत्यन्त दुःखी हुए। वे अशान्त हो गये। सोचने लगे, 'मैं क्या करूँ? क्या कहीं अग्निमें जल जाऊँ या राज्य त्यागकर साधु हो जाऊँ? या अयोध्या

जाकर स्पष्ट कह दूँ कि मैं ब्राह्मणकी हत्या करके आ रहा हूँ !' आगे वे कहते हैं—

तब भई देव-वाणी बनाय। जिस करथो दूर दुख राव राय॥
तव धाम होहिं सुपुत्र विष्णु। सब काज आज सिध होहिं जिष्णु॥
हैहै सुनाम रामावतार। करिहैं जे सकल जग को उधार॥
करिहैं सुतनिक में दुष्टनाश। इहि भाँति किरत करिहैं प्रकाश॥

'तब आकाश-वाणी हुई कि हे राजन् ! तुम्हारे घरमें स्वयं विष्णु अवतरित होंगे और सब कामनाएँ पूर्ण करेंगे। उनकी रामावतारके नामसे सुकीर्ति होगी। वे सम्पूर्ण जगत्का उद्धार करेंगे और दुष्टोंका नाशकर सुयशका विस्तार करेंगे।'

इसे सुनकर राजाका दुःख दूर हो गया।

..................। तब संतन हेतु उधार।
रावण रिपु परगट भये जग आन राम अवतार॥

'तब संतोंके रक्षक, रावणके शत्रु इस जगत्में रामावतार लेकर प्रकट हुए।'

महर्षि विश्वामित्रके साथ वनमें जाकर श्रीरामने मारीच, सुबाहु और दैत्य-सेनाका विनाश किया। उस समयके श्रीरामके शौर्यका वर्णन करते हुए गुरु गोविन्दसिंहजी कहते हैं—

भुवं भार तारथो। ऋषीशं उबारथो॥
सवै साधु हरषे। भये जीत करषे॥
करैं देव अरचा। कहैं वेद चरचा॥
भयो जग्य पूरं। गए पाप दूरं॥
सुरं सर्व हरषे। धनं धार बरषे॥

'(श्रीरामचन्द्रजीने) धरतीका भार हल्का किया और ऋषीश्वरोंको उबार लिया। सभी साधु प्रसन्न हुए, श्रीरामचन्द्रजीका जय-जयकार हुआ। निश्चिन्त होकर वे देवताओंकी पूजा तथा वेदोंकी चर्चा करने लगे। पाप दूर हुए, यज्ञ पूरा हुआ; सभी देवता प्रसन्न हुए और उन्होंने धन-धान्यकी वर्षा की।'

'जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥'

—रामचरितमानस (१।२४०।२) के इसी भावको श्रीजनकजीकी धनुष-यज्ञशालामें श्रीराम और लक्ष्मणके पहुँचनेपर वे इस प्रकार प्रकट करते हैं—

पुरं नारि देखे। सही काम लेखे॥
रिपं शत्रु जाने। सिधं साधु माने॥
शिशुं बाल रूपं। लख्यो भूप भूपं॥
तप्यो पौन हारी। भटं शस्त्रधारी॥
निशा चंद जान्यो। दिनं भान मान्यो॥
गणं रुद्र पेख्यो। सुरं इन्द्र देख्यो॥
श्रुतं ब्रह्म जान्यो। दिजं व्यास मान्यो॥
हरी विष्णु लेखे। सिया राम देखे॥

जहाँ भी श्रीरामका प्रसङ्ग आता है, खालसा-पंथके प्रवर्तक गुरु गोविन्दसिंहजी उन्हें परमपवित्र, अवतारी, दुष्ट दैत्योंके संहारक और संत पुरुषोंके प्राणाधारके रूपमें देखते हुए अपनी श्रद्धा समर्पित करते हैं—

राम परम पवित्र हैं रघुवंशके अवतार।
दुष्ट दैतन के सँहारक, संत प्राण-अधार॥

अपने भाई लक्ष्मण और परमसाध्वी पत्नी सीताजीके साथ जब भक्तवत्सल श्रीराम अगस्त्यऋषिके आश्रममें पहुँचते हैं, तब उन्हें गुरु 'धर्मकी ध्वजा' कहते हैं—

रिख अगस्त धाम। गये राज राम॥
भुज धरम धाम। सिया सहित बाम॥

मारीच रावणको समझाते हुए कहता है कि 'मैं हाथ जोड़कर विनय करता हूँ, आप बुरा न मानें। श्रीराम उच्चमुच्च अवतार हैं, उन्हें आप मनुष्य न समझें।'

द्वै करि जोर करौं बिनती, सुनि कै नृपनाथ बुरा मति मानो।
श्री रघुबीर सही अवतार, तिनैं तुम मानस कै न पछानो॥

पर जब उसने देखा कि दशाननपर मेरी प्रार्थनाका कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है और इसकी आज्ञाका पालन न करनेपर यह निश्चय ही मुझे मार डालेगा, तब मारीचने सोचा कि 'इस नीचके हाथ मरनेकी अपेक्षा तो श्रीरामके हाथोंसे मुक्ति मिले, यह अधिक अच्छा है; क्योंकि इसके हाथसे मरनेसे तो अधोगति होगी, पर प्रभु श्रीरामके कर-कमलोंसे प्राण-त्याग करनेपर मैं सदाके लिये मुक्त हो जाऊँगा।'

'रावण नीच की मीच अधोगत राघव-पाणि परी सुरि मानी॥'

रावण-वधके अनन्तर उसकी पत्नियाँ रोती-कलपती श्रीरामके सम्मुख उपस्थित हुईं, पर उनके सुन्दर रूपको देखकर सभी उनके चरणोंमें शीश झुकाने लगीं—

जबै राम देखे। महा रूप लेखे॥
रही नाइ सीसं। सबै नार ईसं॥

भगवान् श्रीरामकी अमित सौन्दर्य-राशिको देखकर रानियाँ मोदित हो गयीं। सारी लङ्कामें श्रीरामकी दोहाई

फिर गयी। श्रीरामने प्रसन्न होकर लङ्काका राज्य विभीषणको इस प्रकार दे दिया, जैसे कोई राजा टका (पैसा) सरलतासे दे देता है—

लखैं रूप मोही। फिरी राम दोही॥
दई ताहि लंका। जिमं राज टंका॥

उस समय भगवान् श्रीराम स्वर्ण-तुल्य दीख रहे थे, मानो सब राजाओंके राजा हों। उनके नेत्र अरुण दीख रहे थे, जिन्हें देखकर आकाशके देवता भी छक गये—

लगो रूप हेमं। सभै भूप भूमं॥
रँगे रंग नैनं। छके देव गैनं॥

वनसे लौटनेपर दयामय श्रीराम भरतकी माता कैकेयीसे मिले और उन्हें सारी बातें सुनाकर कहा—'हे माता! तुम्हें धन्यवाद है, तुमने ही मुझे ऋणमुक्त किया है। इसमें (वनमें भेजनेमें) तुम्हारा क्या दोष है? यह तो मेरे भाग्यमें लिखा था। जो होना था, वही हुआ। कोई किसीको क्या कह सकता है?'

मिले भर्तु मातं। कही सर्ब बातं॥
धनं मात तोको। कियो उऋण मोको॥
कहा दोष तोरो। लिखा लेख मेरो॥
हुनी हो सु होई। कहै कौन कोई॥

धर्म-व्रतधारी श्रीरामने अत्यन्त धर्म और न्यायके साथ राज्य किया। उनके राज्यमें सभी सुखी थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—चारों वर्णोंके लोग अपने-अपने धर्म-पालनमें सदा तत्पर रहते थे। वहाँ किसी वस्तुकी कमी नहीं थी। यह उनके शासनका प्रभाव था।

'कमी न कौन काज की। प्रभाव राम राज की।'

शास्त्रमें जितने यज्ञोंका विधान है, भगवान् श्रीरामने उन सबका विधिपूर्वक अनुष्ठान किया। इस प्रकार जब सौ यज्ञ पूरे हो गये, तब इन्द्र तुरंत अपना सिंहासन छोड़कर भाग गया—

जेतक कहे सु जग्ग बिधाना। बिधि पूरब कीने ते नाना॥
एक घाट कीने सत जग्गा। चट पट चक्र इन्द्र उठ भग्गा॥

भगवान् श्रीरामने दस हजार दस वर्षोंतक अयोध्याका राज्य किया—

'दस सहस्र दस बर्ष प्रमाना। राज करा पुर अउध निधाना॥'

जो कुछ वेदका विधान है, श्रीरामके मुँहसे वैसी ही वाणी निकलती थी—

'जैसक हुती वेदकी ससना। निकसा तैस रामकी रसना॥'

बहुत दिनोंके अनन्तर ब्रह्म-रन्ध्रको फोड़कर महाभाग्यवती माता कौसल्याके प्राण निकल गये—

'ब्रह्म रंध्र कँठ फोर कै, भयो कौशल्या काल।'

जिस प्रकार मृतकके संस्कार होने चाहिये, उसी प्रकार श्रीरामने वेदकी विधिसे परम महिमामयी माताके संस्कार किये। जिस घरमें श्रीराम-जैसे सपूत होते हैं, उस घरमें कभी किसी वस्तुका अभाव नहीं रहता—

जैस मृतक के हुते प्रकारा। तैसेइ करे वेद अनुसारा॥
राम सपूत जाहि घर माहीं। ता कहुँ तोट कोऊ कहँ नाहीं॥

गुरु गोविन्दसिंहजी कहते हैं कि 'श्रीरामकी कथा प्रत्येक युगमें अटल रहेगी। इस कथाको सब लोग अनेक प्रकारसे गाते हैं। अन्तमें श्रीराम सारी अयोध्या नगरीके साथ साकेतलोक पधार गये।'

राम-कथा जुग-जुग अटल, सब कोइ भाखत नेत।
सुरग-बास रघुवर करा, सगरी पुरी समेत॥

वे उपदेश देते हुए कहते हैं कि 'जब अन्त निकट आता है, तब सभी मन्त्र निष्फल हो जाते हैं; इसलिये मन लगाकर उस कृपामय प्रभुका भजन करो।'

'सबै मंत्रहीनं सबै अंत कालं। भजो एक चित्तं सुकालं कृपालं॥'

'राम भगति चितु लाईऐ'

हिरदै नामु सरब धनु धारणु, गुर परसादी पाईऐ।
अमर पदारथ ते किरतारथ, सहज धिआनि लिव लाईऐ॥
मन रे राम भगति चितु लाईऐ।
गुरमुखि राम नामु जपि हिरदै सहज सेती घरि जाईऐ॥

—गुरु नानकदेव

रामस्नेही-सम्प्रदायमें रामोपासना

(लेखक—श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायाचार्य, सिंहस्थल-पीठाधीश्वर श्री १००८ श्रीभगवद्दासजी महाराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य)

राम बखानै वेद राम कूँ दाख पुरानै।
राम सांख्य स्मृति राम शास्त्र सु जानै॥
राम गिता भागवत, राम रामायन गावै।
राम विष्णु शिव शेष, राम ब्रह्मा मन भावै॥
राम नाम तिहुँ लोकमें, ऐसा और न कोय।
जन हरिया गुर-गम विना कह्या-सुण्या क्या होय॥

रामस्नेही-सम्प्रदायमें गुरुद्वारा प्रदत्त रामनामका अनन्य भावसे स्मरण करना ही उपासना है और इसे ही मुक्तिका साधन कहा गया है—

जो कोइ चाहै मुगति कूँ तौ सिंवरीजै राम।
हरिया गैलै चालताँ जैसे आवै गाम॥

गुरु—

गुरुका प्रत्येक कार्य असाधारण होता है 'गृणाति उपदिशति ब्रह्मज्ञानं स्वभक्तेभ्य इति गुरुः।'—जो भक्तोंको अध्यात्मज्ञानका उपदेश देकर सांसारिक दुःखसे मुक्त करते हैं तथा अविद्याकी निवृत्ति करते हैं, वे गुरु हैं।' 'गिरति अज्ञानमिति गुरुः'—भक्तोंके हृदयाकाशमें प्रकाशित होकर उनके अज्ञानतिमिरको निगल जाते हैं अर्थात् नष्ट कर देते हैं, वे गुरु हैं।'

हरि है दाता देह का, ताते भया सकाम।
गुरु है दाता ज्ञान का, मन का मेटि विराम॥

भगवान् कृपा करके मानव-देह देते हैं, परंतु स्वयंको प्राप्त करानेवाली कला (भक्ति और ज्ञान) नहीं देते। यह ज्ञान गुरु महाराज ही देते हैं, जिससे स्वतः संकल्प-विकल्प मिटकर प्राणी अपने स्वरूप (राम) को सहज ही प्राप्त कर लेता है। यह ज्ञान भी नाममें ही है।

जिस नामके अवलम्बनसे मनुष्य भगवान्को प्राप्त हो सकता है, उस नामके तत्त्वको समझनेके लिये पहले यह समझ लेना चाहिये कि भगवान्का उनके अपने नामसे क्या सम्बन्ध है?

प्रलयके बाद प्रकृतिस्थित जीवोंका संस्कार सृष्टि-रचनाके अनुकूल होता है। उसी समय 'बहु स्यां प्रजायेय' का भाव परमात्माके अन्तःकरणमें उत्पन्न होता है। इसी भावसे नाम-रूपात्मक ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति होती है। दृश्य-संसारके नाम-रूपात्मक होनेका कारण यह है कि प्रत्येक भाव ही नाम और रूपके द्वारा संसारमें प्रकट होता है। जिस किसीके चित्तमें जो भाव होता है, वह उसी-के अनुसार शब्दद्वारा अथवा रूप-कल्पनाके द्वारा उसी हृदयभावको प्रकट करता है। व्यष्टि-भावके विचारद्वारा यह सिद्धान्त निश्चित होता है कि जिस प्रकार व्यष्टि-जगत्-में प्रत्येक भावका प्रकाश नाम और रूपके द्वारा देखा जाता है, उसी प्रकार समस्त सृष्टिमें भी परमात्माके चित्तका सृष्टि-रचनानुकूल भाव नाम-रूपात्मक जगत्से प्रकट होता है। परमात्माकी इच्छा-शक्तिका नाम ही 'माया' है और यही माया नाम-रूपमयी होकर समस्त संसारको प्रकट करती है। अतः सिद्धान्त हुआ कि परमात्मासे भाव, भावसे नाम-रूप और उसका विकासमय यह संसार हुआ। इसलिये जिस क्रमके अनुसार सृष्टि हुई है, उसके विपरीतक्रमसे लय होगा। अर्थात् मुक्तिकी प्राप्ति करनी हो तो प्रथम नाम-रूपका आश्रय लेकर नामरूपसे भावमें और भावसे परमात्मामें चित्तवृत्तिका लय करना होगा। जिस भूमिपर जो गिरता है, वह उसी भूमिका अवलम्बन लेकर पुनः उठ सकता है। अतः साधक नामके अवलम्बनसे ही भवबन्धनरहित होकर मुक्तिपद प्राप्त करते हैं।

भवबन्धन काटनेवाले नामको ही साकार-सगुणोपासक भक्त सूर एवं तुलसी तथा निर्गुणोपासक-संत कबीरजी, दादूजी, हरिदासजी, जयमलदासजी, हरिरामदासजी आदिने अपनी-अपनी वाणीमें 'राम' शब्दसे स्वीकार किया है। यद्यपि प्रभुके अनेक नाम हैं, उनमें 'राम' सर्वश्रेष्ठ है।

'राणां—ज्ञानादीनां आमः—निवास इति रामः' (ज्ञानियोंका निवास ही राम है)। 'राति—भक्तिमुक्त्यादिकं ददातीति रामः।' (जो भक्ति-मुक्ति आदिका दान करता है, वह राम है)। 'सर्वेभ्योऽधिकतरं राजते शोभते इति रामः।'—(सबसे अधिक शोभायुक्त ही राम है।)

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति राम पदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥*

* 'राम' शब्दसे उस परब्रह्मका ही बोध होता है, जो सच्चिदानन्दमय है और जिसमें योगीजन सदा रमण करते हैं।

रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ।
अन्तरात्मस्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते ॥*

——इत्यादि जिसकी व्युत्पत्तियाँ हैं,—वही मन्त्रराज है । इसलिये जो ऐसे अपने इष्टदेवको अपनी सीमामें बाँधकर स्मरण करता है, वह अपने इष्टको छोटा बना लेता है और सर्वेश्वरत्वके पदसे नीचे गिरा लेता है । इस प्रकारका स्मरण सर्वोपरि अपने इष्टदेवका न होकर एकदेशीय, ससीम होता है । सुमिरन अपने इष्टका ही करो, परंतु शेष स्वरूप अपने आराध्यके ही समझो । चल-अचल—समग्र प्राणियोंमें अन्तर्यामीरूपसे राम (इष्टदेव) ही परिपूर्ण हैं, अर्थात् प्रकाश्य और प्रकाशक सब कुछ राम ही है । सत्यस्वरूपनिष्ठको 'संत' कहा गया है । उसे ही संत-परम्परामें 'साधुजन', शब्दसे परिचित कराया गया है ।

सभी प्रकारके मानसिक विक्षेप हटाकर एकान्तमें नाम-स्मरणसे आचार्यचरणने जो अनुभव प्राप्त किया, उसका विशद वर्णन 'नाम परचा' एवं 'घघर निसाणी'में है, जिसका संक्षिप्त भाव इस प्रकार है—

सम्प्रदायकी साधनापद्धतिमें रामनामस्मरणके लिये 'सुरति-शब्दयोग' का प्रचुरमात्रामें वर्णन है । रसना, कण्ठ, हृदय, नाभि आदि स्थानोंपर सुरतिके साथ शब्दकी स्थिति होती है । इसीलिये नामस्मरणके स्थान चार होनेसे स्मरणके भेद चार माने गये हैं ।

सतगुरु से मिलिया अंतर भिलिया, सार शब्द ओळखदा है ।
तन मन कर हेती रसना सेती रामहि राम रटंदा है ॥

इत्यादि—

प्रथम राम रसना सुमर, दुतिये कंठ लगाय ।
तृतिये हिरदै ध्यान धर, चौथे नाभि मिलाय ॥

अध मध उत्तम त्रय घर ठानू । चौथे अति उत्तम अस्थानू ॥
यह चहुँ भिन देखे आसरमा । राम-भक्ति को पावै मरमा ॥
निश दिन रसना राम उचारा । ज्यों दर बंदीवान पुकारा ॥
ज्यों रसना तन यों तृण वेली । तन तृण संग तंतु वा मेली ॥
वेली पान फूल फल लागा । रसना राम सुमिर भव भागा ॥
अध सुमरन रसना से करिया । करताँई मुझ पार उतरिया ॥
रसना राम सुमर अध तालू । मध सुमरन की आया नालू ॥
मध सुमरन जू ऐसा भाई । मुख सुमरन हालत रह जाई ॥
गदगद कंठहि कमल विगासा । पाया प्रेम भया परगासा ॥
ज्यों घायल उर सालै पीरा । त्यों त्यों व्यापै राम शरीरा ॥
घायल की घायल सोइ जानै । राम भजै सोई मन मानै ॥
निश्चय रामनाम लिव लागी । भ्रमना कंठ कमल की भागी ॥
मध सुमरन की ये परतीति । अब उत्तम सुमरन की रीति ॥
उत्तम सुमरन हृदय स्थानूँ । माँहो माँहि भया घर ध्यानूँ ॥
रसना लेत रामका नामा । उर भीतर पाया विसरामा ॥
सहजाँ सासा शब्द पिछानी । रसना सहत नाम निरबानी ॥
उत्तम सुख सुमरन हिरदा में । यँ नारी पुरुषा मन कामें ॥
उत्तम सुमरन की सुधि आई । टुकि इक ध्यान रह्या ठहराई ॥
अध मध उत्तम सुमर सुजाना । अति उत्तम के माँहि मिलाना ॥
अति उत्तम सुमरन जू ऐसा । या उपमा बरनूँ मैं कैसा ॥
अति उत्तम सुमरन परकारा । रोम रोम लागा रँकारा ॥
अति उत्तम नाभी अस्थानूँ । मन संकल्प विकल्प न ठानूँ ॥
अति उत्तम सुमरन सरबंगा । अक्षर एक भया अनभंगा ॥

यहाँ 'एक भया' से कूटस्थ अक्षर और अनभंग (प्रकृतिसे पर) पुरुषोत्तम (राम) एक ही है । देखें गीतातत्त्वविवेचनी अध्याय १५ श्लोक १५ से २० तक । जब 'जीव-सीव' एक हो जाते हैं, तब परस्पर कोई भेद रहता ही नहीं—

हंसा सुन सरवर मिल्या, सरवर हंस मिलाय ।
हरिया परसर खेलताँ, सहजाँ रहे समाय ॥

ऐसी स्थितिमें एक ही नाम और एक ही स्थान होनेसे स्वयंकी स्वयं ही पूजा (उपासना) करता है; क्योंकि सहजमें सहज (सत्यस्वरूप) के अतिरिक्त अन्यका समावेश ही नहीं, अर्थात् नाम-रूप आदिका भाव भी नहीं ।

'सहज तन मन्न करि सहज पूजा । सहज सा देव नहिं और दूजा॥'

× × × ×

सहजाँ मारग सहज का, सहज किया विश्राम ।
हरिया जीव रु सीव का, एक नाम अरु ठाम ॥
जीव सीव मिल एकठा, रहे निरन्तर ठाय ।
हरिया ब्रह्मानन्द में, ना कोई और समाय ॥

'नेति-नेति' कहकर जिसका वर्णन किया गया है, उसे ही आचार्यचरण 'न कोई, न कोई' (न को) कहकर बतलाते हैं—

न को रस्स भोगी न को रहत न्यारा ।
न को आप हरता न कर्ता न्यवहारा ॥

* जो अन्तरात्माके रूपमें सभी चराचर प्राणियोंमें रम रहा है, वही 'राम' कहलाता है ।

न को विष्णु ब्रह्मा न कोई नगेशं । न को आदि शक्ति न कोई महेशं ॥

—इत्यादि रूपसे कहकर अन्तमें कहते हैं—

ज्याप्या हम जैसा कहिये कैसा, कलु इक मन सरमंदा है ।
कायम कुरवाणी, कर आसाणी, तुहि तुहि काम कमंदा है ॥

जैसा हमने पहचाना है, उसका वर्णन कैसे किया जाय; क्योंकि वह तो अवर्णनीय है—अर्थात् मन-बुद्धि-वाणीसे ग्राह्य नहीं; इसलिये जैसा-तैसा कहनेमें भी संकोच होता है; फिर भी हमने जिसको, जिस साधनसे, जिस रूपमें देखा है, वह इस प्रकारका है—

दारक में पावक बसै, यूँ आतम घट माँहि ।
हरिया पयमें विरत है, बिन मथियाँ कुछ नाँहि ॥
एक राम कूँ सिंवरताँ होय सकल आसान ।
हरिया गुरु परसाद ज्यूँ, पोख्या इन्द्री-प्रान ॥
हिंमत मत छोडो नराँ मुख से कहताँ राम ।
हरिया हिंमत से किया ध्रू का अड़ल धाम ॥
राम नाम कूँ सिंवरताँ पाया मन विसराम ।
जन हरिया निज नाम का मैं हूँ सदा गुलाम ॥
रामनाम बिन मुक्ति की, जुगति न ऐसी और ।
जन हरिया निशिदिन भजो, तजो दूसरी दौर ॥
जन हरिया निशि दिन भजो, रसना सेती राम ।
नाम बिना जीतब किसो, आय जाय बेकाम ॥
सब सरणाई राम है, असरण एको राम ।
जन हरिया इन बाहिरो, कोई सरै न काम ॥
हरिया एको राम है, सबका सिरजनहार ।
या बिन धारै दूसरा, पड़ै गैब की मार ॥
राम नाम को नित भजो, रसना होठ समेत ।
हरिया जोग र जुक्ति बिन, सहज न को सिंवरेत ॥

अन्तमें—

निगम कहत है नाम कूँ हरिया सब कहै संत ।
सिव ब्रह्मा विष्णू कहै राम नाम निज मंत ॥
चतुर निगम को तिलक है, षट शास्त्र ततसार ।
पुराण अठारे को मूल है, राम शब्द अणपार ॥

—पीराराम

सत्यवाक्, नामपरायण, श्रद्धावान्, दास्यभावयुक्त देह-गेह-ममत्वरहित ही वास्तवमें मन-वच-कर्मसे रामस्नेही है । रामके समान अन्य नाम नहीं, तत्त्वके समान कोई मत नहीं, रहनीके समान कथनी नहीं, साधुके समान कोई बन्धु नहीं, सहज सुमिरनके समान अन्य सुमिरन नहीं—इत्यादि सात्त्विक भावोंसे जो सुमिरनपूर्वक भक्ति की जाती है, यही रामस्नेही-सम्प्रदायकी रामोपासना है ।[1]

रघुवर राम

(रचयिता—पाण्डेय श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')

धूरिसे पगोंकी अघ दूर कुलटाका हुआ,
नाम उलटाका फल होता सही नाम-सा ।
मंजु जिनके थे पदकंज धोये केवट ने,
वटने सुछीरसे सँवारा जटाधाम-सा ॥
विगत-विषाद जो निषादसे मिले थे गले,
बेर शबरीका जिन्हें भाया अभिराम-सा,
पावन पतितका, उधारन अधमका भी
सिंधु करुणाका, दीनबन्धु कौन राम-सा ॥ १ ॥
देह रक्तरंजित जटायुकी जटासे पोंछ
मान दे पिताका, पहुँचाया निज धामको ।
कंठसे लगाकर सुकंठको बनाया सखा,
सुलभ कराया राज्य-सुख अभिरामको ॥
भीषण विभीषणको क्षणमें बनाया सौम्य,
रणमें जिलाया कपि-कटक तमामको ।
मूर्ति जो कृतज्ञताकी, पूर्ति मित्रताकी नित्य
वन्दे दयाधाम उन्हीं रघुवर राम को ॥

१. विशेष परिचयके लिये 'हरिरामदासजी महाराजकी वाणी' पढ़ें । प्राप्तिस्थान—संत-साहित्यसंगम, बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।

योगिराज अरविन्दकी दृष्टिमें भगवान् श्रीराम

(लेखक—श्रीचन्द्रदीपजी त्रिपाठी)

श्रीअरविन्द प्राचीन हिंदू-परम्पराका अनुसरण करते और अवतारवादमें पूरा-पूरा विश्वास रखते हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'गीता-प्रबन्ध'में इस विषयपर काफी प्रकाश डाला है और दार्शनिक ढंगसे यह समझानेका प्रयास किया है कि अवतारकी मान्यताके पीछे क्या सत्य है, अवतारका स्वरूप और हेतु क्या होता है; भगवान्के अवतरणकी प्रणाली क्या है। उन्होंने आधुनिक मनकी अवतारसम्बन्धी शङ्काओंका भी पर्याप्त निरसन किया है और अपने पत्रोंमें भी अवतार-तत्त्वसे सम्बन्धित अनेक तत्त्वोंका प्रतिपादन किया है। वे भगवान्के प्राकट्यके चमत्कारकी ओर समालोचककी दृष्टि आकर्षित करते हुए कहते हैं—'निश्चय ही पार्थिव चेतनाके लिये स्वयं यह तथ्य ही है कि भगवान् प्रकट होते हैं। यह एक महान्-से-महान् घटना है। जरा यहाँ पृथ्वीपरके अन्धकारकी ओर तो देखो और यह विचार करो कि यदि भगवान् सीधे हस्तक्षेप न करते और ज्योतियोंकी ज्योति अन्धकारमेंसे न फूट निकलती—क्योंकि भागवत अभिव्यक्तिका यही तात्पर्य है—तो क्या अवस्था होती।'

श्रीअरविन्द यह मानते हैं कि अवतार पार्थिव चेतनाके क्रम-विकासमें सहायता करने आते हैं। जब-जब निम्न पार्थिव चेतनाके भागवत चेतनामें वर्द्धित होनेके मार्गमें संकटकाल आते हैं, तब-तब भगवान् स्वयं मानुषी तनुमें अवतीर्ण होकर आगेका विकास-सोपान पार करते और मानवचेतनाके आगे बढ़नेका मार्ग प्रशस्त करते हैं। श्रीअरविन्द एक प्रसङ्गमें 'गीता-प्रबन्ध'में कहते हैं—'अवतारका आना होता है मानव-प्रकृतिमें भागवत प्रकृतिको प्रकट करनेके लिये, जिससे कि मानव-प्रकृति भागवत प्रकृतिमें रूपान्तरित हो जाय।'

एक समालोचकने वालि-वध आदि कामोंके कारण जब रामके अवतारत्वपर संदेह प्रकट किया तो श्रीअरविन्दने उत्तर दिया कि 'जहाँतक अवतारपनकी बात है, मैं रामको अवतार स्वीकार करता हूँ; क्योंकि वे योजनाके अंदर एक स्थानको पूरा करते हैं और मुझे ऐसा लगता है कि उसे वह समुचित रूपमें ही पूरा करते हैं और इस कारण स्वीकार करता हूँ कि जब मैं रामायण पढ़ता हूँ, तब मैं एक अन्तः-प्रेरणा अनुभव करता हूँ, जिसे मैं मान्यता देता हूँ और जो इस कहानीको एक ऐसी महान् संकटपूर्ण संक्रमणकालीन घटनाका रूपक बना देती है, जो पार्थिव क्रम-विकासके अंदर घटित हुई थी। इतना ही नहीं, वह प्रमुख चरित्रके व्यक्तित्व और कार्यको एक ऐसा अर्थ प्रदान करती है, जो विशाल, आदर्शमय, विश्वव्यापी है। और यदि ये कार्य किसी दूसरे व्यक्तिके द्वारा घटनाओंकी किसी दूसरी योजनाके अंदर किये गये होते तो इनको यह अर्थ नहीं मिला होता। अवतार असाधारण कार्योंको करनेके लिये बाध्य नहीं होता, बल्कि वह अपनी क्रियाओंको या अपने कार्यको, अथवा वह जो कुछ है, उसको, इनमेंसे किसी एकको या सबको एक ऐसा अर्थ और एक ऐसी फलदायी शक्ति देनेको बाध्य होता है, जो पृथिवी और उसकी जातियोंके इतिहासमें किये जानेवाले किसी प्रमुख कार्यके अङ्ग हों।'

फिर एक दूसरे पत्रमें श्रीरामके कार्यमें आध्यात्मिकताकी कमी महसूस करनेवाले आलोचकको उत्तर देते हुए और श्रीरामके कार्यको समझाते हुए कहते हैं—'नहीं, निश्चय ही नहीं, कोई अवतार आध्यात्मिक नबी (पैगंबर) होनेके लिये बिल्कुल बाध्य नहीं है—सच पूछा जाय तो वह कभी निरा नबी नहीं होता, बल्कि वह सिद्ध करनेवाला संस्थापक होता है—केवल बाहरी चीजोंका नहीं—यद्यपि वह बाहर भी कुछ संसिद्ध करता है, बल्कि, जैसा कि मैंने कहा है, कुछ ऐसी मौलिक और महत्त्वपूर्ण वस्तुका संस्थापक होता है, जो पार्थिव क्रम-विकासके लिये आवश्यक होती है—उस पार्थिव विकास-के लिये, जो क्रमशः एक-एक स्तर पार करता हुआ भगवान्की ओर जानेवाला शरीरधारी आत्माका क्रम-विकास है। उस विकासके आध्यात्मिक स्तरको स्थापित करना रामका कार्य बिल्कुल नहीं था—अतएव उसके साथ उन्होंने बिल्कुल ही अपना कोई सरोकार नहीं रखा। उनका कार्य था रावणको मार डालना और रामराज्य स्थापित करना—दूसरे शब्दोंमें, भविष्यके लिये ऐसे सात्त्विक सभ्य मनुष्यके योग्य एक व्यवस्थाकी सम्भावनाको निश्चित कर देना, जो अपने जीवनको बुद्धि, सूक्ष्मतर भावों, नैतिकता अथवा कम-से-कम नैतिक आदर्शोंके द्वारा—उदाहरणके लिये सत्य, आज्ञाकारिता, सहयोग और सामञ्जस्य, पारिवारिक और सार्वजनिक सुव्यवस्थाका बोध आदिके द्वारा परिचालित करता है—इसे एक ऐसे जगत्में स्थापित करना, जो अभी भी विद्रोही शक्तियोंके अधिकारमें

है, जहाँ पशु-मन और प्राणिक अहंकारकी शक्तियाँ अपनी निजी संतुष्टिको ही जीवनका विधान मानती हैं, दूसरे शब्दोंमें, जहाँ वानर और राक्षस राज्य करते हैं। यही अर्थ है राम और उनके जीवन-कार्यका तथा उन्होंने यह कार्य जैसे पूरा किया या नहीं किया, इसके अनुसार विचार करना होगा कि वे अवतार थे या नहीं। उनका कार्य बाली-जैसे दुर्धर्ष नृशंस पशुके साथ शूरवीर क्षत्रियका सुखान्त नाटक खेलना नहीं था, बल्कि उनका कार्य था उसे मार डालना और विश्वव्यापी पशुभावको अपने वशमें करना। उनका कार्य निश्चय ही कोई व्यक्ति होना नहीं था, बल्कि महान् आदर्श-रूप सात्त्विक मनुष्य होना था—सच्चा पति और प्रेमी, प्यारा और आज्ञाकारी पुत्र, स्नेही और यथार्थ भाई, पिता और मित्र होना था—वे सब प्रकारके लोगोंके मित्र हैं—नीच गुहके मित्र, पशुओंके नेता सुग्रीव-हनुमान्‌के मित्र, गीध जटायुके मित्र, यहाँतक कि राक्षस विभीषणके भी मित्र हैं। यह सब वे बहुत उज्ज्वल और आकर्षक रूपमें थे, पर सबसे अधिक सहज—स्वाभाविक और प्रामाणिक रूपमें थे।

हरिश्चन्द्र या शिविकी तरह किसी एक स्वरपर उनका अत्यधिक जोर नहीं था, बल्कि उनमें एक प्रकारकी सुसामञ्जस्यपूर्ण परिपूर्णता थी। परंतु सबसे अधिक उनका कार्य था, उन सब चीजोंको स्थापित करना और उनका आदर्श रखना, जिनपर सामाजिक आदर्श और उसका स्थायित्व निर्भर करता है—जैसे सत्य और न्यायपरता, धर्मबोध, जन-भावना और सुव्यवस्थाका बोध, अपनी पितृभक्ति और अपने पिताके प्रति आज्ञाकारिताकी अपेक्षा बहुत अधिक—यद्यपि उसके लिये भी—उन्होंने प्रथम सत्य और न्यायके लिये व्यक्तिगत अधिकारोंका त्याग किया, जो उन्हें राजा और प्रजाद्वारा उत्तराधिकारी चुने जानेके कारण मिला था और अपने जीवनके सर्वोत्तम चौदह वर्षोंका बलिदान कर देशसे बाहर वनवासमें बिताया। अपनी लोक-भावना और सामाजिक सुव्यवस्थाके लिये (प्राचीन भारतीयों, यूनानियों और रोमनोंकी दृष्टिमें यह एक महान् और सर्वोच्च नागरिक गुण माना जाता था; क्योंकि उस युगमें मानव-विकासधाराकी सबसे बड़ी आवश्यकता व्यक्तिका पृथक् विकास और उसकी संतुष्टि नहीं, वरं सुव्यवस्थित समाजकी सुरक्षा थी) उन्होंने अपने निजी सुख और पारिवारिक जीवन तथा सीताके सुखका बलिदान कर दिया। इस विषयमें समस्त प्राचीन जातियोंके नैतिक बोधके साथ वे एकमत थे, यद्यपि आधुनिक मनुष्यकी बादकी औपन्यासिक व्यष्टिवादी भावुकताप्रधान नैतिकतासे उनका विरोध था; क्योंकि आधुनिक मनुष्य उस कम कठोर नैतिकताको ठीक इसी प्रकार ग्रहण कर सकता है कि प्राचीन लोगोंने सामाजिक सुव्यवस्थाकी भावनासे संसारको सुरक्षित करनेके लिये व्यक्तिका बलिदान कर दिया। अन्तमें रामका कार्य यह था कि वह रावणके साम्राज्य, राक्षसीय आतङ्कका नाश करके, सात्त्विक मानवके आदर्शके लिये संसारको सुरक्षित बना दे। यह सब उन्होंने अपने व्यक्तित्व और कर्ममें विद्यमान एक ऐसी दिव्य प्रेरणाके साथ किया कि उनके स्वरूपकी छाप भारतीय संस्कृतिके मनपर बीस लाख वर्षोंसे अधिक कालसे पड़ी हुई है और जिस चीजका उन्होंने प्रतिनिधित्व किया, वह सभी देशोंके मनुष्योंकी बुद्धि और आदर्शवादी मनपर छायी हुई है तथा मानवीय प्राणके निरन्तर विद्रोह करते रहनेपर भी वह शायद तबतक वैसी ही बनी रहेगी, जबतक कोई महत्तर आदर्श नहीं खड़ा हो जाता। और इन सब बातोंके बावजूद तुम यह कहते हो कि वे अवतार नहीं थे? परंतु उनका कार्य और अर्थ पृथ्वीकी विकसनशील जातिके भूतकालपर अङ्कित रहेंगे।'

अनुजोंसहित श्रीरामकी आरती

सीतल करत आरती मैया।
चारु रतन के चारि सिंहासन रवि-ससि कोटि उदैया॥
रघुवर-लछिमन-भरत-सत्रुहन नृप दसरथके छैया।
रतन जटित को पलँग बन्यो है, ऊपर लाल दुलैया॥
मातु कौसिला करत आरती, दोउ कर लेत बलैया।
कीट मुकुट, मकराकृत कुंडल, कर सोहै बान-धनुइया॥
मानदासके तन-मन वारो सुंदर है राम रमैया॥

— संत मानदासः भजन-रत्नावली

सूरदासके रामचरित-चित्रणकी पृष्ठभूमि

(लेखक—श्रीप्रभुदयालजी मीतल)

महात्मा सूरदास हिंदी-साहित्यमें कृष्ण-काव्यपरम्पराके उन्नायक और उसके सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। कृष्णसम्बन्धी प्रचुर और महत्त्वपूर्ण काव्यके कारण ही उनका नाम इतिहासमें अमर है। किंतु इस काव्यका अनुशीलन करनेसे ज्ञात होता है कि यह केवल कृष्णसम्बन्धी रचनाओंतक ही सीमित नहीं है, वरं इसमें राम-सम्बन्धी रचनाएँ भी हैं। कृष्णोपासक वल्लभ-सम्प्रदायसे सम्बन्धित एक भक्त-कवि होनेके कारण अपने उपास्य एवं इष्टदेव श्रीकृष्णकी लीलाओंका विविध रूपमें गायन करना उनके लिये स्वाभाविक था; किंतु उन्होंने राम-काव्यकी रचना क्यों की और उनके रामचरित्र-चित्रणका आधार क्या है यह विद्वानोंके अनेक अनुमानों और उनकी विविध कल्पनाओंका विषय बना हुआ है।

एक विद्वान्‌का मत है कि 'सूरदासजी श्रीवल्लभाचार्यजीके सम्पर्कमें आनेसे पहले रामानन्दी सम्प्रदायमें दीक्षित थे; अतः उनकी राम-सम्बन्धी रचनाएँ उनके जीवनके आरम्भिक कालकी हैं।' अन्य विद्वानोंका मत है कि 'सूरदासने श्रीमद्भागवतके अनुवादरूपमें सूरसागरकी रचना की है, अतः भागवत-नवमस्कन्धका अनुवाद करते हुए उनका राम-काव्य भी प्रस्तुत हुआ है।' ये मत सूरदासजीके जीवन-वृत्तान्त और उनके राम-काव्यका अनुशीलन करनेसे असंगत ज्ञात होते हैं।

सूरसागरके रामसम्बन्धी पदोंका अवलोकन करते ही पाठककी दृष्टि सर्वप्रथम इस बातपर जाती है कि इनमें राम-जन्म-सम्बन्धी प्रसङ्गके अतिरिक्त बालचरित्रके पद संख्यामें कम हैं, जब कि हनुमान्-अङ्गदके वीरत्व और राम-रावणके युद्धसम्बन्धी पद संख्यामें अधिक हैं। यही कारण है कि इन पदोंमें बालकाण्ड और अयोध्याकाण्डकी अपेक्षा सुन्दरकाण्ड और लङ्काकाण्डकी कथाका विशेषरूपसे वर्णन हुआ है। यह बात सूरदासकी प्रकृतिके विरुद्ध पड़ती है; क्योंकि उनका मन जितना बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड-सम्बन्धी वात्सल्य और शृङ्गारादि रसोंके प्रसङ्गोंमें रम सकता था, उतना सुन्दरकाण्ड और लङ्काकाण्ड-सम्बन्धी-वीर-रसके प्रसङ्गोंमें नहीं।

यहाँपर स्वाभाविक रूपसे ये प्रश्न उत्पन्न होते हैं कि 'सूरदासने कृष्ण-काव्यके अतिरिक्त रामकाव्यविषयक पदोंकी रचना क्यों की? और उनमें भी अपनी प्रकृतिके प्रतिकूल कोमल विषयोंका कम तथा मार-काट एवं युद्धसम्बन्धी प्रसङ्गोंका अधिक वर्णन क्यों किया?' इन प्रश्नोंके उत्तरके लिये वल्लभ-सम्प्रदायकी भक्ति-भावना और सेवा-विधिका ज्ञान होना आवश्यक है।

सूरदासजी जिस वल्लभ-सम्प्रदायमें दीक्षित थे, उसमें श्रीकृष्णको सर्वोपरि उपास्यदेव माना जाता है। इस सम्प्रदायकी मान्यता है कि परब्रह्म श्रीकृष्णने दुष्टोंके दलनके लिये समय-समयपर अवतार धारण किया है; ऐसे चौबीस अवतार हुए हैं, जिनमें श्रीकृष्ण पूर्णावतार हैं; शेष कलावतार एवं अंशावतार हैं। कलावतारोंमें भगवान् रामका सर्वोपरि महत्त्व है, उनके पश्चात् नृसिंह और वामनका है। इन चारोंकी जयन्तियोंके उत्सव वल्लभ-सम्प्रदायी मन्दिरोंमें मनाये जाते हैं; किंतु इनमें कृष्ण-जन्मोत्सवके पश्चात् राम-जन्मोत्सवको ही अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। वल्लभ-सम्प्रदायके इतिहाससे विदित होता है कि श्रीवल्लभाचार्यजीने सूरदासको अपने मतकी दीक्षा देकर उनको गोवर्धनस्थित श्रीनाथजीके मन्दिरमें कीर्तन करनेका आदेश दिया था। इसके अनुसार सूरदास सं० १५६८ से श्रीनाथजीकी झाँकियोंमें उपस्थित होकर नित्य-नये पदोंकी रचनाद्वारा उनका कीर्तन करने लगे। उनका यह क्रम उनके देहावसान-काल सं० १६४० तक चलता रहा था। उस ७२ वर्षके सुदीर्घकालमें उन्होंने जिन अगणित पदोंकी रचना की, वे ही बादमें 'सूरसागर' के रूपमें संकलित किये गये। वल्लभाचार्यजीके उपरान्त उनके द्वितीय पुत्र विट्ठलनाथजीने सं० १६०२में श्रीनाथजीकी सेवा-विधिकी पुनर्व्यवस्था करते हुए उसका विस्तार किया और 'अष्टछाप'-की स्थापना की थी। उस समय वल्लभसम्प्रदायी सेवा-विधिमें कितने ही उत्सवोंकी व्यवस्था की गयी थी। श्रीनाथजीकी आठों झाँकियोंमें समय, ऋतु, त्यौहार और जन्म-तिथियोंके अनुसार प्रतिदिन कीर्तन होने लगे, जिनमें सूरदास और अष्टछापके अन्य कीर्तनकार पृथक्-पृथक् तथा सम्मिलित रूपमें भाग लेते थे।

वल्लभसम्प्रदायी मन्दिरोंमें रामनवमीके दिन राम-जयन्तीका उत्सव होता है। इसी प्रकार दशहराका उत्सव भी प्रायः राम-विजयसे सम्बन्धित माना जाता है। इन दोनों उत्सवोंमें रामसम्बन्धी पदोंद्वारा कीर्तन करनेका नियम है। यह नहीं कहा जा सकता कि इस सम्प्रदायमें सं० १६०२ से पहले भी रामनवमी और दशहराके उत्सव प्रचलित थे या नहीं; किंतु तबसे अबतक वे बराबर मनाये जाते हैं।

सूरदासके जीवनकालमें रामनवमी और दशहराके उत्सव सं० १६०२ के पश्चात् भी ३८ बार हुए थे। उनमें कीर्तन करते हुए उन्होंने प्रत्येक बार दो-दो चार-चार पद भी गाये हों, तब भी उनके द्वारा रामसम्बन्धी अनेक पद रचे जानेका प्रमाण मिलता है। इस प्रकारके पद सर्व-प्रथम कीर्तनकी पुस्तकोंमें संकलित किये गये, जो रामनवमी-को 'रामजन्मकी बधाई' और दशहराको 'करखा' के पदोंके रूपमें उपलब्ध हैं। इन्हीं पदोंको बादमें राम-कथाके क्रमसे भी संकलित किया गया, जो सूरसागर, नवमस्कन्धमें प्राप्त होते हैं। ये ही पद सूरकृत 'राम-पदावली' अथवा 'सूर-रामायण'के रूपमें भी संकलित मिलते हैं; किंतु सूरदासने इन्हें राम-चरित्रका क्रमबद्ध चित्रण करनेके लिये नहीं रचा था, वरं वे राम-जन्मोत्सव और दशहरापर गायन करनेके लिये रचे गये थे।

रामनवमीको रामजन्मकी बधाईके रूपमें गाये हुए पदोंमें बालकाण्डकी कथाओंका कथन हुआ है और दशहराके अवसरपर गाये हुए 'करखा' के पदोंमें सुन्दरकाण्ड और लङ्काकाण्डके वीररसपूर्ण प्रसङ्गोंका वर्णन किया गया है। इन पदोंमें उक्त दोनों उत्सवोंके अनुरूप कथा-क्रमका ही नहीं, वरं रागोंका भी पृथक्करण किया गया है। रामनवमीविषयक पद विशेषकर कान्हरौ, बिलावल और सारंग रागोंमें रचे गये हैं, जब कि दशहरासम्बन्धी अधिकांश पदोंकी रचना प्रसङ्गानुसार मारू रागमें हुई है। यदि सूरदास राम-कथाका क्रमबद्ध चित्रण करते तो उनकी रचनाका दूसरा ही रूप होता।

उपर्युक्त कथनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि कृष्णोपासक सम्प्रदायसे सम्बन्धित और अपनी प्रकृतिके अनुसार कोमल विषयोंके गायक होनेपर भी सूरदासने रामकाव्यकी रचना कर उसके अन्तर्गत वीरता एवं उत्साह-जन्य पदोंका कथन विशिष्ट उद्देश्यकी पूर्तिके लिये किया है। और इस प्रकारके पद उन्होंने वल्लभाचार्यजीसे दीक्षा लेनेके उपरान्त उन्हीं सम्प्रदायकी भक्तिभावनाके अनुसार ही रचे हैं।

इन पदोंमें रामकथाका क्रमबद्ध चित्रण न होनेके कारण स्पष्ट है कि इनकी रचना समय-समयपर मुक्तक-काव्यके रूपमें हुई थी; अतः इनमें प्रबन्ध-काव्यकी तरह कथाक्रमका निर्वाह नहीं हो सका है। जहाँतक इन पदोंकी काव्य-कलाका सम्बन्ध है, वह निश्चयपूर्वक कृष्णलीलाके पदोंके समान नहीं है, यद्यपि दोनों प्रकारके पदोंकी रचना सूरदासकी प्रौढ़ावस्थामें ही हुई थी। इसका कारण यह है कि सूरदासके राम-सम्बन्धी पद वल्लभसम्प्रदायी वर्षोत्सवोंकी विधिके निर्वाहमात्रके लिये रचे गये थे; अतः इनमें सूरदासके व्यक्तित्वका वह रूप नहीं उभर सका है, जो उनके कृष्ण-लीलाके पदोंमें दिखलायी देता है। फिर भी राम-काव्यके जो प्रसङ्ग सूरदासकी प्रकृतिके अनुरूप आये हैं, उनकी रचना अपेक्षाकृत सुन्दररूपमें हुई है।

उपर्युक्त विवेचन रामसम्बन्धी उन पदोंके विषयमें है, जो 'सूरसागर' और 'कीर्तन-संग्रह' में उपलब्ध हैं, अथवा जो सूरकृत 'राम-पदावली' और 'सूर-रामायण'-जैसी रचनाओंमें मिलते हैं। इनके अतिरिक्त 'सूर-सारावली'में जो राम-काव्य प्राप्त है, उसकी शैलीमें उक्त पदोंसे भिन्नता है। 'सूर-सारावली' एक निश्चित समयमें रची हुई क्रमबद्ध रचना है, जिसमें परब्रह्म श्रीकृष्णके विविध अवतारोंका कथन करते हुए रामावतारकी कथा भी वर्णित है। यह कथा संक्षिप्त होते हुए भी क्रमबद्ध है। इसमें रामके बाल-चरित्रका वर्णन पूर्वोक्त पदोंकी अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत और मनोहर हुआ है। इसमें सूरदासके बाल्य-चित्रणकी वह झाँकी दिखलायी देती है, जिसके कारण उनकी इतनी प्रसिद्धि है। इसमें सीता-स्वयंवरका भी प्रशंसनीय वर्णन हुआ है। इसके पश्चात् कथा-विकासमें अत्यन्त शीघ्रता की गयी है। इसके कारण कोई प्रसङ्ग छूटे तो नहीं हैं, किंतु उनका समुचित वर्णन न कर नामोल्लेखमात्र कर दिया गया है।

सूरदासके रामचरित्र-चित्रणका आधार वाल्मीकि-रामायण और श्रीमद्भागवत हैं। इनके अतिरिक्त उनकी मौलिक उद्भावनाएँ भी हैं। हिंदी-साहित्यमें गोस्वामी

तुलसीदास राम-काव्यके सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, किंतु सूरदासने अपने राम-काव्यकी रचना उनसे पहले की है। इस प्रकार जहाँ उनको हिंदी-साहित्यमें कृष्ण काव्य-परम्पराका प्रमुख निर्माता कहा जाता है; वहाँ उनको राम-काव्यके आरम्भ-कर्ताओंमेंसे एक होनेका भी श्रेय दिया जा सकता है। इस दृष्टिसे सूरदासके रामचरित्र-चित्रणका पृथक् महत्त्व है।

सूरदासका श्रीराम-चरित-चित्रण

(लेखक—क० श्रीगोकुलानन्दजी तैलंग, बी० ए०, साहित्यरत्न)

आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने शक्ति-शील-सौन्दर्यके पुण्य-प्रतीक भगवान् श्रीरामके जिस लोकमङ्गल-व्यक्तित्वकी प्रतिष्ठा भारतीय वाङ्मयमें की है, सभी परवर्त्ती कवियोंने अपनी-अपनी लोकवाणियोंमें उसी भुवन-मङ्गल आदर्शसे आलोक-रश्मियाँ लेकर अपने काव्योंको सँवारा है—निखारा है। शृङ्गार, सख्य और वात्सल्यकी रस-त्रिपुटीसे अनुप्राणित व्रजभाषा वाङ्मयके समुज्ज्वल ज्योतिर्धर भक्त-कवि सूरने अपनी निष्ठा एवं साधनाके अनुरूप, लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके जितने मनोमुग्धकारी चित्र अपनी काव्यतूलिकासे उतारे हैं, मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामके भी उतने ही लोकाभिराम चित्र उन्होंने अपने काव्य-पटपर आलेखित—अवतरित किये हैं। लगता है कि सूरका जितना मन 'बाल विनोद-भाँवती लीला'में रमा है, मनका उतना ही तादात्म्य उन्होंने 'मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।' में पाया है। क्यों न हो, लीला और मर्यादा, दोनोंका समन्वित रूप ही तो भगवान्का 'लोक-संग्रही' व्यक्तित्व है। सूर-काव्यमें उसी लोकसंग्रहको श्रीरामके चरित्रमें उभारा गया है, जिसके द्वारा—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥
(गीता ४। ८)

'साधु पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये और दूषित कर्म करनेवालोंका नाश करनेके लिये तथा धर्म-स्थापन करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट होता हूँ।'

—श्रीहरिके इस संकल्पका पूर्ण निर्वाह निरूपित होता है। कविने चरितनायक श्रीरामके आविर्भाव-प्रसङ्गमें अपने काव्यमें उल्लासपूर्ण वातावरणकी सृष्टि करते हुए श्रीप्रभुके अवतारके लक्ष्यकी कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति की है—

आजु दसरथ कें आँगन भीर।
भू-भार उतारन कारन, प्रगटे स्याम-सरीर॥
फूले फिरत अजोध्यावासी, गनत न त्यागत चीर।
परिरंभन हँसि देद परस्पर आनँद नैननि नीर॥
त्रिदस-नृपति रिषि ब्योम विमाननि देखत रह्यौ न धीर।
त्रिभुवननाथ दयालु दरस दै, हरी सबनि की पीर॥
देत दान राख्यौ न भूप कछु, महा बड़े नग हीर।
भए निहाल 'सूर' सब जाचक, जे जाँचे रघुबीर॥
(सूर-रामच० ४)

आज अवधपुरीमें रघुकुलमणि श्रीराम 'नीलाम्बुज-श्यामल-कोमलाङ्ग' रूपमें, समग्र ऐश्वर्य-विभूतियोंको अपनेमें समाहित करके भू-भार-निवारण करने तथा निजजनोंकी समग्र पीरको हरण करनेके लिये अवतरित हुए हैं। त्रिलोकीपति करुणा-वरुणालय स्वयं श्रीहरि जो ठहरे! आज श्रीरघुनाथजीसे उनके भक्तजन जो भी याचना करेंगे, उनकी सभी मनोवाञ्छाएँ पूर्ण होंगी। इसीलिये तो 'फूले फिरत अजोध्यावासी'........ आनँद नैननि नीर'........

श्रीराम स्वयं आनन्दनिधि हैं, भक्तवत्सल हैं, परम दयालु हैं। भूतलपर आसुरी वृत्तियोंकी प्रबलता तथा मानवकी दानवी लीलाओंके ताण्डवसे सत्पुरुष पीड़ित, पददलित हो रहे हैं। उनका संरक्षण, परिपालन ही प्रभुके इस अवतरणका लक्ष्य है। निराशा और पीड़ाओंके आवर्त्तसे घिरे भटकते मानवको आलोक प्रदानकर, उसे स्नेह-सम्बलके द्वारा अलौकिक सुखकी उपलब्धि कराकर श्रीराम भक्तोंको अभयदान दे रहे हैं। कविने उनके बालरूपमें, बाल-विनोदोंमें इसीकी झाँकी पायी है—

करतल सोभित बान-धनुहियाँ।
खेलत फिरत कनकमय आँगन, पहिरें लाल पनहियाँ॥
दसरथ-कौसिल्या के आगें लसत सुमन की छहियाँ।
मानो चारि हंस सरवर तें बैठे आइ सदेहियाँ॥
रघुकुल-कुमुद-चंद चिंतामनि प्रगटे भूतल महियाँ।
आए ओप दैन रघुकुल कौ, आनँदनिधि सब कहियाँ॥

यह सुख तीनि लोक मैं नाहीं, जो पाए प्रभु पहियाँ।
'सूरदास' हरि बोलि भक्त कौं निरबाहत गहि बहियाँ॥
(सूर-रामचरितावली ५)

कितना मञ्जुल, कितना मधुर, कितना मनोरम सौन्दर्य है। चिन्तामणिरूप रघुकुल-कुमुद-चन्द्रके उदित होनेपर केवल रघुवंश ही नहीं, समग्र भूतल उसकी अप्रतिम प्रकाश-रश्मियोंसे समुद्भासित हो रहा है। शील-सौन्दर्यकी राशि श्रीरामकी इस शर-क्रीडासे उनमें अन्तर्निहित अतुल शक्तिस्रोतका निदर्शन हो रहा है। प्रभु इस शक्ति-शील-सौन्दर्य-समन्वित स्वरूपसे ही तो अपने भक्तोंको बाँह पकड़कर भवसागरके आवर्तोंसे बचाते हैं। 'निरबाहत गहि बहियाँ'में श्रीरामकी अहैतुकी कृपा, अपार अनुग्रह और शरणागतवत्सलताकी गरिमा संनिहित हैं। स्वयं भक्तको बुलाकर उसपर अनुग्रह करना ही तो 'पोषणं तदनुग्रहम्'का स्वरूप है।

श्रीरामके इसी कृपालु, अनुग्रह-प्रतिरूप स्वरूपकी झलक परशुराम-संवाद-प्रसङ्गमें भी सूरने निदर्शित की है—

परसुराम तेहिं औसर आए।
कठिन पिनाक, कहौ, किन तोरयौ, क्रोधित बचन सुनाए॥
बिप्र जानि रघुबीर धीर दोउ हाथ जोरि सिर नायौ।
बहुत दिननि कौ हुतौ पुरातन, हाथ छुवत उठि धायौ॥
तुम तौ द्विज, कुलपूज्य हमारे, हम-तुम कौन लराई।
क्रोधवंत कछु सुन्यौ नहीं, लियौ सायक धनुष चढ़ाई॥
तबहूँ रघुपति कोप न कीन्हौ, धनुष न बान सँभारयौ।
'सूरदास' प्रभुरूप समुझि, बन परसुराम पग धारयौ॥
(वही, १५)

एक ओर कठिन-पिनाकी रौद्ररूप क्रोधवंत परशुराम, दूसरी ओर विनय-शील-सम्पुटित, शान्त-सौम्य-विग्रह, धीर-रघुवीर श्रीराम! रौद्रपर शान्तकी विजय, उद्दण्ड कोदण्डपर विनयकी विजय। सदाप्रसन्न धीर-वीर श्रीरामने सहजरूपमें विनोद-वाणीके माधुर्यसे ही एक अप्रत्याशित संघर्षको टाल दिया। 'बहुत दिननि कौ हुतौ पुरातन हाथ छुवत उठि धायौ।' में कितना सरल, मधुर व्यङ्ग है—साथ ही श्रीरामकी अनन्त दिव्य शक्तिका निदर्शन भी! फिर गुरुजनोंके प्रति श्रद्धा-आदरभावकी परम मर्यादा भी श्रीरामके प्रस्तुत चरित्रमें परिलक्षणीय है। 'तुम तौ द्विज कुलपूज्य हमारे'में यह स्पष्ट है। भगवान्‌की ब्रह्मण्यताका भी यह उज्ज्वल उदाहरण है। प्रभुकी अहिंसा, शान्ति एवं सत्यनिष्ठाके आगे परशुरामजीका कुलिश-कठोर हृदय भी द्रवित हो गया। श्रीरामकी इस नर-लीलामें परशुरामजीने भगवत्ताके दर्शन किये। कितना उदात्त, महिमा-गरिमामय व्यक्तित्व श्रीरामका है।

सूरदासने श्रीराम-कथाके विविध प्रसङ्गोंमें प्रभुके हृदयकी कोमलताके साथ-साथ कठोर कर्मनिष्ठा—कर्तव्य-भावनाको बहुत ही मार्मिकरूपमें अभिव्यक्ति दी है। वन-गमनके समय श्रीजानकीजीके प्रति किये गये स्नेहानुरोधको देखिये—

तुम जानकी! जनकपुर जाहु।
कहा आनि हम संग भरमिहौ, गहबर बन दुख-सिंधु अथाहु॥
तजि वह जनक-राज, भोजन-सुख, कत तृन-तलप, बिपिन फल खाहु।
ग्रीषम कमल-बदन कुम्हिलैहै, तजि सर निकट दूरि कित न्हाहु॥
जनि कछु प्रिया! सोच मन करिहौ, मातु-पिता-परिजन-सुख-लाहु।
तुम घर रहौ सीख मेरी सुनि, नातरु बन बसि कै पछिताहु॥
हौं पुनि मानि कर्मकृत-रेखा, करिहौं तात-बचन-निरबाहु।
'सूर' सत्य जो पतिब्रत राखौ, चलौ संग जनि, उतहीं जाहु॥
(वही, २०)

श्रीराम कर्म-कृत रेखाओंसे बँधे हुए हैं। कर्तव्य-बन्धनसे आबद्ध हैं। मातृ-पितृ-आज्ञाका पालन उनके लिये परम धर्म है, अपरिहार्य है। 'करम गति टारी नाहिं टरै'—इस ध्रुव सत्यको मानकर वे वन जानेको कृत-संकल्प हैं। आखिर, आततायी राक्षसी-कृत्योंके कारण पृथ्वीपर बढ़ते हुए पापके भारको भी उतारनेके लिये उन्हें अदृष्टका संकेत है, वही उनके अवतरणका प्रयोजन है; किंतु श्रीराम नहीं चाहते कि उनके आत्मीय, स्नेहीजन—प्राणप्रिय भाई लक्ष्मण अथवा परमप्रेयसी जनकनन्दिनी-सरीखे अति कोमल, अति सुकुमार प्रियजन उनके कर्तव्य-कर्मकी कठोरताके कारण उत्पन्न संकटके भागीदार बनें। वे जानकीजीके समक्ष वनकी विभीषिकाका चित्र खींचते हैं। उनके कमल-कोमल-कान्त कलेवरके कुम्हलानेकी करुण कल्पना करते हैं और उन्हें 'मातु-पिता-परिजन-सुख-लाहु'के बीच घर रहनेकी सीख देते हैं। श्रीरामको तो 'तात-बचन-निरबाहु' करना है। यही उनके लिये 'कर्मकृत रेखा' है। जनकपुरके राज-वैभवमें पली जनकलली उनके कारण वन-वन क्यों भटके? सुख-दुःखकी चिरसङ्गिनी नारी पतिकी सदा-सर्वदा अनुचरी-सहचरी बनकर रहे—यही सदाचार है, आर्यधर्म है, शास्त्रीय मर्यादा है, 'पतिव्रत' है; किंतु श्रीराम इसके विपरीत जानकीजीसे जनकपुर रहनेका आग्रह करते हैं और इसीमें उनके

पातिव्रत्यका निर्वाह मानते हैं; क्योंकि इसीमें उनका सुख है, पतिका सुख है; इसीसे अपने कर्तव्य-निर्वाहके लिये निर्वासन, प्रशस्त मार्गकी सिद्धि है। कर्तव्य कर्मके प्रति कितनी सुदृढ़ निष्ठा; हृदयकी कितनी कोमलता।

यह तो हुआ अपने प्रियजन परिजनोंके प्रति स्नेह, वात्सल्य। अब भक्तोंके प्रति आपके सहज स्नेह, अनुग्रहका एक चित्र देखिये—आपके भगवद्रूप चरणरेणुका प्रताप और उसकी भक्तोंके लिये गरिमा—

हौ भैया केवट ! उतराई।
महाराज रघुपति इत ठाढ़े, तैं कत नाव दुराई ॥
अबहिं सिला तें भई देवगति, जब पग-रेनु छुवाई।
हौं कुटुंब काहैं प्रतिपारौं, वैसी मति है जाई ॥
जाकी चरन-रेनु की महिमा सुनियत अधिक बड़ाई।
'सूरदास' प्रभु अगनित महिमा बेद-पुराननि गाई ॥
(वही, २८)

आज भक्त केवटका हठ है, प्रभुके पद-प्रक्षालनके लिये, पुण्य-पद-रज-प्राप्तिसे अपने जीवनको धन्य, सार्थक करनेके लिये। उसे किसी भी प्रकारकी भौतिक लिप्सा नहीं है, वह प्रभुके दिव्य अनुग्रहका आकाङ्क्षी है। शिलारूप ऋषिपत्नीको देवगति देनेवाली भगवच्चरण-रेणुके माहात्म्यका निर्वचन तो उसके पद-प्रक्षालनकी महती कामनाकी पूर्तिके लक्ष्यकी सिद्धिके लिये है। अपनी साधनहीनता, अकिंचनता बताते हुए केवट प्रभुको विवश कर रहा है—पद पखारनेकी अनुमति प्राप्त करनेके लिये। उधर प्रभु भी केवटके निश्छल, सरल स्नेह, सेवा-समर्पणके भावसे अभिभूत होकर उसपर अहैतुकी कृपा करनेके लिये तत्पर हैं। 'हौ, भैया केवट ! उतराई।'—शब्दोंमें श्रीरामके अयाचित अनुग्रहकी ध्वनि है। प्रभु भक्तको स्वयं शरणमें ले रहे हैं, यही तो प्रभुका महदनुग्रह है—पुष्टि-भक्तिका सिद्धान्त है।

श्रीरामके हृदयकी यह उदात्तता भक्तों, स्नेहियोंतक ही सीमित नहीं; वह तो समस्त परिजन-पुरजन, कौटुम्बिक आत्मीयजन एवं प्रजाजनके प्रति उनके चरित्रमें व्यापकरूपसे परिलक्षित होती है। दण्डकवनगमनके पूर्व, बन्धु भरतको चरण-पादुका समर्पित करते हुए प्रभु इन शब्दोंमें नेहनीति, प्रीतिरीति, राजनीतिका निदर्शन करते हैं—

बंधू करियो राज सँभारें।
राजनीति अरु गुरु की सेवा, गाइ-विप्र प्रतिपारें ॥
कौसल्या कैकई सुमित्रा दरसन साँझ सवारें।
गुरु बसिष्ठ अरु मिलि सुमंत सौं, परजा हेतु बिचारें ॥
भरत-गात सीतल है आयौ, नैन उमँगि जल ढारें।
'सूरदास' प्रभु दई पाँवरी, अवधपुरी पग धारें ॥
(वही, ४३)

कुछ इनी-गिनी पंक्तियोंमें, श्रीरामके गुरु-भक्त, गो-ब्राह्मणप्रतिपालक, मातृ-सेवी, प्रजावत्सल एवं राजनीतिविद् व्यक्तित्वको कितनी सुन्दर रीतिसे निखारा गया है—भारतीय राजनीतिके उज्ज्वल पक्षको निरूपित किया गया है। ऐसे नीतिविशारद श्रीरामके स्नेहपूर्ण निर्देशको पाकर क्यों न भरत करुणाविगलित हृदयसे गद्गद होकर प्रेमाश्रुओंमें अवगाहन करें।

भगवान् श्रीरामके मानव-प्रेमका यह विलक्षण आदर्श आज भी भारतीय जन-जीवनको एक सुन्दर प्रेरणा दे रहा है। मानवमात्रके प्रति ही नहीं, वे तो जीवमात्रके साथ उसी स्नेह-वात्सल्यसे व्यवहार करते हैं। उच्चावचभावसे परे, स्त्री-शूद्र, पुण्यात्मा-पापिष्ठ, पशु-पक्षी—सभी उनके लिये अपने हैं। 'हरि को भजै सो हरि का होय।' सभीको वे अपनी शरणमें लेकर अपने असीम स्नेहानुग्रहका पात्र बनाते हैं। भक्त जटायुपर प्रभुकी अप्रमेय कृपाका प्रसङ्ग देखिये—

रघुपति निरखि गीध सिर नायौ।
कहि कै बात सकल सीता की, तन तजि, चरन-कमल चित लायौ ॥
श्रीरघुनाथ जानि जन अपनौ, अपने कर करि ताहि जरायौ।
'सूरदास' प्रभु-दरस-परस करि, ततछन हरि के लोक सिधायौ ॥
(वही, ५६)

गृध्र-सरीखी पतित जीव-जाति, अमङ्गल-पक्षीकी हरि-प्राप्ति कितना सौभाग्यका विषय है ! श्रीराम अपने हाथसे उसकी उत्तरक्रिया करते हैं। श्रीप्रभुके पुण्य-दर्शन और करस्पर्श पाकर जटायु क्यों न इहलोकके समस्त मायाबन्धनोंसे मुक्त हो प्रभु-पद प्राप्ति करे ! जन्म-जन्मके पुण्योंसे जो फल प्राप्त नहीं हो सकता, वह आज जटायुको समुपलब्ध हुआ है। एक ओर जहाँ 'चरन-कमल चित लायौ……'की एकनिष्ठ तन्मयता है, वहाँ दूसरी ओर 'श्रीरघुनाथ जानि जन अपनौ'के रूपमें प्रभुकी शरणागतवत्सलता-की अभिव्यक्ति है।

श्रीरामकी यही भक्तवत्सलता, पतितोद्धारकता शबरीके प्रसङ्गमें सूरदासद्वारा निदर्शित की गयी है—

सबरी आस्रम रघुबर आए। अरधासन दै प्रभु बैठाए ॥
खाटे फल तजि मीठे ल्याई। जूँठे भए सो सहज सुहाई ॥
अंतरजामी अति हित मानि। भोजन कीने, स्वाद बखानि ॥
जाति न काहू की प्रभु जानत। भक्ति-भाव हरि जुग-जुग मानत ॥
करि दंडवत भई बलिहारी। पुनि तन तजि हरिलोक सिधारी ॥
'सूरज' प्रभु अति करुना भई। निज कर करि तिल-अंजलि दई ॥
(वही, ५७)

यह है श्रीरामका क्षीरद्राक्षरसतिरस्कृतिस्वरूप। शबरी-शबरीजी पतित भिल्लिनी वन्यजाति! आज वह कितनी भाग्यशालिनी है कि प्रभु उसके आश्रममें उससे अर्घ्य-आसन प्राप्तकर विराजे हुए हैं! वह इतनी भोली, सरल-निष्पाप-प्रकृति, कि जिसे यह भी ज्ञान नहीं कि प्रभुका भोग्य क्या है, जूठा क्या है! फलोंको पहले स्वयं चखकर प्रभुको मीठे-मीठे अरोगा रही है; किंतु श्रीरामकी अन्तर्यामिता भी दर्शनीय है कि वे उसके हितको जानकर बड़े स्वादसे भोजनरत हैं—
'जाति न काहू की प्रभु जानत। भक्ति-भाव हरि जुग-जुग मानत ॥'

यही तो आपकी भक्तिवश्यता है। ऐसे भक्तको आप तत्काल अपने पदकी प्राप्ति कराकर उसका समुद्धार करें, इसमें आश्चर्य ही क्या। करुणामय प्रभु उसे 'तिलाञ्जलि' देकर उसके प्रति अपना स्नेह-वात्सल्य व्यक्त करते हैं। 'जाति पाँति पूछै नहिं कोई।' का पूर्ण परिपालन।

श्रीरामकी करुणामय भक्तवत्सलताका दूसरा आदर्श-निरूपण विभीषणकी शरणागतिके प्रसङ्गमें देखिये—

आइ बिभीषन सीस नवायौ।
देखतहीं रघुबीर धीर, कहि लंकापती, बुलायौ ॥
कह्यौ सो बहुरि कह्यौ नहिं रघुबर, यहै बिरद चलि आयौ।
भक्त-बछल करुनामय प्रभु कौ, 'सूरदास' जस गायौ ॥
(वही, ११८)

'लङ्कापति'नामनिर्देशपूर्वक विभीषणके प्रति श्रीरामका सम्बोधन उनके लिये एक बहुत बड़ा वरदान है। मानो प्रभु लङ्केश रावणकी पराजय और लङ्का-विजयका संकेत कर अपने भक्त विभीषणको अमोघ आशीर्वचन देकर अनुगृहीत कर रहे हों। प्रभुकी चरण-शरणमें एक बार भी विनयावनत होकर जो आ गया, प्रभु उसके लिये अभयदान देनेमें हिचकते नहीं, फिर वह कैसा भी दीन-हीन, कलुष-कल्मषपूर्ण क्यों न हो। विभीषण तो आपके परम भक्त—भगवदीय जो ठहरे। 'कह्यौ सो बहुरि कह्यौ नहिं रघुबर'—प्रभुका यह 'विरद' सनातन कालसे चला आ रहा है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥

—यही तो शरणागतिका सिद्धान्त है, 'शरणमार्ग' है, अनुग्रहमार्ग है, पुष्टिमार्गकी पुष्टि-भक्ति है।

इसी प्रसङ्गमें, भक्तको अभयदान देकर, पूर्णरूपसे अपनानेके अपने अटल संकल्पको प्रभु इन पंक्तियोंमें उद्घोषित करते हैं—

तब हौं नगर अजोध्या जैहौं।
एक बात सुनि निस्चय मेरी, राज्य बिभीषन दैहौं ॥
कपि-दल जोरि और सब सैना, सागर सेतु बँधैहौं।
काटि दसौ सिर, बीस भुजा, तब दसरथसुत जु कहैहौं ॥
छिन इक माहिं लंकगढ तोरौं, कंचन-कोट ढहैहौं।
'सूरदास' प्रभु कहत बिभीषन, रिपु हति सीता ल्यैहौं ॥
(वही, ११९)

भक्तकी पीरको प्रभु सहन नहीं कर सकते। उनका करुणालय स्वरूप, एक अप्रतिम शौर्यकी अभिव्यक्तिके साथ और भी निखर उठा। श्रीरामके सत्य-संकल्पको कौन टाल सकता है। वानर-सैन्यके संयोजन, सागर-सेतु-बन्धन, दशमुख रावणके हनन और जनकनन्दिनी सीताको मुक्त कराकर विभीषणके राज्यारोहणतककी सारी योजना श्रीरामने बना ली। जबतक यह सब नहीं हो जाता, श्रीराम अयोध्याको नहीं लौटेंगे। कितनी अटल प्रतिज्ञा है। लङ्काका लौहदुर्ग, उसका अभेद्य कञ्चन-कोट उनके लिये बाधक नहीं है। सीताका प्रबल प्रेम उनमें एक असीम स्फूर्ति, अजेय शक्तिका संचार कर रहा है। लगता है कि शक्ति-शील-सौन्दर्यके समन्वित अधिष्ठान श्रीराम एकमात्र 'शक्ति'के प्रतिष्ठान बन गये हैं।

श्रीरामका यही शक्ति-स्वरूप, रौद्र-रूप सुहृद् सुग्रीवके समक्ष भी प्रदर्शित हुआ है। सूरदासके शब्दोंमें करुणामय प्रभुका वह उग्र स्वरूप भी देखिये—

दूसरें कर बान न लैहौं।
सुनि सुग्रीव! प्रतिग्या मेरी, एकहिं बान असुर सब हैहौं ॥
सिव-पूजा जिहि भाँति करी है, सोइ पद्धति परतच्छ दिखैहौं।
दैत्य प्रहारि पाप-फल-प्रेरित, सिर-माला सिव-सीस चढ़ैहौं ॥
मनौ तूलगन परत अगिनि-मुख, जारि जड़नि जम-पंथ पठैहौं।
करिहौं नाहिं बिलंब कछू अब, उठि रावन सन्मुख ह्वै धैहौं ॥

इमि दमि दुष्ट देव-द्विज मोचन, लंक विभीषन । तुम कौं दैहौं ।
लछिमन, सिया समेत 'सूर' कपि, सब सुख सहित अजोध्या जैहौं ॥

(वही, १७८)

इस संदर्भमें भीष्म-प्रतिज्ञाका प्रसङ्ग स्मरण हो आता है। महाभारतमें श्रीकृष्णने भी एक ऐसी ही अटल प्रतिज्ञा की थी, शस्त्र ग्रहण न करनेकी और वह भी राजनीतिके सम्पुटमें। वहाँ भक्तराज भीष्मने प्रभुको विवश किया था शस्त्र-ग्रहण करानेके लिये— 'आजु जौ हरिहि न सस्त्र गहाऊँ।' (१। १७९। १) और यहाँ भी भक्तोंकी पीरके निवारणके लिये ही श्रीराम शस्त्र-ग्रहण कर रहे हैं, भीषण संघर्षके लिये संनद्ध हैं। मित्र सुग्रीव, भक्त विभीषण, आत्मीय लक्ष्मण, प्रिया जनकजा और समग्र देव-द्विजके रक्षणके लिये प्रभुका यह पराक्रम-पूर्ण प्रण है। श्रीरामके अवतारका प्रयोजन ही दैवी सृष्टिको अभय-दान और दानवी सृष्टिका दमन है। श्रीराम स्वयं शिव-पूजक हैं। शिव-कल्याणकी साधना, जन-कल्याणकी भावना आपके चरित्रमें संनिहित है। इसीलिये तो 'सिव-पूजा जिहि भाँति करी है, सोइ पद्धति परतच्छ दिखैहौं॥' शब्दोंमें श्रीरामका रौद्ररूप झलक रहा है। पालन-पोषण-संहारसमन्वित साधना श्रीरामका आदर्श है, भक्तोंकी रक्षाके लिये।

इस प्रकार सूरदासने श्रीरामके चरित्रको विविध रूपोंमें उभारा है। श्रीरामके एक-एक चरित्रके एक-एक पार्श्वमें, एक-एक अङ्गमें, एक महान् आदर्श, जीवनके लिये एक महती प्रेरणा है। जड-चेतन, देव-मानव, पशु-पक्षी—सभीके लिये श्रीरामका चरित्र अनुकरणीय, अभिवाञ्छनीय है। श्रीराम इसीलिये सभीके प्रिय हैं। उन्हें सभी प्रिय हैं। सभी उनके आत्मीय, स्नेही और अभिन्न हैं। समग्र विश्व उनका है। सभी मानव उनके स्वजन हैं और जननी-जन्मभूमि तो उनके लिये सर्वोपरि है। अवध और अवधवासियोंके प्रति उनकी ममता, अवधकी नैसर्गिक सुषमाके प्रति उनका आकर्षण इन पंक्तियोंमें देखिये—

हमारी जन्मभूमि यह गाउँ।
सुनहु सखा सुग्रीव-विभीषन। अवनि अजोध्या नाउँ॥
देखत बन-उपवन, सरिता-सर, परम मनोहर ठाउँ।
अपनी प्रकृति लिऍ बोलत हौं, सुरपुर मैं न रहाउँ॥
ह्याँ के बासी अवलोकत हौं आनँद उर न समाउँ।
'सूरदास' जो बिधि न सँकोचै, तौ बैकुंठ न जाउँ॥

(वही, १९२)

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'की कितनी विशद व्याख्या, मार्मिक विश्लेषण है। श्रीराम विधि-विधानसे बँधे हैं, विधिकी मर्यादाओंसे संकुचित हैं, अन्यथा वे तो वैकुण्ठ—स्वधाम साकेत जानेके लिये भी तैयार नहीं हैं। उन्हें अयोध्यामें ही समस्त स्वर्गीय सुखोंकी समुपलब्धि है। ये चिरपरिचित पुरवासी, जिनसे उन्हें प्यार और दुलार मिला है—ये सर-सरिता, वन-उपवन, जहाँ उन्होंने अपनी बाल-क्रीडाएँ की हैं, ये परम-मञ्जुल, मनोहर अवधके स्थल, जिनके कण-कणमें उनका चित्त रमा हुआ है, वे कैसे भूल सकते हैं। 'हमारी जन्मभूमि' इस पदमें हृदयका कितना उल्लास, आत्मीय भाव और तादात्म्य अधिष्ठित है।

फिर क्यों न श्रीरामके समुज्ज्वल चरित्र, उदात्त शील-सौन्दर्य और रूप-माधुरीपर पुरवासी मोहित होकर उनकी गुण-गण-गरिमाका निरवधि गान करें! श्रीरामके भीतर-बाहर सब कुछ सौन्दर्यमय है, मधुर और मनोरम है। अन्तः-सौन्दर्यसे ही उनका बाह्य-सौन्दर्य अभिभूत, अनुस्यूत है। श्रीरामके सौन्दर्यदर्शनकी एक झाँकी कविकी वाणीमें देखिये—

देखन कौं मंदिर आनि चढ़ी।
रघुपति-पूरनचंद बिलोकत मनु पुर-जलधि-तरंग बढ़ी॥
प्रिय-दरसन-प्यासी अति आतुर, निसि-बासर गुनग्राम रढ़ी।
रही न लोकलाज मुख निरखत, सीस नाइ आसीस पढ़ी॥
भई देह जो खेह करम बस जनु तट गंगा अनल दढ़ी।
'सूरदास' प्रभु-दृष्टि सुधानिधि, मानौ फेरि बनाइ गढ़ी॥

(वही, १९४)

आज चौदह वर्षके वनवासके अनन्तर श्रीराम अयोध्यामें प्रवेश कर रहे हैं, मानो अवधपुरीके पूर्व क्षितिजपर समुज्ज्वल पूर्णेन्दुका उदय हो रहा हो। पुरवासियोंके सरस हृदय-जलधि तरल-तरङ्गोल्लसित होकर श्रीरामके सुधा-स्निग्ध मुख-माधुर्यका स्पर्श करनेको आकुल हैं। प्रिय-दर्शनकी प्यासी आँखें आज प्रभुके सुधा-सिक्त दृष्टि-निक्षेपसे परितृप्त होंगी। श्रीरामके चिर-वियोगकी तपनसे विदग्ध पुरवासी श्रीरामकी अमियदृष्टि पाकर पुनर्जीवन प्राप्त कर रहे हैं। पुरवासिनियोंके हृदयकी आतुरताके व्याजसे, समग्र रूपमें अयोध्यावासियोंके सौन्दर्यासक्त हृदयका ही चित्र कविने अङ्कित किया है।

यह है श्रीरामका अप्रतिम व्यक्तित्व और विचक्षण चरित्र, जिसका दर्शन सूरदासने किया है और जिसे वे अपनी काव्य-तूलिकासे भक्तजनोंके मानसपटपर उतार लाये हैं।

संत कबीरके 'राम'

(लेखक—पं० श्रीपरशुरामजी चतुर्वेदी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)

संत कबीर साहबने परमतत्त्वकी चर्चा करते समय, उसे विभिन्न प्रकारके शब्दोंद्वारा अभिहित किया है। कभी-कभी जहाँ वे उसके लिये 'अगम', 'अगोचर', 'सहज', 'सुंनि'-जैसे शब्दोंका प्रयोग करके, उसे कोई विलक्षण एवं अनिर्वचनीय सत्ता कह डालते हैं और अन्यत्र उसे 'उन्मन', 'गगन', 'जोति', 'सबद' वा 'परमपद' आदि-जैसा ठहराते जान पड़ते हैं, वहाँ वे कभी उसे 'राम', 'रहीम', 'कृष्ण', 'करीम', 'गोविन्द', अथवा 'हरि'-जैसे नाम देकर किसी-न-किसी रूपमें साकारतातक भी प्रदान कर दिया करते हैं। उनके अनुसार उसे वास्तवमें उक्त तीनों वा अन्य वैसे किन्हींमें भी, केवल एकमें लाकर अपना कोई मत निर्धारित कर लेना अपनेको धोखेमें डालनेके समान होगा; क्योंकि उस 'अविगत'की 'गति'के विषयमें कुछ कहा ही क्या जा सकता है, जिसके किसी 'नाँव-गाँव'का कोई ठिकाना नहीं तथा उस 'गुनविहूँन'का भला कोई निरीक्षणतक भी कैसे कर सकता है अथवा उसे कोई नाम ही क्या दिया जा सकता है?

जैसे—

अविगत की गति क्या कहूँ, जस कर गाँव न नाँव।
गुनविहूँन का पेखिये, काकर धरिये नाँव॥

(क०[1] ग्र०, 'रमैणी', पृ० २३१)

उनका इस सम्बन्धमें अपने लिये भी केवल इतना कहना है कि 'सतगुरु'ने मुझसे उसकी ओर केवल विचार-पूर्वक संकेतमात्र कर दिया और मैंने उसको, तदनुसार, उसके अपने मूलरूपमें अपनी निजी अनुभूतिके बलपर ही ग्रहण कर लिया।

जैसे—

'सतगुरु तत कह्यौ विचार, मूल गह्यौ अनभै बिसतार।'

(वही, पद ३८६, पृ० २२६)

इसी प्रकार मैं अपने उस रामको किसी हदतक, केवल अपने अनुमानके अनुसार, उसका कुछ स्मरण करते-करते ही जान पाया।

जैसे—

'सुमिरत हूँ अपनैं उनमाना, क्यंचित जोग राँम मैं जाँना।'

(वही, 'रमैणी', पृ० २३५)

अतएव परमतत्त्वके विषयमें संत कबीरने जो कुछ भी कहा है, वह न केवल उनके अपने निजी अनुभवपर आधारित हो सकता है, प्रत्युत उनके वैसे कथनको भी तदनुसार उपर्युक्त-जैसे विभिन्न वर्गोंमेंसे किसी-न-किसीके साथ मेल खाता भी मान लिया जा सकता है। उनकी ऐसी धारणा वस्तुतः इस बातकी ओर भी संकेत करती है कि उनका जो उपास्य 'भगवंत' है।, वह उक्त 'अपरंपार'से अभिन्न है और उसके लिये इतना और भी कहा जा सकता है कि उसके नाम 'अनन्त' हैं।

जैसे—

'अपरंपार का नाँउ अनंत, कहै कबीर सोई भगवंत।'

(वही, पद ३२७, पृ० १९९)

इसके सिवा यहाँपर यह भी उल्लेखनीय है कि यों तो वे अपनी रचनाओंके अन्तर्गत उक्त अनन्त नामोंमेंसे कईके प्रयोग प्रायः एक दूसरेके पर्यायरूपमें करते दीख पड़ते हैं, किंतु उनमेंसे भी इन्हें 'राम' एवं 'हरि'-जैसे नाम विशेष प्रिय हैं।

संत कबीर वैसे विभिन्न नामोंमेंसे कईका कोई अर्थ भी करते नहीं दीखते, जिसे व्युत्पत्तिमूलक अथवा परम्परागत ठहराया जा सके; अपितु वे उसके ऊपर अपनी ओरसे कोई-न-कोई नयी छाप-सी लगा देते भी जान पड़ते हैं, जिससे कभी-कभी हमें ऐसा भी लगता है, जैसे उन्हें उसको अपने मौलिक अभिप्रायके साथ प्रयोगमें लाना कदाचित् अभीष्ट भी न रहा हो। उदाहरणके लिये, जिस पदकी अन्तिम पङ्क्तिको अभी ऊपर उद्धृत किया गया है, उसीके अन्तर्गत जब वे अपने उपास्य 'भगवंत'के कई नामोंकी कुछ-न-कुछ व्याख्या प्रस्तुत करने लगते हैं तो वहाँपर उसके वाचक 'राम' शब्दके विषयमें बतलाते हैं कि 'राम कहा जानेवाला वही है; जो युगों-युगोंतक अपने शाश्वतरूपमें बना रहा करता है।'

---

१. 'कबीर-ग्रन्थावली' ('काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा', संस्करण, सन् १९४७ ई०)।

हुआ दीख पड़ता है, वह केवल 'अञ्जन' मात्र ही समझा जा सकता है। जैसे—सृष्टिका उद्भव 'ॐकार', उसके आधारपर विस्तृत सारा प्रपञ्च आदि ये सभी अञ्जन (माया)के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं।'

जैसे—

राँम निरंजन न्यारा रे, अंजन सकल पसारा रे ॥ टेक ॥
अंजन उतपति वो ऊँकार, अंजन माँड्या सब विस्तार ॥ आदि
(वही, पद ३३६, पृ० २०१)

वास्तवमें उनका 'राम' अपने ढंगका अकेला है और इसी कारण वह निराला भी है; क्योंकि उनका कहना है कि 'कितने ही शिवशंकर उठ गये (अर्थात् लीन हो गये), किंतु रामकी समाधि अभीतक भी छूट नहीं सकी है। प्रलयकालमें अगणित इन्द्र चले गये और ब्रह्मा उसकी नाल पकड़कर उसकी खोज करते ही रह गये; किंतु उसे कोई न पा सका।'

जैसे—

कितेक सिवसंकर गए ऊठि । राँम सँमाधि अजहुँ नहिं छूटि ॥टेक॥
प्रलै काल कहुँ कितेक भाष । गये इंद्र से अगणित लाष ॥
ब्रह्मा खोजि परयौ गहि नाल । कहै कबीर वै राँम निराल ॥
(वही, पद ३५, पृ० ९९)

तथा, यदि स्वयं कबीर भी उसका भजन कर पाता है तो वह केवल इसलिये कि "संतोंकी संगतिके सहारे उसके मनमें यह बात जम गयी है और उसकी मतिमें धैर्य हो आया है, जिससे वह रामको 'सहज' वा 'सहज सिद्ध' मानकर भजने लग गया है।" जैसे—

'सत संगति मति मन करि धीरा, सहज जाँनि राँमहिं भजै कबीरा ॥'
(वही, पद ११५, पृ० १२५)

इस प्रकार यदि हम केवल उपर्युक्त बातोंके ही आधारपर विचार करने लगें तो हमें ऐसा भी लग सकता है कि संत कबीरके 'राम'का स्वरूप, उनकी अपनी कोरी भावनाओंके ही अनुसार निर्मित विभाग रहा होगा तथा यह भी कि उसके ऐसे निर्माणमें जितना भाग उनकी बुद्धि एवं तर्क-पद्धतिने लिया होगा, उतना कदाचित् उसमें उनके हृदयका भी हाथ नहीं रहा होगा। परंतु यदि हम उसके साथ उनके द्वारा बतलाये गये उनके विभिन्न सम्बन्धोंकी ओर भी ध्यान देते हैं तो हमें ऐसा भी जान पड़ता है कि यह बात केवल आंशिक रूपमें ही सत्य सिद्ध की जा सकेगी। वैसी दशामें उनके 'राम' हमारे सामने किसी ऐसे अनुपम व्यक्तिके रूपमें भी आ जाते दीख पड़ेंगे, जिसके साथ अनेक प्रकारके नातेतक भी जोड़े जा सकते हैं। उदाहरणके लिये संत कबीर अपने एक पदके आरम्भमें ही बतला देते हैं कि 'मुझे अपने रामके चरण अपने लिये सुखप्रद अथवा कल्याणकर जान पड़ने लग गये हैं।' जैसे—'राम चरन मनि भाए रे।' आदि पद (७६, पृ० ११२) तथा वहींपर उस अपने उपास्यदेवका पता निर्दिष्ट करते हुए भी वे कहते हैं कि "जहाँपर आस-पासमें तुलसीके घने पौधे लगे हुए हैं और मध्यमें 'द्वारिका गाँव' स्थित है, वहींपर मेरा वह 'ठाकुर' (स्वामी) रामराय निवास करता है, जिसके भक्तका नाम कबीर है।"

जैसे—

आसि पासि तुरसी कौ बिरवा, माँहिं द्वारिकाँ गाँऊँ रे।
तहाँ मेरौ ठाकुर राँम राइ है; भगत कबीरा नाँऊँ रे ॥
(वही, पद ७६, पृ० ११२)

इसके सिवा वे उस अपने रामको, एक ऐसे स्वामीके भी रूपमें देखते समझ पड़ते हैं, जिसके वे स्वयं कोई एक क्रीतदासमात्र हैं तथा वे इस प्रसङ्गमें कहते हैं—"हे गुसाईं (मालिक) ! मैं तेरा एक 'गुलाम' मात्र हूँ; क्योंकि मेरा जो कुछ भी तन, मन अथवा धनके रूपमें है, वह सभी मेरे अपने 'रामजी'के ही लिये है। उसीने मुझ कबीरको हाटमें लाकर उतार दिया है। वास्तवमें वही मेरा विक्रेता भी है और वही मेरा ग्राहक भी। यदि वह मुझे बेचना चाहता है तो फिर कौन है, जो मुझे रख सकेगा; तथा इसी प्रकार यदि वह मुझे रखना चाहता है तो मुझे बेच ही कौन सकता है।"

जैसे—

मैं गुलाँम मोहि बेंचि गुसाँईं।
तन मन धन मेरा राँमजीके ताँईं ॥ टेक ॥
आँनि कबीरा हाटि उतारा। सोइ गाहक, सोइ बेचनहारा ॥
बेचै राम तौ राखै कौंन। राखै राम तौ बेचै कौंन ॥
(वही, पद, ११३, पृ० १२४)

संत कबीर अपने उस 'रामराय' को 'बाप राम' अथवा 'बाप रामराय' कहना भी पसंद करते हैं और इस प्रकार उसके साथ अपनी घनिष्ठ आत्मीयताका भाव प्रकट करते हुए वे उससे कहते हैं—'हे बाप राम! मेरी विनती सुनो; क्योंकि ये बातें औरोंके लिये छिपी हो सकती हैं,

किंतु तुम्हारे लिये ये प्रकट एवं प्रत्यक्ष हैं······हे मेरे रामराय ! मेरा कथन श्रवण कीजिये तथा पहले मुझे क्षमा प्रदान करके, तब मेरा लेखा लीजिये। कबीर कहता है कि हे पिता रामराय ! अब मैं तेरी शरणमें आ गया हूँ।'

जैसे—

> नाह राँम सुनि बिनती मोरी।
> तुम्हसुं प्रगट लोगनि सूँ चोरी॥ टेक॥
>
> × × ×
>
> राँम राइ मेरा कहा सुनीजै। पहले बकसि, तब लेखा लीजै॥
> कहै कबीर बाप राँम राया। अबहूँ सरनि तुम्हारी आया॥
>
> (वही, पद २५७, पृ० २०७)

इसी प्रकार ये 'हरि'के लिये भी कहते हैं—'हे हरि ! तुम मेरी जननी हो और मैं तुम्हारा बालक हूँ; इसलिये तुम मुझे क्षमा क्यों नहीं कर देते।' (जैसे—'हरि जननीं, मैं बालिक तेरा, काहे न औगुंण बकसहु मेरा।' पद ११०, पृ० १२३) और अन्तमें वे यह भी कह डालते हैं कि "बालकके दुखी हो जानेपर उसकी 'महतारी' भी दुःखिनी हुए बिना नहीं रहती।" संत कबीर तो रामको अपना सतगुरु मानते हुए, अपनेको उनका 'नौतम चेला' तक भी कह देते हैं। इसके पहले वे एक पदमें बतलाते हैं कि "'राम'के बिना मेरे शरीरकी तपन नहीं जा पाती तथा जिस जलके भीतर मेरा निवास है, उसमें अब वह और भी अधिक प्रज्वलित होती जान पड़ रही है। हे राम ! तुम्हीं वह जलनिधि हो, जिसमें मैं मछलीके रूपमें वर्तमान हूँ; किंतु (आश्चर्य तो यह है कि) उसमें रहती हुई भी मैं उसके बिना तड़प रही हूँ। तुम पिंजरा हो, जिसमें मैं एक तुम्हारा सुगा-सा हूँ और इसी प्रकार तुम सतगुरु हो जिसका मैं एक नया-नया चेला-जैसा हूँ तथा इसी रूपमें मैं तुम्हारे भीतर अकेले ही रमण कर रहा हूँ।"

जैसे—

> राँम बिन तन की ताप न जाई।
> जल मैं अगनि उठी अधिकाई॥ टेक॥
>
> तुम्ह जलनिधि मैं जल कर मीनाँ, जल मैं रहौं जलहिं बिन खीनाँ॥
> तुम्ह प्यँजरा मैं सुवनाँ तोरा, दरसन देहु, भाग बड़ मोरा॥
> तुम्ह सतगुर, मैं नौतम चेला, कहै कबीर राँम रमूँ अकेला॥
>
> (वही, पद १२०, पृ० १२६)

परंतु इन सबसे अधिक रोचक और आत्मीयताका सूचक सम्भवतः हमें वह समझ पड़ता है, जिसे संत कबीरने अपने राम वा हरिके साथ किसी अपूर्व दाम्पत्यपरक भावके रूपमें जोड़ा है और जिसका परिचय देते समय वे कहते हैं—

> हरि मेरा पिव, माई ! हरि मेरा पिव।
> हरि बिन रहि न सकत मेरा जिव॥ टेक॥
>
> हरि मेरा पिव, मैं हरि की बहुरिया। राम बड़े, मैं छुटक लहुरिया॥
> किया स्यंगार मिलनके ताँई। काहे न मिलौ, राजा राँम गुसाँई॥
> अब की बेर मिलन जो पाँऊँ। कहै कबीर भौं-जलि नहीं आँऊँ॥
>
> (वही, पद ११७, पृ० १२५)

अर्थात् "अरी माई ! हरि मेरा प्रियतम है और हरिके बिना मैं जी नहीं सकती। हरि मेरा प्रियतम है और मैं उसकी 'बहुरिया' हूँ। वे राम मेरे बड़े हैं और मैं उनकी लहुरिया अर्थात् वधूटीमात्र हूँ। (हे राम !) तुमसे मिलनेके लिये मैंने शृङ्गार किया है, किंतु (क्या बात है कि) मेरे राजा एवं स्वामी राम ! तुम मुझसे मिल नहीं रहे हो। कबीर कहता है कि अबकी बार यदि मेरी भेंट तुमसे हो गयी और मैं तुमसे मिल सकी तो मैं फिर कभी भवसागरमें पड़नेका नाम नहीं लूँगी।" इतना ही नहीं, संत कबीर उस अपने रामके साथ विधिपूर्वक विवाहित होनेतककी बातें करते हैं और वे कहते हैं—'हे सुहागिन सखियो ! तुम सभी मङ्गलके गीत गाओ; क्योंकि आज मेरे घर स्वयं राजा राम ही भर्तार वा पतिके रूपमें पधार रहे हैं।' और फिर इसके अनन्तर वे यह भी कह देते हैं कि "मुझे एकमात्र एवं अविनश्वर 'पुरुष'ने ब्याह लिया है।"

जैसे—

> दुलहनि गावहु मंगलचार।
> हम घरि आए हो (राजा) राँम भरतार॥ टेक॥
>
> × × ×
>
> कहै कबीर हँम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी॥
>
> (वही, पद १, पृ० ८७)

तथा वे अन्यत्र इस प्रकारका भी कथन करते हैं कि 'भले ही मेरी निन्दा करो, भले ही मेरी निन्दा करो, तुम लोग मेरी निन्दा करते रहो; मेरा तो तन एवं मन—सब कुछ उस रामप्यारेके ही साथ जुड़ा हुआ है। मैं बावली हूँ और वे राम ही मेरे पति हैं तथा उन्हींके निमित्त मैंने अपना सारा शृङ्गार किया है' इत्यादि।

जैसे—

भलै निंदौ भलै निंदौ भलै निंदौ लोग।

तन मन राँम पियारे जोग ॥ टेक ॥

मैं बौरी, मेरे राँम भरतार। ता कारनि रचि करौं स्यँगार ॥

(वही, पद ३४२, पृ० २०३)

इस प्रकार संत कबीरद्वारा किये गये विभिन्न कथनोंके अनुसार यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके 'राम' कोई व्यक्तिविशेष नहीं हो सकते और न वास्तवमें हम उन्हें किसी अवतारके रूपमें भी मान सकते हैं। उनके अनुसार उनके 'राम'को हम किसी देवविशेषकी भी कोटिमें नहीं रख सकते; क्योंकि इनकी सहायताके बलपर भी उनका अपना काम चलनेवाला नहीं। उनका कहना है कि 'यदि मैं कोई याचना करता हूँ तो वह भी केवल रामसे ही, अन्य देवताओंके साथ मेरा कोई सरोकार नहीं है।' तथा उस अपने रामका कुछ परिचय देते हुए वे यह भी हमें बतला देते हैं कि 'उसके यहाँ करोड़ों सूर्यदेव प्रकाश करते हैं, करोड़ों महादेव और उनके कैलास पर्वत विद्यमान हैं, करोड़ों ब्रह्मा उसके यहाँ वेदोच्चार किया करते हैं।' आदि—

जैसे—

जौ जाचौं तौ केवल राँम, आँन देव सूँ नाँहीं काँम ॥टेक॥

(जाकै) सूरिज कोटि करैं परकास, कोटि महादेव गिरि कविलास ॥

ब्रह्मा कोटि वेद ऊचरैं, दुर्गा (कोटि) जाकै मरदन करैं ॥आदि॥

(वही, पद ३४, पृ० २०२)

केवल ये ही राम इनका साथ बराबर देते रहा करते हैं तथा इन्हींमें वे सदा लीन भी रहा करते हैं। संत कबीरका कहना है कि "मेरा मन कभी डिगता नहीं; जिस कारण मेरा शरीर भी कभी भयभीत नहीं होता और दोनों सदा केवल राममें ही लय लगाये रहते हैं। अत्यन्त अथाह जलके भीतर, जो गहरा होनेके साथ ही गम्भीर भी है, मुझ कबीरको जंजीरमें बाँधकर डाल दिया गया है; किंतु मुझे ऐसा लग रहा है कि उस जलकी ही तरंगोंने उमड़कर जंजीरको काट भी दिया और मैं कबीर हरिस्मरण करता तटपर आ गया। कबीर कहता है कि मेरा अन्य कोई भी संगी-साथी नहीं है। मेरी रक्षा, चाहे जलमें हो या स्थलपर, वह 'जगनाथ' (राम) ही करता है।"

जैसे—

मन न डिगै, तातैं तन न डराई।

केवल राँम रहे ल्यौ लाई ॥ टेक ॥

अति अथाह जल गहर गँभीर, बाँधि जंजीर जलि बोरे हैं कबीर ॥

जलकि तरँग उठि कटि हैं जंजीर, हरि सुमिरत तट बैठे हैं कबीर ॥

कहैं कबीर मेरे संग न साथ, जल थल में राखै जगनाथ ॥

(वही, पद ३४१, पृ० २०३)

अतएव संत कबीरकी उपलब्ध रचनाओंके आधारपर कहा जा सकता है कि उनके राम उनके लिये सभी कुछ हैं, यहाँतक कि उन रामके नामतकको भी वे सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करना चाहते हैं। वे उस रामनामको कभी 'रामरतन' कहते हैं, कभी उसे 'रामरसायन' ठहराते हैं, कभी 'रामरस' वा 'रामजल' बतलाते हैं तो कभी 'रामकसौटी' वा 'चिन्तामणि' कह डालते हैं। तथा वे उसका स्मरण करनेके फलस्वरूप यहाँतक भी कह लेते हैं कि 'मेरा मन रामका स्मरण करता है, मेरा मन राम ही है। अब मेरा मन राम-ही-राम हो रहा है तो बतलाओ, मैं ऐसी दशामें अपना सिर किसे झुकाऊँ ?'

जैसे—

(कबीर) मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहि आहि।

अब मन रामहिं है रह्या, सीस नवावौं काहि ॥

(सा० ८, पृ० ५)

परंतु इसके साथ ही एक बात यह भी स्पष्ट दीख पड़ती है कि उनके वे राम उनके द्वारा यत्र-तत्र 'रघुनाथ' (पद १८७, पृ० १५१), 'रघुराया' (पद ५२, पृ० २८०) अथवा 'रघुपति राजा' कहलाते हुए भी, वस्तुतः वह सत्य वा परमतत्त्व हैं, जो उनका उपास्य है। उनका कहना भी है कि "हमारे लिये राम, रहीम, करीम, केशव अथवा अल्लाह—सभी उस सत्यरूपी रामसे अभिन्न हैं तथा 'बिसमिल' को मिटाकर 'विश्वम्भर' कह देना भी एक ही बात है, मेरे लिये दूसरा कोई नहीं है।"

जैसे—

(हँमारे) राँम, रहीम, करीमाँ, केसो, अलह, राँम, सति सोई।

बिसमिल मेटि बिसंभर एकै, और न दूजा कोई ॥

(वही, पद ५८, पृ० १०६)

राजरानी मीराँकी साधनामें राम

(लेखक—श्रीमती रानीसाहिबा रमा श्रीनिवासप्रसादसिंह)

भारतीय इतिहासके मध्यकालके दूसरे चरणके आरम्भमें चित्तौड़के राजराजेश्वर महाराणा साँगाकी पुत्र-वधू राजरानी मीराँबाईने राजकीय वैभवको तिलाञ्जलि देकर वृन्दावनके प्रेमदेवता भगवान् गिरिधर गोपालकी भक्ति-साधना की। वैसे तो वे प्रमुखतासे श्रीकृष्णकी ही उपासिका थीं और निस्संदेह उनका सम्पूर्ण जीवन श्रीकृष्णकी अनुरक्तिमें सम्प्लावित था; पर उनके अनेक पदोंमें श्रीराम-नामके प्रति उनकी निर्मल श्रद्धा और पवित्र भक्तिका पता चलता है। उन्होंने अपने पदोंमें श्रीकृष्णके सगुण रूपका माधुर्यपूर्ण सौन्दर्य निरूपित किया है और अनेक प्रकीर्ण पदोंमें निर्गुण रामके नामकी महिमा भी गायी है। यद्यपि उनकी दृष्टिमें श्रीराम और कृष्णमें अभेद था, तथापि साधनाके क्षेत्रमें श्रीकृष्णके सगुण रूपके प्रति ही उनका विशिष्ट आकर्षण था; किंतु साथ-ही-साथ रामनामके प्रभाव और महिमाका गान किये बिना भी वे नहीं रह सकीं। उनकी इस तरहकी उदार प्रवृत्तिपर संत रैदासकी निर्गुण भगवद्-भक्ति और गोस्वामी तुलसीदासकी सगुण रामभक्तिका स्पष्ट प्रभाव था। वे संत रैदासके निर्गुण पदोंसे तथा निर्मल भगवद्भक्तिसे बहुत प्रभावित थीं। कहा जाता है कि संत रैदास उनके गुरु थे। मीराँबाईके एक पदसे पता चलता है कि गुरु-रूपमें संत रैदासने मीराँपर कृपा की थी।

गोस्वामीजीसे पूछा था कि 'साधुओं और हरिभक्तोंके साथ भगवद्भजन करते देखकर हमारे राजपरिवारके स्वजन मुझे अनेक प्रकारसे प्रताड़ित कर रहे हैं। मुझे समझाकर लिखिये कि क्या करना चाहिये। आप हमारे माता-पिताके समान हैं, भगवद्भक्तोंको सुखी करनेवाले हैं; मेरा उचित पथ-प्रदर्शन कीजिये।' गोस्वामीजीने पत्रके उत्तरमें लिख भेजा कि 'जिसे श्रीसीताराम प्रिय नहीं लगते, उसका परित्याग कर देना चाहिये; वह भले ही अपना परम सगा हो, पर है वह करोड़ों वैरियोंके समान ही। श्रीरामके पदमें ही स्नेह करना उचित है।'

जाके प्रिय न राम बैदेही।

भवसागरसे पार उतरनेके लिये उन्होंने प्रभुके विरहमें पदोंकी रचना कर रामनामका बेड़ा बाँधा। वे जीवनभर प्रभुके वियोगमें रो-रोकर अपने आपको यही कहकर सदा आश्वस्त करती रहीं कि भवसागरके प्रबल वेग और अनन्त गहरी धारामें राम-नामसे निर्वाह हो सकता है। उनका कथन है—

नहिं ऐसो जनम बारंबार।
का जानूँ कछु पुन्य प्रगटे मानुसा अवतार॥
× × × × ×
भौसागर अति जोर कहिये अनँत ऊंडी धार।
राम-नाम का बाँध बेड़ा उतर परले पार॥
× × × × ×
साधु संत महंत ग्यानी चलत करत पुकार।
दास मीराँ लाल गिरधर जीवणा दिन च्यार॥
(मीरा-मन्दाकिनी ८८)

उन्होंने अपने विरहमय जीवनमें सदा यही अनुभव किया कि श्रीकृष्ण ही हमारे सर्वस्व हैं, श्रीराम ही हमारे सब कुछ हैं। रामके बिना उन्हें कुछ अच्छा नहीं लगा। उन्होंने विरहका गीत गाया—

मेरे प्रीतम प्यारे राम कूँ लिख भेजूँ रे पाती।
स्याम सनेसो कबहुँ न दीन्हौं जानि बूझ गुझबाती॥
डगर बुहारूँ, पंथ निहारूँ, जोइ जोइ अँखिया राती।
राति दिवस मोहि कल न पड़त है, हियो फटत मेरी छाती।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे पूरब जनम के साथी॥
(मीरा-मन्दाकिनी ५३)

वे रामरसकी परम अनुभवी आस्वादिका थीं। उन्होंने दिव्य रामरसामृतका आस्वादन कर कहा कि 'मैं इस रससे परम उन्मत्त हो उठी हूँ। मुझे सद्गुरुने इस रसका महत्त्व बतलाकर मेरे भ्रमका नाश कर दिया। मैं रामरसामृतकी बलिहारी लेती हूँ।' मीराँने गाया—

लागी मोहि राम खुमारी हो।
रिमझिम बरसै मेहड़ा, भीजै तन सारी हो।
चहुँ दिस चमकै दामनी, गरजै घन भारी हो॥
सतगुर भेद बताइया खोली भरम किंवारी हो।
सब घट दीसै आतना, सबही सूँ न्यारी हो॥
दीपक जोऊँ ग्यान का, चढ़ूँ अगम अटारी हो।
मीराँ दासी राम की, इमरत बलिहारी हो॥
(मीरा-मन्दाकिनी ७)

उपर्युक्त निर्गुण पदसे भक्तिमती मीराँकी योगपरक साधनसम्बन्धी अनुभूतिका पता चलता है। गिरिधर-नागरकी वियोगिनी मीराँने श्रीरामरसकी योगिनीके रूपमें निर्गुण-उपासनाके स्तरपर स्वानुभूति अभिव्यक्त की। उन्होंने साधनाका क्रम बताया—

ऐसा प्रभु जाण न दीजै हो।
तन मन धन करि वारणै, हिरदै धरि लीजै हो॥
आव सखी, मुख देखिये, नैणाँ रस पीजै हो।
जिह जिह बिधि रीझै हरी, सोई बिधि कीजै हो॥
सुन्दर स्याम सुहावणा, मुख देख्याँ जीजै हो।
मीराँ के प्रभु राम जी, बड़ भागण रीझै हो॥
(मीरा-मन्दाकिनी ८०)

श्रीमीराँबाईकी राम-नाममें अद्भुत निष्ठा थी। उन्होंने चित्तौड़के महाराणासे कहा कि 'हरि-मन्दिरमें नृत्य कर और राम-नामकी झाँझ बजाकर मैं भवसागरसे पार हो जाऊँगी; मुझे किसीका भी भय नहीं है।'

उन्होंने अविनाशी हरिकी नाम-रटको ही अपने जीवनका सम्बल बताया। उनकी विज्ञप्ति है—

मेरो मन रामहि राम रटै रे॥
राम नाम जप लीजै प्राणी, कोटिक पाप कटै रे।
जनम जनम के खत जु पुराने, नामहि लेत फटै रे॥
कनक कटोरे इम्रत भरियो, पीवत कौन नटै रे।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, तन-मन ताहि पटै रे॥
(मीरा-मन्दाकिनी ९४)

मीराँबाईने रामनामको मुक्ति-प्राप्तिका हेतु स्वीकार किया। उन्होंने निर्गुण-निराकार सच्चिदानन्दस्वरूप रामका अपने अनेक पदोंमें गुणानुवाद किया है। उनके राम घट-घट-वासी सर्वव्यक्त रूपमें अङ्कित हैं, उनके पदोंमें। मध्यकालीन निर्गुणवादी संतोंकी ही तरह मीराँबाईने निष्पक्ष दृष्टिसे श्रीरामकी भी कृष्णकी ही तरह महिमा गायी है। उनकी साधना रामनामकी महिमासे गौरवान्वित थी। अपने भक्तिपूर्ण पदोंमें उन्होंने रामनाम-निष्ठापर विशेष जोर दिया है।

श्रीसमर्थ रामदासस्वामीजीकी श्रीरामोपासना

(लेखक—श्रीपृथ्वीराज भालेराव)

महाराष्ट्रकी संतमालिकामें श्रीसमर्थ रामदासस्वामीजी महाराजका अग्रस्थान है। हिंदी-जगत्‌में जो स्थान श्रीगोस्वामीजीको प्राप्त है, वही स्थान मराठी-जगत्‌में श्रीसमर्थजीका है। दोनों ही श्रीरामके परम भक्त थे, मानो इस घोर कलियुगमें स्वयं श्रीहनुमान्‌जी अवतीर्ण हुए हों। यह विचित्र संयोग है कि दोनोंने जो उपाधियाँ अपने आराध्यको बारंबार प्रदान कीं, उन्हीं उपाधियोंसे उनके भक्तगणोंने उनकी इहलीला-समाप्तिके पश्चात् उन्हींको भूषित किया। 'गुसाईं' शब्दसे श्रीतुलसीदासजीने श्रीरामचन्द्रजीको सम्बोधित किया था तो श्रीरामदासजी प्रभुको 'समर्थ' कहा करते थे। वे ही उपाधियाँ दोनोंको प्राप्त हुईं। यह बात इसीका परिचायक है कि भगवान् तथा भक्तमें अभेद होता है।

रामदासी सम्प्रदायमें श्रीसमर्थजीको साक्षात् हनुमदवतार ही माना गया है—'सो जाली जयदंसजः शिलिदके।' संतश्रेष्ठ श्रीतुकाराम महाराज श्रीसमर्थजीके बारेमें स्पष्ट कहते हैं कि प्रत्यक्ष श्रीआञ्जनेयकी मूर्ति होनेसे योगियों तथा संतोंको उनकी पूँछ भी दिखायी देती थी। अपने शिष्योंको भी उन्होंने अनेक बार श्रीबजरंगबलीके रूपमें दर्शन दिये, जिसका दर्शन पाकर शिष्य मूर्च्छित हो गये। उनके परम शिष्य स्वयं सम्राट् शिवाजी महाराजको भी इसी दिव्य रूपके दर्शन हुए थे।

हनुमद्रूप होनेसे श्रीसमर्थ उन सब सद्गुणोंसे मण्डित थे, जो श्रीरामदूतमें भूषणरूप हैं—जैसे अखण्ड ब्रह्मचर्य, विपुल बल-सामर्थ्य, बुद्धिचातुरी, जितेन्द्रियत्व आदि। इन सभीमें उनका शिरोमणिवत् गुण था—प्रभु रामचन्द्रजीकी ऐकान्तिक एवं असीम भक्ति। श्रीसमर्थजीका साहित्य समुद्रवत् विशाल है। उनका समग्र व्यक्तित्व उनके साहित्यमें प्रतिबिम्बरूपसे दिखायी देता है। वैसे तो करुणाष्टक, पद्यावलियाँ, अभंग, हिंदी कविताएँ आदि उनकी अन्यान्य रचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं, परंतु 'श्रीमद् दासबोध' एवं 'आत्माराम'—ये दो रचनाएँ समर्थ-सम्प्रदायमें अपना सर्वोपरि स्थान निश्चितरूपसे रखती हैं। इस सम्बन्धमें उनका स्वयंका एक वचन है—"आत्माराम, दासबोध माझे स्वरूप स्वतः सिद्ध" अर्थात् 'आत्माराम' एवं 'दासबोध'—ये ग्रन्थ साक्षात् मेरे ही स्वरूप हैं। इसी हेतु वे 'ग्रन्थराज' नामसे गौरवान्वित हुए। उनके अखिल साहित्यसिन्धुका प्रत्येक बिन्दु रामोपासनारूपिणी आर्द्रतासे युक्त है।

समग्र संतसाहित्यमें श्रीसमर्थजीकी विशेषता तो यही है कि उन्होंने केवल अध्यात्म, भक्ति, दैवी-सम्पत्ति, आत्मोद्धार, वेदान्तदर्शन आदि भवतारक साधनोंकी चर्चा नहीं की, अपितु साधारण मानव एवं साधकके लिये आवश्यक लगभग सभी लौकिक विषयोंके सम्बन्धमें बोध प्रदान किया है। श्रीसमर्थद्वारा लौकिक एवं आध्यात्मिक विषयोंके विवेचनका सार यही है कि 'व्यक्तिकी इहलोककी यात्रा तथा सारा जीवन, चाहे वह व्यक्ति साधारण हो अथवा असाधारण, सुचारुरूपसे सम्पन्न हो। और इससे भी मुख्य बात यह है कि क्षण-क्षणमें अध्यात्मानुसंधान बना रहकर वह ब्रह्मज्ञान-प्राप्तिद्वारा सुफलित हो, कृतार्थ हो।' और यह उपदेश भी स्वानुभूतिपर समधिष्ठित होनेसे अतीव महत्त्वपूर्ण है। वे कहते हैं—'आधीं केलें। मग सांगितलें॥' अर्थात् 'पहले हमने आचरण कर दिखाया, फिर उसीके अनुसार दूसरोंको उपदेश किया।'

इस सारे आचरण तथा आदेशका एकमात्र अधिष्ठान है—उनकी दिव्य रामोपासना। वे स्वयं कहते हैं—

'हे ज्ञान रामरूपेनें। धन्य राम उपासना॥ रघुनाथभजनें ज्ञान झालें। रघुनाथ भजनें महत्त्व वाढलें। म्हणौनी तुम्हीं केलें। पाहिजे आधीं॥'

प्रभु-विरहजनित उनकी विकल स्थिति हुई । उसका ज्यों-का-त्यों चित्र हमें उनके 'करुणाष्टक' नामक काव्यसे देखनेको मिलता है—

'रामचंद्रा तुझा वियोग । नको नको रे तो प्रसंग । तुझ कारणें सर्व संग त्यक्त केला ॥ अखंडित हे सांग सेवा घडावी । न होता तुझी भेटी, काया पडावी ॥ स्वामीवियोगें पळहि गमेना । तुजवीण रामा मज कंठवेना । अनुदिन अनुतापें तापलों रामराया । परम दीन दयाळा नीरसी मोह-माया ॥ अचपळ मन माझें नावरे आवारितां । घडि घडि क्षीण हो तो धाँव रे धाँव आतां ॥ दिवस गणिल बोटीं । प्राण ठेवूनी कंठीं । अवचट धरु भेटी । होत घालीन मीठी ॥'

वे कहते—'हे प्रभो ! आपसे विरह कभी भी न हो । आपके ही कारण हमने सब सङ्ग (मोह-ममता) त्याग दिया है । हमारे द्वारा आपकी ही सेवा नित्य हो । यदि आप न मिलते हों तो किस हेतुसे देहको रखूँ ? वह न रहे तो अच्छा । हे भगवन् ! अब मैं पलभरके लिये भी आपके बिना नहीं जी सकता । प्रतिदिन मैं भवसागरमें फँसा पश्चात्तापकी अग्निसे जल रहा हूँ । हे दीनदयाघन विभो ! इस मोहभरी मायाको आप ही जल्दीसे हटायें । मेरा यह चित्त अतीव चञ्चल है । वृत्तिनिरोध करनेमें मैं असमर्थ हूँ । अब आप ही मुझे मायाके चंगुलसे छुड़ानेके लिये दौड़ते हुए तुरंत आइये । हे दीनानाथ ! आपके विरहसे प्रत्येक दिन युग-समान बीत रहा है । प्राण तो, बस, कण्ठतक आ गये हैं । मैं प्रतीक्षामें क्षण-क्षण गिन रहा हूँ । यदि सहसा आप प्रकट हों तो सच जानिये कि आपके चरणारविन्दका मैं ऐसे आलिङ्गन करूँगा कि फिर वहाँसे हटनेकी बात न रहेगी । शाश्वत मिलनहेतु मैं तड़प-तड़पकर आर्त पुकार कर रहा हूँ ।'

'अवस्था मनीं होय नाना परींची । किती काय साँगो, गति अंतरींची ॥ सर्वोत्तमाके मज भेटी देसी ? तुझिया वियोगें बहु वेदना रे ॥ दुःखानलें मी संतप्त देहीं । तुजवीण राम विश्रान्ति नाहीं ॥ जळत हृदय माझें जन्म कोट्यानुकोटी । मजवरि करुणेचा रावया पूर लोटीं । कळमळ निवरी रे राम कारुण्यसिंधु ॥ शिणत शिणत पोटीं पाहिली वाट तूझी । सकरि राघ धावां धाँव ॥'

भावार्थ यह है कि 'मेरे चित्तकी जो व्याकुल दशा हुई है, उसका बखान मैं किस प्रकार करूँ । सर्वोत्तम प्रभो ! आपके वियोगके कारण कैसी विचित्र पीड़ा मैं अनुभव कर रहा हूँ ! अतः आप मुझसे कब मिलेंगे ? कितने दारुण दुःखसे मैं संतप्त हूँ । आपसे बिना मिले अब विश्राम कैसा, काहेका ? पतितपावन ! कोटि-कोटि जन्मसे मैं इस भवचक्रमें घूम रहा हूँ । वह भी कैसे ? निशिदिन हृदयमें दाह है, इस प्रकार चित्त तो जन्म-जन्मान्तरसे जल रहा है, आग बढ़ती ही जा रही है । शमनका तो कोई चिह्न नहीं दीखता । अब आप कृपया अपनी करुणानदीको इस तरह बहाइये कि उस बाढ़से यह घोर अग्नि शान्त हो जाय । तड़प-तड़पकर जीना अब सर्वथा कठिन है । अतः हे करुणासागर ! अब आप तुरंत आयें और इस वेदनाका शमन करें । अब मैं प्रतीक्षा करते-करते पूरा थक चुका हूँ । कितनी देर राह देखूँ ? अब मुझसे रहा नहीं जाता । अतः शीघ्रातिशीघ्र आप पधारिये । प्रभो ! कृपा कीजिये, पधारिये ।'

इस प्रकार श्रीसमर्थजीकी साधक-दशामें समुत्पन्न राम-भक्ति सभी मुमुक्षुगणोंके लिये एक आदर्श उपस्थित करती है । भक्तिकी यही तड़पन अन्तमें प्रभुके दर्शन कराके उन्हें सिद्ध एवं पूर्णज्ञानीकी स्थितिमें प्रतिष्ठित करती है । इस दशामें राम तथा उसके दासमें कोई भेद नहीं रहता । फिर ऐसे परम सिद्ध श्रीरामदासजी अधम-उद्धारहेतु श्रीरामोपासना-की महत्ताका धीर-गम्भीररूपसे उन्मुक्त उद्गान करने लगते हैं । उनका साहित्य ऐसी दिव्य सूक्तियोंसे भरा पड़ा है, जो परमार्थकी दृष्टिसे बड़ा ही पथ-प्रदर्शक है ।

समर्थ श्रीरामदासजीका विश्वास है कि रामोपासनासे सभी शुभ काम सधते हैं । वे कहते हैं—'हे साधुजन ! प्रातःस्मरणीय श्रीरामचन्द्रजीके ध्यान-चिन्तनसे महान्-से-महान् दोष भी भस्मसात् हो जाते हैं । परमगति एवं महत्पुण्यरूप मोक्षका भी लाभ होता है । रघुनाथजीके भजनसे सभी दोष छूटते हैं तथा सभी शुचि कामनाएँ पूरी होती हैं ।' इस प्रकार कामना-पूर्तिके उपरान्त प्रारब्धवश देहपात होनेतक सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंका अनुभव तो जीवको अवश्य होता है; फिर भी राम-स्वरूपके साथ ऐक्य होनेसे महात्मा लोग द्वन्द्वोंसे विचलित नहीं होते और उन्हें प्रभुसे कोई शिकायत भी नहीं रहती ।

यह रामभक्ति स्वयं एक भुक्ति-मुक्तिदायिनी शक्ति कैसे है, इसमें निहित अतुल सामर्थ्यका हेतु क्या है, यह बतानेके लिये वे कहते हैं—'भगवान् श्रीराम निष्ठावान् भक्तोंकी कभी उपेक्षा नहीं करते । उनकी शरणमें जो आया और जिसको स्वयं प्रभुने स्वीकार किया हो, उसकी सामर्थ्यका वर्णन

कौन कर सकता है। कलिकाल भी उसका आदर करता है। उस महान् भक्तका जीवन सफल है, सार्थक है; वह देव-दुर्लभ दिव्य गति पाता है। कोई भी बलवती दुष्ट शक्ति उसे टेढ़ी निगाहसे नहीं देख सकती। उसका कौन क्या बिगाड़ सकेगा। उसकी लीलाकी, अद्भुत चरित्रोंकी चर्चा सर्वत्र हुआ करती है। ऐसे एकनिष्ठ भक्तकी प्रभु कैसे उपेक्षा कर सकते हैं। उस अनन्य भक्तको तो मृत्युका भी भय नहीं होता। दीनानाथ प्रभुने जिसके सिरपर कृपावरदहस्त रखा हो, उसे भवभय कैसे हो सकता है। वे स्वयं अपने दासका नित्यप्रति रक्षण करते हैं तथा उसको महानन्दका, कैवल्यानन्दका दान करते हैं। इससे बढ़कर उनकी महिमाका वर्णन क्या हो सकता है। उनके चिन्तनसे सम्पूर्ण सांसारिक चिन्ताएँ नष्ट हो जाती हैं और समाधिका सुख मिलता है। चन्द्रोदयसे चकोरपक्षीको जिस प्रकार स्वाभाविक सुख होता है, उसी प्रकार श्रीरामके दर्शनसे भक्तको सुख मिलता है। केवल भावसे—श्रद्धा-भक्तिसे ही प्रभु वशमें होते हैं। उनका मिलन स्वरूपके ऐक्यसे ही बनता है, जिसकी चर्चा करते-करते श्रुतियाँ भी मौन हो गयीं। उनके ध्यानसे सारे दुःख सम्यक्रूपसे निरस्त होते हैं। शास्त्रोंमें जो हमने राममहिमा सुनी तथा सद्गुरुने (स्वयं श्रीराम श्रीसमर्थजीके सद्गुरु हैं) जिसका मर्म दिखलाया, उसीके अनुसार हम स्वयं भी अनुभव करते हैं। इसके अतिरिक्त उनका तथा उनकी दरीदकी भक्तिका बखान क्या हो सकता है?'

इस तरह श्रीराममहिमाका गान श्रीसमर्थजीने स्वानुभूति-पूर्ण वाणीसे किया है। स्वयं भवसागरसे तर जानेपर जगदुद्धारका विशाल उद्देश्य दृष्टिपथमें रखकर वे भक्तोंको संदेश देते हैं कि 'यदि भव-नदीको पार करना है और अन्तिम सुख चाहते हो तो एकमात्र प्रभुकी शरण आकर उनकी उपासनामें संतत रत हो जाओ।'

''रामभक्तिका साधन करने हेतु हर-सम्भव प्रयत्न होना चाहिये। जो सच्चे अर्थोंमें श्रीरामजीका दास है, जिसने अनन्य भक्ति, स्वधर्म तथा विरागको हमेशाके लिये अपनाया, उसे निश्चय ही यथासमय ब्रह्मज्ञानकी उपलब्धि होती है। भक्तोंको चाहिये कि अपनी अज्ञानजनित कामनाओंका पूर्णतया त्याग कर प्रभुकी इच्छाके अनुसार व्यवहार करें तथा उसीमें संतोषका अनुभव करें। ऐसी साधनासे वह रघुकुलावतंस प्रभुकी असीम कृपाके योग्य अवश्य ही बन जाता है। उसे चाहिये कि भावभीनी भक्तिसे सदा ही उनके श्रीचरण-पद्मके चिन्तनमें मग्न रहे। ऐसा करनेपर महान्-से-महान् आपदासे भी उस भक्तको मेरे दयामय प्रभु तुरंत छुड़ाते हैं। यह बात नहीं कि प्रभु केवल मेरे ही हैं, अपितु जो कोई भी उनकी शरण सम्यग्रूपसे ग्रहण करता है, उसके भी वे प्रिय स्वामी बन जाते हैं। यह मैं सत्य कहता हूँ—'जिन्हें सियाराम स्वामी-रूपमें प्राप्त हुए, वे जन निश्चय ही धन्य-धन्य हैं। जो जन राममिलनकी आशा बाँधे हुए यह चाहते हैं कि प्रभुद्वारा सर्वथा उनकी रक्षा हो तथा उनकी साधना सुचारुरूपेण सम्पन्न हो, उनके लिये एक अमोघ उपाय यह है कि वे श्रीरामतारक-जैसे किसी एक दिव्य मन्त्रका अखण्ड जाप परमार्थके नियमानुसार अनन्यभावसे करें। इससे आत्मारामके दर्शन अवश्य होंगे।'' अन्ततः अकेले ही इस मृत्युलोकको त्यागना होगा, इसीलिये रामजीको भजो। देहपातके समय तथा उसके पश्चात् भी केवल श्रीराम ही जीवके सहायक बन्धु हैं। इतना ही नहीं, बल्कि देह रहते समय भी हर संकटसे वे अपने भक्तकी रक्षा वात्सल्यवश करते हैं। प्रातःकाल शुभ मुहूर्तमें तो उनका स्मरण विशेषरूपसे तथा अवश्य करना चाहिये। वाणीमें अखण्ड रामनाम रहे। संध्या-स्नान आदि उपासना भी नियमके अनुसार चलती रहे। सभी बातें भावयुक्त होनी चाहिये। भावपूर्वक एवं लगातार रामनामके स्मरणसे सभी शुचि संकल्प पूरे होते हैं, यह बात हम सिद्धान्तरूपेण कह सकते हैं। अपितु प्रतिज्ञा करके कहते हैं कि इस सिद्धान्तका मैंने स्वयं अनुभव किया है। अतः हमारी शुभाकाङ्क्षा है कि रघुनाथजीके निरन्तर भजनमें सभी लोगोंकी प्रीति हो। प्राणोंसे भी प्रिय वे अत्यन्त प्रेमास्पद प्रभु हैं, यह हम सत्य कहते हैं।''

———

सद्गुरु त्यागराज स्वामीकी श्रीरामोपासना

(लेखक—श्रीयुत एस० लक्ष्मीनरसिंह शास्त्री)

आधुनिक कालके श्रेष्ठतम राम-भक्तोंमें दक्षिण भारतके पंचनद क्षेत्रके महान् संगीतज्ञ संत सद्गुरु त्यागराज स्वामीका एक प्रमुख स्थान है। उनकी आध्यात्मिक स्थिति उनको गोस्वामी तुलसीदास, कबीरदास, भद्राचल रामदासजी तथा महाराज कुलशेखरके समकक्ष बैठानेका अधिकार प्रदान करती है। उनके गीतोंका संगीत तथा भाव प्राणोंको इस प्रकार झंकृत कर देनेवाले हैं तथा उनकी श्रीराम-भक्ति इतनी प्रगाढ़ एवं अडिग है कि लोक-परम्परामें उन्हें देवर्षि नारद तथा महर्षि वाल्मीकिका अवतार माना जाता है। अपने जीवनके अस्सी वर्षोंमें उन्होंने अनुपम कीर्तनोंमें श्रीरामका गौरव-गान किया है तथा घोर निराशासे लेकर परमानन्दतक एवं इष्ट देवताके कीर्तिगानसे लेकर परात्पर अद्वैत सत्यके रहस्योद्घाटनतक, भावनाके प्रत्येक स्तरपर रसमें डूबे हैं; परंतु उनकी भक्तिकी प्रत्येक धारा श्रीरामकी ओर ही प्रवाहित हुई है। अभी कुछ दिन पूर्वतक दुर्भाग्यसे दक्षिण भारतसे बाहर श्रीत्यागराजके सम्बन्धमें लोगोंको पर्याप्त जानकारी नहीं थी। हिंदुस्थानी तथा कर्नाटक संगीत-पद्धतियोंके संगीतविषयक पारस्परिक विनिमयकी कृपासे उत्तर भारतने भी श्रीत्यागराजको एक सिद्ध संगीत-कारके रूपमें स्वीकार किया है। फिर भी मानव-भावनाओंके सारे सुरोंको झंकृत करनेवाली उनकी परिष्कृत, परिमार्जित तथा रामाभिमुख सर्वव्यापिनी भक्तिके सम्बन्धमें लोगोंको अधिक ज्ञान नहीं है। उनकी रामभक्तिके नाना पक्षोंसे परिचय कराना ही इस लेखका प्रयोजन है।

श्रीत्यागराजका जन्म तंजौर जिलेके तिरुवारूर नामक स्थानमें सन् १७६७ ई०में हुआ था तथा वे भक्त प्रह्लादके समान ही 'गर्भ-वैष्णव'—श्रीरामरूप भगवान् विष्णुके जन्मजात भक्त थे। इसका प्रमाण उनके मंजरि-रागमें गेय 'पहि विदुपरादु' शीर्षक कीर्तनमें मिलता है, जिसमें श्रीत्यागराजने भगवान् श्रीरामको सम्बोधित करके कहा है—'जन्मकालसे ही मुझे तुमने अपनी भक्ति प्रदान की तथा अपना भक्त स्वीकार किया। अब तो यह तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम अपने सबसे सच्चे दास मुझको अस्वीकार न करके अपने भक्त-रक्षक विरदको संकटमें न डालो।' कलानिधि-रागमें गेय 'चिन्न नाडेना चेयि' अपने दूसरे कीर्तनमें वे वही बात दुहराते हैं—'जबसे मैंने जन्म लिया, तभीसे आपने मुझको अपने वशमें कर लिया, मुझे अपना अनन्य दास बनाया तथा अपनी शाश्वत शरणका आश्वासन दिया।' श्रीत्यागराज अपने अन्य सौराष्ट्र-रागमें गेय 'पाहि राममनुचु' शीर्षक कीर्तनमें श्रीरामके प्रति अल्पायुमें ही हुई अपनी प्रवणताको इन शब्दोंमें पुष्ट करते हैं—'इस जगत्में मेरा जन्म अपने मुखसे रामनाम लेते हुए हुआ था तथा जीवनभरसे श्रीरामके पावन नाममें आसक्त रहा हूँ।' संक्षेपमें, श्रीत्यागराजने बाल्यकालसे ही श्रीरामको अपने इष्टदेवके रूपमें वरण कर लिया था। वे धन्यासि-रागमें गेय अपने 'श्याम-सुन्दराङ्ग' शीर्षक कीर्तनमें कहते हैं—'तुम्हीं तो मेरे इष्टदेव हो'। पुनः वे श्रीरामको 'त्यागराजकुलविभूष'की संज्ञा देते हैं तथा त्यागराज-सदनमें अविचलरूपसे निवास करनेवाले देव 'त्यागराजिटने नेलकोन्नदि दैवमे' (खरहरप्रिया) नामक रागमें गेय 'चक्कनि राजमार्गमु' शीर्षक कीर्तन) के रूपमें सम्बोधित करते हैं। बेगड-रागमें गेय 'नीवेरा कुलधनमु' शीर्षक कीर्तनमें वे श्रीरामको अपने वंशकी अमूल्य निधि कहकर पुकारते हैं।

श्रीत्यागराजके श्रीरामको अपने कुल-देवताके रूपमें स्वीकार करनेपर हमें चकित होनेकी आवश्यकता नहीं; क्योंकि रामपूजा उनकी पारिवारिक परम्परा थी। उनके पिता श्रीरामब्रह्मम् तथा माता सीतम्मा दोनों ही श्रीरामके अनन्य भक्त थे तथा बालक त्यागराजने श्रीरामभक्ति अपने माता-पितासे ही प्राप्त की थी। पूर्णचन्द्रिका-रागमें गेय 'पलुकवेमि' शीर्षक कीर्तन-में वे लिखते हैं—'मेरे माता-पिताने मुझे भक्ति प्रदान की तथा इस प्रकार मेरी रक्षा कर ली।' श्रीरामकी जिस मूर्तिकी पूजा श्रीत्यागराजने जीवनभर की, वह उन्हें अपने परिवारसे उत्तराधिकारमें प्राप्त हुई थी।

भक्तिके विकासमें एक ऐसी भी स्थिति आती है, जब भक्त अपने उपास्य देवताके प्रति प्रगाढ निष्ठा जागरित करके अन्य देवोंसे अविचलरूपसे पराङ्मुख हो जाता है। अन्य देव-विग्रहोंकी अवमानना भी कर बैठता है। कुछ परिस्थितियोंमें अनन्य दृष्टिवाली ऐसी ऐकान्तिक भक्ति निश्चय ही स्वागतार्ह है। कोमल पौधेके चारों ओर बाड़ लगाना इसलिये अनिवार्य हो जाता है कि कहीं बाहरी विक्षेप

उसकी प्रगतिमें बाधक न हों अथवा उसे समूल नष्ट न कर दें। परंतु जब वही भूमिमें अपनी जड़ें गहरी जमाकर एक विशाल वृक्षका रूप धारण कर लेता है, तब उसे अपनी रक्षाके लिये बाड़की आवश्यकता नहीं होती; अपितु वह स्वयं आश्रय लेनेवाले मनुष्यों एवं पशुओंको कृपा-दान करनेमें समर्थ हो जाता है। इसी प्रकार किसी विशिष्ट देवके प्रति भक्ति जबतक जड़ें जमाकर अविचल नहीं हो जाती, तबतक यह ऐकान्तिक भक्ति प्रशंसनीय है। किंतु यदि यह ऐकान्तिक भक्ति अन्योंके प्रति अटल बहिष्कार-वृत्ति धारण कर लेती है, या इससे भी नीचे उतरकर अन्य देवोंके प्रति घृणामें परिणत हो जाती है, तब वह विकृत होकर संकुचित कट्टरताका रूप धारण कर लेती है, जो अन्ततोगत्वा अपने इष्टदेवकी भक्तिको भी नष्ट कर देती है। एक समयपर श्रीत्यागराजके ऊपर भी इस बहिष्कार-वृत्तिकी छाया घिर आती है तथा श्रीरामके अतिरिक्त वे किसी अन्य देवताको अपनी निष्ठाके योग्य नहीं मानते। परंतु वरालि-रागमें गेय 'वाडेरा दैवमु' शीर्षक कीर्तनमें वे घोषणा करते हैं कि 'जो सीतापतिके रूपमें लोकविख्यात हैं, वे ही परम ब्रह्म हैं!' रुद्रप्रिया-रागमें गेय 'लावण्य राम' शीर्षक अपने अन्य कीर्तनमें श्रीत्यागराज कहते हैं—'तुम्हारे विस्मयकारी सौन्दर्य एवं महिमाका अनुभव हो जानेके पश्चात् अन्य क्षुद्र देवताओंकी कृपा-याचनाके लिये कौन हाथ पसारना चाहेगा?' आनन्दका विषय है कि श्रीत्यागराजका यह बहिष्कारात्मक और कुछ सीमातक असहिष्णु दृष्टिकोण एक अस्थायी तरंग है। अपनी भक्तिके परिपक्व होनेपर श्रीत्यागराज इस संकीर्ण मनोवृत्तिसे ऊपर उठकर, नवचेतनाप्रद गाम्भीर्यसे युक्त होकर अपने 'क्षत्रि येवरो' शीर्षक कीर्तनमें घोषित करते हैं कि 'अन्य देवताओंके प्रति निरादर अथवा विद्वेषकी वृत्ति न रखते हुए जो श्रीरामनामका जप करते हैं, निस्संदेह वे ही सच्चे रामभक्त हैं!' श्रीत्यागराज अनुभव करते हैं कि अन्य देवता भी उनके श्रीरामके ही विभिन्न स्वरूप हैं तथा उत्कट भक्तिसे भरकर वे उनके भी अभिमुख होते हैं। श्रीत्यागराजने बहुत-से पदोंमें शिव, अम्बिका, सुब्रह्मण्य एवं कृष्ण-का गुणगान किया है। भैरवी-रागमें गेय अपनी 'ललिते श्रीप्रवृद्धे' शीर्षक कीर्तनमें वे श्रीअम्बिकाको 'श्रीराम-सहोदरी' कहकर सम्बोधित करते हैं और उनसे याचना करते हैं कि वे अपनी कृपा-की वर्षा उनपर करें; क्योंकि वे उनके भाई श्रीरामकी भक्ति करके धन्य हो चुके हैं (श्रीयन्न दयकु पात्रुडने)। इस प्रकार श्रीत्यागराजकी भक्ति एक सुविशाल वटवृक्षके रूपमें परिणत हो जाती है, जिसकी शाखाएँ चतुर्दिक् प्रसरित होकर अपनी छायाकी परिधिमें प्रत्येक वस्तुको घेर लेती है। गत हो गयी वह अनुदार बहिष्कारात्मकता, जो संकीर्णताके बँधे, पर आग्रहपूर्ण स्वरमें गा उठती थी—'राम एव दैवतं रघुकुलतिलकमे—रघुकुलतिलक श्रीराम ही मेरे एकमात्र देव हैं' (रागहंस)। अब भी श्रीराम तथा केवल श्रीराम ही श्रीत्यागराजके परमदेव हैं, परंतु अब वे राम—केवल राम ही नहीं, शिव, अम्बिका, कुमार तथा कृष्ण भी हैं। बिना किसी दुविधाके संत त्यागराज श्रीकृष्णाभिमुख होकर उनसे दिव्य रासकी याचना करते हैं। (कुन्तिनी-रागमें गेय 'प्राणनाथ बिरान ब्रोवबे' शीर्षक कीर्तनमें) रामको कृष्णसे पृथक् करनेवाली दुर्बल मानसिक प्राचीर भी ध्वस्त हो उठती है, जब ये संतकवि 'नौकाचरितम्' नामक विस्तृत गीत-नाटिकाका प्रणयन करते हैं, जिसमें गोपिकाओंके साथ श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाओंका वर्णन है।

संतोंके जीवनका एक और तथ्य, जिसका रहस्य समझमें नहीं आता, उनका अपने उपास्य विग्रहोंके प्रति दुर्बोध्य आसक्ति तथा भक्ति है। महिमामयी मीराँ अपने श्रीविग्रह गिरिधर-गोपालके साथ वधू-सुलभ कोमलतासे ओतप्रोत होकर वार्तालाप करती थीं। अदीक्षित एवं उच्चतर दृष्टि-बिन्दुसे विहित लोगोंको ऐसी प्रवृत्तिमें बचपन तथा विवेकहीन श्रद्धाकी गन्ध आ सकती है, परंतु उन संतोंके लिये उनके पूजित देवविग्रह भौतिक पदार्थ न होकर, उनके प्रियतम परमेश्वरके सजीव स्वरूप थे अथवा (तात्पर्य एक ही है) ऐसे माध्यम थे, जिनके द्वारा उन्हें भगवान्का साक्षात्कार प्राप्त होता था। इसी कारण श्रीत्यागराजके लिये भी श्रीरामका वंशानुगत श्रीविग्रह उनका साक्षात् स्वरूप ही था तथा इसीलिये जब उनके ज्येष्ठ भ्राताने मध्यरात्रिमें उस श्रीविग्रहको चोरीसे ले जाकर कावेरीकी बालुकामें गाड़ दिया, तब वे विक्षिप्त एवं व्याकुल हो उठे। अपनी विक्षिप्तताके इन अन्धकारपूर्ण दिवसोंमें हृदयको काट-काटकर वे अपना दुर्निवार दुःख व्यक्त करते हैं। वे पुकारते हैं—'हे हरि! मैं तुम्हें कहाँ ढूँढ़ूँ। जब तुमने महान् ब्रह्माजीके समक्ष भी प्रकट होना अङ्गीकार नहीं किया, तब एक पापात्मा एवं दाम्भिक मैं तुम्हें पानेकी कैसे आशा कर सकता हूँ!' (हरिकाम्भोजि-रागमें गेय

'नेनेन्दु वेतुकुदुरा' शीर्षक कीर्तन)। अन्तमें जब भगवान् श्रीराम उन्हें स्वप्नमें दर्शन देते हैं तथा खोयी हुई मूर्तिको वापस लानेका आदेश देते हैं, तब संत श्रीत्यागराज दौड़कर कावेरीकी बालुकापर जाते हैं और मूर्तिको खोद निकालते हैं। आनन्दातिरेकमें वे गा उठते हैं—'आज मैंने अपने श्रीरामको पा लिया है'(बिलहरि-रागमें गेय 'कनुगोण्टिनि' शीर्षक कीर्तन)। श्रीविग्रहको अपने वक्षःस्थलसे वात्सल्यपूर्ण आलिङ्गनमें आबद्ध किये श्रीत्यागराज गलियोंमें नाचते हुए आते हैं तथा गाते हैं—'कैसे मैंने तुम्हें सचमुच पुनः पा लिया। ('एट्ला दोरिकितिवो'—'वसन्त' राग)। और इसी श्रीविग्रहको, यदि इसे विग्रह कहा जाय—क्योंकि निश्चय ही श्रीत्यागराजकी दृष्टिमें तो यह विग्रह न होकर भगवान् श्रीरामचन्द्रका साक्षात् स्वरूप ही था—श्रीत्यागराजने अपने उन अमर कीर्त्तनोंको समर्पित किया है, जो उत्तुङ्ग भक्तिभावना एवं अनुपम संगीतके सर्वोच्च शिखरको स्पर्श करते हैं। अलंकार, अर्चना, आन्दोलिका (झूला), कुसुम-तल्प आदि षोडशोपचारोंको संगीतका स्वर देनेमें ये संत आनन्दमें डूब जाते हैं तथा श्रीरामका पूजन सम्पन्न करते हैं। अपनी अमूल्य निधि कहकर उन्हें नीलाम्बरी-रागके कोमल निद्रावाहक स्वरोंसे थपथपाकर मीठी नींदमें सुला देते हैं।

जब श्रीत्यागराजके शिष्य वलाजापेट वेङ्कटरमण भागवतने उन्हें श्रीरामका एक चित्र अर्पण किया, तब त्यागराज आनन्दोन्मत्त होकर गा उठे—'मेरे प्राणपति! क्या तुम मेरे हृदयकी गुप्त अभिलाषा जानकर मुझपर कृपा करने इतनी दूर पैदल चलकर आये?' श्रीत्यागराज जिनका दर्शन कर रहे थे, वे एक चित्र न होकर साक्षात् श्रीराम थे, जिनका नीलकान्तमणिके समान प्रदीप्त नील वर्ण था, वक्षःस्थलपर अनमोल मुक्ताओंकी माला झूल रही थी, हाथमें धनुष धारण किये हुए थे तथा श्रीसीताजी सलज्जभावसे पार्श्वमें अवस्थित थीं।

किंतु ऐसी कल्पना नहीं कर लेनी चाहिये कि श्रीत्यागराजकी भक्ति केवल अपने इष्टदेवकी मूर्तिके सानुराग पूजनमें ही पर्यवसित हो गयी। ऐसी धारणा एकदम निराधार है। उन्हें प्रायः प्रत्येक दिवस भगवान् श्रीरामके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होता था। ऐसा कहा जाता है कि श्रीराममन्त्रके छियानवे करोड़ जपके उपरान्त उनको श्रीलक्ष्मण एवं श्रीविश्वामित्रसहित श्रीरामका दर्शन हुआ, जब कि भगवान् सिद्धाश्रममें विश्वामित्रजीके यज्ञकी रक्षाके लिये प्रस्थान कर रहे थे। इस दर्शनका विशद वर्णन अटाण-रागमें गेय हृदयहारी 'एल नीदयरादु' शीर्षक कीर्तनमें हुआ है, जिसमें यज्ञ-संरक्षण-प्रसङ्गका निर्भ्रान्त उल्लेख है। पुनः संतवरको श्रीसीता एवं लक्ष्मणसहित चित्रकूटस्थित भगवान् श्रीरामके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। ('गिरिपै नेलकोन्न'—राग 'शहान')। एक अन्य अवसरपर वे सरयू नदीमें स्वर्णिम नौकापर विहार करते हुए भगवान् श्रीसीतारामके दर्शन-सुखका उल्लेख करते हैं ('परितापमु'—'मनोहरी')। और जब ये संत रामायणमें वर्णित श्रीराम-रावणके ऐतिहासिक युद्ध-जैसे कुछ कथा-प्रसङ्गोंको उठाते हैं, तब उनका वैशद्य और विस्तार इस बातको द्योतित करता है कि उन्हें लीलाकी साक्षात् झाँकी हुई है (उदाहरणार्थ—सावेरी-रागमें गेय 'रामबाण' एवं सारङ्ग-रागमें गेय 'एमि दीव बल्कुमा' शीर्षक कीर्तन)। सबसे बढ़कर भगवान् श्रीरामके मोहक शौर्य तथा अनुपम श्रीका गुणगान करते समय उनकी शब्दावली हवामें उड़ने लगती है—जितना ध्यान करो, तुम्हारे सौन्दर्यकी माधुरी उतनी ही बढ़ती जाती है ('कनकन रुचिर'—'वराली')। रीतिगौळ-रागमें गेय 'चेर राव देमिर' शीर्षक कीर्तनमें संतकवि त्यागराज कहते हैं—'तुम महामेरुके समान महिमावान् हो।'

आधुनिक युक्तिवादीजन यह कह सकते हैं कि 'यह आवश्यक नहीं कि किसी व्यक्तिको हुए दर्शनोंके पीछे स्वयं भगवान् ही हों। सम्भव है कि मायिक दृश्योंकी भाँति यह भी मस्तिष्ककी किसी विकृतिका परिणाम हो।' मायिक दृश्योंके प्रस्तुतकर्त्तागण दृश्य तो सृष्ट कर देते हैं, पर उनसे किसी प्रकारके आध्यात्मिक आनन्दकी उपलब्धि नहीं होती। यह सच है कि आध्यात्मिक अनुभूतिके लंबे कठिन मार्गमें इस प्रकारकी झाँकियाँ भी प्रगतिकी एक मापदंड होती हैं, किंतु संतोंके विषयमें झाँकियाँ सूचक हो सकती हैं—(और हैं भी) उच्चतर मानसिक शक्तिकी क्रियाशीलताकी, न कि मानसिक अधःपातकी। (तथा श्रीत्यागराजके सम्बन्धमें श्रीरामकी इन झाँकियोंमें ही उनकी समस्त आध्यात्मिक प्रगतिकी व्याप्ति और समाप्ति भी नहीं है।) झाँकियोंके समय अनुभूत श्रीरामकी महिमाके साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध उनमें परम सत्ताके प्रति एक अवबोध उत्पन्न कर देता है। रामायणमें वर्णित श्रीराम तथा उनकी लीलाएँ गौण हो जाती हैं और यह दुःसाध्य प्रश्न कि 'श्रीराम-तत्त्व क्या है' प्रमुख बनकर सामने आता है।

श्रीरामके गुण त्रिगुणोंकी परिधिसे परे हैं (दरबारी रागमें गेय 'एन्दुण्डि' शीर्षक कीर्तन)। श्रीरामने ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवको उत्पन्न किया और उन्हें क्रमशः सृजन, पालन तथा संहारका कार्य, रज, सत्त्व एवं तमकी क्रियाके आधारपर सौंपा ('निजमर्ममुल्नु'—'उमाभरणम्' राग)। ये सब तर्क त्यागराजको यह विश्वास करनेके लिये विवश कर देते हैं कि श्रीराम सिवा परब्रह्म—परम सत्यके अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं—'रामायण ब्रह्ममुनकु पेरु' तथा इस ज्ञानके परिणामस्वरूप उनमें इस अनुभूतिका उदय होता है कि परमात्मारूपमें श्रीराम ही प्रत्येक वस्तुमें परिव्याप्त हैं। श्रीराम ही हरिमें, हरमें, देवताओंमें, मनुष्योंमें, ब्रह्माण्डमें, सज्जनों तथा दुर्जनोंमें, पशुओं तथा पक्षियोंमें भी सदा समाये हुए हैं (वागधीश्वरी-रागमें गेय 'परमात्मुडु' शीर्षक कीर्तन)। इन सभी निष्कर्षोंके लिये त्यागराज रामायणके इस अर्थपूर्ण श्लोकसे पुष्टि प्राप्त करते हैं—

'अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव।'

(वा० रा०, युद्धकाण्ड ११७। १४)

परब्रह्मस्वरूप श्रीराम परात्पर तथा सर्वव्यापी—दोनों ही हैं, अक्षर-ब्रह्मके रूपमें परात्पर एवं सत्यके रूपमें सर्वव्यापक, सम्पूर्ण विश्वमें अन्तर्यामीरूपमें परिव्याप्त (सर्वान्तर्यामी—'मरिमरि निन्ने'—रागकाम्बोजी) श्रीराम ही हैं। जीवनकी जीवनी-शक्ति, नेत्रोंकी दर्शन-शक्ति, नासिकाकी घ्राण-शक्ति, गाये जानेवाले मन्त्रोंमें निहित उनकी स्थायी शक्ति—वस्तुतः सबमें चेतना भरनेवाली शक्ति, सम्पूर्ण भूतोंकी प्राणशक्तिके रूपमें विराजित हैं। ('ना जीवाधार'—राग विलहरी) यह भावना केनोपनिषद्के निम्नलिखित मन्त्रका ही रूपान्तर-सा है।

'श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचꣳस उ प्राणस्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षुः' (१।२)—(ब्रह्म कानका कान है, मन मन, वाणीकी वाणी, जीवनका जीवन तथा चक्षुका चक्षु है।)

सद्गुरु त्यागराजद्वारा श्रीरामके परात्पर रूपकी अनुभूतिका सार रहस्य इस अर्थपूर्ण वचनमें निहित है—(वासुदेवः सर्वमिति' का ही चिन्तन करो—'श्रीवासुदेव सर्व मनुचुनु चिंतिंचिरा' ('चेडे बुद्धि'—राग अठाण)। गीताके निम्नलिखित श्लोकके आशयसे इसका पूर्ण सामञ्जस्य है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति ······················॥

(७। १९)

सब कुछ केवल श्रीराम ही हैं—इस परम ज्ञानकी उपलब्धिके पश्चात् श्रीत्यागराज परमात्मा श्रीरामके समक्ष अपना सर्वस्व-समर्पण कर देते हैं तथा रामका दास कहे जानेपर भी ब्रह्मानन्दमें मग्न अपनेको सबका शाहंशाह तथा परम धन्य मानते हैं। ('आनन्द मानन्द'—राग 'भैरवी')। क्या श्रीरामकी भक्ति इहलोक तथा परलोकमें भी ऊँची-से-ऊँची शाहंशाही नहीं है। ('रामभक्ति साम्राज्यमेमु'—राग-'शुद्धबंगाल')

इस प्रकार त्यागराजकी राम-भक्तिमें—गौणीभक्तिसे पराभक्तिपर्यन्त, किसी आराध्य प्रतिमाके पूजनसे वास्तवमें सब कुछ राम ही हैं—इस निरपेक्ष ज्ञानतक, तथा रामके रूपमें सगुण ईश्वरसे लेकर निर्गुण अद्वैत ब्रह्मकी कल्पनातक भक्तिकी समस्त धाराओंको प्रवाहित होते हुए देखा जा सकता है।

श्रीत्यागराजकी श्रीरामसम्बन्धी भावनाकी एक अन्य विलक्षण विशेषता, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, उनके द्वारा श्रीरामकी नादसे की गयी एकात्मता है। इसपर हमें चकित होनेकी आवश्यकता नहीं। प्रणव (ओंकार) के रूपमें श्रीराम ही वह परम सत्ता हैं, जो अपनी दुर्विज्ञेय माया-शक्तिके द्वारा अर्थ-प्रपञ्च (भौतिक जगत्) का स्वरूप धारण करती है। आदिस्वर ॐकार ही परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरीके रूपमें परिवर्तित होते हुए शब्द अथवा नाम-प्रपञ्च (शब्द या नाम-जगत्) का स्वरूप धारण करता है। इसके भी आगे प्रणव ही स्वर-सप्तकके रूपमें अपना सम्भाग करके संगीतके सम्पूर्ण कलेवरकी रचना करता है। अतः श्रीराम तथा नाद अभिन्न हैं; क्योंकि ये प्रणवके अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। इसीलिये त्यागराज घोषणा करते हैं कि 'सम्पूर्ण वेदों, पुराणों, आगमों तथा शास्त्रोंके आधार प्रणवरूपी नादामृतने ही श्रीरामके रूपमें मानवाकृति धारण की है।' ('नादसुधा'—राग-'आरभि') अतः रामोपासना तथा नादोपासना अभिन्न हैं; क्योंकि दोनों ही परम सुखकी प्राप्तिका निश्चित द्वार खोल देती हैं। तथा 'संगीत वह राजपथ है, जो रामसायुज्यतक पहुँचा देता है।' (संगीतशास्त्र-ज्ञानमु-सारूप्य सौख्यदमे, मनसा !—शालग भैरवी)

इस प्रकार इस सामान्य विवरणके प्रतिकूल कि श्रीत्यागराज सीमित दृष्टिकोणयुक्त एक भक्त—संगीतकार थे, यह स्पष्ट हो जाता है कि वे नारदजी तथा शुकदेवजीके

समान परमोच्च स्तरके ब्रह्मज्ञानी थे तथा परमात्मा श्रीरामके अकथनीय एवं अनन्त गुणोंको प्राणोंको झंकृत करनेवाले गीतोंमें गा-गाकर रसमग्न हो जाते थे। श्रीत्यागराज श्रीरामके सौन्दर्य, शौर्य, महिमा तथा शील-वरिष्ठतासे इतने अधिक अभिभूत हो जाते हैं कि अनेकों बार यह आश्चर्य प्रकट करते हैं कि किसके हितके लिये भगवान् श्रीरामने अवतार ग्रहण किया। वे अपनी सम्पूर्ण विनम्रतासहित उस कृपापात्र महात्माके चरणोंमें दण्डवत्-प्रणामतक करते हैं, जिस आग्रहसे भगवान् श्रीरामने अवतार धारण करना अङ्गीकार किया। ('एवरिकै', राग-'देवमनोहरी')

और हम भी अपने विनम्र प्रणाम उन महान् सद्गुरु त्यागराज स्वामीके चरणोंमें अर्पण करें, जिन्होंने अपने अनुपम सुमधुर गीतोंके द्वारा श्रीराम-भक्तिको इतनी मनोहारिणी माधुरीसे युक्त तथा सरल बना दिया।

भारतीय भाषाओंमें रामचरित

(लेखक—श्रीश्रीरंजन सूरिदेव, साहित्य-आयुर्वेद-पुराण-पालिजैनदर्शनाचार्य)

भारतीय धर्मकथाओंमें रामकथाका अपना वैशिष्ट्य है। जन-जीवनकी विषम परिस्थितियोंमें समताका मार्गदर्शन करनेवाली रामकथा प्रत्येक भारतीयका अपना जीवन-दर्शन है। भारतीय जीवन-दर्शन मुख्यतः धर्मपर आवृत है। धर्म कल्याणका ही प्रतिरूप हुआ करता है। इसलिये धर्मकी परिभाषामें, शोषण-उत्पीडनसे मुक्तिके साथ ही शाश्वत सुख प्रदान करनेवाले मङ्गलमय आचरणको ही प्रमुखता प्राप्त है और इसी संदर्भमें अभ्युदय तथा निःश्रेयस देनेवाली कथाकी संज्ञा 'धर्मकथा' है। धर्मकथाको ही हम 'सत्कथा' कहते हैं, और इससे इतर कथाको 'कुकथा' या 'असत्कथा'। कथानुवर्त्ती धार्मिक या नैतिक ज्ञानका उन्मीलन धर्मकथाकी सर्वोपरि विशेषता है। इस दृष्टिसे रामकथा सही मानीमें धर्मकथा है, असंदिग्ध रूपसे सत्कथा है।

धर्मकी परिधि संकुचित नहीं हुआ करती। व्यापकता धर्मका सहज गुण है। फलतः, धर्म-सम्बन्धी कथा देश, काल और पात्रकी सीमामें बँधी न होकर तदतिशायिनी हुआ करती है। इसमें व्यापक जीवन-निरीक्षणके साथ ही मानवीय प्रवृत्तियों और मनोवेगोंकी सूक्ष्मतम परख तथा अनुभूत सत्यों एवं समस्याओंकी सुश्लिष्टता समाहित रहती है। रामकथामें यही विशेषता पुङ्खानुपुङ्ख-भावसे अन्तर्निहित है। इसके अतिरिक्त शील, सदाचार, संयम, सत्य, शौच, तप, पुण्य और पापके रहस्यके बारीक विश्लेषणके साथ जनमानस और प्रकृतिकी सम्पूर्ण विभूतिके भव्य एवं उज्ज्वल चित्र भी इसमें समुद्भासित हैं। मनुष्य और देव, दोनों प्रकारके पात्रोंके आधारपर सघनता और कलात्मकतासे बुने गये कथातन्तुके कारण रामकथा न केवल मानुषी कथा है, अपितु इसकी परिगणना दिव्य-मानुषी कथाके भी अन्तर्गत होती है। ये ही कुछ एक ऐसे अपरिहार्य कारण हैं, जिनसे रामकथाके प्रचारकी सार्वभौमता सिद्ध हुई है।

विश्वकी विभिन्न भाषाओंमें 'लिखित', 'उल्लिखित' और 'हस्तलिखित' रामकथा-ग्रन्थोंकी संख्याका अन्त नहीं है। फिर भी 'लिखित' रामकथा-ग्रन्थोंकी जो सूची मिलती है, उनके अनुसार उनकी संख्या लगभग १५० है। ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे देखा जाय तो रामकथाका सूत्रपात वैदिक साहित्यमें ही परिलक्षित होता है। वेदोंमें ऋग्वेद सबसे प्राचीनतर है। विभिन्न इतिहासज्ञोंने ऋग्वेदका काल ईसासे हजारों वर्ष पहलेका निर्धारित किया है। ऋग्वेदके दशम मण्डलमें राम और रामकथाके अनेक पात्रोंके नाम मिलते हैं—जैसे इक्ष्वाकु, दशरथ, राम, सीता आदि। वेदोंमें प्राप्त ऐसे शब्दोंकी यद्यपि विभिन्न व्याख्याएँ की जाती हैं, तथापि इतना निर्विवाद है कि वेदोंमें प्रभावशाली अनेक व्यक्तियोंके जो नाम उल्लिखित मिलते हैं, उनमेंसे कुछके नामोंका सम्बन्ध रामायणके पात्रोंके नामोंसे भलीभाँति जुड़ा हुआ है। भारतीय संस्कृतिके प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता श्रीचिन्तामणि

---

१. ख्यातनामा विद्वान् महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराजजी ग्रन्थोंको तीन कोटिमें विभक्त करते हैं। हस्तलिखित, लिखित और उल्लिखित। 'हस्तलिखित' प्राचीन पाण्डुलिपियाँ हैं, 'लिखित'में मुद्रित ग्रन्थ परिगणित हैं और 'उल्लिखित' वे ग्रन्थ हैं, जिनके नामोंका विभिन्न ग्रन्थोंमें प्रसङ्गरूपमें उल्लेख-मात्र पाया जाता है। (लेखककी कविराजजीसे हुई एक वार्ताके आधारपर)

विनायक वैद्यका मत है कि 'ऋग्वेदमें जिन रामका उल्लेख मिलता है, वे वास्तवमें दाशरथि रामचन्द्र ही थे।' साथ ही, इससे यह भी सिद्ध होता है कि रामकथा वैदिक कालसे ही प्रचलित और प्रसिद्ध थी।

वैदिकोत्तर कालमें रामकथाका सुश्रृङ्खलित ग्रन्थ-रूप हमें सर्वप्रथम 'वाल्मीकिरामायण'में ही दिखायी पड़ता है। वाल्मीकि-रामायण इतनी काव्यगुणभूयिष्ठ हुई कि वाल्मीकि 'आदिकवि' कहे जाने लगे और उनकी यह रामायण भी 'आदिकाव्य'के नामसे लोकविश्रुत हुई। संस्कृत-भाषामें वाल्मीकि-रामायणको सर्वश्रेष्ठता प्राप्त हुई है। संस्कृतकी अनेक रामायणोंमें इसका नाम जन-जनका रसनाग्रवर्त्ती हो गया है।

यह कहना आवश्यक है कि भारतमें प्रचलित रामकथाकी पृष्ठभूमिमें आध्यात्मिक भावना भी विद्यमान रही है, जिसके अनुसार रामावतार हर कल्पमें होता है। इसके सम्बन्धमें अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। अतएव स्पष्ट है कि रामचरितकी चर्चा अनादिकालसे चली आ रही है और इसीलिये कुछ लोग रामकथाको 'कल्पभेदी कथा' कहते हैं।

पौराणिक दृष्टिसे भी रामकथाका ततोऽधिक पल्लवन हुआ है। महाभारतमें रामकथाका चार स्थलोंपर उल्लेख मिलता है, जिसमें रामोपाख्यान सर्वाधिक विस्तृत और महत्त्वपूर्ण है। पौराणिक साहित्यके अन्तर्गत हरिवंशपुराणमें रामकथाका संक्षिप्त वर्णन मिलता है। इसमें रामावतारके उल्लेखके बाद वनवाससे रावण-वधतककी रामायणकी मुख्य घटनाओंका वर्णन है, अनन्तर रामराज्यकी प्रशंसा की गयी है। विष्णुपुराणमें भी अयोनिजा सीताका उल्लेख है और रामकथाका भी संक्षिप्त रूपमें वर्णन है। इसके अतिरिक्त वायुपुराण, भागवतपुराण, कूर्मपुराण, अग्निपुराण, नारदपुराण, ब्रह्मपुराण, गरुडपुराण, स्कन्दपुराण, पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, नरसिंहपुराण, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, वह्निपुराण, शिवमहापुराण, देवीभागवतपुराण, बृहद्धर्मपुराण, कालिकापुराण, सौरपुराण आदिमें भी रामकथाका चित्रण पाया जाता है।

धार्मिक साहित्यके अन्तर्गत जो संस्कृत निबद्ध रामचरित मिलते हैं, उनमें 'योगवासिष्ठरामायण', 'अद्भुतरामायण', 'आनन्दरामायण' और 'भुशुण्डिरामायण' (आदि-रामायण) सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त हैं। इन रामायणोंके अतिरिक्त अनेक ऐसी रामायणोंका नामोल्लेख भी हुआ है, जो विद्वानोंद्वारा कल्पित मानी गयी हैं। इसके अतिरिक्त कतिपय प्राचीन वैष्णव संहिताओं और उपनिषदोंमें भी रामचरितका उल्लेख मिलता है, जो कथा-तत्त्वकी अपेक्षा रामभक्तिकी दृष्टिसे अधिक महत्त्व रखते हैं। इनमें रामकथा और रामभक्तिका अद्भुत सामञ्जस्य पाया जाता है।

अन्यान्य संस्कृत साहित्यके अन्तर्गत रामचरितकी काव्यमयी विभूतिकी दृष्टिसे रघुवंश (कालिदास), भट्टिकाव्य (भट्टिकवि), जानकी-हरण (कुमारदास), रामचरित (अभिनन्द), रामायण-मञ्जरी तथा दशावतार-चरित (क्षेमेन्द्र), उदारराघव (शाकल्यमल्ल), जानकीपरिणय (चक्रकवि), रामरहस्य (मोहनस्वामी), प्रतिमा-नाटक (भास), अभिषेक-नाटक (भास), महावीर-चरित (भवभूति), उत्तररामचरित (भवभूति), अनर्घराघव (मुरारि), बालरामायण (राजशेखर), महानाटक, हनुमन्नाटक (श्रीहनुमान्), आश्चर्यचूडामणि (शक्तिभद्र), प्रसन्नराघव (जयदेव) आदि ग्रन्थ अपनी विशेषताके लिये जगत्प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार रामचरित-ग्रन्थोंकी संस्कृत वाङ्मयमें बड़ी ही विशालता एवं विपुलता उपलब्ध है।

की है। 'पउमचरिय' की रचनाके समयमें ही अपभ्रंशका विकास हो रहा था, इसीलिये इस काव्यकी भाषामें यत्र-तत्र अपभ्रंशका प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है।

प्राकृत-'पउमचरिय' के आधारपर कालान्तरमें संस्कृतके साथ ही अपभ्रंश एवं तद्विकसित अन्यान्य भाषाओंमें अनेक रामचरितोंका प्रणयन हुआ, जिनमें पूर्वोक्त रविषेणका 'पद्मचरित' अथवा 'पद्मपुराण' नामक संस्कृत-निबद्ध रामचरित अधिक प्रसिद्ध है। यह 'पउमचरिय'का परिवर्द्धित और छायानुवाद-संस्करण प्रतीत होता है। यह श्वेताम्बर-सम्प्रदायके अनुयायियोंमें अतिशय प्रिय है। 'पउमचरिय'के आधारपर ही लिखे गये अन्य दो रामचरितोंकी भी महनीयता सर्वस्वीकृत है। इनमें पहला स्वयम्भूदेव-कृत 'पउमचरिउ' अपभ्रंशमें निबद्ध है और दूसरा नागचन्द्र-कृत 'पम्परामायण' है, जिसकी रचना कन्नड-भाषामें हुई है। स्वयम्भू-कृत अपभ्रंश 'पउमचरिउ' या 'स्वयम्भू-रामायण' के विषयमें विद्वानोंकी मान्यता है कि यह रामचरित-ग्रन्थ कुछ अंशोंमें तुलसीकृत 'रामचरितमानस'का उपजीव्य बना होगा। श्रीराहुलजीकी मान्यता है कि जिस शूकर-क्षेत्रमें गोस्वामीजीने रामकथा सुनी थी, वहाँ जैनघरोंमें 'स्वयम्भू-रामायण' पढ़ी जाती थी। लोक-जीवनकी रसानुभूतिसे भींगे हुए कविहृदयका जहाँतक प्रश्न है, तुलसी और स्वयम्भू समान हैं और उन्होंने अपभ्रंश और हिंदीमें अपनी-अपनी अनुत्पास्य क्रोशशिला (milestone) स्थापित की है।

पालि-भाषामें भी जातक-साहित्यके अन्तर्गत रामकथाका उल्लेख आता है। रामकथा-सम्बन्धी जातकोंमें 'दशरथ-जातक' सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

प्राकृत, पालि और अपभ्रंशोत्तर हिंदी और तदितर उप-भाषाओंमें निबद्ध रामचरितोंकी चर्चाके क्रममें यहाँ दक्षिणी भाषामें लिखित रामचरितोंकी चर्चा अपेक्षित है। दक्षिणी या द्रविड-भाषाओंमें रामकथा-सम्बन्धी सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ 'कम्बरामायण' है। इसे महाकवि कम्बन्ने दसवीं शतीमें तमिळ-भाषामें गुम्फित किया है। इसमें वाल्मीकिरामायणके केवल प्रथम छः काण्डोंकी ही कथा पायी जाती है। स्वयं कम्बन्ने इसकी रचनामें वाल्मीकिरामायण और अन्य दो कवियोंके आधार ग्रहण करनेकी चर्चा की है। तमिळ-निबन्ध 'कम्बरामायण'के बाद तेलुगुकी 'रंगनायरामायण' की प्रसिद्धि है। इसे कवि बुद्धराजुने बारहवीं शतीमें रचा था। इसकी दूसरी संज्ञा 'द्विपाद रामायण' भी है। इसमें भी वाल्मीकिकी रामायणके केवल छः काण्डोंकी कथाका वर्णन है। इसके अतिरिक्त तेलुगुमें 'मोल्ला-रामायण' (मोल्लाकवि), 'भास्कर-रामायण' (१४वीं शती) एवं चम्पू-शैलीमें लिखित 'गोपीनाथ-रामायण' (१८वीं शती) की चर्चा आती है। कहना न होगा कि इन सभी तेलुगु-रामायणोंका आधार बननेका श्रेय प्रमुखतया वाल्मीकिरामायणको ही है।

तेलुगुके बाद, मळयालम-भाषामें लिखित 'इरामचरित' या 'रामचरित' सबसे प्राचीन है। इसकी रचना चौदहवीं शतीमें त्रावणकोरके किसी राजाने की है। इसमें भी वाल्मीकि-रामायणकी युद्धकाण्ड-कथाका ही पल्लवन किया गया है। इसके अतिरिक्त इस भाषामें और भी अनेक रामायणें मिलती हैं, जो संस्कृत-रामायणोंके अनुवादमात्र हैं। इस भाषाकी सबसे लोकप्रिय रामायण 'अध्यात्मरामायण' है, जो संस्कृतकी इसी नामकी रामायणका रूपान्तरमात्र है। इसके अतिरिक्त 'कन्नास-रामायण' और 'केरालवर्मा-रामायण' भी मल्यालममें मिलती हैं, जो वाल्मीकिरामायणका ही स्वतन्त्र अनुवाद कही जा सकती हैं।

कन्नड-भाषाके 'पम्परामायण' की चर्चा ऊपर हो चुकी है। 'पम्परामायण' का दूसरा नाम 'रामचन्द्रचरित-पुराण' भी है। इसके आधारपर कन्नडमें रामचरित-सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ लिखे गये। इसके अलावा कन्नडकी 'तोरावे रामायण' सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इसकी रचना १६ वीं शतीमें हुई है, जो तोरावेनिवासी कवि नरहरि-कृत कही जाती है। इसमें भी वाल्मीकिरामायणके प्रथम छः काण्डोंकी कथा वर्णित है। कन्नडका दूसरा रामचरित 'मेरावण-कळग' है। इसमें चार संधियोंमें हनुमान्द्वारा मेरावण-वधका वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त कन्नडमें तिरुमल वैद्य और योगेन्द्रद्वारा दो 'उत्तररामायणों'की भी रचना हुई, जो विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

उक्त दक्षिणी रामायणोंके अतिरिक्त भारतीय भाषाओंमें दिवाकरप्रकाशभट्टद्वारा १८ वीं शतीके अन्तमें कश्मीरी भाषामें रचित 'काश्मीरी रामायण'की परिगणना होती है। इसकी रचनामें भी वाल्मीकिरामायणकी पूरी कथाका अनुवर्तन है। इस सम्पूर्ण काव्यका वर्णन उमा-महेश्वर-संवादके रूपमें उपस्थित किया गया है। 'स्वयम्भू रामायण' का मन्दोदरीके गर्भसे सीताकी उत्पत्तिवाला कथानक भी इसमें आया है।

इसके अतिरिक्त इसमें अनेक अलौकिक कथाओंका समावेश हुआ है।

भारतीय भाषाओंके कतिपय प्रसिद्ध रामचरित्रोंमें बँगला-भाषाकी 'कृत्तिवासी रामायण' (१५वीं शती), 'रामरसायन' (रघुनन्दन गोस्वामी), 'रामायण' (चन्द्रावती), 'रामलीला' (रामानन्द), 'अङ्गदेर बैर' (कविचन्द्र), 'रामायण' (जगतराम) आदिकी गणनामें 'कृत्तिवासी रामायण' ही जन-जनका कण्ठहार बनी हुई है। बँगलाके अतिरिक्त उड़िया-भाषाकी 'जगन्मोहन-रामायण' या 'दण्डिरामायण' (बलराम-दास, १५वीं शती) की बड़ी महिमा है। इसके अतिरिक्त 'विलंकारामायण' और 'विचित्ररामायण' की भी उड़िया-समाजमें अच्छी मान्यता है। मराठीमें रामकथासे सम्बद्ध 'भावार्थरामायण' की ततोऽधिक विशेषता मानी जाती है। इसकी रचना १६वीं शतीमें मराठीके प्रसिद्ध संतकवि एकनाथने की थी। इसकी कथा 'अध्यात्मरामायण' और 'आनन्द-रामायण' से बहुशः साम्य रखती है। मराठीमें ही निबद्ध मोरोपन्त कविकी 'रामविजय' एवं श्रीधर कविकी 'रामकथा'-की भी अतिशय लोकप्रियता है। गुजराती-भाषामें गिरिधर-दास-कृत 'रामायण' अति प्रख्यात है। भालणकवि-कृत 'रामविवाह' और 'बालरामचरित' भी पर्याप्त जनप्रिय हैं। असमिया-भाषामें भी चौदहवीं शतीमें माधवकन्दलिने वाल्मीकि-रामायणका अनुवाद किया था। इसके अतिरिक्त असमियाकी 'रामविजय', 'उत्तरकाण्ड रामायण' (शंकरदेव), 'गीति-रामायण' (दुर्गावर), 'कथारामायण' (रघुनाथ) तथा 'रामकीर्तन' (अनन्त आता)-जैसी रामकथाओंका भी उल्लेखनीय स्थान है। यह कहना अप्रासङ्गिक न होगा कि भारतीय संविधानमें स्वीकृत पंद्रहों भाषाओंमें अपनी-अपनी विशिष्टताके साथ रामचरित लिपिबद्ध हुआ है और सबका आधार निश्चितरूपसे वाल्मीकिकी रामायण ही है।

रामचरितमानस सुमेरु-शिखरकी तरह शोभायमान है, जिसकी महिमाका वर्णन मानव-मुखसे सम्भव नहीं है। कहना न होगा कि तुलसीके श्रीमुखसे स्वयं शारदीया वाणी ही स्फुरित हुई है। तुलसीके रामचरितमानसके आधारपर तो मानो रामचरित लिखनेकी सुदीर्घ परम्पराको विविधतापूर्ण विस्तार मिला है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तको 'साकेत' में कहना पड़ा कि 'राम! तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है। कोई कवि बन जाय, सहज सम्भाव्य है।' गोस्वामीके पहले सूरदासने भी 'सूरसागर' में मुक्तक-पदोंमें रामकथाका वर्णन किया था। हिंदीमें रामकथा लिखनेवालोंमें तुलसीके अतिरिक्त केशवदास, अग्रदास, नाभा-दास, सेनापति, रामप्रियाशरण, जानकीरसिकशरण, प्रिया-दास, प्रेमसखी, जनकलाडिलीशरण, जनकराजकिशोरीशरण, महाराज रघुराजसिंह आदि अनेक रामभक्तोंके नाम गौरवके साथ कीर्तनीय हैं। बीसवीं शतीमें भी रामचरित उपाध्याय, बलदेवप्रसाद मिश्र, पं० रामनाथ ज्योतिषी, 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त आदिके नाम रामचरित-लेखकोंमें परि-कीर्तनीय हैं। किंतु मानव-जीवनकी व्यापक समीक्षाकी दृष्टिसे रामचरितमानसकी आजतक तुलना उपलब्ध नहीं है।

प्राचीन धार्मिक विधि 'यक्कम' को सम्पन्न करते समय अनेक काव्य-कथाओंका पाठ किया जाता है, जिनमें रामकथाके विविध स्फुट प्रसङ्गोंको सांगीतिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है।

इस प्रकार वैदिक कालसे छान्दस-भाषामें प्रवाहित रामकथाके गायनकी धारा संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी और तदुत्तरवर्त्ती समस्त भारतीय उपभाषाओंतक अक्षुण्ण वेगसे चली आ रही है और इस धाराका विकास बिहारकी दो प्रमुख उपभाषाओं—भोजपुरी और मैथिलीमें भी हुआ है। इस संदर्भमें प्राग्युगीन पं० चन्दा झा द्वारा मैथिलीमें रचित 'मैथिली रामायण'का अपना महत्त्व है, जो परम्परागत रामकथाके नवीन संयोजनके रूपमें प्रतिष्ठित हुई है। मैथिली-भाषामें रामायणकी रचना-परम्परामें आचार्य रामलोचनशरण-जीका 'मैथिली रामचरितमानस' एक महनीय अवदान है, जो भारतीय भाषाओंकी रामकथाओंकी शृङ्खलामें एक उल्लेखनीय कड़ी सिद्ध हुआ है। आचार्य शरणजीका 'मैथिली रामचरितमानस' गोस्वामी तुलसीके 'मानस'का ही मैथिली-अनुवर्त्तन है और रामायणके विभिन्न-भाषिक रचना-विकासकी दृष्टिसे उसकी अपनी गरिमा है। बिहारकी दूसरी विकसित उपभाषा भोजपुरीमें निबद्ध 'भोजपुरी रामायण'में श्रीदुर्गा-शंकरप्रसादसिंहने परम्पराप्राप्त रामकथाको अनेक नवीन आयामोंमें उपस्थित किया है। श्रीदुर्गाशंकरप्रसादसिंहजीकी 'भोजपुरी रामायण' तथा आचार्य रामलोचनशरणकी 'मैथिली रामायण'की अपनी विशेषता है। तुलसीकी मानस-कृति अवधीमें निबद्ध होते हुए भी जिस प्रकार हिंदीका हृदय-हार मानी जाती है, उसी प्रकार भोजपुरी और मैथिलीके उक्त रामचरित हिंदी-साहित्यके लिये नवीन पुरस्कार हैं। खेद है कि भोजपुरी मायण पूरी होनेके पहले ही उसके पुरस्कर्त्ता अकाल-कालकवलित हो गये, किंतु आचार्य रामलोचनशरणजी न केवल रामचरितमानस, अपितु समस्त तुलसी-साहित्यका मैथिलीभाषामें अनुवर्तन करके साकेतवासी हुए। आचार्य रामलोचनशरण एवं श्रीदुर्गाशंकरप्रसादसिंहकी स्मरणीयता इस मानीमें विशेषता बनाये रहेगी कि इन्होंने रामकथाकी वैदिक-पौराणिक काव्यधाराको मैथिली और भोजपुरीतक लानेमें भगीरथका काम किया है।

यहाँ प्रसङ्गवश यह उल्लेख्य है कि केवल विभिन्न भारतीय भाषाओंमें ही नहीं, अपितु अनेक भारतीयेतर भाषाओंमें भी रामचरितका चित्रण हुआ है। ईसवी-सन्‌के प्रारम्भिक समयमें जब कुषाण-वंशका राज्य काशीसे खोतानतक फैला था, तब उधरके बाहरवाले देश भारतीय संस्कृतिसे धीरे-धीरे प्रभावित होते गये। इस प्रकार ईसाकी सातवीं शतीतक खोतान, चीन, तिब्बत तथा भारतका सम्बन्ध भलीभाँति स्थापित हो गया और भारतीय संस्कृतिका प्रसार भी उधर थोड़ा-बहुत प्रारम्भ हो गया। फलतः, उन देशोंमें भारतकी मूर्द्धन्य सामाजिक धर्मकथा रामकथाका भी प्रचार सहज ही हो गया। इसके पश्चात् क्रमशः इंडोनेशिया, इण्डोचीन, श्याम, कम्बोडिया, ब्रह्मदेश आदि देशोंमें राम-कथा पहुँची और वहाँकी भाषाओंमें लिपिबद्ध हुई। इस प्रसङ्गमें रूसी विद्वान् बारान्निकोवकी मानसकी रूसी भूमिकाके साथ मानसका सफल रूसी अनुवाद सबसे महत्त्वपूर्ण है। कहना न होगा कि अनेक पाश्चात्त्य यात्रियों एवं मिशनरियोंकी भारत-सम्बन्धी रचनाओंमें भी रामचरितका पल्लवन हुआ है, जिनमें अंग्रेजी, स्पेनिश, फ्रेंच, डच आदि भाषाओंमें निबद्ध रामचरित अपनी मूर्द्धन्य महनीयतासे महामहिम बना हुआ है।

श्रीरामसे विनय

रचयिता—श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी 'पत्रकार'

राम-नामके दो अक्षरमें, क्या जानें, क्या बल है!
नामोच्चारणसे ही मनका धुल जाता सब मल है।
गद्गद होता कण्ठ, नयनसे स्रावित होता जल है॥
पुलकित होता हृदय, ध्यान आता प्रभुका पल-पल है।
यही चाह है, नाथ! नाम-जपका यह तार न टूटे॥
सब छूटे तो छूटे, ध्यान तुम्हारा कभी न छूटे।

भारतीय वाङ्मयमें रामकाव्य

(लेखक—श्रीगणेशनारायणसिंहजी एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

भारतीय वाङ्मयमें रामकाव्यके स्वरूप-निर्धारणपर विचार करते समय यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि इसके मूल सूत्रको पकड़ा जाय और मूल सूत्रकी उपलब्धिके लिये सर्वप्रथम अत्यन्त प्राचीन छान्दस-साहित्यकी ओर ही दृष्टि जाती है, जिसमें इतस्ततः बिखरे हुए रूपमें इसके सूक्ष्म तन्तु मिलते हैं। उपनिषदोंमें भी, विशेषतः उत्तरकालीन उपनिषदोंमें रामकाव्यका संकेत मिलता है, यद्यपि निश्चय ही बहुत वह पुष्ट और सुव्यवस्थित नहीं कहा जा सकता।

पुराणोंमें और आदिकाव्यमें पहले-पहल रामकाव्यका स्वरूप सुव्यवस्थित रूपमें सामने आता है और ऐसा प्रतीत होता है कि बादके प्रायः सभी कवियोंने मूलरूपमें पुराणोंका और वाल्मीकीय रामायणका आश्रय और आधार ग्रहण किया है। नयी-नयी उद्भावनाएँ, कल्पनाएँ, योजनाएँ एवं काव्यविस्तार शिल्प-प्रतिष्ठानोंमें आयी हैं। परंतु कथाका जो स्वच्छ, निर्मल और अप्रतिहत प्रवाह पुराणों और वाल्मीकीय रामायणमें मिलता है, वही समग्र देशकी सभी भाषाओंके कवियों और चिन्तकोंका दीप-स्तम्भ रहा है और निश्चय ही प्रेरणाका सारा स्रोत और शिल्पकी सारी सजावट वहाँसे ली गयी प्रतीत होती है।

प्राकृत और अपभ्रंशमें रामकाव्यका एक बड़ा ही साफ-सुथरा रूप सामने आता है, यद्यपि उसके कथा-तत्त्वमें परम्पराका कोई यथेष्ट निर्वाह नहीं हो पाया है। सम्भव है, उसपर तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था और जनश्रुतियोंका प्रभाव पड़ा हो।

'रामकाव्य'में एक विशेष बात लक्ष्य करनेकी यह है कि इस धारामें भगवान् रामके प्रति भक्ति और मर्यादाका ही विशेष आकलन हुआ है। भक्तिकी भी स्फूर्ति न्यून नहीं है; परंतु उस भक्तिकी पृष्ठभूमिमें मूल मनोभाव है—शील और मर्यादाका ही, जिसमें लोक-मङ्गलकी भावना ही आधार-शिला है। विश्वमें धर्मकी स्थापना हो, सबके जीवनमें उसकी ज्योति विकसित हो और चर-अचरमें उसका प्रकाश बिम्बित हो, यही रामकाव्यकी अन्तर्धारा है। १८वीं शताब्दी-के बाद इस काव्यधारामें कुछ विकृतिके लक्षण—यदि हम इसे विकृति ही कहें तो स्पष्ट दिखलायी पड़ने लगे और इस शील और मर्यादाके साथ-ही-साथ सौन्दर्योपासना और रूपरस-की आसक्तिने साधनाके क्षेत्रमें ही नहीं, बल्कि साहित्यके क्षेत्रमें भी एक नया अध्याय खोल दिया और इस प्रवाहमें अनेक संत-भक्त अपने हृदयकी प्रेमवासनाको तृप्त कर सके।

'रामकाव्य'के स्वरूप-विकासके अध्ययनके संदर्भमें हिंदीवाङ्मयमें अवधी और ब्रजभाषा, दोनों ही शक्तियाँ उपलब्ध हैं और छन्दोंके प्रकार-भेदमें तो इतनी विविधता है कि लगता है, जैसे छन्दोंका एक विस्मयकारी बाजार ही लग गया है। हर नूतन उद्भावनाके लिये एक नूतन शब्दका आविष्कार किया गया है, जो अपने-आपमें पूर्णतः परिपुष्ट और सशक्त है और जिसे पाकर हिंदी भारती धन्य हुई है। छन्दोंकी विविधता और भावोंकी तरलता सहज ही एक सहृदय पाठक-को वशीभूत कर लेती है; लेकिन ध्यान देनेकी बात यह है कि यहाँसे वहाँतक सम्पूर्ण काव्य एक दिव्य पवित्रता और मङ्गलमयताकी सुगन्धसे सुवासित है और यह मङ्गल-ज्योति कहीं भी धूमिल नहीं हो सकी है।

रामाख्यानकी काव्य-अर्हता

हमारा विश्वास है कि रामाख्यान पृथ्वीतलको विदीर्णकर उगनेवाले उस विराट् वटवृक्षके समान है, जो अपनी शीतल छायामें काव्य-रसिकों, भक्तों एवं अध्यात्मप्रेमियोंको आश्रय देता हुआ प्रकृतिकी विशिष्ट-विभूतिके तुल्य अपना मस्तक उन्नत किये हुए खड़ा है।

इस आख्यानकी अन्तर्धारामें सौन्दर्य-सृष्टिके चरमोत्कर्ष-के साथ महनीय काव्य-कलाका चरम औदात्य भी निहित है। समस्त आध्यात्मिक संस्कृतिके उपादानः तत्त्वज्ञान, प्रेम, साधना एवं सौन्दर्यका अद्भुत समन्वयात्मक रूप चरितनायक रामके जीवनमें समाविष्ट है। निस्संदेह रामाख्यानमें महाकाव्योचित स्वाभाविक गरिमा, गीतिकाव्योचित मधुरता, स्तोत्र-काव्योचित तन्मयता, प्रबन्धकाव्योचित [illegible], पुराणकाव्योचित जीवन-व्यापकता एवं स्फुट-काव्योचित रसमाधुर्य पाया जाता है। जो कवि जिस भावसे इसके

जीवनका अवलोकन करता है, उसी भावमें रामका रूप परिलक्षित होता है।[1]

वस्तुतः रामका चरित्र—

'अणोरणीयान् महतो महीयान्।'[2]

—के रूपमें उपलब्ध होता है। अतः मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंको भी रामके महनीय व्यक्तित्वने आकृष्ट किया है और उन्होंने भी कतिपय सूत्र और मन्त्रोंमें उनकी स्तुति की।

संहिताओंमें रामाख्यानके बीज और उनका काव्यत्व--

वैदिक साहित्यमें राम-काव्यका समग्ररूप क्रमशः भले ही न मिले, पर समस्त चारित्रिक बीज-सूत्र अवश्य उपलब्ध होते हैं।

(१) रामका नाम, (२) रघुवंश, (३) दशरथ, (४) इक्ष्वाकु, (५) सीता, (६) भरत, (७) हनूमान्, (८) दशानन, (९) त्रिशिरा, (१०) अयोध्या, (११) सगर—उपर्युक्त नाम तो संहिता-ग्रन्थोंमें स्पष्टरूपसे पाये जाते हैं, भले ही उनका अर्थ सायणाचार्य, उव्वट, महीधर आदिने विभिन्न रूपोंमें ग्रहण किया हो।

साहित्यशास्त्रका एक सिद्धान्त है कि नामोंका उल्लेख किसी संज्ञाके लिये आता है; पर जब वे संज्ञाएँ अपने साहचर्य-सम्बन्धसे अन्य अर्थको सम्मिलित कर लेती हैं, तब नाम भी उस संकेतित अर्थकी अभिव्यञ्जना करने लगते हैं और उन नामोंके द्वारा आध्यात्मिक, नैतिक एवं बीज-शक्तिसम्पन्न मान्त्रिक अर्थ भी अभिव्यक्त होने लगते हैं। अतः ऋग्वेद एवं अथर्ववेदमें जो बीजसूत्र उपलब्ध हैं, उनसे रामविवाह, वनगमन, सीताहरण, रावणवध एवं हनूमान्-भक्ति आदि आख्यान-अंश भी घटित होते हैं। यह सत्य है कि आख्यान-अंशोंको घटित करनेमें अर्थकी कुछ खींचतान करनी पड़ती है और शब्दोंकी तोड़-मरोड़ भी; पर यह प्रक्रिया उतनी अधिक द्रविड़ प्राणायाम नहीं है, जितनी लोग समझते हैं। अतएव हमें रामाख्यानके मूल-बीजोंपर संक्षेपमें विचार करना चाहिये।

वेदोंका यदि गहन अध्ययन किया जाय तो हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि रामसे सम्बन्धित पर्याप्त स्थल वेदोंमें भरे पड़े हैं। स्थानाभावके कारण कथन-की पुष्टिके लिये विशद विवेचन सम्भव नहीं है। संकेतरूपमें कुछ मन्त्रोंको उद्धृत किया जा रहा है—

(१) अथर्ववेद—१ । २३ । १
(२) तैत्तिरीय आरण्यक—५ । ८ । १३
(३) ऋग्वेद—१० । ३ । ३; सामवेद १५ । २ । ३
(४) ऋग्वेद—१० । ९३ । १४
(५) ऋग्वेद—१० । १११ । ७
(६) ऋग्वेद—८ । ३३ । १७
(७) तै० आरण्यक—२ । ४ । ४ । १
(८) ऐ० ब्रा०—७ । २७ । ३४
(९) श० ब्रा०—४ । ६ । १ । ७

वेदोंमें रामाख्यान प्रस्तुत है, इस विषयको लेकर अत्यन्त प्राचीन कालसे विद्वानोंमें मतभेद है। इस मतभेदके परिप्रेक्ष्यमें समाधानके नये आलोकको लेकर सर्वप्रथम आजसे चार सौ वर्ष पूर्व महाविद्वान् एवं परम भगवद्भक्त श्रीनीलकण्ठजीका दर्शन भारतवर्षको हुआ। इन्होंने वेदोंसे श्रीकृष्ण-कथासम्बन्धी एक सौ दस मन्त्रोंका संकलन 'मन्त्रभागवत' नामसे और श्रीरामकथासम्बन्धी डेढ़ सौ मन्त्रोंका संकलन 'मन्त्र-रामायण' नामसे करके उनपर संस्कृतमें सुन्दर भाष्य किया है। वेदान्तभूषण पं० रामकुमारदासजी (मणिपर्वत, अयोध्या) ने अपनी रचना 'वेदोंमें रामकथा' में संहिताओं (मन्त्र-भाग वेदों)से ढूँढ़कर मन्त्ररामायणमें संकलित सभी मन्त्रोंकी सूचना दी है। इन दोनों विद्वानोंके प्रयासके बावजूद भी सम्भव है, कुछ लोग वेदोंमें रामकथासम्बन्धी बातोंको स्वीकार करना न चाहें। तर्क और विवादकी कोई सीमा नहीं है। वेदमन्त्र तो कल्पवृक्षवत् अनेक अर्थ देनेवाले हैं। विवाद चाहे वेदोंमें रामकथाको लेकर जितना भी हो; किंतु विद्वद्वरिष्ठ पं० नीलकण्ठजीकी रचना 'मन्त्ररामायण' एवं

---

१. (क) जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥
(रामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर, बालकाण्ड० २४० । २)
'राम' तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाय, सहज सम्भाव्य है।
'साकेत', मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी, पञ्चम सर्ग, पृ० १४६।

२. कठोपनिषद् २ । २०

पं० रामकुमारदासजीकी रचना 'वेदोंमें रामकथा'ने चिन्तकोंका मार्ग इस अर्थमें प्रशस्त कर दिया है कि वेदोंमें भी रामकथाके बीज उपलब्ध हैं।

संस्कृत वाङ्मयमें रामकाव्य—

संस्कृत भाषामें रामकाव्यका प्रथम अवतरण वाल्मीकिसे हुआ। यों तो वेद, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदोंमें रामकथा उपलब्ध होती है; किंतु मतवैविध्यके कारण कुछ स्पष्ट रूप सामने नहीं आता। फिर भी इतना सत्य है कि छान्दस-भाषाके ऋषि रामकथाके पात्रोंसे अवश्य परिचित थे। अतः रामकाव्यका अभ्युदय सरस्वतीके वरद पुत्रोंका आश्रय प्राप्तकर विभिन्न रूपोंमें प्रादुर्भूत होता रहा। संस्कृतके मान्य आचार्य और कवियोंने आराध्य रामको मर्यादापुरुषोत्तम, अंशावतारी, पूर्णावतारी, परब्रह्म आदि अनेक रूपोंमें दर्शन कर कथाका अङ्कन किया है। अतएव रामकाव्यकी यह भूयसी विशिष्टता है कि उसमें जनसाधारणके मनोभावों, हृदयकी वृत्तियों, विभिन्न दशाओं, मानसिक विकारोंके चित्रणके साथ, भक्ति, ज्ञान और कर्मकी त्रिवेणी प्रवाहित हुई। राग और द्वेष, हर्ष और विषाद, प्रेम और करुणा, उत्साह और अवसाद आदि जितने भाव मानव-हृदयको अपना रङ्गस्थल बनाया करते हैं, उनका चित्रण रामकाव्यके कवियोंकी ललित लेखनीने इतनी सुन्दरतासे किया है कि पाठक, भक्त और साधक—तीनों ही भावसरितामें अपने-आपको गोते लगाते हुए पाते हैं।

मर्यादापुरुषोत्तम रामका जीवन जनसामान्यके लिये अत्यन्त आकर्षणकी वस्तु रही है। यही कारण है कि रामकाव्य अनेकविधाओंमें प्रादुर्भूत हुआ है। संस्कृत वाङ्मयमें उपलब्ध रामसाहित्यको निम्नलिखित काव्य-विधाओंमें विभक्त किया जा सकता है—

(१) पुराण, (२) संहिता, (३) महाकाव्य, (४) खण्डकाव्य, (५) चम्पू, (६) नाटक, (७) स्तोत्र, (८) सूत्रग्रन्थ और (९) आलोचनात्मक निबन्ध।

रामाख्यानसे सम्बन्धित अनेक संहिता-ग्रन्थ उपलब्ध हैं। स्थानाभावके कारण विशद उल्लेख सम्भव नहीं है। संक्षेपमें यह कह सकते हैं कि संहिता-ग्रन्थोंमें रामके मधुररूपकी उपासना वर्णित है और यह रूप सम्भवतः श्रीमद्भागवतके पश्चात् विकसित हुआ है।

'संहिता' शब्दका अर्थ ही अनेक विषयोंका संकलन है। प्रसङ्गवश संहिताओंमें रामका रूप, नाम, लीला, धाम, प्रभाव आदिकी दृष्टिसे महत्त्व बतलानेके लिये संवादरूपमें रामाख्यानके किसी अंशविशेषको जोड़ दिया जाता है। अतः संहिताओंमें रामकाव्यका कोई यथार्थ स्थापत्य प्रस्फुटित नहीं हो सका है, संवाद या कथोपकथनके रूपमें ही रामचरितका एक अंश उपलब्ध होता है। यह सत्य है कि पुराणोंमें समासरूपमें समग्र रामकथाको यत्र-तत्र निबद्ध करनेका प्रयास किया गया है; पर संहिताकारोंने रामाख्यानके मधुर रूपको ही ग्रहण किया है। सीताहरणके अनन्तर विरही रामकी विभिन्न मानसिक स्थितियोंका संहिताओंमें गम्भीर चित्रण हुआ है।

प्रमुख पुराणोंमें वर्णित रामकाव्य

कुछ एक प्रमुख पुराणोंके अध्ययनके उपरान्त प्रायः यह स्पष्ट हो जाता है कि रामकाव्यका सम्मोहक रूप पुराणकारको अपनी ओर आकृष्ट किये बिना नहीं रह सका है। तब यह स्पष्ट है कि रामके चरित्रवर्णनमें पुराणकारकी दृष्टि विशेषतया उनके अलौकिक रूपपर ही अधिक रही है। फिर भी इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि उनके पार्थिव-रूपकी व्यञ्जना भी पुराणोंमें बड़े विशदरूपसे हुई है। उनके पार्थिव रूपके वर्णन-क्रममें रामका आदर्श राजा, आदर्शपति, आदर्श भाई एवं आदर्श सखाका रूप अधिक निखर सका है। कुछ एक पुराणोंमें तो उनके शारीरिक तेज और सौन्दर्यका बड़ा ही सम्मोहक रूप देखनेको मिलता है। इससे बड़ी विलक्षण बात तो पुराणोंमें यह देखी जा सकती है कि उनका निश्चित मत है कि अपने अंशस्वरूप भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नसहित अवतार लेकर रामने जितना धरतीका क्लेश दूर किया, उससे अधिक लोगोंका कल्याण रामके नामस्मरणने हुआ है, होता रहेगा। स्पष्ट है कि पुराणकारने क्रमबद्ध रूपमें रामकी कोई कथा लिखना पसंद नहीं किया है; किंतु इतना वे मानकर चलते थे कि धरती जब पापियोंके बोझसे अकुला रही थी, उस समय परम ब्रह्म परमेश्वरको स्वयं ही धरतीपर अवतीर्ण होना पड़ा। लेकिन महत्त्वपूर्ण बातें ये रहीं कि वे ईश्वर होकर भी निर्लिप्त हैं, मनुष्यरूपमें अवतीर्ण होकर भी मनुष्यसे बहुत ऊपर

थे। नर-शरीर धारणकर भी उनका अलौकिक तेज धरतीवालोंको नारायणका स्मरण निरन्तर कराता रहा। आदर्श मानव ही देवत्वकी गरिमासे भी बहुत ऊपर उठ सकता है; सम्भवतया रामके पार्थिव शरीरका तेज हमें इसी ओर बराबर संकेत करा रहा था, जिसकी चर्चा अनेक रूपोंमें पुराणोंमें हुई है।

वाल्मीकीय रामायणमें वर्णित रामकाव्य

जिस प्रकार एक नदी अपने उद्गम-स्थलमें अत्यन्त संकीर्ण होती है और बादमें आगे चलकर क्रमशः अपना मार्ग प्रशस्त करती है, ठीक उसी प्रकार छान्दस वाङ्मयसे निस्सृत होनेवाली रामकाव्यकी धारा पहली बार वाल्मीकीय रामायणमें आकर अपना सुव्यवस्थित और प्राञ्जल रूप धारण कर सकी है। आदिकविका समग्र काव्य ही कविताके सच्चे रूपको प्रकट कर रहा है। वाल्मीकीय रामायण मनोरम उपमानों तथा उत्प्रेक्षाओंका एक विराट् भव्य प्रासाद है। भारतीय किसी ऐसे आदर्श चरित्रको सुननेके लिये लालायित थे, जो उनके जीवनमें रसका संचार करता, उनके अँधेरे जीवनमें प्रकाशकी ज्योति विकीर्ण कर सकता। आदिकविने भारतीयोंकी इस लालसाकी पूर्ति बड़े सुन्दर ढंगसे की है।

वाल्मीकिके राम मानवीय और अतिमानवीय दोनों धरातलोंपर अधिष्ठित होते हुए इस प्रकार रामायणमें समाविष्ट हैं कि जितनी बार हम रामायण पढ़ते हैं, उतने ही नये रूपोंमें उनका स्वरूप निखरता जाता है।

रामकथाको यह सौभाग्य प्राप्त है कि उसका प्रणयन विभिन्न कवियोंने विभिन्न भूमिकाओंमें स्थित होकर किया है। अतः एक ओर जहाँ रससिद्ध महाकाव्य लिखे गये, वहीं दूसरी ओर रीतिबद्ध बहुर्थक काव्य भी रचे गये। रामकाव्यको शास्त्रकाव्यका रूप भी प्राप्त है। छठी शताब्दीमें भट्टिनामक वैयाकरणने 'रावणवध' या 'भट्टिकाव्य'की रचना की, जिसमें रामकथाके वर्णनके साथ-साथ व्याकरण और अलंकारके प्रयोग भी दिखलाये गये। इसी प्रकार भोज आदिके 'रामायणचम्पू' आदि तथा मुरारि; जयदेव आदिके 'अनर्घ्यराघव' 'प्रसन्नराघव' आदि नाटक तथा स्तोत्र आदि भी उल्लेखनीय' हैं।

वाल्मीकीय रामायणके अध्ययनसे यह सहजमें ज्ञात होता है कि महान् उद्देश्य, महच्चरित्र, महती घटना और समग्र जीवनका रसात्मक चित्रण महाकाव्यके लिये आवश्यक तत्त्व है। वाल्मीकीय रामायणमें जैसी अन्विति प्रदर्शित की गयी है, वैसी उत्तरकालीन महाकाव्योंमें कम ही उपलब्ध होती है। वाल्मीकि और उनके परवर्ती अन्य सहस्रों कवियोंने अपनी-अपनी भावनाके अनुसार रामचरितका वर्णन किया है; उनमें अनेक ऐसे हैं, जो श्रीरामको भगवान् मानते हैं।

प्राकृत वाङ्मयमें रामकाव्य

छान्दस वाङ्मयसे निस्सृत होनेवाली रामकाव्यकी धारा संस्कृत वाङ्मयको पार करती हुई प्राकृत वाङ्मयमें प्रवेश करती है। प्राकृत वाङ्मयके मुख्यद्वारपर आसीन पालीमें सर्वप्रथम लिखे गये 'बौद्ध त्रिपिटक'में हमें रामकाव्यका दर्शन होता है।

तीसरी शताब्दी ई० पूर्व 'बौद्ध त्रिपिटक' पालीभाषामें लिखे गये थे। त्रिपिटकके दूसरे पिटक 'सुत्तपिटक'के 'खुद्दक निकाय'में जातक संगृहीत हैं। जातकोंमें महात्मा बुद्धके पूर्वजन्मकी कथाएँ वर्णित हैं। बौद्धमतावलम्बी रामको महात्मा बुद्धका अवतार मानते हैं। रामकथा-सम्बन्धी मुख्य जातक तीन हैं—(१) दशरथजातक, (२) अनामकं जातक और (३) दशरथ-कथानक। महात्मा बुद्धने दशरथ-जातककी कथा कही थी। एक गृहस्थ, जिसने अपने पिताकी मृत्युके शोकमें सब कुछ त्याग दिया था, सान्त्वना दिलानेके क्रममें बुद्धको 'दशरथ-जातक'का सहारा लेना पड़ा था। उसमें यह दिखाया गया है कि दशरथकी मृत्युकी सूचना पाकर राम रोये नहीं थे। रामकथाके पात्रोंका स्पष्ट उल्लेख तो 'अनामकं जातक'में नहीं मिलता; फिर भी 'वनवास, सीताहरण, जटायुमृत्यु, वाली-सुग्रीव-युद्ध, सेतु-बन्ध, सीताकी अग्नि-परीक्षा आदि प्रसङ्गोंका निश्चय ही संकेत मिलता है। दशरथ-जातक, अनामकं जातक और दशरथ-कथानकके अतिरिक्त अश्वघोष, अभिधर्म, महाविभाषा आदि प्राचीन बौद्धग्रन्थोंमें भी वाल्मीकीयरामायणके कथाप्रसङ्गोंका यत्र-तत्र दर्शन होता है।

रामकथा भारतीय भाषाके समस्त कवियोंको विशेष प्रिय होनेसे रामकाव्यकी धारा अद्यावधि—लोकभाषाओंसे भी अविच्छिन्नरूपमें प्रवाहित होती आ रही है। प्राकृतके कवियोंने काव्यकी दृष्टिसे रामकथाको अपनाकर विचार और भावोंको अनेक रूपोंमें अभिव्यक्त किया है। विमलसूरिने 'पउमचरियम्'में प्रवरसेनने 'सेतुबंध' महेशरने 'सीयाचरियम्'में एवं भिलाचार्यने 'चउपण्णा महापूरिस चरियम्'में रामकथाको निबद्ध किया।

हिंदी वाङ्मयमें रामकाव्य

हिंदीमें रामकाव्यका मुख्यरूपसे दर्शन सूरसागरमें हमें होता है। सूरसागरके रामचरितके पद तथा सूरसारावली-के श्रीरामचरितके पदोंको देखकर अवश्य ही विस्मय होता है कि कृष्णभक्तिके अनुरागमें रँगे हुए महात्मा सूरदास किस प्रकार रामचरितके गुण-गानमें अपना हृदय उँड़ेलते हैं।

रामचरितके वर्णनमें जन्मोत्सवसे लेकर रामराज्य और राजसमाज-वर्णनतकके अनेक उत्कृष्ट चित्र हमें उपलब्ध होते हैं। कहीं-कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे सम्पूर्ण रामचरितको ही सूरदासने प्रत्येक काण्डके सारांशके आधारपर ऐसा सुग्रथित किया है कि पाठक उसे देखकर दंग रह जाता है। उदाहरणके लिये सीता और रामका विवाह, दशरथ-विलाप, रामवनगमन, भरतका चित्रकूट-गमन, शबरी-उद्धार, हनूमान्-रावण-संवाद, मन्दोदरीकी रावण-से प्रार्थना, सीताकी अग्नि-परीक्षा, रामका अयोध्यागमन आदि ऐसे चित्र हैं, जो पाठकको सहसा आकृष्ट करते हैं।

एक ओर जहाँ भक्त-शिरोमणि कवि सूरके हृदयरस-से सनी हुई रामकी सलोनी मूर्ति पाठकोंके हृदयमें आनन्दका संचार करती है, वहीं दूसरी ओर उनकी सरस अभिव्यक्ति भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। रामके विविध गरिमामय एवं प्रभावपूर्ण रूपोंने कवि सूरके अन्तर्जगत्के तारोंको झंकृत किया है। उदाहरणके रूपमें वन-गमनका चित्र हम लें। राम चाहते हैं कि लक्ष्मण परिवारके सदस्योंके साथ रहकर उनकी देख-रेख करें; किंतु रामके बिना लक्ष्मणके जीवनका एक पल भी भारस्वरूप है। अतः लक्ष्मणका प्रेममय एवं विषादपूर्ण हृदय आँखोंके माध्यमसे बरसने लगता है। अन्तर्यामी राम-का सारा निर्णय लक्ष्मणके आँसुओंके प्रखर प्रवाहमें तिरोहित होने लगता है—

लछिमन नैन नीर भरि आए।
उत्तर कहत कछू नहिं आयौ, रहे चरन लपटाए॥
अंतरजामी प्रीति जानि कै, लछिमन लीन्हे साथ।
'सूरदास' रघुनाथ चले बन, पिता-बचन धरि माथ॥

(सूर-रामचरितावली २५)

सूरके राम इस अवतरणमें जहाँ प्रेमकी अनन्यमूर्तिके रूपमें चित्रित किये गये हैं, वहीं दूसरी ओर 'अन्तर्यामी' कहकर कविने उनके अलौकिक रूपको भी प्रस्तावित किया है।

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामीजीका प्रादुर्भाव हिंदी-काव्य-क्षेत्रमें एक चमत्कार ही सिद्ध हुआ है। हिंदी-काव्यमें भक्तिका पूर्ण प्रसार इनकी रचनाओंमें पहले-पहल दिखायी पड़ा। जिस प्रकार चौपाई-दोहेके क्रमसे जायसीने अपना 'पद्मावत' नामक प्रबन्ध-काव्य लिखा, उसी क्रमपर गोस्वामीजीने अपने परम प्रसिद्ध काव्य 'रामचरितमानस' तथा अन्य दशाधिक ग्रन्थोंका प्रणयन किया। भारतीय जनताके प्रतिनिधि कवि होनेका गौरव गोस्वामीजीको इसलिये प्राप्त हुआ कि जहाँ अन्य कवि जीवनका एक पक्ष लेकर चले हैं, जैसे वीरकालके कवि उत्साहको, भक्ति-कालके कवि प्रेम और ज्ञानको, अलंकारकालके कवि दाम्पत्य-प्रणय या शृङ्गारको, वहाँ इनकी पैठ मानव-मनकी गहन वृत्तियोंतक थी। रामचरितमानसमें गोस्वामीजीने जीवनके सनातन यथार्थ और युग-व्यवहृत यथार्थका नितान्त मर्म-स्पर्शी दृश्य प्रस्तुत किया है। विश्वमङ्गलके मधुर आदर्श-पर ही आदिकविका काव्य खड़ा है। भारतकी कृषि-काव्य-परम्परा लोकमङ्गलकी इसी पावन धरतीको प्रकाशित करती रहती है। गोस्वामी तुलसीदासजीको भी हम उसी परम्पराकी एक महत्त्वपूर्ण कड़ीके रूपमें स्वीकार करते हैं। संक्षेपमें कहना अनुचित नहीं होगा कि रामचरितमानसका कथाशिल्प तुलसीके मनोविकास तथा उनके भावकल्पका ही द्योतक है। रामकाव्यकी भूमिपर तुलसीके कृतित्व राम ऐसी विशेषता रखते हैं, जो अन्य ग्रन्थोंमें नहीं मिलती। तुलसीका रामचरितमानस जहाँ मध्ययुगीन लोकमानसका प्रतिबिम्ब है, वहाँ उसमें सांस्कृतिक भारतके शिष्ट-मानसका सर्वोत्तम रूप भी विराजमान है। संक्षेपमें हम कह सकते हैं कि तुलसीका वस्तु-शिल्प रामचरितमानसके द्वारा महिमावान् बना है और श्रेष्ठ स्थापत्यकी विराट् कल्पना उसमें विराजमान है। निस्संदेह मानसका अवतरण भारतीय मध्ययुगकी सबसे बड़ी घटना है और गोस्वामी तुलसीदासका व्यक्तित्व इसीके द्वारा युग-युगतक प्रकाशित होता रहेगा।

थे। नर-शरीर धारणकर भी उनका अलौकिक तेज धरतीवालोंको नारायणका स्मरण निरन्तर कराता रहा। आदर्श मानव ही देवत्वकी गरिमासे भी बहुत ऊपर उठ सकता है; सम्भवतया रामके पार्थिव शरीरका तेज हमें इसी ओर बराबर संकेत करा रहा था, जिसकी चर्चा अनेक रूपोंमें पुराणोंमें हुई है।

वाल्मीकीय रामायणमें वर्णित रामकाव्य

जिस प्रकार एक नदी अपने उद्गम-स्थलमें अत्यन्त संकीर्ण होती है और बादमें आगे चलकर क्रमशः अपना मार्ग प्रशस्त करती है, ठीक उसी प्रकार छान्दस वाङ्मयसे निस्सृत होनेवाली रामकाव्यकी धारा पहली बार वाल्मीकीय रामायणमें आकर अपना सुव्यवस्थित और प्राञ्जल रूप धारण कर सकी है। आदिकविका समग्र काव्य ही कविताके सच्चे रूपको प्रकट कर रहा है। वाल्मीकीय रामायण मनोरम उपमानों तथा उत्प्रेक्षाओंका एक विराट् भव्य प्रासाद है। भारतीय किसी ऐसे आदर्श चरित्रको सुननेके लिये लालायित थे, जो उनके जीवनमें रसका संचार करता, उनके अँधेरे जीवनमें प्रकाशकी ज्योति विकीर्ण कर सकता। आदिकविने भारतीयोंकी इस लालसाकी पूर्ति बड़े सुन्दर ढंगसे की है।

वाल्मीकिके राम मानवीय और अतिमानवीय दोनों धरातलोंपर अधिष्ठित होते हुए इस प्रकार रामायणमें समाविष्ट हैं कि जितनी बार हम रामायण पढ़ते हैं, उतने ही नये रूपोंमें उनका स्वरूप निखरता जाता है।

रामकथाको यह सौभाग्य प्राप्त है कि उसका प्रणयन विभिन्न कवियोंने विभिन्न भूमिकाओंमें स्थित होकर किया है। अतः एक ओर जहाँ रससिद्ध महाकाव्य लिखे गये, वहीं दूसरी ओर रीतिबद्ध बहुर्थक काव्य भी रचे गये। रामकाव्यको शास्त्रकाव्यका रूप भी प्राप्त है। छठी शताब्दीमें भट्टिनामक वैयाकरणने 'रावणवध' या 'भट्टिकाव्य'की रचना की, जिसमें रामकथाके वर्णनके साथ-साथ व्याकरण और अलंकारके प्रयोग भी दिखलाये गये। इसी प्रकार भोज आदिके 'रामायणचम्पू' आदि तथा मुरारि; जयदेव आदिके 'अनर्घ्यराघव' 'प्रसन्नराघव' आदि नाटक तथा स्तोत्र आदि भी उल्लेखनीय' हैं।

वाल्मीकीय रामायणके अध्ययनसे यह सहजमें ज्ञात होता है कि महान् उद्देश्य, महच्चरित्र, महती घटना और समग्र जीवनका रसात्मक चित्रण महाकाव्यके लिये आवश्यक तत्त्व है। वाल्मीकीय रामायणमें जैसी अन्विति प्रदर्शित की गयी है, वैसी उत्तरकालीन महाकाव्योंमें कम ही उपलब्ध होती है। वाल्मीकि और उनके परवर्ती अन्य सहस्रों कवियोंने अपनी-अपनी भावनाके अनुसार रामचरितका वर्णन किया है; उनमें अनेक ऐसे हैं, जो श्रीरामको भगवान् मानते हैं।

प्राकृत वाङ्मयमें रामकाव्य

छान्दस वाङ्मयसे निस्सृत होनेवाली रामकाव्यकी धारा संस्कृत वाङ्मयको पार करती हुई प्राकृत वाङ्मयमें प्रवेश करती है। प्राकृत वाङ्मयके मुख्यद्वारपर आसीन पालीमें सर्वप्रथम लिखे गये 'बौद्ध त्रिपिटक'में हमें रामकाव्यका दर्शन होता है।

तीसरी शताब्दी ई० पूर्व 'बौद्ध त्रिपिटक' पालीभाषामें लिखे गये थे। त्रिपिटकके दूसरे पिटक 'सुत्तपिटक'के 'खुद्दक निकाय'में जातक संगृहीत हैं। जातकोंमें महात्मा बुद्धके पूर्वजन्मकी कथाएँ वर्णित हैं। बौद्धमतावलम्बी रामको महात्मा बुद्धका अवतार मानते हैं। रामकथा-सम्बन्धी मुख्य जातक तीन हैं—(१) दशरथजातक, (२) अनामकं जातक और (३) दशरथ-कथानक। महात्मा बुद्धने दशरथ-जातककी कथा कही थी। एक गृहस्थ, जिसने अपने पिताकी मृत्युके शोकमें सब कुछ त्याग दिया था, सान्त्वना दिलानेके क्रममें बुद्धको 'दशरथ-जातक'का सहारा लेना पड़ा था। उसमें यह दिखाया गया है कि दशरथकी मृत्युकी सूचना पाकर राम रोये नहीं थे। रामकथाके पात्रोंका स्पष्ट उल्लेख तो 'अनामकं जातक'में नहीं मिलता; फिर भी 'वनवास, सीताहरण, जटायुमृत्यु, वाली-सुग्रीव-युद्ध, सेतु-बन्ध, सीताकी अग्नि-परीक्षा आदि प्रसङ्गोंका निश्चय ही संकेत मिलता है। दशरथ-जातक, अनामकं जातक और दशरथ-कथानकके अतिरिक्त अश्वघोष, अभिधर्म, महाविभाषा आदि प्राचीन बौद्धग्रन्थोंमें भी वाल्मीकीयरामायणके कथाप्रसङ्गोंका यत्र-तत्र दर्शन होता है।

रामकथा भारतीय भाषाके समस्त कवियोंको विशेष प्रिय होनेसे रामकाव्यकी धारा अद्यावधि—लोकभाषाओंसे भी अविच्छिन्नरूपमें प्रवाहित होती आ रही है। प्राकृतके कवियोंने काव्यकी दृष्टिसे रामकथाको अपनाकर विचार और भावोंको अनेक रूपोंमें अभिव्यक्त किया है। विमलसूरिने 'पउमचरियम्'में प्रवरसेनने 'सेतुबंध' महेश्वरने 'सीयाचरियम्'में एवं शिलाचार्यने 'चउपण्णा महापुरिस चरियम्'में रामकथाको निबद्ध किया।

हिंदी वाङ्मयमें रामकाव्य

हिंदीमें रामकाव्यका मुख्यरूपसे दर्शन सूरसागरमें हमें होता है। सूरसागरके रामचरितके पद तथा सूरसारावली-के श्रीरामचरितके पदोंको देखकर अवश्य ही विस्मय होता है कि कृष्णभक्तिके अनुरागमें रँगे हुए महात्मा सूरदास किस प्रकार रामचरितके गुण-गानमें अपना हृदय उँड़ेलते हैं।

रामचरितके वर्णनमें जन्मोत्सवसे लेकर रामराज्य और राजसमाज-वर्णनतकके अनेक उत्कृष्ट चित्र हमें उपलब्ध होते हैं। कहीं-कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे सम्पूर्ण रामचरितको ही सूरदासने प्रत्येक काण्डके सारांशके आधारपर ऐसा सुग्रथित किया है कि पाठक उसे देखकर दंग रह जाता है। उदाहरणके लिये सीता और रामका विवाह, दशरथ-विलाप, रामवनगमन, भरतका चित्रकूट-गमन, शबरी-उद्धार, हनूमान्-रावण-संवाद, मन्दोदरीकी रावण-से प्रार्थना, सीताकी अग्नि-परीक्षा, रामका अयोध्यागमन आदि ऐसे चित्र हैं, जो पाठकको सहसा आकृष्ट करते हैं।

एक ओर जहाँ भक्त-शिरोमणि कवि सूरके हृदयरस-से सनी हुई रामकी सलोनी मूर्ति पाठकोंके हृदयमें आनन्दका संचार करती है, वहीं दूसरी ओर उनकी सरस अभिव्यक्ति भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। रामके विविध गरिमामय एवं प्रभावपूर्ण रूपोंने कवि सूरके अन्तर्जगत्के तारोंको झंकृत किया है। उदाहरणके रूपमें वन-गमनका चित्र हम लें। राम चाहते हैं कि लक्ष्मण परिवारके सदस्योंके साथ रहकर उनकी देख-रेख करें; किंतु रामके विना लक्ष्मणके जीवनका एक पल भी भारस्वरूप है। अतः लक्ष्मणका प्रेममय एवं विषादपूर्ण हृदय आँखोंके माध्यमसे बरसने लगता है। अन्तर्यामी राम-का सारा निर्णय लक्ष्मणके आँसुओंके प्रखर प्रवाहमें तिरोहित होने लगता है—

लछिमन नैन नीर भरि आए।
उत्तर कहत कछू नहिं आयौ, रहे चरन लपटाए॥
अंतरजामी प्रीति जानि कै, लछिमन लीन्हे साथ।
'सूरदास' रघुनाथ चले वन, पिता-वचन धरि माथ॥
(सूर-रामचरितावली २५)

सूरके राम इस अवतरणमें जहाँ प्रेमकी अनन्यमूर्तिके रूपमें चित्रित किये गये हैं, वहीं दूसरी ओर 'अन्तर्यामी' कहकर कविने उनके अलौकिक रूपको भी प्रस्तावित किया है।

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामीजीका प्रादुर्भाव हिंदी-काव्य-क्षेत्रमें एक चमत्कार ही सिद्ध हुआ है। हिंदी-काव्यमें भक्तिका पूर्ण प्रसार इनकी रचनाओंमें पहले-पहल दिखायी पड़ा। जिस प्रकार चौपाई-दोहेके क्रमसे जायसीने अपना 'पद्मावत' नामक प्रबन्ध-काव्य लिखा, उसी क्रमपर गोस्वामीजीने अपने परम प्रसिद्ध काव्य 'रामचरितमानस' तथा अन्य दशाधिक ग्रन्थोंका प्रणयन किया। भारतीय जनताके प्रतिनिधि कवि होनेका गौरव गोस्वामीजीको इसलिये प्राप्त हुआ कि जहाँ अन्य कवि जीवनका एक पक्ष लेकर चले हैं, जैसे वीरकालके कवि उत्साहको, भक्ति-कालके कवि प्रेम और ज्ञानको, अलंकारकालके कवि दाम्पत्य-प्रणय या शृङ्गारको, वहाँ इनकी पैठ मानव-मनकी गहन वृत्तियोंतक थी। रामचरितमानसमें गोस्वामीजीने जीवनके सनातन यथार्थ और युग-व्यवहृत यथार्थका नितान्त मर्म-स्पर्शी दृश्य प्रस्तुत किया है। विश्वमङ्गलके मधुर आदर्श-पर ही आदिकविका काव्य खड़ा है। भारतकी कृषि-काव्य-परम्परा लोकमङ्गलकी इसी पावन धरतीको प्रकाशित करती रहती है। गोस्वामी तुलसीदासजीको भी हम उसी परम्पराकी एक महत्त्वपूर्ण कड़ीके रूपमें स्वीकार करते हैं। संक्षेपमें कहना अनुचित नहीं होगा कि रामचरितमानसका कथाशिल्प तुलसीके मनोविकास तथा उनके भावकल्पका ही द्योतक है। रामकाव्यकी भूमिपर तुलसीके कृतित्व राम ऐसी विशेषता रखते हैं, जो अन्य ग्रन्थोंमें नहीं मिलती। तुलसीका रामचरितमानस जहाँ मध्ययुगीन लोकमानसका प्रतिबिम्ब है, वहाँ उसमें सांस्कृतिक भारतके शिष्ट-मानसका सर्वोत्तम रूप भी विराजमान है। संक्षेपमें हम कह सकते हैं कि तुलसीका वस्तु-शिल्प रामचरितमानसके द्वारा महिमावान् बना है और श्रेष्ठ स्थापत्यकी विराट् कल्पना उसमें विराजमान है। निस्संदेह मानसका अवतरण भारतीय मध्ययुगकी सबसे बड़ी घटना है और गोस्वामी तुलसीदासका व्यक्तित्व इसीके द्वारा युग-युगतक प्रकाशित होता रहेगा।

हिंदीतर वाङ्मयमें चित्रित रामकाव्य

रामकाव्यकी मुख्यधारामें यह प्रकरण नहीं आता, फिर भी इसका अपना वैशिष्ट्य है। कोई सरिता अपने उद्गमस्थलसे निकलकर अबाध गतिसे सागर-संगमकी ओर बढ़ती है; यदि किसी कारणवश उसे अपने संगमस्थलका दर्शन न हो और बीचमें ही उसे विभिन्न शाखाओंमें विभक्त होकर प्रवाहित होना

पड़े तो क्या उसके प्रवाहमें कमी आ जायगी या उसका सौन्दर्य धूमिल हो जायगा ? ठीक उसी प्रकार रामका उदात्त चरित्र छान्दस-युगसे लेकर अबतक प्रायः समस्त विश्वकी भाषाओंमें पूजित होकर, उसे रसप्लावित करता रहा है। सरिता, संगम और सागरका भेद जिस प्रकार राममें नहीं ढूँढ़ा जा सकता, उसी प्रकार सीमामें बाँधकर रामकाव्यको देखना न तो साहित्यिक औचित्य है और न स्वस्थ दृष्टिकोणका परिचायक। अस्तु, मराठी, तमिळ, तेलुगु, मळयालम्, कन्नड़, गुजराती, बँगला, फारसी, मेवाड़ी, हाड़ोती तथा छत्तीसगढ़ी आदि भाषाओंमें भी रामकाव्य देखा जा सकता है। मराठी भाषामें अनेक संतों और कवियोंने रामचरितका गान किया है और रामचरितसम्बन्धी पृथक् उपाख्यान तो असंख्य हैं। मराठी भाषामें रामचरितका अत्यन्त उत्कृष्ट वर्णन चार-पाँच कवियोंने किया है। इन सबोंमें अत्यन्त रस, विद्वत्ता, प्रतिभा और प्रसादगुणसे युक्त आध्यात्मिक तन्तुओंसे निर्मित होनेपर भी श्रीरामकथाके माधुर्यको अत्यन्त बढ़ानेवाला ग्रन्थ एकनाथजीका 'भावार्थ-रामायण' है। यह चालीस हजार ओवियों (मराठीका एक छन्द) का प्रकाण्ड ग्रन्थ भावुकोंको अत्यन्त प्रिय है। एकनाथजीके बाद मुक्तेश्वरका नाम आता है, जिन्होंने श्लोकबद्ध रामायणकी रचना की है। उक्त रचनाकी श्लोक-संख्या १७२५ है।

महाराष्ट्रके छोटे-छोटे अनपढ़ और पढ़े लोगोंको श्रीराम-कथा और श्रीकृष्ण-कथाका अमृत पिलानेवाला अत्यन्त रसिक और लोकप्रिय कवि था श्रीधर। उसने 'रामविजय' लिखकर महाराष्ट्रके कोने-कोनेमें श्रीरामचरित्रका विस्तार किया। मराठीमें रामकथापर लिखनेवाले एक और विख्यात कवि हुए हैं, जिनका नाम है—मयूर पण्डित अथवा मोरोपंत। इन्होंने नाना प्रकारके छन्दोंमें विभिन्न रामायणोंकी रचना की है। इस तरह कह सकते हैं कि रामकाव्यका विपुल साहित्य मराठीमें उपलब्ध है।

फारसीमें भी कई रामायणें लिखी गयी हैं। कुछ दिन (लगभग २५ वर्ष) पूर्व नदवतुल उलेमा नामी लखनऊ इस्लामी संस्थाकी एक हस्तलिखित रामायण देखी गयी थी, उसपर लिखा है—'रामायण फैजी'। यह सन् १९२४ की रचना है। दूसरी रामायण फारसी पद्यमें मुल्ला मसीहकृत है। उन्होंने जहाँगीरके समयमें अपना ग्रन्थ लिखा था। उनकी रचनाका नाम 'रामायणी मसीही'* है। तीसरा ग्रन्थ चन्द्रभान 'बेदिल' कृत पद्यमें है। यह ग्रन्थ औरंगजेबके राज्यकालमें लिखा गया था।*

रामकथासे सम्बन्धित तीन ग्रन्थोंको बँगला-साहित्यमें ख्याति मिली है। इन तीन प्रमुख ग्रन्थोंके नाम क्रमशः कृत्तिवासकृत रामायण, काशीरामदासकृत महाभारत और श्रीकृष्णदासकृत श्रीचैतन्यचरितामृत हैं।

तेलुगु-साहित्यमें रामकथाको बहुत प्रमुख स्थान मिला है। तेलुगुमें रामकथासे सम्बन्धित लगभग तीन-चार सौ रचनाएँ हैं। तेलुगुमें 'रङ्गनाथरामायण' तथा 'मौल्लरामायण' दो ही ऐसे प्रबन्ध-काव्य हैं, जिन्हें स्वतन्त्र रचना कह सकते हैं। कथावस्तुके विधानमें, वर्णनोंमें तथा चरित्र-चित्रणमें पर्याप्त नवीनता है।

दक्षिण भारतकी प्रधान चारों भाषाओं (तेलुगु, तमिळ, कन्नड और मळयालम्) में रामायणें लिखी गयी हैं। 'मळयालम्-रामायण' एक आधुनिक रचना है, जो वाल्मीकिरामायणका छायानुवाद है। 'मळयालम्-रामायण' रामानुजन् ए पुत्तच्चन नामक किसी कविकी रचना है, जो ई० सन् १६ वीं शतीमें वर्तमान थे।

कन्नडकी सबसे प्राचीन रामायण 'पंपरामायण' है। 'पंपरामायण' पंपे नामक किसी जैनकविकी रचना है।

दक्षिणकी प्रायः सभी प्रमुख भाषाओंमें तमिळकी 'कंब-रामायण'का सर्वोपरि स्थान है। प्रस्तुत ग्रन्थ तमिळका महाकाव्य है, जो बारह सौ वर्ष (कुछ लोगोंके अनुसार आठ सौ वर्ष) प्राचीन है। रामके चरित्रको जिस रूपमें प्रस्तुत रचनामें चित्रित किया गया है, वह सर्वथा विरल है।

निष्कर्ष यह कि भारतीय वाङ्मयमें रामकाव्यके स्वरूप-विकासपर जब दृष्टि जाती है, तब ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे एक पर्वतके शिखरपर चढ़कर धीरे-धीरे उतर रहे हों और शिखरका सौन्दर्य, उसकी ऊँचाई और वहाँका दिव्य वायवीय वातावरण जैसे-जैसे हम नीचे उतरते जाते हैं वैसे-वैसे बिखरता और कहीं-कहीं फैलता चला जाता है। मेरा अभिप्राय छान्दस-वाङ्मयसे निस्सृत होकर अद्यतन 'पुरुषोत्तम राम' (१९६७ ई०, सुमित्रानन्दन पंत) तक प्रवाहित होनेवाली रामकाव्यकी धारासे है।

---

* उपर्युक्त दोनों ग्रन्थ नवलकिशोर प्रेस, लखनऊसे क्रमशः सन् १८९९ तथा १८७५ ई० में प्रकाशित हुए थे।

श्रीरामलीला-वर्णनमें बँगलाके आदिकवि कृत्तिवास

(लेखक—श्रीव्योमकेश भट्टाचार्य, साहित्यभूषण)

भगवान् श्रीरामचन्द्रकी पुण्य जीवनलीलाका वर्णन करके गोस्वामी तुलसीदास समस्त विश्वमें अमर हो गये हैं। जबतक चन्द्र-सूर्य और यह धरित्री विद्यमान रहेगी, तबतक गोस्वामी तुलसीदासका नाम और उनका श्रीरामचरितमानस मानव-हृदयमें अधिष्ठित रहेगा। तुलसीदास केवल कवि ही नहीं थे; वे थे—संत, युग-विभूति, महामानव! गोसाईंजीका आविर्भाव सं० १५६९ विक्रमाब्द अर्थात् १५१२ खीष्टाब्दमें हुआ था। 'गोसाईंचरित' ग्रन्थके अनुसार १४९७ खीष्टाब्दमें वे उत्पन्न हुए और १५२६ खीष्टाब्दमें विवाह-बन्धनमें आबद्ध होकर ५ वर्षके बाद गृहस्थाश्रमका त्याग करके प्रयाग, अयोध्या, रामेश्वरम्, द्वारकाधाम, बदरीनाथ आदि तीर्थोंका भ्रमण कर, पूर्ण वैराग्य ग्रहण करके कठोर तपस्यामें निमग्न हो गये। उस तपस्या-कालमें ही रचित उनके अवदान श्रीरामचरितमानस आदि अमूल्य ग्रन्थ हैं। उन्होंने सं० १६८० वि० अर्थात् १६२६ ई०में नश्वर देह त्याग दिया।

गोस्वामी तुलसीदासके आविर्भावके प्रायः एक सौ वर्ष पूर्व वङ्गदेशमें कृत्तिवास नामक एक मनीषी कविने आविर्भूत होकर सारे पूर्वभारतमें श्रीरामलीलाका प्रचार किया था। प्रस्तुत निबन्धमें कृत्तिवासका जीवन-वृत्तान्त है।

कविका जीवन-परिचय

दिल्लीके सिंहासनपर उस समय पठान वंशके सैयद मुबारक अधिष्ठित थे। वङ्ग-भूमि उन दिनों स्वाधीन सार्वभौम राष्ट्रके रूपमें थी। सम्भवतः गौड़ेश्वर कंस-नारायण या राजा गणेश उस समय वङ्गदेशमें राज्य कर रहे थे। कृत्तिवासने अपने परिचयके विषयमें स्वरचित रामायणमें लिखा है—

आदित्यवार श्रीपञ्चमी पूर्ण माघ मास।
तथि मध्ये जन्म लइलाम कृत्तिवास॥

इन्हींके अनुसार इनका जन्म १३५४ शक (१४३२ खी०) माघ २९को हुआ था। कृत्तिवासका जन्म नदिया जिलाके फुलियाग्राममें हुआ था। १२ वर्षकी अवस्थामें कृत्तिवासने एक तेजस्वी महापुरुषसे दीक्षा ली थी। गुरुके आशीर्वादसे वे गौड़ेश्वरके सभा-पण्डितके पदपर आसीन हुए। उन्होंने राजसम्मान प्राप्तकर राजाके आदेशसे जिस रामायणकी रचना की, वह 'कृत्तिवासी रामायण'के नामसे वङ्गदेशमें प्रसिद्ध है।

कृत्तिवास—बँगलाके आदिकवि

रामायण कृत्तिवासकी श्रेष्ठ कृति है। प्रसिद्ध पण्डित राजकृष्ण रायने लिखा है—'वङ्गदेशीय कविके रूपमें जिनका परिचय दिया जाता है, उनमें कृत्तिवास ही सर्वप्रथम आविर्भूत हुए थे। विद्यापति-चण्डीदास आदिने छोटे-छोटे पदोंमें काव्यरचना की थी, बृहत् महाकाव्यकी रचना किसीने नहीं की। कृत्तिवास ही बँगलाके वे आदिकवि हैं, जिन्होंने सर्वसाधारणके लिये महाकाव्यकी रचना की है।'

कृत्तिवासी रामायणका उपादान

महाकवि कृत्तिवासने मुख्यतः वाल्मीकिरामायण, जैमिनीयाश्वमेध, अद्भुतरामायण और अध्यात्मरामायणका अवलम्बन करके अपने रामायणकी रचना की थी। इसके सिवा पुराण, उपपुराण, दन्तकथा और जनश्रुतिसे भी उपादान संग्रह किया था। किष्किन्धाकाण्डमें कविने लिखा है—

वाल्मीकि वन्दिया कृत्तिवास विचक्षण।
शुभक्षणे विरचिल भाषा रामायण॥

अन्यत्र उल्लेख किया है कि—

ए सब गाइल गीत जैमिनि भारते।
विस्तारित लिखित अद्भुत रामायणे॥
एक रामायण शत सहस्र प्रकार।
के जाने प्रभुर लीला कत अवतार॥

रामायणोंमें वाल्मीकि-रामायणको उन्होंने आदर्शरूपमें ग्रहण किया है। मूल संस्कृत-रामायणका शाब्दिक या भावानुवाद वे नहीं करते। वाल्मीकि और वेदव्यास उनके पथप्रदर्शक हैं।

कविकी वर्णनावली

वाल्मीकि-रामायण, महाभारतके अतिरिक्त कविवरने अपने रामायणमें तरणीसेन, वीरबाहु हनूमान्‌के द्वारा सूर्यको कक्षमें धारण करना, महीरावण, अहिरावण, देवीपूजामें पद्महरण आदिका वर्णन किया है। वाल्मीकि और

व्यासने श्रीरामचन्द्रको भगवान् मानकर भी मनुष्यरूपमें उनका वर्णन किया है; परंतु कृत्तिवासने श्रीरामचन्द्रको भगवान् और मनुष्य—उभयरूपमें प्रदर्शित किया है।

श्रीरामचन्द्रकी दुर्गापूजा (बंगालके जातीय जीवनमें अभिनव प्रेरणा)

वसन्तऋतुमें नवरात्र और चण्डीपूजा शास्त्रविहित है; किंतु कवि कृत्तिवासने वाल्मीकिरामायणसे दूर हटकर बृहद्धर्म-पुराणका अनुसरण किया है—

रावणस्य वधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च।
अकाले तु शिवे बोधस्तावो देव्याः कृतो मया॥

इस मन्त्रका अवलम्बन करके कविने रावणके वधार्थ दुर्गाका अकाल-बोधन करके भक्तिके सहित इस पूजाका वङ्गदेशमें प्रवर्तन किया था। दुर्गापूजा स्वर्गमें देवताओंके द्वारा और मर्त्यलोकमें श्रीरामचन्द्रके द्वारा अनुष्ठित हुई थी। कृत्तिवासकी रामायण-रचनाके बाद यह दुर्गापूजा बंगालके जातीय जीवनमें एक महान् उत्सवके रूपमें परिणत हो गयी। शारदीय दुर्गापूजा अब केवल बंगालके भीतर ही सीमाबद्ध नहीं रही; बल्कि आज यह उत्सव सारे विश्वमें हिंदूधर्मावलम्बी नर-नारियोंके द्वारा बड़े ही साज-बाजसे मनाया जाता है।

ऋषि बङ्किमचन्द्रने दुर्गापूजा करके अभिनवभावसे भावित होकर हमारे जातीय गीत 'वन्दे मातरम्'की रचना की थी। महाकवि कृत्तिवास बंगाली जातीय-जीवनके प्रथम उद्गाता और पथप्रदर्शक थे।

कृत्तिवासकी ग्रन्थावली

कृत्तिवास कविने कितने ग्रन्थोंकी रचना की थी, इसका संधान नहीं प्राप्त होता। तथापि (१) रामायण, (२) योगाधारवन्दना, (३) शिव-राम-युद्ध, (४) रुक्माङ्गदेर एकादशी, (५) बलि और वामन—इन पाँच ग्रन्थोंका संधान मिलता है। रामायण ही कवि-जीवनकी सर्वश्रेष्ठ कीर्ति है, शेष ग्रन्थसमूह गौण हैं। उनकी रामायणमें शाक्त, शैव और वैष्णवभावका सम्मिश्रण मिलता है। रावणके वधके निमित्त श्रीरामचन्द्रजीने दुर्गापूजा की थी। रामचन्द्रको पुत्ररूपमें पानेके लिये कौसल्याने हर-गौरीकी पूजा की थी। यह आंशिक रूपमें शक्तिभावका विकास था। अपने 'शिव-राम-युद्ध' नामक ग्रन्थमें उन्होंने शिवकी प्रधानता दिखलायी है। पुनः उन्होंने रामायणमें विभीषण और तरणीसेनका चित्र-चित्रण करते समय वैष्णवभावकी श्रेष्ठता प्रदर्शित की है। तरणीसेन उनके पिताके समान कट्टर वैष्णव थे। तरणीसेनने अपने देहमें रामनाम अङ्कित करके 'जय राम', 'जय राम'—उच्चारण करते हुए युद्ध किया था। कविकी लेखनीसे सब भावोंका विकास होनेपर भी उनके रामायणमें श्रीरामकी महिमा विशेष रूपसे अभिव्यक्त हुई है।

कृत्तिवासके उपास्य देवता

पूर्णब्रह्म श्रीरामचन्द्र ही कवि कृत्तिवासके उपास्यदेव थे। वे दसों दिशाओंको राममय देखते थे। कविने रामायणमें लिखा है—

श्रीराम स्मरिया जेवा महारण्ये जाय।
धनुर्बाण लये राम पश्चाते बेड़ाय॥

'श्रीरामका स्मरण करके यदि वीरान जंगलमें भी कोई चला जाय तो भगवान् राम धनुष-बाण लेकर उसकी रक्षाके लिये पीछे-पीछे जायँगे।'

श्रीराम सर्वत्र हैं। विपद्-आपद्—सर्व अवस्थामें श्रीराम सहायक हैं। अतएव प्रभुका भक्त निर्भय और निश्चिन्त होता है।

आत्मसमर्पणयोगमें कविने गाया है—

आपनि से भाङ्ग प्रभु आपनि से गड़।
सर्प हइया दंश तुमि ओझा हइया झाड़॥
(किष्किन्धाकाण्ड)

'प्रभो! स्वयं ही आप बिगाड़ते हैं और स्वयं बनाते हैं, सर्प होकर आप डसते हैं और ओझाका रूप धारणकर आप उसका विष झाड़ते हैं।'

यहाँ कवि पूर्ण आत्मसमर्पणकारी योगी है। अपनी पृथक् सत्ता न रखकर उन्होंने श्रीरामके चरणोंमें अपनेको पूर्ण समर्पण कर दिया था।

कविका श्रीरामनाम-माहात्म्य-वर्णन

नाम और नामीमें भेद नहीं है। गोस्वामी तुलसीदासके समान कवि कृत्तिवासने नामीसे नामको प्रधानता प्रदान की है। कविने गाया है—

राम राम बल भाई । सबे बार-बार ।
भेबे देख राम बिना गति नाई आर ॥
(किष्किन्धाकाण्ड)

'भाई ! मुखसे बार-बार राम-नामका उच्चारण करो । सोचकर देखो, राम-नामके बिना और गति नहीं है ।'

राम नाम जप भाई, अन्य कर्म पिछे ।
सर्वं धर्मं कर्मं राम नाम बिना मिछे ॥
मृत्यु काले यदि नर राम बोलि डाके ।
विमाने चढ़िया याय सेइ देवलोके ॥
(लङ्काकाण्ड)

"राम-नाम जपो, भाई ! और काम सब पीछे करो । राम-नामके बिना धर्म-कर्म सब मिथ्या है । मृत्युके समय यदि मनुष्य 'राम' कहकर पुकारे तो वह विमानपर चढ़कर निश्चय ही देवलोकको जायगा ।'

कृत्तिवास कविने एकमात्र रामनामको ही जीवका अवलम्बन बतलाया है । उनकी लेखनीसे श्रीराम-नामका माहात्म्य अपूर्वरूपमें प्रकटित हुआ है ।

कवि कृत्तिवासका अन्तिम जीवन

कवि ४८ वर्षकी अवस्थामें नरदेह त्यागकर श्रीराम-पदमें लीन हो गये । कविकी अन्तिम वासना थी—

एइ निवेदन मोर शुन नारायण ।
गङ्गाजले रामनामे त्यजिब जीवन ॥

कविकी अपने आराध्यदेव श्रीरामचन्द्रका मधुर नाम उच्चारण करते हुए पतितपावनी गङ्गाके पवित्र जलमें प्राण विसर्जन करनेकी अन्तिम कामना थी । कवि कृत्तिवास अति सरल और सहज भाषामें अपनी वङ्गीय संतानके लिये जो अपूर्व श्रीरामचरित-रचना कर गये हैं, उससे समस्त बङ्ग-संतानका विश्वास है कि कविको श्रीरामके चरणोंमें स्थान मिला था ।

गोस्वामी तुलसीदास और बंगालके आदिकवि कृत्तिवासकी जीवन-साधनामें बहुत ही कम पार्थक्य दृष्टिगोचर होता है । दोनोंने श्रीरामचरितकी रचना सुरुचिपूर्ण ढंगसे करके जातिकी अन्तरात्मापर विजय प्राप्त की है । परंतु कवि कृत्तिवास थे पंद्रहवीं शताब्दीके तथा गोस्वामी तुलसीदास सोलहवीं शताब्दीकी विभूति थे । गोस्वामी तुलसीदासके जीवनमें साधनाकी विभूति जिस रूपमें प्रकाशित हुई थी, कवि कृत्तिवासके जीवनमें वह सौभाग्य प्राप्त न था । तथापि दोनोंकी काव्यसाधना और काव्यरसविकासकी धारा एक ही प्रकारकी है । दोनों ही श्रीरामनामके माहात्म्यका प्रचार करके श्रीरामपदमें विलीन हो गये हैं । दोनों ही जातिके हृदयपर विजय प्राप्त करके धन्य हो गये हैं ।

रामनामका स्मरण

छोड़ै सब ही बासना, हो बैठै निष्काम ।
चरण-कमलमें चित धरै, सुमिरै रामहि राम ॥
जब लग जीवै, राम कहु, रामहि सेती नेह ।
जीव मिलैगो राम में, पड़ी रहैगी देह ॥
यह सिर नवै तो राम कूँ, नाहीं गिरियो टूट ।
आन देव नहिं परसिये, यह तन जावो छूट ॥
सभी निचोरे कहत हूँ, भक्ति करी निष्काम ।
कोटि तपस्या यही है, मुख सूँ कहिये राम ॥
राम-नाम मुख सूँ कहै, राम नाम सुन कान ।
रोम-रोम हरि कूँ रटो, ऐसी गहिये बान ॥

—भक्तिसागर—महात्मा चरणदासजी

असमिया साहित्यमें श्रीराम

(लेखक—श्रीकुबेरनाथजी राय)

यों तो श्रीराम भारतमें ईश्वरके रूपमें पूजे जाते हैं और उन्हें अवतार माना जाता है, फिर भी अलग-अलग प्रान्तोंमें उनके सम्बन्धमें अनेक मान्यताएँ प्रचलित हैं। असममें वैष्णवधर्मका प्रचार है। उस प्रान्तमें कृष्णकी रसलीलाका अधिक प्रचार है और कृष्ण ही विशिष्टरूपसे उपास्य हैं; फिर भी उपासक रामका स्मरण करना नहीं भूलते।

असममें प्रचलित वैष्णवधर्मके आदिगुरु शंकरदेवके शिष्य माधवदेव, जिन्होंने माधवकन्दलीद्वारा विरचित सप्तकाण्ड-रामायणके बालकाण्डकी रचना की थी, उक्त काण्डके प्रारम्भमें श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए गा उठते हैं—

जय जय कृष्ण देवकी नन्दन,
ब्रह्मा हरे करे जार चरणे वन्दन,
अति अन्त्य जाति तरे जार लै-लै नाम,
हेन' कृष्ण-पदे करो सदाय प्रणाम ॥ १ ॥
नमो नमो राम रघु-कुल-कमल
करियो प्रकाश निज यश निर्मल
पूरिलह यिटा जगतर मन काम
हेन' राम पदे करो सदाय प्रणाम ॥ २ ॥
एके ब्रह्म आसि चारि मूर्ति अवतारे
हरिला भूमि भार राक्षस-संहारे
ब्रह्मा आदि देवर साधिला प्रयोजन
प्रणामो सादर हेन' रामर चरण ॥ ३ ॥
निज गुरु चरणक करि नमस्कार
रचिलो माधवे आद्यकाण्ड सार
आचरि मंगल गुण कृष्ण कीर्तन
कृष्ण के स्मरण करो रामायण पद ॥ ४ ॥

'देवकीनन्दन कृष्णकी जय हो। ब्रह्मा, हरि जिनकी वन्दना करते हैं, अत्यन्त नीच जातिका मनुष्य भी जिनका नाम लेकर तर जाता है, मैं उन कृष्णके पदोंको सदा प्रणाम करता हूँ। रघुकुल-कमल रामका मैं नमन करता हूँ, जिन्होंने अपने निर्मल यशका प्रकाश किया और जगत्के मनोरथ पूर्ण किये। मैं उन रामके चरणोंमें सदा प्रणाम करता हूँ।

'एक ब्रह्म परमात्माने चार मूर्तियाँ धारण करके अवतार लिया, राक्षसोंका संहार कर भूभार-हरण किया तथा ब्रह्मा आदि देवताओंका प्रयोजन सिद्ध किया। मैं उन रामके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ।

'अपने गुरुके चरणोंमें प्रणाम कर मैं माधवदेव मङ्गलमय कृष्ण-गुण-कीर्तन करके कृष्णका स्मरण करके रामायणके पदोंकी रचना करता हूँ।'

असममें प्रवर्तित सम्प्रदायोंमें 'शरण'की ही प्रधानता है, इसलिये इनके यहाँ देवी-देवताओंका कोई स्थान नहीं है। स्थान होनेपर तो शरणमें पूर्णता नहीं आती। हाँ, राम, नृसिंह, वराह आदि अवश्य वन्दनीय हैं; क्योंकि इनमें और कृष्णमें अभेद है। ये तो उसी शक्तिके विविध अंशावतार हैं, जिनका पूर्ण प्रस्फुट षोडशकलाके साथ कृष्णरूपमें हुआ है।

यहाँ रामभक्तिका उसी शब्दावलीमें वर्णन किया जाता है, जिस शब्दावलीमें श्रीमद्भागवतमें कृष्णभक्तिकी चर्चा की गयी है। महापुरुष शंकरदेव, जिन्होंने उपर्युक्त 'सप्तकाण्ड रामायण'के उत्तरकाण्डकी रचना की थी, उसी उत्तरकाण्डमें वे लिखते हैं—

रामे मोर इष्टदेव, रामके से करो सेव,
गति मोर रामचरण।
रामे धर्म, रामे कर्म, रामे से बान्धव मर्म,
जानि लै लो रामर शरण ॥

पदके अन्तमें वे कहते हैं—

'कृष्ण किंकर' भणे राम राम घोषा घेन
पाप माने पातक अधोगति ॥

'कृष्ण-किंकर' शंकरदेवका काव्य-नाम है।

इन दो महापुरुषोंद्वारा विवेचित रामचन्द्र परम-परमात्मा ब्रह्मके अवतार हैं और राम-कृष्णमें अभेद है। जो राम हैं, वे ही कृष्ण, गोविन्द, हरि आदि भी हैं। यद्यपि असमके वैष्णव राम और कृष्णमें अभेद मानते हैं, फिर भी यहाँकी सम्पूर्ण वैष्णव-साधना तथा साहित्यमें श्रीकृष्णका ही प्राधान्य है। प्राधान्य न कहकर एकाधिकार भी कहा जा सकता है। फिर भी रामके चरित्रमें इतना आकर्षण है कि असमिया मन रामको भूल नहीं

पाता । वह कृष्णलीलाका कीर्तन करते हुए भी राम-नामके घोषा (टेक) की आवृत्ति करता ही रहता है ।

सोलहवीं सदीसे पहले यहाँ रामभक्तिकी सुदृढ़ परम्परा अवश्य रही होगी; क्योंकि इस समयसे पहले माधवकन्दलीने रामपर एक महाकाव्य लिखा था । इसके पीछे केवल राजाज्ञा ही नहीं रही होगी और अगर राजाज्ञा भी रही हो, तब भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि राजापर तथा उस समयकी प्रजापर राम अपना अधिकार जमाये हुए थे । जनमानसमें राम लोकप्रिय थे । सोलहवीं शतीके बाद वैष्णव-आन्दोलनने यहाँ श्रीमद्भागवतकी प्रतिष्ठा की और जनमानसमें श्रीकृष्णका प्रवेश हुआ । तब रामभक्तिका नया रूप व्यक्त हुआ 'नमो नमो रघुपति केशव' के 'उद्घोष'में । माधवकन्दलीने चौदहवीं शतीमें लिखे अपने महाकाव्यमें रामको छोड़कर कहीं कृष्णकी चर्चातक नहीं की । उनकी रामायणका अन्तिम पद है—

नमो नमो राम दूर्वादलश्याम
सर्वगुणे अभिराम ।
चार गुण नाम धर्म अनुपाम
मुकुति सुखर धाम ।
एतेक जानियो रामत भजियो
तजियो समस्त काम ।
संसार सागर सुखे होबा पार
डाकि बोलो राम-राम ।

'माधवकन्दली'के अतिरिक्त 'अनन्तकन्दली'ने भी लिखा है—

अयोध्या काण्डर येनो' कथा रामायण
भागवत मिशलाई करो निबन्धन ।
गंगाजल तुलसी जेनो एक ठाँई
जेनो 'चीनी घृत अति कौतुक मिलाई ॥
माधवकन्दली विरचिला रामायण
ताके सुनि आमार व्याकुल करे मन ।
राम सामान्य संत कथा यथारत
भजनीय गुण येतो न भैलो नेकत ॥
... ...
साक्षात् परब्रह्म जानिबा श्रीराम
आन यत्न तेजि ताति धरा गुण ग्राम ॥

'रामायणके अयोध्याकाण्डकी कथाको भागवतके साथ मिश्रित कर कह रहा हूँ—उसी प्रकार, जैसे गङ्गाजल और तुलसीदलको एक पात्रमें रखकर दिया जाय, अथवा जैसे चीनी और घृतको कौतुक (सुख) के लिये मिश्रित किया जाय । माधवकन्दलीने रामायणकी रचना अवश्य की; परंतु उसे सुनकर मेरा मन विकल हो गया । उनकी कथा यथार्थ है और रामचन्द्रका वर्णन सामान्य संत (महापुरुष) के रूपमें किया गया है; परंतु भजनीय गुण (भक्ति) उसमें व्यक्त नहीं हो पाया ।'

'रामको साक्षात् परब्रह्म जानो । दूसरे प्रयत्नोंको त्यागकर उनके ही गुणग्रामको ग्रहण करो ।'

रघुनाथ महन्तने भी श्रीरामको इसी नयी दृष्टिसे देखा है । दुर्गाधरने श्रीरामपर 'गीति-रामायण' ही लिख डाली । इसमें लोकगीत हैं, जो साधारण जनतामें 'ओजापल्ली गान'की तरह प्रचलित हैं । इसमें राम-सीता-लक्ष्मण शुद्ध मनुष्यके रूपमें अपनाये गये हैं । इसके अनुसार वनमें राम-सीता मायाकी अयोध्या रचकर अनेक मानुषी लीलाएँ करते हैं ।

लोकमानसमें रावण और मन्दोदरी ही सीताके माता-पिता माने गये हैं । लेकिन रामचन्द्र नारायण परमात्माके अवताररूपमें ही माने जाते हैं ।

अनन्तकन्दलीने माधवकन्दलीपर, जो चौदहवीं शताब्दीमें हुए थे, यह आरोप लगाया है कि उन्होंने रामको संत पुरुषतक सीमित रखा है; किंतु यह बात पूर्णांशमें सही नहीं है । उस समय भी रामकी भक्ति होती थी । उनके पदोंसे इसकी झलक मिलती है । वे कहते हैं—

नमो नमो राम, याहार उपाम
नाँहि एटा त्रिभुवने ।
दुःख उपशाम हौक रामनाम
बोलो सामाजिक जने ॥

'रामको नमस्कार है, त्रिभुवनमें इनकी उपमा किसीसे नहीं दी जा सकती । उनका नाम दुःखका उपशमन करता है । हे सामाजिको ! रामनामका स्मरण करो ।' उनपर वाल्मीकि-के रामकी छाप है और उन्होंने स्वयं इस बातको स्वीकार किया है । अतः उस समयकी जनतापर यह छाप थी कि रामचन्द्र विष्णुके अवतार हैं और उनके अन्य भाई भी विष्णुके अंश हैं ।

उस समय वहाँ रामचन्द्र अलौकिक नहीं, बल्कि मर्यादा-पुरुषोत्तमके रूपमें जन-मानसमें विराजमान थे ।

उपासनाकी दृष्टिसे असममें तीन सम्प्रदायोंका प्राबल्य है—(१) महापुरुषिया, (२) दामोदरिया और (३) हरिदेवी, जिनके प्रवर्तक हैं क्रमशः महापुरुष शंकरदेव, महापुरुष दामोदरदेव तथा महापुरुष हरिदेव। इन तीनों ही सम्प्रदायोंका मुख्य सिद्धान्त है 'एकशरण' अर्थात् एक परमात्मा श्रीकृष्ण—राम, हरि, गोविन्द, माधवके प्रति अनन्य शरणागति। इस प्रदेशमें रामचन्द्र इसी एक देवताके अवतारके रूपमें पूज्य हैं। महापुरुषिया सम्प्रदायमें अर्चाकी एकमात्र पद्धति है—नाम-कीर्तन। अर्चा होती है मानस-पूजाकी शैलीमें और मुँहसे कीर्तन होता रहता है। कीर्तनके दो भाग हैं—प्रथम 'टेक' या 'घोषा' और दूसरा भाग 'पद'। टेक कई बार दोहरायी जाती है। पदमें लीला-गान या आत्मनिवेदन रहता है। घोषा या टेकमें प्रायः रामका नाम आता है। उसमें प्रायः राम-कृष्णका अभेद प्रदर्शित हुआ है। यथा—

(१) जय गोविन्द नारायण राम केशव।
(२) रामसे जीवन रामसे प्राण
राम बिना नाहीं बान्धव आन।
(३) जय निरंजन पातक-भंजन
मुकुन्द माधव राम।
(४) यादव, जगजीवन, राम।
आपुनी गोपिन पूरिला काम॥
(५) राम वनमाली, गोपाल वनमाली।

'गुणमाला' नामक कीर्तनकी विशिष्ट घोषा है—
'राम निरंजन पातक भंजन।'

तात्पर्य यह है कि घोषामें 'राम' शब्दका प्रयोग प्रभुके सभी नामोंकी एकता सिद्ध करनेवाला है। लीलानिरपेक्ष-रूपमें निर्गुण कवियोंके रामके समकक्ष उनका प्रयोग किया गया है।

शंकरदेवने ३४ 'बर गीत' लिखे हैं। इनमें दो स्तुति-मूलक तथा एक लीला-व्यञ्जक पदमें रामका स्मरण किया गया है।

शंकरदेवने अपने 'भावना' नाटक और 'रामविजय' नाटकमें रामचन्द्रको परमात्मारूपमें सम्बोधित किया है—

यन्नामाखिललोकशोकशमनं यन्नाम प्रेमास्पदं
पापापारपयोधितारणविधौ यन्नाम पीनप्लवः।
यन्नामश्रवणात् पुनाति श्वपचः प्राप्नोति मोक्षं क्षितौ
तं श्रीराममहं महेशवरदं वन्दे सदा सादरम्॥

येनाभाजि धनुः शिवस्य सहसा सीता समाश्वासिता
येनाकारि पराभवो भृगुपतेर्वामस्य रामस्य च।
वैदेह्या विधिवद् विवाहमकरोज्जित्य यः पार्थिवान्
युष्माकं वितनोतु शं स भगवान् श्रीरामचन्द्रश्चिरम्॥

'जिनका नाम समस्त लोकोंके शोकका शमन करनेवाला है, जिनका नाम प्रेम करनेयोग्य है, जिनका नाम पापोंके अपार पयोनिधिसे पार करनेके लिये सुदृढ़ नौका है, जिनके नाम-श्रवणसे चण्डाल भी पवित्र ही नहीं हो जाता, इस लोकमें ही मोक्ष पा लेता है और जो भगवान् शिवको भी वर देनेवाले हैं, उन श्रीरामकी मैं सदा वन्दना करता हूँ।

'जिन्होंने शिवजीका धनुष तपाकसे तोड़ डाला और सीताको आश्वस्त किया तथा जिन्होंने क्रुद्ध हुए भृगुवंशी-परशुरामजीका मान-मर्दन तथा राजाओंको जीतकर जनकनन्दिनीके साथ विधिवत् विवाह किया, वे भगवान् श्रीराम चिरकालतक आप सबका कल्याण करें।'

नाटकके प्रारम्भमें की जानेवाली स्तुति भी बड़ी सुन्दर है, जिसके द्वारा नाटकके प्रारम्भमें मङ्गलवाद्य (मृदङ्ग, मजीरों) के साथ एक अद्भुत भक्तिमय वातावरण तैयार हो जाता है। इस भटिमा (स्तुति) का प्रारम्भ इस प्रकार होता है—

जय जय रघुकुल कमल प्रकाशक
दासक नाशक भीति।
जय जय निज जन यातन घातन
पातक पातन रीति॥
हरक शरासन-नाशन, शासन
नृप सब बान सँधाने।
छेदल भेदल खेदल दापे
तापे पेलावत प्राने॥

यह नाटक कीर्तनके बाद होता है। असममें इसका खूब प्रचार है। महापुरुषिया-सम्प्रदायमें रामको परम ब्रह्म परमात्मा-का आसन मिला है। अन्य दोनों सम्प्रदायोंमें भी शरण और कीर्तनका ही माहात्म्य है, पर उसमें श्रीमद्भागवतके श्रीकृष्ण-की ही प्रधानता है। फिर भी सिद्धान्ततः ये लोग रामको श्रेष्ठ अवतार मानते हैं और उन्हें विष्णु तथा परमात्माके समकक्ष ही माना जाता है। श्रीराम-सम्बन्धी लिखित असम-साहित्य प्रचुर मात्रामें मिलता है। यथा—

(१) माधवकन्दलीकृत रामायण (१४वीं शतीसे १६वीं शती)।

(२) अनन्तकन्दलीकृत रामायण (१६वीं शती)।

(३) दुर्गावरकृत गीति-रामायण। (१६ वीं शती)। [अरण्यकाण्डसे लेकर लङ्काकाण्डतक लोकगीतोंकी शैलीमें]।

(४) अनन्त ठाकुर आताकी कीर्तनिया रामायण (१७वीं शती)।

(५) रघुनाथ महन्तकी गद्य-कथा-रामायण ,,

(६) ,, अद्भुतरामायण ,,

(७) ,, शत्रुंजय* ,,

(८) गंगाराम रायकृत सीतावनवास १७वीं शतीके परवर्तीकालका साहित्य।

(९) भवदेवका अश्वमेधयज्ञ।

(१०) असमिया कृत्तिवास पण्डितकृत 'अङ्गद-रावण'।

(११) धनंजयका गणक-चरित्र (इसमें हनुमान् गणक-वेष धारणकर मन्दोदरीके पास जाते हैं)।

(१२) कीर्तनघोषा और नामघोषाके पदोंमें कुछ राम-चरित्र परक।

(१३) विवाह-गीत, लोक-गीतोंमें रामकथा।

इनके अतिरिक्त रामचरितके आधारपर लिखे हुए सोलहवीं शतीके नाटक हैं—

(१) रामविजय नाटक (सीता-स्वयंवर) श्रीशंकरदेवकृत।

(२) रामभावना।

(३) सीता-पाताल-प्रवेश (अनन्तकन्दली)।

(४) महिरावण-वध (,,)।

तमिळ भाषाकी कम्ब-रामायणमें श्रीराम

(लेखक—श्रीनिरञ्जनदासजी धीर)

जो स्थान उत्तर भारतमें रामचरितमानसका है, वही स्थान दक्षिण भारतकी सर्वाधिक व्यापक भाषा तमिळमें 'कम्ब-रामायण'का है। कम्ब-रामायणको यह गौरव रामचरितमानससे सात-आठ सौ वर्ष पूर्व ही प्राप्त हो गया था।

तमिळ भाषाके महान् कवि कम्बन् ईस्वी सन्‌की नवीं शताब्दीमें हुए थे। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है। ये उस समयके चोल-राज्यके तिरुवळुन्दूर (Tiruvazhundur) नामक स्थानमें आदव (Athavan) नामक पुजारीके गृहमें जन्मे थे। महाकविके रूपमें चोल तथा चेर नृपतियोंके राज-दरबारोंमें इनकी बड़ी ख्याति तथा मान था। फिर भी ये तिरूवेण्णेयनल्लूर राज्यके अधिपति 'शडयप्पवल्लर'के आश्रित रहे।

कम्ब-रामायणकी रचना सन् ८८० के आसपास हुई थी। उस समयमें यदि कोई नवीन कविता रची जाती थी तो उसके प्रचारके पूर्व वह रचना कविसम्मेलन तथा विद्वत्-परिषद्के समक्ष उनकी अनुमतिके लिये सुनायी जाती थी। यह रामायण ऐसी ही विद्वत्-मण्डलीके समक्ष शालिवाहन संवत् ८०० के फाल्गुनमें श्रीरङ्गम्के प्रसिद्ध क्षेत्र तथा मन्दिरमें सुनायी गयी थी। वहाँपर एकत्रित विद्वानोंने इस ग्रन्थ-रत्नकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और इसके रचयिता महाकवि कम्बन्‌को 'कवि-चक्रवर्ती' की उपाधिसे विभूषित किया।

प्राचीनकालसे भारतके कवि तथा साहित्यकारोंने एक भाषासे दूसरी भाषामें किसी ग्रन्थको अनूदित करनेमें एक ही शैली अपनायी है। वह यह है कि उन्होंने शब्दोंकी ओर दृष्टि न रखकर भावार्थको अपने ढंगसे चित्रित किया है और कथामें यथोचित परिवर्तन भी किये हैं, जिसका फल यह है कि उनकी रचना मूलग्रन्थका उल्थामात्र न होकर एक स्वतन्त्र ग्रन्थका रूप धारण कर लेती है। जिस भाँति रामचरितमानस, वाल्मीकि-रामायणका भाषान्तर मात्र नहीं है, वैसे ही कम्ब-रामायण तमिळ भाषाका स्वतन्त्र महाकाव्य है।

महर्षि वाल्मीकिके श्रीराम परम वीर राजकुमार एवं व्यापक धर्मकी सजीव मूर्तिके रूपमें चित्रित किये गये हैं। उनके ईश्वरत्वका प्रदर्शन केवल कुछ स्थलोंपर ही होता है। कम्बन्‌के श्रीराम साक्षात् क्षीरसागरमें शयन करनेवाले सर्वेश्वर नारायण हैं। इनके पावन नामके जपसे लाखों भक्त भवसागरसे पार हो गये। श्रीरामके ईश्वरत्वको महाकवि आरम्भसे अन्ततक ओझल नहीं होने देते। उदाहरणके लिये उन्होंने लिखा है कि 'स्वर्णमृगके पीछे जानेके लिये श्रीरामने

* यह वालीकी दिग्विजयपर खण्डकाव्य है।

अपने उन्हीं चरणोंका प्रयोग किया, जिनसे (वामनावतारमें) उन्होंने त्रिलोकीको नापा था।' यह सब होते हुए भी कविने श्रीरामके मानवोचित कार्योंकी उपेक्षा नहीं होने दी। सीता-अपहरणपर श्रीरामकी वियोग-व्यथा, पिताकी मृत्युकी सूचनापर उनकी शोकाविष्टता, गुहके प्रति उनका प्रेम, भरतके पश्चात्तापकी व्यथाका उनपर प्रभाव तथा लक्ष्मणकी मूर्च्छापर विलापका चित्रण सुन्दर और सजीव होते हुए भी उन्होंने श्रीरामके ईश्वरत्वको श्रीतुलसीदासकी भाँति स्थिर रक्खा है—

सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु॥
(मानस २। ८७)

कम्बन् कहते हैं कि जब दशरथ महाराज अपने दरबारमें श्रीरामको युवराज बनानेकी घोषणा कर चुके, तब श्रीराम न तो प्रसन्न ही हुए और न इस पदको उन्होंने हेय ही समझा। केवल इस विचारसे कि पिताकी आज्ञाका पालन करना कर्तव्य है, उन्होंने इस आज्ञाको शिरोधार्य किया। कम्बन्के श्रीराम जबतक कैकेयीके समक्ष नहीं जाते, इस घटनाके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहते।

माता कैकेयी, जिसने श्रीरामका युवराजपद छीन लिया और उन्हें मुनिवेषमें चौदह वर्षका वनवास दिया, कभी इनके क्रोधका भाजन नहीं हुई। श्रीरामके वनवासकी सूचना जब लक्ष्मणको मिली, तब उनका क्रोध प्रज्वलित हो गया; किंतु श्रीरामने उनके क्रोधको यह समझाकर शान्त किया कि 'यदि नदीमें जल सूख जाय तो नदीको कोई दोष नहीं देता। न तो श्रीमहाराज और न पूज्या माताका कोई दोष है। यह तो हमारा प्रारब्ध है, जो हमें वनमें ले जा रहा है; किसीपर क्रोध करना मूर्खता है।' कम्बन्के श्रीराम अतिकोमल हृदयके हैं। जब वे लक्ष्मणको पत्थर-लकड़ीसे कुटी बनाते देखते हैं, तब कहते हैं—

'आह! क्या जनककुमारीके पुष्पोंसे भी कोमल चरण वनके कण्टकाकीर्ण पथपर चलनेके योग्य हैं? अथवा राजकुमार लक्ष्मणके सुन्दर हस्त पत्थर ढोनेयोग्य हैं? विषम कालकी गति जिनको निस्सहाय दशामें ले आती है, उनको कौन-सा कार्य है, जो नहीं करना पड़ता।'

इन्द्रजित्की शक्ति लगनेपर जब लक्ष्मण मूर्च्छित हो जाते हैं, तब श्रीराम शोक तथा मानस व्यथासे अपनी सुध-बुध खोकर संज्ञाहीन-से हो जाते हैं। जब पुनः चैतन्य होते हैं, तब वे लक्ष्मणकी नासिकाके सामने हाथ लगाकर श्वासकी गति, वक्षःस्थलसे कान सटाकर हृदयका स्पन्दन तथा चरण-तलवोंसे उष्णताका निरीक्षण करते और फिर अपने हृदयसे चिपटाकर हृदयविदारक विलाप करते हैं।

दूसरोंके दुःखसे दुःखी वही होता है, जो उनसे प्रेम करता हो। श्रीराम तो प्रेमकी मूर्ति थे ही। उनको तो जीवमात्रसे उतना ही प्रेम था, जितना उनको अपने-आपसे था। श्रीगुरु वसिष्ठने श्रीरामका यह गुण दशरथ महाराजसे दरबारमें निवेदन किया था।

गुहके सरल व्यवहारसे श्रीरामका प्रेम इतना उमड़ पड़ता है कि वे उसको अपना भ्राता बनाकर लक्ष्मणको परिचय 'तुम्हारा भाई तथा सीता भाभी' कहकर देते हैं और स्पष्ट कहते हैं कि 'हम चार भाई थे, तुम समेत पाँच हो गये।'

सुग्रीवसे मिलनेपर वानर और फिर विभीषणके राज्यारूढ होनेपर राक्षस भी प्रभुके असीम प्रेमके पात्र होकर सहोदर भ्रातावत् ही बन जाते हैं। वे विभीषणसे कहते हैं—

'गङ्गाके तीरपर गुहके मिलनेपर हम चारसे पाँच भाई बन गये। सुग्रीव छठा और आप सातवें भ्राता हैं। महाराज दशरथने एक पुत्रको वनवास दिया तो उनके पुत्र-ही-पुत्र हो गये। उनको पुत्र-प्राप्तिपर बधाई है।'

जब श्रीरामका प्रेम निषाद-जाति गुह, वानर-जाति सुग्रीव तथा राक्षस-जाति विभीषणको भ्राताका स्वरूप दे देता है, तब भरत, लक्ष्मण तथा सीताके लिये उनका असीम प्रेम होना स्वाभाविक ही है।

भरत, जिसकी माता कैकेयीने अपने पुत्रके लिये श्रीरामका राज्यपद छीना और चौदह वर्षका वनवास दिलाया, श्रीरामकी दृष्टिमें वैसे ही प्रेमपात्र रहे, जैसे वे इस घटनासे पहले थे। वन जाते समय श्रीराम सुमन्त्रद्वारा गुरु वसिष्ठसे प्रार्थना करते हैं कि 'भरतको शोकमें ढाढ़स दें और उसको मेरे वनवासकी हेतुस्वरूपा मातापर क्रोध न करने दें।'

चित्रकूटमें जब श्रीराम भरतको राज्यमुकुटके स्थानपर जटा और राजसी परिधानके स्थानपर वल्कलवस्त्र धारण किये देखते हैं, तब महादुःखी होते हैं। इस सूचनासे कि भरत चतुरङ्गिणी सेना लेकर चित्रकूट आ रहे हैं, लक्ष्मणका क्रोध

भड़क उठता है और वे भरतके विरुद्ध बहुत कुछ कह जाते हैं। इसके उत्तरमें श्रीराम कहते हैं—'भाई! मेरे प्रति तुम्हारा जो प्रेम है, उसके कारण तुम्हारे अंदर भरतके गुणोंको देखनेकी दृष्टि नहीं रही। मैं तो भरतके जीवनको वेदोंकी व्याख्या मानता हूँ। यह कौन-सी बुद्धिमत्ता है कि तुम मेरे प्रति भरतके प्रेमको नहीं देखते, जिसके फलस्वरूप मुझे राज्य लौटानेके लिये वह यहाँ चला आया है? तुम प्रिय भरतपर कैसे संदेह कर सकते हो, जो सम्मानकी कसौटी और धर्मकी साक्षात् मूर्ति है। वास्तवमें सारे संसारमें भरत-जैसा भाई न हुआ है और न होगा।'

भ्रातृप्रेमकी पराकाष्ठाके रूपमें श्रीराम-लक्ष्मणकी जोड़ी सारे भारतमें प्रसिद्ध है। लक्ष्मणने अपना सभी कुछ श्रीरामके प्रेमपर न्योछावर कर दिया और रामकी सेवामें कौन-से कष्ट नहीं सहे। जब श्रीराम-सीता सोते हैं, तब लक्ष्मण सारी रात पहरा देते हैं। भोजनके लिये वनसे कन्द-मूल-फल लाना भी उन्होंने अपना कर्तव्य मान रक्खा है। उन्होंने सदा ही अपनी माता सुमित्राकी शिक्षाका (कि श्रीराम तुम्हारे पिता और जानकी माता हैं) अक्षरशः पालन किया। श्रीरामका लक्ष्मणके प्रति अतुल प्रेम पिताके पुत्रके प्रति प्रेमसे भी उच्च तथा गम्भीर है। लक्ष्मणके कुटी बनाते समय तथा उसकी मूर्च्छित दशामें रामके उद्गार इस असीम प्रेमको किंचित् व्यक्त करते हैं। जब लक्ष्मण इन्द्रजित्से द्वन्द्व-युद्धके लिये अकेले पधारते हैं, तब श्रीरामका मन कितना व्यथित होता है, इसका चित्रण भी कम्बन्की कवित्वशक्तिका उत्कृष्ट उदाहरण है।

हनुमान्का श्रीरामके साथ सम्बन्ध एक महान् गुरुके साथ प्रिय शिष्यका-सा है। प्रथम समागमके समय ही दोनोंमें जो प्रेम उदय हुआ, वह बढ़ता ही गया। श्रीराम हनुमान्के ज्ञान, बुद्धि तथा शारीरिक बलको मान देते हैं और इसी कारण सीताकी खोजमें जानेवाले वानरोंमेंसे हनुमान्जीको ही अपनी अँगूठी तथा सीताजीके लिये प्रेम-संदेश देते हैं। वानरोंमें अग्रगण्य और श्रीरामके परमभक्त हनुमान् श्रीरामकी सेवामें हर समय, हर स्थितिमें तत्पर रहे, जिसके फलस्वरूप वे स्वयं परमपूज्य तथा वरदाता बन गये।

श्रीरामका सीताके प्रति और सीताका रामके प्रति प्रेम अलौकिक और अनिर्वचनीय था। महाकवि कम्बन् उनके मधुर दाम्पत्य-जीवनका स्पष्ट उल्लेख न करके संकेतसे ही चित्रण करते हैं। जब श्रीराम और सीता गङ्गाके सुन्दर तथा पावन तटपर पहुँचते हैं और वहाँ हंसोंको कल्लोल करते हुए तथा खिले हुए कमलोंको निहारते हैं, तब श्रीसीता श्रीरामके चरणोंको कमलपुष्पोंकी शोभाका अपहरण करते हुए पाती हैं और नील कमलको देखकर श्रीरामको परमप्रिय सीताके विशाल चक्षु स्मरण हो आते हैं। वे श्रीरामके लिये अरुन्धती-जैसी पवित्र और अमृतकी भाँति मधुर हैं। उनकी अनुपम सुन्दरताका चित्रण नहीं हो सकता। कोकिलबैनी सीता श्रीरामकी जीवनभूता और सतीत्वकी सीमा हैं। सीताहरणपर श्रीराम विरह-व्यथासे विक्षिप्त हो जाते हैं और मन-बुद्धिका संतुलन खो बैठते हैं। यही दशा उनकी उस समय होती है, जब हनुमान्द्वारा उनको यह सूचना मिलती है कि इन्द्रजित्ने सीताकी हत्या कर दी है और वह विमानसे जाकर अयोध्याको नष्ट कर आया है—वास्तवमें यह सब उसकी आसुरी मायाका चमत्कार था।

श्रीरामके हृदयमें सीताके लिये कितना प्रेम है, इसका वर्णन हनुमान् सीताजीसे इस प्रकार करते हैं—'माता! आप धन्य हैं। आप सदा श्रीरामके हृदयमें रहती हैं; आपके वियोगमें उनका जीवन नहीं रहता, यदि उनके जीवन-रूपमें आप यहाँ न होतीं।'

श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण भगवान्ने—'शस्त्रधारी योद्धाओंमें मैं राम हूँ'—कहकर यह बतलाया है कि श्रीरामके समान वीर योद्धा न हुआ न होगा।

उनकी वीरता, जब वे अभी बालक ही थे, उत्तर भारतमें प्रसिद्ध हो चुकी थी। तभी तो महर्षि विश्वामित्र दुष्ट तथा बलवान् राक्षसोंसे अपने यज्ञकी रक्षाके लिये उनको उनके पितासे माँगकर ले गये थे। इनके अतुलित बाहुबलके प्रतापसे ही ताड़का आदि राक्षसोंका संहार हुआ और विश्वामित्रका यज्ञ निर्विघ्न सम्पूर्ण हुआ। सीता-स्वयंवरमें शम्भु-धनुष तोड़कर एवं इस प्रकार उस कालके सभी प्रसिद्ध वीरोंको नीचा दिखाकर अपने बल तथा पराक्रमको प्रमाणित कर दिया।

पञ्चवटीमें खर-दूषण और उनकी महान् सेनापर अकेले ही विजय प्राप्त करके श्रीरामने अपने अद्वितीय बल तथा युद्ध-कौशलकी धाक जमा दी। जिसने शम्भुसहित कैलास पर्वतको उठा लिया था, अन्य सभी देवताओंसहित इन्द्र जिसके अधीन थे, जो कई प्रकारकी मायामें प्रवीण था और जिसकी असंख्य सेनामें कुम्भकर्ण-जैसे अप्रतिम योद्धा थे, उस

त्रैलोकविजयी रावणको नष्ट करके विजयश्री वरण करनेवाले भगवान् श्रीरामकी वीरताके सम्बन्धमें कुछ कहना सूर्यको दीपक दिखाना है।

धर्ममूर्ति श्रीरामके विशाल हृदय और उनके पवित्र विचारोंने उनको भारतीय जनताके मानसका पूज्य युगपुरुष बना दिया है। महर्षि विश्वामित्रने राक्षसी ताड़काके जघन्य एवं दुष्टकर्मोंका वृत्तान्त सुनाकर ही उस दुष्टाका संहार करनेके लिये श्रीरामको उद्यत किया; नहीं तो श्रीराम उसके स्त्री होनेके कारण उसको अवध्य मानते थे।

माता कैकेयीके लिये उनके मनमें द्वेष तथा रोषकी गन्ध भी नहीं थी। रावणवधके पश्चात् जब महाराज दशरथ स्वर्गसे श्रीरामकी विजयपर प्रसन्नता प्रकट करनेके लिये लङ्कामें पधारे, तब श्रीराम अपने पूज्य पितासे, जो शाप उन्होंने भरत और कैकेयीको मृत्यु-समय दिया था, उससे उन्हें मुक्त करनेके लिये कातर प्रार्थना करते हैं।

रावणकी मृत्युके पश्चात् श्रीराम विभीषणके द्वारा उसके और्ध्वदैहिक सभी संस्कार शास्त्रानुसार कराते हैं। उनके विशाल पवित्र हृदयमें द्वेषको स्थान नहीं।

श्रीराम शरणागतवत्सल हैं। उनको दीन अति प्यारे हैं। चाहे वे गोघाती, ब्रह्महत्यारे महादुष्ट क्यों न हों और उनको शरण देनेसे अपनेको कितना ही क्लेश तथा कष्ट क्यों न उठाना पड़े, वे सदा शरणागतोंको प्रेमसे अपनानेके लिये उद्यत रहते हैं। रावणका भ्राता विभीषण श्रीरामकी शरणमें आता है। सुग्रीवका विचार है कि 'मायावी राक्षस हमारा भेद लेनेके लिये आया है, इसपर विश्वास करना युक्तिसंगत नहीं।' अतः सुग्रीव उसके प्रतिकूल हैं। श्रीराम उनको समझाते हैं कि 'आपका यह विचार युद्धनीतिके अनुकूल है और आपका मेरे प्रति अटूट प्रेम है, इसलिये यह उचित भी है; किंतु मेरा ऐसा निश्चय है कि यदि मेरे माता-पिता, भाई-बन्धुका हत्यारा भी निराश होकर मेरी शरणमें आ जाय तो उसको भी मैं अपना प्रेमी मित्र मानूँगा; फिर चाहे वह मुझे धोखा ही क्यों न दे।'

वालीने श्रीरामसे पूछा—'आप धर्मकी स्थापनाके लिये पृथ्वीपर पधारे हैं; फिर आपने मुझे व्याधकी भाँति छिपकर क्यों मारा?' इसका उत्तर श्रीरामने नहीं दिया। कम्बन् महाकवि इसका उत्तर लक्ष्मणजीसे दिलवाते हैं। वे कहते हैं कि 'श्रीरामने सुग्रीवको तुम्हारे मारनेका वचन दे दिया था। यदि वे तुम्हारे सम्मुख आते और तुम उनकी शरणके प्रार्थी हो जाते तो फिर उनका दिया हुआ वचन सत्य नहीं होता।' वाली इस तर्कको स्वीकार कर लेता है।

कम्बन्ने श्रीरामके अन्य दिव्य गुणोंका जो चित्रण किया है, उसके कारण उनके श्रीरामकी महिमा श्रीवाल्मीकिजीके श्रीरामके समान ही प्रभावशाली हो गयी है। विस्तार-भयसे अधिक न लिखकर उस विवेचनको यहीं समाप्त करते हैं।

श्रीरघुनायकसे विनती

रामचंद्र! रघुनायक तुम सों हौं विनती केहि भाँति करौं।
अघ अनेक अवलोकि आपने, अनघ नाम अनुमानि डरौं॥
पर-दुख दुखी, सुखी पर-सुख ते, संत-सील नहिं हृदय धरौं।
देखि आन की विपति परम सुख, सुनि संपति बिनु आगि जरौं॥
भगति-बिराग-ग्यान-साधन कहि बहु बिधि डहकत लोग फिरौं।
सिव-सरवस, सुखधाम नाम तव बेंचि नरकप्रद उदर भरौं॥
जानत हौं निज पाप-जलधि जिय, जल-सीकर सम सुनत लरौं।
रज-सम पर-अवगुन सुमेरु करि, गुन गिरि-सम रज तें निदरौं॥
नाना बेष बनाय दिवस-निसि, पर-बित जेहिं-तेहिं जुगुति हरौं।
एकौ पल न कबहुँ अलोल चित हित दै पद-सरोज सुमिरौं॥
जो आचरन बिचारहु मेरो, कलप कोटि लगि औटि मरौं।
तुलसिदास प्रभु-कृपा-बिलोकनि, गोपद ज्यों भवसिंधु तरौं॥

(विनयपत्रिका, १४१)

तेलुगु भाषामें रामकथा

(लेखक—श्रीवी० आर० के० आचार्युलु)

दक्षिणकी सुप्रसिद्ध भाषा तेलुगुमें श्रीरामका पवित्र चरित ११वीं सदीके आदिकवि नन्नयासे लेकर अबतकके अनेकों कवियोंद्वारा लिखा गया है। उक्त भाषामें नन्नयाका 'राघवाभ्युदय' (अलभ्य), तिक्कनाका 'निर्वचनोत्तर रामायण', एर्रिनाका 'संक्षेप रामायण' (अलभ्य), गोनबुद्ध रेड्डिका 'रङ्गनाथ रामायण', कंकंटि पापराजुका 'उत्तर रामायण', हुलक्कि भास्करद्वारा रचित 'भास्कर रामायण', गोपीनाथ वेंकट कविका 'गोपीनाथ रामायण', कूचिमंचि तिम्मकविका 'अच्च तेलुगु रामायण', आतुकूरि मोल्लाका 'मोल्ल रामायण', काचविभुडु तथा विट्ठलराजुद्वारा रचित 'रङ्गनाथोत्तर रामायण', अय्यल राजु रामभद्रका 'राघवाभ्युदय', कट्टा वरदराजुका 'द्विपद रामायण', रघुनाथनायकका 'रघुनाथ रामायण', श्रीपाद कृष्णमूर्तिका 'रामायण', विश्वनाथ सत्यनारायणका 'रामायण-कल्पवृक्ष' आदि अनेक रामायण हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक रामायणोंके नाम जानकारी तथा स्थानाभावके कारण यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। उपर्युक्त रामायणोंमेंसे केवल गोनबुद्ध रेड्डिकाके 'रङ्गनाथ रामायण' तथा हुलक्कि भास्करके 'भास्कर रामायण'में वर्णित रामचरित वाल्मीकिरामायणसे किन-किन बातोंमें भिन्न हैं, केवल इसका ही संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है। स्थानाभावसे अन्य रामायणोंके काव्य-वैचित्र्य तथा कथा-गायनका परिशीलन करना सम्भव नहीं है। 'रङ्गनाथ रामायण'में आरम्भमें कहा गया है कि 'यह रामायण वाल्मीकि-रामायणका अनुसरण करती है।'

इन दोनों रामायणोंकी कतिपय मुख्य लीला-भावनाएँ इस प्रकार हैं—

(१) 'रङ्गनाथ रामायण'के अनुसार बाल्यावस्थामें खेलते समय श्रीरामके पैरका आघात लगनेसे मन्थराका पैर टूट जाता है। भविष्यमें इसीका बदला मन्थरा लेती है। इस प्रसङ्गके बाद ही राजा अपने पुत्रोंको वसिष्ठके पास विद्याभ्यासके लिये भेजते हैं।

'भास्कर-रामायण'में भी मन्थराके कोपका कारण श्रीराम-पाद-ताड़न ही कहा गया है।

(२) शिवधनुर्भङ्गका विशद वर्णन 'रङ्गनाथ रामायण'में है, किंतु 'भास्कर-रामायण'में वाल्मीकिरामायणकी भाँति उक्त कथाका संक्षिप्त ही वर्णन किया गया है।

(३) 'रङ्गनाथ रामायण'के अरण्यकाण्डमें जम्बुकुमारका वृत्तान्त एक मुख्य प्रसङ्ग है। यही स्वल्प भेदसे 'भास्कर रामायण'में भी है। शूर्पणखाके पुत्रका नाम जम्बुकुमार है। वेणुके झुरमुटको काटते समय श्रीलक्ष्मणद्वारा जम्बुकुमार अनायास मारा जाता है। इसका बदला लेनेके लिये शूर्पणखा आती है, पर राम-लक्ष्मणके रूपको देखकर मोहित हो जाती है। इससे श्रीराम तथा लक्ष्मणके लोकातीत सौन्दर्यका परिचय मिलता है, जिसके कारण शोकपीड़ित शूर्पणखा भी उनपर आसक्त हो जाती है।

युद्धकाण्डके भावपूर्ण प्रसङ्ग अत्यधिक प्रभावपूर्ण हैं—

१. रावण विभीषणको पादताड़नद्वारा सभासे भगाता है।

२. विभीषण माताके पास जाकर अपनी अवस्था बताते हैं तथा उनका आशीर्वाद लेकर श्रीरामके पास शरणप्राप्तिके लिये जाते हैं।

३. सेतु-बन्धनके समय अपनी शक्तिके अनुसार सहायता करनेके लिये गिलहरी आती है। उसकी सेवासे राम बहुत प्रसन्न होते हैं।

४. रावणकी माता केकसी रावणको हितोपदेश देती है।

५. रावण श्रीरामके धनुर्विद्या-प्रावीण्यकी स्तुति करता है।

६. रावणको मन्दोदरी समझाती है।

७. रावण शुक्रके पास जाकर दुःखित होता है।

८. कालनेमिका वध होता है।

९. दूसरी बार संजीवनी बूटीको लाते समय हनुमान्जीका माल्यवन्तसे युद्ध होता है।

१०. विजयकामनासे रावण पातालमें जाकर हवन करता है। उसमें विघ्न डालनेके लिये अङ्गद मन्दोदरीके केश पकड़कर खींचते हुए रावणके पास लाते हैं, उससे रावणका यज्ञभङ्ग हो जाता है।

११. राम-रावण-युद्धमें रावणके सिरोंके बारंबार उगते रहनेसे चिन्तित रामको विभीषण उसका कारण बताते हैं कि रावणके अन्तरमें अमृत-घट है और उसे ब्रह्मास्त्रसे मारनेके लिये कहते हैं।

उक्त प्रसङ्गोंके अतिरिक्त सभी रामायणोंमें मूल रामकथा तो लगभग एक-समान ही है, लेकिन भाषा, शैली, कविता

आदिके वैशिष्ट्यकी दृष्टिसे प्रत्येक रामायणका अपना विशिष्ट महत्त्व है। 'भास्कर-रामायण' तथा 'रङ्गनाथ-रामायण'में वर्णित प्रसङ्गोंका वाल्मीकि-रामायणके प्रसङ्गोंके साथ इतना अधिक साम्य देखकर सहज ही यह प्रेरणा मिलती है कि विभिन्न रामायणोंकी रामकथाओंका अनुशीलन किया जाय, जिससे यह ज्ञात हो सके कि विभिन्न रामायणोंके रचयिताओंने किस सीमातक वाल्मीकि-रामायणका अनुसरण किया है।

अन्य रामायणोंमें तिक्कनाका 'निर्वचनोत्तर रामायण' और कंकंटि पापराजुका 'उत्तर रामायण' अत्यन्त मार्मिक ग्रन्थ हैं। इनमें श्रीसीता-रामके प्रणय-विलास तथा राम-का सीताके प्रति अपार और अचिन्त्य प्रेमका अनोखा वर्णन है। वे ही सीताप्रेमी राम राज्य-व्यवस्थाकी दृष्टिसे, वंश-परम्पराके चारित्रिक नैर्मल्यकी रक्षाके लिये तथा प्रजारक्षणकी दृष्टिसे अपनी प्राणाधिका प्रिया पत्नी सीताको सौमित्रिके द्वारा वनभ्रमणके व्याजसे निर्जन वनमें छुड़वा देते हैं। कंकंटि पापराजुद्वारा चित्रित-'सीता परित्याग'का वर्णन पढ़नेसे पाठकका हृदय और आँखें रह-रहकर भर आती हैं। तिक्कना श्रीसीता-रामके उद्यान-विहारका वर्णन करके भावी वियोगको और भी हृदयस्पर्शी बना देते हैं। उक्त रामायणोंके अनुशीलनसे यह जाना जा सकता है कि श्रीरामचरितका सर्वाङ्गपूर्ण वर्णन विभिन्न रामायणोंमें किस तरह किया गया है।

यहाँ तेलुगु भाषाकी सभी रामायणोंमें वर्णित श्रीराम-चरितका वर्णन तो दूर रहा, मुख्य विशेषताओंका निर्देश भी स्थानाभावके कारण नहीं हो पा रहा है। यहाँ तो केवल दो ही रामायणोंके मुख्य प्रसङ्गोंका उल्लेखमात्र किया गया है।

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम—एक दृष्टिकोण

(लेखक—श्रीकाकासाहेब कालेलकर)

सनातनी धर्मवृत्ति एक ही समय भिन्न-भिन्न भूमिकापर चिन्तन चला सकती है। श्रीराम और श्रीकृष्णको हम ऐतिहासिक महापुरुष समझकर उनके जीवनकार्यका विचार कर सकते हैं और साथ-ही-साथ हम इन दो महा-पुरुषोंको ईश्वरका अवतार समझकर उनकी अवतारलीलाका रहस्य ढूँढ़नेकी कोशिश भी कर सकते हैं।

और आगे जाकर हम श्रीराम और श्रीकृष्णको प्रत्यक्ष परमात्माके लोकप्रिय नाम समझकर अध्यात्म-साधनामें उनके नामोंका और उनके वचनोंका उपयोग भी कर सकते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीताका उदाहरण लीजिये। महाभारतके युद्ध-क्षेत्रपर पाण्डववीर अर्जुनको उनके सारथि श्रीकृष्णने जो उपदेश दिया और अर्जुनका विषाद और मोह नष्ट करके उसे युद्धके लिये तैयार किया, उस संवादको हम एक तरहका ऐतिहासिक संवाद भी मान सकते हैं। और नर-नारायणरूप अर्जुन-श्रीकृष्णकी जोड़ीमें नरश्रेष्ठ अर्जुनको मानवजातिका प्रतिनिधि और नारायण श्रीकृष्णको प्रत्यक्ष ज्ञानमूर्ति परब्रह्म मानकर सारे संवादको एक आध्यात्मिक रूपक भी मान सकते हैं। पुनः उसमें पाण्डवोंको दैवीसम्पत्के प्रतिनिधि मानकर कौरवोंको आसुरीसम्पत्के रूपक भी हम बना सकते हैं। आज जब आध्यात्मिक साधनाके लिये गीताका हम उपयोग करते हैं, तब उसकी ऐतिहासिक भूमिका एक बाजू रख देते हैं और जो संवाद असलमें ऐतिहासिक नमूना था, उसे हम आध्यात्मिक रूपक मानकर ही उससे लाभ उठाते हैं।

जब महात्माजीने अपने अन्तिम क्षण 'हे राम' कहा, तब उनके मनमें अयोध्याके राजा दशरथपुत्र राम नहीं थे; किंतु प्रत्यक्ष परमात्माका नाम ही 'राम' शब्दके द्वारा उन्होंने लिया था।

इसी तरह हम श्रीरामकी, श्रीकृष्णकी अथवा सामाजिक श्रीराम-कृष्णकी आध्यात्मिक उपासनाके समय परमात्माका ही ख्याल करते हैं। लेकिन जब भारतीय संस्कृतिके इतिहासको ध्यानमें रखकर पौराणिक कथाओंमेंसे सांस्कृतिक निष्कर्ष निकालते हैं, तब श्रीरामको एक आदर्श राजा और सांस्कृतिक नेता मानकर ही चलते हैं।

हमारे अवतारी पुरुष श्रीराम अथवा श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'संकट दूर करनेके लिये मानवके द्वारा जो भी कोशिश हो सकती है, हम करेंगे, दैवी चमत्कार नहीं।'

आध्यात्मिक साधनाकी दृष्टिसे रामावतारका और राम परब्रह्मका चिन्तन हमारे संत-महंत, योगिवर और भक्तवर

करते ही आये हैं। राम और कृष्णके जीवनका चिन्तन ऐतिहासिक महापुरुषके तौरपर आजकल हो रहा है। इसीमें एकाध कल्पनाका संनिवेश करके उसे रामभक्त भारतभक्तोंके सामने रखना अनुचित नहीं होगा।

दस अवतारोंमेंसे पहले पाँचको हम छोड़ दें। जीव-सृष्टिका प्रारम्भ पानीमें हुआ (मत्स्यावतार)। उसके बाद पानीका जीव जमीनपर आकर चलने लगा। तब भू और जल दोनों क्षेत्र उसके बने (कूर्मावतार)। इसके बाद कीचड़मेंसे सख्त जमीनपर जीवोंका निवास बढ़ गया (वराह-अवतार) और उसीमेंसे आधा पशु और आधा मनुष्य—ऐसे प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई (नृसिंह-अवतार), ऐसा अर्थ लगाकर इन अवतारोंको विकासवादके साथ जोड़ देनेकी कल्पनाएँ लोगोंने चलायी हैं। और वानरोंने आखिरकार नरोंकी सेवा और भक्ति मान्य की, ऐसा बोध हनुमान्-रामचन्द्रके द्वारा चिन्तनके लिये पेश किया गया। यह सब हम छोड़ दें और छोटे-से वामनावतारसे क्षमा माँगकर अपने चिन्तनका प्रारम्भ परशुरामसे करें।

परशुरामका समय परशुके द्वारा जंगल तोड़कर मनुष्य-बस्ती स्थिर करनेका काल था। इस बातको भी हम छोड़ दें। सह्याद्रि और पश्चिम समुद्रके बीचकी जमीनको मानवी जीवनके उपयुक्त बनानेका प्रयास परशुरामके अवतारमें हम देखें अथवा न देखें, इतनी बात तो सिद्ध है कि परशुरामके कालमें ब्राह्मण और क्षत्रिय—दोनों जमातोंमें (वर्णोंमें) काफी संघर्ष था और ब्राह्मण परशुरामने ब्राह्मणोचित आदर्शको छोड़कर क्षात्रवृत्ति धारण की, क्षत्रियोंको इक्कीस बार हराया।

इस अनुभवसे तंग होकर क्षत्रियोंने सोचा कि संगठनके बिना केवल बहादुरीसे हम जी नहीं सकते, पनप नहीं सकते। इसलिये क्षत्रियोंने अंदर-अंदर लड़ना कम करके एक समर्थ पुरुषको सम्राट् बनाकर बाकीके सब राजा लोग उसके इर्द-गिर्द मण्डलमें बैठने लगे, याने माण्डलिक बने।

एक राजा सम्राट् बने और बाकीके सब माण्डलिक बनकर सारे भारतकी एकता मजबूत करें, यह विचार अगर सचमुच क्षत्रियमान्य होता तो सम्राट् बननेके लिये किसी भी महत्त्वाकाङ्क्षी राजाको अश्वमेध करना नहीं पड़ता और फौजकी मददसे राजसूय यज्ञ चलानेकी नौबत नहीं आती। एक राजा सम्राट् बनता था, केवल सैन्यके बलपर और बाकीके राजा माण्डलिक बनते थे, हारनेके बाद लाचार होकर। हमारे पौराणिक इतिहासमें ऐसा कोई साम्राज्य एक या डेढ़ पुश्तसे अधिक चला हो तो उसकी जानकारी हमें नहीं है। सम्राट्के देहान्तके साथ उसके राज्यके विभाग करने ही पड़ते थे। यह थी परशुराम-अवतारकालकी राजनीतिक परिस्थिति।

इसके बाद आते हैं, दाशरथि रामचन्द्र। इनका सारा प्रयत्न ब्राह्मण और क्षत्रिय—दोनों जमातोंके बीच समन्वय स्थापन करनेका था। ब्राह्मणोंकी महत्ताका अनुभव करनेके बाद क्षत्रिय जमातमेंसे ब्राह्मण बन गये विश्वामित्र। राम उनके शिष्य बने और उनके पाससे रामने दोनों जमातोंकी विद्या सीख ली।

रामावतारका काल खेतीके प्रारम्भका था, खेतीके विस्तारका था। राजा जनक आदर्श किसान थे। मृगनक्षत्रकी तैयारी देखते ही किसानके नेता राजा जनक सोनेका हल चलाकर खेती शुरू करते। जनकके बाद ही बाकीके किसानोंके हल चलानेका रिवाज था। जनक राजाको जमीनमें हल चलाते सीता मिल गयी। ('सीता' शब्दका असली अर्थ ही है, हल चलानेसे जमीनमें बननेवाली लकीर। उसके बाद सीताका अर्थ हुआ 'कृषि-विद्या'। मनुस्मृति (९। २९३) में हल, कुदाली आदि खेतीके उपकरणोंको 'सीताद्रव्य' कहा गया है।) राजा रामचन्द्रने किसान राजा जनककी कन्याके साथ विवाह किया, याने कृषि-विद्या अपनायी और दक्षिणमें जाकर, जिस जमीनमें हल चल नहीं सकता था, ऐसी 'अहल्या'भूमि का उद्धार किया।

श्रीरामका सारा प्रयत्न ब्राह्मण और क्षत्रियोंके बीच समाधान करनेका और सांस्कृतिक समन्वय साधनेका था। उन्होंने विद्या पायी, सुधारक ब्राह्मण विश्वामित्रसे। किंतु उनके कुलगुरु थे, प्राचीन परम्पराके अभिमानी ब्राह्मण वसिष्ठ।

रामके सामने तीन आदर्श थे—(१) ब्राह्मणोंका वर्चस्व मान्य करना, (२) जनताके अभिप्रायकी कदर करना और (३) पिछड़ी हुई आदिवासी जमातोंको भारतीय आर्य-संस्कृतिकी दीक्षा देना।

हमें एक बात ध्यानमें रखनी चाहिये। रावण स्वभावसे भले ही राक्षस गिना जाय, लेकिन वह राक्षसवंशी नहीं

था। जातिका था पूरा ब्राह्मण। असली रहनेवाला था कैलासपर्वतके आसपासकी देवभूमि त्रिविष्टपका। रावण था ऋषि पुलस्त्यका पौत्र, विश्रवाका लड़का और धनपति कुबेरका सौतेला भाई। सनातन रिवाजके अनुसार भाई-भाईके बीच झगड़ा हुआ। रावणने कुबेरको हराया और उसके बाद भाईसे कहा—'तुम रहो इस देवभूमि त्रिविष्टप (तिब्बत) में; और तुम्हारे हाथमें जो लङ्का है, वहाँ जाकर मैं राज्य करूँगा।' रावण लङ्कापति बना। वह कभी लङ्कापुत्र नहीं था।

रावण था तिब्बतका रहनेवाला, इसीलिये तो उसकी माताने एक दफे जिद्द पकड़ी कि 'लङ्कामें बैठकर शिवजीकी पूजा करनेके लिये मुझे लिङ्ग चाहिये, मेरे कैलासके महादेवका।' इसमें उस महिलाका 'जन्मभूमि-वात्सल्य' ही प्रकट होता है। माताके संतोषके लिये कैलास जाकर उसने शिवजीको प्रसन्न किया। कमलकी पूजामें संख्या कम होनेपर रावण अपने सिरकमल तोड़कर शिवजीको अर्पण करनेके लिये तैयार हुआ। तब शिवजीने प्रसन्न होकर अपना आत्मलिङ्ग निकालकर रावणके हाथमें दे दिया और कहा—'जहाँ इसे जमीनपर रख दोगे, वहाँपर वह स्थिर हो जायगा। फिर उसे उठा नहीं सकोगे।'

शिवलिङ्ग लेकर रावण कैलाससे लङ्कातक दौड़ने लगा। (सारी कथा यहाँ नहीं देनी है।) 'हमारे शिवजीका लिङ्ग रावणके राज्यमें जाकर स्थिर होगा'—इस कल्पनासे देव घबराये। उन्होंने गणपतिकी मददसे चालाकी की। भारतके पश्चिम समुद्रके किनारे महाबलेश्वरके स्थानपर शिवलिङ्ग स्थिर हो गया। उद्विग्न रावणने जमीनमेंसे शिवलिङ्ग खींचनेकी कोशिश की। उसके चार टुकड़े उसके हाथमें आ गये। विषादके साथ उसने वे चार टुकड़े चारों दिशाओंमें फेंक दिये। (यह सारी कथा महाबलेश्वरके 'स्थलपुराण'में पायी जाती है।)

श्रीरामने हनुमान्, सुग्रीव, वाली, जाम्बवान्, नल, नील आदि आदिवासियोंके साथ दोस्ती की। लेकिन वे ब्राह्मणोंके चलाये हुए धर्मका पालन पूरे आदरके साथ करते थे।

मनु आदि धर्मकारोंकी स्मृतियोंके अनुसार सामान्य जनताको कोई अधिकार थे ही नहीं। इसीलिये श्रीरामचन्द्र रातको अपना वेष बदलकर शहरमें घूमते थे और लोगोंका सुख-दुःख समझकर उसका इलाज करते थे। श्रीरामचन्द्र अपनी प्रजाको कोई अधिकार न दे सके। स्मृतियोंमें इसका कोई प्रबन्ध नहीं था। लेकिन लोकमतकी कदर करनेका श्रीरामचन्द्रका प्रण था, इसलिये उन्होंने अग्निशुद्धिके बाद भी सीताका त्याग किया। श्रीरामचन्द्र जानते थे कि अधिकारहीन प्रजा कृपापात्र (कृपण) है, उसका और उसके अभिप्रायका आदरके साथ पालन करना चाहिये (पाल्या हि कृपणा जनाः)। लोगोंके अभिप्रायकी रक्षा भी हुई और ब्राह्मण-संस्कृतिका उल्लङ्घन भी नहीं हुआ। हत्या हुई केवल हृदयकी भावनाकी। उसके लिये श्रीराम और सीता दोनों तैयार थे।

इसके बाद आती है इससे भी कठिन कसौटी।

श्रीरामचन्द्रजी अयोध्यामें बैठकर ब्राह्मणोंकी सलाहके अनुसार राज्य करते थे। इतनेमें एक ब्राह्मण अपने सोलह वर्षके लड़केका शव लेकर दरबारमें आये। कहने लगे—'राजन्! तुम्हारे राज्यमें अधर्म हो रहा है। अन्यथा पिताके जीवित होते ब्राह्मणका लड़का मर नहीं जाता। अधर्मको ढूँढ़कर उसे दूर करो तो मेरा लड़का फिरसे जिंदा होगा।'

तलाश करनेपर पता चला कि शम्बूक नामका एक वृषल (आदिवासी) ब्राह्मणोंके-जैसा पवित्र जीवन व्यतीत करनेके लिये दण्डकारण्यमें ऐसी घोर तपस्या कर रहा है, जिसका अधिकार केवल ब्राह्मणोंको ही है। रामको आज्ञा मिली—'उस वृषलको मारकर ब्राह्मणके लड़केको जिला दो।'

क्या करते श्रीरामचन्द्रजी! अपनेको उन्होंने स्वयं ही धर्म-परतन्त्र बनाया था। दुःखी हुए। शम्बूकका कोई गुनाह तो था नहीं। उसने किसी तरहका दुराचार नहीं किया था; न किसीको मारा था न लूटा था। पेड़के सहारे तपस्या करके पवित्र जीवन व्यतीत करता था।

पौराणिक कथा कहती है कि श्रीरामचन्द्रजीने शम्बूकका वध किया और ब्राह्मणका लड़का जीवित हो गया!!

कालिदासकी-सी योग्यतावाले महाकवि भवभूतिने अपने नाटकमें रामचन्द्रके मुँहसे नीचेका श्लोक कहलाया है। वे अपने दाहिने हाथको कहते हैं—

रे हस्त दक्षिण मृतस्य शिशोर्द्विजस्य
जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम्।
रामस्य बाहुरसि निर्भरगर्भखिन्न-
सीताविवासनपटोः करुणा कुतस्ते॥

(उत्तररामचरित २। १०)

'ऐ मेरे दाहिने हाथ! अकालमृत्युके ग्रास हुए ब्राह्मणके लड़केको जिलानेके लिये इस शूद्रमुनिपर शस्त्र चला। तू कठोर रामका दाहिना हाथ है। गर्भवती निर्दोष सीताको जंगलमें छोड़ देनेमें तुम होशियार साबित हुआ है। तेरे अंदर करुणा कैसी!'

शम्बूकने रामका दर्शन करके प्राण छोड़े। उसकी तपस्याका पूर्ण फल उसे मिल गया। उसने कहा—'बड़े-बड़े ऋषि-मुनि जिनके दर्शनके लिये ध्यान लगाते हैं, ऐसे तुम परमात्मा स्वयं मुझे ढूँढ़ते आये। मेरी तपस्या सफल हुई।'

[परम सम्मान्य काका कालेलकर महोदयके विचार ऊपर प्रकाशित किये गये हैं। काकाजी गांधीवादी विचार-धाराके प्रमुख चिन्तक, दुराग्रहशून्य, विलक्षण प्रतिभाशाली एवं भारतके एक प्रबुद्ध मनीषी हैं।

हमारे परमश्रद्धेय नित्यलीलालीन श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे तो काकासाहेबका बहुत पुराना—महात्मा गांधीजी जब साबरमती आश्रममें थे, तभीसे—बड़ा प्रीतिका सम्बन्ध रहा है। 'कल्याण' पर भी काकासाहेबका स्नेह सदासे है। जब भी काकासाहेबसे प्रार्थना की गयी, उन्होंने 'कल्याण' के लिये उत्साहपूर्वक लिखा है। प्रस्तुत लेख भी काकासाहेबकी उसी आत्मीयताका परिणाम है। हम जानते हैं, पूज्य काकासाहेबका अवतार-वादपर विश्वास है तथा वे श्रीरामको मानवताका आदर्श मानते हुए उन्हें भगवान् भी मानते हैं। अतएव उपर्युक्त लेखमें उन्होंने जो एक दृष्टिकोण रखा है, उसके सम्बन्धमें हमें कुछ कहना तो नहीं चाहिये था; पर मनकी दो-चार बातें अत्यन्त नम्रतापूर्वक काकासाहेबकी सेवामें निवेदन करनेकी धृष्टता की जा रही है। आशा है, काकाजी इससे प्रसन्न ही होंगे—'भिन्नरुचिर्हि लोकः।'

कुछ लोग सृष्टिक्रमकी पौराणिक परम्पराको नहीं मानते और वे विकासवादका पश्चिमी ढंगसे अर्थ करते हैं। अर्थ करनेमें सभी स्वतन्त्र हैं, किंतु प्रयत्न होना चाहिये सत्यकी खोजका।

महात्मा गांधीकी रामपर अटूट श्रद्धा थी। जैसी रामपर श्रद्धा थी, वैसी ही महात्मा श्रीगोस्वामी तुलसी-दासजीपर भी थी—उनके रामचरितमानसपर थी। श्रद्धा असत्यपर नहीं टिकती, टिकती है सत्यपर। सत्य कल्पना नहीं होता, रूपक नहीं होता, सत्य सत्य ही होता है।

परशुरामके साथ क्षत्रियोंका—राजाओंका संघर्ष कभी क्षत्रिय-ब्राह्मणका संघर्ष नहीं रहा। यह संघर्ष रहा न्याय और अन्यायका। शक्ति-मदने जब अन्यायकी ओर मुख किया, तब सर्वस्वत्यागियोंने उस समय अपनी दिव्य शक्तियोंका भी उपयोग किया। विश्वामित्रके साथ वसिष्ठके संघर्षकी तुलना कीजिये। विश्वामित्र अपने मुखसे कहते हैं—

धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम्।
एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे॥
(वा० रा० १। ५६। २३)

—और तपसे अन्तःशक्तिको जाग्रत् करनेमें लग जाते हैं अर्थात् ब्रह्मतेजकी उपासना करते हैं।

पुराणोंमें विश्वामित्रके अतिरिक्त अन्य किसी क्षत्रियके ब्राह्मणवर्णमें परिवर्तित होनेकी चर्चा नहीं पायी जाती। यहाँ हमें स्मरण रखना चाहिये कि स्वयं विश्वामित्रकी उत्पत्ति जिस चरुसे हुई थी, वह ब्रह्मवीर्यसम्पन्न था। वीर्यकी सदैव प्रधानता रही है। रही शरीरकी बात। तपःसंलग्न विश्वामित्रके शरीरका कण-कण धीरे-धीरे परिवर्तित होता गया—इस परिवर्तनमें कितना समय लगा होगा, इसकी कल्पना कीजिये। स्वभावमें उलट-फेर जितनी सरलतासे होनेके आसार प्रकट हुए, उतनी सरलतासे वे सम्पूर्ण आधारको—शरीरको परिवर्तित नहीं कर पाये। उसमें काफी समय लगा। सभी मनीषी इस बातका समर्थन करेंगे कि आन्तरिक चेतनाके प्रबुद्ध होनेके साथ शरीरमें भी परिवर्तन होता है। किंतु शरीरका परिवर्तन आन्तरिक चेतनाके उस भागपर निर्भर करता है, जो गुणत्रयसे आवृत होता है। यह कहना पर्याप्त होगा कि ब्राह्मणकी चेतनामें सत्त्वका अंश अधिक होता है, इसीलिये वह जरा-से झटकेसे ही तमस् और रजस्‌को लाँघकर सत्त्वप्रधान बन जाती है।

जो बात विश्वामित्रपर घटित होती है, वही बात शम्बूकपर भी घट सकती है। शम्बूक आदिवासी है, यह हमारी मान्यता नहीं है। भारतके आदिवासी आर्य ही हैं। वे कहीं बाहरसे नहीं आये, बल्कि इसी भूमिपर जन्मे हैं। वह शूद्र था और शूद्रका अर्थ है—तमसाच्छन्न। तमस् धीरे-धीरे रजस्‌में और रजस् सात्त्विकतामें परिवर्तित होता है। आधारके अनुसार उद्‌बुद्ध चेतना अपना काम करती है। इसीलिये चेतनाको उद्‌बुद्ध करनेसे पूर्व आध्यात्मिक साधना-प्रणालीमें आधारशुद्धिकी ओर विशेष लक्ष्य किया गया है और इसीके लिये पुराणकारोंने सरलतापूर्वक आधारशुद्धिके लिये भक्तियोगका विधान किया है। भक्तियोग चेतनाके विभिन्न आवरणोंको, प्राण-मनको विशुद्ध करता हुआ साधकको उच्चस्तरपर ले जाता है, जहाँ उसे

स्वरूपोपलब्धि होती है। शम्बूकका मार्ग प्रकृतिके विरुद्ध था। उसे अगर सिद्धि मिलती तो उससे आसुरिकता ही पनपती। उसके कल्याणकी अपेक्षा उसका अकल्याण ही अधिक साबित होता। शम्बूकके तपसे ब्राह्मण-बालककी मृत्यु—अल्पायुमें मृत्यु—प्रकृतिके उस असामञ्जस्यका फल है, जो अनधिकारीके कार्यसे उत्पन्न हुआ। जब-जब ऐसे कार्य होते हैं, जिनसे प्रकृतिमें असामञ्जस्य उत्पन्न होता है, तब-तब ऐसी घटनाएँ होना अस्वाभाविक नहीं है। मानव ऐसे कार्य करके जब अपने जीवनमें स्वयं असामञ्जस्य उत्पन्न कर लेता है, तब उसे कितनी यन्त्रणाएँ भोगनी पड़ती हैं—इसे सभी जानते हैं। रामनामकी ध्वनिमें जो शक्ति है, वह तो स्वयंसिद्ध है। काकासाहेब भी इसे मानते हैं। यदि उसके साथ आदर्श श्रीरामकी विचारणा भी काम करती रहे तो सोनेमें सुगन्धका काम देती है। भक्तोंके मनमें इस बातकी पूरी श्रद्धा है और विश्वास भी कि भक्तोंका कष्ट दूर करनेके लिये भगवान् अवतरित होते हैं और श्रीरामरूपमें भी श्रीभगवान् अवतरित हुए थे, यह ऐतिहासिक घटना है।

प्रत्येक व्यक्तिके चिन्तनका अपना ढंग होता है। काकासाहेब राष्ट्रीय प्रकृतिके व्यक्ति हैं और आज राष्ट्र जिस प्रकार जिस पद्धतिको अपनाकर उन्नत हो सकता है, काकासाहेब अपने विचारसे उसी पद्धति—उसी शैलीमें बोलते हैं। हमें उस शैलीसे कोई विरोध नहीं है, किंतु मनुष्य भिन्न-भिन्न प्रकृतियोंसे निर्मित है, ग्रहण करने और समझनेका ढंग भी इसीलिये सबका अलग-अलग है। फिर भी एक बातसे सभी सहमत हैं कि श्रीराम आदर्श पुरुष हैं और आत्म-बलिदानीके रूपमें चित्रित हैं; मानव उनके चरित्रका अनुसरण कर उन्नत हो सकता है और आन्तरिक शक्तिको जाग्रत् कर सकता है तथा सुख और शान्ति प्राप्त कर सकता है।

हमारा आचार्यजीसे विनम्र निवेदन है कि वे इन धृष्टता-पूर्ण शब्दोंका स्नेहसे निरीक्षण करें, उनपर विचार करें।

विनीत—चिम्मनलाल गोस्वामी]

श्रीसीताजीसे प्रार्थना

करु कृपा, स्वामिनी सीय मृगलोचनी !
जानि सिसु, आलु अपराध जनि चित्त दे
देखु दिखि आपनी, प्रनत-भय-भंजनी !
ब्रह्म हरि रुद्र सनकादि नारद, सकल
सिद्धि, सब सक्ति तैं अहहु तुम रंजनी।
मृदुल-चित, भक्त-हित-करनि समरथ परम,
तुम-सरिस है न कोउ जनक-नृप-नन्दिनी !
देह चम्पक-बरन, दिव्यतर आभरन,
नील पट सरिस घन, चंद्रिका सिर बनी।
कुंद सम सित रदन, भ्रूलता छबि-सदन
मंद सस्मित बदन स्फुटित, आभा घनी।
नयन अंजन अँजे, मीन-खंजन लजे,
हरिन कानन भजे, दृष्टि दाया-सनी।
अंग जलजात मकरंद छबि सरस अति,
कीन्ह बस भ्रमरवत कुँवर कोसल-धनी।
दास-जन सुखकरनि, दुःख-दूषन हरनि,
अभिलषित-दायिनी बानि तव श्रुति-भनी।
जुगल पद-कमल की भक्ति अविचल, अमल
प्रेम मोहि दीजिये सकल सुच मोचनी।

—(श्रीगंगाप्रसादजी बहुरा; 'श्रीसीताराम प्रेमप्रवाह')

योगवासिष्ठ और श्रीराम

(लेखक—श्रीआचार्य सर्वे)

महर्षि वसिष्ठ श्रीरामसे तत्त्वज्ञानकी मीमांसा करते हुए कहते हैं—जिस तरह जल अपने आपमें स्वतः बुद्बुद और तरंगादिके रूपमें स्फुरित होता है, उसी प्रकार आत्मा अपने आपमें स्वयं ही स्फुरणशील होता है। योगवासिष्ठमें अनेकानेक कथासूत्रों एवं दृष्टान्तों आदिके माध्यमसे जो कुछ कहा गया है, उसको श्रवण कर लेनेपर श्रीरामके बहिर्मनपर जो भ्रान्ति अथवा व्यामोहका एक घना कुहासा-सा छा गया था, वह नष्ट होकर आत्मस्वरूपमें संस्थितिका लाभ हुआ। उनके पिता राजा दशरथने भी गुरुदेव वसिष्ठके उक्त सर्व प्रकारसे शुद्ध एवं अनुकरणीय आख्यानपर प्रतिक्रियास्वरूप जो कहा, उसका सार है कि 'भगवन्! आपके उपदेशसे हम सभीकी आत्मा परमपदमें सुखपूर्वक प्रवेश करनेयोग्य हो गयी है।'

प्रमुख बोध यह है कि अज्ञानवश ब्रह्मका ही विश्वरूप आभासित होता है, जब कि जागतिक सत्ताका ही वस्तुतः अत्यन्ताभाव है—एकमात्र ब्रह्म ही सर्वत्र विराजमान है। इस मायाके लिये चिन्ता करना व्यर्थ है। यही बात वसिष्ठ श्रीरामको स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि जिस प्रकार जागनेपर स्वप्न विनष्ट हो जाता है, उसी प्रकार प्राणीके आत्मस्वरूपमें जागनेपर यह जगत्-जंजालरूपी स्वप्न भी विनष्ट हो जाता है।

इसपर श्रीराम पूछते हैं—'क्या कोई ऐसा महामुनि इस धरतीपर अभीतक पैदा नहीं हुआ, जो इस विशाल जागतिक स्वप्नसे जाग गया हो?'

गुरुवरने बताया—'हुआ कैसे नहीं? एक नहीं, अनेक ऋषि ऐसे हुए, जो इस स्वप्नसे जागे हैं।' श्रीराम सरल भावसे पूछ बैठे—'तो फिर यह स्वप्नरूपी जगत् नष्ट क्यों नहीं हुआ! क्यों आज भी पहाड़, नदी, वनस्पति, कीट, मनुष्य, पशु-पक्षी आदिके रूपमें यह स्वप्न दिखायी देता है?'

महर्षि मुस्कराते हुए बतलाते हैं—'इसकी प्रतीति केवल उन्हींको हो रही है, जो अभी इस महान् स्वप्नसे जागे नहीं हैं। वस्तुतः तो यह है ही नहीं। इसका पृथक् अस्तित्व ही नहीं है—उसी प्रकार, जैसे स्वर्ण और कंगनका पृथक् अस्तित्व नहीं, केवल स्वर्णमें ही कंगनकी भ्रान्ति है।'

श्रीरामका समाधान हो जाता है कि एक ही व्यक्तिका स्वप्न उस एकके जागनेपर नष्ट होता है; किंतु जो अनादि महास्वप्न सबके मन-मन्दिरमें घूम रहा है, जिसे अनादिकालसे सब देखते चले आ रहे हैं, जिसमें सब आनन्द भी ले रहे हैं, जिसमें सब सुख-दुःखकी अनुभूति भी कर रहे हैं, वह महास्वप्न केवल एक-दो महामुनियोंके जग जानेपर कैसे भङ्ग हो सकता है। हाँ, जिनके लिये यह जगत्-स्वप्न भङ्ग हो गया है, उन्हें यथार्थ आत्मस्वरूपका बोध हुआ है, उन्हें चिन्मय चैतन्य विशुद्ध शिव-संकल्पकी अनुभूति हुई है और उनके सम्पूर्ण अन्धकार, अविद्या, भ्रान्ति, ऊहापोह आदिका क्षय हो गया है; पर जब समूचा विश्व ही इस महास्वप्नसे जागे, तभी तो यह महास्वप्न भङ्ग हो।

श्रीरामकी बोधशक्ति व्यष्टि-चैतन्य और समष्टिगत चैतन्यको नियन्त्रित करनेवाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म अतीन्द्रिय लोकोंमें विकसित होती है और यह उच्चतर स्थिति ज्ञानाग्नि-द्वारा सम्पूर्ण कर्मोंके भस्म हो जानेपर उन्हें महाभागवत वसिष्ठजीकी अनुकम्पासे प्राप्त होती है—यह एक मीमांसा है, किंतु अन्तिम नहीं।

आज इस विश्वमें जो कुछ पदार्थवादी क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ चल रही हैं, वे हमारे देशको भी प्रतिक्रियान्वित करती हैं और हमारे राजनेताओंका मनोबल क्षीण हो गया है। वे प्रायः हृदयदौर्बल्यके शिकार हो गये हैं और पदार्थवादियोंकी भाषामें बोलने और सोचनेकी प्रक्रिया अपना लेनेके कारण ही (अत्यन्त खेदका विषय है कि) वे आसुरी शक्तियोंके खेमेमें प्रविष्ट हो गये हैं।

हिंस्र जन्तु यही चाहता है कि आमलोगोंकी नजरसे बचाकर किसी झाड़ीमें खींचकर शिकारको खाये, लेकिन दैवी सम्पदाके शिविरका यह भारतीय राजनेता स्वयं ही (जीते-जी) आसुरी खेमेमें घुस गया है, शामिल हो गया है। इसकी पराजय निश्चय है; क्योंकि इसने व्यामोहके कारण अपनी आध्यात्मिक प्रणालीको छोड़कर पश्चिमी चकाचौंधसे प्रभावित होकर उन्हींके-जैसा अविद्यागर्भित आचरण प्रारम्भ कर दिया है। यही तो आसुरी खेमेके लोग चाहते थे।

चाहिये यह था कि जैसा बोध योगिराज वसिष्ठ श्रीरामको प्रदान करते हैं, उसके अनुसार चिन्मय संकल्पकी परिणतिमें भागीदार बनते हुए हमलोग शान्त, संतुलित एवं सजग रहते। स्वधर्म छोड़कर परधर्म (भौतिकवाद) को अपनानेकी चेष्टा व्यर्थ होनेसे मूर्खतापूर्ण है; क्योंकि इससे शक्ति, समय, अर्थ, धर्म एवं पुण्यादिका घोरतम क्षय होता है।

आसुरी शक्तियाँ स्वतः आपसमें टकराकर विनष्ट हो जाती हैं, यही दैवी विधान है; अथवा दैवी शक्तियाँ उन्हें ध्वस्त कर डालती हैं। दिव्य शक्तियोंकी विजय एक ध्रुव सत्य है, जिसे झुठलाया नहीं जा सकता। दिव्य चैतन्यके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं, था ही नहीं, भविष्यमें होगा भी नहीं। फिर कहाँ और कैसे असत्का अस्तित्व रहेगा?

श्रीरामद्वारा संस्थापित आदर्श-राज्य उनकी मर्यादा-पुरुषोत्तमताको सिद्ध करता है; क्योंकि उनकी समूची क्रिया-प्रणालीके मूलमें चिन्मय संकल्पकी विशुद्ध अनुभूति सक्रिय थी, जिसे उन्होंने सर्वत्र समभावपूर्वक (यहाँतक कि महासती सीताके पक्षमें भी) मार्ग-प्रदान किया। चिच्छक्ति अवरोधित करनेका पूर्वाग्रहसे ग्रस्त प्रयास उन्होंने कभी नहीं किया। किसी भी प्रकारकी ममता, मोह आदि उनकी इस अपरिमेय मर्यादाको विचलित नहीं कर सकी। उनका संकल्प सुदृढ़ रहा अथवा वे दृढ़तापूर्वक चिन्मय संकल्पमें सुस्थिर रहे—यही उनके सर्वश्रेष्ठ राजनेता, राज-राजेश्वर एवं आजतक सर्वगुणसम्पन्न सर्वोत्तम मनुष्य अथवा भगवान् कहलानेका कारण बना।

योगवासिष्ठके अनुसार भगवदर्पण-भाव अपनाकर ही भारत 'स्वधर्म'में सुस्थिर रह सकता है।

नमन, हे राम! तुम्हें शतवार।

तुम्हारी कर्म-शृङ्खला, देव! हमारी संस्कृतिका शृङ्गार।
नमन, हे राम तुम्हें शतवार॥
पिताके प्रण-पालन के हेतु
त्यागकर तृणवत् राज प्रसाद,
अवध से लेते विदा सहर्ष,
न छायी आनन रेख विषाद।
विपिन तपसी बनकर तुम चले, मेटने में दिति-मण्डल-भार।
नमन, हे राम! तुम्हें शतवार॥
तुम्हें लौटानेको, हे देव!
चले तब सभय अवधके संत।
सुनी जब तुमने आर्त पुकार,
किया तब श्रमका तुमने अन्त॥
बन्धुसे चित्रकूट पर मिले, वृष्टि कर अपनी कृपा अपार।
नमन, हे राम! तुम्हें शतवार॥
विपिन विचरणमें बन्धु समेत
चरण शबरी कुटियामें दिया।
अलौकिक तुमने पाकर प्रीति,
बेर, दुरलभ गति विनिमय किया॥

अछूताको देकर पद श्रेष्ठ, कर्म-जगको दी शिक्षा सार।
नमन, हे राम! तुम्हें शतवार॥
बन्धु-भय-व्याकुल कपि सुग्रीव
'त्राहि'कर आया तेरे शरण,
भयातुर को पद दिया 'हरीश',
अकिञ्चन जनके संकट हरण।
गही जब जिसने तेरी शरण, हुई, बस, उसकी तरणी पार।
नमन, हे राम! तुम्हें शतवार॥
विभीषण व्याकुल चरण-प्रहार
शरण आया, तज राज-समाज।
कहे हैं तुमने पद 'लङ्केश',
निबाही बाँह-गहे की लाज॥
अनाथोंके तुम ही हो नाथ, न तुम-सा जगमें अन्य उदार।
नमन, हे राम! तुम्हें शतवार॥
छुड़ाये तूने जिन के कष्ट,
देव! वे दीन-अनाथ अनन्त
अहर्निश करते तेरी याद
अहल्या, विहग, निषाद, जयन्त।
'पतित-पावन' सुन तेरा नाम, पतित आया है तेरे द्वार।
नमन, हे राम! तुम्हें शतवार॥

—माधवशरण 'विशारद'

विदेशोंमें रामकथाकी कुछ झलकियाँ

(लेखक—पं० श्रीलल्लनप्रसादजी व्यास)

भारतके भगवान् रामने केवल अपने देशको ही नहीं, विश्वके सभी भागोंको प्रेरित और प्रभावित किया। इसीलिये रामकथा निस्संदेह विश्वकी सबसे अधिक सशक्त और प्रभावोत्पादक कथा बन गयी है, जिसकी शक्ति और प्रभावका अनुमान इसकी अद्वितीय लोकप्रियता और विश्वव्यापी प्रचारसे लगाया जा सकता है। भारतके संतकवियोंने रामको भगवान् और मर्यादापुरुषोत्तमके रूपमें प्रतिष्ठित किया; इसलिये जिन देशोंमें रामका यह स्वरूप गया है, वहाँ तो वे आज भी उनके आराध्यदेव माने जाते हैं। उनका यह आराध्य रूप मुख्यतः कुछ विगत शताब्दियोंमें प्रवासी भारतीयोंके माध्यमसे गया, जो मारिशस और फिजी-जैसे देशोंमें आज भी सुरक्षित है। इन देशोंके भी अतिरिक्त वह सुरक्षित है विश्वके उन अधिकांश देशोंमें, जहाँ प्रवासी भारतीय कुछ-न-कुछ मात्रामें विद्यमान हैं। रामकी उपासनाकी यह धारा हालकी शताब्दियोंकी है।

इसके विपरीत रामकथा हजार-दो-हजार वर्ष ही नहीं, शायद उससे भी पहले गयी सुदूर देशोंमें और उन्हें ले गये भारतके संस्कृति-निष्ठ व्यापारी, राजपरिवारोंके लोग तथा वे विदेशी यात्री और विद्वान्, जो ज्ञान-प्राप्तिकी अभिलाषामें समय-समयपर भारतकी यात्रापर आते थे। इस धाराके साथ जो रामकथा विदेशोंमें गयी, वह वहाँके साहित्यमें समा गयी और कालान्तरमें राममात्र एक चरित्रनायक रह गये। वाल्मीकि-रामायणरूप स्रोतसे निकली यह धारा गयी तो सभी दिशाओंमें; किंतु आज भी अपने प्रवहमाण रूपमें विद्यमान है केवल पूर्वी-एशियामें। काल-परिवर्तनके साथ-साथ इन देशोंने रामकथामें अनेक स्थानीय रंग भर लिये। ये रंग उनके बिल्कुल अपने हैं और कभी-कभी मूलरूपसे बिल्कुल भिन्न। इन स्थानीय रंगोंका प्रभाव इतना अधिक हुआ कि दक्षिण-पूर्व एशियाके कुछ देश तो यह मानने लगे कि 'राम उनके देशमें ही पैदा हुए थे और उनके जीवनकी घटनाएँ उन्हींके यहाँ घटित हुईं।' ऐसे लोक-विश्वासका आधार यह बना कि इन देशोंमें स्थानों, नदियों, पहाड़ों आदिके नाम वही पड़ गये, जो रामकथामें वर्णित हैं—जैसे अयोध्या, सरयू, गङ्गा आदि।

इन दो धाराओंके अतिरिक्त श्रीरामसम्बन्धी एक और धारा भी बही थी, जो शायद बहुत काल व्यतीत होनेपर सूख गयी। इस धाराके देश मिश्र आदि माने जा सकते हैं, जहाँके इतिहासमें रामवंश (रैमसेस) का होना उस धाराके अस्तित्वका स्मरण कराती है। इसके अतिरिक्त भी इन देशोंके साहित्यमें प्राप्त रामकथासे मिलती-जुलती कथाएँ भी कुछ-न-कुछ उस अस्तित्वका भान कराती हैं। अस्तु,

फिजी, मारिशस, गायना, ट्रिनिडाड, सूरीनाम आदि देशोंमें, जहाँ भारतके प्रवासी बड़ी संख्यामें विद्यमान हैं, वहाँ तो रामका लगभग वही स्वरूप सुरक्षित है, जो भारतमें है; किंतु महत्त्वकी बात तो है एशियाके उन देशोंमें, जहाँके लोगोंने रामको इतनी अभिन्नताके साथ स्वीकार कर लिया कि राम उनके ही अपने हो गये। इन देशोंमें रामकथापर उनकी अपनी जीवन-प्रणाली, चिन्तन और मान्यताओंका प्रभाव है। इन देशोंमें कहीं-कहींकी रामकथाको पढ़कर भारतकी उस धर्मपरायण जनताको ठेस पहुँच सकती है, जो रामको युगोंसे भगवान् या मर्यादापुरुषोत्तम मानती चली आ रही है; किंतु स्थितिको पूरी तरहसे समझनेके बाद यह तथ्य समझमें आ जायगा कि रामपर जितना अधिकार भारतको है, उससे किसी प्रकार भी कम उन देशोंका नहीं है; क्योंकि एक मुख्य तत्त्व है निष्ठाका, जो दोनों ओर समान है। एककी निष्ठा रामके प्रति भगवान्‌के रूपमें है तो दूसरेकी एक चरित्रनायकके रूपमें।

ऐसा ही एक देश है थाईलैंड, जो है तो बौद्ध देश, किंतु साथ ही रामका भक्त भी है। थाईवासियोंके रामायण-ज्ञानका अनुमान आप इसीसे लगा सकते हैं कि एक बार एक व्यक्तिने एक छोटे-से बालकसे प्रश्न किया कि 'जब सीता इतने समयतक रावणकी लङ्कामें रही, तब वह चाहते हुए भी उन्हें अपनी पत्नी क्यों नहीं बना सका?' तो उसने उत्तर दिया कि 'पतिव्रता सीताके शरीरसे एक ऐसी अग्निज्वाला निकलती थी, जिससे कि अगर रामके अतिरिक्त उन्हें कोई छूता तो वह भस्म हो जाता।' एक साधारण बालकका यह रामायण-ज्ञान यह सिद्ध करता है कि थाई-जीवनमें राम और रामायणकी लोकप्रियताकी जड़ें कितनी गहरी हैं।

थाई-रामायणका नाम है—'रामकियेन' अर्थात् रामकीर्ति। यहाँकी रामायणका कथानक मूलतः वाल्मीकीय रामायणसे ही लिया गया है और समय-समयपर अनेक रामायण यहाँ

लिखी भी जा चुकी हैं; किंतु सबसे अधिक प्रामाणिक और लोकप्रिय रामायण सन् १८०७ में नरेश राम प्रथमने लिखी। इसी नरेशकी वंश-परम्परा आज भी थाईलैंडमें चली आ रही है और आजके नरेश भूमिबल अतुलतेज भी अपने नामके साथ 'राम' लगाते हैं। थाई-रामायणका कथानक मूल भारतीय होनेके बावजूद इसे अपने देशके गुण और विशेषताओंसे युक्त बना लिया गया है, जिससे कि प्रत्येक थाईवासी यही समझता है कि राम उनके देशमें ही हुए और रामायणकी घटनाएँ उनके ही देशमें घटित हुई।

और प्रमाण भी ले लीजिये। थाईलैंडमें अयोध्या नामकी नगरी भी है। अयोध्या ही नहीं, लोपबुरी (लवपुरी) भी है। बंकाकके एक प्रसिद्ध मन्दिरकी दीवालोंमें 'रामकियेन'की घटनाएँ चित्रित हैं। यहाँके राष्ट्रीय संग्रहालयमें रामकी अनेक मूर्तियाँ देखी जा सकती हैं। भवनके बाहर भी रामकी मूर्ति है।

थाईलैंडका पड़ोसी देश है—कम्बोडिया, जिसके प्रसिद्ध अंगकोर मन्दिरोंकी दीवारोंके पत्थरोंपर रामायणके दृश्य उत्कीर्ण हैं। यहाँकी रामायण 'रामकेर' थाई-रामायण 'रामकियेन'से बहुत-कुछ मिलती है। इसी प्रकार लाओसके कुछ मन्दिरोंमें भी रामकथाके दृश्य उत्कीर्ण हैं। इन देशोंमें रामसे सम्बन्धित नृत्य-नाटक राजमहलोंसे लेकर साधारण स्थलोंपर भी खेले जाते हैं। लाओसमें दो रामायणें हैं, जिनका नाम 'फ्रालक फालाम' और 'फोम चक' है।

यह बात तो हुई बौद्ध देशोंकी। साथ ही मलेशिया और इंडोनीशिया-जैसे इस्लाम-धर्मावलम्बी देश भी राम-भक्तिमें किसीसे पीछे नहीं। मलय-रामायणका नाम है—'हिकायत सिरीरामा'। मलयदेशमें रामायणकी लोकप्रियताका पता इसीसे लगाया जा सकता है कि यहाँ सड़कोंके किनारे रोचक कार्यक्रम आयोजित करनेवाले रामायणकी घटनाओंका अभिनय करते हैं, तत्सम्बन्धी गाने गाते हैं और चर्मपटोंके माध्यमसे रामायणके पात्र बनाकर उनका अभिनय करते हैं। यह अभिनय-कला यहाँ बहुत विकसित है और जनसाधारण इसमें बहुत रुचि लेता है। मलेशियामें नौ-सेनाके एडमिरलको 'लक्ष्मण' कहते हैं, जो शूरवीरताका द्योतक है।

इंडोनीशिया तो दक्षिण-पूर्वी एशियामें राम और राम-कथाका सबसे बड़ा प्रेमी है। इंडोनीशियामें रामकथाके प्रति प्रेम देखकर यह निर्णय कर पाना कठिन हो जाता है कि राम और रामायणके प्रति निष्ठा भारतमें अधिक है या इंडोनीशियामें। फर्क सिर्फ इतना है कि भारत रामको भगवान्‌के रूपमें देखता है और इंडोनीशिया एक महापुरुषके रूपमें। यहाँकी रामायणका नाम है—'रामायण काकविन', जो सम्भवतः नवीं शताब्दीमें लिखी गयी थी। रामकथाका प्रचार बाली और जावा द्वीपोंमें विशेषरूपसे है। बाली तो हिंदू द्वीप है और वह पूर्णतः रामकथासे आप्लावित है, किंतु मुस्लिम-बहुल जावाके जोगजोकर्तामें राम-सम्बन्धी नृत्य-नाटक विश्वभरमें प्रसिद्ध हैं। जोगजोकर्ताके निकट ही स्थित परमबनम्‌के मन्दिरकी प्रस्तर-भित्तियोंपर सम्पूर्ण राम-कथा उत्कीर्ण है।

इस प्रकार इन देशोंमें राम सर्वत्र वन्दनीय हैं। धर्म, जाति, भाषा और वर्ग, उनकी श्रेष्ठताके मार्गमें नहीं आते। सभी उन्हें अपना महापुरुष या राष्ट्रीय पुरुष मानते हैं और उनसे सम्बन्धित नाट्य-नृत्य या अन्य लीला देखकर पुलकित होते हैं और राम-साहित्य पढ़-सुनकर आनन्दित होते हैं और उससे सत्प्रेरणा प्राप्त करते हैं। चाहे बौद्धदेश थाईलैंडका बौद्ध हो, चाहे मलयदेश और जावा द्वीपका मुसलमान हो और चाहे बाली द्वीपका हिंदू हो, सभीके लिये राम समान रूपसे महान् और श्रेष्ठ हैं। मैंने देखी इंडोनिशियाके जावा द्वीपमें यत्र-तत्र रामलीला होती हुई, जिसमें मुस्लिम अभिनेतागण बड़ी निष्ठा और कुशलतासे राम, लक्ष्मण, हनुमान् आदिका अभिनय कर रहे थे और हजारोंकी संख्यामें वहाँके एकमात्र मुस्लिम-निवासी बड़ी तन्मयतासे देख रहे थे। वे रामलीला और रामसम्बन्धी नृत्य-नाटकोंको अपने देशकी कला मानते हैं, रामसम्बन्धी मूर्तियों और मन्दिरोंको अपने देशकी सांस्कृतिक धरोहर मानते हैं और बड़े गौरवके साथ दूसरोंको दिखाते हैं कि यह सांस्कृतिक धरोहर हमारी अपनी है।

राम विदेशोंमें भगवान् न बन सके, उसका सबसे बड़ा कारण शायद यही है कि उक्त देशोंने राम-कथा तो ली, किंतु आदर्शोंके उस उच्चतम धरातलके साथ नहीं, जो नरको नारायण बना देता है। एशियाई देशोंने राम और उनकी अनुपम गाथाको लिया, पर अपने स्थायी रंग उनपर चढ़ा दिये—अपनी मान्यताओंके साथ उन्हें और रामायणके अन्य पात्रोंको जोड़ दिया। उल्लेखनीय बात तो यह है कि

कुछ देशोंकी रामकथाओंमें रामका सम्बन्ध ईश्वर या 'नारायण'-के साथ भी जोड़ा गया है, फिर भी राम इन देशोंमें भगवान् न बन सके। स्पष्ट है कि राम-तत्त्वको जैसा भारतने समझा और स्वीकार किया, वैसा अन्य देश नहीं कर सके। इसका कारण यह भी है कि उन्हें अपने यहाँ वाल्मीकि या तुलसी-जैसा सशक्त कवि नहीं मिल सका, यद्यपि कुछ देशोंमें व्याप्त रामकथाका स्रोत वाल्मीकिरामायण ही है।

इन अन्तर्विरोधोंके बावजूद हमें यह देखकर प्रसन्नता और गौरवकी अनुभूति होती है कि भारतके रामने ही नहीं, रामकथाने भी दिग्विजय की है—मात्र कथा-कल्पनाके आधार-पर ही नहीं, मानवकी श्रेष्ठतम जीवन-गाथाके रूपमें यह दिग्विजय आजतक बनी है; और भारतकी सांस्कृतिक धरोहर-को इन देशोंने इतनी निष्ठाके साथ सँजोया है, यह संतोषका विषय है।

अन्ताराष्ट्रीय रामायण-सम्मेलन एवं एशियामें रामकथा

(लेखक—डॉ० श्रीलोकेशचन्द्रजी, एम्० ए०, डी० लिट्०)

पिछले सितम्बर १९७१में इंडोनीशियाके शिक्षा-मन्त्रालयके संस्कृति-विभागने प्रथम अन्ताराष्ट्रीय रामायण-महोत्सव और संगोष्ठीका आयोजन किया। एशियाके सांस्कृतिक विकास और आदान-प्रदानमें इस महोत्सवका विशेष महत्त्व था। पहली बार शासकीय स्तरपर एशियाके विभिन्न देशोंसे एकत्रित विद्वानों, विचारकों, कलाकारों, शिल्पकारोंने अर्थात् संस्कृति-पुरुषोंने एशियाके सुदीर्घ ऐतिहासिक कालमें रामचरितका क्या योगदान रहा, इसने एशियाके मानवके जीवनको किस-किस रूपमें सम्पन्न और अध्यात्मप्रवण किया, किस भाँति एशियाके समाजमें यह एकताकी कड़ी बना—आदि विभिन्न विषयोंपर मनन किया। रामायण भविष्यमें एशियाकी संस्कृतिको नयी सृजनशीलता कैसे प्रदान कर सकती है, इसपर भी विचार किया गया।

साहित्यिक गरिमा और आध्यात्मिक विराट्ताके कारण रामचरितने एशियामें विशेष विकास पाया। कथावाचकोंके मनोमोहक आख्यानोंमें, सार्वजनिक प्रवचनोंमें (जैसे कि इंडोनीशियाके 'ब्रवहासाआन्'में); शास्त्रीय नृत्य-नाटकों, रङ्ग-मञ्च और छायानाटकोंमें; शिलाशिल्पोंमें, काष्ठ-तक्षणमें, पटचित्रोंमें, गद्य और पद्यकी सृजनशील कृतियोंमें; एशियाकी प्रत्येक सांस्कृतिक अभिव्यक्तिमें रामायण समायी हुई है। यह सदा सामाजिक विद्याओंकी गतिशीलता और उनसे परे समाजातीत चेतनाओंकी सरणि रही है। मर्यादाओं और लीलाओंकी पुण्य-संगमनी रामकथा एशियाके हृदयाञ्चलोंको हिलोरती हुई—इस शतीमें नये चैतन्यकी अग्रणी साधना बनने जा रही है। हम सब इंडोनीशियाके राज्य-शासन और जनताके प्रति आभारी हैं कि उन्होंने यह पुण्य उपक्रम किया। इसके लिये इंडोनीशियाके राष्ट्रपति महामहिम श्रीसुहार्तो, वहाँके शिक्षा-मन्त्री, संस्कृति-अध्यक्ष डॉ० इडा बागुस मन्त्र और पूर्वी जावाके राज्यपाल श्रीमोहम्मद नूर, जिन्होंने रामायण-महोत्सवको पूर्णतया सफल बनानेके लिये नयी सड़कें, नया रङ्गमञ्च और श्रोतृमण्डप, नये भोजावास बनवाये—इन सबको हमारा पुनः-पुनः अभिनन्दन।

सन् २५१में ही रामायणका चीनी भाषामें काङ्सङ्हुईने अनुवाद किया। यह भारतसे बाहरकी भाषामें प्रथम रूपान्तर होनेके कारण महत्त्वपूर्ण है। सन् ४७२में चीनी भाषामें एक दूसरा अनुवाद हुआ, जो केकयने लुप्त संस्कृत-कृति 'दशरथ-निदान'से किया था। इस प्रकार चीनमें यह परम्परा सतत बनी रही। १६वीं शतीमें चीनी उपन्यास-परम्परामें 'वानर' नामसे सुविख्यात उपन्यास लिखा गया, जिसमें हनुमान्जी-द्वारा सीताजीकी खोजका स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। हनुमान्जीका चरित्र चीनकी लोककथाओंमें सुव्याप्त रहा और इसने लोक-संस्कृतिको वरेण्यता दी और चीनी ऐहिक साहित्यमें हनुमान्जीके विश्वभ्रमणकी अमिट छाप पड़ी।

छठी शताब्दीमें सिंहली नरेश एवं कवि कुमारदासने जानकीहरण-काव्यकी रचना की। कुमारदास सिंहलके राजा कुमारधातुसेन थे, जिनका राज्यकाल ५१७—५२६ सन् है। यह लङ्कामें रचित प्राचीनतम ज्ञात संस्कृत-ग्रन्थ है। १२वीं शतीमें एक अज्ञातनामा लेखकने स्थानीय सिंहली भाषामें इसका शब्दानुवाद किया। सिंहली भाषाकी अनेक रचनाओंमें इसकी साहित्यिक महिमाका उल्लेख है। हमारी वर्तमान शतीमें रामायणका सिंहली अनुवाद सी० डॉन बैस्टियनने किया, जिसका आधुनिक सिंहली उपन्यास-साहित्यपर गहरा और स्थायी प्रभाव पड़ा। आधुनिक सिंहली नाटक-लेखक जॉन डी० सिल्वाने रामायणका रूपान्तर करके श्रीलङ्कामें

रामायणको सुव्याप्त कर दिया है। रामायणके आदर्श श्रीलङ्काकी धरोहर बन गये हैं और सीताजीके शुचिगुण वर्तमान इंडोनीशियाकी भाँति श्रीलङ्काके भी सामाजिक आदर्श हैं। जावा, बाली आदि द्वीपोंमें सीताजीकी अग्नि-परीक्षा-कालीन अम्लान और स्नेहाप्लावित मुखमुद्रा नारीका उच्चतम प्रकटीकरण है। वह उनके उदात्त 'दैवी' गुणोंकी परम अभिव्यक्ति है। चाहे चित्रलेखन हो, मूर्तिकल्पन हो, अभिनय-भङ्गिमा हो, चाहे पाषाण-तक्षण हो, प्रत्येक माध्यममें इंडोनीशियाई साधकने सीताजीकी मुखमुद्राके निरूपणमें अपना कौशल दिखानेका स्वप्न सँजोया है।

सातवीं शतीमें, कम्बुज (Combodia) देशमें सर्वत्र रामायणके उद्धरण पाये जाते हैं, जिनसे पता चलता है कि रामकथा कम्बुज-जीवनका अभिन्न प्रतीक बन चुकी थी। विशाल स्मारकोंमें तक्षित रामायणके शिल्प कम्बुजकी ऐतिहासिक घटनाओंके महत्त्वको सप्राण करते थे। कम्बुजवासियोंके लिये रामायणके नाम अथवा उपाख्यानका उल्लेख-मात्र वर्तमानकी सार्थकताको सिद्ध कर देता, किसी सामाजिक समाधानकी सान्वयताको अधिकृत करता। बायोन मन्दिरकी बाह्यभित्तियोंपर महाराजा जयवर्मन् सप्तमकी चाम-जातिपर दनदनाती विजय उकेरी हुई है। यह रामायणपर आधारित है—यह दिखानेके लिये कि कम्बुजके महाराजा जयवर्मन् रामके अवतार हैं, जो रावणरूपी चाम नरेशको पराजित करनेके लिये अवतीर्ण हुए थे। सप्तम जयवर्मन्के उपरान्त रामायण कम्बुज-जीवनका अभिन्न अङ्ग बन गयी—अभिनय होने लगे, भित्तिचित्रोंके रूपमें आलेखन होने लगा, कथावाचकोंने गाँव-गाँव घूमकर उसका प्रचार किया और राजभवनोंके अभिनय इसके 'सत्यं शिवं'से झंकृत हो उठे। यह कम्बुजदेशके मानसकी भव्यतम लीला बन उठी। यहाँपर यह उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण है कि आंकोरके विशाल वैष्णव-मन्दिरमें उत्कीर्ण रामायण जावाके कवि योगीश्वरविरचित 'रामायण काकाविन्'के अधिक समीप है। दक्षिण-पूर्व एशियामें रामायणको प्रसारित करनेमें इंडोनीशियाका विशेष योगदान रहा है। यह ऐतिहासिक नियति है कि इंडोनीशियाने रामायणको अन्ताराष्ट्रीय महत्त्व प्रदान करनेका फिरसे उपक्रम किया है। इस महोत्सव और संगोष्ठीके लक्ष्योंकी चर्चा करते हुए पूर्वी जावाके राज्यपाल महामहिम श्रीमोहम्मद नूरने कहा है कि 'यह सहयोग, सद्भाव और शान्ति स्थापित करेगी—पारस्परिक सद्भावना एवं मैत्रीके लिये अनुकूल भूमिका सम्पन्न करेगी।'

नवीं शतीमें रामायण इंडोनीशियाके भव्य शिवालय 'चंडी लेरो जोङ्ग्राङ्' अथवा 'चंडी प्राम्बानान्'में उत्कीर्ण की गयी। यह योगीश्वरकवि-विरचित 'रामायण काकाविन्'से कुछ-कुछ भिन्न है, जिससे यह सिद्ध होता है कि नवीं शतीतक इंडोनीशियामें रामायणकी अनेक शाखाएँ थीं। सन् १३७९के पानातारान् मन्दिरमें भी रामायण बाह्यभित्तियोंपर उत्कीर्ण है—इसकी कला स्थानीय वायाङ् शैलीकी है। इसमें पूरी रामायण चित्रित नहीं है, अपितु वे अंश ही, जिनमें हनुमान्जीका महत्त्व है, विशेषतः वानरयुद्धका विस्तृत निरूपण है। इससे पता चलता है कि इंडोनीशियामें चौदहवीं शतीमें रामायणके कुछ दृश्य अतिलोकप्रिय हो चुके थे और इसीलिये रामलीलाओंमें उनके अभिनयका प्राधान्य था, जैसा कि वर्तमान इंडोनीशियामें।

नवीं शतीके अन्तमें मध्य एशियासे भी पूर्वी ईरानी भाषा खोतनीमें रामायणका सार मिला है। इससे पता चलता है कि ईरानी जातियोंमें भी रामचरितका प्रचलन था।

१८वीं शतीसे दक्षिण-पूर्वी एशियाके देशोंकी अभिनय-कलाओंमें रामायणका प्रमुख स्थान बन गया। रामायण 'शिवं'के साथ-साथ 'सुन्दरं'का भी विकिरण करने लगी। लावदेशमें वहाँके राजा फ्रा चाओ अनुरुत् (अनिरुद्ध)ने पुराने मन्दिर 'वाट् सि फुम्'के ऊपर नया मन्दिर 'वाट् माई' बनवाया। इसमें रामायणकी कथाका चित्राङ्कन भी करवाया। इसी कालके लगभग 'वाट् फ्रा केओ' नामक मन्दिरका निर्माण हुआ। लावदेशमें पहली बार सम्पूर्ण रामायण इस मन्दिरमें चित्रित की गयी। आज भी लाव-अभिनयमें रामायणका प्राधान्य है। लावदेशकी राजधानी व्येन्त्यान्में 'नाट्यशाला' है, जहाँ रामायणके संगीत और नृत्यकी नियमित शिक्षा होती है। 'जब नरेश सावाङ्वात्थानाकी पुत्री राजकुमारी दारा (तारा) का विवाह सम्पन्न हुआ, तब ल्वाङ् प्राबाङ्के राजदरबारमें रामायणका पूर्ण राजकीय वैभवमें अभिनय हुआ था।' (श्रीमती कमला रत्नम्, भारतके लावदेश-स्थित राजदूत श्रीपेरल रत्नम्की धर्मपत्नी) लावदेशके वर्तमान नरेश अपनी भाषामें नयी रामायणकी रचना कर रहे हैं। 'वाट् फ्रा केओ' मन्दिरमें लाव भाषाकी रामायणकी पूर्ण पोथी है, जो ८०० ताड़पत्रोंपर लिखी हुई है। इसकी दूसरी प्रति 'वाट् सिसाकेत्' मन्दिरमें सुरक्षित है। लावदेशमें रामायणके दो रूप हैं—पहला 'फा लाक् फा लाम्' (प्रिय लक्ष्मण, प्रिय राम) और दूसरा 'फोम्माचाक्' (ब्रह्मचक्र)। यद्यपि लाव-संस्कृति और जीवनमें इनका

विशिष्ट महत्त्व है, तथापि अभीतक ये दोनों अप्रकाशित हैं। लावके रामायण-अभिनयका चलच्चित्रण भी नहीं किया गया। स्व० आचार्य रघुवीरजीने १९६०में दोनोंके हिंदी संक्षेप प्रकाशित किये थे।

थाईदेशमें रामायणका रूपान्तर 'रामक्येन' (अर्थात् रामकीर्ति) के नामसे प्रख्यात है। यह 'खोन्' अर्थात् मुखौटा-नृत्यमें, नाङ् अर्थात् छायानाटकमें, मनुष्य-अभिनयमें और काव्योंके रूपमें उपलब्ध है। काव्य थाई नरेशोंने स्वयं रचे हैं; क्योंकि वे इस धरापर रामके प्रतिनिधि हैं, जिसके उपलक्ष्में राज्याभिषेकके समय उन्हें 'राम'की उपाधिसे शोभित किया जाता है। वर्तमान थाई-नरेश अपने राजवंशमें नवें (९) होनेके कारण 'राम नवम' हैं। थाई-नरेश राम प्रथमका काव्य पूर्णतम है, परंतु राम द्वितीयका काव्य मञ्चपर अभिनय-की दृष्टिसे अधिक उपयोगी है। आज भी थाई देशमें राज्य-शासनकी ओरसे रामायणका अभिनय होता रहता है। इसकी शिक्षा देनेका दायित्व सिल्पाकोन् (शुद्ध संस्कृत-शिल्पकरण) पर, अर्थात् शिक्षा-मन्त्रालयके 'ललित कला (शिल्प) विभाग'-पर है। 'शिल्पाकोन्' रामलीलामें राम प्रथम और राम द्वितीय—दोनोंके काव्योंका प्रयोग करता है, परंतु उसमें यथोचित परिवर्तन कर लेता है। राम षष्ठका काव्य और भी अधिक पढ़ा जाता है और अभिनीत होता है। इसमें नरेशने वाल्मीकि-रामायणसे भी अपनी परम्पराको संवर्धित किया। राजमहिम राजपुत्र धानिनिवात्-जैसे थाई विद्वानोंका मत है कि उनकी रामक्येन्-परम्परा इंडोनीशियाके श्रीविजय-साम्राज्यसे उद्भूत है। 'नाङ्' अर्थात् छायानाटक भी थाईदेशमें इंडोनीशियासे मलय-प्रायद्वीप होता हुआ पहुँचा। नरेश वोरोमात्रैलोकनाथ-द्वारा सन् १४५८में प्रसारित राजनियममें नाङ्का—चर्म-पुत्तलिकाओंसे छायानाटकके अभिनयका उल्लेख मिलता है।

मलेशियामें सन् १४००-१५००के बीच 'हिकायत श्रीराम' की रचना हुई। तबसे यह रामायणकी छायालीलाओंका आधार रहा है। छायानाटकके दो रूप हैं—'वायङ् स्याम' और 'वायाङ् जावा'। देशोंके नामोंसे अभिहित होनेपर भी इन दोनोंमें स्पष्ट विशेषताएँ हैं, जो इनको विशिष्ट विभिन्न मलय-स्वरूप प्रदान करती हैं। इनका इंडोनीशियाकी कलासे साम्य है और इंडोनीशियाई पारिभाषिक शब्द भी इनमें प्रयोग किये जाते हैं—पाँगुङ्, वायाङ्, दालाङ् आदि। मलेशियामें रामायणके विभिन्न स्थानीय रूपान्तर हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि यह वहाँकी लोकपरम्परामें अभिन्नरूपसे रमकर लोकप्रिय हो चुकी थी। मलेशियामें आज भी सूत्रधार, जो 'दालाङ्' कहलाता है, एक वर्षमें २००-३०० बार अभिनय करता है। यह मनोरञ्जनमात्र नहीं है, अपितु इसका धार्मिक महत्त्व भी है। यह इस बातसे स्पष्ट है कि छायानाटकका प्रारम्भ करनेसे पहले पूजा की जाती है और सुख-साम्मनस्य एवं कल्याण-मङ्गलके लिये देवताओंका आह्वान किया जाता है। डॉ० अमीन स्वीनीने, जिन्होंने मलेशियाकी रामायणपर शोधप्रबन्ध लिखकर लंडन विश्व-विद्यालयसे पी-एच्०डी०की उपाधि प्राप्त की है, लेखकसे कहा—'रामायणका छायानाटक मलेशियाके निवासीके लिये एक प्रेरणा है, 'आङिन्' है, अर्थात् प्राणवान् चैतन्य है, जिसमें प्रदर्शक और उसका दर्शक-श्रोता वाद्यवृन्दोंकी स्वरलहरीमें ओतप्रोत होकर रामायणके पात्रविशेषसे अपना तादात्म्य स्थापित करता है और अलौकिक अनुभूति करता है। वह कभी-कभी परा अनुभूतिमें विलीन हो समाधिस्थ हो जाता है।'

बर्मामें भी रामायणका प्रसार शताब्दियोंसे रहा है। बर्मा-नरेश क्यान्ज़ित्था (सन् १०८४—१११२) का रामायणसे विशेष अनुराग था और उन्होंने अपनेको 'रामका वंशज' कहा है। बर्मामें रामायणका आधुनिक अभिनय सन् १७६८ में प्रारम्भ हुआ। इस वर्ष बर्माने थाईदेशपर विजय पायी और साथमें यामाप्वे (यामा राम) अर्थात् रामलीला भी। पहले राम-लीलाका अभिनय २१ रात चलता था, परंतु आजकल यह केवल १२ रात ही होता है।

राम-कथाका प्रचार उत्तरके दूरतम प्रदेश साइबेरियातक हुआ। यहाँ रामायण तिब्बत होती हुई पहुँची। तुन्ह्वाङ्की गुफाओंसे क्रमशः ७वीं एवं ९वीं शतीकी दो तिब्बती पाण्डुलिपियाँ मिली हैं, जिनमें रामायणकी दो शाखाएँ हैं। १५वीं शतीमें शाङ्शुङ्पा छोवाङ्ड्राक्याइपाल्ने तिब्बती भाषामें छन्दोबद्ध रामायण लिखी। काव्यादर्श और सुभाषित रत्ननिधिकी तिब्बती टीकाओंमें भी रामायण उपलब्ध है। तिब्बतसे रामचरित मोंगोलदेश पहुँचा और वहाँसे हिमाच्छादित साइबेरियामें। मोंगोलदेशसे पश्चिमकी ओर बढ़ते हुए मोंगोल-समुदायोंके साथ-साथ रामायण रूसवर्ती वोल्गा नदीके तटपर फैली, जहाँ आजतक हाल्मिग गणराज्य है। हाल्मिग जातिमें लोककथाके रूपमें यह फैलती गयी। हाल्मिग भाषाकी रामायणकी एक हस्तलिपि सी० एफ० गोल्स्टुन्स्की नामक

विद्वान्के पत्रोंमें सुरक्षित है। ये पत्र सोवियत-संघके विज्ञान-विहारकी साइबेरिया शाखा, उलानुदे नगरमें सुरक्षित हैं। उलान्बातर्के विद्वान् प्रो० दाम्दिन् सुरेनु आजकल मास्को और लेनिनग्राद विश्वविद्यालयोंमें रामायणके मंगोलभाषीय साहित्य और लोकरूपोंका इतिहास लिख रहे हैं।

काममोहित क्रौंच-दम्पतिके वधपर शोकाहत और विह्वल वाल्मीकिकी गिरासे श्लोक-निर्झर निकलकर आदिकाव्य रामायणमें परिणत हो उठा और वह एशियाके उत्तरतम हिमाच्छादित साइबेरियासे लेकर इण्डोनीशियाकी सस्य-श्यामला भूमितक मानवकी अन्तर्गीति बन उसकी अन्तरात्माको आनन्दलहरीसे आप्लावित करता है।

इस राम-ध्वनिको और राम-लीलाको फिरसे झंकृत करनेके लिये इंडोनीशियाने रामायण-महोत्सवका आयोजन किया। उसके धातुमय और काष्ठमय वाद्योंके गुञ्जित स्वरोंमें उनके 'रामायण काकाविन्'की स्वरकम्पना सुनायी दी, जो इंडोनीशियाके कविवर योगीश्वरने ९ वीं शतीमें रची थी कि उससे परार्थ सिद्ध हो और भुवनमें सुख हो—**'परार्थ गुमवे सुखनिकं भुवन'** (योगीश्वरके शब्दोंमें)। योगीश्वरकी आत्मा इंडोनीशियामें जाग उठी—विश्वको जगानेके लिये। धूमिल ज्योतिमें, वेषोंकी चकमकमें, मुकुटोंकी त्रिविधतामें, ओजस्वी कुमारोंकी वानर-क्रीडाओंमें, मुद्राओंकी मञ्जुल सुकुमारतामें, हृदयगामी स्वरलहरीमें विलीन विश्वने रामचरितके 'सत्यं शिवं सुन्दरम्'का साक्षात्कार इंडोनीशियामें किया। वाल्मीकि और तुलसीकी भूमि सन् १९७४ में होनेवाले विश्व-रामायण-महोत्सवकी बाट जोहती है।

फ्रेंच भाषामें श्रीरामचरित

(लेखक—श्रीवा० विष्णुदयाल, मारिशस)

विगत शतीके पूर्वार्द्धमें फ्रांसने संस्कृत भाषाको खूब अपनाया। वहाँके कई संस्कृतज्ञ महाभारत, रामायण आदि ग्रन्थोंका अनुवाद करने लगे। इपोलित फोशने वाल्मीकीय रामायणको फ्रेंचका जामा पहनाया। तत्कालीन लेखक एवं इतिहासकार मिशलेने इसे आद्योपान्त पढ़कर कहा, 'सन् १८६३ मेरे लिये अविस्मरणीय रहेगा; क्योंकि उसी साल मैंने रामायण पढ़ी। वह ग्रन्थ क्या है, क्षीरसागर है।'

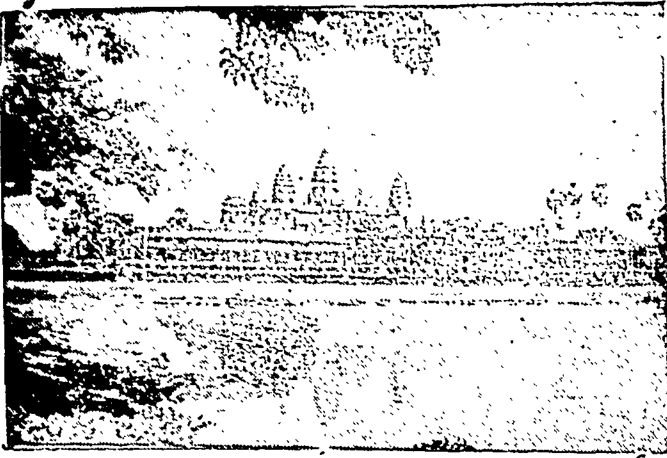
मारिशसमें भी फ्रेंच रामायणके पहुँचते ही इसी प्रकारकी प्रतिक्रिया हुई। यहाँके एक युवा कविने माता सीतापर एक सुन्दर कविता रची, जिसे क्या १९वीं शताब्दीमें, क्या वर्तमान शतीमें, अनेक ग्रन्थोंमें उद्धृत किया गया है।

यही नहीं, यहाँपर जो मारीचसम्बन्धी लोककथा प्रचलित है, उसका फ्रेंच अनुवाद फ्रांसकी एक त्रैमासिक पत्रिकामें सन् १९६९में छपा था।

फ्रांसीसियोंका ध्यान गोस्वामी तुलसीदासके रामचरितमानस-पर भी गया। अपने 'हिन्दी और हिन्दुस्तानी-साहित्यका इतिहास'में गार्सें-द-तासीने मानसके सुन्दरकाण्डको सन् १८४७ में सम्मिलित किया और कुमारी शारलोत वोदविलने मानसके ही अयोध्याकाण्डका अनुवाद सन् १९५०में किया।

सन् १९०३में आ० रूसेलने वाल्मीकीय रामायणका नये सिरेसे अनुवाद किया। उक्त कुमारीने सन् १९५५में 'तुलसीदासकी रामायणके स्रोत और उसकी रचना—एक अध्ययन'* नामका ग्रन्थ रचा। यह निबन्ध बृहदाकार है और इसमें ३३७ पृष्ठ पाये जाते हैं। इसकी विशेषताओंमेंसे एक यह है कि इसने रामायणके विषयमें जितने भी फ्रेंच, अंग्रेजी तथा इटालियन भाषाओंमें लेख तथा ग्रन्थ आजतक लिखे गये हैं, उन सबका विवरण दिया है। साथ-साथ उन्होंने सातों काण्डोंका सार दे दिया। उक्त फ्रेंच लोग कुमारीकी दोनों कृतियोंमेंसे किसीको भी पढ़ते वक्त भूल जाते हैं कि उनके सामने मूलरूप नहीं, भाषान्तर है।

विदेशोंमें श्रीराम-दर्शन (१)



कम्बोडियाका मन्दिर, जिसकी दीवालोंपर रामलीलाएँ अङ्कित हैं



बैंकाक राष्ट्रीय संग्रहालयके बाहर श्रीरामकी प्रस्तर-मूर्ति



वियतनामका वह भवन, जहाँ लावारामायणकी हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है



थाईलैंडकी अयोध्यामें रामपार्क



बैंकाकके बुद्ध-मंदिरकी दीवालोंपर सुरसाके मुखमें हनुमान्

[पृष्ठ ५६८

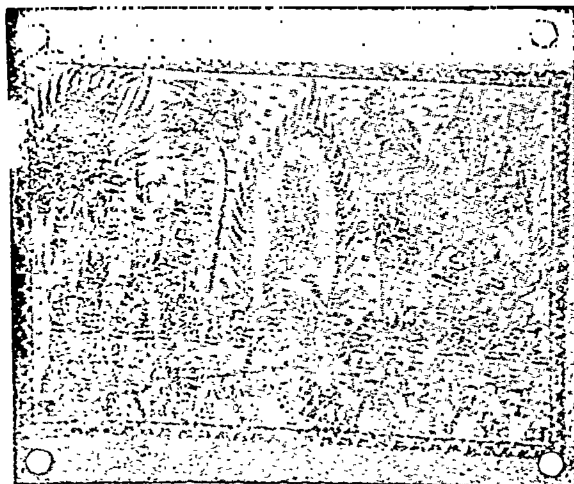
विदेशोंमें श्रीराम-दर्शन (२)



वालि-सुग्रीव-युद्ध पट्टचित्र (थाईलड)



सुवर्णमृग-वध-तत्पर श्रीराम (जावाद्वीप)



सीताजीकी अग्निपरीक्षाका पट्टचित्र (वालिद्वीप)



हनुमान्‌जी (कम्बोडिया)

भारतीय भाषाओंके कुछ प्रमुख श्रीराम-कथाकार

(लेखक—श्रीरामलाल)

भगवान् श्रीराम अनन्त हैं, उनके गुण भी अनन्त हैं और उनकी कथाओंका विस्तार भी असीम है—

'राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार ।'

(मानस १ । ३३)

सरस्वती, शेष, शिव, ब्रह्मा, वेद—ये सब पार न पाकर 'नेति-नेति'—'ऐसा नहीं', 'ऐसा नहीं' कहते हुए भगवान् श्रीरामका गुणगान किया करते हैं। यद्यपि प्रभु श्रीरामचन्द्रकी प्रभुताको सब अकथनीय ही मानते हैं, तथापि भक्त कवियोंने उसका वर्णन किया है। इसमें उनका उद्देश्य यही रहा है कि भगवान्‌की महिमाका पूरा वर्णन जब सम्भव नहीं है, तब जितना हो सके उतना ही कल्याणकारी है और उसको अपनी वाणीका विषय बनाकर जीवनको सफल बनाया जाय। अतएव भक्तकवियोंने—जिससे जितना बन पड़ा है, उतना उसका गान अवश्य किया है। नीचे हम ऐसे ही महाभाग्यशाली कुछ भक्त कवियोंका पावन स्मरण करते हैं, जिन्होंने भगवान् श्रीरामके स्वरूप, महिमा, प्रभाव, गुण, चरित आदिका वर्णन कर अपनी वाणीको सार्थक किया है तथा जगत्‌के जीवोंको भवसागरसे पार होनेका सहज साधन प्रदान किया है—

'जग मंगल गुनग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के ॥'

(मानस १ । ३१ । १)

(१)

आदिकवि वाल्मीकि

काव्य-चिन्तन सार्वभौम, सनातन, अनादि और अनन्त साहित्य-तत्त्व है। अरुणोदयका पहला स्थान महर्षि वाल्मीकिका मानस लोक है। ब्रह्मज्ञानी महर्षिके कण्ठदेशसे काव्यका दिव्य आलोकमय कल्पवृक्ष रामायणके रूपमें अपने पूर्ण स्वरूपमें प्रकट हो गया। भगवान् रामने रावणका नाश कर रघुवंशकी महिमाका विस्तार किया। भृगुवंशीय वाल्मीकिने उन्हींके यशका काव्यरूपमें वर्णन किया—

रावणान्तकरो राजा रघूणां वंशवर्द्धनः ।
वाल्मीकिस्तस्य चरितं चक्रे भार्गवसत्तमः ॥

(मत्स्यपुराण १२ । ५०)

महर्षि वाल्मीकिरचित रामायण निस्संदेह आदिकाव्य है। यह सम्पूर्ण वेदोंकी सम्मतिके अनुकूल है। इसके द्वारा समस्त पापोंका निवारण हो जाता है। यह पुण्यमय काव्य सम्पूर्ण दुःखोंका विनाशक तथा समस्त पुण्यों और यज्ञोंका फल देनेवाला है—

रामायणमादिकाव्यं सर्ववेदार्थसम्मतम् ।
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदुःखनिबर्हणम् ॥
समस्तपुण्यफलदं सर्वयज्ञफलप्रदम् ॥

(स्कन्दपु०, उत्तर०, रामा० माहात्म्य ५ । ६१-६२)

महर्षि वाल्मीकिने स्वरचित रामायणके चौबीस हजार श्लोकोंके पाँच सौ सर्गोंसे युक्त सात काण्डोंमें रघुवरचरितका वर्णन किया। इस आदिकाव्यमें वर्णित रामचरित्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है—

'चतुर्वर्गप्रदं नित्यं चरितं राघवस्य तु ।'

(वाल्मीकि०, उत्तर० १११ । २३)

महर्षि वाल्मीकिने स्वरचित रामायणमें भगवान् विष्णुके रामरूपमें प्राकट्यका विस्तार कर उनकी सम्पूर्ण भगवत्ता—महत्ताका चित्रण किया है। विश्वामित्रने दशरथजीसे रामकी भगवत्ताके बखानमें कहा कि सत्यपराक्रमी राम क्या हैं—यह मैं जानता हूँ, वसिष्ठजी तथा अन्य तपस्वी जानते हैं—

अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् ॥
वसिष्ठोऽपि महातेजा ये चेमे तपसि स्थिताः ।

(वाल्मीकि०, बाल० १९ । १४-१५)

हनुमान्‌जीने रावणको लङ्कामें समझाया कि श्रीराम तीनों लोकोंके स्वामी हैं। देवता, दैत्य, विद्याधर, गन्धर्व, नाग तथा यक्ष आदि मिलकर भी युद्धमें उनके सामने नहीं ठहर सकते। चार मुखवाले स्वयम्भू ब्रह्मा, तीन नेत्रवाले त्रिपुरनाशक रुद्र और देवताओंके स्वामी इन्द्र समराङ्गणमें उनका सामना नहीं कर सकते। वाल्मीकिजीने हनुमान्‌जीसे भगवान् रामके सम्बन्धमें कहलाया—

सर्वाल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् सचराचरान् ।
पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः ॥

(वाल्मीकि०, सुन्दर० ५१ । ३९)

'महायशस्वी श्रीरामचन्द्र चराचर प्राणियोंसहित सारे लोकोंका संहार करके फिर उनका नये सिरेसे निर्माण करनेकी शक्ति रखते हैं।'

श्रीरामकी भगवत्ताका कितना समीचीन प्रतिपादन किया है महर्षि वाल्मीकिने। भगवान् रामके स्वरूपनिरूपण और तात्त्विक चिन्तनकी भूमिपर श्रीवाल्मीकिने ब्रह्माजीकी विज्ञप्ति प्रस्तुत की है—'हे राम! वेद आपके संस्कार हैं। आपके बिना इस जगत्का अस्तित्व ही नहीं है। सारा विश्व आपका शरीर है, पृथ्वी आपकी स्थिरता है।'

संस्कारास्त्वभवन् वेदा नैतदस्ति त्वया विना।
जगत् सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम्॥
(वाल्मीकि०, युद्ध० ११७। २५)

महर्षि वाल्मीकिका कथन है कि राम साक्षात् सनातन विष्णु हैं। परम प्रचण्ड रावणके वधकी अभिलाषा रखनेवाले देवताओंकी प्रार्थनापर वे मनुष्यलोकमें अवतरित हुए हैं—

स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।
अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः॥
(वाल्मीकि०, अयो० १। ७)

वाल्मीकिजीने श्रीरामकी अभिन्ना शक्ति भगवती सीताकी महत्ता हनुमान्जीके द्वारा व्यक्त करायी है। हनुमान्जीने रावणसे कहा—

यां सीतेत्यभिजानासि येयं तिष्ठति ते गृहे।
कालरात्रीति तां विद्धि सर्वलङ्काविनाशिनीम्॥
(वाल्मीकि०, सुन्दर० ५१। ३४)

'जिनको तुम सीताके नामसे जानते हो और जो इस समय तुम्हारे अन्तःपुरमें हैं, उन्हें सम्पूर्ण लङ्काको नष्ट कर देनेवाली कालरात्रि ही समझो।'

महर्षि वाल्मीकिने अपने रामायणकाव्यमें आदर्श राज्य—रामराज्यकी झाँकी चित्रित की है। 'रामके राज्यमें लोग धर्मपरायण थे। उनके शासनकालमें प्रजावर्गके भीतर केवल राम-रामकी ही चर्चा होती थी। सारा जगत् श्रीराममय हो रहा था।'

रामो रामो राम इति प्रजानामभवन् कथाः।
रामभूतं जगदभूद् रामे राज्यं प्रशासति॥
(वाल्मीकि०, युद्ध० १२८। १०२)

महर्षि वाल्मीकिकी काव्यभारती धन्य है। उनके रामायणकाव्यका गान भारतीय ही नहीं, विश्व-वाङ्मयका अमिट सौभाग्य है।

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले॥
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।
(वही, १। २। ३६-३७)

ब्रह्माजीने वाल्मीकिको आशीर्वाद दिया था कि 'इस पृथ्वीपर जबतक नदी और पहाड़ रहेंगे, तबतक संसारमें रामायणका प्रचार होता रहेगा।'

(२)
महर्षि व्यास

महर्षि व्यास भगवल्लीला-चिन्तनके अप्रतिम तथा परम मर्मज्ञ आचार्य थे। उन्होंने अपने ब्रह्मज्ञानके मन्दराचलसे अध्यात्म-सागरका मन्थन कर भगवद्रसामृतकी प्राप्ति ही नहीं की, असंख्य प्राणियोंमें उसका निष्पक्ष-निःस्वार्थ वितरण भी किया। व्यासदेवके चरणदेशमें परम भागवत शुकदेवजीने जो श्रद्धाञ्जलि समर्पित की है, उससे उनके गौरवका पता चलता है। शुकदेवजीकी विज्ञप्ति है—

नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय वेधसे।
पपुर्ज्ञानमयं सौम्या यन्मुखाम्बुरुहासवम्॥
(श्रीमद्भागवत २। ४। २४)

'संत-महात्मा जिनके मुख-कमलसे मकरन्दके समान झरती हुई ज्ञानमयी सुधाका पान करते रहते हैं, उन परम तेजस्वी भगवान् व्यासके चरणोंमें नमस्कार है'—श्रीशुकदेवजीकी उनके प्रति यह नमस्कारपूर्विका उक्ति उनकी अमिट भागवती कीर्तिका प्रतीक है।

महर्षि व्यासका प्राकट्य सत्यवती नामकी वसुकन्यासे यमुनामध्यवर्ती एक द्वीपमें हुआ था। उनका वर्ण कृष्ण था और वे द्वीपमें उत्पन्न हुए थे, इसलिये उनका नाम 'कृष्णद्वैपायन' प्रसिद्ध हो गया। वे महर्षि पराशरके पुत्र थे। उन्होंने वेदोंका विभाग किया, पुराणों और महाभारतकी रचना की। ब्रह्मसूत्र उनकी ही देन है।

महर्षि व्यासरचित प्रायः सभी पुराणोंमें भगवान् रामकी लीला और महत्ताका चिन्तन कहीं संक्षिप्त और कहीं विशदरूपमें उपलब्ध होता है। महाभारतके वनपर्वमें भी भगवान् रामका चरित संक्षिप्तरूपमें उनके द्वारा वर्णित है। महर्षि वाल्मीकिके बाद भगवान् रामके कथाकार-

रूपमें महर्षि व्यासदेवको ही सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। अग्निपुराणमें पाँचवेंसे ग्यारहवें अध्यायमें श्रीरामावतारके वर्णनके प्रसङ्गमें उन्होंने सात काण्डोंमें वर्णित श्रीरामायणकी कथाका संक्षिप्त रूप निरूपित किया है। कूर्मपुराणके पूर्वार्धके इक्कीसवें अध्यायमें परम धर्मज्ञ तथा लोकविश्रुत विष्णुस्वरूप भगवान् रामके चरितका बड़ा ही युक्तियुक्त वर्णन किया है महर्षि व्यासने। पद्मपुराण तथा स्कन्दपुराण आदिमें भी रामसम्बन्धी साहित्य उपलब्ध होता है।

श्रीमद्भागवतपुराणके नवें स्कन्धके १०वें और ग्यारहवें अध्यायोंमें उन्होंने अत्यन्त प्रेरणाप्रद रूपमें भगवान् रामके पवित्र चरित्र और यशका चिन्तन किया है। व्यासदेवने शुकदेवजीद्वारा राजा परीक्षित्के प्रति कहलवाया है—

तस्यापि भगवानेष साक्षाद् ब्रह्ममयो हरिः।
अंशांशेन चतुर्धागात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः॥
रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया॥

(श्रीमद्भा० ९। १०। २)

'देवताओंकी प्रार्थनासे साक्षात् परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीहरि ही अपने अंशांशसे चार रूप धारण करके राजा दशरथके पुत्र हुए। उनके नाम थे—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न।' श्रीरामकी भगवत्ताके बखानमें महर्षि व्यास-कृत भागवतपुराणमें श्रीशुकदेवजीकी संस्तुति है—

नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्ञयाऽऽत्त-
लीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः।
रक्षोवधो जलधिबन्धनमस्त्रपूगैः
किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः॥
यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि
गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम्।
तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्ट-
पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये॥

(श्रीमद्भा० ९। ११। २०-२१)

'भगवान् रामके समान कोई नहीं है, फिर उनसे बढ़कर तो हो ही कैसे सकता है। उन्होंने देवताओंकी प्रार्थनासे ही यह लीलाविग्रह धारण किया था। ऐसी स्थितिमें रघुवंश-शिरोमणि भगवान् रामके लिये यह कोई बड़े गौरवकी बात नहीं है कि उन्होंने अस्त्र-शस्त्रोंसे राक्षसोंका वध कर डाला अथवा समुद्रपर पुल बाँध दिया। शत्रुओंका अन्त करनेके लिये उन्हें बंदरोंकी सहायताकी अपेक्षा थी क्या? यह उनकी लीला ही है। भगवान् रामका निर्मल यश समस्त पापोंको नष्ट कर देनेवाला है। वह इतना फैल गया है कि दिग्गजों-का श्यामल शरीर भी उसकी उज्ज्वलतासे चमक उठता है। बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि राजाओंकी सभामें उसका गान करते रहते हैं। स्वर्गके देवता और पृथ्वीके नरपति अपने कमनीय किरीटोंसे उनके चरणकमलका सेवन करते हैं। मैं उन्हीं रघुवंशशिरोमणि भगवान् रामचन्द्रकी शरण ग्रहण करता हूँ।'

महर्षि व्यासने देवीभागवतके तीसरे स्कन्धके २८वेंसे ३०वें अध्यायोंमें श्रीरामके चरित्रका बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे चित्रण किया है। व्यासदेवने जानकीजीके रावणद्वारा हरे जानेके शोकसे संतप्त भगवान्के प्रति लक्ष्मणजीकी आश्वासन-परक उक्तिमें अपने हृदयकी निर्मल दृष्टिसे श्रीरामका भक्ति-पूर्वक गुणानुवाद कर उनकी भगवत्ताका—सर्वज्ञताका चित्रण किया है—

सर्वज्ञोऽसि महाभाग समर्थोऽसि जगत्पते।
किं प्राकृत इवात्यर्थं कुरुषे शोकमात्मनि॥

(श्रीदेवीभा० ३। २९। ५४)

महर्षि व्यासद्वारा शब्दाङ्कित भगवान् रामके लीला-चरितके चिन्तनसे मन पवित्र होता है, हृदयमें भगवान्के प्रति श्रद्धा-भक्तिका अक्षय साम्राज्य स्थापित हो जाता है। उनकी कीर्ति अमिट है।

(३)

कालिदास

महाकवि कालिदासने भारतीय इतिहासके स्वर्णयुगमें ईसवी सन्की पहलीसे चौथी शतीके मध्यकालमें जन्म लेकर भारतीय संस्कृति और साहित्यकी समृद्धि-वृद्धिमें जो योगदान दिया है, वह सर्वथा मौलिक और अप्रतिम है। उनका साहित्य आदिकवि वाल्मीकि और महर्षि व्यासकी काव्यकारिता-से सर्वथा अनुप्राणित है। उनके काव्यमर्मको समझना आसान बात नहीं है। कालिदासकी रचनाओंके सफल व्याख्याकार महामति मल्लिनाथका कथन है—

कालिदासगिरां सारं कालिदासः सरस्वती।
चतुर्मुखोऽथवा साक्षाद् विदुर्नान्ये तु मादृशाः॥

'कालिदासकी वाणीके सारको केवल तीनने ही समझा है। वे हैं—ब्रह्मा, सरस्वती और स्वयं कालिदास। मेरे समान अल्प जानकारीवाले उनकी वाणीके मर्मको नहीं समझ सकते।'

महाकवि कालिदासने अपने रघुवंश-महाकाव्यमें—रामरूपमें प्रकट होकर राक्षसराज रावणका वध करनेवाले भगवान् विष्णुके दिव्य चरित्रका चित्रण दसवेंसे पंद्रहवें सर्गमें किया है। रघुवंश महाकाव्यके आरम्भमें उन्होंने श्रीवाल्मीकि और अपने पूर्ववर्ती रामचरितके गायकोंके प्रति आभार प्रकट करते हुए कहा है—'कि मुझे बड़ा भारी भरोसा यह है कि (श्रीवाल्मीकि आदि) कवियोंने सूर्यवंशपर सुन्दर काव्य लिखकर वाणीका दरवाजा खोल दिया है। उस दरवाजेके मार्गसे उसमें प्रवेश कर उक्त वंशका वर्णन करना मेरे लिये उसी तरह सरल हो गया है, जिस तरह हीरेकी कनीसे बिंधे मणिमें डोरा पिरोना सरल होता है।'

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः॥

(रघुवंश १।४)

महाकवि कालिदासने नवजात शिशुरूपमें भगवान् रामकी एक अत्यन्त सुन्दर और अनुपम झाँकी प्रस्तुत की है, जो समग्र काव्यजगत्के लिये चिरकालतक स्पृहाकी वस्तु बनी रहेगी। बालक रामके सौन्दर्यका निरूपण करते हुए वे कहते हैं कि 'गर्भमें बालकको जन्म देनेके परिणामस्वरूप दुबली हुई अम्बा कौशल्या नन्हे-से रामको लिये हुए पलंगपर लेटी हुई ऐसी सुन्दर जान पड़ती थीं, मानो शरद् ऋतुमें पतली धारावाली गङ्गाजीके तटपर किसीके द्वारा नीला कमल पूजाकी सामग्रीके रूपमें रख दिया गया हो।'

शय्यागतेन रामेण माता शातोदरी बभौ।
सैकताम्भोजबलिना जाह्नवीव शरत्कृशा॥

(रघुवंश १०।६९)

कालिदासने भगवान् रामद्वारा रावण-वधके उपरान्त अयोध्या लौटनेपर कैकेयीके प्रति अत्यन्त मौलिक ढंगसे आश्वासनके वचन कहलाकर माता कैकेयीके स्वाभिमानकी जो रक्षा की है, वह रामपरक साहित्यको रघुवंश-महाकाव्यके रचयिताकी अलौकिक देन है। माता कैकेयी उदास बैठी थीं। रामने हाथ जोड़कर कहा—"माँ! आपके ही पुण्य-प्रतापसे हमारे पिताजी उस सत्यसे नहीं डिगे, जिससे स्वर्ग मिलता है। यदि आप उनसे वरदान न माँगतीं तो उन्होंने आपको वरदान देनेकी जो प्रतिज्ञा की थी, वह झूठी हो जाती और वे स्वर्ग-प्राप्तिसे वञ्चित हो जाते।' यह सुनकर कैकेयीके मनमें जो आत्मग्लानि थी कि 'राम मेरे लिये न जाने क्या सोचते होंगे और मैं किस तरह उन्हें मुख दिखाऊँगी', वह नष्ट हो गयी।"

कृताञ्जलिस्तत्र यदम्ब सत्या-
न्नाभ्रश्यत स्वर्गफलाद् गुरुर्नः।
तच्चिन्त्यमानं सुकृतं तवेति
जहार लज्जां भरतस्य मातुः॥

(रघुवंश १४।१६)

श्रीरामरूपमें अवतरित भगवान् विष्णुकी श्रेयस्कर कार्य-पूर्तिके चित्रणमें कवि कालिदासकी मङ्गलमयी उक्ति है—

निर्वर्त्यैवं दशमुखशिरश्छेदकार्यं सुराणां
विष्वक्सेनः स्वतनुमविशत् सर्वलोकप्रतिष्ठाम्।
लङ्कानाथं पवनतनयं चोभयं स्थापयित्वा
कीर्तिस्तम्भद्वयमिव गिरौ दक्षिणे चोत्तरे च॥

(रघुवंश १५।१०३)

'विष्णुभगवान्ने इस प्रकार रावणका वध करके देवताओंका कार्य पूरा किया। उत्तरगिरि हिमालयपर हनुमान्‌जीको तथा दक्षिणगिरि त्रिकूटपर विभीषणजीको अपने दो कीर्तिस्तम्भोंके रूपमें स्थापितकर, भगवान् तीनों लोकोंको धारण करनेवाले अपने विराट् शरीरमें लीन हो गये।' महाकवि कालिदासका रघुवंश श्रीरामका कीर्ति-वाङ्मय है।

(४)

भवभूति

महाकवि भवभूतिका अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है—'उत्तर-रामचरित' नाटक, जिसमें श्रीरामके उत्तरचरित रावणके आवासमें निवासके परिणामस्वरूप सीतासे सम्बन्धित जनापवादसे आशङ्कित रामके सीता-परित्यागरूप कठोर तथा अत्यन्त करुण आचरणका मार्मिक चित्रण किया गया है। इसमें साक्षात् करुणरसने ही रामके उत्तरचरितके रूपमें आत्माभिव्यक्ति की है। दक्षिण भारतके विदर्भ प्रदेशके पद्मपुर नगरमें कश्यपगोत्रीय भट्टगोपालके आत्मज नीलकण्ठकी पत्नी जातूकर्णीसे विक्रमीय संवत्की आठवीं शतीमें महाकवि भवभूतिका जन्म हुआ था। वे कान्यकुब्जेश्वर यशोवर्माकी राजसभाके पण्डित-पदपर प्रतिष्ठित थे। उन्होंने मालतीमाधव, महावीरचरित और उत्तररामचरित-ग्रन्थोंका प्रणयन किया। 'महावीरचरित'के सात अङ्कोंमें श्रीराम-सीताके विवाहसे श्रीरामके राज्याभिषेकतककी कथाका वर्णन उपलब्ध होता है। उनके 'उत्तररामचरित'में भगवती सीताके

प्रति भगवान् रामके अनिर्वचनीय प्रेम, प्रजारञ्जन-व्रतकी पराकाष्ठा आदिका बड़ा गम्भीर और मर्मस्पर्शी वर्णन मिलता है।

'उत्तररामचरित' नाटकके प्रथम अङ्कके आरम्भमें ही रामके विनम्र स्वभावका कविने बड़ा मार्मिक विवेचन उन्हींकी उक्तिमें किया है। कञ्चुकीने प्रवेश कर पहले श्रीरामको 'रामभद्र' कहकर तथा तत्पश्चात् ही 'महाराज' रूपमें सम्बोधित किया। रामने कञ्चुकीसे कहा—"मेरे पिताके परिजनगण मेरे लिये 'रामभद्र' शब्दका ही प्रयोग करते हैं। यही सुन्दर है। आप मुझे जिस रूपमें सम्बोधित करते हैं, उसी रूपमें बोला कीजिये।"

'रामः—(सस्मितम्) आर्य ! ननु रामभद्र! इत्येव मां प्रत्युपचारः शोभते तातपरिजनस्य । तद् यथाभ्यस्तमभिधीयताम् ।' (उत्तररामचरित, अं० १)

श्रीरामकी कुलगुरु वसिष्ठके प्रति श्रद्धा-भक्तिका उनके अष्टावक्रसे निवेदित वाक्योंमें समीचीन अभिव्यञ्जन मिलता है। अष्टावक्रने श्रीरामको गुरु वसिष्ठका जब यह संदेश सुनाया कि 'आप तरुण हैं, राज्य भी नया है, प्रजाका ही अनुरञ्जन करना चाहिये; क्योंकि यश ही आपका परम धन है', तब श्रीरामने कहा कि प्रजाको 'प्रसन्न रखनेके लिये चाहे मुझे स्वजनोंका स्नेह छोड़ना पड़े, दयाके बदले कठोरता अथवा निष्ठुरताको अपनाना पड़े, अपने सुखका त्याग करना पड़े तथा इन सबसे भी अधिक प्रियतमा जानकीतकका साथ छोड़ना पड़े तो मुझे इन सबका त्याग करनेमें तनिक भी व्यथा नहीं होगी।'

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥
(उत्तररामचरित १ । १२)

जब दुर्मुखके मुखसे श्रीरामने सीताके प्रति जनापवाद-श्रवण किया, तब उनका हृदय असह्य वेदनासे परिपूर्ण हो उठा। उन्होंने कहा—'हाय ! इस समय जीवलोक अस्त-व्यस्त हो उठा है। रामके (मेरे) जीवन-धारणके प्रयोजनका अन्त हो चला है। इस समय यह जगत् जीर्ण और शून्य अरण्य-सा दीख पड़ता है। संसार निस्संदेह असार है। शरीर ही क्लेशकर है। मैं तो आश्रयहीन हो गया हूँ। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ? ऐसा तो नहीं है कि केवल दुःखको ही सहनेके लिये विधाताने राम (मुझ) को प्राण अर्पित किया था। मेरा प्राण वज्रकीलकी तरह मुझमें स्थिर होकर मेरा हृदय विदीर्ण कर रहा है।'

"हन्त, हन्त ! सम्प्रति विपर्यस्तो जीवलोकः। अद्यावसितं जीवितप्रयोजनं रामस्य। शून्यमधुना जीर्णारण्यं जगत्। असारः संसारः, कष्टप्रायं शरीरम् । अशरणोऽस्मि । किं करोमि ? का गतिः ?

दुःखसंवेदनायैव रामे चैतन्यमागतम् ।
मर्मोपघातिभिः प्राणैर्वज्रकीलायितं हृदि ॥
(उत्तररामचरित १ । ४७)

'उत्तररामचरित' नाटकके अन्तमें भगवान् रामकी मङ्गलमयी वाणीमें ध्वनित होता है महाकवि भवभूतिका रामायणी कथामें अनुराग। महर्षि वाल्मीकिके यह पूछनेपर कि 'आपका क्या प्रिय कार्य करूँ', भगवान् रामने उनकी रामायणवार्ताकी महत्ता प्रकट करते हुए निवेदन किया—

पाप्मभ्यश्च पुनाति वर्धयति च श्रेयांसि सेयं कथा
मङ्गल्या च मनोहरा च जगतो मातेव गङ्गेव च ।
तामेतां परिभावयन्त्वभिनयैर्विन्यस्तरूपां बुधाः
शब्दब्रह्मविदः कवेः परिणतप्रज्ञस्य वाणीमिमाम् ॥
(उत्तररामचरित ७ । २१)

'गङ्गा और जननीकी तरह मङ्गलविधायिनी यह मनोहर रामकथा पापका नाश करके संसारके कल्याणकी वृद्धि करनेवाली है। परिपक्वबुद्धि तथा शब्दब्रह्मतत्त्वज्ञ कविकी इस अभिनययोग्य वाणीकी पण्डितजन पर्यालोचना करें।'

(५)
क्षेमेन्द्र

महाकवि क्षेमेन्द्रने ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीमें कश्मीरमें जन्म लिया था। संस्कृत-साहित्यके इतिहासमें उनकी प्रसिद्ध कृति 'रामायणमञ्जरी'को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। उन्होंने १०३७ ई०में श्रीवाल्मीकिरामायणको संक्षिप्त किया था। 'दशावतारचरितम्' भी उनका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसकी रचना उन्होंने १०६६ ई०में की थी। इस ग्रन्थमें भी उन्होंने लगभग तीन सौ छन्दोंमें रामावतारके प्रसङ्गमें भगवान् रामकी कथाका वर्णन किया है। उन्होंने 'रामायणमञ्जरी'की रचनाकी प्रेरणा आदिकवि महर्षि वाल्मीकिसे ली थी। उन्होंने समस्त कवियोंके उपजीव्य कविसम्राट् महर्षि वाल्मीकिकी वन्दना करते हुए उनकी राममयी काव्यवाणीकी संस्तुति की है—

नुमः सेवोपजीव्यं तं कवीनां चक्रवर्तिनम्।
यस्येन्दुधवलैः श्लोकैर्भूषिता भुवनत्रयी॥
(रामायणमञ्जरी १।४)

अपनी 'रामायणमञ्जरी' रचनामें क्षेमेन्द्रने कैकेयीके प्रति दशरथद्वारा जो श्रीरामका गुणगान प्रस्तुत कराया है, उसमें कविकी श्रीरामभक्तिपर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है—

प्रियं सर्वास्ववस्थासु जीवलोकप्रकाशकम्।
त्यजामि सुकृतावाप्तं जीवितं कथमात्मजम्॥
गुणाभरणमम्लानयशःपीयूषसागरम्।
परित्यक्तुं न शक्तोऽस्मि रामं राजीवलोचनम्॥
(रामायणमञ्जरी, अयो०, वरयाचनम् ७३६-७३७)

'यह नितान्त सच है कि समस्त अवस्थाओंमें प्रिय और पुण्यद्वारा प्राप्त तथा जीवलोकके प्रकाशक अपने जीवन (प्राण)-का मैं त्याग कर सकता हूँ; परंतु समस्त गुणोंसे विभूषित, निर्मल—नित्य-नूतन कीर्तिरूप सुधाके सागर, कमल-लोचन रामका त्याग करनेमें मैं कदापि समर्थ नहीं हूँ।'

रामकी ही तरह वनगमनके प्रसङ्गमें एक स्थलपर वे सीताजीकी भी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करते हुए कहते हैं—'सीताको धन्य है, जो सदा रामके ही साथमें रहती हैं। जिस तरह सत्पुरुषमें कीर्ति रहती है और सात्त्विक स्वभावमें धृतिका निवास होता है, उसी तरह राममें सीताका निवास है।'

सीतैव धन्या रामस्य सततं पार्श्ववर्तिनी।
कीर्तिः सत्पुरुषस्येव धृतिः सत्त्ववतो यथा॥
(रामायणमञ्जरी, अयो० ७९)

महाकवि क्षेमेन्द्रने सीताजीके अन्वेषणमें तत्पर भगवान् रामकी अवस्थाका बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है—

रमणीविरहध्यानविधुरः पाण्डुरद्युतिः।
रामः पूर्णनिशाहीनः शशीव तनुतां ययौ॥
(रामायणमञ्जरी, अरण्यका० ११००)

'श्रीसीताजीके विरहमें विदग्ध श्रीराम पीले पड़ गये। पूर्णिमासे व्यतिरिक्त चन्द्रमा जिस तरह क्षीण हो जाता है, ठीक उसी तरह वे दुबले हो गये।'

सीताका पहले-पहल दर्शन करनेपर भाग्यवान् श्रीहनुमान्‌ने उनके प्रति बड़े ही सरस काव्यलक्षणमर्यादित उद्गार प्रकट किये हैं; श्रीहनुमान्‌के कथनके द्वारा क्षेमेन्द्रके हृदयमें आराध्यारूपमें निवास करनेवाली सीताकी सौन्दर्य-समृद्धिका परिचय मिलता है—

इयं श्रीः पुण्यलावण्यसुधासिन्धुसमुद्गता।
विलासपारिजातस्य स्वसा कुसुमकोमला॥
प्रांशुवंशोदिता तन्वी शुचिदीक्षा दुकूलिनी।
साम्राज्यविजयारम्भवैजयन्ती मनोभुवः॥
यदि चिन्ताकुला नेयं रतिः प्रोषितभर्तृका।
तत्सैव निश्चितं कान्ता राममानसमानसी॥
अस्याः कृते कीर्तिलता फलिता सा जटायुषः।
साधुवादोल्लसत्सर्वजनजिह्वाग्रपल्लवा॥
इमां विना विशालाक्षीं कथं जीवति राघवः।
नियतान्यथ वाऽऽयूंषि सर्वथा न न जीव्यते॥
(रामायणमञ्जरी, सुन्दरका० १४८—१५०, १५३, १५१)

"ये तो साक्षात् पवित्र सौन्दर्यके अमृतसागरसे उत्पन्न श्रीदेवी हैं, विलास-पारिजातकी सहोदरा कुसुम कोमला लता हैं। ये तन्वङ्गी अत्यन्त गौरवशाली कुलकी वधू हैं, पवित्र आचरणवाली हैं, सुन्दर दुकूल धारण करनेसे ये परम शोभित हैं तथा कामदेवके साम्राज्य-विजयकी आदि पताका हैं। यदि ये मन्मथविरहिणी प्रोषितपतिका रति नहीं हैं तो निस्संदेह भगवान् रामके हृदयरूपी मानसरोवरमें विहार करनेवाली राजहंसीरूपा उनकी पत्नी जनकनन्दिनी हैं। इन्हींकी रक्षामें पक्षिराज जटायुने प्राण त्यागकर अपनी कीर्ति सफल कर ली। लोगोंकी रसनापर इन्हींके गुणगानका निवास है। यह समझमें नहीं आता कि इन भगवती सीतासे वियुक्त होकर श्रीराम किस तरह जीवित हैं। आयु निश्चित है, इसीसे जीवित हैं।'

महाकविने राम-राज्यकी संस्तुतिमें अपने उद्गार प्रकटकर उसकी सुख-समृद्धिके प्रति लोगोंका मन आकृष्ट करते हुए कहा है—

नृपतिमुकुटरत्ने राघवे शासति क्ष्मां
गुणगणपरिपूर्णः सर्वसम्पत्समृद्धः।
समुचितनिजकर्मा धर्ममार्गप्रवृत्तः
सुतपरिजनयुक्तः प्राज्यजीवो जनोऽभूत्॥
(रामायणमञ्जरी, रामाभिषेक, उत्तर० १९३)

'राजाओंके मुकुटमणि भगवान् रामके पृथ्वीपर राज्य करते समय प्रत्येक व्यक्ति सद्गुणोंसे युक्त था। वह सारी सम्पत्तिसे सम्पन्न था, उचित ढंगसे अपना काम करता था, धर्माचरणमें तत्पर और सुत-परिजन आदिसे संयुक्त और बुद्धिमान् था।'

क्षेमेन्द्रने अपने राम-चिन्तनद्वारा लोककल्याणका सम्पादन किया।

(६)

चंदबरदाई

भारतदेशकी पुण्यभूमिमें जन्म लेकर जिस कविने दशरथनन्दन भगवान् राम और नन्दनन्दन श्रीकृष्णके चरित और लीला-गानसे अपनी वाणी पवित्र नहीं की, उसकी काव्यकारिता वन्ध्या स्त्रीके समान निष्फल है। हिंदीके आदिकवि चंदबरदाईने अपने प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्य पृथ्वीराज-रासौके द्वितीय समयके प्रारम्भमें भगवान्के दशावतार-चिन्तन-प्रसङ्गमें अपनी बुद्धिमती भगवद्भक्तिमती सौभाग्यवती स्त्रीकी सत्प्रेरणासे संक्षिप्तरूपमें अनेक छप्पय आदि छन्दोंमें भगवान् राम और श्रीकृष्णके पवित्र चरित्रगानसे अपनी काव्यभारतीको सफल किया था। वे सम्राट् पृथ्वीराजके समकालीन ही नहीं, उनके यशके काव्यकार भी थे। वे विक्रमीय संवत्की तेरहवीं शतीके प्रथमसे दूसरे चरणतककी अवधिमें उपस्थित थे।

जब चंदकी स्त्रीने उनको भगवान्के यशोवर्णनकी प्रेरणा दी, तब उन्होंने विवशता प्रकट करते हुए कहा कि 'मैं तो दिल्लीपति पृथ्वीराजके चरित्र-वर्णनके लिये प्रतिज्ञा कर चुका हूँ।' स्त्रीने कहा—

चित्रन हरे च्यंति मन, रे चतुरंगी नाह।
का चहुवान सुकित्ति कवि, मन मनुष्षि हरि लाह॥

(पृथ्वीराज-रासौ १ । ७३)

'हे चतुर स्वामी! आप मनमें ईश्वरका चिन्तन कीजिये। हे कवि! भगवच्चिन्तनके सामने चौहानकी कीर्तिका चिन्तन तो नितान्त महत्त्वहीन है। मानव-शरीर पाकर मनसे हरिरसका लाभ लेना ही प्राणीका पुण्य कर्तव्य है।' स्त्रीके समझानेका महाकवि चंदके मनपर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने कहा कि, 'यदि तुम मुझसे हरिरस-तत्त्व पूछना चाहती हो तो उस सरस वार्ताका ही पहले श्रवण करो।' इस तरह महाकवि चंदबरदाईने श्रीरामके संक्षिप्त चरित्र-वर्णनका उपक्रम अपने पृथ्वीराज रासौके द्वितीय समयके दशावतार-कथाके संदर्भमें प्रस्तुत किया। महाकविने आरम्भमें कहा—

किं सम्मान-स-सेव देव रजयं, दुष्टान उच्छासयं।
किं सुक्खानि दुखानि सेवनफलं, आवास भूमीसयं॥
किं ईसं न सुरेश सेस सनकं, ब्रह्मान ज्ञानं लहं।
किं रंकं छितया-छितं सु कमलं, बंदे सदा विप्पयं॥

(पृथ्वीराज-रासौ २ । २)

'सम्मानसहित सेवा करके देवोंको प्रसन्न करने, दुष्टोंको ऊर्ध्वश्वास लेनेके लिये बाध्य करने, सुख-दुःख, सेवाके फलस्वरूप ऊँचे महलोंमें अथवा भूमिपर सोने, शिव, इन्द्र, शेष, सनक आदिका पद प्राप्त करने, ब्रह्मज्ञानका लाभ कर लेने और पृथ्वीपतियोंका यश-वर्णनकर उनको इस तरह ऋणी अथवा कृतज्ञ बनानेमें कोई भी विशेषता नहीं है। मनुष्यको चाहिये कि वह भगवान्के युगल चरण-कमलकी वन्दना करे।'

महाकवि चंदबरदाईने हिंदीमें पहले-पहल रामका यशोगान किया। यह हिंदी रामकाव्यकारिताके क्षेत्रमें उनकी मौलिकता है। भगवान् रामद्वारा आयोजित लङ्का-युद्धमें श्रीहनुमान्की अग्रगामिता अथवा नेतृत्वके वर्णनमें उनकी उक्ति है—

बंध पाज बर बीर नंखि साइर सु अष्ट कुल।
बध तरंग तपि तथ्थ, भरे जनु अगस्ति सु अंजुल॥
सिर मच्छी उच्छरी, मनौ रचि मनि धर सेसं।
पिट्ठ राम भर हनुअ, किन्न मन कारन भेसं॥
चक चकित नाथ दस देद पुर छोरि देव सेवन ग्रहय।
धर लंक सदा थप्पन सुथिर, अग्ग मग्ग हनुमंत भय॥

(पृथ्वीराज-रासौ २ । १५)

'अष्टकुली पहाड़ोंको डालकर सेतु बाँधा गया। तरंगित समुद्र भगवान् रामके बाणसे संतप्त होकर इस तरह सूख गया, मानो अगस्त्यऋषिने अञ्जलि भर ली हो। हनुमान्जी उछलकर मैनाकपर्वतपर चढ़ गये, उस समय ऐसा लगता था, मानो शेषनागने मणिको धारण कर लिया हो। उनकी पीठपर श्रीरामके अनेक योद्धा स्थित हो गये। अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिये उन्होंने वीर-वेष धारण कर लिया। चौदह भुवनोंके स्वामी आश्चर्यचकित हो गये। रावणकी सेवा करनेवाले देव मुक्त हो गये। लङ्काकी भूमिपर श्रीरामका स्वामित्व सदाके लिये स्थापित करनेके लिये हनुमान्जी उस युद्धमें अग्रगामी बन गये।'

भगवान् रामने भगवती सीताकी प्राप्तिके लिये राक्षसराज रावणके वधका निश्चय किया। महाकविका कथन है—

जब सु राम चढ़ि लंक, तब सु मन्दीगिर तारिय।
जब सु राम चढ़ि लंक, तब सु पत्थर जल धारिय॥
जब सु राम चढ़ि लंक, तब सु चक चकी चाहिय।
जब सु राम चढ़ि लंक, तब सु लंकापुर दाहिय॥
जब राम चढ़े दल बंनरन, भिरन राम रावन परिय।
सिर कुंभ मेघ राखिस रसन, सीत काम कारन करिय॥
(पृथ्वीराज-रासौ २। १८)

'जब भगवान् रामने लङ्कापर चढ़ाई की, तब मैनाक पर्वत और पत्थर जलपर तैराये जाने लगे, (दिनमें ही धूलि उड़नेसे रात्रिके भ्रममें) चक्रवाक-दम्पति एक-दूसरे-की प्रतीक्षा करने लगे। लङ्का जलायी जाने लगी और स्वयं रामके साथ इस पृथ्वीपर रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि राक्षसोंका युद्ध हुआ। रावणके नाशको रामजीने सीताको पानेका हेतु बनाया।' इस तरह महाकवि चंदने पृथ्वीराज-रासौमें रामका यश चित्रित किया। चंदकी उक्ति है—

राम किसन किसी सरस, कहत लगे बहु बार।
तुच्छ आव कवि चंद की, सिर चहुआना भार॥
(पृथ्वीराज-रासौ २। १०१)

'श्रीराम और श्रीकृष्णकी कीर्ति बड़ी सरस है, उसे कहनेमें बहुत समय लगेगा। मेरी आयु थोड़ी है, पृथ्वीराजका यश भी वर्णन करना है; इसलिये मैंने संक्षेपमें ही इसका बखान किया है।'

(७)

गोनबुद्ध

श्रीगोनबुद्ध रामायण-कथाके परम रसिक और मर्मज्ञ थे। वे धूदपुर—योथान नगरके आस-पास राज्य करनेवाले सूर्यवंशी राजा विठलके पुत्र थे। वे समस्त पुराणोंके ज्ञाता, कविसार्वभौम तथा उच्चकोटिके विद्वान् थे। उन्होंने अपने पिताकी प्रसन्नताके लिये उनकी आज्ञासे तेलुगु भाषामें 'रङ्गनाथ-रामायण'की १२८०ई०में रचना की। इस रामायणकी रचनाका आधार श्रीवाल्मीकिरामायण है; पर कविने उस समय लोगोंमें प्रचलित रामकथाके अनेक अंशोंका भी इसमें मौलिक ढंगसे समावेश किया है। गोनबुद्धने इस रचनामें वैदिक धर्मकी मर्यादाका पूर्ण निर्वाह करते हुए अवतार-पुरुष भगवान् रामके लीलाचरित और यशका गान किया है। 'रङ्गनाथ-रामायण'में बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्य-काण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड और युद्धकाण्ड—केवल छः काण्डोंमें ही समस्त रामचरितका कविने वर्णन किया है।

'रङ्गनाथ-रामायण'में कवि गोनबुद्धने भगवान् रामका प्रत्येक कथन बड़ी मर्यादित वाणीमें प्रस्तुत किया है। वन जाते समय चिन्तित और क्षुब्ध अम्बा कौसल्याको उन्होंने समझाया—

दुरित दूरुड वंबुर पुण्यरतुड
भरतुंडु नाकल भक्ति निरवडु।
नीवु शोकिपकु मिक गलनैन
भाविंप दशरथ पति योप्पदनकु॥
कैकेयि विडुवक कलिसि वालपु
नाकु सेमनु गोरु ननु वीडुकोलुपु।
मेनु नेम्मदि तोड नैतंचु कोरकु
भूनि मसुरल वेल्पुल नर्थिगोलुवु॥

'पुण्यात्मा भरत मुझसे अधिक आपकी भक्ति करते हैं। आप दुःखी न हों। स्वप्नमें भी आप महाराज दशरथको दोष न दें। माता कैकेयीके साथ हिल-मिलकर रहें। मेरे कल्याण-की कामना करें और मुझे आज्ञा दें। आप ब्राह्मणों तथा देवताओंसे प्रार्थना करें कि मैं सकुशल वनसे लौट आऊँ।'

श्रीरामभद्रकी प्रशंसामें गोनबुद्धने रावणके मुखसे कह-लाया है—

नल्लवो रघुराम नयनाभिराम, विलुविद्या गुरुव, वीरावतार।
नापुरे, राम भूपाल, कोकनुल नीपाटि, विलुकाडु नेच्चुंने कलुग॥

'हे नील—मेघश्याम, नयनाभिराम, धनुर्विद्यामें निपुण, वीरावतार राघवेन्द्र! हे राजा राम!! इस संसारमें आपके समान धनुर्धर क्या कोई और हो सकता है? नहीं, नहीं, नहीं हो सकता।'

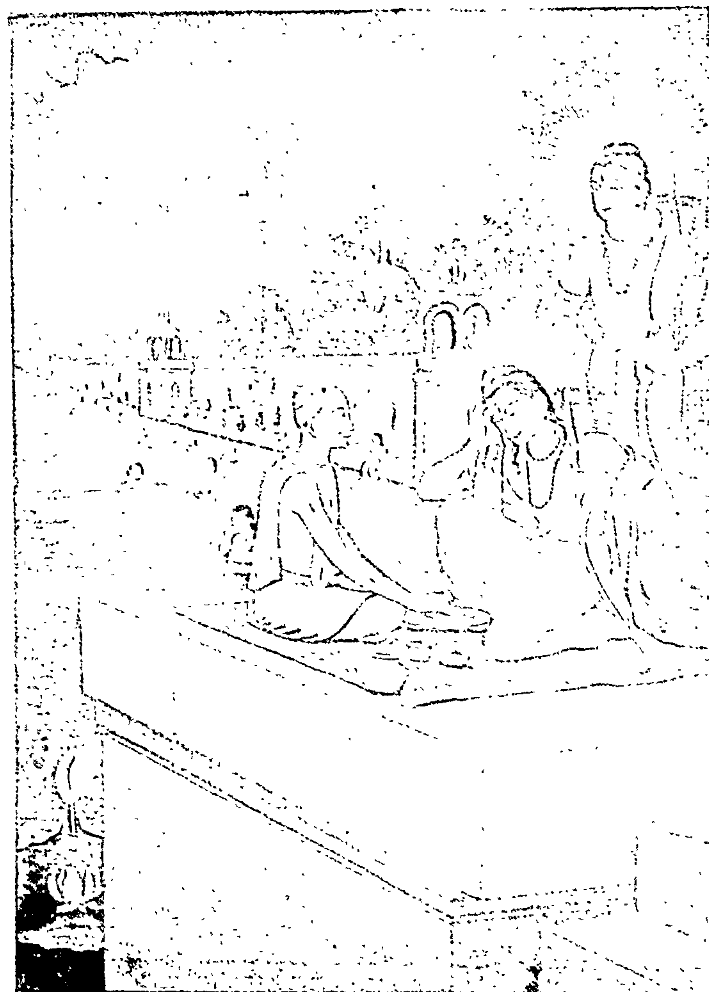
रावणने मन्दोदरीसे अपनी रामनिष्ठा व्यक्त की, उसमें उसकी श्रीरामके प्रति महत्त्वबुद्धिका दर्शन होता है—

ये. नेल्लसंगुल निक राघवुल, बोनीक चंपुदु भूमिज नीय।
वारूठ बकुडनै यटु गाक येनु श्रीरामु, शरमुलचे जच्चुनेनि॥
नाकवासुलु मेच्च ना कोरचुन्न वैकुंठ, मेदुरागवच्चु निच्चटिकि।
ललन नोवेटिकि? लंक येमिटिक, दल्लकोन्नु मुक्ति सत्पथमु गैकोंडु॥

'अब मैं किसी भी प्रकार राघवोंका वध करूँगा ही, मैं सीताको नहीं दूँगा। यदि इसके विपरीत मैं श्रीरामके शरोंसे ही मारा जाऊँगा तो मेरा चिर-अभिलषित स्वर्ग मेरे पास स्वयं आ जायगा और स्वर्गके निवासी मेरी प्रशंसा करेंगे।



श्रीमारुतिका तुलसीदासजीको प्रबोध



तुलसिदास चंदन घिसैं, तिलक देत रघुबीर ।

जब मैं मुक्तिपथको प्राप्त करने जा रहा हूँ, तब हे सुन्दरी ! मुझे न तुम्हारी आवश्यकता है और न मुझे लङ्का ही चाहिये।'

'रङ्गनाथ-रामायण' प्रासादिक रामकाव्य है। 'रङ्गनाथ-रामायण'के अन्तमें गोनबुद्धकी उक्ति है कि 'रसिक जनोंके लिये आनन्ददायक इस आर्ष आदिकाव्यका जो पठन करेगा या श्रवण करेगा, उसे सामवेद आदि वेदोंके आधार रामनाम-रूपी चिन्तामणिके द्वारा नव्य भोग, परोपकार-बुद्धि, उदात्त विचार, परिपूर्ण शक्ति, राज्यसुख, निर्मल कीर्ति, नित्यसुख, धर्मनिष्ठा, दान-पुण्यमें अनुरक्ति, चिरायु, स्वास्थ्य तथा अपार ऐश्वर्य प्राप्त होंगे।'

(८)

शारलादास

उत्कल प्रदेश—उड़ीसाके प्रसिद्ध रामकथाकार सिद्धेश्वर परिडाने उत्कलभाषामें रामायणकी रचना की। ऐसा कहा जाता है कि यह रचना ईसाकी तेरहवीं शतीमें पूरी हुई। अनेक साहित्यकारोंकी धारणा है कि शारलादासने ईसाकी पंद्रहवीं शतीमें रामायणकी रचना प्रस्तुत की। भगवती शारला उनकी इष्टदेवी थीं, इसलिये उन्होंने अपना नाम 'शारलादास' रखा था। यह रचना योगपरक है। इसमें रामायणके प्रमुख पात्रों और प्रसङ्गोंको यौगिक रूप प्रदान किया गया है। महाकवि शारलादासने रावणको दस अवगुण—लोभ, काम, क्रोध, मद, अहंकार, आत्मप्रशंसा, छल, मिथ्याभाषण, गर्व और प्रमादसे पूर्ण लङ्काका राजा बताया है, जो भोगरूपी सागरके बीचमें स्थित है। लङ्काके राजा रावणको आत्मारूप रामने अपने वशमें कर लिया।

शारलादासने अयोध्या, दशरथ, सुमित्रा, कैकेयी और कौशल्या तथा रामका योगरूप प्रस्तुत किया। उनका कथन है—

अधगति नथिवा अयोध्या कटकाइ। दशइन्द्रि रन्धिवा नरपति योगाइ॥
इडा ये सुमइत्रा पिङ्गला कइकइ। शुशुमणा नाडी ये कुशलाकु बोलाइ॥
शुशुमणा चक्ररु जात ये आतमाराम। स्थित शेषतत्व ये रडारु जात पुण॥
पिङ्गला अथयरु भरथ भरथरे। जात होइले चारितनय गुणङ्करे॥
धर्म ये आतमाराम अरथ भरथ। शत्रु हरण काम गुणरु पुत जात॥
पृथिवी लक्षणकु सर्वसहा गुणरे। लक्षण जात हेले विधिर क्रमरे॥
दशइन्द्रि नगरे सरसु रसधार। क्रीडा करिले तहिं परम योगेश्वर॥

"अध या ऊर्ध्व गतिको 'योगगति' कहा जाता है। इस गतिके सफल होनेकी जगहका नाम अयोध्या है। यहाँ दस इन्द्रियोंका दमन करनेवाले पुरुष राजा दशरथ थे। इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना नाडीरूप उनकी सुमित्रा, कैकेयी और कौसल्या—तीन रानियाँ थीं। सुषुम्ना नाडीसे आत्मारूप रामका प्रकाश हुआ। स्थितितत्त्व या शेषदेव इडा नाड़ीसे, चञ्चलतास्वरूपा पिङ्गला नाड़ीसे भरत या पालनकर्ता आदर्श राजाका जन्म हुआ।···धर्मस्वरूप श्रीरामचन्द्र, अर्थ या विभूतिस्वरूप भरत, कामस्वरूप शत्रुघ्न और सर्वसहन-शीलताका पृथ्वीतत्त्व लक्ष्मण, मोक्षकर्ता वासुदेव हैं। यही राम-परिवार रसप्रवाहरूपिणी सरयूके तटपर योगेश्वररूपसे क्रीड़ा करता था।" श्रीशारलादासने स्वरचित रामायणमें योगके अनेकानेक प्रमुख तत्त्वोंका मार्मिक और विशद विवेचन प्रस्तुत किया है।

(९)

गोस्वामी तुलसीदास

संतशिरोमणि कविकुलचूडामणि तुलसीदासका समस्त जीवन रामरसामृतसे सर्वथा सम्प्लावित और तृप्त था। वे सार्वभौम कवि थे। वे वाल्मीकिके अवतार थे। मध्यकालीन भारतीय काव्य-साम्राज्यके एकच्छत्र सम्राट् थे। उन्होंने मानवताको रामचरितमानसके रूपमें भगवद्भक्ति-कल्पतरुका दान किया। उन्होंने अपनी वाणीको पवित्र और पुण्यमयी करनेके लिये भगवान् रामका यश गाया। श्रीरामके चरित्र-सागरका पार पाना असम्भव है। रामचरितमानसके बाल-काण्डमें गोस्वामी तुलसीदासका मार्मिक कथन है—

निज गिरा पावनि करन कारन राम जसु तुलसीं कह्यो।
रघुबीर चरित अपार बारिधि पारु कबि कौनें लह्यो॥
(१।३६०।१ छं०)

गोस्वामी तुलसीदासने राममय जीवनकी काव्यसाधना की, यह उनकी विशेषता अथवा मौलिकता है। गोस्वामी तुलसी-दासने सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म भगवान् राम और उनकी आदिशक्ति सीताको समस्त जगत्में पूर्ण परिव्याप्त जानकर काव्य-सृजन किया रामचरितमानस तथा स्वरचित अन्य ग्रन्थोंके रूपमें। गोस्वामी तुलसीदासने उत्तरप्रदेशके बाँदा जनपदके राजापुर ग्राममें संवत् १५५४ वि० की सावन शुक्ला सप्तमीको जन्म लिया। उन्होंने प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र 'सूकरखेत' में अपने गुरु नरहर्यानन्दसे रामकथाका श्रवण किया। इसके परिणामस्वरूप उनके जन्म-जन्मान्तरके रामभक्तिमय संस्कार जाग उठे और आजीवन वे श्रीरामकी

लीलासुधा तथा पवित्र चरित्रका रसास्वादन करते रहे। संवत् १६३१ वि०में अयोध्यामें मधुमासके शुक्लपक्षकी नवमी (श्रीरामनवमी) तिथिको उन्होंने रामचरितमानसका प्रकाश किया। संवत् १६८० वि०में उन्होंने पार्थिव शरीरका त्याग कर दिया।

गोस्वामी तुलसीदास रससिद्ध कवीश्वर थे। उनका अध्यात्म सर्वथा राममय था। उन्होंने शरच्चन्द्र, अश्विनी-कुमार और मदनका मान मर्दन करनेवाले रामरूपका काव्यमय वर्णन प्रस्तुत किया। उनका कथन है कि 'भक्तवत्सल भगवान् रामके श्यामशरीरपर चन्दनका शीतल लेप ऐसा लगता है, मानो मरकतमणिके शिखरपर कुहरा शोभित हो। उनके मनोहर वक्षःस्थलपर यज्ञोपवीत, पदिक और गजमुक्ताका हार ऐसा सुशोभित है, मानो इन्द्रधनुष और नक्षत्रगणके बीचमें साक्षात् सूर्यदेव विराजित हों। उनका निर्मल पीताम्बर बिजलीकी कान्तिका तिरस्कार करता है। उनका सुन्दर मुखमण्डल कामदेवको मोहित करता है। उनके सभी अङ्ग अनुपम हैं। उनका वर्णन किसी सुकविके भी वशकी बात नहीं है। उनका दर्शन करनेवाले देखते ही महान् सुख पाते हैं।'

सखि ! रघुनाथ-रूप निहारु।

सरद-बिधु रबि-सुवन मनसिज मान भंजनि हारु॥
स्याम सुभग सरीर जन-मन-काम-पूरनिहारु।
चारु चंदन मनहु मरकत-सिखर लसत निहारु॥
रुचिर उर उपबीत राजत पदिक गजमनि-हारु।
मनहु सुरधनु नखतगन बिच तिमिर-भंजनिहारु॥
बिमल पीत दुकूल दामिनि-दुति-बिनिंदनिहारु।
बदन सुषमासदन सोभित मदन-मोहनिहारु॥
सकल अंग अनूप, नहिं कोउ सुकबि बरननिहारु।
दास 'तुलसी' निरखतहि सुख लहत निरखनिहारु॥

(गीतावली, उत्तर० ८)

गोस्वामी तुलसीदासने कहा है कि 'जीवात्माका वास्तविक स्वार्थ-परमार्थ यही है कि मनुष्य-शरीर पाकर वह रामका ही भजन करे।'

स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा॥
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा॥

(रामचरितमानस ७। ९५। १)

गोस्वामी तुलसीदासका रामकाव्य इस बातका प्रमाण है कि 'श्रीरामकी उपासना ही भवसागरको पार करनेकी नौका है।' मुक्तिविभूषित वैराग्यके सिंहासनपर आसीन विदेह जनकतकने रामका रूप-सौन्दर्य देखकर मोक्षके बदले भव-संसार-सागरकी सराहना की, जिसमें राम-ऐसे रत्नकी उत्पत्ति होती है—

देखि मनोहर मूरति मन अनुरागेउ।
बँधेउ सनेह बिदेह बिराग बिरागेउ॥
प्रमुदित हृदयँ सराहत भल भवसागर।
जहँ उपजहिं अस मानिक बिधि बड़ नागर॥

(जानकीमङ्गल ४१-४२)

गोस्वामी तुलसीदासकी समस्त रचनाएँ—रामचरित-मानस, विनयपत्रिका, गीतावली, कवितावली, दोहावली आदि श्रीरामकी भक्तिसे परिपूर्ण हैं। तुलसीदासजीने आजीवन रामभक्तिका ही सफलतापूर्वक आस्वादन कर अपनी काव्य-साधना सफल की। निस्संदेह वे महान् भागवत कवि थे, अलौकिक काव्य-मनीषी थे। उन्होंने भगवान् रामसे यही प्रार्थना की कि 'मेरी भव-बाधा दूर कीजिये, मुझे निरन्तर प्रिय लगते रहिये।' रामचरितमानसके उत्तरकाण्डके अन्तमें उनकी उक्ति है—

मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर॥
कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

(मानस ७। १३० क, ख)

रामचरितके काव्यकार गोस्वामी तुलसीदासने कलियुगमें रामभक्तिसे जनमानसको सम्पन्नकर प्राणिमात्रको अभय दान दिया। गोस्वामी तुलसीदासका रामचरितमानस एक विशिष्ट काव्य है। जिसमें उन्होंने रसविशेष निरूपित किया है—रामके दिव्य ऐश्वर्य, सौन्दर्य और माधुर्यका। सम्पूर्ण रामचरितमानस लोकोत्तर आनन्दमय भागवतरसका दिव्य साहित्य है। महाकवि गोस्वामी तुलसीदासकी रामकाव्यकारिता धन्य है।

(१०)

महात्मा एकनाथ

महात्मा एकनाथ ज्ञानी संत थे, भगवद्रसके परम मर्मज्ञ थे। वे गोस्वामी तुलसीदासके समकालीन थे। महाकवि मोरोपन्तने स्वीकार किया है कि 'एकनाथ महाराजने रामायण और भागवतपर विस्तृत ग्रन्थ लिखे। यदि वे दयानिधि

ऐसा न करते तो जड जीव किस प्रकार तरते । संवत् १५९० वि०के मूल नक्षत्रमें एकनाथ महाराजका जन्म भगवती गोदावरीके तटपर पैठणमें हुआ था । संवत् १६५६ वि०में महाराजने परलोककी यात्रा की ।

एकनाथ महाराजने भगवद्भक्ति-साधनाके क्षेत्रमें सगुण और निर्गुण-चिन्तन-पद्धतिका अत्यन्त संतोषप्रद समन्वय किया । उनकी रुचि विशेषरूपसे सगुण-उपासनाकी ओर थी । महाराजका भगवान् पाण्डुरङ्ग विठ्ठल और रुक्मिणीमें प्रगाढ़ अनुराग था । महाराजने अपने 'भावार्थरामायण'में भगवान् रामके तत्त्वका निरूपण बड़े ही मौलिक ढंगसे किया है । उन्होंने रामस्मरणके सम्बन्धमें कहा है—

नाम वदताँ हे वैखरी । चित्त धाँवे विषयावरी ।
कैसें होताँ हे स्मरण । स्मरण मार्जा विस्मरण ॥
नामरूपा नाहीं मेळ । नुस्ता वाचेचा गोंवळ ।
'एका' जनार्दनीं नाम । नामीं प्रगटे आत्माराम ॥

'मुखसे रामनाम कहने और चित्तमें विषयका ध्यान करनेसे कोई लाभ नहीं । जबतक वाणीसे रामस्मरण और मनसे रामके ध्यानका संयोग नहीं होता, तबतक नामस्मरण पाखण्ड ही है । दोनोंके योगसे नामस्मरण किया जाय तो साक्षात् रामकी प्राप्ति होती है ।'

एकनाथ महाराजने श्रीमद्वाल्मीकिरामायण, अध्यात्म-रामायण और आनन्दरामायणके आधारपर 'भावार्थरामायण'की रचना की । यह रचना रामकथाके स्वारस्य और भक्तिरससे ओतप्रोत है ।

'भावार्थरामायण'में भगवान् रामने अपने और भगवती सीताके सम्बन्धमें श्रीहनुमान्‌जीसे कहा है कि 'मैं सर्वव्यापी परमेश्वर हूँ और सीता भी सम्पूर्ण चिच्छक्ति हैं । सीतासे मैं अणुमात्र भी अलग नहीं हूँ । जिस तरह नटेश्वरस्वरूपमें आधा स्वरूप शिवजीका और आधा पार्वतीका होता है, पर शरीर एक ही होता है, इसी प्रकार सीता और रामचन्द्र भिन्न होते हुए भी एक ही हैं ।' एकनाथजीका कथन है—

माझें स्वरूप चैतन्य घन । सीता चिच्छक्ति सम्पूर्ण ॥
सीतेसी मज वेगळेंपण । अणुप्रमाण असेना ॥
अर्धनारी नटेश्वर । दो स्वरूपीं एक शरीर ॥
तेवीं सीता श्रीरामचन्द्र । अमितकार भिन्नत्वें ॥

एकनाथ महाराजने रामभक्तका 'भावार्थरामायण'में बड़ा सुन्दर विवेचन किया है । उन्होंने श्रीहनुमान्‌जीसे कहलाया है—

मनीं सतत भरली मूर्ति । चित्तें चिंतन अहोरात्रीं ॥
बुद्धीचा निश्चय रघुपती । संसार स्फूर्ति सांडोनियाँ ॥
नित्य निर्माल्य मिरवे शिरीं । चरणतीर्थ अभ्यंतरीं ॥
हरिप्रसाद ज्याच्या उदरीं । तो मूर्तिधारी श्रीराम ॥

'भक्तके हृदयमें निरन्तर भगवान्‌की मूर्ति विद्यमान रहती है । उसका चित्त रात-दिन भगवान्‌का चिन्तन करता रहता है । वह संसारसे प्रेम हटाकर रघुनाथजीसे प्रेम करता है । ऐसे भक्तको, जो अपने सिरपर देवतापर चढ़े फूल धारण करता है और उनका चरणतीर्थ हृदयमें धारण करता है तथा भगवान्‌का ही प्रसाद ग्रहण करता है, श्रीरामकी ही मूर्ति समझना चाहिये ।'

(११)

मोरोपन्त

महाकवि मोरोपन्त रामचरितमानसके रचयिता गोस्वामी तुलसीदासके मराठी प्रतिरूप थे । उन्होंने अपनी भक्तिमयी सुमधुर वाणीसे अपने समकालीन साहित्यको प्राणान्वित कर भगवान्‌का यशोगान गाया । वे भगवद्भक्त कवि थे । रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवतरूप कल्पतरुकी छायामें उन्होंने आजीवन विश्राम किया । उनका जन्म १७८६ वि०में पन्हालगढ़में हुआ था । उनके उपास्य भगवान् श्रीराम थे । अहमदनगरमें एक रामभक्त महात्मा रहते थे । उनके पास रामपञ्चायतनकी मूर्ति थी । भगवान् श्रीरामने उन्हें रातमें स्वप्नमें आदेश दिया कि 'मेरी इस मूर्तिकी पूजाके अधिकारी मोरोपन्त हैं, उनके पास मूर्ति पहुँचा दी जाय ।' महात्माने मोरोपन्तके पास मूर्ति पहुँचा दी ।

भगवान् रामके चरणोंमें उन्होंने अचल निष्ठा प्रकट की है । एक स्थलपर उनकी उक्ति है—'हे भगवन्! मेरी बड़ी इच्छा है कि आपके ही चरणोंकी सेवामें सदा मेरी रति बनी रहे ।'

मन हेंचि फार इच्छी: कीं आतां सेवणें तुझे पाय ।
तुज वाँचुनि इतराँच्या भजनीं मजलागिं होय फळ काय ॥

'मन्त्ररामायण'में मोरोपन्तने जड और जङ्गमको रामके विरह-दुःखमें निमग्न कर दिया; जिस समय लीला-मानव राम मर्यादावेशमें श्रीजानकीका अन्वेषण

रहे थे, उस समय पम्पासरोवरपर श्रीरामके आनेपर जड-चेतन सभी जीव शोकग्रस्त हो गये।

मोरोपन्तने एक स्थलपर कहा है कि 'श्रीरामका ही यश गाना चाहिये, उन्हींका ध्यान करना चाहिये। रामके ही चिन्तन और स्मरणमें तत्पर रहना चाहिये। उनके चरित्र अमृतमय हैं; सबको उनका सेवन करना चाहिये। श्रीराम दयाघन हैं। उनके सामने मैं प्रेमसे नाचता हूँ।'

श्रीरामातें गावें, श्रीरामातें ध्यावें। श्रीरामातें भावें। आठवावें॥
रामाचें चरित। अमृत-भरित। सेवावें त्वरित। सर्वांनींही॥
श्रीराम दयेच्च मेघ त्या समोर। प्रेमें दास मर। नाचताती॥

संवत् १८५१वि०की चैत्र पूर्णिमाको रामभक्त महाकवि मोरोपन्तने साकेतधाममें प्रवेश किया। जनताकी ओरसे उनके प्रशंसक भक्त पाण्डुरङ्ग नाइकने एक विशाल राममन्दिरका निर्माण उनके शुभ स्मरणके प्रतीक-स्वरूप कराया।

(१२)

केशवदास

आचार्य महाकवि केशवदासने श्रीवाल्मीकि-रामायण तथा अन्य प्रसिद्ध रामचरित्रपरक साहित्यसे सत्प्रेरणा प्राप्तकर अपने अगाध काव्यपाण्डित्यके बलपर स्वरचित 'रामचन्द्रिका'में भगवान् रामके परमपवित्र चरित्रका वर्णन किया है। महाकवि केशवदास गोस्वामी तुलसीदासके समकालीन थे। उन्होंने मध्यप्रदेशके ओरछानगरमें संवत् १६१२ वि०के लगभग अत्यन्त संस्कृतभाषानिष्ठ सनाढ्य ब्राह्मणकुलमें जन्म लिया था। ओरछानरेश रामसिंहके भाई महाराज इन्द्रजीतसिंह उनका बड़ा सम्मान करते थे। अपने कुल, जाति एवं विद्वत्ताके प्रति आचार्य केशवदासके मनमें बड़ा अभिमान था। उन्होंने आजीवन काव्य-चर्चा करते हुए १६७४ वि० के लगभग पार्थिव शरीरका त्याग कर दिया।

आचार्य केशवदासने संवत् १६५८वि०में 'रामचन्द्रिका'की रचना उन्तालीस प्रकाशोंमें पूरी की। केशवदासजीकी उक्ति है कि 'रामचन्द्रिका'को रचनेकी प्रेरणा स्वप्नमें उन्हें महर्षि आदिकवि वाल्मीकिसे मिली। स्वप्नमें ही केशवदासजीने उनसे सुख-प्राप्तिका उपाय पूछा। श्रीवाल्मीकिने कहा कि 'रामके ही नामसे सुख मिलेगा। यह नाम सत्यस्वरूप है।'

'राम नाम। सत्य धाम।'

(रामचन्द्रिका १। ९)

इस तरह आदिकविकी प्रेरणासे भगवान् रामको इष्ट मानकर उन्होंने 'रामचन्द्रिका'की रचना की। 'रामचन्द्रिका'में सम्पूर्ण रामचरित्रका यथाक्रम न्यूनाधिक वर्णन उपलब्ध होता है। प्रारम्भमें—प्रथम प्रकाशमें ही केशवदासने स्वरूप, रूप, गुण और नामकी महिमाके वर्णनमें एक छन्दमें ही संक्षिप्ततम ढंगसे रामकी सम्पूर्ण भगवत्ताका दर्शन कराया है—

पूरन पुरान और पुरुष पुरान परि-
परंन बतावैं न बतावैं और उक्ति कों।
दरसन देत जिन्हैं दरसन समुझैं न
नेति नेति कहैं वेद छाँड़ि भेद-जुक्ति कों॥
जानि यह 'केसोदास' अनुदिन राम राम
रटत रहत न डरत पुनरुक्ति कों।
रूप देहि अनिमाहि गुन देहि गरिमाहि
नाम देहि महिमाहि भक्ति देहि मुक्ति कों॥

(रामचन्द्रिका १। ३)

केशवदासजीका कथन है कि "सारे पुराण और प्राचीन ऋषि-महर्षि जिन्हें सब प्रकार पूर्ण बतलाते हैं और छहों दर्शनके मर्मज्ञ जिन्हें नहीं समझ पाते (जिनके सगुणरूपमें भक्तोंको दर्शन देनेका मर्म नहीं जान पाते) तथा चारों वेद जिन्हें 'नेति-नेति' कहकर अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं, मैं उन्हींका 'राम-राम' कहकर बार-बार नाम रटता रहता हूँ। यद्यपि काव्यकी दृष्टिसे यह पुनरुक्ति-दोष है, पर मुझे इस दोषका भय नहीं है। श्रीरामके रूपका दर्शन अणिमा-सिद्धि प्रदान करता है, उनके गुण-कथनसे गरिमा और भक्तिसे महिमा-सिद्धिकी प्राप्ति होती है। श्रीरामके नाम-जपसे मुक्ति मिलती है।"

'रामचन्द्रिका'का प्रारम्भ अयोध्यामें श्रीविश्वामित्रके आगमनसे होता है तथा काव्यका उपसंहार करते हुए महाकवि केशवने श्रीरामद्वारा पुत्रों तथा भतीजोंको राज्यरक्षा-नीतिका उपदेश दिलाया है। विवेक और वैराग्यके सिंहासन-पर अधिष्ठित साक्षात् विदेहजनकजीने भगवान् रामके स्वरूप-के विवेचनमें जो उद्गार प्रकट किये हैं, वे केशवदासजीके पाण्डित्य और काव्य-आचार्यत्वके विशिष्ट निदर्शन हैं। जनकने श्रीरामका दर्शन कर कहा—

सिद्ध समाधि सजैं अजहूँ न कहूँ जग जोगिन देखन पाई,
रुद्र के चित्त-समुद्र बसै नित ब्रह्महु पै बरनी नहिं जाई

रूप न रंग न रेख बिसेष अनादि अनंत जु बेद न गाई,
केसव गाधि के नंद हमैं वह ज्योति सो मूरतिवंत दिखाई ॥
(रामचन्द्रिका ६ । १८)

"विश्वामित्रजीने हमें वही दिव्य ज्योति साक्षात् दिखा दी, जिसका दर्शन करनेके लिये सिद्धलोग समाधि लगाते हैं, योगियोंने साधना करके जिसको साकाररूपमें कभी नहीं देखा, जो सदा महादेवजीके मन-समुद्रमें ही निवास करती है, जिसका ठीक-ठीक वर्णन करनेमें ब्रह्मा भी क्षम नहीं हैं, जिसका न रूप है न रंग है और न कोई चिह्न अथवा आकार-प्रकार ही है। वेदोंने जिसका वर्णन 'अनादि और अनन्त' कहकर किया है। निर्गुण, निराकार भगवान् विश्वामित्रजीकी कृपासे रामरूपमें हमारी दृष्टिमें बस गये।"

'रामचन्द्रिका'के छठे प्रकाशमें ही केशवदासजीने श्रीरामके साङ्गोपाङ्ग नख-शिखका वर्णन किया है तथा सीताजीकी शोभा निरूपित की है। 'रामचन्द्रिका'में केशवदासके राम-कथा-वर्णन-क्रममें कहीं-कहीं अनुपम उक्ति-वैचित्र्यका दर्शन होता है, जो सर्वथा मौलिक है और उनके अद्भुत काव्याचार्यत्वका परिचायक है। रावण सीताको हरकर ले जा रहा था। जानकीजीने एक पर्वतपर पाँच बन्दरोंको बैठे देखा। उन्होंने अपने चरण-कमलोंके नूपुर, जो सुवर्ण-निर्मित थे तथा जिनमें नीलम जड़े हुए थे, अपनी ओढ़नीमें बाँधकर भूमिपर फेंक दिये। केशवदासजीका कथन है कि 'मुझे तो ऐसा लगता है—मानो सुग्रीवके घर राजलक्ष्मीका प्रस्थान रखा गया हो।' सुग्रीवको थोड़े दिनोंके बाद ही वालीके वधके उपरान्त किष्किन्धाकी राज्यश्री मिलनेवाली थी—इस प्रसङ्गकी ही ओर कविके उपर्युक्त कथनका लक्ष्य है।

सीता के पदपद्म के नूपुर-पट जनि जानु।
मनहु करयो सुग्रीव-घर राजश्री प्रस्थानु ॥
(रामचन्द्रिका १२ । २५)

केशवदासजीने रामराज्यके रूपका एक दोहेमें बड़ा ही भव्य वर्णन किया है। उनकी उक्ति है—'रामजीके राज्यकालमें सप्तद्वीपवती पृथ्वी, धनदलोक तथा सुरलोकसहित सातों लोकोंकी सम्पत्ति पृथ्वीपर निवास करती थी।'

धनदलोक सुरलोकमय सप्तलोक के साज।
सप्तद्वीपवति महि बसी रामचन्द्र के राज ॥
(रामचन्द्रिका २८ । १९)

रामराज्यमें सभी लोग सुखी थे। अपनी 'रामचन्द्रिका'का समापन करते हुए केशवदासजीने उसके श्रवण और पाठके फलके सम्बन्धमें कहा है—

असेष पुन्य पाप के कलाप आपने बहाइ।
बिदेह राज ज्यों सदेह भक्त राम को कहाइ ॥
लहै सुभुक्ति लोक लोक अंत मुक्ति होहि ताहि।
कहै, पढ़ै, सुनै, गुनै, जु . रामचन्द्र-चन्द्रिकाहि ॥
(रामचन्द्रिका ३९ । ३९)

इस पाठ-श्रवणफल-निर्धारणमें अपने इष्टदेव भगवान् श्रीरामके प्रति उनकी भक्ति और निष्ठाका परिचय मिलता है। महाकवि केशवदासका कथन है कि "जो व्यक्ति इस 'रामचन्द्रिका'को कहेगा, पढ़ेगा, सुनेगा और गुनेगा वह अपने पाप-पुण्य—सबसे परे होकर राजा जनककी तरह इसी देहसे 'रामभक्त' कहलाता हुआ भुक्ति-मुक्तिकी यथाक्रम प्राप्ति करेगा।"

(१३)

रामानुजन् एषुत्तच्छन्

महाकवि रामानुजन् एषुत्तच्छन् रामकथाके गम्भीर रसिक थे। वे मध्यकालीन मळयालम-साहित्यके महान् संतकवि और धर्मगुरुके रूपमें प्रसिद्ध थे। उन्होंने मळयालम भाषामें रामकथाका वर्णन कर असंख्य लोगोंकी श्रद्धा अर्जित की। संस्कृत भाषामें रचित 'अध्यात्मरामायण'को उन्होंने मळयालममें स्वरचित 'अध्यात्मरामायणम्'का आधार बनाया। केरलमें घर-घरमें 'अध्यात्मरामायणम्' का पठन-पाठन होता है। वे रामचरितमानसके रचयिता गोस्वामी तुलसीदासके समकालीन थे।

एषुत्तच्छन्ने श्रीविष्णुके अवतार भगवान् रामकी भगवत्ताका बड़ी भक्ति और निष्ठासे महत्त्व-गान किया है। श्रीरामसे उन्होंने देवर्षि नारदके प्रति एक स्थलपर कहलाया है—

नाळीकलोचनन् पादद्वन्द्वं तन्नाण।
पिन्नेच्चतुर्दश संवत्सरं वनं
तन्निल् मुनिवेषमोटु वाणीटुवन् ॥
एन्नाल् निशाचरवंशत्तं रावणन्
तन्नेयुं कोन्नु मुटिक्कुन्नतुण्टल्लो।
सीतये कारणभूतयाक्कि कोण्टु
यातुधानान्वयनाशं वरुत्तुवन् ॥

"भगवान्‌के चरणकमलोंकी शपथ लेकर मैं कहता हूँ कि मुनिवेष धारणकर मैं चौदह वर्षतक वनमें निवास करूँगा

और राक्षसवंशके साथ-ही-साथ रावणका नाश कर दूँगा। मेरा यह वचन सत्य है कि सीतादेवीको केवल निमित्त बनाकर मैं राक्षसवंशका सर्वनाश कर डालूँगा।'

यद्यपि महाकवि एपुत्तच्छन् भगवान् रामके अनन्य भक्त थे, तथापि मर्यादापुरुषोत्तमद्वारा वालीका वध होनेपर वे इस भगवत्कार्यसे चिन्तित हो उठे और ताराके मनमें शङ्का उपस्थितकर श्रीरामके शब्दोंद्वारा समाधान प्रस्तुत कर आत्मसंतोषका उन्होंने रास्ता निकाला। श्रीरामने ताराको समझाया—

चित्ते निनक्कु कषिञ्ञजन्मत्तिन्क-
लेन्नयुं भक्तिमुण्टेन्कलतुकोण्ड्।
रूपवुमेवं निनक्कु काट्टित्तन्नु
ताप मिनिक्कळञ्ञालुमशेषं नी॥
मद्रूपमीदृशं ध्यानिच्चु कोळ्क्युं
मद्वचनत्ते विचारिच्चु कोळ्क्यु।
चेय्ताल् निनक्कु मोक्षं वरुं निर्णयं।
कैतवमल्ल परञ्ञतु केवलं॥

'तारे! तुम्हारे हृदयमें पिछले जन्ममें ही मेरे प्रति बड़ी भक्ति थी। इसीसे मैंने तुमको अपना यह रूप दिखाया है। अपने मनका सारा दुःख दूर करो। मेरे इस सुन्दर रूपका ध्यान करती रहो। मेरे वचनोंका सदा ध्यानपूर्वक स्मरण करो, इससे तुमको निस्संदेह मुक्ति मिलेगी। मेरे कथनमें तनिक भी असत्यका अंश नहीं है।'

महाकवि एपुत्तच्छन्‌की श्रीरामभक्ति उच्च कोटिकी थी।

(१४)

कुमार वाल्मीकि

निस्संदेह वही प्राणी धन्य और पूज्य है, जिसकी वाणी भगवद्रसमयी होती है। जब महान् पुण्यका उदय होता है, तभी प्राणी श्रीरामनामरूपी अमृतरसका स्वयं आस्वादन कर दूसरोंको भी उसका स्वारस्य प्रदान करता है। कन्नड भाषामें महाकवि वत्तलेश्वरने रामायणकी रचना की। यह रामायण बहुत ही लोकप्रिय है। रामायणकी रचना करनेके नाते वत्तलेश्वरको 'कुमार वाल्मीकि' कहा जाता है। कुमार वाल्मीकिका नाम नरहरि भी बताया जाता है। वे कन्नड प्रदेशके तोरवे ग्रामके रहनेवाले थे, इसलिये उनके द्वारा रचित रामायणको 'तोरवे-रामायण' कहा जाता है। यद्यपि कुमार वाल्मीकिने 'अध्यात्मरामायण' और 'आनन्दरामायण'के अनेक प्रसङ्गोंसे इस रचनामें प्रेरणा ली है, तथापि उनकी रचनाका मूल आधार श्रीवाल्मीकि-रामायण है। उन्होंने सोलहवीं शती (विक्रमीय संवत्) में रामायणका प्रणयन किया। यह रचना श्रीराघवेन्द्रके प्रति सरस भक्तिसे समृद्ध है। इस रामायण-काव्यमें भगवान् रामकी महिमाका कविने बड़ी श्रद्धासे विस्तार किया है।

श्रीरामके पवित्र उदात्त चरित्रका 'तोरवे-रामायण'में बड़ा ही संयत और मर्यादित वर्णन किया गया है। श्रीभरत-के राज्याभिषेक और भगवान् रामके वनगमनके समाचारसे श्रीलक्ष्मणजी क्रोधवशे क्षुब्ध हो उठे। श्रीरामने उनको समझाया। राज्यपदकी श्रीरामने श्रीलक्ष्मणके सामने मार्मिक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहा—

शोधिसि हेसागि पितृवच—
नोदयवनेले तम्म निन्द महा-
दुराग्रह तारदिरदपयशव नमगेंद॥
कालवावुदु नोडु नेरेदिह
मेलणवरारीक्षिसनृतके
सोलहुदे तम्म तंदेय मातिनतिगळेहु।
मेले कावैश्वर्यवदु ता
कीळुमाडदे नम्मनी जन
नाळु नगुवुदु पितननुज्ञेये राज्यपदवेंद॥

'भैया! तुम्हीं अच्छी तरह सोचो कि पिताजीने किस परिस्थितिसे प्रेरित होकर ये वचन कहे हैं। तुम्हारा यह महाकोप हमारे अपयशका कारण हुए बिना नहीं रहेगा। समय और परिस्थिति तो देखो! हम अनृतके सामने सिर झुकायें, हार मान लें? पिताजीके वचनोंको ठुकराकर ऊर्ध्वके शाश्वत ऐश्वर्य (यश) को नीचा कर दें? हमें देखकर जनसमूह हँसेगा। पिताजीकी आज्ञा ही सच्चा राज्यपद है।'

श्रीविभीषणद्वारा भगवान् रामकी शरणागतिका वरण करनेपर श्रीहनुमान्‌जीने उनके विषयमें सद्विचार व्यक्त किया। श्रीरामने प्रसन्न होकर हनुमान्‌जीके सामने राजाके कर्तव्यका जो वर्णन किया है, उसमें वेदमर्यादित राज्यधर्मका बड़ा सुन्दर आदर्श संनिहित है—

धुरदोळिदिरादवरनिरि वुदु
शरणुहोक्कर सलहुवुदु पति
करिसुवुदु धर्मवनुधर्मवनळिवुदवनियळि

अरसुगळिगिद्दु नयविनितु गो-
चरिसदिरे हगरणद नाटक-
दरसरेनिसरे जगदर्ळेदनुनगुत रघुनाथ ॥

'युद्धमें सामना करनेवालेको मारना, शरणागतजनोंकी रक्षा करना, अधर्मको दूरकर पृथ्वीमें धर्मकी प्रतिष्ठा करना राजाओंका कर्तव्य है। ऐसा न करके व्यर्थ बड़बड़ानेवाले जगत्में क्या राजा कहलानेयोग्य हैं? रामने ये वचन हँसते हुए कहे।'

महाकवि कुमार वाल्मीकिने 'तोरवे-रामायण'में भगवान् रामके परम पवित्र यशका गानकर कन्नड़-साहित्यकी बड़ी अमूल्य सेवा की। उनकी रामभक्ति धन्य थी।

(१५)

रहीम खानखाना

रहीम खानखाना मध्यकालीन भारतीय इतिहासके सम्राट् अकबरद्वारा रोपित राजनीतिक औदार्य-वृक्षके साहित्यिक फल थे। मुसल्मान होते हुए भी उन्होंने भगवान् राम और कृष्णके प्रति जो श्रद्धा प्रकट की है, वह मध्यकालीन आध्यात्मिक चेतनाकी प्रमुख आधार-शिलाओंमें विशिष्ट स्थान रखती है।

गोस्वामी तुलसीदास और महात्मा सूरदासद्वारा प्रवर्तित भगवान् राम और श्रीकृष्णकी सगुण भक्तिधारासे रहीमका कविहृदय यथेष्ट प्रभावित था। गोस्वामी तुलसीदास और रहीम—एक दूसरेसे विशेष प्रभावित थे।

रहीम खानखानाका जन्म १५५६ ई०में हुआ था तथा मृत्यु १६२७ ई०में हुई। उन्होंने श्रीराम-कृष्णकी शरणागतिसे जीवनको अभय कर लिया। उन्होंने मनको समझाया—

भजि मन राम सियापति, रघुकुल ईस।
दीनबन्धु दुख टारन, कौसलधीस ॥

रहीम खानखानाने भगवान् रामकी प्रभुता, शरणागत-वत्सलता और लीला आदिका चिन्तन बड़े निष्पक्ष और निर्मल हृदयसे किया है। उन्होंने अपने-ऐसे अधमका उद्धार करनेकी विनम्र प्रार्थना की है—

बेद पुरान बखानत अधम उधार।
केहि कारन करुनानिधि करत बिचार ॥

भगवान् रामके चरणदेशमें रहीम खानखानाने अटल विश्वास और प्रगाढ़ श्रद्धा समर्पितकर शरणागतिकी परिपुष्टि की। उनकी सुदृढ़ धारणा थी कि श्रीरामकी कृपासे ही पूर्ण परमगतिकी प्राप्ति होती है तथा सारी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं—

रहिमन धोखे भाव से, मुख तें निकसें राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम ॥

उन्होंने स्पष्ट कहा कि 'संसार-सागरसे पार उतरनेका एक-मात्र उपाय श्रीरामकी शरणागति ही है। वे कृपामय प्रभु जगत्की विषय-वासनासे प्राणीको मुक्तकर उसे अपनी भक्ति प्रदानकर निर्भय कर देते हैं।' उनका कथन है—

गहि सरनागति राम की भवसागर की नाव।
रहिमन जगत-उधार कर और न कछू उपाव ॥

रहीम खानखानाने कहा कि 'सर्वसमर्थ रघुवीर ही हमारे समस्त दुःखोंका नाश करते हैं। जगत्के लोग तो हमारे दुःखी होनेकी बात जानकर हँसते हैं, उनका तो कुछ भरोसा ही नहीं किया जा सकता।'

दुख नर सुनि हाँसी करैं, धरत रहीम न धीर।
कही सुनैं, सुनि-सुनि करैं, ऐसे वे रघुबीर ॥

रहीम खानखानाने भगवान् रामकी लीलाओंका स्मरण कर अनेक दोहोंकी रचना की, जिनमें उनकी भक्तिभावना-का स्पष्ट चित्राङ्कन उपलब्ध होता है। श्रीरामके लीला-प्रसङ्गोंके स्मरणसे वे मानव-जीवनकी समस्याओंका समाधान प्रस्तुत करते हैं। श्रीरामके प्रति भरतजीके प्रगाढ़ प्रेमके वर्णनमें उनकी उक्ति है कि 'गुरुकी—बड़ेकी आज्ञा होनेपर भी अनुचित वचन नहीं मानना चाहिये। श्रीरामने भरतजीको अयोध्या लौटकर राज्य-संचालनका आदेश दिया, भरतजीने यह वचन नहीं माना। वे उनकी चरण-पादुकाको माध्यम बनाकर, नन्दिग्राममें निवास कर, तपस्यामय जीवन अपना-कर अयोध्याका राज्य-कार्य चलाने लगे और यों करनेसे भरतजीका सुयश बढ़ गया'—

अनुचित बचन न मानिये जदपि गुरायसु गाढ़ि।
है रहीम रघुनाथ ते, सुजसु भरत को बाढ़ि ॥

श्रीरामके चित्रकूट-निवासके सम्बन्धमें उनका निम्नो-द्धृत दोहा यह स्पष्ट करता है कि 'जिस प्राणीपर विपत्ति पड़ती है, वही चित्रकूटमें आता है।'

चित्रकूट में रमि रहे रहिमन अवध-नरेस।
जा पर बिपदा परत है, सो आवत यहि देस ॥

भगवान् रामद्वारा अहल्या-उद्धारके पावन प्रसङ्गके स्मरणमें रहीम खानखानाकी बड़ी मार्मिक भक्तिमयी उक्ति है—

धूर धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पतनी तरी, सो ढूँढ़त गजराज॥

साधारण-सी बातमें असाधारण भक्तितत्त्वका निरूपण रहीमके भगवत्प्रेमका अमिट प्रतीक है।

मुनि नारी पाषान ही, कपि पसु, गुह मातंग।
तीनों तारे रामजू, तीनों मेरे अंग॥

—इस एक दोहेमें रहीम खानखानाने अहल्या, कपि, गुह-निषादके प्रसङ्गका स्मरण दिलाते हुए अपने-आपको जगत्-सागरसे तार देनेके लिये भगवान् रामसे याचना की है। श्रीराम-भक्तिका वर्णन कर रहीमकी वाणी धन्य हो गयी।

(१६)

रामपारशव

दक्षिणभारतके कोचीन प्रदेशमें इरिञ्जलकूट नामके नगरमें 'कूटलमाणिक्य'-मन्दिरमें भगवान् संगमेशकी प्रतिमा प्रतिष्ठित है। महाकवि रामपारशवने विक्रमीय सत्रहवीं शताब्दीमें अपने आराध्यदेव भगवान् संगमेशकी प्रसन्नताके लिये ५५० श्लोकोंमें 'श्रीरामपञ्चशती' नामक स्तोत्र-काव्यकी संस्कृतभाषामें रचना की। यह काव्य सम्पूर्ण वाल्मीकिरामायणमें वर्णित रामचरितपरक प्रधान घटनाओंका संक्षिप्त रूप है। भगवान् संगमेश—नन्दिग्राममें तपस्वीरूपमें स्थित श्रीभरतको ही राम मानकर कविने रामपञ्चशतीके श्लोक उन्हींके प्रति सम्बोधित किये हैं। यह ध्यान देनेकी बात है कि उपर्युक्त मन्दिरमें श्रीराम कहीं उपदेवताके रूपमें भी प्रतिष्ठित नहीं हैं; कविने भरत और राममें अभेद-भाव ही रखनेका अपने सम्पूर्ण काव्यमें सफल प्रयास किया है। कविकी मान्यता थी कि भगवान् राम ही भरतके वेषमें 'संगमेश' नामसे मन्दिरमें प्रतिष्ठित हैं।

कहा जाता है कि नन्दिग्रामसे ब्राह्मणोंको भगवान् परशुराम केरल ले आये। कविने भरतवपु भगवान् संगमेश रामसे निवेदन किया कि 'जिस तरह श्रीभरतजीने नन्दिग्राममें ब्राह्मणोंकी रक्षा की, उसी तरह आप हमारी रक्षा करें, हमारा संताप नष्ट करें।'

निर्निद्रान् विधिषु भवद्रतान् द्विजेन्द्रान्
नन्दिग्रामगत इव भार्गवोपहूतान्।
त्वं तादृग्भरतवपुर्धिनोषि सोऽस्मत्-
संतापं व्यपनय संगमालयेश॥

(रामपञ्चशती १३। १०)

रामपारशव उच्चकोटिके कवि थे, कल्पना और काव्योचित अलंकार, रस, भाव आदिके पण्डित थे। उनका काव्य-पाण्डित्य अगाध था। विश्वामित्रके साथ उनकी यज्ञ-रक्षाके लिये उनके पीछे-पीछे रामके अयोध्यासे गमनका प्रसङ्ग है। अयोध्याकी स्त्रियाँ रामके ऊपर लावा निछावर कर रही थीं। कविकी कल्पना है कि ये लावे श्रीरामकी प्रसिद्धिलताके बीज थे—

प्रतिपलवलितास्यं प्रेक्षमाणं मुनीन्द्रं
सविनयमनुयान्तं त्वां तदा पौरनार्यः।
ववृषुरुपरि सौधव्रातवातायनस्थाः
किमु रघुवर! लाजैः कीर्तिवल्ल्या नु बीजैः॥

(रामपञ्चशती ६। ४)

भगवान् संगमेशकी उपासना करनेवालेको फिर माँका दूध नहीं पीना पड़ता, उसका पुनर्जन्म नहीं होता; वह भगवान् रामके दास्य-भावकी प्राप्ति कर, जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो, मुक्तिपदमें समस्थित हो जाता है—इस तरहकी भाव-अभिव्यक्तिमें श्रीरामपञ्चशतीकारकी भक्तिभावनाके रूपका पता चलता है। कविकी भगवान् संगमेशमें अपार तथा प्रगाढ़ भक्ति थी। काव्यके प्रारम्भमें रामपारशवकी स्वीकृति है—

शृण्वन् यद्गुणमुद्गृणन् यतमना यं चिन्तयन् संततं
तन्वन्नर्चनवन्दने भजति यो यस्यैव दास्यं गतः।
धन्योऽसौ मनुजः कदापि न पुनः स्तन्यं जनन्याः पिबेत्
तं नाथं जगतां नमामि शिरसा श्रीसंगमेशं हरिम्॥

(रामपञ्चशती १। २)

महाकवि रामपारशवने अपनी रामपञ्चशती-रचनामें श्रीरामकी भक्तिका सरस निरूपण किया है। उनका जीवन रामभजनका प्रतीक था।

(१७)

सेनापति

महाकवि सेनापतिको मध्यकालीन हिंदी काव्य-जगत्में विशिष्ट तथा गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है; उन्होंने भगवान् राम और भगवान् कृष्णका गुणगान कर अपनी वाणी पवित्र कर ली। महाकवि सेनापति रामकथा-निरूपणके क्षेत्रमें

श्रीवाल्मीकिरामायणसे विशेष प्रभावित थे। भगवान् रामके नाममें उन्होंने अपूर्व निष्ठा व्यक्त की है—

सिव जू की निद्धि, हनुमानहू की सिद्धि,
बिभीषन की समृद्धि वालमीकि नैं बखान्यौ है।
बिधि कौ अधार, चार्‌यौ वेदन कौ सार, जप-
जग्य कौं सिंगार, सनकादि उर आन्यौ है॥
सुधा के समान, भोग मुकति निधान,
महामंगल निदान सेनापति पहिचान्यौ है।
कामना कौं कामधेनु, रसना कौं बिसराम,
धरम कौ धाम रामनाम जग जान्यौ है॥

(कवित्तरत्नाकर ४। ७५)

भक्ति-सिद्धान्तकी दृष्टिसे वे रामभक्त कवि थे। उन्होंने भगवान् रामके ऐश्वर्य, सौन्दर्य और माधुर्यसे अपने काव्यका श्रृङ्गार किया है। वे भगवान् रामको ही अपना सर्वस्व समझते थे। उनका कथन है—

बानियै बखान जाकी हुंडी न फिरेति सोई
नाहु सिय रानीजू कौ साहु सेनापति कौ॥

महाकवि सेनापतिके दो ग्रन्थ 'काव्यकल्पद्रुम' और 'कवित्तरत्नाकर' हैं। 'कवित्तरत्नाकर'की रचना उन्होंने संवत् १७०६ वि०में की। 'कवित्तरत्नाकर'में ही उन्होंने 'रामायण' और 'रामरसायन'के शीर्षकके अन्तर्गत रामकथा और भगवान् रामके यशका वर्णन किया है। उनका दृढ़ विश्वास था कि भगवान् रामके भजनसे सारे मनोरथ अनायास पूर्ण हो जाते हैं—

चाहत है धन जौ तू, सेठ सियारमन कौं,
जातैं बिभीषन पायौ राज अबिचल है।
चाहै जौ अरोग, तौ सुमिरि एक ताही, जिन
मर्‌यौ फेरि ज्यायौ साखामृगन कौ दल है॥
चाहै जौ मुकति जोहै पति रघुपति, जिन
कोसल नगर कीनौ मुकत सकल है।
'सेनापति' ऐसे राजा राम कौं बिसारि जो पै,
और कौं भजन कीजै, सो धौं कौन फल है॥

(कवित्त० ५। ९)

उन्होंने रामायणकी अविच्छिन्न परम्परा अक्षुण्ण रखते हुए भगवान् रामका गुणगान किया है। उनकी स्वीकृति है—

गाई चतुरानन, सुनाई रिषि नारद कौं,
संख्या सत-कोटि जाकी कहत प्रबीने हैं।
नारद तैं सुनी बालमीकि, बालमीकि हू तैं
सुनी भगतन, जे भगति-रस भीने हैं॥
एती रामकथा ताहि कैसे कै बखानैं नर,
जातैं ये बिमल बुद्धि, बानी के बिहीने हैं।
'सेनापति' यातैं कथाक्रम कौं प्रनाम करि,
काहू-काहू ठौर के कवित्त कछू कीने हैं॥

(वही, ४। ६)

उन्होंने यह बात स्पष्ट कर दी है कि उन्होंने केवल कुछ ही प्रसङ्गोंका अपनी रामायणपरक रचनामें सदुपयोग किया है। उन्होंने अपनी रामकथाकी उपमा गङ्गाजीकी धारासे दी है—

'तीरथ सरब सिरोमनि सेनापति जानी
राम की कहानी गंगा-धार-सी बखानी है।'

(वही, ४। ७६)

महाकवि सेनापतिद्वारा वर्णित रामकथामें भगवान्‌के लोकोपकारी गुणोंका सुचारु चिन्तन उपलब्ध होता है। श्रीराम सुखके परमधाम हैं। शार्ङ्गधनुषको धारणकर वे दानवोंका नाश करते हैं। वे सोलह कलाओंसे युक्त परब्रह्म परमेश्वर हैं। सेनापतिके वचन हैं—

बीर महाबली धीर धरम-धुरंधर हैं,
धरा मैं धरैया एक सारंग-धनुष कौ।
दानौ दल मलन, मथन कलिमलन कौ,
दलन है देव-द्विज-दीननि के दुःख कौ॥
जग अभिराम, लोक-वेद जाकौ नाम, महा-
राज-मनि राम, धाम 'सेनापति' सुख कौ।
तेज पुंज रूरौ, चंद सूरौ न समान जाके
पूरौ अवतार भयौ पूरन पुरुष कौ॥

(वही, ४। ७)

महाकवि सेनापतिने महावीर हनुमान्‌जीकी रामभक्तिकी बड़ी प्रशंसा की है; उन्होंने हनुमान्‌जीको राम-भजनके रसका अपूर्व मर्मज्ञ बताया है और श्रीरामकी ही सेवाके लिये उनके चरणदेशमें समर्पित-जीवनकी महिमा गायी है—

भए हैं भगत भगवंत के भजन रस,
है रहे बिवेकी, जग जान्यौ जिन सपनौ।
सेवा ही के बल, सेवा आपनी कराई, पुनि
पायौ मनोरथ, सद काहू अप-अपनौ॥
यह अद्भुत सेनापति है भजन कोई,
कह्यौ न बनत तन-मन कौ अरपनौ।

जैसो हनुमान जान्यौ भजन कौ रस, जिन
　राम के भजन ही लौं जीबौ माँग्यौ अपनौ ॥
　　　　　　　　　　　　　　(वही, ४ । ६९)

सेनापतिके राम सर्वसमर्थ हैं, सर्वज्ञ हैं, सम्पूर्ण भगवान् हैं। वे भवसागरसे पार उतारनेवाले प्रभु हैं। उन्होंने रावणके मदका नाश कर अपने भक्तों—स्वजनोंकी आनन्दवृद्धि की। वे राजराजेश्वर राघवेन्द्र समस्त विश्वका मङ्गल करनेवाले हैं—

भूपित रघुबर बंस भक्तबत्सल भव खंडन।
मुनि-जन-मानस-हंस, बिहित सीता-मुख-मंडन ॥
त्रिभुवन पालन धीर, बीर रावन मद गंजन।
उदित बिभीषन भाग, धेय निज परिजन रंजन ॥
सुरपति नरपति भुजगपति सेनापति बंदित चरन।
राजाधिराज जय जय सदा राम बिस्व मंगल करन ॥
　　　　　　　　　　　　　　(वही, ४ । ३)

महाकवि सेनापतिने परममङ्गलमयी रामकथाका वर्णन कर अपनी वाणी ही नहीं पवित्र कर ली, प्रत्युत रामभक्तिका वर्णन कर लोककल्याणकी साधना भी की।

(१८)

पद्माकर

हिंदी-साहित्यके मध्यकालके तीसरे चरणकी रीति-कालीन कविताके क्षेत्रमें महाकवि पद्माकरको गौरवपूर्ण तथा विशिष्ट स्थान प्राप्त है। उनके काव्यमें महाकवि देवके शब्द-सौन्दर्य, महाकवि मतिरामके भाव-माधुर्य और महाकवि सेनापतिके अलंकार-संयोजन-नैपुण्यका एक ही साथ दर्शन होता है। तत्कालीन बड़े-बड़े राजाओंसे उनका सम्बन्ध था; ग्वालियरके दौलतराव सिंधिया और जयपुरके प्रतापसिंहके पुत्र महाराज जगतसिंह आदि उनका बड़ा सम्मान करते थे। महाकवि पद्माकरने परम पवित्र तैलंग ब्राह्मणकुलमें संवत् १८१० वि०में उत्तरप्रदेशके बाँदा जनपदमें जन्म लिया और १८९० वि०में उन्होंने परलोकके लिये प्रस्थान किया। उन्होंने अपने काव्य 'जगद्विनोद'में भगवान् श्रीकृष्ण-की लीलाओंको फुटकर पदोंमें काव्यरूप प्रदान किया। इसी तरह राज्यवैभवपूर्ण जीवनके प्रति विरक्तिका परिचय देते हुए अमित पश्चात्तापपूर्ण ढंगसे भगवान् रामकी भक्तिका अवलम्ब ग्रहणकर 'प्रबोधपचासा' ग्रन्थकी रचना की तथा इस रचनाके पहले उन्होंने अपने रोग-निवारणके लिये श्रीवाल्मीकिरामायणमें वर्णित भगवान् रामके चरित्रको ध्यानमें रखकर 'रामरसायन' काव्यका भक्तिपूर्ण हृदयसे वर्णन किया और आरोग्य-लाभ किया। 'प्रबोधपचासा' की कविताओंके सूक्ष्म अध्ययनसे उनकी प्रगाढ़ रामभक्तिका पता चलता है। महाकवि पद्माकरके इष्टदेव भगवान् राम थे। 'प्रबोधपचासा' काव्यमें उन्होंने जगत्‌के विषयभोगके प्रति वैराग्य और भगवान् रामके प्रति अचल भक्तिका भाव अभिव्यक्त किया है। उन्होंने जीवनमें भगवान् रामके नामको ही महत्त्व दिया, जगत्-सम्बन्धी काममें उनकी गौण दृष्टि थी। एक स्थलपर उनकी उक्ति है—

'कहाँ नाम श्रीराम को, कहाँ काम की बात ॥'
　　　　　　　　　　　　　　(पद्माभरण १४९)

'पद्माभरण' ग्रन्थमें भी अलंकार-वर्णनके माध्यमसे महाकवि पद्माकरने अनेक उदाहरणोंमें भगवान् रामके पुण्यचरित और लीलाका स्मरण कर अपनी वाणी पवित्र की थी। अपने पवित्र काव्यग्रन्थ 'जगद्विनोद'के कई पदोंमें करुण, वीर, रौद्र और शान्तरसके उदाहरणोंके प्रसङ्गमें उन्होंने राम तथा हनुमान्‌जीके सम्बन्धमें अनेक भक्तिपूर्ण पद प्रस्तुत किये थे। एक पदमें प्राण-त्यागके रूपपर प्रकाश डालते हुए उन्होंने भगवान् रामके कार्यको पूरा करनेके लिये अपना प्राण-त्याग करनेवाले जटायुकी चित्तवृत्तिका उल्लेख कर पवित्र सीख दी है—

जानकी को सुनि आरतनाद सु जानि दसानन की छलहाई।
त्यों 'पदमाकर' नीच निसाचर आइ अकास में आड्यो तहाँई ॥
रावन-ऐसे महारिपु सों अति जुद्ध कियो अपने बल ताईं।
सोहत श्रीरघुराज के काज पै जीव तजै तौ जटायु की नाईं ॥
　　　　　　　　　　　　　　(जगद्विनोद ५४७)

महाकवि पद्माकरने राज्यदरबारोंमें जाकर राजाओंको अपनी काव्य-प्रतिभासे प्रसन्न करनेमें जीवनका अधिकांश लगा दिया, पर उन्हें कहीं भी वास्तविक विश्रामकी प्राप्ति नहीं हो सकी। इसके लिये उनके मनमें सदा पश्चात्तापका भाव बना रहा। उनकी स्वीकृति है

भोग में रोग, वियोग सँयोग में, जोग में काय-कलेस कमायो।
त्यों 'पदमाकर' बेद पुरान पढ़्यो पढ़ि कै बहु बाद बढ़ायो ॥
दौरयो दुरास में, दास भयो पै कहूँ बिसराम को धाम न पायो।
कायो गमायो सु ऐसे ही जीवन हाय मैं राम को नाम न गायो ॥
　　　　　　　　　　　　　　(जगद्विनोद ९०२)

अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें महाकवि पद्माकरने 'प्रबोध-पचासा'की रचना की। इसमें श्रीरामसम्बन्धी पचास पदोंमें उन्होंने अपने जीवनकी करुण चित्रावली प्रस्तुत कर इष्टदेव भगवान् रामके चरणमें अचल निष्ठा व्यक्त की। उन्होंने एक कवित्तमें कहा है कि 'रामरूपका ध्यान कर लेनेके बाद मनको फिर किसी दूसरे प्राणी-पदार्थका ध्यान नहीं करना पड़ता और रसनासे राम-नाम गानेके बाद फिर किसी दूसरेका गुणानुवाद करना नहीं रह जाता।'

ध्यायो रामरूप तब ध्याइबो रह्यो न कछू,
गायो रामनाम, तब गाइबो कहा रह्यो॥
(प्रबोध-पचासा—१०)

एक कवित्तमें महाकवि पद्माकरने श्रीरामके प्रति निवेदन किया है—'मुझे बड़ा भय लग रहा है कि आप किस तरह मेरे-ऐसे महापापीको संसार-सागरसे पार उतारेंगे। आपने सीता-जैसी पवित्र पतिव्रता निष्कलङ्क सतीका त्याग कर दिया। मैं तो सच्चे अर्थमें कलङ्की हूँ; फिर आप मुझे अपने चरणमें स्थान देंगे या नहीं, यह सोचकर मैं बहुत चिन्तित हूँ।' भक्तकविकी वाणी है अपने इष्टदेव रामके प्रति—

ब्याध हू तें बिहद असाधु हौं अजामिल तें,
ग्राह तें गुनाही, कहौ, तिन में गनाओगे।
स्यौरी हौं न सुद्र हौं, न केवट कहूँ को, त्यौं न
गौतमी तिया हौं, जापै पग धरि आओगे॥
राम सों कहत 'पदमाकर' पुकारि तुम
मेरे महापापन को पार हू न पाओगे।
सीता-सी सती को तज्यो झूठोई कलंक सुनि,
साँचोई कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे॥
(प्रबोध-पचासा—१५)

जीवनकी भक्तिपूर्ण यापन-पद्धतिका विधान महाकवि पद्माकरने विदेहसुतापति भगवान् रामके चिन्तनमें चित्तको तत्पर रखना ही बताया है। उनकी स्वीकृति है—

ये भवबाँधन बाँधिबे को सुख, साधन ये ही सदा अभिलाखै।
त्यों 'पदमाकर' सालिगराम को कै अरचा चरनोदक चाखै॥
सुंदर स्याम सरोरुह साँवरो, राम-ही-राम निरंतर भाखै।
देह धरे को गहै सुख है, जु बिदेहसुतापति में चित राखै॥
(प्रबोध-पचासा—३०)

महाकवि पद्माकरकी दृष्टिमें मानव-जीवन पानेका सबसे बड़ा फल यही है कि 'निश्छल होकर प्राणी श्रीरामका भजन करे। रात-दिन आठों याम भगवान् श्रीसीतारामका ही नाम जपना चाहिये'—

सुखद सुकंठ-सखा साहिब सरन्य सुचि,
सूधे सत्यसंध के प्रबंधन को गहिये।
कहै 'पदमाकर' कलेस हर कौसलेस,
कामद कबंध-रिपु ही को लै उमहिये॥
राजिवनयन रघुराज राजा राजाधिप,
रूप-रतनाकर को राजी राखि रहिये।
रैन-दिन आठो जाम राम राम राम राम,
सीताराम सीताराम सीताराम कहिये॥
(प्रबोध-पचासा—५१)

महाकवि पद्माकरने जीवनके अन्तिम दिनोंमें भगवान् श्रीसीतारामके पवित्र यशका चिन्तन कर अपनी काव्य-साधना सफल कर ली। रामभक्त कवियोंकी अविच्छिन्न परम्परामें उनका नाम चिरकालतक अमिट रहेगा।

(१९)

भानुभक्त

महाकवि भानुभक्त उच्चकोटिके रामकथाकार थे, भागवत कवि थे। उन्होंने भगवान् रामकी भक्तिके सौन्दर्य और माधुर्यसे नैपाली साहित्यका शृङ्गार किया। उनके द्वारा रचित रामायणमें भगवद्रसामृतका दिव्य प्रवाह छलक उठा है। महाकवि भानुभक्तका जन्म सं० १८७१ वि०की आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशीको नैपालके तनहुँ ग्राममें हुआ था। यह स्थान काठमाण्डूसे लगभग सौ मील पश्चिम है। उन्होंने समृद्ध ब्राह्मण-कुलमें जन्म लेकर तथा वैदिक संस्कारोंसे बाल्य-कालसे ही सम्पन्न होकर संवत् १८९७ वि०में संस्कृत भाषामें रचित अध्यात्मरामायणका नैपालीभाषामें सरस काव्यरूपान्तर प्रस्तुत किया। संवत् १९२४ वि०में उन्होंने श्रीरामके भक्तिरसका आस्वादन करते हुए साकेतलोककी प्राप्ति की।

भानुभक्तने स्वरचित रामायणमें श्रीरामके मुखारविन्दसे सत्सङ्गकी महिमाका वर्णन बड़े ही मौलिक ढंगसे कराया है। सीताहरणके बाद उनकी खोज करते हुए भगवान् राम भक्तिमती शबरीके आश्रमपर पहुँच गये। उसने कंद-मूलसे श्रद्धापूर्वक भगवान्का स्वागत-सत्कार किया। भगवान् रामने

आनन्दित होकर नवधा-भक्तिका प्रतिपादन करते हुए सत्सङ्गकी सर्वश्रेष्ठता सिद्ध की। कितने युक्तिसंगत हैं श्रीराम-के वचन—'

नौ साधन् कि त भक्ति छन् ति नवमा पैल्हे त सत्संग हो।
पैल्हे साधन पो भयो पनि भेन्या बाँकी रह्याका ति जो॥
आठ् साधनहरु हुन् ति ता क्रम सितै मिल्छन् असल् सङ्गले।
सत्को सङ्ग भया, सबै बनि गयो, क्या हुन्छ कुन् सङ्गले॥
(भानुभक्तको रामायण, अरण्यकाण्ड)

'भक्तिके नौ साधन हैं। उन नौमें पहला साधन सत्सङ्ग है। यह प्रथम साधन यदि पूरा हो गया तो शेष ही क्या रह गया? जो शेप आठ साधन हैं, वे तो सत्सङ्गके कारण अपने-आप यथाक्रम प्राप्त होते जायँगे। संतका सङ्ग प्राप्त हुआ तो सब बात बन गयी। दूसरे किसीका साथ करके क्या होगा?'

भानुभक्तने स्वरचित रामायणमें अपनी काव्य-शक्ति और भगवद्भक्तिका जो समीचीन अभिव्यञ्जन किया है, उससे उन्हें 'नैपाली साहित्यका तुलसीदास' स्वीकार करनेमें आपत्तिके लिये तिलमात्र भी अवकाश नहीं है। भानुभक्तने आजीवन भगवान् रामके गुणानुवादमें अपने समयको सार्थक किया।

(२०)
कवि गिरिधर

समग्र गुजराती भाषाभाषी गुजरात प्रदेशमें महाकवि गिरिधरकृत रामायणके प्रति लोगोंमें बड़ी पूज्य भावना है। उन्होंने विक्रमीय संवत्‌की उन्नीसवीं शतीके अन्तिम चरणमें 'गिरिधर-रामायण'की रचना की। इस रामायणकी पूर्ति उन्होंने १८९३ वि०की मार्गशीर्ष नौमी तिथिको की। कवि गिरिधरने गुजरातके विरक्षेत्रमें एक प्रसिद्ध वैश्य-कुलमें जन्म लिया था। उन्होंने स्वरचित रामायणको 'श्रीरामचरित्रसम्मत वाल्मीकि-नाटकधारा' नाम प्रदान किया है। यह रामकथा सात काण्डोंमें पूरी हुई है। महाकवि गिरिधरका कथन है कि 'मैं तो निमित्तमात्र हूँ, मेरे द्वारा रचित रामायणका प्रणयन तो साक्षात् श्रीगोविन्द भगवान्‌ने ही किया है।'

गुरु पुरुषोत्तम श्रीधर कृपाये, करी कथा आनंद।
दास गिरिधर निमित मात्र, ए कर्ता श्रीगोविंद॥
(गिरिधरकृत रा०, बाल० ४६। ३२)

कविके कथनका आशय यह है कि उपर्युक्त रामायणकी रचना भगवान् गोविन्दकी कृपासे सम्पूर्ण हुई। कवि गिरिधरने भगवती सरस्वतीकी कृपासे श्रीरामचरित्रका गान किया—

हुं बालबुद्धे स्तवुं तुजने, वचन पवित्र।
तुज कृपाए सरस्वति माता, गाऊँ रामचरित्र॥
(गिरिधरकृत रा०, बाल० १। १०)

रामकथाकार गिरिधरने श्रीरघुवीरके चरित्रामृतको प्राकृत वाणी—गुजरातीमें प्रस्तुतकर अमित यश प्राप्त किया—

श्रीरघुवीरचरित्रकथामृत लीलासिंधु अपार।
प्राकृत वाणी पदबंध करुं छुं बुद्धिमाने विस्तार॥
(गिरिधर० रा०, अयो० २। १)

गिरिधरजी उच्चकोटिके कवि ही नहीं, परमवैष्णव रामभक्त थे। उन्होंने श्रीरामका प्रथम दर्शन होनेपर श्रीहनुमान्‌जीके शब्दोंमें उनकी वन्दना प्रस्तुत की है। यह उनके कविसुलभ हृदयकी सरसतासे परिपूर्ण रामभक्तिकी उज्ज्वल प्रतीक है—

जय रघुकुल कमल सुभानु। जय खलवनदहन कृशानु॥
जय वैकुण्ठना धरमेश। जय आदि नारायण शेष॥
जय ब्रह्म सनातन ईश। जय मायापति जगदीश॥
जय मंगलरूप निधान। जय भक्तवत्सल भगवान॥
परमेश्वर पुरण काम। जय विश्व ना आतमाराम॥
जय जीव ना अंतरयामी। साक्षि द्रष्टा चराचर-स्वामी॥
पुरुषोत्तम पूर्णानंद। मधुहन्ता मुरारी मुकुन्द॥
जय यज्ञ ना कारणरूप। नमुं वेदान्त वेदस्वरूप॥
धर्मस्थापन तम अवतार। नमुं राम ने वारंवार॥
(वही, ४। २। १६–२०)

महाकवि गिरिधरने श्रीविभीषणकी शरणागतिके अवसर-पर उनके श्रीरामद्वारा 'लङ्केश' पदके सम्बन्धमें एक विचित्र बात कहलवायी है। इस तरहका कथन अन्य रामायणमें प्राप्त होना कठिन है। असम्भव भले न हो, पर दुर्लभ है। भगवान् रामने विभीषणका राज्यपदपर अभिषेक कर लङ्काका राज्य प्रदान किया। श्रीरामने स्वयं अपने हाथसे राजतिलक कर कहा कि 'लङ्कामें अविचलरूपसे तुम राज्य करोगे।' सुग्रीवने भगवान् रामसे निवेदन किया कि 'आपने विभीषणजीको तो लङ्काका राज्य प्रदान कर दिया। यदि आज ही सीताजी-को साथ लेकर रावण आ जाय और आपके शरणागत हो जाय तो उसे आप क्या प्रदान करेंगे?' भगवान् रामने तत्काल समाधान किया—

······जो रावण आवशे शरणांगत करी हेत।
त्यारे मारी अयोद्धा आपीश एने वैभवराज समेत॥
हुं करीश तपवनमां जई, राज करशे रावण राय।
पण विभीषण ने जे लंका आपी, ते मिथ्या नव थाय॥
(गिरिधर-रा०, सुन्दर० २० । ७-८)

'यदि शरणागत होकर रावण आयेगा तो उसे मैं अपनी अयोध्या समस्त वैभव और राज्यके साथ प्रदान कर दूँगा। मैं वनमें जाकर तप करूँगा और राजा रावण राज्य करेगा। पर मैंने विभीषणको जो लङ्का दी है, वह मिथ्या नहीं होगी। लङ्का उन्हींकी रहेगी।'

गिरिधरकृत रामचरित्र सुधारसका समुद्र है। यह परम पवित्र है; इस समुद्रका पार पाना असम्भव है। इसके अध्ययन तथा पठन-पाठनसे दैहिक, दैविक और भौतिक तापका शमन हो जाता है। कविकी स्वीकृति है—

श्रीरामचरित्र सुधारससिन्धु, पावन सुखद अपार जी।
शमन त्रिताप शितळ परिपुरण, अरथ रत्न मांहे सार जी॥
(गिरिधर-रा०, उत्तर० ११२ । १)

रामकथाका गिरिधरजीने रामायणके रूपमें वर्णन कर अपनी कीर्ति गुजराती-साहित्यमें अमर कर ली। उनकी उक्ति है—

ए रामकथा शुद्ध भाव थकी जे सुणे-भणे नर-नार जी।
आ लोक मधे ते भोग भोगवे अंते हरिपद सार जी॥
(गिरिधर-रा०, उत्तर० ११२ । ५)

'इस रामकथाका जो स्त्री-पुरुष पवित्र भाव और श्रद्धासे श्रवण-प्रवचन करेंगे, उनको इस लोकमें इष्ट-भोग-सुखकी प्राप्ति होगी तथा अन्त समयमें श्रीरामके पदमें स्थान मिलेगा।'

हिंदीके मध्यकालीन कतिपय रामभक्त कवि

(लेखक—डॉ० श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, डी० लिट्०)

गोस्वामी तुलसीदासकी कृतियोंका दिव्य प्रकाश शताब्दियोंतक रामकाव्यके अध्येताओंको इतना मन्त्रमुग्ध किये रहा कि 'मानस' और 'विनय' के अतिरिक्त रामचरित और रामभक्तिविषयक रचनाएँ अन्य भक्त कवियोंद्वारा भी लिखी गयी हैं, इस ओर उनका ध्यान ही न गया। इसके परिणामस्वरूप तुलसीके पूर्ववर्ती, समकालीन तथा परवर्ती युगमें निर्मित रामकाव्यका वास्तविक स्वरूप हिंदी-संसारके समक्ष प्रस्तुत न हो सका। 'रामभक्तिमें रसिक-सम्प्रदाय' नामक ग्रन्थमें इन पङ्क्तियोंके लेखकने पूर्वमध्यकालीन रामकाव्यधारामें रसिक-भावनाके विकास-सूत्रोंका विवेचन करते हुए उसका उद्गमस्थल शूरों, सतियों और संतोंकी पुण्यभूमि राजस्थान बताया था और प्राप्त तथ्योंके आधारपर यह मत व्यक्त किया था कि १७वीं शतीमें इस सम्प्रदायका सम्यक् प्रसार मरुभूमिमें ही हुआ। इस दिशामें कार्य करते हुए मुझे कुछ दिनों पूर्व 'प्राच्यविद्या-शोध-प्रतिष्ठान, जोधपुर'से 'पद्-मुक्तावली' नामक एक प्राचीन हस्तलेख (सं० १८८२) प्राप्त हुआ है, जिससे हमारी उक्त धारणाका समर्थन होता है।

'पदमुक्तावली'में हिंदीकी निर्गुण तथा सगुण भक्ति-शाखाके अनेक प्रसिद्ध तथा अप्रसिद्ध कवियोंकी रामभक्ति-सम्बन्धी जो रचनाएँ संकलित हैं, उनमेंसे कुछ अबतक सर्वथा अज्ञात रही हैं। ये चार वर्गोंमें विभाजित की जा सकती हैं—

(क) निर्गुण-रामभक्ति-विषयक रचनाएँ।

(ख) निर्गुण-भक्तिमार्गी संतोंकी सगुण-रामभक्ति-विषयक रचनाएँ।

(ग) सगुण-रामभक्ति-शाखाके प्राचीन कवियोंकी रचनाएँ।

(घ) कृष्णभक्ति-शाखाके प्रसिद्ध भक्तोंकी रामोपासना-विषयक रचनाएँ।

(क) निर्गुण-रामभक्तिविषयक रचनाएँ

संतकाव्य-परम्परामें यों तो समकालीन धार्मिक सम्प्रदायोंमें प्रयुक्त होनेवाले प्रायः सभी प्रमुख ईश्वर-वाचक शब्दोंका प्रयोग मिलता है; किंतु उनका सर्वाधिक प्रिय नाम 'राम' ही रहा है। यही उनके निर्गुण-ब्रह्मका वास्तविक पर्याय है। सगुणभक्ति-शाखाके उपजीव्य ग्रन्थोंमें इस शब्दकी जो व्याख्या मिलती है, वह निर्गुणमार्गी भक्तोंकी ब्रह्म-भावनाके मेलमें ही है—

रमन्ते योगिनोऽनन्ते परानन्दे चिदात्मनि ।
तेन राम पदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥
(रामता० उप० ६)

'पदमुक्तावली'में नामदेवके दो, कबीरके चार और रैदासका एक पद संगृहीत हैं । इन सभीमें 'रामतत्त्व'-विषयक संतोंकी परम्परागत मान्यताएँ प्रतिबिम्बित हुई हैं ।

(१) नामदेव (सं० १३२७-१४०७)—ये महाराष्ट्रके विख्यात संत ज्ञानदेव (ज्ञानेश्वर) के कृपापात्र और विसोबा खेचरके दीक्षित शिष्य थे । ज्ञानेश्वरके साथ इन्होंने पहली बार देशभ्रमण किया था । इसके बाद भी इनका सारा जीवन सत्सङ्ग और पर्यटनमें ही बीता । भक्तमालमें इनकी सिद्धियों और चमत्कारोंकी अनेक कथाएँ वर्णित हैं । इनकी भक्ति-साधना सगुणसे निर्गुणकी ओर उन्मुख हुई थी । आरम्भमें पंढरीनाथ विठ्ठल (विष्णु)के उपासक होते हुए भी अपनी कृतियोंमें इन्होंने आराध्यके अन्य नामोंकी अपेक्षा रामनामको अधिक महत्त्व दिया है ।

'पदमुक्तावली'में इनके दो पद संकलित हैं, जिनके प्रतीक हैं—

(१) 'राम जुहारि न और जुहारी ।'
(२) 'नाचि रे मन रामजी के आगे ।'

(२) कबीरदास (सं० १४५५—१५७५)—ये उत्तरी भारतमें रामोपासनाके प्रतिष्ठापक स्वामी रामानन्दके बारह प्रधान शिष्योंमें थे । 'निर्गुण राम' में इनकी निष्ठा सर्वविदित है । रामकी अवतारलीलाके प्रति अनासक्ति व्यक्त करते हुए इन्होंने रामनामको ही साधनाका मूल-मन्त्र माना है ।

'पदमुक्तावली'में इसी भावके व्यञ्जक इनके चार पदोंमेंसे एक पद है—

राम भजै सोई जाँनीये, जाके आतुर नाहीं ।
सील-संतोष लीयाँ रहै, धीरज मन माहीं ॥ टेक ॥
ताकूँ काम क्रोध व्यापै नहीं, त्रीसनां न जरावै ।
प्रफुलत आनंद मैं, गोविंद गुन गावै ॥ १ ॥
परनिंदा भावै नहीं, अर असत न भावै ।
कलह-कलपना मेटि कैं, चरनन चित रावै ॥ २ ॥
समि-दिसटी, सीतळ सदा, दुव ध्यान हीआँ नै ।
कहै 'कबीर' या संत सुं, मेरा मन मानै ॥ ३ ॥

(३) रैदास (सं० १४४५-१५७५)—ये जातिके चमार, किंतु बड़े ही संस्कारी महापुरुष थे । नाभादासका मत है कि ये स्वामी रामानन्दके शिष्य थे । 'गुरुग्रन्थ साहब'में इनके जो पद संगृहीत हैं, उनसे इनकी 'रामनामनिष्ठा' और रामभक्तिकी पुष्टि होती है । एक स्थानपर वे लिखते हैं—

इन दूतन खनु बधु करि मारिउ, बड़ो निलाज, अजहूँ नहिं हारिउ ॥
कहि रविदास कहा कैसे कीजै, बिनु रघुनाथ सरन काकी लीजै ॥

असम्भव नहीं कि रामभक्तिका यह प्रसाद काशीवासी रैदासको 'जाति-पाँति पूछे नहिं कोई'के उद्घोषक स्वामी रामानन्दसे ही प्राप्त हुआ हो । मीराँद्वारा गुरुरूपमें इनका स्मरण किया जाना तथा कबीरसे इनके सम्पर्क और सत्सङ्गकी अनेक कथाएँ तत्कालीन आध्यात्मिक जगत्में इनकी ख्यातिकी द्योतक हैं ।

'पदमुक्तावली'में इनका निम्नाङ्कित पद मिलता है—

कहा कमी जाकै राम धनी ।
मनसा राम मनोरथ पूरन सुखनिधान की बात घनी ॥टेक॥
कवन काज किरपन की माया, करत फिरै अपनी-अपनी ।
खाय न सकै, खरच नहिं जानैं, जैसे भुजँग सिर रहत मनी ॥
सिव-सनकादिक अरु ब्रह्मादिक, मो बपुरे की कहा गनी ।
जिनकी प्रीति निरंतर हरि सौं, कहै रैदास ताकी भली बनी॥

(ख) निर्गुणमार्गी संतोंकी सगुण रामभक्ति-परक रचनाएँ

इस वर्गमें निम्नाङ्कित संतोंके पद आते हैं—जयदेव, ज्ञानदेव और त्रिलोचन । इनमेंसे प्रथम अथवा जयदेवकी निर्गुण-सगुण दोनोंमें तथा द्वितीय एवं तृतीयकी शुद्ध ज्ञानाश्रयी निर्गुण-भावनामें आस्थाकी प्रसिद्धि रही है, किंतु नाभादासने ज्ञानदेव और त्रिलोचनको भी विष्णुस्वामी-सम्प्रदायका अनुयायी बताकर प्रकारान्तरसे उनके सगुणोपासक होनेका समर्थन किया है । राघवदासके भक्तमालमें भी ये तीनों संत विष्णुस्वामी-सम्प्रदायके अन्तर्गत रखे गये हैं ।

(१) जयदेव (१२वीं शती विक्रमी)—इस नामके भक्तकविकी दो भिन्न विचारधाराओंकी पोषक कृतियाँ दो पृथक् स्रोतोंसे उपलब्ध हैं—एक है संस्कृतका अन्यतम गीतिकाव्य 'गीत-गोविन्द' और दूसरी 'गुरुग्रन्थसाहब'में संगृहीत रचनाएँ । ये दोनों प्रकारकी कृतियाँ क्रमशः श्रृङ्गारी कृष्ण-

भक्ति और निर्गुण-साधनासे सम्बद्ध हैं। आचार्य पं० परशुराम चतुर्वेदीने इन्हें एक ही व्यक्तिकी रचना माना है। सूरपूर्ववर्ती ब्रजभाषा-साहित्यका विवेचन करते हुए डॉ० शिवप्रसादसिंहने भी इस विषयमें अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि "गीत-गोविन्द'के आधारपर यह कहना ठीक न होगा कि जयदेव निर्गुण-भक्तिसे प्रभावित काव्यरचना नहीं कर सकते। निर्गुण और सगुण भक्तिका मध्यकालीन विभेद भी १२वीं शतीके जयदेवके निकट कोई महत्त्व नहीं रखता।"

जयदेव किस सम्प्रदायके अनुयायी थे, यह एक विवादग्रस्त प्रश्न है। गौड़ीय वैष्णव उनके गीत-गोविन्दको सर्वाधिक महत्त्वका प्रेरणा-ग्रन्थ मानते हैं। विष्णुस्वामी-मतानुयायी उनकी गणना अपनी आचार्य-परम्परामें करते हैं और निम्बार्क-मतके संत वृन्दावनवासी यशुदानन्दनदेवको उनका गुरु बताते हैं। इनमें सत्य जो भी हो, इतना निश्चित है कि गीत-गोविन्दकी भावभूमि मध्ययुगीन कृष्णभक्ति-सम्प्रदायोंद्वारा प्रचारित सिद्धान्तोंके मेलमें ही है। कहा जाता है कि इन्होंने वृन्दावन और जयपुरकी यात्राएँ भी की थीं।

गुरुग्रन्थसाहबमें संकलित इनके एक पदसे ज्ञात होता है कि उसका रचयिता रामनामकी महिमासे परिचित तथा योगसाधना-निष्ठ भक्त है। गीत-गोविन्दके दशावतार-वन्दनावाले श्लोकमें दशमुखसंहर्ता रामका स्मरण इनकी उदार वैष्णव-भावनाका द्योतक है। ऐसी स्थितिमें 'पदमुक्तावली'में संकलित रामभक्तिविषयक पद इन्हींकी रचना हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

रामभक्ति में दीवेंगे।
दीवेंगे रस पीवेंगे ॥
गोपीचंदन हरि हरि चंदन, तप्तमुद्रा अमि धारेंगे ॥टेक॥
माला-तिलक मनोहर बानो, देवत ही निरुवारेंगे।
धूप-दीप नैवेद आरती हरि पूजा बिस्तारेंगे।
अहनिस राम-नाम जपि रसनाँ, समकौ त्रास निवारेंगे ॥
रामहि पूजि वैसनव पूजौं, इहिं धारन दिढ़ पालेंगे।
जन जयदेव जन्म धनि ताकौ, आप तिरैं, कुल तारेंगे ॥

(२) ज्ञानदेव (सं० १३३२–१३५३)—ज्ञानदेव (ज्ञानेश्वर) महाराष्ट्रके संतोंमें सर्वोच्च स्थानके अधिकारी हैं। इनके पिता विठ्ठल पंत, श्रीआजगाँवकरके अनुसार स्वामी रामानन्दके शिष्य थे। और स्वामीजीके ही आशीर्वादसे उन्हें चार संतानों—निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव और मुक्ताबाई—की प्राप्ति हुई थी। कालान्तरमें ये चारों ही वारकरी-सम्प्रदायके प्रधान स्तम्भ हुए। इनमेंसे प्रथम निवृत्तिनाथको ज्ञानदेवके गुरु होनेका सुयोग प्राप्त हुआ। नाभादासने इनका सम्बन्ध विष्णुस्वामी-सम्प्रदायसे स्थापित किया है। यदि इससे उनका तात्पर्य भागवतधर्म अथवा वैष्णव-भक्तिशाखासे है तो इसे स्वीकार करनेमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती; क्योंकि वारकरी-मत महाराष्ट्रमें भागवत-सम्प्रदायका ही प्रतिरूप माना जाता है। परंतु यदि भक्त-मालकार ज्ञानदेवका आचार्य विष्णुस्वामीकी परम्परासे सीधा सम्बन्ध मानते हैं तो महाराष्ट्रीय सूत्रोंसे प्राप्त तथ्योंसे इसका सामञ्जस्य स्थापित नहीं होता। ज्ञानदेवकी रचनाओंपर नाथपन्थ और अद्वैतमतका प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। इनकी जो हिंदी रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं, वे इसी विचारधारा-से ओतप्रोत हैं; किंतु 'पदमुक्तावली'में संगृहीत दोनों पद सगुण-रामभक्तिके हैं। मेरा यह विचार है कि संत ज्ञानदेव जिस युगमें हुए थे, उस समय अध्यात्मसाधनाके क्षेत्रमें निर्गुण-सगुण-भक्ति-भावनामें इतना भेद नहीं माना जाता था, जितना १६वीं शती और उसके बाद हुआ। जयदेव, नामदेव आदि संतोंकी रचनाएँ इस अभेद-स्थितिकी द्योतक हैं। इसके अतिरिक्त पिताके माध्यमसे प्राप्त रामभक्तिके संस्कार, वारकरी-सम्प्रदायकी विठ्ठलपूजामें विहित वैष्णवाचार-में आस्था तथा नामदेवके साथ की गयी उत्तरी भारतकी तीर्थयात्रा आदि तत्त्व भी ज्ञानदेवकी सगुणोपासनामें आस्था दृढ़ करनेमें सहायक हुए होंगे।

'पदमुक्तावली'में इनके दो पद संगृहीत हैं—एकमें सीतारामकी संयोग-क्रीडाका संकेत है, दूसरेमें भोजन-लीला-का वर्णन।

(३) त्रिलोचन (१४वीं शती विक्रमी)—ये संत ज्ञानेश्वरके शिष्य और नामदेवके गुरुभाई थे। फर्क्युहरके अनुसार इनका जन्म १३२४ई० में हुआ था। आदिग्रन्थमें इनके चार पद संकलित हैं, जिनमें रामनामकी महिमाके वर्णनके साथ ही समकालीन साधनाओंमें उत्तरोत्तर बढ़ती हुई बहिर्मुखी प्रवृत्तिकी निन्दा की गयी है। त्रिलोचन-की साधनाभूमि पंढरपुर थी।

(ग) सगुण रामभक्ति-शाखाके कवियोंकी रचनाएँ

'पदमुक्तावली'में तुलसीकी पूर्ववर्ती, समकालीन तथा परवर्ती सगुण रामभक्ति-परम्पराके निम्नाङ्कित कवियोंके पद

संगृहीत मिलते हैं—रामानन्द, विष्णुदास, नरहरि, विट्ठलदास, कल्याण, अग्रदास, जनजंगी, नाभादास, जन-भगवान, चत्र (चतुर) दास, रामदास, भानदास, जन तुरसी, मोहन, बालअली, हरियाचार्य, सूरकिशोर, कवलानन्द, गोकुलदास, बलभद्र, गजपुरी, मौजीराम, रघुनाथ, लघुकेशव, लघुमोहन, लाल गुलाम और विजयराम ।

निबन्धके कलेवर-विस्तारके भयसे इनमेंसे केवल १४ भक्तोंका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है—

(१) रामानन्द (सं० १३५६—१४९१)—उत्तरी भारतमें रामोपासनाके प्रतिष्ठापक स्वामी रामानन्द युगप्रवर्तक महापुरुष थे । नाभादासने इन्हें 'रामनाम'-प्रचारके द्वारा भवग्रस्त जीवोंका उद्धारक और 'रघुनाथ'का अवतार स्वीकारकर इनके व्यक्तित्वके प्रति पूर्व-मध्यकालीन-समाजकी लोकोत्तर सम्मानभावना व्यञ्जित की है । निर्गुण तथा सगुण दोनों भक्ति-सम्प्रदायोंमें रामभक्तिके प्रसारका श्रेय इन्हींको है । इनके बारह शिष्योंमें कबीर तथा रैदास-जैसे परमज्ञानी और अनन्तानन्द तथा भावानन्द-जैसे शेयानिष्ठ भक्त थे, जिनके शिष्यों-प्रशिष्योंने इस उदारचेता आचार्यका संदेश देशके कोने-कोनेतक पहुँचाया ।

(२) विष्णुदास (१७वीं शती वि० पूर्वार्द्ध)—रामभक्ति-शाखाके प्राचीन भक्तोंमें इस नामके तीन व्यक्ति मिलते हैं । एक हैं—श्रीकृष्णदास पयहारीके शिष्य विष्णु-स्वामी अथवा विष्णुदास, दूसरे उनके प्रशिष्य और कील्हदासके शिष्य विष्णुदास विदेही और तीसरे हैं—'वाल्मीकि भाषा'के रचयिता विष्णुदास । 'पदमुक्तावली'में संकलित पद इनमेंसे प्रथम अर्थात् पयहारीजीके शिष्य विष्णुदासद्वारा विरचित मालूम होता है ।

नमो नमो जय श्रीरघुवीर ।
जगविभूत अवतार अवनि पर लीला ललित सुधा सर सीर ॥टेक॥
भक्तिभूमि भेयौ बेली कों सींचित सहज भारी नीर ।
चिदानंदघन रसमय मूरति परम सुन्दर वर स्याम सरीर ॥ १ ॥
करुनामय निज सील गुनाकर गॉन करत श्रुतिगिरा गँभीर ।
ब्रह्मादिक, भव, सनक-सनंदन वंदन करत विबुध-मुनि धीर ॥२॥
त्रिविधि ताप न दाग हुसहादुम दूरि करत चितवनि मय समीर ।
निज इच्छा विहरत पुर बीथनि विष्णु प्रभु जन हरत जिय पीर ॥३॥

(३) नरहरिदास (१७वीं शती वि० पूर्वार्द्ध)—रामोपासकोंमें इस नामके दो भक्तोंकी प्रसिद्धि है—अनन्तानन्दजीके प्रशिष्य तथा श्रीरङ्गजीके शिष्य नरहरि और तुलसीदासजीके गुरु नरहरी । ये दोनों महानुभाव एक ही समयमें विद्यमान थे । नाभादासने इनमेंसे प्रथमको रामकृष्णकी लीलाओंका गायक कहा है । दूसरे नरहरिकी काव्य-रचनाका कहीं उल्लेख नहीं मिलता । अतः मेरा अनुमान है कि 'पदमुक्तावली'में संकलित पद प्रथम नरहरि-की रचना है ।

हँसि-हँसि करत कौसिला आरति ।
कनकथार मानिक मुकताफल अपने हाथ राघौ पर वारति ॥
के अच्छित दधि-दूब-रोचनाँ, बहु विधि धूप-दीप अनुसारति ।
पंच सबद सु पंच मंगल बार-बार सुत-वदन निहारति ॥
केकइ सहित सुमित्रा अति आनँद कछु कह्यौ न पारति ।
नरहरि राम लषन सीता सँगि देत अरघ मंदिर पग धारति ॥

(४) कल्याण (१७वीं शती विक्रमी)—ये श्रीकृष्णदास पयहारीके शिष्य थे । नाभादासने इनकी गणना जीवोंका उद्धार करनेवाले पयहारीजीके २४ प्रधान शिष्योंमें की है । इनका निम्नाङ्कित पद 'पदमुक्तावली'में प्राप्त होता है—

करौ कलेऊ प्रात ही मिलि प्यारौ मइया ॥ टेक ॥
दधि मेवा लाडू मोद सौं ले आई मइया ।
पै पीवौ प्रभु कल्यान के मधि लीनौ बइया ॥ १ ॥

(५) अग्रदास (१७वीं शती वि० पूर्वार्द्ध)—रामभक्तिमें रसिक-सम्प्रदायके प्रवर्तक स्वामी अग्रदास भी पयहारीजीके ही शिष्य थे । इनकी चार रचनाओंका उल्लेख साम्प्रदायिक साहित्यमें मिलता है—ध्यानमञ्जरी, कुण्डलिया, पदावली और अग्रसागर अथवा शृङ्गारसागर । इनका भी निम्नाङ्कित पद 'पदमुक्तावली'में मिलता है—

यही सुभाव परौ मेरी बानी ।
अहोनिसा गाऊँ गुन पावन राघौराय, जानकी रानी ॥ टेक ॥
जागत-सोवत सीतापति-पद, आन कथा हिरदै नहि आँनी ।
जहीं-तहीं रट परी रसन जस मानौ मति काहूकी कानी ॥ १ ॥
असुख अलाप पाप करि जानौं रमा-रवन ठचरूँ सुखदानी ।
वैदेही-बल्लभ की कीरति 'अग्र' भोज पावै मनमानी ॥ २ ॥

(६) जनजंगी (१७वीं शती विक्रमी)—ये अग्रदासजीके शिष्य और द्वाराचार्य थे । इन्होंने दो गद्दियाँ स्थापित कीं—एक पटियाला (पंजाब) में और दूसरी झूँसी (प्रयाग) में ।

(७) नाभादास (१७वीं शती विक्रमी)—'भक्तमाल'के विख्यात रचयिता नाभादास अग्रदासजीके सेवानिष्ठ पट्टशिष्य थे। ये गोस्वामी तुलसीदासके समकालीन थे। इनकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं—भक्तमाल और रामचन्द्रजीके ब्रजभाषा गद्य तथा पद्यमें लिखे दो अष्टयाम। इनके अतिरिक्त शृङ्गारी रामभक्ति तथा रामचरितविषयक इनके रचे कुछ फुटकर पद भी मिलते हैं। इनमें 'नाभौ', 'नाभा' तथा 'नाभाअली' छाप पायी जाती है। 'पदमुक्तावली' में इनका एक अलभ्य पद संगृहीत है—

कौन के दोउ बीर, कहौ, रिषि ! कौन के दोउ बीर।
सुंदर स्याम किसोर मनोहर, दिन लघु, मति गंभीर ॥ टेक ॥
कहत तपोधन, सुनौ, नृपति जू ! ये सुत रघुकुल-राजा।
जिन्ह कारन नँ कृपा कीनी, सरे हमारे काजा ॥ १ ॥
यह सुनि हृदौ जुडाय जनक कौ, मम व्रत पूरन करिहैं।
'नाभौ' कहै नीरद स्यान मति वैदेही कौं वरिहैं ॥ २ ॥

(८) जनभगवान (१७वीं शती वि०)—नाभादासने 'भगवान' नामके दो रामभक्तोंका उल्लेख किया है। एक कील्हदासके शिष्य थे, दूसरे अग्रदासके। इनके अतिरिक्त एक कृष्णभक्त जनभगवानकी चर्चा भक्तमालके १४६वें छप्पयमें आयी है। 'पदमुक्तावली'में संगृहीत पद शृङ्गारी रामभक्तिका है, अतः मेरी सम्मतिमें वह इनमें द्वितीय अर्थात् रसिकाचार्य अग्रदासके शिष्य भगवानकी रचना है, कृष्णभक्त जनभगवानकी नहीं। अपने नामके साथ 'दास'का पर्याय 'जन' लगानेकी चलन मध्यकालीन संतों और भक्तों, दोनोंमें समानरूपसे पायी जाती है। इससे भगवानदास और जनभगवानमें कोई अन्तर नहीं पड़ता।

(९) चन्द्रदास (चतुरदास) (१७वीं शती विक्रमी)—

ये कील्हदासके शिष्य थे। नाभादासने इन्हें उत्कट रामभक्तिद्वारा संसारको अभयदान देनेवाला कहा है। 'पद-मुक्तावली'में संगृहीत इनके पदका विषय रामकी शरणागत-वत्सलता, प्रणति और आत्मनिवेदन ही है।

कपिये रघुनायक सुखदायक आनंद कंद।
सुंदर श्री रामचंद्र संतन सुखदाई ॥
....
सिवरी फल रुचि सौं लीन, अंतरगत प्रीति चीन।
दीन चन्द्रदास सोई प्रभु की बलि जाई ॥ १० ॥

(१०) रामदास—श्री (सारी) रामदास (१६वीं शती विक्रमी), रामदास—(१७वीं शती विक्रमी)—

'भक्तमाल'में इस नामके निम्नाङ्कित रामभक्तोंका वृत्त आया है—

(१) स्वामी अनन्तानन्दके शिष्य सारी रामदास।
(२) खेम गोसाईंके गुरु रामदास।

'पदमुक्तावली'में संगृहीत पाँच पदोंके रचयिता इन्हीं दोनोंमेंसे कोई रामदास हैं या इनके अतिरिक्त कोई अन्य रामदास, यह विचारणीय है। प्रस्तुत पदोंमें तीन छापें मिलती हैं—पहले पदमें 'रामदास अली', दूसरेमें 'श्रीरामदास' तथा शेष तीनमें 'रामदास'। मेरा अनुमान है कि इनमेंसे 'श्रीरामदास' छापवाला पद स्वामी अनन्तानन्दके शिष्य 'सारी रामदास'का है, शेष चारों पद किसी शृङ्गारी रामभक्तके हैं। ये खेम गोसाईंके गुरु रामदास हो सकते हैं, किंतु अधिक सम्भव है कि इनके रचयिताका सम्बन्ध अग्रदासकी परम्परासे रहा हो; कारण कि 'अली' अथवा सखीभावकी उपासना रामभक्तिकी इसी शाखामें प्रचलित रही है। उपर्युक्त पाँच पदोंमेंसे एक नीचे दिया जा रहा है—

देखौ मूरति राम सुजाँन की।
कौन पुन्य तैं यौ वर पायौ, बडभागिनि है जाँनकी ॥ टेक ॥
बावँ कर कोदंड बिराजत, दच्छिन फेरत बाँन की।
सुर नर नाग नहीं कोउ सरभरि, मूरति मोद-निधाँन की ॥ १ ॥
जनक-नगर-नर-नारि सराहत गाथा गुन-निधाँन की।
रामदास प्रभु की करि नेवछावरि तन-मन-धन अरु प्राँन की ॥

(११) मानदास (१७वीं शती विक्रमी)—

ये मथुराके निवासी रसिक रामभक्त थे। इनका उपस्थिति-काल सं० १६२३ माना जाता है। नाभादासका मत है कि इन्होंने सम्पूर्ण रामचरितको नाटकबद्ध करके आराध्यकी गोप्यलीलाके प्रदर्शनकी व्यवस्था की थी। दादूपंथी संत राघवदासने अपने भक्तमालमें इसे और स्पष्ट करते हुए लिखा है कि इन्होंने अपना उक्त नाट्यग्रन्थ 'हनुमन्नाटक'के आधार-पर लिखा था। संयोगवश वह अब प्राप्त नहीं है। इसके अतिरिक्त मानदासकी किसी अन्य रचनाका पता नहीं चलता।

(१२) जनतुलसी (१७वीं शती विक्रमी)—

ये गोस्वामी तुलसीदाससे भिन्न एक अन्य रामभक्त थे। अग्रदासके प्रशिष्य तथा जनजंगीके शिष्य तनतुलसीदास नामक एक महात्मा हुए हैं। 'रसिक-प्रकाश-भक्तमाल'में इन्हें

रामभक्तिविषयक अनेक ग्रन्थोंका रचयिता कहा गया है। वैष्णवोंके ४२ द्वाराचार्योंमें एक ये भी थे। मेरा अनुमान है कि प्रस्तुत पदोंके रचयिता ये ही हैं। रामभक्तिकी इस शाखामें निर्गुणभावको प्रमुखता दी जाती थी। संत मलूकदास इन्हींके प्रशिष्य थे।

(१३) मलूकदास (सं० १६३१—१७३९)

इनका नाम अग्रदासजीकी शिष्यपरम्पराकी पाँचवीं पीढ़ीमें आता है। इनके गुरु देवमुरारिजी तनतुलसीके शिष्य थे। सगुण रामभक्तिशाखामें दीक्षित होते हुए भी इनकी रुझान निर्गुणोपासनाकी ओर अधिक थी। यह इनकी रचनाओंकी नामावलीसे ही स्पष्ट है—ज्ञानबोध, रतनखान, भक्त-वछावली, भक्त-विरुदावली, पुरुष-विलास, दसरत्न-ग्रन्थ, गुरु-प्रताप, अलखबानी, रामावतार-लीला, सुखसागर, ज्ञानपरीक्षा, कालीजीकी स्तुति। मलूकदासजीकी साधनाभूमि कड़ा मानिकपुर (इलाहाबाद) थी। इनके द्वारा प्रवर्तित मलूकपंथका यही प्रधान केन्द्र है।

'पदमुक्तावली'में इनका निम्नाङ्कित पद संकलित है। इसपर विनयपत्रिकाके (६६वें) पदकी छाया स्पष्ट लक्षित होती है—

राम भजि राम भजि राम भजि बावरे।
जनम सिरानौ जात, लोहा को सौ ताव रे॥
जाही तोको पिण्ड दीयो ताकौ तें न भजन कीयौ।
औसर चूक्यौ मौंदू, चूक्यौ बड़ौ दाँव रे॥
सुपनाँ मैं रीज पायौ, पायौ सुख चैन रे।
जागे तौ भिखारी भयौ, उघरि आया नैन रे॥
मेरा घोरा मेरा चेरा मेरौ गाट गाँव रे।
माया में मगन भयौ भूलौ हरि नाँव रे॥
कहत मलूकदास, छाँडि दे बिरानी आस।
दरसि मगन होय हर गुन गाव रे॥

(१४) मोहन (१७ वीं शती विक्रमी)—ये हनुमन्नाटकके रचयिता हृदयराम भल्ला (पंजाबी)के शिष्य थे। हनुमन्नाटककी रचना सं० १६८०में हुई। उसके आधारपर इनका समय १७ वीं शतीका अन्तिम चरण निश्चित किया जा सकता है।

(घ) कृष्णभक्ति-शाखाके भक्तोंकी रामोपासना-विषयक रचनाएँ

(१) मीराँबाई (१६ वीं शती विक्रमी)—मीराँका आविर्भाव मेड़ताके कुड़की नामक किलेमें सं० १५६१में हुआ था। इनकी कृष्णभक्ति लोकविश्रुत है। रामोपासना-विषयक अबतक इनकी जो रचनाएँ प्रकाशमें आयी हैं, उनमें उनका प्रियतम 'राम' गिरधर नागर होनेके साथ ही अमरपुरका निवासी निर्गुण ब्रह्म है अग्रदासका 'रसिकन सुखदायी सीता-रवन' अथवा तुलसीदासका 'रघुवंश-भूषण' राम नहीं। रामकी अवतार-लीलाके प्रति उनकी कोई आसक्ति व्यञ्जित नहीं होती। उन्होंने सद्गुरुसे 'रामरतन धन' प्राप्त किया था। इसे स्वामी रामानन्द-द्वारा प्रवर्तित संतमतका ही प्रभाव समझना चाहिये। 'पदावली'में एकाध स्थलोंपर उन्होंने अहिल्योद्धार, शबरीके आतिथ्य आदि रामचरित-सम्बन्धी घटनाओंकी चर्चा भी की है। किंतु वहाँ उनका उद्देश्य रामकी अवतार-लीलाका चित्रण न होकर भगवान्की शरणागतवत्सलता तथा उदारताका गुणगान ही प्रतीत होता है। किंतु इसके विपरीत 'पदमुक्तावली'में संकलित पद परम्परागत सगुण-रामभक्तिमें मीराँकी प्रगाढ़ आसक्तिका द्योतक है—

मंदिर पौढ़िये, रघुराई।
कंचन महल, कँचन कौ ढुलिया, रेसम बाँन बनाई॥
फूलन सेज, फूलन के गिदवा, फूलन तूंन लगाई।
चोवा-चंदन, अगर कुँमकुँमा, केसरि अँग लपटाई॥
सीताराम दोऊ सँग पौढे, बलि जाय मीराँबाई॥ २॥

(२) सूरदास (सं० १५३५-१५३८)—सूरसागरके प्रथम स्कन्धमें 'विनय'के अन्तर्गत रामभक्तिपरक तथा नवम स्कन्धमें रामचरित-सम्बन्धी जो पद मिलते हैं, उनसे रामावतारमें सूरकी अगाध श्रद्धाका पता चलता है।

(३) परमानन्ददास (सं० १५५०–१६४१)—अष्टछापके विशिष्ट कवि परमानन्ददासने रामकी जन्मलीला और बाललीलापर कुछ पद लिखे हैं, जो 'श्रीरामनौमीकी बधाईके पद' और 'रामनौमी पलनाके पद'—इन दो शीर्षकोंके अन्तर्गत 'परमानन्दसागर' में संकलित हैं। 'पदमुक्तावली' में इनके तीन पद आये हैं—एक जन्म-दिवसकी बधाईका है, एक मंगलका और एक प्रातः-दर्शनका। इनमेंसे दो नये पद हैं। एक पद रामनौमीके पालनेवाला ही है।

श्रीरघुनाथ पालनें झूलैं, कौसल्या गुन गावैं।
बलि-अवतार देव-मुनि-वंदित राजिव-लोचन भावैं॥

राजा दसरथ पलना गढ़ायौ, नव चंदन कौ साजु ।
हीरा जटित, पाट की डोरी, रतन जराये बाजु ॥
राते चरनँ-कँवल, कर राते, नील जलद तन सोहै ।
मृगमद तिलक अलक घुँघुरारी, मृदुल हास मन मोहै ॥
घर-घर ठच्छव चारु अजोध्या राघव-जनम-निवास ।
गावत-सुनत लोक त्रय पावन, बलि परमानँददास ॥

(४) तानसेन (सं० १५८८—१६४६)—संगीत-जगत्‌में तानसेनकी उपलब्धियाँ सर्वविदित हैं, परंतु वे एक उच्चकोटिके कवि और भक्त भी थे, यह कम लोग जानते हैं । 'वार्ता-साहित्य'से ज्ञात होता है कि ये अष्टछापके संस्थापक गोस्वामी विट्ठलनाथ, भक्त सूरदास और गोविन्द स्वामीके घनिष्ठ सम्पर्कमें रहे थे और श्रीनाथजीकी इन्होंने कुछ समयतक कीर्तन-सेवा भी की थी । ध्रुपद-शैलीकी शिक्षा इन्होंने स्वामी हरिदास और गोविन्द स्वामीके सांनिध्यमें प्राप्त की थी ।

तानसेनकी जो रचनाएँ प्राचीन काव्य-संग्रहोंमें मिली हैं, उनमें वैष्णवभक्तोंके परम्परानुसार शिव-गणेशादि देवोंकी वन्दनाके साथ ही श्रीकृष्णके रूपमाधुर्यपरक तथा लीलावर्णन-विषयक पदोंका बाहुल्य है । इससे उनका साम्प्रदायिक भक्त होना समर्थित होता है ।

(५) परशुरामदेवाचार्य (१७वीं शती विक्रमी)—ये निम्बार्क-सम्प्रदायके आचार्य हरिव्यासदेवके प्रधान शिष्योंमें थे । इनका जन्म नारनौलके समीप एक ब्राह्मणके घर हुआ था । प्रसिद्ध है कि गुरुकी आज्ञा प्राप्तकर इन्होंने सलेमाबादके अत्याचारी मुसल्मान फकीर सलीमशाहको अपनी सिद्धियोंसे परास्त किया था और उस कस्बेमें अपनी गद्दी स्थापित की थी । इससे यह स्थान 'परशुरामपुरी'के नामसे भी जाना जाने लगा । आजतक यह निम्बार्क-सम्प्रदायके सर्वप्रमुख पीठके रूपमें प्रतिष्ठित है । इनका गोलोकवास सं० १६८०में हुआ ।

परशुरामदेवाचार्य ब्रह्मके निर्गुण, सगुण तथा रामकृष्णादि रूपोंमें भेद नहीं रखते थे । यह इनकी मुख्य कृति 'परशुराम-सागर' में संकलित रचनाओंसे स्पष्ट हो जाता है । इनके कुछ फुटकर पद यत्र-तत्र प्राचीन संग्रहोंमें प्राप्त होते हैं । उनसे इनकी भक्तिके स्वरूपपर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है ।

(६) नन्ददास (१७ वीं शती विक्रमी)—ये स्वामी विट्ठलनाथके शिष्य और अष्टछापके प्रमुख कवि थे । इनका दीक्षाकाल सं० १६०२ माना जाता है । इनका जो वृत्त उपलब्ध है, उससे ज्ञात होता है कि वल्लभमतमें आनेसे पूर्व ये रामभक्त थे और प्रारम्भिक अवस्थामें इन्होंने गोस्वामी तुलसीदासके साथ काशीके वैष्णव विद्वान् शेष-सनातनसे विद्याध्ययन किया था । खोजमें प्राप्त 'श्रीमत् तुलसी-दास स्वगुरुभ्राता पद बंदे' प्रतीकवाले छप्पयसे यह विदित होता है कि गुरुभ्राता तुलसीकी ही कृपासे इनके हृदयनेत्र खुले और आराध्यकी माधुर्यकेलिके मानसप्रत्यक्षका सौभाग्य प्राप्त हुआ । इसमें सत्य जो भी हो, अबतक उपलब्ध इनके पदोंसे इसमें संदेह नहीं रह जाता कि रामचरितवर्णनमें इनकी रुचि थी और रामावतारमें श्रद्धा । 'नन्ददास-ग्रन्थावली'में संगृहीत पदोंसे इसकी पुष्टि होती है ।

(७) तत्त्ववेत्ता (१७वीं शती विक्रमी)—ये परशुरामदेवाचार्यके शिष्य थे । इनका आविर्भाव मारवाड़में जयतारणके निकटवर्ती फूलमाल नामक गाँवके एक दाधीच ब्राह्मणपरिवारमें हुआ था । घरका नाम टीकमदास था । कालान्तरमें असाधारण आध्यात्मिक उपलब्धियोंके कारण ये 'तत्त्ववेत्ता' नामसे प्रसिद्ध हो गये । जोधपुरनरेशने इनके निमित्त सं० १६६६में 'गोपालद्वारा मन्दिर'का निर्माण जयतारणमें कराया था । इस आधारपर इनका आविर्भाव-काल १७वीं शतीका पूर्वार्ध ठहरता है ।

'पदमुक्तावली'के ये पद मध्यकालके धार्मिक पुनरुत्थानमें रामोपासनाका महत्त्वपूर्ण योगदान तथा समसामयिक भक्ति-सम्प्रदायोंमें उसकी असाधारण लोकप्रियता व्यक्त करते हैं । इसके साथ ही ये इस तथ्यके भी द्योतक हैं कि रामभक्ति-शाखामें गीतिकाव्यकी अपनी परम्परा निर्गुण तथा सगुण भक्ति-सम्प्रदायोंकी भाँति गोस्वामी तुलसीदासके आविर्भावके पूर्वसे ही चली आ रही थी । इसकी तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ थीं—ऐश्वर्यपरक, माधुर्यपरक और दार्शनिक । तुलसीको ये तत्त्व परम्परागत रामभक्ति-काव्यसे रिक्थरूपमें मिले थे । उनके गीतिकाव्यमें ऐश्वर्य तथा दार्शनिकतत्त्वकी प्रधानता है, माधुर्यतत्त्व गौण है । किंतु उत्तर-मध्यकालीन राम-साहित्यमें माधुर्यभाव ही प्रधान हो गया । रसिक महात्माओंद्वारा अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शतीमें विरचित विशाल रामभक्तिसाहित्य इसका प्रमाण है । 'पदमुक्तावली'में संकलित हरियाचार्य, बालअली, सूरकिशोर-प्रभृति भक्तोंकी प्रचुर रचनाएँ भी इस धाराकी प्रबलताकी ओर संकेत करती हैं ।

श्रीरामनामकी महिमा तथा श्रीरामके अष्टोत्तरशत नामका माहात्म्य

पार्वतीजीने कहा—नाथ ! आपने उत्तम वैष्णवधर्मका भलीभाँति वर्णन किया । वास्तवमें परमात्मा श्रीविष्णुका स्वरूप गोपनीयसे भी अत्यन्त गोपनीय है । सर्वदेववन्दित महेश्वर ! मैं आपके प्रसादसे धन्य और कृतकृत्य हो गयी । अब मैं भी सनातन देव श्रीहरिका पूजन करूँगी ।

महादेवजी बोले—देवि ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा ! तुम सम्पूर्ण इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् लक्ष्मीपतिका पूजन अवश्य करो । भद्रे ! मैं तुम-जैसी वैष्णवी पत्नीको पाकर अपनेको कृतकृत्य मानता हूँ ।

वसिष्ठजी कहते हैं—तदनन्तर वामदेवजीके उपदेशानुसार पार्वतीजी प्रतिदिन 'श्रीविष्णुसहस्रनाम'का पाठ करनेके पश्चात् भोजन करने लगीं । एक दिन परम मनोहर कैलासशिखरपर भगवान् श्रीविष्णुकी आराधना करके भगवान् शंकरने पार्वतीदेवीको अपने साथ भोजन करनेके लिये बुलाया । तब पार्वतीदेवीने कहा—'प्रभो ! मैं श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करनेके पश्चात् भोजन करूँगी, तबतक आप भोजन कर लें ।' यह सुनकर महादेवजीने हँसते हुए कहा—"पार्वती ! तुम धन्य हो, पुण्यात्मा हो; क्योंकि भगवान् विष्णुमें तुम्हारी भक्ति है । देवि ! भाग्यके बिना श्रीविष्णु-भक्तिका प्राप्त होना बहुत कठिन है । सुमुखि ! मैं तो 'राम ! राम ! राम !'—इस प्रकार जप करते हुए परम मनोहर श्रीरामनाममें ही निरन्तर रमण किया करता हूँ । रामनाम सम्पूर्ण सहस्रनामके समान है । पार्वती ! रकारादि जितने नाम हैं, उन्हें सुनकर रामनामकी आशङ्कासे मेरा मन प्रसन्न हो जाता है । अतः महादेवि ! तुम रामनामका उच्चारण करके इस समय मेरे साथ भोजन करो ।"

यह सुनकर पार्वतीजीने रामनामका उच्चारण करके भगवान् शंकरके साथ बैठकर भोजन किया । इसके बाद उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर पूछा—'देवेश्वर ! आपने रामनामको सम्पूर्ण सहस्रनामके तुल्य बताया है; यह सुनकर रामनाममें मेरी बड़ी भक्ति हो गयी है, अतः भगवान् श्रीरामके यदि और भी नाम हों तो मुझे बताइये ।'

महादेवजी बोले—पार्वती ! सुनो, मैं श्रीरामचन्द्रजीके नामोंका वर्णन करता हूँ । लौकिक और वैदिक जितने भी शब्द हैं, वे सब श्रीरामचन्द्रजीके ही नाम हैं; किंतु सहस्रनाम उन सबमें अधिक है और उन सहस्रनामोंमें भी श्रीरामके एक सौ आठ नामोंकी प्रधानता है । श्रीविष्णुका एक-एक नाम ही सब वेदोंसे अधिक माना गया है । वैसे ही एक हजार नामोंके समान अकेला श्रीराम-नाम माना गया है । पार्वती ! जो सम्पूर्ण मन्त्रों और समस्त वेदोंका पाठ करता है, उसकी अपेक्षा कोटिगुना पुण्य केवल रामनामसे उपलब्ध होता है ।* शुभे ! अब श्रीरामके उन मुख्य नामोंका वर्णन सुनो, जिनका महर्षियोंने गान किया है—

ॐ श्रीरामो रामचन्द्रश्च रामभद्रश्च शाश्वतः ।
राजीवलोचनः श्रीमान् राजेन्द्रो रघुपुंगवः ॥
जानकीवल्लभो जैत्रो जितामित्रो जनार्दनः ।
विश्वामित्रप्रियो दान्तः शरण्यत्राणतत्परः ॥
वालिप्रमथनो वाग्मी सत्यवाक् सत्यविक्रमः ।
सत्यव्रतो व्रतफलः सदा हनुमदाश्रयः ॥
कौसल्येयः खरध्वंसी विराधवधपण्डितः ।
विभीषणपरित्राता दशग्रीवशिरोहरः ॥
सप्ततालप्रभेत्ता च हरकोदण्डखण्डनः ।
जामदग्न्यमहादर्पदलनस्ताटकान्तकृत् ॥
वेदान्तपारो वेदात्मा भवबन्धैकभेषजः ।
दूषणत्रिशिरोऽरिश्च त्रिमूर्तिस्त्रिगुणस्त्रयी ॥
त्रिविक्रमस्त्रिलोकात्मा पुण्यचारित्रकीर्तनः ।
त्रिलोकरक्षको धन्वी दण्डकारण्यवासकृत् ॥
अहल्यापावनश्चैव पितृभक्तो वरप्रदः ।
जितेन्द्रियो जितक्रोधो जितलोभो जगद्गुरुः ॥
ऋक्षवानरसंघाती चित्रकूटसमाश्रयः ।
जयन्तत्राणवरदः सुमित्रापुत्रसेवितः ॥
सर्वदेवाधिदेवश्च मृतवानरजीवनः ।
मायामारीचहन्ता च महाभागो महाभुजः ॥
सर्वदेवस्तुतः सौम्यो ब्रह्मण्यो मुनिसत्तमः ।
महायोगी महोदारः सुग्रीवस्थिरराज्यदः ॥
सर्वपुण्याधिकफलः स्मृतसर्वाघनाशनः ।
आदिपुरुषो महापुरुषः परमः पुरुषस्तथा ॥

---

* विष्णोरेकैकनामैव सर्ववेदाधिकं मतम् ।
तादृङ्नामसहस्राणि रामनाम समं मतम् ॥
जपतः सर्वमन्त्रांश्च सर्ववेदांश्च पार्वति ।
तस्मात् कोटिगुणं पुण्यं रामनाम्नैव लभ्यते ॥

पुण्योदयो महासारः पुराणपुरुषोत्तमः ।
स्मितवक्त्रो मितभाषी पूर्वभाषी च राघवः ॥
अनन्तगुणगम्भीरो धीरोदात्तगुणोत्तरः ।
मायामानुषचारित्रो महादेवाभिपूजितः ॥
सेतुकृज्जितवारीशः सर्वतीर्थमयो हरिः ।
श्यामाङ्गः सुन्दरः शूरः पीतवासा धनुर्धरः ॥
सर्वयज्ञाधिपो यज्ञो जरामरणवर्जितः ।
शिवलिङ्गप्रतिष्ठाता सर्वाघगणवर्जितः ॥
परमात्मा परं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः ।
परं ज्योतिः परं धाम पराकाशः परात्परः ॥
परेशः पारगः पारः सर्वभूतात्मकः शिवः ।
इति श्रीरामचन्द्रस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥
गुह्याद्गुह्यतरं देवि तव स्नेहात् प्रकीर्तितम् ॥

(पद्म०, उत्त०, २१८ । २६–४८)

१–ॐ श्रीरामः–जिनमें योगीजन रमण करते हैं, ऐसे सच्चिदानन्दघनस्वरूप श्रीराम अथवा सीतासहित राम, २–रामचन्द्रः–चन्द्रमाके समान आनन्ददायी एवं मनोहर राम, ३–रामभद्रः–कल्याणमय राम, ४–शाश्वतः–सनातन भगवान्, ५–राजीवलोचनः–कमलके समान नेत्रोंवाले, ६–श्रीमान् राजेन्द्रः–श्रीसम्पन्न तथा राजाओंके भी राजा (चक्रवर्ती सम्राट्), ७–रघुपुंगवः–रघुकुलमें सर्वश्रेष्ठ, ८–जानकीवल्लभः–जनकदुलारी सीताके प्रियतम, ९–जैत्रः–विजयशील, १०–जितामित्रः–शत्रुओंको जीतनेवाले, ११–जनार्दनः–सम्पूर्ण मनुष्योंद्वारा याचना करनेयोग्य, १२–विश्वामित्रप्रियः–विश्वामित्रजीके प्रियतम, १३–दान्तः–जितेन्द्रिय, १४–शरण्यत्राणतत्परः–शरणागतोंकी रक्षामें संलग्न, १५–वालिप्रमथनः–वालिनामक वानरको मारनेवाले, १६–वाग्मी–अच्छे वक्ता, १७–सत्यवाक्–सत्यवादी, १८–सत्यविक्रमः–सत्यपराक्रमी, १९–सत्यव्रतः–सत्यका दृढ़तापूर्वक पालन करनेवाले, २०–व्रतफलः–सम्पूर्ण व्रतोंसे प्राप्त होनेयोग्य फलस्वरूप, २१–सदा हनुमदाश्रयः–निरन्तर हनुमान्‌जीके आश्रय अथवा हनुमान्‌जीके हृदय-कमलमें सदा निवास करनेवाले, २२–कौसलेयः–कौसल्याजीके पुत्र, २३–खरध्वंसी–खरनामक राक्षसका नाश करनेवाले, २४–विराधवधपण्डितः–विराध नामक दैत्यका वध करनेमें कुशल, २५–विभीषणपरित्राता–विभीषणके रक्षक, २६–दशग्रीवशिरोहरः–दशग्रीव रावणके मस्तक काटनेवाले, २७–सप्ततालप्रभेत्ता–सात तालवृक्षोंको एक ही बाणसे बींध डालनेवाले, २८–हरकोदण्डखण्डनः–जनकपुरमें शिवजीके धनुषको तोड़नेवाले, २९–जामदग्न्यमहादर्पदलनः–परशुरामजीके महान् अभिमानको चूर्ण करनेवाले, ३०–ताटकान्तकृत्–ताड़का नामवाली राक्षसीका वध करनेवाले, ३१–वेदान्तपारः–वेदान्तके पारंगत विद्वान्, अथवा वेदान्तसे भी अतीत, ३२–वेदात्मा–वेदस्वरूप, ३३–भवबन्धैकभेषजः–संसार-बन्धनसे मुक्त करनेके लिये एकमात्र औषधरूप, ३४–दूषणत्रिशिरोऽरिः–दूषण और त्रिशिरा नामक राक्षसोंके शत्रु, ३५–त्रिमूर्तिः–ब्रह्मा, विष्णु और शिव—तीन रूप धारण करनेवाले, ३६–त्रिगुणः–त्रिगुणस्वरूप अथवा तीनों गुणोंके आश्रय, ३७–त्रयी–तीन वेदस्वरूप, ३८–त्रिविक्रमः–वामन अवतारमें तीन पगोंसे समस्त त्रिलोकीको नाप लेनेवाले, ३९–त्रिलोकात्मा–तीनों लोकोंके आत्मा, ४०–पुण्यचारित्रकीर्तनः–जिनकी लीलाओंका कीर्तन परम पवित्र है, ऐसे, ४१–त्रिलोकरक्षकः–तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाले, ४२–धन्वी–धनुष धारण करनेवाले, ४३–दण्डकारण्यवासकृत्–दण्डकारण्यमें निवास करनेवाले, ४४–अहल्यापावनः–अहल्याको पवित्र करनेवाले, ४५–पितृभक्तः–पिताके भक्त, ४६–वरप्रदः–वर देनेवाले, ४७–जितेन्द्रियः–इन्द्रियोंको काबूमें रखनेवाले, ४८–जितक्रोधः–क्रोधको जीतनेवाले, ४९–जितलोभः–लोभकी वृत्तिको परास्त करनेवाले, ५०–जगद्गुरुः–अपने आदर्श चरित्रोंसे सम्पूर्ण जगत्‌को शिक्षा देनेके कारण सबके गुरु, ५१–ऋक्षवानरसंघाती–वानर और भालुओंकी सेनाका संगठन करनेवाले, ५२–चित्रकूटसमाश्रयः–वनवासके समय चित्रकूटपर्वतपर निवास करनेवाले, ५३–जयन्तत्राणवरदः–जयन्तके प्राणोंकी रक्षाका वर देनेवाले, ५४–सुमित्रापुत्रसेवितः–सुमित्रानन्दन लक्ष्मणके द्वारा सेवित, ५५–सर्वदेवाधिदेवः–सम्पूर्ण देवताओंके भी अधिदेवता, ५६–मृतवानरजीवनः–मरे हुए वानरोंको जीवित करनेवाले, ५७–मायामारीचहन्ता–मायामय मृगका रूप धारण करके आये हुए मारीच नामक राक्षसका वध करनेवाले, ५८–महाभागः–महान् सौभाग्यशाली, ५९–महाभुजः–बड़ी-बड़ी बाहोंवाले, ६०–सर्वदेवस्तुतः–सम्पूर्ण देवता जिनकी स्तुति करते हैं, ऐसे, ६१–सौम्यः–शान्तस्वभाव, ६२–ब्रह्मण्यः–ब्राह्मणोंके हितैषी, ६३–मुनिसत्तमः–मुनियोंमें श्रेष्ठ, ६४–महायोगी–सम्पूर्ण योगोंके अधिष्ठान होनेके कारण

प्रकारकी सिद्धियोंसे भरा पड़ा है। फिर परमात्माके नामपर ध्यान जमानेसे परमात्माकी उपलब्धि तो और भी सरलता-पूर्वक हो जा सकती है। परमात्मा कोई कल्पित वस्तु भी नहीं है न कोई दूरकी वस्तु है। वह तो अपनी ही अन्तरात्मा है, अपना ही आदर्श अस्तित्व है, अपने ही पूर्णस्वपर पहुँचनेवाला सत्-चित्-आनन्दस्वरूप है। तब भगवन्नामको परमात्माका प्रतीक अथवा संकेत चिह्न मात्र न समझकर परमात्माका शब्दमय व्यक्तित्व ही समझना चाहिये। वह स्वयं परमात्मा है। संतोंने इसीलिये शब्दको ही ब्रह्म कहा है और उसीसे अपनी सुरति (स्मृतिस्रोत, सुरतिस्रोत, अथवा यों कहिये कि जीवन-स्रोत) लगानेको कहा है। ऐसे अभेददर्शी संतोंने भी रामनाममें अद्भुत आधिक्य पाया है, अतएव उन्होंने सर्वधर्मसमत्व मानते हुए भी—हिंदूमुस्लिम अभेदके प्रेमी होते हुए भी—'राम' को ही अपना इष्टमन्त्र माना और उसीके जपपर जोर दिया है।

ध्वनिशास्त्र-विशारदोंका कहना है कि 'र'की ध्वनि जिह्वापर घर्षण-सी करतीहुई निकलती है। उसमें कर्मकी जीवंतता है, जीवंतताका जागरण है। उसकी विद्युत्-रेखाएँ विशिष्ट प्रकारकी उग्रता लेकर बढ़ती हैं। वह ध्वनि अग्नि-प्रसविनी ध्वनि है। जान पड़ता है, इन्हीं सब बातोंपर ध्यान रखकर मन्त्र-शास्त्रमें 'रं' को अग्निबीज माना गया है। 'आ'की ध्वनि विस्तार और प्रकाशकी सूचिका है। उस ध्वनिके लिये मुँह पूरा खोलना पड़ता है। उस ध्वनिमें ज्ञानकी जाग्रत् पूर्णता है। उस ध्वनिमें चेतनाकी पूर्ण प्रबुद्धता है। इन्हीं सब कारणोंसे 'आं' को आदित्यबीज माना गया है। 'म्' अथवा अनुस्वारकी ध्वनि स्वरोंके गुञ्जनकी ध्वनि है—समाहार, समारोप, विलय अथवा शान्तिकी ध्वनि है। 'मं' को इसीलिये चन्द्रबीज कहा गया है। 'र' सत् अथवा शक्तिकी देनेवाली ध्वनि है। 'आ' चित् अथवा ज्ञानकी देनेवाली ध्वनि है और 'म्' शान्ति एवं आनन्दकी देनेवाली ध्वनि है। इस प्रकार 'राम' शब्दका उच्चारण (चाहे वह वाणीके केवल बाह्य करणसे हो रहा हो चाहे अन्तःकरणसे भी होने लगा हो) हमारे सच्चिदानन्दत्वके संवर्धन अथवा प्रकटीकरणका एक अमोघ, अचूक वैज्ञानिक साधन है—इसमें कोई संदेह नहीं।

तुलसीदासजीने नाम-वन्दनाके प्रसङ्गमें कहा है—

'बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥'
(मानस १। १८। १)

भावार्थ यह है कि मैं रघुवर रामके उस नामकी वन्दना कर रहा हूँ जो कृशानु-कुलके परशुरामके, भानुकुलके राजा रामके और हिमकर-कुलके बलरामके व्यक्तित्वके साथ प्रसङ्गवश जुड़ा हुआ नाम नहीं, किंतु इन तीनों कुलोंकी आदि-ज्योतियोंका भी हेतुस्वरूप है—बीज-स्वरूप है, इन तीनों शक्तियोंका प्रदाता मन्त्रराजस्वरूप है। 'राम' शब्द परब्रह्मका द्योतक तो है ही। कहा भी गया है—

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥

अतएव रामनामका जप सम्प्रदाय-निरपेक्ष होकर निराकारवादियों, साकारवादियों, हिंदुओं, अहिंदुओं, सबके लिये हितप्रद है। रघुवर रामका नाम प्रगतिशीलोंमें प्रगतिशील है और रम्योंमें परम रम्य है। प्रभावमें परम शक्तिशाली यह नाम उच्चारणमें बहुत सुगम है और मन्त्रराज होते हुए भी जपकी दृष्टिसे देश-काल-पात्रके बन्धनोंसे मुक्त है, अर्थात् हर कहीं, हर समय हर किसीके द्वारा जपा जा सकता है। वह एक साथ ही अगुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म दोनोंका द्योतन करता है। सत्यत्वका प्रबोधक होते हुए भी वह शिवत्वका संस्थापक हो जाता है। आकृति और प्रकृतिका रमणीयत्व अथवा सुन्दरत्व तो उसके अणु-अणुमें व्याप्त है। उसकी रटसे परमात्मा सत्य-शिव-सुन्दर रूपमें शरीरी होकर हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता है। इन्हीं सब कारणोंसे अन्य नामोंकी अपेक्षा रामनामकी अपनी कुछ अलग विशेषता है।

रामनामके स्वर-पक्षके साथ ही उसका व्यञ्जन-पक्ष भी देखा जाय। स्वर-पक्ष रामनामकी ध्वनिसे सम्बन्धित है और व्यञ्जन-पक्ष उसके अर्थसे। रामनामकी ध्वनि अथवा राम-धुन हमारे लिये किस प्रकार सिद्धिदात्री बन जाती है, यह बताया जा चुका है। रामका व्यञ्जन-पक्ष अथवा अभिव्यक्ति-पक्ष एक ऐसे आदर्श महापुरुषका रूप हमारी कल्पनाके नेत्रोंके सम्मुख खड़ा कर देता है, जो हर अर्थमें मर्यादापुरुषोत्तम है। वह रूप भक्तवत्सलका है, करुणा-निधानका है, दीनदयालका है, जगत्-रक्षकका है, नैतिकताकी पराकाष्ठाका है, सर्वसमर्थ प्रभुका है। वह दशरथनन्दन राजकुमारका ही नहीं, किंतु उनकी आड़में परम पावन मनुष्यताका रूप है। वह इतिहास-प्रसिद्ध रामका ही नहीं, अपितु रामताका रूप है, जिस रूपमें साधक किसी त्रुटि या अपूर्णताकी गुंजाइश ही नहीं देखता। इन रामका चरित्र प्रधानतः वही है, जो इतिहासमें झलका है। परंतु वह घटनापरक चरित्रमात्र न रहकर परिमार्जनके साथ सीताका रूप धारण कर चुका है। वाल्मीकीय रामायण

रामनामकी महिमा



सहसनाम सम सुनि सिव बानी । जपि जेईं पिय संग भवानी ॥

[पृष्ठ ६००

पढ़कर रामका जो अर्थ समझा जा सकता है, तुलसीदासजीके रामका अर्थ उससे कुछ दूसरा ही है। जैन या बौद्ध राम-कथाके रामके अर्थसे गोस्वामीजीके रामका अर्थ निश्चय ही बहुत भिन्न है। गोस्वामीजीने जब—'राम सकल नामन्ह ते अधिका।' (मानस ३।४०।४) कहा, तब उनके मनमें रामका वही अर्थ क्रीड़ा कर रहा था, जो वे समझ रहे थे, न कि वह, जो इतिहासके पन्नोंसे प्रकट होता है। इतिहासके राम अपने स्थानपर हैं इष्ट-साधनाके राम अपने स्थानपर और तत्त्व-चिन्तनके राम अपने स्थानपर हैं। किंतु 'रामधुन' एक ऐसी बढ़िया प्रक्रिया है, जो तीनोंको समेटती हुई अखिल मानव-जातिको उदात्त मानवीय गुणोंसे भर देनेकी क्षमता रखती है। मनुष्य अपने सच्चे हितैषी और सहायकसे जो शील, जो चारित्र्य, जो संरक्षण-क्षमत्व चाहता है, वह रामके व्यक्तित्वमें प्रचुरमात्रामें विद्यमान है। वर्तमान युगमें तो हमें ऐसे ही आराध्यकी अधिक आवश्यकता है। गोस्वामीजीने रामके व्यक्तित्व और रामके चरित्रको जितने आकर्षक और स्पृहणीय रूपमें संसारके समक्ष रखा है, उसने राम-नामकी अर्थ-गर्भताको और भी अधिक महत्त्व दे दिया है। राम नर होकर नारायण हो गये हैं और नारायण होकर आदर्श नर हो गये हैं। मनुष्य अपनी प्रत्येक परिस्थितिमें ऐसे रामको अपने सहायकरूपमें सहज ही पा जाता है। इसलिये भी रामनाम अन्य नामोंकी अपेक्षा 'अधिक' अर्थात् श्रेष्ठ कहा गया है—'राम सकल नामन्ह ते अधिका।'

भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम्।
तर्जनं यमदूतानां राम रामेति गर्जनम्॥

(रामरक्षास्तोत्र)

'राम-नामका घोष आवागमनकी बीजरूपा वासनाओंको भूँज देनेवाला, सुख-सम्पत्तिका अर्जन करनेवाला तथा यम-दूतोंको भगा देनेवाला है।'

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम॥

(महानाटक १।८)

'राम-नाम—जो सम्पूर्ण कल्याणोंका खजाना, कलियुगके पापोंका नाश कर देनेवाला, पवित्र करनेवालोंको भी पवित्र करनेवाला, परमपदकी प्राप्तिकी ओर बढ़नेवाले मोक्षकामीके लिये सम्बलरूप, श्रेष्ठ कवियोंकी वाणीको विश्राम देनेवाला, सत्पुरुषोंका जीवन और धर्मरूपी वृक्षका बीज है—आप सबका मङ्गल करनेमें समर्थ हो।'

श्रीरामनाम-महिमा

भगवान् शंकर देवी पार्वतीसे कहते हैं—

रामेति द्व्यक्षरजपः सर्वपापापनोदकः। गच्छंस्तिष्ठञ्शयानो वा मनुजो रामकीर्तनात्॥
इह निर्वर्तितो याति चान्ते हरिगणो भवेत्। रामेति द्व्यक्षरो मन्त्रो मन्त्रकोटिशताधिकः॥
न रामादधिकं किंचित् पठनं जगतीतले। रामनामाश्रया ये वै न तेषां यमयातना॥
रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च। अन्तरात्मस्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते॥
रामेति मन्त्रराजोऽयं भवव्याधिनिषूदकः। राम रामेति रामेति रामेति समुदाहृतः॥
द्व्यक्षरो मन्त्रराजोऽयं सर्वकार्यकरो भुवि। देवा अपि प्रगायन्ति रामनाम गुणाकरम्॥
तस्मात्त्वमपि देवेशि रामनाम सदा वद। रामनाम जपेद्यो वै मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥

(स्कन्दपुराण, नागरखण्ड)

'राम—इस दो अक्षरोंके मन्त्रका जप समस्त पापोंका नाश करता है। चलते, बैठते, सोते, (जब कभी भी) जो मनुष्य रामनामका कीर्तन करता है, वह यहाँ कृतकार्य होकर जाता है और अन्तमें भगवान् हरिका पार्षद बनता है। राम—यह दो अक्षरोंका मन्त्र शतकोटि मन्त्रोंसे भी अधिक (प्रभावशाली) है। रामनामसे बढ़कर जगत्‌में जप करनेयोग्य कुछ भी नहीं है। जिन्होंने रामनामका आश्रय लिया है, उनको यमयातना नहीं भोगनी पड़ती। जो 'राम'—इस नामसे पुकारा जाता है, वह अन्तरात्मस्वरूपसे स्थावर-जङ्गम सभी भूत-प्राणियोंमें रमण करता है। 'राम' यह मन्त्रराज भव-रोगका विनाशक है। 'राम' 'राम' 'राम' 'राम'—इस प्रकार उच्चारण करनेपर यह अक्षर (अविनाशी) मन्त्रराज पृथ्वीमें समस्त कार्योंको सफल करता है। गुणोंकी खानि इस रामनामका देवतागण भी भलीभाँति गान करते हैं। अतएव हे देवेश्वरि! तुम भी सदा रामनाम कहा करो। जो रामनामका जप करता है, वह सारे पापोंसे (मोहजनित समस्त सूक्ष्म और स्थूल पापोंसे) छूट जाता है।'

श्रीसीताराम-नाम-महिमा

(लेखक—महंत श्रीरघुवरप्रसादजी महाराज)

शास्त्रोंमें परब्रह्म परमात्माके दो रूप माने गये हैं—एक सगुण, दूसरा निर्गुण । वास्तवमें ये दोनों रूप परस्पर अभिन्न हैं । जिस तरह जल और बर्फमें कोई भेद नहीं है, प्रत्युत जलके स्थूल रूपका ही नाम बर्फ है, उसी प्रकारसे सगुण और निर्गुणमें भी कोई भेद नहीं है । निर्गुण ब्रह्मके धर्मसंस्थापन तथा साधुरक्षणार्थ मायाको स्वीकार करनेका ही नाम सगुण रूप है । स्वरूपके भेदसे उपासनामें भी भेद है—एक सगुण-उपासना, दूसरी निर्गुण-उपासना । इनमें निर्गुण उपासना अत्यन्त क्लिष्ट है । जबतक जीव पाञ्चभौतिक पदार्थोंसे चिपटा हुआ है, तबतक उसके लिये उसीकी उपासना सुगम है, जो पाञ्चभौतिक रूपमें दीख पड़े । मुक्तात्माओंकी बात न्यारी है । वे सब कुछ कर सकते हैं । परंतु एक सामान्य मनुष्यके लिये, जबतक कि वह परमात्माके निर्गुण पदको भलीभाँति न समझ ले, तबतक सगुणोपासनाको छोड़कर और कोई उपाय नहीं है । इस सगुणोपासनाके भी नौ भेद हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन । ये सभी साधन समान फल देनेवाले हैं, परंतु इनमेंसे 'स्मरण' विशेष उल्लेखनीय है । निरन्तर 'नामस्मरण' से मनुष्यके हृदयमें एक प्रकारकी आत्मशक्ति उत्पन्न होती है, जो बहुत ही शीघ्र उसको अपना अभीष्ट फल प्राप्त करा देती है । भगवान्‌के अनेक नाम हैं, किंतु कविसम्राट् गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं—'राम सकल नामन्ह तें अधिका ।' 'राम' नाम सब नामोंसे श्रेष्ठ हो * । भगवान्‌का एक नाम है—'मायापति' । इसके अनुसार भगवान्‌के उस पतितपावन नामके साथ उसकी 'योगमाया'का भी स्मरण अवश्य होना चाहिये । शक्ति शक्तिमान्‌से भिन्न नहीं रहती । इसीलिये हमने इस लेखका नाम 'श्रीसीताराम-नाम-महिमा' रक्खा है । प्रभुके नामकी महिमा अकथनीय है । वेद, शास्त्र, पुराण—सभी उसके गीत गाते हैं । ऋषि-महर्षि, संत-महात्मा निशि-दिन उसका स्मरण किया करते हैं, किंतु पार नहीं पाते । शास्त्रोंकी कुछ सम्मति देखिये । श्रुति है—

'परब्रह्म ज्योतिर्मयं नाम उपास्यं मुमुक्षुभिः । रामनामजपेनैव देवतादर्शनं करोति । रामनामजपादेव मुक्तिर्भवति, यश्चाण्डालोऽपि रामेति वाचं वदेत्, तेन सह संवदेत्, तेन सह संवदेत् ॥'

अन्य शास्त्र-वचन है—

सप्तकोटिमहामन्त्राश्चित्तविभ्रमकारकाः ।
एक एव परो मन्त्रो राम इत्यक्षरद्वयम् ॥
न देशकालनियमः शौचाशौचविनिर्णयः ।
परं संकीर्तनादेव राम रामेति मुच्यते ॥

अर्थ स्पष्ट है ।

श्रीसीताराम-नाम-महिमा चारों युगोंमें अटल थी । सत्ययुगमें प्रह्लादका चरित्र प्रसिद्ध है, त्रेतामें महर्षि वाल्मीकि उलटा नाम 'मरा-मरा' जपकर महामुनि हो गये । शबरीकी जीवनी सब जानते हैं । द्वापरमें श्वपच और कलियुगमें रैदास आदि अनेक सिद्ध भक्त हुए हैं ।

पद्मपुराणका वचन है—

न तत्पुराणं नहि यत्र रामो
यस्यां च रामो न च संहिता सा ।
स नेतिहासो नहि यत्र रामः
काव्यं न तत्स्यान्नहि यत्र रामः ॥

"वह पुराण पुराण नहीं, वह संहिता संहिता नहीं, वह इतिहास इतिहास नहीं और वह काव्य काव्य नहीं—जिसमें 'राम' शब्द न आया हो ।" शास्त्रोंके वचन हैं—

पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामं
ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम् ।
जल्पञ् जल्पन् प्रकृतिविकृतौ प्राणिनां कर्णमूले
वीथ्यां वीथ्यामटति जटिलः कोऽपि काशीनिवासी ॥
(काशीरहस्य)

× × ×

रामनामसमं तत्त्वं नास्ति वेदान्तगोचरम् ।
यत्प्रसादात्परां सिद्धिं सम्प्राप्ता मुनयोऽमलाम् ॥

"अपने श्रवणरूपी दोनोंसे मधुर राम-नामरूपी अमृतका निरन्तर पान करना चाहिये तथा मनमें निरन्तर राम-नामका ही ध्यान करना चाहिये'—इस प्रकार मरणासन्न प्राणियोंके कानके पास जाकर बार-बार कहता हुआ कोई जटाधारी काशीवासी गली-गलीमें घूमता फिरता है । ××× उपनिषदोंमें रामनामके समान कोई तथ्य नहीं है, जिसकी कृपासे निष्पाप मुनि मोक्षरूप परमसिद्धिको प्राप्त हो चुके हैं ।"

* भक्त जिस नामसे अपने प्रभुको पुकारता है, उसे वही नाम प्यारा लगता है । प्रभुके सभी नाम एक-से हैं ।—सम्पादक

श्रीशिवजी कहते हैं—

अहं जपामि देवेशि रामनामाक्षरद्वयम्।
श्रीरामस्य स्वरूपस्य ध्यानं कृत्वा हृदिस्थले॥

"हे देवि! मैं केवल दो अक्षर रामनामका ही जप करता हूँ और हृदयमें श्रीरामके स्वरूपका ध्यान करता हूँ।"

श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञकम्।
ब्रह्महत्यादिपापघ्नमिति वेदविदो विदुः॥
(श्रीरामस्तवराज ५)

"वेदज्ञ लोग कहते हैं कि 'ब्रह्महत्यादि सारे पाप ब्रह्म-संज्ञक तारक-मन्त्र रामके जपसे नष्ट हो जाते हैं।'"

इसलिये भक्त क्या करता है?

अन्ये विहाय सकलं सदसच्च कार्यं
श्रीरामपङ्कजपदं सततं स्मरन्ति।
श्रीरामनाम रसनेन पठन्ति भक्त्या
प्रेम्णा च गद्गदगिरोऽप्यथ हृष्टलोमाः॥

'दूसरे लोग समस्त अच्छे-बुरे कामोंको छोड़कर निरन्तर भक्ति-प्रेमपूर्वक श्रीरामके चरणकमलका स्मरण करते हैं तथा पुलकित होकर जीभके अग्रभागसे गद्गद-वाणी होकर श्रीरामनामका जप करते हैं।'

इसी नाम-जपके प्रभावसे अग्निमेंसे निर्लेप निकलकर भक्त प्रह्लाद अपने पितासे कहते हैं—

रामनाम जपतां कुतो भयं
सर्वतापशमनैकभेषजम्।
पश्य तात मम गात्रसंनिधौ
पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना॥

"पिताजी! रामनाम जपनेवालोंको भय कहाँ है? राम-नाम सभी तापोंको नाश करनेवाली एकमात्र संजीवनी है! मेरे शरीरको तो देखो, जिसके निकट अग्नि भी शीतल हो गयी।"

भगवान् शिव कहते हैं—

अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थो
वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं
दिशामि मन्त्रं तव रामनाम॥
(अध्यात्मरामायण ६।१५।६५)

"राम! मैं आपके नामका सदा उच्चारण करता हुआ कृतार्थ होकर पार्वतीके साथ काशीमें अहर्निश वास करता हूँ और मरते हुए लोगोंको मुक्तिके लिये आपके राममन्त्रका उपदेश दिया करता हूँ।"

अविकारी विकारी वा सर्वदोषैकभाजनः।
परमेशपदं याति रामनामानुकीर्तनात्॥

'विकाररहित, विकारी या समस्त दोषभाजन पुरुष भी रामनाम-कीर्तनसे परमात्माके परमपदको प्राप्त होता है।'

गोस्वामी महाराज कहते हैं—

'बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥'
(मानस १।१८।१)

'र' अग्निरूपसे पापनाश कर कर्मयोगका कार्य साधता है, 'अ' सूर्यरूपसे दग्धपाप अन्तःकरणमें प्रकाश कर ज्ञानका कार्य करता है और 'म' चन्द्ररूपसे ज्ञानानन्तर शीतल प्रेमपाल्द पराभक्तिका कार्य साधते हुए आत्माको शान्ति प्रदान करता है। राम-नाम कैसा है?—

'बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो॥'
(वही, १।१८।१)

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥
(रा० च० मा० ७।१०३ क)

'जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा॥'
(वही, ३।३०।३)

रामनामकी अपार महिमा है! कहाँतक लिखी जाय, जो इस महिमाको जानना चाहे, वह महात्माओंका सङ्ग तथा शास्त्रोंका अध्ययन करे।

अन्तमें महात्माकी इस प्रचलित उक्तिको लिखकर लेख समाप्त किया जाता है—

'करसे करो काम—मुखसे बोलो राम।'

राम-नामकी ओट

बड़ी है राम-नाम की ओट।
सरन गएँ प्रभु काढ़ि देत नहिं, करत कृपा कै कोट॥
बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बड़ौ, को छोट।
सूरदास पारस के परसें, मिटति लोह की खोट॥

'रामु न सकहिं नाम गुन गाई'

[लेखक—प्राचार्य श्रीजयनारायणजी मल्लिक, एम्० ए० (द्वय,) डिप० एड्०, साहित्याचार्य, साहित्यालंकार],

'राम-नाम'में इतने गुण हैं कि भगवान् राम भी नामके महत्त्वका वर्णन नहीं कर सकते ।

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार ।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर ॥
(मानस १ । २१)

भगवत्प्राप्तिमें रामनामका बहुत बड़ा महत्त्व है। अध्यात्म-पथपर चलनेके लिये राम-नाम ही आधार है । मानवताके पथप्रदर्शनके लिये संसारमें बहुतसे दीपक जले हैं, पर इनमें राम-नामका दीपक अद्भुत एवं दिव्य है । इसकी मधुमयी स्वर्ण-रश्मियाँ सम्पूर्ण भारतवर्षको उद्भासितकर पाश्चात्त्य देशोंमें भी अपनी किरणें विकीर्ण कर रही हैं । आजका संसार भौतिक विज्ञानकी ओर दौड़ा जा रहा है । प्रकृतिके अन्तरालमें जो शक्तियाँ अन्तर्निहित और सुषुप्त हैं, आजका मानव उन्हें जगाकर अपने अधिकारमें करना चाहता है; किंतु उसके अन्तस्तलमें विराट् पिपासा और विकराल ज्वाला वर्तमान है । इसी विकराल ज्वालाकी शान्तिके लिये राम-नामकी अतीव आवश्यकता है । आजके युगमें लोगोंका ध्यान राज-नीति, अर्थ-शास्त्र तथा विज्ञानके अध्ययन-अध्यापनकी ओर लगा हुआ है, यद्यपि लोग धर्म और नीतिसे उदासीन हो चले हैं । नवीन आविष्कारोंकी चकाचौंधमें हमारी आँखें झुक जाती हैं ।

नर मनाता नित्य नूतन बुद्धिका त्यौहार ।
प्राणमें करते दुखी हो देवता चीत्कार ॥

और यह चीत्कार तबतक शान्त नहीं हो सकता, जबतक मानवता भगवन्नामका महत्त्व नहीं समझ लेती—

'राम कथा सुंदर करतारी । संसय बिहग उड़ावनिहारी ॥'
(मानस १ । ११३ । १/२)

तिमिरमयी रजनीमें मानवता पिच्छल-पथपर जा रही है । दोनों ओर खाइयाँ हैं—

पथ पिच्छल है, अन्धकारमें, खाईमें गिरनेका भय है ।
अन्तस्तलमें छिपी वासनाका अभिनय मादक मधुमय है ॥

दूर अन्तरिक्षमें राम-नामका मार्ग-प्रदर्शक तारा चमक रहा है । विज्ञान तो केवल हमारे हाथमें एक शक्ति देता है, पर शक्तिके अभिमानमें हमें भगवान्को नहीं भूल जाना चाहिये ।

आजका मानव बाह्य-प्रकृतिपर विजय प्राप्तकर गर्वसे इठलाता हुआ प्रकृतिके अन्तरालमें छिपी अनन्त शक्तियोंको गुलाम बनाना चाहता है, पर वही मानव अपनी अन्तः-प्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेकी चेष्टा नहीं कर रहा है । वह अपनी इन्द्रियों और वासनाका गुलाम बन गया है । अपनी अन्तःप्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेका एकमात्र साधन भगवन्नामका जप एवं प्रार्थना है ।

मानव-जीवनका लक्ष्य क्या है ? दुःखकी निवृत्ति और सुखकी प्राप्ति । पर यह होगी कैसे ? अन्धकारमें मानवता भटक रही है, उसे प्रकाश और बलकी आवश्यकता है । असंख्य दार्शनिक वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ, कवि तथा कलाकार आये और मानवताके पथपर दीपक जलाकर चले गये । असंख्य दीपोंकी चकाचौंधमें दुर्बल-त्रस्त मानवता किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गयी । वह क्या करे, किधर जाय ! भिन्न-भिन्न दीपक भिन्न-भिन्न मार्गोंकी ओर संकेत कर रहे हैं । स्मृतियों, दर्शनों एवं पुराणोंमें भिन्न-भिन्न उपायोंकी झलक है । मानवता किस निश्चित पथका अवलम्बन करे ! इसी भयभीत-बद्ध-व्याकुल मानवताके पथ-प्रदर्शनके लिये भगवन्नाम एक प्रकाश-स्तम्भ है और जीवनके कण्टकाकीर्ण पथपर वही उसका सम्बल है ।

मानव-जीवनमें दुःखकी समस्याका समाधान करनेके लिये असंख्य महामानव इस भूतलपर अवतीर्ण हुए और उन्होंने जीवनको सुखी, समुन्नत और परिष्कृत बनानेकी भरपूर चेष्टा की । सृष्टिके प्रारम्भमें ही लोगोंने देखा कि जीवनकी सबसे बड़ी यातना मृत्यु है, अतः जीवनको सुखी बनानेके लिये मृत्युपर विजय प्राप्त करना आवश्यक है । विद्वान् लोग अमरत्वके अन्वेषणमें लग गये । त्रिगुणात्मिक प्रकृतिका मन्थन हुआ । इस विराट् विश्वमें विषके रूपमें तम, मदिराके रूपमें रज और अमृतके रूपमें सत्त्व दृष्टिगोचर हुआ । भव-सागरके मन्थनसे असंख्य रत्न निकले । अमृत-का घड़ा भी निकला । भौतिकवादी एवं अध्यात्मवादी, दोनोंके सहयोगसे अमृतका पता लगा था । दोनोंके दो दृष्टिकोण थे । एक अपने इसी भौतिक शरीरको अमर कराना चाहते थे । दूसरेने देखा कि मानव जड और चेतन, दोनोंका समन्वय है । जड तो विकारी और परिणाम

है। प्रत्येक क्षण वह बदलता रहता है। उसके रूपमें आमूल परिवर्तनका ही नाम तो मृत्यु है। चेतनको जडके सम्पर्कसे सर्वथा अलग कर देना ही अमरत्वकी प्राप्ति है। प्रथम दलने स्थूल शरीर और अन्नमय कोशको अमर रखनेकी भरपूर चेष्टा की। इन्होंने सोचा, मनुष्य मरता ही क्यों है? इन्होंने देखा, मानव-शरीरके भिन्न-भिन्न अवयवोंके जीर्ण होनेसे, मस्तिष्क, हृदय, फेफड़े, पक्वाशय इत्यादिके घिसे जानेसे, समुचित भोजन और व्यायाम नहीं मिलनेसे, असंख्य जीवाणुओं (Cells) के टूटनेसे, रोग-कीटाणुओंके आक्रमणसे तथा शरीरमें जो कई ग्रन्थियाँ हैं, उनसे समुचित स्राव न होनेसे शरीर-यन्त्र बिगड़ जाता है और मनुष्य मर जाता है। इन्होंने शरीरको नीरोग और दीर्घायु करनेके बहुत-से उपाय सोचे। रसायन-शास्त्रने कई प्रकारके रसोंका, आयुर्वेदने कई ओषधियोंका और हठयोगने कई आसनों और व्यायामोंका आविष्कार किया, जिनसे मनुष्य दीर्घजीवी बनकर अपने सौन्दर्य और यौवनको अक्षुण्ण रख सकते थे। पर अध्यात्मवादियोंने देखा कि नीरोग शरीर ही सब कुछ नहीं है, जीवनकी सफलताके लिये मस्तिष्क और चरित्रका विकास भी आवश्यक है। वे असत्से सत्की ओर, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर तथा मृत्युसे अमरत्वकी ओर जाना चाहते थे। इन्होंने देखा कि जीवनकी पूर्ण सफलता भगवत्कृपापर निर्भर है और भगवत्कृपा प्राप्त करनेके लिये भगवन्नाम और प्रार्थना आवश्यक है।

पूर्वाचार्योंने वेद-शास्त्ररूपी क्षीरसागरका मन्थन कर राम-नामका अमृत निकाला। समुद्रके गर्भमें तो विष भी था, मदिरा भी थी और अमृत भी था। भव-सागरके अन्तरालमें तम भी है, रज भी है और सत्त्व भी है। चाहे कोई देश वा धर्म रज और तमका भले ही अन्वेषण कर रहा हो, पर हमने तो केवल सत्त्वको अपनाया है। हम जानते हैं—

'यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः।'

हमारा हिंदूधर्म सत्यके आधारपर खड़ा है। भगवान् हमारे साथ हैं, अतः हमारी विजय निश्चित है। हमारा कभी नाश नहीं हो सकता—

'कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥'
(गीता ९। ३१)

दुनिया भोग-लालसाके शिखरपर चढ़नेके लिये तेजीसे दौड़ रही है। विज्ञान नये-नये चमत्कार दिखा रहा है। राजनीति और अर्थशास्त्र भौतिक तथा सामाजिक जीवनका विश्लेषण कर रहे हैं। किंतु उस दीपककी ओर किसका ध्यान है, जो मानव-शरीरके अन्तर्गत जल रहा है? भोग-लालसाके शिखरपर जब वासना जोरोंसे चीत्कार करेगी—'मुझे नवीन भोजन दो, संसारके सारे भौतिक पदार्थोंका रस मैं चख चुकी, वे अब फीके पड़ गये', उस समय मानवता सोचेगी—'ततः किम् ?' वह सँभलेगी और महसूस करेगी कि वह गलत रास्तेपर थी। जीवनमें त्याग और बलिदानकी जितनी आवश्यकता है, उतनी भोग-वासनाकी नहीं। उस समय पद-दलित मानवताके पथ-प्रदर्शनके लिये राम-नाम प्रकाश और शक्ति प्रदान करेगा। सावन-भादोंकी अँधेरी रातोंमें काले-काले बादल उमड़-घुमड़कर कुछ कालके लिये भले ही आकाशको आच्छन्न कर लें, पर इससे सूर्यका नाश नहीं हो सकता। शीघ्र ही प्राचीके प्राङ्गणमें उषा-देवी अरुण-राग-रञ्जित नवीन परिधान धारणकर हेमकुम्भसे इस शिथिल भूतलपर अमृत-धारा उँड़ेल देती है।

राम-नाम वह सुधाकी धारा है, जो मृतकोंमें भी जीवनका संचार करती है। पर प्रश्न तो यह है कि 'इस अमृतसे जितने मानवोंका उपकार होना चाहिये, वह होता क्यों नहीं? हमें क्या अधिकार है कि इस अमृतकी एक-आध बूँद अपने पीकर फिर इसको बक्समें बंद कर दें और तृषित मानवता इस अमृतके अन्वेषणमें इधर-उधर भटकती फिरे तथा मदिरा और जहर पीकर ही संतुष्ट हो जाय—रामनाममें जो सुन्दरता है, जो माधुर्य है, जो आकर्षण है, संसार उससे वञ्चित रह जाय ?

आज मानव-जीवन अशान्त है। अनवरत संघर्षके बीच वह कुछ टटोल रहा है। वह शाश्वत शान्ति चाहता है। पर वह शान्ति मिलेगी कैसे? पाश्चात्य संसार एक ओर तो विज्ञानके द्वारा प्रकृतिपर विजय प्राप्त करना चाहता है और दूसरी ओर भोग-वासनाकी चकाचौंधमें आनन्द-प्राप्तिका व्यर्थ प्रयास भी कर रहा है। आज एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रको ठगना चाहता है—उसे हड़पना चाहता है। जीवनमें वैषम्य इतना बढ़ गया है कि इसकी प्रतिक्रियाके रूपमें कभी-कभी साम्यवाद भी झाँकी दे जाता है। प्राच्य जगत्की दशा भी अधिक संतोषप्रद नहीं। यहाँ भी विद्या विवादके लिये, धन अभिमान और विलासिताके लिये तथा शक्ति दूसरोंपर रोब जमानेके लिये एवं दूसरोंको पीड़ा

पहुँचानेके लिये एकत्रित की जाती है। यहाँ भी भगवन्नामका आदर नहीं रह गया है। विद्वान्को हठी नहीं होना चाहिये। विद्या तो एक प्रकाश है, जिसकी सहायतासे सत्यका अन्वेषण होना चाहिये। जिसके हाथमें रोशनी है, वह यदि दूसरोंको गुमराह करे, वह यदि दूसरोंको सच्चा रास्ता नहीं दिखाये तो यह विद्याका दुरुपयोग होगा। एक मूर्ख यदि भूल करता है तो वह आप ही नष्ट होता है, उससे राष्ट्रकी विशेष क्षति नहीं होती। किंतु यदि एक पण्डित भूल करता है तो वह अपने साथ हजारोंको डुबो देता है; क्योंकि उसके अनुयायी हजारों रहते हैं। जितने पण्डित और शास्त्रज्ञ हैं, सभी श्रीभगवन्नामकी सत्यताको स्वीकार करते हैं, पर व्यावहारिक जीवनमें, न जाने क्यों, सत्यसे इतनी दूर चले जाते हैं। सभी विद्वानोंके हाथमें ज्ञानका दीपक है; वे देख सकते हैं कि संसारमें बुद्धदेव, शंकर, रामानुज तथा अन्य जितने पथप्रदर्शक महापुरुष आये हैं, सबोंने भगवन्नामका मार्ग सबसे सुलभ बताया है। इसी मार्गकी ओर संकेत करके शास्त्र कह रहा है—

'एष धर्मः सनातनः।'

कर्म-संस्कार अविद्याको जन्म देता है। अनादिकालसे कर्म करता हुआ अविद्यासे ढँका हुआ जीवात्मा प्रकृतिमें लिपटा रहता है। पुरुषके सांनिध्यसे प्रकृतिके सत्त्व-रज-तम—तीनों गुणोंकी साम्यावस्था टूट जाती है और तब प्राकृतिक तत्त्वोंमें विकार उत्पन्न होता है। परिणामवादके अनुसार प्रकृति सदैव बदलती रहती है। जीव अपने कर्म-संस्कारके अनुसार अनुकूल योनि चुन लेता है और उसी योनिके वीर्य-कीटके रूपमें अन्नमयकोशको ग्रहण करता है। पूर्वजन्मोंका चिपका हुआ कर्म-संस्कार सूक्ष्म-शरीरमें ऐसी योग्यता (Capacity) उत्पन्न कर देता है कि वह अपनी अनुकूल योनिमें ही स्थूल शरीर ग्रहण कर सकता है। जिस प्रकार चनेका बीज खेतसे अपने अनुकूल रस खींचता है और धानका बीज अपने अनुकूल, उसी प्रकार प्रकृतिमें सुख-दुःखके अनेक तत्त्व रहनेपर भी जीवात्मा अपने संस्कारके अनुकूल ही तत्त्वोंको और अनुभूतिके साधन—इन्द्रियोंको ग्रहण करता रहता है। पुरुषके जीवनका प्रधान लक्ष्य है—प्रकृतिके विकारोंसे अपने आपको मुक्त करना। जबतक वह प्राकृतिक विकारोंसे मुक्त नहीं होता, तबतक जन्म-मरणके चंगुलसे छूट नहीं सकता। जबतक आत्मामें कर्म-संस्कार चिपका रहेगा, तबतक वह अविद्यासे तथा प्रकृतिसे छुटकारा नहीं पा सकता। रामनामके स्मरणसे कर्म-संस्कार छूट जाता है और उसीके प्रभावसे अविद्याकी निवृत्ति हो जाती है।

हमारा सूक्ष्म-शरीर मन, बुद्धि तथा अहंकारसे बना है। अहंकारमें तमकी प्रधानता है, मनमें रजकी तथा बुद्धिमें सत्त्वकी। अहंकारका परिणाम शिथिलता और जडता है, मनका प्रवृत्ति और बुद्धिका विवेक। वृक्ष-योनिमें अहंकारकी झलक है, पशु-योनिमें प्रवृत्तिकी और मनुष्य-योनिमें विवेककी। यदि हमारे कर्म प्रवृत्ति तथा वासनाकी प्रेरणासे किये जाते हैं तो हम पशुताकी ओर झुक जाते हैं। यदि हमारे कर्म कर्तव्य और विवेककी प्रेरणासे किये जाते हैं तो हममें मानवताकी प्रधानता रहती है। मानवताकी सबसे बड़ी देन है—प्रवृत्तिके ऊपर विवेककी विजय। मानवता जब अपना कर्तव्य-ज्ञान भूलकर भोग-वासनाकी ओर झुक जाती है, तब उसका नाम हो जाता है—'पशुता'। पर मानवता जब उलट जाती है, तब उसका नाम हो जाता है—'दानवता'। पशुता मानवता-को भोग-वासनाकी ओर घसीटकर उसे कलङ्कित कर डालती है, पर दानवता तो मानवताका संहार ही कर देती है। पशुता मानवताकी कमजोरी है और दानवता मानवताकी मौत। इसी दानवताको कुचलनेके लिये मानव-अन्तःकरणमें सदैव देवासुर-संग्राम चलता रहता है। राम-नामका अमृत-पान करनेसे मनुष्यके अंदरका देवता जागरूक और बलवान् होता है और असुरको पछाड़ देता है। हमारा सम्पूर्ण वैदिक साहित्य बलिदानकी भावनासे ओतप्रोत है। मानवताके अन्तर्गत जो पशुता घुस गयी है, देवता उसका बलिदान चाहता है। यह वासना-पशु अज (अजन्मा) है; क्योंकि इसका जन्म नहीं होता। यह भोग-सामग्रीके निकट उछल-कूदकर मानवताको पाप-पङ्कमें धकेल देता है। शक्तिकी आराधना और शक्ति-संचयके निमित्त वासना-पशुका बलिदान आवश्यक है। दानवता और पशुताके प्रभावसे मुक्त होनेका प्रधान साधन भगवन्नामका चिन्तन और अनुसंधान है।

कलि जुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावत भव थाहा॥

(मानस ७। १०२। २)

इच्छा तो स्थूलशरीर और अन्नमय-कोशकी माँग है। उसका सर्वथा दमन सहज सम्भव नहीं है। प्रवृत्ति तो प्रकृति-का सूक्ष्मरूप है। उसको कुचलनेकी चेष्टा प्रकृतिके साथ एक भीषण संग्राम है। मोक्ष-पथपर प्रकृतिके साथ एक भीषण संग्राम सहायक नहीं, बाधक है; क्योंकि प्रकृतिके साथ एक भीषण संग्राम करनेमें हमारी जो शक्ति क्षीण हो जाती है,

उसके सदुपयोगसे हम बहुत आगे बढ़ सकते हैं। तब फिर वासनाके ऊपर हम विजय कैसे प्राप्त करें? यह केवल ब्रह्म-साक्षात्कारसे और भगवत्कृपासे सम्भव है, अन्यथा नहीं; और भगवत्कृपाका मूल आधार भगवन्नाम-कीर्तन है।

तुलसी 'रा' के कहत ही, निकसत पाप-पहाड़।
फिर आवन को चहत हैं, देत 'मकार' केवाड़॥

कर्मयोगसे केवल क्रियमाण कर्म क्षीण हो सकता है, प्रारब्ध और संचित कर्मोंके ऊपर कर्मयोगका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। फिर भी कर्मयोगके लिये अनासक्त और निर्लिप्त होना आवश्यक है, जो एक कठिन समस्या है। स्थूल-शरीरसे कर्म करनेपर अन्तःकरणमें एक तरंग उठती है, मनमें एक विकार उत्पन्न होता है। यही तरंग—यही विकार सूक्ष्म-शरीरका पोषक और वासनाका विकास करनेवाला है। वासना संचित कर्मोंकी पुत्री और क्रियमाण कर्मोंकी जननी है। हमारे व्यतीत जन्मोंके कर्मोंके अनुसार वासना तथा प्रवृत्तिकी रूप-रेखा निर्मित होती है। यही वासना—यही प्रवृत्ति हमारे भविष्य-जीवनका पथ-प्रदर्शन करती है। कामिनी और काञ्चनके सांनिध्यसे हमारे हृदयमें हलचल होने लगती है, वासना अँगड़ाई लेती है और अन्तरात्मामें एक कम्पन—मधुर सिहरनका अनुभव होने लगता है। वासनाके हननमें ज्ञानयोग भी बहुत अधिक सहायता नहीं करता। ज्ञानयोगकी सफलताके लिये स्थितप्रज्ञ होना आवश्यक है और जबतक अन्तःकरणमें वासना जीवित है, तबतक बुद्धि सर्वथा स्थिर नहीं हो सकती। संसार-चक्रकी परिधिमें कर्मोंके पीछे वासना और वासनाके पीछे कर्म चलते रहते हैं। जिस प्रकार फलसे ही पेड़ और पेड़से ही फल होता है; उसी प्रकार वासना कर्म-संस्कारकी जननी है और पुत्री भी। बाह्य इन्द्रियोंके दमन-मात्रसे वासना नहीं मरती। जब वासना इतनी प्रबल है, तब उसको मारकर 'कैवल्य' प्राप्त करनेकी चेष्टा अति दुष्कर है। कर्मयोग या ज्ञानयोग बिना भगवन्नामकी सहायतासे—बिना परमात्माकी दयासे वासनाके दमनमें सफल नहीं हो सकता—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥
(गीता २। ५९)

सचमुच परब्रह्मकी झलक मिलते ही वासना अपने आप मिट जाती है। यदि आसक्ति नहीं मिटी तो बरजोरी बाह्य इन्द्रियोंके दमनसे अधिक लाभ नहीं। पर यह आसक्ति बिना परमात्माकी दयासे मिटेगी कैसे? और जबतक हम भगवन्नाम ले-लेकर प्रार्थनाके रूपमें परमात्माको पुकारेंगे नहीं, तबतक परमात्माकी दया मिलेगी कैसे? हम उपदेशक बनकर लंबी-लंबी वक्तृता देते हैं, शास्त्रार्थ करते हैं, ब्रह्मज्ञानकी मीमांसा करते हैं, पर अन्तःकरणकी मलिनता तो नष्ट नहीं होती। अन्तःकरणकी मलिनता तब मिटती है, जब भगवन्नाम-जपसे हृदय पवित्र हो उठता है और प्रार्थना तथा ध्यान करते-करते ब्रह्म-साक्षात्कार होने लगता है।

मानव सृष्टिका शृङ्गार है। उसके अंदर परमात्माकी एक दिव्य ज्योति जल रही है, जो उसे निम्नस्तरसे ऊपर उठाकर सत्कर्मोंकी ओर प्रेरित करती है और जीवन-यात्रामें उसका पथ-प्रदर्शन करती है। जब जीवनकी आँधी उठती है और तूफानी हवामें उत्ताल-तरंग-माला-संकुल विश्व-पयोधि लहराने लगता है, तब भव-सागरके ज्वारमें एवं धूलि-कणोंके वातावरणमें यह प्रकाश क्षीण और मटमैला हो जाता है। मानव-जीवनमें यह प्रकाश जितना ही जाज्वल्यमान रहेगा, मानवता उतनी ही प्रचुर मात्रामें उसके अन्तर्गत वर्तमान रहेगी। जब पशुता झाँकने लगती है, तब मनुष्य कर्त्तव्य-निष्ठा और भोग-वासनाकी ओर पागलकी तरह दौड़ने लगता है और ज्ञानको भूलकर इन्द्रियोंका दास बन जाता है। हमारे अंदर जो देवता है, वह हमें ऊपर उठानेकी चेष्टा करता है और एक दिव्य अलौकिक रश्मिसे हमें ओत-प्रोत करना चाहता है। पर हमारे जीवनमें जो दानव घुस गया है, वह देवताके साथ संघर्ष करके हमें नीचेकी ओर घसीट रहा है। ऐसे समयमें हमें भगवान्‌की उस मोहिनी मूर्तिकी आवश्यकता है, जो दानवोंको मदिरा पिलाकर सुला दे और देवताओंको अमृत पिलाकर अमर कर दे। राम-नाम और भगवत्प्रार्थनासे देवताको बल मिलता है और दानवता मूर्च्छित हो जाती है। कामना ही माया है। यही जीवके सामने दो खिलौने—कामिनी और काञ्चन फेंक देती है, जिनसे जीव खेलता रहता है। जबतक कामना नष्ट नहीं होती, तबतक अन्तरात्मामें ज्ञान-रश्मि नहीं छिटक सकती। कामनाको नष्ट करनेके लिये राम-नाम और भगवत्प्रार्थना ही एकमात्र साधन हैं। राम-नामसे मानव-मस्तिष्कमें सोयी हुई अनन्त शक्तियाँ जग जाती हैं—अविद्याकी राखमें ढँकी हुई प्रकाशकी चिनगारी प्रकाशके समूहसे भेंट करने लगती है; अन्यथा हमारे मनोमन्दिरमें छिपा हुआ कामना-कीट लाखों प्रयत्न करनेपर भी नहीं

मरता। शरीरको निरर्थक कष्ट देनेसे आत्म-तत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन ॥
(कठोप० २ । ३०)

अनासक्त और निर्लिप्त होकर कर्म करनेका ही नाम 'कर्मयोग' है; पर अनासक्त और निर्लिप्त हम होंगे कैसे? हमारे अन्तःकरणमें जो वासना-सर्पिणी छिपी हुई है, वह कर्मोंका रस पीती रहती है। उपदेश देनेके लिये तो हम कह देते हैं—'वासनाका हनन करो, प्रवृत्तिको कुचलो। अनासक्त और निर्लिप्त होकर कर्म करो', पर इन उपदेशोंसे कर्मयोगकी समस्या हल नहीं होती। वासना असंख्य जन्मोंके प्रारब्ध कर्मोंका परिणाम है; उसको हम केवल वाक्य-ज्ञानके द्वारा नष्ट नहीं कर सकते। आसक्तिशून्य होना जीवनकी सबसे बड़ी समस्या है। यदि बिल्लीके गलेमें घंटी बाँध दी जाय तो चूहे सुरक्षित हो जायँ; पर बिल्लीके गलेमें घंटी बँधेगी कैसे? यहीं भगवन्नाम आकर कर्मयोगकी सहायता करता है। जो सफलता अकेले कर्मयोगको नहीं मिल सकी थी, भगवन्नाम और भगवान्‌की उपासना उसको सहल बना देती है। रामनामके उच्चारणसे, रामनामके चिन्तनसे भगवान् रामका साक्षात्कार हो जाता है और हृदयमें भक्तिका उदय हो जाता है। भगवन्नामस्मरण, भगवान्‌की उपासना और भगवत्कैंकर्य—ये तीनों मोक्षके स्वर्ग-सोपान हैं। हम जो कुछ करें, कर्तव्यकी प्रेरणासे, भगवन्निमित्त, भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये, भगवत्कैंकर्य समझकर करें और फिर अपने समस्त कर्मोंको भगवान्‌को ही समर्पित कर दें। रामनामके स्मरण और चिन्तनसे भगवान् राम हृदयमें विराजमान हो जाते हैं, फिर मायाकी गाँठें आपसे आप खुल जाती हैं—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे ॥
(भागवत १ । २ । २१)

बिना भगवान्‌की प्रसन्नताके लाख प्रयत्न करनेपर भी भगवान् नहीं मिल सकते और भगवान्‌की कृपाका आधार भगवन्नाम-कीर्तन है—

'श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई ॥'
(मानस ७ । ११६ । ३)

शरीरको निरर्थक कष्ट देनेसे मोह-पाश नहीं टूटता—

माधव मोह-फाँस क्यों टूटै।
बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रन्थि न छूटै ॥
घृतपूरन कराह अंतरगत ससि-प्रतिबिंब दिखावै।
ईंधन अनल लगाय कलपसत औंटत नास न पावै ॥
(विनयप० ११५ । १-२)

ज्ञानयोगकी सफलता भी भगवन्नामजप और भगवत्-प्रसन्नतापर ही निर्भर करती है। वाक्यज्ञानसे शास्त्रार्थमें भले ही कोई विजय प्राप्त कर ले, पर इससे मोक्ष-मार्गमें सफलता नहीं मिलती—

वाक्य-ग्यान अत्यंत निपुन भव-पार न पावै कोई।
निसि गृहमध्य दीप की बातन्ह तम निवृत्त नहिं होई ॥
(वही, १२३ । २)

ज्ञानयोगकी सफलताके लिये वासनाका शमन आवश्यक है; किंतु असंख्य जन्मोंके कर्मोंका रस पीकर वासना-सर्पिणी मानव-अन्तःकरणमें फुफकार करती रहती है। ज्ञानयोगके लिये स्थितप्रज्ञ होना आवश्यक है।

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥
(गीता २ । ५५)

कर्मयोग और ज्ञानयोग—दोनों भक्तियोगके सहायक हैं। जो कार्य स्वतः पूरा नहीं होता, भगवान्‌का नामस्मरण करनेसे भगवत्कृपा प्राप्त होती है और वह काम सफल हो जाता है—

'भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा ॥'
(मानस ७ । ११८ । ४)

ज्ञान भक्तिका परिपूरक और प्रकाशक है। ज्ञानका अर्थ उपासनात्मक ज्ञान है। भक्तिके लिये कर्म और ज्ञान—दोनोंकी आवश्यकता है। मानव कर्म (अविद्या) से मृत्युको पार करता है और ज्ञान (विद्या) से अमरत्वकी प्राप्ति होती है—

'अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।'
(ईशोप० ११)

भगवन्नाम लेते-लेते अविच्छिन्न तैलधारावत् परमात्माका ध्यान हो जाता है और सारा संसार ही उसे ब्रह्ममय दीखने लगता है—

'निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध।'
(मानस ७ । ११२ ख)

वह 'सीय राममय सब जग जानी' के आधारपर सारे संसारकी सेवा भगवत्कैंकर्य समझकर ही करता है—

'मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किएँ जोग तप ग्यान बिरागा॥'

(वही, ७। ६१। $\frac{1}{2}$)

भगवत्कैंकर्य हम प्रेमसे करें, भार समझकर नहीं करें; यह नहीं समझें कि कब इससे छुटकारा मिल जायगा। भगवान्‌में अखण्ड श्रद्धा, विश्वास और प्रेम होनेसे भगवान्‌के चिन्तन, स्मरण और कैंकर्यमें रस मिलेगा और आनन्दकी अनुभूति होगी। हम जिसे प्यार करते हैं, दिन-रात उसीके विषयमें सोचते रहते हैं। भगवान् रामके अद्भुत सौन्दर्य और अनन्त माधुर्यकी ओर आकृष्ट होकर अगर हम उनका नामोच्चारण करेंगे तो हमारा जीवन उनके साथ एकाकार हो जायगा; एक क्षण भी हम उनसे अलग रहना नहीं चाहेंगे। यौन आकर्षण तो केवल प्रकृतिकी माँग है। पर आत्माकी भी तो कोई पुकार है। यह ठीक है कि जिस प्रकार विराट् अन्धकारके अन्तस्तलमें एक छोटा-सा टिमटिमाता हुआ दीपक सामर्थ्य-हीन जान पड़ता है, उसी प्रकार प्राकृतिक उलझनोंके बीचमें—भोगलिप्साके भीषण चीत्कारमें आत्माकी पुकार भी दब-सी जाती है; पर जीवात्माका धर्मभूत ज्ञान कभी नष्ट नहीं हो सकता, भगवन्नामके प्रभावसे भगवान् कभी तो रीझेंगे ही—

'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः।'

(कठोप० २। २२)

जीवको सोचना चाहिये—

कोटिहुँ मुख कहि जात न प्रभु के, एक एक उपकार।
तदपि नाथ कछु और माँगिहौं, दीजै परम उदार॥
विषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
ताते सहौं बिपति अति दारुन, जनमत जोनि अनेक॥
कृपा डोरि, बनसी पद अंकुस, परम प्रेम मृदु चारो।
एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो॥

(विनय० १०२। २–४)

राम-नामका अद्भुत माहात्म्य है। भगवान्‌से मिलनेका यही एकमात्र आधार है।

'नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥'

(मानस १। २६। २$\frac{1}{2}$)

भगवान्‌का नाम लेनेसे भवसागरका विषम ज्वार आप-से-आप शान्त हो जाता है—

'नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं॥'

(वही, १। २४। २)

भगवान्‌से भी बढ़कर जीवके लिये भगवान्‌का नाम है।

'राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥'

(वही, १। २३। १$\frac{1}{2}$)

भगवान्‌का नाम लेते-लेते जीव भगवान्‌को ही सब कुछ समझने लगता है—

पिता त्वं माता त्वं दयिततनयस्त्वं प्रिय सुहृत्
त्वमेव त्वं मित्रं गुरुरपि गतिश्चासि जगताम्।

(आलवन्दारस्तोत्र, ६३)

वह भगवान्‌के सम्मुख अपनेको अनन्त अपराधी समझने लगता है—

अपराधसहस्रभाजनं पतितं भीमभवार्णवोदरे।
अगतिं शरणागतं हरे कृपया केवलमात्मसात्कुरु॥

(आलवन्दारस्तोत्र, ५१)

भगवन्नाम-स्मरणसे प्रपत्तिकी भावना आती है और प्रपन्नके लिये दोषानुसंधान आवश्यक है—

न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके
सहस्रशो यन्न मया व्यधायि।
सोऽहं विपाकावसरे मुकुन्द
क्रन्दामि सम्प्रत्यगतिस्तवाग्रे॥

(वही, २६)

प्रपन्नको एकमात्र भगवन्नाम और भगवच्छरणागतिका आधार है। कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोगके लिये वह अपनेको असमर्थ पाता है—

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी
न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिंचनोऽनन्यगतिः शरण्य
त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥

(वही, २५)

रामनामके प्रभावसे भगवान् राममें अनुराग और अखण्ड निष्ठा होती है; फिर जीव आर्त्त, अकिंचन और निःसहाय होकर भगवान् श्रीरामका शरणागत हो जाता है। इसी शरणागतिकी झलक श्रुतियोंमें भी पायी जाती है—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।

तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥
(श्वेताश्वतरोप० ६ । १८)

निस्सहाय, आर्त्त और शरणागत विभीषणको भगवान् रामने अभय-दान दिया था । उनका व्रत है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥
(वा० रा० ६ । १८ । ३३)

"जो एक बार भी शरणमें आकर 'मैं तुम्हारा हूँ'—यों कहकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ । यह मेरा सदाके लिये व्रत है ।"

कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग—इत्यादि कई मार्गोंको देखकर तथा अध्यात्म-पथकी उलझनोंसे घबराकर जब अर्जुन किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया था, तब भगवान् कृष्णने इसी शरणागतिका उपदेश उसे दिया था—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥
(गीता १८ । ६६)

'इसलिये सर्वधर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्मोंके आश्रयको त्यागकर केवल एक मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्माकी ही अनन्यशरणको प्राप्त हो; मैं तेरेको सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर ।'

शरणागतको केवल राम-नामका आधार है । उसको अपने प्रियतम भगवान् रामका कैंकर्य करना है । भगवान् राम तो सर्वत्र, सभी प्राणियोंमें वर्तमान हैं; अतः सभी प्राणियोंकी सेवा, सबसे स्नेह और सहानुभूति, सभीका मङ्गल और कल्याण चाहना, सभीके जीवनको सुखी बनानेकी चेष्टा भगवान् रामका ही कैंकर्य है । कोई भी ऐसा स्थल नहीं है, जहाँ वह छिपकर पाप कर सके; क्योंकि परमात्मा तो सर्वत्र वर्तमान हैं । सभी नर-नारियोंका शरीर परमात्माका मन्दिर है, अतः किसीके साथ द्वेष रखना, किसीकी निन्दा करना, किसीकी बुराई चाहना—भगवान् रामकी अवहेलनामात्र है । पत्नीकी तरह प्रपन्नका एक ही कर्तव्य रह जाता है—

'आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ।'

—जो कार्य भगवान्को रुचे, जिस कार्यसे वे प्रसन्न हों, उसे करना और जो कार्य उनकी इच्छाके विरुद्ध हो, उसे नहीं करना ।

यदि हृदयमें किसी प्रकारकी हलचल हो या वासनाकी तरंग उठे तो रामनामके जपसे हृदय आपसे आप शान्त हो जाता है । सभी अवस्थाओंमें भगवन्नाम जीवका सहायक है ।

आर्त्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता
घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः ।
संकीर्त्य नारायणशब्दमात्रं
विमुक्तदुःखाः सुखिनो भवन्ति ॥

"जो दुःखी हैं, उदास हैं, थके हुए हैं, भयभीत हैं, भयंकर व्याधियोंसे ग्रस्त हैं, वे 'नारायण' शब्दका जोर-जोरसे उच्चारण करके दुःखमुक्त एवं सुखी हो जाते हैं ।"

वस्तुतः भगवन्नामकी महिमा अवर्णनीय है ।

राम-राम गाओ

राम राम राम राम राम राम गावो । मन के रोग सकल बिसरावो ॥
नाम-प्रताप सिला जल तारी । सोई नाम जपौ नर-नारी ॥
नाम लेत प्रहलाद उबारो । परगट है हिरणाकुस मारो ॥
पतित अजामिल सब जग जानै । नाम लेत चढ़ि गयो बिमानै ॥
सुवा पढ़ावत गनिका तारी । नाम लेत निज धाम सिधारी ॥
सोइ नाम नारद मुनि गायो । वेदव्यास मुख प्रगट जनायो ॥
हरि के नाम को करो विचारा । सतसंगति मिलि उतरौ पारा ॥
सिव-ब्रह्मादिक नाम-उपासी । आठ सिद्धि नौ नाम कि दासी ॥
गुरु सुकदेव ने नाम बतायो । चरणदास हरि सों चित लायो ॥

—महात्मा चरणदासजी

राम-नाम सर्वोपरि है

(लेखक—वैद्य पं० श्रीभैरवानन्दजी शर्मा 'व्यापक', रामायणी, 'मानसतत्त्वान्वेषी')

विश्वकवि गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने भगवान् श्रीरामके प्रधान नाम 'राम'की अनुभूत अनुपम महिमाका जितना और जिस प्रकारसे रामचरितमानसके प्रथम सोपान (बालकाण्ड) के दोहा १८ से २७ तकमें निरूपण किया है, वैसा विश्व-साहित्यमें एकत्र मिलना नितान्त असम्भव है। रामनामकी महिमा गाते-गाते कविसम्राट् अघाते ही नहीं, यहाँतक कि स्वयं नामी (भगवान् श्रीरामभद्र) भी अपने राम-नामकी महिमाकी इतिश्री करनेमें असमर्थ हैं। यथा—

'कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥'

(रा० च० मा० १। २५। ४)

वैसे भारतीय साहित्यमें भृगुवंशी श्रीपरशुरामजी और यदुवंशी श्रीबलरामजीकी भी 'भृगुवर राम' और 'यदुवर राम' नामोंसे कम ख्याति नहीं है; किंतु गोस्वामीजीने अतिव्याप्ति-निवारणार्थ स्पष्टतया संकेत किया है कि "मैं यहाँ श्रीरघुवरके 'राम'नामकी वन्दना करता हूँ, भृगुवर या यदुवरके नामकी नहीं करता।" यथा—

'बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥'

(रा० च० मा० १। १८। $\frac{१}{२}$)

वैसे तो प्रभुके अनन्त नाम हैं और वेदोंमें उन नामोंकी महिमाका एक-से-एक अधिक कहकर गान किया गया है; किंतु वे सभी नाम 'राम-नाम'की समता नहीं कर सकते। कारण यह है कि रघुवरका श्रीरामनाम, संसारकी जो प्रत्यक्ष और प्रसिद्ध अग्नि, सूर्य और चन्द्र नामक तीन ज्योतियाँ हैं, उनका भी कारण (उत्पादक) है। विश्वमें प्रथम अग्नि, उसके उपरान्त सूर्य और फिर चन्द्रकी उत्पत्ति हुई। अतः यहाँ भी उसी क्रमसे वर्णन किया गया है। पुनः आगे कहते हैं कि यह राम-नाम त्रिदेवमय है, वेदके प्राण 'प्रणव' के समान है तथा निर्गुण, अनुपम और गुण-निधान है। यथा—

'बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो॥'

(वही, १। १८। १)

भगवान् शिव इसको (एक राम-नामको) अन्य सहस्र नामोंके समान कहकर भगवती पार्वतीको उपदेश करते हैं। यथा—

'सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥'

(पद्मपुराण)

'सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेईं पिय संग भवानी॥'

(वही, १। १८। ३)

उपर्युक्त वर्णनमें इस नामको आगे 'महामन्त्र' संज्ञा दी है। यथा—

'महामंत्र जोइ जपत महेसू।'

(वही, १। १८। १$\frac{१}{२}$)

मन्त्र-शास्त्रका कथन है कि चिन्मय ब्रह्म (महाविष्णु, महाशिव या महाशक्ति अनपायिनी परावाक्) में जब सृष्टि रचनेका संकल्प होता है, तब उन्हें 'पर-बिन्दु' कहते हैं। वही पर-बिन्दु काल पाकर (१) शोण-बिन्दु, (२) सित-बिन्दु और (३) मिश्र-बिन्दुरूपसे त्रिधा-रूपमें प्रकट होता है। इन्हींको क्रमसे (१) बिन्दु, (२) बीज और (३) नाद भी कहते हैं। बिन्दु, बीज और नादकी शक्तियोंको क्रमशः (१) रौद्री, (२) वामा और (३) ज्येष्ठा कहते हैं। रौद्री-शक्तिसे रुद्रकी, वामा-शक्तिसे विष्णुकी और ज्येष्ठा-शक्तिसे ब्रह्माकी उत्पत्ति होती है। मन्त्र-शास्त्रमें शोण-बिन्दुका पारिभाषिक नाम 'कृशानु', सित-बिन्दुका 'भानु' और मिश्र-बिन्दुका 'हिमकर' है।

'राम' शब्दका विश्लेषण करनेसे तीन अक्षरोंका प्रादुर्भाव होता है—(१) रेफ (र), (२) आ और (३) म। 'स्कन्द-यामल-तन्त्र'के निर्वाणखण्डमें भगवान् रुद्र कहते हैं—

रेफोऽग्निरहमेवोक्तो विष्णुः सोमो म उच्यते।
आचयोर्मध्यगो ब्रह्मा रविराकार उच्यते॥

अर्थात्—"रेफरूप अग्नि मैं हूँ। विष्णुरूप सोम 'म' कहा जाता है। हम दोनोंके मध्यमें ब्रह्मा 'आ' सूर्यरूप हैं।" अतः स्पष्टरूपसे कृशानु, भानु और हिमकरसे क्रमशः रुद्र, ब्रह्मा और विष्णुका ग्रहण किया गया है। इसीको आगे—'बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो।' कहकर निरूपण किया है। अतः सिद्ध हुआ कि एक श्रीरामका 'राम-नाम' ही ऐसा है, जो इन त्रिदेवोंकी उत्पत्तिका कारण है।

नाममें रूप सूक्ष्मरूपसे अवस्थान करता है। यदि ऐसा न होता तो गोस्वामीजी नामके ग्रहणसे रूपका मानसिक प्रत्यक्ष होना न कहते। यथा—

'सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥'
(वही, १ । २० । ३)

अतः नाममें रूपका सूक्ष्मरूपसे अवस्थान करना तर्कसे भी सिद्ध है। फलतः रघुवरके राम-नाममें रघुवर-श्रीरामका रूप सूक्ष्मरूपसे अवस्थान करता है।

भृगुवर और यदुवर रामसे रघुवर राममें विशेषता है। यथा—

ॐ चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ।
रघोः कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः॥
स राम इति लोकेषु विद्वद्भिः प्रकटीकृतः॥
(राम० पू० ता० उ० १-२)

अर्थात् चिन्मय श्रीमहाविष्णुने ही रघुकुलमें रामावतार धारण किया।

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥
(रा० पू० ता० उ० ६)

भाव यह है कि जिस नित्यानन्द चिदात्मामें योगीजन रमण करते हैं, वही परब्रह्म 'राम' शब्दवाच्य है। अतः रघुवरके 'रामनाम'में साक्षात् परब्रह्म महाविष्णु ही सूक्ष्मरूपसे अवस्थान करते हैं। इसीलिये गोस्वामीजी भगवान्‌के अन्य सहस्रों (अनन्त) नामोंमेंसे इस 'रामनाम'को ही सर्वाधिक जानकर देवर्षि श्रीनारदके मुखसे श्रीरघुनाथ रामभद्रके सम्मुख प्रार्थना करवाते हुए कहते हैं—

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥
(श्रीरामच० मा० ३ । ४१ । ४)

नामप्रेमी भक्तजनोंकी यहाँ कई बार जिज्ञासा होती है कि गोस्वामीजीने जब अपने रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो० १८ से २७ तकमें इस रघुवरके 'रामनाम'को अनन्त, अकथनीय दिव्य-गुणोंका भंडार कथन करके इस 'रामनाम'को सर्वोपरि सिद्ध कर दिया, तब पुनः श्रीनारदके मुखसे प्रार्थना करवाकर तथा भगवान् श्रीरामभद्रके श्रीमुखसे इस 'रामनाम'को—'सकल नामन्ह ते अधिका' कहलाकर 'एवमस्तु'-की मुहर-छाप लगवानेकी धृष्टता क्यों की?

जिज्ञासुजनोंकी उक्त जिज्ञासा ठीक है; क्योंकि—

'जानें बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥'
(वही, ७ । ८८ । ३½)

प्रश्न स्वाभाविक है; क्योंकि उपर्युक्त प्रकारसे नौ दोहोंमें 'नाममहत्त्व' निरूपण करनेके बाद श्री'रामनाम'का पुनः महत्त्व-कथन करानेकी कोई आवश्यकता नहीं थी। किंतु दैवयोगसे आगे धनुर्भङ्गके उपरान्त एक अघटित घटना घट गयी। सीता-स्वयंवरमें धनुषके टूटते ही भृगुकुल-कमल-पतंग जमदग्नि-तनय श्रीभगवान् परशुरामजी अचानक महेन्द्रपर्वत छोड़कर बदला लेनेके लिये आ धमके। यथा—

'तेहिं अवसर सुनि सिवधनु भंगा। आयउ भृगुकुल कमल पतंगा॥'
(वही, १ । २६७ । १)

इस स्वयंवरमें 'रघुकुल-कमलपतङ्ग' भगवान् श्रीरामभद्र पहलेसे ही उदीयमान थे। ये 'भृगुकुल-कमलपतंग' और आ गये। वेदभगवान्‌का कथन है कि 'सूर्य एकाकी चरति०' (यजु० २३ । १०) याने महाप्रलयके अलावा दो सूर्य कभी एक साथ नहीं होते। पर यहाँ 'रघुकुल-कमलपतंग' और 'भृगुकुल-कमलपतंग' दो सूर्य एकत्र हो गये। महाकविने प्रलयकालका निवारण करते हुए कहा—

'उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बालपतंग।'
(वही, १ । २५४)

याने श्रीरामजीको 'बालपतंग' (बालसूर्य) बतलाकर, परशुरामजीको 'वृद्धपतंग' कहकर शीघ्र ही अस्त होनेका संकेत किया। पर आश्चर्य है कि वृद्ध-पतंगने अस्त होते-होते भी अपनी प्रचण्ड रश्मियाँ डालकर विश्वको एक बार परितप्त कर दिया। आपने क्रोधित होकर भगवान् श्रीरामसे कहा—

संभु सरासनु तोरि सठ करसि हमार प्रबोधु॥
करु परितोषु मोर संग्रामा। नाहिं त छाँड़ि कहाउब रामा॥
छलु तजि करहि समरु सिवद्रोही। बंधु सहित न त मारउँ तोही॥
(१ । २८०; २८० । १-१½)

अर्थात् "अरे शठ! शम्भुका शरासन तोड़कर हमारा प्रबोध करता है? .... मेरे साथ संग्राम करके मेरा परितोष कर। नहीं तो अपना नाम 'राम' कहलाना छोड़ दे। छलको छोड़कर अरे शिवद्रोही! मुझसे युद्ध कर, नहीं तो तुझे तेरे भाईके साथ अभी मार डालूँगा।" अस्तु, पाठकगण! यहाँ भगवान् श्रीरामकी अतिप्रचण्ड मायाका कार्य देखें, जो कि सभीको मोहमें डाल देती है। यथा—

'अति प्रचंड रघुपति कै माया। जेहि न मोह अस को जग जाया॥'
(वही, १ । १२७ । ४)

परशुरामजी स्वयं भगवान्‌के अंश-कला-अवतार होते हुए भी क्रोधावेश और मायासे विमोहित होनेके कारण रामभद्रके प्रभावको न जान सके। जब राम 'ब्रह्म चिनमय अबिनासी। सर्ब रहित सब उर पुरबासी ॥' (१।११९।३) हैं, तब उनको 'शठ'; 'छली'; 'शिवद्रोही' कहकर संग्राममें कौन जीत सकता है ?

अब भगवान् श्रीरामका उत्तर सुनिये—

छमहु चूक अनजानत केरी। चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी ॥
हमहि तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा॥
राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तोहारा ॥
देव एकु गुनु धनुष हमारें। नव गुन परम पुनीत तुम्हारें ॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे। छमहु बिप्र अपराध हमारे ॥
(श्रीरामच० १ । २८१ । २–४)

अर्थात् "अनजानमें हुई हमारी चूकको क्षमा करें। ब्राह्मणके हृदयमें तो बहुत बड़ी कृपा होनी चाहिये। नाथ! आपकी और हमारी समानता कैसे हो सकती है। हम तो आपके चरणोंकी समानता भी नहीं कर सकते (यह रूपकी असमानता कही)। हमारा तो दो अक्षरोंका 'राम' मात्र छोटा-सा नाम है, जब कि आपका परशुसहित—'परशुराम'—यह पाँच अक्षरोंका बड़ा नाम है (यह नामकी असमानता कही)। हे देव! हमारे धनुषमें तो एक ही गुण (प्रत्यञ्चा) है, किंतु आपमें तो परमपवित्र नौ गुण हैं (यहाँ गुणकी असमानता कही)। हे विप्र! हम तो नाम-रूप-गुणोंमें सब प्रकारसे आपसे हार गये हैं। हमारे सभी अपराधोंको क्षमा करिये।" अस्तु,

यहाँ भगवान् श्रीरामकी निरभिमानोक्तिको तीनों लोकोंके प्रधान-प्रधान वीरोंने सुना। हो सकता है, उन्हें उल्टा भ्रम हो गया हो कि—"जब 'राम-नाम'को स्वयं भगवान् श्रीरामने 'परशुराम-नाम'से छोटा कहा है, तब बड़े नामका प्रभाव भी बड़ा होगा। फलतः राम-नाम छोड़कर 'परशुराम-नाम'का जप करना चाहिये।"

इस कारण रामनामके प्रभावके परमज्ञाता देवर्षि नारदने, जो कि संसार और हरि-हर—सभीके प्रिय हैं और सभी जिनके वचनोंपर विश्वास करते हैं—'नारद वचन सदा सुचि साचा ॥' (१।२३५।४) 'नारद वचन अन्यथा नाहीं ॥' पुनः श्रीभगवान् रामके श्रीमुखसे ही 'राम-नाम'को परशुराम गोविन्द, मुकुन्द आदि सभी अपने नामोंसे बड़ा कहलाकर मुहर-छाप लगानेकी आवश्यकता समझी। अतः—

'यह बिचारि नारद कर बीना। गए जहाँ प्रभु सुख आसीना ॥'
(वही, ३।४०।४)

नारद प्रभुके पास गये और बोले—

तब नारद बोले हरषाई। अस बर मागउँ करउँ ढिठाई ॥
जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका ॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका ॥

राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन बिमल बसहुँ भगत उर ब्योम ॥
(वही, ३।४१।३-४; ३।४२ क)

बात यह है कि पहले बालकाण्डके दो० १८ से २७ तकमें वर्णित दिव्यगुणोंसे युक्त राम-नामकी महिमाका निरूपण करके यह सिद्ध किया गया है कि "कोई भी प्रभुका अन्य नाम ऐसा नहीं है, जो इस 'राम-नाम'की समता कर सके।" पुनः श्रुतिने भी इसी नामकी महिमाका विशेष कथन किया है। यथा—

'राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा ॥'
(वही, १।४५।१)

पुनः—

यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महान् द्रुमः ॥
तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्।
रेफारूढा मूर्तयः स्युः शक्तयस्तिस्र एव च ॥
(राम पूर्वता० उ० २।२-३)

"जैसे प्राकृत वटका महान् वृक्ष वटके छोटे-से बीजमें स्थित रहता है, उसी प्रकार यह चराचर जगत् रामबीज (राम्) में स्थित है। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—ये तीनों मूर्तियाँ 'राम'के रकारपर आरूढ़ हैं।"

पुनश्च—

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः।
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम् ॥
(रामरहस्यो० १।६)

'श्रीराम ही परब्रह्म हैं, श्रीराम ही परम तप हैं, श्रीराम ही परम तत्त्व हैं और श्रीराम ही तारक ब्रह्म (रामनाम) हैं।'

अतः श्रीदेवर्षि नारदने भगवान् श्रीरामभद्रसे कहा कि—"प्रभो! मैं आपसे धृष्टता करके ऐसा वरदान

माँगता हूँ कि यद्यपि आपके अनेक नाम हैं और वेद-भगवान्ने उनको एक-से-एक अधिक महिमावाला बतलाया है, जो भाव-कुभाव, अनख-आलस्यसे तथा जाने, बिना जाने, उल्टा-सीधा—किसी भी प्रकारसे जप करनेपर दसों दिशाओंमें मङ्गल करता है, ऐसा आपका यह 'राम-नाम' सभी नामोंसे बढ़कर सभी पापोंका नाशक हो। (केवल एकमात्र यह 'राम-नाम' ही ऐसा है) और आपकी भक्तिरूपी शरत्-पूर्णिमाकी रात्रिमें अन्य विमल उडगणरूपी गोविन्द-मुकुन्दादि नामोंके साथ यह आपका 'राम-नाम' चन्द्रमाके समान प्रकाशमान बनकर भक्तोंके हृदयाकाशमें सदैव निवास करता रहे।''

प्रभुने श्रीनारदकी प्रार्थना सुनकर उसी समय वरदान दे दिया—

'एवमस्तु मुनि सन कहेउ कृपासिंधु रघुनाथ।'

(३ । ४२ ख)

अर्थात् कृपासिन्धु भगवान् श्रीरघुनाथजीने मुनि नारदजीसे कहा—'हे मुनि! आप जैसा चाहते हैं, वैसा ही (यह नाम इसी प्रकारका ही) होगा।'

—'राम सकल नामन्ह ते अधिका।' (वहीं, ३ । ४० । ४)

राम-नाम प्रणवका ही एक रूप है।

सामवेदीय छान्दोग्योपनिषद्में प्रणवकी उद्गीथ-उपासना इस प्रकार है—

ॐ अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इत्यसौ वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणव ओमिति ह्येष स्वरन्नेति। (प्र० १, ख० ५, मं० १)

अर्थात्—'अब निश्चयसे जो उद्गीथ है, वह प्रणव है; जो प्रणव है, वह उद्गीथ है या यह उद्गीथ ही आदित्य है, यह प्रणव है। ओम्—इस रूपमें इसका उच्चारण किया जाता है।'

ओंकारको प्रणव कहते हैं; क्योंकि ब्रह्मोपासना इस नामद्वारा की जाती है और सामवेदमें उपासनाका क्रम गानद्वारा है, जिसको 'उद्गीथ' कहते हैं। उपर्युक्त श्रुतिमें प्रणवको उद्गीथ कहा गया है, अर्थात् प्रणवकी उपासना उद्गीथसे करनेका विधान बताते हैं।

उपनिषदोंमें प्रणवकी चार मात्राएँ और तन्त्रमें सात मात्राएँ कही गयी हैं, जो इस प्रकार हैं—(१) अकार (२) उकार (३) मकार (४) अनुस्वार (५) ध्वनि (६) नाद (७) शान्ति। प्रथम तीन मात्राओंसे प्रणवका स्थूल रूप बनता है, जो वैखरी वाणीका विषय है, अनुस्वार और ध्वनि प्रणवके सूक्ष्मरूप हैं और मध्यमा वाणीके विषय हैं, नाद प्रणवका कारण या अव्यक्तरूप है, जो पश्यन्ती वाणीका विषय है और शान्ति निराकार निर्गुण अर्थात् तत्त्वस्वरूप है, जो परा वाणीका विषय है। वाणी प्रकारकी होती है—(१) वाक्‌रूपा वैखरी (२) संकल्परूपा मध्यमा (३) ज्ञान-रूपा पश्यन्ती (४) चिच्छक्तिरूपा परा। ये सातों मात्राएँ क्रमानुसार अर्थात् भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्—इन सात लोकोंसे सम्बन्ध रखती हैं। अकारसे स्थूल रूपका आरम्भ, उकारसे उसका विकास और मकारसे पूर्णता प्रकट होती है। उक्त मात्राओंको समझनेके लिये किसी काँसेके घंटेके शब्दपर ध्यान देना चाहिये। पहले शब्द होता है, जिसका रूप ओम्‌के सदृश है; उस शब्दके बंद होनेपर अनुस्वारका तथा तदनन्तर उसकी ध्वनि और नादका ज्ञान होता है। ज्यों-ज्यों शब्दका लय होता जाता है, क्रमसे सातों मात्राओंका अनुभव होता है। अन्तमें वह शब्द लय होते-होते शान्त होता है, वही उसकी सप्तम मात्राका रूप समझना चाहिये—

कांस्यघण्टानिनादस्तु यथा लीयति शान्तये।
ॐकारस्तु तथा योज्यः शान्तये सर्वमिच्छता॥
यस्मिन् विलीयते शब्दस्तत्परं ब्रह्म गीयते।

(ब्रह्मविद्योपनिषद् १२-१३)

अर्थ—काँसेके घण्टेका शब्द जिस प्रकार शान्त होनेके लिये लय होता है, उसी प्रकार मुमुक्षुको शान्तिके लिये ॐकारकी योजना करनी चाहिये। जहाँ शब्द लय हो जाता है, उसीको 'परब्रह्म' कहा जाता है।

इस प्रकार ब्रह्मवाचक प्रणवकी योजना उसकी उद्गीथ-उपासना कहलाती है।

अथ खलूद्गीथाक्षराण्युपासीतोद्गीथ इति प्राण एवोत्प्राणेन ह्युत्तिष्ठति वाग्गीर्वाचो ह गिर इत्याचक्षतेऽन्नं थमन्ने हीदꣳसर्वꣳस्थितम्।

(छान्दोग्य०, प्र० १, ख० ३, मं० ६)

अर्थ—अब निश्चयसे उद्गीथके अक्षरोंकी उपासना करनी चाहिये । प्राण ही 'उत्' है; क्योंकि प्राणसे (ध्वनि और नाद) उठता है । वाक् (शब्द) ही 'गी' है । इसीलिये वाणीको 'गिरा' कहते हैं । अन्न 'थं' है; क्योंकि अन्नपर ही यह सब स्थित है ।

अर्थात् प्रणवका गान प्राण, वाक् और अन्नके सहयोगसे होता है । अन्नसे शरीरमें बल आता है, बलसे वाक् निकलती है और प्राणके बलसे गान होता है ।

द्यौरेवोदन्तरिक्षं गीः पृथिवी थमादित्य एवोद्वायुर्गीरग्निस्थः सामवेद एवोद्यजुर्वेदो गीर्ऋग्वेदस्थं दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति य एतान्येवं विद्वानुद्गीथाक्षराण्युपास्त उद्गीथ इति ।

(वही, प्र० १, ख० ३, मं० ७)

अर्थ—इसी प्रकार—

(१) द्यौ उत् है, अन्तरिक्ष गी और पृथिवी थ ।

(२) आदित्य उत् है, वायु गी और अग्नि थ ।

(३) सामवेद उत् है, यजुर्वेद गी और ऋग्वेद थ ।

इस प्रकार वाणीको दुहनेवाला (उपासक) जो वाग्दोहनद्वारा दूध दुहता है, अर्थात् वाणीरूपी गायका जपरूपी दोहनद्वारा ब्रह्मज्ञानरूपी दूध दुहता है, वह विद्वान् उद्गीथके अक्षरोंकी उपासना करता है, वह अन्नवान् अन्नको पानेवाला होता है ।

तन्त्रानुसार—

(१) ओ पृथिवीतत्त्वका अक्षर है,
अर्थात् पृथिवीरूपी थ है ।
म् आकाशतत्त्वका अक्षर है,
अर्थात् अन्तरिक्षरूपी गी है ।
ँ सूर्य है,
अर्थात् द्यौरूपी उत् है ।
— **ओम्**

(२) र् अग्नितत्त्वका अक्षर है,
अर्थात् अग्निरूपी थ है ।
आ वायुतत्त्वका अक्षर है,
अर्थात् वायुरूपी गी है ।
ँ सूर्य है,
अर्थात् आदित्यरूपी उत् है ।
— राम

वागेवर्क् प्राणः सामोमित्येतदक्षरमुद्गीथ । तद्वा एतन्मिथुनं यद्वाक च प्राणश्चर्कं च साम च ।

(वही, प्र० १ खं० १ मं० ५)

'वाक् ऋक् है, प्राण साम है, ओम् यह अक्षर उद्गीथ है । या वह उद्गीथ यह मिथुन है, अर्थात् वाक् और प्राण तथा ऋक् और साम । वाक् और प्राणके सहयोगसे ॐका—उद्गीथ-गान होता है । वाक् ऋक् है और प्राण साम है ।'

ऋक्-साम ही प्रणवका रूप है, व्यञ्जनोंका, अर्थात् क् स् का लोप करनेसे ऋ आमसे राम बन जाता है । राम इसलिये प्रणवका आग्नेय रूप है, जो जगज्जाड्य, कर्मबन्धन तथा पापोंकी राशिको समूल भस्म करनेकी शक्ति रखता है ।

व्यञ्जन शब्दको स्थूल रूप देते हैं और वे स्वरोंकी अपेक्षा रखते हैं । स्थूल रूपके अन्तर्गत सूक्ष्म रूपसे स्वर होते हैं और स्वर ही प्रणव है, जो सदा शब्दोंमें मणियोंमें सूत्रकी तरह आधाररूपसे स्थित है । प्रत्येक शब्दका उच्चारण स्वरोंके संयोगसे होता है । अकारकी सहायतासे ही प्रत्येक व्यञ्जनका रूप प्रकट होता है । कण्ठसे उच्चारणके साथ अकारका उद्गम होता है और फिर जिह्वाके मूर्धा, तालु, दन्त आदि स्थानोंके स्पर्शसे व्यञ्जनोंका उच्चारण बनता है और साथ ही उकार भी अव्यक्तरूपसे साथ रहता है । होठोंके बंद होनेसे अनुनासिक-ध्वनिसे ओम्का रूप बनता है । यदि व्यञ्जनोंका लोप कर दिया जाय तो 'ओ' शेष रह जाता है । इसी प्रकार बाह्य शब्द, जैसे शङ्ख, घण्टा, यन्त्रादिके शब्द या खटका, फटाका, धड़ाका, टंकार आदिके शब्दोंमें भी उनके अन्तर्गत ध्वनि होती है, जिसकी गूँज या प्रतिध्वनि अनुस्वारयुक्त होती है; और जब वह शब्द लय होता है, तब ॐकारका स्वरूप स्वच्छरूपसे प्रकट होता है । 'राम' शब्दके उच्चारणमें तो प्रणवकी ध्वनि साफ है ही ।

ॐकारकी सात मात्राओंकी तरह 'राम'में भी सात मात्राएँ हो सकती हैं और 'राम'का जप उद्गीथकी उपासनाका भेदान्तर है । 'राम'की सात मात्राएँ इस प्रकार होंगी—(१) र्, (२) आ, (३) म्, (४) ँ, (५) ध्वनि, (६) नाद और (७) शान्ति ।

'राम-नाम सभी नामोंसे अधिक है ।'

(लेखक—विद्यावाचस्पति पं० श्रीविद्याधरजी शास्त्री)

यह एक ऐसा प्रतिज्ञा-वाक्य है, जो रामनामको सृष्टिके आदिदेव ब्रह्मा, विष्णु और महेश एवं इनके अन्य समस्त अवतारोंके नामोंसे ही नहीं, अपितु स्वयं रामके रघुनाथ-प्रभृति दूसरे सब नामोंसे भी उत्कृष्ट घोषित कर रहा है । यहाँ सबसे अधिक अन्वेषणीय तत्त्व यही है कि रामनामकी यह सर्वाधिक उत्कृष्टता इस नामवाचक शब्दकी किस विशिष्ट शक्ति वा इसके किस विशेष अर्थकी अभिव्यक्तिमें अन्तर्हित है ।

नामका वाचक प्रत्येक शब्द त्रिविधशक्तिसम्पन्न होता है । वह शब्दशक्ति और अर्थशक्तिके अतिरिक्त अपनी एक तृतीय आकृति-शक्तिसे भी सम्पन्न होता है । कोई भी नाम क्यों न हो, उसको प्रयुक्त करनेपर उस नामके द्वारा संकेतित प्रत्येक वस्तु वा प्रत्येक व्यक्तिकी कोई-न-कोई आकृति अपने स्पष्ट वा अस्पष्ट रूपमें हमारे समक्ष स्फुरित होने लगती है । यह आकृति जितनी अधिक विलक्षण होगी, उतनी ही अधिक ख्याति उस आकृतिके द्योतक नामकी विश्वमें अपने-आप प्रसृत होती जाती है । ऐसी आकृतिके दर्शनके लिये प्रत्येक व्यक्ति स्वतः लालायित हो उठता है और अन्तमें वह उसके दर्शनसे मत्त होकर अपने-आप उसके गुणोंका गान करता फिरता है ।

विश्वमनोमोहक रामकी दिव्याकृतिके आकर्षणका कोई पार नहीं; उनकी इस रूप-माधुरीको उनके व्यक्तित्व और कृतित्वने और भी सर्वाधिक सात्त्विक ओजसे सम्पन्न कर दिया था । अलौकिक आकृतिसे प्रभावित रामनामकी इस विशिष्टताके साथ रामनाम अपने वर्णों और मात्राओंकी विशिष्ट शक्ति और अर्थकी विशिष्ट शक्तिके कारण भी अपने आधिक्यको सहज भावसे सिद्ध करता है। राम—र-आ और म—इन तीन वर्णोंके नियोजनसे निष्पन्न हुआ है । ये तीनों वर्ण तन्त्रशास्त्रके अनुसार सर्वतेजोमय, आत्मतत्त्वसंयुत और त्रिशक्तिसम्पन्न होते हैं । 'र'-के सम्बन्धमें 'वर्णोद्धार-तन्त्र'की मान्यता है कि 'र' त्रिशक्तियुक्त और सर्वतेजोमय होता है—

त्रिशक्तिसहितं देवि आत्मादितत्त्वसंयुतम् ।
सर्वतेजोमयं वर्णं सततं प्रणमाम्यहम् ॥

'वृत्तरत्नाकर'में भी 'र' अग्निस्वरूप माना गया है—'रस्तु दाहः' । अतएव काव्यके आरम्भमें इस वर्णका प्रयोग सर्वथा निषिद्ध है । 'र' के पश्चात् 'रा' का 'आ' भी 'कामधेनु-तन्त्र'के अनुसार पञ्चप्राणमय होता है और इसमें ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश—ये तीनों आदिदेव विराजते हैं । रामका अन्तिम अक्षर 'म' है । 'आ' के समान यह 'म' भी तरुण सूर्यके समान प्रकाशमय, त्रिशक्तिसम्पन्न, पञ्चदेवमय और पञ्चप्राण-समन्वित होता है—

तरुणादित्यसंकाशं चतुर्वर्गप्रदायकम् ।
पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा ॥
त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिबिन्दुसहितं सदा ।
आत्मादितत्त्वसंयुक्तं हृदिस्थं प्रणमाम्यहम् ॥

(कामधेनुतन्त्र)

अर्थशक्तिमें पद्मपुराणादिके अनुसार 'रा' विश्वका बोधक है और 'म' ईश्वरका वाचक है । इसलिये जो समस्त लोकोंका ईश्वर है, वही 'राम' है—

रा शब्दो विश्ववचनो मश्चापीश्वरवाचकः ।
विश्वानामीश्वरो यो हि तेन रामः प्रकीर्तितः ॥

विश्ववाची अर्थके अतिरिक्त 'रा'का दूसरा अर्थ 'लक्ष्मी' भी है । अतः जो लक्ष्मीका पति (ईश्वर) है, वही 'राम' है—

रा चेति लक्ष्मीवचनो मश्चापीश्वरवाचकः ।
लक्ष्मीपतिं गतिं रामं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

'रमापति' आदि अर्थोंके निरूपक रामार्थसम्बन्धी इन श्लोकोंके अतिरिक्त निम्नलिखित श्लोक भी सर्वत्र प्रसिद्ध है—

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥

—(रामपूर्वतापनीयोप० ६)

जिस सत्-चित्-आनन्दमय राममें योगीजन रमण करते हैं, वह 'राम' साक्षात् परब्रह्म है । जब राम साक्षात् परब्रह्म हैं, तब यह निश्चित ही है कि उनका नाम सर्वोपरि है । इसपर कहनेवाले कह सकते हैं कि यह परब्रह्मत्व कृष्णमें विद्यमान है । 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'—यह प्रसिद्ध ही है । किंतु कृष्णकी अपेक्षा रामके जगदीश्वरत्वकी यह विशेषता है कि रामका ईश्वरत्व आबालवृद्ध, प्राकृत-से-प्राकृत एवं परमतत्त्वके वेत्ता ऋषि-महर्षि—इन सबमें

समानरूपसे व्याप्त हो चुका है। प्रसङ्गानुसार 'राम' दाशरथि, परशुराम और बलराम आदि अनेक स्वरूपोंका प्रतिपादक हो जाता है; परंतु किसी प्रसङ्गके आश्रित न रहकर सामान्यरूपसे जब रामका उच्चारण किया जाता है, तब वहाँ यह राम केवल प्रभु साक्षात् भगवान्‌के रूपमें ही सबके हृदयमें विराजमान हो जाता है और मूर्ख-से-मूर्ख व्यक्ति राम-राम जपकर परम आत्मबलको प्राप्त कर लेता है। व्याकरणानुसार 'राम'शब्दकी व्युत्पत्तियाँ भी उसकी इस सर्वव्यापकताको सिद्ध कर रही हैं। **'रमते इति रामः'**—इसका यही भावार्थ है कि यह सर्वत्र रमण कर रहा है। **'रम्यते लक्ष्म्या अनेन'**-के स्थानमें हम यह भी कह सकते हैं कि इसके साथ जगतीका प्रतिकण रमण कर रहा है। ईश्वरवाचक रामके इस सर्वव्यापक स्वरूपसे प्रभावित होकर ही भगवान् शंकर पार्वतीसे कह रहे हैं कि यदि समस्त विष्णुसहस्रनामका पाठ न हो सके तो केवल राम-रामके जपसे ही सहस्रनामके पाठका फल मिल जाता है—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥
(पद्मपुराण)

शास्त्रसम्मत इन जनश्रुतियोंके अतिरिक्त मेरा यह निजी अनुभव है कि ॐकारके जप और रामके जपका चरमोत्कर्ष प्रायः समान होता है। ३-४ मासतक ॐकार-साधनामें निरन्तर व्यस्त रहनेपर अन्तमें एक ऐसी स्थिति आती है, जब ॐकारकी संगीतमयी अनहदध्वनि स्वयमेव होने लगती है और साधक हठात् उसके द्वारा अभिभूत होकर ॐ, ॐ, ओ३म्‌के गानमें लीन हो जाता है। रामके जपकी भी यही स्थिति है। कुछ समयतक निरन्तर राम, राम, रा३म्, राम, राम, रा३म्‌का उच्चारण करते रहनेपर यह भी अन्तमें ॐके समान 'राम'की संगीतमयी अनहदी हुलहुलाहटमें परिणत हो जाता है और जापक स्वतः एव राम-रामकी मधुर स्वरलहरीके साथ सर्वथा रामरागमय हो उठता है। जापककी यही वह सर्वोत्कृष्ट स्थिति है, जिसमें गोस्वामी तुलसीदासजीके समान यह समस्त विश्वब्रह्माण्ड उसको राममय दिखायी देने लगता है—

'सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥'
(मानस १।७।१)

भक्तकी यह गति केवल काल्पनिक या भ्रान्तिजनित नहीं, अपितु सबसे अधिक ध्रुव-सत्यकी यह एक परम देदीप्यमान प्रकाशात्मक स्थिति है। 'अध्यात्मरामायण'में रामके इस विशुद्ध आत्मस्वरूपका ही समुन्मेष हुआ है और रामके इस स्वरूपको ही ध्यानमें रखकर अथर्ववेदीय 'रामरहस्योपनिषद्' कहता है—

'राम ही परम ब्रह्म है, राम ही परम तपःस्वरूप है, राम ही परमतत्त्व है और श्रीराम ही तारक ब्रह्म हैं।' (१।६)

किंतु यह 'राम' परब्रह्मात्मक स्थितिमें रहकर भी सर्वथा विश्वातीत नहीं है। अहल्यादि-समुद्धारक रामका पापापहारी पक्ष सबसे अधिक प्रबल है। उनका प्रत्येक चरित्र पापियोंके पापोंका अपहारक है। पापोंकी विनाशक रामकी इस शक्तिके कारण ही 'जैमिनीयाश्वमेध'में घोषित किया गया है कि **'रामचरितं सन्मनोवृत्तिदम्'** (श्रीरामचरित श्रेष्ठ मनोवृत्तिको देनेवाला है।) और पुराणोंमें ऋषि-मुनि रामस्तवनमें इस बातपर ही सबसे अधिक बल देते हैं कि 'हे भगवन्! आपके नामोच्चारणसे परम पापी भी पवित्र हो जाते हैं'—

'तत्र देववरस्य नामभिर्बहुपापा अपि पवित्रिताः।'

अतएव हर तरहके पापोंसे छुटकारा पानेके लिये हमारा कर्तव्य है कि हम निरन्तर भगवान् रामके नामका स्मरण करते रहें।

नीको नाम राम रघुरैया को

सापहर, पापहर, कलि के कलापहर,
तीखन त्रिताप हर, तारक तरैया को।
कहै 'पदमाकर' त्यों प्रगट प्रकासमान,
पोषक पियूष ऐसो, जैसो कामगैया को॥
सुख सुखदायक, सहायक सबन सूधो,
सुलभ सरन्य सरनागत अवैया को।
मीठो भर कठवति, परत न फीको नित,
नीको निरदोष नाम राम रघुरैया को॥

—महाकवि पद्माकर

भगवान् श्रीसीतारामजीका ध्यान

(परमश्रद्धेय श्रीभाईजी)

कोसलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ॥

(श्रीरामच० मा० उत्तर० श्लोक २)

'कोसलपुरीके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर और कोमल दोनों चरण-कमल ब्रह्माजी और शिवजीके द्वारा वन्दित हैं, श्रीजानकीजीके करकमलोंसे दुलराये हुए हैं और चिन्तन करनेवालेके मनरूपी भौंरेके नित्य-सङ्गी हैं, अर्थात् चिन्तन करनेवालोंका मनरूपी भ्रमर सदा उन चरण-कमलोंमें बसा रहता है।'

ध्याताको चाहिये कि वह सावधानीके साथ अपने चित्तको श्रीअवधमें ले चले। बड़ा सुन्दर रमणीय श्रीअवधधाम है। चक्रवर्ती महाराज अखिलभुवनमण्डलके एकच्छत्र सम्राट् भगवान् श्रीराघवेन्द्रजीकी बड़ी रमणीय पुरी है। रामराज्यकी सब प्रकारकी शोभा, रामराज्यकी आदर्श समाज-व्यवस्था श्रीअवधमें वर्तमान है। सभी ओर सब कुछ सुशोभन है। कलुषनाशिनी श्रीसरयूजी मन्द-मन्द वेगसे बह रही हैं। श्रीसरयूजीके तटपर श्रीराघवेन्द्रका विहार-उद्यान है। फलों और पुष्पोंसे सुसज्जित बड़ा सुन्दर बगीचा है। बगीचेमें चारों ओर बड़े सुन्दर और मनोहर पुष्पोंसे सुशोभित वृक्ष हैं। उनमें भाँति-भाँतिके पुष्प खिले हुए हैं। उनके विविध प्रकारके सौरभसे सारा उद्यान सुरभित हो रहा है। पुष्पोंपर भौंरे मँडरा रहे हैं। पुष्पोंकी रंग-बिरंगी शोभासे सभी ओर सुषमा छा रही है। फलोंके वृक्ष विविध फलोंके भारसे लदे हैं। बीचमें एक बड़ा मनोहर सरोवर है। सरोवरमें कमल खिले हुए हैं। सरोवरके भीतर जलपक्षी केलि कर रहे हैं। चारों ओर सुन्दर-सुन्दर घाट हैं। सरोवरके उत्तरकी ओर एक बड़ा सुन्दर कल्पवृक्ष है। वह सघन और फैला हुआ है। कल्पवृक्षके नीचे बहुत बढ़िया स्फटिकमणिका सिंहासन बना हुआ है। चारों ओर विविध पुष्पोंकी लताएँ बिखरी हुई हैं। उनमें विविध भाँतिके सुन्दर एवं सुरभित पुष्प खिले हुए हैं। संध्याका समय है। बड़ा सुन्दर और सुगन्धित मन्द-मन्द समीर बह रहा है। इस मनोहर पुष्पोद्यानमें श्रीराघवेन्द्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजी और अखिल जगत्की जननी श्रीजानकीजी नित्य संध्याके समय पधारते हैं। उस समय उनके साथ कोई सेवक नहीं रहता, केवल श्रीहनुमान्जी रहते हैं। आज भी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपनी सारी सुषमाके साथ—समस्त शोभाओंसे युक्त विश्वजननी श्रीजनकनन्दिनीके साथ पधारे हैं। भगवान् बड़ी मन्दगतिसे धीरे-धीरे सरोवरके निकट चले आते हैं। उनके पीछे-पीछे हनुमान्जी हैं। श्रीभगवान् उत्तरतटकी ओर पधारे हैं। शाखा-प्रशाखाओंके सुन्दर वितान-वाले कल्पवृक्षके नीचे स्फटिकमणिकी एक मनोहर पीठिका है। उस स्फटिकमणिके सुन्दर सिंहासन-पर बहुत ही बढ़िया और सुकोमल दूर्वाके रंगका एक गलीचा बिछा हुआ है। उसके पीछे दो तकिये लगे हुए हैं। दोनों ओर दो सुन्दर मसनद हैं। चौकीके सामने नीचेकी ओर चरण रखनेके लिये दो पादपीठ (पीढ़े) सुसज्जित हैं। उनपर दो सुन्दर कोमल गद्दियाँ बिछी हुई हैं। सामने बायीं ओर थोड़ी दूरपर मरकतमणिकी नीची चौकीपर श्रीहनुमान्जीके लिये आसन है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी श्रीजनकनन्दिनीजीके साथ गलीचेवाले स्फटिकमणिके सिंहासनपर विराजमान हो गये हैं। श्रीहनुमान्जी सामने बैठ गये हैं और भगवान् श्रीरामके नेत्रोंकी ओर किसी आज्ञाकी प्रतीक्षामें टकटकी लगाकर देख रहे हैं। भगवान् श्रीरामका बड़ा सुन्दर स्वरूप है। भगवान्के श्रीअङ्गका वर्ण नील-हरिताभ उज्ज्वल है—नीला, नीलेमें कुछ हरी आभा, उसपर उज्ज्वल प्रकाश—**'केकीकण्ठाभनीलम्'** जैसे मयूरके कण्ठकी नीलिमामें हरित आभा होती है, चमकता रंग होता है, उसी प्रकार श्रीभगवान्के अङ्गका रंग नीलहरिताभ-उज्ज्वल है। बड़ी ही सुन्दर आभा है—दिव्य चमकता प्रकाश। भगवान्के श्रीअङ्गका वर्णन आता है—

'नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम।'

(मानस १। १४६)

—नील सुन्दर कमलके समान भगवान्के कोमल अङ्ग हैं, नीलमणिके समान अत्यन्त चिकने और चमकते हुए अङ्ग हैं, नव-नील-नीरद-जलवाले बादलोंके समान सरस अङ्ग हैं। सरसता, सुकोमलता और सुचिक्कणता महान् प्रकाशके साथ सुशोभित हैं। एक-एक अङ्ग इतना मनोहर, मधुर

और आकर्षक हैं कि करोड़ों कामदेव एक-एक अङ्गपर निछावर किये जा सकते हैं। इनकी शोभा अतुलनीय और निरुपम है। श्रीभगवान्‌के अङ्ग-अङ्गसे मनोहर सुस्निग्ध ज्योति निकल रही है। उनमें सहस्रों, लक्षों, कोटि-कोटि सूर्यका प्रकाश है; पर उसमें तनिक भी उत्ताप नहीं, दाहकता नहीं। करोड़ों चन्द्रमाकी शीतलता साथ लिये हुए है। सूर्यकी तीव्र प्रकाशमयी उष्णता और चन्द्रमाकी सुधावर्षिणी ज्योत्स्नामयी शीतलताका समन्वय, दोनोंका एक ही समय, एक ही साथ रहना कैसा होता है, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। श्रीभगवान्‌के रोम-रोमसे एक प्रकारकी दिव्य ज्योति निकल रही है, जो अपनी आभासे समस्त प्रदेशको ज्योतिर्मय बनाये हुए है। भगवान्‌ने ज्योतिर्मय पीतोज्ज्वल रंगका दिव्य वस्त्र धारण कर रक्खा है, जिसमें लाल किनारी है। किनारीकी ललिमा भी उज्ज्वल प्रकाशमयी है। उस वस्त्रके सुन्दर स्वर्णमय प्रकाशके भीतरसे नील-हरिताभ अङ्गज्योति निकल-निकलकर एक विचित्र विलक्षण रंग-वाली आभा बन गयी है। नील-हरिताभ-उज्ज्वल ज्योतिके साथ-साथ भगवान्‌के स्वर्णवर्ण पीताम्बरकी पीताभ ज्योति मिलकर एक विचित्र वर्णवाली ज्योति बन गयी है, जिसे देखकर चित्त मुग्ध हो जाता है। उसको देखते ही बनता है। भगवान्‌की पीठपर गलेसे आता हुआ एक दुपट्टा लहरा रहा है, जिसका स्वर्ण-अरुण वर्ण है। भगवान्‌के श्रीचरण बड़े सुन्दर, सुकोमल और अत्यन्त मनोहर हैं। श्रीभगवान्‌का वाम श्रीचरण नीचेकी पादपीठपर टिका हुआ है। दक्षिण श्रीचरणको भगवान् श्रीराघवेन्द्रने अपनी वाम जङ्घापर रख लिया है, जिसका तल जगज्जननी जानकीजीकी ओर है। भगवान्‌के श्रीचरण-तल बड़े मनोहर और सुन्दर हैं; उनमें ध्वजा-वज्र-कमल आदिकी अति सुन्दर रेखाएँ स्पष्ट हैं। चरण-तल सुकोमल, अरुणाभ हैं; उनसे लाल-लाल ज्योति निकल रही है। भगवान्‌के श्रीचरणोंकी अँगुलियाँ, जो एक-से-एक—छोटी अँगुलीसे अँगूठेतक उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त हो रही हैं, परम सुशोभित हैं। भगवान्‌के श्रीचरणोंसे ज्योति निकल रही है, चरणतलसे ज्योति निकल रही है, चरण-नखसे विद्युत्‌की तरह सुस्निग्ध मनोहर ज्योति निकल रही है, जो अत्यन्त सुन्दर प्रकाशमयी है। उस ज्योतिकी किरणें जिस-जिसके समीप जाती हैं, उसी-उसीमें ब्रह्मज्ञानका उदय हो जाता है। यह उनकी चरण-कमल-प्रभाका सहज प्रसाद है। भगवान्‌के श्रीचरणोंमें नूपुर हैं। पिंडलियाँ और घुटने बड़े सुन्दर हैं। जाँघें बड़ी सुकोमल, बड़ी स्निग्ध, सुचिक्कण और अत्यन्त शोभनीय हैं। भगवान्‌की कटि अत्यन्त सुन्दर है। भगवान्‌ने उसमें रत्नोंकी—दिव्य रत्नोंकी—दिव्य स्वर्णकी करधनी पहन रक्खी है। उस करधनीमें नवीन-नवीन प्रकारके छोटे-बड़े मुक्ताफल लटक रहे हैं; बीच-बीचमें—मुक्ताओंके बीचमें मधुर ध्वनि करनेवाली घुँघुरियाँ लगी हैं। भगवान्‌का उदरदेश बड़ा सुन्दर है, गम्भीर नाभि है, उदरमें तीन रेखाएँ हैं। भगवान्‌का वक्षःस्थल बहुत चौड़ा है, विशाल है। वक्षःस्थलमें बायीं ओर भृगुलताका चिह्न है, दाहिनी ओर पीत-केशरवर्णकी मनोहर रेखा है तथा श्रीवत्स-का चिह्न—गोलाकार रोमसमूह है। भगवान्‌के विशाल वक्षः-स्थलपर अनेक प्रकारके आभूषण सुशोभित हैं, गलेमें रत्नमाला लटक रही है, मुक्तामणिके हार हैं और कौस्तुभमणि है। राजोद्यानके सुन्दर-सुन्दर विचित्र पुष्पोंकी माला है, पुष्पोंका हार है, जो सारे वक्षःस्थलको आच्छादित करते हुए नाभिदेशतक लटक रहा है। कटितटतक नीचे पुष्पहारसे सुगन्ध निकल रही है। उस पुष्पहारपर भ्रमर मँडरा रहे हैं, मधुर गुञ्जार कर रहे हैं। भगवान्‌के कंधे बड़े मजबूत—सुदृढ़ और बड़े ऊँचे हैं—सिंहके समान कंधे हैं। भगवान्‌की विशाल बाहु हैं। वे आजानुबाहु हैं। उनकी भुजाएँ घुटनोंतक लंबी हैं। हाथीकी सूँड़की तरह, ऊपर मोटी, नीचे पतली हैं। इतनी सुडौल और सुन्दर हैं कि देखते ही चित्त मुग्ध हो जाता है। वे भुजाएँ सारे जगत्‌की रक्षाके लिये, साधु-परित्राण और असाधुओंके विनाशके लिये नित्य प्रस्तुत हैं। विशाल बाहुओंमें बाजूबंद हैं। उनमें नीलम, पन्ना और हीरे जड़े हुए हैं। उन दोनों बाजूबंदोंके बीचमें एक-एक लड़ लटक रही है। लड़में बड़े सुन्दर, महामूल्यवान् रत्न जड़े हुए हैं। भगवान्‌के पहुँचोंमें रत्नोंके जो कड़े हैं, उनमें ज्योति निकल रही है। भगवान्‌के कर-कमलोंकी अंगुलियोंमें रत्नोंकी अँगूठियाँ सुशोभित हैं, जो एक-से-एक विचित्र हैं। भगवान्‌के श्रीअङ्गका वर्ण नील-हरिताभ-उज्ज्वल है और पीताम्बरका वर्ण स्वर्ण-सम उज्ज्वल है। भगवान्‌के विविध आभूषणोंके भाँति भाँतिके रत्न अलग-अलग वर्णोंकी आभा बिखेर रहे

हैं। सभी रत्नोंकी आभा मिलकर भगवान्‌के चारों ओर एक विचित्र ज्योति छिटका रही है, जिसके कारण भगवान्‌की विलक्षण शोभा हो रही है। उसके विषयमें मनुष्य न तो कुछ कह सकता है न वर्णन कर सकता है। कम्बुकण्ठ है—गलेमें रेखाएँ हैं। भगवान्‌की बड़ी सुन्दर ठोड़ी है। अधरोष्ठ अरुण वर्णके हैं। मनोहर स्वाभाविक मन्द-मन्द मुसकान उनपर थिरक रही है। मन्दहास्य सबको विमोहित कर रहा है। दन्तपङ्क्ति बड़ी ही सुन्दर है; ऐसा लगता है, मानो हीरे चमक रहे हैं। उनमें उज्ज्वलता है, उनसे ज्योति निकल रही है, जो अरुण अधरोष्ठपर पड़कर विचित्र शोभा उत्पन्न कर रही है। भगवान्‌के सुन्दर सुचिक्कण कपोल हैं। उनकी नुकीली नासिका है। भगवान्‌के दोनों कान बड़े मनोहर हैं, उनमें मछलीकी आकृतिके बड़े सुन्दर रत्नोंके कुण्डल चमचमा रहे हैं। भगवान्‌के नेत्र बहुत बड़े हैं, बहुत विशाल हैं। भगवान्‌के नेत्रोंसे कृपा, शान्ति और आनन्दकी धारा अनवरत निकल रही है। भगवान्‌की सुन्दर नेत्र-ज्योति है। मनोहर टेढ़ी भृकुटि है, जो मुनियोंके भी मनको हर लेती है। जिन्होंने एक बार भी उनका दर्शन कर लिया, वे सारे साधन भूलकर, जीवन भूलकर भगवान्‌के श्रीचरण-प्रान्तमें निरन्तर निवास करनेका मनोरथ करने लगते हैं। भगवान्‌का विशाल ललाट है, उसपर तिलक सुशोभित है। तिलकके दोनों ओर श्वेत रेखा है और बीचमें लाल रेखा है। मस्तकपर काले-काले घुँघराले केश ऐसे लगते हैं, मानो अगणित भ्रमर मँडरा रहे हों। भगवान्‌की मनोहर अलकावली मुनियोंके मनको हरनेवाली है। उनके मस्तकपर सुन्दर रत्नोज्ज्वल किरीट है; वह इतना चमकता है, इतना बढ़िया है, उसमें इतने रत्न जड़े हैं कि उसकी शोभाका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह इतना हल्का और पुष्प-सा कोमल है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। भगवान्‌के वस्त्रा-भूषण सब-के-सब दिव्य हैं, चेतन हैं। भगवान् श्रीराघवेन्द्रके दाहिने कंधेपर धनुष है, बायें हाथमें बाण सुशोभित है, पीछे कटिमें बाणोंका भाथा बँधा हुआ है। भगवान् दाहिने हाथमें सुन्दर पुष्प लिये हुए हैं—बड़ा मधुर सुगन्धयुक्त, छोटा-सा, अनेक दलोंका सुन्दर रक्त कमल है; उसकी नालको पकड़े हुए वे घुमा रहे हैं। इस प्रकार श्रीराघवेन्द्र कल्पवृक्षके नीचे स्फटिकमणिके सिंहासनपर हरिताभ गलीचेपर विराजमान हैं।

वामपार्श्वमें श्रीजनकनन्दिनीजी विराजमान हैं। उनके दोनों अति कोमल श्रीचरण-कमल नीचेके पादपीठपर विराजित हैं। उनका पवित्र सुन्दर स्वर्णोज्ज्वल वर्ण है। सोनेके समान वदनकी आभा है, पर सोनेकी भाँति कठोर नहीं है। सोनेकी भाँति चमचमाते हुए माताजीके समस्त अङ्ग अत्यन्त सुकोमल और तेजसे युक्त हैं। करोड़ों सूर्य-चन्द्रकी शीतल प्रकाशमयी उज्ज्वल ज्योतिद्वारा उनके श्रीअङ्गसे वैसे ही निकल रही है, जैसे भगवान् श्रीरामके श्रीअङ्गसे। श्रीसीताजी विविध आभूषणोंसे सज्जित हैं—नीलवर्णके वस्त्र हैं, वक्षःस्थलपर आभूषण हैं, बायें हाथमें पुष्प है, दाहिने हाथसे कर्ण-कुण्डलोंको सुधार रही हैं। जङ्घापर रक्खे भगवान्‌के श्रीचरणतलकी ओर जनकनन्दिनीके दिव्य नेत्र लगे हैं—पलक नहीं पड़ रही है। वे श्रीरामके चरणतलके दर्शनानन्दमें विभोर हैं; दूसरी ओर उनका दृष्टिपात ही नहीं है। भगवान्‌की नील-हरिताभ उज्ज्वल आभावाली ज्योति नित्य नयी छटा दिखा रही है। उसके साथ श्रीजनकनन्दिनीजीकी स्वर्णिम अङ्गज्योति, उनके नीलवस्त्र-की ज्योति, आभूषणोंकी ज्योति—सब मिलकर एक विचित्र वर्णवाली ज्योति चारों ओर छिटक रही है। उसकी शोभा अवर्णनीय है।

सामने बायीं ओर थोड़ी दूरपर नीचे मरकतमणिके आसनपर श्रीमारुतिजी विराजमान हैं। उनके श्रीअङ्गका पिङ्गलवर्ण है, जो उज्ज्वल आभासे युक्त है। वे लाल वस्त्र पहने हुए हैं; सब अङ्गोंपर श्रीरामनाम अङ्कित हैं। हृदय-देश मानो दर्पण है। उसमें स्फटिकमणिके सिंहासनपर विराजमान श्रीराम-जानकी प्रतिबिम्बित हैं। उनके नेत्रोंसे अविरत प्रेमाश्रुधारा बह रही है। वे टकटकी लगाये हुए हैं। वे श्रीरामके नेत्रकी कृपाधारामें नहाते हुए अपने आपको कृतकृत्य मान रहे हैं। शरीर रोमाञ्चित है। मुखमण्डल ज्योतिसे झलमला रहा है। शरीर आनन्दसे पुलकित है, आनन्दका अनुभव करते हुए विशेष आज्ञाकी प्रतीक्षामें वे निर्निमेष नेत्रोंसे श्रीराघवेन्द्रकी ओर निहार रहे हैं।

इस प्रकार भगवान् श्रीराम-जानकी श्रीहनुमान्‌के साथ विहार-उद्यानमें विराजमान हैं। मन्द-मन्द समीर बह रहा है। समीप ही सरयूकी मन्द धारा है। अनेक प्रकारके पक्षी चहचहा रहे हैं। वनकी शोभा अत्यन्त

मनोहर हो रही है। भगवान्‌का यह स्वरूप अत्यन्त मनोहर सुन्दर है। उसकी सुषमा वर्णनातीत है। कोई भी किसी कालमें वर्णन नहीं कर सकता, देखनेसे मन मुग्ध हो जाता है। यों जब हृदयमें श्रीराम आते हैं, तब मारुतिकी तरह शीतल अश्रु-धारा बहने लगती है, शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। इस मनोहर ध्यानमें मग्न हो जाना चाहिये।

इस प्रकार भगवान् सामने हैं; उन्हें मनके द्वारा आप देख सकते हैं। तन्मयता होनेपर ध्यान हो सकता है। बड़ा सुन्दर ध्यान है। इसमें मन लग जाय तो क्या कहना है।

श्रीसीता-रामजीकी अष्टयाम-पूजा-पद्धति

(लेखक—पं० श्रीकान्तशरणजी महाराज)

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥
(गीता ११। ५४)

'परंतप अर्जुन! अनन्यभक्तिके द्वारा इस प्रकार चतुर्भुज रूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये, तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये, अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ।'

यह भक्ति एक तो श्रवण आदि बाह्य इन्द्रियोंद्वारा की जाती है, जिसे 'श्रवणं कीर्तनं⋯' आदि नवधा-भक्ति कहते हैं और दूसरी अन्तःकरणसे मानसिक सेवारूपमें की जाती है, इसे 'मानसिक अष्टयाम-पूजा' कहा जाता है। यह चित्त-शोधनके लिये परम उपयोगी है।

यह सेवा मनके द्वारा की जाती है। इसमें हरि-ध्यानसे पवित्र होता हुआ मन क्रमशः शान्त होता जाता है। गीता ६। ३५ में चञ्चल और दुर्निग्रह मनको वशमें करनेके लिये भगवान्‌ने अभ्यास और वैराग्य—दो उपाय बतलाये हैं। वे दोनों अत्यन्त उत्तम रीतिसे इस सेवामें आते हैं। इसमें मनको अन्य विषयोंसे खींचकर भगवान्‌की सेवामें लगाना पड़ता है। आठों याम सेवाके विविध प्रकारके आनन्दोंमें लुभाया हुआ मन प्रफुल्लित रहता है, वह अन्यत्र जाता ही नहीं। यदि जाता भी है तो तुरंत उसे सेवामें ही खींच लाना पड़ता है, अन्यथा सेवाके नियत कार्य नियत समयपर हो नहीं सकते। गीता ३। ५में कहा गया है कि 'कोई क्षणभर भी बिना कुछ किये नहीं रह सकता'; तदनुसार मनके लिये यह सर्वोत्तम धंधा है।'

यह अष्टयाम-सेवा श्रीअयोध्या एवं श्रीवृन्दावनके ऐकान्तिक संतोंमें प्रचलित है। इसमें प्रथम पञ्चसंस्कारात्मक दीक्षा-विधान होता है, फिर किसी रसकी उपासनाके अनुसार आचार्यसे नियत सम्बन्ध प्राप्त किया जाता है। वह सेवा सख्य, दास्य एवं वात्सल्य रसोंमें होती है; पर यह विशेषकर शृङ्गाररसमें प्रचलित है। इसमें श्रीसीता-रामजीके दिव्य सच्चिदानन्द-विग्रहके समान किशोर अवस्थाके भीतर ही नियत अवस्था एवं रूपकी स्थिति आचार्यद्वारा प्राप्त रहती है। उसी दिव्य रूपसे नित्य तुरीया-अवस्थामें ही इस सेवाकी भावना की जाती है। अतः सेवामें लगनेवाले संकल्पित महल एवं विविध पदार्थ तथा परिकर—सब चिन्मय ही होते हैं। इस प्रकार हृदयके सभी संकल्प चिन्मयरूपमें श्रीसीतारामजीकी सेवामें लगाते हुए समाप्त हो जाते हैं। यह मानसिक सेवा आयुपर्यन्त की जानी चाहिये।

नित्यचर्या

इस अष्टयाम-सेवामें आचार्यद्वारा नित्य त्रिपाद्विभूतिके अयोध्या एवं वहाँके श्रीकनकभवन, उसके अङ्गभूत अष्टकुञ्जों, द्वादशवनों तथा विविध क्रीडोपयोगी महलोंके चित्र (नक्शे) प्राप्त किये जाते हैं। पुनः आचार्यसे ही सेवाविधि भी सीखी जाती है और सेवाओंके नियत स्थलोंपर उत्तम विधानसे सेवाएँ की जाती हैं। प्रत्येक स्थलको जानेके लिये मार्ग भी नियत रहते हैं।

प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्तमें अपने नियत विश्राम-कुञ्जमें उठकर, अपने परिकरोंके साथ स्नान-शृङ्गार आदि करके रसाचार्य एवं आचार्यके नियत कुञ्जोंपर जाकर उनकी पूजा की जाती है। फिर उनके साथ-साथ सभी सेवाएँ की जाती हैं। क्रमिक सेवाओंका एक पद उद्धृत किया जाता है—

सो दिन आइहै कब फेरि।
नित बिलास बिलोकिहौं सिय संग प्रकृति निवेरि॥

अलिन सहित जगाय सिय-पिय, साज मंगल जेरि ।
आरती करि भोग बल्लभ देखिहौं दृग देरि ॥
विविध विधि नहवाय, साजि सिंगार, आरति फेरि ।
पितहि पिय: सिय मातु मिलि, सँग छबि कलेऊ हेरि ॥
लखब चौपड़-खेल, दंपति-छबि सुभोजन केरि ।
सैन भवन पलोटि पग, छबि लखब लेटि सुनेरि ॥
उठि जगाइ सुकुंज, केलि अनेक हियें चितेरि ।
साजि राज-सिंगार, दोल झुलाइ, फेरा-फेरि ॥
पितु-सभा पिय जाइ, सिय बैठकहिं तहँ लौटेरि ।
वाटिका लखि चंग, संग नहाइ सरि पुलनेरि ॥
सजि सिंगार सिंगारि आरति, निरखि छबि रासेरि ।
भिन्न-भिन्नरु मंडलाकृति नटब दंपति घेरि ॥
रंगमहल कराइ ब्यारू, करब सँग सब नेरि ।
सयन छबि लखि, सेइ पग, दंपति रहसि दृग गेरि ॥
सेइ पग गुरुजन सुकूजन आइ कुंज निजेरि ।
लेटिहौं हिय राखि दंपति 'मंजु' बिहरनि ढेरि ॥

इस पदमें दूसरे चरणसे क्रमशः एक-एक चरणमें एक-एक यामकी सेवाकी सूची अत्यन्त संक्षेप दी गयी है । इस प्रकार दूसरे चरणमें प्रथम याम और नवेंमें आठवें यामकी सेवा है । इसमें सखीरूपसे यह प्रार्थना की गयी है कि 'जैसे मैं अभी आठों यामोंकी सेवा करती हूँ, वैसे ही नित्य अवधमें पहुँचकर कब करूँगा ।' इन सेवाओंका विस्तार गुरुओंसे सीखना चाहिये । यहाँ विस्तारभयसे नाममात्र सेवाएँ कही गयी हैं ।

शङ्का-समाधान

शङ्का—ऊपर कहा गया है कि यह भावना तुरीयावस्थासे की जाती है । वह अवस्था श्रीरामचरितमानस (उत्तर० ११७) में वर्णित ज्ञान-साधनकी छठी भूमिकामें बहुत साधनोंके पश्चात् प्राप्त होती है । यहाँ उसका कुछ साधन नहीं बतलाया गया कि साधक कैसे वह अवस्था प्राप्त कर सकेगा ?

समाधान—जैसे उस ज्ञानमें कर्मयोग और योग साधनके सहायक हैं, उस प्रकार भक्ति अन्य साधनोंकी अपेक्षा नहीं रखती । यथा—

'सो सुतंत्र अवलंब न आना । तेहि आधीन ग्यान बिग्याना ॥'
(श्रीरामचरित० ३ । १५ । १½)

भक्तिके अन्तर्गत 'नवधा-भक्ति' में कर्मयोगका और 'प्रेम-लक्षण'-में ज्ञानका तात्पर्य आ जाता है । पराभक्ति तो स्वयं फलस्वरूपा है । यह मानसिक अष्टयाम-भावना यद्यपि पराभक्तिमें ही है, तथापि इसके साधन-कालमें तीनों शरीरोंका शोधन अनायास होता जाता है, तब इसकी शुद्ध स्थिति होती है । क्रमशः तीनों शरीरोंके शोधनके कुछ लक्ष्य नीचे लिखे जाते हैं—

(क) जैसे खर-दूषण और त्रिशिरा एवं उनकी चौदह सहस्र सेनाओंके भट परस्पर एक-दूसरेको रामरूप देखते हुए लड़ मरे और मुक्त हो गये, वैसे ही साधनामें लगे हुए साधकके स्थूलशरीरसम्बन्धी क्रोध, लोभ और काम एवं इनसे सम्बन्धित एकादश इन्द्रियाँ और तीन अन्तःकरण—इन चौदहोंके सहस्र-सहस्र संकल्प चिन्मयरूप हो, रामाकार होते हुए सेवामें लगकर समाप्त हो जाते हैं । कहा भी है—

खर है क्रोध, लोभ है दूषन, काम फिरै त्रिसिरन में ।
काम क्रोध लोभ मिलि दरसै तीनों एकै तन में ॥
(वैराग्य-प्रदीप, काष्ठजिह्वा स्वामी)

(ख) इस मानसिक पूजामें बाह्येन्द्रियोंका व्यापार जब बंद हो जाता है, तब सूक्ष्म-शरीरसे होनेवाले इन्द्रिय-विषयोंके संकल्पोंकी शान्ति निम्नलिखित दृष्टान्तसे समझी जा सकती है । इन्द्र-पूजाकी सामग्री जब गोवर्द्धन पर्वतकी पूजामें लग गयी, तब इन्द्रने कोप करके व्रजपर घनघोर वर्षा की । भगवान्‌ने गोवर्द्धनको धारण करके इन्द्रका गर्व चूर्ण कर दिया । वह शान्त होकर चला गया । यहाँ भक्ति गोवर्द्धन है; क्योंकि यह गौओं—इन्द्रियोंको दिव्य सुख देकर बढ़ाती है, तृप्त करती है । विषयोंसे इन्द्रियोंके देवता तृप्त होते हैं, अतएव विषय एवं तत्सम्बन्धी संकल्प इन्द्रियदेवोंकी पूजन-सामग्री है । उन्हीं संकल्पोंको चिन्मयरूपमें यह अब भगवान्‌में लगाता है । जैसे व्रजमें भगवान्‌ने गोवर्द्धन पर्वतको धारण किया, वैसे ही वे यहाँ भक्तकी भक्तिनिष्ठा एवं श्रद्धाको धारण करते हैं (गीता ७ । २१-२२ देखिये) । जैसे इन्द्रकी सारी वर्षा भगवान्‌ने गोवर्द्धनपर झेल ली, इसी प्रकार इसके इन्द्रियविषयसम्बन्धी सारे संकल्प चिन्मयरूपसे भक्तिमें लगकर समाप्त हो जाते हैं । जैसे इन्द्र शान्त हो गया, वैसे ही इसकी भी सूक्ष्मशरीर-सम्बन्धी बाधाएँ निवृत्त हो जाती हैं ।

(ग) इसी बातको अब दूसरे दृष्टान्तसे समझिये । श्रीकृष्णके परिकर ग्वाल-बालों और बछड़ोंको मोहवश ब्रह्माने स्वनिर्मित मान रखा था, अतः उनका हरण करके क्षणभरके लिये वे अपने लोकको चले गये । उतने कालमें यहाँका एक वर्ष बीत गया । लौटनेपर उन्होंने जब

नव-निर्मित भगवान्के परिकरों और बछड़ोंको चिन्मय भगवद्-रूप देखा, तब उनका मोह दूर हुआ। वैसे ही इन भावना-सम्बन्धी संकल्पोंके प्रति भी बुद्धिके देवता ब्रह्माको मोह होता है कि 'ये संकल्प तो प्राकृत बुद्धिके ही हैं, चिन्मय कैसे हुए ?' तब भक्तिसे तृप्त भगवान् इसे विवेक देते हैं कि 'जैसे सुषुप्ति-अवस्थामें जब बुद्धिका लय हुआ रहता है, तब भी जीवको ज्ञान रहता है कि मैं सुखसे सोया था।' यह सुखानुसंधाता, ज्ञानस्वरूप एवं ज्ञानधर्मा जीवात्मा है। यथा—

'स्वस्मै स्वेनैवावभासनत्वं प्रत्यक्त्वम्।'

अर्थात् प्रत्यक्संज्ञक जीवात्मा (बुद्धिके बिना ही) स्वयं अपनेको जानता है। इस अवस्थामें वह स्वयं प्रज्ञाका काम करता है, इसीसे 'प्राज्ञ' कहलाता है। अतः इसके संकल्प अपने चिन्मयस्वरूपसे ही हैं और चिन्मय हैं। इस ज्ञानसे इसकी उक्त बाधा निवृत्त हो जाती है। फिर स्थायी तुरीयावस्थासे ही इसकी भावना हुआ करती है।

भगवान् श्रीरामके चरणचिह्नोंका चिन्तन

(लेखक—श्रीरामलाल)

भगवान् श्रीरामके चरण और उनके चिह्नोंके रूप और महत्त्वका वर्णन वे ही कर सकते हैं, जो श्रीरामके चरणारविन्द-मकरन्द-रससे अपने मनको सिक्तकर उनकी भक्तिमें लगे रहते हैं। ब्रह्मा और शंकर श्रीरामके चरणोंकी वन्दना करते हैं—

'......अजभवार्चिताङ्घ्रिः।' (श्रीमद्भा० ९। १०। १२)

श्रीरामके चरण और उनके चिह्नोंकी महिमाका वर्णन वे ही कर सकते हैं, जिनके हृदयमें भगवान् श्रीरामकी कृपासे सद्विद्या स्फुरित होती है। इस तरहकी विद्या उनमें होती है, जो रामकी भक्तिमें तत्पर रहकर उनके मन्त्रकी उपासना करते हैं। श्रीरामके प्रति महर्षि अगस्त्यका कथन है—

लोके त्वद्भक्तिनिरतास्त्वन्मन्त्रोपासकाश्च ये।
विद्या प्रादुर्भवेत्तेषां नेतरेषां कदाचन॥
(अध्यात्मरा० ३। ३। ३४)

आशय यह है कि श्रीरामकी भक्तिसे अर्जित विद्याके द्वारा उनके स्वरूप और तत्त्व आदिका वर्णन प्राणी कर सकता है। श्रीरामके पद-पङ्कज-दर्शनसे कुशल-ही-कुशल है। श्रीरामने निषादसे कुशल-समाचार पूछा तो उसने कहा—

'नाथ कुसल पद पंकज देखें। भयउँ भागभाजन जन लेखें॥'
(श्रीरामचरितमा० २। ८७। २½)

भक्तराज सुतीक्ष्ण भगवान्के चरणोंमें दृढ़ आस्था प्राप्त करके यों कहते हैं—'अनन्तगुण ! अप्रमेय ! सीतापते ! मैं आपका ही मन्त्र जपता हूँ। राम ! शिव और ब्रह्मा आपके चरणोंके आश्रित हैं। आपके चरण संसार-सागरको पार करनेके लिये सुदृढ़ जहाज हैं। नाथ ! मैं आपके दासोंका दास हूँ।'

त्वन्मन्त्रजाप्यहमनन्तगुणाप्रमेय
सीतापते शिवविरिञ्चिसमाश्रिताङ्घ्रे।
संसारसिन्धुतरणामलपोतपाद
रामाभिराम सततं तव दासदासः॥
(अध्यात्मरा० ३। २। २७)

भगवान्के चरणारविन्दकी महिमा उनके चिह्नोंकी कल्याणकारी विशिष्ट गरिमासे समन्वित है। ये चरण-चिह्न संत-महात्माओं तथा भक्तोंके सदा सहायक हैं, रक्षक हैं। भक्तमालमें महात्मा नाभादासकी स्वीकृति है—

सीतापति-पद नित बसत, एते मंगलदायका।
चरण-चिह्न रघुबीर के संतन सदा सहायका॥

भगवान् श्रीरामके चरण-चिह्नोंका वर्णन 'महारामायण'के ४८वें अध्यायमें, महर्षि अगस्त्यकृत 'श्रीरघुनाथचरणचिह्न-स्तोत्र' में, आचार्य यामुनकृत 'आलवन्दारस्तोत्र'में, नाभाजीकृत 'भक्तमाल'में, श्रीरामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें, गोस्वामी तुलसीदासजीकृत 'गीतावली'के उत्तरकाण्डके पंद्रहवें पदमें और श्रीवेङ्कटेश्वरप्रेससे प्रकाशित 'रामचरणचिह्नावली'नामक पुस्तकमें मिलता है। 'महारामायण'में श्रीरामके चरणचिह्नोंकी संख्या ४८ बतायी गयी है—२४ चिह्न दक्षिणपदमें और २४ चिह्न वामपदमें हैं। जो चिह्न श्रीरामके दक्षिणपदमें हैं, वे भगवती सीताके वामपदमें हैं और जो उनके वामपदमें हैं, वे ही श्रीजानकीके दक्षिणपदमें हैं। श्रीशंकरजी पार्वतीजीसे कहते हैं—

यानि चिह्नानि रामस्य चरणे दक्षिणे प्रिये।
तानि सर्वाणि जानक्याः पादे तिष्ठन्ति वामके॥

यानि चिह्नानि जानक्या दक्षिणे चरणे शिवे।
तानि सर्वाणि रामस्य पादे तिष्ठन्ति वामके॥
(महारामायण ४८। १३-१४)

महर्षि अगस्त्यके 'श्रीरघुनाथचरणचिह्नस्तोत्र'में ४८ चिह्नोंमेंसे केवल १८ चिह्नोंका ही वर्णन मिलता है। वे अम्बुज, अङ्कुश, यव, ध्वजा, चक्र, ऊर्ध्वरेखा, स्वस्तिक, अष्टकोण, वज्र, बिन्दु, त्रिकोण, धनुष, अंशुक—वस्त्र, मत्स्य, शङ्ख, अर्द्धचन्द्र, गोपद और घट हैं।

श्रीयामुनाचार्यने शङ्ख, चक्र, कल्पवृक्ष, ध्वजा, कमल, अंकुश और वज्र—इन सात चरण-चिह्नोंका ही वर्णन किया है—

कदा पुनः शङ्खरथाङ्गकल्पक-
ध्वजारविन्दाङ्कुशवज्रलाञ्छनम्।
त्रिविक्रम त्वच्चरणाम्बुजद्वयं
मदीयमूर्द्धानमलंकरिष्यति॥
(आलवन्दारस्तोत्र ३४)

गोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरितमानसमें चार चरण-चिह्नोंका उल्लेख किया है। वे ध्वजा, कुलिश, अङ्कुश और कंज हैं—

जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनिपतिनी तरी।
नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी॥
ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे॥
(उत्तर० १२। ४ छं०)

अपनी 'गीतावली'के उत्तरकाण्डके पंद्रहवें पदमें गोस्वामी तुलसीदासने श्रीरामके चरण और उनके उपर्युक्त चार चिह्न—अंकुश, कुलिश, कमल और ध्वजाका मौलिक तथा अमित भक्तिपूर्ण वर्णन किया है—

राम चरन अभिराम कामप्रद तीरथ-राज बिराजै।
संकर-हृदय-भगति-भूतल पर प्रेम-अछयबट भ्राजै॥
स्यामबरन पद-पीठ अरुनतल, लसति बिसद नखस्रेनी।
जनु रबिसुता-सारदा-सुरसरि मिलि चलि ललित त्रिबेनी॥
अंकुस-कुलिस-कमल-धुज सुंदर भँवर तरंग-बिलासा।
[illegible]हिं सुर-सज्जन, मुनिजन मन मुदित मनोहर बासा॥
[illegible]नु बिराग-जप-जाग-जोग-ब्रत, बिनु तप, बिनु तनु त्यागें।
सब सुख सुलभ सद्य तुलसी प्रभु-पद-प्रयाग अनुरागें॥

आशय यह है कि सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले भगवान् रामके मनोहर चरण-कमल मानो साक्षात् तीर्थराज होकर विराजमान हैं। श्रीशंकरके हृदयकी भक्तिरूप भूमिपर प्रेममय अक्षयवट सुशोभित है। चरणोंका पृष्ठभाग श्यामवर्ण है, तलवे अरुण हैं तथा उनमें शुक्लवर्ण नखावली शोभित है, मानो यमुना, सरस्वती और गङ्गाजी—तीनों मिलकर सुन्दर त्रिवेणीके रूपमें बह चली हों। तलवोंमें अङ्कुश, वज्र, कमल और ध्वजाके चिह्न ही सुन्दर भँवर और तरंगें हैं; उनमें देवता और साधु-संत स्नान करते हैं तथा वे मुनियोंके प्रसन्न मनके मनोहर निवास-स्थान हैं। तुलसीदासजीका कथन है कि प्रभुके चरणरूप प्रयागमें प्रेम करनेसे वैराग्य, जप, यज्ञ, योग, व्रत, तप और शरीर-त्यागके बिना ही समस्त सुख तत्काल सुलभ हो जाते हैं।

महात्मा नाभादासजीने 'भक्तमाल'में भगवान् राघवेन्द्रके केवल बाईस पदचिह्नोंका उल्लेख किया है—

अंकुस अंबर कुलिस कमल जव धुजा धेनुपद।
संख चक्र स्वस्तिक जंबूफल कलस सुधाह्रद॥
अर्धचंद्र षटकोन मीन बिंदु ऊरधरेखा।
अष्टकोन त्रयकोन इंद्रधनु पुरुषविशेषा॥
सीतापति-पद नित बसत एते मंगलदायका।
चरन-चिह्न रघुबीर के संतन सदा सहायका॥
(भक्तमाल)

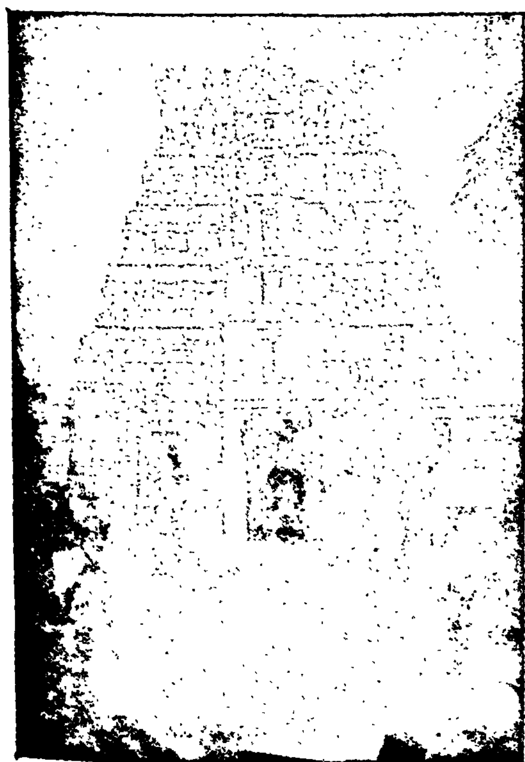
वेङ्कटेश्वरप्रेससे प्रकाशित 'रामचरणचिह्नावली'में 'महारामायण'की ही तरह ४८ चिह्नोंका उल्लेख है। 'महारामायण'में तथा 'भक्तमाल'की 'वार्तिकप्रकाश' टीकामें इन चिह्नोंके रूप, रंग, कार्य तथा महत्त्वका विशद विवेचन मिलता है। अपनी-अपनी उपासना-पद्धतिके अनुसार लोग भगवान्‌के चरणारविन्दोंके चिह्नोंका ध्यान कर श्रीरामकी भक्ति-का रसास्वादन करते हैं। इन चिह्नोंके ध्यानसे मन और हृदय पवित्र होते हैं तथा संसारजनित क्लेश, पीड़ा और भयका नाश होता है। भगवच्चरणारविन्दके समस्त चिह्न मङ्गलदायक हैं।

भगवान् श्रीरामके दक्षिण चरणारविन्दमें ऊर्ध्वरेखा है। इसका रंग अरुण—गुलाबी है। इसके अवतार सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन हैं। इस चिह्नके ध्यानसे महायोगकी सिद्धि होती है। ध्यानी भवसागरसे पार हो जाता है। दूसरा चिह्न स्वस्तिक है, इसका रंग पीला है। अवतार श्रीनारद-

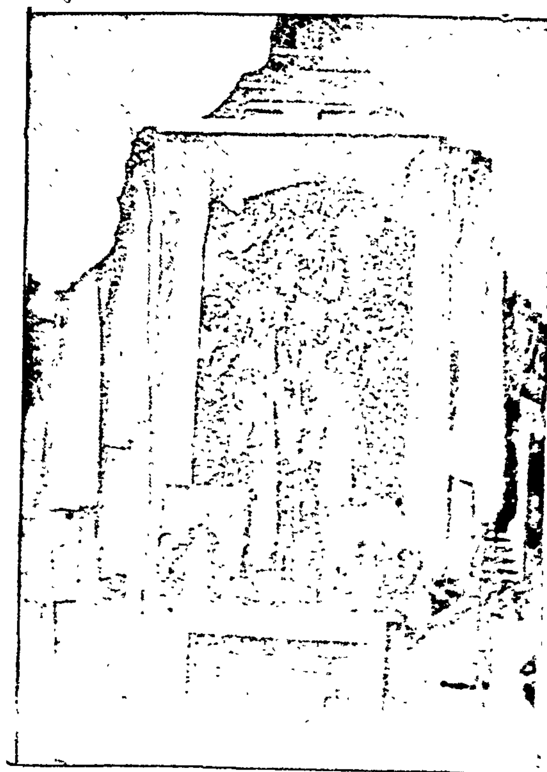
कल्याण

विभिन्न स्थानोंके कुछ प्रमुख दर्शन

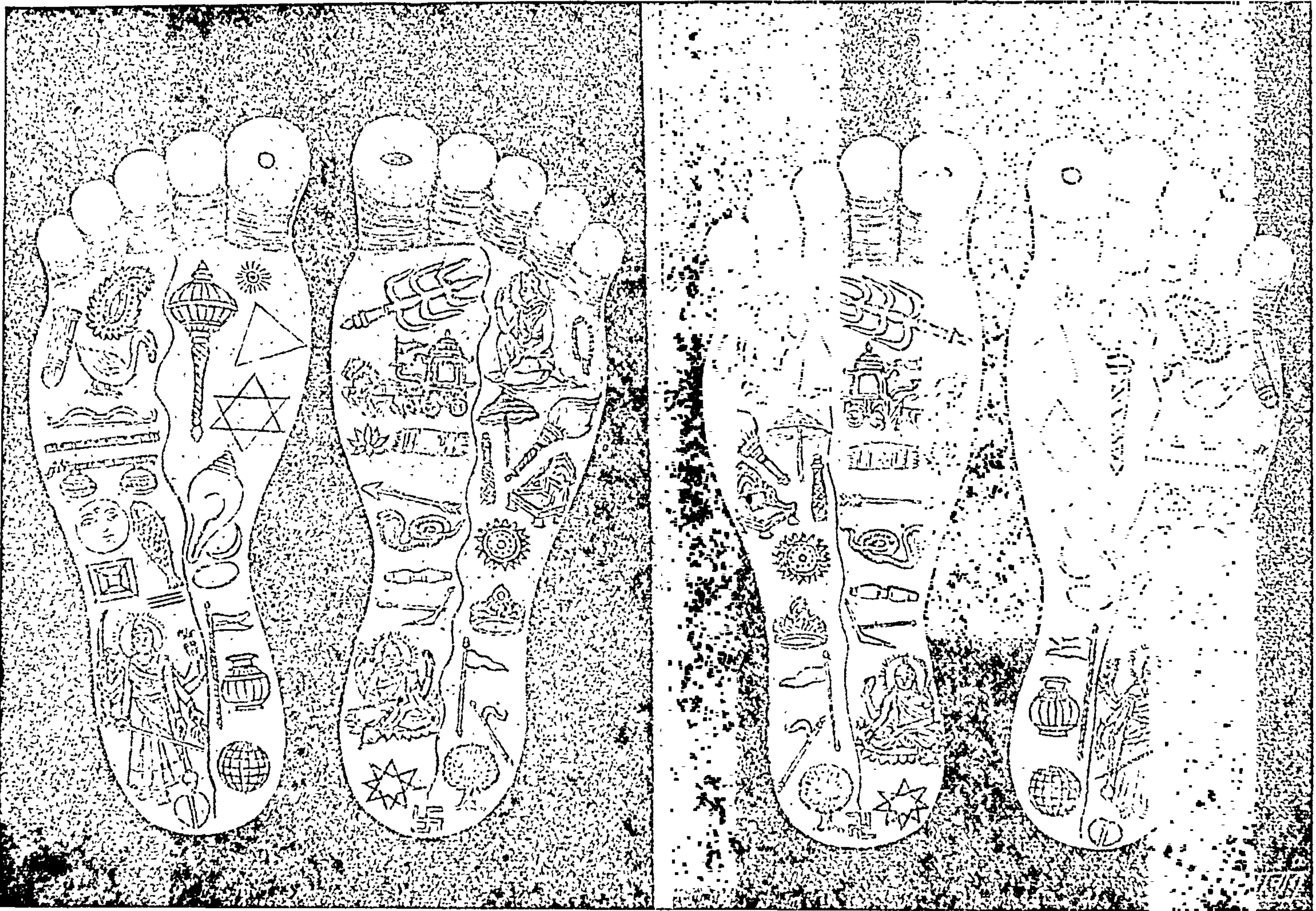
श्रीजानकीजीका नौलखा मन्दिर, जनकपुर



श्रीरामेश्वर-मन्दिरका प्रधान प्रवेशद्वार



भरत-मन्दिर, ऋषिकेश



भगवान् श्रीरामके चरण-चिह्न

श्रीजानकीजीके चरण-चिह्न

जी हैं। यह मङ्गलकारक है, कल्याणप्रद है। श्रीशंकरका पार्वतीजीसे कथन है—

'स्वस्तिकादेव संजातं कल्याणं सर्वतः प्रिये।'

(महारामायण ४८। ४०)

तीसरा चिह्न अष्टकोण है। यह लाल और सफेद रंगका है। यह यन्त्र है। अवतार श्रीकपिलदेवजी हैं। इसके ध्यानमें अष्टसिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। चौथा चिह्न श्रीलक्ष्मीजी हैं। इनका रंग अरुणोदयकालकी लालिमाके सदृश है। बड़ी ही मनोहर हैं। अवतार साक्षात् लक्ष्मीजी ही हैं। इनके ध्यानसे ऐश्वर्य और समृद्धि मिलती है। पाँचवाँ चिह्न हल है, इसका रंग श्वेत है। अवतार बलरामजीका हल है। यह विजयप्रद है। इससे विमल विज्ञानकी उपलब्धि होती है। छठा चिह्न मूसल है, यह धूम्र रंगका है। अवतार मूसल है। इसके ध्यानसे शत्रुका नाश होता है। सातवाँ चिह्न सर्प—शेष है, इसका रंग श्वेत है। अवतार शेषनाग हैं। इस चिह्नका ध्यान करनेवालेको भगवद्भक्ति और शान्तिकी प्राप्ति होती है। आठवाँ चिह्न शर—बाण है; इसका रंग श्वेत, पीत, अरुण—गुलाबी और हरा है। इसका ध्यान करनेवालेके शत्रु नष्ट होते हैं। अवतार बाण है। नवाँ चिह्न अम्बर—वस्त्र है। इसका रंग आसमानी अथवा नीला और बिजलीके रंगके समान है। अवतार श्रीवराह भगवान् हैं। इस चिह्नके ध्यानसे भयका नाश होता है। यह भक्तोंको दुःख देनेवाली जडतारूपी शीतका हरण करता है। दसवाँ चिह्न कमल है, यह लाल—गुलाबी रंगका है। अवतार विष्णु-कमल है। ध्यानी भगवद्भक्ति पाता है, उसका यश बढ़ता है और मन प्रसन्न रहता है। ग्यारहवाँ चिह्न रथ है। यह चार घोड़ोंका है। अवतार पुष्पक विमान है। इसका रंग विचित्र—अनेक तरहका है तथा घोड़े सफेद रंगके हैं। इसका ध्यान करनेवाला विशेष पराक्रमसे सम्पन्न होता है। बारहवाँ चिह्न वज्र है। इसका रंग बिजलीके रंगके समान होता है। अवतार इन्द्रका वज्र है। यह पापोंका नाशक तथा बलदायक है। तेरहवाँ चिह्न यव है। अवतार कुबेर हैं। इससे समस्त यज्ञोंकी उत्पत्ति होती है। इसका रंग श्वेत है। यवके ध्यानसे मोक्ष मिलता है, पापका नाश होता है। यह सिद्धि, विद्या, सुमति, सुगति और सम्पत्तिका निवासस्थान है। चौदहवाँ चिह्न कल्पवृक्ष है। अवतार कल्पवृक्ष है। इसका रंग हरा है। इससे अर्थ, धर्म, काम और मोक्षकी प्राप्ति होती है, समस्त मनोरथ पूरे होते हैं। पंद्रहवाँ चिह्न अङ्कुश है। इसका रंग श्याम है। इससे समस्त लोकोंके मलका नाश करनेवाला ज्ञान उत्पन्न होता है। इसके ध्यानका फल मनोनिग्रह है। सोलहवाँ चिह्न ध्वजा है। इसका रंग लाल है। यह विचित्र वर्णका भी कहा जाता है। इससे विजय—कीर्तिकी प्राप्ति होती है। सत्रहवाँ चिह्न मुकुट है। अवतार दिव्यभूषण है। इसका रंग सुनहला है। इसके ध्यानसे परमपद मिलता है। अठारहवाँ चिह्न चक्र है। अवतार सुदर्शनचक्र है। इसका रंग तपाये हुए सोनेकी तरह है। यह शत्रुका नाश करता है। उन्नीसवाँ चिह्न सिंहासन है। अवतार श्रीरामका सिंहासन है। रंग सुनहला है—

'सिंहासनेन सम्भूतं रामसिंहासनं परम्॥'

(महारामायण ४८। ४९)

—यह विजयप्रद है, सम्मान प्रदान करता है। बीसवाँ चिह्न यमदण्ड है, अवतार धर्मराज हैं। यह काँसेके रंगका है। इसके ध्यानसे यमयातनाका नाश होता है, ध्यानी निर्भयता प्राप्त करता है। इक्कीसवाँ चिह्न चामर है। इसका रंग सफेद है। अवतार श्रीहयग्रीव हैं। यह राज्य एवं ऐश्वर्य प्रदान करता है। इसके ध्यानसे हृदयमें निर्मलता आती है, विकार नष्ट होते हैं, चन्द्रमाकी चन्द्रिकाके समान प्रकाशका उदय होता है। बाईसवाँ चिह्न छत्र है। अवतार कल्कि है। इसका रंग शुक्ल है। इसका ध्यान करनेवाला राज्य तथा ऐश्वर्य पाता है। यह तीनों (दैहिक, दैविक, भौतिक) तापोंसे रक्षा करता है, मनमें दयाभाव लाता है। तेईसवाँ चिह्न नर—पुरुष है। अवतार दत्तात्रेय हैं। पुरुष परमेश्वर अथवा ब्रह्मका वाचक है। रंग उज्ज्वल—गौर है। इस चिह्नके ध्यानसे भक्ति, शान्ति और सत्त्वगुणकी प्राप्ति होती है। इस चिह्नका रंग सित-लोहित भी कहा जाता है। चौबीसवाँ चिह्न जयमाला है। यह बिजलीके रंगका है, अथवा इसका चित्र-विचित्र रंग भी कहा जाता है। इसके ध्यानसे भगवद्विग्रहके शृङ्गार तथा उत्सव आदिमें प्रीति बढ़ती है।

श्रीरामके दक्षिण चरणारविन्दके चिह्नोंकी तरह वाम-पदकमलमें भी चौबीस चिह्न हैं। पहला चिह्न सरयू है। अवतार विरजा-गङ्गा आदि हैं। इसका रंग श्वेत है, इसके ध्यानसे भगवान् रामकी भक्ति मिलती है, कलिमलका नाश होता है। दूसरा चिह्न गोपद है। अवतार कामधेनु है। इसका

रंग सफेद और लाल है। इसके ध्यानसे प्राणी भवसागरके पार हो जाता है। यह पुण्यप्रद है। इससे भगवद्भक्ति मिलती है। तीसरा चिह्न भूमि—पृथ्वी है, अवतार कमठ है। इसका रंग पीला और लाल है, इसका ध्यान करनेसे मनमें क्षमाभाव बढ़ता है। चौथा चिह्न कलश है। यह सुनहरा और श्याम है, श्वेत भी कहा जाता है। अवतार अमृत है। इसका ध्यान भक्ति, जीवन्मुक्ति तथा अमरता प्रदान करता है। पाँचवाँ चिह्न पताका है। इसका रंग विचित्र है। इसके ध्यानसे मन पवित्र होता है। इस ध्वजा-चिह्नसे कलिका भय नष्ट होता है। छठा चिह्न जम्बूफल है। अवतार गरुड हैं। इसका रंग श्याम है। यह मङ्गलकारक है। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इस चिह्नके ध्यानके फल हैं। इससे मनःकामना पूरी होती है। सातवाँ चिह्न अर्द्धचन्द्र है, इसका रंग उज्ज्वल है। अवतार वामन भगवान् हैं। इसके ध्यानसे भक्ति, शान्ति और प्रकाशकी प्राप्ति होती है। मनके दोष नष्ट होते हैं। त्रयतापका नाश होता है और प्रेमाभक्ति बढ़ती है। आठवाँ चिह्न शङ्ख है। इसके अवतार वेद, हंस, शङ्ख आदि हैं। इसका रंग अरुण और श्वेत है। इसका ध्यान करनेवाला दम्भ-कपटके मायाजालसे छूट जाता है। उसे विजय प्राप्त होती है तथा उसकी बुद्धि बढ़ती है। यह अनाहत—अनहद नादका कारण है। नवाँ चिह्न षट्कोण है। अवतार श्रीकार्तिकेय हैं। इसका रंग श्वेत है, लाल भी कहा जाता है। इसका ध्यान करनेसे षड्विकार—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सरका नाश होता है। यह यन्त्ररूप है। इसके ध्यानसे षट्सम्पत्ति—शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधानकी प्राप्ति होती है। दसवाँ चिह्न त्रिकोण है। इसके अवतार परशुरामजी और श्रीहयग्रीव हैं। इसका रंग लाल होता है। यह यन्त्ररूप है। इसके ध्यानसे योगकी प्राप्ति होती है। ग्यारहवाँ चिह्न गदा है। अवतार महाकाली और गदा हैं। इसका रंग श्याम है। यह दुष्टोंका नाश करके ध्यान करनेवालेको जय देता है। बारहवाँ चिह्न जीवात्मा है। अवतार जीव है। इसका रंग प्रकाशमय है। इसके ध्यानसे शुद्धता बढ़ती है। तेरहवाँ चिह्न बिन्दु है, अवतार सूर्य और माया हैं। इसका रंग पीला है। यह वशीकरणतिलक-रूप है। इसके ध्यानसे भगवान् भक्तके वशमें हो जाते हैं। उसके समस्त पुरुषार्थोंकी सिद्धि होती है। इसका स्थान अँगूठा है। इससे पाप नष्ट होता है। चौदहवाँ चिह्न शक्ति है, अवतार मूलप्रकृति, शारदा, महामाया हैं। इस चिह्नका रंग लाल—गुलाबी और पीला है। रक्त—श्यामसित वर्णका भी कहा जाता है। इससे श्री—शोभा और सम्पत्तिकी उपलब्धि होती है। पंद्रहवाँ चिह्न सुधाकुण्ड है। यह सफेद और लाल है। इसके ध्यानसे अमृत—अमरताकी प्राप्ति होती है। सोलहवाँ चिह्न त्रिवली है। इसके अवतार श्रीवामन हैं, इसका रंग हरा, लाल और धवल है—त्रिवेणीका रंग है। इसका यह चिह्न वेदरूप है। इसका ध्यान करनेवाला कर्म, उपासना और ज्ञानसे सम्पन्न होता है। उसे भक्तिरसका आस्वादन सुलभ हो जाता है। सत्रहवाँ चिह्न मीन है; इसका रंग रुपहला है, उज्ज्वल है। यह जगत्‌को वशमें करनेवाले कामदेवकी ध्वजा है। यह वशीकरण है, इसके ध्यानका फल श्रीभगवान्‌के प्रेमकी प्राप्ति है। अठारहवाँ चिह्न पूर्णचन्द्र है। अवतार चन्द्रमा है। इसका रंग पूर्ण धवल है। यह मोहरूपी तमको हरकर तीनों तापोंका नाश करता है। ध्यान करनेवालेके मनमें सरलता, शान्ति और प्रकाशकी वृद्धि होती है। उन्नीसवाँ चिह्न वीणा है, अवतार श्रीनारदजी हैं। इसका रंग पीला, लाल और उज्ज्वल है। ध्यान करनेवालेको राग-रागिनीमें निपुणता मिलती है। वह भगवान्‌का यशोगान करता है। बीसवाँ चिह्न वंशी—वेणु है। अवतार महानाद है। इसका रंग चित्र-विचित्र है। इसके ध्यानसे मधुर शब्दसे मन मोहित हो जाता है। मुनियोंका मन भी वशमें नहीं रहता। इक्कीसवाँ चिह्न धनुष है। अवतार पिनाक और शार्ङ्ग हैं। इसका रंग हरा, पीला और लाल है। इसके ध्यानसे शत्रुका नाश होता है, मृत्युभयका निवारण होता है। बाईसवाँ चिह्न तूणीर है। अवतार परशुरामजी हैं। इसका रंग चित्र-विचित्र है। इसके ध्यानसे भगवान्‌के प्रति सख्यरस बढ़ता है। ध्यानका फल सप्तभूमि-ज्ञान है। तेईसवाँ चिह्न हंस है। अवतार हंसावतार है। इसका रंग सफेद और गुलाबी है। इसके ध्यानका फल विवेक और ज्ञानकी प्राप्ति है। हंसका ध्यान संत-महात्माओंके लिये सुखद है। चौबीसवाँ चिह्न चन्द्रिका है। इसका रंग सफेद, पीला और लाल है। यह सर्वरंगमय कहा जाता है। इसके ध्यानसे कीर्ति मिलती है।

भगवान् श्रीरामके चरण-चिह्न-चिन्तनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके चरण समस्त विभूतियों, ऐश्वर्यों तथा भक्ति-मुक्ति और भुक्तिकी अक्षय निधि हैं। भगवद्भक्तिमें मग्न भक्त जन्म-जन्मतक श्रीरामपदकी ही रति—भक्ति चाहते हैं। श्रीरामके चरणारविन्दमें भक्तका मन-मधुप निरन्तर संलग्न रहता है।

जिन प्राणियोंको श्रीरामके चरणपङ्कज-चिह्नोंका ध्यान और चिन्तन प्रिय है, उनका जीवन सफल और पुण्यमय है।

श्रीराम-सम्बन्धी कुछ मन्त्र और उनकी संक्षिप्त अनुष्ठान-विधि

सनत्कुमारजी कहते हैं—नारद ! अब भगवान् श्रीरामके मन्त्र बताये जाते हैं, जो सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं और जिनकी उपासनासे मनुष्य भवसागरके पार हो जाते हैं। सारे उत्तम मन्त्रोंमें वैष्णव-मन्त्र श्रेष्ठ बताये जाते हैं। गणेश, सूर्य, दुर्गा और शिवसे सम्बन्ध रखनेवाले मन्त्रोंकी अपेक्षा वैष्णव-मन्त्र शीघ्र अभीष्ट-सिद्धि करनेवाले हैं। वैष्णव-मन्त्रोंमें भी राममन्त्र अधिक फलदायी हैं। गणपति आदिके मन्त्रोंकी अपेक्षा राममन्त्र कोटि-कोटिगुना अधिक महत्त्व रखते हैं। विष्णु-शय्या (आ) के ऊपर विराजमान अग्नि (र) का मस्तक यदि चन्द्रमा (अनुस्वार) से विभूषित हो और उसके आगे 'रामाय नमः'—ये दो पद हों तो यह '**रां रामाय नमः**'—मन्त्र महान् पापोंकी राशिका नाश करनेवाला है। श्रीराम-सम्बन्धी सम्पूर्ण मन्त्रोंमें यह षडक्षर मन्त्र अत्यन्त श्रेष्ठ है। जानकर और बिना जाने किये हुए महापातक एवं उपपातक सब इस मन्त्रके उच्चारणमात्रसे तत्काल नष्ट हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। इस मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, श्रीराम देवता, 'रां' बीज और 'नमः' शक्ति हैं। सम्पूर्ण मनोरथोंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजमन्त्र (रां, रीं इत्यादि) द्वारा अथवा मूल मन्त्र ('**रां रामाय नमः**')के छः वर्णोंसे षडङ्गन्यास करे। फिर पीठन्यास आदि करके हृदयमें श्रीरघुनाथजीका इस प्रकार ध्यान करे—

ध्यान

कालाम्भोधरकान्तिकान्तमनिशं वीरासनाध्यासितं
मुद्रां ज्ञानमयीं दधानमपरं हस्ताम्बुजं जानुनि।
सीतां पार्श्वगतां सरोरुहकरां विद्युन्निभां राघवं
पश्यन्तीं मुकुटाङ्गदादिविविधाकल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे ॥

(शारदातिलक १५। ८४)

'भगवान् श्रीरामकी अङ्गकान्ति मेघकी काली घटाके समान श्याम है। वे वीरासन लगाकर बैठे हैं। दाहिने हाथमें ज्ञानमुद्रा धारण करके उन्होंने अपने बायें हाथको बायें घुटनेपर रख छोड़ा है। उनके वामपार्श्वमें विद्युत्के समान कान्तिमती और नाना प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे विभूषित सीतादेवी विराजमान हैं। उनके हाथमें कमल है और वे अपने प्राणवल्लभ श्रीरामचन्द्रजीका मुखारविन्द निहार रही हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक छः लाख जप करे और कमलोंद्वारा प्रज्वलित अग्निमें दशांश होम करे। तत्पश्चात् ब्राह्मण-भोजन कराये। मूलमन्त्रसे इष्टदेवकी मूर्ति बनाकर, उसे वैष्णवपीठपर स्थापितकर, उसमें भगवान्का आवाहन और प्रतिष्ठा करके, साधक विमलादि शक्तियोंसे संयुक्त उनकी पूजा करे। भगवान् श्रीरामके वामभागमें बैठी हुई सीता-देवीकी उन्हींके मन्त्रसे पूजा करनी चाहिये। 'श्रीं सीतायै स्वाहा'—यह 'जानकी-मन्त्र' है। भगवान् श्रीरामके वामभाग-में '**शं शार्ङ्गाय नमः**'से शार्ङ्ग-धनुषकी तथा दक्षिण भागमें '**शं शरेभ्यो नमः**' से बाणोंकी अर्चना करे। केसरोंमें मूलमन्त्रके छः वर्णोंकी पूजा करके दलोंमें हनुमान् आदिकी अर्चना करे। हनुमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अङ्गद, शत्रुघ्न तथा जाम्बवान्—इनका क्रमशः बाएँ चलते हुए पूजन करना चाहिये। हनुमान्जी भगवान्के आगे पुस्तक लेकर बाँच रहे हैं। श्रीरामके दक्षिणपार्श्वमें भरत और वामपार्श्वमें शत्रुघ्न चँवर लेकर खड़े हैं। लक्ष्मणजी पीछे खड़े होकर दोनों हाथोंसे भगवान्के ऊपर छत्र लगाये हुए हैं। इस प्रकार ध्यानपूर्वक उन सबकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर अष्टदलोंके अग्रभागमें धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रपाल (अथवा राष्ट्रवर्धन), अकोप, धर्मपाल तथा सुमन्त्रकी पूजा करके उनके बाह्यभागमें इन्द्र आदि देवताओं-का आयुधोंसहित पूजन करे। इस प्रकार भगवान् श्रीरामकी आराधना करके मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। घृताक्त दूर्वाओंकी आहुति देनेवाला पुरुष दीर्घायु तथा नीरोग होता है। लाल कमलोंके होमसे मनोवाञ्छित धन प्राप्त होता है। पलाशके फूलोंसे हवन करके मनुष्य मेधावी होता है। जो प्रतिदिन प्रातःकाल पूर्वोक्त षडक्षर मन्त्रसे अभिमन्त्रित जल पीता है, वह एक वर्षमें कविसम्राट् हो जाता है। श्रीराममन्त्रसे अभिमन्त्रित अन्नका भोजन करे। इससे बड़े-बड़े रोग शान्त हो जाते हैं। रोगके लिये बतायी हुई ओषधिका उक्त मन्त्रद्वारा हवन करनेसे मनुष्य क्षणभरमें रोगमुक्त हो जाता है। प्रतिदिन दूध पीकर नदीके तटपर या गोशालामें एक लाख जप करे और घृतयुक्त खीरसे आहुति दे तो मनुष्य विद्यानिधि होता है। जिसका आधिपत्य (प्रभुत्व) नष्ट हो गया है, ऐसा मनुष्य यदि शाकाहारी होकर जलके भीतर एक लाख जप करे और

बेलके फूलोंकी दशांश आहुति दे तो उसी समय वह अपनी खोयी हुई प्रभुता पुनः प्राप्त कर लेता है—इसमें संशय नहीं है। गङ्गातटके समीप उपवासपूर्वक रहकर मनुष्य यदि एक लाख जप करे और त्रिमधु (शर्करा, घी और मधु) युक्त कमलों अथवा बेलके फूलोंसे दशांश आहुति दे तो राज्यलक्ष्मी प्राप्त कर लेता है। मार्गशीर्षमासमें कंद-मूल-फलके आहारपर रहकर जलमें खड़ा हो एक लाख जप करे और प्रज्वलित अग्निमें खीरसे दशांश होम करे तो उस मनुष्यको भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके समान पुत्र एवं पौत्र प्राप्त होता है।

इस मन्त्रराजके और भी बहुत-से प्रयोग हैं। पहले षट्कोण बनावे। उसके बाह्यभागमें अष्टदल कमल अङ्कित करे। उसके भी बाह्यभागमें द्वादशदल कमल लिखे। छः कोणोंमें विद्वान् पुरुष मन्त्रके छः अक्षरोंका उल्लेख करे। अष्टदल कमलमें भी प्रणवसम्पुटित उक्त मन्त्रके आठ अक्षरोंका उल्लेख करे। द्वादशदल कमलमें कामबीज (क्लीं) लिखे। मध्यभागमें मन्त्रसे आवृत नामका उल्लेख करे। बाह्यभागमें सुदर्शन-मन्त्रसे और दिशाओंमें युग्मबीज (रां श्रीं) से यन्त्रको आवृत करे। उसका भूपुर वज्रसे सुशोभित हो। कोण कंदर्प, अङ्कुश, पाश और भूमिसे सुशोभित हो। यह यन्त्रराज माना गया है। भोजपत्रपर अष्टगन्धसे ऊपर बताये अनुसार यन्त्र लिखकर छः कोणोंके ऊपर दलोंका आवेष्टन रहे। अष्टदल कमलके केसरोंमें विद्वान् पुरुष युग्म-बीजसे आवृत दो-दो स्वरोंका उल्लेख करे। यन्त्रके बाह्य-भागमें मातृका-वर्णों (वर्णमालाके पूरे ४९ वर्णों)का उल्लेख करे। साथ ही प्राण-प्रतिष्ठाका मन्त्र (**'आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हों हं सः अमुष्य प्राणा इह प्राणाः)'** भी लिखे। मन्त्रोपासक किसी शुभ दिनको कण्ठमें, दाहिनी भुजामें अथवा मस्तकपर इस यन्त्रको धारण करे। इससे वह सम्पूर्ण पातकोंसे मुक्त हो जाता है। स्वबीज (रां), काम (क्लीं), सत्य ((ह्रीं), वाक् (ऐं), लक्ष्मी (श्रीं), तार (ॐ)—इन छः प्रकारके बीजोंसे पृथक्-पृथक् जुड़नेपर पाँच वर्णोंका **'रामाय नमः'**—(मन्त्र छः भेदोंसे युक्त षडक्षर होता है। (यथा—**'रां रामाय नमः', 'क्लीं रामाय नमः', 'ह्रीं रामाय नमः', 'ऐं रामाय नमः', 'श्रीं रामाय नमः'** और **'ॐ रामाय नमः'**) —यह छः प्रकारका षडक्षर मन्त्र धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों फलोंको देनेवाला है। इन छहोंके क्रमशः ब्रह्मा, सम्मोहन, सत्य, दक्षिणामूर्ति, अगस्त्य तथा श्रीशिव—ये ऋषि बताये गये हैं अथवा क्लीं आदिके ऋषि विश्वामित्र मुनि माने गये हैं। इनका छन्द गायत्री है। देवता श्रीरामचन्द्रजी हैं। आदिमें लगे हुए 'रां', 'क्लीं' आदि बीज हैं और अन्तिम 'नमः' पद शक्ति है। मन्त्रके छः अक्षरोंसे षडङ्गन्यास करना चाहिये। अथवा छः दीर्घ स्वरोंसे युक्त मन्त्राक्षरोंद्वारा न्यास करे। मन्त्रके अक्षरोंका पूर्ववत् न्यास करना चाहिये।

ध्यान

ध्यायेत् कल्पतरोर्मूले सुवर्णमयमण्डपे।
पुष्पकाख्यविमानान्तःसिंहासनपरिच्छदे ॥
पद्मे वसुदले देवमिन्द्रनीलसमप्रभम्।
वीरासनसमासीनं ज्ञानमुद्रोपशोभितम् ॥
वामोरुन्यस्ततद्धस्तं सीतालक्ष्मणसेवितम्।
रत्नाकल्पं विभुं ध्यात्वा वर्णलक्षं जपेन्मनुम् ॥
यद्वा स्मरादिमन्त्राणां जयाभं च हरिं स्मरेत्।

(ना०, पू०, तृ० ७३। ५९—६२)

भगवान्‌का इस प्रकार ध्यान करे—"कल्पवृक्षके नीचे एक सुवर्णका विशाल मण्डप बना हुआ है। उसके भीतर पुष्पक विमान है। उस विमानमें एक दिव्य सिंहासन बिछा हुआ है। उसपर अष्टदल कमलका आसन है, जिसके ऊपर इन्द्रनील मणिके समान श्यामकान्तिवाले भगवान् श्रीरामचन्द्र वीरासनसे बैठे हुए हैं। उनका दाहिना हाथ ज्ञानमुद्रासे सुशोभित है और बायें हाथको उन्होंने बायीं जाँघपर रख छोड़ा है। भगवती सीता तथा सेवाव्रती लक्ष्मण उनकी सेवामें जुटे हुए हैं। वे सर्वव्यापी भगवान् रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। इस प्रकार ध्यान करके छः अक्षरों-की संख्याके अनुसार छः लाख मन्त्र-जप करे अथवा 'क्लीं' आदिसे युक्त मन्त्रोंके साधनमें जयाभ श्रीहरिका चिन्तन करे।"

पूजन तथा लौकिक प्रयोग सब पूर्वोक्त षडक्षर मन्त्रके ही समान करने चाहिये। **'ॐ रामचन्द्राय नमः। ॐ राम-भद्राय नमः।'**—ये दो अष्टाक्षर मन्त्र हैं। इनके अन्तमें भी 'ॐ' जोड़ दिया जाय तो ये नौ अक्षर हो जाते हैं। इनका सब पूजनादि कर्म मन्त्रोपासक षडक्षर मन्त्रकी ही भाँति करे। **'हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा।'** यह दस अक्षरोंवाला महामन्त्र है। इसके वसिष्ठ ऋषि, स्वराट् छन्द, सीतापति देवता, 'हुं' बीज तथा 'स्वाहा' शक्ति है। (इन सबका यथास्थान न्यास करना चाहिये।) 'क्लीं' बीजसे क्रमशः षडङ्गन्यास करे। मन्त्रके दस अक्षरोंका क्रमशः मस्तक,

ललाट, भ्रूमध्य, तालु, कण्ठ, हृदय, नाभि, ऊरु, जानु और चरण—इन दस अङ्गोंमें न्यास करे।

ध्यान

अयोध्यानगरे रत्नचित्रसौवर्णमण्डपे।
मन्दारपुष्पैराबद्धवितानें तोरणान्विते॥
सिंहासनसमासीनं पुष्पकोपरि राघवम्।
रक्षोभिर्हरिभिर्देवैः सुदिव्यानगतैः शुभैः॥
संस्तूयमानं मुनिभिः प्रह्वैश्च परिसेवितम्।
सीतालंकृतवामाङ्गं लक्ष्मणेनोपशोभितम्॥
श्यामं प्रसन्नवदनं सर्वाभरणभूषितम्।

(ना० पुराण, पूर्व० ७३। ६८—७१)

'दिव्य अयोध्या-नगरमें रत्नोंसे चित्रित एक सुवर्णमय मण्डप है, जिसमें मन्दारके फूलोंसे चँदोवा बनाया गया है। उसमें तोरण लगे हुए हैं। उसके भीतर पुष्पक विमानपर एक दिव्य सिंहासनके ऊपर राघवेन्द्र श्रीराम विराजित हैं। उस सुन्दर विमानमें एकत्र हो शुभस्वरूप देवता, वानर, राक्षस और विनीत महर्षिगण भगवान्‌की स्तुति और परिचर्या करते हैं। श्रीराघवेन्द्रके वामभागमें भगवती सीता विराजमान हो उस वामाङ्गकी शोभा बढ़ाती हैं। भगवान्‌का दाहिना भाग लक्ष्मणजीसे सुशोभित है। श्रीरघुनाथजीकी कान्ति श्याम है। उनका मुख प्रसन्न है तथा वे समस्त आभूषणोंसे विभूषित हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके, मन्त्रोपासक एकाग्रचित्त हो दस लाख जप करे। कमल-पुष्पोंद्वारा दशांश होम और पूजनकी विधि षडक्षर मन्त्रके समान है। 'रामाय धनुष्पाणये स्वाहा।'—यह दशाक्षर मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि हैं, विराट् छन्द है तथा राक्षसमर्दन श्रीरामचन्द्रजी देवता कहे गये हैं। 'रां'—यह बीज है और 'स्वाहा' शक्ति है। बीजके द्वारा षडङ्गन्यास करे। वर्णन्यास, ध्यान, पुरश्चरण तथा पूजन आदि कार्य दशाक्षर मन्त्रके लिये पहले बताये अनुसार करे। इसके जपमें धनुष-बाण धारण करनेवाले भगवान् श्रीरामका ध्यान करना चाहिये। तार (ॐ) से युक्त 'नमो भगवते रामचन्द्राय' अथवा 'रामभद्राय'—ये दो प्रकारके द्वादशाक्षर मन्त्र हैं। इनके ऋषि और ध्यान आदि पूर्ववत् हैं। श्रीपूर्वक, जयपूर्वक तथा जय-जयपूर्वक 'राम' नाम हो। यह (श्रीराम जय राम जय जय राम)'—तेरह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि, विराट् छन्द तथा पाप-राशिका नाश करनेवाले भगवान् श्रीराम देवता कहे गये हैं। इसके तीन पदोंकी दो-दो आवृत्ति करके षडङ्गन्यास करे। ध्यान-पूजन आदि सब कार्य दशाक्षर मन्त्रके समान करे।

'ॐ नमो भगवते रामाय महापुरुषाय नमः।'—यह अठारह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके विश्वामित्र ऋषि, धृति छन्द, श्रीराम देवता, 'ॐ' बीज और 'नमः' शक्ति हैं। मन्त्रके एक, दो, चार, तीन, छः और दो अक्षरोंवाले पदोंद्वारा एकाग्रचित्त हो षडङ्गन्यास करे।

ध्यान

निशाणभेरीपटहशङ्खतुर्यादिनिःस्वनैः॥
प्रवृत्तनृत्ये परितो जयमङ्गलभाषिते।
चन्दनागुरुकस्तूरीकर्पूरादिसुवासिते॥
सिंहासने समासीनं पुष्पकोपरि राघवम्।
सौमित्रिसीतासहितं जटामुकुटशोभितम्॥
चापबाणधरं श्यामं ससुग्रीवविभीषणम्।
हत्वा रावणमायान्तं कृतत्रैलोक्यरक्षणम्॥

'भगवान् राघवेन्द्र रावणको मारकर त्रिलोकीकी रक्षा करके लौट रहे हैं। वे सीता और लक्ष्मणके साथ पुष्पक विमानमें सिंहासनपर विराजमान हैं। उनका मस्तक जटाओं-के मुकुटसे सुशोभित है। उनका वर्ण श्याम है और उन्होंने धनुष-बाण धारण कर रक्खा है। उनके साथ सुग्रीव तथा विभीषण विराजित हैं। उनकी विजयके उपलक्ष्यमें निशान, भेरी, पटह, शङ्ख और तुरही आदिकी ध्वनियोंके साथ-साथ नृत्य आरम्भ हो गया है। चारों ओर जय-जयकार तथा मङ्गलपाठ हो रहा है। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कपूर आदिकी मधुर गन्ध छा रही है।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक मन्त्रकी अक्षर-संख्याके अनुसार अठारह लाख जप करे और घृतमिश्रित खीरकी दशांश आहुति देकर पूर्ववत् पूजन करे।

ॐ रां श्रीं रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम।
दशास्यान्तक मां रक्ष देहि मे परमां श्रियम्॥

—यह पैंतीस अक्षरोंका मन्त्र है। बीजाक्षरोंसे वियुक्त होनेपर केवल बत्तीस अक्षरोंका होता है। यह अभीष्ट फल देनेवाला है। इसके विश्वामित्र ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, रामभद्र देवता, 'रां' बीज और 'श्रीं' शक्ति है। मन्त्रके चार पादोंके आदिमें तीनों बीज लगाकर उन पादों तथा सम्पूर्ण मन्त्रके द्वारा मन्त्रज्ञ पुरुष पञ्चाङ्गन्यास करके मन्त्रके एक-एक

अक्षरका क्रमशः समस्त अङ्गोंमें न्यास करे । इसके ध्यान और पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् करे । इस मन्त्रका पुरश्चरण तीन लाखका है। इसमें खीरसे हवन करनेका विधान है । पीतवर्णवाले श्रीरामका ध्यान करके एकाग्रचित्त हो एक लाख जप करे । फिर कमलके फूलोंसे दशांश हवन करके मनुष्य धन पाकर अत्यन्त धनवान् हो जाता है ।

'ॐ ह्रीं श्रीं श्रीं दाशरथाय नमः ।'—यह ग्यारह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ऋषि आदि तथा पूजन आदि पूर्ववत् हैं। 'त्रैलोक्यनाथाय नमः ।'—यह आठ अक्षरोंका मन्त्र है। इसके भी न्यास, ध्यान और पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् हैं । 'रामाय नमः ।'—यह पञ्चाक्षर मन्त्र है। इसके ऋषि, ध्यान और पूजन आदि सब कार्य षडक्षर मन्त्रकी ही भाँति होते हैं । 'रामचन्द्राय स्वाहा ।', 'रामभद्राय स्वाहा ।'—ये दो मन्त्र कहे गये हैं। इनके ऋषि और पूजन आदि पूर्ववत् हैं । अग्नि (र), शेष (आ) से युक्त हो और उसका मस्तक चन्द्रमा (ं) से विभूषित हो तो वह रघुनाथजीका एकाक्षर मन्त्र (रां) है, जो द्वितीय कल्पवृक्षके समान है। इसके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द और श्रीराम देवता हैं। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त मन्त्राक्षरों-द्वारा षडङ्ग-न्यास करे ।

ध्यान

सरयूतीरमन्दारवेदिकापङ्कजासने ।
श्यामं वीरासनासीनं ज्ञानमुद्रोपशोभितम् ॥
वामोरुन्यस्ततद्धस्तं सीतालक्ष्मणसंयुतम् ।
अवेक्षमाणमात्मानं मन्मथामिततेजसम् ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं केवलं मोक्षकाङ्क्षया ।
चिन्तयेत् परमात्मानमृतुलक्षं जपेन्मनुम् ॥

(नारद पु०, पूर्व०, तृ० ७३ । १०६—१०८)

'सरयूके तटपर मन्दार (कल्पवृक्ष)के नीचे एक वेदिका बनी हुई है और उसके ऊपर एक कमलका आसन बिछा हुआ है, जिसपर श्यामवर्णवाले भगवान् श्रीराम वीरासनसे बैठे हैं। उनका दाहिना हाथ ज्ञानमुद्रासे सुशोभित है। उन्होंने अपने बाँयें ऊरु (जाँघ) पर बायाँ हाथ रख छोड़ा है। उनके वामभागमें सीता और दाहिने भागमें लक्ष्मणजी हैं। भगवान् श्रीरामका अमित तेज कामदेवसे भी अत्यधिक सुन्दर है। वे शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल तथा अद्वितीय आत्माका ध्यानद्वारा साक्षात्कार कर रहे हैं। ऐसे परमात्मा श्रीरामका केवल मोक्षकी इच्छासे चिन्तन करे और छः लाख मन्त्रका जप करे।'

इसके होम और नित्य-पूजन आदि सब कार्य षडक्षर मन्त्रकी ही भाँति किये जाते हैं। वह्नि (र), शेष (आ) के आसनपर विराजमान हो और उसके बाद मान्त (म) हो तो केवल दो अक्षरका मन्त्र (राम) होता है। इसके ऋषि, ध्यान और पूजन आदि सब कार्य एकाक्षर मन्त्रकी ही भाँति जानने चाहिये। तार (ॐ), माया (ह्रीं), रमा (श्रीं), अनङ्ग (क्लीं), अस्त्र (फट्) तथा स्वबीज (रां) इनके साथ पृथक्-पृथक् जुड़ा हुआ द्व्यक्षर मन्त्र (राम) छः भेदोंसे युक्त अक्षर मन्त्रराज होता है। यह सम्पूर्ण अभीष्ट पदार्थोंको देनेवाला है। द्व्यक्षर मन्त्रके अन्तमें 'चन्द्र' और 'भद्र' शब्द जोड़ा जाय तो दो प्रकारका चतुरक्षर मन्त्र होता है। इन सबके ऋषि, ध्यान और पूजन आदि एकाक्षरमन्त्रमें बताये अनुसार हैं । तार (ॐ), चतुर्थ्यन्त 'राम' शब्द (रामाय), वर्म (हुं), अस्त्र (फट्), वह्निवल्लभा (स्वाहा)—यह (ॐ रामाय हुं फट् स्वाहा) आठ अक्षरोंका महामन्त्र है। इसके ऋषि और पूजन आदि षडक्षर मन्त्रके समान हैं। तार (ॐ), हृत् (नमः), ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठतेजसे । उत्तमश्लोकधुर्याय स्व (न्य), भृगु (स), कामिका (तं), दण्डार्पिताङ्घ्रये।'—यह (ॐ नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठतेजसे। उत्तम-श्लोकधुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये ॥) तैंतीस अक्षरोंका मन्त्र कहा गया है। इसके शुक ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और श्रीराम देवता हैं। इस मन्त्रके चारों पादों तथा सम्पूर्ण मन्त्रसे पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिये। शेष सब कार्य षडक्षर मन्त्रकी भाँति करे। जो साधक मन्त्र सिद्ध कर लेता है, उसे भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं । उसके सब पापोंका नाश हो जाता है। 'दाशरथाय विद्महे । सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात् ।' यह 'रामगायत्री' कही गयी है, जो सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाली है।

श्रीरामकवचम्

वन्दना

आजानुबाहुमरविन्ददलायताक्ष-
माजन्मशुद्धरसहासमुखप्रसादम्।
श्यामं गृहीतशरचापमुदाररूपं
रामं सरासमभिराममनुस्मरामि॥
शृणु वक्ष्याम्यहं सर्वं सुतीक्ष्ण मुनिसत्तम।
श्रीरामकवचं पुण्यं सर्वकामप्रदायकम्॥
अद्वैतानन्दचैतन्यशुद्धसत्त्वैकलक्षणः।
बहिरन्तः सुतीक्ष्णात्र रामचन्द्रः प्रकाशते॥
तत्त्वविद्यार्थिनो नित्यं रमन्ते चित्सुखात्मनि।
इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते॥
जय रामेति यन्नाम कीर्तयन्नभिवर्णयेत्।
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम्॥
श्रीरामेति परं मन्त्रं तदेव परमं पदम्।
तदेव तारकं विद्धि जन्ममृत्युभयापहम्।
श्रीरामेति वदन् ब्रह्मभावमाप्नोत्यसंशयम्॥

(अगस्त्यजी सुतीक्ष्णसे कहते हैं—) "जानुपर्यन्त जिनकी बाहु हैं, कमलदलके समान जिनके विस्तृत नेत्र हैं, जन्मसे ही जिनके मुखपर निष्कपट आनन्दसूचक हास्यके रूपमें प्रसन्नता झलकती रहती है, जिनका सलोना साँवला वर्ण है, जिन्होंने धनुष और बाणको धारण कर रक्खा है, जिनका उदार रूप है, ऐसे परमसुखदायक सीतासहित भगवान् श्रीरामका मैं ध्यान करता हूँ। मुनिसत्तम सुतीक्ष्ण! सुनो, मैं आज तुम्हें सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाला तथा परमपावन श्रीरामकवच पूर्णरूपसे बतलाऊँगा। सुतीक्ष्ण! इस संसारमें बाहर-भीतर—सब स्थानोंमें अद्वैत आनन्दस्वरूप, शुद्ध सत्त्वगुणमय रामचन्द्रजी प्रकाशित हो रहे हैं। परमात्माके तत्त्वको जाननेकी इच्छा रखनेवाले लोग जिन चिदानन्द-स्वरूपमें रमण करते हैं—आनन्दका अनुभव करते हैं, वे ही परब्रह्म 'राम' इस नामसे पुकारे जाते हैं। जो मनुष्य 'जय राम'—इस नामका कीर्तन करता है, अथवा दूसरोंको श्रवण कराता है, वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुभगवान्के परमपदको प्राप्त होता है। 'श्रीराम'—यह सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है, यही परमपद है, यह जन्म-मृत्यु आदिके भयको दूर कर देता है, उसे ही तारक-मन्त्र जानो। 'श्रीराम'—यों कहनेवाला प्राणी निश्चय ही परब्रह्मको प्राप्त होता है।"

विनियोगः

अस्य श्रीरामकवचस्य अगस्त्य ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, सीतालक्ष्मणोपेतः श्रीरामचन्द्रो देवता, श्रीरामचन्द्रप्रसाद-सिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः।

ध्यानम्

अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि सर्वाभीष्टफलप्रदम्।
नीलजीमूतसंकाशं विद्युद्वर्णाम्बरावृतम्॥
कोमलाङ्गं विशालाक्षं युवानमतिसुन्दरम्।
सीतासौमित्रिसहितं जटामुकुटधारिणम्॥
सासितूणधनुर्बाणपाणिं दानवमर्दनम्।
सदा चोरभये राजभये शत्रुभये तथा॥
ध्यात्वा रघुपतिं युद्धे कालानलसमप्रभम्।
चीरकृष्णाजिनधरं भस्मोद्धूलितविग्रहम्॥
आकर्णाकृष्टसशरकोदण्डभुजमण्डितम्।
रणे रिपून् रावणादींस्तीक्ष्णमार्गणवृष्टिभिः॥
संहरन्तं महावीरमुग्रमैन्द्ररथस्थितम्।
लक्ष्मणाद्यैर्महावीरैर्वृतं हनुमदादिभिः॥
सुग्रीवाद्यैर्महावीरैः शैलवृक्षकरोद्यतैः।
वेगात् करालहुंकारैर्भुभुक्कारमहारवैः॥
नदद्भिः परिवादद्भिः समरे रावणं प्रति।
श्रीराम शत्रुसंघान्मे हन मर्दय खादय॥
भूतप्रेतपिशाचादीन् श्रीरामाशु विनाशय।
एवं ध्यात्वा जपेद्रामकवचं सिद्धिदायकम्॥

"अब सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाला ध्यान बतला रहा हूँ। जिनका नील मेघके समान श्याम शरीर है, जो बिजलीके समान चमकते हुए पीले वस्त्रको धारण किये हैं, जिनके कोमल अङ्ग हैं, बड़ी-बड़ी आँखें हैं, जो अतिशय सुन्दर और युवा हैं, जिनके साथ सीता और लक्ष्मण विद्यमान हैं, जो जटा-मुकुट धारण किये हैं, तलवार, तरकस, धनुष और बाण हाथमें लिये हैं और दानवोंका संहार करते हैं। (मैं उनका ध्यान करता हूँ।) मनुष्यको चाहिये कि राजभय, चोरभय और शत्रुका भय आ जाय तो युद्ध-कालमें कालानलके समान प्रचण्ड प्रभाशाली रामचन्द्रजीका इस रूपमें ध्यान करे। वे वल्कल-वस्त्र तथा कृष्णमृगचर्म धारण किये हैं और शरीर उनका भस्मसे धूसरित हो रहा है। उनकी भुजाएँ कानतक खिंचे हुए बाणसहित धनुषसे सुशोभित हैं। वे

संग्रामभूमिमें रावण आदि शत्रुओंका तीक्ष्ण बाणवृष्टिद्वारा संहार कर रहे हैं। उस समय वे महान् शक्तिसम्पन्न उग्ररूप धारण किये हैं और इन्द्रके रथपर बैठे हैं। लक्ष्मण और हनुमान्‌जी आदि श्रेष्ठ वीरोंसे वे घिरे हुए हैं तथा उनके साथ सुग्रीव आदि योद्धा हाथमें पाषाणखण्ड और बड़े-बड़े वृक्ष लिये हुए प्रचण्ड वेगसे बुभुक्षायुक्त कराल हुंकारके साथ उच्चस्वरसे दहाड़ते हुए युद्धमें रावणपर आक्रमण कर रहे हैं। पुनः श्रीरामसे इस प्रकार प्रार्थना करे—'हे राम! मेरे शत्रुगणोंको मार डालो, नष्ट कर दो, खा जाओ और भूत, प्रेत, पिशाच आदिको शीघ्र ही नष्ट कर दो।' इस प्रकार रामचन्द्रजीका ध्यान (और उनसे प्रार्थना) करके निम्नाङ्कित सिद्धिदायक रामकवचका जप करना चाहिये।''

स्तोत्रम्

सुतीक्ष्ण वज्रकवचं शृणु वक्ष्याम्यनुत्तमम्।
श्रीरामः पातु मे मूर्ध्नि पूर्वे च रघुवंशजः॥
दक्षिणे मे रघुवरः पश्चिमे पातु पावनः।
उत्तरे मे रघुपतिः पायाद्दशरथात्मजः॥
भ्रुवोर्दूर्वादलश्यामस्तयोर्मध्ये जनार्दनः।
श्रोत्रे मे पातु राजेन्द्रो दृशौ राजीवलोचनः॥
घ्राणं मे पातु राजर्षिर्गण्डौ मे जानकीपतिः।
कर्णमूले खरध्वंसी भालं मे रघुवल्लभः॥
जिह्वां मे वाक्पतिः पातु दन्तवल्ल्यौ रघूत्तमः।
ओष्ठौ श्रीरामचन्द्रो मे मुखं पातु परात्परः॥
कण्ठं पातु जगद्वन्द्यः स्कन्धौ मे रावणान्तकः।
धनुर्बाणधरः पातु भुजौ मे वालिमर्दनः।
सर्वाण्यङ्गुलिपर्वाणि हस्तौ मे राक्षसान्तकः॥
वक्षो मे पातु काकुत्स्थः पातु मे हृदयं हरिः॥
स्तनौ सीतापतिः पातु पार्श्वे मे जगदीश्वरः।
मध्यं मे पातु लक्ष्मीशो नाभिं मे रघुनायकः॥
कौसल्येयः कटिं पातु पृष्ठं दुर्गतिनाशनः।
गुह्यं पातु हृषीकेशः सक्थिनी सत्यविक्रमः॥
ऊरू शार्ङ्गधरः पातु जानुनी हनुमत्प्रियः।
जङ्घे पातु जगद्व्यापी पादौ मे ताटकान्तकः॥
सर्वाङ्गं पातु मे विष्णुः सर्वसंधीननामयः।
ज्ञानेन्द्रियाणि प्राणादीन् पातु मे मधुसूदनः॥
पातु श्रीरामभद्रो मे शब्दादीन् विषयानपि।
द्विपदादीनि भूतानि मत्सम्बन्धीनि यानि च॥
जामदग्न्यमहादर्पदलनः पातु तानि मे।
सौमित्रिपूर्वजः पातु वागादीनीन्द्रियाणि च॥
रोमाङ्कुराण्यशेषाणि पातु सुग्रीवराज्यदः।
वाङ्मनोबुद्ध्यहंकारैर्ज्ञानाज्ञानकृतानि च॥
जन्मान्तरकृतानीह पापानि विविधानि च।
तानि सर्वाणि दग्ध्वाशु हरकोदण्डखण्डनः॥
पातु मां सर्वतो रामः शार्ङ्गबाणधरः सदा।

(अगस्त्यजी कहते हैं—) 'सुतीक्ष्ण! मैं परमोत्तम वज्र-कवचका वर्णन करता हूँ, सुनो। श्रीराम मेरे मस्तकपर छत्रच्छाया रखें और रघुवंशजन्मा पूर्व दिशामें मेरी रक्षा करें। दक्षिण दिशामें मेरी रघुवर, पश्चिममें पावन और उत्तरमें दशरथात्मज रघुपति मेरी रक्षा करें। दोनों भौंहोंपर दूर्वादलश्याम तथा उनके मध्यभागपर जनार्दन छत्रच्छाया रखें। मेरे कानोंकी राजेन्द्र और नेत्रोंकी राजीवलोचन रक्षा करें। मेरी नासिकाकी राजर्षि, मेरे गण्डस्थलोंकी जानकीपति, दोनों कर्णमूलोंकी खरध्वंसी और मेरे भालकी रघुवल्लभ रक्षा करें। मेरी जिह्वाकी वाक्पति और दोनों दन्तपंक्तियोंकी रघूत्तम रक्षा करें। मेरे होठोंकी श्रीरामचन्द्र और मुखकी परात्पर रक्षा करें। मेरे कण्ठकी जगद्वन्द्य और दोनों कंधोंकी रावणनाशक रक्षा करें। धनुर्बाणधर मेरी बाँहकी रक्षा करें, वालिमर्दन अँगुलियोंकी सभी गाँठोंकी तथा राक्षसान्तक (राक्षसोंके काल) मेरे हाथोंकी रक्षा करें। काकुत्स्थ मेरे वक्षःस्थलकी रक्षा करें और हरि मेरे हृदयकी रक्षा करें। मेरे दोनों स्तनोंकी सीतापति और दोनों पार्श्वभागोंकी जगदीश्वर रक्षा करें। मेरे मध्यभागकी लक्ष्मीश और मेरी नाभिकी रघुनायक रक्षा करें। कटिभागकी कौसल्यानन्दन और पृष्ठभागकी दुर्गतिनाशन रक्षा करें। गुह्य (गोपनीय) भागकी हृषीकेश और सक्थियों (जाँघकी हड्डियों)की सत्यविक्रम रक्षा करें। ऊरुओंकी रक्षा शार्ङ्गधर और घुटनोंकी रक्षा हनुमत्प्रिय करें। मेरी पिंडलियोंकी जगद्व्यापी और पैरोंकी ताटकावधकर्ता (ताटकाके काल) रक्षा करें। मेरे सभी अङ्गोंकी विष्णु और सम्पूर्ण संधियों (जोड़ों)की अनामय रक्षा करें। मेरी ज्ञानेन्द्रियों तथा प्राणोंकी रक्षा मधुविनाशक करें। श्रीरामभद्र मेरे शब्दादि विषयोंकी भी रक्षा करें। मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले जितने दो पैरवाले प्राणी हों, उन सबकी रक्षा जामदग्न्यमहादर्पदलन (परशुरामके महान् दर्पको चूर्ण करनेवाले श्रीराम) करें। सौमित्रिपूर्वज (लक्ष्मणके बड़े भाई) मेरी वाक् आदि इन्द्रियोंकी रक्षा करें। मेरे सारे रोमकूपोंकी सुग्रीव-

राज्यद (सुग्रीवको राज्य देनेवाले) रक्षा करें। मन, वचन, बुद्धि और अहंकारद्वारा जानमें अथवा अनजानमें किये हुए इस जन्मके अथवा जन्मान्तरके जो मेरे अनेकविध पाप हैं, उन सबको शीघ्र ही भस्म करके हरकोदण्डखण्डन (शिवजीके धनुषको तोड़नेवाले) मेरी सब दिशाओंमें रक्षा करें। शार्ङ्गधनुष और बाण धारण करनेवाले श्रीराम सदा मेरी रक्षा करें।'

इति श्रीरामचन्द्रस्य कवचं वज्रसम्मितम्॥
गुह्याद्गुह्यतमं दिव्यं सुतीक्ष्ण मुनिसत्तम।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्यः समाहितः॥
स याति परमं स्थानं रामचन्द्रप्रसादतः।
महापातकयुक्तो वा गोघ्नो वा भ्रूणहा तथा॥
श्रीरामचन्द्रकवचपठनाच्छुद्धिमाप्नुयात्।
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥
भोः सुतीक्ष्ण यथा पृष्टं त्वया मम पुरा शुभम्।
तथा श्रीरामकवचं मया ते विनिवेदितम्॥

'मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! श्रीरामचन्द्रजीका यह दिव्य कवच वज्र-तुल्य तथा गुह्यसे भी परम गुह्य है। जो मन लगाकर इसे पढ़ता है, सुनता है अथवा दूसरोंसे कहता है, वह श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे परमधामको प्राप्त करता है। चाहे वह महापातकी, गोघाती अथवा गर्भस्थ बालककी हत्या करनेवाला ही क्यों न हो, इस श्रीरामचन्द्रके कवचके पाठसे वह शुद्ध हो जाता है—यहाँतक कि ब्रह्महत्या-जैसे पापोंसे भी उसे छुटकारा मिल जाता है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। हे सुतीक्ष्ण! जिस प्रकार जैसा पहले तुमने मुझसे पूछा था, उसी प्रकार मङ्गलकारक श्रीराम-कवच मैंने तुम्हें बतला दिया।'

(आनन्दरामायण, मनोहरकाण्ड १३ । ४६—८२)

श्रीसीताजीकी उपासनाके मन्त्र

भगवान् श्रीरामकी प्रसन्नताके लिये भगवती सीताजीकी प्रसन्नता प्राप्त करना परम आवश्यक है। गोस्वामी तुलसीदासजीने अपनी 'विनय-पत्रिका'में श्रीसीताजीसे प्रार्थना करते समय यही कहा है—

कबहुँक, अंब! अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन-कथा चलाइ॥ १॥
दीन, सब अँग हीन, छीन, मलीन, अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ॥ २॥
बूझिहैं 'सो है कौन'', कहिबी नाम, दसा जनाइ।
सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ॥ ३॥
जानकी जगजननि जन की किये बचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ गुन-गन गाइ॥ ४॥

(विनय ४१)

मन्त्र

पद्मा (श्रीं), ङे-विभक्त्यन्त सीता-शब्द (सीतायै) और अन्तमें ठद्वय (स्वाहा)—(श्रीं सीतायै स्वाहा) यह षडक्षर सीता-मन्त्र है। इसके वाल्मीकि ऋषि, 'गायत्री' छन्द, भगवती सीता देवता, 'श्रीं' बीज तथा 'स्वाहा' शक्ति है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजाक्षर (श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः) द्वारा षडङ्गन्यास करे।

ध्यान

ततो ध्यायेन्महादेवीं सीतां त्रैलोक्यपूजिताम्।
तप्तहाटकवर्णाभां पद्मयुग्मं करद्वये॥
सद्रत्नभूषणस्फूर्जद्दिव्यदेहां शुभात्मिकाम्।
नानावस्त्रां शशिमुखीं पद्माक्षीं मुदितान्तराम्।
पश्यन्तीं राघवं पुण्यं शय्यायां षड्गुणेश्वरीम्॥

'तदनन्तर त्रिभुवनपूजित महादेवी सीताका ध्यान करे। तपाये हुए सुवर्णके समान उनकी कान्ति है। उनके दोनों हाथोंमें दो कमलपुष्प शोभा पा रहे हैं। उनका दिव्य-शरीर उत्तम रत्नमय आभूषणोंसे प्रकाशित हो रहा है। वे मङ्गलमयी सीता भाँति-भाँतिके वस्त्रोंसे सुशोभित हैं। उनका मुख चन्द्रमाको लज्जित कर रहा है। उनके नेत्र कमलोंकी-सी शोभा धारण करते हैं। उनका अन्तःकरण आनन्दसे उल्लसित है। वे ऐश्वर्य आदि छः गुणोंकी अधीश्वरी हैं और शय्यापर अपने प्राणवल्लभ पुण्यमय श्रीरामचन्द्रको अनुरागपूर्ण दृष्टिसे निहार रही हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक छः लाख मन्त्रका जप करे और खिले हुए कमलोंद्वारा दशांश आहुति दे। पूर्वोक्त (श्रीराम-) पीठपर उनकी पूजा करनी चाहिये। मूलमन्त्रसे मूर्ति-निर्माण करके उसमें जनकनन्दिनी किशोरीजी-

का आवाहन और स्थापन करे। फिर विधिवत् पूजन करके उनके दक्षिण भागमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी अर्चना करे। तत्पश्चात् अग्रभागमें हनुमान्‌जीकी और पृष्ठभागमें लक्ष्मणजीकी पूजा करे। फिर आठ दलोंमें मुख्य मन्त्रियोंका, उनके बाह्यभागमें इन्द्र आदि लोकेश्वरोंका और उनके भी बाह्यभागमें वज्र आदि आयुधोंका पूजन करके मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियोंका स्वामी हो जाता है। अधिक कहनेसे क्या लाभ।

(नारदपुराण, पूर्वखण्ड, तृतीय पाद, अध्याय ७३)

श्रीसीताकवचम्

वन्दना

या सीतावनिसम्भवाथ मिथिलापालेन संवर्द्धिता
पद्माक्षनृपतेः सुतानलगता या मातुलुङ्गोद्भवा।
या रत्ने लयमागता जलनिधौ या वेदवारं गता
लङ्कां सा मृगलोचना शशिमुखी मां पातु रामप्रिया॥

'जो सीता पृथ्वीसे उत्पन्न हुईं और आगे चलकर अग्निमें स्थित रहीं; जो मिथिलानरेशके द्वारा पाली-पोसी गयीं, जो (वेदवतीके रूपमें) मातुलुङ्ग (विजौरा नींबू) से उत्पन्न होकर (पद्माके रूपमें) पद्माक्ष नामक राजाकी पुत्री कही गयीं, जो रावणके द्वारा पकड़नेका प्रयत्न करनेपर समुद्रमें तथा रत्नोंमें लीन हो गयीं और इस प्रकार चार बार लङ्का गयीं, वे चन्द्रवदनी, मृगनयनी और श्रीरामकी प्रिया सीता मेरी रक्षा करें।'

विनियोगः

अस्य श्रीसीताकवचस्तोत्रमन्त्रस्य अगस्तिर्ऋषिः। श्रीसीता देवता। अनुष्टुप् छन्दः। रमेति बीजम्। जनकजेति शक्तिः। अवनिजेति कीलकम्। पद्माक्षसुतेत्यस्त्रम्। मातुलुङ्गीति कवचम्। मूलकासुरघातिनीति मन्त्रः। श्रीसीतारामचन्द्रप्रीत्यर्थं सकलकामनासिद्ध्यर्थं च जपे विनियोगः।

करन्यासः

अथ करन्यासः। ॐ ह्रां सीतायै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं रमायै तर्जनीभ्यां नमः। ॐ ह्रूं जनकजायै मध्यमाभ्यां नमः। ॐ ह्रैं अवनिजायै अनामिकाभ्यां नमः। ॐ ह्रौं पद्माक्षसुतायै कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ह्रः मातुलुङ्ग्यै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। एवं हृदयादिन्यासः कार्यः॥

ध्यानम्

सीतां कमलपत्राक्षीं विद्युत्पुञ्जसमप्रभाम्।
द्विभुजां सुकुमाराङ्गीं पीतकौशेयवासिनीम्॥
सिंहासने रामचन्द्रवामभागस्थितां वराम्।
नानालंकारसंयुक्तां कुण्डलद्वयधारिणीम्॥
चूडाकङ्कणकेयूररशनानूपुरान्विताम्
सीमन्ते रविचन्द्राभ्यां निटिले तिलकेन च॥
मयूराभरणेनापि घ्राणेऽतिशोभितां शुभाम्।
हरिद्रां कज्जलं दिव्यं कुङ्कुमं कुसुमानि च॥
बिभ्रतीं सुरभिद्रव्यं सुगन्धस्नेहमुत्तमम्।
स्मिताननां गौरवर्णां मन्दारकुसुमं करे॥
बिभ्रतीमपरे हस्ते मातुलुङ्गमनुत्तमम्।
रम्यहासां च बिम्बोष्ठीं चन्द्रवाहनलोचनाम्॥
कलानाथसमानास्यां कलकण्ठमनोरमाम्।
मातुलुङ्गोद्भवां देवीं पद्माक्षतनयां शुभाम्॥
मैथिलीं रामदयितां दासीभिः परिवीजिताम्।
एवं ध्यात्वा जनकजां हेमकुम्भपयोधराम्॥
सीतायाः कवचं दिव्यं पठनीयं शुभावहम्॥

'कमलकी पँखुड़ियोंके समान जिनके नेत्र हैं, विद्युत्पुञ्जके समान जिनकी दीप्ति है, जिनके दो भुजाएँ हैं, अङ्ग सुकुमार हैं और जो पीताम्बर पहने हैं, जो सिंहासनपर रामके वामभागमें आसीन हैं, जो विभिन्न आभूषणोंसे अलंकृत हैं— कानोंमें कुण्डल धारण किये हुए हैं, जूड़ेमें चूड़ामणि, भुजाओंमें केयूर और कंगन, कमरमें करधनी तथा चरणोंमें नूपुर पहने हैं, जो सूर्य-चन्द्रमाके समान देदीप्यमान सीमन्तभागमें सिन्दूर और ललाटमें तिलक और नासिकाग्रमें मयूरके आकारका आभूषण धारण करनेसे अत्यन्त सुशोभित हो रही हैं, परम मङ्गलमयी हैं और हरिद्रा, काजल, दिव्य केसर, विविध प्रकारके फूल, तरह-तरहके सुगन्धित द्रव्य और उत्तम सुगन्धयुक्त तेल आदि धारण किये हुए हैं, जिनका मुस्कुराता हुआ मुखमण्डल है, गौर वर्ण है, जिनके एक हाथमें मन्दारका फूल और दूसरे हाथमें उत्तम मातुलुङ्ग विराजमान है, जो मन्द-मन्द हँस रही हैं, जिनके (पके हुए) कुँदरूके समान लाल-लाल ओठ और मृगके नेत्रोंके समान नेत्र हैं, जिनका चन्द्रमाके समान मुख है, कोयलके समान मीठी जिनकी वाणी है, जो मातुलुङ्गसे उत्पन्न होनेवाली, पद्माक्ष नृपतिकी पुत्री, दिव्यशक्तिसम्पन्न, मङ्गलमयी, मिथिलेशकी

पुत्री और रामकी प्रिया भामिनी हैं, जिन्हें दासियाँ पंखे झल रही हैं, सुवर्णकलशके समान जिनके पयोधर हैं, उन जनकनन्दिनी सीताका ध्यान करके इस दिव्य एवं मङ्गलकारक निम्नाङ्कित सीताकवचका पाठ करना चाहिये।'

स्तोत्रम्

श्रीसीता पूर्वतः पातु दक्षिणेऽवतु जानकी।
प्रतीच्यां पातु वैदेही पातूदीच्यां च मैथिली॥
अधः पातु मातुलुङ्गी ऊर्ध्वं पद्माक्षजावतु।
मध्येऽवनिसुता पातु सर्वतः पातु मां रमा॥
स्मितानना शिरः पातु पातु भालं नृपात्मजा।
पद्मावतु भ्रुवोर्मध्ये मृगाक्षी नयनेऽवतु॥
कपोले कर्णमूले च पातु श्रीरामवल्लभा।
नासाग्रं सात्त्विकी पातु पातु वक्त्रं तु राजसी॥
तामसी पातु मद्वाणीं पातु जिह्वां पतिव्रता।
दन्तान् पातु महामाया चिबुकं कनकप्रभा॥
पातु कण्ठं सौम्यरूपा स्कन्धौ पातु सुरार्चिता।
भुजौ पातु वरारोहा करौ कङ्कणमण्डिता॥
नखान् रक्तनखा पातु कुक्षौ पातु लघूदरा।
वक्षः पातु रामपत्नी पार्श्वे रावणमोहिनी॥
पृष्ठदेशे वह्निगुप्तावतु मां सर्वदैव हि।
दिव्यप्रदा पातु नाभिं कटिं राक्षसमोहिनी॥
गुह्यं पातु रत्नगुप्ता लिङ्गं पातु हरिप्रिया।
ऊरू रक्षतु रम्भोरूर्जानुनी प्रियभाषिणी॥
जङ्घे पातु सदा सुभ्रूर्गुल्फौ चामरवीजिता।
पादौ लवसुता पातु पात्वङ्गानि कुशाम्बिका॥
पादाङ्गुलीः सदा पातु मम नूपुरनिःस्वना।
रोमाण्यवतु मे नित्यं पीतकौशेयवासिनी॥
रात्रौ पातु कालरूपा दिने दानैकतत्परा।
सर्वकालेषु मां पातु मूलकासुरघातिनी॥

'पूर्वकी ओर श्रीसीता मेरी रक्षा करें, दक्षिणकी ओर जानकी रक्षा करें, पश्चिम दिशामें वैदेही रक्षा करें, उत्तरमें मैथिली रक्षा करें। नीचेकी ओर मातुलुङ्गी रक्षा करें, ऊपरकी ओर पद्माक्षजा रक्षा करें, मध्यदेशमें अवनिसुता रक्षा करें और रमा मेरी चारों ओरसे रक्षा करें। स्मितानना (स्मितरेखासे युक्त मुखवाली) सिरकी रक्षा करें, नृपात्मजा (राजकुमारी) ललाटकी रक्षा करें, भौंहोंके बीचमें पद्मा रक्षा करें और मेरे नेत्रोंकी मृगाक्षी (मृगनयनी) रक्षा करें। श्रीरामवल्लभा कपोलों और कर्णमूलोंकी रक्षा करें, सात्त्विकी नासिकाके अग्रभागकी रक्षा करें, राजसी मुखकी रक्षा करें, तामसी मेरी वाणीकी रक्षा करें, पतिव्रता जिह्वाकी रक्षा करें; महामाया दाँतोंकी और कनकप्रभा ठोड़ीकी रक्षा करें; सौम्यरूपा कण्ठकी रक्षा करें, सुरार्चिता (देवपूजिता) कंधोंकी रक्षा करें, वरारोहा बाहुओंकी और कङ्कणमण्डिता हाथोंकी रक्षा करें। रक्तनखा (लाल-लाल नखोंवाली) मेरे नाखूनोंकी रक्षा करें, लघूदरा कुक्षियोंकी रक्षा करें, रामपत्नी वक्षःस्थलकी और रावणमोहिनी दोनों पार्श्वोंकी रक्षा करें। वह्निगुप्ता (अग्निद्वारा रक्षित) सदा मेरे पृष्ठदेशकी रक्षा करें। दिव्यप्रदा (दिव्य पदार्थोंको देनेवाली) मेरी नाभिकी और राक्षसमोहिनी कमरकी रक्षा करें। रत्नगुप्ता (रत्नोंसे आच्छादित) गुह्यकी रक्षा करें और हरिप्रिया लिङ्गकी रक्षा करें। रम्भोरु मेरी दोनों जाँघोंकी और प्रियभाषिणी जानुओंकी रक्षा करें। सुभ्रू (सुन्दर भौंहोंवाली) जाँघोंकी और चामरवीजिता गुल्फों (टखनों) की रक्षा करें। लवसुता (लव-जननी) पैरोंकी रक्षा करें तथा कुशाम्बिका (कुशकी माता) शरीरके सब अङ्गोंकी रक्षा करें। मेरे पैरोंकी उँगलियोंकी नूपुरनिःस्वना (नूपुरोंकी झनकारवाली) सदा रक्षा करें और पीतकौशेयवासिनी (रेशमी पीताम्बर धारण करनेवाली) नित्य मेरे रोमोंकी रक्षा करें। रात्रिके समय कालरूपा और दिनको दानैकतत्परा रक्षा करें तथा सब समय मूलकासुरघातिनी मेरी रक्षा करें।'

एवं सुतीक्ष्ण सीतायाः कवचं ते मयेरितम्।
इदं प्रातः समुत्थाय स्नात्वा नित्यं पठेत्तु यः॥
जानकीं पूजयित्वा स सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
धनार्थी प्राप्नुयाद्द्रव्यं पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात्॥
स्त्रीकामार्थी शुभां नारीं सुखार्थी सौख्यमाप्नुयात्।
अष्टवारं जपनीयं सीतायाः कवचं सदा॥
अष्टभ्यो विप्रवर्येभ्यो नरः प्रीत्यार्पयेत्सदा।
फलपुष्पादिकादीनि यानि तानि पृथक् पृथक्॥
सीतायाः कवचं चेदं पुण्यं पातकनाशनम्।
ये पठन्ति नरा भक्त्या ते धन्या मानवा भुवि॥

'सुतीक्ष्ण! इस प्रकार मैंने तुम्हें सीता-कवच बतलाया। जो प्राणी सवेरे उठकर स्नानके बाद नित्य जानकीजीकी पूजा करके इसका पाठ करता है, वह अपनी सब इच्छाएँ पूर्ण कर लेता है। धन चाहनेवालेको धनकी प्राप्ति होती है

और पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाला पुत्र पाता है। स्त्रीकी कामनावालेको सुन्दरी स्त्री और सुख चाहनेवालेको सौख्य प्राप्त होता है। उपासकको चाहिये कि सदा आठ बार सीता-कवचका जप करे और आठ ब्राह्मणोंको फल-पुष्प आदि जो वस्तुएँ हों, उन्हें पृथक्-पृथक् प्रसन्नतापूर्वक दान कर दे। यह सीताकवच बड़ा पवित्र और पापोंका नाशक है; जो लोग भक्तिपूर्वक इसका पाठ करते हैं, वे प्राणी संसारमें धन्य हैं।

(आनन्दरामायण, मनोहरकाण्ड, अध्याय १४)

श्रीलक्ष्मणजी, भरतजी एवं शत्रुघ्नजीकी उपासना

श्रीलक्ष्मणजी, श्रीभरतजी एवं श्रीशत्रुघ्नजीकी आराधनासे भगवान् श्रीराम बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं; अतः उनकी उपासनाकी विशेष महिमा है।

इन्दु (अनुस्वार) युक्त शक्र (ल) तथा 'लक्ष्मणाय नमः'—यह (लं लक्ष्मणाय नमः) सात अक्षरोंका मन्त्र है। इसके अगस्त्य ऋषि, गायत्री छन्द, महावीर लक्ष्मण देवता, 'लं' बीज और 'नमः' शक्ति है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीज (लां, लीं, लूं, लैं, लौं, लः,) द्वारा षडङ्गन्यास करके ध्यान करना चाहिये।

ध्यान

द्विभुजं स्वर्णरुचिरतनुं पद्मनिभेक्षणम्।
धनुर्बाणकरं रामसेवासंसक्तमानसम्॥

(नारदपुराण, पूर्वभाग ७३। १४४)

'जिनके दो भुजाएँ हैं, जिनकी अङ्गकान्ति सुवर्णके समान सुन्दर है, जिनके नेत्र कमलदलके सदृश हैं, जो हाथोंमें धनुष-बाण धारण किये हैं तथा श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें जिनका मन सदा संलग्न रहता है (उन श्रीलक्ष्मणजीकी मैं आराधना करता हूँ)।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक सात लाख जप करे और मधु-मिश्रित खीरसे आहुति देकर श्रीरामपीठपर श्रीलक्ष्मणजीका पूजन करे। श्रीरामजीकी ही भाँति श्रीलक्ष्मण-जीका भी पूजन किया जाता है। यदि श्रीरामचन्द्रजीके पूजनका सम्पूर्ण फल प्राप्त करनेकी निश्चित इच्छा हो तो यत्नपूर्वक श्रीलक्ष्मणजीका आदरसहित पूजन करना चाहिये। श्रीरामचन्द्रजीके अनेकों भिन्न-भिन्न मन्त्र हैं, जो सिद्धि देने-वाले हैं। अतः उनके साधकोंको सदा श्रीलक्ष्मणजीकी शुभ आराधना करनी चाहिये। मुक्तिकी इच्छावाले मनुष्यको एकाग्रचित्तसे आलस्यरहित होकर लक्ष्मणजीके मन्त्रका एक हजार आठ या एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। जो नित्य एकान्तमें बैठकर लक्ष्मणजीके मन्त्रका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और उसे सम्पूर्ण अभिलषित पदार्थोंकी प्राप्ति हो जाती है। यह लक्ष्मण-मन्त्र जयप्रधान है तथा राज्यप्राप्तिका एकमात्र साधन है। जो नित्यकर्म करके शुद्ध-भावसे तीनों समय लक्ष्मणजीके मन्त्रका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके परमपदको प्राप्त हो जाता है। जो विधिपूर्वक मन्त्रकी दीक्षा लेकर सद्गुणोंसे युक्त और पापरहित होकर अपने आचारका नियमपूर्वक पालन करता, मनको वशमें रखता और घरमें रहते हुए भी जितेन्द्रिय होता है तथा इहलोकके भोगोंकी इच्छा न रखकर निष्कामभावसे भगवान् लक्ष्मणका पूजन करता है, वह समस्त पुण्य-पापके समुदायको दग्ध करके, शुद्धचित्त हो, पुनरागमनके चक्करमें न पड़कर सनातनपदको प्राप्त कर लेता है। सकाम भाववाला पुरुष मनोवाञ्छित वस्तुओंको पाकर और मनके अनुरूप भोगोंका उपभोग करके दीर्घकालतक पूर्वजन्मोंकी स्मृतिसे युक्त रहकर भगवान् विष्णुके परमधाममें जाता है।

निद्रा (भ) चन्द्र (अनुस्वार) से युक्त हो और उसके बाद 'भरताय नमः'—ये दो पद हों तो सात अक्षरका मन्त्र होता है। इस 'भं भरताय नमः' मन्त्रके ऋषि और पूजन आदि पूर्ववत् हैं।

वक (श) इन्दु (अनुस्वार) से युक्त हो तथा उसके बाद 'ङे' (चतुर्थी) विभक्त्यन्त 'शत्रुघ्न' शब्द हो और अन्तमें हृदय (नमः) हो तो 'शं शत्रुघ्नाय नमः'—यह सात अक्षरोंका शत्रुघ्न-मन्त्र होता है, जो सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है।

(श्रीनारदपुराण, पूर्वखण्ड, अध्याय ७३)

श्रीभरतकवचम्

वन्दना

कैकेयीतनयं सदा रघुवरन्यस्तेक्षणं श्यामलं
सप्तद्वीपपतेर्विदेहतनयाकान्तस्य वाक्ये रतम्।
श्रीसीताधवसव्यपार्श्वनिकटे स्थित्वा वरं चामरं
धृत्वा दक्षिणसत्करेण भरतं तं वीजयन्तं भजे ॥

'मैं उन कैकेयीनन्दन भरतजीकी शरण लेता हूँ, जो सदा श्रीरामचन्द्रजीकी ओर निर्निमेष दृष्टिसे निहारते रहते हैं, जिनकी साँवली-सलोनी अङ्गकान्ति है, जो सातों द्वीपोंके अधिपति जानकीवल्लभ श्रीरामकी आज्ञामें तत्पर रहते हैं तथा श्रीसीतापतिके वाम भागके निकट खड़े रहकर अपने दाहिने हाथमें सुन्दर चँवर धारण करके उसे झलते रहते हैं।'

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीभरतकवचमन्त्रस्य अगस्त्य ऋषिः, श्रीभरतो देवता, अनुष्टुप् छन्दः, शङ्ख इति बीजम्, कैकेयीनन्दन इति शक्तिः, भरतखण्डेश्वर इति कीलकम्, रामानुज इत्यस्त्रम्, सप्तद्वीपेश्वरदास इति कवचम्, रामांशज इति मन्त्रः। श्रीभरतप्रीत्यर्थं सकलमनोरथसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः।

न्यासः

अथ करन्यासः—ॐ भरताय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ कैकेयीनन्दनाय मध्यमाभ्यां नमः, ॐ भरतखण्डेश्वराय अनामिकाभ्यां नमः, ॐ रामानुजाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ सप्तद्वीपेश्वरदासाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

अथाङ्गन्यासः—ॐ भरताय हृदयाय नमः, ॐ शङ्खाय शिरसे स्वाहा, ॐ कैकेयीनन्दनाय शिखायै वषट्, ॐ भरतखण्डेश्वराय कवचाय हुम्, ॐ रामानुजाय नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ सप्तद्वीपेश्वरदासाय अस्त्राय फट्, ॐ रामांशजाय चेति दिग्बन्धः।

ध्यानम्

रामचन्द्रसव्यपार्श्वस्थितं कैकयजासुतम्।
श्रीरामं चामरेणैव वीजयन्तं मनोरमम्॥
रत्नकुण्डलकेयूरकङ्कणादिसुभूषितम्।
पीताम्बरपरीधानं वनमालाविराजितम्॥
माण्डवीधौतचरणं रशनानूपुरान्वितम्।
नीलोत्पलदलश्यामं द्विजराजसमाननम्॥
आजानुबाहुं भरतखण्डस्य प्रतिपालकम्।
रामानुजं स्मितास्यं च शत्रुघ्नपरिवन्दितम्॥
रामन्यस्तेक्षणं सौम्यं विद्युत्पुञ्जसमप्रभम्।
रामभक्तं महावीरं वन्दे तं भरतं शुभम्॥
एवं ध्यात्वा तु भरतं रामपादेक्षणं हृदि।
कवचं पठनीयं हि भरतस्येदमुत्तमम्॥

'जो कैकेयीके पुत्र हैं, रामचन्द्रके दक्षिणभागमें स्थित हैं और श्रीरामपर चँवर डुला रहे हैं, जिनका सुन्दर स्वरूप है, जो रत्ननिर्मित कुण्डल, बाजूबंद और कङ्कण आदिसे विभूषित हैं, पीताम्बर पहने हुए हैं, जिनके गलेमें वनमालाकी विचित्र शोभा हो रही है, माण्डवी जिनका पाद-प्रक्षालन करती हैं, जो करधनी और नूपुर धारण किये हुए हैं, जिनकी अङ्ग-कान्ति नीलकमल-दलके समान श्याम है, जिनके मुखकी छटा चन्द्रमाको मात कर रही है, जिनकी भुजाएँ घुटनोंतक लंबी हैं, जो भरतखण्डके प्रतिपालक हैं, श्रीरामके लघुभ्राता हैं, जिनके मुखपर मन्द मुस्कान खेलती रहती है, शत्रुघ्न जिनकी सदा वन्दना करते हैं, जिनके नेत्र श्रीरामकी ओर टकटकी लगाये रहते हैं, जो सौम्य स्वभाववाले हैं, जिनकी प्रभा विद्युत्पुञ्जके सदृश है, जो श्रीरामके भक्त और महान् पराक्रमी हैं, उन मङ्गलदायक भरतका मैं ध्यान करता हूँ। इस प्रकार राम-चरणोंको निहारनेवाले भरतका हृदयमें ध्यान करके इस उत्तम भरत-कवचका पाठ करना चाहिये।'

स्तोत्रम्

ॐ पूर्वतो भरतः पातु दक्षिणे कैकयीसुतः।
नृपात्मजः प्रतीच्यां हि पातूदीच्यां रघूत्तमः॥
अधः पातु श्यामलाङ्गश्चोर्ध्वं दशरथात्मजः।
मध्ये भारतवर्षेशः सर्वतः सूर्यवंशजः॥
शिरस्तक्षपिता पातु भालं पातु हरिप्रियः।
भ्रुवोर्मध्यं जनकजावाक्यैकतत्परोऽवतु॥
पातु जनकजामाता मम नेत्रे सदात्र हि।
कपोलौ माण्डवीकान्तः कर्णमूले स्मिताननः॥
नासाग्रं मे सदा पातु कैकेयीतोषवर्धनः।
उदाराङ्गो मुखं पातु पातु वाणीं जटाधरः॥
पातु पुष्करतातो मे जिह्वां दन्तान् प्रभामयः।
चिबुकं वल्कलधरः कण्ठं पातु वराननः॥
स्कन्धौ पातु जितारातिर्भुजौ शत्रुघ्नवन्दितः।
करौ कवचधारी च नखान् खड्गधरोऽवतु॥
कुक्षी रामानुजः पातु वक्षः श्रीरामवल्लभः।
पार्श्वे राघवपार्श्वस्थः पातु पृष्ठं सुभाषणः॥

जठरं च धनुर्धारी नाभिं शरकरोऽवतु ।
कटिं पद्मेक्षणः पातु गुह्यं रामैकमानसः ॥
राममित्रः पातु लिङ्गमूरू श्रीरामसेवकः ।
नन्दिग्रामस्थितः पातु जानुनी मम सर्वदा ॥
श्रीरामपादुकाधारी पातु जङ्घे सदा मम ।
गुल्फौ श्रीरामबन्धुश्च पादौ पातु सुरार्चितः ॥
रामाज्ञापालकः पातु ममाङ्गान्यत्र सर्वदा ।
मम पादाङ्गुलीः पातु रघुवंशविभूषणः ॥
रोमाणि पातु मे रम्यः पातु रात्रौ सुधीर्मम ।
तूणीरधारी दिवसे दिक्षु मां पातु सर्वदा ॥
सर्वकालेषु मां पातु पाञ्चजन्यः सदा भुवि ।

'पूर्व दिशामें भरत और दक्षिणमें कैकेयीसुत मेरी रक्षा करें । पश्चिममें (दशरथकुमार) और उत्तरमें रघूत्तम मेरी रक्षा करें । श्यामलाङ्ग (साँवले शरीरवाले) नीचेकी ओर और दशरथात्मज ऊपरकी दिशामें रक्षा करें । भारतवर्षेश मध्यदेश और सूर्यवंशज (सूर्यवंशमें उत्पन्न होनेवाले) सब ओरसे मेरी रक्षा करें । तक्षपिता सिरकी रक्षा करें । हरिप्रिय ललाटकी रक्षा करें । जनकजावाक्यैकतत्पर (जानकीजीके आज्ञापालनमें एकान्तरूपसे तत्पर रहनेवाले) भौंहोंके मध्यभाग-की रक्षा करें । जनकजामाता (जनकजीके जामाता अथवा जानकीजीको माता माननेवाले) मेरे नेत्रोंकी, माण्डवीकान्त कपोलोंकी और स्मितानन (मुस्कानयुक्त मुखवाले) कर्णमूलों-की सदा रक्षा करें । कैकेयीतोषवर्धन (कैकेयीके आनन्दको बढ़ानेवाले) मेरी नासिकाके अग्रभागकी सदा रक्षा करें । उदाराङ्ग (सुडौल अङ्गोंवाले) मुखकी रक्षा करें । जटाधर वाणीकी रक्षा करें । पुष्करपिता मेरी जीभकी और प्रभामय दाँतोंकी रक्षा करें । वल्कलधर (चीरवस्त्रधारी) ठोड़ीकी और वरानन (सुन्दर मुखवाले) कण्ठकी रक्षा करें । जिताराति (शत्रुओंको जीतनेवाले) कंधोंकी और शत्रुघ्नवन्दित भुजाओंकी रक्षा करें । कवचधारी हाथोंकी और खड्गधर नखोंकी रक्षा करें । रामानुज (रामके छोटे भाई) कुक्षिकी और श्रीरामवल्लभ वक्षःस्थलकी रक्षा करें । राघवपार्श्वस्थ (श्रीरामके पार्श्वभागमें स्थित होनेवाले) पार्श्वभागकी और सुभाषण (मिष्ट भाषण करनेवाले) पीठकी रक्षा करें । धनुर्धारी उदरकी और शरकर (हाथमें बाण धारण करनेवाले) नाभिकी रक्षा करें । पद्मेक्षण (कमल-सदृश नेत्रोंवाले) कमरकी और रामैकमानस (श्रीराममें निश्चलरूपसे मनको लगानेवाले) गुह्य (गुदा) की रक्षा करें । राममित्र (श्रीरामको मित्ररूपमें माननेवाले) लिङ्गकी और श्रीराम-सेवक दोनों जाँघोंकी रक्षा करें । नन्दि-ग्रामस्थित (नन्दिग्राममें निवास करनेवाले) सर्वदा मेरे घुटनोंकी रक्षा करें । श्रीरामपादुकाधारी सदा मेरी पिंडलियोंकी रक्षा करें । श्रीरामबन्धु गुल्फों (टखनों) की और सुरार्चित (देवताओंद्वारा पूजित) पैरोंकी रक्षा करें । रामाज्ञापालक (रामकी आज्ञाका पालन करनेवाले) मेरे सारे अङ्गोंकी रक्षा करें । रघुवंशविभूषण मेरे पैरोंकी अँगुलियोंकी रक्षा करें । रम्य (मनोहर रूपवाले) मेरे रोम (रोओं)की रक्षा करें । सुधी (उत्तम बुद्धिवाले) रातमें मेरी रक्षा करें । तूणीरधारी (तरकस धारण करनेवाले) दिनमें सभी दिशाओंमें मेरी रक्षा करें । पाञ्चजन्य (पाञ्चजन्य शङ्खके अवतार-स्वरूप) संसारमें सभी समय सदा मेरी रक्षा करें ।'

एवं श्रीभरतस्येदं सुतीक्ष्ण कवचं शुभम् ॥
मया प्रोक्तं तवाग्रे हि महामङ्गलकारकम् ।
स्तोत्राणामुत्तमं स्तोत्रमिदं ज्ञेयं सुपुण्यदम् ॥
पठनीयं सदा भक्त्या रामचन्द्रस्य हर्षदम् ।
पठित्वा भरतस्येदं कवचं रघुनन्दनः ॥
यथा याति परं तोषं तथा स्वकवचेन न ।
तस्मादेतत् सदा जप्यं कवचानामनुत्तमम् ॥
अस्यात्र पठनान्मर्त्यः सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
विद्याकामो लभेद्विद्यां पुत्रकामो लभेत्सुतम् ॥
पत्नीकामो लभेत्पत्नीं धनार्थी धनमाप्नुयात् ।
यद्यन्मनोऽभिलषितं तत्तत्कवचपाठतः ॥
लभ्यते मानवैरत्र सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।
तस्मात्सदा जपनीयं रामोपासकमानवैः ॥

'सुतीक्ष्ण ! इस प्रकार इस शुभप्रद श्रीभरत-कवचका मैंने तुम्हारे समक्ष वर्णन कर दिया । यह महान् मङ्गलकारक है । इसे स्तोत्रोंमें सर्वश्रेष्ठ स्तोत्र समझना चाहिये । यह उत्तम पुण्यदायक और रामचन्द्रको हर्ष प्रदान करनेवाला है । इसका भक्तिपूर्वक सदा पाठ करना चाहिये । इस भरत-कवचके पाठसे रघुनन्दनको जैसी परम प्रसन्नता प्राप्त होती है, वैसी अपने कवचके पाठसे भी नहीं होती । इसलिये सदा इसका पाठ करना चाहिये । यह कवचोंमें सर्वश्रेष्ठ है । इसका पाठ करनेसे मनुष्य संसारमें सभी अभिलषित वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है । विद्याभिलाषीको विद्या प्राप्त होती है । पुत्रार्थीको पुत्र मिल जाता है । पत्नीकी इच्छा रखनेवालेको पत्नीकी प्राप्ति हो जाती है ।

धनार्थीको धन मिल जाता है—यहाँतक कि जिन-जिन पदार्थोंकी अभिलाषा मनमें होती है, वे सभी पदार्थ इस कवचके पाठसे मनुष्योंको संसारमें उपलब्ध हो जाते हैं, यह मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ। इसलिये रामोपासक भक्तोंको सदा इसका पाठ करना चाहिये।'

(आनन्दरामायण, मनोहरकाण्ड, अ० १९)

श्रीलक्ष्मणकवचम्

वन्दना

सौमित्रिं रघुनायकस्य चरणद्वन्द्वेक्षणं श्यामलं
बिभ्राणं स्वकरेण रामशिरसिच्छत्रं विचित्रं वरम्।
बिभ्राणं रघुनायकस्य सुमहत्कोदण्डबाणासने
तं वन्दे कमलेक्षणं जनकजावाक्ये सदा तत्परम्॥

'जो श्रीरघुनाथजीके दोनों चरण-कमलोंको निर्निमेष नेत्रोंसे देखते हुए कभी तृप्त नहीं होते, जो अपने हाथसे श्रीरामचन्द्रजीके सिरपर सुन्दर श्रेष्ठ छत्र धारण किये रहते हैं तथा अपने कंधेपर जो श्रीरामचन्द्रजीका अत्यन्त विशाल धनुष और तरकस लिये रहते हैं, जो सर्वदा जानकीजीकी आज्ञाका पालन करनेमें तत्पर रहते हैं और जिनके कमलके समान नेत्र हैं, उन परम सुन्दर सुमित्रानन्दन श्रीलक्ष्मणजीकी मैं वन्दना करता हूँ।'

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीलक्ष्मणकवचमन्त्रस्य अगस्त्य ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। श्रीलक्ष्मणो देवता। शेष इति बीजम्। सुमित्रानन्दन इति शक्तिः। रामानुज इति कीलकम्। रामदास इत्यस्त्रम्। रघुवंशज इति कवचम्। सौमित्रिरिति मन्त्रः। श्रीलक्ष्मणप्रीत्यर्थं सकलमनोऽभिलषितसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः।

न्यासः

अथ करन्यासः। ॐ लक्ष्मणाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ शेषाय तर्जनीभ्यां नमः। ॐ सुमित्रानन्दनाय मध्यमाभ्यां नमः। ॐ रामानुजाय अनामिकाभ्यां नमः। ॐ रामदासाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ रघुवंशजाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। एवं हृदयाद्यङ्गन्यासः। ॐ लक्ष्मणाय हृदयाय नमः। ॐ शेषाय शिरसे स्वाहा। ॐ सौमित्रये शिखायै वषट्। ॐ रामानुजाय कवचाय हुम्। ॐ रामदासाय नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ रघुवंशजाय अस्त्राय फट्। ॐ सौमित्रये इति दिग्बन्धः।

ध्यानम्

रामपृष्ठस्थितं रम्यं रत्नकुण्डलधारिणम्।
नीलोत्पलदलश्यामं रत्नकङ्कणमण्डितम्॥
रामस्य मस्तके दिव्यं बिभ्राणं छत्रमुत्तमम्।
वरपीताम्बरधरं मुकुटेनातिशोभितम्॥
तूणीरे कार्मुके चापि बिभ्राणं च स्मिताननम्।
रत्नमालाधरं दिव्यं पुष्पमालाविराजितम्॥

'जो श्रीरामचन्द्रजीके पीछे बैठे रहते हैं, जिनका मनोहर स्वरूप है, रत्नजटित कुण्डल जिनके कानोंमें झलमला रहे हैं, नील कमलदलके समान जिनकी आभा है, जिनके हाथोंमें रत्नजटित कङ्कण सुशोभित हो रहे हैं, जो श्रीरामके मस्तकपर परमोत्तम दिव्य छत्र लगाये हुए हैं, सुन्दर पीताम्बर धारण किये हैं, मुकुट धारण करनेसे जिनकी अतिशय शोभा हो रही है, जो दो तूणीर तथा दो धनुष धारण किये हुए हैं, जिनके मुखपर मन्द हास्यकी छटा निखर रही है, जिनके गलेमें रत्नोंकी माला लटक रही है, जिनका दिव्य वेष है और जो फूलोंकी मालाओंसे और भी सुन्दर दीख रहे हैं, मैं उन लक्ष्मणजीका ध्यान करता हूँ।'

स्तोत्रम्

लक्ष्मणः पातु मां पूर्वे दक्षिणे राघवानुजः।
प्रतीच्यां पातु सौमित्रिः पातूदीच्यां रघूत्तमः॥
अधः पातु महावीरश्चोर्ध्वं पातु नृपात्मजः।
मध्ये पातु रामदासः सर्वतः सत्यपालकः॥
स्मिताननः शिरः पातु भालं पातूर्मिलाधवः।
भ्रुवोर्मध्यं धनुर्धारी सुमित्रानन्दनोऽक्षिणी॥
कपोलौ राममन्त्री च सर्वदा पातु वै मम।
कर्णमूले सदा पातु कबन्धभुजखण्डनः॥
नासाग्रं मे सदा पातु सुमित्रानन्दवर्धनः।
रामन्यस्तेक्षणः पातु सदा मेऽत्र मुखं भुवि॥
सीतावाक्यकरः पातु मम वाणीं सदात्र हि।
सौम्यरूपः पातु जिह्वामनन्तः पातु मे द्विजान्॥

चिबुकं पातु रक्षोघ्नः कण्ठं पात्वसुरार्दनः ।
स्कन्धौ पातु जितारातिर्भुजौ पङ्कजलोचनः ॥
करौ कङ्कणधारी च नखान् रक्तनखोऽवतु ।
कुक्षी पातु विनिद्रो मे वक्षः पातु जितेन्द्रियः ॥
पार्श्वे राघवपृष्ठस्थः पृष्ठदेशं मनोरमः ।
नाभिं गम्भीरनाभिस्तु कटिं च रुक्ममेखलः ॥
गुह्यं पातु सहस्राख्यः पातु लिङ्गं हरिप्रियः ।
ऊरू पातु विष्णुतल्पः सुमुखोऽवतु जानुनी ॥
नागेन्द्रः पातु मे जङ्घे गुल्फौ नूपुरवान्मम ।
पादावङ्गदतातोऽव्यात् पात्वङ्गानि सुलोचनः ॥
चित्रकेतुपिता पातु मम पादाङ्गुलीः सदा ।
रोमाणि मे सदा पातु रविवंशसमुद्भवः ॥
दशरथसुतः पातु निशायां मां हि सादरम् ।
भूगोलधारी मां पातु दिवसे दिवसे सदा ॥
सर्वकालेषु मामिन्द्रजिद्धन्तावतु सर्वदा ।

'पूर्व दिशामें लक्ष्मण और दक्षिणमें राघवानुज मेरी रक्षा करें। पश्चिममें सौमित्रि (सुमित्रानन्दन) रक्षा करें। रघूत्तम उत्तर दिशामें रक्षा करें। नीचेकी ओर महावीर रक्षा करें। नृपात्मज ऊपरकी ओर रक्षा करें। मध्यभागमें रामदास और सत्यपालक सब ओरसे रक्षा करें। स्मितानन (मुसुकानयुक्त मुखवाले) सिरकी रक्षा करें। उर्मिलाधव (उर्मिलाके पति) ललाटकी रक्षा करें। धनुर्धारी भौंहोंके मध्यभागकी, मेरे नेत्रोंकी सुमित्रानन्दन और कपोलोंकी राममन्त्री सर्वदा रक्षा करें। कबन्धभुजखण्डन (कबन्धकी भुजाओंको काटनेवाले) सदा कर्णमूलोंकी रक्षा करें। सुमित्रानन्दवर्धन (सुमित्राके आनन्दको बढ़ानेवाले) सदा मेरी नासिकाके अग्रभागकी रक्षा करें। रामन्यस्तेक्षण (श्रीरामकी ओर निर्निमेष दृष्टिसे देखनेवाले) इस भूतलपर सदा मेरे मुखकी रक्षा करें। सीतावाक्यकर (श्रीसीताजीके आज्ञा-पालनमें तत्पर रहनेवाले) संसारमें सदा मेरी वाणीकी रक्षा करें। सौम्यरूप (सुन्दर रूपवाले) जीभकी रक्षा करें। अनन्त मेरे दाँतोंकी रक्षा करें। रक्षोघ्न (राक्षसोंका संहार करनेवाले) ठोड़ीकी रक्षा करें। असुरार्दन (असुरोंको पीड़ित करनेवाले) कण्ठकी रक्षा करें। जिताराति (शत्रुओंको जीतनेवाले) कंधोंकी और पङ्कजलोचन भुजाओंकी रक्षा करें। कङ्कणधारी हाथोंकी और रक्तनख (लाल नाखूनोंवाले) नाखूनोंकी रक्षा करें। विनिद्र (निद्रारहित) मेरी कुक्षिकी रक्षा करें। जितेन्द्रिय वक्षःस्थलकी रक्षा करें। राघवपृष्ठस्थ (श्रीरामजीके पीछे खड़े रहनेवाले) दोनों पार्श्वोंकी, मनोरम (मनमें रमण करनेवाले) पीठकी, गम्भीरनाभि (गहरी नाभिवाले) नाभिकी, रुक्ममेखल (सोनेकी करधनी पहननेवाले) कमरकी और सहस्राख्य (हजार फणोंवाले शेषके अवतार) गुह्य (गुदा)की रक्षा करें। हरिप्रिय लिङ्गकी रक्षा करें। विष्णुतल्प (विष्णुशय्यारूप भगवान् शेष ऊरुओंकी रक्षा करें। सुमुख जानुओंकी रक्षा करें। नागेन्द्र (सर्पराज शेष) मेरी पिंडलियोंकी और नूपुरवान् (नूपुर धारण करनेवाले) मेरे टखनोंकी रक्षा करें। अङ्गदतात (अङ्गदके पिता) पैरोंकी रक्षा करें। सुलोचन सारे अङ्गोंकी रक्षा करें। चित्रकेतु-पिता सदा मेरे पैरोंकी अँगुलियोंकी रक्षा करें। रविवंश-समुद्भव (सूर्यवंशमें उत्पन्न होनेवाले) सदा मेरे रोमोंकी रक्षा करें। दशरथसुत रात्रिमें सावधानीपूर्वक मेरी रक्षा करें। भूगोलधारी (शेषरूपसे भूमण्डलको धारण करनेवाले) दिन-प्रतिदिन सदा मेरी रक्षा करते रहें। इन्द्रजिद्धन्ता (मेघनादको मारनेवाले) सभी समयोंमें सर्वदा मेरी रक्षा करें।'

एवं सौमित्रिकवचं सुतीक्ष्ण कथितं मया ॥
इदं प्रातः समुत्थाय ये पठन्त्यत्र मानवाः ।
ते धन्या मानवा लोके तेषां च सफलो भवः ॥
सौमित्रेः कवचस्यास्य पठनान्निश्चयेन हि ।
पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥
पत्नीकामो लभेत्पत्नीं गोधनार्थी तु गोधनम् ।
धान्यार्थी प्राप्नुयाद्धान्यं राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात् ॥

'सुतीक्ष्ण! इस प्रकार मैंने तुम्हें सौमित्रिकवच बतला दिया। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस कवचका पाठ करते हैं, वे लोग इस संसारमें धन्य हैं और उनका जन्म लेना सफल है। इस सौमित्रिकवचके पाठसे निश्चय ही पुत्रार्थीको पुत्र मिल जाता है, धनार्थीको धन प्राप्त हो जाता है, पत्नी चाहनेवालेको पत्नीकी और गोधनकी अभिलाषा रखनेवालेको गोधनकी प्राप्ति हो जाती है। धान्यार्थी धान्य-लाभ करता है और राज्यार्थीको राज्य मिल जाता है।'

श्रीशत्रुघ्नकवचम्

वन्दना

शत्रुघ्नं धृतकार्मुकं धृतमहातूणीरबाणोत्तमं
पार्श्वे श्रीरघुनन्दनस्य विनयाद् वामे स्थितं सुन्दरम्।
रामं स्वीयकरेण तालदलजं धृत्वा विचित्रं वरं
सूर्याभं व्यजनं सभास्थितमहं तं वीजयन्तं भजे॥

'जो धनुष, अक्षय तरकस और उत्तम बाण धारण किये हुए हैं तथा श्रीरघुनाथजीके वाम भागमें विनयपूर्वक स्थित हैं, जिनका सुन्दर शरीर है, जो ताड़-पत्रसे बने हुए सूर्यकी-सी आभावाले रंग-बिरंगे उत्तम पंखेको अपने हाथमें लेकर सभामें स्थित श्रीरामजीके ऊपर हवा कर रहे हैं, उन शत्रुघ्नकी मैं वन्दना करता हूँ।'

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीशत्रुघ्नकवचमन्त्रस्य अगस्त्य ऋषिः। श्रीशत्रुघ्नो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। सुदर्शन इति बीजम्। कैकेयीनन्दन इति शक्तिः। श्रीभरतानुज इति कीलकम्। भरतमन्त्रीत्यस्त्रम्। श्रीरामदास इति कवचम्। लक्ष्मणांशज इति मन्त्रः। शत्रुघ्नप्रीत्यर्थं सकलमनःकामनासिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः।

करन्यासः

ॐ शत्रुघ्नाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ सुदर्शनाय तर्जनीभ्यां नमः। ॐ कैकेयीनन्दनाय मध्यमाभ्यां नमः। ॐ भरतानुजाय अनामिकाभ्यां नमः। ॐ भरतमन्त्रिणे कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ श्रीरामदासाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। एवं हृदयादिन्यासः। ॐ लक्ष्मणांशज इति दिग्बन्धः।

ध्यानम्

रामस्य संस्थितं वामे पार्श्वे विनयपूर्वकम्।
कैकेयीनन्दनं सौम्यं मुकुटेनातिरञ्जितम्॥
रत्नकङ्कणकेयूरवनमालाविराजितम्।
रशनाकुण्डलधरं रत्नहारसुनूपुरम्॥
व्यजनेन वीजयन्तं जानकीकान्तमादरात्।
रामन्यस्तेक्षणं वीरं कैकेयीतोषवर्द्धनम्॥
द्विभुजं कंजनयनं दिव्यपीताम्बरान्वितम्।
सुभुजं सुन्दरं मेघश्यामलं सुन्दराननम्॥
रामवाक्ये दत्तकर्णं रक्षोघ्नं खड्गधारिणम्।
धनुर्बाणधरं श्रेष्ठं धृततूणीरमुत्तमम्॥
सभायां संस्थितं रम्यं कस्तूरीतिलकाङ्कितम्।
मुकुटेनावतंसेन शोभितं च स्मिताननम्॥
रविवंशोद्भवं दिव्यरूपं दशरथात्मजम्।
मधुरावासिनं देवं लवणासुरमर्दनम्॥
एवं ध्यात्वा तु शत्रुघ्नं रामपादेक्षणं हृदि।
पठनीयं वरं चेदं कवचं तस्य पावनम्॥

'जो श्रीरामके वाम भागमें विनयपूर्वक स्थित हैं, कैकेयीको आनन्द देनेवाले हैं, जिनका सौम्य स्वरूप है, मुकुट धारण करनेसे जिनकी विचित्र शोभा हो रही है, जो रत्नोंके बने हुए कङ्कण, बाजूबंद और वनमालासे विभूषित हैं, करधनी, कुण्डल, रत्नहार और सुन्दर नूपुर धारण किये हुए हैं तथा आदरपूर्वक जानकीवल्लभ श्रीरामके ऊपर पंखेसे हवा कर रहे हैं, जिनके नेत्र श्रीरामकी ओर लगे हुए हैं, जो महान् पराक्रमी तथा (भरतके अनुगामी होनेके कारण) कैकेयीके सुखकी वृद्धि करनेवाले हैं, जिनके दो भुजाएँ और कमलके समान नेत्र हैं, जो दिव्य पीताम्बर धारण किये हुए हैं, जिनकी भुजाएँ सुडौल हैं और मेघके सदृश साँवली-सलोनी सूरत है, जिनका मुख मनोहर है, जो श्रीरामके वचन-श्रवणमें कान लगाये रहते हैं, राक्षसोंके संहारक और खड्ग धारण करनेवाले हैं, जिनका स्वभाव श्रेष्ठ है, जो नरोत्तम धनुष-बाण और तरकस लिये रहते हैं, जो मनोहर रूपवाले एवं सभामें स्थित हैं, कस्तूरीका तिलक जिनकी शोभा-वृद्धि कर रहा है, जो मुकुट एवं कर्णभूषणोंसे सुशोभित हैं, जिनके मुखपर मुस्कराहट छायी रहती है, जो सूर्यवंशमें उत्पन्न, दिव्यरूपधारी, दशरथके पुत्र, मधुरामें वास करनेवाले, देवस्वरूप और लवणासुरका मर्दन करनेवाले हैं, (उन शत्रुघ्नजीका मैं ध्यान करता हूँ।)'

'इस प्रकार श्रीरामके चरणोंको निर्निमेष दृष्टिसे निहारनेवाले शत्रुघ्नका अपने हृदयमें ध्यान करके उनके इस पावन एवं श्रेष्ठ कवचका पाठ करना चाहिये।'

स्तोत्रम्

पूर्वं त्ववतु शत्रुघ्नः पातु याम्ये सुदर्शनः।
कैकेयीनन्दनः पातु प्रतीच्यां सर्वदा मम॥
पातूदीच्यां रामबन्धुः पात्वधो भरतानुजः।
रविवंशोद्भवश्चोर्ध्वं मध्ये दशरथात्मजः॥

सर्वतः पातु मामत्र कैकेयीतोषवर्द्धनः ।
श्यामलाङ्गः शिरः पातु भालं श्रीलक्ष्मणांशजः ॥
भ्रुवोर्मध्ये सदा पातु सुमुखोऽत्रावनीतले ।
श्रुतकीर्तिपतिर्नेत्रे कपोलौ पातु राघवः ॥
कर्णौ कुण्डलकर्णोऽव्यान्नासाग्रं नृपवंशजः ।
मुखं मम युवा पातु वाणीं पातु स्फुटाक्षरः ॥
जिह्वां सुबाहुतातोऽव्याद् यूपकेतुपिता द्विजान् ।
चिबुकं रम्यचिबुकः कण्ठं पातु सुभाषणः ॥
स्कन्धौ पातु महातेजा भुजौ राघववाक्यकृत् ।
करौ मे कङ्कणधरः पातु खड्गी नखान्मम ॥
कुक्षी रामप्रियः पातु पातु वक्षो रघूत्तमः ।
पार्श्वे सुरार्चितः पातु पातु पृष्ठं वराननः ॥
जठरं पातु रक्षोघ्नः पातु नाभिं सुलोचनः ।
कटिं भरतमन्त्री मे गुह्यं श्रीरामसेवकः ॥
रामार्पितमनाः पातु लिङ्गमूरू स्मिताननः ।
कोदण्डपाणिः पात्वत्र जानुनी मम सर्वदा ॥
राममित्रः पातु जङ्घे गुल्फौ पातु सुनूपुरः ।
पादौ नृपतिपूज्योऽव्याच्छ्रीमान्पादाङ्गुलीर्मम ॥
पात्वङ्गानि समस्तानि ह्युदाराङ्गः सदा मम ।
रोमाणि रमणीयोऽव्याद्रात्रौ पातु सुधार्मिकः ॥
दिवसे सत्यसंधोऽव्याद्भोजने शरसत्करः ।
गमने कलकण्ठोऽव्यात् सर्वदा लवणान्तकः ॥

'पूर्व दिशामें शत्रुघ्न मेरी रक्षा करें। दक्षिणमें सुदर्शन रक्षा करें। पश्चिममें कैकेयीनन्दन सर्वदा मेरी रक्षा करते रहें। उत्तरमें रामबन्धु रक्षा करें। नीचेकी ओर भरतानुज रक्षा करें। ऊर्ध्वदिशामें रविवंशोद्भव (सूर्यकुलमें उत्पन्न), मध्यमें दशरथात्मज (दशरथ-नन्दन) और कैकेयी-तोषवर्धन (कैकेयीके आनन्दको बढ़ानेवाले) संसारमें सब ओरसे मेरी रक्षा करें। श्यामलाङ्ग सिरकी और श्रीलक्ष्मणांशज (श्रीलक्ष्मणके अंशसे उत्पन्न) ललाटकी रक्षा करें। सुमुख इस भूतलपर सदा मेरी भौंहोंके मध्यभागकी रक्षा करें। श्रुतकीर्तिके पति नेत्रोंकी और राघव कपोलोंकी रक्षा करें। कुण्डलकर्ण (कानोंमें कुण्डल धारण करनेवाले) कानोंकी और नृपवंशज (राजकुलमें जन्म लेनेवाले) नासिकाके अग्रभागकी रक्षा करें। युवा (नवयुवक) मेरे मुखकी रक्षा करें। स्फुटाक्षर (स्पष्ट बोलनेवाले) वाणीकी रक्षा करें। सुबाहुके पिता जीभकी और यूपकेतु-जनक दाँतोंकी रक्षा करें। रम्यचिबुक (सुन्दर ठोड़ीवाले) ठोड़ीकी और सुभाषण (सुन्दर वक्ता) कण्ठकी रक्षा करें। महातेजा (उत्कृष्ट तेजस्वी) कंधोंकी और राघववाक्यकृत् (श्रीरामके आज्ञापालक) भुजाओंकी रक्षा करें। कङ्कणधर (कङ्कण पहननेवाले) मेरे हाथोंकी और खड्गधारी मेरे नाखूनोंकी रक्षा करें। रामप्रिय कुक्षियोंकी रक्षा करें। रघूत्तम वक्षःस्थलकी रक्षा करें। सुरार्चित (देवताओंद्वारा पूजित) दोनों पार्श्वभागोंकी रक्षा करें। वरानन (मनोहर मुखवाले) पीठकी रक्षा करें। रक्षोघ्न (राक्षसोंके संहारक) पेटकी रक्षा करें। सुलोचन (सुन्दर नेत्रोंवाले) नाभिकी, भरतमन्त्री कमरकी और श्रीरामसेवक मेरे गुह्यकी (गुदाकी) रक्षा करें। रामार्पितमना (श्रीराममें मन लगानेवाले) लिङ्गकी और स्मितानन (मुस्कानयुक्त मुखवाले) जाँघोंकी रक्षा करें। राममित्र पिंडलियोंकी रक्षा करें। सुनूपुर (सुन्दर नूपुर धारण करनेवाले) गुल्फों (टखनों) की रक्षा करें। नृपतिपूज्य (राजाओंद्वारा वन्दित) पैरोंकी और श्रीमान् (शोभाशाली) मेरे पैरोंकी अंगुलियोंकी रक्षा करें। उदाराङ्ग (मनोहर अङ्गोंवाले) मेरे समस्त अङ्गोंकी सदा रक्षा करें। रमणीय (सुन्दर रूपवाले) रोमसमूहोंकी रक्षा करें। सुधार्मिक रातमें मेरी रक्षा करें। दिनमें सत्यसंध और भोजन-कालमें शरसत्कर (बाणसे सुशोभित हाथवाले) रक्षा करें। यात्राकालमें सुन्दर कण्ठवाले, लवणान्तक (लवणासुरको मारनेवाले) सर्वदा मेरी रक्षा करें।'

एवं शत्रुघ्नकवचं मया ते समुदीरितम् ।
ये पठन्ति नरास्त्वेतत्ते नराः सौख्यभागिनः ॥
शत्रुघ्नस्य वरं चेदं कवचं मङ्गलप्रदम् ।
पठनीयं नरैर्भक्त्या पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् ॥
अस्य स्तोत्रस्य पाठेन यं यं कामं नरोऽर्थयेत् ।
तं तं लभेन्निश्चयेन सत्यमेतद्वचो मम ॥
पुत्रार्थी प्राप्नुयात् पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात् ।
इच्छाकामं तु कामार्थी प्राप्नुयात्पठनादिना ॥
कवचस्यास्य भूम्यां हि शत्रुघ्नस्य विनिश्चयात् ।
तस्मादेतत्सदा भक्त्या पठनीयं नरैः शुभम् ॥

'सुतीक्ष्ण! इस प्रकार मैंने तुमसे शत्रुघ्नकवचका वर्णन कर दिया। जो मनुष्य इसका पाठ करते हैं, वे सुखके अधिकारी हो जाते हैं। यह शत्रुघ्न-कवच परमोत्तम, मङ्गलदायक तथा पुत्र-पौत्रकी वृद्धि करनेवाला है; अतः मनुष्योंको भक्तिपूर्वक इसका पाठ करना चाहिये। मेरा यह वचन सर्वथा सत्य है कि इस स्तोत्रके पाठसे मनुष्य जिस-जिस पदार्थकी इच्छा करता है, वह-वह उसे

निश्चय ही प्राप्त हो जाता है। इसके पाठ आदिसे पुत्रार्थीको पुत्रकी प्राप्ति हो जाती है, धन चाहनेवाला धन पा लेता है और कामार्थी—पत्नी चाहनेवालेकी इच्छापूर्ति हो जाती है। भूमण्डलमें यह शत्रुघ्न-कवच निश्चय ही शुभकारक है, इसीलिये मनुष्यको भक्तिपूर्वक सदा इसका पाठ करना चाहिये।'

श्रीहनुमत्-उपासना

(लेखक—स्व० पं० श्रीहनूमानजी शर्मा)

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि॥
(मानस, सुन्दर० श्लोक ३)

'अतुल बलके धाम, सोनेके पर्वत (सुमेरु) के समान कान्तियुक्त शरीरवाले, दैत्यरूपी वन [को ध्वंस करने] के लिये अग्निरूप, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणोंके निधान, वानरोंके स्वामी, श्रीरघुनाथके प्रिय भक्त पवनपुत्र श्रीहनुमान्-जीको मैं प्रणाम करता हूँ।'

(१) पुराणोंसे ज्ञात हो सकता है कि हनूमान्जी पवनके पुत्र और रुद्रके अवतार हैं। दैवी, दानवी और मानवी सृष्टिमें इनका मान और महत्त्व सर्वोच्च है। जिस समय इन्होंने जन्म लिया, उसी समय ब्रह्मा-विष्णु-महेश-यम-वरुण-कुवेर-अग्नि-वायु-इन्द्रादिने इनको अजरामर बना दिया था और इन्हें अनेक प्रकारके वर दिये थे।

(२) जिस प्रकार ध्यान, धारणा और समाधिके प्रभावसे रुद्रादिका सर्वाधिक सम्मान है, उसी प्रकार हनूमान्जी अखण्ड ब्रह्मचर्यके पालनसे अधिक पूजित और प्रसिद्ध हुए हैं और इसी कारण इनकी उपासना सर्वत्र होती है।

(३) पुराणों और रामायणोंमें इनके अद्भुत चरित्रोंका अनेक स्थानोंमें वर्णन आया है। धर्मशास्त्रोंमें इनकी सेवा-पूजा और स्तोत्र-पाठादिका महान् फल बतलाया गया है और आराधनाके ग्रन्थोंमें इनकी उपासनाके लोकोत्तर फल देनेवाले विधान हैं। इनके सिवा कुछ ज्ञातव्य बातोंका उल्लेख यहाँ किया जाता है।

(४) उपासकलोग अपनी भावनाके अनुसार हनूमान्जीको वीर और दास—दोनों रूपोंमें मानते हैं और आपद्विघ्नविनाशार्थ वीररूपकी तथा सुखलाभार्थ दासरूपकी आराधना करते हैं। शास्त्रोंमें दोनोंके ध्यान और विधान हैं और वीरके लिये राजस तथा दासके लिये सात्त्विक उपचारोंका उल्लेख है।

(५) वास्तवमें हनूमान्जीने समुद्रके लाँघने, सुरसा, लङ्किनी और अक्षयादिका क्षय करने, लङ्का जलाने, रावणादिका तिरस्कार करने और पातालमें प्रविष्ट हुए रामको लाने आदिमें सर्वोत्कृष्ट वीरत्व और स्वामीकी सेवा तथा भक्तोंकी अभीष्ट-सिद्धि आदिमें सर्वाधिक दासत्व दरसाया था। ऐसे सर्वोत्तम देवकी उपासना अवश्य ही हितकारिणी होती है।

(६) अनुष्ठानप्रकाशादिमें हनूमान्जीकी उपासनाके अद्भुत और अनुभूत अनेकों अनुष्ठान हैं, जिनसे ये शीघ्र प्रसन्न होते हैं। इसके सिवा 'मन्त्रमहोदधि', 'मन्त्रमहार्णव' और 'मन्त्रसंग्रह' आदिमें इनके प्रत्यक्ष होनेके उपाय भी हैं और 'हनुमत्-उपासना-कल्पद्रुम' तो इस विषयका सर्वोत्तम ग्रन्थ है ही। उपासकोंको चाहिये कि उनका अनुशीलन करें।

(७) हनूमान्जीकी उपासनामें पूजा-जप-पाठ और पताकादिका होना मुख्य है और भक्ति, श्रद्धा, समर्पण तथा संलग्नता होना आवश्यक है। इन सबके विधान उपर्युक्त ग्रन्थोंमें भलीभाँति लिखे हैं; अतः यहाँ उनकी पुनरावृत्ति आवश्यक नहीं, केवल ज्ञातव्य बातोंका उल्लेख ही आवश्यक है।

(८) पूजा—पञ्चोपचार, दशोपचार और षोडशोपचारादि उपचारोंका उपयोग कामनाके अनुसार किया जाता है। विशेषता यह है कि जो उपचार आरम्भमें हो, उसीको समाप्तितक रखना चाहिये। अधिकांश उपासक श्रीमतमें पञ्चोपचार, भक्तमतमें षोडशोपचार,

अनुपलब्धिमें मानसोपचार और स्वार्थसिद्धिमें राजोपचारसे पूजा करते हैं। परंतु ऐसा करनेमें क्रममें व्यतिक्रम-विलोम होना सम्भव है।

(९) आराधनाके सभी ग्रन्थोंमें षोडशोपचार पूजाका उल्लेख है। इसमें १. आवाहन, २. आसन, ३. पाद्य, ४. अर्घ्य, ५. आचमन, ६. स्नान, ७. वस्त्र (यज्ञोपवीत), ८. गन्ध, ९. अक्षत, १०. पुष्प, ११. धूप, १२. दीप, १३. नैवेद्य, १४. पुनराचमन, १५. ताम्बूल और १६. दक्षिणा-प्रदक्षिणा या नीराजन किया जाता है। पूजा-पद्धतिमें इन सबके विधान हैं, उन्हींके अनुसार पूजन करना चाहिये। यह विशेष है कि—

(१०) स्नानमें कूपादिका शुद्ध, ताजा और गन्धादियुक्त जल लिया जाय; पर्वोत्सवादिमें दूध, दही, घी, मधु और चीनीके पञ्चामृतसे स्नान कराके फिर शुद्धोदकसे स्नान कराया जाय। 'उद्वर्तन'की जगह तिलके तेलमें मिले हुए सिन्दूरका सर्वाङ्गमें लेपन किया जाय। इससे हनूमान्‌जी प्रसन्न होते हैं। कारण यह है कि लङ्का-विजयके बाद जब श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवादिको पारितोषिक दिया था, उस समय सीताजीने हनूमान्‌जीको बेशकीमती मोतियोंकी माला दी थी; किंतु उसमें राम-नाम न होनेसे वे उदासीन रहे। तब सीताजीने अपने सीमन्तका 'सिन्दूर' देकर कहा कि 'यह मेरा मुख्य सौभाग्य-चिह्न है, इसको मैं धन-धाम और रत्नादिसे भी अधिक प्रिय मानती हूँ; अतः तुम इसको सहर्ष स्वीकार करो।' तब हनूमान्‌जीने सिन्दूरको अङ्गीकार कर लिया। इसी हेतुसे उपासकलोग हनूमान्‌जीके अङ्गमें तैलमिश्रित सिन्दूरका लेप करते हैं और मन्त्रशास्त्रोंके मतसे यह आकर्षक भी है। अस्तु,

(११) गन्धमें शुद्ध केसरके साथ घिसा हुआ मलयागिरिचन्दनका उपयोग करें या लालचन्दनका। पुष्पोंमें पुरुषवाची नामवाले लाल-पीले, गम्भीर और दीर्घकाय पुष्प (यथा—कमल, केवड़ा, हजारा और सूर्याभिमुख—सूर्यमुखी आदि) अर्पण करें। यह विशेष है कि 'देवशयनी' (आषाढ़ शुक्लैकादशी) से 'देवप्रबोधिनी' (कार्तिक शुक्लैकादशी) तक (१२१ दिनमें) प्रतिदिन १०८ तुलसीपत्रोंपर कदम्बकी कलम और अष्टगन्ध (चन्दन, अगर, कपूर, तमाल, नेत्रवाला, केसर, रक्तचन्दन और कूट) से 'राम' नाम लिखकर, उन्हें गन्धादिसे पूजितकर 'ॐ हनुमते नमः'—इस मन्त्रोच्चारणके साथ एक-एक पत्र हनूमान्‌जीके मस्तकपर चढ़ाये। इस प्रयोगसे अनेक अनिष्ट दूर होते हैं।

(१२) नैवेद्य—प्रातः-पूजनमें गुड़, नारियलका गोला और मोदक; मध्याह्नमें गुड़, घी और गेहूँकी रोटीका चूरमा या स्निग्ध रोट और रात्रिमें आम, अमरूद या केला आदि अर्पण करना चाहिये। चूरमा प्रतिदिन न हो सके तो मङ्गलवारको अवश्य बनाये और उसी प्रसादका भोजन करके एकभुक्त 'भौमव्रत' करे। यदि मौन रहकर वामकरसे भोजन किया जाय तो यह व्रत ऋणमोचनमें अधिक उपयोगी होता है।

(१३) नीराजन घीमें भीगी हुई एक या पाँच बत्तियोंसे करना चाहिये और पर्वोत्सव या महापूजामें ५, ११, ५० या १०८ बत्तियोंसे करना चाहिये। उस अवसरपर शङ्ख, रणसिंगा, विजयघंट और नगारा आदिकी ध्वनि हो तो और भी अच्छा है। प्रायः सभी देव-मन्दिरोंमें 'चरणामृत'-वितरण किया जाता है। सम्भवतः रुद्रावतार होनेसे हनूमान्‌जीके चरणामृतका प्रचार कम है। परंतु उपासकके लिये उपास्यका चरणोदक त्याज्य नहीं माना जाता।

(१४) पूजनके पश्चात् उपास्यदेवका जप किया जाता है। उसके तीन प्रकार हैं—वाचिक, उपांशु और मानसिक। इनमें जिसका उच्चारण दूसरेको सुनायी दे, वह 'वाचिक', जिसमें होठ और जीभ हिलते रहें, किंतु उच्चारण सुनायी न दे, वह 'उपांशु' और होठ बंद रहें, जीभ चिपकी रहे और जप मनमें होता रहे, वह 'मानस' है। इनमें मानस जपके साथ आराध्यदेवके स्वरूपका ध्यान करना आवश्यक है। उसके दो प्रकार हैं।

(१५) त्रिकालदर्शी तत्त्वज्ञ महर्षियोंने आराध्यदेवोंके विज्ञानमय ध्यान नियत किये हैं। उनके स्वरूपको हृदयंगम करना चाहिये। हनूमान्‌जीके अनेक ध्यान हैं। कारण यह है कि ये अजरामर हैं, ब्रह्मस्वरूप माने गये हैं, रुद्रावतार हैं, इन्होंने अनेकों बड़े-बड़े काम किये हैं, समय-समयपर इनके अनेक स्वरूप हुए हैं। परंतु सकाम उपासनामें कामनाके अनुकूल स्वरूपका तथा निष्काम उपासनामें व्यापक स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। यहाँ—

(१६)

उद्यन्मार्तण्डकोटिप्रकटरुचियुतं चारुवीरासनस्थं
मौञ्जीयज्ञोपवीतारुणरुचिरशिखाशोभितं कुण्डलाङ्कम्।
भक्तानामिष्टदं तं प्रणतमुनिजनं वेदनादप्रमोदं
ध्यायेद्देवं विधेयं प्लवगकुलपतिं गोष्पदीभूतवार्द्धिम्॥

उदय होते हुए करोड़ों सूर्य-जैसे तेजस्वी, मनोरम वीरासनसे स्थित, मूँजकी मेखला तथा यज्ञोपवीत धारण करनेवाले, लालवर्णकी सुन्दर शिखावाले, कुण्डलोंसे शोभित, भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाले, मुनियोंद्वारा वन्दित, वेदनादसे प्रहर्षित, वानरकुलके स्वामी और समुद्रको गोपदके समान लाँघ जानेवाले दासरूपका ध्यान सर्वानुकूल प्रतीत होता है।

(१७) दूसरा प्रकार यह है कि जहाँ-कहीं, जिस मूर्तिके देखनेसे चित्त आकर्षित हो, उसे अनेक बार देखकर ऐसा अभ्यास कर लेना चाहिये कि नेत्र बंद करनेपर भी वह स्वरूप यथावत् दीखता रहे। इस प्रकार बाह्य मूर्तियोंको हृदयंगम करके जप करते समय अन्तर्दर्शन करते रहना चाहिये और जपकी संख्या मनियोंकी माला या अँगुलियोंकी करमालाके बदले वर्णमालात्मक मानसिक मालासे करनी चाहिये। इस क्रियासे हाथसे फिरनेवाली माला, मुँहसे होनेवाले जप और अन्तस्तलमें रहनेवाला मन इधर-उधर भटकनेके बदले संयमित रहेंगे।

(१८) इस प्रकार जप, ध्यान और संख्या—इस 'मानसकी त्रिवेणी' में उपस्थित होकर साधन करनेसे तामस, राजस और सात्त्विक—सभी साधनाएँ शीघ्र सफल होती हैं और यदि इस प्रकारका जप निष्काम किया जाय तो फिर अकेले हनूमान्‌जी ही नहीं, बल्कि वे और उनके स्वामी—दोनों प्रत्यक्ष होकर उपासकके समीप बैठे रहें और उससे बात करनेकी बाट देखते रहें।

(१९) मनको एकाग्र करना मनुष्यके लिये असाध्य नहीं है। अभ्याससे दूसरे काम करते हुए भी मनको हम अपने लक्ष्यपर आरूढ़ रख सकते हैं। जैसे—१—अधिकांश अश्वारोही सेनासमूहके एकाधिक आक्रमणोंसे आक्रान्त होकर भी वृक्षशालामें अटके हुए साथीको हठात् निकाल ले जाते हैं। २—पचास फुट ऊँचे बाँसके सिरेपर निराधार सोधे सोये हुए नट-बालक अपने सिरपर रक्खे हुए पाँच बर्तनोंको नीचे नहीं गिरने देते। ३—अनुभवी न्यायाधीश कई अभियोगोंकी अलग अलग अपील एक बारमें सुनते हुए भी अपना आज्ञापत्र निर्दोष लिख देते हैं। ४—भारतमार्तण्ड पण्डित गट्टूलालजी विभिन्न भाषाओंमें पूछे हुए अनेक प्रश्नोंका यथायोग्य उत्तर एक ही बारमें दे देते थे और ५—सिरपर जलपूर्ण दो घड़े तथा बगलमें एक घड़ा और डोरी लिये हुए मुँहसे वार्तालाप तो अनेक ग्रामीण स्त्रियाँतक करती हैं। अतएव अभ्यास होनेपर जिस प्रकार ये सब काम होते हैं, उसी प्रकार उपासकोंका मन भी एकाग्र हो सकता है। अस्तु,

(२०) इष्टदेवको प्रसन्न करनेके लिये तदनुकूल आचरणोंकी भी आवश्यकता होती है। हनूमान्‌जी रामचन्द्रजीके चरित्रोंसे प्रसन्न होते हैं। अतएव वाल्मीकि-रामायण, तुलसीकृत रामायण, मूलरामायण और सुन्दरकाण्ड आदिके सादे, सार्थ या सम्पुटसहित पाठ करने चाहिये। इनके सिवा कथा-वार्ता, पुराण-पाठ या रामलीलाका अभिनय आदि जो भी अनुकूल हों, करने चाहिये।

(२१) प्रयोगादिके प्रारम्भमें 'प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा उपविश्य' के अनुसार पूर्वाभिमुख होनेमें कई जगह स्थान-विशेषके कारण असुविधा हो जाती है। ऐसी स्थितिमें 'पूज्यपूजकयोर्मध्ये पूर्वाशां चिन्तयेत् सुधीः' (पूजकको ऐसी भावना कर लेनी चाहिये कि उसके आराध्यदेव पूर्व दिशामें ही स्थित हैं) के अनुसार पूज्य (गौ-गुरु-द्विज-देवादि) के सम्मुख बैठना चाहिये और 'देवो भूत्वा देवं यजेत्—देवके समान होकर देवताका यजन करना चाहिये।' अर्थात् त्रिनयन, चतुर्भुज, षण्मुखादिके अर्चनमें अपनेमें तत्तुल्य विधान (न्यास, मुद्रा और उपचारादि) करने चाहिये। साथ ही 'यथा देहे तथा देवे—जिस प्रकार पूजा आदिमें अपने शरीरमें गन्धादि लेपन या अङ्गन्यासादि करते हैं, उसी प्रकार देवताके भी होने चाहिये।' 'वित्तशाठ्यं न कारयेत्—धर्माचरणादिमें वित्त (या सामर्थ्य) की शठता नहीं करनी चाहिये।' अर्थात् धन, मन और समय जितना लगाया जा सके, उसमें संकोच नहीं होना चाहिये।

अन्तमें सम्पुटित पाठके कुछ मन्त्र सूचित कर देना प्रसङ्गके अनुकूल प्रतीत होता है—

(१) उपर्युक्त रामायणादिमें किसी भी श्लोकके 'रां रामाय नमः' का सम्पुट लगानेसे हनूमान्‌जी प्रसन्न होते हैं।

(२) 'ॐ हनुमते नमः' से कार्यसिद्धि होती है।

(३) अञ्जनागर्भसम्भूत कपीन्द्रसचिवोत्तम।
रामप्रिय नमस्तुभ्यं हनूमन् रक्ष सर्वदा॥

'हे अञ्जनाके गर्भसे उत्पन्न हुए, सुग्रीवके श्रेष्ठ मन्त्री, श्रीरामके प्यारे हनूमान् आपको प्रणाम है। आप मेरी सदा रक्षा करें।'

—से रक्षा और अभीष्टलाभ होता है।

(४) मर्कटेश महोत्साह सर्वशोकविनाशन।
शत्रून् संहर मां रक्ष श्रियं दापय मे प्रभो॥

'हे वानराधीश, महान् उत्साही, सब प्रकारके शोकका नाश करनेवाले प्रभो! मेरे शत्रुओंका नाश कर दो, मेरी रक्षा करो और अपनी लक्ष्मी मुझे प्रदान करो।'

—से शत्रुनिवारण, आत्मसंरक्षण और सम्पत्प्राप्ति होती है।

(५) जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनूमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः॥
(वा० रा० ५। ४२। ३३-३५)

'अत्यन्त बलवान् भगवान् श्रीराम तथा महाबली लक्ष्मणकी जय हो। श्रीरघुनाथजीके द्वारा सुरक्षित राजा सुग्रीवकी भी जय हो। मैं अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले कोसलनरेश श्रीरामचन्द्रजीका दास हूँ। मेरा नाम हनूमान् है। मैं वायुका पुत्र तथा शत्रुसेनाका संहार करनेवाला हूँ। जब मैं हजारों वृक्ष और पत्थरोंसे प्रहार करने लगूँगा, उस समय सहस्रों रावण मिलकर भी युद्धमें मेरे बलकी समानता अथवा मेरा सामना नहीं कर सकते।'

—से राष्ट्रविप्लव, महामारीभय, महाशत्रुके आक्रमण, अनेक प्रकारकी असह्य आपत्तियाँ और देशोपद्रवादि शान्त होते हैं।

(६) और—

स देवि नित्यं परितप्यमान-
स्त्वामेव सीतेत्यभिभाषमाणः।
धृतव्रतो राजसुतो महात्मा
तवैव लाभाय कृतप्रयत्नः॥
(वा० रा० ५। ३६। ४६)

''देवि! राजकुमार महात्मा श्रीराम आपके लिये सदा दुःखी रहते हैं, 'सीता-सीता' कहकर आपकी ही रट लगाते हैं तथा उत्तम व्रतका पालन करते हुए आपकी ही प्राप्तिके प्रयत्नमें लगे हुए हैं।''

—से उद्वाह या स्त्रीप्राप्ति होती है। अस्तु,

उक्त मन्त्र, विशेषकर वाल्मीकि-रामायण, 'सुन्दरकाण्ड' और 'मूलरामायण' के पाठमें सम्पुटरूपमें लगानेके लिये उपयोगी हैं। सम्पुटित पाठमें पहले मन्त्र, पीछे मूल, फिर मन्त्र, फिर मन्त्र, पीछे मूल और फिर मन्त्र—इस क्रमसे पाठ किया जाय। पाठारम्भके पहले हनूमान्‌जीका पूजन, प्रार्थना और ध्यानादि किये जायँ। इस प्रकार प्रीति, उदारता और शान्तिके साथ करनेसे सब प्रकारके अभीष्ट सिद्ध होते हैं।

हनुमान् हठीले!

ऐसी तोहि न बूझिये हनुमान हठीले।
साहेब कहूँ न राम से, तोसे न उसीले॥
तेरे देखत सिंह के सिसु, मेंढक लीले।
जानत हौं कलि तेरेऊ मन गुन-गन कीले॥
हाँक सुनत दसकंध के भये बंधन ढीले।
सो बल गयो, किधौं भये अब गरब-गहीले॥
सेवक को परदा फटै, तू समरथ सी ले।
अधिक आपु ते आपुनो, सुनि मान सही ले॥
साँसति तुलसीदास की सुनि सुजस तुही ले।
तिहूँ काल तिन को भलो, जे राम-रँगीले॥
(विनयपत्रिका)

हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठानपद्धति

(लेखक—याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड)

सन् १९४९में मैं बदरीनाथ धाम (उत्तराखण्ड) गया था। बदरीनाथ धामसे १९ या २९ मील पूर्व आद्य शंकराचार्यद्वारा संस्थापित 'ज्योतिर्मठ' (ज्योतिष्पीठ) है। मैंने एक दिन ज्योतिर्मठमें विश्राम किया। संयोगवश उस समय ज्योतिर्मठके तत्कालीन शंकराचार्य श्री १००८ स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती महाराज वहाँ उपस्थित थे, जो कुछ कालके लिये विश्रामार्थ वहाँ आये हुए थे। रात्रिमें श्रीशंकराचार्यजीके दर्शनार्थ उनकी सेवामें उपस्थित हुआ तो वे मुझे देखकर अत्यन्त संतुष्ट हुए। कुशल-मङ्गलके पश्चात् उन्होंने मुझसे कहा—"तुम प्रतिष्ठित वेदज्ञ-परिवारके वेदज्ञ विद्वान् हो; अतः हम तुमको आशीर्वादरूपमें अत्यन्त प्राचीन हस्तलिखित 'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठानपद्धति' नामकी लघुपुस्तिका दे रहे हैं; इसे स्वीकार करो।" मैंने श्रीशंकराचार्यजीसे पुस्तिका प्राप्तकर अपना परम सौभाग्य समझा। पश्चात् श्रीशंकराचार्यजीने बतलाया कि 'हमने जो पुस्तिका तुमको दी है, यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और सिद्धिप्रदा है। इसमें २० मन्त्र हैं। प्रत्येक मन्त्रका ग्यारह-ग्यारह हजार बार रुद्राक्षकी मालापर हनुमान्जीके किसी भी प्राचीन मन्दिरमें ब्रह्मचर्यपूर्वक जप करनेसे सभी मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। मन्त्रोंको सिद्ध कर लेनेके पश्चात् मन्त्रोंका प्रयोग करनेपर कठिन-से-कठिन कार्य सुसाध्य हो जाते हैं।'

'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठानपद्धति'के मन्त्रोंकी अनुष्ठान-विधि इस प्रकार है—शुभ मुहूर्तमें उक्त पद्धतिके प्रत्येक मन्त्रको अलग-अलग ग्यारह-ग्यारह हजार बार जप करके समस्त मन्त्रोंको सिद्ध कर लेना चाहिये। पश्चात् आवश्यकता पड़नेपर मनुष्यको स्वयं अपने कार्यके लिये अथवा दूसरेके कार्यके लिये 'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठानपद्धति' के प्रत्येक मन्त्रका ग्यारह-ग्यारह हजार जप करके, पीछे प्रत्येक मन्त्रका दशांश ग्यारह सौ (११००) हवन करना चाहिये।

श्रीशंकराचार्यजीद्वारा प्रदत्त 'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठानपद्धति' का मैंने स्वयं कई बार अनुष्ठान करके चमत्कारपूर्ण लाभ उठाया है और कई बार मैंने अपने तीन-चार विपद्ग्रस्त परिचितोंको भी उक्त पद्धतिका अनुष्ठान बतलाया है, जिसके द्वारा उन्हें भी अद्भुत लाभ हुआ है। अतः मैं सर्वसाधारणके कल्याणार्थ 'कल्याण'के विशेषाङ्क 'श्रीरामाङ्क'में श्रीशंकराचार्यजीके द्वारा प्रदत्त 'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठानपद्धति'को प्रकाशित कर दे रहा हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जो मनुष्य श्रद्धा-भक्ति और विश्वासके साथ अपनी विपत्तिके निवारणार्थ 'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठानपद्धति'का सविधि अनुष्ठान करेगा, वह अवश्य सफलीभूत होगा*।

'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठानपद्धति'के मन्त्र इस प्रकार हैं—

१—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय वायुसुताय अञ्जनीगर्भसम्भूताय अखण्डब्रह्मचर्यव्रतपालनतत्पराय धवलीकृतजगत्त्रितयाय ज्वलदग्निसूर्यकोटिसमप्रभाय प्रकटपराक्रमाय आक्रान्तदिङ्मण्डलाय यशोवितानाय यशोऽलंकृताय शोभिताननाय महासामर्थ्याय महातेजःपुञ्जविराजमानाय श्रीरामभक्तितत्पराय श्रीरामलक्ष्मणानन्दकारणाय कपिसैन्यप्राकाराय सुग्रीवसख्यकारणाय सुग्रीवसाहाय्यकारणाय ब्रह्मास्त्रब्रह्मशक्तिग्रसनाय लक्ष्मणशक्तिभेदनिवारणाय शल्यविशल्यौषधिसमानयनाय बालोदितभानुमण्डलग्रसनाय अक्षकुमारच्छेदनाय वनरक्षाकरसमूहविभञ्जनाय द्रोणपर्वतोत्पाटनाय स्वामिवचनसम्पादितार्जुनसंयुगसंग्रामाय गम्भीरशब्दोदयाय दक्षिणाशामार्तण्डाय मेरुपर्वतपीठिकार्चनाय दावानलकालाग्निरुद्राय समुद्रलङ्घनाय सीताश्वासनाय सीतारक्षकाय राक्षसीसंघविदारणाय अशोकवनविदारणाय लङ्कापुरीदहनाय दशग्रीवशिरःकृन्तकाय कुम्भकर्णादिवधकारणाय वालिनिर्वहणकारणाय मेघनादहोमविध्वंसनाय इन्द्रजिद्वधकारणाय सर्वशास्त्रपारंगताय सर्वग्रहविनाशकाय सर्वज्वरहराय सर्वभयनिवारणाय सर्वकष्टनिवारणाय सर्वापत्तिनिवारणाय सर्वदुष्टादिनिबर्हणाय सर्वशत्रुच्छेदनाय भूतप्रेतपिशाचडाकिनीशाकिनीध्वंसकाय सर्वकार्यसाधकाय प्राणिमात्ररक्षकाय रामदूताय स्वाहा।

२—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय विश्वरूपाय अमितविक्रमाय प्रकटपराक्रमाय महाबलाय सूर्यकोटिसमप्रभाय रामदूताय स्वाहा।

३—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय रामसेवकाय रामभक्तितत्पराय रामहृदयाय लक्ष्मणशक्तिभेदनिवारणाय लक्ष्मणरक्षकाय दुष्टनिबर्हणाय रामदूताय स्वाहा।

४—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय सर्वशत्रुसंहारणाय सर्वरोगहराय सर्ववशीकरणाय रामदूताय स्वाहा।

---

* अनुष्ठानकर्ताओंको चाहिये कि [illegible] कार्यके लिये [illegible] और हवन करें, उस कार्यका संकल्पमें [illegible] अवश्य करें।

५–ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय आध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकतापत्रयनिवारणाय रामदूताय स्वाहा ।

६–ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय देवदानवर्षिमुनिवरदाय रामदूताय स्वाहा ।

७–ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय भक्तजनमनःकल्पनाकल्पद्रुमाय दुष्टमनोरथस्तम्भनाय प्रभञ्जनप्राणप्रियाय महाबलपराक्रमाय महाविपत्तिनिवारणाय पुत्रपौत्रधनधान्यादिविविधसम्पत्प्रदाय रामदूताय स्वाहा ।

८–ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय वज्रदेहाय वज्रनखाय वज्रमुखाय वज्ररोम्णे वज्रनेत्राय वज्रदन्ताय वज्रकराय वज्रभक्ताय रामदूताय स्वाहा ।

९–ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय परयन्त्रमन्त्रतन्त्रत्राटकनाशकाय सर्वज्वरच्छेदकाय सर्वव्याधिनिकृन्तकाय सर्वभयप्रशमनाय सर्वदुष्टमुखस्तम्भनाय सर्वकार्यसिद्धिप्रदाय रामदूताय स्वाहा ।

१०–ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय देवदानवयक्षराक्षसभूतप्रेतपिशाचडाकिनीशाकिनीदुष्टग्रहबन्धनाय रामदूताय स्वाहा ।

११–ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय पञ्चवदनाय पूर्वमुखे सकलशत्रुसंहारकाय रामदूताय स्वाहा ।

१२–ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय पञ्चवदनाय दक्षिणमुखे करालवदनाय नारसिंहाय सकलभूतप्रेतदमनाय रामदूताय स्वाहा ।

१३–ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय पञ्चवदनाय पश्चिममुखे गरुडाय सकलविघ्ननिवारणाय रामदूताय स्वाहा ।

१४–ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय पञ्चवदनाय उत्तरमुखे आदिवराहाय सकलसम्पत्कराय रामदूताय स्वाहा ।

१५–ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय ऊर्ध्वमुखे हयग्रीवाय सकलजनवशीकरणाय रामदूताय स्वाहा ।

१६–ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय सर्वग्रहान् भूतभविष्यद्वर्तमानान् समीपस्थान् सर्वकालदुष्टबुद्धीनुच्चाटयोच्चाटय परबलानि क्षोभय क्षोभय मम सर्वकार्याणि साधय साधय स्वाहा ।

१७–ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय परकृतयन्त्रमन्त्रपराहंकारभूतप्रेतपिशाचपरदृष्टिसर्वविघ्नतर्जनचेटकविद्यासर्वग्रहभयं निवारय निवारय स्वाहा ।

१८–ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय डाकिनीशाकिनीब्रह्मराक्षसकुलपिशाचोरुभयं निवारय निवारय स्वाहा ।

१९–ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय भूतज्वरप्रेतज्वरचातुर्थिकज्वरविष्णुज्वरमहेशज्वरं निवारय निवारय स्वाहा ।

२०–ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय अक्षिशूलपक्षशूलशिरोऽभ्यन्तरशूलपित्तशूलब्रह्मराक्षसशूलपिशाचकुलच्छेदनं निवारय निवारय स्वाहा ।

हनुमान्‌जीका आश्रयी निर्भय हो जाता है

ताकिहै तमकि ताकी ओर को ।
जाको है सब भाँति भरोसो कपि केसरी किसोर को ॥
जन-रंजन, अरिगन-गंजन, मुख-भंजन खल बरजोर को ।
बेद-पुरान प्रगट पुरुषारथ सकल सुभट सिरमोर को ॥
उथपे थपन, थपे उथपन, पन बिबुधबृंद बँदिछोर को ।
जलधि लाँघि, दहि लंक प्रबल बल दलन निसाचर घोर को ॥
जाको बालबिनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को ।
जाकी चिबुक-चोट चूरन किय रद-मद कुलिस कठोर को ॥
लोकपाल अनुकूल बिलोकिबो चहत बिलोचन-कोर को ।
सदा अभय, जय-मुद-मंगलमय, जो सेवक रनरोर को ॥
भगत-कामतरु नाम राम परिपूरन चंद चकोर को ।
तुलसी फल चारों करतल जस गावत गई-बहोर को ॥

(विनय-पत्रिका, २१)

सर्वसिद्धिप्रद प्रयोग

(लेखक—कविराज पं० श्रीविद्याधरजी शुक्ल)

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीभगवान् रामभद्रके शरणागत होकर इस प्रयोगको करनेवाला मानव मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है। श्रीरामभद्रकी शरणागतिके सम्बन्धमें परमपिता परम-दयालु प्रभु स्वयं ही घोषणा करते हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
(वा० रा० ६। १८। ३३)

“प्राणिमात्रके लिये यह मेरी प्रतिज्ञा है कि यदि कोई जीव ‘मैं आपका हूँ’—यों कहता हुआ केवल एक बार वाणीसे भी मेरे शरणागत होकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसको मैं सभी प्राणियोंसे सर्वथा, सदाके लिये निर्भय कर देता हूँ।” एक बार—केवल एक बार यह कह देना ही पर्याप्त है कि ‘मैं आपका हूँ’; तथा एक बारकी शरणागति ही कल्याणके लिये पर्याप्त है। श्रीभगवान्‌की यह प्रतिज्ञा सदा-सर्वदाके लिये है। क्योंकि **‘रामो द्विर्नाभिभाषते’** (वा० रा० २। १८। ३०)—राम दो बार नहीं बोलते।’ जो भी प्राणी एक बार उनके शरणागत हो गया, वह अभय हो गया। परम दयालु दयार्णव यह नहीं देखते कि यह पापी है या धर्मात्मा; क्योंकि बच्चा अगर गंदा भी है तो माता उसे स्वच्छ करके, नहला-धुलाकर माथेमें टीकी लगाकर, स्वच्छ वस्त्र पहनाकर, हृदयसे लगाकर, अपना दुग्धरूपी अमृत पिलाती है। फिर परमपिता हमारे प्रभु तो अपनी संतानोंके प्रति परमवात्सल्यमयी मातासे भी अनन्तगुना प्रेम रखते हैं। उनकी उदारताकी कोई सीमा नहीं है। उनके शरणागत जीव तो एक बार शरणागत होते ही निहाल हो जाता है, वे सदा-सर्वदाके लिये उसे अपना लेते हैं। वे पिछले जन्मोंके असंख्य-असंख्य पापोंको भूल जाते हैं। वाल्मीकिकी घोषणा है—

कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥
(वही, २। १। ११)

‘कभी कोई एक बार भी उपकार कर देता है तो वे उसके उस एक ही उपकारसे सदा संतुष्ट रहते हैं और मनको वशमें रखनेके कारण किसीके सैकड़ों अपराध करनेपर भी उसके अपराधोंको याद नहीं रखते।’

श्रीवाल्मीकिरामायणान्तर्गत सुन्दरकाण्डका यह अपूर्व प्रयोग है। निम्नाङ्कित चार श्लोक—जिनका घोष करते हुए श्रीहनुमान्‌जीने लङ्कामें सिंहनाद करके विजयका डंका बजाया तथा पुरीके समस्त वीरोंके दिलोंको दहलाकर तथा लङ्कापुरीको जलाकर ध्वंस कर दिया—ये श्लोक नहीं हैं, मन्त्र हैं और वेदके तुल्य महत्त्व रखते हैं। वैसे तो श्रीवाल्मीकिरामायणका एक-एक अक्षर उसका उच्चारण करनेवाले मानवको सर्वपापोंसे विमुक्तकर धर्म-अर्थ-काम—इन तीनों पुरुषार्थोंके साथ-साथ परमपुरुषार्थ मोक्षको भी अनायास ही प्राप्त करा देता है।

स्वयं वाल्मीकिमुनिका वचन है—

पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात्
स्यात् क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात्।
वणिग्जनः पण्यफलत्वमीया-
ज्जनश्च शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात्॥
(वा० रा०, बा० १। १००)

‘इसे ब्राह्मण पढ़े तो विद्वान् हो, क्षत्रिय पढ़ता हो तो पृथ्वीका राज्य प्राप्त करे, वैश्यको व्यापारमें लाभ हो और शूद्र भी प्रतिष्ठा प्राप्त करे।’

इससे दीर्घायुकी भी प्राप्ति होती है—

पूजयंश्च पठंश्चैनमितिहासं पुरातनम्।
सर्वपापैः प्रमुच्येत दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥
(वही, ६। १२८। ११७)

‘इस पुरातन इतिहासका पूजन एवं पाठ करनेवाला व्यक्ति सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है और लंबी आयु प्राप्त करता है।’

सर्वसिद्धिप्रद प्रयोग नीचे दिया जाता है—

निम्नलिखित चार श्लोकोंमें सुन्दरकाण्डके प्रत्येक सर्गको सम्पुटित करके पाठ किया जाय तो बहुत उत्तम; समयाभाव या अन्य किसी कारणसे यह सम्भव न हो तो इन चार श्लोकोंका ही शुद्ध होकर परम दयालु कृपासागर श्रीसीताराम-चन्द्रजीको प्रणाम करनेके अनन्तर तथा उनके शरणागत होकर, एक बार पाठ करके किसी कार्यको शुरू किया जाय या यात्रादि कार्य सम्पन्न किया जाय तो परमकल्याणमय यह प्रयोग सर्वसिद्धिकारक प्रमाणित होगा। मेरी तो ऐसी मान्यता है; कि यह महामन्त्र है—

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनूमाञ्छत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः॥
अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम्॥
(वा० रा०, सुन्दर० ४२। ३३–३६)

'अत्यन्त बलवान् भगवान् श्रीराम तथा महाबली लक्ष्मणकी जय हो। श्रीरघुनाथजीके द्वारा सुरक्षित राजा सुग्रीवकी भी जय हो। मैं अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले कोशलनरेश श्रीरामचन्द्रजीका दास हूँ। मेरा नाम 'हनुमान्' है। मैं वायुका पुत्र तथा शत्रुसेनाका संहार करनेवाला हूँ। जब मैं हजारों वृक्षों और पत्थरोंसे प्रहार करने लगूँगा, उस समय सहस्रों रावण मिलकर भी युद्धमें मेरे बलकी समानता अथवा मेरा सामना नहीं कर सकते। मैं लङ्कापुरीको तहस-नहस कर डालूँगा और मिथिलेशकुमारी श्रीसीताको प्रणाम करनेके अनन्तर सब राक्षसोंके देखते-देखते अपना कार्य सिद्ध करके लौटूँगा।' इसका प्रयोग बालकपनमें ही किसी महात्माने कृपा करके मुझे बतलाया था। तभीसे इसको करता हूँ।

ध्यान-जप करके तो देखो !

[नित्यसाकेतवासी परमपूज्य श्रीरणछोड़दासजी महाराजके उपदेश]

भगवान् श्रीरामके शरण इसलिये होना चाहिये कि प्राणिमात्र सुख चाहता है और श्रीरामजी महाराज सुख प्रदान करते हैं। वे सुखके समुद्र हैं—

एहि बिधि रघुकुल कमल रबि मग लोगन्ह सुख देत।
जाहिं चले देखत बिपिन सिय सौमित्रि समेत॥
(मानस २। १२२)

'जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भए मुनि बीती त्रासा॥'
(वही, ३। १३। $\frac{१}{२}$)

भगवान् श्रीरामके शरण इस कारण होना चाहिये कि आप शरणागतकी रक्षा अपने प्राणोंके समान करते हैं—

'जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥'
(वही, ५। ४३। ४)

आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा॥
तुरत बिभीषन पाछें मेला। सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला॥
(वही, ६। ९३। १)

श्रीरामजीका भजन इसलिये करना चाहिये कि वे सर्वेश्वर हैं—

बिधि हरि हरु ससि रबि दिसिपाला। माया जीव करम कुलि काला॥
[illegible] महिप जहँ लगि प्रभुताई। जोग सिद्धि निगमागम गाई॥
[illegible] बिचार जियँ देखहु नीकें। राम रजाइ सीस सबही कें॥
(वही, २। २५३। ३-४)

उनका भजन इसलिये करना चाहिये कि हम बद्ध हैं और मुक्त होना चाहते हैं। किंतु बन्ध-मोक्ष प्रभुके हाथमें है—

माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छ प्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव॥
(वही, ३। १५)

श्रीरामजीका स्मरण इसलिये करना आवश्यक है कि जीव ईश्वरका अंश है। अंशीको प्राप्त करना अंशका स्वाभाविक धर्म है। अंशीके बिना अंशका निर्वाह नहीं होता—
'ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥'
(वही, ७। ११६। १)

भजनके लिये हमें समय नहीं मिलता। किंतु यदि हमें कोर्टमें जाना हो और हम जानते हों कि देरी होनेसे हमारे हितकी हानि हो जायगी तो हम वहाँ ठीक समयपर पहुँच जाते हैं। इस तरहकी परवा हमें भजनके लिये नहीं होती। दूसरे कामोंकी अपेक्षा हम भजनको कम महत्त्व देते हैं, इसीलिये हमें भजनके लिये समय नहीं मिलता।

साधनमें नियमितता होनी चाहिये। न खानेसे साधन नहीं होगा। यदि स्वास्थ्य ठीक न हो तो एक दिन आराम कर लेना चाहिये। नहीं तो परिणाम यह होगा कि एक दिनके लिये दस दिनका साधन चला जायगा। बुखार आदि आ जाय तो आराम कर लेना चाहिये। विचारहीन साधन नहीं करना। एक दिन हमारी वासनाएँ अवश्य नष्ट हो

जायँगी और हमारा मन भगवान्‌में लग जायगा। भजनमें बराबर लगे रहना। कभी-न-कभी वे हमारी अवश्य सुनेंगे—

राम राम रटते रहो जब लग घट में प्रान।
कबहुँक दीनदयाल के भनक परैगी कान॥

सबसे पहला साधन है, एकान्त। एकान्तमें जानेपर सूक्ष्म जगत् उत्पन्न होता है। उसे तोड़नेका प्रयत्न करो। घरमें किवाड़ बंद करके बैठो। यदि हम आत्म-कल्याण करना चाहते हैं तो हमें देरी-से-देरी ४ बजे और जल्दी-से-जल्दी ३ बजे शय्याका त्याग कर देना चाहिये। हमें जो साधन बताया गया है, उसे यथार्थरूपसे करें। ब्राह्ममुहूर्तमें हमको बड़ी शान्ति मिलती है। जिस समय चाँदनी खिली हो, भगवन्नाममें मन लगा हो, शान्त वातावरण हो तो तुम देखोगे कि इससे बढ़कर कोई सुख नहीं है। इतना कार्य नहीं बढ़ाना चाहिये, जिससे कि हम सवेरे जल्दी न उठ सकें। प्रातःकाल जल्दी उठनेकी आदत डालो। तीनसे पहले उठना नहीं और पाँचके बाद सोना नहीं। गृहस्थको कम-से-कम पाँच घंटा और ज्यादा-से-ज्यादा छः घंटा सोना चाहिये। ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों तृष्णा बढ़ती जाती है और नींद घटती जाती है। यदि तुम संकल्प तोड़नेमें असमर्थ हो तो शरणागति ग्रहण कर लो।

श्रीसद्गुरुदेवकी आज्ञाके अनुसार विश्वासके साथ साधन करनेपर भगवान् मिलते ही हैं। साङ्गोपाङ्ग प्रयत्न करनेसे वे मिलते हैं। भगवान् भक्तोंको पहले यहाँ मिले हैं, तत्पश्चात् वहाँ गोलोकमें मिले हैं। हम कहें कि 'भगवान् हमको मरनेके बाद मिलेंगे', यह मैं नहीं मानता। भगवान्‌को यहीं प्राप्त करना है। गुरुवाक्यपर विश्वास करनेसे और आज्ञानुसार प्रयत्न करनेपर वे प्राप्त होते हैं। शास्त्र-ज्ञानका अहंकार छोड़कर, बिल्कुल तर्करहित होकर हमको साधनमें लग जाना चाहिये। निष्ठा पक्की होनी चाहिये। ज्यादा शास्त्र पढ़नेसे वे समझमें नहीं आयेंगे। जिसको ब्रह्म अपना लेंगे, उसीकी समझमें वे आयेंगे।

'अधैर्य' साधनका एक दोष है। साधन धैर्यपूर्वक करें, एकनिष्ठासे करें, उसमें फेर-फार नहीं करना चाहिये। बार-बार इष्ट और साधन बदलनेसे असंतोष एवं अश्रद्धा होगी। मैं चित्रपटको कभी चित्रपट नहीं समझता।

ध्यान करनेके लिये प्रथम मुख्य साधन है, तीव्र इच्छा और दृढ़संकल्प। ध्यानके समय जब मन बाहरके विषयोंका चिन्तन करे, तब मनका निरीक्षण करके उसे उस दिशासे मोड़कर ध्यानमें लगाओ। मन शुद्ध हो यानी ध्यानके समय कोई विचार न हो तो निरीक्षण करनेकी कोई जरूरत नहीं।

ध्यानसे परमात्माकी प्राप्ति होती है। श्रीरामका ध्यान जीवके लिये श्रेयस्कर है। ध्यान-पूजन रोज करना। इससे मनकी शुद्धि होती है। भजन ही सार है, इतना ध्यान रखना। जीवन अमूल्य है, इसका ध्यान रखना। जीवनमें ईश्वरकी कृपा प्राप्त हो, यही अभिलाषा रखना। अशरण-शरण पतितपावन एक सर्वेश्वर श्रीराम ही हैं।

भगवान् कैसे हैं? 'कंदर्प-कोटि-किशोर-मूर्ति।' यह भगवान्‌का ध्यान है, मनको केन्द्रित करनेके लिये। हम मन्त्रका अर्थानुसंधान करते हुए अन्य झूठे और पथभ्रष्ट करनेवाले संकल्पोंको तोड़ दें; निश्चित ही मन एकाग्र हो जायगा। बादमें उसे निरुद्ध करनेका प्रयत्न करना चाहिये। करके देखो, मन कैसा लय होता है, कैसा एकाग्र होता है। विद्यार्थी जब पढ़नेमें तल्लीन हो जाता है, तब उसके पाससे कौन निकल गया, इसका उसे पता नहीं रहता।

श्रीरामचन्द्रजीका अखण्ड स्मरण-चिन्तन करनेको 'प्रभुध्यान' कहते हैं। ध्यानके निमित्त हृदयमें साङ्गोपाङ्ग मूर्ति ऐसी बनानी चाहिये, जो दीर्घकालपर्यन्त ज्यों-की-त्यों बनी रहे। प्रारम्भमें बिना किसी सहायताके ध्यान होना किंचित् कठिन है। इसलिये श्रीरघुनन्दनलालजीके मनोहर चित्रको पूजनके समय सामने रखना चाहिये।

चित्रपट ध्याताके आसनसे एक हाथ और एक बित्ता दूर रहना चाहिये और उतना ही जमीनसे ऊँचा। उनपर स्वामी-भावका अवलम्बन करके ही ध्यानका अभ्यास करना चाहिये। स्वामी-सेवकके नित्य-सम्बन्धसे यह ध्यानरूपी क्रिया अच्छी तरह बनती है।

फिर भगवान्‌की हृदयस्थ मूर्तिपर मनको बाँधना चाहिये। पर अभ्यासके प्रारम्भमें पूर्ण मूर्तिके बननेमें और ज्यों-की-त्यों बनाये रखनेमें बहुत कठिनाई जान पड़ेगी—जैसे, कभी चरण नहीं दीखेंगे, कभी कर नहीं दीखेंगे, कभी सिर नहीं दीखेगा। पर ध्यान रहे, यह बात साधनके प्रारम्भमें होती है। इस कठिनाईको दूर करनेमें चित्र सामने रखनेसे बड़ी सहायता मिलेगी और कुछ काल अभ्यास करनेसे कठिनाइयाँ जाती रहेंगी।

ध्यान करते समय 'श्रीमन्त्रराज'का जप अवश्य करना चाहिये। मूर्तिके ध्यानमें मन लय हो जानेपर निद्रित अवस्थामें जानेसे ही ध्यान रुकेगा। मन्त्रजप मनके विक्षेप और चञ्चलताका नाश करेगा। ध्यानकालमें मन जब कभी दूसरी ओर जाय, तब प्रयत्न करके, संकल्परहित बनाकर, उसको मोड़कर फिर ध्यानमें लगाना चाहिये। ऐसा दीर्घकालपर्यन्त करनेसे ध्यान परिपक्व होगा और तुम आनन्द प्राप्त कर लोगे, जो नित्य है, सत्य है। वह आनन्द इसी प्रकार प्राप्त होता रहेगा—ऐसी मेरी निश्चित धारणा है। सबको इसीके अनुसार करना है। फिर कल्याणमें किंचित् शङ्का नहीं।

ध्यानके विषयमें मेरा अनुभव यह है कि जब ध्याता श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करता है, तब पहले-पहले ऐसा बोध होता है कि 'मेरे सामने श्रीरामजीका चित्रपट रखा है और मैं उसका ध्यान कर रहा हूँ।' पश्चात् चिन्तन जितना गम्भीर और अन्तर्मुखी होगा, मनकी बाहर भटकनेकी शक्ति उतनी ही घट जायगी और वृत्ति अन्तर्मुखी होगी। तब ऐसा बोध होगा कि मैं एकाग्रभावसे केवल श्रीरामचन्द्रजीको देख रहा हूँ और जब इस बातको भी भूल जाओगे, तब मनका लय हो जायगा, केवल श्रीभगवान्का स्वरूप ही दीखेगा। बस, ध्यानमें अपनेको खो देना (देहको भूल जाना)। सब भूल जाना ही आनन्दकी पराकाष्ठा है; इसीका नाम 'अनन्य शरणागति' है।

बस, भगवत्-रूपके (ध्यानके) आनन्दसागरमें जब हम डूब जाते हैं, तब मायाका असर कुछ नहीं रह जाता। ध्यानमें लाभ उनको होगा, जो कम-से-कम ३ घंटे प्रभु-ध्यान करेंगे।

(प्रकाशके लिये दीपक रखना हो तो ध्याताकी दृष्टि दीपकपर न पड़े, पर चित्रपटके ऊपर ही प्रकाश पड़े—इस तरह ध्याताके पृष्ठभागमें दीपक रखना चाहिये।)

राग-द्वेष छूटे नहीं और परिणाम ढूँढ़ते हैं। तीन रोज ध्यान किया और कहते हैं, आगे नहीं बढ़ते। भीतर ढूँढ़ना है। भगवत्-कृपा और पूर्वसंस्कारसे सब होता है। कृपा प्राप्त करनेके लिये पात्र बननेका प्रयत्न करना चाहिये।

नाम-जप करो। अगर ध्यान न लगे तो प्रभुको खूब खरी-खोटी सुना दो। वे जरूर सुनेंगे। भगवान्के लिये खूब रोना, उन्हें व्याकुलतापूर्वक पुकारना। वे अवश्य सुनेंगे। देखो, जिसने एक बार इस मार्गमें पैर रखा, यहाँका आनन्द जिसे मिला, वह यहाँसे लौट नहीं सकता।

कुछ करनेको आये हो तो खूब जप और ध्यान करो। करोगे तो मार्ग खूब साफ होगा। अभ्यास करोगे तो उसमें अटकोगे नहीं। राम-नाम ठंडी आग है। दोषोंको जलाती है और गुणोंको बढ़ाती है।

'रामहि केवल प्रेमु पिआरा।' (मानस २। १३६। १)

एक बार प्रेमपूर्वक उच्चारण करनेसे ही भगवान् मिलते हैं। बहुत लोग कहते हैं—'खूब रामनाम लिखनेपर भी लाभ क्यों नहीं?' रामनाम कैसे लिखना चाहिये? भगवान्के स्वरूपका ध्यान करते हुए रामनाम लिखें। हम तो यह चाहते हैं कि हमको कुछ न करना पड़े और योगियोंकी दुर्लभ गति हमको मिल जाय। अर्थभावनासहित लिखनेपर हमको भगवान् सद्गति देंगे। अगर हम स्नेहसे नाम जपते हैं तो वे हमको जो-जो हम माँगते हैं, वह सभी देते हैं।

जहाँ कोई काम न दे, जिसका कोई न हो, उसके सखा श्रीरामनाम हैं। वे 'दीन' को, जो वह चाहता है, मुक्तहस्तसे देते हैं। करके देखो। दो-चार लाख नाम अर्थानुसंधानसहित प्रेमसे लिखकर तो देखो।

'आधार निराधार को है हेतु सुखसार को।'

रामनाम ही जीवनका आधार है। हमारे दूषित अन्तःकरणके लिये रामनामके अतिरिक्त और कोई अवलम्ब नहीं। यज्ञ हमसे हो नहीं सकते; कारण, उसके लिये द्रव्य चाहिये। योगका अभाव है। मानसिक पूजनमें भी अन्तःकरण शुद्ध होना चाहिये। इसलिये कलिमें अन्तःकरण-शुद्धिके लिये नामस्मरण सर्वोपरि है। प्रेमसे नाम जपो। ध्यान रहे कि यदि हमसे कोई दोष न बने तो साधन जल्दी फलित होता है। जिससे हमारे विचार बिगड़ें, ऐसा सङ्ग, आचार-व्यवहार न हो। हम सहनशील और उदार बनें।

भगवान्का नाम लेना ही चाहिये। भाव-कुभाव, आलस्य अथवा प्रेमसे—किसी तरह भी नाम लेनेसे लाभ अवश्य होता है। खेतमें बीज उलटा-सीधा पड़नेपर भी उगता ही है। नामस्मरणसे हमारे द्वादश स्थानोंकी शुद्धि होती है। जब ओस गिरती है, तब दीखती नहीं, पर कपड़ा रखेंगे तो भीग जायगा। इस तरह नामस्मरणका फल न दीखे, फिर भी नामस्मरण करते रहना। अर्थानुसंधान करते हुए नाम जपना। अन्तःकरण-शुद्धि जरूर होती जायगी।

मन्त्र-जप होना आसान बात नहीं । गुरुसे खूब सामान्य ढंगसे मन्त्र-जाप करो । इससे शारीरिक, सामाजिक आदि अन्य बाधाएँ, जो साधनमें आनेवाली होंगी, दूर हो जायँगी । श्रद्धा खूब होनी चाहिये । एक भाईने सामान्य ढंगसे ३८ वर्ष मन्त्रजप किया । फिर थोड़ा साधन करनेपर अच्छा परिणाम देखा और उन्हें पूर्ण संतोष हुआ ।

तन्द्रा-जैसी अवस्थामें जप यदि होता है तो यह अच्छा है । इस अवस्थाको हटानेका यत्न नहीं करना । अगर मन्त्र-जपका ध्यान रहता है तो आप उसे तन्द्रा कैसे कह सकते हैं ? मनका निरोध पूर्णतया करना । एकाग्रता आन्तरदृष्टिसे आती है ।

मेरुदण्ड सतत सीधा रखना । साधकको चिकने पदार्थ ज्यादा नहीं खाने चाहिये । इससे प्रमाद बढ़ता है । साधकके स्वच्छ, धुले हुए वस्त्र और आसनको कोई न छुए । बिना स्नान आसनको छूना नहीं । साधनकी जगह अपने हाथोंसे साफ करना, किसीके पहने हुए वस्त्र नहीं पहनना । आसन मुलायम रखना ।

सम्यक् प्रकारसे क्रियामें आरूढ़ हो जाना चाहिये । यह बात कहने-सुननेकी नहीं है, आचरणमें लानेकी है । कितना ही लिखो-पढ़ो, लेकिन बिना अनुभव सब फीका है । अनुभूतिका परिणाम सत्य तत्त्व है ।

(संकलनकर्ता—श्रीनंदा खीमजी, श्रीपार्वती खीमजी)

साकेत—दिव्य अयोध्या

(लेखक—मानसतत्त्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी)

साकेते स्वर्णपीठे मणिगणखचिते कल्पवृक्षस्य मूले
नानारत्नौघपुञ्जे कुसुमितविपिने नेत्रजास्वच्छकूले ।
जानक्यङ्के रमन्तं नृपनयविधृतं मन्त्रजाप्यैकनिष्ठं
रामं लोकाभिरामं निजहृदिकमले भासयन्तं भजेऽहम् ॥

साकेतरासरसकेलिविधौ विदग्धां
ब्रह्मेन्द्ररुद्रवसुवृन्दसशक्तिजुष्टाम् ।
आनन्दब्रह्मद्रवरूपमतीं नतोऽस्मि
तां रामप्रेमजलपूरणब्रह्मरूपाम् ॥

ब्रह्मादिभिः सुरवरैस्समुपास्यमानां
लक्ष्म्यादिभिश्च सखिभिः परिसेव्यमानाम् ।
सर्वेश्वरैः सहगणैः परिगीयमानां
तां राघवेन्द्रनगरीं नितरां नमामि ॥

'दिव्यातिदिव्य साकेतलोकमें भगवान्‌के नेत्र (-जल) से उत्पन्न सरयू नदीके निर्मल कूलपर पुष्पित कानन है । उसके अन्तर्गत कल्पवृक्षके मूलमें, जो नाना प्रकारकी रत्नराशिका पुञ्जमात्र है, मणिजटित एक स्वर्णमय पीठ है । उसपर जगज्जननी जानकीके साथ दिव्य केलिमें रत, राजनीतिके धुरन्धर, अपनी आराध्या एवं प्रियतमा भगवती जानकीके ही मन्त्रजपमें अनन्यभावसे परायण तथा अपने निजजनोंके हृदयरूपी कमलमें प्रकाश फैलाते हुए लोकसुखदायक भगवान् श्रीरामका मैं भजन करता हूँ ।'

'मैं उन नदीश्रेष्ठा भगवती सरयूको प्रणाम करता हूँ, जो साकेतलोकमें निरन्तर होनेवाली रासरूपी रस केलिके विधानमें परम पटु हैं, जो शक्तिसहित ब्रह्मा, रुद्र, वसु आदि देवगणोंके द्वारा सेवित हैं, जिनके रूपमें स्वयं आनन्दमय ब्रह्म ही द्रवित होकर प्रवहमाण है तथा जो भगवान् श्रीरामके नेत्रोंसे निकले हुए प्रेमाश्रुओंसे पूर्ण ब्रह्मस्वरूपा हैं ।'

'मैं भगवान् राघवेन्द्रकी राजधानी अयोध्यापुरीकी आदरपूर्वक वन्दना करता हूँ, जो ब्रह्मादि देववरोंके द्वारा उपासित हैं, भगवती लक्ष्मी-प्रभृति अपनी सखियोंद्वारा सुसेवित हैं और जिनका अपने-अपने गणों (पार्षदों) सहित सम्पूर्ण ईश्वरकोटिके देवताओंके द्वारा स्तवन किया जाता है ।'

आनन्दाम्बुधि भगवान्‌के नित्यधामके विषयमें पूर्वकालमें दार्शनिकोंने प्रश्नोत्तर-रूपमें इस प्रकार समझाया था—

प्रश्न—किमात्मिका भगवदभिव्यक्तिः ?

प्रश्न—भगवान्‌का आविर्भाव या प्राकट्य किस रूपमें होता है ?

उत्तर—यदात्मको भगवान् तदात्मिका भगवदभिव्यक्तिः ।

उत्तर—भगवान्‌का अपना जो स्वरूप है, उसी रूपमें उनकी अभिव्यक्ति होती है ।

प्रश्न—किमात्मको भगवान् ?

प्रश्न—भगवान्‌का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—सदात्मको भगवान्, चिदात्मको भगवान्, आनन्दात्मको भगवान् । अतश्च सच्चिदानन्दात्मिका भगवदभिव्यक्तिः ।

उत्तर—भगवान् सत्स्वरूप हैं, चित्स्वरूप हैं, आनन्दस्वरूप हैं। इसीलिये उनका प्राकट्य भी सत्स्वरूप, चित्स्वरूप, आनन्दस्वरूप ही होता है।

यहाँ चित्का अर्थ स्वयम्प्रकाशात्मकता मात्र है, चैतन्य नहीं। भगवान्‌के नित्यधामको ही वैदिक भाषामें 'त्रिपाद्विभूति' कहा जाता है। परमात्माकी समग्र विभूति दो भागोंमें विभक्त है। एक चतुर्थांशका एक भाग है, जिसे 'एकपाद्विभूति' कहा जाता है। इसीका नाम अविद्यापाद एवं मायापाद भी है और तीन चतुर्थांशोंका एक भाग है, जिसे 'त्रिपाद्विभूति' कहा जाता है और उसीके नाम ब्रह्मपाद, आनन्दपाद एवं शुद्धसत्त्वपादादि भी हैं।

'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।'
(ऋग्वेद १०। ९०। ३; अथर्व० १९। ६। ३; यजु० ३१। ३; तै० आ० ३। १२। १)

'त्रिपादूर्ध्वमुदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।'
(ऋग्वेद १०। ९०। ४; यजु० ३१। ४; अथर्व० १९। ६। २; तै० आ० ३। १२। २)

दोनों भागोंकी सीमा विरजा है। एकपाद् (मायापादविभूति) में ही युगपत् प्रतिपल अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड बना-बिगड़ा करते हैं—

सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥
जासु तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया॥
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥
(श्रीरामचरितमानस)

इस 'एकपाद्विभूति'के लिये कहा गया है—

"इस 'मायापाद'के इर्द-गिर्द तथा नीचेकी ओर कोई सीमा नहीं है। इसके ऊपरकी ओर विरजा नदी है। त्रिपाद्विभूतिके नीचेकी सीमा विरजा नदी ही है, ऊपर तथा दोनों पार्श्वोंमें सीमा नहीं है।"

आज जिस ब्रह्माण्डमें हमलोग रहते हैं—"यह प्रकृतिसे उत्पन्न रमणीय ब्रह्माण्ड (भूः, भुवः आदि सात ऊपरके तथा अतल, वितल आदि सात नीचेके—कुल) चौदह लोकोंसे व्याप्त है। द्वीपोंसे युक्त सागरोंसे, (स्वेदज, अण्डज, जरायुज एवं उद्भिज्ज—इन) चार कोटिके जीवोंसे तथा महान् आनन्ददायक पर्वतोंसे परिपूर्ण है। इतना ही नहीं, पर्तोंकी परतोंके समान दस उत्तरोत्तर विशाल आवरणोंसे यह घिरा हुआ है। यह प्राकृत ब्रह्माण्ड साठ करोड़ योजन ऊँचा और पचास करोड़ योजन विस्तारवाला है। यह अण्ड अपने इर्द-गिर्द तथा ऊपर-नीचे कड़ाहेके समान कठोर भागसे उसी प्रकार सब ओर घिरा हुआ है, जैसे अनाजका बीज कड़ी भूसीसे घिरा रहता है। जैसे कैथका फल बीजोंके आधारपर स्थित रहता है, उसी प्रकार जड-चेतनात्मक ब्रह्माण्ड इसी अण्डकटाहके आधारपर स्थित है। पृथ्वीका घेरा एक करोड़ योजनका है, जलका घेरा दस करोड़ योजनका कहा गया है, अग्निका घेरा सौ करोड़ (एक अरब) योजनके परिमाणका है, वायुका घेरा हजार करोड़ (दस अरब) योजन परिमाणका है। आकाशका आवरण दस हजार करोड़ (एक खरब) योजनका है, अहंकारका आवरण एक लाख करोड़ (दस खरब) योजनका और प्रकृतिका आवरण असंख्य योजनका कहा गया है। प्रकृतिके अन्तर्गत समस्त लोक कालरूप अग्निके द्वारा (प्रलयकालमें) जला दिये जाते हैं।"

× × ×

"भगवान्‌का (साकेत) धाम प्रकृतिके परे, सदा रहनेवाला, अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित, निर्विकार, मायारूपी मलसे रहित, काल एवं प्रलयके प्रभावसे मुक्त तथा एकमात्र भक्तिसे ही प्राप्त होता है। उसीके सम्बन्धमें गीतावक्ता श्रीकृष्ण कहते हैं—'उसे न तो सूर्य प्रकाशित करता है, न चन्द्रमा और न अग्नि। जहाँ पहुँचकर कोई भी लौटकर इस प्राकृत ब्रह्माण्डमें नहीं आता, ऐसा मेरा सर्वश्रेष्ठ परम धाम है (गीता १५। ६)।" जिस मायिक प्रपञ्चका मैंने ऊपर उल्लेख किया है, "वह अविद्यारूप घने अन्धकारसे व्याप्त है; उसके ऊपरी भागमें विरजा नामकी नदी, जिसकी कोई सीमा नहीं है, विश्व-ब्रह्माण्डके उस पार उसका आवरण बनी हुई स्थित है। विरजा नदी प्रकृति एवं परव्योम (भगवद्धाम) के बीचमें विद्यमान है।" (बृहद्ब्रह्मसंहिता, पाद ३, अध्याय १, श्लोक ११ से १९, ४० से ४३)

भूलोक और महर्लोकके बीचमें भुवर्लोक और स्वर्लोक हैं। कहा गया है—

"'महर्लोक' पृथ्वीके ऊपर (भुवर्लोक एवं स्वर्लोकसे भी आगे) एक करोड़ योजन परिमाणका है। उसके ऊपर दो करोड़ योजन परिमाणका 'जनलोक' है, उसके ऊपर

चार करोड़ योजनका 'तपोलोक' और उसके भी ऊपर आठ करोड़ योजनका 'सत्यलोक' है। उसके बाहर 'सप्तावरण' नामका बाहरी घेरा है।''

('उपासनात्रयसिद्धान्त' नामक ग्रन्थमें उद्धृत सदाशिव-संहितासे)

विरजाके उस पार स्थित त्रिपाद्विभूतिको ही उपासकोंकी भाषामें परम धाम, नित्यलोक, साकेत, गोलोक एवं महावैकुण्ठ आदि कहा जाता है और साम्प्रदायिक रहस्यग्रन्थोंमें अलग-अलग इनका विस्तृत वर्णन पाया जाता है।

शिवहर स्टेटसे सं० १९९७ वि० में प्रकाशित शिवसंहिताके पञ्चम पटलके बीसवें अध्यायमें वर्णन है—

अयोध्या नन्दिनी सत्यनामा साकेत इत्यपि।
कोसला राजधानी च ब्रह्मपूरपराजिता ॥ १५॥
अष्टचक्रा नवद्वारा नगरी धर्मसम्पदाम्।
द्रष्टव्यं ज्ञाननेत्रेण ध्यातव्या सरयूस्तथा ॥ १६॥

'अयोध्या नगरीके अनेक नाम हैं—जैसे नन्दिनी, सत्या, साकेत, कोसला, राजधानी, ब्रह्मपुरी और अपराजिता। वह अष्टदल पद्मके आकारकी है, नौ द्वारोंसे युक्त है। यह धर्मके धनी लोगोंकी नगरी है। इसे ज्ञानके नेत्रोंसे देखकर इसका तथा (साथ-ही-साथ) सरयू नदीका (भी) ध्यान करना चाहिये।'

इस ब्रह्मपुरी अष्टचक्रा नवद्वारा 'साकेत'के नाम ही अयोध्या, अपराजिता, सत्यलोक, सत्यधाम आदि भी हैं। अथर्ववेद-मन्त्रसंहिताके दसवें काण्डके दूसरे सूक्तके २७½ से ३३तक अन्तिम साढ़े पाँच मन्त्रोंमें अयोध्या (साकेत) का जितना विपुल, विशद, सुस्पष्ट अथच साम्प्रदायिक वर्णन है, उतना किसी भी पुरीका वर्णन वेद-मन्त्रसंहिताओंमें नहीं है। इसका कारण यही है कि वेद भी तो श्रीरामजीके—

'सगुन जस नित गावहीं।' (श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड)

उन वेदमन्त्रोंके शब्दार्थमें किसीको कुछ भी अपनी ओरसे (अध्याहार करके) मिलानेकी आवश्यकता नहीं रहती। वे मन्त्र नीचे दिये जाते हैं—

पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥
यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥
(अथर्व० १० । २ । २८-२९)

इस छंद मन्त्रका अन्वय पदमें ही है; अतः साथ ही अर्थ भी दिया जाता है—

(यः) जो कोई, (ब्रह्मणः) ब्रह्मके अर्थात् परात्पर परमेश्वर, परमात्मा, जगदादिकारण, अचिन्त्यवैभव श्रीसीतानाथ श्रीरामजीके, (पुरम् वेद) पुरको जानता है, (उसे भगवान् तथा भगवान्के पार्षद—सब लोग चक्षु, प्राण और प्रजा देते हैं)। किस पुरीको जाननेके लिये कहते हो? (यस्याः) जिस पुरीका स्वामी (पुरुषः उच्यते) 'पुरुष' कहा जाता है, अर्थात् जिसका प्रतिदिन नाम-स्मरण किया जाता है, उस पुरुषकी पुरीको जाननेके लिये श्रुति कह रही है। (यः ब्रह्मणः) जो कोई अनन्तशक्तिसम्पन्न, सर्वव्यापक, सर्वनियन्ता सर्वशेषी, सर्वाधार श्रीरामजीकी, (अमृतेन आवृताम्) अमृत अर्थात् मोक्षानन्दसे परिपूर्ण, (ताम् पुरम् वेद) उस अयोध्यापुरीको जानता है, (तस्मै) उसके लिये, (ब्रह्म च ब्राह्माः च) साक्षात् भगवान् और ब्रह्मके सम्बन्धी अर्थात् भगवान्के हनुमान्, सुग्रीव, अङ्गद, मैन्द, सुषेण, द्विविद, दधीमुख, कुमुद, नील, नल, गवाक्ष, पनस, गन्धमादन, विभीषण, जाम्बवान् और दधिमुख इत्यादि प्रधान षोडश पार्षद अथवा नित्य और मुक्त सर्वजीव मिलकर, (चक्षुः) उत्तम दर्शन-शक्ति, (प्राणम् प्रजाम् ददुः) उत्तम प्राणशक्ति अर्थात् आयुष्य और बल तथा संतान आदि देते हैं।'

वेदोंके संस्कारभाष्यकार पण्डितराज ... स्वामी श्रीभगवदाचार्यजी लिखते हैं कि ''इस मन्त्रमें 'ददुः' इस भूतकालिक प्रयोगको देखकर घबराना नहीं चाहिये। वेदकी सब बातें अलौकिक ही होती हैं।''

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥
(अथर्व० १० । २ । ३०)

आभ्यन्तरिक नेत्र तथा (प्राणः) शारीरिक और आत्मिक बल, (जरसः पुरा) मृत्युसे पूर्व, (न जहाति) निश्चय ही नहीं छोड़ते ।'

तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीरामकी उभयपादस्थित दोनों अयोध्यापुरियाँ पवित्र अथच दिव्य हैं । त्रिपाद्विभूतिस्थ साकेतके समान ही एकपाद्विभूतिस्थ साकेत—अयोध्याका भी माहात्म्य है । इतना ही अन्तर है कि—

भोगस्थानं परायोध्या लीलास्थानं त्वियं भुवि ।
भोगलीलापती रामो निरङ्कुशविभूतिकः ॥
(शिवसं०, पटल ५, अ० २, श्लोक ८)

'परव्योमस्थित अयोध्या दिव्य (भगवत्स्वरूप) भोगोंकी भूमि है और पृथ्वीगत यह (सबके लिये प्रत्यक्ष) अयोध्या लीलाभूमि है । इन दोनों अयोध्याओंके स्वामी श्रीराम भोग और लीला, दोनोंके मालिक हैं । उनकी विभूति (ऐश्वर्य) अङ्कुशहीन (स्वतन्त्र) है ।'

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽऽवृतः ॥
(अथर्व० १० । २ । ३१)

ब्रह्मकी उस पुरी (भोगस्थान पूः अयोध्या) के नाम और रूपको स्पष्टरूपेण यह मन्त्र बताता है—

(पूः अयोध्या) 'वह पुरी अयोध्याजी ऐसी हैं; (अष्टाचक्रा) जिसमें आठ आवरण हैं, (नवद्वारा) जिसमें प्रधान नवद्वार हैं तथा जो (देवानाम्) दिव्यगुणविशिष्ट, भक्तिप्रपत्तिसम्पन्न, यमनियमादिमान्; परमभागवत चेतनोंसे 'सेव्य इति शेषः' सेवनीय है । (तस्यां स्वर्गः) उस अयोध्यापुरीमें बहुत ऊँचा अथवा बहुत सुन्दर, (ज्योतिषा आवृतः) प्रकाशपुञ्जसे आच्छादित; (हिरण्ययः कोशः) सुवर्णमय मण्डप है ।''

इस मन्त्रमें अयोध्याजीका स्वरूप-वर्णन है । अयोध्या-पुरीके चारों ओर कल्लोज्ज्वल, दिव्यप्रकाशात्मक आवरण है, जो भीतरसे निकलनेपर अष्टमावरण और बाहरसे प्रवेश करनेपर प्रथमावरण या प्रथम चक्र है—

महाज्योतिरयोध्यायाः प्रथमावरणे शुभम् ।
यत्र गच्छन्ति कैवल्याः सोऽहमस्मीतिवादिनः ॥
(वसिष्ठसंहिता २६ । १ 'साकेतसुषमा'में उद्धृत)

''अयोध्याके सर्वप्रथम घेरेमें शुभ्र ब्रह्ममयी ज्योति प्रकाशित है । 'सोऽहम्, सोऽहम्' कहनेवाले कैवल्यकामी पुरुष (मरनेपर) इसी ज्योतिमें प्रवेश करते हैं ।''

'सोऽहं' या 'अहं ब्रह्मास्मि' वादियोंका 'सुरदुर्लभ कैवल्य परमपद' यही है । उस आवरणमें सर्वत्र दिव्य भव्य प्रकाश मात्र रहता है ।

बाहरसे प्रवेश करनेपर द्वितीय, किंतु भीतरसे निकलनेपर सप्तमावरण अर्थात् सप्तम चक्र है, जिसमें प्रवहमाणा श्रीसरयूजी हैं—

अयोध्यानगरी नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी ।
यस्यांशांशेन वैकुण्ठो गोलोकादिः प्रतिष्ठितः ॥
यत्र श्रीसरयूर्नित्या प्रेमवारिप्रवाहिणी ।
यस्या अंशेन सम्भूता विरजादिसरिद्वराः ॥
(सा० सु०, ५०७)

'अयोध्या नगरी नित्य है । वह सच्चिदानन्दरूपा है । वैकुण्ठ एवं गोलोक आदि भगवद्धाम अयोध्याके अंशके अंशसे निर्मित हैं । इसी नगरीके बाहर सरयू नदी हैं, जिनमें श्रीरामके प्रेमाश्रुओंका जल ही प्रवाहित हो रहा है । विरजा आदि श्रेष्ठ नदियाँ इन्हीं सरयूके किसी अंशसे उद्भूत हैं ।'

'साकेतके पुरद्वारे सरयूः केलिकारिणी' ॥ ८९ ॥
(बृहद्ब्रह्मसंहिता, पाद ३, अ० १)

'उस अयोध्या नगरीके द्वारपर सरयू नदी क्रीड़ा करती रहती हैं ।'

जो बाहरसे तीसरा और भीतरसे निकलनेपर छठा आवरणचक्र है, उसमें महाशिव, महाब्रह्मा, महेन्द्र, वरुण, कुबेर, धर्मराज, महान् दिक्पाल, महासूर्य, महाचण्ड, यक्ष, गन्धर्व, गुह्यक, किंनर, विद्याधर, सिद्ध, चारण, अष्टादश सिद्धियाँ और नवनिधियाँ दिव्यस्वरूपसे निवास करती हैं ।

बाहरसे चौथा और भीतरसे निकलनेपर जो पाँचवाँ आवरण है, उसमें दिव्यविग्रहधारी वेद-उपवेद, पुराण-उपपुराण, ज्योतिष, रहस्य, तन्त्र, नाटक, काव्य, कोश, ज्ञान, कर्म, योग, वैराग्य, यम, नियम, काल, कर्म, गुण आदि निवास करते हैं ।

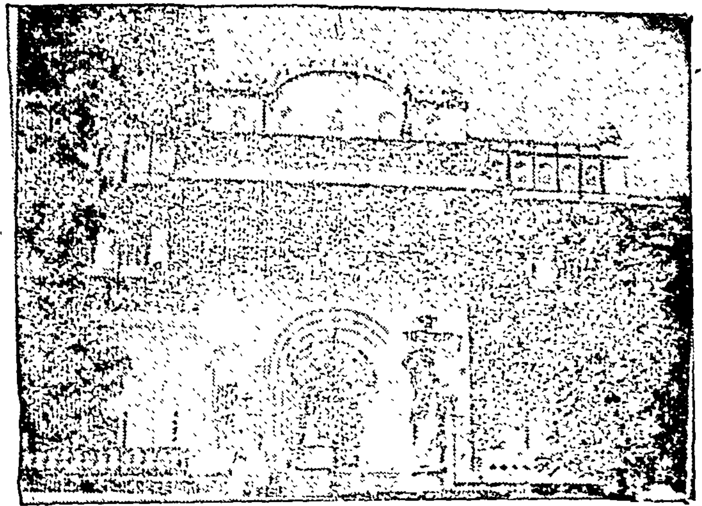
जो बाहरसे पाँचवाँ तथा भीतरसे चौथा आवरण है, उसमें भगवान्‌का मानसिक ध्यान करनेवाले योगी और ज्ञानीजन निवास करते हैं ।

साकेतपुरीके पाँचवें घेरेमें विद्वान्‌लोग उस चिन्मय ज्योतिरूप ब्रह्मका निवास बतलाते हैं, जो निष्क्रिय, निर्विकल्प,

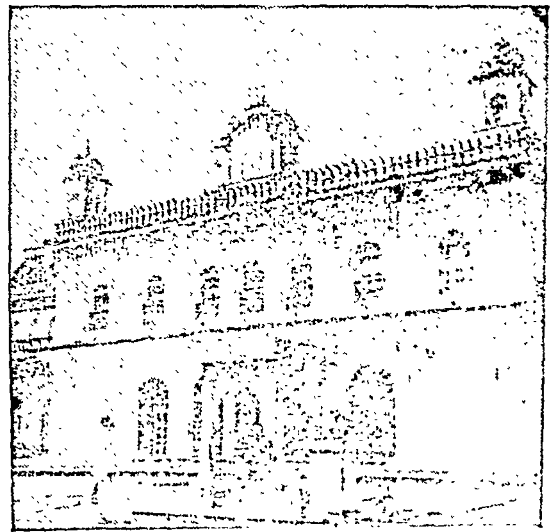
श्रीअयोध्याके कुछ प्रमुख दर्शन



कनकभवनके आराध्य, अयोध्या



कनकभवनका प्रवेश-द्वार, अयोध्या



कनकभवनका मुख्य मन्दिर, अयोध्या



श्रीलालसाहब दरबार, अयोध्या



रसिक-भक्तोंकी भावनाका दिव्य-साकेत

अयोध्या और महाराष्ट्रके कुछ दर्शन



अंगापुर-ह्रदसे श्रीसमर्थको प्राप्त श्रीरामका श्रीविग्रह, चाफळ



हनुमानगढ़ीके श्रीहनुमान्‌जी, अयोध्या



श्रीहनुमान्‌जी (दोनों ओर), गोदावरीतट



श्रीरसिकेन्द्रविहारी, लक्ष्मणकिला, अयोध्या

निर्विशेष, निराकार, ज्ञानाकार, निरञ्जन (मायाके लेशसे शून्य), वाणीका अविषय, प्रकृतिजन्य (सत्त्व, रज आदि) गुणोंसे रहित, सनातन, अन्तरहित, सर्वसाक्षी, सम्पूर्ण इन्द्रियों एवं उनके विषयोंकी पकड़में न आनेवाला, अपितु उन सबको प्रकाश देनेवाला, संन्यासियों, योगियों तथा ज्ञानियोंका लयस्थान है।

जो बाहरसे पाँचवाँ और भीतरसे निकलनेपर चौथा आवरण है, उसमें महाविष्णुलोक, रमावैकुण्ठ, अष्टभुज भूम-पुरुषका लोक, महाब्रह्मलोक और महाशम्भुलोक हैं।

गर्भोदकशायी एवं क्षीराब्धिशायी भगवान् नारायण तथा श्वेतद्वीपाधिपति एवं रमावैकुण्ठनायक भगवान् विष्णु— ये सभी अयोध्याके चौथे घेरेमें स्थित रहकर उसी नगरीका सेवन करते हैं।

जो बाहरसे जानेपर छठा और भीतरसे निकलनेमें तीसरा आवरण है, उसमें मिथिलापुरी, चित्रकूट, वृन्दावन, महावैकुण्ठ अथवा भूत-वैकुण्ठ आदि विराजमान हैं। कहा गया है—

"अयोध्याका बाहरी स्थान ही 'गोलोक' कहलाता है।"

× × ×

"साकेतके पूर्व दिशावाले भागमें 'मिथिलापुरी' सुशोभित है।"

× × ×

"कोसलपुरीकी दक्षिणदिशामें 'चित्रकूट' नामक महान् पर्वत सुशोभित है, जो सच्चिदानन्दमूर्ति है।"

× × ×

"अयोध्याके पश्चिमभागमें परमात्मा श्रीकृष्णका 'वृन्दावन'नामक सनातन धाम है, जो चिदानन्दमय एवं अद्भुत है।"

× × ×

"अयोध्याके उत्तरभागमें भगवान् महाविष्णुका 'महावैकुण्ठ' नामक सनातन परमधाम है, जिसका वेदोंने बखान किया है।"

जो बाहरसे जानेपर सातवाँ आवरण है और भीतरसे निकलनेमें दूसरा आवरण है, उसमें दिव्य द्वादशोपवन एवं चार लीलापर्वत हैं।

'साकेतके अन्तर्गत शोभापुञ्ज, श्रीशृङ्गारवन, अद्भुत विहारवन, दिव्य पारिजातवन, उत्तम अशोकवन, [illegible] रसाल (आम्र)-वन, चम्पकवन, चन्दनवन, रमणीय प्रमोदवन, श्रीनागकेशरवन, अनन्तवन, रम्यकदम्बवन— ये बारह उपवन हैं।'

(रुद्रयामल० अयो० भाग ३० । ४८—५०)

'उपर्युक्त सभी सघन वनोंमें, जो गहरे नीले रंगकी-सी आभा बिखेर रहे हैं, नाना जातिके नित्य नवीन, चित्र-विचित्र, चिन्मय, कमनीय, सदा किशोर अवस्थासे युक्त, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, अत्यन्त चिकने, कोमल एवं सूक्ष्म वृक्ष हैं, जो डालियोंसे लटकते हुए अपने नित्य-नवीन, चिकने, कोमल, वायुवेगसे चञ्चल, विचित्र, सघन एवं नीले, हरे, पीले एवं गुलाबी रंगके पत्तोंसे अमृतकी बूँदें टपकाते रहते हैं; जो पँचरंगे, दिव्य, सुगन्धित, नित्य, सब ओरसे खिले हुए असंख्य पुष्पोंसे अमृतकी बूँदें टपकाते रहते हैं और जो विशेषकर अपने सुधा-मधुर फलोंके भारी बोझसे अपनी डालियोंके रूपमें भूमिपर लोट रहे हैं। इनमेंसे कइयोंके नीचे दिव्य सुवर्णके चबूतरे बने हुए हैं, जिनमें श्रेष्ठ रत्नोंसे पच्चीकारी की गयी है। उन वृक्षोंपर फूले हुए पञ्च प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित वल्लरी जालका चँदोवा तना है; किन्हीं किन्हींकी छाल सोनेकी है; मोती-जैसे पुष्पोंको वे मुकुटरूपमें धारण किये हुए हैं। उनपर फलोंके स्थानपर चिन्तामणियाँ लगी हैं और उनके पत्ते नीलमके बने सुशोभित हैं।'

(वसिष्ठसंहिता, 'उपासनात्रयसिद्धान्त'से उद्धृत)

× × ×

'उस वनके पूर्व आदि चारों दिशाओंमें चार पर्वत हैं, उनके नाम क्रमशः मुझसे सुनो। वे हैं—शृङ्गारपर्वत, रत्नपर्वत, लीलापर्वत और मुक्तापर्वत। वे अपनी शोभासे दसों दिशाओंको उद्भासित करते रहते हैं। पूर्व दिशामें नीलमका बना हुआ 'शृङ्गारपर्वत' है, जिसपर नित्य सूर्य उदित होते हैं और श्रीरामकी प्रिया श्रीआह्लादिनी देवीके [illegible] रहते हैं। दक्षिण दिशामें [illegible] बना हुआ [illegible] विराजमान है, जो अपनी कान्तिसे सम्पूर्ण वनको प्रकाशित करता रहता है और जो [illegible] प्रिय है। पश्चिम दिशामें [illegible] बना हुआ [illegible]

'मुक्तापर्वत' प्रकट है, जो विचित्र पुष्पपुञ्जोंसे सम्पन्न लतासमूहोंके वितान (चँदोवे) से सुशोभित तथा सुधाको भी मात कर देनेवाले स्वादिष्ट फलोंके बोझसे अत्यधिक झुके हुए वृक्षोंसे मण्डित है।'

(वसिष्ठसंहिता, अध्याय २६)

बाहरसे जानेमें आठवाँ और भीतरसे निकलनेमें जो प्रथम आवरण है, उसमें नित्यमुक्त भगवत्-पार्षदगण रहते हैं और भगवान्के अनन्तानन्त अवतार भी इसीमें रहते हैं।

"साकेतके दक्षिणद्वारपर श्रीरामके प्रति वात्सल्यभाव रखनेवाले श्रीहनुमान्जी (द्वारपालके रूपमें) विराजमान हैं। उसी द्वार-देशमें 'सांतानिक' नामका वन है, जो श्रीहरि (श्रीराम) को प्रिय है।"

× × ×

"मत्स्य, कूर्म, अनेक वराह, अनेक नरसिंह, वैकुण्ठ, हयग्रीव, हरि, वामन, केशव, यज्ञ, धर्मपुत्र, नारायणऋषि तथा उनके छोटे भाई नर, देवकीनन्दन श्रीकृष्ण, वसुदेवनन्दन बलराम, पृश्निगर्भ, मधुसूदन, गोविन्द, माधव, परात्पर वासुदेव, अनन्त, संकर्षण, इलापति, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध—भगवान्के ये सभी व्यूह भी श्रीरामकी आज्ञामें रहकर एक साथ उनकी सेवामें उपस्थित होते हैं। 'श्रीराम' नामसे विख्यात महेश्वर इनके तथा अन्य ईश्वरोंके द्वारा सेव्य हैं; कारण, ये इन सबको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले तथा इनके मूल हैं। इनके बिना ये सब ऐश्वर्यहीन हैं।"

(सदाशिवसंहिता ५ । २ । २४–२८)

विभिन्न साम्प्रदायिक ग्रन्थोंमें आवरणस्थ निवासियोंके स्थानोंमें यत्र-तत्र हेर-फेर भी है, परंतु तत्तन्निवासियोंके नामोंमें हेर-फेर नहीं है।

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः॥

(अथर्व० १० । २ । ३२)

"(तस्मिन्) उस विशाल (हिरण्यये) सुवर्णमय, (कोशे) मण्डपमें, (तस्मिन्) उसके अर्थात् उस मण्डपके (आत्मन्वत्) आत्माके समान, (यद् यक्षम्) जो पूजनीय देव विराजमान है, (तत्) उसीको (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानवान् जन (विदुः) जानते हैं। अथवा 'ब्रह्मविदः' में दो पद हैं—'ब्रह्म' और 'विदः'। तब अर्थ हुआ यह कि (विदःजन) विद्वान् जन उसी यक्षको, उसी परमोपास्य देवको, (ब्रह्म विदुः) परात्पर सनातन महापुरुष जानते हैं। जिस कोशमें वह यक्ष विराजमान है वह कोश कैसा है? (त्र्यरे) उसमें तीन अरे लगे हुए हैं, अर्थात् सत्, चित्, आनन्द—तीन अरोंपर वह मण्डप बना हुआ है तथा (त्रिप्रतिष्ठिते) चित्, अचित् एवं ईश्वर, तीनोंसे प्रतिष्ठित—आवृत है।"

इस मन्त्रमें जो 'तस्मिन्' पद आया है, वह षष्ठीके अर्थमें है। इसीसे उसका अर्थ 'उसके' किया गया है।

इस मन्त्रमें स्पष्ट ही कहा गया है कि अयोध्याके मध्यमें जो सुवर्णमय मणिमण्डप है; उसमें विराजमान देवको ही विद्वान्लोग 'ब्रह्म' कहते हैं। अयोध्याके मणिमण्डपमें भगवान् श्रीरामके अतिरिक्त अन्य कोई भी विराजमान नहीं है; अतः भगवान् श्रीरामजी ही परब्रह्म हैं। इसी अर्थका पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय दो सौ अट्ठाईसमें विस्तार किया गया है। उसके कुछ श्लोक नीचे दिये जाते हैं—

तद्विष्णोः परमं धाम यान्ति ब्रह्म सुखप्रदम्॥ १०॥
नानाजनपदाकीर्णं वैकुण्ठं तद्धरेः पदम्।
प्राकारैश्च विमानैश्च सौधैः रत्नमयैर्वृतम्॥ ११॥
तन्मध्ये नगरी दिव्या सायोध्येति प्रकीर्तिता।
मणिकाञ्चनचित्राढ्यप्राकारैस्तोरणैर्वृता॥ १२॥

× × ×

मध्ये तु मण्डपं दिव्यं राजस्थानं महोत्सवम्॥ १९॥
मध्ये सिंहासनं रम्यं सर्ववेदमयं शुभम्।
धर्मादिदैवतैर्नित्यं वृतं पादमयात्मकैः॥ २१॥
धर्मज्ञानसहैश्वर्यवैराग्यैः पादविग्रहैः।
ऋग्यजुस्सामाथर्वाख्यरूपैर्नित्यवृतं क्रमात्॥ २२॥
शक्तिराधारशक्तिश्च चिच्छक्तिश्च सदाशिवा।
धर्मादिदेवतानां च शक्तयः परिकीर्तिताः॥ २३॥

× × ×

तन्मध्येऽष्टदलं पद्ममुदयार्कसमप्रभम्।
तन्मध्ये कर्णिकायां तु सावित्र्यां शुभदर्शने॥ २५॥
देव्या सह देवेशस्तत्रासीनः परः पुमान्।
इन्दीवरदलश्यामः कोटिसूर्यसमप्रभः॥ २७॥
युवा कुमारः स्निग्धाङ्गः कोमलावयवैर्युतः।
फुल्लाम्भोरुहसंकाशः कोमलाङ्घ्रिसरोरुहः॥ २८॥

"भक्तलोग (मरकर) भगवान् विष्णुके उस परम धाम वैकुण्ठमें जाते हैं, जो नाना प्रकारके निवासियोंसे पूर्ण है। (परम) आनन्ददायक ब्रह्म वही है। वही भगवान्

श्रीहरिका निवासस्थान है। वह परकोटों, सतमंजिले महलों तथा रत्ननिर्मित प्रासादोंसे घिरा हुआ है। उसी वैकुण्ठधामके बीचमें जो दिव्य नगरी है, वही 'अयोध्या' नामसे विख्यात है। वह नाना प्रकारकी मणियों तथा सोनेके चित्रोंसे सम्पन्न है और परकोटों तथा द्वारोंसे घिरी हुई है।"

"उस अयोध्या नगरीके मध्यमें बहुत ऊँचा एवं दिव्य मण्डप है, जो वहाँके राजाका निवासस्थान है। उसके बीचमें एक आकर्षक एवं चमकीला सिंहासन है, जो अपने पायोंके रूपमें स्थित धर्मादि सनातन देवताओंसे घिरा हुआ है। अथवा धर्म, ज्ञान, महैश्वर्य एवं वैराग्य—इन पायोंके रूपमें स्थित है। अथवा पायोंके रूपमें क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—इन चारों वेदोंके ही द्वारा वह सिंहासन घिरा है। 'शक्ति', 'आधारशक्ति', 'चिच्छक्ति' और 'सदाशिवा'—ये धर्मादि चार देवताओंकी शक्तियाँ कही गयी हैं।"

× × ×

"उक्त सिंहासनके मध्यमें एक अष्टदल (आठ पँखुड़ियोंका) कमल है, जिससे उदयकालीन सूर्यकी-सी आभा निकलती रहती है। उक्त कमलके बीचके कर्णिका-भागमें, जिसे 'सावित्री' कहते हैं, समस्त देवताओंके स्वामी परात्पर पुरुष विराजमान रहते हैं। उनका वर्ण नील कमलकी पँखुड़ियोंकी तरह श्याम है और उनमें करोड़ों सूर्योंका प्रकाश है। वे नित्य युवा होनेके साथ ही कुमारभावापन्न भी रहते हैं। वे स्नेहयुक्त, सुकुमार अङ्गोंवाले, प्रफुल्ल रक्त कमलकी-सी आभावाले और कोमल चरण सरोरुहोंसे सम्पन्न हैं।"

इसी तथ्यको सनत्कुमारसंहितोक्त 'श्रीरामस्तवराज'में और भी स्पष्ट किया गया है—

अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपमध्यगे।
स्मरेत् कल्पतरोर्मूले रत्नसिंहासनं शुभम्॥
तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं नानारत्नैश्च वेष्टितम्।
रामं रघुवरं वीरं धनुर्वेदविशारदम्।
मङ्गलायतनं देवं रामं राजीवलोचनम्॥

"रम्य अयोध्यानगरीमें रत्ननिर्मित मण्डपके मध्यवर्ती कल्पवृक्षके मूलमें चमचमाते हुए रत्नसिंहासनका ध्यान करे। उस सिंहासनके बीचमें अष्टदल कमल है, जो विविध रत्नोंसे घिरा हुआ है। साथ ही उसपर विराजमान रघुश्रेष्ठ, वीरशिरोमणि, धनुर्वेदमें निष्णात, मङ्गलायतन कमल-लोचन श्रीरामका भी ध्यान करे।"

'करुणासिन्धु' श्रीरामचरणदासजी महाराजने रामचरितमानसकी—'जद्यपि सब बैकुंठ बखाना।' (रा० च० मा० ७।४।२) की टीकामें प्रमाण उद्धृत किया है—

वैकुण्ठाः पञ्च विख्याताः क्षीराब्धिश्च रमाख्यकः।
महाकारणवैकुण्ठौ पञ्चमो विरजापरः॥
नित्यादिव्यमनेकभोगविभवं वैकुण्ठरूपोत्तरं।
सत्यानन्दचिदात्मकं स्वयमभून्मूलं त्वयोध्यापुरी॥

'साकेत-सुषमा'में निम्न श्रुति उद्धृत है—

'यायोध्या पूः सा सर्ववैकुण्ठानामेव मूलाधारा मूलप्रकृतेः परा तत्सद्ब्रह्ममयी विरजोत्तरा दिव्यरत्नकोशाढ्या तस्यां नित्यमेव सीतारामयोर्विहारस्थलमस्ति।'

(सा० सु०, रमावैकुण्ठ, पृ० २)

तात्पर्य यह कि "क्षीरसागरस्थ वैकुण्ठ, रमावैकुण्ठ, महावैकुण्ठ, कारणवैकुण्ठ और विरजापार (त्रिपाद्विभूतिस्थ) आदि वैकुण्ठ—इन पाँचों वैकुण्ठोंका तथा अन्य अनन्त वैकुण्ठोंका मूलाधार 'अयोध्या—साकेत' ही है। वह साकेत मूल प्रकृतिसे परे, अखण्ड और अपरिवर्तनीय ब्रह्ममय है, विरजाके दूसरे तीरपर स्थित है, दिव्यरत्नमण्डपवाली है। इसी अयोध्यामें श्रीसीतारामजीकी नित्य विहारभूमि है।"

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सम्परीवृताम्।
पुरं हिरण्मयीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम्॥

(अथर्व० १०।२।३३)

'(ब्रह्म) सर्वान्तर्यामी श्रीरामजी (प्रभ्राजमानाम्) अत्यन्त प्रकाशमयी, (हरिणीम्) मनको हरण करनेवाली अथवा सर्वपापोंका आत्यन्तिक नाश करनेवाली तथा (यशसा सम्परीवृताम्) अनन्तकीर्तिसे युक्त और (अपराजिताम्) सर्वपुरियोंमें अजेय, (पुरम्) उस अयोध्यापुरीमें (आविवेश) प्रविष्ट हैं, अर्थात् विराजमान हैं।'

प्राप्य वेदोंमें तो उपर्युक्त साढ़े पाँच मन्त्र ही हैं; परंतु पुराणोंमें, पाञ्चरात्रीय संहिताओंमें, तन्त्रोंमें, रामायणोंमें एवं साम्प्रदायिक रहस्य-ग्रन्थोंमें अयोध्या—साकेतका इतना विस्तृत वर्णन है कि [illegible] [illegible] है। [illegible] संक्षिप्त [illegible] है।

श्रीअयोध्यापुरी-वन्दना

(प्रेषक—ब्रह्मचारी श्रीभगीरथ रामजी मिश्र)

अयोध्यायै नमस्तेऽस्तु रामपुर्यै नमो नमः ।
आद्यायै च नमस्तुभ्यं सत्यायै तु नमो नमः ॥
सरय्वावेष्टितायै च नमो मातस्तु ते सदा ।
ब्रह्मादिवन्दिते मातर्ऋषिभिः पर्युपासिते ॥
रामभक्तप्रिये देवि सर्वदा ते नमो नमः ।
ये ध्यायन्ति महात्मानो मनसा पूजयन्ति त्वाम् ॥
तेषां नश्यन्ति पापानि ह्याजन्मोपार्जितानि च ।
अकारो वासुदेवः स्याद् यकारस्तु प्रजापतिः ॥
उकारो रुद्ररूपस्तु त्वां ध्यायन्ति मुनीश्वराः ।
सूर्यवंशोद्भवानां तु राज्ञां परमधर्मिणाम् ॥
तेषां सामान्यधात्री त्वं तथा सुकृतिनामपि ।
महिमानं न जानन्ति तव देवमुनीश्वराः ॥
कथं त्वं ज्ञायसे देवि मन्दैर्बुद्धिविवर्जितैः ।
नमस्तेऽस्तु सदा देवि सदा देवि नमो नमः ।
नमोऽयोध्ये नमोऽयोध्ये पापं नस्त्वमपाकुरु ॥

''आप श्रीअयोध्या देवीको मेरा बारंबार प्रणाम है । श्रीरामपुरीके लिये मेरा नमस्कार है, नमस्कार है । आप आद्यापुरीके लिये मेरा नमस्कार है । सत्यादेवीके लिये मेरा बारंबार नमस्कार है । माता ! श्रीसरयूद्वारा आवेष्टित आप अवधपुरीको मेरा नित्य प्रणाम है । जो ब्रह्मादिक देवताओंद्वारा वन्दनीय तथा ऋषियोंद्वारा सदा उपासित हैं, ऐसी राम-भक्तोंकी प्यारी अयोध्या देवि ! आपको मेरा नित्य प्रणाम है । जो महात्मागण मानसिक पूजन करते हुए आपका नित्य ध्यान करते हैं, उनके जीवनभरके पाप नष्ट हो जाते हैं । आपके नाममें जो अकार है, उससे वासुदेवका, यकारसे प्रजापति श्रीब्रह्माजीका तथा उकारसे साक्षात् श्रीशंकरजीका बोध होता है । 'ध्या'से सूचित होता है कि ध्यानपरायण ऋषिगण आपका ध्यान करते हैं । परम धार्मिक सूर्यवंशमें होनेवाले समस्त राजाओंको आप ही धारण करनेवाली हैं और अन्यान्य सुकृती पुरुषोंको भी आप सदासे आश्रय प्रदान करती आयी हैं । आपकी महिमाको मुनिगण और देवसमुदाय भी नहीं जानते, तब हम मन्द भाग्य एवं हीनबुद्धि जन भला आप को कैसे जान सकते हैं । इसलिये हे भगवती ! आपके श्रीचरणोंमें मेरा नित्य बारंबार प्रणाम है । हे अयोध्ये ! आपके लिये पुनः-पुनः नमस्कार है । कृपा कर आप हमारे सब पापोंको नष्ट करें ।''

श्रीसरयू-अष्टक

नमस्ते सरयुदेवि वसिष्ठतनये शुभे ।
ब्रह्मादिसकलैर्देवैर्ऋषिभिर्नारदादिभिः ॥
सदा त्वं सेविता देवि तथा सुकृतिभिर्नरैः ।
मानसाच्च समायाते जगतां पापहारिणि ॥
स्मरतां पश्यतां देवि पापनाशे पटीयसी ।
ये पिबन्ति जलं देवि त्वदीयं गतमत्सराः ॥
स्तनपानं न ते मातुः करिष्यन्ति कदाचन ।
मनुप्रभृतिभिर्मान्यैर्मानितासि सदा शुभे ॥
त्वत्तीरमरणेनैव त्वन्नामरटनेन च ।
ये त्यजन्ति तनुं देवि ते कृतार्था न संशयः ॥
त्वं तु नेत्रोद्भवा देवि हरेर्नारायणस्य हि ।
महिमा तव देवैश्च गीयते च मुहुर्मुहुः ॥
तत्र का हि मनःशक्तिः स्तवने मानुषस्य च ।
त्वत्तीरे सर्वतीर्थानि निवसन्ति चतुर्युगे ॥
नमो देवि नमो देवि पुनरेव नमो नमः ।
हे वासिष्ठि महाभागे प्रणतं रक्ष बन्धनात् ॥

'हे वसिष्ठपुत्री देवी श्रीसरयू ! आपको नमस्कार है । शुभे ! ब्रह्मा आदि समस्त देवताओं तथा नारदादि ऋषियों एवं पुण्यवान् जनोंद्वारा आप सर्वदा सेवित हैं । देवि ! आप मानसरोवरसे आयी हैं और संसारके पापोंको हरनेवाली हैं । दर्शन एवं स्मरण करनेवालोंके समस्त पापोंको नष्ट करनेमें आप परम कुशल हैं । देवि ! मत्सर त्यागकर जो आपके जलका पान करते हैं, वे संसारमें पुनः जन्म लेकर माताका दुग्धपान कभी नहीं करते । शुभे ! महामान्यवर मनु आदि महाराजाओंद्वारा आप सदासे सम्मानिता हैं । देवि ! जो आपके तटपर शरीर त्याग करते हैं अथवा जो जन आपके नामकी रटन लगाते हुए अन्यत्र कहीं भी शरीर त्याग करते हैं, वे अवश्य ही कृतार्थ होते हैं; इसमें कुछ भी संशय नहीं है । देवि ! आप तो नारायण भगवान्के नेत्र-कमलोंसे उत्पन्न हुई हैं; अतः आपकी महिमाको देवगण बराबर गाते रहते हैं, परंतु पार नहीं पाते । तब मनुष्यकी क्या शक्ति है कि आपकी महिमाका पूर्णतया वर्णन कर सके । चारों युगोंमें ही आपके तटपर समस्त तीर्थ निरन्तर निवास करते हैं । देवि ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है और बारंबार नमस्कार है । महाभागे ! वासिष्ठि ! समस्त बन्धनोंसे मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये ।'

श्रीअयोध्यापुरी

सप्तपुरियोंमें प्रथम पुरी 'अयोध्या' है। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके भी पूर्ववर्ती सूर्यवंशी राजाओंकी यह राजधानी रही है। इक्ष्वाकुसे लेकर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामतक सभी चक्रवर्ती नरेशोंने अयोध्याके सिंहासनको विभूषित किया है। भगवान् श्रीरामकी अवतारभूमि होकर तो अयोध्या 'साकेत' हो गयी।

अयोध्याका प्राचीन इतिहास बतलाता है कि वर्तमान अयोध्या महाराज विक्रमादित्यकी बसायी है। महाराज विक्रमादित्य देशाटन करते हुए संयोगवश यहाँ सरयूकिनारे पहुँचे थे और यहाँ उनकी सेनाने शिविर डाला था। उस समय यहाँ वन था। कोई प्राचीन तीर्थ-चिह्न यहाँ नहीं था। महाराज विक्रमादित्यको इस भूमिमें कुछ चमत्कार दीख पड़ा। उन्होंने खोज प्रारम्भ की और पासके योगसिद्ध संतोंकी कृपासे उन्हें ज्ञात हुआ कि यह श्रीअवधकी भूमि है। उन संतोंके निर्देशसे महाराजने यहाँ भगवल्लीलास्थलीको जानकर वहाँ मन्दिर, सरोवर, कूप आदि बनवाये।

मथुराके समान अयोध्या भी आक्रमणकारियोंकी बार-बार शिकार होती रही है। बार-बार आततायियोंने इस पावन पुरीको ध्वस्त किया। इस प्रकार अब अयोध्यामें प्राचीनताके नामपर केवल भूमि और सरयूजी बच रही हैं। अवश्य ही भगवल्लीला-स्थलीके स्थान वे ही हैं।

अयोध्या फैजाबाद जिलेके अन्तर्गत सदर फैजाबादसे पाँच मीलकी दूरीपर सरयूके किनारे बसी हुई एक नगरी है। यहाँपर मन्दिरों एवं धार्मिक स्थानों तथा साधु-संतोंका अधिक निवास है। सर्वप्रधान श्रीरामानन्दीय वैष्णवोंकी यहाँ अधिकता है। साथ ही यहाँपर श्रीरामानुजीय संतोंके भी प्रतिष्ठित स्थान हैं। जहाँ-तहाँ उदासी, संन्यासी, तपस्वी-जनोंके भी स्थान हैं।

श्रीअयोध्यामें गोस्वामी तुलसीदासजीकी मानस-रचनाकी आदि भूमि श्रीतुलसी-चौरा तथा तुलसी-उद्यान दर्शनीय हैं। अवधकी इसी पवित्र भूमिमें रामनवमीके अवसरपर गोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीराम-चरितमानसकी रचना आरम्भ की थी। उक्त श्रीतुलसी-चौरापर श्रीगोस्वामीजीकी मूर्ति प्रतिष्ठित है। यहाँ श्रावण-शुक्ला सप्तमीको तुलसीजयन्ती बड़े समारोहके साथ मनायी जाती है।

अयोध्या लखनऊसे ८४ मील और काशीसे १२० मील है। मुगलसराय, बनारस तथा लखनऊसे यहाँ सीधी गाड़ियाँ आती हैं। स्टेशनसे सरयूजी लगभग तीन मील दूर हैं और मुख्य मन्दिर कनक-भवन लगभग १॥ मील। पूर्वोत्तर रेलवेद्वारा गोरखपुरकी दिशासे आनेपर मनकापुर स्टेशनपर गाड़ी बदलकर लकड़मंडी स्टेशन आना पड़ता है। लकड़-मंडी सरयूजीके उस पार है। सरयूपर पक्का पुल बना हुआ है। सरयूपार होकर अयोध्या आया जा सकता है। बनारस, लखनऊ, प्रयाग, गोरखपुर आदि नगरोंसे अयोध्या पक्की सड़कोंद्वारा भी सम्बन्धित है।

ठहरनेके स्थान

अयोध्यामें यात्री साधुओंके मठोंमें भी ठहरते हैं। प्रायः सभी साधु-स्थानोंमें यात्रियोंके ठहरनेकी व्यवस्था है। अयोध्या तो साधुओंका नगर ही है। नगरमें अनेकों धर्मशालाएँ भी हैं।

दर्शनीय स्थान

अयोध्यामें सरयू-किनारे कई सुन्दर पक्के घाट बने हुए हैं। किंतु सरयूजीकी धारा अब घाटोंसे दूर चली गयी है। पश्चिमसे पूर्व चलें तो घाटोंका यह क्रम मिलेगा—ऋण-मोचनघाट, सहस्रधारा, लक्ष्मणघाट, स्वर्गद्वार, गङ्गामहल, शिवालाघाट, जटाई (जटायु) घाट, अहल्याबाईघाट, धौरहरा-घाट, रूपकलाघाट, नयाघाट, जानकीघाट और रामघाट।

लक्ष्मणघाट—यहाँके मन्दिरमें लक्ष्मणजीकी ५ फुट ऊँची मूर्ति है। यह मूर्ति सामने कुण्डमें पायी गयी थी। कहा जाता है कि यहाँसे श्रीलक्ष्मणजी परमधाम पधारे थे।

स्वर्गद्वार—इस घाटके पास श्रीनागेश्वरनाथ महादेवका मन्दिर है। कहते हैं कि यह मूर्ति कुशद्वारा स्थापित की गयी है और इसी मन्दिरको पाकर महाराज विक्रमादित्यने अयोध्या-का जीर्णोद्धार किया था। नागेश्वरनाथके पास ही एक गलीमें श्रीरामचन्द्रजीका मन्दिर है। एक ही काले पत्थरमें श्रीराम-पञ्चायतनकी मूर्तियाँ हैं। बाबरने जब जन्मस्थानके मन्दिरको तोड़ा, तब पुजारियोंने वहाँसे यह मूर्ति उठाकर यहाँ स्थापित कर दी। स्वर्गद्वार पहले ही कहीं [illegible] कहते हैं।

नयाघाट—इस घाटके पास अत्यन्त मनोरम तुलसी-उद्यान है। उसीसे संलग्न महात्मा वनादासका आश्रम भवहरण-कुञ्ज है। इससे दो फर्लांगपर महात्मा मनीरामजीका आश्रम (मनीरामकी छावनी) और रामसखेजीकी तपोभूमि नृत्यराघव-कुञ्ज है।

रामकोट—अयोध्यामें अब रामकोट (श्रीरामका दुर्ग) नामक कोई स्थान रहा नहीं है। कभी यह दुर्ग था और बहुत विस्तृत था। कहा जाता है कि उसमें २० द्वार थे, किंतु अब तो चार स्थान ही उसके अवशेष माने जाते हैं—हनुमानगढ़ी, सुग्रीवटीला, अङ्गदटीला, मातगैंड़ (मत्तगजेन्द्र)।

हनुमानगढ़ी—यह स्थान सरयूतटसे लगभग १ मीलपर नगरमें है। यह एक ऊँचे टीलेपर चार कोटका छोटा-सा दुर्ग है। ६० सीढ़ी चढ़नेपर श्रीहनुमान्‌जीका मन्दिर मिलता है। इस मन्दिरमें हनुमान्‌जीकी बैठी मूर्ति है। एक दूसरी हनुमान्‌जीकी ६ इंचकी मूर्ति वहाँ है, जो सदा पुष्पोंसे आच्छादित रहती है। मन्दिरके चारों ओर मकान हैं, जिनमें साधु रहते हैं।

हनुमानगढ़ीके दक्षिणमें सुग्रीवटीला और अङ्गदटीला हैं। कुछ लोग सुग्रीवटीलेका स्थान मणिपर्वतके दक्षिण-पश्चिममें, जहाँ बौद्धमठ था, बतलाते हैं।

कनकभवन—अयोध्याका यही मुख्य मन्दिर है, जो ओरछा-नरेशका बनवाया हुआ है। यह सबसे विशाल एवं भव्य है। इसे 'श्रीरामका अन्तःपुर' या 'सीताजीका महल' कहते हैं। इसमें मुख्य मूर्तियाँ श्रीसीता-रामकी हैं। सिंहासनपर जो बड़ी मूर्तियाँ हैं, उनके आगे श्रीसीता-रामकी छोटी मूर्तियाँ हैं। छोटी मूर्तियाँ ही प्राचीन कही जाती हैं।

दर्शनेश्वर—हनुमानगढ़ीसे थोड़ी दूरपर अयोध्यानरेशका महल है। इस महलकी वाटिकामें दर्शनेश्वर महादेवका सुन्दर मन्दिर है।

जन्मस्थान—कनकभवनसे आगे श्रीराम-जन्मभूमि है। यहाँके प्राचीन मन्दिरको बाबरने तुड़वाकर मसजिद बना दिया था, किंतु अब वहाँ फिर श्रीरामकी मूर्ति आसीन है। उस प्राचीन मन्दिरके घेरेमें जन्मभूमिका एक छोटा मन्दिर और है।

जन्मस्थानके पास कई मन्दिर हैं—सीतारसोई, चौबीस अवतार, कोपभवन, रत्नसिंहासन, आनन्दभवन, रङ्गमहल, साखी गोपाल आदि।

तुलसीचौरा—राजमहलके दक्षिण खुले मैदानमें तुलसीचौरा है। यह वह स्थान है, जहाँ गोस्वामी तुलसीदास-जीने श्रीरामचरितमानसकी रचना प्रारम्भ की थी।

मणिपर्वत—तुलसीचौरासे लगभग १ मील दूर, अयोध्या स्टेशनके पास वनमें एक टीला है। टीलेके ऊपर मन्दिर है। यहींपर अशोकके २०० फुट ऊँचे एक स्तूपका अवशेष है।

दतुअनकुण्ड—यह स्थान मणिपर्वतके पास ही है। वैष्णव कहते हैं कि श्रीरघुनाथजी यहाँ दतुअन करते थे। कुछ लोगोंका कहना है कि गौतमबुद्ध जब अयोध्यामें रहते थे, तब उन्होंने एक दिन यहाँ अपनी दतुअन गाड़ दी। वह सात फुट ऊँचा वृक्ष हो गयी। कई विदेशी यात्रियोंने उसे देखा है, जिनमें फाहियान मुख्य है। वह वृक्ष अब नहीं है, उसका स्मारक है।

अयोध्यामें बहुत अधिक मन्दिर हैं। यहाँ केवल प्राचीन स्थानोंका उल्लेख किया गया है। नवीन मन्दिर तथा संतोंके स्थान तो अयोध्यामें बहुत अधिक हैं।

आसपासके तीर्थ

सोनखर—कहा जाता है कि यहाँ महाराज रघुका कोषागार था। कुबेरने यहाँ स्वर्णवर्षा की थी।

सूर्यकुण्ड—रामघाटसे यह ५ मील दूर है। पक्की सड़कका मार्ग है। बड़ा सरोवर है, जिसके चारों ओर घाट बने हैं। पश्चिम किनारेपर सूर्यनारायणका मन्दिर है।

गुप्तारघाट—(गोप्रतार-तीर्थ) अयोध्यासे ९ मील पश्चिम सरयू-किनारे यह स्थान है। यहाँके लिये फैजाबाद छावनी होकर सड़क जाती है। यहाँ सरयूस्नानका बहुत माहात्म्य माना जाता है। घाटके पास गुप्तहरिका मन्दिर है। कहते हैं, श्रीरामने यहीं सबके साथ सरयूजीमें प्रवेश करके परमधामके लिये प्रस्थान किया था।

गुप्तारघाटसे १ मीलपर निर्मलीकुण्ड है। उसके पास निर्मलनाथ महादेवका मन्दिर है।

जनौरा (जनकौरा)—महाराज जनक जब अयोध्या पधारते थे, तब यहीं उनका शिविर रहता था। अयोध्यासे सात मील दूर फैजाबाद-सुल्तानपुर सड़कपर यह स्थान है। यहाँ गिरिजाकुण्ड नामक सरोवर है, जिसके पास एक शिव-मन्दिर है।

नन्दिग्राम—फैजाबादसे १० मील और अयोध्यासे १६ मील दक्षिण यह स्थान है, जहाँ श्रीराम-वनवासके समय १४ वर्ष भरतजीने तपस्या करते हुए व्यतीत किये थे। यहाँ भरतकुण्ड-सरोवर और भरतजीका मन्दिर है।

दशरथतीर्थ—रामघाटसे ८ मील पूर्व सरयूतटपर यह स्थान है, जहाँ महाराज दशरथका अन्तिम संस्कार हुआ था।

छपैया (छपिया)—अयोध्यासे सरयूपार ६ मील दूर छपिया गाँव है। स्वामिनारायण-सम्प्रदायके प्रवर्तक स्वामी सहजानन्दजीकी यह जन्मभूमि है। छपिया पूर्वोत्तर रेलवेका स्टेशन है।

परिक्रमा

अयोध्याकी दो परिक्रमाएँ हैं। बड़ी परिक्रमा स्वर्गद्वारसे प्रारम्भ होती है। वहाँसे सरयू-किनारे सात मील जाकर और फिर मुड़कर शाहनवाजपुर, मुकारबनगर होते हुए दर्शननगर सूर्यकुण्डपर पहला विश्राम किया जाता है। वहाँसे पश्चिम कौसाहा, मिर्जापुर, बीकापुर ग्रामोंमें होते जनौरा पहुँचनेपर दूसरा विश्राम होता है। जनौरासे खोजमपुर, निर्मलीकुण्ड, गुप्तारघाट होते स्वर्गद्वार पहुँचनेपर परिक्रमा पूरी हो जाती है।

अयोध्याकी छोटी (अन्तर्वेदी) परिक्रमा केवल ६ मीलकी है। यह रामघाटसे प्रारम्भ होती है तथा बाबा रघुनाथदासकी गद्दी, सीताकुण्ड, अग्निकुण्ड, विद्याकुण्ड, मणिपर्वत, कुबेरपर्वत, सुग्रीवपर्वत, लक्ष्मणघाट, स्वर्गद्वार होते हुए रामघाट आकर पूर्ण होती है।

मेले—अयोध्यामें श्रीरामनवमीपर सबसे बड़ा मेला होता है। दूसरा मेला ८-९ दिनतक श्रावण-शुक्लपक्षमें झूलेका होता है। कार्तिक-पूर्णिमापर भी सरयूस्नानके लिये लाखोंकी संख्यामें यात्री आते हैं।

श्रीअयोध्या-महिमा

जिन के परस मुनि-पतिनी पतित तरी
जानि महिमा जो सिय छुवत सकानी है।
कहै 'रतनाकर' निषाद जिन जोग जानि
धोए बिनु धूरि नाव निकट न आनी है॥
ध्यावैं जिन्हैं ईस औ फनीस गुन गावैं सदा,
नावैं सीस निखिल मुनीस-गन ग्यानी हैं।
तिन पद पावन की परस-प्रभाव-पूँजी
अवधपुरी की रज-रज मैं समानी है॥

—महाकवि रत्नाकर

श्रीमिथिला-वन्दना

नित्यस्थलि नित्यलीले नित्यधाम नमोऽस्तु ते।
धन्या त्वं मिथिले देवि ज्ञानदे मुक्तिदायिनि॥
रामस्वरूपे वैदेहि सीताजन्मप्रदायिनि।
पापविध्वंसिके मातर्भवबन्धविमोचनि॥
यज्ञदानतपोध्यानस्वाध्यायफलदे शुभे।
कामिनां कामदे तुभ्यं नमस्यामो वयं सदा॥

'नित्यलीलाभूमि नित्यधाम श्रीमिथिलाजी! आप ज्ञान और मोक्ष देनेवाली हैं, अतएव धन्य हैं। आप रामस्वरूपा हैं, विदेहपुरी हैं, श्रीजानकीजीको जन्म देनेवाली हैं, पापनाश करनेवाली और भवबन्धनसे छुड़ानेवाली हैं। यज्ञ-दान-तप-ध्यान-स्वाध्यायादि शुभकर्मोंका फल देनेवाली और सकाम-कर्मोंकी कामनापूर्ति करनेवाली हैं। हम सब आपको सदा प्रणाम करते हैं।

श्रीजनकपुरी

(लेखक—श्रीअवधकिशोरदासजी महाराज)

जगज्जननी जानकीकी जन्म-भूमि जनकपुरसे हिंदूमात्र परिचित हैं। प्राचीनकालसे ही जनकपुर एक प्रसिद्ध स्थान रहा है, जहाँ राजर्षि विदेह (जनक) की राजधानी थी। राजर्षि जनक तीरभुक्ति (तिरहुत) अथवा मिथिला देशके राजा थे। यह देश हिमालयसे गङ्गातक १२८ मील चौड़ा और कौशिकी (कोसी) से गण्डकीतक १९२ मील लंबा है। यहाँ १५ नदियाँ, यथा—कोसी, कमला, विल्वमती, यमुनी, भूयसी, गैरिका, जलाधिका, दुग्धवती, व्याघ्रमती, विरजा, मण्डना, इच्छावती, लखनदेई, वागमती और गण्डकी अपने जलसे सारे प्रदेशको सींचती रहती हैं। कहते हैं कि मिथिलामें वास, मिथिलाके दर्शन और मिथिलामें देहत्याग करनेसे परमगतिकी प्राप्ति होती है।

मिथिलाकी राजधानी जनकपुरकी सीमाके पूर्वद्वारपर 'शिलानाथ' एवं 'कपिलेश्वर', आग्नेयकोणमें 'कूपेश्वर', दक्षिणमें 'कल्याणेश्वर', पश्चिममें 'जलेश्वर', उत्तरमें 'क्षीरेश्वर', तथा ईशानकोणमें 'मिथिलेश्वर'के मन्दिर थे। इन सभी मन्दिरोंका नव-निर्माण हुआ है। सभी मन्दिर लगभग पाँच-पाँच कोसकी दूरीपर हैं। जनकपुरके चतुर्दिक् इन शिवलिङ्गोंकी स्थापना प्रहरीके रूपमें की गयी थी।

महात्मा चतुर्भुजगिरिको भगवान् रामचन्द्रने स्वप्नमें आदेश दिया कि 'अमुक वटवृक्षके नीचे सीता, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नके साथ मेरी वह मूर्ति है, जिसे मैंने राजर्षि जनकको, जनकपुरसे विदा होते समय, विरहकी शान्ति और मानव-जातिके उद्धारके लिये दिया था। मैं तुमपर प्रसन्न होकर वे मूर्तियाँ तुम्हें दे रहा हूँ। तुम उनकी पूजा करो। तुम्हारी मनःकामनाएँ पूरी होंगी।' महात्मा चतुर्भुजगिरिने उन मूर्तियोंको निकालकर उनका पूजन आरम्भ किया। वह वट-वृक्ष अबतक राम-मन्दिरके पृष्ठभागमें विद्यमान है। मकवान-पुरके राजाने विक्रम संवत् १७१४ में कई सौ बीघा जमीन मन्दिरको दानमें दी थी।

महात्मा सूरकिशोरजी जगज्जननी जानकीके परम भक्त थे और माता जानकीपर उनका प्रगाढ़ वात्सल्यभाव था। एक दिन उनको स्वप्नमें माता जानकीने कहा कि 'इस वनमें जिस स्थानपर तुम्हें मेरी मूर्ति मिले, उसी स्थानको तुम मेरा वासस्थान समझना।' महात्माजीने जंगलमें ढूँढ़ना शुरू किया और भगवत्कृपासे श्रीसीताकी एक स्वर्णिम मूर्ति उन्हें मिली। उन्होंने मूर्तिको आनन्दसे गोदमें उठा लिया और पर्णकुटी बनाकर उसी स्थानपर रहने लगे। इसके बाद क्रमशः जनक-पुरकी ख्याति फैलने लगी।

जनकपुरके राममन्दिर और जानकी-मन्दिरका प्रबन्ध महात्मा सूरकिशोरजी और उनके शिष्योंके हाथोंमें काफी समयतक रहा, लेकिन सूरकिशोरजीके शिष्योंकी सातवीं पीढ़ीमें महन्त विश्वम्भरदास हुए। उनके समयमें उभय मन्दिरोंका प्रबन्ध पृथक् हो गया। जानकी-मन्दिरका प्रबन्ध-भार वैरागियोंको और राम-मन्दिरका प्रबन्ध-भार संन्यासियोंको मिला। तबसे दोनों स्थानोंका प्रबन्ध अलग ही है। अब राम-मन्दिरका प्रबन्ध नेपाल सरकारकी ओरसे होता है।

नेपालाधीश महाराजाधिराज रणबहादुरशाह देवके सेना-पति अमरसिंह थापाने सन् १८३९ में राम-मन्दिरका निर्माण तथा गङ्गासागर, धनुषसर, रामसागर आदि सरोवरोंका पुनरुद्धार किया। इसके बाद अन्यान्य महन्तों, भक्तों तथा धार्मिक सज्जनोंने जनकपुरके विकासमें काफी सहायता पहुँचायी और धीरे-धीरे जंगलोंसे परिपूर्ण जनकपुर एक समृद्ध नगर बन गया।

नेपाल-सरकारने तीर्थयात्रियोंकी सुविधाके लिये नेपाल-जयनगर-जनकपुर रेलवे लाइन चालू कर दी है, जिससे जनकपुर जानेवाले यात्रियोंको काफी सुविधा हो गयी है। यहाँ कई धर्मशालाएँ और छोटे-मोटे उद्योग-धंधे भी खुल गये हैं।

जनकपुरके प्रमुख मन्दिर

राम-मन्दिर—आधुनिक जनकपुरके प्रवर्तक महात्मा चतुर्भुजगिरिने एक वटवृक्षके नीचेसे राम, सीता, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नकी मूर्तियोंका उद्धार कर इसी मन्दिरमें उन्हें स्थापित किया। ऐसे अनेक प्रमाण हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि श्रीरामचन्द्रका विवाह इसी स्थानपर हुआ था। इस मन्दिरमें संन्यासी ही पुजारी और महन्त होते हैं। इसका प्रबन्ध-भार नेपाल-सरकारके अधीन है।

हनुमान-मन्दिर—इस मन्दिरका निर्माण भी नेपालके

सेनापति अमरसिंह थापाने कराया था। राम-मन्दिरके अहातेमें पूर्वकी ओर यह मन्दिर है, जिसमें प्रसन्न-वदन श्रीहनुमान्‌की मूर्ति स्थापित है।

चतुर्भुजनाथ-मन्दिर—जनकपुरके प्रवर्तक महात्मा चतुर्भुजगिरिकी समाधिपर शिवलिङ्ग स्थापितकर इस मन्दिरका निर्माण किया गया है।

देवी-मन्दिर—राम-मन्दिरके उत्तरमें यह देवी-मन्दिर स्थापित है। यहाँ राजर्षि जनककी कुलदेवीका मृण्मय पीठ है और शारदीय नवरात्रमें शाक्तविधिसे पूजा होती है। यहाँका पूजन-अनुष्ठान अव्यर्थ समझा जाता है।

जानकी-मन्दिर—इसी स्थानपर महात्मा सूरकिशोरने सुवर्णमयी सीता और रामजीकी मूर्ति एक प्राचीन ढंगके मन्दिरमें स्थापित की थी। सूरकिशोरजीके परम्परागत शिष्य महन्त रामकृष्णदासके उद्योगसे टीकमगढ़की महारानी श्रीमती वृषभानुकुमारीने मन्दिरके अहातेके मध्यमें एक सुन्दर, भव्य और मनोहर मन्दिरका निर्माण कराया तथा नौलखा, शीश-महल और जानकी-मन्दिरके चतुर्दिक् भव्य प्रासाद बनवाकर मन्दिरकी शोभा बढ़ायी। इस मन्दिरमें राम-सीताकी प्रस्तर-मूर्ति, सीता और रामकी सुवर्णमयी मूर्ति तथा लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्नकी मूर्तियाँ स्थापित हैं। सीताजी इसी स्थानपर रहती थीं। यहाँ राम-सीताके भोग-रागके लिये नेपाल सरकारने एक बड़ी जागीर दे रखी है।

सुनयना-जनक-मन्दिर—अङ्गरागसरके उद्धारके समय भूगर्भसे प्राप्त रामजी, सीताजी और लक्ष्मणजीकी मूर्तियाँ तथा राजर्षि जनक, शतानन्दजी और सुनयनाजीकी मूर्तियाँ इस मन्दिरमें स्थापित हैं।

मड़वा (मण्डप)—जानकी-मन्दिरसे उत्तर-पश्चिम कोणमें एक प्राचीन मण्डप था, जो गत १९३४ ई०के भूकम्पमें ध्वस्त हो गया। जानकी-मन्दिरके महन्तके उद्योगसे यहाँ एक नये और भव्य मण्डपका निर्माण हुआ है। कहते हैं कि इसी मण्डपमें श्रीजानकीजीका विवाह हुआ था।

लक्ष्मण-मन्दिर—जानकी-मन्दिरके समीप स्थापित इस मन्दिरमें लक्ष्मण-राम और सीताकी सुन्दर मूर्तियाँ हैं। नेपाल-नरेशने इस मन्दिरके भोग-रागके लिये भी काफी जमीन दे रखी है।

लव-कुश-मन्दिर—लक्ष्मण-मन्दिरके समीप ही यह मन्दिर अवस्थित है, जहाँ लव-कुशकी प्राचीन मूर्तियाँ स्थापित हैं।

जनक-मन्दिर—राम-मन्दिरसे कुछ दूरीपर (धनुषसरके पास अवस्थित) यह मन्दिर पहले बड़ी जीर्ण-शीर्ण स्थितिमें था। नेपालके सेनापति अमरसिंह थापाने इसका पुनर्निर्माण कराया था, किंतु १९३४ ई०के भीषण भूकम्पमें यह मन्दिर धराशायी हो गया। नेपाल-नरेशने इस मन्दिरका नये ढंगसे निर्माण कराया है। यहाँ राजर्षि जनक एवं सुनयनाकी मूर्ति तथा गङ्गासागरकी खुदाईमें प्राप्त सीताकी मूर्ति स्थापित है। यही स्थान राजर्षि जनकका प्रधान वास-स्थान बताया जाता है।

रत्नसागर-मन्दिर—जानकी-मन्दिरसे एक मीलकी दूरीपर रत्नसागर नामक एक सुन्दर सरोवरके किनारे यह मन्दिर है। यहाँ सीता-रामकी भव्य मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। इस मन्दिरका भंडारा सुविख्यात है।

रसिक-निवास-मन्दिर—जानकी-मन्दिरसे आध मील पश्चिममें अवस्थित इस मन्दिरमें राम-सीताकी भव्य और सुन्दर मूर्तियाँ हैं। इस स्थानके प्रवर्तक श्रीरसिकअली नामके एक महात्मा थे। इनके अनुगामी दूल्हा-दुलहिनके रूपमें रसिक राम-सीताकी उपासना करते हैं, अतएव इस मन्दिरका नाम 'रसिक-निवास' पड़ा है।

स्वर्ण-मण्डप—महाराजसरके समीप एक स्थानपर पत्थरमें 'स्वर्ण-मण्डप' खुदा हुआ है। कुछ लोग इसी स्थानको राम-सीताका विवाह-मण्डप बताते हैं।

दशरथ-मन्दिर—महाराजसरके पश्चिममें अवस्थित इस मन्दिरमें दशरथकी मूर्ति दर्शनीय है।

मौनीबाबाका आश्रम—जानकी-मन्दिरसे कुछ दूर एक खाली जमीन है, जो 'रङ्गभूमि' कहलाती है। कहा जाता है कि इसी स्थानपर रामने धनुष तोड़ा था। इसके पास एक नये ढंगका मकान है, जहाँ मौनी बाबा निवास करते हैं और इसके साथ ही सीता-रामका भव्य और आकर्षक मन्दिर है।

जनकपुरके दर्शनीय स्थान

धनुषा—जनकपुरसे १५ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित इस स्थानकी प्राकृतिक शोभा अपूर्व है। यहाँ सुन्दर वन और घने जंगल दर्शनीय हैं। इसी स्थानपर भगवान् रामद्वारा तोड़े हुए धनुषका एक खण्ड अबतक विद्यमान है। ऋषियोंके

लिये यहाँ एक धर्मशाला भी है। माघ मासमें प्रत्येक रविवारको यहाँ मेला लगता है।

गिरिजास्थान—जनकपुरसे १२ मील दक्षिणमें अवस्थित यह स्थान शाक्तोंका सिद्धपीठ है। नवरात्रमें वहाँ अनेक भक्तजन अनुष्ठानादिके लिये एकत्र होते हैं। यहाँ आदिशक्ति गिरिजाका मन्दिर है। जनकनन्दिनी जानकी इस मन्दिरमें पूजनार्थ आयी थीं। माघ मासमें प्रत्येक रविवारको यहाँ मेला लगता है।

गौतमकुण्ड—सीतामढ़ीसे जो रेलवे लाइन दरभंगा जाती है, उसीपर कमतौल स्टेशन है। इसी स्टेशनसे तीन मील उत्तर-पश्चिम अहल्याजीका छोटा-सा मन्दिर है। यहाँ रामनवमीको मेला लगता है। स्टेशनसे काफी दूरीपर पश्चिम-की ओर मैदानमें गौतमकुण्ड नामका सरोवर है। गौतम-कुण्डसे तीन मील दूर नृसिंहभगवान्‌का एक छोटा-सा मन्दिर है। पूर्वकी ओर अहल्याकुण्ड है। यहाँ अहल्याका चौरा तथा श्रीराम-लक्ष्मणका मन्दिर है। कहा जाता है कि यहीं महर्षि गौतमकी पत्नी अहल्या महर्षिके शापसे शिला बनी पड़ी थीं। श्रीरामकी चरणधूलिके स्पर्शसे उसका शाप दूर हो गया। अहल्याको दिव्य स्वरूप प्राप्त हो गया और वे अपने पतिदेवके पास ऋषिलोक चली गयीं। यह पूरा क्षेत्र 'गौतमाश्रम' माना जाता है।

सीतामढ़ी—यह श्रीसीताजीकी प्राकट्यस्थली है। यहींपर हलसे पृथ्वीको जोतते हुए राजर्षि जनकको श्रीसीताजीकी प्राप्ति हुई थी। जिस मही (पृथ्वी) से श्रीसीताजीका प्राकट्य हुआ, वह 'सीता-मही' कहलायी। सीता-महीका बिगड़ा रूप ही 'सीतामढ़ी' है। यहाँपर श्रीजानकी-जीका बड़ा सुन्दर मन्दिर है। यहाँपर रामनवमी तथा विवाहपञ्चमीको विशाल मेला लगता है।

विख्यात सरोवर, नदियाँ और कूप

जनकपुरधाममें धनुषसर और गङ्गासागर नामक दो तालाब अधिक विख्यात हैं। इनमें गङ्गासागर धार्मिक दृष्टिसे विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कहा जाता है कि पुत्रहीन महाराजा निमिकी मृत्यु-के बाद गौतम, याज्ञवल्क्य, विश्वामित्र आदि ऋषियोंने निमिके शवको मथनेका उपक्रम किया। ऋषियोंने शवको मथकर 'मिथि' नामक एक बालक उत्पन्न किया। उस समय वहाँ गङ्गा-यमुना नदियाँ और सागर भी दिव्यरूपमें उपस्थित हो गये थे। गङ्गा और सागरके दिव्य जलसे यहाँ एक जलाशय बन गया, जो 'गङ्गासागर' कहलाया। यहाँ स्नान करनेसे जन्म-जन्मान्तरके पाप कट जाते हैं। ज्येष्ठ शुक्ला १० (गङ्गादशहरा) को यहाँ स्नान और पूजन-दान करनेसे विशेष फल प्राप्त होता है। यहाँ यात्रियोंकी सुविधाके लिये सुन्दर पक्का घाट बना हुआ है।

धनुषसर—गङ्गासागरसे कुछ दूर पश्चिममें यह सुरम्य सरोवर है। इसके चतुर्दिक् सघन वृक्ष लगे हुए हैं। भगवान् शिवका धनुष इसी स्थानपर रहता था, अतः इसका नाम 'धनुषसर' पड़ा है।

अङ्गरागसर—जानकी-मन्दिरके उत्तरमें यह सरोवर काफी सुख्यात है। इसको 'अरगजा' भी कहते हैं। इसमें स्नान करनेसे सभी प्रकारके चर्मरोग दूर हो जाते हैं। इस स्थानपर जानकीजी शरीर-प्रक्षालन और उद्वर्तन (मालिश) किया करती थीं।

महाराजसर—जानकी-मन्दिरके पश्चिम ओर अवस्थित इस सरोवरमें स्नान करनेसे ब्रह्महत्या-जैसे महापापसे भी मुक्ति मिलती है। इसी सरमें स्नान कर महादेवजीने ब्रह्महत्याके और परशुरामने मातृहत्याके पापसे मुक्ति पायी थी। अग्रहायण (मार्गशीर्ष) मासमें यहाँ स्नान करनेसे विशेष फल होता है।

जनकसर—जनकपुरसे ८ मील उत्तर-पूर्वमें परशुराम-कुण्डके समीप यह सरोवर अवस्थित है। इसमें स्नान करनेसे भी पाप-क्षय होता है।

रत्नसागर—रङ्गभूमिसे कुछ दूरीपर अवस्थित इस सरोवरमें स्नान करनेका भी विशेष फल माना गया है। रामनवमीको यहाँ मेला लगता है। कहते हैं कि जानकीजीके विवाहके समय यहाँ रत्न लुटाये गये थे।

अग्निकुण्ड—रत्नसागरके पास ही यह कुण्ड है, जहाँ पहले नित्य हवन-यज्ञ होता था। इस सरोवरका जल अत्यन्त हल्का और स्वादिष्ट है। फाल्गुनी पूर्णिमाको इसमें स्नान करनेसे विशेष फल होता है।

विहारकुण्ड—अग्निकुण्डके दक्षिणमें निर्मल जलका कुण्ड है। यह स्थान बड़ा ही सुरम्य है और इसके चतुर्दिक् साधु-संतोंका निवास है।

ज्ञानकूप-विद्याकूप—यह कूप विहारकुण्डके पश्चिममें है। राजर्षि जनकके कालमें यहाँ धार्मिक-आध्यात्मिक आलोचनाएँ हुआ करती थीं। जनकपुरमें कुल मिलाकर ७६ कूप और सरोवर हैं। उनके नाम निम्नलिखित हैं—पुरन्दरसर, महाराजसर, भार्गवसर, मण्डनसर, ऋषिसर, विडालसर, रुक्मिणीसर, जनकसर, सुनयनासर, बलदेवसर, गोपालसर, धनुःक्षेत्रसर, पादप्रक्षालन-सर, विचित्रासर, धौतपापसर, चुञ्चुमतीसर, पयस्विनीसर, कुण्डवतीसर, तैलदीर्घिकासर, इष्टदासर, विघ्नहारिणीसर, मत्स्योदरीसर, व्याघ्रहरीसर, स्थितिदासर, छत्रधारिणीसर, गोव्रजासर, चित्रधारासर, पूर्णव्रतासर, दुर्गम्यासर, चित्रधात्री-सर, कष्टहरीसर, सुधासर, पुण्यासर, पाकवतीसर, नगर-देविकासर, सनकादिसर, तारणसर, मन्मथसर, सप्तवेधसर, गारुडसर, केदारसर, मध्यमसर, रत्नसागरसर, जानकीसर, कुम्भोदकसर, वारुणसर, सारस्वतसर, चतुर्दीर्घिकासर, कष्टहरसर, अमृतकुण्डसर, धात्रीसर, विघ्रहरसर, मुरलीसर, गङ्गासागरसर, अङ्गरागसर, गौतमसर, लक्ष्मणसर, गुणवतीसर, बिल्ववतीसर, दीर्घिकासर, मौसलसर, चक्रसर, लोमशसर, रामसागरसर, वसिष्ठसर, ध्रुवसर, तीर्थसर, जानकीकुण्ड, वह्निकुण्ड, सीरध्वजकूप, शतानन्दकूप, अक्रूरकूप, सीमन्तककूप, विद्याकूप, ज्ञानकूप, जनककूप। उपर्युक्त सरोवर, कूप आदि जनकपुरकी पञ्चक्रोशीके अन्तर्गत ही हैं। इनमें स्नान करनेका विशेष फल बताया गया है।

दुग्धवती नदी—जगज्जननी जानकीके भूगर्भसे प्रकट होनेपर उनके दर्शनार्थ ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओं-के साथ आगत कामधेनुने प्रेम-विह्वल होकर अपने स्तनों-को जानकीके मुखमें लगा दिया था। उस समय जो दूध भूमिपर गिरा, वही नदीके रूपमें प्रवाहित हुआ। वही नदी 'दुग्धवती'के नामसे विख्यात है। इसमें आग्रहायण मासमें स्नान करनेसे विशेष पुण्य होता है।

यमुनी—इसमें स्नान करनेसे यमुना-स्नानका फल मिलता है। यम-द्वितीयाको इसके तटपर मेला लगता है।

जलाधिका—इसमें स्नान करनेसे सरस्वती-स्नानका फल होता है। भाद्रमासमें इसमें स्नान करना विशेष पुण्य-दायक माना गया है।

गेरुका—इसका नाम 'गैरिका' भी है। मलमासमें इसके तटपर प्रत्येक रविवार और मङ्गलवारको मेला लगता है। इसमें मलमासमें स्नानका विशेष पुण्य है।

इनके अतिरिक्त भूयसीमें आश्विनमें, इक्षुमतीमें पौषमें, मण्डनामें फाल्गुनमें, व्याघ्रमतीमें ज्येष्ठमें और वीरजामें श्रावणमें स्नान करनेसे विशेष फल होता है।

जनकपुर मेला

रामनवमी—जनकपुरमें रामनवमीके दिन सबसे बड़ा और प्रधान मेला लगता है। इस मेलेमें सारे भारतसे करीब दो लाख यात्री और साधु-संत एकत्र होते हैं। यह मेला सप्तमीसे पूर्णिमातक रहता है।

जानकीनवमी—जगज्जननी जानकीके जन्म-दिवस वैशाखशुक्ला नवमीको भी साधारण मेला लगता है। जानकी-मन्दिरमें इस अवसरपर १५ दिनोंतक उत्सव मनाया जाता है।

झूलन—श्रावणशुक्ला द्वितीयासे पूर्णिमातक यहाँ झूलनोत्सव होता है और हजारोंकी संख्यामें भक्तवृन्द एकत्र होकर मन्दिरोंमें झूलनोत्सव देखते हैं।

विवाह-पञ्चमी—श्रीसीतारामके विवाहके दिन अग्रहायणशुक्ला पञ्चमीको यहाँ बड़ा विशाल मेला लगता है। इसमें लाखोंकी संख्यामें यात्री एकत्र होते हैं। चतुर्थीसे अष्टमीतक यहाँ बड़ी धूमधाम रहती है।

इसके अतिरिक्त कार्तिकी पूर्णिमा तथा माघी पूर्णिमाको यहाँ काफी संख्यामें यात्री एकत्र होते हैं। चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, महावारुणी आदि अवसरोंपर भी मेले लगते हैं।

जनकपुर-परिक्रमा

छोटी परिक्रमा गङ्गासागरमें स्नान करके आरम्भ करते हैं और क्रमशः धनुस्सर, पुरन्दरसर, महाराजसर, विहारकुण्ड, अग्निकुण्ड, मध्यमसर, रत्नसागर, कौशिकन्दसर, अङ्गरागसर तथा लक्ष्मणसरमें मार्जनादि करते हुए गङ्गासागर आकर समाप्त करते हैं। जनकपुरमें चतुर्दिक् एक पक्की सड़क बनी हुई है। छोटी परिक्रमामें इसी सड़कका उपयोग होता है।

प्रयाग-माहात्म्य

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी॥
चारि पदारथ भरा भँडारू। पुन्य प्रदेस देस अति चारू॥
छेत्रु अगम गढ़ु गाढ़ सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा॥
सेन सकल तीरथ बर बीरा। कलुष अनीक दलन रनधीरा॥
संगमु सिंहासनु सुठि सोहा। छत्रु अखयबटु मुनि मनु मोहा॥
चवँर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा॥
सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मनकाम।
बंदी बेद पुरान गन कहहिं बिमल गुन ग्राम॥
को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ॥
(मानस २। १०४। २–४; १०५; १०५। १/२)

श्यामो वटोऽश्यामगुणं वृणोति
स्वच्छायया श्यामलया जनानाम्।
श्यामः श्रमं कृन्तति यत्र दृष्टः
स तीर्थराजो जयति प्रयागः॥
ब्राह्मीनपुत्रीत्रिपथास्त्रिवेणी
समागमेनाक्षतयोगमात्रान्।
यत्राप्लुतान् ब्रह्मपदं नयन्ति
स तीर्थराजो जयति प्रयागः॥
(पद्म०, उ० खं० २३। ३०, ३५)

'जहाँ श्याम (अक्षय) वट उज्ज्वल (सत्त्व)—गुण धारण करता है तथा दर्शन प्राप्त होनेपर अपनी श्यामल छायासे मनुष्योंके जन्म-मरणरूप श्रमका नाश कर डालता है, उस तीर्थराज प्रयागकी जय हो। सरस्वती, यमुना और गङ्गा—ये तीन नदियाँ जहाँ डुबकी लगानेवाले मनुष्योंको, जो त्रिवेणी-संगमके सम्पर्कसे अक्षय योगफलको प्राप्त हो चुके हैं, ब्रह्मलोकमें पहुँचा देती हैं, उस तीर्थराज प्रयागकी जय हो।'

उपर्युक्त स्तोत्रमें—

'सितासिते सरिते यत्र संगते तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।'

—इस ऋग्वेदकी ऋचाका ही उपबृंहण हुआ है। तीर्थराज प्रयागके माहात्म्यसे सारा वैदिक साहित्य भरा पड़ा है। पद्मपुराण कहता है—

ग्रहाणां च यथा सूर्यो नक्षत्राणां यथा शशी।
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं प्रयागाख्यमनुत्तमम्॥

१. सृष्टिके आदिमें यहाँ श्रीब्रह्माजीका प्रकृष्ट यज्ञ हुआ था। इसीसे इसका नाम 'प्रयाग' हुआ—

'प्रकृष्टं सर्वयागेभ्यः प्रयागमिति गीयते।'
(स्कं० पु०, काशी०, पू० ७। ४९)

'जैसे ग्रहोंमें सूर्य तथा ताराओंमें चन्द्रमा हैं, वैसे ही तीर्थोंमें प्रयाग सर्वोत्तम है।'

दर्शनीय स्थान

प्रयाग 'तीर्थराज' कहे जाते हैं। समस्त तीर्थोंके ये अधिपति हैं। सातों पुरियाँ इनकी रानियाँ कही गयी हैं। गङ्गा-यमुनाकी धाराने पूरे प्रयाग-क्षेत्रको तीन भागोंमें बाँट दिया है। ये तीनों भाग त्रेताग्निस्वरूप माने जाते हैं। इनमें गङ्गा-यमुनाके मध्यका भाग गार्हपत्याग्नि, गङ्गा-पारका भाग (प्रतिष्ठानपुर—झूसी) आहवनीय अग्नि और यमुनापारका भाग (अलर्कपुर—अरैल) दक्षिणाग्नि माना जाता है। इन भागोंमें पवित्र होकर एक-एक रात्रि निवाससे इन अग्नियोंकी उपासनाका फल प्राप्त होता है।

कर्नलगंज मोहल्लेमें भरद्वाज-आश्रमका स्थान है। यहाँ भरद्वाजेश्वर शिवलिङ्ग है तथा एक मन्दिरमें हजार फणोंके शेषकी मूर्ति है। अपने इसी आश्रमपर मुनीश्वर श्रीभरद्वाजजीने वनको जाते हुए भगवती सीता एवं भाई श्रीलक्ष्मणसहित भगवान् रामका आतिथ्य किया था तथा जहाँ श्रीसीताराम-लक्ष्मणके दर्शनार्थ प्रयाग-निवासियों-की भीड़ लग गयी थी—

यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी॥
भरद्वाज आश्रम सब आए। देखन दसरथ सुअन सुहाए॥
(मानस २। १०७। ३)

और इसी आश्रमपर प्रेममें मग्न मुनि भरद्वाजने राम-विरही भरतका स्वागत करते हुए घोषणा की थी कि 'राम-दर्शनका फल है, श्रीरामभक्त-दर्शन'—

तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू॥
(वही, २। २०७। ४)

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं॥
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा॥
तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा॥
(वही, २। २०९। २—२१/२)

प्रयागमें त्रिवेणी-स्नानका अत्यधिक माहात्म्य है। यहाँ स्नान करनेवाले भक्तकी सभी मनःकामनाएँ पूर्ण होती हैं। ऐसे सकल कामप्रद संगमराजसे श्रीभरतजीने याचना की थी कि "मुझे पदार्थ-चतुष्टय नहीं, 'जनम जनम रति राम पद' ही

चाहिये।" प्रयागमें गङ्गा-यमुनाके संगममें स्नान करके प्राणी पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गका अधिकारी हो जाता है और इस क्षेत्रमें देह त्यागनेवाले प्राणीकी मुक्ति हो जाती है—ऐसे वचन पुराणोंमें हैं।

शृङ्गवेरपुर

शृङ्गवेरपुर जानेके लिये प्रयागसे मोटर-बस आदि मिलती हैं। वह प्रयागसे लगभग २४ मीलकी दूरीपर है। भगवान् श्रीरामने वनवासके समय यहाँ निषादराज गुहका आग्रह मानकर रात्रिभर विश्राम किया था—

सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृंगबेरपुर पहुँचे जाई॥
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरषु बिसेषी॥
(वही, २। ८६। १)

चित्रकूट-माहात्म्य

(प्रेषक—श्रीअवधकिशोरदासजी वैष्णव)

सैलु सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग बिहग बिहारू॥
नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज तपबल आनी॥
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि॥
(मानस २। १३१। २-३)

रघुबर कहेउ लखन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू॥
लखन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा॥
नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी॥
(मानस २। १३२। १-२)

चित्रकूटो गिरिश्रेष्ठः श्रीरामपदभूषितः।
यस्मिन् श्रीजानकीनाथो रमते सर्वदैव हि॥
चित्रकूटं महातीर्थं परं निर्वाणकारकम्।
तीर्थानां परमं तीर्थं मङ्गलानां च मङ्गलम्॥
पीठानां परमं पीठं पर्वतानां च पर्वतम्।
धर्माभिलाषबुद्धीनां धर्मराशिकरं परम्॥
अर्थिनामर्थदातारं परमार्थप्रकाशकम्।
कामिनां कामदातारं मुमुक्षूणां च मोक्षदम्॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रदाता सर्वपालकः।
तेनायं चित्रकूटोऽसौ सर्वसम्पत्तिदायकः॥
एवंप्रभावो भगवान् चित्रकूटो गिरीश्वरः।
यस्य दर्शनमात्रेण हरिश्चित्तं समाविशेत्॥

"चित्रकूट, जहाँ श्रीजानकीनाथजी सदा ही रमण करते हैं और जो श्रीरामचरणोंसे विभूषित है, सर्वदा ही पर्वतोंमें श्रेष्ठ है। श्रीचित्रकूट महातीर्थ है। वह मोक्षदाताओंमें श्रेष्ठ है, तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ है एवं मङ्गलोंमें परम मङ्गल है। वह पीठोंमें उत्तम पीठ है, पर्वतोंमें उत्तम पर्वत है और धर्माभिलाषासे युक्त जिनकी बुद्धि है, उनको धर्मकी राशि प्रदान करनेवाला है। वह अर्थाभिलाषियोंको अर्थ देनेवाला है, परमार्थतत्त्वको प्रकाशित करनेवाला है, सकाम भक्तोंको अभीष्ट देनेवाला और मुमुक्षुओंको मोक्ष देनेवाला है। अर्थ-धर्म-काम एवं मोक्षका प्रदाता और सम्पूर्ण जीवोंका पालक होनेसे यह श्रीचित्रकूट 'सर्व-सम्पत्तिका दाता' कहा जाता है। पर्वतराज भगवान् श्रीचित्रकूटजीका ऐसा प्रभाव है कि इनके दर्शनमात्रसे श्रीरामचन्द्रजी चित्तमें प्रवेश करते हैं।"

मन्दाकिनी-वन्दना

मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमो नमः।
नमस्त्रैलोक्यभूषिण्यै त्रिपथायै नमो नमः॥ १॥
नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमो नमः।
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शांकर्यै ते नमो नमः॥ २॥
सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये।
सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्श्रेष्ठ्यै नमो नमः॥ ३॥
शान्तिसंतोषकारिण्यै नमस्ते शुद्धमूर्तये।
सर्वसंशुद्धिकारिण्यै नमः पापारिमूर्तये॥ ४॥
भुक्तिमुक्तिप्रदायिन्यै भद्रदायै नमो नमः।
भोगोपभोगदायिन्यै भोगवत्यै नमो नमः॥ ५॥

"आप मन्दाकिनीजीको नमस्कार है। आप सकाम जनोंको स्वर्ग देनेवाली हैं, आपको नमस्कार है। तीनों लोकोंको विभूषित करनेवाली आपको बार बार नमस्कार है। आप विष्णुपदसे ब्रह्मलोकको प्राप्त हुईं और ब्रह्मलोकसे शिवजीकी जटामें पहुँचीं; पुनः शिवजटासे पृथ्वीपर प्रकाशित हुईं, इसी हेतु आपका 'त्रिपथगा' नाम है, आपको नमस्कार है। [illegible] निष्काम जीवोंको शुद्ध [illegible] देनेवाली [illegible] आप साक्षात् विष्णुरूपा हैं, आपको बारंबार नमस्कार है; समस्त जीवोंको आप नाना प्रकारके ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली [illegible] आप साक्षात् [illegible] हैं, आपको बारंबार नमस्कार है;

और तामसी जनोंको तत्तद्वासनाकी पूर्तिरूप तत्तत्फलोंको प्राप्त करानेवाली होनेसे आप साक्षात् रुद्ररूपा हैं; आपको बारंबार नमस्कार है। इस प्रकार आप प्राणिमात्रका यथाधिकार सर्वथा कल्याण करनेवाली हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। सम्पूर्ण फलोंको देनेवाली होनेसे आप सर्वदेवरूपा हैं और प्राणिमात्रकी सब प्रकारकी व्याधियोंको दूर करनेके लिये ओषधिरूपा और श्रेष्ठ वैद्य-रूपा आप ही हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। नाना प्रकारकी आशा-तृष्णासे व्याकुल जीवोंको आप शान्ति और संतोष देनेवाली हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आप 'स्वयंशुद्ध-विग्रहा' हैं, प्राणिमात्रकी शुद्धि करनेवाली हैं, आपका सेवन करनेवाले प्राणीके पापोंको आप विनष्ट करनेवाली हैं; आपको बारंबार नमस्कार है। आप संसारके नाना प्रकारके भोग तथा संसारसे निवृत्तिरूप मोक्ष देनेवाली हैं, आप साक्षात् मङ्गलदायिनी हैं; आपको बारंबार नमस्कार है। आप स्वर्गीय सुखोंके भोग और लौकिक सुखोंके उपभोगको देनेवाली हैं, आप स्वयं भोगदात्री हैं; आपको बारंबार नमस्कार है।''

चित्रकूट-दर्शन

(प्रेषक—श्रीबाबूलालजी गर्ग, शास्त्री, एम्० ए०)

चित्रकूट भारतका प्राचीन आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक तीर्थस्थान तथा वीतराग संत-महात्माओंकी तपश्चर्याकी पावन भूमि है। इसके कण-कणसे भक्ति, वैराग्य एवं शान्तिकी अजस्र धारा प्रवाहित होती रहती है। इसीलिये युग-युगोंसे यह कोटि-कोटि मानवोंके हृदयमन्दिरका इष्टदेव बना हुआ है। इसी पुण्यभूमिकी पवित्र रजसे प्रेरणा प्राप्तकर महर्षि वाल्मीकि 'आदिकवि' कहलाये और संत-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी संसारको 'रामचरितमानस'-जैसे दिव्यरत्नकी अमर भेंट प्रदान करनेमें समर्थ हुए। भौतिक आधि-व्याधियोंसे संतप्त असंख्य प्राणियोंने इसकी सुखद गोदका आश्रय पाकर स्थायी एवं अक्षय शान्ति प्राप्त की है। तभी तो महाकवि रहीमका हृदय सहसा फूट पड़ा है—

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेस।
जा पर बिपदा परति है, सो आवै यहि देस॥

स्थान-परिचय—चित्रकूट उत्तरप्रदेशके बाँदा जिलेकी कर्वी तहसील तथा मध्यप्रदेशके सतना जिलेकी सीमापर स्थित है। यह प्रयागसे ८० मील पश्चिम झाँसी-मानिकपुर (मध्य रेलवे)के बीच कर्वी स्टेशनसे ५ मील दक्षिण है। चित्रकूट नामका कोई विशेष नगर या ग्राम नहीं है। सामान्यतया कर्वी, सीतापुर, कामता, खोही तथा नयागाँव—ये पाँच उपनगर और इनका चतुर्दिक् पञ्चक्रोशीय क्षेत्र ही 'चित्रकूट'के नामसे विख्यात है। इन बस्तियोंमें कर्वी और सीतापुर अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

चित्रकूट पहुँचनेके साधन—चित्रकूट पहुँचनेके लिये रेल तथा बसें इधर-उधरसे समय-समयपर आती-जाती रहती हैं। प्रयागकी ओरसे आनेवालोंको प्रायः हर समय इलाहाबाद-चित्रकूटके बीच चलनेवाली बसें मिल जाती हैं; किंतु ट्रेनसे आनेवालोंको इलाहाबादसे प्रस्थान कर मानिकपुर जंक्शनमें गाड़ी बदलनी चाहिये और फिर मानिकपुर-झाँसी मार्गपर मानिकपुरसे तीसरे स्टेशन कर्वीपर उतरना चाहिये। जबलपुरकी ओरसे आनेवाले यात्रियोंको भी मानिकपुरमें गाड़ी बदलकर कर्वी उतरना चाहिये। कानपुर या झाँसीकी ओरसे आनेवालोंको बाँदा होकर कर्वी उतरना चाहिये। यहाँ यह बता देना भी आवश्यक है कि 'चित्रकूट' एक स्वतन्त्र स्टेशन है; किंतु यातायातके साधनों, आवास एवं सुरक्षाकी दृष्टिसे यह यात्रियोंके लिये सुविधाजनक नहीं है। इसलिये यात्रियोंको कर्वी स्टेशनपर उतरना ही उपयुक्त है। इसके अलावा सतना-चित्रकूट, बाँदा-चित्रकूट और छतरपुर-चित्रकूट मार्गकी बसें भी आती-जाती रहती हैं।

आवासकी सुविधाएँ—कर्वीमें यात्रियोंके ठहरनेके लिये स्टेशनके समीप ही 'श्रीभैरवप्रसाद बद्रीप्रसाद धर्मशाला' तथा सीतापुरमें बस-अड्डेसे थोड़ी दूरपर 'कलकत्तावाली धर्मशाला' और मन्दाकिनीके तटपर 'माँजीकी धर्मशाला', आगरेवालोंकी धर्मशाला, श्रीराम धर्मशालाके अतिरिक्त अनेक जातीय धर्मशालाएँ, यात्री-विश्रामगृह, सरकारी डाकबँगला और सैकड़ों मठ एवं मन्दिर हैं, जहाँ यात्रियोंको आवासकी सुविधाएँ दी जाती हैं।

दर्शनीय स्थल—चित्रकूट क्षेत्रके अन्तर्गत अनेक दर्शनीय स्थान हैं, जो रमणीयता एवं पवित्रताके लिये प्रसिद्ध हैं और जहाँ पहुँचते ही अन्तस्तलमें सत्त्वभावनाका हठात् उदय हो जाता है। नीचे मुख्य स्थलोंका दिग्दर्शन कराया जा रहा है—

कामदगिरि—चित्रकूटधामके मुख्य अधिष्ठातृ-देव 'श्रीकामदगिरि' हैं। इनके दर्शन-मात्रसे मानव जन्म-जन्मान्तरके

कल्मषसे मुक्त हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदासने इसे एक ऐसा शिकारी बताया है, जो पापरूपी मृगको निशाना लगानेमें कभी चूकता नहीं। यों तो इस पर्वतराजका महत्त्व अनादिकालसे ही है, पर भगवान् रामके पाद-संस्पर्शसे इसका प्रभाव और भी बढ़ गया है—

'कामद भे गिरि राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा॥'
(मानस २। २४८। ½)

कामदगिरिके दर्शनके लिये प्रतिमासकी अमावस्या, सूर्यग्रहण, रामनवमी तथा दीपमालिकाको देशके कोन-कोनेसे असंख्य श्रद्धालु यात्री चित्रकूट आते हैं और इसकी परिक्रमा करके कृतार्थ होते हैं। परिक्रमाकी परिधि लगभग ४ मीलकी है। इसके अगल-बगल सैकड़ों देवालय हैं। इनमेंसे कई जीर्ण-शीर्ण दशामें मूकभावसे स्थित अपने प्राचीन तथा विगत दिनोंका स्मरण कर आँसू बहा रहे हैं। इन मन्दिरोंमें राममुहल्ला-मुखारविन्द, साखी-गोपाल और चरणपादुका अधिक प्रसिद्ध तथा महत्त्वपूर्ण हैं।

प्रमोदवन—यह कामदगिरिके पूर्व मन्दाकिनीके तटपर रामघाटसे लगभग ४ फर्लांग दक्षिणमें है। इसका प्राकृतिक दृश्य बड़ा मनोहारी है। इसमें रीवाँ-नरेशका बनवाया हुआ श्रीनारायण भगवान्‌का मन्दिर है। इसके चारों ओर छोटी-छोटी लगभग ३०० कोठरियाँ बनी हुई हैं, जिनके सम्बन्धमें कहा जाता है कि रीवाँनरेशने किसी दैवी बाधाकी शान्तिके लिये इनका निर्माण कराकर उतने ही पण्डितोंद्वारा किसी विशेष अनुष्ठानका आयोजन किया था। स्थान सुन्दर है, देखनेयोग्य है और पर्यटकोंकी मनःशान्तिकी दृष्टिसे अतीव उत्तम है।

जानकीकुण्ड—प्रमोदवनसे एक फर्लांग दक्षिणमें स्थित जानकीकुण्ड चित्रकूटका बड़ा ही रम्य आश्रम है। यहाँ विरक्त महात्माओंकी सैकड़ों गुफाएँ तथा कुटीर हैं, जहाँ २०० से भी अधिक संत-महात्मा रहते हैं। इसका प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही सुहावना है। नीचे मन्दाकिनी छल-छलका गीत गाती हुई बह रही है, जो इस आश्रमकी सुषमाको और भी बढ़ा देती है। कहा जाता है कि वनवास कालमें महारानी जानकीजी यहाँ नित्य स्नान करती थीं, इसलिये इसका नाम 'जानकीकुण्ड' पड़ा।

आश्रमका दर्शन करनेसे भारतीय महाकाव्योंमें चित्रित प्राचीन ऋषियोंके पावन आश्रमोंका चित्र आँखोंके सामने झूमने लगता है। वातावरण शान्त तथा पवित्र है, इससे तपश्चर्याके लिये यह बहुत ही उपयुक्त है। यहाँ एक धर्मशाला, संस्कृत-पाठशाला तथा श्रीराम-सीताका भव्य मन्दिर भी है।

स्फटिक-शिला—यह जानकीकुण्डसे लगभग एक मील दक्षिण सघन वृक्षावलीसे आवृत मन्दाकिनीके तटपर है। यह वही स्थान है, जहाँ—

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए॥
सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर॥
(मानस ३। ०। २)

एक विशाल शिलापर भगवान् रामके चरण चिह्न अङ्कित हैं। इसी शिलापर बैठी हुई भगवती सीताकी देहपर इन्द्र-पुत्र जयन्तने काकका रूप धारणकर चञ्चुका प्रहार किया था। यहाँका प्राकृतिक दृश्य अतीव आकर्षक, मनोमुग्धकारी एवं नेत्रानुरञ्जनकारी है।

अनसूया-आश्रम—कामदगिरिसे लगभग १० मील दक्षिण प्रकृति देवीकी हरी-भरी गोदमें महासती अनसूया तथा महर्षि अत्रिजीकी तपश्चर्याका दिव्य स्थल 'अनसूया-आश्रम' के नामसे विख्यात है। पुण्यशील दम्पतिकी तपस्याके प्रभावसे इसका कण-कण परम पवित्र है। यह जनसमूहके कोलाहलसे दूर शान्तिपूर्वक निवास करनेयोग्य श्रेष्ठ आश्रम है। इसके पावन वायुके संस्पर्शमात्रसे मानवमें सत्त्वगुणी भावना-का उदय हो जाता है। इस आश्रमकी पावन गोदमें असंख्य महात्माओंने परमसिद्धि प्राप्त कर ली है। यहाँ अत्रि, अनसूया तथा उनके पुत्र भगवान् दत्तात्रेय, दुर्वासा और चन्द्रमाकी मूर्तियाँ स्थापित हैं। प्राकृतिक तथा धार्मिक-दोनों दृष्टियोंसे यह स्थान महत्त्वपूर्ण है।

पुराणोंमें उल्लेख है तथा स्थानीय किंवदन्ती भी है कि कामदवन अत्रि ऋषिका निवासस्थान था। एक बार जब ऋषि समाधिमें थे, उस समय देव और दानवोंने मिलकर माता अनसूयासे प्रार्थना की कि सूखा तथा पानीके अभावसे त्रस्त जनताकी आप सहायता करें। इसपर अनसूयाजीने एक गड्ढा खोदा और शिवजीके निकट स्तोत्रोंसे गङ्गाजीका आवाहन किया। गङ्गाजीने अनसूयाजीके निवेदनको स्वीकार किया और वे मन्दाकिनीके रूपमें प्रकट हुईं। आज तक चित्रकूटमें मन्दाकिनीकी धारा बहती है, जिसमें पयस्विनी नामकी एक दूसरी नदी भी आकर मिलती है।

गुप्त-गोदावरी—यह स्थल अनसूया-आश्रमसे लगभग ४ मील पश्चिम है । एक अन्धकारपूर्ण गुफामें निरन्तर जलस्राव होता रहता है । भीतर सीताकुण्ड है, जो दरवाजेसे १५-१६ गजकी दूरीपर है । अंदरसे जलधारा कुण्डोंमें गिरती है और वहीं लुप्त हो जाती है । इसीसे इस 'गुप्त-गोदावरी' कहते हैं । सीताकुण्डके अतिरिक्त लक्ष्मण-कुण्ड, हनुमान्-कुण्ड एवं धनुष-कुण्ड हैं । इसका नैसर्गिक कला-कौशल अनुपम एवं अद्वितीय है ।

मड़फा—श्रीकामदगिरिसे १० मील पश्चिम माण्डव्य ऋषिका परम प्राचीन आश्रम 'मड़फा' नामसे प्रसिद्ध है। एक छोटी पहाड़ीपर ध्वंसावशेषमात्र एक अति प्राचीन किला है, जो जनश्रुतिके अनुसार कालिञ्जर दुर्गका ही एक अङ्ग है । आश्रमका पर्वतीय प्राकृतिक दृश्य बहुत ही चित्ताकर्षक है । यहाँ भगवान् श्रीबालाजीका भव्य मन्दिर बना हुआ है । पासमें ही पञ्चमुखी शंकरजीकी विशाल प्रतिमा स्थापित है । पहाड़ीसे कई झरने झरते हैं तथा नीचे 'पाप-मोचन' नामक एक प्रसिद्ध सरोवर भी है ।

भरतकूप—यह श्रीकामदगिरिसे ५ मील पश्चिम तथा भरतकूप स्टेशनसे १ मील दक्षिण है । यह वही ऐतिहासिक कूप है, जिसमें भरतजीने श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकके निमित्त लाये हुए समस्त तीर्थोंके जलको डाला था । इसलिये इसके जलमें स्नानका बहुत अधिक महत्त्व समझा जाता है—

भरतकूप अब कहिहहिं लोगा । अति पावन तीरथ जल जोगा ॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी । होइहहिं बिमल करम मन बानी ॥
(मानस २ । ३०९ । ४)

कूपके पास ही भरतजीका मन्दिर है । भरतजीकी स्मृतिमें एक संस्कृत-विद्यालय भी चलाया जा रहा है ।

गणेशबाग—देशके प्राचीन गौरव तथा समृद्धिके प्रतीक-स्वरूप गणेशबाग कर्वीसे एक मील दक्षिण पेशवानरेशोंकी कीर्ति सँजोये खड़ा है । इसका निर्माण उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें श्रीमंत विनायकराव पेशवाने अपने आमोद-प्रमोदके लिये कराया था । यहाँकी इमारतोंका निर्माण भारतीय स्थापत्य-कलाका उत्कृष्ट उदाहरण है । बीचमें प्राचीन शैली-का मन्दिर है, जिसकी भित्तियोंमें बारीक कटाईसे देवी-देवताओंकी असंख्य मूर्तियाँ बनायी गयी हैं । सामने एक सरोवर है, जिससे इसकी शोभा और भी बढ़ गयी है । पश्चिमी भागमें एक बड़ा ही भव्य जलाशय है, जिसमें कूप और वापीका सुन्दर सम्मिश्रण है । किंतु खेद है कि समुचित सुरक्षा तथा जीर्णोद्धारके अभावमें शिल्प-कलाका यह अद्भुत नमूना धराशायी होता हुआ स्मृतिशेष ही रह जाता दीखता है ।

बाँकेसिद्ध—कर्वीसे ३ मील दक्षिण-पूर्व हरे-भरे विन्ध्य-पर्वतके पार्श्वभागमें स्थित बाँकेसिद्ध अपने प्राकृतिक सौन्दर्यके लिये प्रसिद्ध है ।

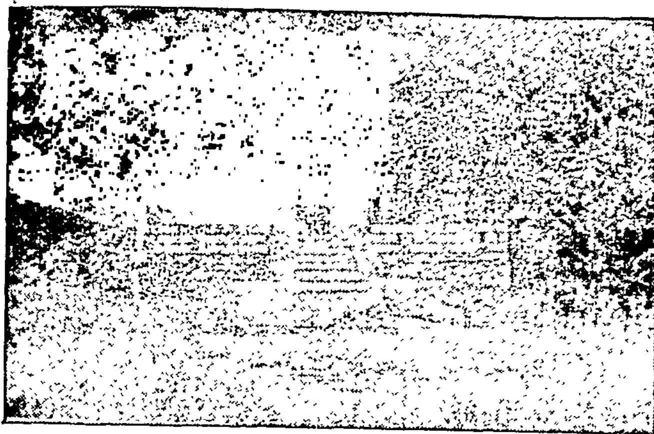
प्रथमहिं देवन्ह गिरि गुहा राखी रुचिर बनाइ ।
राम कृपानिधि कछु दिन बास करहिंगे आइ ॥
(मानस ४ । १२)

—के अनुसार सचमुच ही यह देवनिर्मित एक भव्य कन्दरा है । इसके निर्माणमें भगवती प्रकृति देवीने अपूर्व चातुर्य दिखाया है । एक विशाल चट्टानके नीचे विस्तृत कक्ष बना हुआ है, जो धरातलसे सैकड़ों फुट ऊँचा और शिखरसे सैकड़ों फुट नीचा है । उसके चतुर्दिक् सघन वन्य वृक्षावली लहरा रही है । गुफातक पहुँचनेके लिये नीचेसे पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं । ऊपरसे स्वच्छ-तोय झरना गिर रहा है, जिसका दृश्य बड़ा ही सुहावना है । यह गुफाके उत्तरी भागको नहलाता हुआ पर्वतके ही वक्षमें विलीन हो जाता है ।

कोटितीर्थ—बाँकेसिद्धसे एक मील दक्षिण उसी पर्वतपर 'कोटितीर्थ' नामक रम्य स्थान है । इसका प्राकृतिक दृश्य भी बाँकेसिद्धकी भाँति ही है । यहाँ भी एक झरना बह रहा है, जो पर्वतमें ही अन्तर्लीन हो जाता है । कहा जाता है कि जब भगवान् राम चित्रकूट पधारे थे, तब उनके दर्शनार्थ देवलोकसे आये हुए करोड़ों देवता इसी स्थानपर रुके थे । इसीसे इसका विशेष महत्त्व है ।

देवाङ्गन—यह स्थान कर्वीसे ४ मील दक्षिण तथा रामघाट (सीतापुर) से ३॥ मील पूर्व और कोटितीर्थसे एक मील दक्षिण इसी पर्वतके अञ्चलमें सुशोभित है । यहाँका पर्वतीय दृश्य और जल-प्रपातका उद्गम तथा लय बाँकेसिद्ध एवं कोटितीर्थके ही समान है । वस्तुतः देवाङ्गन-जैसे आश्रमोंके दर्शनसे ही चित्रकूटकी यात्रा सफल समझी जा सकती है; क्योंकि यहाँकी मिट्टीमें शान्ति और आनन्दके परमाणु पूर्णतया व्याप्त हैं, जिनके कारण यहाँ खड़ा होते ही मन पुलकित हो जाता है ।

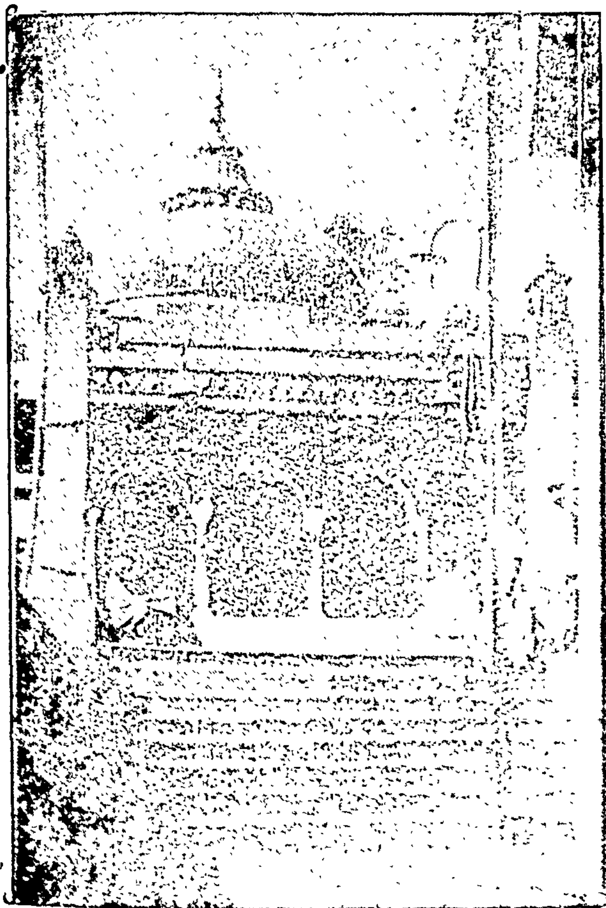
विभिन्न स्थानोंके कुछ दर्शन



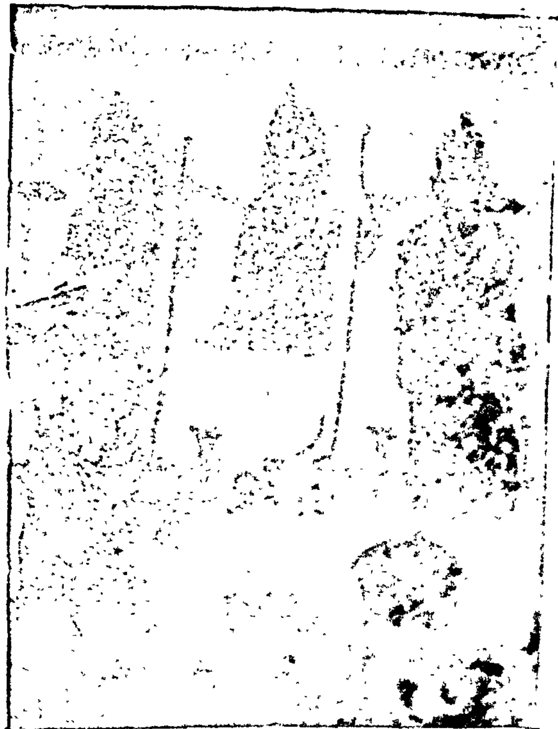
पर्णकुटी, पञ्चवटी



श्रीरघुवीरजी, जानकीकुण्ड, चित्रकूट



भरद्वाज-आश्रम, प्रयाग

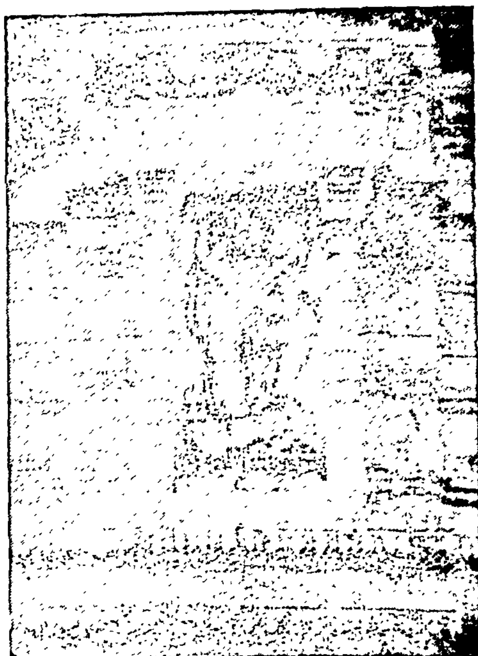


मानस-मन्दिरके सामने, वाराणसी

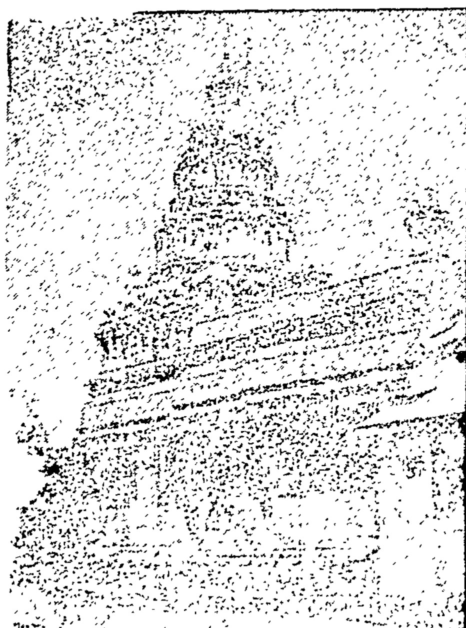
पञ्चवटी और सज्जनगढ़के कुछ दर्शन



श्रीराम-पञ्चायतन, सज्जनगढ़ (महाराष्ट्र)



श्रीहनुमान्‌जी, पञ्चवटी



श्रीराममन्दिर, सज्जनगढ़



राममन्दिरके आराध्य, पञ्चवटी

हनुमान-धारा—यह स्थान रामघाट (सीतापुर) से दो मील पूर्व देवाङ्गनवाले पर्वतपर ही स्थित है। यहाँ श्रीहनुमान्जीकी भव्य मूर्ति स्थापित है, जिसके दर्शनके लिये यों तो यात्री सदैव आते रहते हैं, पर भाद्रपद-शुक्लपक्षके अन्तिम मङ्गलवार (बुढ़वा-मङ्गल) को प्रतिवर्ष भारी मेला लगता है। पर्वतके भीतरसे एक ऐसा झरना फूट निकला है, जिसकी शुण्डाकार निर्मल जलधारा हनुमान्जीकी बायीं भुजापर पड़ती है। इसे देखनेसे शंकर भगवान्के मस्तकपर गङ्गावतरणके दृश्यकी कल्पना होने लगती है। मूर्तिके पास-तक पहुँचनेके लिये नीचेसे ३६० सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। यात्रियोंके विश्रामके लिये छोटी-सी धर्मशाला भी है। इसी पर्वत-श्रेणीमें हनुमान-धाराके ऊपर 'सीता-रसोई' तथा 'नरसिंह-धारा' नामक स्थान भी देखनेयोग्य हैं।

मत्तगजेन्द्र (मदगंजन स्वामी)—रामघाटके ऊपर मत्तगजेन्द्र (मदगंजन स्वामी) नामक शंकर भगवान्का प्रसिद्ध मन्दिर सुशोभित है। पुरीके अन्तर्गत यह प्रसिद्ध देवालय है और पुरी—क्षेत्रका प्रमुख देवता है। कहा जाता है कि मत्तगजेन्द्र शंकरजीकी स्थापना साक्षात् ब्रह्माजीके कर-कमलों द्वारा हुई थी।

उल्लिखित स्थानोंके अतिरिक्त चित्रकूट-क्षेत्रमें और भी अनेक दर्शनीय स्थल हैं। जानकीकुण्डके मार्गमें रामधाम, परिक्रमाके दक्षिण भागमें लक्ष्मणपहाड़ी तथा उत्तरी भागमें पीली कोठी, पीली कोठीसे थोड़ी दूरपर रामशय्या, परिक्रमामें ही भरत-मिलाप और कर्वीसे ४ मील उत्तर-पश्चिम सूर्यकुण्ड, चित्रकूटसे २४ मील दूर गोस्वामी तुलसीदासजीकी जन्मभूमि राजापुर, १६ मील दूर वाल्मीकि-आश्रम तथा २४ मील दूर ऐतिहासिक स्थान कालिञ्जर आदि अधिक प्रसिद्ध हैं।

नासिक-पञ्चवटी-माहात्म्य

(प्रेषक—विद्यावाचस्पति पं० श्रीशंकरजी शास्त्री)

कलिधर्माः प्रबाधन्ते सर्वदेशेषु भूतले।
गोदावर्या न बाधन्ते कदापि तटयोर्द्वयोः॥
ततोऽपि नासिके नैव बाधन्ते कलिकालजाः॥
कलियुगे यदि वाञ्छति सद्गतिं
निजकुलस्य गतिं परमार्थतः।
वसतु पञ्चवटीं प्रति मानवो
भजतु रामपदाम्बुरुहद्वयम्॥
रामेति नामस्मरणेन जन्तु-
र्विमुच्यते पञ्चवटीं गतः सन्।
नानाविधानामपि पातकानां
कर्ता कलौ मुक्तिमुपैति जीवः॥
संसारार्णवतारणाय विहिता नानातरीणां चयाः
किंतु श्रीरघुनाथनामसदृशो नान्या तरिर्दृश्यते।
तस्मात्प्राज्ञतमेन पञ्चवटिकामध्ये विधायालयं
श्रीरामस्य पदारविन्दयुगलं ध्येयं च सेव्यं भृशम्॥
देवलोके सुरैर्नित्यं गीयते नासिकं सदा।
अहो धन्या अहो धन्या मानवा वसुधातले॥
यदि च मरणकाले मनवो मानसे च
स्मरति हि महिमानं नासिकस्यापि सद्यः।
अमरनगरनारीचामरैः सेव्यमानो
विगतसकलपापो याति विष्णोः समीपम्॥

'इस भूतलपर कलिधर्म सभी स्थानोंपर बाधा उत्पन्न करते हैं, परंतु गोदावरीके दोनों तटोंपर कभी बाधा नहीं उत्पन्न करते; फिर 'नासिक' नामक क्षेत्रमें तो कलिसे उत्पन्न दोष और भी बाधा नहीं पहुँचाते। इस कलिकालमें मनुष्य यदि परमार्थकी दृष्टिसे अपनी और अपने परिवारकी सद्गति चाहता हो तो वह पञ्चवटीमें निवास करे और श्रीरामजीके चरण-कमलोंकी सेवा करे। पञ्चवटीमें गया हुआ जीव राम-नामके स्मरणमात्रसे मुक्त हो जाता है और साथ ही कलिकालमें नाना प्रकारके पातक-कर्म करनेवाला जीव मुक्तिको प्राप्त कर लेता है। संसार-सागरको पार करनेके लिये अनेक प्रकारकी नौकाएँ हैं, किंतु श्रीरघुनाथके नामके सदृश अन्य कोई तरणि (नौका) नहीं दिखायी देती। अतः बुद्धिमान् व्यक्ति उस पञ्चवटीमें निवास-स्थान बनाकर श्रीरामके युगल चरण-कमलका सर्वदा ध्यान करे तथा अधिक सेवारत रहे। देवलोकमें देवतालोग सदा इस नासिकका गुण गाते हैं कि अहो! इस भूतलपर निवास करनेवाले मानव धन्य हैं, धन्य हैं। यदि मरणकालमें मनुष्य मनमें नासिककी महिमाको स्मरण करता है तो वह निश्चय ही सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर इन्द्रपुरीकी नारियोंके चँवरोंसे सेवित होकर स्वतः विष्णुलोकको प्राप्त होता है।'

नासिक-पञ्चवटी-दर्शन

(प्रेषक—डा० श्रीघनश्यामजी तोलानी)

भारतवर्षके पवित्र तीर्थस्थानोंमें नासिक-पञ्चवटी एक अत्यन्त पुनीत क्षेत्र माना गया है। पूर्णब्रह्म मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके वनवासके कुछ कालतक यह उनकी निवासस्थली थी। यहींपर श्रीलक्ष्मणजीने शूर्पणखाकी नासिका और कान काटे थे, जिससे इस स्थानको 'नासिक' नाम प्राप्त हुआ। खर, दूषण और त्रिशिरा-जैसे प्रबल राक्षसोंका संहार, मारीच-वध, सीताहरण इत्यादि लीलाएँ यहींपर हुई थीं। प्रतिवर्ष भारतके विभिन्न प्रान्तोंसे हजारों तीर्थयात्री दर्शनार्थ यहाँपर आते हैं। गोदावरी नदी भारतकी सात पवित्र नदियोंमेंसे है। उसका उद्गम भी यहीं है।

प्रत्येक बारह वर्षोंमें जब बृहस्पति (गुरु) सिंह-राशिमें आते हैं, तब यहाँ एक मास सिंहस्थ कुम्भ-मेला लगता है। इस अवसरपर हजारों साधु, संत, महन्त, सत्पुरुष तथा असंख्य भावुकजन पधारकर पतितपावनी श्रीगोदावरीके श्रीरामतीर्थपर स्नान करते हैं।

मार्ग तथा ठहरनेका स्थान

मध्य-रेलवेकी बंबईसे दिल्ली जानेवाली मुख्य लाइन-पर नासिक-रोड प्रसिद्ध स्टेशन है। स्टेशनसे नासिक चार मील और पञ्चवटी पाँच मील दूर है। स्टेशनसे नासिकतक मोटर-बस चलती है। ताँगे तथा टेक्सियाँ भी पर्याप्त मिलती हैं। नासिक, पञ्चवटी तथा त्र्यम्बकमें भी यात्री पंडोंके यहाँ और देवालयोंमें भी ठहर सकते हैं। इनके अतिरिक्त कई अच्छी धर्मशालाएँ भी नासिक-पञ्चवटी क्षेत्रमें हैं।

नासिक और पञ्चवटी वस्तुतः एक ही नगर हैं। इस नगरके बीचसे गोदावरी बहती है। गोदावरीके दक्षिण तटपर नगरका मुख्य भाग है, जिसे 'नासिक' कहते हैं और गोदावरीके उत्तर तटपर जो भाग है, उसे 'पञ्चवटी' कहा जाता है। गोदावरीके दोनों तटोंपर देवालय हैं। यात्री प्रायः पञ्चवटीमें ठहरते हैं; क्योंकि वहाँसे तपोवन तथा दूसरे तीर्थोंका दर्शन करनेमें सुविधा होती है।

(१) गोदावरी—गोदावरीका उद्गम तो त्र्यम्बकके पास है, किंतु यात्री पञ्चवटीमें ही गोदावरी-स्नान करते हैं। यहाँ वर्षाके बाद गोदावरीमें बहुत अधिक जल नहीं रहता, यद्यपि प्रवाह अच्छा रहता है। गोदावरीपर पुल बने हैं, किंतु नीचेसे भी धाराको पार करनेकी सुविधा है। गोदावरीमें कई कुण्ड बनाये गये हैं। उन्हें पवित्र तीर्थ माना जाता है।

(२) श्रीरामकुण्ड—पञ्चवटीमें गोदावरी दक्षिण-वाहिनी है, जो अत्यन्त पुनीत मानी गयी है। गोदावरीके पाटमें परमपुनीत 'श्रीरामकुण्ड' या रामतीर्थ स्थित है, जहाँ स्नान करनेका बड़ा भारी माहात्म्य है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने यहाँ विधिपूर्वक स्नान करके अपने पिता श्रीदशरथका श्राद्धादिक कर्म किया था। यहींपर 'अरुणा-संगम' तीर्थ और 'अस्थि-विलय-तीर्थ' भी हैं। पश्चिम तथा दक्षिण भारतके प्रायः सभी समीपवर्ती हिंदू अपने मृतकोंकी उत्तरक्रिया तथा अस्थि-विलय यहींपर करते हैं। रामकुण्डके समीप ही लक्ष्मण-कुण्ड तथा सीताकुण्ड हैं।

(३) श्रीराममन्दिर—पञ्चवटीमें यह सबसे प्राचीन एवं प्रधान मन्दिर है। इसे 'कालाराम मन्दिर' भी कहते हैं; क्योंकि इसमें स्थित श्रीराम, लक्ष्मण और श्रीजानकीजीके श्रीविग्रह काले पाषाणके बने हुए हैं।

पेशवाओंके कालमें यह मन्दिर जीर्ण स्थितिमें था। ई० सन् १७९०में श्रीरंगराव ओढेकरने २३ लाख रुपये खर्च करके इसका जीर्णोद्धार किया। मन्दिरके चारों तरफ १७ फुट ऊँची पत्थरकी दीवार (कोट) है, जिसकी चारों दिशाओंमें चार दरवाजे हैं, जिनमेंसे पूर्वके दरवाजेको 'महाद्वार' कहते हैं। इसी कोटकी दीवारके अंदर चारों ओर एक विशाल बरामदा बना हुआ है, जिसमें यात्री लोग ठहरते हैं।

मध्यभागमें मन्दिरका मुख्य भवन बना हुआ है, जिसकी लंबाई २६६ फुट और चौड़ाई १३८ फुट है। इसकी बनावट बहुत ही सुन्दर और कलापूर्ण है। मन्दिर पूर्वाभिमुख है और इसकी रचनाकी विशेषता यह है कि मेष और तुला-संक्रमणके दिन सूर्यकी

किरणें सूर्योदयके साथ ही ठीक ठाकुरजीके श्रीमुखपर पड़ती हैं। चैत्र शुक्ला प्रतिपदासे नवमीतक यहाँ रामनवमीका उत्सव मनाया जाता है और चैत्र शुक्ला एकादशीको रथयात्राका बड़ा भारी मेला लगता है। इस मन्दिरमें नित्य दर्शनार्थियोंकी भीड़ लगी रहती है।

(४) सीतागुफा—श्रीराममन्दिरके पास उत्तरकी ओर यह स्थान है। खर-दूषणसे लड़ाईके समय सीताजीको इसी गुफामें रखा गया था, ऐसी मान्यता है। गुफामें सात सीढ़ियाँ नीचे उतरनेपर श्रीराम, सीता, लक्ष्मणजीकी मूर्तियाँ विराजमान हैं। सीतागुफाकी बगलमें ही प्राचीन पाँच वटवृक्ष हैं, जिनसे इस स्थानको 'पञ्चवटी' नाम प्राप्त हुआ है।

(५) तपोवन—पुराणप्रसिद्ध नासिक-पञ्चवटी क्षेत्रके पूर्वमें १॥ मीलकी दूरीपर 'तपोवन' है। यहाँ कपिला और गोदावरीका संगम है। सांख्यशास्त्र-प्रणेता श्रीकपिलमुनिकी यह तपोभूमि है। यहाँ संगमपर ब्रह्मयोनि, विष्णुयोनि, रुद्रयोनि, मुक्तितीर्थ, अग्नितीर्थ, सौभाग्यतीर्थ, कपिलतीर्थ और कपिल-संगम—ये पुराण-प्रसिद्ध अष्टतीर्थ हैं, ऐसी बात 'स्कन्दपुराण'के 'सह्याद्रि-खण्ड'में लिखी है।

अग्नितीर्थकी विशेषता यह है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने सीताहरणके पूर्व श्रीसीताजीका मूलस्वरूप इसी स्थानपर अग्निमें रखा था और मायिक स्वरूप रावणद्वारा हरण किया गया था। ऐसी कथा 'आनन्दरामायण' तथा 'श्रीरामचरितमानस'में वर्णित है। तपोवनमें प्राचीन लक्ष्मणमन्दिर, पर्णकुटी, शूर्पणखा-नासिका-छेदन तथा मारीचवध-स्थल विद्यमान हैं और तपोवन जाते समय मार्गमें श्रीपञ्चमुखी हनुमान्जीका मन्दिर पड़ता है।

(६) जटायु-तीर्थ—नासिक जिलेमें छोटी नामक गाँवसे करीब २६ मीलकी दूरीपर यह पवित्र स्थान है, जो बड़ा ही रमणीय, मनोरम तथा प्राकृतिक सौन्दर्यसे सम्पन्न है। यहींपर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी जटायुसे भेंट हुई थी और इसी स्थलपर जटायुके शरीरत्यागके समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने सब तीर्थोंको आवाहन करके बुलाया था। इसीलिये जटायुतीर्थको 'सर्वतीर्थ' भी कहते हैं। यह तीर्थ टाकेद गाँवके नजदीक ही विद्यमान है। छोटीसे सर्वतीर्थ (टाकेद) जानेके लिये बसकी सुविधा है।

(७) सीता-सरोवर—यह पञ्चवटीके उत्तर ४ मील दूर म्हसरुक नामक ग्रामके पास वरुणा नदीके तीरपर है। यह सीतामाताके स्नान करनेकी जगह थी, ऐसी मान्यता है। यहाँ पौषमासके प्रति रविवारको मेला लगता है। यहाँ एक श्रीराममन्दिर भी है।

भगवान् रामके चरणोंकी महिमा

कंज के समान सिद्ध-मानस-मधुप-निधि,
परम निधान सुरसरि मकरंद के।
सब सुख साज, सुरराजन के सिरताज,
भाजन हैं मंगल मुकति रूप कंद के॥
सरजू-विहारी, रिपिनारी-तापहारी, ज्ञान-
दाता हितकारी सेनापति मतिमंद के।
विस्व के भरन, सनकादि के सरन, दोऊ
राजत चरन महराज रामचंद के॥

दण्डकारण्यके तीर्थ

ऋष्यमूक–दक्षिणके विजयनगर राज्यकी प्राचीन राजधानी हम्पी है । हम्पीका प्रसिद्ध मन्दिर श्रीविरूपाक्ष-मन्दिर है । यह श्रीविरूपाक्ष-मन्दिर हास्पेटसे ९ मील दूर है । विरूपाक्ष-मन्दिरके सम्मुख जो सड़क है, उससे सीधे चले जायँ तो वह मार्ग आगे कुछ ऊँचा-नीचा अवश्य मिलता है, किंतु ऋष्यमूक पर्वतके पासतक ले जाता है । यहाँ तुङ्गभद्रा नदी धनुषाकार बहती है, अतः वहाँ नदीमें 'चक्रतीर्थ' माना जाता है । यहाँ नदीकी गहराई अधिक है । उसमें मगर-घड़ियाल आदि भी इस स्थानपर प्रायः रहते हैं ।

चक्रतीर्थके पास पहाड़ीके नीचे श्रीराम-मन्दिर है । इस मन्दिरमें श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीताजीकी बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ हैं ।

श्रीराम-मन्दिरके पासकी पहाड़ीको 'मतङ्गपर्वत' कहते हैं । यह ऋष्यमूकका ही एक भाग है । इसपर एक मन्दिर है । कहा जाता है कि इसी शिखरपर मतङ्ग ऋषिका आश्रम था । इसके पास ही चित्रकूट और जालेन्द्र नामके शिखर हैं । यहीं तुङ्गभद्राके उस पार दुन्दुभि पर्वत दीख पड़ता है ।

चक्रतीर्थसे आगे जानेपर गन्धमादनके नीचे एक मण्डप दिखायी देता है । उसकी एक भित्तिमें भगवान् विष्णुकी मूर्ति खुदी है । उसके पाससे गन्धमादन-शिखरपर जानेका मार्ग है । कुछ ऊपर एक गुफामें श्रीरङ्गजी (भगवान् विष्णु)-की शेषशायी मूर्ति है ।

वहाँसे नीचे उतरकर आगे जानेपर सीताकुण्ड मिलता है । उसके तटपर श्रीसीताजीके चरणचिह्न हैं । कहते हैं लङ्कासे लौटकर श्रीजानकीजीने यहाँ स्नान किया था । कुण्ड-के पश्चिमतटपर गुफाके पासतक शिलापर श्रीसीताजीकी साड़ीका चिह्न है। गुफामें श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीकी मूर्तियाँ हैं ।

किष्किन्धा–हम्पी-क्षेत्रमें ही तुङ्गभद्राके किनारे किष्किन्धा है । विट्ठलस्वामी-मन्दिरसे लगभग एक मील पूर्व आकर मार्ग उत्तरकी ओर मुड़ता है । स्फटिकशिलासे सीधे आनेवाला मार्ग यहाँ विट्ठलस्वामी-मन्दिर जानेवाले मार्गसे मिलता है । इस मार्गसे कुछ ही दूर जानेपर सामने तुङ्गभद्रा नदी मिलती है ।

तुङ्गभद्राकी धारा यहाँ तीव्र है । नदीको पार करनेके लिये यहाँ नौकाएँ नहीं बनतीं, नाविक लोग चमड़ेसे मढ़ा एक गोल टोकरा रखते हैं । छोटे टोकरेमें ४-५ आदमी बैठ सकते हैं । बड़े टोकरेमें १५—२० आदमी बैठते हैं । इस टोकरेसे ही नदी पार करनी पड़ती है ।

तुङ्गभद्राके उस पार लगभग आध मीलपर अनागुंदी ग्राम है । इसीको 'प्राचीन किष्किन्धा' कहा जाता है । इस गाँवके दक्षिणपूर्व तुङ्गभद्राके तटपर कुछ मन्दिर हैं । उनमें वालीकी कचहरी, लक्ष्मी-नृसिंहमन्दिर तथा चिन्तामणिगुफा-मन्दिर मुख्य हैं ।

कुछ आगे सप्तताल-वेधका स्थान है । यहाँ एक शिलापर भगवान् रामके बाण रखनेका चिह्न है । इस स्थानके सामने तुङ्गभद्राके पार बालिवधका स्थान कहा जाता है । वहाँ सफेद शिलाएँ हैं, जिनको 'वालीकी हड्डियाँ' कहते हैं । तुङ्गभद्राके उसी पार तारा, अङ्गद एवं सुग्रीव नामक तीन पर्वत-शिखर हैं ।

सप्ततालवेधसे पश्चिम एक गुफा है । कहते हैं कि भगवान् श्रीरामने वहाँ बालिवधके पश्चात् विश्राम किया था । गुफाके पीछे 'हनुमान-पहाड़ी' है ।

पम्पासर–तुङ्गभद्राके उस पार अनागुंदी ग्राम जाते समय गाँवसे बाहर ही एक सड़क बायीं ओर पश्चिमकी तरफ जाती है । उस सड़कसे लगभग दो मीलपर पम्पा-सरोवर है । मार्गमें पहले सड़कसे कुछ दूर पश्चिम पहाड़के ऊपर, पर्वतके मध्यभागमें गुफाके अंदर श्रीरङ्गजी तथा सप्तर्षियोंकी मूर्तियाँ हैं । आगे पूर्वोत्तर पहाड़के पास ही पम्पा-सरोवर है । यह एक छोटा-सा सरोवर है । उसके पास 'मानसरोवर' नामक एक और छोटा सरोवर है । पम्पा-सरोवरके पास पश्चिम ओर एक पर्वतपर कई जीर्ण मन्दिर हैं । उनमेंसे एकमें श्रीलक्ष्मी-नारायणकी युगल-मूर्ति है । एक मण्डपमें भगवान्के चरणचिह्न हैं। उसी पर्वतपर एक गुफा है, उसे 'शबरी-गुफा' कहते हैं। कुछ विद्वानोंका मत है कि पम्पासर वहाँ था, जहाँ आज हास्पेट नगर है । ऊँचाईसे देखनेपर नगरकी पूरी भूमि नीची दीखती है ।

अञ्जनीपर्वत–पम्पा-सरोवरसे एक मील दूर अञ्जनी-पर्वत है । यह पर्वत पर्याप्त ऊँचा है और ऊपर चढ़नेका मार्ग अच्छा नहीं है । पर्वतपर एक गुफा-मन्दिर है । उसमें माता अञ्जनी तथा हनुमान्जीकी मूर्तियाँ हैं । कहते हैं, माता अञ्जनीका यहीं निवास था ।

माल्यवान् पर्वत (स्फटिकशिला)–विरूपाक्ष मन्दिरसे ४ मील पूर्वोत्तर माल्यवान् पर्वत है। इसके एक भागका नाम 'प्रवर्षणगिरि' है। इसीपर स्फटिकशिला-मन्दिर है। हास्पेटसे यहाँतक सीधी सड़क आती है। मोटर-बससे सीधे स्फटिकशिला आ सकते हैं। श्रीराम-लक्ष्मणने वर्षाके चार महीने यहाँ व्यतीत किये थे।

सड़कके पाससे ही पहाड़ीपर जानेका मार्ग है। वहाँ गोपुरसे भीतर जानेपर एक परकोटेके भीतर सुविस्तृत आँगन के मध्यमें सभामण्डपसे लगा श्रीराम-मन्दिर है। मन्दिरमें श्रीराम-लक्ष्मण तथा जानकीजीकी बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ हैं। सप्तर्षियोंकी भी मूर्तियाँ हैं। यह मन्दिर एक शिलामें गुफा बनाकर बनाया गया है और शिलाके ऊपर शिखर बना दिया गया है। शिखरके नीचे शिलाका भाग स्पष्ट दीखता है।

मन्दिरके दक्षिण-पश्चिम कोणपर 'रामकचहरी' नामक एक सुन्दर मण्डप है। पासमें एक जलका कुण्ड है। कहते हैं, इसे श्रीरामने बाण मारकर प्रकट किया था। मन्दिरके पिछले भागमें कुछ ऊँचाईपर 'लक्ष्मणबाण'नामक स्थान है। कहा जाता है कि लक्ष्मणजीने बाण मारकर यहाँ जल प्रकट किया था और श्रीरामने वहाँ पितृश्राद्ध किया था। यहाँ पर्वतमें एक चौड़ी दरार है, जिसमें जल भरा रहता है। इसके पास बहुत-सी शिलापिण्डियाँ हैं। इस स्थानके पास ही एक छोटा-सा गुफा-मन्दिर है। यहाँ गुफामें शिवलिङ्ग स्थापित है।

मन्दिरके पूर्वभागमें पर्वतके ऊँचे शिखरपर दो छोटे मण्डप बने हैं। एकको 'रामझरोखा' और दूसरेको 'लक्ष्मण-झरोखा' कहते हैं।

स्फटिकशिलाके इस मन्दिरके सामनेकी पक्की सड़कसे ही एक मील आगे जानेपर सुग्रीवका 'मधुवन' मिलता है।

श्रीरामेश्वर-माहात्म्य

जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि॥
होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देइहि॥
मम कृत सेतु जो दरसनु करिही। सो बिनु श्रम भवसागर तरिही॥
(मानस ६। २। १-२)

अस्ति रामेश्वरं नाम रामसेतौ पवित्रतम्॥
क्षेत्राणामपि सर्वेषां तीर्थानामपि चोत्तमम्।
दृष्टमात्रे रामसेतौ मुक्तिः संसारसागरात्॥
हरे हरौ च भक्तिः स्यात्तथा पुण्यसमृद्धिता।
कर्मणस्त्रिविधस्यापि सिद्धिः स्यान्नात्र संशयः॥

× × ×

गण्यन्ते पांसवो भूमेर्गण्यन्ते दिवि तारकाः।
सेतुदर्शनजं पुण्यं शेषेणापि न गण्यते॥
समस्तदेवतारूपः सेतुबन्धः प्रकीर्तितः।
तद्दर्शनवतः पुंसः कः पुण्यं गणितुं क्षमः॥
सेतुं रामेश्वरं लिङ्गं गन्धमादनपर्वतम्।
चिन्तयन् मनुजः सत्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
सेतुसैकतमध्ये यः शेते तत्पांसुलुण्ठितः।
यावन्तः पांसवो लग्नास्तस्याङ्गे विमलात्मनः।
तावतां ब्रह्महत्यानां नाशः स्यान्नात्र संशयः।
(स्कं०, ब्राह्मखण्ड, सेतुमा० १। १८-२०, २३-२४, २८, ४९-५०)

श्रीरामेश्वर-दर्शन

चार दिशाओंके चार धामोंमें रामेश्वर दक्षिण दिशाका धाम है। यह एक समुद्री द्वीपमें स्थित है। समुद्रका एक भाग बहुत संकीर्ण हो गया है। उसपर पाम्बन स्टेशनके पास रेलवे पुल है। कहा जाता है, समुद्रका यह भाग पहले नहीं था। रामेश्वर पहले भूमिसे मिला था। किसी प्राकृतिक घटनाके कारण इस अन्तरीपका मध्यभाग दब गया और वहाँ समुद्र आ गया। यह रामेश्वर द्वीप लगभग ११ मील लंबा और सात मील चौड़ा है।

श्रीरामेश्वरकी गणना द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें है। भगवान् श्रीरामने इसकी स्थापना की थी। कहते हैं—भगवान् श्रीराम जब यहाँ पधारे, तब उन्होंने पहले उप्पूरमें गणेशजीकी प्रतिष्ठा की। नवपाषाणभूके वैताल-तीर्थमें तथा पाम्बनके भैरव-तीर्थमें भी उन्होंने स्नान किया। एक स्थानपर वे अकेले बैठे। फिर रामेश्वर जाकर उन्होंने भगवान् रामेश्वरकी स्थापना एवं पूजन किया।

भगवान् श्रीरामने जो सेतु बँधवाया था, वह इतना विस्तीर्ण था कि वह अपार वानर-सेनाको समुद्रके पार ले जा सकता था। उसकी चौड़ाई देवीपत्तनसे दर्भशयनतक थी। देवीपत्तनको 'सेतुमूल' कहते हैं। वह सेतु सौ योजन लंबा था। धनुष्कोटिपर लङ्कासे लौटनेपर भगवान्ने धनुषकी नोकसे सेतु तोड़ दिया। इस प्रकार रामनाद (रामनाथपुरम्) से धनुष्कोटितकका यह पूरा क्षेत्र परम पवित्र है। यह पूरा क्षेत्र भगवल्लीला-स्थल है। इसके विभिन्न तीर्थोंका परिचय आगे क्रमशः दिया जा रहा है।

इस क्षेत्रका नाम गन्धमादन था; किंतु कलियुगके प्रारम्भमें गन्धमादन पर्वत पातालमें चला गया। उसका पवित्र प्रभाव यहाँकी भूमिमें है। यहाँ बार-बार देवता आते थे, अतः इसे 'देवनगर' भी कहते हैं। महर्षि अगस्त्यका आश्रम यहीं पासमें था। अपनी तीर्थ-यात्रामें श्रीबलरामजी भी यहाँ पधारे थे। पाण्डव भी आये थे। इस प्रकार अनादिकालसे यह देवता, ऋषिगण एवं महापुरुषोंकी श्रद्धाभूमि रहा है।

मार्ग एवं ठहरनेके स्थान—मद्राससे रामेश्वरम्तक दक्षिण-रेलवेकी सीधी लाइन है। रामेश्वरके पंडोंके सेवक दूर-दूरसे यात्रियोंको साथ लाते हैं। पंडोंके यहाँ यात्रियोंके ठहरनेका पर्याप्त स्थान एवं सुविधा रहती है। किंतु रामेश्वरम्में इतनी धर्मशालाएँ हैं कि यात्री पंडोंके यहाँ ठहरें, यह आवश्यक नहीं। रामेश्वर में उत्तर भारतके लोग बराबर जाते हैं, इससे यहाँ हिंदी भाषा समझी जाती है। भाषा न समझनेकी असुविधा यहाँ नहीं होती।

लक्ष्मणतीर्थ—रामेश्वर पहुँचकर यात्री प्रायः पहले लक्ष्मण-तीर्थमें स्नान करते हैं। यह तीर्थ रामेश्वर-मन्दिरसे सीधी सामने जानेवाली सड़कपर लगभग एक मील पश्चिममें है। सड़कके दक्षिण भागमें यह विस्तृत सरोवर है। इसके चारों ओर पक्की सीढ़ियाँ बनी हैं। सरोवरके मध्यमें एक मण्डप है। लङ्कासे लौटकर भगवान् श्रीराम जब रामेश्वर आये, तब उन्होंने पहले यहीं स्नान किया था।

सरोवरके उत्तर एक मण्डप है। उससे लगा हुआ लक्ष्मणेश्वर शिव-मन्दिर है। कहा जाता है कि लक्ष्मणेश्वरकी स्थापना लक्ष्मणजीने की थी। यात्री यहाँ मण्डपमें मुण्डन कराते हैं, स्नान करके तर्पण-श्राद्धादि भी करते हैं तथा लक्ष्मणेश्वरका दर्शन-पूजन करते हैं।

सीता-तीर्थ—लक्ष्मण-तीर्थसे स्नानादि करके लौटते समय कुछ ही दूर सड़कके वाम भागमें 'सीता-तीर्थ' नामक कुण्ड मिलता है। इसमें आचमन-मार्जन किया जाता है। इसके पास ही एक मन्दिरमें पञ्चमुखी हनुमान्का विग्रह है। उसके सामने मन्दिरमें श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीकी मूर्तियाँ हैं।

रामतीर्थ—सीता-तीर्थसे कुछ और आगे बढ़नेपर दाहिनी ओर 'रामतीर्थ' नामक बड़ा सरोवर मिलता है। इसका जल खारा है। इसके चारों ओर पक्के घाट हैं। सरोवरके पश्चिम एक बड़ा मन्दिर है। इसमें श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीके श्रीविग्रह प्रतिष्ठित हैं। ये श्रीविग्रह बड़े मनोहर हैं।

अग्नि-तीर्थ तथा शंकरमठ—मन्दिरके पूर्वी भागमें मीनारके ठीक सामनेकी खाड़ी ही यह तीर्थ कहलाती है। भगवान् राम जब लङ्काकी विजय और रावणका वध करके लौटे, तब उन्होंने इसी स्थानपर सीताजीकी पवित्रताकी परीक्षा की थी। उन्होंने अग्निका आह्वान किया। अग्नि समुद्रसे प्रकट हुए और उन्होंने कहा—'हे राम! आपने जानकीके पातिव्रत्यके प्रभावसे ही रावणको जीता है। आप इनको ग्रहण करें।' अग्निदेवकी साक्षीसे रामने सीताजीको ग्रहण किया। इसी स्थानपर अग्निदेवने अपने दिव्य दर्शन दिये थे, इसीलिये इस तीर्थका नाम 'अग्नितीर्थ' पड़ा। इस कुण्डमें स्नान

करनेसे पिशाच-बाधा दूर होती है। सुतीक्ष्णमुनिने एक युवकको इस तीर्थमें स्नान कराकर पिशाचयोनिसे मुक्त किया था। युवकने एक मुनिके पुत्रको तालाबमें डुबो दिया था। मुनिके शापसे युवक पिशाच हो गया था। इसी स्थानपर समुद्रके ठीक किनारे श्रीशंकराचार्यजीका एक मठ बना हुआ है।

कोदण्डराम स्वामी—रामेश्वरसे पाँच मील दूर उत्तर समुद्रके किनारे किनारे जानेपर रेतके मैदानमें यह मन्दिर मिलता है। केवल पैदल जाना पड़ता है। यहाँ मन्दिरमें श्रीराम-लक्ष्मण-जानकी तथा विभीषणकी मूर्तियाँ हैं। कहते हैं, यहीं भगवान्‌ने विभीषणको समुद्र-जलसे राजतिलक किया था।

गन्धमादन (रामझरोखा)—यह स्थान श्रीरामेश्वर-मन्दिरसे डेढ़ मील दूर है। इस मार्गमें जाते समय क्रमशः सुग्रीवतीर्थ, अङ्गदतीर्थ, जाम्बवान्‌तीर्थ और अमृततीर्थ मिलते हैं। इनमें सुग्रीवतीर्थ सरोवर है, शेष कूप हैं। यात्री इनके जलसे आचमन-मार्जन करते हैं। इनसे आगे हनुमान्‌जीका एक मन्दिर है। इसमें हनुमान्‌जीके बालरूपकी सुन्दर मूर्ति है। इस मार्गमें यहीं पीनेयोग्य अच्छा जल मिलता है। अमृततीर्थका जल भी उत्तम है।

इस स्थानसे कुछ आगे 'रामझरोखा' है। यह एक टीला है। उसपर ऊपरतक जानेको सीढ़ियाँ बनी हैं। मन्दिरमें भगवान्‌के चरणचिह्न हैं। कहते हैं, यहींसे हनुमान्‌जीने समुद्र पार होनेका अनुमान किया था और श्रीरघुनाथजीने यहाँ सुग्रीवादिके साथ लङ्कापर चढ़ाईके सम्बन्धमें मन्त्रणा की थी।

यहाँसे नीचे उतरकर परिक्रमा करते हुए दूसरे मार्गसे रामेश्वर लौटते हैं। इस मार्गमें रामझरोखाके टीलेसे नीचे उतरते ही 'धर्मतीर्थ' मिलता है। यह एक बावली है। इस तीर्थकी स्थापना युधिष्ठिरद्वारा हुई बतायी जाती है। आगे क्रमशः भीमतीर्थ, अर्जुनतीर्थ, नकुलतीर्थ, सहदेवतीर्थ और ब्रह्मतीर्थ थोड़ी-थोड़ी दूरीपर मिलते हैं। इन तीर्थोंके जलसे आचमन-मार्जन किया जाता है। ये सब तीर्थ सरोवर हैं। ब्रह्मतीर्थ बड़ा सरोवर है, जिसमें समुद्रका खारा पानी रहता है। इस कुण्डके पास भद्रकाली देवीका मन्दिर है। विजयादशमीके दिन रामेश्वरमन्दिरसे गणेश, रामेश्वर एवं स्कन्दकी उत्सवमूर्तियोंकी सवारी यहाँ आती है और यहाँ शमी-पूजन होता है। आगे द्रौपदीतीर्थ है। यहाँ द्रौपदीकी मूर्ति है। इसके समीप एक [illegible] काली मन्दिर है। द्वारपर गणेशमूर्ति है। मन्दिरके सामनेवाली तथा सुग्रीवकी मूर्तियाँ हैं। इस मन्दिरके पास दक्षिणकी ओर 'हनुमान्-तीर्थ' है। इस सरोवरके तटपर हनुमान्‌जीकी मूर्ति है।

रामेश्वर-मन्दिर—रामेश्वर-बाजारके पूर्व समुद्र-किनारे लगभग २० बीघे भूमिके विस्तारमें श्रीरामेश्वर-मन्दिर है। मन्दिरके चारों ओर ऊँचा परकोटा है। इसमें पूर्व तथा पश्चिम ओर ऊँचे गोपुर हैं। पूर्वद्वारका गोपुर दस मंजिलोंका है।' पश्चिमद्वारका गोपुर सात मंजिलोंका है।

पश्चिम गोपुरके भीतर तथा बाहर बाजारमें भी शङ्ख, सीपियाँ, कौड़ियाँ, मालाएँ, रंगीन टोकरियाँ आदि बिकती हैं। रामेश्वरके मन्दिरमें शङ्ख तथा रंगीन टोकरियोंका बड़ा बाजार है। यहाँसे यात्री प्रायः ये वस्तुएँ साथ ले जाते हैं। मन्दिरमें प्रवेश करते ही मार्गके दोनों ओर स्तम्भोंमें सिंहादिकी सुन्दर मूर्तियाँ बनी हैं। एक स्थानपर राजा सेतुपति तथा उनके परिवारके लोगोंकी मूर्तियाँ एक स्तम्भमें बनी हैं। चक्र-तीर्थ और शङ्ख-तीर्थके मध्यमें रामेश्वरके निज-मन्दिरको जानेका फाटक है। श्रीरामेश्वरजीके मन्दिरके सम्मुख विस्तृत सभा-मण्डप है। श्रीरामेश्वर-मन्दिरके उत्तर ओर सटा हुआ श्री विश्वनाथ (हनुमदीश्वर) मन्दिर है। यह हनुमान्‌जीका लाया हुआ लिङ्ग है। नियम यही है कि पहले श्रीविश्वनाथका दर्शन पूजन करके तब रामेश्वरका दर्शन करना चाहिये।

श्रीरामेश्वर-मन्दिरके सामने छड़ोंका घेरा लगा है। तीन द्वारोंके भीतर श्रीरामेश्वरका ज्योतिर्लिङ्ग प्रतिष्ठित है। इनके ऊपर शेषजीके फणोंका छत्र है। रामेश्वरजीपर कोई यात्री अपने हाथसे जल नहीं चढ़ा सकता। मूर्तिपर गङ्गोत्तरी या हरिद्वारसे लाया गङ्गाजल ही चढ़ता है और वह जल पुजारीको दे देनेपर पुजारी यात्रीके सम्मुख ही चढ़ा देते हैं।

है, यह महर्षि अगस्त्यद्वारा स्थापित है। श्रीरामेश्वरकी स्थापनासे पूर्व भी यह था। दूसरे छोटे मन्दिरमें अनादिसिद्ध स्वयम्भूलिङ्ग है। उसे 'अत्रपूर्वम्' (यहाँ सबसे पहलेका) कहते हैं। अगस्त्यजीसे पूजित होनेके कारण उसका नाम 'अगस्त्येश्वर' है। रामेश्वर-मन्दिरसे सटा हुआ दक्षिण ओर एक छोटा मन्दिर है। उसमें श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीके श्रीविग्रह हैं। श्रीरामेश्वरके निजमन्दिरकी परिक्रमामें कई देवताओंके दर्शन होते हैं। इस परिक्रमामें उत्तर भागमें बायीं ओर श्रीविशालाक्षीका मन्दिर है।

श्रीरामेश्वर-मन्दिरकी परिक्रमामें कुण्डोंके समीप नवग्रह, दक्षिणामूर्ति, चन्द्रशेखर, एकादश रुद्र, शेषशायी नारायण, सौभाग्यगणपति, पर्वतवर्द्धिनी देवी, कल्याणसुन्दरेश्वर महादेव, देवसभा नटराज, कनकसभा नटराज, राजसभा नटराज, मारुति, कालभैरव, महालक्ष्मी, दुर्गा, लवणलिङ्ग, सिद्धगण आदि अनेकों मन्दिर तथा देवविग्रह हैं।

यात्री प्रायः श्रीरामेश्वरका दर्शन करके तब मन्दिरके तीर्थोंमें स्नान करते हैं। मन्दिरके भीतर २२ तीर्थ हैं और समुद्रका अग्नितीर्थ तथा उसके समीप अगस्त्यतीर्थ—ये मिलाकर २४ तीर्थ हैं। इनमेंसे अग्नितीर्थ सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। बहुत-से यात्री प्रथम दिन समुद्र-स्नान करते ही हैं। इन तीर्थोंमें माधवतीर्थ और शिवतीर्थ—ये सरोवर हैं, महालक्ष्मीतीर्थ और अगस्त्यतीर्थ बावलियाँ हैं, शेष १९ तीर्थ कूप हैं। इन सबके नाम यहाँ दिये जा रहे हैं—१—माधवतीर्थ, २—गवयतीर्थ, ३—गवाक्षतीर्थ, ४—नलतीर्थ, ५—नीलतीर्थ, ६—गन्धमादनतीर्थ, ७—ब्रह्महत्याविमोचनतीर्थ, ८—गङ्गातीर्थ, ९—यमुनातीर्थ, १०—गयतीर्थ, ११—सूर्यतीर्थ, १२—चन्द्रतीर्थ, १३—शङ्खतीर्थ, १४—चक्रतीर्थ, १५—अमृतवापीतीर्थ, १६—शिवतीर्थ, १७—सरस्वतीतीर्थ, १८—सावित्रीतीर्थ, १९—गायत्रीतीर्थ, २०—महालक्ष्मीतीर्थ, २१—अग्नितीर्थ, २२—अगस्त्यतीर्थ, २३—सर्वतीर्थ, और २४—कोटितीर्थ। स्कन्दपुराणमें इन सब तीर्थोंकी उत्पत्ति-कथा है। इनके जलसे स्नान-मार्जनका बहुत माहात्म्य है।

विशेषोत्सव—श्रीरामेश्वर-मन्दिरमें यों तो उत्सव चलते ही रहते हैं, कुछ विशेषोत्सवोंके नाम ये हैं—महाशिवरात्रि, वैशाखपूर्णिमा, ज्येष्ठपूर्णिमा (रामलिङ्ग-प्रतिष्ठोत्सव), आषाढ़-कृष्ण अष्टमीसे श्रावणशुक्ल पूर्णिमा 'तिरुकल्याणोत्सव' (विवाहोत्सव), नवरात्रोत्सव (आश्विनशुक्ला प्रतिपदासे दशमीतक), स्कन्दजन्मोत्सव, आर्द्रादर्शनोत्सव (मार्गशीर्ष-शुक्ल पचीस पूर्णिमातक)। इनके अतिरिक्त मकरसंक्रान्ति, चैत्रशुक्ला प्रतिपदा, कार्तिक महीनेके कृत्तिका नक्षत्रके दिन तथा पौषपूर्णिमाको वृषभादि वाहनोंपर उत्सवविग्रह दर्शन देते हैं। वैकुण्ठ-एकादशी तथा रामनवमीको श्रीरामोत्सव होता है।

प्रत्येक मासके कृत्तिका-नक्षत्रके दिन सुब्रह्मण्यकी चाँदीके मयूरपर सवारी निकलती है। प्रत्येक प्रदोषको श्रीरामेश्वरकी उत्सव-मूर्ति वृषभवाहनपर मन्दिरके तीसरे प्राकारकी प्रदक्षिणामें निकलती है। प्रत्येक शुक्रवारको अम्बाजीकी उत्सवमूर्तिकी सवारी निकलती है।

एक कथा तो यह प्रसिद्ध ही है कि भगवान् श्रीरामने लङ्का जाते समय सेतु बँधवाया और सेतुके समीप श्रीरामेश्वरकी स्थापना की। सेतु बाँधनेसे पूर्व श्रीरघुनाथजीने उप्पूरमें गणेशजीकी स्थापना करके उनका पूजन किया था। प्रभुने देविपत्तनमें नवग्रहोंकी स्थापना की तथा उनका पूजन किया। यह स्वाभाविक है; क्योंकि किसी भी कार्यके प्रारम्भमें गणपति तथा नवग्रह-पूजन तो आवश्यक माना ही जाता है।

श्रीरामेश्वर-स्थापनकी एक कथा और आती है। इस ओरके विद्वान् रामेश्वरकी स्थापना उसीके अनुसार मानते हैं और उस कथाके अनुसार ही रामेश्वर, हनुमदीश्वर तथा रामेश्वरधामके कई तीर्थोंकी संगति मनमें बैठती है। किसी कल्पकी कथा इसे मानना उपयुक्त ही है। यह कथा इस प्रकार है—

"भगवान् श्रीराम लङ्कायुद्धमें विजयी होकर पुष्पक विमानके द्वारा जब अयोध्याकी ओर चले, तब उनके मनमें यह खेद था कि 'रावण ब्राह्मण था। उसे और उसके कुलके लोगोंको मारना ब्रह्महत्याके पापके समान ही हुआ।' इसका प्रायश्चित्त जाननेके लिये भगवान्ने समुद्रपर अगस्त्यजीके आश्रमके पास विमानको उतार दिया और कई दिन वहाँ रुके रहे।

"विभीषणकी प्रार्थनापर भगवान्ने समुद्रका सेतु धनुषकी नोकसे भङ्ग कर दिया। श्रीजानकीजीकी यहीं समुद्र-किनारे अग्निपरीक्षा हुई। अगस्त्यजीके आदेशसे रावण-वधके प्रायश्चित्तस्वरूप शिवलिङ्गके स्थापनका प्रभुने निश्चय किया और हनुमान्‌जीको कैलासपर दिव्य लिङ्ग मूर्ति लानेको भेजा।

"हनुमान्‌जी कैलास गये, किंतु उन्हें भगवान् शंकरके दर्शन नहीं हुए। इससे हनुमान्‌जी तप करते हुए भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे। अन्तमें भगवान् शंकर प्रकट हुए और उन्होंने हनुमान्‌जीको अपनी दिव्य लिङ्गमूर्ति दी।

"इधर मूर्ति-स्थापनका मुहूर्त बीता जा रहा था। श्रीजानकीजीने क्रीड़ापूर्वक एक बालुका-लिङ्ग बना लिया था। ऋषियोंके आदेशसे श्रीरघुनाथजीने उसीको स्थापित कर दिया। वही 'रामेश्वरलिङ्ग' है, जिसे स्थानीय लोग 'रामनाथ-लिङ्गम्' भी कहते हैं।

"श्रीहनुमान्‌जी लौटे तो उन्हें एक अन्य लिङ्गकी स्थापनासे बड़ा खेद हुआ। इससे प्रभुने कहा—'तुम यदि मेरे स्थापित लिङ्गको हटा सको तो मैं तुम्हारा लाया लिङ्ग-विग्रह ही यहाँ स्थापित कर दूँ।' हनुमान्‌जीने रामेश्वर-लिङ्गको पूँछसे लपेटकर उखाड़नेका पूरा प्रयत्न किया, किंतु वे उसे हटानेमें सफल नहीं हुए। उलटे पूँछका बन्धन खिसक जानेसे दूर जा गिरे और मूर्छित हो गये। श्रीजानकीजीने उन्हें सचेत किया।

"भगवान् श्रीरामने कहा—'जानकीके द्वारा निर्मित और मेरेद्वारा स्थापित मूर्ति तो अविचल है और वह हटायी नहीं जा सकती। तुम अपनी लायी मूर्ति पासमें स्थापित कर दो। जो इस तुम्हारी लायी मूर्तिका दर्शन नहीं करेगा, उसे रामेश्वर-दर्शनका फल नहीं होगा।' हनुमान्‌जीने कैलाससे लायी मूर्ति स्थापित कर दी। भगवान्‌ने उसका पूजन किया। वही मूर्ति 'काशी-विश्वनाथ' (हनुमदीश्वर) कही जाती है।"

श्रीरामेश्वरजीकी मूर्ति पहले वनमें ही थी। पीछे वहाँ किसी संतने झोपड़ी बना दी। आगे चलकर सेतुपति नरेशोंने वहाँ मन्दिर बनवाया। वर्तमान मन्दिर कई नरेशोंके श्रमसे कई बारमें इस रूपमें लाया गया है। यहाँके तीर्थों एवं अन्य देवमूर्तियोंके स्थापनकी कथा भी पुराणोंमें मिलती है, किंतु विस्तारभयसे उन कथाओंको यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

श्रीरामेश्वर-द्वीपसे बाहर भी कुछ महत्त्वपूर्ण तीर्थ हैं, उनके नाममात्र यहाँपर दिये जा रहे हैं—

१—देविपत्तनम्, २—दर्भशयनम्, ३—चक्र-तीर्थ, ४—क्षीर-कुण्ड, ५—रामनद, ६—पापविनाश (मण्डपम् स्टेशनके पास है), ७—वेताल-वरद।

शत्रुरूपमें अनोखा प्रेमी मारीच

(लेखक—स्वामी श्रीरामज्ञानदासजी)

जबतक त्रिगुणातीत भगवत्प्रीतिके रसकी उपलब्धि जीवको नहीं हो जाती, तबतक जागतिक भोगोंके गंदे रसोंसे मन सर्वथा हटता नहीं। स्वभावतः प्राणियोंका मन रसिया है; अतः इसे यदि रस नहीं मिलेगा तो दुःख-परिणामी गंदे रसोंकी ओर जायगा ही। विशुद्ध रस भगवान्‌के चरणोंका स्नेह ही है—'हरि पद रति रस बेद बखाना।' भगवत्प्रीतिके अनुपम रसमें रात-दिन डूबे रहना ही मानव-जीवनकी सबसे बड़ी सार्थकता तथा सफलता है। ऐसी स्थिति प्राप्त होनेपर ही जीवनके सभी विकारोंका तथा द्वन्द्वोंका आत्यन्तिक अभाव होता है। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—'रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।' (गीता २। ५९)

अपने भक्तिसूत्रमें उस भगवत्प्रीतिरसके स्वरूपका विवेचन करते हुए देवर्षि नारदने यही निष्कर्ष निकाला है कि 'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्' (५१) अर्थात् प्रीतिके स्वरूपको इदमित्थं नहीं कहा जा सकता। प्रेम जहाँ एक ओर अनन्त लक्षणोंवाला है, वहाँ दूसरी ओर लक्षणोंसे सर्वथा परे भी है।

श्रीरामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें जिस समय श्रीभरतलालका प्रभुसे मिलन होता है, उस समय उस मिलन-प्रीतिको गोस्वामीजी महाराज अश्रुपात, रोमाञ्च, गद्गदस्वर आदि लक्षणोंद्वारा अभिव्यक्त करते हैं। यथा—

राजीव लोचन स्रवत जल तनु ललित पुलकावलि बनी।
बूझत कृपानिधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई॥
(मानस ७। ४। १—२)

पर जिस समय श्रीचित्रकूटमें प्रभु तथा श्रीभरतका मिलन होता है, उस समय गोस्वामीजी महाराज मिलन-प्रीतिको लक्षणोंद्वारा अभिव्यक्त करनेमें अपनेको नितान्त असमर्थ बताते हैं; क्योंकि वहाँ प्रेमका कोई बाह्य लक्षण नहीं भासता। यथा—

'मानसमें श्रीजनकजीके 'राम करौं केहि भाँति प्रसंसा।' (वही, १ । ३४० । २) आदि वचनोंमें प्रशंसा करना प्रेम है तो हठीले प्रेमी केवटका यह कथन कि 'तुम्हारी कसम, जबतक चरण धो नहीं लूँगा, पार नहीं उतारूँगा' भी प्रेम है। व्रजकी गलियोंमें गोपियोंकी गाली सुननेमें श्यामसुन्दरको जो आनन्द मिलता था, वह वेदके मन्त्र-श्रवणमें नहीं।

श्रीभरतादि प्रिय भ्राता प्रभुके श्रीमुखकी ओर निहारते रहते हैं कि प्रभु कभी कोई छोटी-सी भी आज्ञा दे दें तो हम कृतकृत्य हो जायँ।

'प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहि कुछ कहहीं॥'
(वही ७ । २४ । १)

—किंतु दूसरी ओर बार-बार नाव लानेकी आज्ञा देनेपर भी केवट नहीं लाता—'मागी नाव न केवटु आना।' (वही, २ । ९९ । १½) प्रीति एक ऐसा विलक्षण अनुपम तत्त्व है, जिसमें विरोधी भावोंका बड़ी सरलतासे समावेश हो जाता है। आज्ञा मानना प्रेम है तो आज्ञा न मानना भी प्रेममें समाविष्ट है। सेवा करना और सेवा करवाना—दोनों ही प्रेमके अङ्ग हैं। प्रशंसा करना और गाली देना—दोनों ही प्रेममें फबते हैं। भगवान्की शरणमें जाना—चाहे मित्र-भावसे हो, चाहे शत्रु-भावसे—दोनोंमें ही प्रीतिकी पतली पगडंडीका अनोखी रीतिसे निर्वाह है। श्रीविभीषणजी भगवान्के समक्ष मैत्रीभावसे शरणमें गये—

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥
(वही, ५ । ४५)

—कहते हुए शरणमें गये। पर मारीचका उस परम प्रियतमकी शरणमें शत्रुरूपमें जाना कहीं अधिक अनोखा प्रेम है।

'उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकिसि रघुनायक सरना॥'
(मानस ३ । २४ । २½)

श्रीरामचरितमानसमें हमें इस तत्सुख-सुखिया निष्काम महान् प्रेमी मारीचके जीवनकी अन्तिम झाँकी देखनेको मिलती है। हममेंसे कितनोंने इसके अद्भुत त्याग और प्रेमको पहचाना होगा, कहा नहीं जा सकता। इसे दो बार अपने स्वामीके समक्ष जानेका सुयोग मिला, पर दोनों ही बार शत्रुरूपमें। इसीलिये मारीचके उस प्रेमको हम उपेक्षा-दृष्टिसे देखते हैं, जिसके लिये गोस्वामीजीने—'चला राम पद प्रेम अभंगा।' (वही, ३ । २५ । ३½) कहा है।' उसकी तो धारणा ही ऐसी है कि दुनिया भले ही मुझे स्वामीका द्रोही कहे, पर प्रियतमके मनकी होनी चाहिये।' क्या यह श्रीभरतजीवाली स्थिति नहीं है? हाँ, उन्होंने तीर्थराजके समक्ष भक्तिका वर माँगते हुए कहा था—

'जानहुँ राम कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुर साहिब द्रोही॥'
(वही, २ । २०४ । ½)

जिस समय रावण मारीचके पास जाकर अभिमानसहित अपने पराक्रमको बताता हुआ उसको कपट-मृग बननेके लिये बाध्य करता है, तब मारीच नम्रतापूर्वक कहता है—

तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नर रूप चराचर ईसा॥
तासों तात बयरु नहिं कीजै। मारें मरिअ जिआएँ जीजै॥
(वही, ३ । २४ । २)

अतः 'जाहु भवन कुल कुसल बिचारी।' (वही, ३ । २५ । ½) पर इतना सुनते ही रावण कुपित होकर मारीचसे कहता है—'यदि तू मेरा कार्य साधनेके लिये कपट-मृग नहीं बनता तो अभी-अभी तेरा वध किये देता हूँ।' रावणके वचनोंको सुनकर मारीच मनमें सोचता है—'प्रभो! तुम्हारी यह क्या लीला है? नाथ! क्या तुम्हारे प्रति मेरे प्यारका यही स्वरूप होना चाहिये कि मैं कपट-मृग बनकर तुम्हें धोखा दूँ? ना, ना, ऐसा न होगा।' पर दूसरे ही क्षण मारीच सोचता है कि 'यदि मैं इसका कहना नहीं मानता तो यह मुझे मार देगा। तो क्या इस नीच दुरात्माके हाथों मरना उचित होगा? प्रभो! मेरी समझमें कुछ नहीं आ रहा है कि मैं क्या करूँ। मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हूँ। आपकी शरणमें हूँ। आप मुझे सँभालें।'

मारीचके मनकी यह समर्पित स्थिति होते ही उसे लगा कि उसके स्वामी ही हृदयमें उससे कह रहे हैं कि 'भैया मारीच! तू क्यों चिन्ता कर रहा है? क्या मुझे कोई धोखा दे सकता है? क्या मेरी प्रियतमा सीताको कोई चुरा सकता है? इससे पूर्व ही अग्निदेवको सीताजी सौंपी जा चुकी हैं। यदि तेरे कपट-मृग बननेसे मेरी लीला सम्पन्न होती है, राक्षस वध-रूप उद्देश्यकी पूर्ति होती है तो तू क्यों नहीं निमित्त बन जाता?' बस, इन भावोंके मनमें आते ही मारीच निश्चिन्त हो जाता है और कहता है—'प्रभो! अब तुम जानो, तुम्हारी लीला जाने। जैसा जँचे, वैसा नाच नचा लो।'

अब श्रीमारीचद्वारा की गयी सारी चेष्टाएँ प्रभु-प्रेरित हैं। वह दशाननके साथ चल देता है। हृदयमें श्रीराघवके

प्रति अटूट प्यार है। 'चला रामपद प्रेम अभंगा।' दुनिया जिस मौतकी चर्चामात्रसे भयभीत होती है, आज उसीका आलिङ्गन करनेके लिये मारीच अत्यन्त हर्षित हो रहा है। सच ही है, जिसने संसारमें करनेयोग्य कार्यको कर डाला है, जिसके अन्तःकरणसे वासनाके अङ्कुरोंका समूलोच्छेदन हो चुका है, जो भगवान्‌के प्रेमको प्राप्त करके उसमें डूब चुका है, उसे मृत्युका क्या भय ?

परंतु मारीचकी स्थिति तो यहाँ और अधिक श्रेष्ठ है। वह तो अपने प्रभुके कार्यकी सिद्धिके लिये उन्हींके कर-कमलोंसे मरने जा रहा है। प्रभुके मनकी हो, इससे बढ़कर भक्तके लिये हर्षका विषय और क्या होगा ! अतः आज 'मन अति हरष जनाव न तेही।' (वही, ३ । २५ । ४)

प्रभुके समान जीवसे प्रेम करनेवाला कोई दूसरा नहीं है। मारीच कहता है—'निर्बान दायक क्रोध जाकर भगति अवसहि बस करी।' (वही, ३ । २५ । छं० १) 'जिस प्रभुका क्रोध भी मुक्ति देनेवाला है, वे ही सुखस्वरूप प्रभु मेरा वध करेंगे। रावणपर क्रोध किया तो उसे अपने धाम भेज दिया। विभीषणपर रीझे तो उसे लङ्काका राज्य दे दिया—'रीझें बस होत, खीझें देत निज धाम रे॥' (विनय-पत्रिका)

''जिनका क्रोध भी निजधाम देनेवाला है, वे ही प्रियतम प्रभु आज मुझे मारेंगे। मुझे उनके दिव्याङ्गोंका स्पर्श न मिले, न सही, पर उनके कर-कमलोंसे संस्पर्शित पुनीत बाण तो मुझे स्पर्श करेगा ही; इससे बढ़कर सौभाग्य मेरा और क्या होगा ! आज वह परात्पर ब्रह्म, जिसको निगमोंने 'नेति' कहा है; जो स्वयं भगवान् शिवके लिये अगम्य है, जो सम्पूर्ण विश्वका नियामक है, वह मेरे पीछे-पीछे दौड़ेगा। अतः आज मेरे समान धन्य संसारमें कौन है ? माँ कौसल्ये ! जिन्होंने उस ब्रह्मको प्रकट करके जगत्‌में उसकी माँ बननेका महान् गौरव प्राप्त किया है, वे तुम भी आज मेरे समान धन्य नहीं हो।'

''बात ऐसी थी कि एक दिन भोजन करते समय श्रीदशरथ-जी महाराज अपने रामलल्लाको खानेके लिये बुला रहे थे। न आनेपर अम्मा कौसल्या उन्हें पकड़ने चलीं। माँको आते देख प्रभु भागे। गोस्वामीजीने कहा—

कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकु ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई॥
निगम नेति सिव अंत न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा॥
(वही, १ । २०३ । ४)

अतः मारीच कहता है—''अरी माँ ! जिन ब्रह्मको पकड़नेके लिये तुम उनके पीछे-पीछे दौड़ी थीं, वे ही प्रियतम आज मेरे पीछे-पीछे दौड़ेंगे—'मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान।' (वही, ३ । २६), अतः मेरे समान धन्य तुम नहीं हो।''

मारीच कहता है—''अरे भैया लक्ष्मण ! क्या हुआ जो प्रभुकी यशरूपी पताकाके लिये तुम्हारा यश दण्डके समान हुआ ? तुम जिन प्रभुके सदा पीछे-पीछे चला करते हो—'आगें रामु लखनु पुनि पाछें।' (वही, २ । १२२ । ½), आज वे ही मेरे पीछे-पीछे दौड़ेंगे। अतः मेरे समान आज तुम भी धन्य नहीं हो।''

''हे माँ जानकि ! तुम अपने जिन जीवन-सर्वस्व प्रभुको पुष्पवाटिकामें खोज रही थीं—'चितवत चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गए नृप किसोर मन चिंता॥' (वही, १ । २३१ । ½) तथा मार्गमें चलते समय तुम जिन प्रियतमके पीछे-पीछे चलती हो, आज वे ही प्रियतम मेरे पीछे-पीछे दौड़ेंगे। अतः माँ ! तुम भी तो आज मेरे समान धन्य नहीं हो।''

''काकभुशुण्डिजी ! सचमुच तुम्हारी भक्ति अखण्ड है। एक दिन खेल-खेलमें ही प्रभु जब तुम्हें पकड़ने चले थे, तब तुम भागे थे और उस समय तुम सप्तावरण भेदकर जहाँ-जहाँ गये, वहाँ-वहाँ तुमने प्रभुकी केवल भुजा अपने पीछे-पीछे देखी थी। पर यहाँ तो उस ब्रह्मका सम्पूर्ण श्रीविग्रह आज मेरे पीछे दौड़ेगा। अतः मेरे समान तुम भी धन्य नहीं हो—'धन्य न मो सम आन।'' (वही, ३ । २६)।

इस प्रकार मारीच अपनेको महान् भाग्यशाली मानता हुआ प्रभुके कार्यकी सिद्धिके लिये अत्यन्त हर्षित होकर प्रभुके आश्रमके निकट जाता है। वह चाहता तो श्रीविभीषणके समान प्रभुकी शरणमें आकर रावणके भयसे अपनेको मुक्त कर लेता। पर नहीं; उसका उद्देश्य तो है प्रभुकी प्रसन्नताके लिये प्रभुके कार्यकी सिद्धि करना और वह उद्देश्य जीवन-रक्षासे कहीं अधिक श्रेष्ठ है। अपने परम प्रियतम प्रभुकी प्रसन्नता तथा सुखके लिये उनके समक्ष शत्रुरूपमें जाकर भी मारीच अपने प्रभु-प्रेमका निर्वाह करता है तथा श्रीरामावतारके प्रयोजनकी पूर्तिमें सहायक बनता है। धन्य मारीच और श्रीरामके प्रति उसका अनोखा प्रेम !

भक्तवत्सल श्रीराम

(लेखक—श्री'पर्वतीयजी)

माता-पिताने नाम विट्ठलराव रखा था। वे अपने-आपको प्रभु रामके दास समझते थे, इसलिये उन्होंने अपना नाम विट्ठलरावके स्थानमें रामदास रख लिया। वे हर एक मनुष्यको रामका रूप समझते और इसी नामसे सम्बोधित करते।

एक बार मनमें आया कि प्रभु जगन्नाथके दर्शन करने चाहिये। पुरी पहुँचे। मन्दिरके फाटकपर अपार भीड़ देखी। घबरा गये कि रामदास तो अंदर न जा सकेगा, वरं अंदर पहुँचनेसे पूर्व रास्तेमें ही भीड़में कुचला जायगा। एक कोनेमें खड़े होकर कहने लगे—'राम! क्या रामदासको दर्शन न होंगे आपके ?' इसके उत्तरमें अंदरसे एक हृष्ट-पुष्ट पुजारी आया और स्वामी रामदासके पास आकर कहने लगा—'चलिये! आपको भगवान्‌के दर्शन करवा दूँ। आप मेरा हाथ न पकड़ें, भीड़में यह छूट जायगा। मैं आपका हाथ पकड़ता हूँ, तब यह न छूटेगा।'

पुजारी भीड़को चीरता हुआ अंदर पहुँचा। भगवान् जगन्नाथके सम्मुख ले जाकर स्वामी रामदासको खड़ा कर दिया। उनकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी। पुजारीने कहा—'दर्शन हो गये हैं। चलिये, अब आपको सारे मन्दिरमें घुमाकर लाता हूँ।' रामदास इसके साथ हो लिये। सब कुछ दिखलानेके पश्चात् उसने स्वामी रामदासको प्रसाद-स्वरूप उबले हुए चावल दिये। स्वामी रामदासके तो आँसू थमनेमें न आ रहे थे। इस कारण स्वयं पुजारीने प्रसाद उनके मुँहमें डाला। अब वह पुजारी उनका हाथ पकड़कर एक बार फिर भीड़ चीरता हुआ उन्हें फाटकके बाहर ले आया और उसी कोनेमें लाकर खड़ा कर दिया। पूछा—'अब जाऊँ ?' स्वामी रामदासने उत्तर दिया—'नहीं।' पुजारीने पूछा—'क्यों ?' स्वामीजीने उत्तरमें पूछा—'आप यह बताइये कि आपको यह कैसे मालूम हुआ कि रामदास यहाँ खड़ा है ?' पुजारीने उत्तर दिया—'इसका उत्तर मैं कैसे दूँ ? यह तो आपको जगन्नाथ स्वामीसे पूछना चाहिये था, जिन्होंने मुझे भेजा है।'

× × ×

कौड़ीराम राम-भक्त हकीम हैं। आयु पचासी वर्षकी होगी। पढ़े-लिखे नहीं हैं तो भी हिकमत तथा वैद्यकका अनुभव पर्याप्त है। वैद्यक चलती है और फार्मेसी भी। स्वयं वे ही बताते हैं—"मनमें आया कि रहनेके मकानके साथ भूमि खाली पड़ी है, उसपर ओषधियाँ बनानेके लिये मशीनरी क्यों न लगा ली जाय ? इसके लिये तीस हजार रुपया अलग रख दिया। राज-मजदूर काम करने लगे। लेकिन तीन ही दिन हुए थे कि प्रतिदिन पंचानवे-सौ रुपये राज-मजदूर ले जाने लगे। मैंने सोचा—"इस प्रकार तो यह तीस हजार शीघ्र समाप्त हो जायगा और मकान नहीं बन पायगा।' परंतु अब राज-मजूरोंको हटाया भी न जा सकता था। इस कारण चिन्ता लगी। सायं राम-प्रभुसे प्रार्थना की। अगले दिन बड़ी विचित्र बात देखनेमें आयी। जितनी आय हर रोज होती थी, उससे एक सौ रुपया अधिक आमदनी हुई। अब प्रतिदिन एक सौ रुपया अधिक आने लगा और जबतक इमारतका बनना समाप्त न हुआ, तबतक नियमपूर्वक सौ रुपया आता ही रहा। मेरे रामकी यह लीला न्यारी है।"

—इसका कारण पूछा तो कहने लगे—'मैं इसका कारण नहीं बता सकता। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि मैं अपने जीवनमें झूठ कभी नहीं बोला। दूसरे, जो वस्तु एक रुपयेमें लेता हूँ, उसे एक रुपये एक पैसेमें बेचता हूँ, अर्थात् एक पैसा प्रति रुपया नफा लेता हूँ—चाहे मेरे समक्ष बच्चा हो या बूढ़ा, स्त्री हो या पुरुष। इसके अतिरिक्त जो कोई रुपया उधार ले जाता है, वह स्वयं ही लौटा जाता है, जब कि मैं उससे कुछ लिखवाता भी नहीं। परंतु यदि कभी वह रुपया वापस नहीं आता तो मैं समझ लेता हूँ कि यह कमाई अधर्मकी थी, इसी कारण यह रुपया लौटा नहीं; चलो, अच्छा हुआ। फिर मैंने जीवनभरमें अदालतका मुँह कभी नहीं देखा। चकझुमरा (जिला लायलपुर, पश्चिमी पंजाब)में मेरा पचास हजार रुपया मुसलमानोंके पास था। (अधिकतर जमींदार ले जाते थे।) बटवारा होनेपर वहाँसे अमृतसर आया तो पास कुछ न था। लेकिन वे पचास हजार चकझुमराके पाकिस्तानी मुसलमान मुझे अमृतसर आकर दे गये।'

× × ×

एक वयोवृद्ध शिक्षक बताते हैं—'लड़की जवान हो गयी।' पत्नीने कहा—'वरका प्रबन्ध करना चाहिये।' मैंने उत्तर दिया—'इस विषयमें क्या किया जाय ?' पत्नीने ही सुझाया—'आपके पास इतने अधिक स्वयंसेवक आते हैं।

उनमेंसे किसीको चुन लें।' मैंने उत्तर दिया—'जब वे मुझसे मिलने आते हैं, तब मुझसे पूर्व आपको नमस्कार करते हैं। इसलिये आप ही जिसे उचित समझें, चुन लें और मुझे बता दें। मैं उसका नाम, धाम, काम आदि सब पता करके आपको बता दूँगा।'

"मैंने समझा समस्या हल हो गयी है। परंतु एक मासके पश्चात् जीवन-साथीने फिर वही प्रश्न दोहराया। मैंने भी अपना वही उत्तर दोहरा दिया। मेरे पास और कोई सुझाव था भी नहीं। तो भी उस शामको जब राम-प्रभुके चरणोंमें बैठा, तब उनसे निवेदन किया—'मेरे राम! यह कैसी लीला है तेरी! लड़कीके वरका प्रबन्ध कौन करेगा?' इसके उपरान्त एक मासके अंदर-अंदर सुन्दर, सुडौल, सदाचारी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी० नवयुवक मिल गया, जो प्रचारक रह चुका था। इसके अतिरिक्त उसी महीनेमें विवाहका प्रबन्ध भी हो गया। मेरे जिम्मे केवल यह काम लगाया गया—'यह प्रेससे आया हुआ कम्पोज्ड हिंदी निमन्त्रण-पत्र है। इसे देख लीजिये, ताकि छपनेके बाद आप यह न कह सकें कि यहाँ अर्ध-विराम नहीं, वरं पूर्ण-विराम होना चाहिये था।' बस, मुझसे इसके अतिरिक्त न खाने-पीनेकी चीजोंके विषयमें पूछा गया, न कपड़े-लत्तेके विषयमें। मुझे इन बातोंकी अक्ल भी नहीं है। तो भी मेरे लिये बड़ी बात यह थी कि मुझपर कोई दायित्व न लादा गया। विवाह कुशलपूर्वक हो गया। करनेवाले रामने स्वयमेव सब कुछ कर दिया।"

× × ×

श्रीराम तथा हनुमान्के भक्त भाई मूलराजका लड़का स्कूलमें पढ़ता था। वह बीमार हो गया। डबल निमोनियाके कारण रावलपिंडीके सरकारी अस्पतालमें प्रविष्ट करा दिया गया। माता-पिता—दोनों बेटेकी चारपाईके पास दिन-रात बैठे रहते। कुछ दिनके पश्चात् डाक्टरोंने कहा—'आज बीमारकी अवस्था न केवल अच्छी नहीं, वरं चिन्ताजनक है। अब हम इसके लिये कुछ नहीं कर सकते। आप जो चाहें, कर सकते हैं। चाहें तो इसे घर ले जा सकते हैं।'

माता घबरायी, आँसुओंकी झड़ी लग गयी। पिता तो पहलेसे हर समय हनुमान-चालीसा जपनेमें मग्न रहते थे। रातके बारह बजे थे। सर्दियोंके दिन। भाईजीको झपकी आ गयी। इसके बाद आँख खुली तो पत्नीसे कहने लगे—'मैं जाता हूँ।' पत्नीने पूछा—'कहाँ?' उन्होंने उत्तर दिया—'अभी लौटनेपर बताता हूँ।' पत्नीकी अन्य कोई बात सुने बगैर वे जल्दी-जल्दी अस्पतालके बाहर निकल गये। कद सात फुट था। थोड़ी ही देरमें रावलपिंडीनगरके अंदर जा पहुँचे। एक गलीमें पक्के मकानके सामने जाकर वे अपने उस हकीम मित्रको आवाजें देने लगे, जो स्कूलमें उनके साथ पढ़ता रहा था। पहले तो किसीने उत्तर न दिया। बार-बार आवाजें लगानेपर अन्तमें अंदरसे उत्तर मिला—'कौन है?' भाईजीने कहा—'मैं मूलराज।' प्रश्न—'कौन मूलराज?' उत्तर—'तुम्हारा छुटपनका सहपाठी मूलराज छिब्बर।' प्रश्न—'इस समय कैसे आये हो?' उत्तर—'दरवाजा खोलो तो बताऊँ।'

आखिर द्वार खुला। दोनों मित्र एक दूसरेसे सीनेसे सीना लगाकर मिले। अब भाईजीने कहा—'मेरा लड़का अस्पतालमें डबल निमोनियासे पीड़ित है। तुम दवा दो, ताकि वह चंगा हो जाय।' मित्रने कहा—'डबल निमोनियाका रोगी अस्पतालमें पड़ा है, डाक्टरोंने जवाब दे दिया है और अब तुम मेरे पास आये हो! मैं क्या उसे मौतके मुँहसे निकाल लाऊँगा? यदि लड़केको कुछ हो गया तो कलंक मेरे मत्थेपर लगाओगे। वे डाक्टर और तुम भी मुझे जिम्मेदार ठहराओगे।' भाईजीने नम्रतासे कहा—'तुम दवा तो दो। मैं शपथ खाता हूँ कि यदि कुछ हो गया तो किसीसे यह न कहूँगा कि दवा तुमसे ले गया था। पर मैं तो जानता हूँ कि तुम्हारी दवासे मेरे बच्चेको राहत मिलनेवाली है।'

मित्रने पूछा—'यह कैसे?' तब भाईजीने बताया—"अभी कुछ मिनट हुए हनुमान-चालीसा जपते-जपते मुझे झपकी आ गयी। सफेद दाढ़ीवाले एक वृद्ध पुरुषने आकर कहा—'घबराओ मत; नगरमें जाओ और अपने सहपाठी हकीम-मित्रसे दवा लाकर लड़केको दो। वह चंगा हो जायगा।' बस, इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गये और मैं तुरंत इधर चला आया। [illegible] है। इसलिये तुम निस्संकोच [illegible]।"

भाईजी दवा लेकर भागे । सचमुच वही हुआ, जिसका हकीमको डर था । रोगीने बेहोशीमें हाथ मारा और पहली पुड़िया फर्शपर जा पड़ी, वह बिखर गयी । अब माताने बेटेके दोनों हाथ पकड़े और पिताने उसका सिर थामा । दूसरी पुड़ियाकी दवा मरीजके पेटके अंदर चली गयी । लगभग पाँच बजे प्रातः उसकी अवस्था सुधरने लगी । अब रोगीने पानी माँगा । उसे एक और पुड़िया दी गयी । दो घंटे बाद उसने आँखें खोल दीं । इसके साथ ही उसने कहा—'मुझे भूख लगी है ।' उसे गरम दूधके साथ बिस्कुट दिया गया । सूर्योदय-पर उसकी अवस्थामें और ज्यादा सुधार पाया गया ।



रामभक्त शाह जलाल-उद्दीन वसाली*

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

'सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा । जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा ॥'

(मानस ७ । ९५ । १)

भक्त-प्राणधन भगवान्‌की लीला मधुर ही नहीं, विचित्र भी होती है । उक्त मधुर-मनोहर लीलाके कथन, श्रवण एवं मननसे भक्तोंको अपार सुख मिलता है । एक बारकी बात है, स्वामी श्रीजानकीवरशरणजीके मुखसे अनायास ही यह पद निकल गया—

चित ले गयो चुराय, जुलफोंमें कला ।
हम जानी वे कृपासिंधु हैं, तब उनसे भई प्रीति, भला ॥
बिरही जनको दुख उपजावत, करत नये-नये अजब कला ।
'प्रीतिलता' प्रीतम बेदरदी छाँड़ि हमें कित गयो चला ॥

यह पद श्रीस्वामीजीके अतिरिक्त और किसीको विदित नहीं था । श्रीस्वामीजीने इसे न तो किसीको सुनाया और न किसीको लिखाया; पर वे जब अयोध्याजी पहुँचे, तब उन्होंने मन्दिरोंमें इसी पदको गाये जाते सुना ! वे आश्चर्यचकित हो गये ।

ऐसी ही एक घटना श्रीमाधवेन्द्रपुरीजीके साथ हुई । वे श्रीजगन्नाथजीके दर्शनार्थ पुरी गये थे । वहाँसे लौटते समय मार्गमें श्रीगोपीनाथजीके मन्दिरमें रुक गये । सायंकाल प्रसादमें खीर मिली, पर उसकी मात्रा कम थी । श्रीमाधवेन्द्रपुरीजीको खीर अत्यधिक स्वादिष्ट लगी । सोचा, खीर और रहती तो छककर पाते; पर संकोचवश वे किसीसे कुछ कह न सके ।

'खीर लीजिये !' श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी गम्भीर निद्रासे उठे तो देखा श्रीगोपीनाथजी खीरभरा पात्र लिये खड़े हैं ।

'प्रभो ! आपने इतना कष्ट क्यों उठाया ?' श्रीमाधवेन्द्रपुरीजीके नेत्रोंमें आँसू भर आये ।

'क्या तुम नहीं जानते कि भक्त मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे होते हैं ?' प्रभुने उत्तर दिया ।

श्रीमाधवेन्द्रपुरीने प्रतिष्ठाके भयसे रात्रिमें ही मन्दिर छोड़ दिया और सूर्योदयतक दौड़े-दौड़े दस कोस दूर चले गये । वहाँ उन्होंने ग्रामवासियोंके मुखसे सुना कि 'आज रातकी ही बात है, श्रीगोपीनाथजीने खीर चुराकर माधवेन्द्रपुरी-को पवायी ।' श्रीमाधवेन्द्रपुरीजीके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही । बंग देशमें कहावत प्रसिद्ध है—

'प्रतिष्ठार भये पुरी जाय पालाइया । पुरी प्रतिष्ठा आगे जाय गोंड़ाइया ॥'

अर्थात् 'जिस प्रतिष्ठाके भयसे माधवेन्द्रपुरीजी भागे, वह प्रतिष्ठा उनके आगे-आगे दौड़ी ।' सूर्योदय होनेपर जब श्रीगोपीनाथजीका पट खुला, तब उनके वस्त्रोंपर खीरके छींटे देखकर पुजारीजी विस्मयमें पड़ गये । स्वयं प्रभुने खीर-चोरीका कारण प्रकट कर दिया और तभीसे वे 'खीरचोर' नामसे प्रख्यात हुए ।

भगवान्‌की तरह भक्तोंके चरित्र भी बड़े विलक्षण होते हैं । वे संसारकी ममता-आसक्तिसे सर्वथा पृथक् रहकर अपने प्राणप्रिय प्रभुके प्रेममें छके रहते हैं और प्रभु उनके साथ प्रेमभरी अद्भुत लीला करते हैं ।

ऐसे ही अद्भुत श्रीरामभक्त थे—सिद्ध फकीर शाह जलाल-उद्दीन वसाली । वे खुरासानके 'सूफी हुस्नपरस्त' अर्थात् 'शृङ्गार-निष्ठा'के भक्त थे । वे श्रीरामके त्रैलोक्यमोहन सौन्दर्य-पर मुग्ध हो गये थे । श्रीरामके चरणोंमें अनन्य प्रीति एवं उनके नामका निरन्तर जप करते रहनेसे निश्चय ही मनुष्य जीवन-मृत्युके बन्धनसे मुक्त हो जाता है—उनके मनमें दृढ़ विश्वास था । वे श्रीरामके अलौकिक स्वरूपके ध्यानमें तल्लीन रहते

* जीवन-कालमें ही ईश्वरमें मिल जानेवालेको 'वसाली' कहते हैं ।

तथा उन्हींके मधुर-मनोहर गुणोंका गान किया करते थे। श्रीरामके स्मरणसे उन्हें रोमाञ्च हो आता और उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगते।

'रमता जोगी, बहता पानी'—अच्छा होता है। भक्त मसाली भी एक स्थानपर कभी नहीं रहते थे। आज यहाँ हैं तो कलका पता नहीं। उठे, चल दिये। एक बार घूमते-फिरते मुल्तान-नगरमें पहुँचे। रात्रिमें टहलते हुए समई माईके चबूतरेके समीप पहुँच गये। वहाँ देखा, व्यास-पीठपर पण्डित टेकचन्दजी बैठकर रामायणकी कथा सुना रहे थे। उनका स्वर अत्यन्त मधुर था। वे रामायणकी कथा इतने सरल शब्दोंमें कहते कि उसे छोटे बच्चेतक समझ जाते। उनकी वाणीमें रस और माधुर्य था। सैकड़ों स्त्री-पुरुष श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक शान्तचित्तसे कथा सुन रहे थे। महात्मा मसाली भी सबके पीछे चुपकेसे बैठकर कथा सुनने लगे।

प्रसङ्ग था राजा जनककी पुष्पवाटिकाका। मिथिला-नगरनिवासी श्रीराम-लक्ष्मणके अलौकिक सौन्दर्यपर मुग्ध थे। पुष्पवाटिकामें जनकनन्दिनी श्रीजानकीजीने उनका दर्शन किया तो देवर्षि नारदके वचनको स्मरणकर उनके हृदयमें पुनीत प्रीति उत्पन्न हो गयी। नगरवासियोंसहित श्रीजानकीकी प्रीतिका इतना सुन्दर एवं सरस चित्रण पं० श्रीटेकचन्दजीने किया कि श्रोता जैसे स्वयं श्रीरामके भुवनमोहन नवनीरद-वपुका दर्शन कर अपने-आपको भूल गये। पण्डितजीने दशरथनन्दन श्रीरामकी सौन्दर्य-राशिका वर्णन करते हुए कहा—

केहरि कटि पट पीत धर सुषमा सील निधान।
देखि भानुकुलभूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान॥

उस दिन कथा वहीं समाप्त कर दी। आरती हुई। एक-एक श्रोता आरती लेकर चलने लगे। सबके पीछे शाहसाहेबने पण्डितजीके पास आकर बड़े ही प्यारसे कहा—'पण्डितजी! तुम बड़ी सुन्दर कथा कहते हो। बराय मिहरबानी बता देनेकी तकलीफ करो कि तुम जिस श्रीरामकी कथा सुना रहे थे, वे कौन हैं और जिस किताबमें इनका जिक्र है, उसका नाम क्या है?'

'सरयू नदीके किनारे एक बड़ा सुन्दर नगर बसा है।' पण्डितजीने अत्यन्त आदर एवं प्रेमसे शाहसाहेबको बताया! 'उसका नाम है अयोध्या। वहाँके प्रतापी राजा दशरथ थे। उन्हींके पुत्र परमसुन्दर और सम्पूर्ण आदर्श गुणोंके केन्द्र श्रीरामचन्द्रजी थे। वे कृपा एवं प्रेमकी मूर्ति थे। और इस पोथीका नाम 'रामायण' है। इसमें उन्हीं कृपामय, कल्याणमय, सर्वशक्तिमान्, परमसुन्दर, नवनीलनीरदवपु श्रीरामचन्द्रकी मधुर-मनोहर लीला-कथाका वर्णन है। यह कथा आपको कैसी लगती है?'

'बहुत अच्छी।' शाहसाहेबने उत्तर दिया। 'सच तो यह है, पण्डितजी! कि मैं उसीका आशिक हूँ। वह मेरी जान है। उसके बिना मैं रह नहीं सकता। उसकी कथा, उसकी चर्चा तो मैं रोज ही सुनूँगा। सबसे पहले आऊँगा और सबके बाद जाऊँगा।'

दूसरे दिन कथा प्रारम्भ करते ही पण्डितजीने देखा, शाहसाहेब सबके पीछे खड़े हैं। पण्डितजी उठकर खड़े हो गये और हाथ जोड़कर बोले—'शाहसाहेब! आप कृपापूर्वक यहाँ मेरे पास आइये। आपके समीप बैठनेसे मुझे प्रभुकी लीला-कथा सुनानेमें बड़ा आनन्द मिलेगा।'

'शाहसाहेब प्रतिदिन रामायणकी कथा सुनने जाते हैं'—यह बात मुसल्मानोंके कानमें पहुँची तो वे क्रुद्ध हो गये। मौलवी अब्दुल्लाके घरपर सब एकत्र हुए। उन्होंने शाहसाहेबको भी पकड़ मँगवाया। बैठते हुए बड़ी बेफ़िक्रीसे शाहसाहेबने कहा—

हाजियो! है हमको घरवालोंसे ग़रज़।
घरके महरावो सुतूँ* से क्या ग़रज़॥

मौलवी साहबने उपदेश दिया—'श्रीराम-कथा सुनने जाना उचित नहीं।' वे कुछ और आगे कहते कि प्रेममें उन्मत्त होकर शाहसाहेब बोल उठे—

'काफ़िरे इश्कम मुसलमानी
मरा दरकार नेस्त।'

अर्थात् 'मैं प्रेमका पथिक हूँ। मुझे मुसल्मानीकी जरूरत नहीं है।' और उन्होंने तुरंत इस आशयका उपदेश भी दे दिया—

सैयद हो या चमार हो इस जा† वफ़ा है शर्त।
क्या आशिक़ी में पूछते हैं जात के तईं॥

और एकत्र हुए मौलवी तथा मुसल्मानोंकी तनिक भी चिन्ता किये बिना यह गीत गाते हुए शाहसाहेब उठकर खड़े हो गये—

हसरत मेरी यह है, मेरा अरमान है यही,
आ जाय तू नज़र तो तुझे देखता रहूँ।

और सीधे कथामें पहुँच गये।

अन्तमें एकत्र हुए मुसल्मानोंने देखा तो शाहसाहेबका पता नहीं। वे उन्हें ढूँढ़ते हुए कथामें पहुँचे। उन्होंने देखा, पण्डितजी श्रीरामकी लीला-कथा सुना रहे हैं और शाहसाहेबके नेत्रोंसे अश्रुपात हो रहा है, उन्हें अपने तन-मनकी सुध नहीं है। राम-कथामृतसे अपरिचित मुसल्मानोंने सोचा—'बस, पण्डितजीने शाहसाहेबको बहका लिया है।' वे लोग पण्डितजीपर बिगड़ गये और मौलवी साहेबने धमकाते हुए कहा—'पण्डितजी! अबतक कथा बाँची सो तो बाँच चुके। अब कलसे कथा बंद और अपना पोथी-पत्रा समेटकर यहाँसे नौ-दो ग्यारह हो जाओ। नहीं तो इसका नतीजा······।'

अत्यन्त सरल हृदयके पण्डितजी मौलवी साहेबकी प्रकृतिसे परिचित थे। उन्होंने तुरंत कहा—'आप विश्वास कीजिये, यहाँ कलसे कथा नहीं होगी।'

बालकाण्ड समाप्त हो गया था। दूसरे दिन दिनमें हवन करके पण्डितजी अन्य शहरके लिये प्रस्थित हुए। मार्गमें शाहसाहेब मिले। पूछा—'पण्डितजी! कहाँ जा रहे हो जरा उस दिलबरके मिलनेका उपाय तो बता दो।'

'शाहसाहेब!' पण्डितजीके नेत्रोंमें आँसू भर आये। बोले—'इस समय तो कथा बंद कर जान बचाने जा रहा हूँ। यहाँ रुका तो पकड़ लिया जाऊँगा। सुविधा रहती तो आपको प्राणाराम प्रभुका पावन चरित्र अवश्य सुनाता।'

'डरनेकी कोई जरूरत नहीं, पण्डितजी!' शाहसाहेब श्रीरामके सच्चे प्रेमी भक्त एवं सिद्ध फ़क़ीर थे। उन्होंने पण्डितजीको एक छड़ी देते हुए कहा—'यह असा (छड़ी) लो! जमीनपर पटकते ही यह अजदहा (साँप) हो जायगा और फिर किसीकी हिम्मत नहीं पड़ेगी, जो तुम्हारे पास आ जाय। धूलमें डाल दोगे तो फिर असा हो जायगा। अपने हाथमें लिये फिरना। तुम तो मेरे दिलदारकी कथा सुनाते हो, तुम्हें किसका डर है!'

और उन्होंने फिर कहा—'अच्छा, जरा शाहजादे अवधके हुस्नका बयान तो करो। उसे देखकर कैसे देव-दानव और जानवरतक बिक जाते हैं, छक जाते हैं!'

पण्डितजी शाहसाहेबका बड़ा ही सम्मान करते थे और जानते भी थे कि वे सिद्ध फ़क़ीर हैं। शाहसाहेबकी आज्ञाका पालन करना ही था। वहीं बैठ गये। रामायणकी पोथी खोली और लगे त्रैलोक्यसुन्दर नवघनवपु श्रीरामके भुवनमोहन सौन्दर्यका वर्णन करने। राजा जनकके धनुष-यज्ञ-मण्डपमें विराजित श्रीराम-लक्ष्मणके सौन्दर्यका गान करते हुए अत्यन्त तन्मयतासे पण्डितजीने गाया—

कटि तूनीर पीत पट बाँधें। कर सर धनुष बाम बर काँधें॥
पीत जग्य उपबीत सुहाए। नख सिख मंजु महाछबि छाए॥
देखि लोग सब भए सुखारे। एकटक लोचन चलत न तारे॥
हरषे जनकु देखि दोउ भाई।·······················

(मानस १। २४३। १-२)

'वाह! पण्डितजी! वाह! वाह!' शाहसाहेबके नेत्र झर रहे थे। वे कथा सुनकर मस्त हो गये थे। 'खूब सुनाया!'

शाहसाहेबने विचार किया, 'मेरे कारण पण्डितजीकी कथा बंद हो गयी। मुझे मेरे प्राणप्रेमीका दुर्लभ गुणगान सुननेको मिला। मैं बदलेमें इन्हें क्या दूँ!'

* महराब और खंभों।

† जगह

संत संतुष्ट हो गये। बोले—'अच्छा पण्डितजी! माँगो, क्या माँगते हो?'

पण्डितजी शाहसाहेबको अच्छी तरह जानते थे। बहुत देरतक सोचनेके अनन्तर उन्होंने तीन चीजोंकी इच्छा प्रकट की—

(१) मेरे कोई संतान नहीं, एक पुत्र चाहिये।

(२) मृत्यु-कष्ट मुझे न हो। अनायास ही मेरी मृत्यु हो जाय।

(३) प्राणाराम श्रीरामके पद-पद्मोंमें प्रीति हो।

'लो, दो चीजें अभी देता हूँ।' शाहसाहेबने पूरी उमङ्गसे कहा। 'तीसरी चीज तब दूँगा, जब तुम फिर मिलकर मेरे दिलबरकी कथा सुनाओगे।'

'हाय!' चूक गये पण्डितजी। जीवनका ध्येय ही विस्मृत हो गया। मणि छोड़कर काँच ले बैठे। अत्यन्त उदास होकर उन्होंने पूछा, 'मैं फिर आपको कहाँ पाऊँगा?'

'यारकी गलियोंमें।' शाहसाहेब बोले—'मेरा यार तुम्हें घुमा-फिराकर मुझसे मिला ही देगा। चिन्ता मत करो। अब जाओ।'

पण्डित टेकचन्दजी विदा हुए और शाहसाहेब अपने यारके सौन्दर्यका गुन गाते उसकी गलीकी ओर चले। उन्होंने पण्डितजीके मुँहसे सुनी प्रार्थनाकी केवल एक पङ्क्ति यादकर ली थी और उसे ही कभी-कभी उछलकर गाते—

'रमानाथो रामो वसतु मम चित्ते तु सततम्।'

चार महीने बीते। पाँचवें मासमें शाहसाहेब अपने यारकी तलाश करते-करते अयोध्या पहुँच गये। बाबरी मसजिदमें उतरे। तृषासे पीड़ित ही शीतल जलका सुख जानता है। इतने दिनों बाद अयोध्याके दर्शन करनेपर शाहसाहेबको कितना आनन्द प्राप्त हुआ; उनका हृदय कितना उल्लसित हुआ, उन्हें कौन-सी अलौकिक निधि प्राप्त हो गयी, जिसके कारण उनके पैर धरतीपर नहीं पड़ रहे थे—इसे कौन बताये! बस, वे ही जानते हैं और जानता है उनका दिलदार यार!

और उसकी कुञ्जमें आकर वे जहाँ बैठते, वहीं ध्यानस्थ हो जाते। बस, वे श्रीरामकी आराधना ही करते रहते। एक दिनकी बात है। शाहसाहेब श्रीरामके ध्यानमें मग्न बैठे थे।

'अबतक तो अकेला नहीं था।' ध्यान भङ्ग होनेपर महात्मा बखालीको अत्यधिक क्लेश हुआ। अपने आराध्यके वियोगमें हुई व्यथा एवं रोषको नियन्त्रितकर उन्होंने उत्तर दिया। 'दिलदार यारके साथ मजे लूट रहा था, पर तुम्हारे आ जानेसे मैं जरूर अकेला हो गया।'

महात्मा बखालीके साभिप्राय वचन सुनकर उक्त सज्जनको बड़ा खेद हुआ। उन्होंने शाहसाहेबसे बार-बार क्षमा माँगी और प्रणाम कर वहाँसे चले गये।

दो-चार दिन बाद शाहसाहेबने अपने आराध्यके पवित्रतम धामकी परिक्रमा करनेका निश्चय किया और एक बार परिक्रमा की तो जब जीमें आता, तभी परिक्रमा कर आते। यह बात तबकी है, जब अयोध्यामें इतने मन्दिर नहीं थे और परिक्रमा भी इतनी सुकर नहीं थी; पर अपने इष्टसे सम्बन्धित वस्तुएँ कितनी सुखद होती हैं, इसे श्रद्धा-भक्तिपूर्ण भक्त-हृदय ही जानता है।

पर शाहसाहेबकी बड़ी विचित्र स्थिति थी। उनका पवित्रतम हृदय भगवान् श्रीरामकी वियोगवह्निमें झुलसता जा रहा था और दूसरी ओर पुजारी इन्हें मन्दिरमें प्रविष्ट नहीं होने देते थे। इस कठिनाईमें इनकी दर्शन-लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही थी। महात्मा बखाली दिन-रात छटपटाने लगे। वे सम्पूर्ण रात्रि रोते-रोते बिता देते। पर,

जिसको हम चाहैं न प्यारे [illegible]।
[illegible]॥

अपने इष्ट श्रीरामके ध्यानमें तल्लीन, गाते, उछलते-कूदते वसाली साहब सरयू-तटपर पहुँचे । आषाढ़ मास था । सरयू-जीके जलका प्रवाह अत्यन्त तीव्र था । वसाली साहबको अपने तन-मनकी सुध नहीं थी । प्रेमोन्मत्तताकी स्थितिमें उन्हें पता ही नहीं था कि वे कौन हैं, क्या कर रहे हैं और कहाँ जा रहे हैं । सरयूजीकी तीव्र धारामें कूद पड़े और अगाध जलमें विलीन हो गये ।

'वसाली साहब डूब गये'—शोर मचा । कितने व्यक्ति सरयूमें तुरंत कूद पड़े । स्वर्गद्वार-घाट और लक्ष्मण-घाट सब छाना गया, पर वसाली साहब कहीं नहीं मिले । सबने समझ लिया, 'वसाली साहब सरयूमें डूब गये ।'

किंतु एक पखवाड़ेके अनन्तर वे गुप्तार-घाटपर निकले । आश्चर्यकी बात यह थी कि उनका सारा शरीर भीगा हुआ था, पर गुदड़ी एकदम सूखी थी । शाहसाहेब परमपावनी सरयूके तटपर खड़े होकर उसका प्रवाह ध्यानपूर्वक देखने लगे । उस समयके दृश्यका उन्होंने फारसीके शेरोंमें* वर्णन किया है । उसका अनुवाद इस प्रकार प्राप्त है—

गयउँ काल्ह मैं सरिता-तीर । देखेउँ सुखद एक मतिधीर ॥
चतुर मनोहर बीर निशंक । शशि-मुख कोमल सारँग अंक ॥
सुवर उठानि सुवासित गाता । वय किशोर गति गज सुखदाता ॥
चितवन चोखि, भृकुटि बर बाँके । नयन भरित मद मधुरस छाके ॥
कबहुँ छवियुत भाव जनावैं । कबहुँ कटाक्ष-कला दरसावैं ॥
प्रेमिन कहँ अस परै लखाई । मुख छवि वैदिक धर्म सुहाई ॥
मेचक कच कुंचित घुघुरारे । जनु इसलाम धर्म श्रुति धारे ॥
मम दिशि लखि भ्रू बंक सँभारेउ । छवि प्रसाद जनु देन हँकारेउ ॥
चकित थकित चित भयउँ अचेता । सुध-बुध बिसरी धर्मक-खेता ॥
नहिं जानो तिहि छिन मोहि जोही । को संदेश जतायउ मोही ॥

प्रियतम प्रभु तजि आन, जनि देखिय हियकी चखनि ।
जो देखिय मतिमान, तासु प्रकाशहिं जानिये ॥

वसाली साहबने अपने इष्टदेव श्रीरामके ध्यान-भजनमें तन्मय रहकर कुछ दिनोंतक स्वर्गद्वार और मणिपर्वतपर निवास किया । तदनन्तर प्रमोदवन जाकर वहीं रहने लगे ।

वसाली साहबकी दुआसे पण्डित टेकचंदजीको पुत्र-रत्नकी प्राप्ति हो गयी । वे सच्चे संतकी संनिधि प्राप्त कर चुके थे और सदा करुणानिधान श्रीरामकी कथा कहा करते थे; इस कारण उनके मनमें श्रीरामकी प्राप्तिकी कामना उदित हो गयी थी और वह उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी । अब उनके मनमें वसाली साहबसे सर्वप्रथम प्रभु-पद-प्रीतिके वरकी याचना न करनेके कारण पश्चात्ताप हो रहा था । वे बार-बार सोचा करते—'मैं सदा श्रीराम-कथा कहा करता हूँ, पर मैंने प्रभुकी कृपाकी याचना नहीं की । मैं कितना बड़ा मूर्ख हूँ ! अब वसाली साहब कहाँ मिलेंगे ? पर उन्होंने मुझे दर्शन देनेका आश्वासन दिया है ।' इस प्रकार पण्डित टेकचंदजी सदा चिन्तन किया करते ।

एक दिन उनसे नहीं रहा गया तो घर त्यागकर चल पड़े । सीधे अयोध्या पहुँचे । पुण्यतोया सरयूमें स्नान कर श्रीभगवान्के दर्शन किये । फिर सोचा, 'वसाली साहब कैसे मिलेंगे ? अच्छा, यहीं रामायणकी कथा प्रारम्भ करूँ ! कथाकी ख्यातिसे श्रीराम-गुण-गान-प्रेमी वसाली साहब जहाँ कहीं होंगे, अवश्य आ जायँगे ।'

पण्डितजीने उसी दिन कथा प्रारम्भ कर दी । कथा नियमितरूपसे चलने लगी । पण्डितजीके मुँहसे श्रीराम-चरित्र सुनकर श्रोता झूम उठते, पर पण्डितजीकी दृष्टि ढूँढ़ती रहती वसाली साहबको । कितने दिन बीत गये, पर वसाली साहबके दर्शन नहीं हुए ।

---

* दोश रफ्त वसूय हम्मामे ।
दीदम आँजा इके दिलारामे ॥
चाबुके दिलबरे व बेबाके ।
नाजुके महरुखे गुल अन्दामे ॥
सरो कद आ समन बूए ।
सरकशे खूँ खुरे बखुद कामे ॥
तुन्द खोये व मरदुम आजारे ।
मस्त चश्मे व साहिरे आशामे ॥
गाह दर बस्त दीला परदाजे ।
गाह दर इस्म इश्वा अस्लामे ॥
आशिकाँरा हमी नमूद अयाँ ।
ज रुखो जुल्फ कुफ्रो इस्लामे ॥
चूँ मरा दीद रूए खुद तलबीद ।
तानवर्जद जलय अन्यामे ॥
मुत्तहैयर चुना शुदम किन माँद ।
वमन अज होश दरगहे नामे ॥
मी नदानम कि अन्दराँ हैरत ।
व 'वसाली' क दाद पैगामे ॥
कि बवक्माने दिल मुबीं जुज दोस्त ।
हर चे बीनी यदाँ कि मपहर औस्त ॥

एक दिनकी बात है। पण्डितजी वसाली साहबसे मिलनेके लिये अत्यन्त आतुर थे। उन्हें लगा, जैसे आज कथामें महात्मा वसाली अवश्य पधारेंगे और कथामें पण्डितजीकी दृष्टि चारों ओर वसाली साहबको ही खोज रही थी; पर अन्ततक उनके दर्शन नहीं हुए। कथा समाप्त हो गयी। श्रोता आरती लेकर चलने लगे, तब पोथी बाँधते हुए अत्यधिक दुःखी और उदास मनसे पण्डितजीने कहा—

'रंग पीले पड़ गये जिनके लिये।
वे शाहजी आये न दम भर के लिये॥'

उसी समय शाहसाहेब वहाँ उपस्थित हो गये। व्यासासन छू न जाय, इस विचारसे उन्होंने दूरसे ही पाँच दाने यवके पोथीपर फेंके। यवके दाने पोथीपर न पड़कर नीचे गिर गये। वहाँ बैठे दो-एक व्यक्तियोंने उन यवके दानोंको उठाकर देखा, वे यव नहीं, सुवर्णके दाने थे। उन्हें पण्डितजीको दे दिया। यह देखकर लोग आश्चर्यचकित हो गये।

पण्डितजीके हर्षकी सीमा नहीं थी। उन्होंने तत्क्षण व्यासासनसे उतरकर शाहजीका अभिनन्दन किया और अपने अयोध्या आकर कथा बाँचनेका हेतु भी उन्हें बता दिया।

शाहजी बोले—'यहाँसे अवकाश मिलनेपर प्रमोद-वनमें बेर-वृक्षके नीचे आ जाना।'

कुछ देर बाद पण्डितजी प्रमोद-वन चलनेके लिये प्रस्तुत हुए तो कितने लोग उनके साथ चलने लगे। पण्डितजीने उन्हें समझा दिया कि 'आपलोगोंके साथ रहनेसे शाहजीके दर्शन नहीं होंगे। अतएव आपलोग कृपापूर्वक लौट जायँ।'

पण्डितजीके समझानेसे सब लोग लौट गये, किंतु एक व्यक्ति चोरीसे उनके पीछे-पीछे चला। पण्डितजी प्रमोद-वनमें बेर-वृक्षके नीचे पहुँचे तो वहाँ शाहसाहेबका पता नहीं था। पण्डितजी वहीं बैठ गये और बैठे ही रहे। उनके पीछे चोरीसे आया हुआ व्यक्ति निराश होकर लौट गया। उसके वहाँसे जानेके अनन्तर उसी बेर-वृक्षके नीचे वसाली साहब प्रकट हो गये।

पण्डितजीने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनीत वाणीमें कहा—'आपके अनुग्रहसे पुत्र तो प्राप्त हो गया; अब आप कृपापूर्वक तीसरा वरदान दीजिये।'

'ठीक है।' महात्मा वसालीने पण्डितजीको हुक्म दिया। 'आज जो कुछ कथामें मिला है, कल सब दान कर देना और रात्रिमें इसी स्थानपर आ जाना। अकेले आना। अपने साथ किसीको मत लाना।'

'जैसी आज्ञा।' पण्डितजीने हाथ जोड़ा ही था कि महात्मा वसाली अदृश्य हो गये।

पण्डित टेकचंदजी लौट आये। वे मन-ही-मन प्रसन्न थे। प्रातःकाल पुण्यमयी सरयूमें स्नान कर प्रभुका दर्शन-पूजन किया और जो कुछ पास था, पण्डितजीने सब दान कर दिया। उनके पास अपना कुछ भी नहीं रहा।

रात्रिमें पूर्णतया भिक्षुककी तरह पण्डितजी प्रमोद-वनमें उसी बेर-वृक्षके नीचे पहुँचे। उस समय वहाँ महात्मा वसाली प्रभुके ध्यानमें तल्लीन थे। वे जैसे स्वयं श्रीराम हो गये थे।

'मैं आपका सेवक आपके हुक्मके मुताबिक सेवामें हाजिर हूँ।' पण्डित टेकचंदजीने विनयपूर्वक निवेदन किया।

'आ गये!' महात्मा वसालीने नेत्र बंद किये ही कहा—'अच्छा किया। अच्छा बोलो'—

मामुकीमाने कुय दिल दारेम।
रुख़ व दुनिया बदीं नमी आरेम॥
बुल बुलानेम फ़ज़ कज़ा व क़दर।
ओफ़्तादा जुदा ज़ गुल्ज़ारेम॥
मुर्ग़ शाखे दरख़्त लाहूतेम।
गौहरे दुर्रे गंज असरारेम॥

रहा। उनके आनन्दकी सीमा नहीं थी। नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये थे।

पण्डित टेकचंदजीका नाम 'वलीराम' पड़ा। फारसीके केवल 'मामुकीमा'के तीन शेर पढ़कर वे अरबी और फारसीके अद्भुत विद्वान् हो गये। उनका लिखा 'दीवाने-वलीराम' ख्यातिलब्ध ग्रन्थ है। उसका बड़ा सम्मान है।

'मामुकीमा' नामक प्रसिद्ध पुस्तिका महात्मा बसालीके ही द्वारा रची हुई है। उस दिन पण्डित टेकचंदजीके सम्मुख अर्द्धरात्रिमें उक्त शेर महात्मा बसालीके मुँहसे स्वयं निकल गये थे। दूसरे दिन लखनऊके कीलकालकी मज़लिसमें पीरज़ादा नकीशाहने इसी शायरीको बड़े ही उल्लाससे सुनाया, जिसे सुनकर लोग बड़े प्रसन्न हुए। इतना ही नहीं, वह शायरी लोगोंको इतनी प्रिय लगी और उसका इतना अधिक प्रचार हुआ कि वह मकतबोंमें पढ़ायी जाने लगी।

एक दिनकी बात है। मौलाना नज़ीर शाहसाहेबसे मिलने आये। उन्होंने बड़े ही प्रेमसे वे शेर शाहसाहेबको सुनाये। शाहसाहेबने कहा—'यह रचना तो मेरी है। मैंने इसे किसीको लिखाया भी नहीं, फिर इसे आपने कैसे याद कर लिया?'

'मैंने तो इसे लखनऊके कीलकालकी मज़लिसमें सुना था।' मौलाना नज़ीरने अर्ज किया। 'इसे सब लोगोंने पसंद किया और सबने इसकी तारीफ की। बहुत ही पसंद होनेकी वजहसे मुझे याद हो गयी।'

यह सुनकर शाहसाहेब चकित तो हुए, पर अपने दिलदार यारकी दिलफरेब हरकत समझकर चुप हो गये।

महात्मा बसाली प्रमोद-वनमें और पण्डित वलीरामजी मणिकूट पर्वतपर रहकर अपने प्रियतमके ध्यानमें तन्मय रहते थे। वे जब कभी मिलते तो अपने आराध्यकी लीला-कथा कहने-सुनने लगते। इसमें उनको अद्भुत, अलौकिक आनन्दोपलब्धि होती।

अन्तमें महात्मा बसाली श्रीरामका ध्यान करते हुए साकेतधाम पधारे। उनकी समाधि उसी बेर-वृक्षके नीचे अबतक विद्यमान है।

श्रीरामकी अनुपम उदारता

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर, राम सरिस कोउ नाहीं॥
जो गति जोग-बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी।
सो गति देत गीध-सबरी कहुँ, प्रभु न बहुत जियँ जानी॥
जो संपति दससीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्ही।
सो संपदा बिभीषन कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्ही॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम, काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो॥

(विनयपत्रिका)

क्षमा-प्रार्थना एवं नम्र निवेदन

भवोद्भवं वेदविदां वरिष्ठ-
मादित्यचन्द्रानलसुप्रभावम् ।
सर्वात्मकं सर्वगतस्वरूपं
नमामि रामं तमसः परस्तात् ॥

'जो संसारके स्रष्टा, वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, सूर्य, चन्द्रमा और अग्निके समान उत्तम प्रभावशाली, सर्वस्वरूप, सर्वत्र व्यापक और तमसे परे हैं, उन भगवान् श्रीरामको मैं प्रणाम करता हूँ।'

भगवान् श्रीरामकी अहैतुकी कृपा, परमश्रद्धेय नित्य-लीलालीन हमारे भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) की चिन्मय-विग्रहसे की गयी आत्मीयतापूर्ण सँभाल तथा पूजनीय संतों, महात्माओं, विद्वानों, लेखकों, सहयोगियों, स्वजनों आदिके अनुग्रहपूर्ण सहयोगसे 'श्रीरामाङ्क' इन पृष्ठोंमें समाप्त हो रहा है। परिपाटीके अनुसार अङ्ककी समाप्तिपर सम्पादककी ओरसे 'क्षमा-प्रार्थना और नम्र निवेदन' जाना चाहिये। अतएव 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' के सिद्धान्तको स्वीकारकर कुछ पङ्क्तियाँ लिख रहा हूँ। किंतु मेरा हृदय भरा आ रहा है; साथ ही संकोच, ग्लानि और लज्जाके भाव मुझे इससे विरत कर रहे हैं। 'कल्याण' एक विशुद्ध आध्यात्मिक पत्र है, अतएव इसके सम्पादकका जीवन पूर्णतया अध्यात्मनिष्ठ होना चाहिये। 'कल्याण'के विकासमें परमश्रद्धेय श्रीभाईजीकी आध्यात्मिक स्थिति ही प्रधान हेतु रही है। उनका जीवन भगवद्विश्वास, भगवत्प्रेम, भगवद्भक्ति, ज्ञान एवं निष्काम कर्मका मूर्तिमान् आदर्श था। गीताके सोलहवें अध्यायमें वर्णित दैवी सम्पदाके गुण सहज एवं स्वाभाविकरूपसे उनमें प्रतिष्ठित थे। जो कुछ वे 'कल्याण'में लिखते थे, वह सब उनमें था। उनके पवित्र जीवन, पवित्र वाणी, पवित्र लेखनी, पवित्र दृष्टि, पवित्र विग्रहसे नित्य-निरन्तर भगवद्रसकी विश्व-पावनी अखण्ड सुधा-धारा प्रवाहित होती रहती थी और वह जगत्‌के जीवोंको सहज ही अमृतत्व प्रदान करती थी। यही हेतु है कि 'कल्याण'का छोटा-सा पौधा सहजरूपसे विकसित होता हुआ आज इस रूपमें जनता-जनार्दनकी सेवा कर रहा है। 'कल्याण'की सेवामें श्रद्धेय श्रीभाईजीने अपने जीवनका क्षण-क्षण तथा शरीरका कण-कण होम दिया था। वास्तवमें 'कल्याण' और श्रीभाईजी पर्याय हो गये हैं। 'कल्याण'के लिये की गयी उनकी सेवाओंका वर्णन कोई क्या कर सकता है; वह तो अनुभवगम्य है, उसका वाणीमें आना सम्भव नहीं है।

पर विधिकी विडम्बनासे हमारे परमश्रद्धेय श्रीभाईजी गत चैत्र कृष्ण १०, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९६, तदनुसार २२ मार्च १९७१ को प्रातःकाल ७ बजकर ५५ मिनटपर पाञ्चभौतिक कलेवरका परित्याग कर—हम सबको छोड़कर भगवान्‌की नित्यलीलामें लीन हो गये और उनके लगाये इस विशाल 'कल्याण'रूपी वृक्षकी सार-सँभालका भार किसको सौंपा जाय—यह प्रश्न उपस्थित हुआ तथा मेरे सर्वथा न चाहनेपर भी गुरुजनों, स्वजनों, आत्मीयजनोंके अनुरोधके कारण अपने सर्वथा अयोग्य एवं निर्बल कंधोंपर उसके सम्पादनका भार मुझे स्वीकार करना पड़ा। इस भारको वहन करनेके लिये उस क्षण मैं अपनेको सर्वथा अक्षम अनुभव करता था और आज भी कर रहा हूँ। यद्यपि 'कल्याण'के सम्पादकके रूपमें मेरा नाम भी गत ३७-३८ वर्षोंसे प्रकाशित होता रहा है, तथापि वस्तुस्थितिका निर्देश करते समय इस तथ्यको स्पष्ट करना मेरा कर्तव्य है कि 'कल्याण'का सारा भार अकेले श्रीभाईजी ही वहन करते थे। वर्षोंसे उनका स्वास्थ्य बहुत ढीला था, भीषण व्याधियाँ उनके पाञ्चभौतिक शरीरको जर्जर एवं अशक्त कर रही थीं; परंतु फिर भी चारपाईपर बैठे-बैठे अथवा लेटे-लेटे वे 'कल्याण'का कार्य सम्पन्न करते रहे और यह क्रम अन्तिम समयतक चलता रहा। सम्पादकके रूपमें अपने पावन एवं गौरवशाली नामके साथ मेरा नाम वे अपने शीलवश मुझे प्रोत्साहित करने और मेरी सम्मानकी वासनाको पूर्ण करनेके लिये ही जोड़ दिया करते थे। मेरे अंदर न तो साधन-बल है न आध्यात्मिक अनुभव, न त्याग न तप, न शास्त्रज्ञान न शास्त्रनिष्ठा, न दैवी सम्पदाकी पूँजी और न प्रौढ़ विचार। इसके अतिरिक्त न भगवान्‌की वाणी तथा शास्त्रों, ऋषियों, भक्तों, ज्ञानियों आदिके वचनोंके रहस्यको भाषाका रूप देनेकी क्षमता ही मेरी लेखनी-में है। इस प्रकार 'कल्याण'-जैसे पत्रके सम्पादकमें जैसी और जितनी योग्यता होनी चाहिये, उसका मैं अपने अंदर सर्वथा अभाव अनुभव करता हूँ। परंतु भगवान्‌की अहैतुकी कृपा, श्रद्धेय श्रीभाईजीकी उदार आत्मीयता तथा पूज्य संतों, महात्माओं, आचार्यों, विद्वानों, लेखकों, भक्तों आदिके आशीर्वाद एवं सद्भावका अवलम्बन पाकर इस भारकी यह यात्रा पूर्ण कर रहा हूँ। यह यात्रा कैसी हुई है तथा इस

यात्रामें विश्वरूप प्रभुकी कैसी सेवा बन पायी है, इसका निर्णय कृपालु सहृदय जनोंपर ही छोड़ता हूँ। देशके सभी सम्प्रदायोंके प्रमुख महात्माओं, संतों, आचार्यों, विद्वानों, विचारकों, भक्तोंने आरम्भसे ही 'कल्याण'को अपना माना है और वे उसका हित-चिन्तन करते आये हैं तथा अपने आशीर्वाद, सत्परामर्श एवं सद्-रचनाओंद्वारा 'कल्याण'को परम उपादेय तथा समुन्नत करनेका उन्होंने निरन्तर प्रयत्न किया है और इसके प्रचार-प्रसारमें अकथनीय सहयोग प्रदान किया है। हम उन सभी गुरुजनों, प्रेमियों, हितैषियों और स्वजनोंके ज्ञात-अज्ञात उपकारों एवं कृपा तथा आत्मीयताके प्रति श्रद्धा एवं भक्तिपूर्ण हृदयसे अवनत हैं और उनसे विनम्र प्रार्थना करते हैं कि भविष्यमें भी इसी प्रकार अपने इस पत्रपर ममता एवं छोह बनाये रखें, जिससे 'कल्याण'को उनका अमूल्य आशीर्वाद और सहयोग प्राप्त होते रहें। अस्तु,

संयम, सदाचार, स्वार्थ-त्याग, माता-पिता एवं अन्य गुरुजनोंका सम्मान और सेवा, परस्पर सौहार्द तथा प्राणिमात्रकी भगवद्बुद्धिसे सेवा भारतीय धर्म एवं संस्कृतिके आधारस्तम्भ हैं। वर्तमान युगमें इन सभी आदर्श गुणोंका जगत्में शोचनीय ह्रास हो रहा है। सर्वत्र मर्यादाहीनता, उच्छृङ्खलता, अनाचार, दुराचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार एवं व्यभिचारका बोलबाला है। सत्यनिष्ठा, ब्रह्मचर्य एवं मर्यादित जीवनका लोप-सा हो रहा है। भोगलिप्सा अमर्यादरूपसे बढ़ रही है। परस्पर विद्वेष तथा कलह, परस्वापहरण, मुकदमेबाजी, चोरी-डकैती, मार-काट, जीवहिंसा, घूसखोरी एवं स्वार्थपरायणता सीमाको पार कर चुके हैं। नवयुवकों एवं विद्यार्थियोंमें अनुशासनहीनता, गुरुजनोंके प्रति अवज्ञा एवं उद्दण्डता स्वभावगत-सी हो गयी है। इस शोचनीय ह्रासकी गति अवरुद्ध हो और हम मानवजीवनके चरम उद्देश्यको समझकर उसकी उपलब्धिके लिये प्रयत्नशील हों और मानव होकर मानव कहलानेकी योग्यता अर्जन करें—इसके लिये आवश्यकता है कि भगवान् श्रीरामके आदर्श चरित्र और लीला-कथाका स्मरण, चिन्तन एवं मनन तथा पठन-पाठन किया जाय। भगवान् श्रीराम भारतीय अध्यात्म, धर्म एवं संस्कृतिके आधारस्तम्भ हैं और उनकी आराधना प्रायः प्रत्येक आस्तिकके घरमें होती है। इतना ही नहीं, भगवान् श्रीरामको जो व्यक्ति भगवान्के रूपमें स्वीकार नहीं कर पाते, वे भी उनके आदर्श गुणों और मर्यादित जीवनके प्रति नतमस्तक हैं। अतः इस पुनीत उद्देश्यको दृष्टिमें रखकर इस अङ्कके प्रकाशनका प्रयास किया गया है।

भगवान् श्रीरामकी अनन्त अपरिसीम कृपासे इन पृष्ठोंमें भगवान् श्रीराम, जो परात्पर समग्र 'ब्रह्म' हैं, 'निर्गुण ब्रह्म' हैं, 'विष्णुके अवतार' हैं, 'मर्यादा-संस्थापक तथा संरक्षक महापुरुष' हैं, जो 'महामानव' हैं, 'आदर्श राजा' हैं—इतना ही नहीं, जो 'सर्व-कारणकारण' हैं, जिनसे सब उत्पन्न है, जिनमें सब स्थित है, जिनमें सब कुछ समाया हुआ है तथा जिनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है—वह 'नहीं' भी जिनके स्वरूपगत है—अर्थात् जिनका स्वरूप वाणीसे अगोचर, बुद्धिसे परे, अव्यक्त, अकथनीय और अपार है, वेद 'नेति-नेति' कहकर जिनका निषेधमुखसे वर्णन करते हैं, उन्हीं भगवान् 'श्रीराम' और उनकी अभिन्ना शक्ति भगवती सीताके नाम, स्वरूप, लीला, धाम, आदर्श गुण, प्रभाव एवं महत्त्व आदिका विवेचन विस्तारसे इस अङ्कमें किया गया है। अतएव यहाँ उसके सम्बन्धमें विशेष लिखकर उसकी पुनरावृत्ति नहीं करना चाहता।

इस अङ्कके सम्पादनमें श्रद्धेय महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथ कविराज महाशयका आशीर्वाद सदाकी भाँति हमें प्राप्त हुआ है। उनकी इस सहज कृपाके लिये हम कृतज्ञतासे नतमस्तक हैं। सामग्रीका संचय करना, सम्पादन करना, प्रेस कापी तैयार करना, प्रूफ देखना आदि सब कार्य पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा, पं० श्रीशिवनाथजी दुबे, श्रीरामलालजी, श्रीमाधवशरण, श्रीदुलीचन्द दुजारी, श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवाल, श्रीराधेश्याम बंका, श्रीहरिकृष्ण दुजारी आदि हमारे सभी सहयोगियों, स्वजनों एवं मित्रोंके सहयोगसे सम्पन्न हुआ है। मेरा हृदय उनके प्यार एवं आत्मीयताके भारसे दबा है। पं० श्रीरामाधारजी शुक्ल शास्त्रीसे भी हमें इस कार्यमें सहायता मिली है। इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

इस वर्ष लेख अन्य वर्षोंकी अपेक्षा अधिक आये। विशेषाङ्कके पृष्ठ निश्चित होनेसे सबका उपयोग सम्भव नहीं हुआ। साथ ही अनेकों आवश्यक विषयोंका प्रतिपादन सम्यक्‌रूपसे नहीं हो पाया था। अतएव आगामी फरवरी एवं मार्चके अङ्क 'श्रीरामाङ्क'के परिशिष्टाङ्कके रूपमें ही रहेंगे। हमारी इच्छा एवं प्रयत्न था कि दोनों परिशिष्टाङ्क विशेषाङ्कके साथ ही प्रकाशित हों; पर

इतने अल्प समयमें उनके मुद्रणकी व्यवस्था नहीं हो पायी। अङ्क समयपर निकल जाय, इसके लिये पूरी चेष्टा करनेपर भी हम इसमें कृतकार्य नहीं हुए। कृपालु पाठक-पाठिकाएँ इसके लिये हमें क्षमा करेंगे। स्थान-संकोचके कारण बहुत-से लेखोंका संक्षेप किया गया है। इसमें अपनी ओरसे प्रयत्न यही रहा है कि मूल लेखकके भाव एवं भाषाको यथासम्भव अक्षुण्ण रखा जाय, फिर भी भूल हो जाना स्वाभाविक है। किन्हीं महानुभावकी रचनाका स्वरूप विकृत हुआ हो तो वे कृपया हमें क्षमा करें। अनेकों लेख-कविताओंका उपयोग नहीं हो पाया है। उनके लेखक महोदयोंने अपनी सहज कृपा एवं प्रीतिवश अपनी अमूल्य रचनाएँ हमें प्रेषित कीं, पर सीमित पृष्ठोंमें उनका उपयोग सम्भव नहीं हुआ। हम उनसे भी हाथ जोड़कर क्षमा प्रार्थना करते हैं।

भगवान् श्रीरामके स्वरूपतत्त्व एवं लीलाचरित्रके सम्बन्धमें 'कल्याण'के कई विशेषाङ्क अबतक प्रकाशित हो चुके हैं—जैसे वर्ष ५का विशेषाङ्क 'रामायणाङ्क', वर्ष १३ का 'मानसाङ्क', वर्ष १८ का 'संक्षिप्त वाल्मीकि रामायणाङ्क' और वर्ष ४१ का 'श्रीराम-वचनामृताङ्क'। इसके अतिरिक्त 'कल्याण'के प्रायः प्रत्येक विशेषाङ्कमें तथा साधारण अङ्कोंमें भी भगवान् श्रीरामके स्वरूपतत्त्व एवं लीलाचरित्रका वर्णन संक्षेप या विस्तारसे अवश्य आया है। अतएव इस अङ्कके लिये सामग्री संचयनमें यह दृष्टि अवश्य रखी गयी है कि आवश्यक विषय छूटें नहीं और उनकी विशेष पुनरावृत्ति भी न हो। इस कार्यमें हमें कहाँतक सफलता मिली है, सुधीजन ही इसका निर्णय करेंगे।

भगवान् श्रीराम उपमारहित हैं; उनकी कोई उपमा है ही नहीं। श्रीरामके समान राम ही हैं। जैसे अनन्त जुगनुओंके समान कहनेसे सूर्य प्रशंसाका विषय नहीं होता, वरं अत्यन्त लघुताको ही प्राप्त होता है—उसमें सूर्यकी निन्दा ही होती है, उसी प्रकार श्रीरामके सम्बन्धमें कुछ भी कहा जाय, वह उनके वास्तविक स्वरूपका एक दिग्दर्शनमात्र है। परंतु प्रभु श्रीराम परम कृपालु और भावग्राहक हैं—वे अपने भक्तोंके भावभजनको अपनाकर उनके यशोगानको प्रेम-सहित सुनते हैं और उसमें सुख मानते हैं—

अतएव हमें आशा है कि भगवान् श्रीराम और उनके निजजन—प्रेमी भक्तलोग हमारे इस क्षुद्र प्रयासको, जो सर्वथा त्रुटिपूर्ण है, देख-सुनकर प्रसन्न होंगे। बस, हमारे संतोषके लिये यही आधार है।

चित्रोंके सम्बन्धमें नम्र निवेदन करते हुए बड़ा ही संकोच अनुभव हो रहा है। प्रतिवर्ष १५-१६ तिरंगे चित्र दिये जाते थे, किंतु इस वर्ष बड़ी कठिनाईसे केवल ११ चित्र ही हम दे पा रहे हैं। चित्र बने हैं, पर कई प्रकारकी विवशताओंके कारण उनका इस अङ्कमें उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। इस लाचारीके लिये हम अपने कृपालु पाठक-पाठिकाओंसे क्षमा-याचना करते हैं। आशा है, वे अपनी सहज उदारता एवं आत्मीयतावश हमारी विवशताको अपनी विवशता समझकर हमें इसके लिये क्षमा करेंगे। हाँ, अपनी अयोग्यता, प्रमाद एवं अहंकारवश इसके सम्पादनमें मुझसे जाने-अनजाने अनेकों अपराध बने होंगे, मैं उन सबके लिये सबसे विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर क्षमा-याचना करता हूँ।

पिछले कई महीने भगवान् श्रीरामके परम मधुर चरित्रके पठन, स्मरण और मननमें बीते—यह हमारा परम सौभाग्य है। भगवान् श्रीरामकी कृपासे उनके यशोगानका यह पावनतम कार्य उन्हींकी शक्ति-भक्तिसे सम्पन्न हुआ है और उन्हींके पावन चरणोंमें यह सभक्ति समर्पित है—'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।' अन्तमें गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें भगवान् श्रीरामके चरणोंमें विनीत प्रार्थना करता हूँ कि वे ऐसी कृपा करें, जिससे मेरे जीवनके शेष श्वास उनके स्मरणमें ही बीतें—

भगवान् श्रीरामसे प्रार्थना

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भवभय दारुणं ।
नवकंज-लोचन, कंज-मुख, कर-कंज, पद-कंजारुणं ॥ १ ॥

कंदर्प अगणित अमित छवि, नवनील नीरद सुंदरं ।
पट पीत मानहुँ तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक-सुतावरं ॥ २ ॥

भजु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्यवंश-निकंदनं ।
रघुनंद आनँदकंद कोसलचंद दशरथ-नंदनं ॥ ३ ॥

सिर मुकुट कुंडल तिलक चारु उदारु अंग विभूषणं ।
आजानुभुज शर-चाप-धर, संग्राम-जित-खरदूषणं ॥ ४ ॥

इति वदति तुलसीदास शंकर-शेष-मुनि-मन-रंजनं ।
मम हृदय कंज निवास करु, कामादि खल-दल-गंजनं ॥ ५ ॥

॥ श्रीसीतारामचरणकमलेभ्योऽर्पितम् ॥

